(Theory of Investment-2)

त्वरण सिद्धान्त

(The Acceleration Principle)

भाग 1
(VOLUME ONE)

माइक्रो अर्थशास्त्र
(Micro Economics)

खण्ड 1

अर्थशास्त्र का क्षेत्र तथा रीति-विधान

(Scope and Methodology of Economics)

1

आर्थिक समस्या, अर्थशास्त्र तथा परिभाषा

(Economic Problem, Economics and Definition)

"Economics is the science of choice. It began with Aristotle but got mixed up with ethics in the Middle Ages. Adam Smith separated it from ethics, and Walras mathematized it. Alfred Marshall tried to narrow it, and Keynes made it fashionable. Robbins widened it, and Samuelson dynamized it, but modern science made it statistical and tried to confine it again."

—R. A. MUNDELL

'आर्थिक समस्या' या 'किफायत का नियम'

(THE ECONOMIC PROBLEM *OR* THE LAW OF ECONOMY)

अर्थशास्त्र के आधार (Foundations of Economics) **निम्न दो तत्व हैं**—आवश्यकताएँ (wants) तथा साधन (resources); दूसरे शब्दो मे, अर्थशास्त्र का सम्बन्ध 'आवश्यकताओं' तथा 'साधनों' से होता है। आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं तथा साधन सीमित होते हैं; साधनों की सीमितता और भी बढ़ जाती है क्योंकि प्रत्येक साधन को कई प्रयोगो या विकल्पों (alternatives) मे इस्तेमाल किया जा सकता है। साधनों के अन्तर्गत केवल भूमि, श्रम व पूंजी ही नहीं आते बल्कि 'समय' भी आता है; समय भी एक महत्वपूर्ण साधन है और वह सीमित है। सीमित साधनों द्वारा उत्पादित वस्तुएं व सेवाएं भी सीमित होंगी; वस्तुओ व सेवाओं द्वारा मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। चूंकि साधन सीमित हैं इसलिए समाज या व्यक्ति साधनों (और वस्तुओ) का कुशलता के साथ प्रयोग करेंगे अर्थात् साधनों के प्रयोग में किफायत (economising the resources) करते हैं और इसलिए अर्थशास्त्र की समस्या 'किफायत की समस्या' (economising problem) है। शायद यह बात Economics (अर्थशास्त्र) के नाम के औचित्य (justification) को सिद्ध करती है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र या आर्थिक क्रिया[1] इस बात को बताती है कि सीमित साधनों का

---

[1] आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब 'आर्थिक क्रिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसका अर्थ केवल धन या द्रव्य से सम्बन्धित क्रिया से ही नही होता (जैसा कि मार्शल ने बताया था) बल्कि मानवीय व्यवहार के उस पहलू से होता है जो साधनों के सीमितता से प्रभावित होता है। इस बात के अर्थ तथा अभिप्राय इस अध्याय मे आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायेंगे। ध्यान रहे कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार सीमित साधनों के अन्तर्गत भूमि, श्रम तथा पूंजी और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं (अर्थात् धन) के अतिरिक्त समय को भी शामिल किया जाता है।

कुशलता या किफायत के साथ प्रयोग करके वस्तुओं का उत्पादन किया जाये ताकि आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। एक आर्थिक क्रिया (economic activity) के पाँच भाग होते हैं—(1) सीमित साधन (2) उत्पादन (3) विनिमय व वितरण (4) उपभोग (5) उपभोग का उद्देश्य होता है आवश्यकताओं की सन्तुष्टि। दूसरे शब्दों मे, सीमित साधनों की सहायता से वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन किया जाता है, इन वस्तुओं का विनिमय व वितरण होता है। इसके बाद वस्तुओं का उपभोग किया जाता है, उपभोग से संतुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार एक आर्थिक क्रिया के पाँच भाग होते हैं। आर्थिक क्रिया के सम्बन्ध में निम्न कथन ध्यान देने योग्य है—

> **मोटे रूप से (broadly) हम कह सकते हैं कि साधन और वस्तुएँ ठोस चीजें (concrete things) होती हैं, परन्तु, सामान्यतया, सेवाएँ ठोस या भौतिक (concrete or material) नहीं होतीं। संतुष्टि एक मनोवैज्ञानिक बात है, जिसे मापना कठिन होता है। उत्पादन, विनिमय व वितरण, और उपभोग की प्रक्रियाएँ रूपान्तरण-प्रक्रियाएँ (transformation processes) होती हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पादन, विनिमय व वितरण के माध्यम से साधनों का वस्तुओं और सेवाओं में रूपान्तरण (trnsformation) किया जाता है ; उपभोग के माध्यम से वस्तुओं व सेवाओं का संतुष्टियों (satisfactions) में रूपान्तरण किया जाता है।[2]**

अर्थशास्त्र के लिए, साधनों की सीमितता अर्थात 'सीमितता की समस्या' आधारभूत (fundamental) है—

> **अर्थशास्त्र में उस मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो कि सीमितता से प्रभावित होता है। सीमितता के प्रभाव के कारण मानव-व्यवहार का रूप 'चुनाव-करने' (choice-making) का हो जाता है।[3] साधनों की सीमितता अथवा 'सीमितता' के कारण ही अर्थशास्त्र का अस्तित्व (existence) है।**

अतः अर्थशास्त्र या आर्थिक समस्या को सही रूप मे और अच्छी प्रकार से समझने के लिए सीमितता के अभिप्रायों को भली प्रकार से समझना आवश्यक है। **सीमितता के अभिप्राय** (implications of scarcity) **निम्नलिखित हैं।**

1. सीमितता सापेक्षिक (relative) होती है

आर्थिक दृष्टि से सीमितता का अर्थ है कि आवश्यकताओं की तुलना मे वस्तुएँ व सेवाएँ सीमित होती है, अर्थात् सीमितता सापेक्षिक होती है।[4] आर्थिक वस्तुएँ व सेवाएँ सीमित हैं क्योंकि उनको उत्पादित करने वाले साधन (श्रम, भूमि व पूँजी) सीमित हैं, और अन्तिम सीमितता है साधन समय और प्रयत्नों की।

अतः उत्पादन मे प्रयोग होने वाले साधनो तथा अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं, जिनमे ये साधन परिवर्तित हो जाते हैं, दोनो की सीमितता है। सीमितता की समस्या और प्रबल हो जाती है

---

[2] Broadly we may say that resources and goods are concrete things, but, generally, services are not material Satisfaction is a psychic phenomenon, difficult to measure. Production, exchange and distribution, and consumption are transformation processes. In other words, through production, exchange and distribution, resources are transformed into goods and services, through consumption, goods and services are transformed into satisfactions

[3] यह बात आगे के विवरण से एक स्थान पर स्पष्ट हो जायेगी।

[4] उदाहरणार्थ, निरपेक्ष रूप मे (in the absolute sense) अच्छे अण्डो की मात्रा बहुत होती है और सड़े अण्डो की मात्रा बहुत कम। परन्तु अच्छे अण्डे आर्थिक दृष्टि से सीमित हैं क्योंकि आवश्यकता (या माँग) की तुलना मे वे कम है और इसलिए उनकी कीमत ऊँची होती है ; जबकि सड़े अण्डे, मात्रा मे बहुत कम होते हुए भी, सीमित नही है क्योंकि उनकी आवश्यकता (या माँग) शून्य होती है।

क्योंकि प्रत्येक साधन को कई वैकल्पिक प्रयोगों[5] (alternative uses) में इस्तेमाल किया जा सकता है। वास्तव में 'सापेक्षिक सीमितता' (relative scarcity) एक परिस्थिति (situation) का परिणाम है; अर्थात्

> "सीमितता एक वस्तु का गुण नहीं, बल्कि एक परिस्थिति का परिणाम है और यह परिस्थिति है आवश्यकताओं तथा साधनों के बीच प्रतिक्रिया।"[6]

अब हम सीमितता के विचार को अमेरिका जैसे अत्यधिक धनी समाज अर्थात् 'प्रचुरता-समाज' (affluent society) के सन्दर्भ (reference) में देखते हैं। प्रो० गालब्रैथ (Galbraith)[7] के अनुसार अमेरिका जैसे प्रचुरता-समाज में वस्तुओं की प्रचुरता या बाहुल्यता (abundance) ही नहीं बल्कि अत्यधिक बाहुल्यता (over-abundance) है। इसलिए प्रचुरता-समाज में मुख्य तथा वास्तविक समस्या वस्तुओं के उत्पादन की नहीं बल्कि विचारों तथा दृष्टिकोणों में परिवर्तन की है; अर्थात् 'सीमितता के विचार के त्याग तथा प्रचुरता के विचार को स्वीकार करना है' (the rejection of scarcity and the acceptance of affluence)।

परन्तु सत्यता यह है कि एक 'प्रचुरता-समाज' भी सीमितता की वास्तविकता से नहीं बच सकता। कीमत सीमितता की जाँच या सूचक है (Price is the test or index of scarcity), यदि वस्तुएँ वास्तव में प्रचुर हैं या अत्यधिक प्रचुर हैं तो 'प्रचुरता-समाज' में वस्तुओं की कीमतें क्यों होती हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यकताएँ स्थिर (static) नहीं बल्कि प्रावैगिक (dynamic) होती हैं, समयावधि में उनका निरंतर विकास होता रहता है और यहां तक कि वे 'प्रचुरता-समाज' की उत्पादन-क्षमता (productive capacity) से कहीं आगे निकल जाती है। केवल इतना कहा जा सकता है कि 'प्रचुरता-समाज' में सीमितता की समस्या कम तीव्र (less acute) होती है।[8]

2. साधनों की सीमितता के कारण 'किफायत की समस्या' (Problem of Economising) उत्पन्न होती है

साधनों की सीमितता के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि साधनों को कुशलता के साथ प्रयोग करके अधिकतम लाभ या सन्तुष्टि प्राप्त की जाये। दूसरे शब्दों में, इस बात की आवश्यकता है कि साधनों (और उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं) के प्रयोग में किफायत की जाये। अतः, अर्थशास्त्र किफायत का विज्ञान है (*Economics is the science of economising*)।

3. साधनों की सीमितता तथा उनके प्रयोग में किफायत करने के परिणामस्वरूप 'चुनाव की समस्या' (problem of choice-making) उत्पन्न होती है

आवश्यकताएँ अनन्त (unlimited) हैं तथा साधन सीमित (limited or scarce) हैं, इसलिए मनुष्य या समाज अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। सर्वप्रथम सबसे अधिक तीव्र या महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति की जायेगी, इसके पश्चात कम महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति की जायेगी, और कुछ आवश्यकताएँ असंतुष्ट रह जायेंगी। अतः मनुष्य

---

[5] उदाहरणार्थ, श्रम, भूमि तथा पूंजी का प्रयोग कारखानों में, स्कूलों व कॉलिजों, अस्पतालों, सड़कों के बनाने में, इत्यादि अनेक वैकल्पिक प्रयोगों में हो सकता है। इसी प्रकार किसी भी वस्तु, जैसे, लोहा के अनेक प्रयोग हो सकते हैं। इसी प्रकार साधन समय को कई वैकल्पिक प्रयोगों में बाँटा जा सकता है, जैसे आराम करने तथा कार्य करने में, खेलने व गप्पें लगाने में और पढ़ने में, इत्यादि।

[6] "Scarcity is not an attribute of a good, but the reflection of a situation, the interplay between wants and resources."

[7] J. K. Galbraith : *The Affluent Society*.

[8] Further, wants are not static but are dynamic, expanding, growing and increasing through time to such an extent that they far outstrip affluent society's productive capacity. The only thing is that the problem of scarcity may be said to be less acute in such a society.

या समाज को आवश्यकताओं के बीच 'विवेकपूर्ण चुनाव' (*rational choice*) करना होगा। आवश्यकताओं की पूर्ति वस्तुओं व सेवाओं से होती है, इसलिए

> 'आवश्यकताओं के बीच चुनाव करने' का अभिप्राय है वस्तुओं (व सेवाओं) के प्रयोग के सम्बन्ध में 'चुनाव करना', अर्थात् वस्तुओं (व सेवाओं) के उत्पादन के सम्बन्ध में 'चुनाव करना' अर्थात इन वस्तुओं (व सेवाओं) को उत्पादित करने वाले सीमित साधनों (भूमि, श्रम, पूंजी तथा समय*) के प्रयोग के सम्बन्ध मे 'चुनाव करना' करना होगा या 'निर्णय लेना' होगा।

यह 'चुनाव करने की क्रिया' (*choice-making aspect*) या 'निर्णय करने की क्रिया' (*decision-taking aspect*) ही मुख्य या आधारभूत 'आर्थिक समस्या' (*economic problem*) है अथवा 'किफायत का नियम' (*Law of Economy*) है और इसका अध्ययन ही अर्थशास्त्र मे किया जाता है। 'चुनाव करने की क्रिया' को ही मानव व्यवहार का 'आर्थिक पहलू' (*economic aspect* of human behaviour) कहते हैं। साधनों की सीमितता के कारण ही मानव-व्यवहार का रूप 'चुनाव करने' का हो जाता है। अत:

> **अर्थशास्त्र में उस मानव-व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो कि सीमितता से प्रभावित होता है और यह रूप है चुनाव करने की क्रिया।**
>
> अथवा (or)
>
> **"जब भी निर्णय किये जाते हैं, तो 'किफायत का नियम' क्रियाशील हो जाता है। जब भी विकल्प मौजूद होते हैं तो जीवन या मानव व्यवहार, आर्थिक पहलू का रूप ग्रहण कर लेता है।"**[10]

चुनाव करने का कोई भी तरीका हो तथा आर्थिक प्रणाली या संगठन का कोई भी रूप हो (चाहे पूंजीवाद हो या समाजवाद), विकल्पों (alternatives) के बीच चुनाव आधारभूत सिद्धान्त है जो कि सभी आर्थिक क्रियाओं के पीछे रहता है।

4. चुनाव करने की क्रिया की पृष्ठभूमि है : पसन्द के क्रम, अधिकतम करना (या सन्तुलन) तथा सीमाएँ [The background of choice-making activity is : Scales of Preference, Maximisation (or Equilibrium), and Constraints]

अर्थशास्त्र मे यह मान लिया जाता है कि यदि एक व्यक्ति, जिसके सामने कई विकल्प (alternatives) हैं, **विवेकपूर्ण तरीके से चुनाव या निर्णय** (*rational choice or decision*) करेगा; अर्थात् यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने **'पसन्दों का एक क्रम'** (*scale of preferences*) होगा, तभी वह 'विवेकपूर्ण चुनाव' कर सकेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि एक व्यक्ति 'किसी चीज को अधिकतम' (*maximise something*) करेगा; उदाहरणार्थ, एक उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करेगा, एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करेगी; इत्यादि। अधिकतम करने मे एक व्यक्ति अपनी पसन्दो को एक निश्चित क्रम म रखेगा; यद्यपि व्यवहार मे प्राय: व्यक्ति पसन्दो का एक बहुत निश्चित (precise) क्रम नहीं रखते है, परन्तु मोटे रूप मे वे अपनी तीव्र आवश्यकताओं और कम तीव्र आवश्यकताओं के बीच अन्तर जरूर करते है। अत: **आर्थिक सिद्धान्त** (economic theory) **के लिए यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति 'विवेकपूर्ण तरीके से चुनाव या व्यवहार' करता है**

'शब्द विवेकपूर्ण चुनाव' (*rational choice*) **का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता।**

---

* समय (time) एक अन्तिम महत्वपूर्ण साधन है। समय भी सीमित है और समय का प्रतियोगी तरीकों मे व्यय करने (competing ways of spending time) के बीच चुनाव करना पड़ेगा; दूसरे शब्दो मे, यह चुनाव या निर्णय करना होगा कि कितना समय कार्य (work) मे बांटना है और कितना समय आराम (leisure) मे बांटना है। इसमे सन्देह नही कि आय या धन के व्यय के सम्बन्ध मे चुनाव-क्रिया की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

10 "Whenever decisions are made, the law of economy is called into play. Whenever alternatives exit, life takes on an economic aspect"

उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति के पसन्द के क्रम में 'शराब' का स्थान पहला तथा 'अच्छे खाने' का स्थान दूसरा हो सकता है। दूसरे शब्दों में,

> आर्थिक दृष्टि से चुनाव करने की बुद्धिमानी महत्वपूर्ण नहीं होती। अर्थशास्त्री, एक वैज्ञानिक के रूप में, चुनाव करने की अच्छाई या बुराई से सम्बन्ध नहीं रखता, यद्यपि वह, एक नागरिक के रूप में, या अन्य कारणों से, अच्छाई-बुराई से सम्बन्ध रख सकता है।[11]

जब भी व्यक्ति विवेकपूर्ण चुनाव करते हैं अर्थात् किसी चीज को अधिकतम करते हैं तो वे कुछ सीमाओं (constraints) के अन्तर्गत ही ऐसा कर पाते हैं। उदाहरणार्थ, व्यक्तिगत उपभोक्ता अपनी संतुष्टियों को अधिकतम करने में या व्यावसायिक फर्में अपने लाभ को अधिकतम करने में अपनी 'सीमित क्रय शक्ति' (limited purchasing power) से प्रभावित होते हैं अर्थात् वे 'बजट-सीमा' (budget constraint) के अन्तर्गत ही अधिकतम करने की क्रिया करते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से कुल उपभोग पर प्रभावपूर्ण सीमा (effective constraint) समाज की उत्पादन-क्षमता (productive capacity) तथा उत्पादन-क्षमता को प्रभावित करने वाले तत्वों (जैसे, साधन, टेक्नोलॉजी तथा संगठन) के द्वारा निश्चित होती है।

अधिकतम करने का विचार निकट रूप से 'साम्य के विचार' (concept of equilibrium) से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता की आय दी हुई है तथा अन्य बातें समान हैं, तो एक उपभोक्ता साम्य की दशा में तब कहा जायेगा जबकि वह अपनी संतुष्टि को अधिकतम करेगा। इसी प्रकार एक फर्म साम्य की दशा में तब होगी जबकि वह अपने लाभ को अधिकतम करती है, यदि लागतें, मांग तथा बाजार-ढांचा (market structure) दिया हुआ हो। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक आर्थिक इकाई साम्य की दशा में कही जायेगी जबकि, दी हुई आर्थिक दशाओं के अन्तर्गत, वह अधिकतम की स्थिति प्राप्त कर लेती है। यदि एक आर्थिक इकाई ने साम्य की दशा प्राप्त नहीं की है, तो यह मान लिया जाता है कि वह ऐसी स्थिति की ओर जाने का प्रयत्न करेगी। साम्य या संतुलन का विचार वास्तविक संसार में बहुत अधिक लागू नहीं किया जा सकता और अर्थशास्त्री इसको स्वीकार करते हैं। वास्तव में,

> "संतुलन का विचार असंतुलन के विश्लेषण के लिए आवश्यक है। इस उद्देश्य से, उस समायोजन प्रक्रिया (adjustment process) के महत्व पर जोर देने की आवश्यकता है जिसके द्वारा असंतुलन की स्थिति अपने आपको ठीक करने का प्रयत्न करती है।"[12]

5. 'चुनाव' का अभिप्राय है 'अवसर लागत' (Choice means opportunity cost)

साधनों और वस्तुओं की सीमितता के कारण एक व्यक्ति को आवश्यकताओं के बीच चुनाव करना पड़ता है। एक आवश्यकता की पूर्ति का अर्थ है किसी दूसरी आवश्यकता की पूर्ति के अवसर का त्याग। उदाहरणार्थ, एक विद्यार्थी के पास सीमित द्रव्य है; यदि वह विद्यार्थी एक सिनेमा देखने का चुनाव या निर्णय करता है तो उसे दूसरी आवश्यकता का अर्थात् एक फाउण्टेन-पेन को खरीदने के अवसर का त्याग करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, एक आवश्यकता की सन्तुष्टि की 'वास्तविक लागत' (real cost) वह विकल्प है जिसका त्याग कर दिया गया हो।[13] इसी प्रकार यदि एक समाज अधिक 'उपभोक्ता की वस्तुओं' (consumer's goods) का उत्पादन करना चाहता है तो उसे 'पूँजीगत वस्तुओं' (capital goods) के उत्पादन के अवसर का त्याग करना पड़ेगा।

---

[11] Economically the wisdom of the choice is not important. An economist, as an economic scientist, is not concerned with the merits and demerits of the choice, though he may be interested in it as a citizen or for other reasons.

[12] "The equilibrium concept is essential to analyse disequilibrium. For this purpose, one needs to emphasise the adjustment process by which a condition of disequilibrium tends to resolve itself."

[13] उदाहरण में, सिनेमा देखने की 'वास्तविक लागत' है फाउण्टेन पेन का त्याग; अथवा फाउण्टेन पेन को खरीदने की वास्तविक लागत है सिनेमा देखने का त्याग।

किसी वस्तु के उत्पादन की 'वास्तविक लागत' वह वस्तु या विकल्प (alternative) है जिसके उत्पादन के अवसर का त्याग कर दिया गया हो, इस प्रकार की वास्तविक लागत को आधुनिक अर्थशास्त्री **'अवसर लागत'** (opportunity cost) कहते है। संक्षेप मे, चुनाव का अभिप्राय है 'वास्तविक लागत' या 'अवसर लागत'।

6. चुनाव का अभिप्राय है साधनों का वितरण या बंटन (Choice implies allocation of resources)

जब एक व्यक्ति कुछ वस्तुओ के खरीदने का चुनाव करता है तो वास्तव मे वह सीमित साधन अर्थात् सीमित आय को विभिन्न वस्तुओ को खरीदने मे 'वितरण' या 'बटन' (allocate) करता है। इसी प्रकार जब एक फर्म वस्तु या कुछ वस्तुओ के उत्पादन के सम्बन्ध मे चुनाव (या निर्णय) करती है तो वास्तव मे वह अपने द्रव्य व पूंजी के साधनों को उन वस्तुओ के उत्पादन पर 'बंटन' करती है। इसी प्रकार से सम्पूर्ण समाज के लिए 'चुनावो' का अभिप्राय है साधनो का बंटन या वितरण। साधनो का वितरण या बंटन उन निर्णयो को बताता है जिनका सम्बन्ध होता है समाज की भूमि, श्रम, पूंजीगत वस्तुओं का किस प्रकार से प्रयोग किया जाय, किन वस्तुओ का उत्पादन किया जाय और कितनी मात्रा मे किया जाय तथा उत्पादन की किन रीतियो का प्रयोग किया जाय, इत्यादि। स्पष्ट है,

> **जब यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र मे 'चुनाव करने की क्रिया' का अध्ययन किया जाता है तो इसका अभिप्राय है कि अर्थशास्त्र में 'साधनों के वितरण या बंटन'** (*allocation of resources*) **का अध्ययन** किया जाता है।

7 चुनाव की क्रिया का सम्बन्ध 'आर्थिक विकास या वर्धन' से भी होता है (Choice-making activity is also concerned with economic development or growth)

सीमितता तथा चुनाव के अभिप्राय (implications) केवल वर्तमान के लिए ही नही बल्कि भविष्य के लिए भी होते है। आवश्यकता एक बिना पेंदी का गर्त या खाई है (want is a bottomless pit) अर्थात् आवश्यकताएँ निरंतर बदलती व बढती रहती है, उनका कोई अन्त नही होता ; वे स्थिर या स्थैतिक (fixed or static) नही होती, नये विचारो, घटनाओ तथा सम्बन्धो के सम्पर्क मे आने से वे बदलती रहती है (wants change with exposure to new ideas, events and contacts)। अत: समयावधि म (over time) या भविष्य म साधनो का विकास तथा वर्धन होना भी अत्यन्त आवश्यक है ताकि निरन्तर बदलती तथा बढती हुई आवश्यकताओ के साथ कदम (pace) रखा जा सके। आवश्यकताएँ गत्यात्मक या प्रावैगिक (dynamic) हैं, साधनो को भी गत्यात्मक या प्रावैगिक तथा परिवर्तनशील होना पड़ेगा। दूसरे शब्दो मे, अर्थशास्त्र को प्रावैगिक होना (अर्थात् dynamise करना) पड़ेगा। इसका अभिप्राय है

> **समयावधि में** (over time) **या भविष्य में अर्थशास्त्र को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या समाज के लिए 'कुल साधनों' के वर्धन** (growth), **'कुल आय' के वर्धन तथा 'कुल रोजगार' के अवसरों के वर्धन पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा। एक समाज को अर्थव्यवस्था के भविष्य के विकास के अभिप्रायों के सम्बन्ध में चुनाव या निर्णय करना पड़ेगा।**

संक्षेप मे, **अर्थशास्त्र एक चुनाव का विज्ञान है** (Economics is the science of choice)। **'आर्थिक समस्या'** या **'अर्थशास्त्र'** को हम निम्नलिखित शब्दो मे परिभाषित कर सकते है :

> **अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण या बंटन का तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास व वर्धन के निर्धारक तत्वों** (determinants) **का अध्ययन है।**[14]

आर्थिक समस्या के सारांश (*summary of economic problem*) को आगे चार्ट द्वारा दिखाया गया है।

---

[14] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth.

आर्थिक समस्या का सारांश

Summary of the Economic Problem
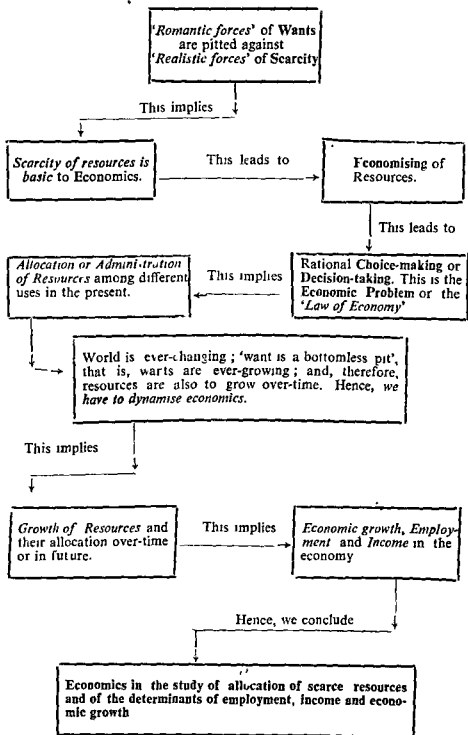
अर्थशास्त्र की परिभाषा
(DEFINITION OF ECONOMICS)

अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में बहुत मतभेद पाया जाता है। अतः प्रो. जे. एन. कीन्ज (J. N. Keynes) को यह कहना पड़ा कि "राज्य अर्थ-व्यवस्था ने परिभाषाओं से अपना गला घोंट लिया है।"[15] ज्यूथन (Zuthen) के शब्दों मे, "अर्थशास्त्र एक अपूर्ण विज्ञान (unfinished science) है।"[16] उसकी सीमाएँ अभी पूर्णतया निश्चित नही हो पायी हैं, उसका बराबर विकास हो रहा है। अतः ऐसी स्थिति मे अर्थशास्त्र की परिभाषा मे एक सीमा तक अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है, क्योंकि किसी भी शास्त्र की परिभाषा उसके क्षेत्र तथा उसकी विषय-सामग्री पर निर्भर करती है।

अध्ययन की सुविधा के लिए अर्थशास्त्र की परिभाषाओं को चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है–

1. 'धन-प्रधान' परिभाषाएँ (Wealth-centred Definitions)
2. 'कल्याण-प्रधान' परिभाषाएँ (Welfare-centred Definitions)
3. 'सीमितता-प्रधान' परिभाषाएँ (Scarcity-centred Definitions)
4. 'विकास-केन्द्रित' परिभाषाएँ (Growth-centred Definitions)

अब हम इन परिभाषाओं का विवेचन करेंगे।

धन-प्रधान परिभाषाएँ
(WEALTH-CENTRED DEFINITIONS)

'धन' परिभाषाएँ तथा उनकी व्याख्या—प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'धन का विज्ञान' (Science of Wealth) कहकर परिभाषित किया। अर्थशास्त्र के जन्मदाता एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक का नाम 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज' (An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations) रखा। अतः एडम स्मिथ के अनुसार, "अर्थशास्त्र राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज से सम्बन्धित है।"[17] इसी प्रकार फ्रांसीसी लेखक जे. बी. से (J. B. Say) के अनुसार, "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का अध्ययन करता है।"[18] अमरीकी अर्थशास्त्री वाकर (Walker) के अनुसार, "राजनीतिक अर्थशास्त्र या अर्थशास्त्र ज्ञान के उस भाग का नाम है जिसका सम्बन्ध धन से है।"[19] इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इस युग में धन पर विशेष बल दिया गया।

'धन' परिभाषाओं की आलोचनाएँ (Criticism)

ये परिभाषाएँ दोषपूर्ण थी और इनकी तीव्र आलोचनाएँ हुई :

(1) इन परिभाषाओं मे धन पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया, यहाँ तक कि धन को एक साध्य (goal or end) मान लिया गया। परन्तु धन की प्राप्ति साध्य नही बल्कि साधन है जिसकी सहायता से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। धन पर अत्यधिक जोर देने के कारण कारलाइल (Carlyle), रसकिन (Ruskin) आदि विद्वानों ने अर्थशास्त्र को 'कुबेर की विद्या' (Gospel of Mammon), 'घृणित विज्ञान' (Dismal Science), 'रोटी-मक्खन का शास्त्र' (Bread and Butter Science) कहकर कड़ी आलोचनाएँ कीं।

(2) एडम स्मिथ ने एक **'आर्थिक मनुष्य'** (Economic Man) की कल्पना कर ली। उनके अनुसार मनुष्य धन की प्रेरणा व अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर ही कार्य करता है तथा उसकी स्वार्थ-सिद्धि से सामूहिक हित मे भी वृद्धि होती है। परन्तु ऐसा सोचना गलत है। 'वास्तविक मनुष्य' धन की प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य भावनाओं (जैसे, दया, प्रेम, इत्यादि) से भी प्रेरित होता है तथा व्यावहारिक जीवन मे व्यक्तिगत हितों तथा सामूहिक हितों मे प्रायः विरोध पाया जाता है।

---

15 "Political economy is said to have strangled itself with definitions."

16 "Economics is an unfinished science."

17 "Economics is a subject concerned with an enquiry into the nature and causes of wealth of nations." — *Adam Smith*

18 "Economics is the science which treats of wealth." — *J. B. Say*

19 "Political economy or Economics is the name of that part of knowledge which relates to wealth." — *F. A. Walker*

के अनुसार अर्थशास्त्र एक मानव विज्ञान है और इसमे सभी मनुष्यो का अध्ययन होता है, चाहे वे समाज के अन्दर रहते हो या बाहर। अर्थशास्त्र के कई नियम (जैसे उपयोगिता ह्रास नियम) सभी व्यक्तियो पर लागू होते है चाहे वे समाज के बाहर रहते हो या अन्दर।

(5) अर्थशास्त्र का क्षेत्र अधिक संकुचित (narrow) हो जाता है। (अ) 'कल्याण' परिभाषाएँ वर्गकारिणी (classificatory) है, अर्थात् इनमे एक प्रकार की क्रियाओ का अध्ययन किया जाता है जबकि दूसरी प्रकार की क्रियाएँ (जैसे, अभौतिक साधनो की प्राप्ति तथा उपभोग, असाधारण क्रियाएँ, अनार्थिक क्रियाएँ) छोड़ दी जाती है। (ब) इसके अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओ को द्रव्यरूपी पैमाने से नापने के कारण 'वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था' (Barter Economy) की क्रियाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र से छूट जाती है। इस प्रकार 'कल्याण' परिभाषाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक सीमित कर देती हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)—यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल है परन्तु वह तार्किक दृष्टि से (logically) दोषपूर्ण है और अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार (scientific foundation) को कमजोर करती है।

'सीमितता-प्रधान' परिभाषाएँ
(SCARCITY-CENTRED DEFINITIONS)

प्रो. रोबिन्स की परिभाषा

प्रो. रोबिन्स[27] ने 'कल्याण' परिभाषाओ के दोषो को बताते हुए न तो धन पर जोर दिया और न मनुष्य के कल्याण या हितो पर, बल्कि उन्होंने मनुष्य की असीमित आवश्यकताओ का सीमित साधनो से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होने अर्थशास्त्र के पुराने ढाँचे को, जो कि धन तथा भौतिक कल्याण पर टिका हुआ था, तोड़कर अपनी परिभाषा एक नये दृष्टिकोण से दी, जो इस प्रकार है :

> **"अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमे साध्यों (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनो से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।[28]**

रोबिन्स की परिभाषा की व्याख्या

रोबिन्स की परिभाषा के निम्न चार मूल तत्त्व है :

(1) 'साध्य' (Ends) का तात्पर्य आवश्यकताओ से है। मनुष्य के साध्य अर्थात् आवश्यकताएँ अनन्त तथा असीमित है। (2) **साधन सीमित हैं।** यद्यपि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं परन्तु उनकी पूर्ति के लिए मनुष्य के पास साधन (अर्थात् समय तथा धन) सीमित है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को आवश्यकताओ के बीच **चुनाव करना** पड़ता है। ध्यान रहे कि साधनो के सीमित होने का अर्थ है कि वे माग की तुलना मे सीमित हैं, निरपेक्ष (absolute) रूप मे नही।"[29] (3) **साधनों के वैकल्पिक प्रयोग** (Alternative Uses)। हमारे साधन केवल सीमित ही नही है, बल्कि उनको कई प्रयोगो मे उपयोग किया जा सकता है। अतः साधन या वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में **चुनाव की आर्थिक समस्या सदा ही हमारे सामने बनी रहती है।** (4) **साध्यो या आवश्यकताओ का भिन्न-भिन्न महत्त्व होता है।** मनुष्य अपनी तीव्र आवश्यकताओ की पूर्ति पहले करने की चेष्टा करता है। अतः आवश्यकताओं की तीव्रता में भिन्नता होने के कारण उनके बीच चुनाव करने में सहायता मिलती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि

> **(i) असीमित आवश्यकताओ (या साध्यों) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों के बीच मानव व्यवहार** (human behaviour) **का रूप 'चुनाव**

---

[27] . प्रो. रोबिन्स ने 1932 मे अपनी पुस्तक 'An Essay on the Nature and Significance of Economic Science' मे अर्थशास्त्र की परिभाषा एक नये दृष्टिकोण से दी।

[28] "Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses" —*L. Robbins*

[29] उदाहरणार्थ, सड़े या खराब अंडो की संख्या बहुत कम होती है परन्तु वे सीमित नही होते क्योंकि उनकी माग शून्य है, जबकि अच्छे अण्डों की संख्या बहुत अधिक होने पर भी वे सीमित होते हैं, क्योंकि उनकी माग बहुत अधिक होती है।

करने' (choice-making) या 'निर्णय करने' (decision-taking) का होना है। इस 'चुनाव करने की क्रिया' (choice-making) को रोबिन्स ने 'आर्थिक समस्या' (economic problem) कहा है और बताया है कि इसी 'आर्थिक समस्या' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र में उस मानव व्यवहार का अध्ययन होता है जो कि 'सीमित साधनों के वितरण' (allocation of scarce resources) से सम्बन्धित है।

ध्यान रहे कि 'आर्थिक समस्या' तब तक उत्पन्न नहीं हो सकती जब तक कि उपर्युक्त चारों बातें एक साथ मौजूद न हों। रोबिन्स, फीडमेन, इत्यादि अर्थशास्त्री 'आर्थिक समस्या' तथा 'टेक्नोलोजीकल समस्या' में अन्तर को स्पष्ट करते हैं। फ्रीडमेन के शब्दों में, "यदि साधन सीमित न हो तो कोई समस्या नहीं होगी, ऐसी स्थिति निर्वाण या मुक्ति की होगी। यदि साधन सीमित हो और साध्य केवल एक हो, तो साधनों के प्रयोग की समस्या 'टेक्नोलोजीकल समस्या' होगी।"[30]

(ii) "प्रभावपूर्ण तरीके से 'चुनाव' करने के लिए किसी न किसी प्रकार की मूल्यांकन क्रिया (pricing process) का होना जरूरी है। प्राप्य साधनों (available resources) का मूल्यांकन (valuation) करना पड़ेगा ताकि उनका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक उद्देश्यों के लिए ही सीमित किया जा सके। यह मूल्यांकन क्रिया (pricing process) ही अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री है।"[31]

इस प्रकार एक अर्थशास्त्री साध्यों के बीच चुनाव के अभिप्रायों (*implications of choice*) का अध्ययन करता है। उसका विषय सीमितता (scarcity) है। अर्थशास्त्र की समस्या केवल 'किफायत' (economizing) की समस्या है।[32]

सेम्युलसन, फ्रीडमेन, जैसे अनेक विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री रोबिन्स द्वारा स्पष्ट की गयी 'आर्थिक समस्या' अर्थात् 'चुनाव की समस्या' को ही मान्यता देते हैं। फ्रीडमेन के शब्दों में,

"अर्थशास्त्र इस बात का विज्ञान है कि एक विशेष समाज अपनी आर्थिक समस्याओं को कैसे हल करता है। एक आर्थिक समस्या उस समय मौजूद होती है जबकि सीमित साधन वैकल्पिक साध्यों (alternative ends) की सन्तुष्टि में लगाये जाते हैं।"[33]

रोबिन्स की परिभाषा की विशेषताएं (Characteristics)

प्रो. रोबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के विषय को स्पष्ट कर दिया; इनकी परिभाषा की निम्न मुख्य विशेषताएँ हैं :

(1) प्रो. रोबिन्स ने अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत कर दिया क्योंकि इनकी परिभाषा के अनुसार 'मानव व्यवहार के चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र का क्षेत्र है। इस प्रकार रोबिन्स ने 'सामाजिक व्यवहार' (social behaviour) से 'बल' (emphasis) हटाकर 'मानव व्यवहार' (human behaviour) पर लगाया। (2) रोबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक (analytical) है, श्रेणी-विभाजक (classificatory) नहीं। रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को 'आर्थिक' और 'अनार्थिक क्रियाओं' तथा 'भौतिकवादी' आधार से मुक्त कर दिया। उन्होंने बताया कि, अर्थशास्त्र में मनुष्यों की विशेष क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है बल्कि मानव व्यवहार के

---

30 "If the means are not scarce, there is no problem at all; there is Nirvana. If the means are scarce but there is only a single end, the problem of how to use the means is a technological problem." —*Milton Friedman*

31 "In order to enable us to choose effectively, there must be some kind of a pricing process. Values must be set upon the available resources so as to restrict their use to the most urgent purposes. This pricing process forms the subject-matter of economics."

32 "The economist thus studies the implications of choice between different ends. His subject is scarcity. The problem of economics is simply the problem of economizing."

33 "Economics is the science of how a particular society solves its economic problems. An economic problem exists whenever *scarce* means are used to satisfy *alternative* ends."

'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन किया जाता है। (3) रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को केवल **वास्तविक विज्ञान** (positive science) बताया, अर्थात् अर्थशास्त्री उद्देश्यो के अच्छे या बुरे होने से कोई सम्बन्ध नही रखता। अतः कल्याण अर्थशास्त्र (Welfare Economics) रोबिन्स की परिभाषा के बाहर है। (4) चूँकि रोबिन्स अर्थशास्त्र को केवल 'वास्तविक विज्ञान' मानते है, इसलिए उनकी परिभाषा का **सार्वभौमिक प्रयोग** (universal application) किया जा सकता है। यह परिभाषा पूँजीवादी तथा साम्यवादी सभी देशों मे सत्य है।

रोबिन्स की परिभाषा की आलोचना

प्रो रोबिन्स की परिभाषा मे भी कमियाँ है। डरबिन (Durbin), वूटन (Wootton), फ्रेजर (Fraser) इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने रोबिन्स की परिभाषा की आलोचना की है। रोबिन्स की परिभाषा की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(1) **अर्थशास्त्र का क्षेत्र एक साथ अधिक विस्तृत तथा अधिक संकीर्ण हो जाता है** (The scope of Economics becomes at once too wide and too narrow)। यह आलोचना रोबर्टसन (Robertson) द्वारा की गयी है। एक ओर तो रोबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के **क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक व्यापक बना दिया है।** रोबिन्स के अनुसार सीमित साधनों मे समय भी आ जाता है। सीमित साधन समय के वितरण की समस्या ऐसे क्षेत्रों मे भी उत्पन्न हो सकती है जिसका कोई भी सम्बन्ध अर्थशास्त्र से नही होता। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति अपने 'आराम के समय' (leisure time) आराम के विभिन्न कार्यक्रमों मे बाँटता है तो साधन समय के वितरण (allocation of time) की यह समस्या भी, रोबिन्स की परिभाषा के अनुसार, अर्थशास्त्र में आ जायेगी, जब कि इसका कोई सम्बन्ध अर्थशास्त्र से नही होता[34] और इस प्रकार अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है।[35]

दूसरी ओर रोबिन्स की परिभाषा अर्थशास्त्र के **क्षेत्र को बहुत सीमित** भी कर देती है। बेरोजगारी की समस्या संगठन से सम्बन्धित दोषों (organizational defects) के कारण तथा जनसंख्या के आधिक्य के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। **रोबिन्स की परिभाषा के अनुसार बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र मे नही किया जाना चाहिए** क्योकि यह समस्या साधन (मनुष्य) की सीमितता के कारण उत्पन्न नही होती, बल्कि बाहुल्यता का परिणाम है। इसी प्रकार 'धनी समाज' (affluent society, like America) **में कई आर्थिक समस्याएँ साधनों की प्रचुरता** (abundance) **के कारण उत्पन्न होती हैं, साधनों की सीमितता के कारण नहीं,** जैसे, 'बड़े पैमाने पर अत्यधिक उपभोग' (high mass consumption)। स्पष्ट है कि उपर्युक्त महत्वपूर्ण समस्याएँ अर्थशास्त्र के बाहर ही जायेंगी यदि रोबिन्स की परिभाषा को स्वीकार किया जाये।

(2) **रोबिन्स ने अर्थशास्त्र के सामाजिक स्वभाव** (social character) **पर उचित बल** (emphasis) **नहीं दिया।** रोबिन्स के अनुसार समाज के बाहर रहने वाले व्यक्तियो की क्रियाओ का भी अध्ययन अर्थशास्त्र मे किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र की आवश्यकता तभी होती है जबकि आर्थिक समस्याएँ सामाजिक महत्व धारण कर लेती है और व्यक्तियो के एक समूह की क्रियाएँ दूसरे समूह की क्रियाओ को प्रभावित करती हैं।

(3) **अर्थशास्त्र उद्देश्यों के बीच तटस्थ नहीं है** (Economics is not neutral between ends)। (क) मार्शल के समर्थको, जैसे वूटन (Wootton), फ्रेजर (Fraser), इत्यादि का कहना है कि अर्थशास्त्र का कल्याण से सम्बन्ध काट देना उचित नही है क्योकि 'मानवीय कल्याण' ही अन्तिम लक्ष्य है।

(ख) कुछ आलोचको के अनुसार यद्यपि रोबिन्स अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कल्याण के साथ स्थापित करने के एकदम विरुद्ध हैं, परन्तु उनकी परिभाषा मे कल्याण का विचार छिपा हुआ

---

[34] परन्तु जब एक व्यक्ति यह निर्णय लेता है कि वह कितना समय 'उत्पादक कार्य' (productive work) मे लगाए और कितना समय 'आराम' के लिए रखे, तो सीमित साधन समय का यह वितरण अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत होगा।

[35] अतः मार्शल की परिभाषा के कारण द्रव्य-रूपी पैमाने के द्वारा अर्थशास्त्र के अध्ययन मे जो निश्चितता का लाभ है वह रोबिन्स की परिभाषा द्वारा नही हो सकता।

(implicit) है। सीमित साधनों का अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस प्रकार से प्रयोग किया जाता है कि 'अधिकतम उपयोगिता' अर्थात् 'अधिकतम सन्तुष्टि' मिले, जिसका अभिप्राय है कि अधिकतम कल्याण' मिले। इस प्रकार से प्रो. रोबिन्स की परिभाषा में 'कल्याण का विचार' चोर दरवाजे (back door) से प्रवेश करता है।

(ग) रोबिन्स की परिभाषा एक अर्थशास्त्री के व्यक्तित्व (personality) को दो भागों में बांट देती है—'अर्थशास्त्री के रूप में' तथा 'नागरिक (citizen) के रूप में'। जब वह निर्णय (value judgment) देता है तब वह एक नागरिक के रूप में ऐसा करता है, परन्तु जब वह निर्णय नहीं देता तब वह एक अर्थशास्त्री के रूप में ऐसा करता है। परन्तु एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को इस प्रकार विभाजित (split) नहीं किया जा सकता।

(4) अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध विज्ञान (pure science) ही नहीं, बल्कि कला (art) भी है। रोबिन्स के हाथों में अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध विज्ञान हो जाता है जिसका उद्देश्य केवल सिद्धान्त बनाना (tool-making) है। परन्तु अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान को केवल 'सिद्धान्त बनाने वाला' (tool-maker) ही नहीं होना चाहिए, बल्कि आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए 'सिद्धान्तों का प्रयोग करने वाला' (tool-user) भी होना चाहिए।

(5) रोबिन्स की परिभाषा का स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) है और वह 'आर्थिक विकास' (economic growth) की समस्या को शामिल नहीं करती। रोबिन्स के अनुसार दिये हुए साध्यों (given ends) का दिये हुए साधनों (given means) के साथ समायोजन (adjustment) करना है। परन्तु सीमितता होने पर, मुख्य समस्या साध्यों के साथ दिये हुए साधनों का समायोजन ही नहीं है बल्कि साधनों में वृद्धि करना है ताकि परिवर्तनशील और बढ़ते हुए साध्यों या आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके, अर्थात् 'आर्थिक विकास' की समस्या रोबिन्स की परिभाषा के अन्दर नहीं आती। स्पष्ट है कि रोबिन्स की परिभाषा का दृष्टिकोण स्थैतिक है, गत्यात्मक (dynamic) नहीं।

निष्कर्ष (Conclusion) : इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोबिन्स की परिभाषा में भी दोष हैं। परन्तु उनकी परिभाषा के सम्बन्ध में निम्न दो निष्कर्ष महत्वपूर्ण हैं :

1. रोबिन्स की परिभाषा तार्किक (logical) है और वह अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार (scientific foundation) को मजबूत करती है। वह 'आर्थिक समस्या' (अर्थात् 'मानव व्यवहार के चुनाव करने के पहलू') पर ध्यान केन्द्रित (focus) करती है।
2. आधुनिक युग में रोबिन्स की परिभाषा अपर्याप्त (inadequate) रह जाती है क्योंकि उनकी परिभाषा के बाद से अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री (subject-matter) में बहुत परिवर्तन हो चुका है; आधुनिक अर्थशास्त्री रोजगार, आय तथा आर्थिक विकास पर अधिक जोर देते हैं। इस दृष्टि से रोबिन्स की परिभाषा को सुधारते हुए अर्थशास्त्र की एक आधुनिक परिभाषा निम्न शब्दों में दी जा सकती है :
   अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण का तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वों (determinants) का अध्ययन है।[36]

मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं की तुलना

(1) मार्शल की परिभाषा वर्गकारिणी (classificatory) है जबकि रोबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक (analytical) है। मार्शल ने मनुष्य की क्रियाओं को भौतिक तथा अभौतिक, आर्थिक तथा अनार्थिक, साधारण जीवन-व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं तथा असाधारण क्रियाओं में विभक्त किया है और उनके अनुसार एक प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है, जबकि दूसरी प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है। परन्तु रोबिन्स ने क्रियाओं का इस प्रकार का वर्गीकरण नहीं किया, उनके अनुसार मानव व्यवहार के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है; दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र में उस मानव व्यवहार का

---

[36] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth.

अध्ययन किया जाता है जो सीमित साधनों से प्रभावित होता है, सीमित साधनों में, रोबिन्स ने, धन के अतिरिक्त समय को भी शामिल किया।

(2) अर्थशास्त्र, मार्शल के अनुसार, सामाजिक विज्ञान है किन्तु रोबिन्स के अनुसार मानव विज्ञान। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र के अन्तर्गत केवल उन मनुष्यो की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन होता है जो कि समाज में रहते हों। परन्तु रोबिन्स के अनुसार समाज के अन्दर तथा बाहर रहने वाले सभी व्यक्तियों की क्रियाओं के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। रोबिन्स अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान के स्थान पर 'मानव विज्ञान' कहते है।

(3) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र का आदर्शात्मक पहलू (normative aspect) भी है और वह कला भी है, किन्तु रोबिन्स के अनुसार वह केवल वास्तविक विज्ञान है।

निष्कर्ष : रोबिन्स की परिभाषा श्रेष्ठ है या मार्शल की ?

वास्तव में दोनों मे से कोई भी परिभाषा पूर्ण नही है, दोनों के कुछ गुण और दोष हैं। (i) यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल है परन्तु वह तार्किक दृष्टि से (logically) दोषपूर्ण है और अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को कमजोर करती है। (ii) रोबिन्स की परिभाषा तार्किक (logical) है और अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को मजबूत करती है। रोबिन्स की परिभाषा, मार्शल की परिभाषा की तुलना मे, इस दृष्टि से श्रेष्ठ है कि रोबिन्स ने स्पष्ट रूप से 'आर्थिक समस्या' (economic problem) अर्थात् 'चुनाव करने के पहलू' को प्रस्तुत किया; आधुनिक अर्थशास्त्री इसको मान्यता देते हैं।

अर्थशास्त्र की आधुनिक परिभाषा (Modern Definition of Economics)

विकास-केन्द्रित परिभाषा

(GROWTH-CENTRED DEFINITION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

किसी भी शास्त्र की परिभाषा उसकी विषय-सामग्री पर निर्भर करती है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में विकास के साथ उसकी परिभाषा में परिवर्तन होता रहा है ताकि परिभाषा नये विकास को घेर सके अर्थात् उसे शामिल कर सके। एडम स्मिथ की परिभाषा **धन-केन्द्रित** (wealth-centred definition) थी; अर्थशास्त्र में विकास हुआ और मार्शल ने **'कल्याण-केन्द्रित परिभाषा'** (welfare-centred definition) दी; अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री में और अधिक विकास हुआ और रोबिन्स ने **सीमितता-केन्द्रित परिभाषा'** (scarcity-centred definition) दी। रोबिन्स की परिभाषा (सन् 1932) के पश्चात् से अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री में बहुत अधिक विकास हो चुका है। अब आधुनिक अर्थशास्त्री रोजगार, आय तथा आर्थिक विकास (employment, income and economic growth) की समस्याओ पर अधिक बल देते हैं; इन बातों को रोबिन्स की परिभाषा शामिल नही करती है, इसलिए रोबिन्स की परिभाषा अपर्याप्त (inadequate) हो गयी और अब एक ऐसी परिभाषा की आवश्यकता है जो आर्थिक विकास पर बल दे और ऐसी परिभाषा को **विकास-केन्द्रित परिभाषा'** (growth-centred definition) कहा जा सकता है।

2. पृष्ठभूमि : रोबिन्स की परिभाषा का स्थैतिक स्वभाव (Background : Static Nature of Robbins' Definition)

रोबिन्स के अनुसार आर्थिक समस्या 'चुनाव की समस्या' है; अर्थात् 'सीमित साधनों के वितरण' (allocation of scarce resources) की है। दूसरे शब्दों मे, रोबिन्स के अनुसार आर्थिक समस्या है दिये हुए साध्यो (given ends) का दिये हुए साधनों (given means) के साथ समायोजन (adjustment) करना। इसमे कोई सन्देह नही है कि यदि सीमितता न हो तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नही होगी। परन्तु सीमितता होने पर मुख्य आर्थिक समस्या साध्यों के साथ दिये हुए साधनों का समायोजन ही नही बल्कि साधनों में वृद्धि या वर्द्धन (growth) करना है ताकि परिवर्तनशील और बढ़ते हुए साध्यो या आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके। अत:

> **आर्थिक समस्या, किसी समय विशेष पर, केवल 'सीमित साधनों के वितरण' की ही नहीं बल्कि 'साधनों के विकास तथा वर्धन' की है ताकि बढ़ती और बदलती**

हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इस दृष्टि से हम यह सकते हैं कि रोबिन्स ने आर्थिक समस्या को गलत ढंग से रखा अर्थात उन्होंने वास्तव में एक प्रावैगिक समस्या (essentially dynamic problem) का स्थैतिक दृष्टिकोण (static view) लिया।

रोबिन्स की परिभाषा के स्थैतिक स्वभाव पर थोड़ा और विचार करते हैं। रोबिन्स की परिभाषा में साधनों के मूल्यांकन तथा वितरण (valuation and distribution of resources) की समस्या केन्द्रीय स्थान रखती है, परन्तु रोबिन्स ने सीमितता की दशाओं (conditions of scarcity) में कुछ परिवर्तनों पर ध्यान दिया है—उन्होंने 'अचानक परिवर्तनों' (random changes) या 'एक बारगी परिवर्तनों' (once-over changes) पर ही विचार किया है; इस प्रकार रोबिन्स 'प्रावैगिक परिवर्तनों' (dynamic changes) को शामिल करते हुए प्रतीत होते हैं; परन्तु उनका प्रावैगिक परिवर्तन का विचार आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'प्रावैगिक अर्थशास्त्र' (dynamic economics) के अन्तर्गत एक समयावधि में 'निरन्तर परिवर्तन तथा विकास' ('continuous changes and growth' over time) का अध्ययन अथवा 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of changes) का अध्ययन किया जाता है; रोबिन्स इस प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन नहीं करते और इसलिए उनका विश्लेषण मुख्यतया स्थैतिक विश्लेषण (static analysis) का ही प्रयोग करता है। उदाहरणार्थ, प्रो. नाइट (Prof. Knight) के लाभ-सिद्धान्त को रोबिन्स 'प्रावैगिक अर्थशास्त्र' के क्षेत्र में रखते हैं। प्रो. नाइट का सिद्धान्त बताता है कि लाभ 'अनिश्चितता उठाने' (uncertainty-bearing) अर्थात् अबीमा-योग्य जोखिमों को झेलने (bearing of non-insurable risks) के कारण होता है। परन्तु हेरोड (Harrod) के अनुसार 'एक बार के परिवर्तनों' (once-over changes) के द्वारा अधिक अनिश्चितता उत्पन्न होती है और चूंकि 'एक-बारगी परिवर्तनों' को प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत शामिल नहीं किया जाता है; इसलिए प्रो० हेरोड, नाइट के लाभ-सिद्धान्त को 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' (static economics) के अन्तर्गत रखते हैं न कि प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत।

प्रावैगिक अर्थशास्त्र (dynamic economics) 'निरन्तर परिवर्तनों' (continuous changes) या 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन करता है; वह 'एक-बारगी परितनों' या 'अचानक परिवर्तनों' (random changes) का अध्ययन नहीं करता और न ही थोड़ी घटती-बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था (somewhat fluctuating economy) का अध्ययन करता है; ये सब बातें आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, स्थैतिक अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत आती हैं; दूसरे शब्दों में,

> "*एक अर्थव्यवस्था का रूप कम या अधिक स्थैतिक तथा थोड़ा घटने-बढ़ने वाला* (fluctuating) नहीं होता, बल्कि मुख्यतया एक विकासशील प्रणाली (growing system) का होता है, जिसमें विकास-प्रक्रिया (growth process) के साथ 'उत्थान तथा उभार' (humps and bumps) रहते हैं। स्थैतिक साम्य (static equilibrium) के अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली के विभिन्न भाग एक-दूसरे के साथ किसी प्रकार के समायोजन (adjustment) में रहते हैं; और प्रावैगिक अर्थशास्त्र इस बिन्दु से या इस स्थिति से प्रारम्भ होता है। प्रावैगिक अर्थशास्त्र इस बात की कोशिश करता है कि समयावधि में अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों में समायोजन की स्थिति को कैसे बनाये रखा जा सकता है जबकि आर्थिक प्रणाली के विभिन्न भाग किसी एक दर से और किसी एक तरीके से विकासशील रहते हैं।[37]

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि रोबिन्स की परिभाषा स्थैतिक है।

[37] "The vision of the economy is not that of a more or less static or fluctuating system, but that of an *essentially growing system, with 'jumps and bumps'* accompanying this process of growth. Under static equilibrium, the various parts of the system are in some kind of adjustment with each other, and dynamic analysis begins at this point, trying to see how this adjusted state can be maintained over a period of time, with various parts of the system growing at a certain rate and in a certain manner."

3. विकास-केन्द्रित परिभाषा तथा उसकी व्याख्या (Growth-centred Definition and its Explanation)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आधुनिक काल मे एक ऐसी परिभाषा की आवश्यकता है जो कि 'सीमित साधनों के वितरण' तथा 'आर्थिक विकास' दोनों बातो को शामिल कर सके। एक ऐसी परिभाषा अपने शब्दों मे हम नीचे देते हैं—

> "अर्थशास्त्र सीमित साधनों के वितरण तथा रोजगार, आय और आर्थिक विकास व वर्धन के निर्धारक तत्त्वों (determinants) का अध्ययन है।"[38]

के. जी. सेठ (K. G Seth) ने अर्थशास्त्र की 'विकास-केन्द्रित परिभाषा' इस प्रकार दी है:

> "अर्थशास्त्र उस मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है जिसका सम्बन्ध साध्यों के सन्दर्भ में साधनों के परिवर्तनों व विकास से होता है।"[39]

नोबेल पुरस्कार विजेता (Noble Prize Winner) प्रो. सेम्युलसन (Samuelson) की परिभाषा भी एक ऐसी ही परिभाषा है। प्रो सेम्युलसन के शब्दो मे,

> अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति और समाज अनेक प्रयोग में आ सकने वाले उत्पादन के सीमित साधनों का चुनाव, एक समयावधि मे विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में लगाने और उनको समाज में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों में उपभोग हेतु, वर्तमान व भविष्य में, बाँटने के लिए किस प्रकार करते हैं; ऐसा वे चाहें द्रव्य का प्रयोग करके करें अथवा इसके बिना करें। यह साधनो के बंटन के स्वरूप में सुधार करने की लागतों व उपयोगिताओ का विश्लेषण करता है।"[40]

प्रो. सेम्युलसन की परिभाषा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) अर्थशास्त्र के लिए सीमितता केन्द्रीय (central) है; अर्थात् साधन सीमित तथा अनेक उपयोग वाले हैं जिनको आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए प्रयोग करना होता है; ऐसी स्थिति में आर्थिक समस्या 'चुनाव करने' या 'साधनों के वितरण' की होती है। सेम्युलसन भी, रोबिन्स की भाँति, इस 'आर्थिक समस्या' को मान्यता देते है।

(ii) रोबिन्स की परिभाषा स्थैतिक है, जबकि सेम्युलसन की परिभाषा आर्थिक विकास की बात को भी शामिल करती है तथा उनकी परिभाषा का दृष्टिकोण प्रावैगिक है। यह बात उनकी परिभाषा मे निम्न वाक्यांशों (phrases) द्वारा स्पष्ट होती है—'एक समयावधि मे विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन' (to produce various commodities over time) तथा 'उनका वर्तमान व भविष्य मे वितरण' (and distribute them for consumption now and in the future...)

(iii) प्रो॰ सेम्युलसन की परिभाषा वस्तु-विनिमय प्रणाली (barter system) या ऐसी प्रणाली जिसमे द्रव्य का प्रयोग नही होता है, के अन्तर्गत भी 'चुनाव की समस्या' या 'साधनो के वितरण' की समस्या को शामिल करती है, जो कि उचित है। यह बात उनकी परिभाषा मे 'ऐसा वे चाहें द्रव्य का प्रयोग करके करें अथवा इसके बिना करें' (with or without the use of money) वाक्याश द्वारा स्पष्ट होती है।

(iv) अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि समाज मे सुधार कैसे किया जाये। ("Economics is the study of how to improve society.") इस दृष्टि से अर्थशास्त्र साधनो के बंटन के स्वरूप में सुधार करने की लागतो व उपयोगिताओं ("costs and benefits of

---

[38] Economics is the study of the allocation of scarce resources and of the determinants of employment, income and economic growth

[39] "Economics studies human behaviour concerned with changes and growth in means in relation to ends" —*K. G Seth*

[40] "Economics is the study of how men and society *choose*, with or without the use of money, to employ *scarce* productive resources which could have alternative uses, to produce various commodities over time and distribute them for consumption, now and in the future, among various people and groups in society It analyses the costs and benefits of improving patte. . resource allocation" —*Samuelson*

improving patterns of resource allocation") का विश्लेषण करता है। यह बात प्रो. सेम्युलसन की परिभाषा के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट है।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रो. सेम्युलसन की परिभाषा 'आर्थिक समस्या' (economic problem) को सही रूप (correct perspective) में प्रस्तुत करती है तथा अर्थशास्त्र को प्रावैगिक बनाती है (अर्थात् dynamize करती है)।

प्रश्न

1. सीमितता तथा चुनाव के अभिप्रायों की पूर्ण विवेचना कीजिए।

   Discuss fully the implications of scarcity and choice

   अथवा

   'अर्थशास्त्र किफायत करने का विज्ञान है।' इस कथन के अभिप्रायों को पूर्णतया समझाइए।

   'Economics is the science of economising' Discuss fully the implications of this statement

   अथवा

   "अर्थशास्त्र चुनाव का विज्ञान है।" इस कथन के सन्दर्भ में चुनाव के अभिप्रायों की विवेचना कीजिए।

   'Economics is the science of choice." In the light of this remark discuss the implications of choice.

   अथवा

   "जब भी निर्णय किये जाते हैं तो अर्थव्यवस्था का नियम क्रियाशील हो जाता है। जब भी विकल्प (alternatives) मौजूद होते हैं तो जीवन या मानव व्यवहार आर्थिक पहलू का रूप ग्रहण कर लेता है।" इस कथन के सन्दर्भ मे 'आर्थिक समस्या' की पूर्ण विवेचना कीजिए।

   "Whenever decisions are made the law of economy is called into play Whenever alternatives exist, life takes on an economic aspect." In the light of this remark discuss fully the economic problem.

   [संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर एक समान हैं। इनके उत्तर के लिए इस अध्याय के प्रारम्भ मे 'आर्थिक समस्या या किफायत का नियम' शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री पढ़िए।]

2. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए :

   (i) साधनों की सीमितता के कारण 'किफायत की समस्या' उत्पन्न होती है।
   (ii) साधनों की सीमितता के कारण 'चुनाव की समस्या' उत्पन्न होती है।
   (iii) 'चुनाव' का अभिप्राय है 'अवसर लागत'।
   (iv) 'चुनाव' का अभिप्राय है 'साधनों का वितरण या बंटन'।

   Explain the following :

   (i) Scarcity of resources causes the 'problem of economising'
   (ii) Scarcity of resources causes the problem of 'choice-making'.
   (iii) 'Choice' implies 'opportunity cost'
   (iv) 'Choice' implies 'allocation of resources'

   [संकेत—इनके उत्तर के लिए इस अध्याय के प्रारम्भ मे 'आर्थिक समस्या या किफायत का नियम' शीर्षक के अन्तर्गत तत्सम्बन्धित (relevant) विषय-सामग्री देखिए।]

3. "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमे साध्यों (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है"।—रोबिन्स। इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

   "Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses"—Robbins. Critically examine this statement *(Jabalpur, M. A., 1966)*

4. "आर्थिक समस्या, मुख्यतया, साध्यों का सीमित साधनो के साथ समायोजन की नहीं है, बल्कि साधनों की वृद्धि और विकास की है ताकि बढते हुए और बदलते हुए साध्यों की पूर्ति की जा सके।"

विवेचना कीजिए और बताइए कि रोबिन्स ने आर्थिक समस्या को गलत ढंग से सोचा और उन्होंने प्रावैगिक (dynamic) समस्या का स्थैनिक (static) दृष्टिकोण लिया।

"The economic problem, essentially, is not that of adjusting ends to scarce means, but that of expanding and developing the means to meet the various growing and changing ends."
Discuss and show how Robbins has visualized the economic problem the wrong way round and has taken a static view of a dynamic problem. *(Agra, M. A., 1966).*

अथवा

आर्थिक समस्या के नये विस्तार तथा आर्थिक सिद्धान्त के आधुनिक परिवर्तनों के सन्दर्भ मे अर्थशास्त्र को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता पर विचार कीजिए और अर्थशास्त्र की एक 'विकास-केन्द्रित परिभाषा' (growth-centred definition) देने का प्रयास कीजिए।

Discuss the need to redefine economics in the light of new dimensions of the economic problem and recent changes in economic theory and attempt a growth-centred definition of Economics.

अथवा

"अर्थशास्त्र उस मानव व्यवहार का अध्ययन करता है जिसका सम्बन्ध साध्यो के सन्दर्भ मे साधनों के परिवर्तनो व विकास से होता है।" विवेचना कीजिए।

"Economics studies human behaviour concerned with changes and growth in means in relation to ends." Discuss.

अथवा

"अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति और समाज अनेक प्रयोग मे आ सकने वाले उत्पादन के सीमित साधनो का चुनाव, एक समयावधि मे विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन मे लगाने और उनको समाज मे विभिन्न व्यक्तियो और समूहों मे उपभोग हेतु, वर्तमान व भविष्य मे, बाटने के लिए किस प्रकार करते हैं, ऐसा वे चाहे द्रव्य का प्रयोग करके करें अथवा इसके बिना करें। यह साधनों के बंटन के स्वरूप मे सुधार करने की लागतों व उपयोगिताओ का विश्लेषण करता है।"—सेम्युलसन। विवेचना कीजिए।

"Economics is the study of how men and society *choose*, with or without the use of money, to employ *scarce* productive resources which could have alternative uses, to produce various commodities over time and distribute them for consumption, now and in the future, among various people and groups in society. It analyses the costs and benefits of improving patterns of resource allocation."—Samuelson Discuss.

[संकेत—इन सब प्रश्नो के उत्तर एक समान हैं। इनके उत्तर के लिए 'विकास-केन्द्रित परिभाषा' (growth-centred definition) शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री पढिए।]

2

आर्थिक समस्या तथा उत्पादन-सम्भावना रेखा

(Economic Problem And Production Possibility Curve)

1. आर्थिक समस्या (Economic Problem)

मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित है तथा उनकी पूर्ति के साधन सीमित हैं। अतः मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है, आवश्यकताओं की तीव्रता के अनुसार उसे उनके बीच चुनाव करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक समाज को साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए इस बात का चुनाव करना पड़ेगा कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाये और किनका उत्पादन त्याग दिया जाये; यह 'चुनाव की समस्या' (problem of choice) ही 'मुख्य या आधारभूत (fundamental) आर्थिक समस्या' कही जाती है। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक समाज को अपने 'साधनों का किफायत के साथ प्रयोग' (economizing the resources) करना पड़ता है। संक्षेप में, 'मितव्ययता या किफायत की समस्या' (economizing problem) अथवा 'चुनाव की समस्या' ही आर्थिक समस्या है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि सीमितता न हो तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु साधनों की सीमितता होने पर, मुख्य समस्या साध्यों (या आवश्यकताओं) के साथ दिये हुए साधनों का समायोजन (adjustment of given resources with ends) करना ही नहीं है बल्कि 'साधनों का विकास' करना है ताकि परिवर्तनशील और बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके; अर्थात् 'आर्थिक विकास' की समस्या अर्थशास्त्र में मुख्य स्थान रखती है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक समस्या केवल 'वर्तमान में साधनों के वितरण या बंटन (allocation of resources in the present) की समस्या' ही नहीं है बल्कि 'भविष्य में साधनों के विकास या वर्धन तथा उनके वितरण, (growth of resources in the future and their distribution) की समस्या, भी है।

आर्थिक समस्या (अर्थात् 'चुनाव की समस्या' या 'किफायत' की समस्या' अथवा 'साधनों के वितरण या बंटन की समस्या') को उत्पादन-सम्भावना रेखाओं (production possibility curves) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

2. उत्पादन-सम्भावना रेखा की परिभाषा (Definition of a Production Possibility Curve)

यदि किसी समय विशेष में साधनों की मात्रा स्थिर है तथा उनका पूर्ण प्रयोग (full utilization or employment) हो रहा है और एक अर्थव्यवस्था केवल दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन कर रही है, तो वस्तु X की अधिक मात्रा के उत्पादन करने का अर्थ है कि वस्तु Y के उत्पादन से साधनों को हटाना पड़ेगा और Y की कम मात्रा का उत्पादन करना पड़ेगा; अथवा Y की अधिक मात्रा के उत्पादन का अर्थ है कि X की कम मात्रा का उत्पादन करना पड़ेगा। X वस्तु की कितनी मात्रा तथा Y वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाये इसका अर्थ

है कि समाज को 'चुनाव' करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों मे, साधनो के पूर्ण रोजगार वाली अर्थव्यवस्था (full employment economy) मे, समाज को विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन के सम्बन्ध मे 'चुनावों की सूची' (*menu of choices*) का निर्धारण करना पड़ेगा। सेम्युलसन के शब्दों मे,

> **"एक उत्पादन-सम्भावना रेखा चुनावों की सूची को बताती है।"[1]**

चित्र 1
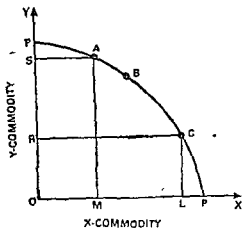
चित्र न० 1 मे PP-रेखा उत्पादन सम्भावना रेखा है। इस रेखा पर बिन्दु A बताता है कि समाज X वस्तु की OM मात्रा तथा Y वस्तु की OS मात्रा का उत्पादन कर सकता है; बिन्दु C वस्तु X की OL मात्रा तथा वस्तु Y की OR मात्रा के उत्पादन की सम्भावना को बताता है। दूसरे शब्दो मे, PP-रेखा के विभिन्न बिन्दु A, B, C, दो वस्तुओ X तथा Y के उत्पादन की विभिन्न सम्भावनाओं या विकल्पों (alternatives) को बताते हैं और समाज इनमे से किसी विकल्प का 'चुनाव' कर सकता है।

यदि हम उपर्युक्त विवरण को ध्यान मे रखे तो उत्पादन-सम्भावना रेखा की परिभाषा एक दूसरी प्रकार से दी जा सकती है,जो कि निम्नलिखित है :

> **एक उत्पादन-सम्भावना रेखा दो वस्तुओं X तथा Y के उन सभी संयोगों को बताती है जिनका अधिकतम उत्पादन एक समाज के लिए सम्भव है, जबकि साधनों की मात्रा स्थिर है और उनका पूर्ण प्रयोग हो रहा है तथा उत्पादन की तकनीकी स्थिति दी हुई है।[2]**

चित्र न० 1 मे PP-रेखा[3] पर बिन्दु A बताता है कि X वस्तु की अधिकतम मात्रा OM तथा Y वस्तु की अधिकतम मात्रा OS का उत्पादन किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्पादन-सम्भावना रेखा के अन्य बिन्दु B तथा C दोनो वस्तुओं X तथा Y की अधिकतम मात्राओं को बताते हैं जिनका कि एक समाज उत्पादन कर सकता है।

उपर्युक्त परिभाषा को एक और प्रकार से दिया जाता है जो कि निम्नलिखित है :

> **उत्पादन-सम्भावना रेखा एक वस्तु (माना X) की अधिकतम मात्रा को बताती है जो कि दूसरी वस्तु (माना Y) के उत्पादन की प्रत्येक सम्भाव्य मात्रा के साथ उत्पादित की जा सकती है, जबकि साधनो की मात्रा स्थिर हो और उनका पूर्ण प्रयोग हो रहा हो तथा उत्पादन की तकनीकी स्थिति दी हुई हो।[4]**

चित्र न० 1 मे PP-रेखा का बिन्दु A बताता है कि यदि Y वस्तु की OS मात्रा दी हुई है तो इसके साथ X वस्तु की अधिकतम मात्रा OM का उत्पादन किया जा सकता है; अथवा यदि

---

1 "The production possibility curve depicts society's menu of choices"

2 A production possibility curve indicates all the combinations of two goods X and Y whose maximum production is possible in a society, when all the resources are fixed and fully employed and the technological state of production is given

3 उत्पादन-सम्भावना रेखा (Production Possibility Curve) को प्रायः संक्षेप मे 'PP-रेखा' लिखा जाता है।

4 The production possibility curve indicates the maximum attainable output of one commodity (say X) for every possible volume of output of the other commodity (say Y), when the resources are fixed and [illegible] employed, and the technological art of production is given.

वस्तु X की OM मात्रा दी हुई है तो वस्तु Y की अधिकतम मात्रा OS का उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रकार एक उत्पादन-सम्भावना रेखा एक वस्तु की अधिकतम मात्रा को बताती है जो उत्पादित की जा सकती है जबकि दूसरी वस्तु की मात्रा दी हुई हो।

[उत्पादन-सम्भावना रेखा को कभी-कभी 'रूपान्तर रेखा' (*Transformation Line*) भी कहा जाता है। जब एक वस्तु X का उत्पादन बढ़ाया जाता है तो दूसरी वस्तु Y के उत्पादन से साधन हटाकर X के उत्पादन मे लगाये जाते हैं; दूसरे शब्दों मे, यह कहा जा सकता है कि Y वस्तु का X वस्तु मे रूपान्तरण (transformation) किया जाता है; अतः उत्पादन-सम्भावना रेखा का दूसरा नाम 'रूपान्तरण रेखा' भी है। यदि X वस्तु का अभिप्राय अर्थव्यवस्था की समस्त सम्भाव्य उपभोक्ता की वस्तुओं से, तथा Y वस्तु का अभिप्राय समस्त सम्भाव्य पूँजीगत वस्तुओं से लिया जाये तो, कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उत्पादन-सम्भावना रेखा को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की 'बजट रेखा' (*'budget line' for the economy as a whole*) भी कहा जा सकता है।]

3. मान्यताएँ (Assumptions)

उत्पादन-सम्भावना रेखा की ओर अधिक व्याख्या करने से पहले उन मान्यताओं को समझ लेना आवश्यक है जिन पर कि यह विचार आधारित है। ऊपर दी गयी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उत्पादन-सम्भावना रेखा निम्न मान्यताओं पर आधारित है:

(i) अर्थव्यवस्था मे सभी साधनों का पूर्ण प्रयोग हो रहा है, अर्थात् अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार (full employment) के स्तर पर कार्य करके पूर्ण उत्पादन (full production) प्राप्त कर रही है। दूसरे शब्दो मे, अर्थव्यवस्था मे कोई साधन बेरोजगार नहीं है।

(ii) अर्थव्यवस्था मे उत्पत्ति के साधनों की मात्रा स्थिर है; परन्तु सीमित मात्रा में उनको एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(iii) उत्पादन की तकनीकी स्थिति (technological state of production) दी हुई है अर्थात् उसमे कोई परिवर्तन नहीं है।

दूसरी तथा तीसरी मान्यता का अभिप्राय है कि आर्थिक विश्लेषण की सुविधा के लिए हम अर्थ-व्यवस्था को किसी समय के एक निश्चित बिन्दु पर, या उसे अति अल्पकालीन समय के अन्तर्गत, देख रहे है।[5]

4. व्याख्या तथा अभिप्राय (Explanation and Implications)

उत्पादन-सम्भावना रेखा को समझने के लिए हम पहले 'उत्पादन की सम्भावनाओं की तालिका' (production possibilities table) पर ध्यान केन्द्रित करते है। माना कि अर्थव्यवस्था मे दो प्रकार की वस्तुओं—X वस्तुओं अर्थात् उपभोक्ता की वस्तुओं (consumers goods) तथा Y वस्तुओं अर्थात् पूंजीगत वस्तुओं (capital goods)—का उत्पादन हो रहा है। चूंकि कुल साधन सीमित है, इसलिए कुल उत्पादन भी सीमित ही होगा। चूंकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर कार्य कर रही है, इसलिए X वस्तु की अधिक मात्रा के उत्पादन का अर्थ है कि Y वस्तु की कम मात्रा का उत्पादन हो सकेगा, इसी प्रकार इसकी विपरीत दशा भी ठीक होगी। 'उत्पादन-सम्भावनाओं' की अग्र तालिका मे A, B, C, D तथा E दो वस्तुओं X तथा Y के संयोगों (combinations) की विभिन्न सम्भावनाओं या विकल्पो (alternatives) को बताते है:

---

[5] The second and the third assumptions imply that for the purposes of economic analysis we are "looking at our economy at some specific point in time or over a very short period of time."

वस्तुएँ (Products)	उत्पादन-सम्भावनाएँ या विकल्प (Production possibilities or Alternatives)				
	A	B	C	D	E
X-वस्तुएँ (अर्थात् उपभोक्ता की वस्तुएँ) [Consumers goods]	0	1	2	3	4
Y-वस्तुएँ (अर्थात् पूंजीगत वस्तुएँ) [Capital goods]	12	11	9	6	0

तालिका से स्पष्ट है कि A से E की ओर चलने का अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था 'उपभोक्ता की वस्तुओं' के उत्पादन को बढाती जाती है और ऐसा करने मे उसे पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन से साधनो को हटाना पड़ता है तथा पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन कम होता जाता है। उपभोक्ता की वस्तुओं के अधिक उत्पादन का अर्थ है कि समाज वर्तमान आवश्यकताओ की पूर्ति पर अधिक जोर देता है। ऐसी दशा मे समाज को 'पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन के त्याग की लागत' (cost of sacrificing the production of capital goods) उठानी पडती और परिणाम-स्वरूप भविष्य मे उत्पादन-क्षमता (productive efficiency) मे कमी होती है। E से A की ओर चलने का अभिप्राय है कि समाज पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन को बढाता है और ऐसा करने मे उसे उपभोक्ता की वस्तुओं के उत्पादन से साधनो को हटाना पडता है तथा उपभोक्ता की वस्तुओं का उत्पादन कम हो जाता है। वर्तमान मे पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन पर बल देने का अभिप्राय है कि समाज को 'उपभोक्ता की वस्तुओ के उत्पादन के त्याग की लागत' (cost of sacrificing the production of consumers goods) उठानी पड़ती है, परन्तु भविष्य मे समाज की उत्पादन क्षमता बढ़ेगी और भविष्य मे अधिक उत्पादन सम्भव हो सकेगा।

विकल्प A बताता है कि उपभोक्ता की वस्तुओ का उत्पादन शून्य है और पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन 12 है, जबकि विकल्प E बताता है कि पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन शून्य है तथा उपभोक्ता की वस्तुओं का उत्पादन 4 इकाई है, ये दोनो स्थितियाँ एक सिरे की है। व्यवहार मे अर्थ-व्यवस्था इन दोनो स्थितियो के बीच किसी स्थिति मे रहेगी।
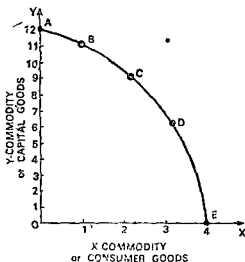
चित्र 2

उपर्युक्त तालिका मे दी गयी दो वस्तुओं X तथा Y की उत्पादन सम्भावनाओ को जब एक रेखा द्वारा व्यक्त कर दिया जाता है तो हमें *'उत्पादन-सम्भावना रेखा या सीमा'* (*Production Possibility Curve or Frontier or Boundary*) प्राप्त हो जाता है जैसा कि चित्र नं० 2 मे दिखाया गया है।

निम्न बाते उत्पादन-सम्भावना रेखा की ओर अधिक व्याख्या करती है तथा इसके अभिप्रायो को स्पष्ट करती है

(i) उत्पादन-सम्भावना रेखा बताती है कि एक पूर्ण-रोजगार वाली अर्थ-व्यवस्था मे यदि एक वस्तु X की मात्रा बढायी जाती है तो दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटानी पड़ेगी। यही कारण है कि एक उत्पादन सम्भावना रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र नं० 2 मे है।

(ii) सामान्यतया, एक उत्पादन-सम्भावना रेखा मूल बिन्दु (origin) के प्रति नतोदर (concave) होती है (जैसा कि चित्र नं० *1 या* 2 मे है)। इसका अभिप्राय है कि यदि X वस्तु के

उत्पादन को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है तो Y वस्तु की अधिकाधिक मात्रा का त्याग करना पड़ेगा; और यदि Y वस्तु के उत्पादन को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है तो X वस्तु की अधिकाधिक मात्रा का त्याग करना पड़ता है। इस बात को 'बढ़ती हुई लागतों का नियम' (*Law of Increasing Cost*) कहा जाता है; लागत को यहाँ पर वस्तुओं के त्याग के रूप में व्यक्त किया जाता है न कि द्रव्य में।[6]

चित्र नं० 3 में हम X वस्तु की मात्रा को एक-एक इकाई से बढ़ाते जाते हैं तो Y वस्तु की अधिकाधिक मात्राओं अर्थात् ab, cd, ef, gh, ij, का त्याग करना पड़ता है। इसलिए इस बात को 'बढ़ती हुई लागतों का नियम' कहा जाता है। इसी प्रकार एक दूसरे चित्र द्वारा हम यह दिखा सकते हैं कि यदि Y वस्तु की मात्रा को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है तो X वस्तु की बढ़ती हुई मात्राओं का त्याग करना पड़ेगा अर्थात् 'बढ़ती हुई लागतों का नियम' कार्यशील होगा।
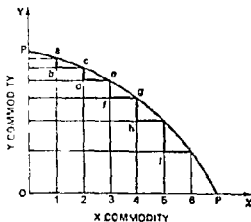
चित्र 3

परन्तु यहाँ एक प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है? अर्थात्, बढ़ती हुई लागतों का नियम क्यों लागू होता है? अथवा यह कहिए कि उत्पादन-सम्भावना रेखा (या PP-रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) क्यों होती है? इस बात की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिए साधनों को विभिन्न अनुपातों (different proportions) में प्रयोग किया जाता है, और यदि एक वस्तु के उत्पादन में से साधनों को हटाकर दूसरी वस्तु के उत्पादन को अधिक तथा और अधिक बढ़ाने के लिए लगाना पड़ता है तो 'उत्पादन-कुशलता या साधनों की उत्पादकता' (productive efficiency or productivity of factors) में गड़बड़ी (disturbance) होती है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक साधन वैकल्पिक प्रयोगों के लिए पूर्णतया अनुकूलनीय (*perfectly adaptable*) या पूर्णतया लोचशील (*perfectly flexible*) नहीं होते।[7] जैसे-जैसे हम वस्तु X की मात्रा बढ़ाते है, अर्थात् चित्र 3 मे PP-रेखा पर बिन्दु a से शुरू करते हैं, तथा जैसे-जैसे हम बिन्दु a से c, c से e, e से g, g से i, इत्यादि को चलते है, तो वे साधन जो कि वस्तु X के लिए बहुत अधिक उत्पादक (highly productive) है, वे अधिक तथा और अधिक सीमित (increasingly scarce) होते चले जाते हैं। अतः जब हम वस्तु X की अधिक मात्रा चाहते है तो हमें दूसरी वस्तु Y के उत्पादन में से साधनों को, जिनकी उत्पादकता Y के लिए अधिक है अपेक्षाकृत X की तुलना में, हटाना होगा। अतः वस्तु X के उत्पादन को एक-एक इकाई करके बढ़ाने के लिए हमें अधिक तथा और अधिक साधनों को वस्तु Y के उत्पादन में से हटाना होगा। इसका अर्थ है कि वस्तु Y की बढ़ती हुयी मात्राओं (increasing quantities) का त्याग (sacrifice) करना होगा वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) को प्राप्त करने के लिए। इस प्रकार, 'बढ़ती हुयी लागतों का नियम' लागू होगा, अथवा यह कहिये कि PP-रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave to origin) होगी।

(iii) यदि अर्थव्यवस्था उत्पादन-सम्भावना-रेखा PP (चित्र-4) के किसी भी एक बिन्दु (A या B या C) पर है तो इसका अभिप्राय है कि साधनों का 'पूर्ण प्रयोग' (full employment) हो रहा

---

[6] A production possibility curve is, generally, concave to the origin. This implies that if the output of one commodity X is increased every time by one unit (i. e., by equal amounts) the sacrifice of Y becomes larger and larger; and if the output of Y is increased every time by one unit (i. e, by equal amount) the sacrifice of X becomes larger and larger. This fact is sometimes called as the 'Law of Increasing Costs,' costs here are expressed in terms of goods and not in money.

[7] Economic resources are not completely adaptable or flexible to alternative uses.

है और 'पूर्ण उत्पादन' (full production) हो रहा है। दूसरे शब्दों मे, उत्पादन-सम्भावना रेखा पर X तथा Y का कोई भी संयोग 'तकनीकी दृष्टि से कुशल' (*technologically efficient*) है। PP-रेखा के अन्दर के सभी बिन्दु 'प्राप्त किये जा सकने वाले संयोगों' (attainable combinations) को बताते है। परन्तु PP-रेखा के भीतर प्रत्येक बिन्दु (जैसे बिन्दु E) 'तकनीकी दृष्टि से अकुशल' (*technologically inefficient*) है जो कि यह बताता है कि साधनों का पूर्ण प्रयोग नही हो रहा है। PP-रेखा के बाहर प्रत्येक बिन्दु (जैसे चित्र नं० 4 मे बिन्दु F) 'तकनीकी दृष्टि से अप्राप्य' (*technologically infeasible*) है।

संक्षेप मे, प्रत्येक अर्थव्यवस्था, जो कि अधिकतम कल्याण प्राप्त करने मे दिलचस्पी रखती है, का उद्देश्य उत्पादन-सम्भावना रेखा पर किसी एक बिन्दु (अर्थात् संयोग) का चुनाव करना होगा।
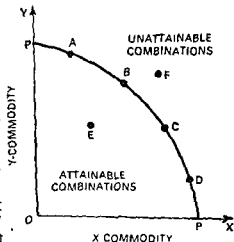
(iv) एक उत्पादन-सम्भावना रेखा पर वस्तुओं के सभी संयोग 'तकनीकी दृष्टि से कुशल' होते है, 'पूर्ण रोजगार' तथा 'पूर्ण-उत्पादन' को बताते है, तो प्रश्न यह उठता है कि एक समाज किस संयोग को पसन्द करेगा अथवा समाज के लिए कौन-सा संयोग वाँछनीय (desirable) होगा? चित्र नं० ४ मे समाज A, B, C या D मे से किस संयोग को चुनेगा? यह एक नैतिक (ethical) प्रश्न है जो कि प्रत्येक समाज (पूँजीवादी, समाजवादी या साम्यवादी देश) अपने 'नैतिक मूल्यों' (ethical or moral values) के अनुसार निश्चित करेगा।[8]

Y
P
A
UNATTAINABLE
COMBINATIONS
B
F
Y-COMMODITY
E
C
ATTAINABLE
COMBINATIONS
D
O
P
X
X COMMODITY

चित्र 4

5. मान्यताओं के ढीला करने के अभिप्राय (Implications of relaxing the assumptions)

(i) यदि हम पहली मान्यता—कि अर्थव्यवस्था 'साधनो का पूर्ण प्रयोग' तथा 'पूर्ण उत्पादन' कर रही है—को हटा दे तो इसका क्या अभिप्राय होगा? इसका अर्थ है कि अर्थ-व्यवस्था मे बेरोजगारी मौजूद है क्योकि साधनों का पूर्ण प्रयोग नही हो रहा है। दूसरे शब्दों मे, अर्थ-व्यवस्था उत्पादन-सम्भावना रेखा के भीतर किसी भी बिन्दु पर हो सकती है, चित्र नं० ५ मे एक ऐसी स्थिति बिन्दु E बताता है। चित्र मे EA, EB तथा EC उन तीन रास्तो को बताते हैं जिनसे अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार तथा पूर्ण उत्पादन की स्थिति प्राप्त कर सकती है। E से A बिन्दु पर पहुँचने का अर्थ है कि अर्थ-व्यवस्था केवल एक वस्तु Y के उत्पादन की मात्रा को बढाकर पूर्ण रोजगार और पूर्ण उत्पादन की स्थिति मे पहुँचती है; इसी प्रकार E से C बिन्दु पर जाने का अर्थ है कि अर्थ-

चित्र 5
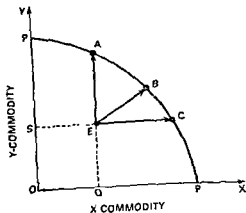
8 यदि एक समाज संयोग C (चित्र नं० 4) को चुनता है तो इसका अभिप्राय है कि वह उपभोक्ता की वस्तुओं का अधिक उत्पादन करना पसन्द करता है और पूँजीगत वस्तुओं का कम उत्पादन। यदि एक समाज संयोग A पसन्द करता है तो इसका अर्थ है कि वह पूँजीगत वस्तुओं का अधिक उत्पादन करके भविष्य मे उत्पादन-क्षमता को बढाना चाहता है तथा उपभोक्ता की वस्तुओं का कम उत्पादन करता है अर्थात् वर्तमान मे आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को अधिक महत्त्व नही देता है।

व्यवस्था केवल एक वस्तु X के उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करके पूर्ण रोजगार तथा पूर्ण उत्पादन की स्थिति में पहुँचती है। E में B बिन्दु तक पहुँचने का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था दोनों वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन की मात्राओं को बढ़ाकर पूर्ण रोजगार व पूर्ण उत्पादन की अवस्था में पहुँचती है।

(ii) यदि शेष दो मान्यताओं—अर्थात् साधनों की मात्रा स्थिर है तथा उत्पादन की तकनीकी कला (technological art of production) भी स्थिर है—को हटा दिया जाय तो इसका क्या अभिप्राय होगा? साधनों की मात्राओं तथा पूर्तियों में वृद्धि होने का अर्थ है कि अब समाज X तथा Y दोनों प्रकार की वस्तुओं (अर्थात् उपभोक्ता की वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं दोनों) का अधिक उत्पादन करने की योग्यता रखता है। तकनीकी प्रगति का अर्थ है कि समाज की उत्पादन क्षमता (productive efficiency) में वृद्धि होगी। अतः दोनों मान्यताओं को हटाने का अभिप्राय है कि अब समाज दोनों प्रकार की वस्तुओं का अधिक उत्पादन कर सकेगा अर्थात् उसकी उत्पादन-क्षमता बढ़ जाने के कारण उत्पादन-सम्भावना रेखा PP (चित्र नं० 6 में) आगे को खिसक कर P_1P_1 की स्थिति में आ जायेगी और पहले जो संयोग PP रेखा के बाहर थे (जैसे संयोग F), अर्थात् जो संयोग प्राप्त नहीं किये जा सकते थे, अब वे प्राप्त किये जा सकेंगे।
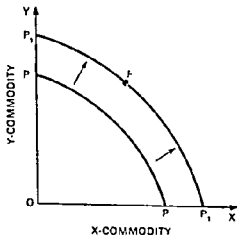
चित्र 6

निष्कर्ष (Conclusion)

उत्पादन-सम्भावना रेखा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण 'आर्थिक विश्लेषण-यन्त्र' (economic analytical tool) है; यह एक अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याओं तथा अर्थशास्त्र के अनेक आधारभूत विचारों (basic concepts) के समझने में सहायक है।

प्रश्न

1. 'उत्पादन-सम्भावना रेखा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक विश्लेषण यन्त्र है।' इस कथन के सन्दर्भ में एक उत्पादन-सम्भावना रेखा के अर्थ तथा अभिप्रायों को बताइए।
'A production possibility curve is a significant economic analytical tool.' In the light of this remark explain the concept and implications of a production possibility curve.
2. किसी अर्थव्यवस्था के 'उत्पादन-सम्भावना वक्र' के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। बताइए कि यह वक्र आर्थिक जीवन के कुछ मूल तथ्यों की किस प्रकार व्याख्या करता है?
Examine the nature of an economy's 'production-possibility curve'. How does the curve explain some of the basic facts of economic life?
(Delhi, B Com., Hons. 1971)
3. अर्थशास्त्र में निम्न समस्याओं को उत्पादन-सम्भावना वक्र की सहायता से समझाइए:
   (i) किसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता-वस्तुओं तथा उत्पादक-वस्तुओं के उत्पादन के बीच चुनाव।
   (ii) बेरोजगार साधनों की समस्या।
   (iii) आर्थिक वर्धन (economic growth) की समस्या।
   Explain the following problems in economics with the help of production possibility curve:
   (i) Choice between the production of consumers-goods and producers-goods in an economy.
   (ii) The problem of unemployed resources.
   (iii) The problem of economic growth.

3

एक आर्थिक प्रणाली की केन्द्रीय समस्याएँ

(Central Problems of an Economic System)

"Economics is about the economic system The first step in the study of economics is to obtain a clear conception of what the economic system is and what it does." —HOWARD R BOWEN

फ्रीडमैन (Friedman) के शब्दों मे, "अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो कि यह बताता है कि एक समाज अपनी आर्थिक समस्याओं को कैसे हल करता है। एक आर्थिक समस्या उस समय उत्पन्न होती है जबकि सीमित साधन वैकल्पिक साध्यो (alternative ends) की संतुष्टि मे लगाये जाते हैं।"[1]

अतः अर्थशास्त्र आर्थिक प्रणाली के सम्बन्ध मे जानकारी प्रदान करता है तथा अर्थशास्त्र मे एक प्रारम्भिक व महत्वपूर्ण कदम इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि एक आर्थिक प्रणाली क्या है और उसकी केन्द्रीय आर्थिक समस्याएँ क्या हैं अर्थात् उसके आर्थिक कार्य क्या हैं ?

आर्थिक प्रणाली का अर्थ
(THE CONCEPT OF AN ECONOMIC SYSTEM)

आर्थिक प्रणाली का अर्थ वैधानिक तथा संस्थात्मक ढांचे (legal and institutional framework) से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएँ संचालित होती हैं। आर्थिक क्रियाओ के अन्तर्गत वस्तुओ तथा सेवाओ के उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण से सम्बन्धित कियाएँ आती हैं। प्रत्येक देश मे मनुष्य के आर्थिक जीवन मे कम या अधिक राज्य का हस्तक्षेप भी पाया जाता है। इसलिए आर्थिक प्रणाली का रूप राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा तथा सीमा पर निर्भर करता है। आर्थिक प्रणाली की एक परिभाषा इस प्रकार है

"आर्थिक प्रणाली संस्थाओं का एक ढांचा है जिसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग पर सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।"[2]

---

1 "Economics is the science of how a particular society solves its economic problems. An economic problem exists whenever *scarce* means are used to satisfy *alternative* ends."

2 "Economic system is the framework of institutions by which the use of the means of production and of their products is socially controlled."

एक आर्थिक प्रणाली के कार्य अथवा उसकी केन्द्रीय समस्याएँ

(FUNCTIONS OR CENTRAL PROBLEMS OF AN ECONOMIC SYSTEM)

"आर्थिक समस्या" का अर्थ है "साधनों का मितव्ययितापूर्ण प्रयोग" (economizing resources), अर्थात् समाज की भौतिक आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि करने में सीमित साधनों का प्रयोग। इस दृष्टि से प्रत्येक आर्थिक प्रणाली, चाहे वह पूंजीवाद हो या समाजवाद या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, को कुछ आधारभूत (fundamental) कार्य करने पड़ते है, यद्यपि इन कार्यों को करने का ढंग प्रत्येक प्रणाली मे भिन्न होता है। इन आधारभूत कार्यों को 'एक आर्थिक प्रणाली की केन्द्रीय समस्याएँ' (central problems of an economic system) भी कहा जाता है। प्रत्येक आर्थिक प्रणाली के पाँच* आधारभूत कार्य या पाँच केन्द्रीय समस्याएँ है जो कि निम्नलिखित है :

(1) क्या उत्पादन होगा ? (What to be produced ?)

एक अर्थ-व्यवस्था का सर्वप्रथम कार्य इस बात का निर्धारण है कि क्या उत्पादित किया जाये ताकि समाज में व्यक्तियों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को 'उत्पादन की रचना' (composition of output) को निर्धारित करना पड़ता है। क्या उत्पादित करना है और क्या उत्पादित नही करना है, प्रश्न का सम्बन्ध वैकल्पिक प्रयोगों (alternative uses) में सीमित साधनों के वितरण (allocation of scarce resources) से है। स्पष्ट है कि यह कार्य या प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से साधनों की सीमितता से उत्पन्न होता है। मानवीय आवश्यकताओं की तुलना में साधन सीमित होते है, इसलिए प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को किसी न किसी रीति द्वारा यह निश्चय करना होगा कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाये अर्थात् 'साधनों के वितरण' (allocation of resources) की समस्या के सम्बन्ध मे निर्णय लेना होगा। इस बात के निर्धारण की रीति विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में भिन्न हो सकती है और प्राय भिन्न होती है; 'स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था' या 'पूंजीवाद' (free-enterprise economy or capitalism) मे यह बात 'कीमत प्रणाली', तथा साम्यवाद (communism) मे 'सरकारी आदेश' (government decree) निर्धारित करता है।

[पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत, अर्थशास्त्र की वह शाखा जो कि 'कीमत प्रणाली' के कार्यों (workings of the price system) को शामिल करती है उसे 'कीमत का सिद्धान्त' (theory of price) कहते हैं।]

वास्तव मे 'क्या उत्पादित किया जाये' आधारभूत (fundamental) प्रश्न को दो उप-प्रश्नों (sub-questions) मे बांटा जा सकता है—(i) किन वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जाये ? तथा (ii) इन वस्तुओं और सेवाओ को कितनी मात्राओ मे उत्पादित किया जाये ?

(i) पहले उप-प्रश्न को लीजिए। एक अर्थ-व्यवस्था उन वस्तुओ तथा सेवाओ को उत्पादित करेगी जिनको समाज अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है। प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था या समाज को किसी न किसी तरह यह निर्धारित करना पड़ेगा कि वह किन वस्तुओ का उत्पादन करे और किनका उत्पादन न करे, दूसरे शब्दो मे, किन 'उपभोक्ता वस्तुओं' (consumer goods) तथा किन 'पूंजीगत वस्तुओं' (capital goods) का उत्पादन करे।

(ii) जब एक अर्थ-व्यवस्था यह निर्धारित कर लेती है कि किन वस्तुओ का उत्पादन करना

---

* एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यो की संख्या के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियों में थोड़ा मतभेद है। प्रो. सेम्युलसन (Samuelson) के अनुसार आधारभूत कार्य तीन हैं, प्रो. हाम (Halm) के अनुसार सात, प्रो. स्टिगलर (Stigler) के अनुसार चार, प्रो. ओक्सेनफेल्ट (Oxenfeldt), प्रो. नाइट (F H. Knight) तथा प्रो लेफ्टविच (Leftwich) के अनुसार पाँच हैं।

है तब उसे यह निश्चित करना पड़ता है कि उन वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन किया जाये। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को यह निश्चित करना होगा कि प्रत्येक प्रकार की पूँजीगत वस्तुओं तथा प्रत्येक प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन करना है ताकि समाज की आवश्यकताओं की बहुत अच्छी प्रकार से सन्तुष्टि हो सके।
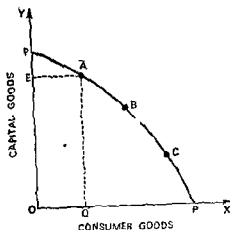
चित्र 1

चित्र 1 में यदि एक अर्थव्यवस्था या समाज PP 'उत्पादन सम्भावना रेखा' (production possibility curve)[4] के बिन्दु 'A' पर है तो इसका अर्थ है कि वह अधिक पूँजीगत वस्तुओं OE तथा कम उपभोग वस्तुओं OQ का उत्पादन करती है, बिन्दु B तथा बिन्दु C बताते है कि समाज या अर्थ-व्यवस्था पूँजीगत वस्तुओं का कम उत्पादन तथा उपभोग वस्तुओं का अधिक उत्पादन करती है। दूसरे शब्दों में, किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन होगा, इसके लिए समाज या अर्थ-व्यवस्था को अनेक विकल्पों (several alternatives) (चित्र 1 में A, B, C, इत्यादि) में से ऐसे विकल्प का चुनाव करना पड़ेगा जिससे कि समाज को सबसे अधिक सन्तुष्टि मिलती है।

[अतः, इस कार्य के आधार पर हम विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाओं की तुलना और जाँच कर सकते हैं कि जिन विशिष्ट वस्तुओं का उत्पादन होता है उससे जनसंख्या तथा राष्ट्र को सन्तुष्टि का एक उच्च स्तर प्राप्त होता है या नहीं।[5]]

(2) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जायेगा? (How shall the goods be produced ?)

एक अर्थ-व्यवस्था का दूसरा मुख्य कार्य है कि 'निर्धारित वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाये ?' अर्थात् 'किन रीतियों द्वारा उत्पादन किया जाये ?' (by what methods are the goods produced ?) दूसरे शब्दों में, 'उत्पादन का संगठन' (organization of production) कैसे किया जाये ?

---

4 यदि साधनों के पूर्ण प्रयोग या रोजगार की स्थिति मान ली जाये तो इसका अभिप्राय है कि यदि समाज वस्तु X की अधिक मात्रा का उत्पादन करना चाहती है तो उसे दूसरी वस्तु Y का उत्पादन कम करना पड़ेगा। जब एक समाज यह निर्णय करती है कि वह वस्तु X की कितनी मात्रा तथा वस्तु Y की कितनी मात्रा उत्पादित करेगी तो इसका अभिप्राय है कि वह विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की सम्भावनाओं (possibilities) में 'चुनावों की सूची' (menu of choices) का निर्धारण करती है और एक 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' इसको व्यक्त करती है। संक्षेप में, एक उत्पादन-सम्भावना रेखा एक समाज की उत्पादन सम्भावनाओं को बताती है।

[उत्पादन-सम्भावना रेखा के विस्तृत विवरण के लिए अध्याय 2 को देखिए।]

5 Thus, on the basis of this function we can compare and "examine *various* economies to see if the particular goods produced provide a high level of satisfaction for the population and the nation."

इस कार्य के अभिप्राय (implications) निम्नलिखित हैं :

(i) साधनों को उन उद्योगों में कैसे वितरित किया जाय जिनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ता या समाज सबसे अधिक चाहता है तथा साधनों को उन उद्योगों में जाने से कैसे रोका जाय जो ऐसी वस्तुओं को उत्पन्न करते हैं जिन्हें समाज सबसे कम चाहता है।

(ii) विभिन्न उद्योगों में किन फर्मों को उत्पादन करना है तथा वे आवश्यक साधनों को कैसे प्राप्त करेंगी।

(iii) निर्धारित वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन सबसे अधिक कुशल रीतियों द्वारा किया जाये; अर्थात् उत्पादन के एक निश्चित स्तर के लिए प्रत्येक फर्म किस प्रकार उत्पत्ति के साधनों को कुशलतम संयोग (most efficient combination of resources) में प्रयोग करे। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के लिए सर्वोत्तम टेक्नोलोजीकल रीतियाँ (best technological methods) कौन सी हैं।*

चित्र 2

उत्पादन की कोई भी योजना (scheme of plan) जो समाज के सब साधनों का तो प्रयोग करती है परन्तु अकुशलतापूर्वक उत्पादन करती है, तो वह एक ऐसे उत्पादन संयोग (output combination) की ओर ले जाती है जो कि उत्पादन-सम्भावना रेखा' (production possibility line or boundary) के भीतर होता है जैसा कि चित्र 2 में बिन्दु 'E' है। उत्पादन-सम्भावना रेखा PP के भीतर सभी बिन्दु 'वस्तुओं के प्राप्त किये जा सकने वाले संयोगों' (attainable combinations) को बताते हैं, जबकि 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' के बाहर सभी बिन्दु (जैसे बिन्दु F) 'वस्तुओं के अप्राप्य संयोगों' (unattainable combinations) को बताते हैं। चित्र में PP-रेखा के भीतर बिन्दु E बताता है कि साधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग नहीं हो रहा है। उत्पादन की अधिक कुशल रीतियों का प्रयोग करके यह सम्भव है कि किसी भी एक प्रकार की वस्तु का अधिक उत्पादन किया जा सकता है जैसा कि बिन्दु 'A' या 'B' बताते हैं या दोनों प्रकार की वस्तुओं का अधिक उत्पादन किया जा सकता है जैसा कि बिन्दु 'D' बताता है।
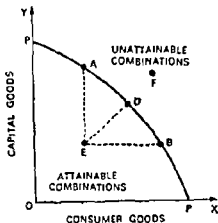
---

* किसी वस्तु के उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को विभिन्न रीतियों या टेकनीकों (methods or techniques) द्वारा उत्पादित किया जा सकता है; उसके उत्पादन में बहुत अधिक संख्या में श्रम (labour) तथा केवल कुछ सरल मशीनों अर्थात् कम पूंजी (a few simple machines, *i.e.*, less capital) के प्रयोग से लेकर बहुत कम संख्या में श्रम तथा बहुत अधिक महँगी और जटिल मशीनों अर्थात् बहुत अधिक पूंजी (costly and highly automated machines, *i.e.*, very large quantity of capital) के संयोग (combination) के टेकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है। अतः एक अर्थ-व्यवस्था को सर्वोत्तम टेक्नोलोजीकल रीति का चुनाव करना पड़ेगा, अर्थात् उस रीति को चुनना होगा जो आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक कुशल हो। इसका अर्थ है कि साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए, उत्पादन की वह टेकनीक चुननी होगी जो कम लागत पर अधिकतम उत्पादन दे।

[अतः एक अर्थ-व्यवस्था के मूल्यांकन के लिए यह ज्ञात करना आवश्यक है कि उत्पादन की किन रीतियों का प्रयोग किया जा रहा है अथवा किस ढंग से अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न भागों मे साधनो का वितरण हो रहा है।[7]]

[अर्थशास्त्र के उस भाग को जिसमे कि 'उत्पादन के संगठन' (organization of production) से सम्बन्धित समस्याओ का अध्ययन किया जाता है उसे 'उत्पादन का सिद्धान्त' (*Theory of Production*) कहते हैं।]

(3) **वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए किया जायेगा ?** (For whom shall the goods be produced ?)

अथवा

उत्पादित वस्तुओं का वितरण (Distribution of Output)

इस प्रश्न या कार्य के अभिप्राय (implications) निम्नलिखित है

(i) एक आर्थिक प्रणाली कुल उत्पादन को समाज की विभिन्न आर्थिक इकाइयो मे किस प्रकार वितरित या राशन करेगी ?[8] दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को किसी तरह से यह निर्धारित करना होगा कि कुल उत्पादन को उपभोक्ताओ तथा परिवारों, व्यापारियो तथा उत्पादकों एवं सरकार मे किस प्रकार बाटा जाये।

(ii) अर्थ-व्यवस्था को यह निर्धारित करना होगा कि उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ का वितरण कुशल तथा न्याययुक्त (efficient and equitable) भी हो। परन्तु इस बात के निर्धारण मे अर्थशास्त्र के तत्व ही नही बल्कि राजनीतिशास्त्र तथा नीतिशास्त्र (ethics) के तत्वों पर भी ध्यान देना पड सकता है।"[9]

(iii) अति अल्पकाल मे वस्तुओ की पूर्ति को परिवर्तित नही किया जा सकता। अतः **एक आर्थिक प्रणाली को अति अल्पकाल में वस्तुओ के वितरण अर्थात् राशन की व्यवस्था करनी चाहिए।**"[10] एक अर्थ-व्यवस्था को स्थिर पूर्ति का राशन दो प्रकार से करना होगा। (अ) इसे अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न उपभोक्ताओ के बीच पूर्ति का वितरण (allocation) करना होगा। (ब) इसे कुछ वस्तुओ (जैसे गेहूँ, चना, इत्यादि कृषि वस्तुओं) की दी हुई पूर्ति को एक फसल से दूसरी फसल की अवधि तक फैलाना होगा।[11]

[अतः, एक अर्थ-व्यवस्था के मूल्यांकन की एक कसौटी यह है कि वह आय को किस नैतिक या विवेकपूर्ण आधार पर बाटती है, उत्पादन को इस प्रकार विभाजित करती है जिससे कि समस्त जनसंख्या को सन्तुष्टि का एक उच्च स्तर प्राप्त हो, एवं जो स्वस्थ व सुखी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समायोजन को ध्यान मे रखते हुए व्यक्तियो को अधिकतम उत्पादन करने को प्रोत्साहित करती हो। परन्तु आय वितरण के ये उद्देश्य एक-दूसरे से मेल नही खाते अर्थात् असंगत (incon-

---

[7] "Consequently, to evaluate an economy requires a consideration of the manner in which resources are allocated among the segments of that system."

[8] "How an economic system shall distribute or allocate or ration its total output among the various economic units of the society ?"

[9] This may have to take into consideration not only economics but politics and ethics as well.

[10] कुछ अर्थशास्त्री (Prof. Knight and Prof. Leftwich) इस कार्य को एक पूर्ण तथा पृथक कार्य मानते हैं, अर्थात् इसे वे तीसरे कार्य के अन्तर्गत एक उप-कार्य (sub-function) नही मानते।

[11] "The economy must ration the fixed supply in two ways. First, it must allocate the supply among the different consumers of the economy. Second, it must stretch the given supply over the time period from one harvest to the next."

sistent) दिखायी पड़ते हैं और इसलिए इन कसौटी के आधार पर मूल्यांकन कठिन हो जाता है और इसके सम्बन्ध में व्यक्तियों के अपने अलग-अलग निर्णय हो सकते हैं।[12])

[हम दूसरे कार्य अर्थात् 'वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाये ?' के अन्तर्गत 'उत्पादन की कुशलता' (efficiency of production) की बात लिख चुके हैं; इसी प्रकार तीसरे कार्य अर्थात् 'उत्पादित वस्तुओं का वितरण' के अन्तर्गत 'वितरण की कुशलता' (efficiency of distribution) को बता चुके हैं। अर्थशास्त्र की वह शाखा जो कि 'उत्पादन तथा वितरण की कुशलता' (efficiency of production and distribution) के सम्बन्ध में अध्ययन करती है उसे 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (*Welfare Economics*) कहा जाता है। अतः कुछ अर्थशास्त्री 'साधनों को कितनी कुशलता के साथ प्रयोग किया जा रहा है ?' (How efficiently are the resources being used ?) के नाम से अर्थ-व्यवस्था का एक पृथक कार्य बताते हैं जिसके अन्तर्गत उत्पादन तथा वितरण दोनों की कुशलता सम्बन्धी बातों को शामिल करते हैं।]

[अभी तक हमने एक अर्थ-व्यवस्था के तीन मुख्य कार्यों का विवेचन किया जो कि साधनों तथा वस्तुओं के वितरण (allocation of resources and output) से सम्बन्धित हैं। एक 'बाजार अर्थ-व्यवस्था' या 'स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था' (market-economy or free-enterprise economy) में ये कार्य घनिष्ठ रूप से 'कीमत प्रणाली' (price system) के कार्यकरण (operation) से सम्बन्धित होते हैं। इन तीनों कार्यों को प्रायः 'व्यष्टि (या सूक्ष्म) अर्थशास्त्र' (Micro Economics) नामक एक सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है। इसके आगे के दो-दो कार्यों का अध्ययन-दृष्टिकोण (focus) कुछ भिन्न है और उनको 'समष्टि (या व्यापक) अर्थशास्त्र' (Macro Economics) नामक सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है।]

(4) **साधनों का पूर्ण प्रयोग** (Full Utilization or Employment of the Resources)

प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वह इस बात का ध्यान रखे कि साधन बेकार (idle or unemployed) न रहें, सभी साधनों का (विशेषतया मानव साधन) का पूर्ण प्रयोग हो रहा हो। यद्यपि प्रत्येक समाज साधनों को पूर्णतया प्रयोग में लाना चाहती है, परन्तु फिर भी कुछ साधन अप्रयुक्त (unutilized) रह जाते हैं, ऐसी स्थिति को 'साधनों की अनैच्छिक बेरोजगारी' (involuntary unemployment of resources) या संक्षेप में, केवल 'बेरोजगारी' (unemployment) कहते हैं। अनुभव यह बताता है कि अनेक अर्थ-व्यवस्थाएं 'स्पष्ट' या 'अस्पष्ट' बेरोजगार ('open' or 'disguised' unemployment) का शिकार रही हैं और अभी भी हैं। आधुनिक युग में 'साधनों का पूर्ण प्रयोग' (full employment of resources) एक महत्त्वपूर्ण समस्या है जिस पर प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।

इस समस्या या प्रश्न के अभिप्राय निम्नलिखित हैं :

(i) किस सीमा तक एक समाज अपने साधनों का प्रयोग करने को तत्पर (willing) है? यह बात मुख्यतया इन साधनों के अनुरक्षण (conservation) के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। उदाहरणार्थ, खनिज पदार्थों (minerals), जैसे पैट्रोल, कोयला, इत्यादि का यदि वर्तमान में बहुत तीव्र गति से शोषण (exploitation) किया जाता है तो वर्तमान में इनका उत्पादन अधिक

---

[12] Thus, a criterion for the evaluation of an economy is that it "distributes income on some ethical or rational basis, shares output in a manner that affords a high level of satisfaction for the population as a whole, and encourages individuals to make the maximum productive contribution consistent with health and a happy social and psychological adjustment." As these objectives of income distribution appear to be inconsistent with one another, the judgement on the basis of this criterion becomes difficult and it may be different for different individuals.

होगा परन्तु भविष्य मे अर्थ-व्यवस्था के लिए इन वस्तुओ के उत्पादन की क्षमता कम हो जायेगी; इसके विपरीत यदि इन साधनो के शोषण की गति वर्तमान मे कम है तो इनके प्रयोग को भविष्य मे दीर्घकाल तक उचित प्रकार से फैलाया जा सकेगा।

संक्षेप मे, प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को **'साधनों के प्रयोग के स्तर'** (level of resource use) **को निर्धारित करना पड़ेगा।**

(ii) साधनो के प्रयोग के स्तर को निर्धारित करने के बाद समाज को उस स्तर को प्राप्त करना होगा। दूसरे शब्दो मे, **समाज को मानवीय तथा भौतिक साधनों का पूर्ण प्रयोग** (full employment) **करना चाहिए,** इन साधनों की 'अनैच्छिक बेरोजगारी' ((involuntary idlesness) नही होनी चाहिए। "अनैच्छिक बेरोजगारी आर्थिक अकुशलता की उच्चतम सीमा है।"[13] आर्थिक-कुशलता के उच्च स्तर के लिए यह आवश्यक है कि अर्थ-व्यवस्था 'आर्थिक स्थिरता (economic stability) प्रदान करे अर्थात् 'कीमतो के एक स्थायी स्तर के साथ पूर्ण रोजगार' (full employment with a stable level of prices) की गारण्टी प्रदान करे।
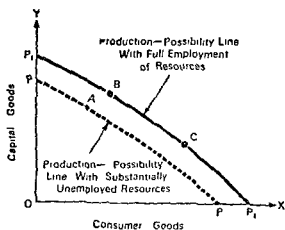
चित्र 3

चित्र 3 मे बिन्दुकित रेखा (dotted line) PP उस 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' (production possibility) को बताती है जबकि साधनो की पर्याप्त मात्रा मे अनैच्छिक बेरोजगारी हो, अर्थात् साधनो का पूर्ण प्रयोग नही हो रहा है; तथा ठोस रेखा (solid line) P_1P_1 उस 'उत्पादन-सम्भावना रेखा' को बताती है जबकि साधनो को 'पूर्ण रोजगार' (full employment) प्राप्त है। चित्र 3 मे बिन्दु 'A' 'पूर्ण रोजगार की उत्पादन-सम्भावना रेखा' (production possibility line with full employment) के भीतर है जो कि 'साधनो की बेरोजगारी' या 'साधनो के अकुशल प्रयोग' को बताता है।

(iii) यह भी ध्यान रखने की बात है कि एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था, जिसमे जनसंख्या तथा श्रम-शक्ति मे वृद्धि हो रही हो, को पूर्ण रोजगार की स्थिति मे बनाये रखने के लिए प्रत्येक वर्ष अधिकाधिक कार्यों की व्यवस्था करनी पडेगी, एक विकासमान अर्थ-व्यवस्था के लिए रोजगार के स्तर के सम्बन्ध मे स्थिर स्थिति पर्याप्त नही होगी।[14]

(स्पष्ट है कि विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाओ के मूल्यांकन (या तुलना) के लिए एक कसौटी इस प्रकार है. यह ज्ञात करना आवश्यक है कि वे पूर्ण रोजगार की व्यवस्था कर सकती हैं या नही अथवा किस सीमा तक रोजगार के स्तर को बनाये रख सकती हैं।)

[एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था (free-enterprise economy) के सन्दर्भ मे अर्थशास्त्र

13 "Involuntary idleness is the height of economic inefficiency"

14 "It is also worth noting that an economy with an expanding population and labour force must provide more and more jobs each year to sustain full employment the *status quo* with respect to the level of employment is not enough in a developing economy"

की वह शाखा जिसमें उपर्युक्त बातों अर्थात् 'रोजगार के स्तर' तथा 'रोजगार में परिवर्तनों' का अध्ययन किया जाता है उसे 'राष्ट्रीय आय सिद्धान्त तथा व्यापार-चक्र सिद्धान्त' (*National Income Theory and Business Cycle Theory*) कहा जाता है।]

(5) आर्थिक अनुरक्षण, विकास तथा लोच (Maintenance, Growth and Flexibility)

दीर्घकाल तक भौतिक आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि के लिए प्रत्येक समाज या आर्थिक प्रणाली के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी उत्पादन-क्षमता (productive capacity) का अनुरक्षण (maintenance) करे तथा उसका विकास या विस्तार (expansion) करे। अनुरक्षण का आशय है कि आर्थिक-मशीन की उत्पादन क्षमता को मूल्य-ह्रास (depreciation) की व्यवस्था के द्वारा यथास्थिर बनाये रखना। विस्तार का आशय है कि अर्थ-व्यवस्था के साधनों की किस्मों व मात्राओं में निरन्तर वृद्धि करना तथा साथ में उत्पादन की तकनीकों (techniques) में निरन्तर सुधार करना।[15]

प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को नयी रीतियों, नये टेक्नीकों (techniques), तथा नयी वस्तुओं को उत्पन्न करना चाहिए। एक अर्थ-व्यवस्था जो कि केवल वर्तमान टेक्नोलोजीकल (technological) ज्ञान का कुशलतापूर्वक प्रयोग करती है बहुत पिछड़ी हुई रहेगी जब तक कि असन्तुष्ट आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए वह नयी वस्तुओं को उत्पन्न नहीं करती अथवा यह उत्पादन की अधिकाधिक कुशल रीतियों की खोज नहीं करती।[16]

उत्पादन-क्षमता में विकास या वर्धन (growth in productive capacity) को चित्र 4 द्वारा दिखाया जा सकता है। माना कि एक अर्थ-व्यवस्था के लिए उत्पादन-सम्भावना रेखा PP है; इस रेखा PP के सन्दर्भ में बिन्दु 'F' वस्तुओं के अप्राप्य संयोग' (unatainable combination of commodities) को बताता है क्योंकि यह PP-रेखा के बाहर है। 'उत्पादन-क्षमता में वर्धन' का अर्थ है कि PP उत्पादन-सम्भावना रेखा आगे को खिसक कर नयी स्थिति P_1P_1 में आ जाती है; और अब वस्तुओं के अप्राप्य संयोग' को बताने वाला बिन्दु 'F' नयी उत्पादन-सम्भावना रेखा P_1P_1 पर आ जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि एक अर्थ-व्यवस्था की वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन-क्षमता बढ़ रही है तो वस्तुओं और सेवाओं के जो 'संयोग' आज अप्राप्य (unattainable) हैं वे कल प्राप्य (attainable) हो जाते हैं।[17]
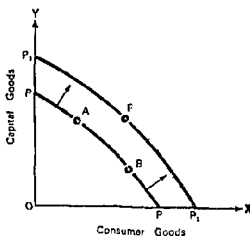
चित्र 4

[15] "Maintenance refers to keeping the productive power of the economic machine intact through provision for depreciation. Expansion refers to continuous increase in the kinds and quantities of the economy's resources, together with continuous improvement in techniques of production."

[16] "Every economy should create new methods of production, new techniques and new products. An economy that efficiently exploits existing technological knowledge will still be left far behind unless it also develops new products that satisfy unfilled wants or finds increasingly efficient methods of production."

[17] "If the economy is growing in its capacity to produce goods and services, combinations (of goods and services) that are unattainable today become attainable tomorrow."

उत्पादन-क्षमता में विकास या वर्धन (growth) का अभिप्राय (implication) है कि एक अर्थव्यवस्था लोचपूर्ण (flexible) होनी चाहिए। आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की एक मुख्य विशेषता 'परिवर्तन' (change) है। टेक्नोलोजी, उपभोक्ताओं की रुचियों, तथा साधनों की पूर्तियों में परिवर्तनों का आशय है कि अर्थ-व्यवस्था को साधनों का महत्त्वपूर्ण पुनर्वितरण (significant reallocation) करना पड़ेगा ताकि उनके प्रयोग की कुशलता बनी रहे।[18] इसी प्रकार सकट-कालीन अवस्था (emergency situation), जैसे युद्ध की दशा में या अन्य तीव्र आर्थिक परिवर्तन की दशा में, एक अर्थ-व्यवस्था को शीघ्रता तथा महत्त्वपूर्ण तरीके से साधनों का पुनर्वितरण करना पड़ेगा। अतः एक अर्थ-व्यवस्था लोचपूर्ण होनी चाहिए ताकि वह परिवर्तनों के साथ समायोजन कर सके और कुशलता के साथ अपना विकास या वर्द्धन कर सके।[19]

[अत. एक अर्थ-व्यवस्था के मूल्यांकन की एक कसौटी है उसकी अनुरक्षण की क्षमता, उसके विकास या वर्द्धन की दर, तथा उसकी लोचपूर्णता।][20]

[अर्थशास्त्र की वह शाखा जिसमे एक अर्थ-व्यवस्था के विकास की समस्याओ का अध्ययन किया जाता है उसे 'आर्थिक विकास तथा वर्द्धन का सिद्धान्त' (*Theory of Economic Development and Growth*) कहते है। कार्य 4 तथा 5 को मिलाकर 'समष्टि (या व्यापक) अर्थशास्त्र' (Macro Economics) के सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है जैसा कि हम पहले बता चुके है।]

निष्कर्ष (Conclusion)

(i) एक अर्थ-व्यवस्था की पाचो केन्द्रीय समस्याओ (central problems) अथवा कार्यों (functions) के पीछे, 'आर्थिक साधनो की सीमितता' की बात निहित (hidden) है। दूसरे शब्दो मे, उपर्युक्त पाचो कार्य या प्रश्न 'मुख्य आर्थिक समस्या' (basic economic problem)[21] **अथवा 'मितव्ययिता की समस्या'** (economizing problem)[22] **के ही उप-विभाग या अंग** (sub-divisions or breakdown) **हैं।**

(ii) एक अर्थ-व्यवस्था के उपर्युक्त सभी **पांचों कार्य एक-दूसरे से सम्बन्धित** (interrelated) होते हैं।

(iii) उपर्युक्त **पांचों कार्यों की कुशलता के आधार पर ही किसी अर्थ-व्यवस्था का मूल्यांकन** (evaluation) **किया जा सकता है।** परन्तु एक सही और अच्छे मूल्यांकन के लिए यह भी आवश्यक

---

[18] Changes in technology, consumers' tastes and preferences, and resource supplies imply that an economy will have to make significant reallocations of the resources so as to preserve efficiently in their use.

[19] सक्षेप मे "एक कुशल अर्थ-व्यवस्था टेकनोलोजीकल आविष्कारो मे 'प्रगति' (progress) तथा नयी वस्तुओ के उत्पादन में 'वर्द्धन' (growth) के द्वारा ऊँचे जीवन-स्तर की ओर अग्रसर होती है।"

"An efficient economy moves forward toward higher living standards through 'progress' in technical innovations and 'growth' in output of new products"

[20] Thus, one criterion by which an economy should be evaluated is its capacity of maintenance, rate of development or growth and flexibility."

[21+22] मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित हैं तथा साधन सीमित हैं। अत मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं और साधनों के बीच चुनाव (choose) करना पड़ता है अथवा 'साधनो का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग' (economizing the resources) करना पड़ता है। 'चुनाव करने का पहलू' (choice-making aspect) या साधनो का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग (economizing the resources) मुख्य आर्थिक समस्या है, इस मुख्य आर्थिक समस्या को सक्षेप में 'मितव्ययिता की समस्या' (economizing problem) भी कह दिया जाता है।

है कि केवल कुशलता (efficiency) का अध्ययन ही न किया जाये बल्कि राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में उसके प्रभावों को भी आंका (assess or evaluate) किया जाये। आर्थिक प्रबन्धों (economic arrangements) को आर्थिक कुशलता की कसौटी (test) से अधिक की संतुष्टि करनी चाहिए।"[23]

परिशिष्ट I (APPENDIX) एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों का सम्पादन (PERFORMANCE OF ECONOMIC FUNCTIONS UNDER A CAPITALIST ECONOMY)

एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्य (Fundamental Functions of an Economic System)

प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को पांच आधारभूत कार्यों को करना पड़ता है: (1) क्या (What) उत्पादन होगा? (2) वस्तुओं का उत्पादन कैसे (How) किया जायेगा? (3) वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए (For Whom) किया जायेगा? (4) साधनों का पूर्ण प्रयोग या पूर्ण रोजगार, (5) आर्थिक अनुरक्षण (maintenance), विकास तथा लोच। नीचे हम इस बात का विवेचन करते हैं कि एक पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था किस प्रकार इन पांचों कार्यों का सम्पादन (perform) करती है।

एक पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था का ढांचा (Framework of a Capitalist or Free-Enterprise Economy)

'पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों पर निजी व्यक्तियों, (private individuals) का स्वामित्व होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति रख सकता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगिता की स्थिति के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अपने व्यवसाय को चुनने में स्वतन्त्र होता है; इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति, अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की दृष्टि से, वस्तुओं का चुनाव करने तथा उनका प्रयोग करने में स्वतन्त्र होता है।

पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यों को 'कीमत-यन्त्र' (Price-mechanism) या 'कीमतों की व्यवस्था' (System of Prices) या 'बाजार-व्यवस्था' (Market System) के द्वारा करती है। ध्यान रहे कि यहां पर **कीमतों का विस्तृत अर्थ** लिया गया है, कीमतों का अर्थ है 'लाभ तथा हानि' (Profit and Loss), 'वस्तुओं की कीमतें (Product Prices) तथा 'साधनों की कीमतें' (Resoure Prices)। चूंकि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का संचालन तथा समन्वय (working and co-ordination) 'कीमत-यन्त्र' द्वारा होता है, इसलिए पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था को कभी-कभी 'कीमत द्वारा शासन' ((government by price) भी कहा जाता है।

आगे दिया गया विवरण इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था किस प्रकार 'कीमत-यन्त्र' द्वारा एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यों को पूरा करती है।

---

[23] "In judging an economic system, one must not only study efficiency but also evaluate its effects in the political, social, moral and psychological spheres. *Economic arrangements must meet more than the test of economic efficiency.*"

"An economic system that produces a large output of material things but fails to satisfy many basic desires of its population, or increases personal insecurity, suppresses natural impulses, restricts movements or expression, violates personal, moral and ethical codes or perpetuates and increases inequalities in opportunities and wealth cannot be considered good—unless all alternative arrangements are even worse!"

(1) क्या उत्पादन होगा ? (What to Produce ?)

एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं का मूल्यांकन (valuation) कीमतों द्वारा होता है और कीमतें उपभोक्ताओं की रुचि तथा आवश्यकताओं को व्यक्त (reflect) करती है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अपनी आयों (incomes) को व्यय करके यह निर्धारित करते हैं कि किन वस्तुओं का उत्पादन होगा और किनका उत्पादन नहीं होगा।

(i) जब उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदते है तो हम यह कह सकते है कि वे उस वस्तु के उत्पादन के पक्ष में 'वोट' देते है। उपभोक्ता अपनी आयों को उन वस्तुओं पर व्यय करते है, अर्थात् वे उन वस्तुओ के उत्पादन के पक्ष में अपने 'द्रव्य-रूपी वोट' (money-votes) देते है, जिनको कि वे चाहते है और खरीदने की योग्यता रखते है। जिन वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं की माग इतनी अधिक है अर्थात् जिनके लिए 'द्रव्य-रूपी वोट' इतने अधिक हैं कि उत्पादकों को सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त हो सकता है तो उत्पादक उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। यदि इन वस्तुओं की माग और अधिक बढती है अर्थात् इन वस्तुओं के पक्ष मे उपभोक्ता अधिक द्रव्य-रूपी वोट देते है तो वस्तुओ को उत्पन्न करने वाले उद्योग को 'सामान्य लाभ से अधिक लाभ' प्राप्त होगा, ये लाभ उद्योग विशेष को बढाने के लिए 'संकेत या सिगनल' (signal) होंगे और इस उद्योग में वस्तु की मात्रा में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु विशेष की माग घटती है अर्थात् उसके पक्ष में द्रव्य-रूपी वोट बहुत कम दिये जाते हैं तो उस वस्तु को उत्पन्न करने वाले उत्पादकों को हानि होगी और ये हानि उद्योग विशेष के लिए उत्पादन में संकुचन (contraction) के लिए 'सिगनल' होगी और उत्पादन कम होगा।

(ii) साधनों के पूर्तिकर्ता (resources suppliers) भी अपने साधनों के वितरण (allocation) के चुनावों या निर्णय के सम्बन्ध में, 'वस्तुओं की कीमतों' द्वारा निर्देशित (guide) होते है, और चूंकि 'वस्तुओं की कीमतें' उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं या मागों को व्यक्त करती है, इसलिए साधनों के पूर्तिकर्ता उपभोक्ताओं की मागों के अनुसार अपने साधनों के वितरण के सम्बन्ध में निर्णय करेंगे। "जो फर्में उपभोक्ताओं द्वारा मागी जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन करती हैं वे ही लाभ के साथ कार्य कर सकेंगी और ये फर्में ही साधनों की माग करेंगी। साधनों के पूर्तिकर्ता अपने साधनों को उन वस्तुओं के उत्पादन में वितरण करने को स्वतन्त्र नहीं होंगे जिनको कि उपभोक्ता अधिक महत्त्व नहीं देते।"[24]

"इस प्रकार कीमत व्यवस्था उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को उद्योगों तथा साधन-पूर्तिकर्ताओं तक पहुचाती है और उनसे उचित उत्तर (responses) निकलवाती है।"[25]

(iii) 'वस्तुओं की कीमतों' के कार्यकरण के सम्बन्ध में दो मुख्य सीमाओं (limitations) पर ध्यान देना आवश्यक है·

(अ) वस्तुओं की कीमतें उपभोक्ताओं के मूल्यांकनों (consumers' valuations) को बताती हैं, परन्तु उपभोक्ताओं के मूल्यांकन अर्थ-व्यवस्था में अन्य परिवर्तनशील तत्त्वों (variables) से पूर्णतया स्वतन्त्र (independent) नहीं होते, उदाहरणार्थ, उत्पादकों या फर्मों द्वारा विज्ञापन तथा प्रसार पर बहुत अधिक व्यय प्राय उपभोक्ताओं के मूल्यांकनों को प्रभावित करते है अर्थात् उपभोक्ताओं की प्रभुता (consumer's sovereignty) की सीमाएं होती है। ऐसी स्थिति में वस्तुओं की कीमतें उपभोक्ताओं के मूल्यांकनों को सही रूप में व्यक्त नहीं करती, वास्तव में वस्तुओं का

[24] "Only those firms which produce goods wanted by consumers can operate profitably, only those firms will demand resources Resources suppliers will not be 'free' to allocate their resources to the production of goods consumers do not value very highly."

[25] "The price system communicates the wants of consumers to business and resource suppliers and elicits appropriate responses."

मूल्यांकन उत्पादकों (या फर्मों) तथा उपभोक्ताओं की पारस्परिक क्रियाओं (interactions) का परिणाम कहा जा सकता है।

(ब) उपर्युक्त विश्लेषण हमें यह बताता है कि कीमत-प्रणाली द्वारा वस्तुओं का मूल्यांकन किस प्रकार होता है। परन्तु यह इस बात को नहीं बताता कि वस्तुओं का मूल्यांकन कैसा होना चाहिए। दूसरा प्रश्न नैतिक (ethical) है और बहुत कुछ कीमत सिद्धान्त के क्षेत्र से परे कहा जा सकता है।[26] परन्तु इस नैतिक दृष्टिकोण की पूर्णतया उपेक्षा नहीं की जा सकती। थोड़ी आय वाले उपभोक्ताओं की अपेक्षा अधिक आय वाले उपभोक्ता मूल्य-ढांचे (value structure) पर अधिक प्रभाव डालेंगे।[27] अतः यह सम्भव है कि कीमत प्रणाली के कार्यकरण द्वारा निर्धन व्यक्तियों की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन कम हो और धनी व्यक्तियों की विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन अधिक हो।[28] ऐसी दशा में पूर्णरूप से कार्य करते हुए भी, कीमत प्रणाली ऐसे सामाजिक परिणाम ला सकती है जिन्हें हम अवांछनीय समझें और राजनैतिक प्रक्रिया के द्वारा सुधारने का प्रयत्न करें। सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से आय का पुनर्वितरण तथा वर्धमान (progressive) आय-कर इनके उदाहरण हैं।[29]

(2) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जायेगा ? (How shall the goods be produced ?)

एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत वस्तुओं के उत्पादन के संगठन (organization of products) का कार्य 'कीमत प्रणाली' के द्वारा होता है। कीमतों के दो समूह (sets)—वस्तुओं की कीमतों तथा साधनों की कीमतों—के द्वारा 'कीमत प्रणाली' इस कार्य को पूरा करती है।[30]

(i) उत्पादन लागत के सन्दर्भ में वस्तुओं की कीमतें विभिन्न उद्योगों में साधनों के वितरण को निर्धारित करती हैं,[31] जिन उद्योगों की वस्तुओं की माँग अधिक होगी उनकी वस्तुओं की कीमतें ऊंची होंगी और उनमें साधनों के स्वामी अपने साधनों की अधिक पूर्ति करेंगे क्योंकि उनको साधनों की ऊंची कीमतें या प्रतिफल मिलेंगे। जिन उद्योगों की वस्तुओं की कीमतें कम होंगी उनमें साधनों की पूर्ति कम होगी। दूसरे शब्दों में, "साधन निरन्तर कम प्रतिफल वाले उपयोगों (lower-paying uses) से अधिक प्रतिफल वाले उपयोगों (higher-paying uses) में अथवा कम महत्त्व के उपयोगों से अधिक महत्त्व के उपयोगों में गतिशील होते रहते हैं।[32]

---

[26] "The foregoing analysis tells us how goods actually are valued by means of a system of prices. It does not tell us how goods *ought* to be valued. The latter problem is an ethical one and lies largely outside the scope of price theory."

[27] Cf. "Notice that the economic election is not a democratic one, everyone does not have equal voice in the outcome. The greater one's money income, the greater the number of votes he may cast."

[28] "इस बात की कल्पना की जा सकती है कि निर्धन व्यक्तियों के बच्चों के लिए दूध की अपेक्षा धनिक व्यक्तियों के कुत्तों के लिए बिस्कुटों को मूल्यों के पैमाने (scale of values) में अपेक्षाकृत ऊंचा स्थान दिया जाये, बशर्ते कि काफी संख्या में धनी व्यक्ति इस दिशा में डालर (या रुपये) खर्च करने को तैयार हों और दूध पर डालर (या रुपये) खर्च करने के लिए काफी संख्या में निर्धन व्यक्ति न हों।"

[29] "The price system in such a situation, though working perfectly, may lead to social consequences that we consider undesirable and attempt to rectify through the political process. Income redistribution through social security and the progressive income tax furnish examples"

[30] "This is accomplished by the price system through the interaction of two sets of prices : prices of products and prices of resources."

[31] Prices of products in relation to the costs of producing them determine the distribution of resources among industries.

[32] "Resources are moving constantly from lower-paying to higher-paying uses or out of less important into more important uses."

(ii) साधनों की सापेक्षिक कीमतें उद्योगों में विभिन्न साधनों के समन्वय (coordination) को निर्धारित करेंगी।[33] दूसरे शब्दों में, एक उद्योग विशेष में वास्तव में कौनसी फर्में उत्पादन करेगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वे उत्पादन के किन तरीकों का प्रयोग करती हैं तथा साधनो को किन अनुपातों में प्रयुक्त करती हैं। स्पर्द्धात्मक बाजार मे उद्योग विशेष में केवल वे फर्में उत्पादन कर सकेंगी जो कि आर्थिक दृष्टि से उत्पादन की कुशलतम तकनीको को प्रयोग करने को तत्पर है और उनका प्रयोग करती हैं।

(3) वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए किया जायेगा ? (For whom shall the goods be produced ?)

अथवा

उत्पादित वस्तुओं का वितरण (Distribution of Output)

स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादित वस्तुओ का वितरण भी कीमत प्रणाली द्वारा होता है। "वस्तु वितरण वैयक्तिक आय वितरण (personal income distribution) पर निर्भर करता है। थोड़ी आय वालो की अपेक्षा अधिक आय वाले व्यक्ति अर्थ-व्यवस्था की उत्पत्ति मे अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा प्राप्त करते हैं।"[34] व्यक्तियो की व्यक्तिगत आये निर्भर करेंगी: (i) उनके साधनो की कीमतो, तथा (ii) उनके पास साधनो की मात्राओ पर। पूजीवादी व्यवस्था में व्यक्तियो का साधनो पर निजी स्वामित्व (ownership) होता है। साधनो को दी जाने वाली कीमतो तथा प्रयोग मे आने वाली साधनो की मात्राओ का गुणा करने से जो राशि प्राप्त होती है वह साधनो की आये होगी।[35] जिन व्यक्तियो के पास साधनो की मात्राए अधिक हैं तथा उनके साधनो की कीमते ऊची हैं उनकी आयें अधिक होगी और वे अर्थ-व्यवस्था की उत्पत्ति मे एक बड़ा हिस्सा प्राप्त कर सकेंगे अपेक्षाकृत अन्य व्यक्तियो के। व्यक्तियो द्वारा साधनो की मात्राओ का स्वामित्व समाज के संस्थात्मक व्यवस्था (institutional arrangement) द्वारा निर्धारित होगा। साधनो की कीमते निर्भर करेगी उनकी पूर्तियो तथा मागो पर।

इस प्रकार, साधनो की कीमते तथा साधनो के स्वामित्व का वितरण समाज मे कुल उत्पादन के वितरण को निर्धारित करता है।[36]

यह ध्यान मे रखने की बात है कि **उत्पादन के वितरण के सम्बन्ध में 'कीमत-प्रणाली' का कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं होता।** "जो व्यक्ति उत्तराधिकार (inheritance) के कारण अथवा व्यापार की अधिक योग्यता के कारण या बेईमानी के कारण सम्पत्ति के साधनों (property resources) को अधिक मात्रा मे एकत्रित कर लेते है वे अधिक आय प्राप्त करेंगे और अर्थ-व्यवस्था के कुल उत्पादन का अधिक हिस्सा लेंगे अपेक्षाकृत अन्य व्यक्ति के।[37] इस प्रकार कीमत-प्रणाली

---

33 "The relative prices of factors determine the coordination of factors within industries"

34 "Product distribution depends upon personal income distribution. Those with larger incomes obtain larger shares of the economy's output than do those with smaller incomes"

35 "When the prices paid for the factors are multiplied by the quantities of the factors which are used the arithmetical products are the incomes of the given factors of production"

36 Thus, the factors prices and the distribution of ownership of resources determine the distribution of the total product among the individuals in the society.

37 It should be kept in mind that "there is nothing particularly ethical about the price system as a mechanism for distributing the output of pure capitalism Those households which manage to accumulate large amounts of property resources by inheritance, through their business acumen, or by crook, will receive large incomes and thus command large shares of the economy's total outout Others which offer only labour resources valued low by the price system will receive meagre money incomes and small portions of total output."

अवैयक्तिक (impersonal) होती है, उसका अच्छाई-बुराई से कोई सम्बन्ध नही होता और समाज मे उत्पादन या द्राव्यिक आयो का वितरण बहुत विषम या अन्यायपूर्ण (very inequal or unjust) हो सकता है।

परन्तु उत्पादन या सम्पत्ति या द्रव्य का विषम और अन्यायपूर्ण वितरण सामाजिक दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता और ऐसी स्थिति मे स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में कुछ संशोधन (modifications) लागू करने की आवश्यकता होती है, परन्तु ऐसे संशोधन कीमत प्रणाली के सचालन को बहुत अधिक प्रभावित किये बिना ही किये जा सकते हैं। "सरकार के जरिए समाज वर्द्धमान आय कर (progressive income tax) लगा सकता है तथा कल्याणकारी कार्यों पर व्यय कर सकता है। कम आय वाले वर्गों को अनेक तरीकों से आर्थिक सहायता प्रदान कर सकता है।"[38] इस प्रकार आय का पुनर्वितरण (redistribution) होगा और इससे समाज की सन्तुष्ट की जाने वाली आवश्यकताओं का स्वरूप (pattern) बदल जायेगा। जिन व्यक्तियों की ऊंची आयें घटेंगी वे बाजार में पहले की अपेक्षा कम प्रभावशाली हो जायेंगे, तथा जिन व्यक्तियों की नीची आयें बढ़ेंगी वे बाजार में अधिक प्रभावशाली बन जायेंगे। इस प्रकार कीमत प्रणाली उत्पादन को तथा उसके वितरण को इस प्रकार पुनर्संगठित कर देगी जोकि कम विषम और कम अन्यायपूर्ण होगा।

अल्पकाल में जिन वस्तुओं की पूर्तियां स्थिर हैं उनको उपभोक्ताओं मे वितरण या राशन का कार्य भी कीमत प्रणाली करती है। "वस्तु के अभाव के कारण कीमत बढ़ जाती है जिससे प्रत्येक उपभोक्ता के द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा में कमी आ जाती है। कीमत उस समय तक बढ़ती रहेगी जब तक कि समस्त उपभोक्ता एक साथ स्थिर पूर्ति को लेने के बिन्दु पर नही आ जाते। वस्तु के आधिक्य से कीमत घट जाती है जिससे उपभोक्ताओं के द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा उस समय तक बढ़ती जाती है तब तक कि वे बाजार से सम्पूर्ण पूर्ति नहीं उठा लेते।"

कीमत के माध्यम से ही वस्तु का राशन एक समयावधि में (over a period of time) किया जाता है। इसमें सट्टे का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

(4) साधनो का पूर्ण प्रयोग (Full Utilization or Employment of Resources)

पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखने के लिए पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था 'कीमत-प्रणाली' पर ही निर्भर करती है। रोजगार के लिए पूंजी का विनियोग महत्त्वपूर्ण है। बचतें पूंजी-निर्माण तथा विनियोग के लिए आवश्यक है। बचत तथा विनियोग के बीच समायोजन (adjustment) के लिए स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था ब्याज की दर में परिवर्तनों पर निर्भर करती है। यदि समय विशेष मे कुल बचतें अधिक है पूंजी की माग (अर्थात् विनियोग) से, तो ब्याज की दर घटेगी और वह घटती जायेगी जब तक कि सभी प्राप्य बचतें (available savings) विनियोग मे न लग जायें।

परन्तु यह दिखाया जा सकता है कि ब्याज दरों मे कमी सदैव बचत और विनियोग मे बराबरी स्थापित नही करती है। साधनो के 'पूर्ण रोजगार' या 'पूर्ण प्रयोग' की समस्या को हल करने की दृष्टि से स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था पर भरोसा नही किया जा सकता है। इसके लिए मौद्रिक तथा राज-कोषीय (fiscal) नियन्त्रणों (controls) की आवश्यकता होगी जो कि अर्थ-व्यवस्था के सदस्यों के स्वतन्त्र निर्णयों को, बिना केन्द्रीय योजना के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के, अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेंगे।[39]

---

[38] "Society, through the government, may levy progressive income taxes and make expenditures for welfare purposes. It may subsidize low-income groups in various ways."

[39] "It can be shown that reductions of interest rates do not always lead to the equalizing of saving and investment Therefore, the free enterprise economy cannot be relied upon to solve the problem of "full use', or 'full employment' of resources. It needs monetary and fiscal controls which influence the free decisions of its members indirectly, without direct interference through a central plan."

(5) आर्थिक अनुरक्षण, विकास तथा लोच (Maintenance, Growth and Flexibility)

एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन-यन्त्र (productive apparatus) का अनुरक्षण तथा विकास करने का कार्य भी 'कीमत प्रणाली' करती है। प्रयोग में भुगत जाने वाले (used-up) पूंजीगत यन्त्रों को प्रतिस्थापित (replace) करने के लिए अन्तिम वस्तु (final product) की लागत में घिसायी-व्यय (depreciation charges) को शामिल कर लिया जाता है और इस प्रकार वस्तुओं की कीमत में घिसायी-व्यय शामिल होता है। जब मशीन या पूंजीगत यन्त्र घिसकर बिलकुल बेकार हो जाते है तो घिसायी-कोष (depreciation fund) से धन राशि निकाल कर उनको प्रतिस्थापित कर लिया जाता है। इस प्रकार स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था अपने उत्पादन-यन्त्र का अनुरक्षण (maintenance) करती है।

एक अर्थ-व्यवस्था की उत्पादन क्षमता (productive capacity) में विकास तथा वर्द्धन (growth) के लिए तकनीकी सुधारो तथा पूंजी-संचय की आवश्यकता है और पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में इनके लिए 'स्पर्द्धात्मक कीमत व्यवस्था' एक बहुत उपयुक्त तथा फलदायक वातावरण प्रदान करती है।

श्रम-शक्ति (labour force) एक अर्थ-व्यवस्था के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है, एक स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में अधिक ऊंची दक्षता वाले व अधिक उत्पादक कार्यों के लिए श्रमिको को ऊंचे प्रतिफल या कीमतें प्राप्त होगी, इन ऊंची कीमतो से प्रेरित होकर वे अपनी दक्षता में विकास या सुधार, प्रशिक्षण तथा शिक्षा की सुविधाओ के अनुसार, करने का प्रयत्न करेंगे और इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था के विकास में अधिक सहयोग देंगे।

स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में साहसी आर्थिक वर्द्धन या विकास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन तथा सयोजक (coordinator) है। स्पर्द्धा (competition) साहसियो को नयी तकनीको को प्रयोग करने के अवसर प्रदान करती है, जो साहसी लागत कम करने वाली तकनीको के प्रयोग में सफल हो जाते हैं, वे अपने प्रतियोगियों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, दूसरे शब्दो में, अधिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा साहसियों को नयी तकनीको को प्रयोग करने को प्रेरित करती है। दीर्घकाल में अन्य साहसियो (या फर्मों) को लागत कम करने वाली तकनीको का प्रयोग करना पडेगा नही तो उन्हे हानि होगी और वे प्रतियोगिता में नहीं टिक सकेंगी। इस प्रकार स्पर्द्धात्मक कीमत प्रणाली तकनीकी सुधारो के उद्योग में एक फर्म से अन्य सभी फर्मों तक ले जाती है।[40]

आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति (technological advance) के लिए अधिकाधिक मात्रा में पूंजी या पूंजीगत वस्तुओ की आवश्यकता होती है। एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन में वृद्धि दो प्रकार से की जाती है (i) साहसी, जो कि लाभ के रूप में आय प्राप्त करता है, अपनी आय का एक भाग पूंजीगत वस्तुओ के संचय (accumulation) में लगा सकता है। ऐसा करने से उसको और अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है, यदि उसका आविष्कार या नव-प्रवर्तन (innovation) सफल हो जाता है। (ii) इसके अतिरिक्त साहसी ब्याज पर अन्य लोगो से द्रव्य उधार लेकर पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन में लगा सकता है। दूसरे शब्दो में, एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में ब्याज की दर पूंजी के स्वामियों को अपनी पूंजी को बनाये रखने या उसमें वृद्धि करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है।[41]

वास्तव में आर्थिक अनुरक्षण (maintenance) तथा विकास के सम्बन्ध में कीमत-यन्त्र का महत्त्व बहुत स्पष्ट नहीं है। लाभ की प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य बाते भी उत्पादन की नयी रीतियो

---

[40] It is in this way that the competitive price system communicates the technological improvements of one firm to all other firms in the industry.

[41] In a free-enterprise economy, the interest rate provides an incentive for owners of capital to maintain their capital or to add to it.

की खोज को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास में सहयोग देती है।[42] परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्पादन की तकनीकों के अधिकांश सुधार अधिक लाभ की खोज के प्रत्यक्ष परिणाम हैं।[43]

निष्कर्ष (Conclusion)

1. एक आर्थिक प्रणाली के पांचों आधारभूत कार्यों को एक पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में 'कीमत-यन्त्र' पूरा करता है। इन पांचों कार्यों को पूरा करने में कीमतें तीन बातें करती हैं। "वे सूचना (information) को प्रभावपूर्वक तथा कुशलतापूर्वक पहुंचाती हैं; इस सूचना से निर्देशित (guide) होने के लिए वे साधनों के प्रयोग करने वालों के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं; तथा साधनों के स्वामियों के लिए वे इस सूचना पर चलने के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं।"[44]

2. कीमत-प्रणाली एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया (complex process or device) है, व्यवहार में इसका कार्यकरण इतना सरल नहीं है जैसा कि उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है।

3. कीमत-प्रणाली का कार्यकरण 'पूर्ण प्रतियोगिता' पर आधारित है जबकि व्यवहार में पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है। अतः कीमत प्रणाली के 'सैद्धान्तिक कार्यकरण' (theoretical working) तथा 'व्यावहारिक कार्यकरण' (practical working) में अन्तर रहता है; अर्थात् व्यवहार में कीमत-प्रणाली के कार्यकरण में कुछ अपूर्णताएं रह जाती हैं जिनके सुधार के लिए, एक सीमित मात्रा में, सरकार का हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।

4. कीमत-प्रणाली अवैयक्तिक (impersonal) होती है, इसका कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं होता है। अतः कीमत प्रणाली का कार्यकरण कुछ अनुचित परिणामों, जैसे धन व सम्पत्ति का असमान वितरण, को जन्म देता है। अतः सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से इसका सुधार तथा नियमन (regulation), एक सीमित मात्रा में तथा अप्रत्यक्ष रूप से, आवश्यक हो जाता है।

आर्थिक क्रिया का चक्राकार प्रवाह
(THE CIRCULAR FLOW OF ECONOMIC ACTIVITY)

एक आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्य एक साथ (simultaneously) होते हैं तथा परस्पर निर्भर (interdependent) होते हैं। एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में इन कार्यों की पारस्परिक निर्भरता को 'चक्राकार प्रवाह' (Circular Flow) द्वारा स्पष्ट करते हैं। 'आर्थिक क्रिया के चक्राकार प्रवाह' का अध्ययन हम तीन अवस्थाओं (phases) में करेंगे—(i) वास्तविक प्रवाह (Real Flows), (ii) मौद्रिक प्रवाह ((Money Flows), तथा (iii) वास्तविक प्रवाह, मौद्रिक प्रवाह और बाजार (Real Flows, Money Flows and Markets)।

वास्तविक प्रवाह (Real Flows)

एक अर्थ-व्यवस्था में दो मुख्य इकाइयां (units) या कार्यकर्ता (agents) होते है— (i) परिवार (households), तथा (ii) व्यावसायिक फर्म (business or business firms)। स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में व्यक्तियों या परिवारों का साधनों (resources) पर स्वामित्व होता है

---

42 "आविष्कारों और सुधारों की खोज के पीछे जो उद्देश्य होते है, उनको मालूम करना सदैव आसान नहीं होता है। आविष्कारक इसलिए भी आविष्कार कर सकता है कि उसे इस तरह की क्रिया रुचिप्रद लगती है। बहुधा तकनीकों के सुधार ऐसी विद्वत्ता के परिणाम (by-product of scholarship) होते है जिनका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान को आगे बढ़ाना होता है।"

43 "However, a large part of the improvements in productive techniques is a direct result of the quest for profit."

44 Prices do three kinds of things in performing the five fundamental functions of an economic system. "They transmit information effectively and efficiently, they provide an incentive to users of resources to be guided by this information, and they provide an incentive to owners of resources to follow this information."

और वे साधनो के पूर्तिकर्ता होते है। व्यावसायिक फर्में साधनों की मांग करती हैं क्योंकि उनकी सहायता से वे उन वस्तुओ तथा सेवाओ का उत्पादन करती है जिनकी परिवारों को आवश्यकता होती है।

माना कि अर्थ-व्यवस्था मे द्रव्य का प्रयोग नही हो रहा है, अर्थात् हम 'वस्तु-विनियम की अर्थ-व्यवस्था' (Barter Economy) की मान्यता लेकर चलते हैं। परिवार अपने साधनो की पूर्ति व्यावसायिक फर्मों को करते है जैसा कि चित्र 5 का ऊपर का भाग दिखाता है। परिवार अपने साधन की पूर्ति के बदले मे व्यावसायिक फर्मों से वास्तविक वस्तुओ तथा सेवाओ को प्राप्त करते है जैसा कि चित्र 5 का नीचे का भाग बताता है। मुद्रा के प्रयोग के अभाव मे विनिमय
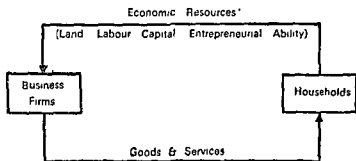
चित्र 5—वास्तविक प्रवाह (Real Flows)

(exchange) की समस्याए होती है, परन्तु यह सरल चित्र 'मुख्य वास्तविक प्रवाहों' अर्थात् साधनो का प्रवाह तथा वस्तुओ और सेवाओ के प्रवाह को स्पष्ट करता है।

मौद्रिक प्रवाह (Money Flows)

वस्तु-विनिमय की कठिनाइयो से बचने के लिए आधुनिक युग मे सभी अर्थ-व्यवस्थाएं मुद्रा का प्रयोग करती है। मुद्रा विनिमय का माध्यम है और वह परिवारो तथा व्यावसायिक फर्मों के बीच लेन-देन (transactions) को आसान बनाता है।

चित्र 6 में ऊपर के भाग में, (i) दायें से बायें को जाने वाला तीर साधनों के 'वास्तविक

Cost of Production
Money Income
Households Income
(Wages Rents, Interest, Profits)
Economic Resources (Real Flows)
(Land Labour, Capital Entrepreneurial Ability)
Business Firms
Households
Goods & Services (Real Flows)
Consumption Expenditure
Business Receipts or Revenues
Cost of Living
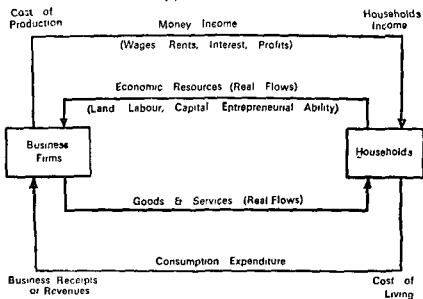
चित्र 6—मौद्रिक प्रवाह (Money Flows)

प्रवाह' को बताता है तथा (ii) बायें से दायें को जाने वाला तीर मजदूरी, लगान, ब्याज और लाभ के रूप में आय के मौद्रिक भुगतानों को बताता है। ये मौद्रिक भुगतान व्यावसायिक फर्म साधनों के प्रयोग के बदले में परिवारों को देती हैं और फर्मों के लिए ये लागतें होती हैं।[45]

अपने साधनों के बदले में परिवारों को जो मौद्रिक आयें प्राप्त होती है उन्हें वे वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने में व्यय करते हैं। चित्र 6 में नीचे के भाग में, (i) दायें से बायें को जाने वाला तीर परिवारों द्वारा उपभोग पर व्यय के प्रवाह (flow of consumption expenditure) को बताता है; तथा (ii) बायें से दायें को जाने वाला तीर व्यावसायिक फर्मों द्वारा उपभोक्ताओं या परिवारों को वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह (flow of goods and services) को बताता है। उपभोग पर व्यय का प्रवाह परिवारों के रहन-सहन की लागत (cost of living) है तथा फर्मों के लिए आय या आगम (receipts or revenues) है।

वास्तविक प्रवाह, मौद्रिक प्रवाह तथा बाजार (Real Flows, Money Flows and Markets)

पूंजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में वास्तविक तथा मौद्रिक प्रवाह दो बाजारों—'साधन बाजार' (resources markets) तथा 'वस्तु बाजार' (product markets)—के माध्यम से गुजरते हैं। चित्र 7 के ऊपर के भाग में 'साधन' तथा 'मौद्रिक आय' साधन-बाजार से गुजरते
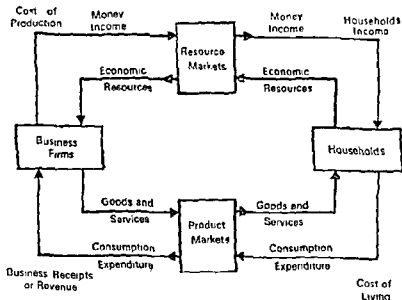
चित्र 7—वास्तविक प्रवाह, मौद्रिक प्रवाह तथा बाजार
(Real Flows, Money Flows, and Markets)

---

[45] यह ध्यान देने की बात है कि लाभ को भी फर्म की लागत में शामिल किया गया है; यहाँ लाभ का अर्थ 'सामान्य लाभ' (normal profit) से है जो कि अर्थशास्त्रियों के अनुसार लागत का अंग होता है। अर्थशास्त्र में 'सामान्य लाभ' का अर्थ लाभ के उस न्यूनतम स्तर से होता है जो कि एक साहसी को व्यवसाय विशेष में बनाये रखने के लिए आवश्यक है। यदि साहसी को 'लाभ का यह न्यूनतम स्तर' (अर्थात् सामान्य लाभ) प्राप्त नहीं होता है तो वह व्यवसाय विशेष में साहसी का कार्य नहीं करेगा और वह किसी दूसरे व्यवसाय में चला जायेगा। अत: व्यवसाय विशेष में साहसी को बनाये रखने की लागत ही सामान्य लाभ है। सामान्य लाभ साहसी का न्यूनतम पूर्ति मूल्य या अवसर लागत है।

हैं। साधन-बाजार मे परिवार निश्चित कीमतों पर अपने साधनो की पूर्ति करते है और इनके बदले मे वे व्यावसायिक फर्मों से मौद्रिक आय प्राप्त करते हैं क्योकि फर्म साधनो की माग करती है और उन्हे खरीदती है। स्पष्ट है कि साधन बाजार से गुजरने वाली जो मौद्रिक आय परिवारो को प्राप्त होती है वह परिवारो द्वारा विभिन्न साधनो की पूर्ति की मात्राओ तथा उनकी कीमतो पर निर्भर करेगी। चित्र 7 के नीचे के भाग में, 'उपभोक्ताओ के व्यय' तथा 'वस्तु और सेवाएँ' वस्तु-बाजारो से गुजरती हैं। 'उपभोग-व्यय के प्रवाह' (flows of consumption expenditure) निर्भर करेंगे खरीदी जाने वाली वस्तुओ और सेवाओं की मात्राओ तथा उनकी कीमतो पर।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक पूजीवादी या स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था मे दो मुख्य बाजार होते है—'साधन बाजार' तथा 'वस्तु बाजार'। साधन बाजारो मे व्यावसायिक फर्में मांग पक्ष मे होगी और वे साधनो की माग करती है, एव परिवार पूर्ति पक्ष मे होते हैं और वे अपने साधनों की पूर्ति करते है। वस्तु बाजारो मे स्थिति उल्टी हो जाती है। वस्तु बाजारो मे परिवार माग पक्ष में होते है और वे वस्तुओं तथा सेवाओ की माग करते है, एव व्यावसायिक फर्में पूर्ति पक्ष मे होती हैं और वे वस्तुओ तथा सेवाओ की पूर्ति करती हैं।

परिशिष्ट 2 (APPENDIX)

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों का सम्पादन : एक सामान्य विवेचन
(PERFORMANCE OF ECONOMIC FUNCTIONS UNDER A SOCIALIST ECONOMY : A BROAD TREATMENT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली (चाहे वह पूजीवाद हो या समाजवाद) को एक अर्थ-व्यवस्था के आधार-भूत कार्यों का सम्पादन करना पडता है। एक अर्थ-व्यवस्था के मुख्य आर्थिक कार्य हैं: (i) 'क्या' (What) उत्पादन होगा? दूसरे शब्दो मे, किन वस्तुओ का (और उनका किन मात्राओ में) उत्पादन किया जायेगा? (ii) 'किस प्रकार से' (How) वस्तुओ का उत्पादन किया जायेगा? दूसरे शब्दो में किन रीतियो द्वारा वस्तुओं का उत्पादन होगा? (iii) 'किसके लिए' (For Whom) वस्तुओं का उत्पादन किया जायेगा? दूसरे शब्दो मे, किस प्रकार से वस्तुओ (अथवा आयो) का वितरण किया जायेगा? (iv) साधनो का पूर्ण प्रयोग या पूर्ण रोजगार प्राप्त करना होगा। [दूसरे शब्दो मे, 'किसके द्वारा' (By whom) वस्तुओ का उत्पादन किया जायेगा?] (v) आर्थिक अनुरक्षण (maintenance), विकास तथा लोच को प्राप्त करना होगा।

अब हम इस बात का विवेचन करेंगे कि एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था उपर्युक्त आधारभूत कार्यों का किस प्रकार सम्पादन करती है। इसको बताने से पहले यह उचित होगा कि हम एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के ढाचे (framework), अर्थात् उसकी मुख्य विशेषताओं, का संक्षेप मे पुन. स्मरण (brief review) कर लें।

2. एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का ढांचा (The Framework of a Socialist Economy)

एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं: (i) अश्रम उत्पत्ति के साधनो (nonlabour means of production) जैसे भूमि तथा पूजी, पर सरकार या समाज का स्वामित्व होता है। (ii) उत्पादक उपक्रमो (productive enterprises) का सरकार द्वारा संचालन किया जाता है। (iii) उत्पादक उपक्रमो के लिए लाभ को अधिकतम करना मार्गप्रदर्शक-शक्ति (guiding motive) नही होती। (iv) सरकार या राज्य द्वारा केन्द्रीकृत नियोजन (centralised planning)।

उपर्युक्त विशेषताएं पूंजीवाद की मुख्य विशेषताओं को समाप्त कर देती है। पहली विशेषता 'निजी सम्पत्ति' को समाप्त कर देती है। दूसरी विशेषता (और साथ में तीसरी विशेषता भी) 'स्वतंत्र उपक्रम' (free enterprise) तथा ठेके (contact) की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देती है। दूसरी विशेषता (और साथ में चौथी भी) उपभोक्ताओं के चुनाव की स्वतन्त्रता तथा प्रभुता (sovereignty) को समाप्त कर देती है। एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में 'सरकार या राज्य नियोजन सत्ता' (State Planning Authority) लोगों को साधनों की पूर्ति करने, वस्तुओं के उत्पादन करने तथा कुछ प्रकार की वस्तुओं के उपभोग करने के लिए 'आदेश' (Orders or Commands) देती है, अत: एक 'समाजवादी अर्थ-व्यवस्था' को 'आदेश अर्थव्यवस्था' (Command Economy) भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, रूस की अर्थ-व्यवस्था एक 'आदेश अर्थ-व्यवस्था' या साम्यवादी (communist) अर्थ-व्यवस्था है।]

3. **एक समाजवादी या आदेश-अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों का सम्पादन (Performance of Economic Functions Under a Socialist or a Command Economy)**

एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार या 'केन्द्रीय नियोजन सत्ता' (Central Planning Authority) यह निर्धारित करती है कि किन वस्तुओं का उत्पादन करना है व कितनी मात्रा में करना है तथा किन रीतियों (methods) द्वारा करना है। विभिन्न व्यक्तियों में उत्पादन व आय के वितरण, तथा साधनों के रोजगार (या प्रयोग) व अर्थ-व्यवस्था के विकास (growth) के सम्बन्ध में निर्णय भी सरकार या नियोजन सत्ता द्वारा ही लिया जाता है। दूसरे शब्दों में, केन्द्रीय नियोजन सत्ता विभिन्न प्रयोगों में साधनों के बटन (allocation) का निर्धारण करती है।

अब हम एक समाजवादी या आदेश अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों के सम्पादन के बारे में एक मोटी रूपरेखा (broad outline) प्रस्तुत करते हैं।

(i) **वस्तुओं के उत्पादन का निर्धारण** (Deciding Output of Commodities)—समाजवाद के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन व उनकी मात्राओं का निर्धारण सरकार या केन्द्रीय नियोजन बोर्ड द्वारा किया जाता है; वास्तव में विभिन्न स्तरों पर कई नियोजन बोर्ड होते हैं, परन्तु ये सब केन्द्रीय नियोजन बोर्ड के अन्तर्गत कार्य करते हैं। यह विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय लेने की शक्ति सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता (जिसमें थोड़े से व्यक्ति होते हैं) के हाथों में होती है। केन्द्रीय सत्ता उत्पादन के ऐसे लक्ष्यों (goals) का निर्धारण कर सकती है जो कि समाज के व्यक्तिगत सदस्यों की इच्छाओं या पसन्दों के विपरीत हों; प्रायः ऐसा होता है।

केन्द्रीय सत्ता यह भी निर्धारित करती है कि कुल उत्पादन में से कितना उपभोग-वस्तुओं (consumption goods) तथा कितना पूंजीगत वस्तुओं (capital goods) का उत्पादन होगा; और इस प्रकार केन्द्रीय सत्ता भविष्य में आर्थिक विकास की दर को निर्धारित करती है।

(ii) **साधनों के प्रयोग व उनके बंटन** (allocation) **का, तथा उत्पादन की रीतियों या तकनीकों का निर्धारण** (Deciding the Use and Allocation of Resources, and the Methods or Techniques of Production)—वस्तुओं के सामूहिक रूप से उत्पादन के निर्णय के बाद, केन्द्रीय नियोजन सत्ता उत्पादन क्रिया के समन्वय (coordination) की एक विस्तृत योजना बनाती है, केन्द्रीय सत्ता यह देखती है कि साधन अप्रयुक्त या बेरोजगार न रह जाये, यह सत्ता पूर्व-निर्धारित उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, विभिन्न फर्मों तथा उद्योगों में साधनों का बटन (allocation) करती है।

यह सब कैसे किया जाता है? समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत साधनों के बटन के लिए दो मुख्य रीतियां बतायी जाती हैं—

(1) भूल और जाच की रीति (Trial and Error Method)

(2) इनपुट-आउटपुट नियोजन रीति (Input-Output Planning Method)

[नोट—इन रीतियों का विवरण आगे अलग से दिया गया है।]

(iii) **उत्पादन या आय के वितरण का निर्धारण** (Deciding the Distribution of Output or Income)—अब हम इस प्रश्न को लेते है कि एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन (या आय) का वितरण कैसे होता है। इसका निर्धारण भी सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता करती है। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे आय के वितरण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बाते प्रकाश डालती हैं—

(अ) चूकि उत्पादक साधनो पर सरकार का स्वामित्व होता है, इसलिए समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तियो द्वारा ब्याज, लगान तथा लाभ प्राप्त करने का प्रश्न ही नही उठता, दूसरे शब्दो मे, प्रत्यक्ष रूप से ब्याज, लगान तथा लाभ का अस्तित्व (existence) नही होता और इसलिए, ये आय के वितरण को प्रभावित नही करते।

इस प्रकार समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आय का वितरण, सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा लिये गये निर्णयो के अनुसार, व्यक्तियो को केवल वेतन व मजदूरी के भुगतानो का रूप ले लेता है। समाजवादी (या सरकारी) उपक्रम (enterprises) वस्तुओ के विक्रय के द्वारा द्राव्यिक आय प्राप्त करते है। केन्द्रीय नियोजन सत्ता यह निर्धारित करती है कि इस द्राव्यिक आय में से कितना हिस्सा श्रमिको तथा व्यक्तियो मे बाटा जाये। इस द्राव्यिक आय मे से सरकार, पूजीगत वस्तुओ की व्यवस्था (अर्थात् आर्थिक विकास), प्रतिरक्षा-उद्देश्यो तथा अन्य सामाजिक उद्देश्यो के लिए, जितना हिस्सा आवश्यक समझती है अपने पास रख सकती है। इसके अतिरिक्त, श्रमिको को आय के रूप मे जो भुगतान किया जाता है, उसमे से भी सरकार एक हिस्सा करो (अर्थात् विक्रय-करो turnover taxes), के रूप मे वापस ले सकती है, [turnover taxes एक प्रकार के अप्रत्यक्ष कर होते हैं जो कि समाजवादी देश वस्तुओ की पूर्ति व माग मे सन्तुलन स्थापित करने, तथा व्यक्तियो से आय का एक हिस्सा वापस लेने के लिए प्रयोग करते हैं।] अत समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादक साधनो पर स्वामित्व होने और उत्पादक उपक्रमो का सचालन करने के कारण, सरकार इस स्थिति में होती है कि राष्ट्रीय आय के उस हिस्से को, जिसका कि व्यक्तियो मे वितरण किया जाता है, प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित (control) कर सकती है।

(ब) श्रमिको को जो पुरस्कार (reward) या मजदूरी दी जाती है वह आवश्यक रूप से उनकी उत्पादकता के अंश (productivity contribution) पर निर्भर नही करती है (जैसा कि पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे प्राय होता है)। समाजवादी नियम है—"प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार लिया जाना चाहिए, तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाना चाहिए" (From each according to his ability, to each according to his needs.) परन्तु, व्यवहार मे, एक व्यक्ति या श्रमिक की मजदूरी सीधे रूप से उसकी उत्पादकता या सामाजिक अशदान (social contribution) के साथ परिवर्तित होती है।

(iv) **आय का वितरण तथा प्रेरणाएं** (Distribution of Income and Incentives)—पूजीवाद के अन्तर्गत साधनो को प्राप्त होने वाले पुरस्कार साधनो के लिए आर्थिक क्रिया करने हेतु प्रेरणा का कार्य करते है। दूसरे शब्दो मे, पूजीवाद के अन्तर्गत निजी-स्वार्थ, ऊचे पुरस्कार, तथा लाभ उद्देश्य कडी मेहनत करने के लिए प्रेरणा देते हैं। सक्षेप मे, साधनो के पुरस्कार तथा आर्थिक क्रियाओ के लिए प्रेरणाओ के बीच घनिष्ट व सीधा सम्बन्ध होता है।

परन्तु समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रेरणाओ के सम्बन्ध मे स्थिति भिन्न होती है, क्योकि उत्पत्ति के साधनो पर निजी स्वामित्व नही होता, निजी उपक्रम (private enterprise) बहुत ही कम या ना के बराबर होता है, और लगभग कोई बेरोजगारी नही होती है। अत एक समाजवादी

अर्थ-व्यवस्था प्रेरणाओं के लिए निजी स्वार्थ तथा निजी लाभ उद्देश्य पर निर्भर नहीं करती हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था में निम्न प्रकार की प्रेरणाओं की व्यवस्था होती है :

(अ) नैतिक प्रेरणाएं (Moral Incentives)—ये प्रेरणाएं निर्भर करती है—श्रमिकों के अपने कार्य में दिलचस्पी, अपने कार्य के करने में संतुष्टि व गौरव और उनके द्वारा सामाजिक कल्याण के प्रति अपने अंशदान के सम्बन्ध में सामाजिक जागरूकता (social consciousness), इत्यादि पर। इन नैतिक प्रेरणाओं को उभारने के लिए राजनीतिक अपीलों व नारों, फैक्ट्रियों में अच्छे श्रमिकों के लिए 'आदर की पुस्तकों' (books of honour) की व्यवस्था, मेडलों (medals) की व्यवस्था, इत्यादि का सहारा लिया जाता है। इन बातों से श्रमिकों को कड़ी मेहनत करने के लिए प्रेरणाएं दी जाती है।

(ब) मौद्रिक प्रेरणाएं (Monetary or Material Incentives)—ये प्रेरणाएं श्रमिकों की धन (या द्रव्य) सम्बन्धी इच्छाओं पर आधारित होती हैं। इनके अन्तर्गत श्रमिकों के कार्य की मात्रा व उसकी किस्म के अनुसार श्रमिकों को द्रव्य या वस्तुओं के रूप में पुरस्कार दिये जाते हैं। अच्छे व कुशल व्यक्तियों व श्रमिकों के वेतनों व मजदूरियों में अन्तर कर दिया जाता है। 'विशेष प्रेरणा फण्डों' (special incentive funds) में से व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूहों को बोनस या आर्थिक लाभ प्रदान किये जाते हैं; [उपक्रमों के लाभों में से एक हिस्से को 'मौद्रिक प्रेरणाओं के फण्डों' (material incentive funds) में हस्तांतरण (transfer) करके 'प्रेरणा-फण्डों' का निर्माण किया जाता है।]

मार्क्स (तथा लेनिन का भी) यह विश्वास था कि पूंजीवाद के नष्ट हो जाने के बाद धीरे-धीरे 'नैतिक प्रेरणाएं' श्रमिकों को कड़ी मेहनत की ओर प्रेरित करने में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेंगी। मार्क्स के अनुसार, द्राव्यिक प्रेरणाएं असामाजिक (anti-social) होती हैं और वे पूंजीवाद की अवशेष (relics) हैं जो समय पाकर समाप्त हो जायेंगी। परन्तु रूस में समाजवाद के 50–60 साल के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यवहार में यह विचारधारा कार्य नहीं कर सकती। वास्तव में रूस तथा अन्य समाजवादी देशों में आधुनिक सुधारों में से 'मौद्रिक प्रेरणाओं' की व्यवस्था एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सुधार है।

(स) ऋणात्मक प्रेरणाएं (Negative Incentives)—कई दशाओं में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में श्रमिकों को कड़ी मेहनत करने के लिए विभिन्न प्रकार के दण्डों व डरों की व्यवस्था होती है तथा शक्ति का प्रयोग किया जाता है; श्रमिकों तथा व्यक्तियों को अधिक कार्य करने के लिए इस प्रकार की प्रेरणाओं को 'ऋणात्मक प्रेरणाएं' कहा जाता है। कम कार्य करने पर श्रमिकों को जेल भेजा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ समाजवादी देशों में श्रमिक के पास एक 'श्रमिक-पुस्तक' (labour book) होती है जिसमें श्रमिक की निजी योग्यताएं व उसके कार्यकरण का इतिहास होता है। फर्म या फैक्ट्री का सरकारी मैनेजर इस 'श्रमिक-पुस्तक' को अपने अधिकार में रखता है और बिना इसके कोई भी श्रमिक किसी नये उद्योग, फर्म या व्यवसाय में नौकरी प्राप्त नहीं कर सकता है। इस प्रकार से एक श्रमिक अपने कार्य को स्वेच्छा से ठीक उसी प्रकार से नहीं छोड़ सकता है जिस प्रकार कि सैनिक अपनी नौकरी या सेना या फौज से नहीं छोड़ सकता। यदि एक श्रमिक की कार्य कुशलता बहुत नीचे के स्तर पर है या समय पर वह अपना कार्य नहीं करता तो उसकी 'श्रमिक-पुस्तक' जब्त की जा सकती है, उसको दण्डित किया जा सकता है; उसको जेल भी भेजा जा सकता है।

एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक कार्यों के सम्पादन की एक मोटी रूप-रेखा उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होती है।

एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत साधनों का बंटन
(ALLOCATION OF RESOURCES UNDER A SOCIALIST ECONOMY)

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक कार्यों का सम्पादन करने में एक समाजवादी

अर्थ-व्यवस्था सीमित साधनों का बटन किस प्रकार करती है। दूसरे शब्दों में, एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था को किस प्रकार से सगठित किया जाये ताकि वह कुशलता (efficiency), न्यायसंगति (equity) तथा वर्धन (growth) के तेहरे कार्य (triple function) को सर्वोत्तम ढग से कर सके। इस सम्बन्ध में समाजवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से दो वैकल्पिक (alternative) रीतियां बतायी गई है—

1. **भूल और जांच की रीति**—'समाजवाद का कीमत-निर्देशित मॉडल' अथवा 'समाजवाद का विकेन्द्रित बाजार-माडल'। [*Trial and Error Method :* 'A Model of Price-Directed Socialism' Or 'Decentralised Market Model of Socialism']

2. **इनपुट-आउटपुट नियोजन रीति**—'समाजवाद का मात्रा-निर्देशित माडल' अथवा 'समाजवाद का केन्द्रित-नियोजन माडल'। [*Input-Output Planning Method :* 'A model of Quantity-Directed Socialism' or 'Centralised Planning Model of Socialism']

अब हम इनमे से प्रत्येक रीति का अलग-अलग थोड़ा विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते है।

भूल और जांच की रीति : समाजवाद का कीमत-निर्देशित माडल
(TRIAL AND ERROR METHOD) (A MODEL OF PRICE-DIRECTED SOCIALISM)

अथवा

समाजवाद का विकेन्द्रित बाजार-माडल
(DECENTRALISED MARKET-MODEL OF SOCIALISM)

1. प्राक्कथन (Introduction)

समाजवाद के अन्तर्गत साधनों के एक विवेकपूर्ण व कुशल बंटन (rational and efficient allocation) के संबंध में गम्भीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।[46] समाजवादी अर्थशास्त्री लॉगे तथा टेलर (Lange and Taylor) ने इन कठिनाइयों को हल करने का प्रयत्न किया—

1. लॉगे तथा टेलर के अनुसार यद्यपि समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है और स्पर्धात्मक बाजार की अनुपस्थिति होती है, परन्तु फिर भी समाजवादी अर्थव्यवस्था साधनों के कुशल बटन के लिए, पूजीवादी अर्थव्यवस्था की भांति, एक बाजार या कीमत व्यवस्था (market or price system) का प्रयोग कर सकती है। दूसरे शब्दों में, समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में 'लेखाकन कीमतों' (accounting prices) या 'कामचलाऊ मूल्याकनों' (provisional valuations) को निर्धारित किया जा सकता है,[47] और यह कार्य एक केन्द्रीय नियोजन बोर्ड (Central Planning Board, सक्षेप में, *CPB*) करेगा, कीमत व मात्राए 'भूल और जाच' (trial and error) के आधार पर निर्धारित की जा सकेंगी।

2. लॉगे का समाजवाद का माडल 'पूर्ण स्पर्धात्मक माडल' के सर्वोत्तम पक्षों (best aspects) को शामिल करने का प्रयत्न करता है और साथ ही साथ स्पर्धात्मक माडल की दो मुख्य

---

[46] प्रो. माइजेस (*Prof Mises*) के अनुसार एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत साधनों का विवेकपूर्ण बटन सम्भव नही है। साधनो पर राज्य या सरकार का स्वामित्व होने के कारण स्पर्धात्मक बाजार का अन्त हो जाता है जिससे साधनो की कीमतो का उचित व विवेकपूर्ण निर्धारण नही हो पाता, और इसलिए साधनो का बटन विवेकपूर्ण नही होता। सन् 1930–38 में दो विख्यात समाजवादी अर्थशास्त्री ओसकार लॉगे (Oskar Lange) तथा फ्रेड एम टेलर (Fred M. Taylor) ने मिलकर उपर्युक्त आक्रमण व आलोचना का जवाब दिया।

[47] परन्तु प्रो. मा[illegible] के अनुसार इस प्रकार की कीमतें (अर्थात् लेखाकन कीमतें) बिलकुल मन-मानी (arbitrary) होंगी।

कमजोरियों—पूर्ण स्पर्धा वास्तविक जीवन में कहीं मौजूद नहीं होती, तथा धन के असमान वितरण की प्रवृत्ति, को भी दूर करने का प्रयत्न करता है।[48]

3. लांगे का माडल इस विश्वास पर आधारित है कि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था ऐसी अर्थव्यवस्था होगी जिसमें केवल उत्पादन का ही समाजीकरण (socialisation) हो,[49] तथा जिसमें उपभोक्ताओं को इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि वे जिन वस्तुओं को चाहें खरीद सकते हैं, और उनको अपने व्यवसाय के चुनने में भी एक बड़ी सीमा तक स्वतन्त्रता रहती है। दूसरे शब्दों में, 'उपभोक्ता की सत्ता' (*consumer's sovereignty*) को मान्यता दी जाती है अर्थात् उपभोक्ताओं या व्यक्तियों की रुचियां उत्पादन को निर्देशित (guide) करती हैं और अन्त में वे साधनों के बंटन को निर्देशित करती है।[50]

4. यह माडल[51] साधनों के बटन के लिए स्पर्धात्मक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के नियमों (rules) का पालन करता है। परन्तु ध्यान रहे कि समाजवाद के इस माडल के अन्तर्गत समाजवादी उत्पादक इकाइयां, पूंजीवाद की भांति, आपस में एक दूसरे के साथ प्रतियोगिता नहीं करती हैं, और न ही वे लाभ-उद्देश्य से प्रेरित (motivate) होती हैं, वे तो केवल कुछ 'नियमों' का पालन करती हैं। इन नियमों का पालन करने से ही साधनों का कुशल व विवेकपूर्ण बटन हो जाता है।

2. भूल और जांच रीति के मुख्य अंग (The Essentials of the Trial and Error Method)

प्रो. लांगे, अपने तर्क को प्रो. टेलर के विश्लेषण पर आधारित करते हुए, यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि भूल और जांच की रीति द्वारा एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में लेखांकन कीमतों का निर्धारण लगभग उसी प्रकार से हो सकेगा जिस प्रकार से कि स्पर्धात्मक बाजार में कीमतों का निर्धारण होता है। भूल और जांच रीति के मुख्य अंग नीचे दिये गये हैं—

1. एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन बोर्ड बाजार के कामों का सम्पादन करता है। स्वतन्त्र बाजार के द्वारा कीमत निर्धारण के स्थान पर, केन्द्रीय नियोजन बोर्ड प्रत्येक वस्तु तथा उत्पत्ति के साधन की वर्तमान कीमत निर्धारित करता है। ये कीमतें उपभोक्ताओं और श्रम के

---

[48] केन्द्रीय नियोजन बोर्ड की स्थापना पहली कमी, अर्थात् पूर्ण स्पर्धा का वास्तविक जीवन में न पाया जाना, को दूर करती है, तथा अश्रम-साधनों (non-labour factors), जैसे भूमि व पूंजी, पर सरकार का स्वामित्व दूसरी कमी, अर्थात् धन के असमान वितरण होने की प्रवृत्ति को, दूर करता है।

[49] दूसरे शब्दों में केवल उत्पादन पर ही सरकार का स्वामित्व हो। छोटे पैमाने पर खेती तथा खुदरा (retail) व्यापार के क्षेत्रों में कुछ निजी स्वामित्व (some private ownership) की आज्ञा दी जाती है; परन्तु इससे समाजवादी अर्थव्यवस्था के सैद्धांतिक विवेचन में कोई कठिनाई नहीं होगी।

[50] "Lange's model is based on the belief that a socialist economy should be one in which production alone is socialised and consumers are free to purchase whatever goods they desire and they are also free to a great extent to choose the occupations they desire." In other words, consumer's sovereignty is recognised in the sense that consumers or individuals' preferences guide production, and ultimately also guide the allocation of resources.

[51] भूल और जांच की रीति समाजवादी ढांचे के अन्तर्गत साधनों के बटन के लिए कीमतों का प्रयोग करती है, इसलिए समाजवाद के ऐसे ढांचे या माडल को 'कीमत-निर्देशित माडल' (Price-Directed Model of Socialism) कहा जाता है। इस माडल में एक केन्द्रीय नियोजन बोर्ड द्वारा कीमत-निर्धारण तथा उसके सामान्य निरीक्षण के अन्तर्गत उत्पादक-मैनेजर 'विकेन्द्रित निर्णय' (decentralised decisions) लेते हैं (उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की कुशलतापूर्वक सन्तुष्टि के लिए), इसलिए इस माडल को 'समाजवाद का विकेन्द्रित बाजार माडल' (Decentralised Market Model of Socialism) भी कहा जाता है।

पूर्ति-कर्ताओ के लिए इस बात का निर्देशन (guidance) प्रदान करती है कि स्वतंत्र रूप से किन वस्तुओ का उपभोग किया जाये तथा किन व्यवसायो मे कार्य किया जाये। ये कीमतें प्रत्येक समाजवादी फर्म के मैनेजर के लिए इस बात के निर्णय मे भी सहायक होती है कि वे किन वस्तुओ का उत्पादन करें तथा उत्पादन क्रिया मे साधनो को किस अनुपात में (अर्थात् किस टेक्नोलोजी का) प्रयोग करें।

2. एक प्रश्न उठता है ये कीमतें कहाँ से आती है और कैसे निर्धारित होती हैं? क्या केन्द्रीय नियोजन बोर्ड शुरू मे पहली लेखाकन कीमतो को केवल विशुद्ध अनुमान या अन्दाज से निर्धारित करता है? इसका उत्तर 'ना' है। केन्द्रीय नियोजन बोर्ड पहले से चली आ रही कीमतों अर्थात् 'ऐतिहासिक रूप से' दी हुई कीमतो (historically given prices) से शुरू करेगा; (इसके बारे मे समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे या केन्द्रीय नियोजन बोर्ड के पास पर्याप्त जानकारी होती है।) ऐतिहासिक रूप से दी हुई कीमतो के निरन्तर समायोजन (adjustments) होते रहेंगे; और एक बिलकुल नये कीमत ढांचे को बनाने की आवश्यकता नही पड़ेगी।

3 किसी समय अवधि मे 'उचित' (right) लेखांकन कीमतों का निर्माण 'ऐतिहासिक रूप से दी गयी कीमतो' के समायोजनो के द्वारा होता है। दूसरे शब्दो में, 'उचित' लेखाकन कीमतों को मालूम करने मे माँगी जाने वाली मात्राओ तथा पूर्ति की जाने वाली मात्राओ पर ध्यान दिया जाता है; अथवा यह कहिए कि उचित लेखाकन कीमतो को मालूम करने की प्रक्रिया मे वस्तुओ के स्टाक (stocks or inventories) महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करते हैं। केन्द्रीय नियोजन बोर्ड किसी साधन या वस्तु की कीमत निर्धारण करने के बाद यदि यह देखता है कि माग अधिक है पूर्ति की तुलना में, तो वह कीमत को ऊंचा करेगा ताकि मांग और पूर्ति बराबर हो जायें अर्थात् उनमें संतुलन स्थापित हो जाये। इसी प्रकार वस्तु की लेखांकन कीमत निर्धारण करने के बाद केन्द्रीय नियोजन बोर्ड यह देखता है कि पूर्ति अधिक है माँग की तुलना में, तो वह कीमत को घटायेगा ताकि पूर्ति और माग बराबर हो जायें। **इस प्रकार केन्द्रीय नियोजन बोर्ड भूल और जांच की क्रियाओं की एक शृखला (series) द्वारा 'उचित लेखांकन कीमतों' या 'उचित संतुलन कीमतो' को मालूम कर लेता है जिन पर कि मांग और पूर्ति में संतुलन रहता है।** वास्तव मे इस प्रकार स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था में संतुलन कीमतें निर्धारित होती हैं। इस प्रकार की 'उचित सतुलन कीमतो' या 'उचित लेखाकन कीमतो' को मालूम कर लेना जरूरी है ताकि उत्पादको (या पूर्ति) के पक्ष पर साधनो का किसी प्रकार का दुरुपयोग व उनकी बर्बादी न हो, और न ही उपभोक्ताओ (या माग) के पक्ष पर आवश्यकताओ का गलत वितरण हो।[52]

4. समाज की भूमि के प्रयोग पर लगान का निर्धारण और फर्मों द्वारा अपनी उत्पादक-क्षमता बढाने के लिए द्राव्यिक पूजी के प्रयोग पर ब्याज का निर्धारण भी केन्द्रीय नियोजन बोर्ड का कार्य है। दोनों दशाओ में उद्देश्य यह होगा कि कीमत (अर्थात् लगान व ब्याज) इस प्रकार से निश्चित की जायें ताकि साधन-बाजार साफ (clear) हो जाये, अर्थात्, साधन की माग या पूर्ति किसी का भी आधिक्य न रहे, उनमें सतुलन रहे। पूजी-बाजार में इस प्रकार की गणना (calculation) जरूरी है, क्योंकि अल्पकाल मे पूजी के प्रयोग के सम्बन्ध में निर्णय दीर्घकाल मे इस बात को प्रभावित करेंगे कि पूंजी का कितना हिस्सा भविष्य मे विकास के लिए रखा जाये और कितना हिस्सा वर्तमान उपभोग में बाटा जाये।

5. प्रो. लागे के अनुसार समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे भूल और जाँच की रीति का प्रयोग ठीक उन्ही दशाओ के अन्तर्गत किया जायेगा जिन दशाओ के अन्तर्गत उसका प्रयोग पूजीवादी

---

[52] Thus, the determination of right accounting prices is necessary to avoid misallocation of resources and misdirection of production, and wrong distribution of wants

अर्थव्यवस्था में किया जाता है। पूंजीवाद में भूल और जांच की रीति का प्रयोग, प्रो. लांगे के शब्दों में, 'कीमतों के पेरामेट्रिक कार्य' (parametric functions of prices) पर आधारित होता है; अर्थात् इस बात पर आधारित होता है कि यद्यपि एक व्यक्तिगत उत्पादक को जिन कीमतों का सामना करना पड़ता है वे बाजार में सभी व्यक्तियों के (सामूहिक) निर्णयों का परिणाम होती हैं, परन्तु प्रत्येक उत्पादक या व्यक्ति वास्तविक बाजार कीमत को दिया हुआ मान ता है, अर्थात् प्रत्येक उत्पादक के लिए कीमत एक 'पैरामीटर' (parameter) है, अर्थात कीमत दी हुई है। इस दी हुई कीमत के अनुसार प्रत्येक उत्पादक अपनी उत्पादन की मात्रा को निर्धारित करता है।

प्रो. लांगे के अनुसार, स्पर्धात्मक पूंजीवाद की भांति समाजवाद में भी एक उचित व वस्तुगत (objective) कीमत ढांचा प्राप्त किया जा सकता है यदि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में 'कीमतों के पैरामेट्रिक कार्य' को बनाया रखा जा सके। एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन बोर्ड द्वारा ऊपर से कीमतों का पैरामेट्रिक कार्य एक लेखांकन नियम के रूप में निर्धारित कर दिया जायेगा और व्यक्तिगत प्लांट मैनेजरों के सभी निर्णय व सभी लेखांकन (accounting) इस बात को मानते हुए किये जायेंगे जैसे कि कीमतों पर व्यक्तिगत निर्णयों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरे शब्दों में, लेखांकन के उद्देश्य से प्लांट मैनेजर कीमतों को दिया हुआ मान लेंगे जैसा कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में (पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत) व्यक्तिगत उत्पादक कीमतों को दिया हुआ मान लेते हैं।[13]

6. भूल और जांच की रीति के कार्यकरण के लिए कुछ नियमों (certain rules) का कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए। ये नियम निम्नलिखित हैं

नियम 1. प्रत्येक मैनेजर ऐसी उत्पादन रीति को चुनेगा जो कि औसत लागत (Average Cost, i.e. AC) को न्यूनतम रखेगी।

नियम 2. प्रत्येक मैनेजर उत्पादन को इस प्रकार नियमित (regulate) करेगा जिससे कि सीमान्त लागत (Marginal Cost, i.e. MC) बराबर हो कीमत (Price or Average Revenue, i.e. AR) के; संक्षेप में, MC=AR (Price)

इन नियमों का पालन भूल और जांच के समायोजनों की एक शृंखला (series) को जन्म देता है। माना, एक फर्म का मैनेजर यह पाता है कि उसकी वस्तु की सीमान्त लागत (MC) कम है नियोजन बोर्ड द्वारा निर्धारित कीमत के, तो ऐसी स्थिति में वह अपनी वस्तु के उत्पादन को बढ़ायेगा जब तक कि MC=Price के हो जाये। इसके विपरीत यदि मैनेजर को यह मालूम होता है कि उसकी वस्तु की सीमान्त लागत (MC) अधिक है नियोजन बोर्ड द्वारा निर्धारित कीमत से, तो ऐसी स्थिति में वह अपनी वस्तु के उत्पादन को घटायेगा जब तक MC=Price के हो जाये। अतः इस प्रकार के भूल और जांच के समायोजनों द्वारा एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था 'स्पर्धात्मक सतुलन कीमत' (competitive equilibrium price) को प्राप्त करने के लिए कार्य करती है।

नियम 3. इन नियमों का पालन करते हुए भी यह सम्भव है कि फर्मों के पास, मांग की तुलना में, वस्तु विशेष की पूर्ति का आधिक्य (surplus) हो अथवा कमी (shortage) हो। अत. केन्द्रीय नियोजन बोर्ड को इस नियम का पालन करना होगा कि उसे किसी वस्तु की कीमत इस प्रकार से निर्धारित करनी चाहिए जिससे पूर्ति की जाने वाली मात्रा बराबर हो मांगी जाने वाली मात्रा के। वस्तु की कीमत को ऊंचा या नीचा करके, भूल और जांच की प्रक्रिया द्वारा, बोर्ड ऐसी कीमत निर्धारित कर सकेगा जिस पर वस्तु की मांग और पूर्ति में सतुलन हो जाय।

---

[13] "Under a socialist economy the parametric functions of prices would be imposed as an accounting rule, and all decisions and all accounting of individual plant managers would be made as if prices were independent of the decisions taken. For purposes of accounting, plant managers would treat prices as constant, just as they are treated by businessmen under competitive system."

यह ध्यान रहे कि नियम 3 केन्द्रीय नियोजन बोर्ड के लिए है, जबकि नियम 1 तथा 2 प्रत्येक प्लाट या फर्म के मैनेजर के लिए है। इन नियमों का पालन भूल और जांच के समायोजनों की एक शृंखला को जन्म देता है और अन्त में एक उचित कीमत निर्धारित हो जाती है जहां पर वस्तु की माग व पूर्ति बराबर हो जाती है। उपर्युक्त तीनों नियम एक समाजवादी अर्थव्यवस्था को अल्पकाल में उसी प्रकार से कार्य करने में सहायक होते हैं जिस प्रकार कि एक 'स्पर्धात्मक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था' कार्य करती है।

भूल और जाच की रीति को केवल समझने की दृष्टि से एक चित्र का प्रयोग किया जा सकता है। चित्र के प्रस्तुतीकरण (*diagramatic presentation*) को सरल बनाने के लिए हम निम्नलिखित मान्यताओं को लेकर चलते है—

(i) माना कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे किसी एक वस्तु, माना स्कूटर, का केवल एक उत्पादक है।[54]

(ii) यदि साधन-कीमतें तथा टेक्नोलोजी की दशा दी हुई है, तो किसी एक महीने या एक वर्ष के लिए इस स्कूटर-उत्पादक फर्म का मैनेजर स्कूटर की विभिन्न मात्राओं की कुल लागत को मोटे रूप में ज्ञात कर सकेगा।

(iii) चूंकि मैनेजर कुल लागत को जानता है, इसलिए वह सीमान्त लागत (की तालिका) को भी ज्ञात कर सकेगा और फर्म के सिद्धान्त के विश्लेषण से हम जानते हैं कि यह 'सीमान्त लागत तालिका' (marginal cost schedule) स्कूटर-उत्पादक फर्म की 'पूर्ति रेखा' को बतायेगी।

(iv) यह 'सीमान्त लागत रेखा' या 'पूर्ति रेखा' उद्योग की पूर्ति रेखा को भी बतायेगी, क्योंकि हम एक उत्पादक की मान्यता को लेकर चले है।

(v) विभिन्न व्यक्तियों की माग को जोडकर उद्योग की माग तालिका या माग रेखा को ज्ञात किया जा सकता है, ऐसा इसलिए सम्भव है कि 'उपभोक्ता की सत्ता' (consumer's sovereignty) को मान्यता दी जाती है।

अब हम चित्र 1 पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है जो कि भूल और जाँच की रीति की व्याख्या करता है। चित्र मे 'एक लेखाकन समय-अवधि' (a particular accounting period) के लिए DD-रेखा माँग रेखा को तथा SS-रेखा पूर्ति रेखा को बताती है।[55]

माना कि केन्द्रीय नियोजन बोर्ड, इसको आगे हम संक्षेप मे CPB कहेंगे,[56] शुरू मे स्कूटर की कीमत P_1 (या 4000 रु०) निर्धारित करता है। उपभोक्ताओं की रुचियों तथा उत्पादन-लागतों के समान रहने पर, चित्र 1 बताता है कि इस कीमत पर उपभोक्ता R (अर्थात् 300) स्कूटरों की माँग करते हैं जबकि उत्पादक-मैनेजर, नियम न 2 (अर्थात् Price = MC) का पालन करते हुए, M (अर्थात् 500 स्कूटरों) की पूर्ति करेगा। अत. इस 'लेखाकन समय-अवधि' (accounting period) के अन्त में उत्पादक-मैनेजर CPB को यह सूचना देगा कि उसके पास 200 स्कूटरों का अतिरेक (surplus) है।

यह महसूस करते हुए कि ऊँची कीमत निर्धारित हो गयी है, CPB स्कूटर की कीमत कम

---

[54] चूंकि, केवल नियमों का पालन करने से, सभी उत्पादक-मैनेजरों का व्यवहार उसी प्रकार का होना है जिस प्रकार कि पूर्ण प्रतियोगिता में एक उत्पादक का, इसलिए इस मान्यता के कारण विक्री-केन्द्रीयकरण (sales-concentration) की कोई समस्या नहीं होगी।

[55] यह नहीं भूलना चाहिए कि केन्द्रीय नियोजन बोर्ड को माँग तथा पूर्ति रेखाओं की स्थितियों की एक पूर्ण व निश्चित जानकारी नहीं होती। चित्र को 'भूल और जाँच की प्रक्रिया' को केवल समझने के लिए खींचा गया है।

[56] CPB का अर्थ है (Central Planning Board) अर्थात् केन्द्रीय नियोजन बोर्ड।
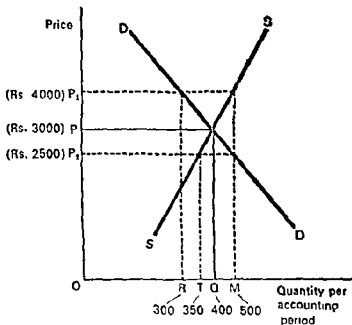
चित्र 1

करेगा; माना कि वह अगले लेखाकन समय-अवधि के लिए स्कूटर की कीमत घटा कर P_2 अर्थात् 2500 रु० कर देता है। चित्र 1 से स्पष्ट है कि इस कीमत पर उपभोक्ता 500 स्कूटर की मांग करते हैं जबकि फर्म का मैनेजर, नियम न. 2 का पालन करते हुए T अर्थात् 350 स्कूटरो की पूर्ति करने को तैयार है। [इस प्रकार मैनेजर को पता लगता है कि दूसरी समय-अवधि में वास्तव मे उसके द्वारा उत्पादित किये गये स्कूटरों की तुलना मे उपभोक्ताओं ने अधिक स्कूटर खरीदे, और स्कूटरों की अधिक मांग को पिछली समय-अवधि मे बचे हुए स्कूटरो के स्टाक में से पूरा किया गया।] फर्म का मैनेजर CPB को समस्त स्थिति की फिर सूचना देगा।

अब CPB स्कूटर की कीमत बढायेगा, माना कि वह स्कूटर की कीमत को बढ़ाकर P अर्थात् 3000 रु० कर देता है। चित्र 1 से स्पष्ट है कि इस कीमत पर स्कूटर की मांग तथा पूर्ति दोनों Q अर्थात 400 इकाई के बराबर हो जाती हैं।

इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकार या राज्य द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं के सम्बन्ध मे इस रीति, अर्थात् भूल और जांच की रीति, का प्रयोग 'कीमतों' या 'लेखाकन कीमतों' के निर्धारण में किया जा सकेगा। समस्त स्थिति को हम निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं—

> भूल और जांच की रीति या लांगे माडल के अन्तर्गत एक दृष्टि से, पूंजीवाद की भांति, प्रतियोगिता का खेल मौजूद रहता है, परन्तु थोड़ा अन्तर होता है। केन्द्रीय नियोजन बोर्ड बाजार के कार्यों को करता है, बोर्ड नियमों को स्थापित करता है। "समाजवादी उत्पादक इकाई वास्तव में एक दूसरे से प्रतियोगिता नहीं करती। मैनेजर लाभ बनाने का प्रयत्न नहीं करते (और शायद वे लाभ के बारे में सोचते भी नहीं है)—वे केवल नियमों का पालन करते है। परन्तु ये नियम, यदि इनका सही व निश्चित रूप से पालन किया जाता है, एक समाजवादी अर्थव्यवस्था को उतना

ही कुशल बना देंगे जितना कि एक पूजीवादी अर्थव्यवस्था (जिसमें एकाधिकार व अल्पाधिकार की अनुपस्थिति हो) कुशल होगी।"[57]

दूसरे शब्दों में, भूल और जाँच की रीति अथवा लांगे का समाजवादी माडल साधनो के कुशल बंटन के लिए 'प्रतियोगिता के खेल' को अर्थात् 'प्रतियोगिता के अच्छे परिणामों' को शामिल करने का प्रयत्न करता है, परन्तु साथ ही साथ वह पूजीवादी अर्थव्यवस्था की पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित नही है। इस प्रकार लांगे का माडल पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था के एक मुख्य दोष—पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता—को दूर करने का दावा करता है।

3. लांगे के समाजवाद माडल के अन्तर्गत आय-वितरण (Income Distribution Under Lange's Model of Socialism)

लांगे का माडल इस बात का भी दावा करता है कि वह पूजीवादी अर्थव्यवस्था की एक दूसरी मुख्य कमी को भी दूर करता है अर्थात् वह पूजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत 'धन के असमान वितरण' अथवा 'सामाजिक दृष्टि से धन के अवाछनीय वितरण', जो कि साधनो के प्राय असमान निजी स्वामित्व का परिणाम होता है, के दोष को भी दूर करता है।[58]

अब हम नीचे इस बात का विवरण देते है कि लांगे का माडल अथवा समाजवाद का विकेन्द्रित माडल धन के अधिक समान या न्यायुक्त वितरण को किस प्रकार प्राप्त करता है।[59]

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में ऐतिहासिक तथा वशगत (inherited) दशाओ के परिणाम-स्वरूप सम्पत्ति और धन के निजी स्वामित्व के अनुसार आय का वितरण नही होता बल्कि सामाजिक कल्याण के अधिकतम करने के आधार पर होता है। लांगे के अनुसार अधिकतम सामाजिक कल्याण तब प्राप्त किया जा सकता है जबकि आय-वितरण के लिए निम्नलिखित दो दशाएं पूरी हों—

1. आय का वितरण इस प्रकार का होना चाहिए ताकि विभिन्न उपभोक्ताओ द्वारा दी जाने वाली एक ही मांग-कीमत आवश्यकता की एक समान तीव्रता (urgency) को बताए। इस दशा की प्राप्ति तब होगी जबकि सभी उपभोक्ताओ के लिए आय की सीमान्त उपयोगिता समान हो; और इसका अभिप्राय है कि सभी उपभोक्ताओ की आय समान हो।[60]
2. चूंकि उपभोक्ता या व्यक्ति अपने व्यवसायो को चुनने में स्वतत्र होते है, इसलिए प्रत्येक श्रम (अथवा श्रम-सेवा) को उसकी सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) के बराबर भुगतान दिया जायेगा। श्रम-सेवाओ का विभिन्न व्यवसायों में इस प्रकार वितरण होना चाहिए ताकि विभिन्न व्यवसायो में श्रम की सीमान्त उत्पादकता के मूल्य में अन्तरो को

---

[57] "[illegible] socialist producing units do not really complete with one another. Managers do not try to make profits (or even think about profits)—they simply follow rules Yet these rules, *if followed exactly* will make a socialist economy as efficient as a capitalist economy would be if it were completely free from monopoly and oligopoly."

[58] Lange's model also claims to remove the second major weakness or defect of a capitalist economy that is, the inequitable, or socially undesirable distribution of income that often results from uneven private ownership of the means of production

[59] धन के अधिक समान या न्याययुक्त (equitable) वितरण की दृष्टि से समाजवादी अर्थ-व्यवस्था, पूजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना मे, श्रेष्ठता का दावा करती है।

[60] The distribution of income has to be such that the same demand price offered by different consumers represents an equal urgency of need This is attained *if the marginal utility of income is the same for all consumers*, and this implies that all consumers have the same income.

उन व्यवसायों से सम्बन्धित सीमान्त अनुपयोगिताओं के अन्तरों के बराबर किया जा सके।[61] विभिन्न उद्योगों तथा व्यवसायों में श्रम-सेवाओं के इस प्रकार के वितरण को 'श्रम-सेवाओं का अनुकूलतम वितरण' (*Optimum distribution of labour services*) कहा जाता है।

यदि प्रत्येक श्रम को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर भुगतान दिया जाता है तो दशा (condition) न० 2 की पूर्ति 'आय में अन्तरों' (income differentials) को जन्म देगी और यह बात दशा न० 1 के विरोध (conflict) में होगी जो कि 'समान आयों के होने की आवश्यकता' को बताती है। परन्तु इस प्रकार का विरोध केवल प्रकट रूप में (apparent) है, और यह विरोध समाप्त हो जाता है यदि श्रम की अनुपयोगिता (disutility)[62] को उसकी अवसर लागत (opportunity cost) समझा जाय। "एक व्यवसाय नीची द्राव्यिक आय प्रदान करता है परन्तु साथ ही साथ वह कम अनुपयोगिता भी प्रदान करता है, तो ऐसे व्यवसाय के चुनाव का अभिप्राय है कि आराम, सुरक्षा तथा कार्य की पसन्दगी को खरीदना, और इनको ऐसी कीमत पर खरीदना जो कि अन्तर बताती है इस विशेष व्यवसाय की आय तथा अन्य व्यवसायों की आय में।"[63]

उपर्युक्त विवेचन का अर्थ यह भी है कि असुखद (unpleasant) तथा जोखिम वाले व्यवसायों में व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए अधिक ऊँचे पुरस्कार देने होंगे। चूंकि सभी व्यक्तियों को अपने व्यवसाय के चुनाव करने में समान अवसर प्राप्त होते हैं, इसलिए समाजवादी अर्थव्यवस्था में अधिक प्रिय (interesting) तथा सुखद कार्यों (जैसे, इजीनियर, डाक्टर, वैज्ञानिक, इत्यादि के कार्य) में, जिनमें अपेक्षाकृत बहुत अधिक प्रशिक्षण की जरूरत होती है, मजदूरी के अन्तर उतने ऊँचे नहीं होंगे जितने कि एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में होंगे। ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि अधिक प्रतिभावान (talented) विद्यार्थी ऊँची मजदूरियों के कारण उन कार्यों में जाना पसन्द करें जिनके लिए वे कम योग्य (less qualified) है, यदि ऐसा होता है तो साधन श्रम का अनुचित या गलत बटन होगा। परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था में इसको इस प्रकार रोका जा सकता है। "एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में उच्चतम योग्यता वाले व्यक्तियों को निःशुल्क प्रशिक्षण (या ऊँचे वजीफे) देकर सरकार ऐसे व्यवसायों में प्रवेश करने की स्वतंत्रता को पर्याप्त रूप में बढ़ा सकती है और नीची मजदूरी दे सकती है।"[64]

अतः एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में उचित मजदूरी दरों का भुगतान होने के लिए उपर्युक्त दो दशाओं का पूरा होना जरूरी है, ऐसा होने से 'श्रम-सेवाओं का अनुकूलतम वितरण' होगा और आय का वितरण न्याययुक्त होगा। आय के न्याययुक्त वितरण (equitable distribution)

---

[61] Labour services must be distributed among different occupations so as "to make the differences of the value of the marginal product of labour in the various occupations equal to the differences in the marginal disutility involved in their pursuit."

[62] The disutility of a work may mean unpleasentness of the work, risk and unsafety connected with the work, etc. In other words, "By putting leisure, safety, agreeableness of work, etc., into the utility scale of individuals, the disutility of any occupation can be represented as opportunity cost."

[63] "The choice of an occupation offering a lower money income, but also a smaller disutility, may be interpreted as the purchase of leisure, safety, agreeableness of work, etc., at a price equal to the difference between money income earned in that particular occupation and in others."

[64] "In a socialist economy, the state could substantially increase freedom of entry into such occupations by providing free training (and/or scholarships) to those with the highest qualifications and pay lower wages."

के सम्बन्ध में लांगे ने 'सामाजिक लाभांश' (social dividend) पर भी विचार किया; सरकारी स्वामित्व वाले साधनों से प्राप्त प्रतिफल (returns) के आधार पर 'सामाजिक लाभांश' निकाला जाता है।

व्यक्तियों को व्यवसाय के चुनाव की स्वतंत्रता होती है, इसलिए सामाजिक लाभांश का वितरण श्रम-सेवाओं के अनुकूलतम वितरण को प्रभावित कर सकता है। यदि सरकार से कुछ व्यवसायों को अधिक सामाजिक लाभांश प्राप्त होता है अपेक्षाकृत अन्य व्यवसायों के, तो श्रम अधिक लाभांश प्राप्त करने वाले व्यवसायों में आकर्षित होकर जायेगा। इसलिए सामाजिक लाभांश का वितरण इस प्रकार होना चाहिए जिससे कि वह श्रम के अनुकूलतम वितरण में कोई भी परिवर्तन या हस्तक्षेप न करे। दूसरे शब्दों में,

> एक व्यक्ति को सामाजिक लाभांश का भुगतान इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि वह उसके व्यवसाय के चुनाव को बिलकुल प्रभावित न करे अर्थात् सामाजिक लाभांश का भुगतान किसी भी व्यक्ति के व्यवसाय के चुनाव के प्रति पूर्णतया स्वतंत्र हो। उदाहरणार्थ, सामाजिक लाभांश का जनसंख्या के प्रत्येक व्यक्ति के बीच समान वितरण किया जा सकता है, अथवा उसको व्यक्तियों की उम्र या परिवार के आकार के अनुसार बाँटा जा सकता है, या किसी अन्य सिद्धान्त के अनुसार बाँटा जा सकता है जो कि व्यवसाय के चुनाव को प्रभावित न करे।[65]

इस प्रकार समाजवादियों का कहना है कि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में, पूजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना में, आय की असमानताएँ बहुत कम होंगी और जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक कल्याण में अधिक वृद्धि होगी, इसके विपरीत, लांगे के अनुसार, पूजीवादी अर्थव्यवस्था में आय के वितरण का झुकाव सदैव धनी वर्ग के पक्ष में होता है।[66]

4. लांगे के समाजवादी माडल के अन्तर्गत विनियोग (Investment Under Lange's Model of Socialism)

लांगे का माडल मुख्यतया पूजीवादी अर्थव्यवस्था के दो बड़े दोषों—पूर्ण स्पर्धा की अवास्तविक मान्यता, तथा धन का असमान वितरण—को दूर करने का प्रयत्न करता है। इसके अतिरिक्त समाजवादियों का कथन है कि लांगे का माडल या समाजवाद का विकेन्द्रित माडल तेज, दीर्घकालीन तथा अ-चक्रीय (non-cyclical) आर्थिक विकास के लिए अधिक उपयुक्त है। आर्थिक विकास के लिए विनियोग महत्त्वपूर्ण होता है।

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में विनियोग पर अल्पकाल (short-period) तथा दीर्घकाल (long-period) की दृष्टि से विचार किया जाता है। अल्पकाल में पूजी की मात्रा या पूर्ति लगभग स्थिर मानी जाती है, और पूजी की इस पूर्ति तथा पूजी की माँग के बीच बराबरी ब्याज-दर द्वारा, भूल और जाँच की रीति के प्रयोग से, उसी प्रकार स्थापित की जाती है जिस प्रकार कि केन्द्रीय नियोजन बोर्ड (CPB) कीमतों के निर्धारण में भूल और जाँच की रीति का प्रयोग करता है। दूसरे शब्दों

---

[65] Social dividend should be paid to an individual in such a way so that it may not influence at all the choice of his occupation, that is, the distribution of social dividend must be entirely independent of an individual's choice of occupation "For instance, it can be divided equally per head of population or distributed according to age or size of family of any other principle which does not affect the choice of occupation."

[66] Thus, "Socialists argue that their system would lead to considerable less income disparities and, consequently, to a substantial increase in social welfare than if the economy were organised on a capitalist basis where the distribution of income, according to Lange, introduces a constant class bias in favour of the rich."

में, भूल और जाँच की रीति द्वारा CPB अल्पकाल में एक उचित ब्याज दर निर्धारित कर सकेगा जिस पर कि विनियोग के लिए पूजी की माँग व पूंजी की पूर्ति बराबर हो।[67]

परन्तु दीर्घकाल की दृष्टि विनियोग-निर्णयों के बारे में एक समाजवादी अर्थव्यवस्था मे, पूजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना मे, बहुत अन्तर होता है। एक पूजीवादी अर्थव्यवस्था में दीर्घकाल मे विनियोग की मात्रा इस बात पर निर्भर करेगी कि व्यक्ति या उपभोक्ता, अपने उपभोग में कमी करके, भविष्य या दीर्घकाल में कितनी बचत करने को तैयार है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे विनियोग के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं की पसन्दों (consumer's preferences) की बात आ जाती है। परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था मे विनियोग की दीर्घकालीन दर, पूजीवादी अर्थव्यवस्था की भांति, उपभोक्ताओं की पसन्दों पर निर्भर नहीं करती है क्योंकि लगभग सभी पूजी पर सरकार का स्वामित्व होता है और पूजी सरकारी बैंकों द्वारा नियंत्रित होती है।

लाँगे का माडल, दीर्घकालीन विनियोग के लिए 'उपभोक्ता की सत्ता के सिद्धान्त' (principle of consumer's sovereignty) का त्याग कर देता है। लाँगे के अनुसार दीर्घकाल मे विनियोग की दर या पूजी एकत्रण की दर (rate of capital accumulation) सरकार द्वारा, CPB के माध्यम से, निर्धारित की जाती है। 'सामाजिक लाभांश' (social dividend) को व्यक्तियों मे वितरण करने से पहले, केन्द्रीय नियोजन बोर्ड (CPB) सामाजिक लाभांश मे से विनियोग-फंडो की वह मात्रा घटा लेगा जो कि CPB देश के निरन्तर आर्थिक विकास के लिए जरूरी समझता है। पूजी-एकत्रण की ऐसी दर इस दृष्टि से मनमानी (arbitrary) कही जा सकती है कि यह 'उपभोक्ता की सत्ता' (consumer's sovereignty) या 'उपभोक्ताओं की समय-पसन्दों' (consumers' time preferences) या 'ब्याज की सतुलित दर' (equilibrium rate of interest) पर आधारित नही होती। इसके विपरीत, पूजी एकत्रण की दर CPB के 'संयुक्त पसन्दों' (corporate preferences) के स्वरूपों को बतायेगी और यह दर CPB के अपने स्वय के मूल्यांकन के अनुसार अनुकूलतम समय अवधि को बतायेगी जो कि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था के लिए होनी चाहिए। परन्तु विभिन्न प्रयोगो मे विनियोग का वास्तविक बटन, CPB के निर्देशों के अनुसार, विकेन्द्रित मैनेजरों द्वारा किया जायेगा।[68]

लाँगे के अनुसार एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूजी एकत्रण की '*मनमानी*' दर या जो भी दोष हो, वह दोष, बहुत अच्छी जानकारी व ज्ञान रखने वाले केन्द्रीय नियोजन बोर्ड (CPB) के

---

[67] यदि ब्याज-दर अधिक ऊँची निर्धारित हो जाती है तो सामाजिक बैंकिंग व्यवस्था (socialised banking system) के पास विनियोग के लिए प्राप्य पूजी-फंडो (capital funds) का आधिक्य (surplus) रहेगा; इसके विपरीत यदि ब्याज-दर अधिक नीची निर्धारित हो जाती है तो बैंकिंग व्यवस्था उद्योगो के लिए पूजी की मात्रा को पूरा नही कर पायेगी, माँग की तुलना में पूजी-फंडो की कमी पड जायेगी। अतः CPB भूल और जाँच की रीति द्वारा, अल्पकाल में, एक उचित ब्याज-दर निर्धारित कर सकेगा जिस पर विनियोग के लिए पूजी की माँग व पूजी की पूर्ति बराबर हो।

[68] This rate of capital accumulation would be arbitrary in that it is not based on consumer sovereignty, time-preferences, or an equilibrium rate of interest "Rather, the rate of (capital) accumulation would reflect the 'corporate' preference patterns of the Central Planning Board and would reflect their own subjective evaluation of the optimum time horizon that a socialist society should possess." But the actual allocation of investment in different projects will be made by decentralised managers according to the directions of the Central Planning Board.

द्वारा आर्थिक विकास के नियोजित अनुरक्षण (maintenance) के कहीं अधिक गुणों से नष्ट हो जाता है।[69]

3. मूल्यांकन (Evaluation)

आलोचक (जैसे—Professors Hayek and Robbins) यह मानते हैं कि भूल और जांच की रीति के प्रयोग द्वारा एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे साधनों का एक विवेकपूर्ण बंटन केवल "सैद्धांतिक रूप से सम्भव" (theoretically possible) है, परन्तु व्यवहार मे इसको प्राप्त नही किया जा सकता है।

"बाजार की पारस्परिक-क्रियाओं (interactions) की जटिलताओ, आंकड़ो को इकट्ठे करने की समस्याएं, तथा नियोजन सस्था के सदस्यो की मानवीय सीमाएं कीमत-निर्देशित समाजवाद के वास्तविक कार्यकरण मे ऐसी कठिनाइया उत्पन्न कर सकती है जिनको दूर करना लगभग असम्भव है।" आज के युग मे इस आलोचना का जोर कुछ कम हो जाता है, क्योंकि आधुनिक कम्प्यूटरो (modern computers) का बहुत विकास हो चुका है; परन्तु फिर भी महत्त्वपूर्ण कठिनाइयो का सामना अवश्य करना पड़ता है।

वास्तव मे किसी भी आधुनिक समाजवादी राष्ट्र ने पूर्णरूप से लांगे के माडल पर आधारित नियोजन नीति (planning strategy) को नही अपनाया है, परन्तु फिर भी इस माडल की कुछ बातें आधुनिक समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाओ मे पायी जाती हैं। यूगोस्लेविया (Yugoslavia) की समाजवादी अर्थ-व्यवस्था बाजार-यन्त्र (market mechanism) के अगो को कुछ अधिक सीमा तक प्रयोग करती है अपेक्षाकृत रूस की समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के।

आदान-प्रदान नियोजन रीति (INPUT-OUTPUT PLANNING METHOD)[70] : समाजवाद का मात्रा-निर्देशित माडल (A MODEL OF QUANTITY-DIRECTED SOCIALISM) अथवा समाजवाद का केन्द्रीकृत नियोजन माडल (CENTRALISED PLANNING MODEL OF SOCIALISM)

1. प्राक्कथन (Introduction)

एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के कार्यकरण और साधनो के बंटन की एक महत्त्वपूर्ण रीति है—"कीमतों को एक नियोजन-यन्त्र के रूप मे मुख्य आधार न मानते हुए, वस्तुओं की भौतिक मात्राओं का प्रत्यक्ष निर्धारण करना।" इस प्रकार से वस्तुओ के उत्पादन के आधार पर साधनो का बंटन होता है। साधनो के बंटन की इस रीति को 'आदान-प्रदान नियोजन रीति' (Input-Output Planning Method) कहते हैं; तथा समाजवाद के ऐसे माडल को 'मात्रा-निर्देशित समाजवाद' (quantity directed socialism) कहते है। इसको 'समाजवाद का केन्द्रीकृत नियोजन माडल' (Centralised Planning Model of Socialism) भी कहा जाता है।

समाजवाद के केन्द्रीकृत नियोजन माडल के अन्तर्गत **सरकार या राज्य को अर्थव्यवस्था में समस्त उत्पादन और वितरण का नियोजन तथा समन्वय (coordination) करने वाला समझा जाता है।** समस्त उत्पादन निर्णय केन्द्र द्वारा निर्धारित किये जाते हैं और उत्पादन इकाइयो का कार्य

---

[69] "At any rate it is Lange's view that whatever may be the disadvantage in a socialist state of an arbitrary rate of capital accumulation, this disadvantage is more than overbalanced by the advantages of the planned maintenance of economic growth by a well-informed and enlightened Central Planning Board."

[70] *Input-Output* का हिन्दी रूपान्तर 'अदा-प्रदा' भी किया जाता है।

केवल उन उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है जो कि केन्द्रीय नियोजन कर्ता निश्चित करते हैं। राज्य की पसन्दो को व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की पसन्दो के ऊपर प्राथमिकता दी जाती है, और उत्पादन को उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुसार नही किया जाता बल्कि तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकताओं, जिनको कि केन्द्रीय सत्ता उचित समझती है, के अनुसार किया जाता है।[71]

केन्द्रीकृत माडल या रीति में 'उपभोक्ता द्वारा चुनाव' (consumer choice) होता है परन्तु 'उपभोक्ता की सत्ता' (Consumer sovereignty) नही होती जैसा कि समाजवाद के विकेन्द्रित माडल (या लांगे माडल) में होता है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता केवल उन वस्तुओं में से चुनाव कर सकता है जो कि सरकार उत्पादित करके देती है, परन्तु उपभोक्ता, कीमत-यन्त्र द्वारा, सरकार को यह नही बता सकते कि वे किन वस्तुओं को चाहते हैं और उनकी पसन्द के अनुसार प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा उत्पादित की जायेगी।[72]

2. 'आदान-प्रदान' विश्लेषण का विचार तथा यन्त्र (The Concept and Tool of Input-Output Analysis)

कोई भी आधुनिक अर्थ-व्यवस्था जटिल होती है, अर्थ-व्यवस्था मे विभिन्न भाग या उद्योग निकट रूप से सम्बन्धित होते हैं तथा परस्पर-निर्भर करते हैं। आदान-प्रदान विश्लेषण इस पारस्परिक निर्भरता को बताता है। प्रत्येक उद्योग अन्य उद्योगों के उत्पादनों अर्थात् प्रदानों (outputs) को साधनों अर्थात् आदानो (inputs) के रूप में प्रयोग करता है; तथा पहले उद्योग के प्रदान (अर्थात् आउटपुट) कुछ और अन्य फर्मों के लिए आदानो (अर्थात् इनपुटो) का कार्य करते हैं। इसका अभिप्राय है कि मशीनरी (machinery) के उत्पादन को 20% से बढ़ाने का निर्णय एक अकेला और एकदम अलग निर्णय नही होगा, बल्कि इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए साथ ही साथ अनेक अन्य निर्णय भी लेने होंगे (जैसे कोयला, बिजली, लोहा व इस्पात, इत्यादि के उत्पादन में भी वृद्धि का निर्णय लेना होगा)। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो समस्त अर्थ-व्यवस्था में कठिनाइयां व रुकावटें उत्पन्न हो जायेंगी। दूसरे शब्दों में,

> "आदान-प्रदान विश्लेषण के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था को कई भागो (या उद्योगो) में बांट दिया जाता है, तथा विभिन्न भागो या उद्योगो मे वस्तुओं व सेवाओ के प्रवाह (flow) लिखे जाते हैं ताकि विभिन्न भागों या उद्योगो के बीच सम्बन्धो को एक सही व व्यवस्थित रूप से बताया जा सके। इन सम्बन्धो को आदान-प्रदान (इनपुट-आउटपुट) सम्बन्ध कहा जाता है क्योंकि ये बताते हैं कि एक भाग (या

---

[71] The centralised model of socialism considers the State as the total planner and coordinator of all production and distribution in the economy All output decisions are taken at the centre by the government and the function of individual production units is simply to achieve the targets of outputs fixed by the government or central planners. The preferences of the State or the government are given priority over those of individuals and production is not carried out according to what the consumers want but according to the needs of rapid economic development as considered right or desirable by the State or central planners.

[72] In the centralised model or approach there is 'consumers choice' but not 'consumers sovereignty' as in the decentralised model of socialism (or in Lange's model). This implies that consumers are only free to choose and purchase out of the goods produced by the state and made available to them, but they are not in a position to indicate the state, through the price mechanism, what products they actually want and what quantity of each product should be produced.

उद्योग) को अपने प्रदान (अर्थात् आउटपुट) को उत्पादित करने के लिए किन आदानो (अर्थात् इनपुटो) की आवश्यकता होगी ।"[73]

आदान-प्रदान विश्लेषण 'पैमाने के समान प्रतिफलों' (constant returns to scale) की मान्यता को लेकर चलता है। इस मान्यता के आधार पर, अन्तिम माँग के इच्छित स्वरूप को पूरा करने की दृष्टि से एक आधुनिक कम्प्यूटर का आसानी से प्रयोग, प्रत्येक भाग में कुल उत्पादन के इच्छित स्तर को मालूम करने के लिए, किया जा सकता है।[74]

आदान-प्रदान ·. नीक के प्रयोग के लिए अध्ययन की जाने वाली अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे एक आदान-प्रदान तालिका (input-output table) बनानी पड़ती है; ऐसी एक काल्पनिक (hypothetical) तालिका नीचे दी गयी है—

A Hypothetical Input-Output Table (in physical units)[75]

Input from \ Output to	Intermediate Use: Agriculture	Manufactures	Services	*Final Use*	Gross Output
Agriculture	80	160	0	160	400
Manufactures	40	40	20	300	400
Services	0	40	10	50	100
Labour	60	100	80	10	250

उपर्युक्त तालिका के किसी भी एक पंक्ति (row) में आँकड़े विभिन्न क्षेत्रों व प्रयोगों (different sectors or uses) में उत्पादन या प्रदान (output) के वितरण को बताते है, जबकि कोई भी एक स्तम्भ (column) साधनों या आदानो के स्रोतों (sources of inputs) को बताते हैं। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त तालिका मे, पहली पंक्ति (अर्थात् कृषि या agriculture वाली पंक्ति) को पढ़ने से पता लगता है कि कृषि वस्तुओं का 400 इकाइयों के कुल उत्पादन में से 80 इकाइयाँ कृषि उत्पादन की प्रक्रियाओं में, 160 इकाइयाँ व्यापारिक-निर्माणों (manufactures) में प्रयोग होती है तथा 160 इकाइयाँ अन्तिम उपभोक्ताओं को बेची जाती हैं। इसी प्रकार पहले स्तम्भ को ऊपर से नीचे पढ़ने से पता लगता है कि कृषि को स्वयं अपने उत्पादन की 80 इकाइयाँ आदान (input) के रूप में चाहिए, निर्मित वस्तुओं (manufactured goods) की 40 इकाइयाँ चाहिए, तथा श्रम की 60 इकाइयाँ चाहिए।

3. समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आदान-प्रदान नियोजन (Input-Output Planning in a Socialist Economy)

एक समाजवादी राज्य 'एक केन्द्रीय नियोजन सत्ता या बोर्ड' स्थापित करता है। यह केन्द्रीय नियोजन बोर्ड विशेषज्ञों की सहायता से एक आदान-प्रदान टेबिल बनाता है जो कि समस्त

[73] "In input-output analysis, the economy is broken into *sectors* (or *industries*) and the flow of goods and services among sectors or industries is registered to indicate systematically the relations among them. These relations are called *input-output relations* because they tell us what *inputs* a sector needs to produce its *output* "

[74] "Using this assumption (i e of constant returns to scale) a modern computer is easily programmed to find the required level of total output in each sector to fulfill a desired pattern of final demand."

[75] यह उदाहरण प्रो० यान (Yan) पर आधारित है।

अर्थव्यवस्था के ढांचे को बताता है और इसके अन्तर्गत बताये गये आर्थिक सम्बन्धों से आगे के लिए निष्कर्ष निकाले जाते हैं। केन्द्रीय नियोजन बोर्ड प्रत्येक वर्ष के शुरू में यह निर्णय लेता है कि प्रत्येक उद्योग में कितना उत्पादन किया जायेगा; इसके बाद वह प्रत्येक उद्योग में साधनों (जैसे कच्चा माल, यन्त्र, श्रम-शक्ति, इत्यादि) का बंटन करता है। इन सबके लिए आदान-प्रदान तकनीक की सहायता ली जाती है।

आदान-प्रदान टेबिल या तालिका के बनाने का उद्देश्य है एक 'समन्वित योजना' (consistent plan) का बनाना जिसमे किसी प्रकार की रुकावटें उत्पन्न न हो। आदान-प्रदान नियोजन जटिल होता है क्योंकि उद्योगों मे पारस्परिक निर्भरता होती है। एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था (जैसे—रूस) में आदान-प्रदान नियोजन को भौतिक मात्राओं के शब्दों मे किया जाता है और इन भौतिक मात्राओं को एक निश्चित 'लेखांकन कीमतों' के समूह मे मापा जाता है। ये कीमतें 'सीमितता कीमतें' (scarcity prices) नहीं होती हैं जैसा कि पूर्ण स्पर्धात्मक पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के माडल में होती है। समाजवादी नियोजन-कर्ताओं का यह कहना है कि व्यक्तिगत पसन्दें सामाजिक आवश्यकताओं को उचित व पर्याप्त रूप से व्यक्त नहीं करती।[76]

आदान-प्रदान विश्लेषण की सहायता से एक पूर्ण व समन्वित योजना बनाने मे 'अन्तिम वस्तुओं' (final goods) की इच्छित मात्रा से शुरूआत की जाती है। इन अन्तिम वस्तुओं को तीन वर्गों मे बांटा जाता है—(i) उपभोग वस्तुएं तथा सेवाएं, (ii) सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुएं, तथा (iii) टिकाऊ और पूंजीगत वस्तुएं, जो कि प्रतिस्थापन (replacement) तथा विस्तार व विकास के लिए चाहिए।

नियोजन-कर्ता अन्तिम वस्तुओं को (final goods) उत्पादित करने वाले उद्योगों में उत्पादन-मात्राओं (outputs) को निर्धारित करने के बाद, 'पिछली अवस्था के उद्योगों' (preceeding stage industries) अर्थात् 'मध्यवर्ती-उद्योगों' (intermediate industries) में उत्पादन की मात्राओं पर ध्यान देते हैं; मध्यवर्ती उद्योग वे उद्योग हैं जो मध्यवर्ती-वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और इन मध्यवर्ती-वस्तुओं का प्रयोग अन्तिम-वस्तुओं को उत्पादित करने वाले उद्योग करते हैं। मध्यवर्ती-वस्तुओं को उत्पादित करने वाले उद्योगों की आवश्यकताएं इस बात को निर्धारित करेंगी कि कच्चे माल के उद्योगों मे कितने कच्चे माल (raw materials) का उत्पादन किया जाये। इन सब बातों की जानकारी के बाद नियोजन-बोर्ड इस बात के लिए तैयार हो जाता है कि वह एक 'पूर्ण, विस्तृत व समन्वित योजना' बना सके जो कि प्रत्येक उद्योग के लिए साधनों का बंटन (allocation) दिखाती है तथा प्रत्येक उद्योग द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु की मात्रा को बताती है।

हम बता चुके हैं कि नियोजनकर्ता अन्तिम-वस्तुओं की उत्पादन-मात्राओं के निर्णयों से शुरूआत करते हैं। यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि केन्द्रीय नियोजन बोर्ड इस बात का निर्णय कैसे करेगा कि अन्तिम-वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन किया जाये। साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए अन्तिम वस्तुओं की मात्राओं के उत्पादन का निर्णय लेना होगा। इस सम्बन्ध में नियोजनकर्ताओं की समस्या (अर्थात् अन्तिम वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन किया जाये) को राष्ट्रीय आय अर्थात् राष्ट्रीय उत्पादन के तीन मुख्य अंगों की दृष्टि से देख सकते हैं; ये तीन मुख्य अंग हैं—(i) सरकार के व्यय (government expenditures), अर्थात् सरकार के प्रयोग के लिए वस्तुओं का उत्पादन, (ii) विनियोग (investment), अर्थात् नयी पूंजीगत वस्तुओं (new capital goods) का उत्पादन, तथा (iii) उपभोग (consumption), उपभोग वस्तुओं का उत्पादन। अब हम तीनों की अलग अलग विवेचना करते हैं।

---

[76] In a socialist economy (like Russia) input-output planning is done in terms of physical quantities, and these quantities are measured by some set of fixed accounting prices. These are not 'scarcity prices' as operate under a model of purely competitive capitalism. Socialist planners are of the view that individual preferences do not properly and adequately reflect social needs

सरकार के प्रयोग के लिए वस्तुओं की उत्पादन-मात्राओं का निर्णय लेना, नियोजनकर्ताओं के लिए, आसान है। सरकारी अफसर या शासनकर्ता अपने लिए वस्तुओं की आवश्यकताओं का एक बजट बना सकते हैं; नियोजनकर्ता इस बजट की आवश्यकतानुसार वस्तुओं के उत्पादन की व्यवस्था के लिए योजना बनायेंगे।

विनियोग के सम्बन्ध में अर्थात समाजवादी उद्योगों के लिए नयी पूंजीगत वस्तुओं के सम्बन्ध में निर्णय लेना आसान नहीं होता। इस सम्बन्ध मे नियोजनकर्ताओं को दीर्घकालीन दृष्टिकोण रखते हुए नियोजन करना पड़ता है। उन्हें यह तय करना पड़ता है कि आगामी वर्षों (जैसे, वर्तमान से अगले 5 वर्षों) मे सरकार तथा उपभोक्ताओं के लिए कितनी वस्तुओं का उत्पादन होना चाहिए। भविष्य के लिए वस्तुओं की ये उत्पादन-मात्राएं इस बात को निर्धारित करेंगी कि प्रत्येक उद्योग के लिए कितनी नयी उत्पादन-क्षमता अर्थात् कितनी नयी पूंजीगत वस्तुओं की या कितने विनियोग की आवश्यकता पड़ेगी।

सरकार की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन तथा पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के निर्णय के बाद शेष उत्पादन उपभोग वस्तुओं का उत्पादन होगा। उपभोग वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय दो प्रकार के हो सकते हैं.

(i) नियोजनकर्ता उन उपभोग वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं जिन्हें कि उपभोक्ता चाहते हैं। उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा पसन्दों के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के लिए नियोजनकर्ता सर्वेक्षण (surveys) कर सकते हैं और उसके अनुसार उपभोग वस्तुओं के उत्पादन की योजना बना सकते हैं। वस्तुओं की कीमतें औसत लागतों के बराबर निर्धारित की जा सकती हैं और उपभोक्ताओं को यह आज्ञा दी जा सकती है (या उनको यह स्वतन्त्रता रहती है) कि वे जिन वस्तुओं को खरीदना चाहें खरीद सकते हैं। ऐसी स्थिति मे यदि किसी वस्तु की कमी उत्पन्न हो जाती है तो योजनाओं मे सुधार किया जा सकता है तथा अगले वर्ष (या अगले महीने) उस वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार से एक सीमा तक उपभोक्ता की पसन्दों को वस्तुओं के उत्पादन के लिए ध्यान मे रखा जा सकता है।

(ii) दूसरा तरीका यह हो सकता है कि नियोजनकर्ता उपभोक्ताओं की पसन्दों की पूर्णतया या आंशिक रूप से उपेक्षा (ignore) करें। नियोजनकर्ता स्वय इस बात का निर्धारण करेंगे कि उपभोक्ताओं को किन वस्तुओं का उपभोग या प्रयोग करना चाहिए तथा नियोजनकर्ता अपनी सुविधानुसार वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। वे वस्तुओं की खुदरा कीमतों से अप्रत्यक्ष (indirect) राशनिंग का कार्य ले सकते हैं; दूसरे शब्दों में, वे वस्तुओं की ऊंची कीमतें रख सकते हैं ताकि वस्तुओं की मांग बराबर की जा सके उनकी प्राप्य पूर्ति के, अथवा नियोजनकर्ता प्रत्यक्ष (direct) राशनिंग कर सकते हैं।

अब हम मध्यवर्ती वस्तुओं (intermediate goods) या उत्पादक-वस्तुओं पर आते हैं। केन्द्रीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे 'मध्यवर्ती-वस्तुओं या उत्पादक वस्तुओं' (producer's goods) की कीमतों का होना जरूरी नहीं है। उद्योगों के मैनेजरों के सामने मध्यवर्ती-वस्तुओं के चुनाव की कोई बात नहीं होती है, उनको निर्धारित किये गये कोटा के अनुसार इन वस्तुओं को लेना होगा। यदि नियोजनकर्ता इस प्रकार की मध्यवर्ती वस्तुओं या उत्पादक वस्तुओं की कीमतें रखते हैं तो ऐसा वे केवल हिसाब (book-keeping) रखने की दृष्टि से करते है।

अब हम मजदूरों को लेते हैं। मजदूरों को कार्य व नौकरी करने मे एक सीमा तक स्वतन्त्रता दी जा सकती है, और यदि ऐसा किया जाता है तो मजदूरियों मे अन्तर रखकर मजदूरी-प्रेरणाओं (wage-incentives) का सहारा लिया जायेगा ताकि विभिन्न उद्योगों मे मजदूरों की माग व उनकी पूर्ति बराबर की जा सके। इसके अतिरिक्त दूसरा विकल्प (alternative) है सरकार द्वारा 'उचित (fair)

मजदूरियों को निर्धारित करके शक्ति (force) का प्रयोग किया जा सकता है और जुर्माना या जेल के डर के आधार पर श्रमिकों को नियोजनकर्ताओं या सरकार की इच्छा के अनुसार विभिन्न उद्योगों में कार्य करना पड़ेगा। व्यवहार में एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में मजदूरों या व्यक्तियों के लिए तीन प्रकार की प्रेरणाओं की व्यवस्था होती है—(i) नैतिक प्रेरणाएं, (ii) मौद्रिक प्रेरणाएं, तथा (iii) ऋणात्मक प्रेरणाएं (negative incentives), इनके अन्तर्गत शक्ति, दण्ड व डरों का प्रयोग किया जाता है।

4. मूल्यांकन (Evaluation)

एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में साधनों के बंटन के लिए आदन-प्रदान नियोजन रीति, अर्थात् मात्रा-निर्देशित समाजवाद (quantity-directed socialism) के माडल, की अनेक सीमाएं हैं; प्राय: निम्नलिखित दोष या सीमाएं बतायी जाती हैं :

(i) व्यवहार में योजना के विभिन्न भागों के बीच उचित समन्वय (coordination) स्थापित करना बहुत कठिन होता है। उदाहरणार्थ, यदि यह सम्भव है कि नियोजनकर्ता किसी एक उत्पादक-वस्तु के उद्योग (जैसे कोयला उद्योग) के लिए साधनों (inputs) की आवश्यकताओं के बारे में गलत अनुमान लगा जाते हैं, तो उसका उत्पादन, निर्धारित किये गये उत्पादन से कम हो जाता है। ऐसी स्थिति में समस्त योजना में परिवर्तन या सुधार करने पड़ेंगे क्योंकि विभिन्न उद्योगों मे पारस्परिक निर्भरता होती है, इसमें बहुत कठिनाइयां उपस्थित होंगी तथा अर्थ-व्यवस्था में बहुत महंगी रुकावटें (costly bottle-necks) उत्पन्न हो जायेंगी।

(ii) अर्थ-व्यवस्था में अकुशल (inefficient) उत्पादन रीतियों का प्रचलन हो सकता है, क्योंकि आदान-प्रदान नियोजन की सहायता से कुशलतम उत्पादन-रीतियों का मालूम करना या चुनाव करना बहुत कठिन है। इस बात को मालूम करना लगभग असम्भव होगा कि उत्पादन की दो रीतियों में से कौन-सी रीति अधिक कुशल होगी जब तक कि उत्पादक-वस्तुओं (producer's goods) की उचित कीमतें निर्धारित न की जायें; समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे लेखांकन कीमतें (accounting prices) होती हैं जो कि साधनों की सापेक्षिक सीमितता व सापेक्षिक लागतों को सही रूप में नहीं बताती हैं; प्राय: साधनों की कीमतें अनुमान पर आधारित होती हैं। [इसके विपरीत स्पर्धात्मक पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में 'सीमितता कीमतें' (scarcity prices) होती हैं जो कि साधनों की सापेक्षिक लागतों को सही रूप में बताती हैं, और इसलिए कुशलतम उत्पादन रीतियों का चुनाव बहुत कुछ सही रूप में किया जा सकता है।]

(iii) एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आदान-प्रदान नियोजन के द्वारा विभिन्न उद्योगों में साधनों का बंटन करने मे प्राय: उपभोक्ताओं की पसन्दों (consumer's preferences) की पूर्णतया या आंशिक रूप से उपेक्षा की जाती है, अथवा उनकी पसन्दों की उचित प्रकार से संतुष्टि नहीं की जाती है।

अन्त मे, यह कहा जा सकता है कि 'कीमत-निर्देशित समाजवाद' के अन्तर्गत कम से कम सिद्धान्त में (in theory) साधनों का अनुकूलतम बंटन हो सकता है, परन्तु 'मात्रा-निर्देशित समाजवाद' के अन्तर्गत सिद्धान्त में भी साधनों का उचित व अनुकूलतम बंटन नहीं हो पाता है।

प्रश्न

1. एक आर्थिक प्रणाली क्या है? एक आर्थिक प्रणाली की केन्द्रीय समस्याएं क्या हैं?
   What is an economic system? What are the central problems of an economic system?
2. "एक स्वतंत्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था में 'कीमतों की प्रणाली' विभिन्न प्रयोगों में साधनों के वितरण के लिए एक मार्ग प्रदर्शक (guide) या एक नियन्त्रक (governor) की भांति कार्य करती है।" विवेचना कीजिए।

"The system of prices in an enterprise economy acts as a guide to or governor of the allocation of resources among uses." Discuss.

[संकेत—इस प्रश्न के उत्तर मे यह बताइए कि एक स्वतंत्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था (अर्थात् पूंजीवादी प्रणाली) किस प्रकार केन्द्रीय समस्याओं को कीमत-यन्त्र द्वारा पूरा करती है; —परिशिष्ट 1 देखिए।]

3. "प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को, चाहे वह किसी भी किस्म की हो, किसी न किसी तरह पांच कार्य करने होते हैं, जो परस्पर काफी सम्बद्ध होते हैं।"

इन कार्यों का परीक्षण कीजिए तथा एक स्वतंत्र उद्यम वाली अर्थ-व्यवस्था के पथ-प्रदर्शन व निर्देशन में कीमत-यन्त्र की मूल भूमिका पर प्रकाश डालिए।

"Regardless of the type every economic system must somehow perform five closely related functions."

Examine these functions and throw light on the key role of price-mechanism in guiding and organising economic activity in a free enterprise economy.

[संकेत—परिशिष्ट 1 देखिए।]

4. संक्षेप में विवेचना कीजिए कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था आर्थिक कार्यों का सम्पादन किस प्रकार करती है।

Discuss briefly how a socialist economy performs the economic functions.

[संकेत—परिशिष्ट 2 देखिए।]

5. व्याख्या कीजिए कि एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे साधनों का बंटन (allocation) कैसे होता है?

Explain how resources are allocated in a socialist economy.

[संकेत—आदान-प्रदान (input-output) नियोजन रीति को, अर्थात् मात्रा-निर्देशित समाजवाद के माडल की दशा को बताइए; देखिए परिशिष्ट 2]

6. एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत साधनो के बंटन की भूल और जांच रीति का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन दीजिए।

Give a critical estimate of the trial and error method of allocation of resources under a socialist economy.

[संकेत—परिशिष्ट 2 को देखिए।]

7. व्याख्या कीजिए कि मात्रा-निर्देशित समाजवाद के माडल मे साधनों का बंटन कैसे होता है।

Explain how resources are allocated in a model of quantity-directed socialism.

8. एक समूहवादी अर्थ-व्यवस्था (collectivist economy) के अन्तर्गत विवेकपूर्ण आर्थिक गणना की समस्या की विवेचना कीजिए।

Discuss the problem of rational economic calculation in a collectivist economy.

4

अर्थशास्त्र, विज्ञान तथा नीति-विज्ञान

(*Economics, Science and Policy-Science*)

क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है ?
(IS ECONOMICS A SCIENCE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

विज्ञानों को प्रायः दो वर्गों में बांटा जाता है : (i) प्राकृतिक विज्ञान (*Natural Sciences*), ये जगत (Universe) के अध्ययन से सम्बन्धित होते हैं; (ii) मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञान (*Mental or Cultural Sciences*), ये मनुष्य के मानसिक जीवन में परिवर्तनों के अध्ययन से सम्बन्धित होते हैं। मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञानों को दो और वर्गों में बांटा जाता है--(अ) वे मानसिक विज्ञान जो कि मनुष्य को एक पृथक व्यक्ति (man as a separate individual) के रूप में अध्ययन करते हैं, तथा (ब) वे मानसिक विज्ञान जो कि मनुष्य का अध्ययन समाज या समूह के सदस्य के रूप में करते हैं; इनको 'सामाजिक विज्ञान' (*Social Sciences*) कहा जाता है।[1] अतः,

> सामाजिक विज्ञान "वे मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञान हैं जो व्यक्तियों की क्रियाओं को, समूह के सदस्यों के रूप में, अध्ययन करते हैं।"[2]

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है क्योंकि इसका उद्देश्य व्यक्तियों के 'संगठित व्यवहार' (organised behaviour) या व्यक्तियों के 'समूह व्यवहार' (group behaviour) के आर्थिक पहलुओं को समझना होता है।

अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के स्वभाव के सम्बन्ध में अब हम दो और बातों की विवेचना करेंगे :

(i) विज्ञान शब्द का अर्थ तथा उसकी विशेषताएँ।

(ii) अर्थशास्त्र के विज्ञान होने का दावा।

---

[1] दूसरे शब्दों में, उन घटनाओं को, जिनका सम्बन्ध समूह की क्रियाओं से होता है, सामाजिक घटनाएं (social phenomena) कहा जाता है; तथा ऐसे विज्ञानों को, जो इस प्रकार की क्रियाओं का वर्गीकरण करते हैं तथा उनके अर्थ या अभिप्राय बताते हैं, सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत रखा जाता है।

[2] Social sciences are "those mental or cultural sciences which deal with the activities of the individual as a member of a group."

2. विज्ञान का अर्थ तथा उसकी विशेषताएँ (The Concept and Characteristics of a Science)

सामान्य या विस्तृत अर्थ में विज्ञान का अर्थ है एक 'व्यवस्थित या संगठित ज्ञान' अथवा 'विचारों का एक संगठित समूह'। परन्तु इस प्रकार की परिभाषा अपर्याप्त है। 'व्यवस्थित' या 'संगठित' का अर्थ है जो कि 'अव्यवस्थित न हो' या 'असंगठित न हो'। यदि ऐसा है, तो ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र जो कि यह कहता है कि वह 'अव्यवस्थित नहीं' है, विज्ञान के दर्जे को प्राप्त करने का दावा करेगा।[3]

विज्ञान को कुछ अच्छे तरीके से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—

> **विज्ञान सिद्धान्तों या नियमों का एक समूह होता है; एक सिद्धान्त दो घटनाओं के बीच कारण व परिणाम का सम्बन्ध स्थापित करता है, ताकि यदि हम एक घटना (अर्थात्, कारण) को जानते हैं तो हम दूसरी घटना (अर्थात्, परिणाम) की भविष्यवाणी (prediction) कर सकते हैं।**[4]

वास्तव में, एक विज्ञान की एक सही व निश्चित परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है; विज्ञान की कोई भी परिभाषा स्पष्ट रूप से उसकी परिधियों (boundaries) को नहीं बता पाती है। अतः विज्ञान के अर्थ को समझने के लिए हमें एक विज्ञान की मुख्य विशेषताओं (main characteristics) की जानकारी प्राप्त कर लेना अधिक उचित होगा।

जब यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है या नहीं, तो सामान्यतया इसका अर्थ होता है कि क्या अर्थशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञानों [जैसे भौतिकशास्त्र (Physics) या रसायनशास्त्र (Chemistry)] की विशेषताओं को ग्रहण कर सकता है या नहीं, क्योंकि एक प्राकृतिक विज्ञान अधिक निश्चित विज्ञान होता है। एक प्राकृतिक विज्ञान की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. एक विज्ञान का दृष्टिकोण वस्तुगत (*objective approach*) होता है, क्योंकि यह तथ्यों (facts) पर आधारित होता है; एक विज्ञान के अन्तर्गत व्यक्तिगत बातों (subjective elements), जैसे व्यक्तिगत मतों और भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता है।

2. यह 'व्याख्या करने की एक निश्चित शक्ति' (*precise power to explain*) रखता है। विज्ञान तथ्यों पर आधारित होता है, परन्तु केवल तथ्यों को इकट्ठा करना ही विज्ञान नहीं है।[5] एक

---

[3] In a general or broad sense science means a 'systematized or organised knowledge' or a 'systematized body of thought' But such a definition is quite inadequate. 'Systematized' or 'organized' implies something which is 'not unsystematic' or 'not organised'. If so, every field of knowledge stating that it is not unorganised would claim to the stature of a science.

[उदाहरणार्थ, हमारे विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले सभी विषय (कलाओं से लेकर जीव-शास्त्र तक, from arts to zoology) विज्ञान के दर्जे को प्राप्त कर लेंगे क्योंकि उनके पाठ्यक्रम (courses) ज्ञान के एक व्यवस्थित रूप को प्रस्तुत करते हैं।]

[4] Science is a body of principles, theories or laws; a theory establishes a cause and effect relationship between two events, so that if we know one event (that is, the cause), we can '*predict*' the behaviour of the other event (that is, the effect)

[5] पोइनकेअर (Poincare) के शब्दों में, "विज्ञान तथ्यों द्वारा निर्मित होता है, जिस प्रकार कि एक मकान ईंटों द्वारा निर्मित होता है, परन्तु तथ्यों को एकत्रित करना मात्र ही उसी प्रकार से विज्ञान नहीं है जिस प्रकार से एक ईंटों का ढेर मकान नहीं है।"

"Science is built up of facts as a house is built up of stones, but an accumulation of facts is no more a science than a heap of stones is a house."—M Poincare, quoted by Pigou, *Economics of Welfare*, p. 7.

विज्ञान के लिए तथ्यों का क्रमबद्ध एकत्रण करना (systematic collection of facts), तथा उनका वर्गीकरण व विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि घटनाओं के 'कारण और परिणाम सम्बन्ध' (cause and effect relationship) को ज्ञात किया जा सके; अर्थात, सही व निश्चित सिद्धान्तों और नियमों का निर्माण करके 'व्याख्या करने की निश्चित शक्ति' प्राप्त की जा सके।

3. यह एक अच्छी **'भविष्यवाणी की शक्ति'** (a good *'power to predict'*) रखता है। यह स्पष्ट है कि 'भविष्यवाणी करने की शक्ति' निर्भर करेगी 'व्याख्या करने की शक्ति' (power to explain) पर, अर्थात् 'सिद्धान्तों या नियमों की निश्चितता' (exactness of theories or laws) पर।

4. एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है **वैज्ञानिक रीति का प्रयोग** (*use of scientific method*)। 'व्याख्या करने की शक्ति' तथा 'भविष्यवाणी करने की शक्ति' निर्भर करती है उस 'रीति' (*method*) पर जो कि घटनाओं के कारण और परिणाम के बीच सम्बन्ध को मालूम करने के लिए प्रयोग की जाती है, अर्थात् उस 'रीति' पर निर्भर करेगी जो कि सही व निश्चित सिद्धान्तों और नियमों के निर्माण मे प्रयोग की जाती है। चूंकि प्राकृतिक विज्ञान अधिक सही व निश्चित होते हैं, इसलिए वे जिस 'रीति' (इसे 'वैज्ञानिक रीति' कहा जाता है) का प्रयोग अपने सिद्धान्तों व नियमों के निर्माण करने मे प्रयोग करते है, वह रीति महत्त्वपूर्ण होती है। दूसरे शब्दों मे, **एक शास्त्र (discipline) विज्ञान है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह शास्त्र 'वैज्ञानिक रीति' का प्रयोग कर सकता है या नहीं।**[6]

इस प्रकार, संक्षेप मे, एक विज्ञान की मुख्य विशेषताएँ है—(i) वस्तुपरकता (objectivity),
(ii) व्याख्या करने की शक्ति (power to explain),
(iii) भविष्यवाणी करने की शक्ति (power to predict),
(iv) वैज्ञानिक रीति का प्रयोग (use of scientific method)।

इन विशेषताओं के आधार पर हम इस बात की विवेचना करेंगे कि **अर्थशास्त्र एक विज्ञान है या नहीं।**

3. अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के पक्ष में तर्क (Arguments for Economics being a Science)

विज्ञान के अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए, **अर्थशास्त्र के विज्ञान होने** के पक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं:

1. आर्थिक घटनाओं के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को ज्ञात करने तथा आर्थिक सिद्धान्तों व नियमों के निर्माण के लिए **अर्थशास्त्र वैज्ञानिक रीति का प्रयोग करता है।** व्यक्तियों व

---

[6] एक वैज्ञानिक रीति मे प्राय निम्नलिखित चरण या कदम (steps) होते हैं—(i) समस्या का चुनाव (ii) अवलोकन (observation), या आकड़ो व तथ्यो का इकट्ठा करना (iii) परिकल्पना (hypothesis) का निर्माण (iv) भविष्यवाणी करना परिकल्पना के आधार पर, तथा सिद्धान्तों का निर्माण (v) सिद्धान्तों की परीक्षा व जाँच करना। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि एक व्यक्ति वैज्ञानिक खोजो मे सदैव उपर्युक्त पाँच-कदमो-के-क्रम (five-step-order) का प्रयोग करता है। पाँच कदमो मे निरन्तर क्रिया तथा प्रतिक्रिया (action and reaction) होती रहती है। 'परिकल्पनाएँ' तथ्यो की व्याख्या करने मे सहायता करती है। परन्तु अतिरिक्त तथ्य या मौजूदा तथ्यों की नयी व्याख्याएँ वैज्ञानिको को अपनी 'परिकल्पनाओं' मे परिवर्तन व संशोधन करने के लिए बाध्य कर सकती हैं।

It should not be inferred that a person always follows a neat five-step-order in scientific investigations. There is a continuous action and reaction among the five steps. "Hypothesis help to explain facts. But additional facts or new interpretations of existing facts may cause scientist to revise their hypotheses"

समूहो के व्यवहार का अवलोकन किया जाता है, उनके व्यवहार के सम्बन्ध में परिकल्पनाएं (hypotheses) बनायी जाती हैं, तथा तथ्यो के आधार पर परिकल्पनाओ की जांच की जाती है और आर्थिक सिद्धान्त या नियम बनाये जाते हैं। इस प्रकार अर्थशास्त्र मे वैज्ञानिक रीति का प्रयोग किया जाता है।

स्पष्ट है कि एक विज्ञान की भांति अर्थशास्त्र अपने नियम बनाता है जोकि दी हुई दशाओं के अन्तर्गत सही होते हैं; आर्थिक नियम 'यदि ··· तब' के कथन ('if....then' statements) होते हैं, तथा विज्ञानो के नियम भी इसी प्रकार के होते हैं। गणितात्मक तथा साख्यिकीय यन्त्रो (mathematical and statistical tools) के प्रयोग ने आर्थिक सिद्धान्तो व नियमो के निर्माण में अधिक निश्चितता ला दी है।

2. सामान्य सिद्धान्तों व नियमो का निर्माण करके अर्थशास्त्र, एक सही व उचित मात्रा मे, आर्थिक घटनाओ के **'व्याख्या करने की शक्ति'** (power to explain) प्राप्त कर लेता है। नयी आर्थिक स्थितियो के विश्लेषण तथा व्याख्या के लिए आर्थिक नियमो का प्रयोग किया जाता है।

3 चूकि अर्थशास्त्र के पास 'व्याख्या करने की शक्ति' है, इसलिए उसके पास आर्थिक घटनाओ की **'भविष्यवाणी करने की शक्ति'** (power to predict) भी होती है। गणितात्मक व साख्यिकीय यन्त्रो, और आधुनिक कम्प्यूटरो (modern computers) के प्रयोग, तथा अर्थमिति (econometrics) के पर्याप्त विकास के कारण अर्थशास्त्र को 'भविष्यवाणी करने की शक्ति' बहुत अच्छी हो गयी है।

4. **अर्थशास्त्र को वस्तुगत या वस्तुपरक** (Objective) **कहा जा सकता है** क्योकि इसके सिद्धान्त व नियम, अन्य विज्ञानों की भांति, तथ्यो (facts) पर आधारित होते हैं। उद्देश्यो या लक्ष्यो तथा नीति-सुझावो के सम्बन्ध मे मतभेद हो सकता है, परन्तु 'वास्तविक अर्थशास्त्र' (Positive Economics) के क्षेत्र मे, जो कि अर्थशास्त्र का हृदय (heart) होता है, वस्तुपरक्ता (Objectivity) एक बहुत अच्छी मात्रा तक बनी रहती है।

उपर्युक्त तर्कों के अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने की है जो कि अप्रत्यक्ष रूप से (indirectly) अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के पक्ष मे प्रस्तुत की जा सकती है। सन् 1969 मे 'अर्थशास्त्र-विज्ञान' के लिए एक नये नोबेल पुरस्कार (Nobel Prize) की स्थापना की गयी है, यह बात अर्थशास्त्र को विज्ञान मानने का एक प्रमाण (testimony) है।[7]

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह दावा किया जाता है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है।

4. अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के विपक्ष में तर्क (Arguments against Economics being a Science)

अर्थशास्त्र के विज्ञान न होने के सम्बन्ध मे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं :

1 **यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्रियों मे बहुत अधिक मतविभेद** (disagreement) **रहता है और इसलिए अर्थशास्त्र एक विज्ञान नहीं हो सकता है।** [बर्नार्ड शॉ (Bernard Shaw) ने

---

[7] अर्थशास्त्र विज्ञान के लिए प्रथम नोबेल पुरस्कार (सन् 1969 मे) सयुक्त रूप से Prof. Ragnar Frisch of Norway and Jan Tinbergen of the Netherlands को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात अर्थशास्त्र-विज्ञान के लिए अनेक अर्थशास्त्रियों को विभिन्न वर्षों मे नोबेल पुरस्कार दिये गये हैं—Paul Samuelson of Massachusetts Institute of Technology (U.S A.), Kenneth J. Arrow Arrow of Harvard University (U S A), Simon S. Kuznets of Harvard University John Hicks of Britain; Professor Wessily Leontief of Harvard University in 1973., इत्यादि।

एक बार यह कहा था कि यदि इस दुनिया के अर्थशास्त्रियों को एक सिरे से मिलाकर दूसरे सिरे तक रख दिया जाये तो भी वे कोई एक निष्कर्ष प्राप्त नही कर पायेंगे।[8]

उपर्युक्त तर्क का बल (force) बहुत कम हो जाता है यदि हम निम्नलिखित बातें ध्यान में रखें :

(अ) अर्थशास्त्रियों में मतभेद प्रायः उद्देश्यों और आर्थिक नीतियों, जिनमें नैतिक निर्णय शामिल होते हैं, के सम्बन्ध मे होते हैं। परन्तु 'वास्तविक अर्थशास्त्र' (positive economics), जो कि अर्थशास्त्र का हृदय (heart) है, के क्षेत्र मे मतभेद न्यूनतम होते हैं, अर्थशास्त्री उन अनेक बातो पर सहमति रखते हैं जो कि अर्थशास्त्र के ढाँचे (body) को बनाती हैं। "पहले के विवादग्रस्त क्षेत्रो, जैसे, मन्दी या सुस्ती-विरोधी नीति (anti-recession policy) के सिद्धान्तो पर आज के युग में अर्थशास्त्रियो में एक बहुत बड़ी सीमा तक सहमति मौजूद है।"[9]

(ब) अर्थशास्त्र एक विकासशील (growing) शास्त्र है; ऐसी स्थिति मे यह स्वाभाविक है कि अर्थशास्त्रियों में आर्थिक ज्ञान के सम्बन्ध में एक अच्छी विवेचना या वाद-विवाद (discussion) चलता रहे। पुराने व गलत सिद्धान्तो और नियमों को त्याग दिया जाता है तथा नये व अच्छे सिद्धान्तों का निर्माण हो जाता है; अतः मतभेद तथा उथल-पुथल (convulsions) होते रहते हैं और इस प्रकार से ही अर्थशास्त्र की प्रगति होती रहती है; उदाहरणार्थ, केंजियन क्रांति (Keynesian revolution) ने अर्थशास्त्र के ज्ञान-क्षेत्र को हिला दिया अर्थात् उसमें महत्त्वपूर्ण उथल-पुथल कर दी। इसी प्रकार के मतभेद तथा उथल-पुथल ज्ञान के अन्य क्षेत्रो मे भी पाये जाते हैं।

> "अन्य शास्त्रो मे, भौतिक विज्ञान तथा स्वास्थ्य-विज्ञान मे, भी समय-समय पर इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन या उथल-पुथल पाये जाते हैं। इन अन्य विज्ञानों में पुराने विश्वासो के बारे मे इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो को प्रगति कहकर पुकारा जाता है। परन्तु अर्थशास्त्री, जो कि खुद अपने ही खराब प्रेस-ऐजेंण्टो की भांति कार्य करते हैं, अपने ज्ञान के विकास के सम्बन्ध मे इस प्रकार की बातचीत करते हैं या ऐसा रूप प्रस्तुत करते है कि प्रगति की प्रक्रिया (process) मे वे अनावश्यक रूप से बेवकूफ दिखायी पड़ते हैं।"[10]

2. **प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति अर्थशास्त्र वस्तुपरक (objective) नहीं हो सकता है क्योंकि अर्थशास्त्र मनुष्यों का अध्ययन करता है न कि निर्जीव वस्तुओं का।** अर्थशास्त्री स्वयं एक मनुष्य होता है और स्वाभाविक रूप से उसके दृष्टिकोण व मत उसके विश्लेषण तथा खोजो को प्रभावित करते हैं और इसलिए, **अर्थशास्त्र एक वस्तुपरक विज्ञान (objective science) नहीं हो सकता।**

अब हम इस तर्क की विवेचना करते हैं। वास्तव में निश्चित (exact) विज्ञान, (जैसे,

---

[8] Bernard Shaw once observed that if the economists of this world were laid end to end they would not reach a conclusion.

[9] "Today a large measure of agreement exits even in formerly controversial fields like the general principles of anti-recession policy."
एक दूसरा उदाहरण लीजिए। आधुनिक अर्थशास्त्री स्थायित्व-नीति (stabilization policy) के बुनियादी सिद्धान्तो पर सहमति रखते हैं; कुछ मतभेद केवल उद्देश्यो के सम्बन्ध में हो सकता है; तरीको तथा उनके प्रयोग के समय (procedures and timing) के सम्बन्ध मे कुछ सूक्ष्म बातों (some details) पर थोड़ा मतभेद हो सकता है।

[10] "Other disciplines—even physics and medicine—from time to time experience similar convulsions. In their cases, however, such reversals of old beliefs have usually been interpreted as progress. Economists, who are their own worst press agents, have managed to make each other look needlessly foolish in the process."

भौतिक विज्ञान), भी पूर्णतया वस्तुपरक (fully objective) नहीं हो सकते। दूसरे शब्दो मे,

"प्राकृतिक विज्ञानों में भी, जिनको निश्चित कहा जाता है, हम वास्तविक तथ्यो का किस प्रकार अवलोकन करते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम कौन से सैद्धान्तिक चश्मे पहने हुए हैं। "न्यूटन के बाद के वैज्ञानिको' ने एक प्रकार के तथ्यो या उन्ही तथ्यों को भिन्न प्रकार से देखा 'न्यूटन से पहले के वैज्ञानिकों' की तुलना मे। एक सीमा तक हम सब अपने सैद्धान्तिक धारणाओं के कैदी हैं। एक पुराने गलत सिद्धान्त की मृत्यु केवल इसलिए नहीं होती कि वह कुछ दशाओ में तथ्यो से मेल नही खाता बल्कि इसलिए होती है कि अन्त मे एक नया सिद्धान्त उत्पन्न हो जाता है।"[11]

अत:, जब हम अर्थशास्त्र के नये व्यवस्थित माडल (या सिद्धान्त) को अपनाते हैं, तो हम वास्तविकता को एक नये और भिन्न तरीके से समझते हैं; और यही बात सामान्यतया वैज्ञानिक तथ्यों व सिद्धान्तो के साथ होती है।[12]

अब हम वस्तुपरकता के तर्क के बारे मे थोड़ी और विवेचना (discussion) करते हैं। यद्यपि भौतिक विज्ञानों में कुछ 'व्यक्तिगत तत्त्व' (subjective elements) होते हैं और वे पूर्णतया वस्तुपरक नहीं होते, परन्तु अर्थशास्त्र में वस्तुपरकता की मात्रा (degree) कम होती है भौतिक विज्ञानों की तुलना में। इस सन्दर्भ में निम्न बातें अच्छा प्रकाश डालती हैं :

(अ) क्या हम यह कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र इस अर्थ मे वस्तुपरक है कि योग्यतम अर्थशास्त्री एक प्रकार के तथ्यो से एकसमान परिणाम निकाल सकेंगे ? इसका उत्तर है कि अर्थशास्त्री सदैव ऐसा नही कर पायेंगे। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित विवरण और अधिक स्पष्टीकरण करता है :

"वास्तव मे अर्थशास्त्र के प्रति 'वस्तुपरकता की कमी' की आलोचना का अर्थ सामान्य मानवीय गलती, जो कि 'अवसर के नियमो' के अन्तर्गत होती है, से अधिक लिया जाता है। इस आलोचना का अर्थ उस प्रकार के 'व्यवस्थित पक्षपातपूर्ण प्रभावो' से होता है जो कि अर्थशास्त्रियो के चुनावो व प्रशिक्षण से सम्बन्धित होते हैं।"[13]

अत:, यह सम्भव है कि अर्थशास्त्री एक प्रकार के तथ्यो से एकसमान परिणाम नही निकाल पायेंगे। पूजीवादी अर्थशास्त्री एक प्रकार के तथ्यो से एक परिणाम या अर्थ निकाल सकते हैं, जबकि साम्यवादी अर्थशास्त्री उन्हीं तथ्यो से एक भिन्न परिणाम या अर्थ निकाल सकते हैं। दूसरे शब्दो में, (नीति-विषयो के लिए), एक ही प्रकार के तथ्यो से निकाला गया अर्थ या परिणाम भिन्न होगा और यह भिन्नता निर्भर करेगी अर्थशास्त्री के सामाजिक वर्ग पर, सस्कृति की किस्म पर तथा उनके देश की विकास की मात्रा पर।[14]

---

11 "Even in the so-called exact physical sciences, how we *perceive* the observed facts depends on the theoretical spectacles we wear post-Newtonians perceived the 'same facts' differently from pre-Newtonians To a degree we are all prisoners of our theoretical preconceptions. It is not so much discordant fact that kills off an old false theory as the final emergence of a new theory."

12 Hence, when we adopt a new systematic model or theory of economics, we comprehend reality in a new and different way, so it is with scientific facts and theories in general

13 "Usually, however, the charge of 'lack of objectivity' against economics has implied more than ordinary human error, subject to the laws of chance It implies certain systematic biases related to the selection and training of economists "

14 Therefore, it is possible that the economists cannot derive approximately the same result from the same data The 'capitalist economist' may derive a certain result or interpretation from certain data, and the 'communist economist' may derive a different result or interpretation from the same data In other words, the interpretation of the same data (for policy matters) may differ according to the social class and the type of culture of the economist, and his country's degree of development.

(ब) इसके अतिरिक्त, "जिन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है तथा जिन आँकड़ों का एकत्रण किया जाता है, उनका चुनाव कभी-कभी पक्षपातपूर्ण तरीके से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आय के वितरण का अध्ययन करते समय, पूँजीवादी अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय में श्रमिकों के हिस्से को मालूम करने से सम्बन्ध रखेंगे, और साम्यवादी (या मार्क्सवादी) अर्थशास्त्री अतिरिक्त मूल्य या शोषण की दर को मालूम करने से सम्बन्ध रखेंगे।"[15]

अथवा, यह कहिए कि एक देश की संस्कृति व विचारधारा (ideology) के अनुसार माडलों व सिद्धान्तों का निर्माण एक विशेष प्रकार की मान्यताओं या धारणाओं पर आधारित होगा। उदाहरणार्थ, पूँजीवादी अर्थशास्त्री स्पर्धात्मक बाजार को एक 'व्यवस्था' (system) मानकर चलेंगे, जबकि साम्यवादी अर्थशास्त्री ऐसे बाजार को केवल एक "अव्यवस्था या अराजकता" (anarchy) अथवा 'जंगल' (jungle) मानेंगे।[16]

3. अर्थशास्त्र में वैज्ञानिक रीति का प्रयोग उचित कड़ाई के साथ (rigorously) नहीं किया जा सकता है और इसलिए अर्थशास्त्र एक विज्ञान नहीं हो सकता है।[17]

वास्तव में, अर्थशास्त्री वैज्ञानिक रीति का प्रयोग करते हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका प्रयोग अर्थशास्त्र में उतनी सफलता के साथ नहीं किया जा सकता है जितना कि प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों में किया जाता है। इसका मुख्य कारण है विषय-सामग्री में अन्तर का होना; अर्थशास्त्र मनुष्यों का अध्ययन करता है जबकि प्राकृतिक विज्ञान (भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र) निर्जीव वस्तुओं का अध्ययन करते हैं। अर्थशास्त्री के लिए नियन्त्रित प्रयोगों का करना बहुत कठिन है। अर्थशास्त्री प्रयोगों या स्थितियों को ठीक उसी रूप में दुहरा नहीं सकता है। परिणामस्वरूप, उसके लिए सही रूप में कारण और परिणाम को अलग करने की समस्याएँ बहुत कठिन हो जाती हैं।[18] दूसरे शब्दों में,

> "एक अर्थशास्त्री का अपनी विषय-सामग्री (material) पर कोई नियंत्रण नहीं होता। उसकी प्रयोगशाला वास्तविक जगत है। जीवन निरंतर चलता रहता है; अर्थशास्त्री एक वास्तविक-जीवन-स्थिति को अलग नहीं कर सकता, उसको थोड़ी देर के लिए नहीं रोक सकता, तथा अपने उद्देश्य के लिए उसका सरलीकरण नहीं कर सकता; और इस प्रकार एक वास्तविक जीवन-स्थिति के साथ प्रयोग नहीं कर सकता है। वह बाहरी और विघ्नकारक प्रभावों को नहीं हटा सकता। वह केवल यह मान सकता है कि ऐसे प्रभाव मौजूद नहीं है। अर्थशास्त्री के प्रयोग दिमाग की कल्पना

[15] Further, "the very facts to be studied and statistics to be computed can sometimes be selected in a biased manner. For example, in dealing with distribution of income, bourgeois (or capitalist) economists concern themselves with the labour share in the national income and Marxist (or communist) ones with the rate of surplus value or exploitation."

[16] Or, models and theories may be constructed with 'specialized' assumptions or concepts according to the culture and ideology of a country. For example, the competitive market may be considered or assumed as a 'system' by the capitalist economist, or it may be considered simply as 'anarchy or jungle' by a communist economist.

[17] दूसरे शब्दों में, भौतिक या प्राकृतिक विज्ञानों की रीतियों जैसे, परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement), प्रयोगशालाओं में नियन्त्रित प्रयोग, गणितात्मक माडलों (mathematical models) का निर्माण, इत्यादि का अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उचित व पर्याप्त तरीके से प्रयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अर्थशास्त्र में मानवीय क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः अर्थशास्त्र विज्ञान होने का दावा नहीं कर सकता है।

[18] It is difficult for the economist to make controlled experiments He is unable to repeat experiments or situations in identical form Consequently, his problems of isolating cause and effect are very difficult.

में किये जाते है; केवल कागज और पॅन ही उसके वैज्ञानिक-यन्त्र (apparatus) होते हैं। इस प्रकार आर्थिक माडल दुहरे अर्थ मे अमूर्त (abstract) होते हैं।"[19]

4. **अर्थशास्त्र की 'भविष्यवाणी की शक्ति' कमजोर होती है; अर्थशास्त्र विज्ञान कैसे हो सकता है जबकि अर्थशास्त्री अपनी भविष्यवाणियों पर निर्भर नहीं कर सकते हैं।** [चूकि अर्थशास्त्र मे वैज्ञानिक रीति का प्रयोग कठिन व अपर्याप्त है, इसलिए अर्थशास्त्र निश्चित आर्थिक सिद्धान्तो व नियमो का निर्माण नही कर पाता है; परिणामस्वरूप उसकी 'व्याख्या करने की शक्ति' और 'भविष्य-वाणी करने की शक्ति' उतनी निश्चित नही होती जितनी कि प्राकृतिक विज्ञानो की।]

वास्तव मे, अर्थशास्त्र की 'कमजोर भविष्यवाणी करने की शक्ति' का कारण इस बात में निहित है कि अर्थशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञानो की विषय-सामग्री मे अन्तर होता है। निम्नलिखित बातें अर्थ-शास्त्र की कमजोर भविष्यवाणी करने की शक्ति के सम्बन्ध मे एक विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करती हैं :

(अ) "अर्थशास्त्री की विषय-सामग्री मानवीय व्यवहार है जो कि प्राकृतिक विज्ञानो की विषय-सामग्री की तुलना मे, बहुत कम एकसमान (uniform) रहती है। प्रकृति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक जिन स्वरूपो (patterns) की खोज करते है उनमे बहुत अधिक दोहराव (repitition) होता है। ऐसिडे (acids) सदैव नीले लिटमस कागज (blue litmus paper) को लाल कर देती हैं; पृथ्वी अपनी धुरी पर प्रत्येक 24 घंटे मे एक बार घूमती है; निरन्तर नियमितता के साथ ज्वार-भाटा आते रहते हैं। ऐसा मनुष्यो के व्यवहार के सम्बन्ध मे नही होता। कोई भी दो व्यक्ति एक दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की सदैव एकसमान मात्रा नही खरीदेंगे; न वे एक दी हुई आय मे से एकसमान अनुपात मे बचत करेंगे, यदि ऐसा होता है तो वह केवल एक इत्तफाक (coincidence) होगा। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कि एक ही व्यक्ति या वही समाज, दो विभिन्न समयों मे परिस्थितियो के एक दिये हुए संयोग के प्रति एकसमान प्रतिक्रिया (reaction) नही करेंगे, चाहे परिस्थितियो के उसी संयोग को पूर्ण रूप से दोहराया जाये (यद्यपि इस प्रकार का दोहराव सम्भव नही है)। प्रकृति की अन्य चीजो से मनुष्य इस बात मे अन्तर रखता है कि वह अपने अनुभव पर सोचने की शक्ति रखता है तथा उस अनुभव से सीखता है। उसकी क्रियाएं केवल दी हुई दशाओ का परि-णाम ही नही होती, बल्कि उसकी क्रियाएँ तर्क द्वारा निर्देशित हो सकती हैं। दूसरी ओर हम यह भी नही मान सकते कि वह सदैव अपने अनुभव से सीखता ही है ''मनुष्य की योग्यता बुद्धिमान व अच्छा होने की होती है, परन्तु अनेक बार वह बेवकूफ व बुरा भी होता है। इन कारणो की वजह से मानवीय व्यवहार की भविष्यवाणी उतने विश्वास व निश्चितता के साथ नही की जा सकती है जितनी कि गैर-मानवीय व्यवहार के सम्बन्ध मे।"[20]

[19] "The economist has no control over his material. His laboratory is the real world. Life must go on, and the economist cannot isolate a real life situation, hold it in suspense, simplify it to suit his purpose, and then experiment with it. He cannot eliminate the extraneous and disturbing influences. He can only assume them away, pretend they do not exist. His experiments are carried out in the imagination, his only apparatus being pen and paper. Economic models are therefore 'abstract' in a double sense."

[20] "The raw material of economics is human behaviour, which is far less uniform than the material of the natural sciences. The patterns which the scientist discovers in nature are highly repetitive. Acids always turn blue litmus paper red, the earth turns on its axis once every twenty-four hours, the tides ebb and flow with unceasing regularity. It is not so with human beings. No two people will buy the same amount of any commodity at a given price, nor save the same proportion out of a given income, except by coincidence. More important, the same person or community may not react in the same way to a given combination of circumstances on two different occasions, even if the same combination of circumstances could ever be repeated exactly (which is most unlikely). Man differs from the rest of the creation in that he has the capacity to reflect on his experience and so learn from

(ब) परन्तु अधिकांश स्थितियों मे, अर्थशास्त्री 'समूह' या 'व्यक्तियों के वर्गों' के व्यवहार से सम्बन्धित होते हैं। जब हम व्यक्तियों के समूह से सम्बन्ध रखते हैं तो समूह के व्यवहार-स्वरूप (behaviour-pattern) की भविष्यवाणी आसानी से तथा एक बड़ी सीमा तक सही रूप में की जा सकती है, यद्यपि समूह मे कुछ व्यक्तियो का व्यवहार भविष्यवाणी किये गये परिणाम से भिन्न हो सकता है।

परन्तु जब समूह के व्यक्तियो मे अन्तर बहुत होता है या वे बहुत भिन्न होते हैं तो समूह व्यवहार की भविष्यवाणी भी अधिक सही नही हो पाती, उसमे कमजोरी आ जाती है। इस प्रकार अनेक स्थितियों में समूह व्यवहार भी अप्रत्याशित (unpredictable) या अनिर्धारणीय (indeterminate) हो जाता है। परन्तु हमें यह नही भूलना चाहिए कि कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ प्राकृतिक विज्ञानों में भी उत्पन्न होती हैं; अर्थात् प्राकृतिक विज्ञानों में भी अध्ययन की जाने वाली वस्तुओं का व्यवहार अनिर्धारणीय हो सकता है, या उसको सही रूप मे बताया नही जा सकता है।

परन्तु यह मानना पड़ेगा कि अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान की भविष्यवाणी की शक्ति कम होती है प्राकृतिक विज्ञानो की तुलना में, अन्तर मात्रा (degree) का है। कुछ आलोचकों के अनुसार 'मात्रा का अन्तर' (difference of degree) ही बहुत महत्त्वपूर्ण होता है और यह अन्तर ही अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक स्वभाव को बहुत कमजोर कर देता है।

(स) परन्तु उपर्युक्त विचारधारा (viewpoint) के विपरीत एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। आधुनिक युग मे प्रयोगशाला के कार्य (laboratory work) के स्थान पर अर्थशास्त्र मे गणित व सांख्यिक (statistics) का बहुत विस्तृत रूप से प्रयोग हो रहा है; आधुनिक कम्प्यूटरो का प्रयोग हो रहा है; तथा अर्थमिति (econometrics) मे बहुत विकास हुआ है। इन सब बातों के कारण अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी करने की शक्ति बहुत बढ़ गयी है।

अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी करने की शक्ति की तुलना प्राकृतिक विज्ञानो में एक सीमा तक खगोल-विज्ञान (astronomy) तथा जलवायु-विज्ञान (meteorology) से की जा सकती है; इन प्राकृतिक विज्ञानों की भविष्यवाणी की शक्ति भी बहुत निश्चित नही होती है; अर्थात इन प्राकृतिक विज्ञानों को भविष्यवाणी करने की शक्ति कुछ अन्य प्राकृतिक विज्ञानो, (जैसे, भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र), की तुलना में कमजोर होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी करने की शक्ति कुछ कमजोर है तो केवल इसलिए अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के दर्जे को उसी प्रकार नही छीना जा सकता है जिस प्रकार कि खगोल-विज्ञान तथा जलवायु-विज्ञान को विज्ञान होने के दर्जे से नही हटाया जा सकता।

(द) सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी करने की शक्ति कमजोर होती है; और इसलिए अनेक विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री ये मानते हैं कि आर्थिक नियम 'संभाविता नियम' (probability laws) होते हैं और वे निश्चित नियम (exact laws) नही होते हैं।

5. निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विस्तृत विवेचना के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचते हैं :

(i) आर्थिक नियमों के 'सम्भावित स्वभाव' के होने पर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण नियमितताएँ तथा सही सिद्धान्त मौजूद हैं।[31]

---

it. His actions are not simply the product of conditioned reflexes; they *can be guided by his* reason. On the other hand we cannot assume that he always will *learn from experience.* Man has the capacity to be both wise and good, but he is frequently foolish and bad. For these reasons human behaviour cannot be predicted so surely and precisely as the behaviour of non-human nature."

[31] "Despite the approximative (or probability) character of economic laws, economics is a field blessed with many important regularities and valid principles."

(ii) वैज्ञानिक रीति के प्रयोग के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र एक विज्ञान होने के योग्य हो जाता है; अधिक से अधिक हम यह कह सकते है कि वह एक 'मुलायम विज्ञान' (*soft science*) है या 'कम निश्चित विज्ञान' (*less exact science*) है। अर्थशास्त्र के 'मुलायम विज्ञान' या 'कम निश्चित विज्ञान' होने का कारण इस बात मे निहित है कि अर्थशास्त्र और प्राकृतिक विज्ञानों की विषय-सामग्री मे अन्तर होता है; और परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र को ऐसी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है जिनका सामना प्राकृतिक विज्ञानो (जैसे, भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र) को नही करना पडता।[22]

वास्तविक विज्ञान बनाम आदर्शात्मक विज्ञान
(POSITIVE *VERSUS* NORMATIVE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है; **प्रश्न यह उठता है कि क्या यह केवल वास्तविक विज्ञान** (Positive science) **ही है या आदर्शात्मक विज्ञान** (Normative science) **भी है ?** इस मत-विभेद पर विचार करने से पहले यह आवश्यक है कि विज्ञान के वास्तविक पहलू तथा आदर्शवादी पहलू दोनो का अर्थ भली प्रकार से समझ लिया जाय।

वास्तविक विज्ञान 'क्या है ?' (what is ?) **से सम्बन्ध रखता है;** अर्थात् 'वास्तविक विज्ञान के रूप मे अर्थशास्त्र' आर्थिक कार्यों के कारणो और परिणामो के बीच सम्बन्ध को बताता है। यह आर्थिक कार्यों की अच्छाई व बुराई के सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकता है, केवल उनके कारणों और परिणामो पर प्रकाश डालता है। **'वास्तविक या सैद्धान्तिक कथनों'** (positive statements) **के बारे में मतभेद उत्पन्न होने पर तथ्यों** (facts) **का प्रयोग या सहारा लेकर उन्हें दूर किया जा सकता है।**

आदर्शात्मक विज्ञान 'क्या होना चाहिए ?' (what ought to be ?) **से सम्बन्ध रखता है;** अत: 'आदर्शात्मक विज्ञान के रूप मे अर्थशास्त्र' आर्थिक कार्यों या घटनाओ की अच्छाई तथा बुराई को बताता है, अर्थात् नैतिक निर्णय (value or moral judgements) देता है। नैतिक निर्णय मनुष्यो की भावनाओ तथा दृष्टिकोणो पर निर्भर करते हैं, इसलिए 'आदर्शात्मक कथनो' (normative statements) मे मतभेद की अधिक सम्भावना रहती है और **आदर्शात्मक कथनों के मतभेदों को तथ्यों** (facts) **का सहारा लेकर दूर नहीं किया जा सकता है।**

2. आदर्शवादी पहलू पर विवाद (Controversy)

अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक विज्ञान होने के सम्बन्ध मे मतभेद अर्थशास्त्र के जन्म के समय से ही है। **प्राचीन आंग्ल क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मत था** कि अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान है, इसके विपरीत, **जर्मनी के ऐतिहासिक स्कूल** (Historical School of Germany) **का मत था** कि अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान है। **मार्शल तथा उनके साथियों ने** भी अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को स्वीकार किया। इस सम्बन्ध मे वाद-विवाद 20वी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे बहुत कुछ समाप्त-सा हो गया था। परन्तु 1932 मे रोबिन्स ने पुन इस विवाद को जगा दिया। प्रो. रोबिन्स अर्थशास्त्र को केवल एक वास्तविक विज्ञान मानते है, उसके आदर्शात्मक पहलू को स्वीकार नही करते है।

22 Economics qualifies as a science by virtue of its use of the scientific method, at the most we can say that economics is a *soft science* or *a less exact science*. The reason for economics being a soft science lies in the difference between the subject-matter of economics and that of natural sciences, and, consequently, economics has to face difficulties of a kind that natural sciences (like physics and chemistry) do not have to face.

3. केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में तर्क (अथवा, आदर्शवादी पहलू के विपक्ष में तर्क)

प्रो. रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र का आदर्शवादी पहलू नहीं है क्योंकि ऐसा होने के लिए हमें नीतिशास्त्र (ethics) की सहायता लेनी होगी जबकि नीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को मिलाया नहीं जा सकता। रोबिन्स के शब्दों में,

> दुर्भाग्यवश इन दोनों अध्ययनों को पास-पास रखने के अलावा इनमें और कोई तार्किक (logical) सम्बन्ध स्थापित करने की सम्भावना नहीं दिखायी देती। अर्थशास्त्र जांचने योग्य तथ्यों का अध्ययन करता है, जबकि नीतिशास्त्र मूल्यांकनों (valuations) तथा कर्तव्यों का। खोज के ये दोनों क्षेत्र वार्तालाप के एक ही स्तर पर नहीं हैं।[23]

रोबिन्स के लिए अर्थशास्त्र मूल्य सिद्धान्त (Value Theory) है और मूल्य सिद्धान्त अर्थशास्त्र है, उसका कोई आदर्शवादी पहलू नहीं है। रोबिन्स के शब्दों में,

> "मूल्य सिद्धान्त के चारों तरफ स्वीकृति का कोई क्षेत्र नहीं है। साम्य केवल साम्य ही है।"[24]

आर्थिक साम्य की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में एक अर्थशास्त्री कुछ भी नहीं कह सकता है, साम्य केवल साम्य है। अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है।

अर्थशास्त्र के केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं:

(i) **अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक नींव (scientific foundation) मजबूत करने के लिए उसे केवल वास्तविक विज्ञान मानना चाहिए।** इस सम्बन्ध में दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं:

(अ) **आदर्शात्मक अर्थशास्त्र भावों पर आधारित होता है, तर्क (logic) पर नहीं।** अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, इसलिए इसका आधार भी, अन्य विज्ञानों की भाँति, तर्कशास्त्र (logic) है। अतः अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक नींव तब ही मजबूत होगी जबकि उसे केवल वास्तविक विज्ञान ही माना जाये।

(ब) **यदि अर्थशास्त्र को केवल विशुद्ध वास्तविक विज्ञान न रखा जाये तो इसकी प्रगति बहुत कुछ रुक जायेगी।** 'क्या है?' सम्बन्धित खोजों (enquiries) के बारे में मत-विभेद होने की सम्भावना बहुत कम रहेगी जबकि 'क्या होना चाहिए?' खोजें बहुत अधिक वाद-विवाद तथा मत-विभेद को जन्म देंगी और इसलिए अर्थशास्त्र की प्रगति में बड़ी रुकावट हो जायेगी।

(ii) **अच्छे श्रम-विभाजन (better division of labour) का तर्क :** अर्थशास्त्रियों को सारे कार्य, अर्थात् किसी विषय के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को स्थापित करना, उस विषय की अच्छाई तथा बुराई को बताना तथा सुझाव देना, स्वयं नहीं करने चाहिए। उन्हें तो केवल पहले कार्य अर्थात् किसी विषय के 'कारण' तथा 'परिणाम' के बीच सम्बन्ध स्थापित करने पर ही पूरा ध्यान देना चाहिए और अन्य कार्यों को राजनीतिज्ञों या दूसरे लोगों पर छोड़ देना चाहिए। यदि एक अर्थशास्त्री स्वयं ही सारे कार्य करेगा, तो वह पहले कार्य में दक्ष नहीं हो सकेगा।

(iii) **अर्थशास्त्री के गलत समझे जाने (misunderstanding) की, या भ्रम (confusion)**

---

[23] "Unfortunately it does not seem logically possible to associate these two studies in any form but mere juxtaposition. *Economics deals with ascertainable facts, ethics with valuations and obligations. The two fields of enquiry are not on the same plane of discourse.*"—Robbins.

[24] "There is no penumbra of approbation around the theory of value. Equilibrium is just an equilibrium."
—Robbins

पैदा होने की सम्भावना बनी रहेगी, यदि वास्तविक तथा आदर्शवादी दोनों पहलुओं को मिला दिया जाता है। दोनों पहलुओं के मिलाने से एक अर्थशास्त्री को अपनी प्रत्येक खोज के सम्बन्ध मे अच्छाई या बुराई के रूप में मूल्यांकन (value judgement) देना होगा और ऐसी अवस्था में उसका कार्य-भार बहुत बढ जायेगा, और यदि वह ऐसा नहीं करता है तथा चुप रहता है तो लोग यह सोचेंगे कि अर्थ-शास्त्री तत्सम्बन्धी खोज से सहमत हैं, जबकि यह जरूरी नही है। अर्थशास्त्रियों के गलत समझे जाने की सम्भावनाएं सदैव बनी रहेंगी।

4. **अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू होने के पक्ष में तर्क** (अथवा वास्तविक विज्ञान के विपक्ष में तर्क)

अनेक अर्थशास्त्री (जैसे Fraser, Wolfe, Hawtrey, Handerson and Quandt; इत्यादि) अर्थशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान मानते हैं। अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू के होने के सम्बन्ध में निम्न तर्क ध्यान देने योग्य हैं :

(i) **मनुष्य केवल तार्किक (logical) ही नहीं, वरन् भावुक (sentimental) भी होता है।** अर्थशास्त्र मे हम मनुष्य जैसा है उसका वैसा ही अध्ययन करते हैं, और चूंकि मनुष्य तार्किक तथा भावुक दोनों एक साथ ही हैं इसलिए अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के दोनों दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक है, अर्थात् अर्थशास्त्र को वास्त-विक विज्ञान के साथ-साथ आदर्शात्मक विज्ञान मानना जरूरी है।

(ii) **दोनों पहलुओं को अलग-अलग करना गलत श्रम-विभाजन है।** यह उचित नही है कि एक अर्थशास्त्री किसी विषय का अध्ययन करे, उसके 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध को बताये और जब निर्णय देने की बात हो तो यह कार्य एक राजनीतिज्ञ या किसी अन्य व्यक्ति को दे दिया जाय। ऐसा करने से श्रम तथा शक्ति मे बचत नही होगी क्योकि जो अन्य व्यक्ति निर्णय देगा उसे दुबारा 'कारणों' तथा 'परिणामों' को समझना होगा। अर्थशास्त्री ही निर्णय देने के लिए योग्यतम (competent) व्यक्ति है।[25]

(iii) **अर्थशास्त्री पर भावनाओं और दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता; अर्थात् 'वास्तविक अर्थशास्त्र' (positive economics) भी पूर्णतया वस्तुगत (objective) नहीं रह सकता।** एक अर्थशास्त्री उतना वस्तुगत नही रह सकता जितना कि एक भौतिकशास्त्री (physicist) या एक रसायनशास्त्री (chemist) होता है क्योकि अर्थशास्त्र मे हम निर्जीव वस्तुओं का नही बल्कि मानव तथा मानव-व्यवहार का अध्ययन करते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न दो मुख्य बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(अ) तथ्यों के अध्ययन तथा आकड़ो के एकत्रण (computation) के चुनाव में *कभी-कभी पक्षपात किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आय के वितरण मे पूंजीवादी* अर्थशास्त्री (bourgeois economists) राष्ट्रीय आय मे श्रम के हिस्से पर ध्यान

---

[25] प्रो. पी. सी. जैन का कथन इस सम्बन्ध में बहुत उचित है : एक गलत श्रम-विभाजन हानिकारक हो सकता है। ऐसा श्रम-विभाजन विचित्र तथा असंगत (fantastic) होगा जिसमे कि एक व्यक्ति खाना खाये तथा दूसरा केवल पानी पीये। एक दौड़ में यह बात वास्तव मे विचित्र होगी कि एक व्यक्ति सारी दूरी दौडे और जब वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुचने को हो तो कोई और उसका स्थान ले ले। इसी प्रकार, यदि अर्थशास्त्र 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध का अध्ययन करता है तथा यह निर्णय कि क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए किसी दूसरे पर छोड देता है तो यह समय तथा शक्ति का मितव्ययतापूर्वक प्रयोग न होकर इनकी बर्बादी होगी।

देते हैं जबकि मार्क्सवादी अर्थशास्त्री 'अतिरिक्त मूल्य की दर' (rate of surplus value) या 'शोषण' पर ध्यान देते हैं।[26]

(ब) नीति सुझावों (policy recommendations) को प्रभावित करने की दृष्टि से 'वास्तविक अर्थशास्त्र' ऐसे शब्दों पर निर्भर करता है जो कि बहुत अधिक 'मूल्य से भरे हुए' (value-loaded) होते हैं। पूंजीवादी पक्ष की ओर से 'कल्याण', 'दक्षता', 'उपयोगिता' तथा 'उत्पादकता' शब्दों का प्रायः प्रयोग किया जाता है। समाजवादियों और नियोजनकर्त्ताओं की ओर से 'प्रावैगिक' (dynamic), 'नियोजित' (planned) तथा 'संरचनात्मक' (structural), विश्लेषणों (adjectives) का मुख्यतया प्रयोग किया जाता है। अमरीका में जिसे 'स्वतन्त्र-उपक्रम' तथा 'आर्थिक स्वतन्त्रता' कहते हैं उसे रूस में 'शोषण की स्वतन्त्रता' कहते हैं। · · · वास्तविक अर्थशास्त्र में 'शोषण' शब्द ही केवल एक ऐसा शब्द नहीं है जो कि एक 'संज्ञा' (noun) नहीं रह गया बल्कि एक 'शोर' (noise) बन गया है।[27]

(iv) यदि अर्थशास्त्र को 'समाज के उत्थान के लिए एक यन्त्र' (an engine of social betterment) का कार्य करना है तो उसके आदर्शात्मक पहलू को भुलाया नहीं जा सकता है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान (social science) है; इसलिए उसका कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा यदि वह सामाजिक कल्याण की वृद्धि के दृष्टिकोण से उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई पर निर्णय न दे तथा समाज की आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए नीति-सुझाव (policy recommendations) न दे। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानने से वह फीका और अरुचिकर (colourless and disgusting) हो जायेगा।

(v) आर्थिक नियोजन (economic planning) का बढ़ता हुआ प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को छोड़ा नहीं जा सकता। वुल्फ (Wolfe) के अनुसार बिना आदर्शवादी पहलू के अर्थशास्त्र की स्थिति 'हैमलेट नाटक' में से उसके नायक हेमलेट को निकाल देने' की भांति हो जायेगी।

निष्कर्ष (Conclusion)

अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक विज्ञान होने के पक्ष तथा विपक्ष में महत्त्वपूर्ण तर्कों का विवेचन किया जा चुका है। परन्तु आज भी आधुनिक अर्थशास्त्री इस सम्बन्ध में एकमत नहीं है। दो स्पष्ट स्कूल (या विचारधाराएं) हैं :

(i) *Fraser, Henderson and Quandt, Liebhafsky*, इत्यादि आधुनिक अर्थशास्त्री अर्थ-शास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान मानते हैं। अर्थशास्त्रियों को सलाह देने वाले केवल एक विशेषज्ञ (expert or technician) के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि *Heilbroner* के शब्दों में, अर्थशास्त्री को एक 'सांसारिक दार्शनिक' (worldly philosopher) की भांति होना चाहिए जो

[26] "The very facts to be studied and statistics to be computed can sometimes be selected in a biased manner. For example, in dealing with distribution of income, bourgeois economists concern themselves with the labour share in the national income and Marxist ones with the rate of surplus value or exploitation. . ."

[27] Even in positive economics, there "is the reliance on terms which, except to disinfected experts, are heavily "value-loaded" with a view to influencing policy recommendations. "Welfare", "efficiency", "utility" and "productivity" are frequent examples on the capitalist side. "Dynamics", "planned" and "structural" are favourite adjectives of socialists and planners. What is called "free enterprise" and "economic freedom" in the United States is "freedom to exploit" in the Soviet Union..."Exploitation" is by no means the only term in positive economics which has ceased to be a noun and has become a "noise".

कि समाज को एक दिशा (direction) दे सके। आधुनिक युग में आर्थिक विकास की समस्याएं अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु (focal point) बन गयी हैं और ऐसी अवस्था में अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू को नहीं छोड़ा जा सकता है। अतः **"अर्थशास्त्री का कार्य केवल व्याख्या या खोज करना ही नहीं, बल्कि समर्थन और निन्दा करना भी है।"**[28]

(ii) *Samuelson, Boulding,* इत्यादि विख्यात अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान मानते हैं। अर्थशास्त्र एक विज्ञान है; सेम्युलसन के शब्दो मे, "सही या गलत उद्देश्यो से सम्बन्धित मूल प्रश्नो को विज्ञान द्वारा निश्चित नही किया जा सकता है।"[29] एक वैज्ञानिक या एक विशेषज्ञ के रूप मे अर्थशास्त्री को आर्थिक कार्यों के परिणामो को बताना चाहिए अर्थात् सलाह देनी चाहिए ताकि राजनीतिज्ञ या अन्य लोग नैतिक निर्णय का उचित चुनाव (selection) कर सकें। प्रो. बोल्डिग के शब्दो मे, **"अर्थशास्त्री चुनावों का अध्ययन करता है, उनका मूल्यांकन नहीं करता।"** (*"The economist studies the choices, he does not judge them."*)

यदि अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है तो फिर कल्याणवादी अर्थशास्त्र की एक स्पष्ट व पृथक शाखा अस्तित्व में क्यों है?

(If Economics is a Positive Science, then why is there a distinct and separate branch of Welfare Economics in existence ?)

यदि हम यह मानते है कि "अर्थशास्त्री चुनावो का अध्ययन करता है, उनका मूल्याकन नही करता," अर्थात अर्थशास्त्र को एक विज्ञान या वास्तविक विज्ञान ही मानें, तो एक प्रश्न यह उठता है कि "कल्याणवादी अर्थशास्त्र" (Welfare Economics) को हम अर्थशास्त्र की एक स्पष्ट व पृथक शाखा क्यो मानते हैं। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना होता है और इस प्रकार उसका स्वभाव आदर्शात्मक (normative) होता है। प्रो. सेम्युलसन (Samuelson), बर्गसन (Bergson), इत्यादि अर्थशास्त्री इस बात को स्पष्ट रूप से मानते हैं कि "कल्याणवादी अर्थशास्त्र" आवश्यक रूप से एक आदर्शात्मक अध्ययन (normative study) है और केवल कुछ नैतिक आदर्शो (ethical objectives or norms) के सन्दर्भ मे ही अर्थशास्त्री अर्थपूर्ण नीतियो (meaningful policies) का निर्माण कर सकते है, दूसरे शब्दो मे, नैतिक निर्णयो या मूल्याकनों को स्पष्ट रूप से कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे शामिल कर लिया जाता है। यदि ऐसा है, तो फिर अर्थशास्त्र एक विज्ञान या वास्तविक विज्ञान कैसे रह सकता है?

प्रो. सेम्युलसन, बर्गसन इत्यादि अर्थशास्त्रियो के अनुसार अर्थशास्त्रियो को स्वय नैतिक निर्णय (value judgement) नही लेने चाहिए, अथवा उन्हें 'उद्देश्यो या चुनावो' (objectives, goals or choices) का स्वय मूल्याकन (evaluation or judgement) नही करना चाहिए, बल्कि उद्देश्यो या आदर्शों को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए, और तब इन दिये हुए वांछनीय लक्ष्यो (given desired goals) को प्राप्त करने के लिए आर्थिक नीतियो को प्रस्तुत करना चाहिए; इस प्रकार से निर्माण की जाने वाली नीतियों का अध्ययन निश्चित ही विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक (analytical and scientific) होगा। इसके अतिरिक्त, वैकल्पिक (alternative) आर्थिक नीतियो के बीच चुनाव करना या उनका मूल्यांकन करना भी अर्थशास्त्री का कार्य नही है; अनेक अर्थशास्त्री इस विचारधारा के हैं। एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, अर्थशास्त्री तो केवल एक विशेषज्ञ (expert) के रूप मे वैकल्पिक नीतियो के परिणामों (consequences) को

---

[28] "The function of the economist is not only to explain and explore but also to advocate and condemn "

[29] "Basic questions concerning right and wrong goals to be pursued cannot be settled by science as such."

प्रस्तुत करता है। उस दिये हुए उद्देश्य के लिए कौन-सी नीति सर्वोत्तम (best) है और किस नीति का प्रयोग किया जाना चाहिए, इस बात का निर्णय राजनीतिज्ञ व सरकार करेंगे।

अनेक अर्थशास्त्री उपर्युक्त दृष्टिकोण को मानते हैं; और इस दृष्टि से अर्थशास्त्र एक 'वैज्ञानिक आदर्शात्मक अध्ययन' (*scientific normative study*) बना रह सकता है; अथवा यह कहिए कि अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार मजबूत बना रहेगा और उसे वास्तविक विज्ञान मानना ठीक होगा।

आर्थिक नीति : अर्थ तथा विवाद का स्वभाव
(ECONOMIC POLICY : MEANING AND NATURE OF CONTROVERSY)

1. प्राक्कथन (Introduction)

क्या अर्थशास्त्र एक कला है? अथवा क्या अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए आर्थिक नीतियों (économic policies) का निर्माण कर सकता है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है, परन्तु मतभेद के स्वभाव (nature of controversy) को जानने के लिए 'कला' तथा 'आर्थिक नीति' शब्दों के अभिप्रायों को समझ लेना आवश्यक है।

कला का अर्थ किसी कार्य को करने के सर्वोत्तम ढंग से है। जे. एन. कैंज (J. N. Keynes) के अनुसार, "कला एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियमों की एक प्रणाली है।"[30] विज्ञान तथा कला एक दूसरे के पूरक (complementary) हैं। किसी भी बात का क्रमबद्ध ज्ञान (systematic knowledge) तो विज्ञान है और व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए उस ज्ञान का क्रमबद्ध प्रयोग (systematic application) अर्थात् 'नीतियों का निर्माण' (formulation of economic policies) कला है। आधुनिक अर्थशास्त्री 'कला' अर्थात् 'अर्थशास्त्र की कला' (art of economics) के स्थान पर 'व्यावहारिक अर्थशास्त्र' (Applied Economics) या 'नीति अर्थशास्त्र' (Policy Economics) कहते हैं।

अब आवश्यक है कि 'नीति' या 'आर्थिक नीति' के अर्थ को अच्छी तरह से समझ लें। 'आर्थिक नीति' का अभिप्राय सामान्यतया 'राष्ट्रीय आर्थिक नीति' (national economic policy) से लिया जाता है और ऐसी दशा में आर्थिक नीति को लागू करने वाला संगठन (organization) सरकार (government) या राष्ट्र (nation) होता है।

आर्थिक नीति या राष्ट्रीय आर्थिक नीति दो बातों से सम्बन्धित होती है :

(i) हम 'क्या' चाहते हैं? अर्थात् हमारे साध्य या उद्देश्य क्या हैं? (*What* we want? That is, what are our ends or golas?) (ii) उनको 'कैसे' प्राप्त किया जाये? अर्थात् उनको प्राप्त करने के लिए साधनों का प्रयोग (*How* to attain them? That is, *means* to be adopted)।

1. अर्थशास्त्र के कला होने अथवा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में विवाद का स्वभाव (Nature of controversy over 'economics as an art' or 'economic policy')

अर्थशास्त्रियों में 'अर्थशास्त्र के कला' होने या 'आर्थिक नीति' के सम्बन्ध में मुख्य मतभेद या विवाद आर्थिक नीति के 'क्या' वाले भाग ('what' part of economic policy) पर है; अर्थात् उस बात पर है कि क्या अर्थशास्त्रियों को साध्यों या उद्देश्यों को दिया हुआ मान लेना चाहिए अथवा उन्हें उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई को भी बताना चाहिए। अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि अर्थशास्त्रियों को आर्थिक समस्याओं को हल करने के उपाय या साधन बताने चाहिए; मतभेद आर्थिक नीति के 'क्या' होना चाहिए वाले भाग पर है।

[30] "An art is a system of rules for the attainment of a given end."

इस सम्बन्ध मे दो विचारधाराएं हैं : (i) उद्देश्यो की अच्छाई-बुराई बताते हुए अर्थशास्त्री 'आर्थिक नीति सिफारिशें' (economic policy recommendations) प्रस्तुत कर सकते हैं। इस विचारधारा के अन्तर्गत मार्शल, पीगू तथा उनके समर्थक हैं। (ii) उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही अर्थशास्त्री आर्थिक नीति सुझाव' (economic policy suggestions) दे सकते हैं। इस विचारधारा के अन्तर्गत रोबिन्स तथा उनके समर्थक हैं। नीचे हम इन दोनो विचारधाराओ के पक्ष तथा विपक्ष मे तर्कों का विवेचन करते हैं।

3. उद्देश्यों की अच्छाई-बुराई बताते हुए अर्थशास्त्री 'आर्थिक नीति सिफारिशें' (economic policy recommendations) प्रस्तुत कर सकते हैं।

इस विचारधारा के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं :

(i) अर्थशास्त्र एक **सामाजिक विज्ञान** है; उसे उद्देश्यो की अच्छाई-बुराई को बताते हुए आर्थिक समस्याओ के हल करने के उपाय बताने चाहिए। पीगू (Pigou) के अनुसार,

> "हमारी मनोदशा एक दार्शनिक की सी नही होती, अर्थात् हम ज्ञान की खोज केवल ज्ञान के लिए नही करते, बल्कि हमारी मनोवृत्ति एक डाक्टर की सी होती है जो कि ज्ञान को स्वस्थ करने के लिए प्रयोग करता है।"[31]

अर्थशास्त्र के ज्ञान का मूल्य इसलिए नही है कि वह **प्रकाशदायक** (light-bearing) है, बल्कि इसलिए है कि वह **फलदायक** (fruit-bearing) है।

(ii) अनेक **आर्थिक समस्याएं विशुद्ध आर्थिक** (purely economic) होती हैं जैसे, बैंक दर विनिमय दर, मुद्रा तथा साख सम्बन्धी समस्याए। यदि इनसे सम्बन्धित उद्देश्यो की अच्छाई-बुराई **बताते हुए इनका हल अर्थशास्त्री नही बतायेंगे तो और कौन बतायेगा ? इनके हल के लिए नीति-निर्माण में अर्थशास्त्री ही सबसे अधिक योग्य** (competent) हैं।

(iii) आज लगभग प्रत्येक देश में **आर्थिक नियोजन** (economic planning) किसी न किसी रूप मे अपनाया जा रहा है। किसी देश की सरकार का आर्थिक सलाहकार (economic adviser) या नियोजन आयोग (planning commission) उद्देश्यों को पूर्व निश्चित करता है, उनकी अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में देश के अर्थशास्त्री भाग लेते हैं और उनको हल करने के लिए व्यावहारिक आर्थिक नीतिया बताते है।

4. उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही अर्थशास्त्री 'आर्थिक नीति सुझाव' (economic policy suggestions) दे सकते हैं।

इस सम्बन्ध मे निम्न तर्क दिये जाते हैं :

(i) **अर्थशास्त्र एक विज्ञान है,** इसलिए अर्थशास्त्री वैज्ञानिक के रूप मे, उद्देश्यो की अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में कोई निर्णय नही दे सकते। राजनीतिज्ञों या अन्य लोगो द्वारा निर्धारित किये गये उद्देश्यो को अर्थशास्त्रियो को दिया हुआ मान लेना चाहिए। **अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अर्थशास्त्री उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही नीति-निर्माण में सहयोग दें।**

[उदाहरणार्थ, एक अर्थशास्त्री का कार्य यह बताना नही है कि हमारे देश मे राष्ट्रीय आय का वितरण उचित है या अनुचित तथा आय का वितरण किसी दूसरे प्रकार का होना चाहिए। इस बात का निर्धारण तो 'सामाजिक नीतिशास्त्र' (social ethics) के विचारक (thinkers) ही कर सकते हैं। प्रजातन्त्र देशो मे समाज के लिए उद्देश्यो का निर्धारण राजनैतिक फोरमो (political

[31] "...our impulse is not the philosopher's impulse, knowledge for the sake of knowledge, but rather the physiologist's knowledge for the healing that knowledge may help to bring."
—Pigou, *The Economics of Welfare*, p. 5.

forums) में तथा प्रजातन्त्रात्मक तरीकों (democratic processes), जैसे संसद (parliament) में बहस द्वारा होता है। यदि राष्ट्र धन के वितरण के एक प्रकार (pattern) को निर्धारित कर देता है, तो अर्थशास्त्री का कार्य इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनों तथा तरीकों को बताना है। इसका अभिप्राय यह है कि अर्थशास्त्रियों को एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न उपायों या नीतियों के परिणामों को सलाह के रूप में पेश करना चाहिए ताकि सरकार या राजनीतिज्ञ उनमें से किसी नीति को चुन (select) सकें। इस प्रकार अर्थशास्त्रियों की सलाह नीति-निर्धारण की प्रक्रिया में बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकती है।][32]

(ii) अधिकांश आर्थिक समस्याएं विशुद्ध आर्थिक (pure economic) नहीं होती हैं। आर्थिक समस्याओं पर राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक बातों का भी प्रभाव पड़ता है। अतः ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि केवल आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर ही एक अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए उचित नीति का निर्माण कर सके या निश्चित नीति के नुस्खे (definite policy prescriptions) दे सके। दूसरे शब्दों में, *ऐसी स्थिति में अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी नीति या उपाय केवल 'सुझाव के रूप में'* (suggestive type) हो सकता है।

(iii) यहां पर एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान होने के नाते से निश्चित नीति सिफारिशें (definite policy recommendations) नहीं दे सकता है तो फिर व्यवहार में हम अर्थशास्त्रियों (professional economists) को स्पष्ट रूप से (publicly) नीति-सिफारिशें को बताते हुए क्यों पाते हैं? इसका उत्तर निम्न दो बातों में पाया जायेगा :

(अ) किसी भी देश में कुछ उद्देश्य ऐसे होते हैं जिन्हें सामान्य रूप से सभी लोग स्वीकार (accept) करते हैं, जैसे, पूर्ण रोजगार, आर्थिक विकास, मूल्य स्थायित्व (price stability), इत्यादि। व्यवहार में जब अर्थशास्त्री नीति-सिफारिशें करते हैं तो, वे ऐसा इन 'सामान्यतया स्वीकृत उद्देश्यों' (generally accepted goals) के आधार पर करते हैं।

[उदाहरणार्थ, जब एक अर्थशास्त्री मन्दी (recession) के समय में टैक्सों में कमी की सिफारिश करता है तो उसके पीछे वह इस सामान्यतया स्वीकृत नैतिक निर्णय (value judgement) को लेकर चलता है कि पूर्ण रोजगार बेरोजगारी से अच्छा है।]

(ब) कई बार अर्थशास्त्री, सामान्यतया स्वीकृत उद्देश्यों के आधार पर नहीं, बल्कि अपने स्वयं के मूल्याकनों (his own value judgements) के आधार पर नीति सिफारिशें पेश करते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं :

किसी भी अन्य वैज्ञानिक की भांति, एक अर्थशास्त्री के भी दो रूप हो सकते हैं—'एक वैज्ञानिक के रूप में' तथा 'एक नागरिक के रूप में'।[33] दूसरे शब्दों में—

"एक अर्थशास्त्री, एक भौतिकशास्त्री की भांति, दो टोप लगा सकता है। सभी नागरिकों की भांति एक अर्थशास्त्री का यह अधिकार है कि वह राष्ट्र के उद्देश्यों को

---

[32] Thus, the advice of economists can become crucial or significant in the process of making a policy decision.

[33] [एक भौतिकशास्त्री (physicist), 'एक वैज्ञानिक के रूप में' (as a scientist) एटम बम बना सकता है, परन्तु वह एटम बम की अच्छाई-बुराई के बारे में कुछ नहीं कह सकता और परिणाम-स्वरूप एटम बम बनाया जाय या न बनाया जाय इसके बारे में वह नीति-सिफारिश नहीं कर सकता। यदि एटम बम की अच्छाई-बुराई को बताकर नीति-सिफारिश करता है तो वह ऐसा 'एक नागरिक के रूप में' (as a citizen) करता है। इस प्रकार एक भौतिकशास्त्री या एक रसायनशास्त्री (chemist) के या किसी भी अन्य वैज्ञानिक के दो रूप हो सकते हैं—'एक वैज्ञानिक के रूप में' तथा 'एक नागरिक के रूप में'।]

बहस में भाग ले। यह एक राजनैतिक प्रशासन (political administration) के लिए टेक्नीकल सलाहकार की तरह भी कार्य कर सकता है और इस स्थिति (capacity) में वह एक अर्थशास्त्री की भांति ही नहीं बल्कि एक राजनैतिक व्यक्ति की तरह भी कार्य कर सकता है।"[34]

4. निष्कर्ष (Conclusion)

(i) अर्थशास्त्री की विषय-सामग्री के स्वभाव के कारण अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णय से अलग करना वास्तव में कठिन है। यद्यपि आर्थिक समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री वस्तुगत (objective) होने का प्रयत्न कर सकते हैं, परन्तु उनके लिए, मनुष्य होने के नाते, आर्थिक बातों पर अपने नैतिक तथा राजनैतिक विश्वासों (ethical and political beliefs) के प्रभाव से बचना कठिन है। दूसरे शब्दों में, एक अर्थशास्त्री के व्यक्तित्व (personality) को 'एक वैज्ञानिक के रूप में' तथा 'एक नागरिक के रूप में' विभाजित (split) कर देना बहुत कठिन है।

(ii) उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी इसमे कोई सन्देह नही है कि अर्थशास्त्रियो को वस्तुगत (objective) होने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि उद्देश्यो को दिया हुआ मानकर ही उन्हें आर्थिक नीति के निर्माण मे सहयोग देना चाहिए; ऐसा करने से ही अर्थशास्त्र को 'विज्ञान का दर्जा' (stature of science) प्राप्त होने मे सहायता मिलेगी।

आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति
(ECONOMIC THEORY AND ECONOMIC POLICY)

1. प्राक्कथन (Introduction)

वास्तव मे 'आर्थिक सिद्धान्त' तथा 'आर्थिक नीति' एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं; आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक नीति निर्माण में महत्त्वपूर्ण तरीके से सहयोग प्रदान करता है, तथा आर्थिक नीति भी आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण मे सहायक होती है।

इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना करने से पहले यह उचित होगा कि 'आर्थिक सिद्धान्त' तथा 'आर्थिक नीति' शब्दों के अर्थों को समझ लें।

आर्थिक सिद्धान्त को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—

"आर्थिक सिद्धान्त एक तार्किक तथा व्यवस्थित ढांचा प्रदान करता है जो कि इस बात की व्याख्या करता है कि एक बात दूसरी से किस प्रकार सम्बन्धित है। आर्थिक सिद्धान्त पारस्परिक निर्भरताओं तथा कारण और परिणाम के सम्भावित सम्बन्धों से रिश्ता रखता है।"[35]

आर्थिक सिद्धान्त की दो मुख्य विशेषताएँ या पक्ष (features or aspects) हैं—(i) वे 'सामान्य कथन' (*generalizations*) होते हैं, तथा (ii) उनमे अमूर्तताएँ (abstractions)

---

[34] "An economist, like a physicist, can wear two hats Like all citizens the economist has the right to engage in debate about our national goals. He can also serve as a technical adviser to a political administration and act in this capacity not only as an economist but also as a political person."

[35] "Economic theory provides a logical, organised framework which helps to explain how one thing relates to another Economic theory is concerned with interdependencies, with probable relationships of cause and effect."

होती है।[36] आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य व्याख्या करना तथा निष्कर्ष निकालना या भविष्यवाणी करना है, और इसलिए वह नियंत्रण मे सहयोग देना है।[37]

अब हम आर्थिक नीति के विचार को लेते है। 'आर्थिक नीति' या 'नीति' को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है—

"शब्द 'नीति' सामान्यतया उन सिद्धान्तों को बताता है जो कि दिये हुए साध्यों की प्राप्ति के प्रतिक्रिया को नियमित या शासित करते हैं।"[38]

आर्थिक नीति की उपर्युक्त परिभाषा में निम्नलिखित तीन बातें शामिल हैं—

(i) **साध्य या उद्देश्य** (ends or goals)—अर्थात् हम 'क्या चाहते' हैं? (What we want), हमारे साध्य या उद्देश्य क्या है?

(ii) **साधन या रीतियां** (means or techniques or methods)—अर्थात् साध्यो को प्राप्त करने के लिए साधनों या रीतियो का प्रयोग।

(iii) **संगठन या समूह का स्वभाव जो कि नीति को लागू करता है** (the nature of the organization or group which implements the policy)—'संगठन' का रूप सरकार हो सकता है या एक संस्था या एक व्यक्ति; प्रायः आर्थिक नीति का अर्थ 'राष्ट्रीय आर्थिक नीति' से लिया जाता है और नीति को लागू करने वाला संगठन या समूह सरकार होती है।

अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक स्वभाव को बनाए रखने की दृष्टि से अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्रियो को साध्यो या उद्देश्यो को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए। इस प्रकार उद्देश्यों को दिया हुआ मानकर ही अर्थशास्त्री नीति-सुझाव (policy prescriptions) देता है या नीति-निर्माण करता है। अर्थशास्त्री एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई वैकल्पिक नीतियां प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु उनमे से कौन-सी उचित या सर्वोत्तम है इस बात का चुनाव वह नहीं करता। एक अर्थशास्त्री एक टेक्नीकल विशेषज्ञ या वैज्ञानिक (technical expert or scientist) के रूप मे केवल वैकल्पिक नीतियों के परिणामो को प्रस्तुत करता है; सरकार इनमे से एक उचित या सर्वोत्तम नीति का चुनाव करके उसको लागू करती है।[39]

2. 'आर्थिक सिद्धान्त' तथा 'आर्थिक नीति' का पारस्परिक सम्बन्ध (Interrelationship between 'Economic Theory or Principles' and 'Economic Policy')

वास्तव मे आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति में घनिष्ट सम्बन्ध होता है और वे एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। आर्थिक सिद्धान्त किसी कार्य के सम्भावित परिणामो को बताकर आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहयोग देते हैं; तथा आर्थिक नीतियां सिद्धान्तों की कमजोरियों पर प्रकाश डालती हैं और उचित आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण मे सहायता करती हैं। वास्तव में आर्थिक सिद्धान्तों का प्रयोग ही आर्थिक नीतियों में मौजूद होता है। इस प्रकार,

"आर्थिक नीति का अध्ययन आर्थिक सिद्धान्तों का परिचय (introduction) है।

---

[36] दूसरे शब्दों में, वास्तविक संसार को समझने के लिए कुछ मान्यताओं को लेकर चलना तथा 'सरलीकरण' (Simplication) करना जरूरी है; विस्तृत और अनावश्यक सूचना का छोड़ना ही 'सरलीकरण' है और इस 'सरलीकरण' को ही 'अमूर्तता' कहते हैं।

[37] The purpose of economic theory is to explain and predict and, hence, to help towards control.

[38] "The word 'policy' generally refers to the principles that govern action directed towards given ends."

[39] परन्तु वैकल्पिक नीतियों के परिणामो को स्पष्ट रूप से बताते हुए, निस्सन्देह अर्थशास्त्री सर्वोत्तम या उचित नीति के चुनाव में राजनीतिज्ञों या सरकार को महत्त्वपूर्ण टेक्नीकल सहयोग प्रदान करता है; अथवा, यह कहिए कि अर्थशास्त्री अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक नीतियो के मूल्यांकन व उसके बीच चुनाव या निर्णय को प्रभावित करता है।

ऐसा नही है कि नीति एक चीज हो और सिद्धान्त दूसरी चीज; आर्थिक नीति के सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सिद्धान्त होते है ।"[40]

इसके अतिरिक्त हमें एक बात और ध्यान मे रखना चाहिए—

"आर्थिक नीति के सिद्धान्त प्रत्येक स्थिति या अवसर के लिए शीघ्र उत्तर प्रदान नही करते । ये सिद्धान्त आर्थिक नीति के विस्तृत जगत के केवल छोटे पैमाने के नक्शे होते है और ये विस्तार मे व सूक्ष्म विवरण के साथ मार्ग-प्रदर्शन नही करते ।[41] बीसवी शताब्दी की उपलब्धियों (achievements) मे से एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है आर्थिक नीति के अच्छे नक्शो का विकास ।"[42]

आर्थिक नीति के विचार तथा आर्थिक सिद्धान्त व आर्थिक नीति की पारस्परिक निर्भरता को, 'आर्थिक नीति की प्रमुख प्रक्रियाओं के एक व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण' (schematic presentation of major processes of economic policy) के द्वारा, चित्र 1 मे दिखाया गया है—
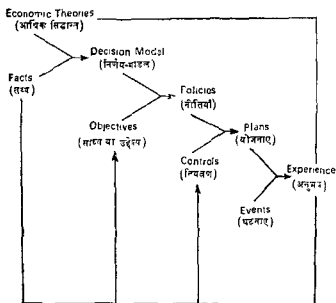
चित्र—1

[40] "A study of economic policy is an introduction to economic principles. Policy is not one thing and principles another; the principles of economic policy are the principles of economics."

[41] "एक नक्शा सम्बन्धित देश (या भूमि) का स्थानापन्न (substitute) नही होता और उसको (अर्थात नक्शे) को पूर्णतया वास्तविक नही मान लेना चाहिए । परन्तु बिना नक्शे के अज्ञात देश या क्षेत्र में रास्ता भूल जाना या खो जाना आसान है ।"

"A map is not a substitute for the land itself and should not be mistaken for reality. Without a map, however, it is easy to get lost in territory as wild and unfamiliar as this is."

[42] "These principles (i e principles of economic policy) do not provide quick answers for every occasion. They are rather a small-scale map of the great world of economic policy and they do not give guidance in detail. The development of better maps of economic policy has been one of the major achievements of the twentieth century."

इस चित्र—1 को समझने के लिए हम बायें से दायें को पढ़ते है।[43]

चित्र—1 मे आर्थिक नीति की प्रमुख प्रक्रियाओ (processes) के व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बातें निकलती है—

1. आर्थिक नीति एक गत्यात्मक तथा निरन्तर प्रक्रिया है—इसके अन्तर्गत विचार तथा कार्य के बीच निरंतर प्रक्रिया होती रहती है जिससे प्राप्त अनुभव के आधार पर आर्थिक नीति मे सामयिक संशोधन या उनका पुनर्निर्माण होता रहता है।[44] आज जो नीति सही या उचित समझी जाती है वह, तेजी से बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियो के कारण, कल उचित नही रह जाती है।

2. आर्थिक नीति एक जटिल बात है और किसी एक आर्थिक नीति के पीछे वास्तविक आकार (real dimensions) बहुत विस्तृत होते है। आर्थिक नीति के आकार के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें शामिल होती है: सैद्धान्तिक विश्लेषण, तथ्य सहित खोज व मापन, माडल निर्माण व प्रयोग, साध्य तथा उद्देश्य, योजनाएँ, सामाजिक नियन्त्रण की रीतियो तथा तकनीको का निर्माण व प्रयोग, तथा घटनाओ का अर्थ निकालना; प्राय: घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनके सम्बन्ध मे नीति-बनाने वालों के लिए भविष्यवाणी व नियंत्रण करना कठिन होता है।[45]

3. आर्थिक सिद्धान्त, नीति समस्याओं को हल करने मे, एक महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। सिद्धान्त एक विश्लेषणात्मक आधार (analytical basis or framework) प्रदान करता है जो कि तथ्यो (facts) से अर्थ निकालने मे, तथा उद्देश्यो को प्राप्त करने की वैकल्पिक (alternative) रीतियों की जानकारी, उनकी तुलना व उनका मूल्यांकन करने मे, सहायक होता है।

4. सिद्धान्त, तथ्यों, उद्देश्यो, नियन्त्रणों, योजनाओ तथा घटनाओ के एक 'जटिल व सूक्ष्म मिश्रण' के परिणामस्वरूप आर्थिक नीति एक कला व विज्ञान दोनों बन जाती है।[46]

---

[43] आर्थिक सिद्धान्तों का वास्तविक तथ्यो से समन्वय (coordination) आर्थिक सिद्धान्त के माडलो (models) को प्रदान करता है जिनका उद्देश्य होता है निर्णय लेना; अर्थात, निर्णय-माडल' (decision models) प्राप्त होते है। (2) आर्थिक माडलों अर्थात निर्णय-माडलों का साध्यों या उद्देश्यो के साथ समन्वय उन नीतियो को प्रदान करता है जिनकी सहायता से उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके। (3) इन उद्देश्य-उन्मुख नीतियो (Objective-oriented policies) को, नियत्रण, (और इसलिए कार्यकरण) के तकनीको के साथ मिलाने से एक योजना (plan) का निर्माण होता है। (4) योजनाओ (plans) तथा घटनाओ (events) की पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप अनुभव (experience) प्राप्त होता है; (निस्सन्देह कई घटनाएं ऐसी होती है जिनको किसी भी योजना द्वारा नियंत्रण करना कठिन या असम्भव होता है)। (5) अनुभव के आधार पर, सफलताओ या असफलताओ का मूल्यांकन (assessment of successes or failures) किया जाता है, और इसके अनुसार योजनाओ का सुधार किया जाता है; (इस बात को चित्र में उन रेखाओं द्वारा दिखाया गया है जो कि 'अनुभव' (experience) से, चित्र के अन्य भागों में, पीछे को वापस जाती हैं)।

[44] Economic policy is a dynamic and continuous process, it involves a constant interaction of thought and action, and in the light of this experience there may be periodic revision or reformation of the policy.

[45] Economic policy is a complex thing, and the real dimensions behind a policy are very broad. "The dimensions of an economic policy involve theoretical analysis, factual investigation and measurement, model building and applications, goals and objectives, plans, the development and application of methods and techniques of social control, and the interpretation of events often beyond the prediction and control of policy-makers."

[46] "The subtle interblending of theory, facts, goals, controls, plans and events often makes economic policy as much an art as a science."

हम आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति की पारस्परिक निर्भरता का एक सारांश (summary) देख चुके हैं। अब हम थोड़े विस्तार के साथ इस बात का अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक नीति के प्रति योगदान (contribution) देता है, तथा आर्थिक नीति किस प्रकार से आर्थिक सिद्धान्त के प्रति योगदान देती है।

3. **आर्थिक सिद्धान्त का आर्थिक नीति के प्रति योगदान** (Contribution of Economic Theory to Economic Policy)

आर्थिक नीति की जड़ें आर्थिक सिद्धान्त में होनी चाहिए तभी आर्थिक नीति प्रभावपूर्ण हो सकेगी। दूसरे शब्दों में, आर्थिक सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण तरीके से आर्थिक नीति के प्रति योगदान देता है। मुख्य योगदान निम्नलिखित हैं—

1. **आर्थिक सिद्धान्त भविष्य की घटनाओं के बताने (prediction) में महत्त्वपूर्ण होता है, और इसलिए यह प्रत्याशित (expected) स्थिति को नियंत्रण करने के लिए, अथवा उस स्थिति के साथ समायोजन (*adjustment*) करने के लिए, नीति-निर्माण में सहयोग देता है।** *सिद्धान्त घटनाओं के* कारण और परिणाम के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है, और इस प्रकार घटनाओं या स्थितियों की व्याख्या (explanation) प्रदान करता है; कारणों की व्याख्या भविष्यवाणी (prediction) को सम्भव बनाती है; भविष्यवाणी के परिणामस्वरूप स्थिति का नियंत्रण (control) हो सकता है। इस प्रकार से सिद्धान्त, नीति-निर्माण में, अथवा व्यवहार में या स्थिति के नियंत्रण में, महत्त्वपूर्ण तरीके से सहायक होता है।

इस बात को नीचे दिये गये कुछ उदाहरणों से स्पष्ट कर सकते हैं—

(i) आर्थिक सिद्धान्तों की सहायता से एक फर्म, उद्योग विशेष में, लागत व कीमत निर्धारक शक्तियों का अध्ययन करके भविष्य के लिए लागतों व कीमतों की प्रवृत्तियों का एक अच्छा अनुमान लगा सकती है, और इसके आधार पर भविष्य के लिए अपनी उत्पादन नीति बना सकती है।

(ii) आर्थिक सिद्धान्त बताता है कि कुल व्यय तथा अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर में सीधा सम्बन्ध होता है। यह सिद्धान्त सरकार को आर्थिक नीति के निर्माण में सहयोग देता है। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यदि सरकार यह देखती है कि अर्थव्यवस्था में कुल व्यय घट रहा है तो सरकार ऐसी नीतियों को लागू करेगी जिससे अर्थव्यवस्था में कुल व्यय बढ़े और भविष्य में बेरोजगारी उत्पन्न न हो।

(iii) आर्थिक सिद्धान्त की सहायता से किसी घटना की भविष्यवाणी की जा सकती है; इस भविष्यवाणी के आधार पर यदि हम घटना या स्थिति के नियंत्रण की नीति (policy of control) नहीं बना सकते तो कम से कम उस घटना के साथ 'समायोजन की नीति' (policy of adjustment) बना सकते हैं। उदाहरणार्थ, "वर्षा आने की भविष्यवाणी की योग्यता हमें मौसम पर नियंत्रण प्रदान नहीं कर सकती, परन्तु इस प्रकार की भविष्यवाणी हमें बरसाती कोट व छाता लेकर बरसात (या मौसम) के साथ समायोजन की तैयारी का अवसर अवश्य देती है।"[47]

2. **आर्थिक सिद्धान्त वैकल्पिक (alternative) नीतियों के बीच, सरकार के लिए, एक विवेकपूर्ण चुनाव (rational choice) का आधार प्रदान करता है।** उदाहरणार्थ, एक देश में मुद्रा-स्फीति (inflation) की स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए दो या तीन वैकल्पिक नीतियाँ हो सकती हैं। आर्थिक सिद्धान्त मुद्रा स्फीति के कारणों पर पर्याप्त प्रकाश डालेगा तथा वैकल्पिक नीतियों के परिणामों को बतायेगा, और इस प्रकार, मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण पाने के लिए, एक उचित नीति का चुनाव करने में सहयोग देगा।

---

[47] "Ability to predict a rainstorm does not give us control over the weather, but does permit us to prepare for it by carrying a raincoat and umbrella."

3. आर्थिक सिद्धान्त की सहायता से अर्थशास्त्री उद्देश्यों में असामंजस्यता (inconsistency of goals) को तथा आर्थिक नीतियों के बीच पारस्परिक विरोध (conflicts of policies) को बता सकता है। कभी-कभी सरकार ऐसी नीतियों को लागू करने का प्रयत्न करने लगती है जो कि आपस में असामंजस्यपूर्ण होती है तब आर्थिक सिद्धान्त की सहायता से अर्थशास्त्री यह बता सकता है कि सरकार परस्पर-विरोधी निर्णयों को ले रही है और यह स्पष्ट कर सकता है कि एक नीति में सफलता का अर्थ होगा दूसरी नीति में असफलता। उदाहरणार्थ, आर्थिक सिद्धान्त बताता है कि एक अल्प-विकसित (undeveloped) देश में प्रारम्भ में यह सम्भव नहीं है कि 'भविष्य के लिए एक ऊँची विकास दर' को तथा 'वर्तमान में एक ऊँचे उपभोग स्तर' को—इन दोनों को साथ-साथ प्राप्त किया जा सके; विकास के प्रारम्भिक चरण में यह आवश्यक है कि वर्तमान में उपभोग के स्तर को नीचा रखा जाये और तभी भविष्य में एक ऊँची विकास दर को प्राप्त किया जा सकेगा। इस प्रकार से आर्थिक सिद्धान्त कुछ उद्देश्यों (और इसलिए कुछ नीतियों) के बीच पारस्परिक विरोध को बताकर सरकार की आर्थिक नीति के निर्माण में योगदान देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक सिद्धान्त, आर्थिक नीति निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है, परन्तु इस सम्बन्ध में हमें आर्थिक सिद्धान्त की सीमाओं (limitations of economic theory) को नहीं भूल जाना चाहिए। अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है जिसके बारे में निश्चित भविष्यवाणी करना कठिन होता है; आर्थिक नियम बहुत निश्चित व सही नहीं होते जिन्हें कि किसी भी दी हुई स्थिति में लागू किया जा सके। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आर्थिक सिद्धान्त ऐसे विश्लेषणात्मक यन्त्रों के समूह (a kit of analytical tools) को प्रदान करता है जो कि आर्थिक नीति निर्माण में महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं।

4. आर्थिक नीति का आर्थिक सिद्धान्त के प्रति योगदान (Contribution of Economic Policy to Economic Theory)

सिद्धान्त आवश्यक होता है अनुभवसिद्ध अध्ययनों (empirical studies) के लिए क्योंकि उचित तथ्यों के चुनाव के लिए एक सैद्धान्तिक ढाँचा जरूरी होता है; परन्तु आर्थिक सिद्धान्तों का निर्माण (या विश्लेषणात्मक अध्ययन) केवल 'तर्क में कसरत' (exercises in logic) होंगे और जिनकी कोई उपयोगिता नहीं होगी यदि वे सिद्धान्त बिना अनुभवसिद्ध तथ्यों (empirical data or facts) के सन्दर्भ में बनाये जाते हैं।

आर्थिक नीतियों तथा अनुभवसिद्ध तथ्यों के प्रयोग सही आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण में सहयोग देते हैं। निम्नलिखित विवरण से आर्थिक नीति का आर्थिक सिद्धान्त के प्रति योगदान स्पष्ट होता है—

1. अनुभवसिद्ध अध्ययन (empirical studies) उन समस्याओं को बताते हैं जिनको हल करने की आवश्यकता है, और इसलिए आर्थिक नीतियों की जरूरत को बताते हैं; तथा आर्थिक नीतियों की आवश्यकता आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण को जन्म देती है। उदाहरणार्थ, यदि अनुभवसिद्ध तथ्य यह बताते हैं कि श्रम-शक्ति का एक बड़ा भाग बेरोजगार है, तो ऐसी स्थिति को हल करने के लिए एक आर्थिक नीति की आवश्यकता होगी, और आर्थिक नीति की यह आवश्यकता 'सैद्धान्तिक यन्त्रों' (analytical tools) या सिद्धान्त (theory) के निर्माण की जरूरत उत्पन्न करेगी ताकि बेरोजगारी के कारणों को ज्ञात करके रोजगार का सिद्धान्त बनाया जा सके।

2. आर्थिक नीतियों के प्रयोगों से उन वास्तविक मान्यताओं (realistic assumptions) के निर्माण में सहायता मिलती है जिन पर आर्थिक सिद्धान्त आधारित होने चाहिए।

3. अनुभवसिद्ध अध्ययन तथा आर्थिक नीतियों के प्रयोग आर्थिक सिद्धान्तों की सत्यता (validity) तथा उनकी व्यवहार्यता (applicability) की एक प्रकार से जाँच का आधार प्रदान

करते हैं। यदि आर्थिक नीतियो के प्रयोग के परिणाम उन परिणामो से भिन्न निकलते हैं जिनकी कि सैद्धान्तिक विश्लेषण के आधार पर आशा थी, तो समस्त स्थिति के पुनः परीक्षण (re-examination) की जरूरत होगी जिसमें कि सिद्धान्तों की सत्यता का परीक्षण शामिल होगा।

5. निष्कर्ष (Conclusion)

आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध मे उपर्युक्त विवेचनो से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

1. आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। आर्थिक सिद्धान्त आर्थिक नीतियो के निर्माण मे सहायता देते हैं ताकि आर्थिक नीतियो के प्रयोग से व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यो की प्राप्ति हो सके तथा आर्थिक समस्याओ को हल किया जा सके। दूसरी ओर अनुभव-सिद्ध तथ्यों का अध्ययन तथा आर्थिक नीतियो के प्रयोग से वास्तविक व सही सिद्धान्तो के निर्माण में सहायता मिलती है।

2. वास्तव में नीति के स्तर (policy level) पर 'विज्ञान तथा नीतिशास्त्र' (science and ethics) का एक प्रकार का मिश्रण होता है। हम विज्ञान इस दृष्टि से कहते हैं कि अर्थशास्त्री साध्यों (ends) या नीति-उद्देश्यों (policy goals) को दिया हुआ मान लेता है, अथवा सामान्यतया स्वीकृत (generally accepted) उद्देश्यो [जैसे, पूर्ण रोजगार, स्थायित्व stabilization] को लेकर चलता है। एक अर्थशास्त्री, एक वैज्ञानिक के रूप में, उद्देश्यो को निर्धारित नही करता और न उनकी अच्छाई-बुराई पर टीका (comment) करता है। वह साध्यो या उद्देश्यो को दिया हुआ मान लेता है और तब आर्थिक नीतियो को प्रस्तुत करता है ताकि उन दिये हुए उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। यहाँ पर भी, अर्थशास्त्री, एक वैज्ञानिक के रूप मे, यह नही बताता कि कौन-सी नीति 'सर्वोत्तम' (best) है; वह केवल वैकल्पिक नीतियो के परिणामों को प्रस्तुत करता है ताकि सरकार उनमे एक विवेकपूर्ण चुनाव कर सके, इस प्रकार अर्थशास्त्री केवल एक विशेषज्ञ या वैज्ञानिक सलाहकार के रूप मे कार्य करता है। यद्यपि अर्थशास्त्री उद्देश्यो या नैतिक निर्णयो (value judgements) को दिया हुआ मान लेता है (**ताकि अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार बना रहे**), तो भी इस बात से मना नही किया जा सकता है कि 'नीति के स्तर' पर नैतिक निर्णय या उद्देश्य, अथवा नीतिशास्त्र, की उपस्थिति (existence) रहती है, और इस दृष्टि से आर्थिक नीति, बिना नीतिशास्त्र के, कोई महत्त्व नही रखती है। अत यह कहा जाता है—**"नीति के स्तर पर अर्थशास्त्र बिना नीतिशास्त्र (ethics) के, एक बिना आधार (या फलक्रम) वाले तुलायन्त्र (या लीवर) की भांति होता है।"**[48]

प्रश्न

1. एक विज्ञान के अर्थ व उसकी विशेषताओ को बताइए तथा अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के दावे की विवेचना कीजिए।

   Explain the concept and characteristics of a science and discuss the claim of economics for a science.

   अथवा

   अर्थशास्त्र को आप एक विज्ञान क्यो मानते हैं?

   How would you distinguish economics as a science? (Kurukshetra, 1970)

   अथवा

   अर्थशास्त्र एक 'निर्बल या मुलायम विज्ञान' (soft science) है। क्या आप इस कथन से सहमति रखते हैं?

   Economics is a 'soft science'. Do you agree with statement.

[48] "At the policy level, economics without ethics, is a lever without a fulcrum."

2. "अर्थशास्त्र जाचने योग्य तथ्यों का अध्ययन करता है जबकि नीतिशास्त्र मूल्य निरूपण तथा कर्तव्यता का। अन्वेषण के ये दोनों क्षेत्र वार्तालाप के एक स्तर पर नहीं है।"—रोबिन्स। इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

"Economics deals with ascertainable facts, ethics with valuation and obligations. The two fields of enquiry are not on the same plane of discourse."—(Robbins) Examine this statement critically.

(Udaipur, Agra, 1966)

अथवा

"अर्थशास्त्री का कार्य विश्लेषण करना है न कि निर्देश (prescribe) करना है।" इस कथन की आलोचना कीजिये और इसकी सत्यता की परख आधुनिक संसार में आर्थिक नियोजन, विकास तथा कल्याण के दृष्टिकोण से कीजिए।

"The role of the economist is to analyze and not to prescribe." Discuss this statement critically and examine its validity in the modern world with its emphasis on economic planning, growth and welfare.

(I.E.S., 1967; Udaipur, M.A., 1968)

अथवा

"अर्थशास्त्र साध्यों (या उद्देश्यों) के प्रति सर्वथा तटस्थ (या उदासीन) है।" विवेचना कीजिये।

"Economics is entirely neutral between ends." Discuss.

(Jodhpur, Jiwaji, Magadh, 1967 A)

अथवा

"मूल्य सिद्धान्त के चारों ओर स्वीकृति का कोई क्षेत्र नहीं है। साम्य केवल साम्य ही है।" विवेचना कीजिये।

"There is no penumbra of approbation around the theory of value. Equilibrium is just equilibrium." Comment.

अथवा

"अर्थशास्त्री एक निर्णायक नहीं होता, बल्कि विशेषज्ञ साक्षी होता है।" विवेचना कीजिए।

"The economist is not to be a jury but an expert witness." Discuss.

अथवा

"अर्थशास्त्री का कार्य केवल व्याख्या या खोज करना ही नहीं बल्कि समर्थन तथा निन्दा करना भी है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

"The function of the economist is not only to explain and explore but also to advocate and condemn." Discuss.

अथवा

"अर्थशास्त्री चुनावों का अध्ययन करता है, उनका मूल्यांकन नहीं करता।" विवेचना कीजिये।

"The economist studies the choices, he does not judge them." Discuss.

अथवा

"अर्थशास्त्री का कार्य एक विशेषज्ञ के रूप में माना जाता है जो बता सकता है कि किन्हीं क्रियाओं से कौनसे परिणाम सम्भव हैं किन्तु जो, अर्थशास्त्री के नाते, उन क्रियाओं की वांछनीयता पर निर्णय नहीं दे सकता।" व्याख्या कीजिये।

"The role of the economist is more and more conceived of as that of the expert who can say what consequences are likely to follow certain actions

but who cannot judge, as an economist, the desirability of these actions." Explain.

[संकेत—क्या अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान ? इस सम्बन्ध में मत-विभेद की पूर्ण विवेचना कीजिए ।]

3. आप आर्थिक नीति से क्या समझते हैं ? आर्थिक नीति निर्माण के बारे में अर्थशास्त्रियों की भूमिका के सम्बन्ध में विवाद की पूर्ण विवेचना कीजिए ।

What do you understand by 'economic policy' ? Discuss fully the nature of controversy on the role of economists in economic policy formulation.

अथवा

"एक अर्थशास्त्री, एक भौतिकशास्त्री की भांति, दो टोप लगा सकता है । सभी नागरिकों की भांति एक अर्थशास्त्री का यह अधिकार है कि वह राष्ट्र के उद्देश्यो की बहस मे भाग ले । वह एक राजनैतिक प्रशासन (political administration) के लिए टेक्नीकल सलाहकार की तरह भी कार्य कर सकता है और इस स्थिति (capacity) मे वह एक अर्थशास्त्री की भांति ही नहीं बल्कि एक राजनैतिक व्यक्ति की तरह भी कार्य कर सकता है ।" इस कथन की विवेचना कीजिये ।

"An economist, like a physicist, can wear two hats. Like all citizens the economist has the right to engage in debate about our national goals. He can also serve as a technical adviser to a political administration and act in this capacity not only as an economist but also as a political person." Discuss.

[संकेत—इन प्रश्नो के उत्तर में आर्थिक नीति के अर्थ को तथा उसके सम्बन्ध में विवाद की पूर्ण विवेचना कीजिए । इस अध्याय मे 'आर्थिक नीति : अर्थ तथा विवाद' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को देखिए ।]

4. 'आर्थिक सिद्धान्त' और 'आर्थिक नीति' को परिभाषित कीजिए; तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिये ।

Define 'economic theory' and 'economic policy'; and discuss their interrelationship.

अथवा

आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के बीच पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिए । क्या आर्थिक नीति भी आर्थिक सिद्धान्त को प्रभावित करती है ?

Discuss the interrelationship between economic theory and economic policy. Does economic policy also influence economic theory.

अथवा

"आर्थिक नीति का अध्ययन आर्थिक सिद्धान्तो का परिचय (introduction) है । ऐसा नही है कि नीति एक चीज हो और सिद्धान्त दूसरी चीज; आर्थिक नीति के सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सिद्धान्त होते हैं ।" इस कथन के सन्दर्भ मे आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिए ।

"A study of economic policy is an introduction to economic principles. Policy is not one thing and principles another; the principles of economic policy are the principles of economics." In the light of this remark discuss the relationship between economic theory and economic policy.

अथवा

"आर्थिक नीति के आकार (dimensions) के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं—सैद्धान्तिक विश्लेषण, तथ्य सहित खोज व मापन, माडल निर्माण व प्रयोग, साध्य तथा

उद्देश्य, योजनाएँ, सामाजिक नियंत्रणों की रीतियों तथा तकनीकों का निर्माण व प्रयोग, तथा घटनाओं का अर्थ निकालना।" इस कथन के सन्दर्भ में आर्थिक नीति के अर्थ को बताते हुए आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।

"The dimensions of an economic policy involve theoretical analysis, factual investigation and measurement, model building and applications, goals and objectives, plans, the development and application of methods and techniques of social control and the interpretation of events." In the light of the above remark explain the concept of economic policy and discuss the interrelationship between economic theory and economic policy.

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर में आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के बीच पारस्परिक सम्बन्ध की पूर्ण विवेचना कीजिए। इस अध्याय में 'आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत समस्त विषय-सामग्री देखिए।]

5. "नीति के स्तर पर, अर्थशास्त्र बिना नीतिशास्त्र (ethics) के, एक बिना आधार वाले तुलायन्त्र की भाँति होता है।" इस कथन के सन्दर्भ में आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक नीति के बीच पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।

   "At the policy level, economics without ethics, is a lever without a fulcrum." In the light of this remark comment on the relationship between economic theory and economic policy.

6. (अ) "अर्थशास्त्री चुनावों का अध्ययन करता है, उनका मूल्यांकन नहीं करता।" विवेचना कीजिए।

   (ब) यदि अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है तो फिर 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' की एक स्पष्ट व पृथक शाखा अस्तित्व में क्यों है?

   (a) "The economist studies the choices, he does not judge them." Discuss.

   (b) If economics is a positive science, then, why is there a distinct and separate branch of 'welfare economics' in existence.

रीति, रीतिविधान तथा अर्थशास्त्र

(Method, Methodolgy and Economics)

अर्थशास्त्र की 'रीति' तथा 'रीतिविधान' के विचार
(THE CONCEPTS OF 'METHOD' AND 'METHODOLOGY' OF ECONOMICS)

शब्द 'रीतिविधान" (Methodology) का कभी-कभी गलत प्रयोग किया जाता है या उसे गलत ढंग से समझा जाता है; शब्द 'रीतिविधान' का अर्थ 'तकनीक' (Technique) या 'रीति' (Method) से नहीं होता। निःसन्देह शब्द 'रीतिविधान' तथा 'रीति' घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं, परन्तु उन दोनों का अर्थ एकसमान नहीं होता है।

शब्द 'रीतिविधान' का अर्थ तर्क या दर्शन (*Logic or philosophy*) से लिया जाता है जो कि एक 'रीति' या 'प्रक्रिया' के पीछे होता है, उस तर्क या दर्शन से लिया जाता है जो कि, किसी समस्या को हल करने के लिए, रीति विशेष के प्रयोग के औचित्य (justification) को बताता है।[1] दूसरे शब्दों में,

> शब्द रीतिविधान "दर्शन की उस शाखा को बताता है जो ज्ञान उत्पन्न करने के लिए अमूर्त सिद्धान्तों तथा अमूर्त विचार के प्रयोग के तरीकों का अध्ययन करता है।"[2]

इसके विपरीत,

> "रीति का अर्थ अनुसंधान (या अध्ययन) करने के लिए व्यवस्थित प्रक्रियाओं से लिया जाता है।"[3]

इसमें सन्देह नहीं है कि दोनों शब्द 'रीतिविधान' तथा 'रीति' निकट रूप से सम्बन्धित होते हैं, परन्तु उनका अर्थ बिलकुल एकसमान नहीं होता—

> "रीतिविधान प्रयोग की जाने वाली रीति के पीछे या उसकी जड़ में होता है तथा उस रीति को समर्थन देता है। एक ही रीतिविधान सम्बन्धी दृष्टिकोण विभिन्न रीतियों को समर्थन प्रदान कर सकता है।"[4]

---

1 The term 'methodology' refers to the logic or philosophy behind procedure or method, to the logic and philosophy which is supposed to justify the use of a given method of procedure in attempting to solve a problem.

2 The term methodology "designates a branch of philosophy that deals with the ways in which abstract principles and abstract thought can be used to generate knowledge."

3 "Method refers to systematic procedures for undertaking research"

4 "Methodology underlies and supports method The same methodological viewpoint may support various methods."

वैज्ञानिक रीति
(SCIENTIFIC METHOD)

1. प्राक्कथन (Introduction)

प्राचीन समय में अर्थशास्त्री दो रीतियों—निगमन रीति (deductive method) तथा आगमन रीति (inductive method) का प्रयोग करते थे। परन्तु इन रीतियों के प्रयोग के सम्बन्ध में प्राचीन अर्थशास्त्रियों मे मतभेद था।

'निगमन रीति' (*Deductive Method*) अथवा 'निगमन प्रक्रिया' (*Deductive Procedure*) के अन्तर्गत किसी सामान्य सत्य या सामान्य मान्यता को लेकर चलते हैं, तत्पश्चात तर्क का प्रयोग करके एक विशिष्ट निष्कर्ष निकालते है। दूसरे शब्दो मे, इस रीति के अन्तर्गत तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है (Under deductive method the process of logic is from general to particular)।[5]

'आगमन रीति' (*Inductive Method*) या 'आगमन प्रक्रिया' (*Inductive Procedure*) निगमन रीति की उल्टी होती है। आगमन रीति के अन्तर्गत तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है। (Under inductive method the process of logic is from particular to general)। इस रीति के अन्तर्गत कुछ विशेष घटनाओं का अवलोकन किया जाता है तथा आंकड़े या तथ्य इकट्ठे किये जाते हैं, और इन आँकड़ो के आधार पर, किसी एक किस्म के सांख्यिकीय विश्लेषण (some type of statistical analysis) का प्रयोग करके, सामान्य निष्कर्ष या सामान्य सिद्धांत प्राप्त किये जाते है।[6]

प्राचीन समय में अर्थशास्त्रियों में इन रीतियों के प्रयोग के सम्बन्ध में मतभेद था। प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्री (old classical economists) का मत था कि अर्थशास्त्र के विकास के लिए केवल निगमन रीति ही उचित है। इसके विपरीत जर्मनी के ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Historical School of Germany) का मत था कि केवल आगमन प्रणाली के द्वारा ही अर्थशास्त्र का विकास सम्भव है। दोनों विचारधाराओ में केवल आंशिक सत्यता थी। मार्शल ने इस मतभेद को समाप्त किया और बताया कि अर्थशास्त्र के उचित विकास के लिए, आवश्यकतानुसार, दोनों रीतियों का प्रयोग जरूरी है।

आधुनिक अर्थशास्त्री 'वैज्ञानिक रीति' (*Scientific Method*) का प्रयोग करते हैं, यह रीति, निगमन तथा आगमन दोनो रीतियों का एक वैज्ञानिक समन्वय (scientific integration) है।

2. वैज्ञानिक रीति की मुख्य बातें (Essentials of Scientific Method)

'वैज्ञानिक रीति' न तो पूर्णतया निगमन दृष्टिकोण (deductive approach) रखती है और न पूर्णतया 'आगमन दृष्टिकोण (inductive approach) रखती है। 'वैज्ञानिक रीति' निगमन तथा आगमन दोनो का एक 'वैज्ञानिक समन्वित रूप' (a scientific integrated form) है।

---

[5] उदाहरणार्थ, हम यह एक सामान्य मान्यता लेकर चलते है कि व्यक्तियों का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है, अर्थात उपभोक्ता के रूप में सभी व्यक्ति अपनी सीमित आय को इस प्रकार व्यय करते हैं कि उनको अधिकतम सतुष्टि प्राप्त हो। अतः एक विशेष व्यक्ति, जैसे अनिलकुमार, भी अपनी आय को इस प्रकार से व्यय करेगा कि उसे अधिकतम संतुष्टि मिले।

[6] उदाहरणार्थ, हम यह देखते है कि किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप 25 व्यक्ति उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने लगते है। इन विशिष्ट अवलोकनों के आधार पर हम यह सामान्य सिद्धान्त प्राप्त करते है कि किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से, साधारणतया उस वस्तु की माँग बढ जाती है।

परन्तु ध्यान रहे कि वैज्ञानिक रीति कोई एक स्थिर रीति नहीं है। विज्ञान की रीतियाँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलती रहती है। एक ही क्षेत्र में वे एक खोजकर्ता (research worker) से दूसरे खोजकर्ता के साथ बदल जाती हैं—इतना ही नहीं बल्कि वे एक ही व्यक्ति के साथ एक खोज से दूसरी खोज में बदल जाती है।[7]

परन्तु सभी प्रकार की वैज्ञानिक खोज (all scientific research) में प्राय: एक सामान्य रूप (common pattern) पाया जाता है। **एक वैज्ञानिक रीति के सामान्य रूप को निम्न पांच चरणों (five steps) में बांटा जा सकता है :**

1. **समस्या का चुनाव** (Selection of the Problem)
2. **अवलोकन** (Observation)
3. **परिकल्पना का निर्माण** (Building of Hypothesis)
4. **निष्कर्ष या प्रेडिक्शन** (Prediction)
5. **जांच** (Verification or Testing)

नीचे हम वैज्ञानिक रीति के पाचों चरणों[8] का विस्तृत विवरण देते हैं :

1. समस्या का चुनाव (Selection of the Problem)

सर्वप्रथम एक अर्थशास्त्री को समस्या को परिभाषित (define) करना होगा अर्थात् यह निर्णय लेना होगा कि वह किस समस्या का अध्ययन करे। इस सम्बन्ध मे कोई सामान्य नियम (general rule) नही दिया जा सकता है, केवल यह कहा जा सकता है कि समस्या ऐसी नही होनी चाहिए जो कि महत्त्वहीन या बहुत मामूली (trivial) हो। समस्या का चुनाव व्यक्तिगत पसन्द (individual preference) तथा 'अच्छे निर्णय' (good judgement) की बात है।

[एक अर्थशास्त्री ऐसी समस्या का चुनाव कर सकता है जिसका प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रयोग न हो, जबकि दूसरा अर्थशास्त्री ऐसी समस्या चुन सकता है जो कि अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जैसे मुद्रा स्फीति (inflation) की समस्या, बेरोजगारी की समस्या या चीनी की मांग का अध्ययन। अध्ययन की जाने वाली समस्या का क्षेत्र बहुत विस्तृत (wide) हो सकता है या बहुत संकुचित (narrow) हो सकता है।]

2. अवलोकन (Observation)

जब समस्या का चुनाव हो जाता है तथा उसको ठीक प्रकार से परिभाषित (define) कर दिया जाता है, तब दूसरा कदम (step) है—**समस्या के सम्बन्ध में 'अवलोकन' (observation) अर्थात् सम्बन्धित तथ्यों व आँकड़ों को एकत्रित करना।**

[उदाहरणार्थ, यदि चीनी की माग का अध्ययन करना है तो अर्थशास्त्री उसकी कीमतें, उत्पादनों, उपभोक्ताओ की आयो, इत्यादि पर आंकड़ो को एकत्रित करेंगे।]

3. परिकल्पना का निर्माण (Building of Hypothesis)

अध्ययन का क्षेत्र कुछ भी हो उससे सम्बन्धित आकडे अर्थात् लिखित अवलोकन (recorded observation) एक निश्चित व्यवहार या परिवर्तन (a certain behaviour or change) को बतायेंगे, मुख्य बात उस व्यवहार की व्याख्या करना है।

---

[7] "There is no such thing as the scientific method The methods of science differ from one discipline to another They even differ from one research worker to another within any given discipline and from one problem to another in the hands of a single research worker."

[8] कुछ अर्थशास्त्री वैज्ञानिक रीति को तीन चरणो (three steps) में ही बाटते हैं—1. परिकल्पना का निर्माण, 2. निष्कर्ष या प्रेडिक्शन, 3 जाच। यहा पर 'समस्या का चुनाव' तथा 'अवलोकन' को पहले चरण 'परिकल्पना का निर्माण' के अन्तर्गत शामिल कर लिया जाता है। कुछ अर्थशास्त्री वैज्ञानिक रीति को चार चरणो मे तोड़ते हैं।

दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिक अवलोकन तथा आंकड़ों का इकट्ठे करने का उद्देश्य घटनाओं की व्याख्या करना होता है। अतः एकत्रित किये गये आंकड़ों या तथ्यों को एक समुचित ढंग (coherent way) से व्यवस्थित (organize) करना तथा तर्क (logic) का प्रयोग करना आवश्यक है ताकि विचाराधीन घटना के होने के कारणों का एक अन्दाज या अनुमान लगा सकें। इस प्रकार एक विशिष्ट घटना या एक प्रकार की कुछ घटनाओं की अनमानित व्याख्या (tentative explanation) के आधार पर,

एकसी घटनाओं की एक सामान्य अनुमानित व्याख्या (a general tentative explanation) दी जाती है, इस सामान्य अनुमानित व्याख्या को ही 'परिकल्पना' (hypothesis) कहते हैं। ध्यान रहे कि एक परिकल्पना बिना जांच किया गया एक अनुमान है (A hypothesis is an unverified hunch)।

"परिकल्पना के निर्माण" में कुछ मान्यताओं (assumptions) को लेकर चलना होता है, इन मान्यताओं का उद्देश्य सरलीकरण (simplification) करना होता है। वास्तविक जगत जटिल (complex) है। किसी घटना को प्रभावित करने वाली अनेक बातें या कारण हो सकते हैं; कुछ कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते है तथा कुछ कम महत्त्वपूर्ण; सभी कारणों का एक साथ अध्ययन नही किया जा सकता है। अत. समस्या को समझने तथा कारण और परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताओं को लेकर चलते हैं, अन्य महत्त्वपूर्ण मान्यताओं को छोड़ देते हैं।

[उदाहरणार्थ, एक फर्म के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए हम यह मानकर चल सकते हैं कि फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है, यद्यपि फर्म का व्यवहार अन्य बातों से भी प्रभावित होता है परन्तु उनको हम कम महत्त्वपूर्ण मानकर छोड देते हैं। इस प्रकार स्थिति सरल हो जाती है तथा फर्म के व्यवहार को समझने में आसानी होती है।]

चूंकि 'परिकल्पना के निर्माण' में 'मान्यताएं' आवश्यक हैं, इसलिए 'परिकल्पनाओं' को कभी-कभी 'मान्यताएं' भी कहा जाता है। चूंकि एक 'परिकल्पना' दो प्रकार के तत्त्वों (जैसे, 'द्रव्य की पूर्ति' तथा 'कीमत') में सम्भावित सम्बन्ध को बताती है इसलिए 'परिकल्पना बनाने' (hypothesis building) को 'सिद्धान्त निर्माण' ('theory building' or 'theorizing') भी कहा जाता है।

4. निष्कर्ष या प्रेडिक्शन (Prediction)

परिकल्पना के निर्माण के पश्चात् अगला कदम है परिकल्पना के आधार पर निर्गमन तर्क (deductive logic) द्वारा निष्कर्ष या प्रेडिक्शन (prediction) निकालना। प्रेडिक्शन के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए :

(i) परिकल्पना सामान्य (general) होती है अर्थात् वह एक ही प्रकार की सभी स्थितियों में लागू होती है। प्रेडिक्शन (या निष्कर्ष) अधिक विशिष्ट (more specific) होते हैं, और वे परिकल्पनाओं से निर्गमन तर्क द्वारा निकाले जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रेडिक्शन (या निष्कर्ष) वे परिकल्पनाएं (hypothesis) हैं जो कि विशिष्ट स्थितियों में लागू की जाती हैं।*

(ii) 'प्रेडिक्शन' (या निष्कर्षों) शब्द के स्थान पर कभी-कभी 'अभिप्राय' या 'परिणाम (*implications*) शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

(iii) 'प्रेडिक्शन' आवश्यक रूप से भविष्य की घटनाओं से सम्बन्धित नहीं होता; परन्तु

* "The hypothesis, once formulated, is general. It applies to all cases of a given kind. Predictions are more specific, and are determined by deductive logic from the hypothesis. One might say they are the hypotheses when applied to particular cases."

प्रेडिक्शन उन घटनाओ से अवश्य सम्बन्धित होता है जिनकी जानकारी पहले नही थी अथवा प्रेडिक्शन (या निष्कर्ष) निकालने के समय पर नही थी। दूसरे शब्दो मे,

"प्रेडिक्शन (prediction) का सम्बन्ध भूतकाल (past), वर्तमान तथा भविष्य की घटनाओं से हो सकता है, यदि इन घटनाओं की जानकारी पहले से या प्रेडिक्शन निकालने के समय पर न हो। उस विशिष्ट प्रकार के प्रेडिक्शन को, जो कि भविष्य से सम्बन्धित होता है, कभी-कभी भविष्यवाणी (forecasting) कहा जाता है।"[10]

यहा पर यह ध्यान रखने की बात है कि वैज्ञानिक रीति के कदम (steps) नम्बर (3) तथा (4) को 'आर्थिक सिद्धान्त' या 'सिद्धान्त' ('economic theory' or 'theory') कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे,

"आर्थिक सिद्धान्त ऐसे कथनों (propositions) का एक समूह है जिनका प्रयोग आर्थिक व्यवहार के विश्लेषण और व्याख्या के लिए किया जाता है और आर्थिक सिद्धान्त में परिकल्पनाओं का निर्माण तथा परिकल्पनाओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष शामिल होते हैं।"[11]

5. **सिद्धान्त की जाँच** (Verification or Testing of the Theory)

जब एक आर्थिक सिद्धान्त का निर्माण हो जाता है तब यह आवश्यक है कि उस 'आर्थिक सिद्धान्त' (economic theory) या 'परिकल्पना' (hypothesis) की जांच की जाये। सिद्धान्त या परिकल्पना की जाच के लिए हम पुन: वास्तविक जगत मे आते है और वास्तविक अनुभव व तथ्यों (real experience or facts) का सहारा लेते हैं। दूसरे शब्दो में,

"यदि सिद्धान्त कई बार (repeatedly) वास्तविक अनुभव व तथ्यों से मेल खाता है तो उसे स्वीकार (accept) कर लिया जाता है। जब हम एक सिद्धान्त या परिकल्पना को स्वीकार कर लेते हैं, तो हम यह कहते हैं कि सिद्धान्त की जाँच हो गयी। परन्तु हम यह नहीं कह सकते हैं कि सिद्धान्त को सही या सच्चा सिद्ध (prove) कर दिया गया है। हम उसको केवल गलत सिद्ध करने में असफल रहे हैं, यह सम्भव है कि भविष्य में कुछ बातें तथा तथ्य वर्तमान सिद्धान्त को गलत साबित कर दें।"[12]

यदि सिद्धान्त वास्तविक अनुभव तथा तथ्यो से मेल नही खाता है तो निम्नलिखित में से कोई एक बात की जाती है—(i) सिद्धान्त को रद्द (reject) कर दिया जाता है और उसके स्थान पर श्रेष्ठ (superior) सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है; अथवा (ii) नये तथ्यो के अनुसार सिद्धान्त में सशोधन कर दिया जाता है।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि सिद्धान्त की जाच किस आधार पर की जाये। इस सम्बन्ध मे दो विचारधाराएं हैं। एक विचारधारा के अनुसार मान्यताओ, जिन पर कि एक सिद्धान्त आधारित होता है, की जाच करनी चाहिए और ऐसा करने मे सम्पूर्ण सिद्धान्त की जांच हो जाती है। (In testing the assumptions of a theory, we are testing the whole theory.)

---

[10] "Predictions can refer to past, present or future events so long as they are not known previous to or at the time of prediction The special kind of prediction that refers to the future is sometimes called forecasting"

[11] "*Economic theory* is such a set of propositions used to interpret and explain economic behaviour including the formulation of hypothesis and the deduction of predictions from hypothesis."

[12] If the theory repeatedly conforms to the real experience or facts in life, we accept the theory. *When we accept a theory (or a hypothesis) we say it is verified But we cannot say that the theory is proved to be true or correct* We have simply failed to disprove it, it is possible that some future events or facts may show it to be false.

इसके विपरीत दूसरी विचारधारा है जिसको मिलटन फ्रीडमेन (Milton Friedman) प्रस्तुत करते हैं। फ्रीडमेन के अनुसार आर्थिक सिद्धान्त की सत्यता को मान्यताओं की वास्तविकता के आधार पर नहीं जांचना चाहिए बल्कि इन मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों या प्रेडिक्शन (prediction) को ही जांचना चाहिए, यदि निष्कर्ष वास्तविकता से मेल खाता है तो आर्थिक सिद्धान्त सही है चाहे मान्यताएं अवास्तविक हों। फ्रीडमेन की विचारधारा को अधिक मान्यता दी जाती है।

चूंकि अर्थशास्त्र में नियंत्रित प्रयोग (controlled experiments) नहीं किये जा सकते हैं इसलिए आर्थिक सिद्धान्तों की जांच के लिए सांख्यिकीय रीतियों (statistical tools) का प्रयोग किया जाता है।

6. निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि एक व्यक्ति वैज्ञानिक खोजों में सदैव उपर्युक्त पांच कदमों-के-क्रम (five-step-order) का प्रयोग करता है। पांचों कदमों में निरन्तर क्रिया तथा प्रतिक्रिया (action and reaction) होती रहती हैं। 'परिकल्पनाएं तथ्यों की व्याख्या करने में सहायता करती हैं। परन्तु अतिरिक्त तथ्य या मौजूदा तथ्यों की नई व्याख्याएं वैज्ञानिकों को अपनी 'परिकल्पनाओं' में परिवर्तन व संशोधन करने के लिए बाध्य कर सकती हैं।[13]

(वैज्ञानिक रीति का एक दृष्टि में सारांश पृष्ठ 91 पर देखिए।)

[14] It should not be inferred that a person always follows a neat five-step-order in scientific investigations. There is a continuous action and reaction among the five steps. "Hypotheses help to explain facts. But additional facts or new interpretations of existing facts may cause scientist to revise their hypotheses."

वैज्ञानिक रीति का एक निगाह में सारांश
(Summary of Scientific Method at One Glance)
1. समस्या का चुनाव
(Selection of Problem)
तथा उसकी परिभाषा
2. समस्या का अवलोकन
(Observation)
[अर्थात सम्बन्धित आंकड़ों (relevant facts) का एकत्रण]
3. परिकल्पनाओं का निर्माण
(Building of Hypotheses)
कुछ मान्यताओं (assumptions) के आधार पर
न. 3 तथा न. 4
मिलकर आर्थिक सिद्धान्त
(Economic Theory)
कहलाते हैं
निर्गमन तर्क (deductive logic)
का प्रयोग किया जाता है
4 निष्कर्ष अर्थात प्रेडिक्शन
(अथवा अभिप्राय या परिणाम)
(Prediction or Implications)
5. सिद्धान्त की जांच
की जाती है वास्तविक अनुभव व तथ्यों की सहायता से
Theory is Tested (with the help of real experience and facts)
सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाता है यदि वह वास्तविक अनुभव व तथ्यों से मेल खाता है
Theory is accepted if it conforms with the real experience and facts
यदि सिद्धान्त वास्तविक अनुभव व तथ्यों से
मेल नहीं खाता है तो उसे अस्वीकार किया जाता है और फिर
या तो (either) नये तथ्यों के अनुसार सिद्धान्त में सुधार (modification) कर लिया जाता है
अथवा (or) सिद्धान्त को रद्द (reject) करके उसके स्थान पर एक श्रेष्ठ (superior) सिद्धान्त बनाया जाता है

रीतिविधान-सम्बन्धी मतविभेद : 'मान्यतावादी' बनाम 'भविष्यवाणीवादी'
[A METHODOLOGICAL CONTROVERSY : 'ASSUMPTIONISTS' VERSUS '*PREDICTIONISTS*']

1. प्राक्कथन (Introduction)

एक अच्छे सिद्धान्त (good theory) की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि वह वास्तविक तथ्यों (real facts) से मेल खाता है, अर्थात एक अच्छा सिद्धान्त वास्तविक या सही (real or valid) होना चाहिए। परन्तु हम किस आधार पर एक सिद्धान्त के वास्तविक होने या सही होने की जाँच (verification or test) कर सकते हैं ? एक आर्थिक सिद्धान्त की जाँच के आधार के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो विचारधाराएं या दृष्टिकोण (approaches or viewpoints) हैं—

(i) एक विचारधारा के अनुसार एक सिद्धान्त की वास्तविकता या सत्यता को उसकी **'मान्यताओं की वास्तविकता'** (*'realism of assumptions'*) के आधार पर जाँचना चाहिए। सुविधा के लिए, इस विचारधारा या दृष्टिकोण को **'मान्यता-सम्बन्धी दृष्टिकोण'** (*'Assumption approach'*) कहा जा सकता है; तथा जो अर्थशास्त्री इस दृष्टिकोण से सहमति रखते हैं उनको **'मान्यतावादी'** (*'Assumptionists'*) कहा जाता है।

(ii) दूसरी विचारधारा के अनुसार एक सिद्धान्त की वास्तविकता या सत्यता को उसकी **'भविष्यवाणियों की वास्तविकता'** (*'realism of predictions'*) के आधार पर जाँचना चाहिए। सुविधा के लिए, इस विचारधारा या दृष्टिकोण को **'भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण'** ('Prediction approach') कहा जा सकता है; तथा जो अर्थशास्त्री इस दृष्टिकोण से सहमति रखते हैं उनको **'भविष्यवाणीवादी'** (*'Predictionists'*) कहा जाता है। इस विचारधारा के मुख्य प्रतिपादक (propounder) अमरीका के शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो. मिल्टन फ्रीडमैन (Milton Friedman of Chicago University) हैं, अतः इस दृष्टिकोण को **'फ्रीडमैन-स्थिति'** (*Friedman's Position*) या, संक्षेप में, **एफ-दृष्टिकोण** (F-twist) भी कहते हैं।

अब हम दोनों दृष्टिकोणों पर अलग-अलग थोड़े विस्तार के साथ विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

2. मान्यता-सम्बन्धी दृष्टिकोण (Assumption Approach)

इस दृष्टिकोण के अनुसार एक सिद्धान्त की वास्तविकता या सत्यता की जाँच के लिए यह जरूरी है कि 'मान्यताओं की वास्तविकता' की जाँच की जाये जिनके आधार पर सिद्धान्त बनाया गया है तथा सिद्धान्त के आन्तरिक तर्क (internal logic) की भी जाँच की जाये जो कि मान्यताओं पर आधारित होता है। इस प्रकार इस विचारधारा या दृष्टिकोण के अनुसार, यदि सिद्धान्त की मान्यताएं वास्तविक व सही हैं (अर्थात वास्तविक अनुभव से मेल खाती हैं), तो सिद्धान्त भी वास्तविक व सही होगा।

इस विचारधारा के अनुसार एक सिद्धान्त की जाँच मान्यताओं में निहित होती है, हमें प्रत्यक्ष रूप से (directly) मान्यताओं की जाँच करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में,

> **'मान्यतावादी विचारधारा' के पीछे मुख्य बात यह है कि यदि सिद्धान्त का तर्क (logic) सही है और यदि मान्यताएं, जिन पर कि तर्क आधारित है, वास्तविकता के बहुत निकट हैं, तो सिद्धान्त भी सही व वास्तविक होगा। इस दृष्टिकोण के अनुसार, हम एक सिद्धान्त की मान्यताओं को जाँच कर लेने से सम्पूर्ण सिद्धान्त की जाँच कर लेते हैं।**[14]

---

[14] The main argument behind this approach is that if the logic of the theory is valid and if the assumptions, on which the logic is based, are reasonably close approximation to reality, then the theory itself must be valid and realistic. Briefly, according to this view, in testing the assumptions of a theory we are testing the whole theory.

[उदाहरणार्थ, 'उत्पादन के सिद्धान्त में हम यह मान लेते हैं कि फर्में या व्यापारी अपने लाभ को अधिकतम करती हैं। 'मान्यतावादी' दृष्टिकोण के अनुसार, यदि 'लाभ को अधिकतम करने की मान्यता' वास्तविक है (अर्थात व्यावहारिक जगत में व्यापारी ऐसा करते हैं), तो उत्पादन का सिद्धान्त, जो कि इस मान्यता पर आधारित है, भी सही और वास्तविक होगा।]

3. भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण अथवा 'एफ-दृष्टिकोण' (*'Prediction Approach' or 'F-twist'*)

प्रो० फ्रीडमेन इस बात को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं कि एक सिद्धान्त की जाँच 'मान्यताओं की वास्तविकता' की जाँच के आधार पर सम्भव है। फ्रीडमेन के अनुसार एक सिद्धान्त की जाँच 'भविष्यवाणियों की वास्तविकता' की जाँच के आधार पर होनी चाहिए। यदि सिद्धान्त की भविष्यवाणियाँ वास्तविक तथ्यों व अनुभव से मेल खाती हैं तो सिद्धान्त वास्तविक व सही होगा, चाहे उसकी मान्यताएं अवास्तविक हों। 'भविष्यवाणियों' तथा 'वास्तविक तथ्यों व अनुभव' की तुलना करने के लिए सांख्यिकीय रीतियों (statistical methods) का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में 'भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण (Prediction approach), एक नियंत्रित वातावरण के अन्तर्गत जाँच करने की रीति के स्थान पर सर्वोत्तम सम्भव रीति को बताता है।[15]

'भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण' अथवा 'फ्रीडमेन की स्थिति' या 'एफ-दृष्टिकोण' (F-twist) को सक्षेप मे, निम्न शब्दो में व्यक्त किया जा सकता है—

> **एक आर्थिक सिद्धान्त की पर्याप्तता व सत्यता की जाँच उसकी 'मान्यताओं की वास्तविकता' के आधार पर नहीं बल्कि उसकी 'भविष्यवाणियों की वास्तविकता' के आधार पर होनी चाहिए। एक परिकल्पना या सिद्धान्त की सत्यता की जांच करने का केवल एक ही उचित तरीका है कि उसकी भविष्यवाणियों की तुलना वास्तविक अनुभव के साथ की जाये। एक सिद्धान्त की जाँच कभी भी उसकी मान्यताओं के आधार पर नहीं की जा सकती है।[16]**

प्रो. फ्रीडमेन अपने दृष्टिकोण के समर्थन में भौतिक विज्ञानो (physical sciences) से एक उदाहरण लेते हैं—वे 'गेलीलियो का नियम' (galileo's law), अर्थात गुरुत्व का नियम या सिद्धांत (Law or theory of Gravity) को लेते है। 'गुरुत्व का नियम' बताता है कि यदि एक वस्तु को पूर्ण निर्वायु (perfect vacuum) मे गिराया जाये तो वह दूरी जो कि वस्तु एक निश्चित समय मे तय करेगी इस सूत्र (formula) द्वारा दी जाती है—$S = \frac{1}{2}gt^2$, जबकि S दूरी को बताता है, t समय को क्षणो में (time in seconds) बताता है जो कि वस्तु गिरने में लेती है, g एक स्थिर सख्या (constant) है जो कि 32 फीट प्रति सेकण्ड प्रति सेकण्ड (32 feet per second per second) के बराबर होती है।

'गुरुत्व के सिद्धान्त' के निर्माण करने मे यह मान लिया जाता है कि वस्तु पूर्ण निर्वायु (perfect vacuum) मे गिरती है। परन्तु वास्तविक जीवन मे पूर्ण निर्वायु की स्थिति नही पायी जाती। पूर्ण निर्वायु की अवास्तविक मान्यता के होते हुए भी गुरुत्व का नियम लगभग सही उतरता है, यदि एक ठोस वस्तु, जैसे, एक ठोस गेद (a compact ball), को वास्तविक वातावरण की दशाओं

[15] As a matter of fact the prediction approach indicates the best possible substitute for testing in a controlled environment.

[16] The adequacy and validity of an economic theory should be judged not on the basis of the realism of its assumptions but on the basis of the accuracy (or realism) of the *predictions of the theory. The only relevent test of the validity of a hypothesis or theory* is the comparison of its predictions with experience. A theory could never be tested by its assumptions.

या हवा (real atmospheric conditions or air) में गिराई जाती है। यह सरल नियम प्रयोगात्मक तथा व्यावहारिक दोनों उद्देश्यों (experimental and practical purposes) के लिए उपयोगी है। शब्द 'निर्वायु' (vacuum) एक सैद्धान्तिक शब्द है और अवास्तविक है। गुरुत्व के सिद्धान्त की जांच 'मान्यता की वास्तविकता' के आधार पर नहीं की जा सकती है, परन्तु इस सिद्धान्त की जांच 'भविष्यवाणी या परिणाम की वास्तविकता' के आधार पर की जा सकती है।

उपर्युक्त उदाहरण के आधार पर प्रो. फ्रीडमेन का विश्वास है कि अर्थशास्त्र मे भी 'अवास्तविक मान्यताएं' सही आर्थिक सिद्धान्तों का निर्माण कर सकती हैं बशर्ते कि सिद्धान्त की भविष्यवाणियां वास्तविक तथ्यों व अनुभव से मेल खाती हों। अतः एक आर्थिक सिद्धान्त की जांच 'मान्यताओं की वास्तविकता' के आधार पर नहीं की जा सकती है, आर्थिक सिद्धान्त की जांच के लिए 'परिणामों या भविष्यवाणियों की वास्तविकता' जरूरी है।

[हम एक आर्थिक उदाहरण द्वारा इस बात को स्पष्ट कर सकते हैं। 'उत्पादन के सिद्धान्त' (Theory of production) के निर्माण मे हम यह मान लेते हैं कि फर्म या व्यापारी अपने लाभ को अधिकतम करते है। इसके बाद हम व्यापारियों के व्यवहार के सम्बन्ध मे एक परिकल्पना या सिद्धान्त बनाते हैं जो कि इस प्रकार से है—साधनों की कीमतों में कमी के उत्तर (response) में, सिद्धान्त बताता है (या भविष्यवाणी करता है) कि व्यापारी अपने उत्पादन को बढ़ायेंगे। 'भविष्यवाणीवादियों' (Predictionists) के अनुसार हमे इस सिद्धान्त की कुशलता या सत्यता को इस मान्यता की वास्तविकता के आधार पर नहीं जांचना चाहिए कि व्यवहार मे व्यापारी अपने लाभ को वास्तव मे अधिकतम करते हैं या नहीं। इस प्रकार की जांच उसी प्रकार से बेकार होगी जिस प्रकार कि 'गुरुत्व के नियम' की जांच इस मान्यता पर की जाये कि वास्तविक जीवन में पूर्ण निर्वायु (Perfect vacuum) होती है या नहीं। उत्पादन के सिद्धान्त की जाच केवल इस बात पर अर्थात इस परिणाम या भविष्यवाणी के आधार पर होनी चाहिए कि साधनों की कीमतों मे कमी के उत्तर में व्यापारी अपने उत्पादन को बढ़ाते हैं या नहीं; यदि बार-बार यह पाया जाता है कि व्यापारी अपने उत्पादन को बढ़ाते हैं तो सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जायेगा। अतः एक आर्थिक सिद्धान्त की जांच 'मान्यताओं की वास्तविकता' के आधार पर नहीं बल्कि 'भविष्यवाणियों की वास्तविकता' के आधार पर होती है।]

अभी तक के विवरण से 'फ्रीडमेन की स्थिति' या 'एफ-दृष्टिकोण' (F-twist) बताता है कि आर्थिक सिद्धान्त की जांच के लिए भविष्यवाणियां महत्त्वपूर्ण होती हैं। एक सिद्धान्त को मान्यताओं की वास्तविकता के आधार पर कभी भी नहीं जांचा जा सकता है तथा 'मान्यताओं' का विचार 'अस्पष्टता से घिरा हुआ है।[17]

परन्तु इस सब का मतलब यह नहीं है कि 'मान्यताएं' बेकार होती हैं और सिद्धान्त के निर्माण में उनका कोई महत्त्व नहीं होता है। सभी अर्थशास्त्री किसी भी आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण में 'मान्यताओं' का प्रयोग करते हैं।

प्रो. फ्रीडमेन के अनुसार, मान्यताएं निम्नलिखित तीन भिन्न परन्तु सम्बन्धित भूमिकाएं अदा करती हैं—(i) एक सिद्धान्त के विवरण या प्रस्तुतीकरण मे मान्यताएं प्रायः एक किफायतपूर्ण तरीके (economical mode) को बताती हैं; (ii) वे (अर्थात मान्यताएं) कभी-कभी अभिप्रायों (implications) के आधार पर एक परिकल्पना (hypothesis) के अप्रत्यक्ष जांच मे सहायता करती है, तथा (iii) कभी-कभी वे (अर्थात मान्यताएं) उन दशाओं को बताने में सुविधाजनक साधनों

[17] Friedmans' position or F-twist described so far indicates that for testing or verification of an economic theory 'predictions' are significant. A theory cannot be tested by the realism of its assumptions and that the very concept of the 'assumptions' of a theory is surrounded with ambiguity.

की भाँति कार्य करती हैं जिनके अन्तर्गत सिद्धान्त के सही उतरने की आशा होती है।[18]

उपर्युक्त तीन बातों में से अन्तिम बात [अर्थात point no. (iii)] से कुछ ऐसा लगता है कि प्रो. फ्रीडमेन अपने आधारभूत दृष्टिकोण (basic stand) को कुछ दूसरी प्रकार से रखते हैं। इस बात को 'गुरुत्व के नियम' अर्थात $S = \frac{1}{2}gt^2$ के द्वारा और स्पष्ट किया जा सकता है। "यदि एक ठोस गेंद गिराई जाती है तो सूत्र (formula) बहुत सही भविष्यवाणी करता है यद्यपि गेंद हवा (air) में गिराई जाती है न कि निर्वायु (vacuum) में। इसके विपरीत, यदि हवा में एक पंख (feather) गिराया जाता है तो सूत्र पर्याप्त रूप से गलत परिणाम या भविष्यवाणी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार सिद्धान्त या सूत्र के पीछे मान्यताएं, विशेषतया निर्वायु की मान्यता, एक ठोस गेंद के सम्बन्ध मे पर्याप्त रूप से वास्तविकता के निकट होती है, परन्तु पंख के सम्बन्ध मे वे वास्तविकता के निकट नही होती। अत: फ्रीडमेन इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि मान्यताएं उन दशाओं को बताने के लिए प्रयोग की जा सकती हैं जिनके अन्तर्गत एक सिद्धान्त सही उतर सकता है, परन्तु वे उन दशाओं को निर्धारित नहीं कर सकती जिनके अन्तर्गत एक सिद्धान्त सत्य या सही होगा। अत: वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि एक सिद्धान्त की जाँच मान्यताओ की वास्तविकता द्वारा नही हो सकती।"[19]

पंख के उदाहरण के परिणाम को हम दूसरे शब्दो मे इस प्रकार भी बता सकते हैं—"भविष्यवाणी की जाँच सिद्धान्त के प्रयोग के क्षेत्र को भी सीमित करती हैं।"[20]

4. 'भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण' अथवा 'एफ-दृष्टिकोण' की आलोचना (Criticism of 'Prediction Approach' or 'F-twist')

एफ-दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे मुख्य आलोचनाए निम्नलिखित हैं—

1. फ्रीडमेन की स्थिति इस सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं है कि वह 'अवास्तविक' मान्यताओं का क्या अर्थ लगाते हैं—

(i) फ्रीडमेन के अनुसार मान्यताए अवास्तविक हो सकती हैं, परन्तु सिद्धान्त सत्य व सही हो सकता है यदि भविष्यवाणियाँ वास्तविक तथ्यो व अनुभव से मेल खाती हैं। यदि अवास्तविक मान्यताओ का अर्थ है कि विचाराधीन समस्या के सम्बन्ध मे अनावश्यक तत्त्व या अनुपयुक्त तत्त्व (irrelevant facts) छोड़ दिये जाते हैं ताकि मुख्य व उपयुक्त (relevant) तथ्यो या चरों (variables) पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके, तो फ्रीडमेन की स्थिति सही या उचित है, परन्तु यह बात बहुत मामूली या साधारण है; सिद्धान्त निर्माण मे, सभी अर्थशास्त्री 'अमूर्तता की प्रक्रिया' (Process of abstraction) से और इस प्रकार 'अवास्तविक मान्यताओं' को आधार बनाने से सहमति रखते हैं।

---

[18] According to Prof. Friedman, the 'assumptions' of a theory play three different, though related, positive roles : (i) they are often an economical mode of describing or presenting a theory; (ii) they sometimes facilitate an indirect test of the hypothesis by its implications; and (iii) they are sometimes a convenient means of specifying the conditions under which the theory is expected to be valid.

[19] "If a compact ball is dropped, the formula yields a very accurate prediction even though the ball falls through the atmosphere and not through a vacuum. On the other hand, if a feather is dropped, in the air, the formula gives a very inaccurate prediction. Thus, the assumptions underlying the formula, especially the assumption of a vacuum, are sufficiently close to reality in the case of a compact ball, but not in the case of feather. Consequently, Friedman concludes, assumptions can be used to specify the circumstances in which a theory holds, but cannot be used to determine the circumstances in which a theory is valid. Hence he argues that realism of assumptions is not a test of a theory."

[20] The result of the example of feather can also be expressed in other words as follows : "Prediction tests also serve to delimit the area of applicability of theory."

(ii) 'मान्यताएँ' इस अर्थ में अवास्तविक हो सकती हैं कि वे 'विशुद्ध' (pure) या 'पूर्ण' (perfect) स्थितियों को लेकर चलें (जैसे, 'विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता', 'विशुद्ध या पूर्ण एकाधिकार', 'पूर्णतया लोचदार मांग', इत्यादि)। इस प्रकार की मान्यताएं केवल 'सरलाकृत' (simplifying) या 'अपूर्ण' (incomplete) होती हैं क्योंकि इस प्रकार की स्थितियां वास्तविक जटिल संसार में नहीं पायी जाती है। परन्तु इस प्रकार की मान्यताएं सैद्धान्तिक विश्लेषण की दृष्टि से उपयोगी होती हैं। दूसरे शब्दों में विशुद्ध स्थिति एक मापदंड (standard) के रूप में कार्य करती हैं जिसके सन्दर्भ में 'व्यवस्थित सामान्यता' प्राप्त की जा सकती है और विशुद्ध स्थिति हमें वास्तव में बताती है कि व्याख्या के लिए हमें अन्य जगह देखना चाहिए।[21]

(iii) एक मान्यता इस अर्थ में अवास्तविक हो सकती है कि वह बिलकुल गलत या झूठी हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार की अवास्तविक मान्यताओं के आधार पर तर्कपूर्ण प्रक्रिया (logical process) से बनाई गयी परिकल्पनाएं (hypotheses) या सिद्धान्त (theories) भी गलत या झूठे होंगे। ऐसी स्थिति मे फ्रीडमेन का दृष्टिकोण ठीक नहीं बैठ सकता।

2. हम यह भी देख चुके है कि फ्रीडमेन ने यह भी स्पष्ट किया है कि मान्यताएं महत्त्वपूर्ण होती हैं। परन्तु फ्रीडमेन का तर्क है कि कुछ घटनाओं की भविष्यवाणी के सम्बन्ध में मान्यताओं का लागू न होना कोई गम्भीर बात नहीं है, जबकि कुछ अन्य दशाओं में मान्यताओं का लागू न होना गम्भीर बात हो सकती है; जैसा कि 'ठोस गेंद बनाम पंख' के सम्बन्ध में देखा जा चुका है। वास्तव में ठीक इसी प्रकार की सम्भावना एक अर्थशास्त्री को इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह सिद्धान्त के पीछे मान्यताओं की वास्तविकता की परीक्षा करे।[22]

वास्तव में किसी भी सिद्धान्त के पीछे अधिकांश मान्यताओं का निर्माण आगमन तथा निगमन के मिश्रण द्वारा किया जाता है; इस प्रकार अन्त में जिन मान्यताओं का प्रयोग किया जाता है वे प्रत्याशित वास्तविक परिणामों से बिलकुल असम्बन्धित नहीं होती।[23] ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रीडमेन का तर्क वैज्ञानिक प्रक्रिया के आगमन-निगमन स्वभाव को अस्वीकार करता है क्योंकि फ्रीडमेन के अनुसार मान्यताओं के बीच चुनाव करने या उनके बीच पसन्दों को बनाने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है जबकि भविष्यवाणियों के बीच हम अपनी पसन्दों का निर्माण कर सकते हैं।[24]

5. निष्कर्ष (Conclusion)

1. दोनों विचारधाराएं या दृष्टिकोण उपयोगी हैं। परन्तु अर्थशास्त्र की रीतिविधान (methodology) के सम्बन्ध में इन दो विपरीत दृष्टिकोणों में से 'भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण' (prediction approach) अधिक शक्तिशाली (strong) है। जहां तक सम्भव हो हमें 'भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण' चुनना चाहिए क्योंकि यह अधिक निश्चित प्रयोगात्मक विज्ञानों या भौतिक

[21] The pure case serves merely as a 'standard for achieving systematic generality' and as a matter of fact it tells us that we must look elsewhere for the explanation.

[22] Friedman made it clear that assumptions also matter. But he argues that for some event a violation of the assumptions is not serious for prediction while in other cases it may be, as in the case of the compact ball versus the feather. Certainly, it is this type of possibility that causes one to examine the realism of assumptions behind a theory.

[23] As a matter of fact "most of the formulations of assumptions underlying a theory are arrived at by a combination of induction and deduction. As a result, the assumptions that are ultimately used are by no means entirely divorced from the results that are expected."

[24] "Friedman's reasoning appears to deny the inductive-deductive nature of the scientific process because he argues that we have no means of forming preferences between assumptions but that we can form preferences between predictions.

विज्ञानों की रीति (method of more exact experimental or physical sciences) है। एक सीमा तक ही अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान में भविष्यवाणी-सम्बन्धी रीति का प्रयोग सम्भव है; अर्थशास्त्र में मनुष्य का अध्ययन किया जाता है, इसलिए इस रीति का प्रयोग अर्थशास्त्र मे कठिन व सीमित हो जाता है, अर्थशास्त्र में बहुत सीमित मात्रा में ही प्रयोग किये जा सकते हैं।

2. यह ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक शब्द—'मान्यताएँ' तथा 'भविष्यवाणियाँ'—एक दिये हुए सन्दर्भ मे (in a given context) एक विशेष प्रकार से प्रयोग किये जाते हैं। एक सिद्धान्त की मान्यताएँ दूसरे सिद्धान्त के लिए भविष्यवाणियाँ हो सकती है।[25]

3. *हम सभी आर्थिक सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण का प्रयोग* नही कर सकते; ऐसा कल्याणवादी अर्थशास्त्र (welfare economics) के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में होता है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नैतिक निर्णय (value judgements) शामिल होते हैं; इसलिए कल्याणवादी अर्थशास्त्र में एक सिद्धान्त की जाँच प्राय. मान्यताओं के आधार पर करते हैं न कि भविष्यवाणियों के आधार पर।

4. 'वास्तविक अर्थशास्त्र' (positive economics) की दृष्टि से भी यह कहना पूर्णतया उचित नही होगा कि 'मान्यतावादी दृष्टिकोण' बेकार है। मान्यताएँ भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं; वास्तव में हम 'अच्छी मान्यताओं' तथा 'खराब मान्यताओं' के बीच भेद करते हैं। एक सिद्धान्त के पीछे प्रयोग मे आने वाली अनेक मान्यताओं का निर्माण आगमन-निगमन प्रक्रिया (inductive-deductive process) द्वारा किया जाता है; और इस दृष्टि से मान्यताएँ वास्तविक जीवन से सम्पर्क रखती हैं अर्थात् उनमे वास्तविकता का अंश होता है। परन्तु साथ ही साथ मान्यताएँ सरल भी होनी चाहिए, अर्थात् 'अमूर्तता की प्रक्रिया' (process of abstraction) द्वारा अनेक ऐसी वास्तविक बातों या मान्यताओ को छोड़ दिया जाता है जो कि सिद्धान्त विशेष के लिए महत्त्वपूर्ण नही हैं और इस दृष्टि से मान्यताएँ अवास्तविक कही जा सकती हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मान्यताओ मे वास्तविकता का अंश भी होता है और साथ ही साथ वे इस दृष्टि से अवास्तविक भी होती हैं कि (सिद्धान्त निर्माण के लिए) उनका सरलीकरण (simplification) भी होना चाहिए। "सिद्धान्त बनाने की कला इस बात में निहित होती है कि व्यवहार के सार को इस प्रकार से छान लिया जाये कि वह एक या कुछ सरल मान्यताओं के अन्तर्गत आ जाये; और तब भविष्यवाणियाँ की जानी चाहिए जिनकी जाँच की जा सके अर्थात् जिनको झूठा साबित करने की सम्भावना हो सके।"[26]

अन्त मे हम समस्त स्थिति को निम्न प्रकार से रख सकते हैं—

वास्तव में दोनों दृष्टिकोण उपयोगी हैं, यद्यपि भविष्यवाणी-सम्बन्धी दृष्टिकोण अधिक शक्तिशाली है अपेक्षाकृत 'मान्यता-सम्बन्धी दृष्टिकोण के।' हमारा उद्देश्य

---

[25] The assumptions of one theory may be the predictions of another.

"For example, in the theory of production, we assume that, *inter alia*, there are certain technical restraints on production, and then we predict what will be the behaviour of costs as output expands. In the theory of aggregate economic models of stabilisation policy, we usually assume, *inter alia*, that the cost curves of the firm has a specific form and then we predict what will be the effect of different policies. The cost curve is a prediction in one theory and an assumption in the other. Our viewpoint differs according to the use we went to make of our theory. In the first case may use the theory to predict the entire behaviour of the costs of a firm or an industry. In the second case we may use the model for predicting the effect of stabilisation policies. If the cost curves are discredited. It does not mean that the stabilisation theory is no good; on the contrary, the stabilisation theory might well be better than any alternative theory in spite of the discrediting of one of the assumptions."

[26] "The art of theorising consists in distilling the essence of behaviour into a simple premise and then proceeding to prediction that are capable of being discredited."

मान्यताओं तथा भविष्यवाणियों दोनों में एक अच्छी सचाई (accuracy) या वास्तविकता प्राप्त करने का प्रयत्न होता है। वास्तव में मान्यताएँ, सिद्धान्त तथा भविष्यवाणियाँ एक तर्क पूर्ण तरीके से सम्बन्धित होती हैं। अर्थशास्त्र को अपने सिद्धान्तों की जाँच प्रत्यक्ष रूप से (भविष्यवाणियों की जाँच करके), अथवा अप्रत्यक्ष रूप से (मान्यताओं की जाँच करके) करनी चाहिए--इस प्रश्न पर मतभेद वास्तव में शाब्दिक अधिक है अपेक्षाकृत विषय-सामग्री के।[27]

परिशिष्ट : विवेकपूर्णता की मान्यता
(APPENDIX) (POSTULATE OF RATIONALITY)

मान्यताओं के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें
(SOME GENERAL OBSERVATIONS ABOUT ASSUMPTIONS OR POSTULATES)

एक आर्थिक सिद्धान्त का निर्माण बिना कुछ मान्यताओं के नहीं किया जा सकता है। एक वास्तविक आर्थिक घटना को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व (या कारण) होते हैं, कुछ तत्त्व अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं और कुछ कम महत्त्वपूर्ण; परन्तु सभी तत्त्वों का अध्ययन एक साथ नहीं किया जा सकता है। किसी आर्थिक समस्या या घटना के अध्ययन के लिए अमहत्त्वपूर्ण मान्यताओं को छोड़ दिया जाता है तथा महत्त्वपूर्ण या अधिक उपयुक्त मान्यताओं को शामिल किया जाता है; ऐसा करने से आर्थिक घटना के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है। मान्यताओं का उद्देश्य है सरलीकरण (simplification) करना ताकि वास्तविक जटिल आर्थिक स्थितियों या घटनाओं की व्याख्या अथवा समझ प्राप्त की जा सके।

> किसी आर्थिक सिद्धान्त के पीछे जो मान्यताएं होती हैं उन्हें ध्यान मे रखना जरूरी है: मान्यताओं को ध्यान में न रखने से इस प्रकार का ढीला गलत-कथन सुनने मे आता है कि कोई चीज "सिद्धान्त मे सही है परन्तु व्यवहार में गलत है," परन्तु कोई भी चीज जो व्यवहार मे गलत है वह सिद्धान्त में कभी सही नही हो सकती है। यदि सिद्धान्त के निष्कर्ष वास्तविक परिणामों से मेल नही खाते है तो, या तो सिद्धान्त स्वयं गलत है, अथवा हम वास्तविक परिस्थितियों तथा आर्थिक सिद्धान्त के पीछे मानी गयी मान्यताओं के बीच अन्तरों पर ध्यान दिये बिना ही आर्थिक सिद्धान्त को व्यावहारिक दशाओं मे लागू करने का (गलत) प्रयत्न करते हैं।[1]

[27] As a matter of fact both the views are useful, though prediction approach is stronger than assumption approach. Our object is to seek reasonable accuracy in both assumptions and predictions. As a matter of fact assumptions, theory and predictions are logically integrated. It appears that the difference of opinion on the question whether economics should test its theories directly (by testing the predictions) or indirectly (by testing the assumptions) is mere terminological than substantive.

[1] The failure to keep assumptions or postulates in mind "may give rise to the loose misstatement, so often heard, that 'something is all right in theory but all wrong in practice'. Nothing that is wrong in practice is ever right in theory. If the conclusions of theory do not harmonise with apparent results in practice, either the theory itself is wrong, or we are attempting to apply the theory to practical conclusions without recognising the difference between actual circumstances and the *assumed conditions* which are postulated in the statement of the theory."

उदाहरणार्थ, मांग का नियम बताता है कि लोग किसी वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेंगे नीची कीमत पर अपेक्षाकृत ऊंची कीमत पर, जबकि अन्य दशाएं या मान्यताएं समान रहती हैं (जैसे, उपभोक्ता की आय, रुचि व फैशन में कोई परिवर्तन नहीं होता, अन्य वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं, इत्यादि)। मांग का नियम बिलकुल सही है यदि उसके पीछे मान्यताओं को ध्यान में रखें। स्पष्ट है कि मान्यताएं महत्त्वपूर्ण हैं तथा हम किसी भी आर्थिक सिद्धान्त के पीछे मान्यताओं को ध्यान से नहीं हटा सकते।

वास्तव में एक आर्थिक सिद्धान्त का निर्माण करने के लिए—(i) हम कुछ सामान्य मान्यताओं को लेकर चलते हैं, जैसे, व्यक्तियों के व्यवहार, उनके भौतिक वातावरण (physical environment), तथा सामाजिक व आर्थिक संस्थाओं, के सम्बन्ध में मान्यताओं को लेकर चलते हैं। (ii) इसके बाद इन मान्यताओं के आधार पर हम तर्क द्वारा निष्कर्ष निकालते हैं। (iii) अन्त में, हम इन निष्कर्षों को वास्तविक अनुभव या तथ्यों की सहायता से जांचते हैं।

अब हम संक्षेप में उन मान्यताओं को बताते हैं जिनको कि आर्थिक सिद्धान्त या विश्लेषण के लिए मान कर चलते हैं।

सामान्य मान्यताएं
(GENERAL ASSUMPTIONS OR POSTULATES)

आर्थिक सिद्धान्त या विश्लेषण के लिए सामान्य मान्यताओं को निम्नलिखित तीन मोटे वर्गों में बांटा जा सकता है—

(i) आर्थिक सिद्धान्त 'व्यक्तियों के व्यवहार' के सम्बन्ध में मान्यता से शुरू करता है। अर्थशास्त्रियों का व्यक्तियों से दो रूप में सम्बन्ध होता है—'उपभोक्ताओं के रूप में' तथा 'व्यापारियों या साहसियों के रूप में'। **यह मान लिया जाता है कि व्यक्ति, उपभोक्ताओं या व्यापारियों के रूप में, विवेकपूर्ण तरीके से कार्य करते हैं।**[2] संक्षेप में इसका अर्थ है कि उपभोक्ता तथा व्यापारी, दोनों, अपने लाभ को अधिकतम करना चाहते हैं; दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अपनी द्राव्यिक आय के व्यय से 'अधिकतम सन्तुष्टि' प्राप्त करना चाहते हैं, और व्यापारी या साहसी अपने 'द्राव्यिक लाभ को अधिकतम' करना चाहते हैं।

[यह मान्यता अर्थात् 'विवेकपूर्णता की मान्यता' आर्थिक सिद्धान्त के लिए एक महत्त्वपूर्ण मान्यता है; इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा।]

(ii) आर्थिक सिद्धान्त को **इस जगत के भौतिक ढांचे** (physical structure) **के सम्बन्ध में सामान्य मान्यताओं को लेकर चलना होता है;** आर्थिक सिद्धान्त कोई भी ऐसी बात को मानकर नहीं चल सकता जो कि भौतिक रूप से असम्भव हो। दूसरे शब्दों में; **इस समूह में मान्यताएं भूगोल, जीवशास्त्र (Biology) तथा जलवायु से सम्बन्धित होती हैं।**[3] उदाहरणार्थ, कृषि-सम्बन्धी समस्याओं का विवेचन करते समय अर्थशास्त्रियों को यह स्वीकार करना पड़ेगा या इस मान्यता को लेकर चलना होगा कि फसल का समय (harvest time) प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है। जैविकीय (biological) तत्त्वों को स्वीकार करना होगा और उन्हें मानकर चलना होगा। उदाहरणार्थ, आर्थिक सिद्धान्त यह मानता है कि प्रतिदिन श्रमिकों को एक निश्चित मात्रा में

---

[2] It is assumed that individuals as consumers or as businessmen act rationally.

[3] Economic Theory has to take into consideration the general assumptions or postulates regarding the physical structure of the world; an economic theory cannot assume anything which is physically impossible. In other words, assumptions in this group are about geography, biology and climate.

आराम चाहिए। इसी प्रकार अर्थशास्त्रियों को यह मानना पड़ेगा कि आर्थिक जगत की एक बुनियादी विशेषता है कि वस्तुएं सीमित होती हैं। वस्तुओं (या साधनों) की सीमितता के परिणामस्वरूप ही अर्थशास्त्र का अस्तित्व (existence) है; अर्थशास्त्र केवल सीमितता का, तथा सीमितता से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन है।

(iii) अर्थशास्त्र को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाओं से सम्बन्धित दशाओं के बारे में मान्यताओं को लेकर चलना होगा।[4] यदि एक देश में पूंजीवादी तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था है तो अर्थशास्त्रियों को, आर्थिक सिद्धान्तों को बनाते समय, इन संस्थाओं से सम्बन्धित दशाओं को स्वीकार करके और मान कर चलना होगा; दूसरी ओर, साम्यवादी व्यवस्था या संस्था के अन्तर्गत अर्थशास्त्रियों को इस संस्था से सम्बन्धित दशाओं को स्वीकार करके और मान कर चलना होगा।

उपर्युक्त सामान्य मान्यताओं में से 'विवेकपूर्णता की मान्यता' अर्थशास्त्र के लिए एक बुनियादी मान्यता है और इसलिए नीचे हम इस मान्यता का एक विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

विवेकपूर्णता की मान्यता
(POSTULATE OF RATIONALITY)

1. प्राक्कथन (Introduction)

आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण के लिए मान्यताएं आवश्यक हैं। मान्यताओं का उद्देश्य सरलीकरण (simplification) है ताकि वास्तविक जटिल आर्थिक स्थितियों को समझा जा सके। अर्थशास्त्र के लिए सामान्य (general) मान्यताएं हैं—(i) अर्थशास्त्र यह मान कर चलता है कि व्यक्ति अपने व्यवहार में विवेकपूर्ण होते हैं। (ii) अर्थशास्त्र वास्तविक जगत के भौतिक ढांचे (physical structure) से सम्बन्धित सामान्य मान्यताओं को लेकर चलता है; दूसरे शब्दों में यह मान्यताएं सम्बन्धित होती है भूगोल, जीवशास्त्र तथा जलवायु से। (iii) अर्थशास्त्र सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशाओं से सम्बन्धित मान्यताओं को लेकर चलता है।

साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि उपर्युक्त सामान्य मान्यताएं सही हैं तथा आर्थिक परिकल्पनाएं और सिद्धान्त (economic hypotheses and theories), इन मान्यताओं की एक शृंखलाओं (series) के आधार पर तर्क द्वारा निकाले जाते हैं, तथा अन्त में सिद्धान्तों की जांच वास्तविक जगत के अनुभव या तथ्यों द्वारा की जाती है।

अर्थशास्त्र के लिए 'विवेकपूर्णता की मान्यता' एक महत्त्वपूर्ण तथा आधारभूत मान्यता है। इसलिए इस मान्यता की एक विस्तृत विवेचना आवश्यक है ताकि इसके अर्थ व अभिप्रायों को ठीक प्रकार से समझा जा सके।

2. विवेकपूर्णता की मान्यता : अर्थ तथा अभिप्राय (Postulate of Rationality : Meaning and Implications)

आर्थिक दृष्टि से एक व्यक्ति विवेकपूर्ण (rational) माना जाता है; वह अपने 'चुनाव-करने के व्यवहार' (choice-making behaviour) के सम्बन्ध में विवेकपूर्ण माना जाता है, अर्थात साधनों व वस्तुओं के बंटन (allocation) के सम्बन्ध में विवेकपूर्ण माना जाता है; और इसलिए यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री है 'साधनों व वस्तुओं का विवेकपूर्ण बंटन'।

एक वास्तविक मनुष्य दो प्रकार के उद्देश्यों से प्रेरित होता है—आर्थिक तथा अनार्थिक। आर्थिक उद्देश्य का अर्थ है अधिकतम सन्तुष्टि या अधिकतम लाभ को प्राप्त करने की इच्छा। अन्य प्रकार के उद्देश्य, जैसे धार्मिक तथा सामाजिक उद्देश्य, अनार्थिक उद्देश्य होते हैं। वास्तविक जीवन में

[4] Economics has to accept the assumptions regarding conditions relating to social, economic and political institutions.

मनुष्य का व्यवहार दोनों प्रकार के उद्देश्यों से प्रभावित होता है। यद्यपि, अधिकांश स्थितियों में, इन दोनों उद्देश्यों को अलग करना कठिन होता है, परन्तु फिर भी आर्थिक सिद्धान्त के लिए आर्थिक उद्देश्य ही महत्त्वपूर्ण व उपयुक्त (relevant) होता है।

इस प्रकार 'विवेकपूर्णता की मान्यता' का सम्बन्ध आर्थिक उद्देश्य से होता है। अब हम 'विवेकपूर्णता की मान्यता' को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं—

> **उपभोक्ताओं व व्यापारियों के रूप में व्यक्ति 'निजी-हित' या 'निजी-लाभ' के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं। यह भी माना जाता है कि उस 'निजी-हित' को अधिकतम करने के लिए व्यक्ति 'विवेकपूर्ण तरीके से' व्यवहार करते हैं। दूसरे शब्दों में, निजी-हित मुख्य-प्रेरकशक्ति (prime-mover) है तथा 'विवेकपूर्ण व्यवहार' वह प्रक्रिया (process) है जिसके द्वारा 'निजी-हित' को अधिकतम किया जाता है या 'किसी मात्रा' को अधिकतम किया जाता है। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता अपनी द्राविक आय को व्यय करने से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहते हैं तथा व्यापारी या साहसी द्राविक-लाभों को अधिकतम करना चाहते हैं। लांगे (Lange) के शब्दों में, "एक आर्थिक इकाई विवेकपूर्ण तरीके से व्यवहार करती हुई तब कही जाती है जबकि उसका उद्देश्य किसी मात्रा को अधिकतम करना होता है।[5]**

अर्थशास्त्र में 'सामान्य प्रवृत्तियों' (general tendencies) अथवा 'आर्थिक नियमों' को इस मान्यता अर्थात् 'विवेकपूर्णता की मान्यता' के आधार पर निकाला जाता है।

निम्नलिखित बातें 'विवेकपूर्णता की मान्यता' के अर्थ तथा अभिप्रायों को और अच्छी प्रकार से स्पष्ट करती हैं—

1. **एक व्यक्ति का 'विवेकपूर्णता का व्यवहार'** (*rationality behaviour*) **तथा 'अनुकूलतम करने का व्यवहार'** (*optimising behaviour*) **एक-दूसरे से निकट रूप में सम्बन्धित हैं।** 'अनुकूलतम करने' का अर्थ है : दी हुई परिस्थितियों में 'किसी मात्रा का अधिकतम करना' अथवा 'किसी मात्रा का न्यूनतम करना'। उदाहरणार्थ दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत एक साहसी के 'अनुकूलतम करने के व्यवहार' का अर्थ है द्राविक लाभ को अधिकतम करना अथवा उत्पादन-लागत को न्यूनतम करना। इसी प्रकार व्यवहार के विभिन्न विकल्पों के बीच चुनाव की दृष्टि से, एक विवेकपूर्ण उपभोक्ता उस विकल्प या कार्य को चुनेगा जो कि उसको 'अधिकतम सतुष्टि' प्रदान करे अथवा 'न्यूनतम असन्तुष्टि' प्रदान करे। [उदाहरणार्थ, विभिन्न कीमतों पर एक ही प्रकार की वस्तुओं के बीच चुनाव करने का अवसर देने पर एक विवेकपूर्ण व्यक्ति (अधिकतम सतुष्टि के लिए) सबसे सस्ती वस्तु को चुनेगा अथवा, एक ही वेतन-दर पर विभिन्न अरुचिकर कार्यों या रोजगारों के बीच चुनाव करने का अवसर देने पर

---

[5] Individuals (as consumers and businessmen) are motivated by 'self-interest', by the motive of personal gain. It is further assumed that individuals behave 'rationally' to maximise that self-interest. In other words, self-interest is the prime-mover and rational behaviour is the process of maximisation of 'self-interest' or maximisation of 'some magnitude' This implies that consumers seek to maximise satisfaction from spending their money income and that businessmen or entrepreneurs seek maximum money profits To use the words of Lange, "An economic unit is said to act rationally when its objective is the maximisation of a magnitude."

एक विवेकपूर्ण व्यक्ति उस रोजगार को चुनेगा जो कि उसे 'न्यूनतम अरुचिकर' लगता है।[6]

अतः 'विवेकपूर्णता' तथा 'अनुकूलतम करने की क्रिया' ('rationality' and 'optimisation') आर्थिक सिद्धान्त के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा दोनों बहुत ही निकट रूप से सम्बन्धित है।

2 अर्थशास्त्र में 'विवेकपूर्णता की मान्यता' के पीछे कोई नैतिक आधार नहीं होता है; अर्थात मनुष्य के व्यवहार को विवेकपूर्ण या अविवेकपूर्ण केवल इसलिए नहीं कहा जायेगा कि वह नैतिक दृष्टि से अच्छा या बुरा है।[7] आर्थिक सिद्धान्त में, विवेकपूर्ण व्यवहार का अर्थ है संगत तथा उद्देश्यपूर्ण व्यवहार (*Consistent and purposive behaviour*); अविवेकपूर्ण व्यवहार का अर्थ है जो कि असंगत तथा अ-उद्देश्यपूर्ण हो।[8]

'संगत-व्यवहार' इस मान्यता पर आधारित है कि एक उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं या वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के लिए अपनी पसन्दों को एक स्पष्ट और निश्चित क्रम में रख सकता है। इसका अभिप्राय है--

"(अ) व्यक्ति को अपने समक्ष सभी विकल्पों (alternatives) की पूर्ण जानकारी होती है।

"(ब) ये विकल्प स्थिर होते हैं।

"(स) व्यक्ति को प्रत्येक विकल्प के परिणाम की जानकारी होती है।

"(द) उसका व्यवहार इस प्रकार का होता है कि वह किसी 'मात्रा' या 'चीज' को अधिकतम करता है, जबकि वह 'चीज' सीमान्त ह्रास नियम (law of marginal diminution) से प्रभावित होती है।"[9]

उपभोक्ता-व्यवहार के 'उपयोगिता-सिद्धान्त' तथा 'तटस्थता वक्र विश्लेषण' के अन्तर्गत

---

[6] Similarly, given a choice among several lines of conduct, a rational consumer will choose that course of action which promises him either the maximum satisfaction or minimum dissatisfaction "For example, if offered a choice between articles of the same kind at different prices, the rational individual will choose the cheapest (to get maximum satisfaction). Or, if offered a number of distasteful jobs all at the same rate of pay, the rational individual will choose that one which promises to be least distasteful."

[7] आम बोलचाल की भाषा में 'विवेकपूर्ण व्यवहार' का अर्थ प्रायः उस व्यवहार से लिया जाता है जो कि नैतिक दृष्टि से अच्छा हो। परन्तु अर्थशास्त्र में मनुष्य के व्यवहार को 'विवेकपूर्ण' केवल इसलिए नहीं कहा जायेगा कि वह नैतिक दृष्टि से अच्छा है। एक व्यक्ति शराब पर व्यय को प्रथम स्थान (या प्रथम चुनाव) दे सकता है और अच्छे भोजन पर व्यय को दूसरा स्थान (या दूसरा चुनाव) दे सकता है, और ऐसे व्यवहार को अर्थशास्त्र में विवेकपूर्ण व्यवहार कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में, आर्थिक सिद्धान्त के लिए एक व्यक्ति के व्यवहार को नैतिक आधार पर 'विवेकपूर्ण व्यवहार' (rational behaviour) तथा 'अविवेकपूर्ण व्यवहार' (irrational behaviour) में नहीं बाँटा जा सकता; अथवा यह कहिए कि अर्थशास्त्र में इन शब्दों का प्रयोग कोई नैतिक महत्त्व नहीं रखता।

[8] In economic theory *rational behaviour* means *consistent and purposive behaviour; irrational behaviour* means that behaviour which is *inconsistent and not purposive.*

[9] 'Consistent behaviour' is based on the assumption that a consumer has well-defined or well-ordered preferences among goods or combination of goods, that is, he can construct a definite scale of preferences for goods. This implies:

"(a) that the individual has full knowledge of alternatives open to him

"(b) that the alternatives are fixed.

"(c) that the individual knows the outcome of every alternative, and

"(d) that he behaves in such a way as to maximise 'something' which is subject to the law of marginal diminution."

अधिकतम की जाने वाली 'चीज' है 'उपयोगिता' (या सन्तुष्टि)। तटस्थता वक्रो के शब्दो मे, एक उपभोक्ता अपनी उपयोगिता या सतुष्टि को तब अधिकतम करता है जबकि वह, अपनी दी हुई द्राव्यिक आय (अर्थात बजट) के अन्तर्गत, सबसे ऊँची तटस्थता रेखा पर पहुँचता है।

उपभोक्ता-व्यवहार के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त (Revealed Preference Theory of Consumer Behaviour) के अन्तर्गत 'संगत-व्यवहार' का अर्थ निम्नलिखित विख्यात 'संगति-प्रमेय' (Consistency theorem) मे मौजूद है—

> 'यदि सयोग A को पसन्द किया जाता है संयोग B के स्थान पर, तथा सयोग B को पसन्द किया जाता है सयोग C के स्थान पर, तो संयोग A को पसन्द किया जायेगा C के स्थान पर।' इस प्रकार के 'सगत-व्यवहार' को 'विवेकपूर्ण व्यवहार' कहा जायेगा।

परन्तु रोबिन्स के अनुसार इस प्रकार के सगत-व्यवहार को 'विवेकपूर्ण व्यवहार' कहना एक सकीर्ण दृष्टिकोण (narrow approach) है। प्रो. रोबिन्स एक विस्तृत दृष्टिकोण लेना चाहते हैं और वह 'विवेकपूर्णता की मान्यता' के अर्थ को 'उद्देश्यपूर्ण व्यवहार' (purposive behaviour) के शब्द द्वारा बताना अधिक उचित समझते है अपेक्षाकृत संगत-व्यवहार शब्द के।

अत हम 'उद्देश्यपूर्ण व्यवहार' के अर्थ तथा अभिप्राय (meaning and implications of purposive behaviour) की विवेचना थोड़े विस्तार के साथ प्रस्तुत करते हैं। निःसन्देह जब एक उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना चाहता है, तो उसके समक्ष एक उद्देश्य (purpose) होता है: 'उपयोगिता या सतुष्टि को अधिकतम करने का उद्देश्य', अतः उसका व्यवहार 'उद्देश्यपूर्ण व्यवहार' है। अब हम इस बात की विवेचना करते हैं कि 'सगत व्यवहार' किस प्रकार से संकीर्ण दृष्टिकोण (narrow approach) रखता है—

(i) रोबिन्स के अनुसार कुछ परिस्थितियो के अन्तर्गत वस्तुओ के बीच चुनाव करने मे 'पूर्णरूप से संगत व्यवहार' अविवेकपूर्ण हो सकता है, क्योकि जो समय और ध्यान निश्चित व सही तुलनाओ (उपयोगिताओं के सन्दर्भ मे) व्यय किया जाता है उसको कुछ अन्य तरीको द्वारा अधिक अच्छी तरह से व्यय किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपयोगिता की तुलना करने मे जो समय व शक्ति लगती है वह कही अधिक होगी लाभ (gain) की तुलना मे। इसका अभिप्राय है कि कुछ दशाओं में 'सीमान्त उपयोगिता के सम्बन्ध मे चिन्ता न करने की सीमान्त उपयोगिता' एक तत्त्व है जिस पर विचार करना होगा। रोबिन्स के अनुसार इस पर, एक औपचारिक अर्थ (formal sense) में, विचार किया जा सकता है यदि विभिन्न मूल्याकनों (valuations) के बीच असगति (inconsistency) के लिए कुछ सीमा (या सीमाओ के ढाँचे) की आज्ञा दी जाती है।[10]

(ii) इसके अतिरिक्त, यह बात सदैव सही नही होती कि आर्थिक सामान्यताएं या नियम केवल 'पूर्णतया सगत स्थितियो' की ही व्याख्या कर सकते है। साध्यो (या उद्देश्यों) के सन्दर्भ में साधन सीमित हो सकते है, यद्यपि साध्य असंगत (inconsistent) हो सकते हैं। विनिमय, उत्पादन, उच्चावचन (fluctuation)—ये सब बातें ऐसी दुनिया मे होती हैं जिसमे कि व्यक्ति अपने कार्यों

10 Under certain circumstances, according to Robbins, it may be irrational to be completely consistent as between commodities just because the time and attention which exact comparison require are better spent in other ways. In other words, the time and energy required in comparisons of utility expected from different commodities may far outweigh the gain. Under certain conditions, *the marginal utility of not bothering about marginal utility* is a factor to be taken account of. According to Robbins, it can be taken into account in a formal sense by permitting a certain margin (or structure of margins) of inconsistency between particular valuations.

के पूर्ण अभिप्रायों को नहीं जानते। यह प्रायः असंगत (या अविवेकपूर्ण) होता है कि उपभोक्ताओं की माँग की पूर्णरूप से सन्तुष्टि की जाये और साथ ही साथ विदेशी वस्तुओं के आयात (import) को, प्रशुल्को (tarrifs), या इसी प्रकार के रोकों द्वारा, सीमित या कम कर दिया जाये। परन्तु प्रायः ऐसा किया जाता है क्योंकि इसके पीछे एक उद्देश्य होता है; और निःसन्देह आर्थिक सिद्धान्त या नियमों द्वारा इस प्रकार के कार्य के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थिति की व्याख्या की जा सकती है।[11]

अतः रोबिन्स के अनुसार, यह कहना अधिक उचित होगा कि विवेकपूर्णता की मान्यता का अर्थ है—'उद्देश्यपूर्ण कार्य' (purposive action) अथवा 'उद्देश्यपूर्ण व्यवहार' (purposive behaviour)। यह कहा जा सकता है कि "यदि व्यवहार को उद्देश्यपूर्ण नहीं समझा जाता है तो साधनों-व-उद्देश्यों के सम्बन्धों का, जो कि अर्थशास्त्र अध्ययन करता है, कोई अर्थ नहीं रह जाता। अतः, यदि कोई कार्य उद्देश्यपूर्ण नहीं है तो यह तर्क किया जा सकता है कि कोई आर्थिक बात उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं है कि सभी उद्देश्यपूर्ण कार्य पूर्णतया संगत होते हैं।"[12]

3. विवेकपूर्णता की मान्यता मनोवैज्ञानिकों के अनुभव-सिद्ध अध्ययनों (empirical studies by psychologists) पर आधारित नहीं होती। यह मान्यता तो प्रत्येक व्यक्ति के सामान्य अनुभव पर आधारित है तथा विश्लेषणकर्ता के इस विश्वास पर आधारित है कि यह व्यक्तियों के सामान्य व्यवहार का प्रतिनिधित्व करती है।[13]

परन्तु प्रो. नाईट (Knight) के अनुसार विवेकपूर्णता की मान्यता इस दृष्टि से एक अनुभव-सिद्ध मान्यता (empirical assumption) है कि प्रत्येक स्थिति में विवेकपूर्णता की मान्यता के आधार पर तर्क द्वारा निकाले गये निष्कर्षों की, वास्तविक अवलोकनों या अनुभव (real observations or experience) के साथ तुलना करके, जाँच की जा सकती है। दूसरे शब्दों में,

"इस मान्यता के प्रयोग का औचित्य तब ही होगा जबकि इसके आधार पर तर्क द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अनुभव-सिद्ध अवलोकन (empirical observation) के साथ एक अच्छी मात्रा तक मेल खावें। अन्यथा यह मान्यता ऐसे निष्कर्षों को देगी जो कि वास्तविक तथ्यों के सन्दर्भ में सही नहीं होंगे। यदि विवेकपूर्णता की मान्यता के द्वारा निकाले गये नियमों को एक ऐसे

---

[11] "Further, it is not always true that economic generalisations or laws are limited to the explanation of situations in which action is perfectly consistent. Means may be scarce in relation to ends, even though the ends be inconsistent. Exchange, production, fluctuation—all take place in a world in which people do not know the full implications of what they are doing. It is often inconsistent (or irrational) to wish at once for the fullest satisfaction of consumer's demand, and at the same time to impede the import of foreign goods by tarrifs or such like obstacles. Yet it is frequently done because there is a purpose behind it; and economic theory or laws can certainly explain the situation resulting from such action.

[12] Hence, it is better to say that the 'postulate of rationality' means 'purposive action' or 'purposive behaviour'. It can be said that if "behaviour is not conceived of as purposive, then the conception of the means-end relationship which economics studies has no meaning. So if there were no purposive action, it could be argued that there were no economic phenomenon. But to say this is not to say in the least that all purposive action is completely consistent."

[13] Postulate of rationality is not based on empirical studies by psychologists. Rather it is usually justified by an appeal to the 'common experience of everyone' and is based upon the analyst's belief that it is representative of 'typical' experience.

आधार का कार्य करना है जिससे वास्तविक जीवन मे पायी जाने वाली आर्थिक इकाइयो के निर्णयों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सके, तो इस मान्यता को एक अनुभव-सिद्ध परिकल्पना (empirical hypothesis) मानना चाहिए।"[14]

उदाहरणार्थ, यह मान्यता कि एक उत्पादक विवेकपूर्ण तरीके से कार्य करता है अर्थात अपने द्राव्यिक लाभ को अधिकतम करने की दृष्टि से कार्य करता है, की पुष्टि (verification), व्यावहारिक जीवन मे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे, एक सतोषजनक सीमा तक हो जाती है। अत. एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में विवेकपूर्णता की मान्यता सरलीकरण के एक उपयोगी साधन या यन्त्र का कार्य करती है।

परन्तु उपभोक्ता के व्यवहार के सम्बन्ध मे इस मान्यता (अर्थात सतुष्टि या उपयोगिता को अधिकतम करने की बात) की पुष्टि कठिन होती है क्योंकि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक धारणा है जिसको प्रत्यक्ष रूप से नही देखा जा सकता है (जैसे कि हम द्राव्यिक लाभ के सम्बन्ध में कर सकते हैं)। उपभोक्ताओ के विवेकपूर्ण व्यवहार की जांच या पुष्टि के लिए, पूजीवादी अर्थव्यवस्था में, केवल कुछ अप्रत्यक्ष तरीके ही प्रयोग मे लाये जा सकते हैं। दूसरे शब्दो में, निर्णय-स्वरूपो की एकरूपताएं (uniformities) भिन्न होंगी जबकि उपयोगिता को अधिकतम किया जाता है अपेक्षाकृत जबकि उपयोगिता को अधिकतम नही किया जाता है।[15]

3. विवेकपूर्णता की मान्यता की आलोचना तथा कठिनाइयां (Criticism and difficulties of the Postulate of Rationality)

व्यावहारिक जीवन में मनुष्य सदैव विवेकपूर्ण नही होता, उसके कार्य केवल 'विवेकपूर्णता' या 'सचेत गणनाओ' (conscious calculations) से ही नही बल्कि वे अनेक अन्य तत्त्वो से भी प्रभावित होते हैं। इस प्रकार यह कहा जाता है कि विवेकपूर्णता की मान्यता अवास्तविक (*unrealistic*) है। इस सन्दर्भ मे निम्न बातें प्रकाश डालती हैं—

1. अनेक बार मनुष्य का कार्य सहजप्रेरणात्मक (instinctive) होता है,[16] इस प्रकार अर्थशास्त्र जिस मनुष्य का अध्ययन करता है वह पूर्णतया विवेकपूर्ण नही होता, उसका व्यवहार उस

[14] "The use of the postulate is justified only when the logical deductions agree with the results of empirical observation with an acceptable degree of approximation. Otherwise, the postulate would lead us to make predictions which fail to be borne out by observed facts ... *If the laws deduced from the postulate of rationality are to serve as a basis for* making predictions about the decisions of units encountered in experience, this postulate must be treated as an empirical hypothesis."

[15] "But the verification of the postulate in the case of consumer behaviour (that is, maximisation of utility or satisfaction) becomes difficult because utility is a psychological concept and cannot be directly observed (as we can do in the case of money profit). In the case of the verification of the rationality behaviour of the consumer only some indirect devices may be used for verification in a capitalist society In other words, the uniformities of decision patterns are different when utility is maximised then when it is not maximised."

[16] A distinction is made between 'instinctive behaviour' and 'rational behaviour' by psychologists "In the case of rational behaviour the mind of man plays an active part in the determination of action In the case of instinctive behaviour the part that mind plays is neither active nor immediate "

Generally lower forms of animals act instinctively Sometimes men also act instinctively Under instinctive behaviour a man may act mechanically without the active use or involvement of the mind, or, he may act automatically on the basis of some stored up knowledge in the mind without taking into consideration the differences in the present situation [illegible]mparison to the past situation.

सीमा तक अज्ञात (unpredictable) हो जाता है जिस सीमा तक कि वह सहज प्रेरणात्मक होता है।[17]

[परन्तु आर्थिक सिद्धान्त को मनुष्य के सहज प्रेरणात्मक स्वभाव की उपेक्षा (ignore) करनी पड़ती है; आर्थिक सिद्धान्त मनुष्य को केवल एक विवेकपूर्ण जीव मानकर ही चलता है क्योंकि तभी उसके व्यवहार की भविष्यवाणी (prediction) की जा सकती है तथा अर्थशास्त्र के नियमों या सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है।]

2. वास्तविक जीवन में आदतें तथा परम्पराएं मनुष्य के विवेकपूर्ण व्यवहार को प्रभावित करती हैं। व्यावहारिक जीवन मे एक व्यक्ति विवेकपूर्ण तरीके से कार्य नहीं कर पाता है क्योंकि आदतें, परम्पराएं तथा सामाजिक रीति-रिवाज उसे प्रभावित व संशोधन (modify) करती हैं।

3. विवेकपूर्णता की मान्यता के पीछे निम्न मान्यताएं होती हैं—पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दूरदर्शिता, तथा पसंदों के एक निश्चित पैमाने का निर्माण; परन्तु व्यावहारिक जीवन में ये मान्यताएं पूर्णरूप से कार्य नहीं करती हैं।[18] वास्तविक जगत मे (उपभोक्ताओं या व्यापारियों के रूप में) व्यक्तियों को वैकल्पिक कार्यों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता; वैकल्पिक कार्यों के परिणामों के मूल्यांकन के लिए व्यक्तियों के पास पूर्ण दूरदर्शिता नहीं होती, वे पसन्दों के एक निश्चित व सही पैमाने का निर्माण नहीं कर सकते। इस प्रकार व्यावहारिक जीवन मे व्यक्ति पूर्ण विवेकपूर्णता (perfect rationality) के साथ कार्य नहीं करते और न कर सकते हैं।[19]

4. मनुष्य का व्यवहार अल्पकाल की दृष्टि से विवेकपूर्ण हो सकता है, परन्तु वही व्यवहार दीर्घकाल की दृष्टि से अविवेकपूर्ण हो सकता है। हम एक आँख से विवेकपूर्ण रहे हैं तथा दूसरी आंख से अविवेकपूर्ण।[20] अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने (अथवा अपने जीवन-स्तर को अधिकतम करने) के लिए हम अपने साधनों का अन्धाधुन्ध (recklessly) प्रयोग करते रहे हैं और प्रकृति का शोषण करते रहे हैं, तथा इस प्रकार (जीवन-स्तर को अधिकतम करने की दृष्टि से) हमने अल्पकाल में विवेकपूर्ण तरीके से कार्य किया है। परन्तु हमने भविष्य या दीर्घकाल के लिए साधनों के परिरक्षण (preservation) के लिए उचित ध्यान नहीं दिया है, और इस प्रकार दीर्घकालीन दृष्टि से हमारा व्यवहार अविवेकपूर्ण रहा है। इस अविवेकपूर्ण व्यवहार के कारण हमें शक्ति-साधनों (energy resources) की अत्यन्त कमी का सामना करना पड़ रहा है।[21]

---

[17] Many a times a man's action is *instinctive*, and, thus the man that economics studies is not entirely a rational being; his behaviour becomes unpredictable to the extent he becomes instinctive.

[18] Perfect knowledge, perfect foresight, and the formulation of a precise scale of preferences are the assumptions behind the 'assumption of rationality'; but in real world these assumptions do not operate fully.

[19] In real world individuals (as consumers or businessman) do not have perfect knowledge of alternative courses of action; do not have perfect foresight to evaluate the outcome or consequences of alternative actions; cannot formulate a well-ordered scale of preferences. Hence, individuals in real life do not, and cannot, act with perfect rationality.'

[20] The behaviour which is rational from the short period point of view may be irrational from the long period point of view. We have been rational with one eye and irrational with the other.

[21] परन्तु यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि विवेकपूर्णता की मान्यता एकदम अनुपस्थित नहीं है, उसने कार्य किया है। शक्ति-साधनों के सन्दर्भ में, "मनुष्य ने पानी-शक्ति के स्थान पर कोयला-शक्ति का प्रयोग किया है, तेल के स्थान पर बिजली का, अणु-शक्ति का, तथा सूर्य-शक्ति का (जो कि प्रकृति का एक अधिक शक्तिशाली स्रोत है) प्रयोग किया है।" यहाँ पर विवेकपूर्णता के व्यवहार का अर्थ है 'जानने की उत्सुकता' तथा 'स्वयं-नियन्त्रण की उत्सुकता'।

[But it should be noted that the postulate of rationality is not altogether absent here, it is at work. In the context of energy resources, "man has shifted from water to coal, to oil, to electricity, to atomic energy, and to solar energy (which is a more powerful source of nature)." Here the rationality behaviour implies 'the urge to know' and 'the urge to self-control'.]

इसमें सन्देह नहीं है कि 'विवेकपूर्णता की मान्यता' के कार्यकरण के सम्बन्ध मे कठिनाइयाँ हैं। वर्तमान मे 'वातावरण के दूषित' (pollusion of environment) का कारण है भूतकाल मे हमारा *विवेकपूर्ण व्यवहार (जो कि जीवन-स्तर को अधिकतम करने की दृष्टि से किया गया)।* दूसरे शब्दों में, "व्यक्ति विवेकपूर्ण कार्य के रास्ते को अपनाने की इच्छा रख सकता है, परन्तु वह अदूरदर्शिता (short-sightedness) तथा अन्य कठिनाइयो के कारण विवेकपूर्ण तरीके से कार्य करने के लिए स्वतंत्र नहीं हो सकता।"[22]

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि 'विवेकपूर्णता की मान्यता' की मुख्य आलोचना है कि उसको व्यावहारिक जीवन मे प्रयोग करना कठिन है और इसलिए इसे एक अवास्तविक मान्यता कहा जाता है।

4. विवेकपूर्णता की मान्यता की प्रतिरक्षा में (In Defence of the Postulate of Rationality)

यदि यह मान लिया जाये एक व्यक्ति अपने व्यवहार मे 'पूर्णतया विवेकपूर्ण' (perfectly rational) नहीं होता है या नहीं हो सकता है, परन्तु फिर भी विवेकपूर्णता की मान्यता सत्य या सही (valid) है। इस मान्यता की सत्यता की प्रतिरक्षा मे निम्न बाते प्रस्तुत की जाती हैं—

1. यह बिलकुल सही है कि मनुष्य अपने व्यवहार मे एक बडी सीमा तक विवेकपूर्ण होता है, यद्यपि यह सम्भव है कि वह पूर्णतया विवेकपूर्ण न हो। विवेकपूर्ण मनुष्य का अर्थ यह नहीं है कि **आवश्यक रूप से व्यक्ति केवल अपनी उपयोगिता या अपने द्रव्य या धन को ही अधिकतम करने का प्रयत्न करता है,** *अथवा व्यक्ति केवल एक 'जटिल कैश रजिस्टर' (complex cash register)* **ही है। इस मान्यता का अर्थ है कि 'विवेकपूर्णता' मनुष्यों के व्यवहार मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पार्ट अदा करती है।**[23]

2. विवेकपूर्णता की मान्यता आवश्यक है क्योकि बिना इसके मनुष्य का व्यवहार 'अव्यवस्थित' (chaotic), 'अनियमित' (erratic) और 'अज्ञात' (unpredictable) रहेगा; और ऐसी स्थिति मे आर्थिक सिद्धान्तो व नियमो का निर्माण नहीं किया जा सकेगा। दूसरे शब्दो मे—

विवेकपूर्णता की मान्यता मनुष्यो की 'अव्यवस्थित भिन्नता' (chaotic diversity) को 'व्यवहार के 'एक एकरूप-स्वरूप' (uniform pattern of behaviour) मे लाने मे मदद करती है, और इस प्रकार आर्थिक सामान्यताओ या नियमो के निर्माण मे मदद करती है। यदि आर्थिक बातों का वैज्ञानिक विवेचन करना है तो एक विवेकपूर्ण व्यक्ति की मान्यता आवश्यक है, अर्थात् **आर्थिक सिद्धान्त के लिए विवेकपूर्णता की मान्यता एक वैज्ञानिक आवश्यकता है।**[24]

3. कुछ व्यक्ति अपने व्यवहार मे 'अव्यवस्थित' (erratic) या 'अविवेकपूर्ण' (irrational)

---

[22] In other words, "Man may wish to adopt the rational course of action but he may not be free to act rationally owing to short-sightedness and other difficulties"

[23] The concept of a 'rational man' does not necessarily mean that the individual seeks (only) to maximise his utility or money or wealth, or that "the individual is (only) a complex cash register." The assumption simply means that 'rationality' certainly plays a significant role in the behaviour pattern of individuals.

[24] The postulate of rationality helps "to reduce the chaotic diversity of the behaviour of individuals to a single uniform pattern", and, thus, it aids in the formulation of economic laws and generalisations The assumption of a rational man is indispensible if economic phenomena are to be treated scientifically. In other words, *the postulate of rationality is a scientific necessity for economic theory.*

हो सकते हैं, परन्तु एक समूह के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों के अविवेकपूर्ण व्यवहार एक दूसरे को नष्ट (cancel out) कर सकते है। इस प्रकार एक समूह का व्यवहार विवेकपूर्ण होगा और सामान्यतया अर्थशास्त्री समूहों के व्यवहार में दिलचस्पी रखते हैं। दूसरे शब्दों में, एक समूह के व्यक्तियों का विवेकपूर्ण व्यवहार वास्तविक व्यवहार के बहुत निकट होता है, और इस प्रकार समूह या समूहों के लिए विवेकपूर्णता की मान्यता सत्य (valid) है।[25]

4. नियोजित अल्पविकसित अर्थव्यवस्था (Planned Underdeveloped Economy) के सम्बन्ध में विवेकपूर्ण मान्यता लागू होती है और उसका औचित्य (justification) है। कारण निम्नलिखित है—

(i) "विचार करने के अभ्यस्थ तरीकों व अभ्यस्थ कार्यों पर केन्द्रीय नियोजन का प्रभाव प्राय: एक उपयोगितावादी दृष्टिकोण (utilitarian slant) प्रदान करता है। समाजवादी देशों में आर्थिक अपराधों के लिए कड़े दण्ड नियोजित अर्थव्यवस्थाओं में इस प्रवृत्ति के सबूत कहे जा सकते हैं।[26]

(ii) "अल्पविकसित देशों में नीची या कम आयों की बात लोगों को अपने साधनों के प्रयोग के प्रति अधिक सावधान होने को प्रेरित करती है। ऊँची आयों पर लोग छोटे-छोटे व्ययों के प्रति लापरवाह हो सकते हैं, परन्तु नीची आयों के स्तर पर व्यक्ति अधिक हिसाब लगाने वाले होंगे।'''यद्यपि आदत व परम्परा को अविवेकपूर्ण व्यवहार के समर्थन में प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि सदैव ऐसा ही क्यों होना चाहिए। यह सम्भव है कि बहुत लम्बे समयों तक किये गये आदतवश-उपभोग में विवेकपूर्णता प्रवेश करके उसमें समा गयी हो"[27] (अर्थात् आदतवश-व्यवहार विवेकपूर्ण ही हो गया हो।)

5. निष्कर्ष (Conclusion)

1. सामान्यतया एक व्यक्ति विवेकपूर्ण तरीके से व्यवहार करता है, यद्यपि वास्तविक जगत में उसका व्यवहार पूर्णरूप से विवेकपूर्ण (perfectly rational) नहीं पाया जाता है। कुछ दशाओं में एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का व्यवहार अविवेकपूर्ण हो सकता है, परन्तु सामान्यतया व्यक्तियों के एक समूह का व्यवहार विवेकपूर्ण होता है।

2. यद्यपि विवेकपूर्णता की मान्यता पूर्णतया सही (perfectly valid) नहीं कही जा सकती, परन्तु निःसन्देह, यह वास्तविकता के बहुत निकट (close approximation to reality) है। इस दृष्टि से विवेकपूर्णता की मान्यता को एक सही या सत्य (valid) मान्यता कहा जाता है। इस मान्यता के बिना आर्थिक सिद्धान्तों व नियमों का निर्माण कठिन है।

3. विवेकपूर्णता की मान्यता के चारों तरफ निगमन सिद्धान्त (deductive theory) का निर्माण होता है। [प्रो. रोबिन्स के शब्दों में—"यह (अर्थात, आर्थिक विश्लेषण) मान्यताओं की एक शृंखला के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों (deductions) द्वारा निर्मित होता है, इनमें से मुख्य

---

[25] The rational behaviour approximates the actual behaviour of the persons in groups, and thus the postulate of rationality is valid in the case of groups.

[26] "The impact of central planning is likely to give a utilitarian slant to habitual modes of thought as well as action. Severe penalities inflicted for economic offences in the socialist countries may be adduced as evidence of this tendency in planned economy."

[27] "The fact of low incomes in under-developed countries is likely to induce people to make careful use of their resources. At higher levels of well-being one can afford to be indifferent to small expenditure; at subsistence level people are likely to be more calculating .. Although habit and tradition are often cited as instances of irrational behaviour, it is not clear why this must always be the case. Rationality might well have filtered into habitual consumption practised over such long periods of time."

मान्यताएं सदैव अनुभव के सार्वभौमिक तत्त्व के रूप में मौजूद होती हैं जब भी मानवीय क्रिया का आर्थिक पहलू होता है; शेष मान्यताएं अधिक सीमित स्वभाव की होती हैं जो कि विशिष्ट (या विशिष्ट प्रकार की) स्थितियों के गुणों पर आधारित होती है, और इन विशेष स्थितियों की व्याख्या के लिए आर्थिक सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है।[28]]

4 सक्षेप मे, विवेकपूर्णता की मान्यता एक बड़ी सीमा तक सही (valid) है; तथा आर्थिक सिद्धान्त के लिए विवेकपूर्णता की मान्यता एक वैज्ञानिक आवश्यकता (scientific necessity) है।

प्रश्न

1. वैज्ञानिक रीति की मुख्य बातो को स्पष्ट कीजिए।
   Bring out the essentials of scientific method.
2. क्या अर्थशास्त्र की 'रीति' (method) तथा 'रीतिविधान' (methodology) मे कोई अन्तर है ? वैज्ञानिक रीति की मुख्य बातो की विवेचना कीजिए।
   Is there any difference between 'method' and 'methodology' of economics? Discuss the essentials of a scientific method.
3. अर्थशास्त्र की 'रीति' तथा 'रीतिविधान' के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। 'मान्यतावादियो' (assumptionists) तथा 'भविष्यवाणीवादियो' (predictionists) के बीच रीतिविधान-सम्बन्धी मतभेद की विवेचना कीजिए।
   Distinguish between 'method' and 'methodology' of economics. Discuss the methodological controversy between the 'assumptionists' and the 'predictionists'

   अथवा

   आप अर्थशास्त्र की रीतिविधान से क्या समझते हैं ? एक आर्थिक सिद्धान्त की जाँच के सन्दर्भ मे 'एफ-दृष्टिकोण' (*F-twist*) की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   What do you understand by methodology of economics ? In the context of the testing of an economic theory discuss critically the *'F- twist'*.

   अथवा

   वास्तविक आर्थिक विज्ञान (positive economic science) की 'रीतिविधान' को बताइए तथा उसकी व्याख्या कीजिए।
   State and explain the methodology of positive economic science.
   [**संकेत**—इन सब प्रश्नो के उत्तर मे पहले तो 'रीति' तथा 'रीतिविधान' मे अन्तर स्पष्ट कीजिए, इसके बाद 'मान्यतावादियो' तथा 'भविष्यवाणीवादियो' के बीच मतभेद की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।]
4. 'एक आर्थिक सिद्धान्त की सत्यता की जाँच, मान्यताओ की विवरणात्मक वास्तविकता के आधार पर नही, बल्कि भविष्यवाणियो की वास्तविकता या सच्चाई (accuracy) के आधार पर होनी चाहिए।' विवेचना कीजिए।

---

[28] The postulate of rationality is the centre around which deductive theory is constructed. [In the words of Prof Robbins, "It (i e, economic analysis) consists of deductions from a series of postulates, the chief of which are almost universal facts of experience present whenever human activity has an economic aspect, the rest being assumptions of a more limited nature based upon the general features of particular situations or types of situations which the theory is to be used to explain"

'The validity of economic theory is to be tested, not by the descriptive realism of its assumptions but by the accuracy of its predictions.' Discuss.

अथवा

'एक सिद्धान्त की जाँच कभी भी मान्यताओं की वास्तविकता के आधार पर नहीं की जा सकती है। एक सिद्धान्त की सत्यता की जाँच का केवल एक उचित तरीका है कि सिद्धान्त की 'भविष्य-वाणियों' की तुलना 'अनुभव' के साथ की जाये।' इस कथन पर टीका कीजिए।

'A theory can never be tested by the realism of its assumptions. The only relevant test of the validity of a theory is comparison of its predictions with experience.' Comment on this statement

अथवा

यदि आर्थिक सिद्धान्तों की जाँच तथ्यों के आधार पर होती है, तो फिर अर्थशास्त्री प्रायः अवास्तविक मान्यताओं का निर्माण क्यों करते हैं ?

If economic theories are to be tested by facts, why do economic theorists often make unrealistic assumptions ?

अथवा

इस कथन की परीक्षा कीजिए कि निगमन (deduction) का कोई सम्बन्ध मान्यताओं की भौतिक सत्यता से नहीं होता।

Examine the statement that deduction is unconcerned about the material truth of premises.

अथवा

'अर्थशास्त्र को अपने सिद्धान्तों की जाँच प्रत्यक्ष रूप से (भविष्यवाणियों की जाँच करके), अथवा अप्रत्यक्ष रूप से (मान्यताओं की जाँच करके) करनी चाहिए—इस प्रश्न पर मतभेद वास्तव में शाब्दिक अधिक है अपेक्षाकृत विषय-सामग्री के।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

'As a matter of fact the difference of opinion on the question whether economics should test its theories directly (by testing the predictions) or indirectly (by testing the assumptions) is more terminological than substantive.' Do you agree with this statement ?

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर में 'मान्यतावादियों' तथा 'भविष्यवाणीवादियों' के बीच मतभेद की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।]

5. 'आर्थिक सिद्धान्त में विवेकपूर्णता की आधारभूत मान्यता सत्य है।' विवेचना कीजिए।
'In economic theory the basic postulate of rationality is valid.' Discuss.
[संकेत—परिशिष्ट देखिए।]

6. इस धारणा की व्याख्या कीजिए कि अर्थशास्त्र की आधारभूत मान्यताएं स्पष्टतया सही होती हैं।
Examine the view that the basic postulates of Economics are obviously true.
[संकेत—परिशिष्ट देखिए।]

7. "आर्थिक सिद्धान्त के कथन, सभी वैज्ञानिक सिद्धान्त की भाँति, मान्यताओं की एक शृंखला के आधार पर तर्क द्वारा निकाले गये निष्कर्ष होते हैं।" इस कथन के सन्दर्भ में आर्थिक विश्लेषण के आधारों की व्याख्या कीजिए।
"The propositions of economic theory, like all scientific theory, are obviously deductions from a series of postulates." In the light of this statement explain the foundations of economic analysis.
[संकेत—परिशिष्ट देखिए।]

आर्थिक सिद्धान्त, उद्देश्य तथा वास्तविकता

(Economic Theory, Purpose and Realism)

"A theory is realistic not in proportion to how fully it incorporates the richness, variety, and complexity of the world at large, but in proportion to how skilfully it exposes the workings of a few of the phenomena that comprise experience and renders them intelligible. If you want literal realism, look at the world around you, if you want understanding, look at theories." —R. DORFMAN

1. प्राक्कथन (Introduction)

हम, अर्थशास्त्री के रूप में, वास्तविक व जटिल दुनिया मे देखी जाने वाली आर्थिक समस्याओं या आर्थिक तथ्यो को समझना चाहते है ताकि उन पर नियत्रण करने के प्रयत्न किये जा सके। वास्तविक ससार में हम जिन आर्थिक समस्याओ का अवलोकन (observation) करते हैं उनके बारे मे यह जानना चाहते हैं कि उनके पीछे क्या नियम (rules) है, क्या अपवाद (exceptions) हैं; कुछ क्रम या व्यवस्थाएँ (arrangements) जैसी देखी जाती हैं वैसी क्यो हैं और क्या होगा यदि उन व्यवस्थाओं या क्रमो मे परिवर्तन कर दिया जाए। असम्बन्धित तथ्य (unrelated facts) हमारे प्रश्नो का उत्तर नही दे सकते, हम तथ्यो की शृखलाएँ (chains of facts), नियमितताएँ (regularities), तथा कारण और परिणामो के सम्बन्धो को जानना चाहते है; दूसरे शब्दो मे हम आर्थिक नियमो या सिद्धान्तो (economic principles or theories) को चाहते हैं जिनकी सहायता से आर्थिक समस्याओ को समझा जा सके। अत. एक अर्थशास्त्री देखे गये तथ्यो (observed facts) को एक क्रम मे व्यवस्थित (systematize) करता है ताकि आर्थिक समस्याओ के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को जाना जा सके, इन व्यवस्थित तथ्यो (systematized facts) के आधार पर ही एक अर्थशास्त्री सामान्य आर्थिक नियम (generalizations or laws) बनाता है; संक्षेप मे, आर्थिक तथ्य को इस प्रकार एक क्रम में व्यवस्थित करना (systematization of facts) तथा उनका विश्लेषण करना ही आर्थिक सिद्धान्त (economic theory) है।

2. आर्थिक सिद्धान्त का अर्थ तथा स्वभाव (The concept and nature of economic theory)

आर्थिक सिद्धान्त देखे गये आर्थिक आँकडो (economic data) मे सम्बन्धो के रूपों (patterns of relationship) को बताता है तथा उनकी व्याख्या करता है; आर्थिक सिद्धान्त

इन सम्बन्धों के संक्षिप्त तथा व्यवस्थित कथन (compact and systematic statements) होते हैं। दूसरे शब्दों में,

> "आर्थिक सिद्धान्त एक तार्किक तथा व्यवस्थित ढाँचा प्रदान करता है जो कि इस बात की व्याख्या करता है कि एक बात दूसरी से किस प्रकार सम्बन्धित है। आर्थिक सिद्धान्त पारस्परिक निर्भरताओं तथा कारण और परिणाम के सम्भावित सम्बन्धों से रिश्ता रखता है।"[1]

आर्थिक सिद्धान्त में कुछ मान्यताएँ (assumptions) होती हैं जिनके आधार पर 'बौद्धिक प्रयोग' (intellectual experiment) अर्थात् निगमन तर्क (deductive reasoning) द्वारा कारण और परिणाम के बीच सामान्य सम्बन्धों के अभिप्रायों (implications) या निष्कर्षों (predictions) का अध्ययन किया जाता है और तत्पश्चात् इन निष्कर्षों की वास्तविक तत्त्वों के साथ जाँच की जाती है। यदि आर्थिक सिद्धान्त की वास्तविक तथ्यों द्वारा पुष्टि होती है तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा त्याग दिया जाता है और उसमें या तो सुधार किया जाता है या उसके स्थान पर किसी दूसरे अच्छे व श्रेष्ठ सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है। अतः आर्थिक सिद्धान्त को निम्न प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है—

> "एक सिद्धान्त निम्न बातों से बनता है : (i) 'परिभाषाओं' का एक समूह जो यह बताता है कि विभिन्न शब्दों से हम क्या समझते हैं। (ii) 'मान्यताओं' का एक समूह जो उन दशाओं को बताता है जिनके अन्तर्गत सिद्धान्त लागू होगा। 'परिभाषाओं' तथा 'मान्यताओं' दोनों को, यदि हम चाहें तो गणितात्मक समीकरणों (mathematical equations) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। (iii) अगला कदम है तर्क द्वारा इन मान्यताओं के अभिप्रायों (implications) को ज्ञात करना; ऐसा करने में शब्दों, रेखागणित या गणित किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है, मान्यताओं के आधार पर निकाले गये इन अभिप्रायों की वास्तविक आंकड़ों द्वारा जाँच की जाती है। तत्पश्चात हम एक निष्कर्ष पर आते हैं : या तो सिद्धान्त त्याग दिया जाता है यदि वह वास्तविक आंकड़ों से मेल नहीं खाता, या सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है यदि वह वास्तविक आँकड़ों से मेल खाता है।"[2]

आर्थिक सिद्धान्त की दो मुख्य विशेषताएँ या पक्ष (features or aspects) हैं : (i) ये 'सामान्य कथन' (generalizations) होते हैं, तथा (ii) उनमें 'अमूर्तताएँ' (abstractions) होती हैं। अब हम इन दोनों पक्षों की नीचे विस्तृत रूप से विवेचना करते हैं।

(i) 'सामान्य कथन' (generalizations) : प्राय आर्थिक तथ्यों में बहुत विभिन्नता होती है; कुछ व्यक्ति तथा संस्थाएँ एक दिशा में कार्य करती हैं और कुछ दूसरी दिशा में। अतः ऐसी स्थिति में आर्थिक सिद्धान्त (economic theories or principles) औसतों या सांख्यिकीय सम्भावनाओं (averages or statistical probabilities) के शब्दों में व्यक्त किये जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक

---

[1] "Economic theory provides a logical, organized framework which helps to explain how one thing relates to another. Economic theory is concerned with interdependencies, with probable relationships of cause and effect."

"A theory consists of (1) a set of *definitions* that states clearly what we mean by various terms, (2) a set of *assumptions* that defines the conditions under which the theory is to apply. Both the definitions and assumptions can be expressed, if we wish, in the form of mathematical equations. (3) The next step is to use a process of logical deduction to discover various implications of these assumptions. This logical process may be carried out in words, geometry or mathematics. The implications which are deduced from the assumptions can be *tested* against the actual empirical observations, and we would then, conclude that the theory is *refuted* by the facts, or that it is *consistent* with the facts."

सिद्धान्त सामान्य कथन होते हैं, उनके अपवाद (exceptions) हो सकते हैं और वे परिणामात्मक रूप से अपूर्ण या कम निश्चित (quantitatively imperfect or imprecise) हो सकते हैं।

(ii) अमूर्तताएँ (abstractions) : वास्तविक ससार अत्यन्त जटिल है, केवल विशाल आर्थिक आँकड़ों (large economic data) को एकत्रित करने से कोई अर्थ नही निकल सकता है; इन आर्थिक आँकडो से कोई भी व्याख्या या अर्थ निकालने के लिए यह आवश्यक है कि उनका वर्गीकरण किया जाये, उन्हें एक ढाँचे (framework) मे व्यवस्थित (systematize) किया जाय, और इस प्रकार का क्रमस्थापन या व्यवस्थापन (systematization) ही आर्थिक सिद्धान्त है। क्रमस्थापन या व्यवस्थापन को प्राप्त किया जाता है अमूर्तता (abstraction) द्वारा, क्योकि सम्पूर्ण वास्तविकता इतनी विशाल होती है कि उसको एक अर्थशास्त्री नही समझ सकता है जब तक कि वह सिद्धान्त द्वारा दिये गये ढाँचे की सहायता न लें।[3] अत:, अमूर्तता का अर्थ है वास्तविक ससार मे से अनार्थिक तथा अनुपयुक्त आँकड़ो (non-economic and irrelevant data) को त्याग देना तथा उपयुक्त आँकडों (relevant data) का चुनाव करके उनको व्यवस्थित करना। दूसरे शब्दों में,

> "अमूर्तता का अर्थ है व्यक्तिगत तथ्यों को उचित सामान्य वर्गों में रख दिया जाता है, और उन तथ्यों को त्याग दिया जाता है जो कि किसी भी वर्ग में ठीक नहीं बैठते हैं। वर्गीकरण एक तरीका है या साधन है जिनके द्वारा व्यक्तिगत बातो को एक या एक से अधिक सामान्य विशेषताओं को बताया जा सकता है और उनकी विभिन्नता के पक्षों को त्याग दिया जाता है।[4] जब विभिन्न बातों का वर्गीकरण किया जाता है तो कुछ विस्तृत सूचनाओं को छोड़ दिया जाता है तथा उन विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जो कि सभी वर्गों में मिलती है।"[5] जटिल संसार को समझने के लिए 'सरलीकरण' (simplification) आवश्यक है; विस्तृत तथा अनावश्यक सूचना (detailed and irrelevant information) का छोड़ना ही सरलीकरण है और इस 'सरलीकरण' को ही 'अमूर्तता' (abstraction) कहते हैं। अमूर्तता की प्रक्रिया के अन्तर्गत जिन वास्तविक परन्तु अनावश्यक या अनुपयुक्त बातो को त्याग दिया जाता है उनकी क्षतिपूर्ति (compensation) इस बात से हो जाती है कि समझने की शक्ति, जो कि आर्थिक सिद्धान्त प्रदान करता है, मे वृद्धि हो जाती है।[6]

अत:, अर्थशास्त्री 'आकड़े या अवलोकन' ('data' or 'observation') तथा 'तथ्य' (facts) के बीच एक आधारभूत अन्तर करते हैं। एक अर्थशास्त्री के लिए वे सभी सूचनाएँ जो कि वास्तव मे देखी जाती है, अर्थात् अनुभव द्वारा निर्धारित होती है 'आँकड़े' (data) हैं; जबकि

---

[3] The systematization is achieved by the process of abstraction, the whole of reality is too vast and complex for an economist to grasp without the framework that theory provides

[4] उदाहरणार्थ, जब किसी कालेज के विद्यार्थियो को sex, लिये गये विषयो (subjects), उम्र (age), या किसी अन्य आधार के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है, तो हम उनकी अनेक विभिन्नताओ को छोड देते हैं तथा अपना ध्यान उन वर्गों की सामान्य विशेषताओ (common characteristics) पर देते है।

[5] Abstraction means that "individual facts are compressed into relevant general classes, and facts that do not fit any of the classes are discarded Classification is a means of indicating one or more common characteristics of individual phenomena and eliminating their heterogeneous aspects. When phenomena are classified certain detailed information is omitted and attention is focussed on characteristics that are similar in all the phenomena "

[6] Under the process of abstraction what is omitted is compensated or outweighed by the increase in the power of understanding that the theory provides.

'तथ्य' (facts) वे आँकड़े हैं जो कि एक विशेष सिद्धान्त के लिए उपयुक्त (relevant) हैं। केवल सामान्य आँकड़े (raw data) कोई अर्थपूर्ण सूचना नहीं बता सकते। परन्तु एक दिये हुए विश्लेषणात्मक या सैद्धान्तिक ढाँचे (analytical or theoretical framework) के अन्तर्गत तथ्य (facts) अत्यन्त प्रभावपूर्ण हो सकते हैं। अत सिद्धान्तों व माडलों (theories and models) का उद्देश्य आर्थिक समस्याओं के लिए एक बुनियादी ढाँचा प्रदान करना है जिसके द्वारा 'उपयुक्त तथ्यों' (relevant facts) के निर्धारण के लिए 'आँकड़ों' (data) के बीच चुनाव (screening) किया जा सकता है।[7] एक वाक्य में,

आर्थिक सिद्धान्त उपयुक्त आँकड़ों का चुनाव व क्रमस्थापन करके आँकड़ों को अर्थ प्रदान करता है।[8]

'आर्थिक सिद्धान्त' (economic theory) के स्थान पर 'आर्थिक माडल' (economic model) के शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। आर्थिक सिद्धान्त की भाँति, 'आर्थिक माडल' भी कारण और परिणाम के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है तथा वह अर्थव्यवस्था के किसी भी एक भाग का 'सरलीकृत चित्र' (simplified picture) या 'नक्शा' (map) होता है जो कि जटिल वास्तविकता को समझने में सहायक होता है। दूसरे शब्दों में,

एक आर्थिक सिद्धान्त वास्तविक जगत के उस भाग का 'माडल' है जिसका विवरण वह सिद्धान्त प्रस्तुत करना चाहता है। आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता की केवल एक अच्छी समीपता (good approximation) को बताता है; इसलिए 'आर्थिक विश्लेषण या आर्थिक सिद्धान्त निर्माण' को प्रायः 'माडल-निर्माण' कहा जाता है।[9]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आर्थिक सिद्धान्त की दो विशेषताएं हैं : (i) **सामान्य कथन** (generalizations) तथा (ii) **अमूर्तताएँ** (abstractions)। ये दोनों विशेषताएँ आर्थिक सिद्धान्त के स्वभाव को बताती हैं। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं 'आर्थिक सिद्धान्त' या 'आर्थिक विश्लेषण' का मुख्य स्वभाव है कि वह 'वास्तविकता के पूर्ण यौवन' (full bloom of reality) को नहीं बताता; वह वास्तविकता की केवल एक 'रूपरेखा' (outline) या 'माडल' (model) या 'नक्शा' (map) है। दूसरे शब्दों में,

"आर्थिक विश्लेषण आर्थिक जीवन का एक पूर्ण चित्र नहीं होता, वह उसका केवल एक नक्शा होता है। जिस प्रकार से हम एक नक्शे से यह आशा नहीं करते हैं कि वह प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक मकान और जमीन पर घास की प्रत्येक पत्ती बतायेगा, उसी प्रकार हमें आर्थिक विश्लेषण (या आर्थिक सिद्धान्त) से यह आशा नहीं करनी चाहिए कि आर्थिक व्यवहार की प्रत्येक सूक्ष्म बात तथा प्रत्येक हेर-फेर या तोड़-मोड़ (quirk) को शामिल करेगा। एक नक्शा जो बहुत अधिक विस्तृत है और बहुत अधिक सूक्ष्म बातों को दिखाता है उसकी, नक्शे के रूप में, कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है।

---

[7] "Thus, the economist makes a basic distinction between data and facts. For him all information that is empirically determined is *data*, whereas *facts are* data that are relevant to a specific theory. Raw data alone tell one little. Facts, however, within a given analytical or theoretical framework, can be quite meaningful. Thus, it is the role of theories and models to provide a basic framework for an approach to *economic* problems by which data may be screened to determine the relevant facts."

[8] In one sentence, by the process of screening and systematization, economic theory provides meaning to the maze of economic data.

[9] An economic theory is a model of that part of the real world it intends to describe. Economic theory is a good approximation of reality, that is why 'economic analysis' or 'economic theorizing' is often called 'model-building.'

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी आर्थिक नक्शे (अर्थात् आर्थिक सिद्धान्त) अच्छे नक्शे रहे हैं बल्कि उनमें से अनेक वास्तविकता की मोटी रूपरेखा को भी बताने में गलत सिद्ध हुए हैं। परन्तु फिर भी हम एक नक्शे की खोज करते हैं, न कि एक विस्तृत चित्र की।"[10] संक्षेप में, आर्थिक सिद्धान्त केवल वास्तविकता के सार (essence) को पकड़ता है।[11]

3. आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य (Purpose of Economic Theory)

आर्थिक सिद्धान्त सरलीकरणों तथा अमूर्तताओं (simplifications and abstractions) से सम्बन्धित होता है, इसलिए कुछ व्यक्ति यह सोच सकते है कि 'आर्थिक विश्लेषण' या 'आर्थिक सिद्धान्तों' का अध्ययन एक बेकार की कसरत (useless exercise) है, परन्तु ऐसा सोचना गलत है। यद्यपि आर्थिक सिद्धान्त अमूर्त होते हैं परन्तु वे चीजो को व्यवस्थित ढंग से देखने के लिए सैद्धान्तिक यन्त्र (tools) प्रदान करते है[12] और आर्थिक सिद्धान्त का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है :

"आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य व्याख्या करना, निष्कर्ष निकालना या भविष्यवाणी करना तथा नियंत्रण करना है।"[13]

अब हम उपर्युक्त तीनों उद्देश्यो का थोड़ा विस्तृत विवेचन देते है।

(i) व्याख्या (Explanation)

आर्थिक सिद्धान्त वास्तविक जगत मे विशाल तथा गुथे हुए आँकड़ो से उपयुक्त व सम्बन्धित तत्त्वों (relevant facts) के चुनाव, तथा उनके वर्गीकरण व क्रमस्थापन (classification and systematization) मे सहायता करके आर्थिक घटनाओ के कारण और परिणाम के बीच सम्बन्ध का एक ढांचा (a pattern of relationship) बताता है, और इस प्रकार से उन शक्तियों की व्याख्या करता है जो कि आर्थिक घटनाओं को निर्धारित करती है। दूसरे शब्दो मे, आर्थिक सिद्धान्त एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण (operation) के समझने मे एक महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है।

[उदाहरणार्थ आर्थिक सिद्धान्तो (economic principles or theories) की सहायता से हम यह समझ सकते है कि कीमतो मे परिवर्तन क्यो होते है ? बेरोजगारी क्यो उत्पन्न होती है ? वस्तुओ की कमी तथा अधिकता क्यो होती है ? इत्यादि।]

(ii) निष्कर्ष निकालना या भविष्यवाणी करना (Prediction)

आर्थिक सिद्धान्त की 'व्याख्या करने की शक्ति' (power of explanation) 'भविष्यवाणी करने या निष्कर्ष निकालने की शक्ति' (power of prediction) को जन्म देती है। चूंकि आर्थिक सिद्धान्त 'आर्थिक परिवर्तनशील तत्त्वों या आर्थिक चरों' (economic variables) के बीच सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करता है, इसलिए आर्थिक सिद्धान्त यह बता सकता है या यह भविष्यवाणी कर सकता है कि यदि 'आर्थिक चरो' में परिवर्तन होता है तो उसके क्या परिणाम होगे।

दूसरे शब्दो मे,

"सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह भविष्यवाणी करने की शक्ति प्रदान करता है।

---

[10] "Economic analysis is not a perfect picture of economic life; it is a *map* of it. Just as we do not expect a map to show every tree, every house, and every blade of grass in a landscape, so we should not expect economic analysis (that is, economic theory) to take into account every detail and quirk of real economic behaviour. A map that is too detailed is not of much use as a map This is not to say of course, that all the economic maps have been good maps, for many of them have falsified even the broad outlines of reality. But it is a map that we are looking for, and not a detailed portrait."

[11] In short, an economic theory captures the bare essence of reality.

[12] Although economic theories are abstract but they provide theoretical tools for orderly ways of looking at things.

[13] The purpose of economic theory is to explain, predict and control.

एक बहुत बड़ी समस्या अनिश्चितता की है जिसका मनुष्य को सामना करना पड़ता है। सिद्धान्त हमें अनिश्चितता के ऊपर नियंत्रण प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करता है, हमें पूर्वज्ञान (fore knowledge) कराता है। देखी गयी घटनाओं के बीच सम्बन्धों की खोज द्वारा और इन सम्बन्धों का 'नियमों' के रूप में कथन द्वारा हम इस बात की भविष्यवाणी करने के योग्य होते हैं कि कुछ बातों या तथ्यों को साथ-साथ रखे जाने से क्या परिणाम होंगे ?[14]

परन्तु आर्थिक नियमों या सिद्धान्तों की भविष्यवाणी करने की शक्ति उतनी सही व निश्चित नहीं होती जितनी प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों की। आर्थिक सिद्धान्तों की भविष्यवाणी करने की शक्ति कई कारणों से सीमित (limited) होती है। मुख्य कारण है—(i) आर्थिक सिद्धान्त का रिश्ता उन सम्बन्धों से होता है जो कि मानवीय निर्णय लेने (human decision-taking) पर निर्भर करता है और मानवीय निर्णयों के बारे में पूर्ण निश्चितता के साथ नहीं बताया जा सकता है। (ii) अर्थशास्त्री आँकड़ों के विशाल समूह में से उपयुक्त तथ्यों (relevant facts) को अलग करने के लिए 'नियंत्रित प्रयोग' (controlled experiments) नहीं कर सकते हैं क्योंकि अर्थशास्त्र मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित होता है। (iii) कई स्थितियों में आर्थिक सिद्धान्तों को जाँचने के लिए सामग्री या आँकड़े (data) पर्याप्त मात्रा में प्राप्य (available) नहीं होते हैं।

आर्थिक सिद्धान्त की भविष्यवाणी करने की शक्ति की स्थिति को हम निम्न शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं—

आर्थिक सिद्धान्त एक निश्चित व सही भविष्यवाणी नहीं कर सकता; वह एक बुद्धिमानी का अनुमान (educated guess) प्रदान करता है। आर्थिक सिद्धान्त इस बात की भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि क्या निश्चित है; वह इस बात की भविष्यवाणी कर सकता है कि क्या सम्भाव्य (probable) है।[15]

(iii) नियंत्रण (Control)

आर्थिक चरों (economic variables) के 'सम्बन्धों की जानकारी' आर्थिक घटनाओं या परिणामों की 'भविष्यवाणी' सम्भव बनाती है, और भविष्यवाणी आर्थिक घटनाओं या परिणामों के 'नियंत्रण' को सम्भव करती है। दूसरे शब्दों में, 'नियंत्रण' का अर्थ है 'आर्थिक नीति का निर्माण' (formulation of economic policy) ताकि सम्भावित परिणामों पर नियंत्रण किया जा सके; और यदि किसी घटना का नियंत्रण सम्भव न हो सके तो भविष्यवाणी के कारण कम से कम उस घटना के परिणामों के साथ समायोजन (adjustment) करने की तैयारी[16] के लिए उचित समय मिल जाता है।[17]

---

[14] "Theory is important because it leads to the power of prediction. One of the greatest problems with which man must cope is uncertainty. Theory enables us to overcome uncertainty, to have fore knowledge. By the discovery of fundamental relationships among observed events and the statements of these relationships as "laws" we are able to predict what will occur when certain events are brought into juxtaposition."

[15] Economic theory cannot make an exact and positive prediction, it can provide an educated guess. Economic theory cannot predict what is certain, it can predict what is probable.

[16] हम एक अनार्थिक उदाहरण देते हैं : वर्षा होने की भविष्यवाणी करने की शक्ति हमें मौसम पर नियंत्रण प्रदान नहीं करती परन्तु हमें बरसाती कोट व छाता ले जाने की तैयारी के लिए समय अवश्य देती है ताकि वर्षा के परिणामों के साथ समायोजन किया जा सके अर्थात् उनमें बचा जा सके।

[17] "Or, if we cannot control an event, at least we gain from prediction invaluable time to prepare for adjusting to its consequences."

यदि उद्देश्य (goals) दिये हुए हैं, तो आर्थिक सिद्धान्त उन उद्देश्यों को प्राप्त करने मे 'नीति का एक ढाँचा' (framework of policy) प्रदान करने में सहायक होता है। यह निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है :

(a) आर्थिक सिद्धान्त कुछ उद्देश्यो मे असामंजस्य (inconsistency) होने की स्थिति स्पष्ट कर सकता है और इस प्रकार नीति मे सहायक होता है।

(b) आर्थिक सिद्धान्त दिये हुए उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए वास्तविक विकल्पो के परिणामो (consequences of realistic alternatives)) को प्रस्तुत करके उनके बीच बुद्धिमानी के साथ चुनाव (intelligent choice) करने का रास्ता दिखाता है (सरकार या राजनीतिज्ञो को) और इस प्रकार आर्थिक नीति मे सहायक होता है। दूसरे शब्दो मे,

> यदि हमें आर्थिक सिद्धान्त की ठोस व गहरी पकड़ (firm grasp) है तो हम यह बताने की स्थिति में होते हैं कि दिये हुए उद्देश्यों को कितनी अच्छी प्रकार से या किस तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। अतः, आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य आर्थिक नीति को समझने मे सहयोग प्रदान करना है।[18]

4. **'आर्थिक सिद्धान्त तथा वास्तविकता' : आर्थिक सिद्धान्त की आलोचना** (Economic Theory and Realism : Criticism of Economic Theory)

'आर्थिक सिद्धान्त तथा वास्तविकता' के सम्बन्ध के बारे मे आर्थिक सिद्धान्त की आलोचना की जाती है। निम्नलिखित सभी आलोचनाएँ इस बात पर केन्द्रित हैं कि आर्थिक सिद्धान्त अवास्तविक व अव्यावहारिक होता है—

(i) *प्राय: यह आलोचना की जाती है कि* **आर्थिक सिद्धान्त अमूर्त** (abstract) **होता है और इसलिए अवास्तविक** (unrealistic) **होता है।**

परन्तु यह आलोचना उचित नही है। इस प्रकार की आलोचना आर्थिक रीतिविधान की अज्ञानता (ignorance of economic methodology) पर आधारित होती है; या इस बात को बताती है कि आर्थिक सिद्धान्त के स्वभाव को ही गलत समझा जा रहा है। वास्तविक जगत बहुत जटिल होता है और इसलिए, किसी भी अन्य विज्ञान के सिद्धान्त की भाँति, आर्थिक सिद्धान्त अनेक अनावश्यक व कम महत्त्वपूर्ण तत्त्वो को छोड देता है और उपयुक्त (relevant) बातो को शामिल करता है, अर्थात् अमूर्तता की प्रक्रिया (process of abstraction) का सहारा लेता है तभी वास्तविक जगत के कार्यकरण को समझा जा सकता है। केवल इस बात का डर हो सकता है कि अमूर्तता की प्रक्रिया द्वारा एक आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण मे कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्व छोड दिये गये हो और इस प्रकार वह सिद्धान्त अवास्तविक हो गया हो। वास्तव मे आर्थिक सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य तो आर्थिक घटनाओ के *'समझने की शक्ति' (power of understanding) प्रदान करना है न कि वास्तविक जटिल ससार का विवरण देना।*[19] सेम्युलसन के शब्दो मे,

"प्रत्येक सिद्धान्त, चाहे वह प्राकृतिक या जैवकीय (biological) या सामाजिक

---

[18] If we have a firm grasp of economic theory, we are in a position to indicate how best, or in what manner, the given goals may be achieved Thus, the purpose of economic theory is to *permit an understanding of economic policy.*

[19] उदाहरणार्थ, हवाई जहाज के कार्यकरण को समझने के लिए हवाई जहाज का माडल सभी छोटी से छोटी बातो को नही बताता, एक देश का 'माडल' या 'नक्शा' उस देश की सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म बातो को नही दिखाता अन्यथा समस्त देश की रूपरेखा को समझाने के नक्शे का उद्देश्य बेकार हो जाता है। इसी प्रकार एक आर्थिक सिद्धान्त या माडल वास्तविक आर्थिक जीवन की सभी 'प्रचुरताओ और विभिन्नताओं' (all the richness and variety of economic life) को नही बताता।

विज्ञानों में से किसी का भी हो, वास्तविकता को तोड़-मरोड़ (distort) इस अर्थ में करता है कि यह वास्तविकता को अधिक सरलीकृत (oversimplifies) करता है। परन्तु यदि वह एक अच्छा सिद्धान्त है तो जो छोड़ दिया जाता है उसकी कहीं अधिक पूर्ति ज्ञान व समझ की उस चमक व प्रकाश से हो जाती है जो कि सिद्धान्त विभिन्न प्रकार के वास्तविक आंकड़ों पर डालता है। एक सिद्धान्त की सत्यता की जाँच उस उपयोगिता में है जो कि वह देखी गयी वास्तविकता पर बौद्धिक प्रकाश डालने में (अर्थात् समझने में) प्रदान करता है।"[20]

(ii) एक आलोचना यह की जाती है कि आर्थिक सिद्धान्त की मान्यताएं (assumptions) अवास्तविक होती हैं और इसलिए उनके आधार पर निकाले गये निष्कर्ष या भविष्यवाणियाँ (implications or predictions) भी गलत होंगे; और इस प्रकार आर्थिक सिद्धान्त अवास्तविक होते हैं।

परन्तु यह आलोचना सदैव सही नही कही जा सकती है, मुख्य कारण निम्नलिखित है—

(a) प्रो. फ्रीडमैन (Friedman) के अनुसार एक सिद्धान्त की मान्यताएं अवास्तविक हो सकती हैं परन्तु यदि उनके आधार पर निकाले गये निष्कर्ष या भविष्यवाणियाँ वास्तविक तथ्यो से मेल खाती हैं तो सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जायेगा। दूसरे शब्दो में, निष्कर्षों या भविष्यवाणियों की सत्यता के आधार पर ही एक सिद्धान्त की वास्तविकता की जाँच की जाती है न कि मान्यताओं की वास्तविकता या अवास्तविकता के आधार पर।

(b) एक सिद्धान्त को प्रयोग मे लाते समय उसकी मान्यताओ को ध्यान मे रखना जरूरी है। कुछ स्थितियों में मान्यताओ मे परिवर्तन (modification) करना होगा; जैसे एक फर्म द्वारा अपने लाभ को अधिकतम करने की मान्यता मे परिवर्तन करना होगा यदि कुछ स्थितियों मे यह मान्यता लागू नहीं होती हो।

(iii) आर्थिक सिद्धान्त के अवास्तविक या अव्यावहारिक होने की कभी-कभी एक आलोचना इन शब्दों में की जाती है : "यह सिद्धान्त में ठीक है परन्तु व्यवहार में ठीक नहीं है" ("It is all right in theory but not in practice")।

इस प्रकार की आलोचना 'सिद्धान्त और वास्तविकता' (economic theory and reality) या 'सिद्धान्त तथा तथ्य' (theory and facts) के सही सम्बन्ध की अज्ञानता पर आधारित है; कोई भी सिद्धान्त ठीक नही हो सकता यदि उसको तथ्यो का समर्थन प्राप्त न हो (no theory can be all right if it does not hold up against the facts)।

यदि उपर्युक्त आलोचना का कहने वाला समझदारी की बात कर रहा है (if talking sense), तो आलोचना के निम्न अभिप्राय हो सकते है—

(a) वह एक अच्छा सिद्धान्त नही है क्योंकि वह वास्तविक संसार की व्याख्या करने में सहायक नहीं है;

अथवा

(b) तथ्यों के अपर्याप्त आधार पर या प्राप्त तथ्यो के अपर्याप्त सर्वेक्षण (survey) पर आधारित जल्दबाजी के सामान्य कथनो के प्रति आलोचक एक महत्वपूर्ण विरोध (protest) प्रकट कर रहा है।[21]

---

[20] "Every theory, whether in the physical or biological or social sciences, distorts reality in that it oversimplifies But if it is a good theory, what is omitted is outweighed by the beam of illumination and understanding that is thrown over the diverse empirical data .. The test of a theory's validity is its usefulness in illuminating observed reality."

[21] The critic is offering a "valuable protest against hasty generalizations on an insufficient basis of fact or an inadequate survey of available facts."

अथवा

(c) यह एक अच्छा सिद्धान्त है परन्तु उसका अकुशलता के साथ (inexpertly) प्रयोग किया जा रहा है।

यदि आलोचक (critic) का अभिप्राय इन तीनो मे से नहीं है तो वह मूर्खता (nonsense) की बात कर रहा है।

ऐसा सिद्धान्त जो व्यवहार (practice) में ठीक नहीं है वह एक खराब सिद्धान्त है और उसमे सुधार की आवश्यकता है या उसके स्थान पर नये सिरे से किसी दूसरे अच्छे सिद्धान्त के निर्माण की आवश्यकता है।

वास्तव मे "आर्थिक सिद्धान्त व वास्तविकता" ('economic theory and realism') या 'आर्थिक सिद्धान्त व तथ्य' ('economic theory and facts') के बीच विरोध झूठा है, सच तो यह है कि वे एक दूसरे के पूरक (complementary) हैं—

> **तथ्य व सिद्धान्त पारस्परिक निर्भर होते हैं। सिद्धान्त वास्तविक तथ्यों पर आधारित होता है। सिद्धान्त तथ्यों को उपयोगी व अर्थपूर्ण बनाता है; तथ्य स्वयं गूंगे (dumb) होते हैं; वे कुछ बता सकें तो इसके लिए उन्हें एक क्रम में रखना होगा; तथ्यों का क्रमस्थापन व विश्लेषण ही सिद्धान्त है। परन्तु सिद्धान्त की वास्तविकता या सत्यता (validity) की जाँच के लिए तथ्यों का प्रयोग किया जाता है। सिद्धान्त व्यवहार की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है, परन्तु आर्थिक व्यवहार समयावधि (overtime) मे परिवर्तित होता रहता है, इसलिए यह आवश्यक है कि सिद्धान्त की वास्तविक तथ्यों के साथ निरंतर जांच या पुष्टि करते रहना चाहिए।[22]**

5. **आर्थिक सिद्धान्त की सीमाएं या खतरे (Limitations or Dangers of Economic Theory)**

आर्थिक सिद्धान्त या माडल वास्तविकता के सरलीकृत रूप (simplifications of reality) होते हैं, इसलिए उनकी कुछ सीमाएं या खतरे है जिन्हें अर्थशास्त्री मानते हैं। मुख्य सीमाएं या खतरे निम्नलिखित हैं—

(i) **एक अर्थशास्त्री उपयुक्त तथा अनुपयुक्त तथ्यों (relevant and irrelevant facts) के बीच सही अन्तर व चुनाव करने में गलती कर सकता है।**

यदि अर्थशास्त्री कुछ उपयुक्त तथ्यो को छोड़ देता है तो प्राप्त सिद्धान्त एक असम्बद्ध (disjointed), भ्रमकारी तथा अपूर्ण विश्लेषणात्मक यन्त्र (tool) होगा। इससे सम्बन्धित एक कठिनाई इस बात की सम्भावना से उत्पन्न हो सकती है कि एक अत्यधिक उत्साही अर्थशास्त्री (an overzealous economist) बहुत से तथ्यो मे से अधिकाश को छोडकर व केवल बहुत कम तथ्यो को लेकर एक ऐसे सिद्धान्त या माडल का निर्माण कर सकता है जो कि 'अत्यधिक काल्पनिक' (hyperabstract) हो और उसका वास्तविकता से कोई सम्पर्क (touch) न रह गया हो।[23]

---

[22] Facts and theories are interrelated It is on actual facts that theory is based Theory makes facts useful and meaningful; facts by themselves are dumb; before they will tell us anything we have to arrange them; the arrangement and interpretation of facts is theory. But facts are used to judge the reality or validity of theory. Theory attempts to explain behaviour, but economic behaviour changes overtime, and therefore, it is necessary to check and test constantly the theory against actual behaviour of facts.

[23] "If the economist 'boils out' some relevant facts, the resulting principle may be a disjointed, misleading, and, at best, incomplete analytical tool A related difficulty stems from the possibility that an overzealous economist might abstract from too many facts and construct a model which is hyperabstract and truly out of touch with reality."

(ii) इस बात का डर हो सकता है कि कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक सिद्धान्त या माडल का प्रयोग करते समय उसकी मान्यताओं को ध्यान में न रखें।

उदाहरणार्थ, एक सिद्धान्त जिसमें यह मान लिया जाता है कि एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को इस प्रकार से व्यय करेगा कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो, उस स्थिति में ठीक नही उतरेगा जहां पर उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने की बात से प्रभावित होकर व्यवहार नही करता है।

हमें यह नही भूलना चाहिए कि 'सरलीकृत (simplified) आर्थिक सिद्धान्त' और 'वास्तविकता' के बीच बहुत सी बातें छोड दी जाती हैं, तथा आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता की केवल एक रूपरेखा या नक्शा ('outline' or 'map' of reality) है।

(iii) इस बात का डर हो सकता है कि हम आर्थिक सिद्धान्त या माडल से कुछ नैतिक गुणों (moral or ethical qualities) की आशा करने लग जाएं।

वास्तव में आर्थिक सिद्धान्त तो केवल विश्लेषणात्मक यन्त्र (analytical tools) होते हैं जिनका नैतिकता से कोई सम्बन्ध नही होता है; वे "क्या है?" के सम्बन्ध में सामान्य कथन (generalizations) होते हैं; उनका "क्या होना चाहिए?" से कोई रिश्ता नही होता।

निष्कर्ष (Conclusion)

आर्थिक सिद्धान्त के अर्थ व स्वभाव, उसके उद्देश्य, तथा उसकी सीमाओं व खतरों का विवेचन करने के पश्चात् निम्नलिखित दो निष्कर्ष स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष आते हैं—

(i) आर्थिक सिद्धान्त एक काल्पनिक व बौद्धिक खिलौना (imaginary and intellectual toy) नहीं होता जिसका कि वास्तविकता (reality) से कोई सम्बन्ध न हो; वह सिद्धान्त जिसकी नींव वास्तविकता या तथ्यों में नहीं होती वह एक अच्छा सिद्धान्त नही होता। परन्तु साथ ही आर्थिक सिद्धान्त 'वास्तविकता के पूर्ण यौवन' ('full bloom of reality') को भी नहीं बताता; वह तो वास्तविकता की केवल मोटी रूपरेखा (rough outline) को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में,

> आर्थिक सिद्धान्त वास्तविकता का केवल एक 'नक्शा' होता है; वह वास्तविकता का एक 'फोटोग्राफिक चित्र' नहीं होता; वह वास्तविकता के केवल 'सार' (essence) को पकड़ता है।[14]

(ii) आर्थिक सिद्धान्त वास्तविक जीवन का एक सरलीकृत (simplified) रूप होता है, इसलिए आर्थिक सिद्धान्त से बहुत ज्यादा आशा करना ठीक नही है। अर्थ-व्यवस्था इतनी जटिल होती है कि उसके कार्यकरण (operation) की पूर्ण व्याख्या व दिये हुए आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने के पूर्ण उपाय या पूर्ण नीतियाँ केवल कुछ सामान्य व सरल नियमो द्वारा प्रस्तुत नही की जा सकती हैं। आर्थिक सिद्धान्त मुख्यतया 'विश्लेषण के यन्त्र' (tools of analysis) प्रदान करते हैं; वे आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए तैयार नुस्खे (ready-made prescriptions) नही देते। दूसरे शब्दों में,

> "हमारे विश्लेषण (अर्थात् आर्थिक विश्लेषण या सिद्धान्त) का उद्देश्य एक मशीन प्रदान करना नहीं है अथवा अन्धेपन से कार्य करने या कारस्तानी करने (blind manipulation) की रीति से नहीं है जो कि एक पूर्ण निश्चित व अचूक उत्तर दे सके; बल्कि इसका उद्देश्य विशिष्ट समस्याओं को सोचने के लिए एक संगठित

---

[14] Economic theory is only a 'map' of reality; it is not a 'photographic' picture of reality; it simply captures the 'essence' of reality.

व नियमित रीति को हमारे लिए प्रस्तुत करने का होता है।"[25]

अथवा

"अर्थशास्त्र का सिद्धान्त ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करता है, जिनका कि नीति के रूप में तत्काल ही प्रयोग हो सके। यह तो एक रीति (method) है, न कि एक विश्वास (doctrine), मस्तिष्क का एक यन्त्र तथा विचार करने की एक तकनीक (technique) है, जो इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष प्राप्त करने मे सहायता करती है।"[26]

प्रश्न

1. "आर्थिक विश्लेषण आर्थिक जीवन का एक पूर्ण चित्र नही होता, वह उसका केवल एक नक्शा होता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Economic analysis is not a perfect picture of economic life; it is a *map* of it." Discuss this statement.

अथवा

"अर्थशास्त्र का सिद्धान्त ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान नही करता है जिनका कि नीति के रूप में तत्काल ही प्रयोग हो सके। यह तो एक रीति है, न कि एक विश्वास (doctrine), मस्तिष्क का एक यन्त्र तथा विचार करने की एक तकनीक (technique) है, जो इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष प्राप्त करने मे सहायता करती है।" विवेचना कीजिए।

"The theory of economics does not furnish a body of settled conclusions immediately applicable to policy. It is a method rather than a doctrine, an apparatus of the mind, a technique of thinking, which helps its possessor to draw correct conclusions." Discuss. (Bihar, Agra, Nagpur)

अथवा

"अर्थशास्त्र स्वयं व्यावहारिक समस्याओं का उत्तर नही देता बल्कि उन समस्याओ में खोज करने का साधन या यन्त्र है।" विवेचना कीजिए।

"Economic theory does not itself provide answers to practical problems but is an equipment for use in the inquiry into them." Discuss.

अथवा

"आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य एक मशीन प्रदान करना नही है, अथवा अन्धेपन से कार्य करने या कारस्तानी करने (blind manipulation) की रीति से नही है जो कि एक पूर्ण निश्चित व अचूक उत्तर दे सके, बल्कि इसका उद्देश्य विशिष्ट समस्याओ को सोचने के लिए एक सगठित व नियमित रीति को प्रस्तुत करने का होता है।" विवेचना कीजिए।

"The object of economic theory is not to provide a machine, or method of blind manipulation, which will furnish an infallible answer, but to provide ourselves with an organized and orderly method of thinking out particular problems." Discuss.

---

[25] "The object of our analysis (that is, economic analysis or theory) is, not to provide a machine, or method of blind manipulation, which will furnish an infallible answer, but to provide ourselves with an organized and orderly method of thinking out particular problems."

[26] "The theory of economics does not furnish a body of settled conclusions immediately applicable to policy. It is a method rather than a doctrine, an apparatus of the mind, a technique of thinking, which helps its possessor to draw correct conclusions."

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर में आर्थिक सिद्धान्त के अर्थ व स्वभाव, उनके उद्देश्य तथा उसकी सीमाओं की संक्षेप में विवेचना कीजिए।]

2. क्या सैद्धान्तिक विश्लेषण अर्थशास्त्र में आवश्यक और उपयोगी है ? क्या कारण है कि आर्थिक सिद्धान्त के बिना अर्थशास्त्र की सम्भावना नहीं हो सकती ?
   Is economic theory necessary and useful ? Why can't we have economics without economic theory ? (Rajasthan)
3. यदि "अर्थशास्त्री एक वैज्ञानिक है तो उसमें महत्त्वपूर्ण घटनाओं की भविष्यवाणी करने की शक्ति होनी चाहिए; यदि वह एक कलाकार (artist) है तो वह भविष्य की घटनाओं को नियमित व नियंत्रण करने योग्य होना चाहिए। वह इसमें से कोई भी बात नहीं कर पाता है, तो अर्थशास्त्री अपने विज्ञान के लिए क्या दावा (claim) कर सकता है ?"
   "If the economist is a scientist he should be able to predict significant events; if he is an artist he should be able to control and shape future events. He is able to do neither. What claim can the economist, then, make for his discipline ?
4. क्या यह कहना सत्य है कि अर्थशास्त्र हमें सुनिश्चित निष्कर्षों के एक समूह को प्रदान नहीं करता है जिनको तत्काल नीति में प्रयोग किया जा सके ? यदि यह सत्य है तो आप आर्थिक सिद्धान्त के महत्त्व के बारे में क्या सोचते हैं ?
   Is it true to say that economics does not furnish us with a body of settled conclusions immediately applicable to policy ? If true, what do you think is the significance of economic theory ?

स्थैतिक तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र

(*Static and Dynamic Economics*)

"Since almost any problem in Economics has been, or can be, treated dynamically, it is clear that the only thing that different dynamic studies have in common is their *method*. And since the formal methods involved in dynamics are usually numerical and mathematical, the ordinary student of economics frequently finds himself shut out from an understanding of much of the modern dissensions—unless he is willing to put in a fair amount of concentrated effort in mastering the rudiments of the dynamic method."

—PAUL A. SAMUELSON

आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करते समय हमें प्रचलित परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ मान्यताओं को लेकर चलना पड़ता है। ये मान्यताएं आर्थिक निष्कर्षों को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करती हैं। हम आर्थिक समस्याओं का अध्ययन स्थैतिक (Static) या प्रावैगिक (Dynamic) दशाओं में कर सकते हैं। स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विचार आर्थिक विश्लेषण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

स्थैतिक तथा प्रावैगिक में अन्तर
(DISTINCTION BETWEEN STATICS AND DYNAMICS)

1. **स्थैतिक विश्लेषण का अर्थ** (The Concept of Static Analysis)

अर्थशास्त्र में स्थैतिक[1] का सम्बन्ध ऐसी अर्थ-व्यवस्था से होता है जिसमें गति (movement) **होती है, परन्तु इस गति की दर** (rate of movement) **में कोई परिवर्तन नहीं होता।** यह गति निश्चित व नियमित रूप से होती है, उसमें कोई उतार-चढ़ाव (fluctuations), झटके (jerks) या अनिश्चितता (uncertainty) नहीं होती है। हैरोड (Harrod) के शब्दों में, "इस सक्रिय परन्तु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया" ("this active but unchanging process") को अर्थशास्त्र में स्थैतिक कहा जाता है।

प्रो. हिक्स (J. R. Hicks) स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विचारों (concepts) को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं—

"आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को मैं स्थैतिक अर्थशास्त्र कहता हूं जिनमें हमें

---

[1] भौतिक शास्त्र (Physics) में 'स्थैतिक' शब्द 'विश्राम की अवस्था' (state of rest) का प्रतीक होता है। परन्तु अर्थ-व्यवस्था में 'विश्राम की अवस्था' का अर्थ 'निष्क्रियता की स्थिति' (state of idleness), या मृतक अथवा गतिहीन अर्थ-व्यवस्था (dead or motionless) economy) से नहीं होता।

> **तिथीकरण (dating) की आवश्यकता नहीं होती एवं उन भागों को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहता हूं जिनमें प्रत्येक मात्रा का तिथिकरण करना आवश्यक है।"[2]**

अब हम हिक्स की परिभाषा पर टीका (comment) करते है, ऐसा करने से हमे स्थैतिक के विचार को सही रूप मे समझने में बहुत सहायता मिलेगी। हिक्स 'स्थिर स्थितियों' (stationary situations) के विश्लेषण को स्थैतिक मानना सुविधाजनक पाते है; स्थिर स्थितियों से अभिप्राय ऐसी स्थितियों से है जहा किसी चीज मे भी परिवर्तन नहीं होता है और जहाँ भूतकाल (past) तथा भविष्यकाल के सम्बन्ध में कोई ध्यान देने की आवश्यकता नही होती क्योंकि (परिवर्तन की अनुपस्थिति में) वर्तमान से सम्बन्धित तथ्य तथा विश्लेषण (facts and analysis) किसी भी अन्य समय पर पूरी प्रकार से लागू किये जा सकेंगे। जब एक बार अर्थ-व्यवस्था मे परिवर्तन होना शुरू हो जाता है तो, हिक्स के अनुसार, विश्लेषण प्रावैगिक हो जाता है क्योंकि विभिन्न तिथियों (different dates) पर चीजें भिन्न होगी।[4]

हिक्स की परिभाषा के प्रति मुख्य आलोचना यह की जाती है कि उनकी परिभाषा प्रावैगिक में ऐसी बहुत सी समस्याएं शामिल कर लेती है जिनके लिए स्थैतिक विश्लेषण की रीतियां पर्याप्त होंगी; अर्थात् यह प्रावैगिक के क्षेत्र को अनावश्यक रूप से विस्तृत कर देती हैं।[5]

हैरोड के अनुसार, स्थैतिक अर्थशास्त्र को केवल स्थिर अर्थव्यवस्था का, जिसमें परिवर्तनो की पूर्ण अनुपस्थिति मानी जाती है, अध्ययन समझना पूर्णतया सही नही है। उनके अनुसार कुछ प्रकार के परिवर्तन, जैसे 'एक-बारगी परिवर्तन' (once-over changes), मौसमों तथा फसलों के परिवर्तन, इत्यादि स्थैतिक अर्थशास्त्र में शामिल होते हैं, बशर्ते (provided) कि ये परिवर्तन संतुलन के स्थापित होने की प्रवृत्ति को नष्ट न करते हों।[6]

हैरोड ने ठीक ही कहा है कि 'तिथीकरण' (dating) न तो प्रावैगिक के लिए आवश्यक है

---

[2] "I call economic statics those parts of economic theory where we do not trouble about dating, economic dynamics those parts where every quantity must be dated."
—J. R. Hicks, *Value and Capital*, p. 117.

[3] स्टिगलर (Stigler) के अनुसार 'स्थिर अर्थ-व्यवस्था' (stationary economy) तब होगी जबकि तीन आधारभूत तथ्यों (data)—(i) रुचि (ii) साधनों और (iii) टेक्नोलोजी—में कोई परिवर्तन न हो। प्रो. क्लार्क (Clark) ने 'स्थिर अर्थ-व्यवस्था' के लिए तथ्यों के अन्तर्गत पांच बातों को स्थिर या समान माना है और वे पांच तथ्य हैं—(i) जनसंख्या (ii) पूंजी (iii) उत्पादन की रीतियां (iv) वैयक्तिक कारखानों के रूप (form of individual establishments) तथा (v) मानवीय आवश्यकताएं।

[4] "Hicks finds it convenient to class as static only the analysis of stationary situations, situations where nothing changes and where no attention need be paid to the past or to the future because the facts and analysis relating to the present will apply equally well at any other time. Once the system begins to change, then the analysis, according to Hicks becomes dynamic, for at different dates things will be different."

[5] "The main criticism that has been made against this definition is that it includes in dynamics many problems where methods of static analysis suffice. In other words, it unnecessarily widens the scope of dynamics."

[6] कुछ अर्थशास्त्री 'एक-बारगी परिवर्तनों' को 'तुलनात्मक स्थैतिक' (comparative statics) के अन्तर्गत रखना पसन्द करते हैं। तुलनात्मक स्थैतिक के अन्तर्गत हम परिवर्तनशील प्रक्रिया को कई संतुलन स्थितियों में बांट लेते हैं और एक संतुलन स्थिति की दूसरी संतुलन स्थिति के साथ तुलना करते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन चाहे स्थैतिक के अन्तर्गत रखे जायें या तुलनात्मक स्थैतिक के, परन्तु वे प्रावैगिक के अन्तर्गत नही रखे जाते। तुलनात्मक स्थैतिक के बारे में इसी अध्याय मे विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।

और न ही स्थैतिक के लिए; अर्थात् तिथीकरण के होने या न होने से आर्थिक विश्लेषण प्रावैगिक या स्थैतिक नही हो जाता है।[7]

वास्तव में स्थैतिक का सम्बन्ध 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) से नही होता, और इसलिए स्थैतिक किसी आर्थिक स्थिति का एक दिये हुए क्षण या एक दिये हुए समय पर ही विश्लेषण करती है। दूसरे शब्दो मे,

> **"स्थैतिक एक गतिशील अर्थ-व्यवस्था का, उसके विभिन्न भागों की स्थितियों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धो को ध्यान में रखते हुए, एक 'फोटोग्राफ' या एक 'स्थिर चित्र' (a 'still') का अध्ययन करती है। 'स्थिर चित्र' का तिथीकरण होना आवश्यक है परन्तु हमारे द्वारा उसका विश्लेषण स्थैतिक हो सकता है।"[8]**

स्थैतिक विश्लेषण का अर्थ निम्न विवरण से अच्छी प्रकार से स्पष्ट हो जायेगा—

(i) **स्थैतिक विश्लेषण के लिए साम्य (equilibrium) का विचार आधार है।** स्थैतिक विश्लेषण का सम्बन्ध, एक क्षण या एक समय विशेष पर, अर्थ-व्यवस्था अथवा किसी विशेष आर्थिक इकाई के साम्य की स्थिति के अध्ययन से होता है।

(ii) ***दूसरे शब्दों में, स्थैतिक विश्लेषण एक समय-रहित विचार (timeless concept) है।*** स्थैतिक विश्लेषण इस अर्थ मे समय-रहित होता है कि इसके अन्तर्गत एक दिये हुए क्षण या एक दिये हुए समय पर ही आर्थिक तत्त्वो पर विचार किया जाता है, और इसलिए उनका समय के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किन्ही भी दशाओ की आवश्यकता नही पडती; इसके अन्तर्गत आर्थिक तथ्यो का भूतकाल (past) तथा भविष्य से सम्बन्ध नही होता।

(iii) **दूसरे शब्दों में, स्थैतिक विश्लेषण समय की उपेक्षा (ignore) करता है।** समय की उपेक्षा के अभिप्राय (implications) है .

(a) *स्थैतिक विश्लेषण मान लेता है कि अर्थव्यवस्था मे* **परिवर्तन के साथ फौरन समायोजन** *(instantaneous adjustments)* **हो जाते है।**

(b) स्थैतिक विश्लेषण अर्थ-व्यवस्था या किसी विशेष आर्थिक इकाई के केवल एक फोटोग्राफ या **एक 'स्थिर चित्र'** (a '*still*') का अध्ययन करता है; अथवा यह कहिए कि **स्थैतिक विश्लेषण 'समय की एक फांक' (a 'slice of time') पर अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करता है** तथा 'समय की उस फांक' पर (at that slice of time) ही आर्थिक तथ्यो के सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है। अत: **बोमोल** (Baumol) **इस प्रकार की समय-फांकों (such time-slices) के अध्ययन को स्थैतिक कहते हैं।**

(c) स्थैतिक विश्लेषण का सम्बन्ध **न तो समय** (time) **से होता है** जो कि एक आर्थिक इकाई अथवा अर्थ-व्यवस्था का एक साम्य की स्थिति तक पहुंचने मे लगता है **और न इसका सम्बन्ध उस रास्ते या प्रक्रिया** (path or process) **से होता है** जिसके द्वारा *आर्थिक तत्त्व (economic variables) अपनी साम्य की स्थितियो तक पहुचते है।*[9]

समस्त स्थिति सेम्युलसन (Samuelson) **द्वारा दी गयी स्थैतिक की परिभाषा** मे इस प्रकार व्यक्त की गयी है ·

---

[7] "In Dynamics as I conceive it dating is no more necessary than in statics", that is, dating or absence of dating does not make an economic analysis dynamic or static.

[8] Statics studies "a photograph or a 'still' of a system in motion considering the positions of its various parts and the way they fit together The 'still' must be dated, but our analysis of it can be static"

[9] Static analysis is neither concerned with the 'time' which an economic unit or the economy takes for an equilibrium position to be achieved, nor it is concerned with the 'path' or the 'process' by which the equilibrium position is reached.

"स्थैतिक का रिश्ता आर्थिक चरों (economic variables) के, उनके पारस्परिक सम्बन्धों द्वारा, एक साथ तथा फौरन या समय रहित निर्धारण से होता है।"[10]

2. प्रावैगिक का अर्थ (The Concept of Dynamics)

प्रावैगिक अर्थशास्त्र 'निरन्तर परिवर्तनों' (continuous changes) तथा इन परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों (determinants of change) या 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन करता है। आर्थिक प्रावैगिक रीति, स्थैतिक अर्थशास्त्र की भाँति, आर्थिक तत्त्वों (economic data) को स्थिर नहीं मानती।

स्थैतिक की भांति प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। हम मुख्य अर्थशास्त्रियों की परिभाषाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित करते हुए तथा उनकी कमियों और गुणों को बताते हुए नीचे देते हैं

(i) हिक्स (Hicks)[11] आर्थिक सिद्धान्त के उन विभागों को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहते हैं जिनमें प्रत्येक मात्रा का तिथीकरण (dating) करना आवश्यक है। आलोचकों का कहना है—

(a) हिक्स की परिभाषा प्रावैगिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर देती है, तथा

(b) तिथीकरण करने से ही आर्थिक विश्लेषण प्रावैगिक नहीं हो जाता है।

(ii) हैरोड (Harrod) के अनुसार, "प्रावैगिक का सम्बन्ध विशेषतया निरन्तर परिवर्तनों के प्रभावों तथा निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों में परिवर्तनों की दरों से होना चाहिए।"[12]

(iii) रेगनर फ्रिश (Ragnar Frish) हैरोड की परिभाषा में थोड़ा परिवर्तन करते हुए कहते हैं कि प्रावैगिक के अध्ययन के लिए निरन्तर परिवर्तन (continuing change) महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) अधिक महत्त्वपूर्ण है। फ्रिश का कहना है कि प्रावैगिक का सार (essence) परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण है न कि अर्थव्यवस्था की अस्थिरता (non-stationarity of the system) का। फ्रिश प्रावैगिक को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं—

"एक प्रणाली (system) प्रावैगिक होगी यदि समय के विभिन्न बिन्दुओं पर चर (variables) एक महत्त्वपूर्ण तरीके से (in an essential way) सम्बन्धित हों।"[13]

(iv) बोमोल (Baumol) फ्रिश की परिभाषा को मान्यता देते हैं। बोमोल के अनुसार प्रावैगिक का सार (essence) भविष्यवाणी (prediction) करना है, भविष्यवाणी का अर्थ केवल स्टाक-ऐक्सचेंज (stock-exchange) की कीमतों की भविष्यवाणी से नहीं लेना चाहिए परन्तु एक घटना को पिछली घटनाओं से सम्बन्धित करते हुए इसका अर्थ व्यापक दृष्टिकोण से लेना चाहिए।[14] बोमोल प्रावैगिक को अग्र शब्दों में परिभाषित करते हैं—

[10] "Statics concerns itself with the simultaneous and instantaneous or timeless determination of economic variables by mutually interdependent relations."

[11] Hicks suggested that "we call economic dynamics those parts where every quantity must be dated." —Hicks, *Value and Capital*, p. 115.

[12] "Dynamics will specially be concerned with the effects of continuing changes and with rates of change in the values that have to be determined." —Harrod, *op. cit.*, p. 3.
हैरोड (Harrod) ने सुझाव दिया है कि प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परिभाषा को निरन्तर परिवर्तनों (continuous changes) के विश्लेषण तक ही सीमित रखना चाहिए तथा एकबारगी परिवर्तनों (once-over changes) का अध्ययन इसके अन्तर्गत नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार, प्रावैगिक का सम्बन्ध ऐसी अर्थ-व्यवस्था से होना चाहिए जिसमें कि उत्पादन की दरें (rates of output) परिवर्तित हो रही हों।

[13] "A system is dynamical if variables at different points of time are involved in an essential way."

[14] The essence of dynamics "is thus prediction, not simply in the sense of forecasting stock-exchange prices, for example, but also in the general sense of relating an event to the events which preceeded it."

'प्रावैगिक अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं का अध्ययन पिछली और आगे की घटनाओं को सम्बन्धित करते हुए करता है।"[15]

(v) सेम्युलसन भी फ्रिश की परिभाषा से सहमत है। फ्रिश की परिभाषा का सेम्युलसन द्वारा कथन (Samuelson's statement of Frisch's definition) निम्नलिखित है—

"हम कह सकते हैं कि एक प्रणाली (system) प्रावैगिक है यदि एक समय अवधि में उसका व्यवहार ऐसे फलनात्मक समीकरणों (functional equations) द्वारा निर्धारित होता है जिनमें कि समय के विभिन्न बिन्दुओं पर चर (variables) एक महत्त्वपूर्ण तरीके से सम्बन्धित होते हैं।"[16]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से प्रावैगिक का अर्थ स्पष्ट हो जाता है, तथा हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुचते हैं—

(i) फ्रिश, बोमोल तथा सेम्युलसन की परिभाषाएँ उस "दृष्टिकोण" (*'point of view'* or *'approach'*) को बताती है जिससे प्रावैगिक पर विचार करना चाहिए। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार प्रावैगिक का कार्य "आर्थिक घटना" या "आर्थिक चरों" का 'समय-रास्ता' (time-path) अथवा 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) को ज्ञात करना होता है; 'समय-रास्ते' या 'परिवर्तन की प्रक्रिया' के अध्ययन का परिणाम एक 'स्थिर अवस्था' (stationary state) की स्थिति का मालूम होना हो सकता है अथवा एक 'प्रावैगिक प्रक्रिया' (dynamic process) का मालूम होना हो सकता है जिसमे यह पता लगता है कि एक चीज दूसरी में से ही किस प्रकार विकसित (grow) करती है।

इसके विपरीत हिक्स तथा हैरोड की परिभाषाएँ 'अध्ययन की जाने वाली वस्तु के स्वभाव' (*nature of the thing studied*) अथवा 'विषय-वस्तु' (content) को बताती है; अर्थात् इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार प्रावैगिक का कार्य समय के विभिन्न बिन्दुओं पर आर्थिक घटना के स्वभाव का अध्ययन करना है।

(ii) फ्रिश, बोमोल तथा सेम्युलसन के द्वारा दी गयी परिभाषाएँ प्रावैगिक के अर्थ को सही रूप में प्रस्तुत करती हैं। प्रावैगिक के अन्तर्गत "परिवर्तन की प्रक्रिया में समय को स्पष्ट मान्यता" (explicit recognition of time in the process of change) दी जाती है। समय की स्पष्ट मान्यता के अभिप्राय (implications) हैं—

(a) प्रावैगिक के अन्तर्गत 'समय के विभिन्न बिन्दुओं पर आर्थिक चर (economic variables) एक महत्त्वपूर्ण तरीके से सम्बन्धित' होते हैं।

(b) प्रावैगिक, स्थैतिक की भाँति, अर्थ-व्यवस्था के फौरन समायोजन (instantaneous adjustments) की मान्यता को स्वीकार नहीं करता, प्रावैगिक आर्थिक चरों के बीच 'विलम्बित सम्बन्धों' (lagged relationships)[17] का अध्ययन करता है।

(c) प्रावैगिक समय के विभिन्न बिन्दुओं पर परिवर्तन की प्रक्रिया को बताता है जिसका

---

15 "Economic dynamics is the study of economic phenomena in relation to preceeding and succeeding events."

16 "We may say that a system is dynamical if its behaviour overtime is determined by functional equations in which 'variables at different points of time' are involved in an 'essential' way."

17 'समय-विलम्ब' (time-lag) या 'विलम्बित सम्बन्धों' (lagged relationships) का अर्थ होता है कि 'आर्थिक चरों' (economic variables) या 'आर्थिक तथ्यों' (economic data) में परिवर्तन के उत्तर में अर्थ-व्यवस्था को समायोजन में समय लगता है, एकदम या फौरन समायोजन नहीं हो जाता है।

अभिप्राय है कि यह 'असन्तुलन'[17] (disequilibrium) की स्थिति पर प्रकाश डालता है; अतः, प्रावैगिक असंतुलन का अध्ययन है।

(d) आर्थिक चर, समय के विभिन्न बिन्दुओं पर, एक महत्वपूर्ण तरीके से सम्बन्धित होते, हैं इसके आधार पर ही प्रावैगिक यह बताता है कि किस प्रकार से एक स्थिति का पिछली स्थिति में से विकास होता है (how one situation grows out of the foregoing)।

संक्षेप में हम कह सकते हैं—

प्रावैगिक विश्लेषण समय, परिवर्तन तथा विकास से सम्बन्धित होता है।

(Dynamic analysis involves time, change and growth.)

3. स्थैतिक तथा प्रावैगिक की तुलना (Comparison between Statics and Dynamics)

स्थैतिक तथा प्रावैगिक की परिभाषाओं तथा उनकी मुख्य विशेषताओं की विवेचना करने के बाद हम इन दोनों की संक्षेप में तुलना करते हैं ताकि उनके बीच अन्तर और अच्छी तरह से समझा जा सके—

(i) ऐसा सम्बन्ध, जिसमें कि आर्थिक चरों के मूल्य समय के एक ही बिन्दु या एक ही अवधि से रिश्ता रखते हैं, "स्थैतिक सम्बन्ध" कहा जाता है; और इस प्रकार के **स्थैतिक सम्बन्ध का अध्ययन ही स्थैतिक विश्लेषण है।** दूसरे शब्दों में, स्थैतिक विश्लेषण एक 'समयरहित विचार' (timeless concept) है।[18]

ऐसा सम्बन्ध, जिसमें कि आर्थिक चरों के मूल्य समय के विभिन्न बिन्दुओं से रिश्ता रखते हैं, 'प्रावैगिक सम्बन्ध' कहा जाता है; तथा ऐसे 'प्रावैगिक सम्बन्ध' का अध्ययन ही प्रावैगिक विश्लेषण है। दूसरे शब्दों में, 'प्रावैगिक का सम्बन्ध समय, परिवर्तन तथा विकास से होता है।'[19]

एक सिद्धान्त को केवल इसलिए प्रावैगिक नहीं मान लेना चाहिए कि वह 'आशाओं' (expectations) को शामिल (introduce) कर लेता है। वह सिद्धान्त प्रावैगिक है या नहीं इस बात पर निर्भर करेगा कि आर्थिक चरों के प्रत्याशित मूल्य (expected values of economic variables) समय के विभिन्न बिन्दुओं या विभिन्न अवधि . से सम्बन्ध रखते हैं या नहीं।[20]

(ii) स्थैतिक विश्लेषण 'सन्तुलन का अध्ययन' (study of equilibrium) है; यह समायोजन के समय, प्रक्रिया व रास्ते (time, process and path of adjustment) से कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

प्रावैगिक विश्लेषण 'असन्तुलन का अध्ययन' (study of disequilibrium) है; इसका मुख्य कार्य समायोजन के समय, प्रक्रिया व रास्ते का पता (tracing out) लगाना है:

(iii) एक ओर 'स्थैतिक' तथा 'प्रावैगिक' शब्दों के जोड़े (pair of concepts of statics and dynamics), तथा दूसरी ओर 'स्थिर' व 'परिवर्तनशील' शब्दों के जोड़े (pair of concepts of 'stationary' and 'changing') के बीच भेद किया जाता है। 'स्थैतिक' तथा

[18] A relationship in which the values of the economic variables belong to the same point of time, or the same period. is called *statics relationship*; and *the study of such static relationship is static analysis.* In other words, statics is a *timeless concept.*

[19] A relationship is which the values of the economic variables relate to different points of time, is called *dynamic relationship* : and *the study of such dynamic relationship is dynamic analysis.* In other words, *dynamic analysis involves time, change and growth.*

[20] "A theory is not to be considered as dynamic simply because it introduces expectations. Whether that is the case or not depends simply on whether or not the expected values of the single variables relate to different periods, or points, of time."

'प्रावैगिक' आर्थिक घटनाओं के "विवेचन के एक तरीके" (mode of treatment) या "विश्लेषण की एक किस्म" (a type of analysis) से सम्बन्ध रखते है; जबकि शब्द 'स्थिर' तथा 'परिवर्तनशील' वास्तविक आर्थिक घटनाओं के विवरण (description of actual economic phenomena) को प्रस्तुत करते है। इस प्रकार—

> "स्थैतिक या प्रावैगिक विश्लेषण आर्थिक घटनाओं की एक विशेष प्रकार की व्याख्या होती है; और, निःसन्देह 'स्थिर' तथा 'परिवर्तनशील' घटनाओं का विश्लेषण स्थैतिक हो सकता है या प्रावैगिक।"[21]

तुलनात्मक स्थैतिक
(COMPARATIVE STATICS)

1. प्राक्कथन (Introduction)

स्थैतिक रीति तब ही उपयोगी होती है जबकि वह उन माडलों (models) के लिए प्रयोग की जाती है जो कि साम्य की स्थितियों मे होते है। आर्थिक शक्तियाँ या आर्थिक चर (economic variables) जो कि एक माडल की साम्य की स्थिति निर्धारित करते हैं एक समय अवधि मे बदल सकते हैं और प्रारम्भिक (original) साम्य को भंग करके एक नया साम्य स्थापित कर सकते हैं। हम प्रारम्भिक साम्य तथा नये साम्य की तुलना करके दोनों मे अन्तर को मालूम कर सकते हैं। स्थायी या स्थिर साम्य (stable or static equilibrium) स्थितियों का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन 'तुलनात्मक स्थैतिक साम्य विश्लेषण' (comparative static equilibrium analysis) या संक्षेप मे 'तुलनात्मक स्थैतिक' (comparative statics) कहा जाता है।

2. तुलनात्मक स्थैतिक की परिभाषा (Definition of comparative statics)

हम तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं—

> **आर्थिक विश्लेषण की रीति जो कि दो स्थायी या स्थिर साम्य की स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करती है, तुलनात्मक स्थैतिक कहलाती है। यह उस प्रक्रिया (process) या रास्ते (path) को, जिसके द्वारा नयी साम्य स्थिति प्राप्त होती है, नहीं बता सकती; यह तो 'परिवर्तन की प्रक्रिया या रास्ते' के ऊपर एक छलांग लगा देती है अर्थात् उसे छोड़ देती है और केवल साम्य की दो 'शांत' (still) या 'स्थिर' (static) स्थितियों की तुलना करती है।**[22]

हम सूक्ष्म अर्थशास्त्र (micro economics) से एक उदाहरण लेते हैं। एक बाजार मे हम किसी वस्तु की एक 'साम्य कीमत' से शुरू करते हैं। अन्य बातें समान रखते हुए हम यह मान लेते हैं कि वस्तु की माँग मे वृद्धि हो जाती है, इसके परिणामस्वरूप शुरू की साम्य कीमत बदल जायेगी और बाजार मे नयी साम्य कीमत स्थापित हो जायेगी। तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण पुरानी तथा नयी साम्य कीमतों की तुलना करेगा और बतायेगा कि नयी साम्य कीमत, पहले की तुलना में ऊँची है। परन्तु तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण की रीति यह नही बता सकती कि कैसे और किस रास्ते से नयी साम्य कीमत पर पहुँचा जाता है।

---

[21] "A static or dynamic theory is a particular kind of explanation of economic phenomena, and, indeed, stationary and changing phenomena can be submitted to a static or dynamic analysis."

[22] The technique of economic analysis which makes a comparative study of two positions of stable or static equilibrium is known as comparative statics It cannot indicate the 'process' or the 'path' by which the new equilibrium position is reached; it simply jumps over the path or the process of change and merely compares the two 'still' (or static) positions of equilibrium.

3. तुलनात्मक स्थैतिक की सीमाएँ (Limitations of comparative statics)

इसकी दो मुख्य सीमाएँ हैं—

(i) यह एक साम्य स्थिति से दूसरी साम्य स्थिति तक पहुंचने की प्रक्रिया या रास्ते को नहीं बता सकती है। 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) या 'समय-रास्ते (time-path) की व्याख्या तो 'प्रावैगिक विश्लेषण' (dynamic analysis) द्वारा ही की जा सकती है।

(ii) तुलनात्मक स्थैतिक केवल तभी उपयोगी होता है जबकि प्रत्येक दशा में पुरानी साम्य की स्थिति भंग होने पर नयी साम्य की स्थिति प्राप्त होती है। "यह उस कार्य (या स्थिति) के लिए अपर्याप्त रह जाती है, जबकि आर्थिक शक्तियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था एक निरन्तर असन्तुलन की स्थिति में बनी रहती है।" केवल प्रावैगिक विश्लेषण की रीति के द्वारा ही असन्तुलन की स्थितियों का अध्ययन किया जा सकता है। स्थैतिक रीति, चाहे वह साधारण हो या तुलनात्मक, केवल साम्य की स्थितियों पर ही ध्यान केन्द्रित करती है।[33]

स्थैतिक अर्थशास्त्र की सीमाएं तथा दोष

स्थैतिक अर्थशास्त्र, 'स्थिर अर्थ-व्यवस्था' (Stationary economy) का अध्ययन करता है परन्तु वास्तविक जगत परिवर्तनशील है। इसलिए वास्तविक जगत के लिए स्थैतिक रीति का प्रयोग बहुत ही सीमित रह जाता है। प्रो. हिक्स के शब्दों में, "स्थिर अवस्था अन्त में कुछ नहीं बल्कि केवल वास्तविकता से दूर भागना है।"[34] स्थैतिक रीति के बहुत सीमित प्रयोग के निम्नलिखित दो मुख्य कारण बताये जाते हैं :

(1) यह अवास्तविक मान्यताओं (Unrealistic assumptions) पर आधारित है, जैसे, पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ये मान्यताएँ नहीं पायी जाती हैं।

(2) यह रीति परिवर्तनशील तत्त्वों को स्थिर मान लेती है (It assumes variable data as constant) या आर्थिक व्यवहार को निर्धारित करने वाले तत्त्वों (determinants of economic behaviour)—रुचि, साधनों तथा टेक्नोलोजी—को स्थिर मान लेती है जबकि वास्तविक जीवन में ये परिवर्तनशील होते हैं और निरन्तर बदलते रहते हैं।

स्थैतिक अर्थशास्त्र का महत्त्व तथा क्षेत्र

यद्यपि स्थैतिक अर्थशास्त्र की सीमाएं है, परन्तु फिर भी आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहता है।[35] स्थैतिक का महत्त्व निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायेगा :

(1) आर्थिक जगत का कार्यकरण (working) जटिल सम्बन्धों में उलझा हुआ है तथा आर्थिक

---

[33] Comparative statics is useful only when in each case a new equilibrium position succeeds the old. "It is inadequate for the task, when, as a result of changes in underlying economic forces, a sysem goes into a state of continuous disequilibrium." Dynamic analysis alone can study the situations of disequilibrium. Static analysis, whether simple or comparative, pays attention only to equilibrium positions.

[34] "Stationary state is in the end nothing but an evasion."

—Hicks, *Value and Capital*, p. 117.

[35] ....that the scope of statics, in my judgement, has been too much narrowed of late. I believe that this arises from a certain tendency to denigrade the work of older economists."

—Harrod, *op. cit.*, p. 4.

तत्वों में निरन्तर परिवर्तन होते हैं। अतः परिवर्तनशील अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करना बहुत कठिन है और इसके लिए हमें स्थैतिक रीति की सहायता लेनी पड़ती है। जैसा कि प्रो. मेहता ने बताया है कि आर्थिक जीवाणु (economic organism) की गति को सूक्ष्म भागों में विभाजित करना पड़ता है, प्रावैगिक अवस्थाओं को छोटी-छोटी स्थैतिक अवस्थाओं में तोड़ा जा सकता है; तभी अध्ययन में सुविधा होगी क्योंकि शुद्ध प्रावैगिक का अध्ययन बहुत कठिन कार्य है। इस प्रकार हम स्थैतिक को प्रावैगिक की ही एक अवस्था मान सकते हैं। प्रो. मेहता कहते हैं कि "प्रावैगिक अर्थशास्त्र को स्थैतिक अर्थशास्त्र के ऊपर एक लगातार टीका (running commentary) माना जा सकता है। अतः स्थैतिक अर्थशास्त्र के नियम प्रावैगिक में लागू किये जाने चाहिए।"[26]

(2) **अर्थशास्त्र के कार्यकरण के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि स्थैतिक का सहारा लिया जाय।** एक उड़ते हुए वायुयान के कार्यकरण को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसकी मशीन तथा विभिन्न भागों का अध्ययन स्थिर अवस्था में किया जाय। **प्रो. स्टिगलर** (Stigler) ने ठीक कहा है, "जहां पर आर्थिक समस्याएं पूर्णतया समझी जा सकती हैं वहां भी यह उचित नहीं कि उनका विश्लेषण केवल एक कदम (single step) में ही किया जाये; चूंकि जटिल समस्याओं की व्याख्या भी प्रायः जटिल होती है, अतः व्याख्या को कई भागों में बांटने के शैक्षिक लाभ हैं।"[27]

(3) **स्थैतिक अर्थशास्त्र का महत्त्व उसके क्षेत्र (scope) या प्रयोगों (uses) से भी स्पष्ट होता है।** प्रो. हैरोड के अनुसार, स्वतन्त्र व्यापार (free trade) की समस्या, मूल्य निर्धारण या उत्पत्ति के साधनों का मूल्यांकन, एक व्यक्ति को अपने साधनों का मितव्ययिता के साथ प्रयोग करना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत, इत्यादि स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। **प्रो. हैरोड** के अनुसार, "यद्यपि प्रो. रोबिन्स की परिभाषा का कुछ सम्बन्ध प्रावैगिक से है परन्तु उनकी परिभाषा का अन्तःकरण या केन्द्रीय भाग (central core) स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ही आता है।" इसी प्रकार हैरोड आगे कहते हैं कि कीन्ज का सिद्धांत भी मुख्यतया स्थैतिक ही है, यद्यपि उनके सिद्धान्त में कुछ बातें प्रावैगिक से भी सम्बन्धित हैं—जैसे, वास्तविक बचत (positive saving) का विचार। व्यापार चक्र का सिद्धान्त स्थैतिक तथा प्रावैगिक की मध्य-सीमा (border line) पर स्थित बताया जाता है।

प्रावैगिक अर्थशास्त्र का महत्त्व, आवश्यकता तथा क्षेत्र

वास्तविक परिवर्तनशील जगत की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रावैगिक विश्लेषण की परम आवश्यकता है जो कि निम्न से स्पष्ट है—

(1) **प्रावैगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता स्थैतिक अर्थशास्त्र की अवास्तविकताओं (unrealities) के कारण उत्पन्न होती है।** स्थैतिक अर्थशास्त्र अवास्तविक मान्यताओं (जैसे, पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान, इत्यादि) पर आधारित है तथा यह आर्थिक व्यवहार के निर्धारकों (जैसे रुचि, साधनों, टेकनोलोजी) को स्थिर और अपरिवर्तनशील मान लेता है, जबकि वास्तविक जगत में ऐसा नहीं होता। अतः स्थैतिक की इन अवास्तविकताओं के कारण प्रावैगिक की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में प्रावैगिक का महत्त्व इस बात में निहित है कि वह, स्थैतिक की अपेक्षा, वास्तविकता के अधिक निकट है।

---

[26] "Dynamic economics is, as it were, a running commentary on static economics. The laws of static economics must, therefore, apply to dynamic."

—J. K. Mehta

[27] "Even when economic phenomena are completely understood it is not desirable to analyze them in a single step; the explanation of complicated phenomena is usually also complicated and there are pedagogical advantages in breaking the explanation down into several parts." —Stigler, *Theory of Value* (1947), p. 25.

(2) बहुत-सी समस्याएँ ऐसी हैं जिनका अध्ययन स्थैतिक नहीं कर सकता, उनके अध्ययन के लिए प्रावैगिक की आवश्यकता पड़ती है; जैसे—

(अ) निरन्तर परिवर्तनों (continuous changes) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन प्रावैगिक अर्थशास्त्र ही कर सकता है।

(ब) प्रावैगिक अर्थशास्त्र परिवर्तन उत्पन्न करने वाली मूल शक्तियों का अध्ययन करता है जबकि स्थैतिक उन्हें दिया हुआ मान लेता है। स्थैतिक केवल अन्तिम सन्तुलन (final equilibrium) का अध्ययन कर सकता है, परन्तु सन्तुलन की अपेक्षा, 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका अध्ययन प्रावैगिक ही कर सकता है।

(स) मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित आर्थिक समस्याओं के अध्ययन के लिए प्रावैगिक की ही आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, व्यापार चक्र जैसी जटिल आर्थिक समस्याओं का अध्ययन तथा उचित विश्लेषण प्रावैगिक द्वारा ही सम्भव है।

(3) प्रावैगिक विश्लेषण रीति की आवश्यकता इसलिए भी है कि यह लोचदार (flexible) होती है जिसके परिणामस्वरूप सभी प्रकार की सम्भावनाओं की खोज की जा सकती है। इसी लोचदार गुण के परिणामस्वरूप यह विकासमान (developing) तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा नियोजन (planning) की समस्याओं के विश्लेषण के लिए अधिक उपयोगी है।

(4) प्रावैगिक रीति का महत्त्व उसके क्षेत्र तथा प्रयोगों से भी स्पष्ट होता है। मकड़ी के जाले का सिद्धान्त (Cobweb Theorem) तथा व्यापार चक्र (Trade Cycles), जनसंख्या के विकास का सिद्धान्त, बचत तथा विनियोग के सिद्धान्त, ब्याज का सिद्धान्त, लाभ का सिद्धान्त, मूल्य निर्धारण पर समय का प्रभाव, इत्यादि प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

संक्षेप में, आर्थिक जीवन की समस्याओं को वास्तविक रूप में समझने तथा हल करने के लिए प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अध्ययन की परम आवश्यकता है।

प्रावैगिक की सीमाएँ

यद्यपि 'प्रावैगिक' आर्थिक विश्लेषण के लिए बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है परन्तु साथ ही यह बहुत जटिल भी है। इसकी मुख्य सीमाएं इस प्रकार हैं:

(1) यदि परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है, तो समस्या का अध्ययन केवल शुद्ध प्रावैगिक दृष्टिकोण से करना बहुत कठिन है, इसके लिए हमें समस्या को कई स्थैतिक टुकड़ों में बांट कर ही अध्ययन करना पड़ेगा।

(2) प्रावैगिक के अध्ययन के लिए इकोनोमेट्रिक्स (Econometrics) की सहायता लेनी पड़ती है जिसके कारण यह रीति बहुत कठिन हो जाती है।

(3) प्रावैगिक का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है जिसके कारण इसका प्रयोग कठिन हो जाता है।

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए दोनों की आवश्यकता है। कुछ आर्थिक समस्याएं ऐसी हैं जिनका अध्ययन प्रावैगिक द्वारा ही हो सकता है जबकि कुछ का अध्ययन स्थैतिक द्वारा किया जा सकता है तथा कुछ समस्याओं के विवेचन के लिए दोनों की साथ-साथ आवश्यकता पड़ सकती है। अतः अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए दोनों प्रणालियों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

प्रश्न

1. "मैं आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को आर्थिक स्थैतिक कहता हूं जिनमे हम तिथीकरण का कष्ट नही उठाते; गत्यात्मक (या प्रावैगिक) उन भागों को, जिनमें प्रत्येक मात्रा का सम्बन्ध किसी तिथि से होता है।" (जे. आर. हिक्स)
   उपरोक्त वाक्य से आप कहां तक सहमत हैं?
   "I call economic statics those parts of economic theory where every quantity must be dated." (J. R. Hicks)
   How far do you agree with the above statement? (Rajasthan)
   [संकेत—हिक्स की परिभाषा पर टीका (comment) करते हुए स्थैतिक तथा प्रावैगिक विश्लेषण के अर्थों को पूर्ण विस्तार के साथ समझाइए।]
2. "स्थैतिक या प्रावैगिक विश्लेषण आर्थिक घटनाओं की एक विशेष प्रकार की व्याख्या होती है; और, निःसन्देह, 'स्थिर' तथा 'परिवर्तनशील घटनाओं' का विश्लेषण स्थैतिक हो सकता है या प्रावैगिक।" इस कथन की व्याख्या कीजिये।
   "A static or dynamic theory is a particular kind of explanation of economic phenomena; and indeed, stationary and changing phenomena can be submitted to a static or dynamic analysis." Elucidate this statement. (Lucknow)
   [संकेत—स्थैतिक तथा प्रावैगिक के अर्थों को पूर्ण विस्तार के साथ समझाइए; इसका उत्तर बिलकुल वही होगा जो कि प्रश्न 1 का है।]
3. "प्रावैगिक की मुख्य विषय-सामग्री विकास (growth), न कि घटाव-बढ़ाव (oscillations), होनी चाहिए।" उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ में प्रावैगिक के विभिन्न अभिप्रायों की व्याख्या कीजिए।"
   "Growth, not oscillations, should be the primary subject matter for the study of dynamics." Explain the different interpretations of dynamics in the light of the above statement. (Lucknow)
4. स्थैतिक तथा प्रावैगिक के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए। हमें प्रावैगिक की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
   Distinguish between Statics and Dynamics. Why we need Dynamics?
5. 'स्थैतिक एक 'समय-रहित विचार' (timeless concept) है जबकि प्रावैगिक का सम्बन्ध समय से होता है।' इस कथन की पूर्ण व्याख्या कीजिए।
   'Statics is a timeless concept; whereas dynamics involves time.' Explain this statement fully.
   [संकेत—स्थैतिक तथा प्रावैगिक के अर्थों को पूर्ण विस्तार के साथ समझाइए।]
6. स्थैतिक तथा प्रावैगिक के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए। इनमे से आप किसको अधिक सामान्य तथा आधारभूत मानते है?
   Differentiate Statics from Dynamics in Economics. Which of these do you consider more general and fundamental? (Rajasthan)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र

(*Micro Economics and Macro Economics*)

"When economics focuses its study on the individual agents of the (production) process, the individual owner of labour or capital or land, or when it highlights the manner in which a typical entrepreneur organizes land, labour, and capital in its firm, we call the resulting study *micro economics*. When, however, economics opens its lens to the widest possible extent, to study not so much the individual participant in the production process but the total activity of all participants, we call the study *macro economics*.—R.L. HEILBRONER

1. प्राक्कथन
(INTRODUCTION)

अंग्रेजी के शब्द 'माइक्रो' (Micro) का अर्थ है 'छोटा' (small) तथा 'मैक्रो' (Macro) का अर्थ है 'बड़ा' (big)। माइक्रो अर्थशास्त्र या 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र'[1] छोटी इकाइयों अर्थात् व्यक्तिगत इकाइयों जैसे, एक फर्म, एक उद्योग, किसी एक वस्तु का मूल्य, इत्यादि का अध्ययन करता है। मैक्रो अर्थशास्त्र, या 'व्यापक अर्थशास्त्र'[2] सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है या उन बड़ी इकाइयों का अध्ययन करते है जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है, जैसे कुल राष्ट्रीय आय, कुल बचत, कुल विनियोग इत्यादि।

आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन प्रायः दो दृष्टिकोणों से किया जाता है—(i) सूक्ष्म विश्लेषण (Micro analysis), तथा (ii) व्यापक विश्लेषण (Macro analysis)। विश्लेषण की इन दोनों रीतियों के आधार पर ही अर्थशास्त्र को अब दो भागों में बाँटा जाने लगा है—(i) सूक्ष्म अर्थशास्त्र (Micro Economics), (ii) व्यापक अर्थशास्त्र (Macro Economics)। अर्थशास्त्र के विश्लेषण तथा अध्ययन की रीतियों में सूक्ष्म तथा व्यापक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

---

[1] Micro Economics के अन्य हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैं—व्यष्टि अर्थशास्त्र, वैयक्तिक पद्धति अर्थशास्त्र, आर्थिक व्यष्टिभाव।

[2] Macro Economics के अन्य हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैं—समष्टि अर्थशास्त्र, सामूहिक पद्धति अर्थशास्त्र, आर्थिक समष्टिभाव।

2. संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण
(A BRIEF HISTORICAL REVIEW)

प्रारम्भ से ही अर्थशास्त्रियों ने सूक्ष्म विश्लेषण (Micro analysis) का प्रयोग किया है तथा मार्शल ने इस पद्धति को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। यद्यपि *'व्यापक विश्लेषण' (Macro analysis)* अपेक्षाकृत नया है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्राचीन समय में इसका बिलकुल प्रयोग नहीं होता था। यह सत्य है कि प्राचीन समय में आर्थिक विश्लेषण के एक पृथक तथा स्पष्ट शाखा के रूप में 'व्यापक अर्थशास्त्र' विद्यमान नहीं था, परन्तु प्रायः 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' के साथ मिला कर प्रयोग में लाया जाता था। आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'सूक्ष्म-अर्थशास्त्र' तथा *'व्यापक अर्थशास्त्र' दोनों का अध्ययन विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने किया है।*

सन् 1930 की विश्वव्यापी मन्दी ने अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण में एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। कींज (J M. Keynes) ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि पूर्ण रोजगार की स्थिति का अध्ययन करने के लिए 'व्यापक विश्लेषण' अपनाना चाहिए। उन्होंने सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण को अनावश्यक नहीं बताया, बल्कि उसकी त्रुटियों पर उचित प्रकाश डाला। कींज की पुस्तक *General Theory of Employment, Interest and Money* 'व्यापक अर्थशास्त्र' के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। संक्षेप में, विश्वव्यापी मन्दी, द्वितीय विश्वयुद्ध, अविकसित देशों के तीव्र विकास की आवश्यकता तथा व्यापार चक्र को हल करने की आवश्यकता, इत्यादि *'व्यापक अर्थशास्त्र'* के विकास में महत्त्वपूर्ण कारण रहे हैं। केंज के *अतिरिक्त अन्य* अर्थशास्त्रियों—जैसे, वालरस (Walras), विक्सैल (Wicksell), फिशर (Fisher) इत्यादि ने व्यापक अर्थशास्त्र के विकास में बहुत सहयोग दिया है।

3. सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र में अन्तर

सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अर्थ *(Meaning of Micro Economics)*

सूक्ष्म अर्थशास्त्र वैयक्तिक या विशिष्ट आर्थिक इकाइयों (individual or particular economic units) के व्यवहार का अध्ययन करता है; जैसे, विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट उपभोक्ताओं, विशिष्ट वस्तुओं या विशिष्ट साधनों की कीमतों का अध्ययन, इत्यादि। एक उद्योग या एक बाजार का अध्ययन भी सूक्ष्म अर्थशास्त्र में किया जाता है। वास्तव में एक उद्योग बहुत सी फर्मों का योग (aggregate) है, परन्तु एक उद्योग सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का एक *'छोटा भाग' (small section)* है। इसी प्रकार एक बाजार भी कुल अर्थ-व्यवस्था का एक छोटा भाग है।[3] अतः सूक्ष्म अर्थशास्त्र को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है :

> *सूक्ष्म अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो कि 'विशिष्ट आर्थिक* **इकाइयों' तथा अर्थ-व्यवस्था के 'छोटे भागों' का, उनके व्यवहार तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करती है।**[4]

'विशिष्ट आर्थिक इकाइयों' तथा अर्थ-व्यवस्था के 'छोटे भागों' को अर्थशास्त्री 'सूक्ष्म चर' (micro variables) या 'सूक्ष्म मात्राएं' (micro quantities) कहते हैं। अतः,

---

[3] किसी एक वस्तु का बाजार भी सैकड़ों उपभोक्ताओं की माँगों के योग को बताता है। इस दृष्टि से एक बाजार को एक वैयक्तिक इकाई न कहकर अर्थ-व्यवस्था का एक छोटा भाग (small section of the economy) कहा जा सकता है।

[4] Micro economics is that branch of economic analysis which studies 'particular economic units' and 'small sections' of the economy, their behaviour and their interrelationship.

सूक्ष्म अर्थशास्त्र सूक्ष्म मात्राओं (micro quantities) या सूक्ष्म चरों (micro variables) के व्यवहार का अध्ययन करता है।[5]

['सूक्ष्म अर्थशास्त्र' को 'कीमत सिद्धान्त' (*Price Theory*) के नाम से भी पुकारा जाता है। इसी बात को प्रो. शूल्ज (Schultz) दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं: 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र का मुख्य यन्त्र कीमत सिद्धान्त है' (Price theory is the main tool of micro economics)। 18वीं-19वीं शताब्दी (centuries) में इसको 'मूल्य का सिद्धान्त' (*Theory of Value*) कहा जाता था। कुछ अर्थशास्त्री सूक्ष्म अर्थशास्त्र को 'कीमत तथा उत्पादन का सिद्धान्त' (*Theory of Pricing and Production*) भी कहते हैं। कभी-कभी सूक्ष्म अर्थशास्त्र को 'सामान्य अर्थशास्त्र' (*General Economics*) भी कहा जाता है।]

व्यापक अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Macro Economics)

व्यापक अर्थशास्त्र समस्त अर्थ-व्यवस्था का या उससे सम्बन्धित बड़े योगों तथा औसतों (large aggregates and averages) का अध्ययन करता है। व्यापक अर्थशास्त्र कुल आय, कुल रोजगार, कुल बचत, कुल विनियोग, कुल उपभोग, कीमत-स्तर, इत्यादि का अध्ययन करता है और इनके सम्बन्धों को समझने का प्रयत्न करता है ताकि समस्त अर्थ-व्यवस्था के कार्यकरण का एक सामान्य चित्र (general picture) प्राप्त हो सके। अतः व्यापक अर्थशास्त्र को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है—

व्यापक अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो कि समस्त अर्थ-व्यवस्था का तथा अर्थ-व्यवस्था से सम्बन्धित बड़े योगों व औसतों का, उनके व्यवहार का व उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।[6]

अर्थ-व्यवस्था से सम्बन्धित बड़े योगों या समूहों व औसतों को 'व्यापक मात्राएं' (*macro quantities*) या 'व्यापक चर' (*macro variables*) कहा जाता है। इनमें परिवर्तन होते रहते हैं। अतः,

व्यापक अर्थशास्त्र 'व्यापक मात्राओं' (*macro quantities*) या 'व्यापक चरों' (*macro variables*) के व्यवहार का अध्ययन करता है।[7]

[व्यापक अर्थशास्त्र बड़े योगों या बड़े समूहों का अध्ययन करता है, इसलिए इसे 'योग-सम्बन्धी अर्थशास्त्र' (*aggregative economics*) भी कहते हैं। कुल रोजगार व कुल (या राष्ट्रीय) आय का अध्ययन व्यापक अर्थशास्त्र में केन्द्रीय स्थान रखता है, इसलिए व्यापक अर्थशास्त्र को **'आय व रोजगार विश्लेषण'** (*Income and Employment Analysis*) अथवा 'आय सिद्धान्त' (*Income Theory*) या राष्ट्रीय आय विश्लेषण (National Income Analysis) भी कहते हैं। प्रो. शूल्ज (Schultz) इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"व्यापक अर्थशास्त्र का मुख्य यन्त्र राष्ट्रीय आय विश्लेषण है।"[8]]

वास्तव में 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' तथा 'व्यापक अर्थशास्त्र' के बीच एक निश्चित रेखा (precise or clear-cut line) खींचना अत्यन्त कठिन है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों के बीच अन्तर को समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

(i) सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र दोनों में विभिन्न मात्रा में 'योग करने

---

[5] Micro economics studies the behaviour of micro quantities or micro variables.

[6] Macro economics is that branch of economic analysis which studies the whole economy as well as the large aggregates and averages relating to the whole economy, their behaviour and their interrelationship.

[7] Macro economics studies the behaviour of macro quantities or macro variables.

[8] "The main tool of macro economics is national income analysis."

की क्रिया' (*aggregation*) तथा 'योग को टुकड़ों में तोड़ने की क्रिया' (*disaggregation*) का प्रयोग किया जाता है।[9]

[उदाहरणार्थ, सूक्ष्म अर्थशास्त्र मे एक उद्योग या एक बाजार का अध्ययन किया जाता है। उद्योग बहुत सी फर्मों का योग है, तथा बाजार की माँग रेखा वैयक्तिक माँग रेखाओं का योग है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के योग बहुत छोटे होते हैं, उनके अध्ययन से सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को समझना कठिन है। एक उद्योग की समस्याओं को समझने के लिए उसको टुकड़ो में तोडा (अर्थात् *disaggregation*) किया जा सकता है। उसके अन्तर्गत विभिन्न फर्मों का अध्ययन किया जा सकता है।

इसके विपरीत व्यापक अर्थशास्त्र के योग ऐसे बड़े योग होते हैं (जैसे कुल विनियोग, कुल व्यय, इत्यादि) जो कि सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को समझने के लिए उपयोगी हैं। स्पष्ट है कि यहां पर 'योग का स्तर' (level of aggregation), सूक्ष्म अर्थशास्त्र की तुलना मे, भिन्न है। 'कुल व्यय' (total expenditure) के व्यवहार को समझने के लिए इस योग को 'कुल उपयोग व्यय' (total consumption expenditure) तथा 'कुल विनियोग व्यय' (total investment expenditure) मे तोड़ा जा सकता है। इस प्रकार व्यापक अर्थशास्त्र मे भी, सुविधानुसार, एक सीमा तक, योगों को टुकडों मे तोडा जा सकता है (अर्थात् *disaggregation*) किया जा सकता है।]

'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' अर्थ-व्यवस्था को बहुत छोटे टुकडो या भागो मे बाँटकर अध्ययन करता है, इसलिए **सूक्ष्म अर्थशास्त्र को कभी-कभी 'फांकें या कतले करने की रीति' अर्थात् 'स्लाइसिंग की रीति'** (*Method of Slicing*) **कहा जाता है। इसके विपरीत 'व्यापक अर्थशास्त्र' अर्थ-व्यवस्था को बहुत बडे या विशाल भागो** अर्थात् बडे डलो (big lumps) मे बाँटकर अध्ययन करता है, इसलिए **व्यापक अर्थशास्त्र को कभी-कभी 'विशाल डले करने की रीति' अर्थात 'लॅम्पिंग की रीति'** (*Method of Lumping*) **कहा जाता है।**

(ii) सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र में अन्तर विषय-सामग्री का इतना नहीं है जितना कि रीति का; विषय-सामग्री को इच्छानुसार या सुविधानुसार दोनों में बांट दिया जाता है।[10]

उदाहरणार्थ, द्रव्य तथा वित्त (money and finance) का अध्ययन, जिसके अन्तर्गत बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओ का अध्ययन भी आता है, सुविधा के लिए व्यापक अर्थशास्त्र में किया जाता है, जबकि बैंको तथा वित्तीय सस्थाओ का अध्ययन, फर्मो के अध्ययन की भाँति, सूक्ष्म अर्थशास्त्र में शामिल करना चाहिए था। परन्तु यह परम्परा (tradition) है तथा सुविधाजनक (convenient) है कि वित्तीय सस्थाओ को व्यापक अर्थशास्त्र मे शामिल किया जाता है; इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि वित्तीय संस्थाएँ अर्थ-व्यवस्था के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं।

3. सूक्ष्म अर्थशास्त्र के प्रकार
(KINDS OR TYPES OF MICRO ECONOMICS)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के तीन प्रकार बताए जाते हैं: (i) **सूक्ष्म स्थैतिक** (Micro statics) (ii) **तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक** (Comparative Micro Statics) तथा (iii) **सूक्ष्म प्रावैगिक** (Micro dynamics)। इन तीनो का विवेचन आगे किया गया है:

---

[9] Both micro and mac o economics use various degree of aggregation and disaggregation.

[10] The distinction bet . micro and macro economics, "however, is more one of method than it is of subject matter, and, indeed, the subject matter is frequently parcelled out somewhat arbitrarily (or for convenience) between the two divisions."

(i) सूक्ष्म स्थैतिक (Micro statics)

सूक्ष्म स्थैतिक एक दिये हुए समय पर सूक्ष्म चरों (micro variables) के सम्बन्धों का साम्य की स्थिति में अध्ययन करता है; तथा यह मान लिया जाता है कि साम्य की स्थिति एक समय विशेष में स्थिर रहती है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। उदाहरणार्थ, एक बाजार मे किसी वस्तु की कीमत माँग तथा पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित होती है; सूक्ष्म-स्थैतिक दिये हुए समय पर इस वस्तु की साम्य या संतुलन कीमत का अध्ययन करेगी और दिये हुए समय के अन्तर्गत उसे स्थिर मान लेगी (अर्थात् माँग व पूर्ति की शक्तियों को स्थिर मान लेगी); यह रीति इस बात पर कोई प्रकाश नहीं डालती कि साम्य की स्थिति पर किस प्रकार पहुंचा गया है। विश्लेषण की यह रीति तो केवल सूक्ष्म चरों के सम्बन्धों के 'स्थिर या शांत चित्रों' (*still pictures*) का अध्ययन करती है। दूसरे शब्दो में,

> "सूक्ष्म स्थैतिक विश्लेषण की वह रीति है जो कि व्यक्तिगत बातों (जैसे, व्यक्तिगत कीमतों, उत्पादन की मात्राओं, साधनों, माँगों, पूर्तियों तथा अन्य सांख्यिकीय सूक्ष्म इकाइयों) के बीच सम्बन्ध का इस प्रकार से विवेचन करती है जैसे कि वे 'स्थिर या शांत चित्रों' की एक शृंखला (series) हों।"[11]

यह रीति आंशिक साम्य विश्लेषण (partial equilibrium analysis) से सम्बन्धित होती है।

'सूक्ष्म स्थैतिक' विश्लेषण को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र मे, एक बाजार में किसी वस्तु की माग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को बिन्दु P पर काटती हैं। अतः बाजार में वस्तु की संतुलन कीमत PQ (या RO) होगी तथा सतुलन मात्रा OQ होगी। यहाँ पर यह मान लिया गया है कि एक समय विशेष में माँग व पूर्ति शक्तियाँ स्थिर हैं, और इसलिए बाजार मे संतुलन कीमत PQ भी स्थिर है।
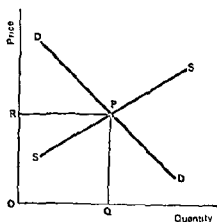
चित्र—1

(ii) तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक (Comparative Micro statics)

तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक सूक्ष्म चरो (micro variables) के सम्बन्धो की सन्तुलन (या साम्य) स्थितियों की तुलना करती है। विश्लेषण की यह रीति इस बात पर प्रकाश नही डालती कि 'सूक्ष्म संतुलन' (micro equilibrium) की एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक किस प्रकार पहुंचा गया है; यह तो संतुलन की दोनों स्थितियो का केवल तुलनात्मक अध्ययन करती है। उदाहरणार्थ, एक बाजार मे किसी वस्तु की कीमत 5 रु. है जो कि माँग व पूर्ति के सन्तुलन का परिणाम है। माना कि माँग में वृद्धि हो जाती है और बाजार में नयी संतुलन कीमत 8 रु. हो जाती है। तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक की रीति केवल दोनों सतुलन कीमतों की तुलना करेगी परन्तु इस बात पर प्रकाश नही डालेगी कि किस प्रक्रिया (process) द्वारा नयी संतुलन कीमत पर पहुंचा गया है। संक्षेप में, यह रीति 'विभिन्न स्थिर या शांत चित्रों' (different 'still' pictures) की तुलना करती है।

[ध्यान रहे कि यह तुलनात्मक अध्ययन सूक्ष्म चरों (जैसे एक बाजार, एक उद्योग, एक वस्तु,

[11] "Micro statics refers to that method of analysis which treats the relation between individual phenomena (e.g., particular prices, outputs, inputs, demands, supplies and other statistical micro units) as if they were a series of 'still' pictures."

एक साधन, एक फर्म, इत्यादि) के सम्बन्धो की तुलना पर ध्यान देता है, न कि व्यापक चरों (macro variables) के सम्बन्धों पर।]

'तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक' विश्लेषण को हम चित्र 2 द्वारा स्पष्ट कर सकते है। एक बाजार में एक समय विशेष पर किसी वस्तु की कीमत P_1Q_1 (या R_1O) है, जो माँग रेखा D_1D_1 तथा पूर्ति रेखा SS के कटाव बिन्दु P_1 द्वारा निर्धारित होती है। माना कि माग बढ जाती है और नई माँग रेखा दायें को खिसक कर D_2D_2 की स्थिति ले लेती है।
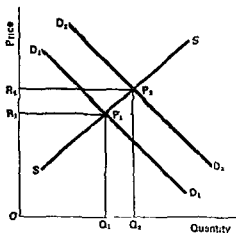
चित्र—2

अब वस्तु की नई संतुलन कीमत P_2Q_2 होगी। 'तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक' विश्लेषण केवल पहले सतुलन तथा दूसरे सतुलन की तुलना करेगा; अर्थात् यह बतायेगा कि नई सतुलन कीमत P_2 अधिक है पहली संतुलन कीमत P_1 से, तथा नई संतुलन मात्रा OQ_2 अधिक है पहली सतुलन मात्रा OQ_1 से। विश्लेषण की यह रीति (या तकनीक) इस बात पर कोई प्रकाश नही डालती है कि किस प्रक्रिया (process) द्वारा पहले सतुलन P_1 से दूसरे सतुलन P_2 पर पहुँचा गया है, यह तो केवल दोनो संतुलनों की केवल तुलना कर देती है।

(iii) सूक्ष्म प्रावैगिक (Micro dynamics)

सूक्ष्म प्रावैगिक रीति उस समायोजन की प्रक्रिया (process of adjustment) का अध्ययन करती है जिसके द्वारा सूक्ष्म चरों के सम्बन्धों की एक सतुलन स्थिति से दूसरी सतुलन स्थिति तक पहुंचा जाता है। उदाहरणार्थ, एक बाजार में एक वस्तु की कीमत माँग व पूर्ति के सतुलन का परिणाम है; माँग मे वृद्धि हो जाने से उस वस्तु के बाजार मे 'असन्तुलन' (disequilibrium) उत्पन्न होगा, तथा 'असन्तुलनो की एक शृंखला' (a series of disequilibria) द्वारा उस वस्तु के बाजार मे कीमत की 'अन्तिम सतुलन स्थिति' (final equilibrium position) मे पहुच जायेगा। सूक्ष्म प्रावैगिक समायोजन की इस प्रक्रिया का अध्ययन करता है, अर्थात् अन्तिम सन्तुलन की स्थिति तक पहुंचने के लिए 'असन्तुलनो की शृंखलाओ' का अध्ययन करता है। सक्षेप मे,

"विभिन्न समयों पर (व्यक्तिगत इकाइयों) के असंतुलनों का अध्ययन सूक्ष्म प्रावैगिक कहा जाता है।"[12]

सूक्ष्म प्रावैगिक विश्लेषण को चित्र 3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। एक बाजार मे किसी वस्तु की प्रारम्भिक माँग रेखा D_1D_1 है। अतिअल्पकाल (very short period) की पूर्ति रेखा S_v है, यह रेखा खड़ी हुई (vertical) है क्योंकि अतिअल्पकाल मे वस्तु विशेष की पूर्ति स्थिर रहती है, उसको बढाया (या घटाया) नही जा सकता है। अल्पकाल (short period) की पूर्ति रेखा S_s है; तथा दीर्घकाल (long period) की पूर्ति रेखा S_l है। बाजार मे वस्तु विशेष की अतिअल्पकालीन, अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन कीमत PQ_1 या P है, (विश्लेषण की सुविधा के लिए ऐसा मान लिया गया है)।

[12] "A study of disequilibria (of individual units) at instants of time would be called micro

माना कि माँग बढ़कर D_2D_2 हो जाती है, जो कि दीर्घकालीन पूर्ति रेखा S_L को बिन्दु P_L पर काटती है। अतः वस्तु की दीर्घकालीन सतुलन कीमत P_LQ_L या P_L होगी। 'सूक्ष्म प्रावैगिक' विश्लेषण यह बतायेगा कि किस 'प्रक्रिया या रास्ते' (Process or path) द्वारा सतुलन कीमत P से दीर्घकालीन सतुलन कीमत P_L पर पहुँचा गया है। चित्र 3 मे यह प्रक्रिया या रास्ता बिन्दुकीय तीरो (dotted arrows) द्वारा दिखाया गया है।
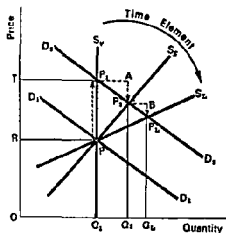
चित्र 3

माँग बढ़ने से अतिअल्पकाल मे कीमत P से बढ़कर P_1 हो जाती है, (अतिअल्पकाल में पूर्ति OQ_1 स्थिर है, माँग के बढ़ने से उसको बढ़ाया नहीं जा सकता है); कीमत बढ जाने से अति-अल्पकाल में विक्रेताओं या उत्पादकों को वस्तु की एक इकाई पर PP_1 के बराबर अतिरिक्त लाभ प्राप्त होगा (अथवा, वस्तु की OQ_1 मात्रा अर्थात RP मात्रा पर कुल अतिरिक्त लाभ = $RP \times PP_1$ = rectangle RPP_1T)। इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर उत्पादक अपने मौजूदा प्लाँटो को अधिक गहराई से (more intensively) प्रयोग करके पूर्ति को बढ़ायेंगे। माँग रेखा D_2D_2 पूर्ति रेखा S_S को बिन्दु P_2 पर काटती है; इसका अभिप्राय है कि पूर्ति बढ़कर Q_1Q_2 अर्थात P_1A हो जायेगी जो कि कीमत को घटाकर P_2 पर ले जायेगी, अर्थात कीमत AP_2 के बराबर घट जायेगी। इस स्थिति में भी विक्रेताओं या उत्पादकों को कुछ अतिरिक्त लाभ प्राप्त होगा। परिणामस्वरूप, दीर्घकाल मे वर्तमान उत्पादको के अतिरिक्त नये उत्पादक भी बाजार मे प्रवेश कर जायेंगे तथा वस्तु की पूर्ति ओर बढ़ेगी। माँग रेखा D_2D_2 दीर्घकालीन पूर्ति रेखा S_L को बिन्दु P_L पर काटती है जो कि दीर्घकालीन सतुलन कीमत है; इसका अभिप्राय है कि दीर्घकाल मे पूर्ति Q_2Q_L अर्थात P_2B के बराबर और बढ़ जायेगी तथा कीमत BP_L के बराबर घट जायेगी। इस प्रकार बिन्दुकीय तीरो द्वारा उस रास्ते या प्रक्रिया (Path or process) को बताया गया है जिसके द्वारा वस्तु की प्रारम्भिक सतुलन कीमत P से दीर्घकालीन (या अन्तिम) संतुलन कीमत P_L तक पहुँचता जाता है, यह रास्ता है $P\,P_1\,A\,P_2\,B\,P_L$।

4. व्यापक आर्थिक विश्लेषण के प्रकार
(KINDS OF MACRO ECONOMIC ANALYSIS)

कुरिहारा (Kurihara) ने व्यापक आर्थिक विश्लेषण के तीन प्रकार बताये हैं :

(1) व्यापक स्थैतिक (macro statics) (2) तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक (comparative macro statics) तथा (3) व्यापक प्रावैगिक (macro dynamics)। इन तीनो का विवेचन नीचे किया गया है :

(i) व्यापक स्थैतिक (Macro statics)

यह कुछ यौगिक सम्बन्धो (aggregate relations) की स्थिर अवस्था (stationary position) मे व्याख्या करता है, यह इस बात पर प्रकाश नहीं डालता कि अर्थ-व्यवस्था अन्तिम स्थिर या सन्तुलन अवस्था में कैसे पहुँची। यह तो उन यौगिक सम्बन्धो के ज्ञात तथा स्थिर चित्रो (still pictures) का अध्ययन करता है; यह समायोजन की प्रक्रिया (process of adjustment) की व्याख्या नहीं करता। दूसरे शब्दों मे,

"व्यापक स्थैतिक वह रीति है जो कि साम्य की अन्तिम स्थिति में व्यापक-परिवर्तनशील तत्त्वों के बीच सम्बन्धों की खोज करती है, बिना इस बात के बताए कि उस अन्तिम स्थिति में किस समायोजन की प्रक्रिया द्वारा पहुंच जाता है। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के शांत तथा स्थिर चित्र की व्याख्या करना है।"[13]

व्यापक स्थैतिक का एक उदाहरण कुरिहारा (Kurihara) ने अग्रलिखित समीकरण द्वारा दिया है—

Y=C+I जबकि, Y=कुल आय (Total Income)
C=कुल उपभोग (Total Consumption)
I=कुल विनियोग (Total Investment)

यह समीकरण केवल यह बताती है कि कुल आय Y बराबर है कुल उपभोग व्यय (C) तथा कुल विनियोग (I) के योग के; यह समीकरण यह नही बताती कि अन्तिम सन्तुलन की स्थिति मे कुल आय Y किस समायोजन की प्रक्रिया द्वारा पहुँची है; यह समयावधि में समायोजन (adjustment over time) पर कोई ध्यान नही देती, दूसरे शब्दो मे, यह केवल 'समय-रहित एक-रूप समीकरण' (timeless identity equation) है।

व्यापक स्थैतिक की स्थिति को चित्र 4 द्वारा दिखाया जा सकता है। एक अर्थ-व्यवस्था में कुल आय (Total Income) बराबर होगी कुल व्यय (Total Expenditure) के। चित्र 4 में ऐसी स्थिति को 45°-line द्वारा दिखाया गया है, स्पष्ट है कि 45°-line को 'Income=Expenditure Line' भी कहा जाता है। कुल व्यय रेखा C+I तथा 45°-रेखा, जो कि कुल आय को बताती है, एक दूसरे को बिन्दु E पर काटती हैं, इस बिन्दु पर कुल आय=कुल व्यय के। अतः, अर्थ-व्यवस्था बिन्दु E पर साम्य की स्थिति में होगी अर्थात् अर्थ-व्यवस्था में Y_1 के बराबर आय का उत्पादन होगा। परन्तु चित्र से यह स्पष्ट नहीं होता है कि अर्थव्यवस्था किस समायोजन की प्रक्रिया द्वारा संतुलन या साम्य की स्थिति E पर पहुंचती है।
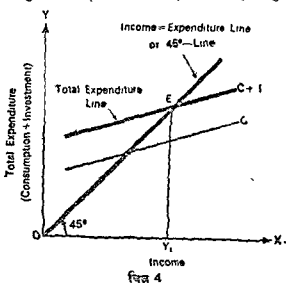
चित्र 4

(ii) तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक (Comparative Macro Statics)

व्यापक परिवर्तनशील तत्त्वो (macro variables), जैसे कुल उपभोग, कुल विनियोग इत्यादि मे परिवर्तन होते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप अर्थ-व्यवस्था विभिन्न संतुलन स्तरो (different equilibrium levels) को प्राप्त करती रहती है; इन विभिन्न संतुलन स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन ही *'तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक विश्लेषण' (comparative macro static analysis)* कहलाता है। दूसरे शब्दो मे,

---

[13] *"Macro statics is a technique of investigating the relations between macro variables in the final position of equilibrium without reference to the process of adjustment implicit in that final position. The object of macro statics is to show a 'still picture' of the economy as a whole."*

तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक आर्थिक विश्लेषण के कई "शांत चित्रों" (still pictures) का तुलनात्मक ज्ञान कराती है, परन्तु यह नहीं बताती कि एक संतुलन स्तर से दूसरे संतुलन स्तर तक कैसे या किन प्रक्रियाओं (processes) द्वारा पहुँचा गया है, यह तो केवल दोनों संतुलन स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन कराती है।

व्यापक तत्वों (macro variables) में परिवर्तन के कारण विभिन्न संतुलन की स्थितियां प्राप्त होती हैं अर्थात् 'खिसकती हुई संतुलन की स्थितियां' प्राप्त होती हैं; इसलिए कींज ने इसको 'खिसकती हुई संतुलन स्थितियों का सिद्धान्त' (*Theory of Shifting Equilibrium*) कहा है। कींज इसको प्रावैगिक (dynamic) कहते हैं। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार कींज का 'सामान्य सिद्धान्त' (general theory) 'व्यापक प्रावैगिक' (macro dynamic) नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'खिसकती हुई संतुलन की स्थितियों का सिद्धान्त' इस बात की व्याख्या नहीं करता कि एक संतुलन स्थिति से दूसरी संतुलन स्थिति तक कैसे पहुँचा गया।

तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक को चित्र 5 द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में अर्थ-व्यवस्था बिन्दु E_1 पर संतुलन की स्थिति में है। व्यापक परिवर्तनशील तत्त्व विनियोग में वृद्धि ΔI के बराबर होती है जिसके कारण अब अर्थ-व्यवस्था नयी संतुलन की स्थिति E_2 पर पहुँच जाती है। तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक केवल E_1 तथा E_2 की तुलना करता है अर्थात् बताता है कि आय Y_1 से बढ़कर Y_2 हो जाती है; परन्तु इस रीति से यह जानकारी प्राप्त नहीं होती कि किस समायोजन की प्रक्रिया द्वारा अर्थ-व्यवस्था नयी संतुलन स्थिति E_2 पर पहुंचती है।
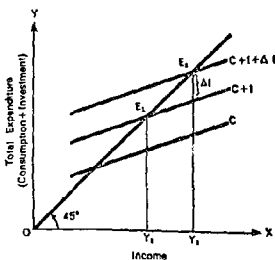
चित्र 5

(iii) व्यापक प्रावैगिक (Macro Dynamics)

इस रीति का विकास रोबर्टसन (D. H. Robertson), फ्रिश (R. Frisch), सेम्युलसन (Samuelson), केलेकी (M. Kelecki), टिनबर्जन (J. Tinbergen), हेरोड (R. F. Harrod), तथा हिक्स (J. R. Hicks), इत्यादि विख्यात अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया है।

यह रीति व्यापक चरों (macro variables) तथा समूहों (aggregates) में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 'समायोजन की प्रक्रियाओं' (processes of adjustments) की व्याख्या करती है। यह सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का एक 'चलचित्र' (motion picture) प्रस्तुत करती है; जबकि 'व्यापक स्थैतिक' (macro statics) रीति एक समय विशेष पर 'स्थिर चित्र' (still picture) की व्याख्या करती है; और 'तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक' (comparative macro statics) रीति 'कई स्थिर चित्रों' की केवल तुलना करती है, समायोजन की प्रक्रियाओं को नहीं बताती है। दूसरे शब्दों में,

"व्यापक प्रावैगिक व्यापक-चरों में असतत या निरन्तर परिवर्तनों या परिवर्तनों की दरों का विवेचन व व्याख्या करती है। यह रीति भूत और जांच की प्रक्रिया को निरंतर परिवर्तनशील प्रतिक्रियाओं (reactions) की शृंखलाओं में अलग कर देती है और एक-

एक कदम करके (step-by-step) यह बताती है क्या 'कारण' है और क्या 'परिणाम'। यह परिवर्तनशील संसार का विवरण देती है और ऐसा करने में यह इस बात की व्याख्या करती है कि संसार पिछली और बाद की समायोजनाओं से किस प्रकार से सम्बन्धित है; यह योगों (aggregates) में असतत या निरंतर परिवर्तनों, किसी प्रारम्भिक हलचल के परिणामस्वरूप उत्पन्न कारण व परिणाम की घटनाओं के क्रम, तथा व्यापक चरों और यौगिक सम्बन्धों के समय-रास्तों (time-paths) का विश्लेषण करती है। इस प्रकार व्यापक प्रावैगिक रीति सम्पूर्ण प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था के कार्य-करण के एक चलचित्र को देखने व समझने में सहायक होती है।"[14]

चित्र 6 में विन्दु E प्रारम्भिक साम्य की स्थिति को बताता है; इस स्थिति में आय का स्तर Y_1 है और उपभोग व्यय Y_1 G है तथा विनियोग-व्यय I (या EG या ab) है। माना हम I को Δ I की मात्रा द्वारा बढ़ा देते हैं और अब कुल व्यय रेखा (total expenditure line) की नई स्थिति $C+I+\Delta I$ हो जाती है। किसी भी समय के अन्तर्गत बचत (saving) को C-रेखा तथा 45°-रेखा के बीच खड़ी दूरी द्वारा बताया जाता है। साम्य की प्रारम्भिक स्थिति में, अर्थात् समय 1 (Period 1) में, जबकि आय Y_1 है, बचत EG है जो कि C-रेखा तथा 45°-रेखा के बीच खड़ी दूरी है। ध्यान रहे कि EG विनियोग (I) को भी बताती है क्योंकि यह C+I-रेखा और C – रेखा के बीच खड़ी दूरी भी है। दूसरे शब्दों में, समय 1 (या प्रारम्भिक स्थिति) में E (अर्थात् Y_1) पर 'बचत' और 'विनियोग' बराबर हैं और इसलिए अर्थ-व्यवस्था साम्य की स्थिति में है।
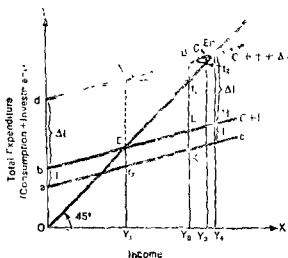
चित्र 6

अब हम देखेंगे कि विनियोग (I) को Δ I (अर्थात् bd, या AE या E_nH) द्वारा बढ़ाने पर क्या होता है। अर्थ-व्यवस्था नयी साम्य की स्थिति E_n पर पहुच जाती है। व्यापक प्रावैगिक विश्लेषण (macro dynamic analysis) द्वारा हम यह जान सकेंगे कि अर्थ-व्यवस्था E से नयी साम्य की स्थिति E_n पर किस समायोजन की प्रक्रिया (process of adjustment) द्वारा पहुंची है; यह समायोजन की प्रक्रिया चित्र 6 में टूटी रेखाओं पर तीरों (arrows on dotted lines) द्वारा स्पष्ट होती है। प्रारम्भ में अर्थात् समय 1 में आय के स्तर Y_1

---

[14] "Macro dynamics treats discrete movements or rates of change of macro variables. This method separates the process of trial and error into a series of continuously changing reactions and indicates, step-by-step, what is cause and what is effect. It describes the changing universe as it is related to previous or subsequent adjustments; it analyses the discrete or continuous changes of aggregate, the sequence of cause-and-effect events arising from some initial disturbance, and the time-paths of macro variables and aggregate relationships Thus, the macro dynamic method enables one to see a motion picture of the economy as a progressive whole."

पर जबकि विनियोग को ΔI द्वारा बढाया जाता है तो प्रस्तावित बचत (intended savings) EG के बराबर रहती है और विनियोग AE (अर्थात् ΔI) के बराबर; अर्थात् विनियोग अधिक हो जाता है बचत से। इस विनियोग के आधिक्य (excess) AE के कारण समय 2 (period 2) मे आय At_1 (या Y_1Y_2) के बराबर बढ जाती है; उपभोग व्यय Y_1G से बढकर Y_2K हो जाता है; तथा बचत EG से बढकर Kt_1 हो जाती है। परन्तु समय 2 में भी विनियोग अधिक रहता है बचत से : कुल विनियोग $= BK\ (= BL + LK = \Delta I + I)$, तथा कुल बचत $= t_1K$; अत: विनियोग का (बचत के ऊपर) आधिक्य $= BK - t_1K = Bt_1$; इस विनियोग के आधिक्य Bt_1 के कारण समय 3 (period 3) मे आय Bt_2 (या Y_2Y_3) के बराबर बढ जाती है। इस समय 3 में भी विनियोग का आधिक्य रहता है जो कि Ct_2 के बराबर है; और विनियोग का यह आधिक्य पुन: आय को बढाता है, और इस प्रकार अन्त मे अर्थ-व्यवस्था E_n पर नयी साम्य की स्थिति में पहुंच जाती है; इस स्थिति में कुल विनियोग तथा कुल बचत मे अन्तर (gap) समाप्त हो जाता है अर्थात् वे दोनो बराबर हो जाते है। अत अर्थ-व्यवस्था एक ऊँची नयी साम्य की स्थिति E_n पर पहुंच जाती है अर्थात् अर्थ-व्यवस्था में ऊँची आय Y_4 उत्पादित (generate) होती है, तथा अर्थ-व्यवस्था के E_n या Y_4 पर पहुँचने की प्रक्रिया (process) है E, A, t_1, B, t_2, C,...,E_n।

5 सूक्ष्म अर्थशास्त्र का क्षेत्र, उसके प्रयोग तथा उसकी आवश्यकता
(SCOPE, USES AND NEED OF MICRO ECONOMICS)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण प्रयोग (जो कि उसके क्षेत्र तथा आवश्यकता को भी बताते है) नीचे दिये गये हैं :

(1) सूक्ष्म अर्थशास्त्र देश के 'कुल उत्पादन' का नही बल्कि **'कुल उत्पादन की संरचना'** (composition of total production) का तथा विभिन्न प्रयोगो मे **'साधनों के वितरण'** (allocation of resources) का अध्ययन करता है। यह 'कुल आय' का नही बल्कि **'कुल आय के वितरण'** (distribution of total income) का अध्ययन करता है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र कुल रोजगार तथा कुल आय को दिया हुआ मान लेता है।

(2) इसके अन्तर्गत सामान्य मूल्य स्तर (general price level) का नही बल्कि **'कीमतों के सापेक्षिक ढांचे'** (relative price structure) का अध्ययन किया जाता है अर्थात् विशिष्ट वस्तुओं तथा विशिष्ट साधनो की कीमतो के निर्धारण व उनके पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

(3) यह विभिन्न **विशिष्ट इकाइयो** (जैसे, एक व्यक्ति, एक परिवार, एक फर्म, एक उद्योग, इत्यादि) **से सम्बन्धित व्यय, उपभोग, बचत, विनियोग,** आय के **स्रोतों** (sources) **इत्यादि का विश्लेषणात्मक अध्ययन** (analytical study) करता है।

(4) **यह विशिष्ट इकाइयो को अपने-अपने क्षेत्रों में आर्थिक व्यवहार** (economic behaviour) **या आर्थिक समस्याओ के सम्बन्ध मे निर्णय लेने में मदद करता है।** उदाहरणार्थ, एक फर्म माँग विश्लेषण, लागत विश्लेषण तथा रेखीय प्रोग्रामिंग (linear programming) इत्यादि की सहायता से अपनी वस्तु की कीमत तथा उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध मे निर्णय लेती है ताकि उसकी लागत न्यूनतम को जा सके या उसका लाभ अधिकतम किया जा सके।

(5) सूक्ष्म अर्थशास्त्र का प्रयोग **आर्थिक कल्याण की दशाओं** (conditions of economic welfare) **की जाँच के लिए** *किया जाता है। इसका अर्थ है कि व्यक्तियों को वस्तुओं तथा* सेवाओं मे प्राप्त सन्तुष्टियों (satisfactions) का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

(6) सूक्ष्म अर्थशास्त्र का **प्रयोग आर्थिक नीति** (economic policy) **में किया जाता है।**

इसके अन्तर्गत सरकार की आर्थिक नीतियों का अध्ययन इस दृष्टि से किया जाता है कि उनका प्रभाव वैयक्तिक या विशिष्ट इकाइयों (individual or particular units) के कार्यकरण (working) पर क्या पड़ता है। उदाहरणार्थ, हम इस बात का अध्ययन कर सकते हैं कि सरकार की नीतियों का विशिष्ट वस्तुओं की कीमतों तथा मजदूरियों पर क्या प्रभाव पड़ता है; तथा सरकार की नीतियाँ साधनों के वितरण (allocation of resources) को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में, विशिष्ट आर्थिक इकाइयों (जैसे कपड़ा उद्योग, मोटर-कार उद्योग, इत्यादि) के सम्बन्ध में सरकार को आर्थिक नीति के निर्माण में सूक्ष्म अर्थशास्त्र से सहायता मिलती है।

6. सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF MICRO ECONOMICS)

यद्यपि सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण आवश्यक तथा उपयोगी है परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं। मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) **सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के संचालन का सही चित्र प्राप्त नहीं होता**—सूक्ष्म अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर ध्यान न देकर उसके कुछ छोटे भागों के संचालन तथा संगठन पर ही ध्यान देता है। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के संचालन का सामूहिक रूप मे उचित ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

(2) **सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण के बहुत-से निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के दृष्टिकोण से ठीक नहीं होते**—यह आवश्यक नही है कि व्यक्तिगत निर्णयों का योग सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए उचित हो। प्राय: वैयक्तिक इकाइयो का विशिष्ट व्यवहार उनके सामूहिक सामान्य व्यवहार तथा औसत व्यवहार से बिलकुल भिन्न होता है। उदाहरणार्थ, बचत (saving) करना एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से अच्छा है, यदि एक साथ सभी व्यक्ति बचत करने लगें तो यह सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए हानिकर होगा क्योंकि ऐसा करने से उपभोग-वस्तुओ की माँग कम हो जायेगी, रोजगार कम होगा और राष्ट्रीय आय कम होने लगेगी।

(3) **यह कई अवास्तविक मान्यताओं**, जैसे, पूर्ण रोजगार, निजी हित, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि पर आधारित है। वास्तविक जीवन मे ये मान्यताएँ नही पायी जाती हैं।

(4) **कुछ आर्थिक समस्याओं का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया ही नहीं जा सकता।** राजस्व के क्षेत्र की समस्याएँ, देश के लिए उचित मौद्रिक नीति, उचित प्रशुल्क नीति का निर्धारण, इत्यादि का अध्ययन तथा विश्लेषण सूक्ष्म आर्थिक रीति द्वारा सम्भव नही है।

7. व्यापक अर्थशास्त्र का क्षेत्र, उसके प्रयोग तथा उसकी आवश्यकता
(SCOPE, USES AND NEED OF MACRO ECONOMICS)

व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाओं तथा कुछ अन्य बातों के परिणामस्वरूप प्रतीत होती है। निम्नलिखित विवरण व्यापक अर्थशास्त्र के क्षेत्र, प्रयोग तथा आवश्यकता को स्पष्ट करता है—

1. आधुनिक सिद्धान्त के बहुत से विषय, जैसे राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के सिद्धान्त, आर्थिक विकास के सिद्धान्त, सामान्य कीमत-स्तर, मुद्रा तथा वित्त (money and finance), अन्तरराष्ट्रीय व्यापार, विदेशी विनिमय, इत्यादि व्यापक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। इन सब के अध्ययन के लिए व्यापक अर्थशास्त्र की आवश्यकता है, क्योंकि व्यापक अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित बड़े योगों व औसतों का अध्ययन करता है।

2. **आर्थिक नीतियों के निर्माण की दृष्टि से व्यापक अर्थशास्त्र बहुत महत्वपूर्ण है।** ऐसा इसलिए है कि सरकार की आर्थिक नीतियों का सम्बन्ध प्रायः व्यक्तियों से न होकर व्यक्तियों के

समूहों तथा योगों से होता है। यद्यपि समय-समय पर सरकार वैयक्तिक इकाइयों (जैसे विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट उद्योगों, विशिष्ट मूल्यों, इत्यादि) पर भी ध्यान देती है, परन्तु उसकी मुख्य जिम्मेदारी कुल आय, कुल रोजगार, सामान्य मूल्य-स्तर, व्यापार के सामान्य स्तर, इत्यादि के नियन्त्रण में ही होती है।

उपर्युक्त क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं को व्यापक आर्थिक विश्लेषण की सहायता से समझ कर अर्थशास्त्री सुझाव प्रस्तुत करके सरकार द्वारा आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता करते हैं।

3. **एक ओर 'उपभोक्ता-वस्तुओं' (consumers' goods) तथा दूसरी ओर 'पूंजीगत-वस्तुओं' (capital goods) के बीच साधनों के वितरण (allocation of resources) से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन** व्यापक अर्थशास्त्र में किया जाता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत भी 'साधनों के वितरण' की समस्या का अध्ययन किया जाता है। परन्तु सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र दोनों में 'साधनों के वितरण' की समस्या के सम्बन्ध में अन्तर 'योग के स्तर' (level of aggregation) का है। व्यापक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत साधनों के वितरण का अध्ययन दो बड़े भागों ('उपभोक्ता-वस्तुओं का भाग' तथा 'पूंजीगत-वस्तुओं का भाग') के बीच किया जाता है और ये दो बड़े भाग मिलकर सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को बनाते हैं; इसके विपरीत सूक्ष्म अर्थशास्त्र में हम अर्थ-व्यवस्था को बहुत छोटे-छोटे भागों (जैसे, फर्मों, उद्योगों, इत्यादि) में बाँट कर साधनों के वितरण की समस्या का अध्ययन करते हैं।

4. **जटिल अर्थ-व्यवस्था के सामूहिक संचालन को समझने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र आवश्यक है।** आधुनिक अर्थ-व्यवस्था अत्यन्त जटिल है और आर्थिक तत्त्व परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन से समस्त अर्थ-व्यवस्था के आर्थिक संगठन और संचालन का सही ज्ञान प्राप्त होता है, जबकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र केवल वैयक्तिक या विशिष्ट इकाइयों का ही ज्ञान कराता है।

5. **सूक्ष्म अर्थशास्त्र के विकास के लिए भी व्यापक अर्थशास्त्र आवश्यक है।** सूक्ष्म अर्थशास्त्र विभिन्न नियमों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है किन्तु ऐसा करने में उसे व्यापक अर्थशास्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। उदाहरणार्थ, उपयोगिता ह्रास नियम तभी सम्भव हो सका है जबकि व्यक्तियों के समूहों के व्यवहार का अध्ययन किया गया। इसी प्रकार, एक फर्म का सिद्धान्त (Theory of firm) का निर्माण बहुत-सी फर्मों के व्यवहार को सामूहिक रूप से अध्ययन करने पर ही बनाया जा सका।

6. **'व्यापक अर्थशास्त्रीय विरोधाभासों' (*macro economic paradoxes*) या 'संरचना का धोखा' (*fallacy of composition*) के कारण भी व्यापक अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है।** 'व्यापक अर्थशास्त्रीय विरोधाभास' या 'संरचना का धोखा' का आशय उन धारणाओं से है जो किसी एक व्यक्ति के लिए तो सही हो लेकिन उनका प्रयोग सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए किया जाय तो गलत सिद्ध हो। उदाहरणार्थ, बचत एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से लाभदायक है, परन्तु यदि सभी लोग द्राव्यिक बचत करने लग जायँ, तो वह सम्पूर्ण देश के दृष्टिकोण से हानिकारक होगी। **इन विरोधाभासों के कारण ही सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के पृथक अध्ययन की आवश्यकता है।**"[13]

8. व्यापक आर्थिक विश्लेषण की सीमाएं, कठिनाइयाँ या खतरे
(LIMITATIONS, DIFFICULTIES OR DANGERS OF MICRO ECONOMIC ANALYSIS)

यद्यपि व्यापक आर्थिक विश्लेषण महत्त्वपूर्ण है तथा पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका है परन्तु

---

[13] "It is these paradoxes more than any other factor, which justify the separate study of the system as a whole, not merely as inventory or list of particular items, but as a complex of aggregates."

इसकी कुछ सीमाएँ तथा खतरे (pitfalls) भी हैं जिनको ध्यान में रखना आवश्यक है; ये निम्न-लिखित हैं :

(1) **वैयक्तिक इकाइयों के योग के आधार पर व्यापक अर्थशास्त्र के निष्कर्ष निकालने में बहुत से खतरे होते हैं।** यह जरूरी नहीं है कि जो व्यक्तियों तथा लघु-समूहों के सम्बन्ध में सत्य हो वह सम्पूर्ण समाज या अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी सत्य हो। इस प्रकार के '**आर्थिक विरोधाभासों**' (economic paradoxes) के कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं—

(अ) यदि एक व्यक्ति जब चाहे तब अपना जमा (deposit) बैंक से निकाल लेता है तो कोई नुकसान नहीं है। परन्तु, यदि एक ही साथ सभी व्यक्ति बैंक से अपनी जमाएँ (deposits) निकालने लग जायें, तो बैंक फेल हो जायेगा और इसका प्रभाव अन्य बैंकों पर भी पड़ेगा।

(ब) इसी प्रकार, एक व्यक्ति द्राव्यिक रूप में बचत कर सकता है, परन्तु यदि सभी लोग एक साथ द्राव्यिक रूप मे बचत शुरू कर दें और उसका विनियोग न करें, तो देश के लिए हानि-कारक होगा क्योंकि बचत करने से उपभोग वस्तुओ की माँग कम होगी, बेरोजगारी फैलेगी और अर्थ-व्यवस्था मे मन्दी छा जायेगी। अतः कैंज (Keynes) ने ठीक कहा है कि "बचत जो कि एक व्यक्तिगत गुण है वह सार्वजनिक बुराई हो जाती है।" (Savings which is an individual virtue becomes a public vice.)

(2) **यदि वैयक्तिक इकाइयो से सम्बन्ध न रखकर सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था या समाज का प्रत्यक्ष रूप से विश्लेषण किया जाता है तो ऐसा करने में भी दोष रहते हैं,** क्योंकि इसमें सम्पूर्ण समाज पर तो ध्यान दिया जाता है जबकि वैयक्तिक इकाइयो तथा छोटे समूहों जिनसे समाज या अर्थ-व्यवस्था बनती है, को छोड़ दिया जाता है। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन या विश्लेषण करने में निम्न कठिनाइयां व खतरे उपस्थित होते हैं :

(अ) **समूह (या योग) की अपेक्षा समूह की बनावट (structure), रचना (composition) तथा अंग (components) अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं**—उदाहरणार्थ, मान लीजिए 1962 तथा 1963 मे सामान्य मूल्य-स्तर समान है, उसमें कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु यह सम्भव है कि कृषि की कीमतें बहुत गिर गयी हों तथा औद्योगिक वस्तुओं की कीमतें बहुत बढ़ गयी हों जिससे सामान्य मूल्य-स्तर में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः समूह या योग के आधार पर भविष्यवाणी करना या सुझाव देना या विवेचन करना उचित नहीं होगा जब तक कि समूह की बनावट और उसके अगों के स्वभाव तथा आपसी सम्बन्ध की पूर्ण जानकारी न प्राप्त करली जाय।

(ब) दूसरी कठिनाई यह है कि **एक योग (aggregate) अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता।** उदाहरणार्थ, कुल माँग मे वृद्धि के परिणाम-स्वरूप कुल उत्पादन बढ़ेगा परन्तु कुछ फर्मों को उत्पादन बढ़ाने मे बढ़ती हुई लागतों का सामना करना पड़ेगा जबकि कुछ फर्में गिरती हुई लागतों के अन्तर्गत उत्पादन मे वृद्धि कर सकेंगी। इसी प्रकार, यदि सभी लोगो की आयों मे सामान्य वृद्धि हो जाती है, तो बहुत से लोग साइकिलो के स्थान पर स्कूटरो का प्रयोग करने लग सकते हैं; ऐसी स्थिति मे साइकिल उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि साइकिलों की माँग कम हो जायगी जबकि स्कूटर उद्योग पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा क्योंकि उसकी माँग बढ़ जायेगी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है,

व्यापक अर्थशास्त्र की कठिनाइयाँ या तो वैयक्तिक इकाइयों के योग के आधार पर

ही निष्कर्ष निकालने के कारण होती है या सीधे योग के अध्ययन करने से होती हैं क्योंकि ऐसा करने में प्रायः योग के विभिन्न अंगों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

9. सूक्ष्म तथा व्यापक दोनों पद्धतियों की पारस्परिक निर्भरता
(INTERDEPENDENCE OF THE TWO METHODS)

सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण तथा व्यापक आर्थिक विश्लेषण दोनों में आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे एक दूसरे के प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इनमें से कोई भी प्रणाली अपने में पूर्ण नहीं है, प्रत्येक की सीमाएँ तथा दोष है। वास्तव में एक प्रणाली की सीमाएँ तथा दोष दूसरी प्रणाली द्वारा दूर हो जाते हैं। अतः दोनो रीतियाँ एक दूसरे पर निर्भर करती है। दोनों पद्धतियों की पारस्परिक निर्भरता कुछ उदाहरणों द्वारा निम्न प्रकार से स्पष्ट की जा सकती है।

(I) **सूक्ष्म अर्थशास्त्र को व्यापक अर्थशास्त्र का सहारा आवश्यक है** (Micro Economic Analysis needs the support of Macro Economic Analysis)

यह बात निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है :

(1) एक व्यक्तिगत फर्म या एक उद्योग श्रम, कच्चे माल, मशीनों इत्यादि के लिए जो कीमतें देता है वे, उस फर्म या उद्योग की उन साधनों की स्वयं की माँग पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर निर्भर करती हैं कि इन साधनों की समस्त अर्थ-व्यवस्था में कुल माँग कितनी है।

(2) इसी प्रकार कोई फर्म अपना माल कितना बेच सकेगी यह बात केवल उस फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमतों पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि इस बात पर भी निर्भर करेगी कि समाज में कुल क्रय-शक्ति (total purchasing power) कितनी है।

(3) किसी एक वस्तु का मूल्य-निर्धारण केवल उस वस्तु की पूर्ति और माँग पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि अन्य वस्तुओं की कीमतों पर भी निर्भर करता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र को विभिन्न वैयक्तिक समस्याओं का अध्ययन और विवेचन करने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र पर निर्भर करना पड़ता है।

(II) **व्यापक अर्थशास्त्र को भी सूक्ष्म अर्थशास्त्र का सहारा आवश्यक है** (Macro Economic Analysis needs the support of Micro Economic Analysis)

यह बात निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है :

(1) मान लीजिए सब वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। परन्तु जिन फर्मों का उत्पादन, लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा होगा उनके लिए ऊँची कीमतें (माँग बढ़ने के परिणामस्वरूप) होने पर भी उत्पादन को बढ़ाना कठिन होगा।

(2) माना कि सभी लोगों की आय बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय को लोग विभिन्न प्रकार से व्यय करते है। यदि लोग लकड़ी फर्नीचर की अपेक्षा स्टील फर्नीचर अधिक खरीदने लग जाते हैं, तो स्टील फर्नीचर उद्योग का अधिक विकास होगा।

(3) वास्तव में, सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था विभिन्न प्रकार की वैयक्तिक इकाइयों (जैसे व्यक्तियों, परिवारों, फर्मों तथा उद्योगों) द्वारा निर्मित होती है। अतः सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के कार्य-कारण के उचित ज्ञान के लिए विभिन्न वैयक्तिक इकाइयों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान देना आवश्यक है।

10. निष्कर्ष
(CONCLUSION)

1. यद्यपि 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' तथा 'व्यापक अर्थशास्त्र' आर्थिक विश्लेषण के दो अलग-

अलग तरीकों को बताते हैं, परन्तु उनकी पारस्परिक निर्भरता (mutual interdependence) को भुलाया नहीं जा सकता है।

राष्ट्रीय आय, जो कि एक व्यापक चर (macro variable) है, में परिवर्तन (changes) किसी एक वस्तु (माना चीनी) के बाजार को प्रभावित कर सकते हैं। इसके विपरीत, किसी एक उद्योग (माना मोटर-कार उद्योग), जो कि एक सूक्ष्म चर (micro variable) है, में विकास या संकुचन सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को उत्तेजित (stimulate) या शिथिल (retard) कर सकता है।

2. दोनों रीतियाँ एक दूसरे की पूरक (complementary) हैं। अर्थ-व्यवस्था के कार्यकरण को सही रूप में समझने के लिए दोनों की आवश्यकता है। प्रो. सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दों में,

> "वास्तव में सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं, तो आप केवल अर्द्ध-शिक्षित हैं।"[16]

प्रश्न

1. सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। निम्नलिखित की विवेचना कीजिए—
   (अ) व्यापक आर्थिक विश्लेषण की कठिनाइयां, तथा
   (ब) आर्थिक नीति-निर्माण में व्यापक अर्थशास्त्र का महत्व।
   Distinguish between micro and macro economics. Discuss (a) the difficulties in macro economic analysis, (b) the importance of macro economics in economic policy formulation.
2. सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र के बीच अन्तर की विवेचना कीजिए, तथा दोनो प्रकार के विश्लेषण की सीमाओं को बताइए।
   Discuss the difference between micro and macro economics and point out the limitations of both kinds of analysis. (Kanpur, M.A., 1968)
3. व्यापक आर्थिक दृष्टिकोण (macro economic approach) किस प्रकार से सूक्ष्म आर्थिक दृष्टिकोण (micro economic approach) से भिन्न है? आर्थिक सिद्धान्त में इस अन्तर का क्या महत्त्व है?
   In what essential way is a macro economic approach different from a micro economic approach? What is the significance of this difference for economic theory? (Agra, M.A., 1967)
4. "सूक्ष्म अर्थशास्त्र" तथा "व्यापक अर्थशास्त्र" में अन्तर स्पष्ट कीजिए। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तो को व्यापक अर्थशास्त्र पर कहां तक लागू किया जा सकता है? समझाइए।
   Distinguish between Micro economics and Macro economics. To what extent are the fundamental principles of Micro economics applicable to Macro economics? (Agra, M.A., 1970, 1965)

---

16 "There is really no opposition between micro and macro economics. Both are absolutely vital. And you are only half educated if you understand the one while being ignorant of the other."

[संकेत—प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर में यह बताइए कि एक सीमित मात्रा तक सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग व्यापक अर्थशास्त्र में किया जा सकता है। (A) बिना सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अर्थात बिना वैयक्तिक इकाइयों से सम्बन्ध रखे हुए 'समस्त अर्थव्यवस्था' या 'व्यापक योगों' का प्रत्यक्ष अध्ययन करना ठीक नहीं है, क्योंकि समस्त अर्थव्यवस्था व व्यापक योग वैयक्तिक इकाइयों व छोटे समूहों से बनते हैं; इस बात को कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए, इसके लिए देखिए पृष्ठ 137 पर point no. 2 के अन्तर्गत भाग (अ) तथा (ब)। (B) इसके बाद बताइए कि वैयक्तिक इकाइयों (अर्थात सूक्ष्म अर्थशास्त्र) के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष सदैव व्यापक अर्थशास्त्र के लिए ठीक नहीं होंगे; इसको कुछ उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए, इसके लिए, देखिए पृष्ठ 137 पर point no. 1 के (अ) तथा (ब) दोनों भाग।]

5. "वास्तव में सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं, तो आप केवल अर्द्धशिक्षित हैं।" विवेचना कीजिए।

"There is really no opposition between micro and macro economics. And you are only half-educated if you understand the one while being ignorant of the other." Discuss.

6. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए—

(अ) सूक्ष्म स्थैतिक, तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिक तथा सूक्ष्म प्रावैगिक।

(ब) व्यापक स्थैतिक, तुलनात्मक व्यापक स्थैतिक तथा व्यापक प्रावैगिक।

Explain the following—

(a) Micro Statics, Comparative Micro Statics and Micro Dynamics.

(b) Macro Statics, Comparative Macro Statics and Macro Dynamics.

9

साम्य का विचार

(The Concept of Equilibrium)

> "In statics, equilibrium is fundamental, in dynamics we cannot do *without it, but even in statics it is treacherous, and in dynamics,* unless we are very carefull, it will trip us up completely."
>
> —JOHN HICKS

साम्य का अर्थ
(THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM)

साम्य[1] का अर्थ है शक्तियों में ऐसा सन्तुलन (balance) होना जिसके कारण प्रणाली **(system) में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।**[2] दूसरे शब्दो में, साम्य का विचार 'अधिकतम करने के विचार' (notion of maximization) से बहुत निकट रूप से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक आर्थिक इकाई (economic unit) में परिवर्तन की प्रवृत्ति तब नही होगी (अर्थात् एक आर्थिक इकाई साम्य की स्थिति मे तब होगी) जबकि दी हुई परिस्थितियों के अनुसार, वह एक 'अधिकतम की स्थिति' (a 'position of maximization') प्राप्त कर लेती है। उदाहरणार्थ, एक उपभोक्ता साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि वह अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओ व सेवाओ पर इस प्रकार व्यय करता है कि उसको 'अधिकतम सतुष्टि' मिलती है। इसी प्रकार एक फर्म अपने कुल उत्पादन मे परिवर्तन की प्रवृत्ति तब नही रखेगी (अर्थात् एक फर्म साम्य की स्थिति मे तब होगी) जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा है।[3]

साम्य के विचार के सम्बन्ध मे मुख्य बात है 'परिवर्तन की प्रवृत्ति का न होना।' प्रो. स्टिगलर (Stigler) ने साम्य की परिभाषा इन शब्दो मे दी है.

> **"साम्य वह स्थिति है जिससे हटने की कोई वास्तविक प्रवृत्ति (net tendency) न हो। हम 'वास्तविक' (net) प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग इस बात पर जोर देने के लिए करते हैं कि यह एक निष्क्रिय स्थिति का द्योतक नहीं होता बल्कि शक्तिशाली शक्तियों द्वारा एक दूसरे के बल को नष्ट करने का द्योतक है।"**[4]

---

[1] साम्य (equilibrium) शब्द दो लेटिन शब्दो—*'acquus'* (जिसका अर्थ है समान) तथा *'libra'* (जिसका अर्थ है सन्तुलन) से बना है, अत साम्य का अर्थ है 'समान सन्तुलन'। *इस शब्द का गणित तथा भौतिक शास्त्र में बहुत प्रयोग किया जाता है जहाँ कि साम्य विश्राम* (rest) की स्थिति को बताता है।

[2] "The word equilibrium means such a balance of forces that there is no tendency for the system to change."

[3] नि सन्देह यहाँ पर यह मान लिया गया है कि एक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है।

[4] "Equilibrium is "a position from which there is no net tendency to move. We say 'net' tendency, to emphasize the fact that it is not necessarily a state of sodden inertia, but may instead represent the cancellation of powerful forces"

साम्य के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(i) साम्य का अभिप्राय यह नहीं होता है कि एक समय अवधि में अनिवार्य रूप से प्रत्येक चीज अपरिवर्तित (unchanged) रहती है। साम्य की मान्यता को विचाराधीन माडल के कुछ चरों (variables), या कुछ चरों के पारस्परिक सम्बन्ध तक सीमित रखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, हम स्थिर सापेक्षिक कीमतों (constant relative prices) की मान्यता मान सकते हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि निरपेक्ष कीमतें (absolute prices) भी अनिवार्य रूप से स्थिर होंगी। अतः सापेक्षिक कीमतों की दृष्टि से माडल साम्य की स्थिति में होगा, परन्तु वह अनिवार्य रूप से निरपेक्ष कीमतों की दृष्टि से साम्य की स्थिति में नहीं होगा।[5]

वास्तव में अर्थशास्त्र में साम्य का अर्थ एक निष्क्रिय स्थिति[6] (inert state) से नहीं होता; इसमें 'गति की अनुपस्थिति' (absence of movement) नहीं होती बल्कि 'गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति' (absence of change in the rate of movement) होती है।

(ii) अर्थशास्त्र में हम मुख्यतया 'साम्य की ओर प्रवृत्ति' बताने में दिलचस्पी रखते हैं न कि संतुलन (या साम्य) की वास्तविक स्थिति बताने में; इसका कारण है साम्य की ओर ले जाने वाली शक्तियों में परिवर्तन हो सकता है और गति की दिशा (direction of movement) में परिवर्तन हो सकता है[7]; प्रायः वास्तविक साम्य प्राप्त नहीं हो पाता है।

(iii) साम्य तो केवल वस्तुगत स्थिति या ढाचे (objective situation or framework) को बताता है, उसका कोई सम्बन्ध नैतिकता अथवा अच्छाई-बुराई से नहीं होता। उदाहरणार्थ, एक अर्थ-व्यवस्था साम्य की स्थिति में हो सकती है परन्तु अर्थव्यवस्था में बड़ी मात्रा में बेरोजगारी हो सकती है।

साम्य का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF EQUILIBRIUM)

साम्य का विचार अर्थशास्त्र में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि अधिकांश आर्थिक विश्लेषण साम्य-विश्लेषण होता है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हम साम्य की उन दशाओं तथा शक्तियों का अध्ययन करते हैं जो साम्य को एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित करती हैं। अर्थशास्त्र में साम्य का महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है—

(i) साम्य का विचार यात्रा का लक्ष्य (goal of journey) बताने में सहायक होता है। साम्य के विचार का महत्त्व इस बात में नहीं है कि व्यावहारिक जगत में इसे प्राप्त किया जा सकता है या नहीं, बल्कि इसका महत्त्व इस बात में निहित है कि यह एक लक्ष्य या उद्देश्य (goal)

---

[5] "Equilibrium does not necessarily imply that everything remains unchanged over time. The assumption of equilibrium may be confined to certain variables of the model considered, or to the relationship between certain variables. For example, we may assume constant relative prices without necessarily having constant absolute prices; the model will then be in equilibrium in the relative prices, but not necessarily in the absolute prices."

[6] अर्थशास्त्र में साम्य का अर्थ ऐसी निष्क्रिय स्थिति या ऐसी विश्राम की स्थिति (state of rest) से नहीं होता जिसमें कि सभी शक्तियों ने कार्य करना बन्द कर दिया हो बल्कि ऐसी स्थिति से होता है जिसमें कार्यशील शक्तियाँ एक दूसरे के प्रभाव या बल को नष्ट कर देती हैं।

[7] "In economics we are primarily interested in suggesting a *tendency towards equilibrium*, rather than an actual position of balance, because the forces that propel us toward equilibrium are subject to change and because the direction of movement may be interrupted."

को बताता है जिसे प्राप्त करने के लिए आर्थिक इकाइयां (जैसे एक फर्म, एक उद्योग या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था) अथवा आर्थिक चर (economic variables) प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। दूसरे शब्दों में, *साम्य का विचार आर्थिक परिवर्तनों की दिशा (direction of economic changes)* **को बताने में सहायक होता है;** अतः साम्य के विचार को **'अर्थशास्त्री का कुतुबनुमा'** (economist's compass) कहा जा सकता है।

(ii) कुछ आलोचकों का कहना है कि साम्य की स्थिति वास्तविक परिवर्तनशील जगत में नहीं पायी जाती। अतः यह विचार अवास्तविक है और इसके अध्ययन का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रह जाता है। परन्तु यह आलोचना उचित नहीं है; इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(a) यद्यपि वास्तविक जीवन में प्रायः साम्य की स्थिति नहीं पायी जाती, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि **वास्तविक जीवन की दशाएँ साम्य की ओर जाने की प्रवृत्ति अवश्य रखती हैं।** यदि दीर्घकाल तक आर्थिक तथ्यों में परिवर्तन न हो तो साम्य की स्थिति अवश्य प्राप्त हो सकती है। यह तथ्य साम्य के विचार को व्यावहारिक बनाता है। साम्य का विचार एक अन्तिम लक्ष्य को बताता है जिस ओर आर्थिक शक्तियां जाने की प्रवृत्ति रखती हैं। अतः वास्तविक जीवन में साम्य की स्थिति न पाये जाने का अर्थ यह नहीं है कि साम्य का विचार बेकार है।

(b) वास्तविक जीवन में कभी-कभी साम्य इस अर्थ में प्राप्य हो जाता है कि एक निश्चित मूल्य पर कुल मांग और कुल पूर्ति बराबर हो जाती है। परन्तु कठिनाई यह है कि मांग और पूर्ति का यह साम्य बहुत थोड़े समय के लिए रहता है और फिर नष्ट हो जाता है क्योंकि वास्तविक जीवन में मांग और पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियां यथास्थिर न रहकर शीघ्रता से परिवर्तित होती रहती हैं।

अर्थशास्त्र में साम्य के महत्त्व की सारी स्थिति को बहुत अच्छे ढंग से एक आधुनिक अर्थशास्त्री द्वारा इन शब्दों में व्यक्त किया गया है :

> **"आर्थिक सिद्धान्त में साम्य एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करता है, और यद्यपि अनेक आर्थिक समस्याओं का साम्य-सिद्धान्त के शब्दों में एक अच्छा विवेचन नहीं किया जा सकता है, परन्तु फिर भी साम्य का सिद्धान्त एक अति आवश्यक विश्लेषण-यन्त्र (tool) बना रहता है। प्रायः इसकी यह आलोचना की जाती है कि यह एक शुद्ध स्थैतिक विचार है जिसका कोई सम्बन्ध उस विकासमान (evolutionary) दुनिया से नहीं होता जिसमें कि हम रहते हैं। परन्तु यह आलोचना सही नहीं है। एक असंतुलन विश्लेषण (disequilibrium analysis) में भी साम्य के विचार की आवश्यकता प्रायः सन्दर्भ के एक ढांचे (a frame of reference) के रूप में पड़ती है तथा आधुनिक सिद्धान्त ने प्रावैगिक विश्लेषण (dynamic analysis) में इसकी उपयोगिता को सिद्ध कर दिया है। उदाहरणार्थ, आधुनिक विकास सिद्धान्त का निर्माण मुख्यतया साम्य विकास (equilibrium growth) के रूप में किया गया है और यहां तक कि मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त (inflation theory) साम्य के विचार का लाभ के साथ प्रयोग कर सकता है।"[8]**

---

[8] "Equilibrium plays an important role in economic theory, and although many economic problems cannot reasonably be dealt with in terms of equilibrium theory, it remains an indispensable tool. It has often been criticized as being a purely static concept with no relation to the evolutionary world in which we live. This criticism is entirely beside the point, however. Even in a disequilibrium analysis the concept of equilibrium will often be needed as a frame of reference and modern theory has shown its great

साम्य के प्रकार
(KINDS OF EQUILIBRIUM)

आर्थिक साम्य को कई वर्गों (classes) में बांटा जा सकता है। साम्य के महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं—(1) स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर साम्य (stable, neutral and unstable equilibria) (2) एकाकी तथा अनेक तत्वीय साम्य (single or unique and multiple equilibria) (3) अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य (short term and long term equilibria) (4) स्थैतिक तथा प्रावैगिक साम्य (static and dynamic equilibria) (5) आंशिक या विशिष्ट तथा सामान्य साम्य (partial or particular and general equilibria)। इनमें से प्रत्येक का विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।

स्थिर, अस्थिर तथा तटस्थ साम्य
(STABLE, UNSTABLE AND NEUTRAL EQUILIBRIA)

एक आर्थिक प्रणाली स्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि यदि कोई छोटी हलचल (disturbance) उत्पन्न हो, तो तुरन्त ही ऐसी शक्तियां प्रकट हो जाती हैं जो कि आर्थिक प्रणाली को पहली ही स्थिति की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखती हैं तथा इन पुन:स्थापन करने वाली शक्तियों (reestablishing forces) के परिणामस्वरूप पहला साम्य पुन: स्थापित हो जाता है।

एक आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई अस्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी, जबकि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो परिणामस्वरूप और अधिक हलचल तथा विघ्न उत्पन्न करने वाली शक्तियां प्रकट हो जाती हैं और ये सब मिलकर आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई को प्रारम्भिक स्थिति से बहुत दूर फेंक देती हैं।

एक आर्थिक प्रणाली तटस्थ साम्य की स्थिति में तब कही जायगी, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो प्रारम्भिक स्थिति की ओर ले जाने वाली पुन:स्थापन शक्तियां उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु साथ ही और आगे हलचल उत्पन्न करने वाली शक्तियां भी प्रकट नहीं होतीं; परिणामस्वरूप आर्थिक प्रणाली पहली हलचल के बाद जिस स्थिति में पहुंची थी उसी पर स्थिर टिकी रहती है।

प्रो. पीगू ने उपर्युक्त तीनों प्रकार के साम्यों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न उदाहरण दिये हैं: भारी पेंदी (heavy keel) वाला जहाज 'स्थिर साम्य' की स्थिति में होगा, एक करवट से पड़ा हुआ अण्डा 'तटस्थ साम्य' की स्थिति में होगा तथा एक सिरे पर टिकाया हुआ अण्डा 'अस्थिर साम्य' की स्थिति में होगा।

उपर्युक्त तीनों में से 'स्थिर साम्य' का प्रयोग आर्थिक विश्लेषण में बहुत होता है और यह वास्तविक जगत में प्राय: पाया जाता है। परन्तु अन्य दोनों प्रकार के साम्य व्यावहारिक जगत में नहीं पाये जाते; यद्यपि, जैसा कि प्रो. स्टिगलर ने बताया है, तटस्थ और अस्थिर साम्यों की काल्पनिक स्थितियों को सोचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों साम्यों का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है।

स्थिर तथा अस्थिर साम्य के विचारों को हम चित्र 1 (a) तथा 1 (b) द्वारा व्यक्त कर सकते हैं।

चित्र 1 (a) में DD नीचे को गिरती हुई सामान्य मांग रेखा तथा SS ऊपर को चढ़ती हुई सामान्य पूर्ति रेखा एक दूसरे को बिन्दु E पर काटती हैं। बिन्दु E स्थिर साम्य कीमत को बताता है। साम्य कीमत P (या EQ) के अतिरिक्त कोई भी अन्य कीमत ऐसी शक्तियों को उत्पन्न कर देगी जो कि पुन: साम्य कीमत P को स्थापित कर देगी। यदि कीमत P_2 है तो अतिरिक्त पूर्ति AB कीमत को नीचे को E (अर्थात P) की ओर ढकेलेगी, यदि कीमत P_1 है तो

usefulness in dynamic analysis. Modern growth theory, for instance, has been cast largely in the form of equilibrium growth, and even inflation theory may apply the concept of equilibrium with advantage."

अतिरिक्त माँग GH कीमत को ऊपर को E (या P) की ओर धकेलेगी। अतः बिन्दु E स्थिर साम्य की स्थिति को बताता है।
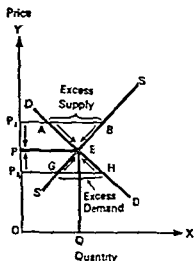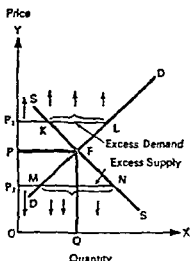
चित्र 1

चित्र 1 (b) में माँग तथा पूर्ति रेखाओं की स्थितियाँ पहले चित्र की तुलना में ठीक उलटी हैं। बिन्दु F साम्य का बिन्दु है क्योंकि यहाँ पर माँग और पूर्ति बराबर हैं; परन्तु बिन्दु F अस्थिर साम्य की स्थिति को बताता है। यदि कीमत P_1 है तो अतिरिक्त माँग KL कीमत को बढ़ायेगी और वह P_1 से दूर और ऊँची हो जायेगी। यदि कीमत P_2 है तो अतिरिक्त पूर्ति MN कीमत को घटायेगी और वह P_2 से दूर और नीची हो जायेगी। स्पष्ट है, साम्य कीमत P के अतिरिक्त कोई भी अन्य कीमत बाजार को बिन्दु F से और दूर फेंक देगी; बिन्दु F अस्थिर साम्य की स्थिति को बताता है। व्यवहार में इस चित्र की स्थिति बहुत ही कम देखने में मिलेगी।

तटस्थ साम्य की स्थिति को चित्र 2 (a) तथा 2 (b) द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
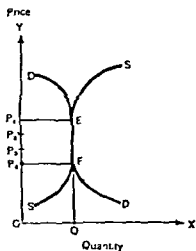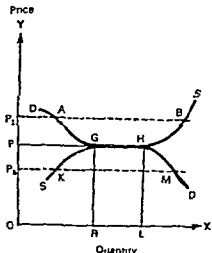
चित्र 2

चित्र 2 (a) 'तटस्थ साम्य कीमत' (neutral price equilibrium) को बताता है। कीमत क्षेत्र P_1P_4 (या EF) पर माँग तथा पूर्ति बराबर हैं (दोनों OQ के बराबर हैं)। कीमत P_1 से गिर कर चाहे P_2 या P_3 या P_4 हो जाये, परन्तु वह (अर्थात् कीमत) साम्य की स्थिति में रहती है, क्योंकि 'मांगी गयी मात्रा' तथा 'पूर्ति की गयी मात्रा' बराबर हैं। EF या P_1P_4 क्षेत्र पर कोई भी कीमत सम्भव है और इसलिए वास्तविक बाजार कीमत अनिर्धारणीय (indeterminate) है। क्षेत्र P_1P_4 पर कीमत में थोड़ी कमी या वृद्धि पुन: स्थापित करने वाली शक्तियों (recuperative forces) को जन्म नहीं देगी; इसलिए बाजार मे क्षेत्र EF या P_1P_4 पर 'तटस्थ कीमत साम्य' है।

चित्र 2 (b) तटस्थ साम्य की एक दूसरी स्थिति को बताता है। इस चित्र में क्षेत्र GH (अर्थात् क्षेत्र RL) पर मात्रा (quantity) अनिर्धारणीय है (कीमत अनिर्धारणीय नही है जैसा कि चित्र 2 (a) में था)। उत्पादन की मात्रा R तथा L के बीच मे घट-बढ़ सकती है, परन्तु यह कीमत P में कोई परिवर्तन नही करेगी, और इस प्रकार बाजार उत्पादन-परिवर्तन के उत्तर में क्षेत्र RL (या GH) पर 'तटस्थ साम्य' की स्थिति में होगा। परन्तु कीमत में परिवर्तन के उत्तर में बाजार *'स्थिर साम्य' की स्थिति में होगा, क्योंकि यदि कीमत P_1 है, तो अतिरिक्त पूर्ति AB कीमत को नीचे* को P की ओर (या क्षेत्र GH की ओर) ले जायेगी, और यदि कीमत P_2 है तो अतिरिक्त मांग KM कीमत को ऊपर को P (या क्षेत्र GH) की ओर ले जायेगी।

[नोट—साम्य की स्थिरता (stability) पर मार्शल तथा वालरस के दृष्टिकोणों के लिए इस अध्याय को परिशिष्ट 1 देखिए।]

एकाकी तथा अनेक तत्त्वीय साम्य
(SINGLE OR UNIQUE AND MULTIPLE EQUILIBRIA)

'एकाकी साम्य' तब कहा जायेगा जबकि उत्पादन की मात्रा तथा कीमत का केवल एक ही समूह साम्य की दशाओ को सन्तुष्ट करता है। उदाहरणार्थ, केवल 5 रु. कीमत पर किसी वस्तु की माँग और पूर्ति दोनों 60 इकाई के बराबर हैं। अत: '5 रु. तथा 60 इकाई'—यह कीमत और मात्रा का एकाकी (unique) समूह है जो कि साम्य की दशा को पूरा करता है; यह एकाकी साम्य की स्थिति है।

'अनेक तत्त्वीय साम्य' तब कहा जायेगा जबकि उत्पादन की मात्राओं और कीमतों के अनेक विभिन्न समूह साम्य की दशाओ की सतुष्टि करते हैं।

'अनेक तत्त्वीय साम्य' की स्थिति को चित्र 3 द्वारा दिखाया गया है। जब पूर्ति रेखा का ढाल ऋणात्मक होता है अर्थात् वह नीचे को गिरती हुई होती है तो वह माँग रेखा को एक से अधिक बिन्दुओ पर काट सकती है और इस प्रकार एक से अधिक साम्य के बिन्दु हो सकते हैं; अर्थात् 'अनेक तत्त्वीय साम्य' (multiple equilibria) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चित्र 3 मे पूर्ति रेखा SS माग रेखा DD को तीन बिन्दुओं P_H, P तथा P_L पर काटती है; P_H ऊंची कीमत, P_L नीची कीमत तथा P बीच की कीमत को बताता है।
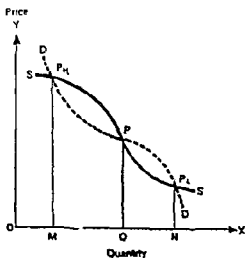
चित्र 3

यह चित्र कीमत प्रणाली (price system) में सरकारी हस्तक्षेप (government intervention) की आवश्यकता को बताता है। सामाजिक दृष्टि से P_L साम्य की स्थिति अधिक उचित है जो कि नीची लागत व कम कीमत और अधिक उत्पादन को बताती है अपेक्षाकृत P_H के जो कि ऊंची लागत व ऊंची कीमत और कम उत्पादन को बताती है। यदि P_H एक स्थिर साम्य की स्थिति है तो बाजार की शक्तियां कीमत को P_H से हटाकर P_L पर नहीं ले जा सकेंगी; इसलिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता पडेगी ताकि सामाजिक दृष्टि से अच्छी स्थिति P_L को प्राप्त किया जा सके। सरकार उद्योग को आर्थिक सहायता (subsidy) देकर उसके उत्पादन को बढ़ाने में प्रोत्साहन (encouragement) दे सकती है ताकि उत्पादन बढ़कर N पर आ जाये अर्थात् P_L स्थिति प्राप्त हो जाये।

अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य
(SHORT-TERM AND LONG-TERM EQUILIBRIA)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने मूल्य निर्धारण में समय के तत्त्व के प्रभाव का अध्ययन किया। इसलिए अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य के जन्मदाता मार्शल कहे जा सकते हैं।

अल्पकालीन साम्य वह है जो कि अल्पकाल से सम्बन्धित होता है। अल्पकाल में मांग में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति मे परिवर्तन केवल वर्तमान साधनों की सहायता से ही किये जा सकते हैं क्योंकि समय इतना नही होता कि नये उत्पत्ति के साधनों को प्रयोग में लाया जा सके। इस प्रकार की परिस्थिति मे (अर्थात् अल्पकाल में) जो साम्य मांग तथा पूर्ति में स्थापित होता है उसे अल्पकालीन साम्य कहते हैं। अल्पकालीन साम्य क्षणिक (momentary) होता है या बहुत कम समय के लिए होता है; यह केवल एक छोटी अवधि के अन्तर्गत, या एक समय-बिन्दु (point of time) पर, बना रहता है और उसके बाद भग हो जाता है।

दीर्घकालीन साम्य वह है जो कि दीर्घकाल से सम्बन्धित होता है। दीर्घकालीन समय मे मांग में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति मे परिवर्तन वर्तमान उत्पत्ति के साधनों तथा नये उत्पत्ति के साधनों दोनों की सहायता से किये जा सकते हैं। दीर्घकालीन साम्य केवल एक थोड़े समय के लिए या केवल एक समय-बिन्दु पर ही नही बल्कि एक लम्बे समय के लिए बना रहता है।
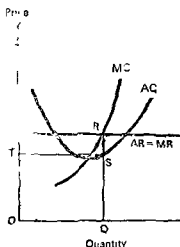
Short-Period Equilibrium of a Firm (a) — Long-Period Equilibrium of a Firm (b)
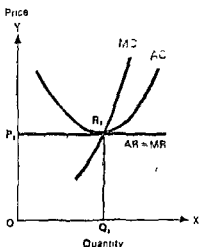
चित्र 4

अल्पकालीन साम्य तथा दीर्घकालीन साम्य को हम चित्र 4 के द्वारा बता सकते हैं। चित्र 4(a) में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के अल्पकालीन साम्य को दिखाया गया है; चित्र 4 (b) में एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य को दिखाया गया है।

साम्य के लिए यह आवश्यक है कि फर्म अपने कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न करे, ऐसा वह तब करेगी जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो और ऐसा तब होगा जबकि MR=MC के हो। अल्पकाल में इस दशा का पूरा होना आवश्यक है। परन्तु दीर्घकाल में एक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त हो सकता है और इसके लिए AR=AC की भी दशा पूरी होनी चाहिए; अतः दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए दुहरी दशा—(i) MR=MC तथा (ii) AR=AC—पूरी होनी चाहिए।

चित्र 4 (a) में फर्म के अल्पकालीन साम्य को दिखाया गया है। चित्र में बिन्दु R पर MR=MC की दशा पूरी हो रही है, अतः फर्म R बिन्दु पर साम्य की दशा में होगी, वस्तु की कीमत=RQ (या PO), उत्पादन=OQ तथा लाभ=RSTP.

चित्र 4 (b) में फर्म के दीर्घकालीन साम्य को दिखाया गया है। चित्र में R_1 बिन्दु पर दोहरी दशा—(i) MR=MC तथा (ii) AR=AC—पूरी हो रही है। अतः फर्म R_1 बिन्दु पर साम्य की दशा में है, कीमत=R_1Q_1 (या P_1O), उत्पादन=OQ_1 तथा फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

स्थैतिक तथा प्रावैगिक साम्य
(STATIC AND DYNAMIC EQUILIBRIA)

स्थैतिक साम्य स्थिर अर्थ-व्यवस्था (stationary economy) से सम्बन्धित होता है। स्थिर अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय ऐसी अर्थ-व्यवस्था से होता है जिसमें कि विभिन्न अंगों (जैसे उपभोग, उत्पत्ति, जनसंख्या, इत्यादि) में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति न हो और वे स्थिर रहते हैं। उदाहरणार्थ, स्थिर मांग तथा स्थिर पूर्ति की सारणियों द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य, स्थैतिक साम्य को बताता है। प्रो. बोल्डिंग ने स्थैतिक साम्य के उदाहरण इस प्रकार दिये हैं। एक गेंद यदि समान दर से लुढ़कती है तो वह स्थैतिक साम्य में कही जायेगी। एक जंगल जिसमें कि पेड़ उगते, बढ़ते तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं परन्तु सम्पूर्ण जंगल की बनावट (composition) अपरिवर्तित रहती है, ऐसा जंगल स्थैतिक साम्य में कहा जायेगा।*

[प्रो. जे. के. मेहता ने स्थैतिक साम्य का अर्थ कुछ भिन्न प्रकार से बताया है। उनके अनुसार जो साम्य एक निश्चित समय अवधि के बाद भी बना रहता है, वह स्थैतिक साम्य है। यदि समय अवधि हम 10 दिन लेकर चलें, और किसी वस्तु की मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य 10 दिन के उपरान्त भी बना रहता है, तो यह स्थैतिक साम्य कहा जायेगा।]

प्रावैगिक साम्य का सम्बन्ध प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था से होता है। प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था में हम स्थिर अर्थ-व्यवस्था की भांति, आर्थिक तत्त्वों (data) को स्थिर नहीं मानते, वे परिवर्तित होते रहते हैं। प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था को स्पष्ट रूप से समझने के लिए दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए: (i) प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था में अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अंगों या विभिन्न आर्थिक तत्त्वों में परिवर्तन अवश्य होता है, उनमें विस्तार अथवा संकुचन हो सकता है। (ii) परन्तु उन विभिन्न अंगों या आर्थिक तत्त्वों में परिवर्तन समान दर से होना चाहिए। यदि प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था, जिससे कि प्रावैगिक साम्य

* "A mechanical analogy may be found in a ball rolling at a constant speed or, better still, of a forest in equilibrium, where trees sprout, grow and die, but where the composition of the forest as a whole remains unchanged."

—Boulding, *Economic Analysis*, p. 541.

सम्बन्धित होता है, का अर्थ इस रूप में लिया जाये तो स्पष्ट है कि यह अवास्तविक प्रतीत होता है, आर्थिक तत्वों या आर्थिक अंगों में परिवर्तन होता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह परिवर्तन एक समान दर या गति से हो। उपर्युक्त अर्थ में ही प्रो. बोल्डिंग ने प्रावैगिक साम्य की परिभाषा इस प्रकार दी है :

"एक अर्थ-व्यवस्था प्रावैगिक साम्य की दशा में कही जा सकती है यदि समस्त स्टाक (stock), जिसमें वस्तुओं तथा मानव दोनों को शामिल किया जाता है, में आर्थिक परिवर्तन समान दर पर हो और यदि स्टाक की सभी मदों के उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि समान दरों पर हो।"[10]

[प्रो. जे. के. मेहता ने प्रावैगिक साम्य का अर्थ कुछ भिन्न रूप मे लिया है। उनके अनुसार, जो साम्य एक निश्चित समय अवधि के अन्दर ही रहता है और उस अवधि के उपरान्त भंग हो जाता है तो उसे प्रावैगिक साम्य कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हम समय अवधि 10 दिन लेकर चलें और यदि किसी वस्तु की मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य 10 दिन के उपरान्त भंग हो जाता है तो वह प्रावैगिक साम्य होगा, यदि वह 10 दिन के उपरान्त भी बना रहता है तो वह स्थैतिक साम्य कहा जायेगा।]

आंशिक या विशिष्ट तथा सामान्य साम्य
(PARTIAL OR PARTICULAR AND GENERAL EQUILIBRIA)

आंशिक या विशिष्ट साम्य का अर्थ (Meaning of partial or particular equilibria)—आंशिक साम्य विश्लेषण की रीति प्रारम्भ में मार्शल तथा केम्ब्रिज स्कूल (Cambridge school) द्वारा प्रतिपादित की गयी। आंशिक साम्य वह है जिसका सम्बन्ध किसी एक विशिष्ट इकाई से हो। एक व्यक्ति का साम्य, एक फर्म का साम्य, एक उद्योग का साम्य, इत्यादि आंशिक साम्य के उदाहरण हैं। प्रो. स्टिगलर (Stigler) के अनुसार,

"आंशिक साम्य वह है जो कि सीमित आंकड़ों पर आधारित होता है; इसका एक अच्छा उदाहरण किसी एक वस्तु की कीमत है, जबकि विश्लेषण काल में अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें यथा स्थिर मान ली जाती हैं।"[11]

आंशिक साम्य, जैसा कि इसका नाम बताता है, आंशिक होता है तथा समस्त अर्थ-व्यवस्था के सम्पूर्ण चित्र की जानकारी इसके द्वारा नहीं की जा सकती है।

आंशिक या विशिष्ट साम्य की मान्यताएं तथा सीमाएं (Assumptions and limitations of partial or particular equilibrium)—(i) आंशिक साम्य विश्लेषण रीति के अन्तर्गत विशिष्ट इकाइयों के सम्बन्ध मे साम्य की दशाओं का विश्लेषण करते समय, हम अन्य बातों को यथा-स्थिर मान लेते हैं। दूसरे शब्दों में, हम स्थिर स्थिति (stationary state) की उपस्थिति मान लेते हैं।[12]

---

[10] "An economic system might be said to be in dynamic equilibrium if its total stock, including both things and people, changed at a constant rate (per cent per annum) and if the rates of production and consumption of all items of the stock increased at the same rate." —*Ibid.*, 642.

[11] "A partial equilibrium is one which is based only on restricted range of data, a standard example is the price of a single product, the prices of all other products being held fixed during the analysis."

[12] उदाहरणार्थ, आंशिक साम्य विश्लेषण रीति द्वारा एक उद्योग के साम्य की दशाओं का अध्ययन करने के लिए उस उद्योग विशेष को अन्य उद्योगों से अलग करके अध्ययन किया जायेगा। यह मान लिया जाता है कि उद्योग विशेष में उत्पादन और मांग की दशाएं अन्य उद्योग मे मांग तथा पूर्ति की दशाओं से बिलकुल प्रभावित नहीं होतीं।

(ii) आंशिक विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के केवल एक अंग को प्रस्तुत करता है। समस्त अर्थ-व्यवस्था के कार्यकरण को इसके द्वारा नहीं समझा जा सकता।

आंशिक या विशिष्ट साम्य का महत्त्व तथा प्रयोग (Importance and uses of partial or particular equilibrium)—यद्यपि आंशिक साम्य विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के चित्र को उसके पूर्ण रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत नही करता, परन्तु आंशिक साम्य दो प्रकार की समस्याओं के अध्ययन में सहायक है: (i) कुछ आर्थिक समस्याएं ऐसी होती है जो कि विशेष प्रकार के आर्थिक विघ्नों (disturbances) द्वारा उत्पन्न होती हैं और जिनका प्रभाव किसी विशेष उद्योग तक या अर्थ-व्यवस्था के किसी एक विशेष भाग तक सीमित रहता है, जबकि कुछ आर्थिक विघ्नों का प्रभाव समस्त अर्थ-व्यवस्था पर पड़ता है। आंशिक साम्य विश्लेषण प्रथम प्रकार की समस्याओं के अध्ययन का एक उचित साधन है। (ii) किसी भी विघ्न के प्रभाव प्रथम स्तर (primary), द्वितीय स्तर (secondary), तृतीय स्तर (tertiary), इत्यादि पर अनुभव किये जाते हैं। आंशिक साम्य विश्लेषण रीति प्रथम स्तर के प्रभावों या प्रत्यक्ष प्रभावों का ही अध्ययन करती है।

सामान्य साम्य का अर्थ (Meaning of general equilibrium)—'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' का प्रयोग प्रारम्भ में वालरस (Walras) तथा लोसेन स्कूल (Lausanne school) द्वारा किया गया।

> सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक परिवर्तनशील तत्त्व (single variable) का अध्ययन नहीं करती बल्कि अनेक परिवर्तनशील तत्त्वों (multiplicity of variables) का एक साथ अध्ययन करती है, इसका सम्बन्ध समस्त अर्थ-व्यवस्था से होता है।

आंशिक साम्य विश्लेषण की भांति इस रीति द्वारा किया गया अध्ययन सीमित तथ्यों (restricted range of data) पर आधारित नही होता, यह रीति बहुत अधिक विस्तृत होती है और इसके अन्तर्गत आंशिक साम्य सम्मिलित होता है।

'सामान्य साम्य विश्लेषण' अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर ज़ोर देता है। इस सम्बन्ध में प्रो. बोल्डिंग ने एक प्याले में पड़ी हुई तीन गेंदो का उदाहरण दिया है। एक गेंद की साम्य स्थिति केवल प्याले के आकार और उस गेंद के आकार पर ही निर्भर नही करती बल्कि अन्य दो गेंदों की स्थिति पर भी निर्भर करती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सामान्य साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अर्थ-व्यवस्था की अन्य सभी इकाइयाँ भी समय विशेष में एक ही साथ साम्य की स्थिति में हों। लेफ्टविच (Leftwitch) के अनुसार,

> **"सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था उस समय सामान्य साम्य की स्थिति में होगी जबकि अर्थ-व्यवस्था की सभी इकाइयां एक ही साथ अपना-अपना आंशिक साम्य प्राप्त कर लें। सामान्य साम्य की धारणा सभी आर्थिक इकाइयों तथा अर्थ-व्यवस्था के सभी अंगों के पारस्परिक निर्भरता पर बल देती है।"**[11]

इस प्रकार की सामान्यता को समझने के लिए अर्थ-व्यवस्था तथा उसके विभिन्न अंगो की तुलना क्रमशः मानव शरीर तथा उसके विभिन्न अगो से की जाती है। मानव के सम्पूर्ण शरीर के साम्य अवस्था मे रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसका कोई अंग असन्तुलित अवस्था मे न हो अर्थात् किसी भी अंग में

---

[11] "General equilibrium for the entire economy could exist only if all economic units were to achieve simultaneous particular equilibrium adjustments. The concept of general equilibrium stresses the interdependence of all economic units and of all segments of the economy on each other."

Leftwitch, *The Price System and Resource Allocation*, p. 353.

कष्ट न हो रहा हो। जिस प्रकार मानव के सम्पूर्ण शरीर का साम्य उसी अवस्था में सम्भव है जबकि शरीर के सभी अंगों मे पृथक्-पृथक साम्य हो, उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के साम्य के लिए यह आवश्यक है कि सभी अलग-अलग भागों मे सन्तुलन हो।

सामान्य साम्य की कठिनाई या सीमा (Difficulty or Limitation of General Equilibrium)

प्रो. लेफ्टविच द्वारा दी हुई सामान्य साम्य की परिभाषा बहुत प्रभावशाली तथा आकर्षक प्रतीत होती है। परन्तु इस प्रकार के सामान्य साम्य की स्थिति के अध्ययन का कोई स्पष्ट और निश्चित निष्कर्ष नही निकाल सकती। ऐसी अवस्था मे प्रत्येक बात दूसरी बात पर निर्भर करती है और ऐसी स्थिति के वर्णन मे उतने ही समीकरण (equations) होंगे जितने कि अज्ञात तत्त्व (unknown variables) हैं। *अतः सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक बहुत कठिन और जटिल रीति है।*

अत. प्रो स्टिगलर का कथन है,

> "सामान्य साम्य एक मिथ्या नाम (misnomer) है; कोई भी आर्थिक विश्लेषण इस अर्थ में सामान्य नहीं है कि वह सभी सम्बन्धित तथ्यों पर एक साथ विचार कर सके।······अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि सामान्य साम्य अध्ययन आंशिक साम्य अध्ययनों की अपेक्षा, अधिक विस्तृत होते हैं, परन्तु वे कभी पूर्ण नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त, विश्लेषण जितना ही अधिक सामान्य होगा उतने ही अधिक उसके निष्कर्ष कम निश्चित होंगे।"[14]

सामान्य साम्य का महत्त्व तथा प्रयोग (Importance and Uses of General Equilibrium)

उपर्युक्त कठिनाई के होने पर भी सामान्य साम्य के कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं। **प्रो. स्टिगलर** ने सामान्य साम्य के निम्न तीन महत्त्वपूर्ण प्रयोग बताये हैं :

(1) यह इस बात को स्पष्ट करता है कि अर्थ-व्यवस्था के एक भाग में साम्य, उसके अन्य भागों में साम्य के साथ-साथ रह सकता है।

(2) यह अर्थ-व्यवस्था के सामान्य ढांचे तथा कार्यकरण की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

(3) यह इस बात को मालूम करने मे अत्यन्त सहायक होता है कि किसी विशिष्ट समस्या के लिए कौनसे तथ्य उपयोगी (relevant) है, और यह अन्य उद्योगों को यथास्थिर मानकर केवल एक उद्योग पर विचार करने के अर्थ तथा सीमाओ को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

आंशिक साम्य तथा सामान्य साम्य की तुलना (Comparison)

दोनो रीतिया अर्थशास्त्रियो के लिए उपयोगी हैं, परन्तु दोनों मे निम्न अन्तर पाये जाते हैं :

(1) 'आंशिक साम्य विश्लेषण रीति' अधिक व्यावहारिक है और इसकी सहायता से हम विभिन्न कीमतो पर वस्तु विशेष की मांगी जाने वाली मात्रा या पूर्ति की जाने वाली मात्रा को ज्ञात कर सकते हैं।

परन्तु यह रीति अर्थ-व्यवस्था में विभिन्न आर्थिक तत्त्वो की पारस्परिक निर्भरता पर प्रकाश नही डालती, जबकि 'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' ऐसा करती है। अतः केवल आंशिक साम्य रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को समस्त अर्थ-व्यवस्था मे लागू करने से भीषण और गलत परिणाम प्राप्त होंगे। उदाहरणार्थ, एक विशेष उद्योग मे मजदूरों की मजदूरी की दर को गिरा देने से अधिक मजदूरो को रोजगार दिया जा सकता है, परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक नही होगा कि सभी उद्योगों मे मजदूरी-दर गिरा देने से अधिक मजदूरो को रोजगार प्राप्त हो जायेगा। सामान्य मजदूरी-दर मे

[14] "...General equilibrium is a misnomer, no economic analysis has ever been general in the sense that it considered all relevant data The most that can be said is that general equilibrium studies are more inclusive than partial equilibrium studies, never that they are complete. Moreover, the more general the analysis, the less specific its content must necessarily be."

गिरावट लोगों की क्रय शक्ति बहुत कम कर देगी, परिणामस्वरूप वस्तुओं की मांग कम होगी और उद्योगों मे अधिक मजदूरों को रोजगार नहीं मिल सकेगा बल्कि रोजगार कम हो जायगा क्योंकि वस्तुओं की मांग कम होने पर उद्योगों मे शिथिलता आ जायेगी और कुछ उद्योग बन्द भी हो जायेंगे ।

(2) 'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' विशिष्ट समस्याओं के समाधान में व्यावहारिक रूप से उपयोगी नही है क्योंकि इसमे बहुत अधिक गणित का प्रयोग किया जाता है और एक साथ कई युगपत समीकरणों (simultaneous equations) पर भी विचार करना पड़ता है ।

परन्तु सामान्य साम्य विश्लेषण रीति से हमे अर्थ-व्यवस्था के सम्पूर्ण चित्र का ज्ञान होता है क्योंकि यह रीति अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अगो के पारस्परिक निर्भरता पर ध्यान देती है । इस प्रकार इस रीति के प्रयोग से आंशिक साम्य विश्लेषण रीति की कमियों तथा गलतियों से बचा जा सकता है ।

निष्कर्ष—विश्लेषण की दोनो रीतिया प्रतियोगी न होकर एक दूसरे की पूरक हैं । अर्थ-व्यवस्था के समस्त चित्र को जानने के लिए सामान्य साम्य विश्लेषण आवश्यक है तथा चित्र के एक अंग के कार्यकरण को समझने के लिए आंशिक साम्य विश्लेषण जरूरी है ।

परिशिष्ट 1 (APPENDIX 1) — स्थायित्व की दशाएं–1 [STABILITY CONDITIONS-I]

स्थायी तथा अस्थायी साम्य पर मार्शल और वालरस के दृष्टिकोण (VIEWS OF MARSHALL AND WALRAS ON STABLE AND UNSTABLE EQUILIBRIA)

साम्य की एक स्थिति स्थिर (stable) है या नही, इसको मालूम करने के लिए हमें समायोजन की प्रक्रिया व रास्ते (process and path of adjustment) को देखना पड़ेगा । साम्य के स्थायित्व (stability) की समस्या वास्तव मे एक प्रावैगिक (dynamic) समस्या है ।

मार्शल तथा वालरस (Walras) इस बात पर सहमत थे कि एक बाजार मे साम्य क्या होता है, परन्तु उन्होने भिन्न रीतियो का प्रयोग किया ।

मार्शल का विश्लेषण (Marshallian analysis) **इस बात पर आधारित है कि कीमत में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 'मात्रा समायोजन करती है'** ('quantity adjusts' as price changes)। चूंकि मात्रा मे गतियाँ या समायोजन (movements or adjustments in quantity) निर्भर करते हैं कीमत पर, इसलिए 'मार्शल की विश्लेषण रीति' को प्रो. बोल्डिंग 'कीमत-निर्भरता रीति' (price-dependent approach) कहते हैं, अर्थात्, 'कीमत-निर्भरता रीति', साम्य तक पहुंचने के लिए, निर्भर करती है मात्रा की गतियों पर ।[1]

वालरस का विश्लेषण (Walrasian analysis) **इस बात पर आधारित है कि मात्रा में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 'कीमत समायोजन करती है'** ('price adjusts' as quantity changes) । चूंकि कीमत मे गतियाँ या समायोजन (movements or adjustments in price) निर्भर करते हैं मात्रा पर, इसलिए 'वालरस की विश्लेषण रीति' को प्रो. बोल्डिंग 'मात्रा-निर्भरता रीति' (quantity-dependent approach) कहते हैं; अर्थात् 'मात्रा-निर्भरता रीति', साम्य तक पहुंचने के लिए, निर्भर करती है कीमत की गतियों पर ।[2]

मार्शल तथा वालरस की रीतियों को समझने के लिए हम कुछ चित्रों की सहायता लेते

---

[1] 'Price dependent approach' depends on 'movements of quantity' to reach equilibrium.

[2] 'Quantity-dependent approach' depends on the movements of price to reach equilibrium.

हैं। चित्र 1 में बाजार में किसी वस्तु की माँग रेखा D_1D_1 तथा पूर्ति रेखा S_1S_1 है, उनके कटाव का बिन्दु E साम्य की स्थिति को बताता है। साम्य का अर्थ है कि परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। इस बात को ध्यान मे रखते हुए हम यह देखेंगे कि बिन्दु E किस प्रकार से एक साम्य का बिन्दु है; ऐसा हम मार्शल तथा वालरस दोनों की रीतियों से करेंगे।
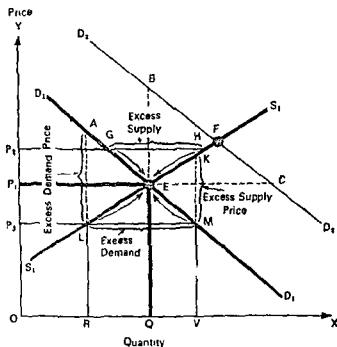
चित्र 1

पहले हम वालरस की रीति लेते हैं; यह रीति 'अतिरिक्त माँग' (excess demand) तथा 'अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply) के विचारो का प्रयोग करती है। माना कि (चित्र 1 में) कीमत P_3 है; इस कीमत पर क्रेता P_3M (या OV) मात्रा की माँग करते हैं जबकि विक्रेता P_3L (या OR) मात्रा को बेचने की स्थिति मे हैं, अत LM (या RV) के बराबर 'अतिरिक्त माँग' उठती है। यह अतिरिक्त माँग LM कीमत को ऊपर को E (अर्थात् P_1) की ओर ढकेलेगी जैसा कि ऊपर को जाते हुए तीर बताते हैं। यदि कीमत P_2 है, तो GH के बराबर 'अतिरिक्त पूर्ति' होगी जो कि कीमत को नीचे को E (अर्थात् P_1) की ओर ढकेलेगी जैसा कि नीचे को जाते हुए तीर बताते हैं। इस प्रकार मात्रा में 'अतिरिक्त माँग' या 'अतिरिक्त पूर्ति' के रूप में परिवर्तन होता है तो साम्य की स्थिति E तक पहुँचने के लिए कीमत समायोजन करती है (price adjusts)। अतः 'वालरस की मात्रा-निर्भरता रीति' के अनुसार बिन्दु E साम्य (या स्थिर साम्य की) स्थिति को बताता है।

अब हम मार्शल की रीति को लेते हैं, माना कि (चित्र 1 में) OR कोई भी 'असाम्य की स्थिति मे मात्रा' (non-equilibrium quantity) है। इस मात्रा OR पर 'पूर्ति कीमत' (supply price) RL है जिस पर कि विक्रेता OR मात्रा को बेचने के लिए तैयार हैं; तथा 'माँग कीमत' (demand price') RA है जिस पर कि क्रेता OR मात्रा को माँगने को तैयार हैं। क्रेताओं की कीमत RA तथा विक्रेताओ की कीमत RL में अन्तर AL है, जिसे कि 'अतिरिक्त माँग कीमत' (excess demand price) कहा जाता है। *यह 'अतिरिक्त माँग कीमत' AL वस्तु की मात्रा को बढ़ायेगी* क्योंकि विक्रेता मात्रा को बढ़ाकर लाभ बढ़ा सकेंगे और मात्रा R से बढ़कर Q तक पहुँच जायेगी।

इसी प्रकार से यदि 'असाम्य की स्थिति में मात्रा' OV है तो 'अतिरिक्त पूर्ति कीमत' (excess supply price) MK होगी जो कि उत्पादन में संकुचन (contraction) करेगी और उत्पादन घट कर Q पर आ जायेगा, ऐसा करने से उत्पादक अपनी हानि को समाप्त कर सकेंगे। इस प्रकार 'मार्शल की कीमत-निर्भरता रीति' में साम्य की स्थिति E (या P_1) पर पहुँचने के लिए 'मात्रा समायोजन करती है' (quantity adjusts); अर्थात् मात्रा बढ़ती-घटती है साम्य तक पहुँचने के लिए।

चित्र 1 सामान्य दशा को बताता है जिसमें कि ऊपर को चढ़ती हुई पूर्ति रेखा तथा नीचे को गिरती हुई माँग रेखा है; ऐसी स्थिति में, जैसा कि हम देख चुके है, बिन्दु E पर साम्य के स्थायित्व (stability of equilibrium at E) के सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही है चाहे हम 'वालरस की मात्रा-निर्भरता रीति' का प्रयोग करे या 'मार्शल की कीमत-निर्भरता रीति' का।

हम इस बात की एक दूसरे प्रकार से भी व्याख्या कर सकते है; हम यह मान लेते हैं कि माँग बढ जाती है अर्थात् माँग रेखा D_1D_1 दायें को खिसक कर D_2D_2 की स्थिति पर आ जाती है। अब नयी माँग रेखा D_2D_2 पूर्ति रेखा S_1S_1 को F बिन्दु पर काटती है, और बिन्दु F अब साम्य का बिन्दु है। इस बिन्दु F के स्थायित्व की जाँच हम मार्शल तथा वालरस दोनों की रीतियों से करते हैं। माँग रेखा D_1D_1 के खिसक कर D_2D_2 की स्थिति मे पहुँच जाने से, बिन्दु E 'अतिरिक्त माँग EC' तथा 'अतिरिक्त माँग कीमत EB' दोनों की स्थिति मे हो जाता है। वालरस की रीति के अनुसार 'अतिरिक्त माँग EC' के परिणामस्वरूप कीमत बढ़ेगी तथा मार्शल की रीति के अनुसार 'अतिरिक्त माँग कीमत EB' के कारण मात्रा (quantity) बढ़ेगी। ऐसी स्थिति में, जो कि चित्र 1 में दिखायी गयी है, किसी भी रीति के प्रयोग से अन्तिम परिणाम में कोई भी अन्तर नहीं पड़ेगा क्योंकि नयी साम्य स्थिति F कीमत व मात्रा दोनों में वृद्धि को बताता है। इस प्रकार बिन्दु F स्थिर साम्य की स्थिति को बताता है, चाहे हम वालरस की रीति का प्रयोग करें या मार्शल की रीति का; अन्तर केवल 'समायोजन के रास्ते' (path of adjustment) का है—वालरस की रीति के अनुसार समायोजन का रास्ता है 'E से C और C से F तक चलन', इस प्रकार माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप कीमत समायोजन करती है अर्थात् कीमत बढ़ती है; मार्शल की रीति के अनुसार समायोजन का रास्ता है 'E से B और B से F तक चलन', इस प्रकार 'माँग-कीमत में वृद्धि' के परिणामस्वरूप मात्रा समायोजन करती है अर्थात् मात्रा बढ़ती है। दोनो रीतियों मे समायोजन के रास्ते मे अन्तर होने पर भी अन्तिम परिणाम एक ही है, अर्थात् बिन्दु F 'स्थिर साम्य' का बिन्दु है।

परन्तु कुछ स्थितियाँ ऐसी हैं जिनमे दोनो रीतियो के प्रयोग से एक ही परिणाम प्राप्त नही होगा:

> जब माँग रेखा तथा पूर्ति रेखा दोनों नीचे की ओर गिरती हुई होती हैं तो दोनों रीतियों के प्रयोग से एक ही परिणाम प्राप्त नहीं होगा; दूसरे शब्दों में, ऐसी स्थिति में, मार्शल की रीति के अनुसार जो स्थायी (या स्थिर) साम्य की स्थिति है वह वालरस की रीति के अनुसार अस्थायी (या अस्थिर) साम्य की स्थिति होगी। इस सम्बन्ध में दो दशाएं (cases) हैं: (a) जबकि ऋणात्मक ढाल वाली (अर्थात् नीचे को गिरती हुई) पूर्ति रेखा ऋणात्मक ढाल वाली माँग रेखा को नीचे से काटती है;[3] तथा (b) जबकि ऋणात्मक ढाल वाली पूर्ति रेखा ऋणात्मक ढाल वाली माँग रेखा को ऊपर से काटती है।[4]

---

[3] This is also put in other words : When a negatively sloping supply curve cuts a more steeply negatively sloping demand curve.

[4] This is also put in other words : When a negatively sloping supply curve cuts a less steeply negatively sloping demand curve.

उपर्युक्त दोनों दशाओं की हम चित्र 2 (a) तथा 2 (b) द्वारा व्याख्या करते हैं।
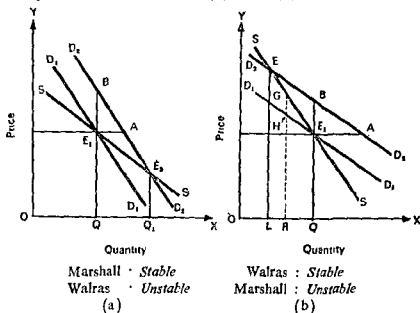
चित्र 2

पहले हम चित्र 2 (a) लेते हैं जिसमें कि ऋणात्मक ढाल वाली पूर्ति रेखा SS ऋणात्मक ढाल वाली माँग रेखा D_1D_1 को नीचे से E_1 पर काटती है। माना कि माँग बढ़ जाती है और नयी माँग रेखा D_2D_2 है। पूर्ति रेखा SS नयी माँग रेखा D_2D_2 को E_2 बिन्दु पर काटती है। मार्शल की रीति के अनुसार बिन्दु E_2 स्थायी (या स्थिर) साम्य का बिन्दु है, जबकि वालरस की रीति के अनुसार बिन्दु E_2 अस्थायी (या अस्थिर) साम्य का बिन्दु है। ऐसा क्यों है? इसकी हम व्याख्या करते हैं। माँग रेखा के दाँयें को खिसकने के परिणामस्वरूप 'अतिरिक्त माँग E_1A' तथा 'अतिरिक्त माँग कीमत E_1B' दोनों उत्पन्न होती है। मार्शल की रीति के अनुसार OQ उत्पादन स्तर पर 'अतिरिक्त माँग कीमत E_1B' उत्पादन में वृद्धि करेगी और उत्पादन बढ़कर OQ_1 हो जायेगा अर्थात् हम E_2 बिन्दु पर पहुँच जायेंगे, इस प्रकार बिन्दु E_2 स्थिर साम्य का बिन्दु है। वालरस की रीति के अनुसार, OQ उत्पादन पर 'अतिरिक्त माँग E_1A' है जो कि कीमत में और अधिक वृद्धि करेगी और इसलिए कीमत-मात्रा स्थिति बिन्दु E_2 से दूर जायेगी, न कि बिन्दु E_2 की तरफ जायेगी; इस प्रकार स्पष्ट है *कि बिन्दु E_2 अस्थिर साम्य का बिन्दु है। अतः इन दो रीतियों का प्रयोग करने से हमें एकदम विपरीत* परिणाम मिलता है मार्शल की रीति के अनुसार 'ब...दु E_2 स्थिर साम्य को बताता है, जबकि वालरस की रीति के अनुसार वह अस्थिर साम्य की स्थिति को बताता है।

अब हम चित्र 2 (b) को लेते हैं। इस चित्र में ऋणात्मक ढाल वाली पूर्ति रेखा ऋणात्मक ढाल वाली माँग रेखा को ऊपर से बिन्दु E_1 पर काटती है। माँग के बढ़ जाने से नयी माँग रेखा D_2D_2 हो जाती है और अब कटाव का बिन्दु E हो जाता है। मार्शल की रीति के अनुसार, 'अतिरिक्त माँग कीमत E_1B' उत्पादन (या मात्रा) में वृद्धि करेगी, ...र इसलिए कीमत-मात्रा स्थिति बिन्दु E से दूर जायेगी न कि उसकी तरफ जायेगी; अतः बिन्दु E अस्थिर साम्य का बिन्दु है। वालरस की रीति के अनुसार 'अतिरिक्त माँग E_1A' कीमत में वृद्धि करेगी और इसलिए कीमत-मात्रा स्थिति बिन्दु E की ओर चलेगी; अतः बिन्दु E स्थिर साम्य का बिन्दु है। इस प्रकार, पुनः हम देखते हैं कि दोनों रीतियों के प्रयोग से एकदम विपरीत परिणाम मिलता है।

[इस बात को कि एक बिन्दु स्थिर साम्य या अस्थिर साम्य की स्थिति में हैं हम बिना माँग रेखा

को खिसकाये हुए भी समझा सकते हैं। हम चित्र 2 (b) लेते है, इस चित्र मे हम बिन्दु E_1 (या बिन्दु Q) के बांये को चलते हैं; माना कि हम उत्पादन स्तर R पर हैं। मार्शल की रीति के अनुसार बिन्दु E_1 अस्थिर साम्य का बिन्दु है : E_1 के बांयी ओर 'अतिरिक्त पूर्ति मूल्य GH' उत्पादन (या मात्रा) में कमी करेगा और इस प्रकार चलन बिन्दु E_1 से दूर बायी ओर होगा; इसी प्रकार बिन्दु E_1 के दायें पर 'अतिरिक्त मांग कीमत' होगी जो कि उत्पादन को बढायेगी और इस प्रकार चलन बिन्दु E_1 से दूर दायी ओर होगा। अतः मार्शल के अनुसार बिन्दु E_1 अस्थिर साम्य का बिन्दु होगा। वालरस की रीति के अनुसार बिन्दु E_1 स्थिर साम्य का बिन्दु है : बिन्दु E_1 (या बिन्दु Q) की बायी ओर 'अतिरिक्त पूर्ति' होगी जो कि कीमत को नीचे को बिन्दु E_1 की ओर ढकेलेगी; बिन्दु E_1 (या बिन्दु Q) की दायी ओर 'अतिरिक्त मांग' होगी जो कि कीमत को ऊपर को बिन्दु E_1 की ओर ढकेलेगी; स्पष्ट है कि वालरस की रीति के अनुसार बिन्दु E_1 स्थिर साम्य का बिन्दु है।]

मार्शल तथा वालरस की रीतियों द्वारा संतुलन के स्थायित्व (stability of equilibrium) की विवेचना हम चित्र 3 (a) तथा (b) द्वारा भी कर सकते है।

चित्र 3 (a) मार्शल की रीति को बताता है, इस चित्र में ऋणात्मक ढाल वाली पूर्ति रेखा SS ऋणात्मक ढाल वाली मांग रेखा DD को नीचे से काटती है। चित्र 3 (b) वालरस की रीति को बताता हैं; इस चित्र मे पूर्ति रेखा मांग रेखा को ऊपर से काटती है।

चित्र 3 (a) में बिन्दु B स्थिर साम्य का बिन्दु है; मार्शल की रीति के अनुसार, बिन्दु B के बायीं ओर 'अतिरिक्त मांग कीमत' है (जैसे, उत्पादन के R स्तर पर अतिरिक्त मांग कीमत टूटी रेखा EF के बराबर है) जिसके कारण उत्पादक मात्रा को L की ओर बढ़ायेंगे (जैसा कि चित्र में एक तीर O से L की ओर जाता हुआ दिखाता है), तथा बिन्दु B के दायी ओर 'अतिरिक्त पूर्ति कीमत' हैं (जैसे, उत्पादन के T स्तर पर अतिरिक्त पूर्ति कीमत टूटी रेखा GH के बराबर है) जिसके कारण उत्पादक मात्रा कम करेंगे और L की ओर चलन होगा (जैसा कि Q से L की ओर तीर द्वारा दिखाया गया है)। अतः बिन्दु B स्थिर साम्य का बिन्दु है। इसी प्रकार यदि हम बिन्दु C के बायें और दायें की स्थितियों को देखेंगे तो इस निष्कर्ष पर आयेंगे कि बिन्दु C भी एक स्थिर साम्य का बिन्दु है। परन्तु बिन्दु A अस्थिर साम्य की स्थिति को बनाता है। बिन्दु A के बायी ओर 'अतिरिक्त पूर्ति कीमत
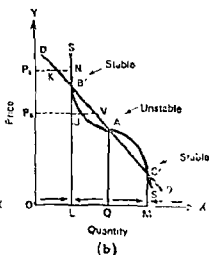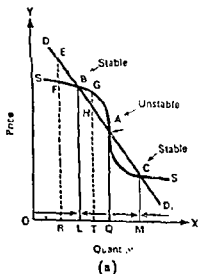
चित्र 3

है जो कि उत्पादन की मात्रा में संकुचन (contraction) करेगी, अर्थात् उत्पादन Q से दूर बायीं ओर घटेगा; बिन्दु A के दायीं ओर 'अतिरिक्त माँग की मत' होगी जो कि उत्पादन की मात्रा को Q से दूर दायीं ओर बढ़ायेगी। स्पष्ट है कि बिन्दु A अस्थिर साम्य का बिन्दु है।

अब हम चित्र 3 (b) को लेते हैं जो कि वालरस की रीति को दिखाता है। इस चित्र में बिन्दु B′ स्थिर साम्य का बिन्दु है। बिन्दु B′ के बायीं ओर 'अतिरिक्त पूर्ति' है (जैसे कि चित्र में कीमत स्तर P_1 पर अतिरिक्त पूर्ति KN है) जो कि कीमत को नीचे को B′ की ओर ढकेलेगी; बिन्दु B′ के दायें ओर 'अतिरिक्त माँग' है (जैसा कि चित्र में कीमत स्तर P_2 पर 'अतिरिक्त माँग' JV के बराबर है) जो कीमत को ऊपर को B′ की ओर ढकेलेगी। स्पष्ट है कि बिन्दु B′ स्थिर साम्य का बिन्दु है। इसी प्रकार बिन्दु C′ के बायें तथा दायें की स्थिति को देखने से पता चलेगा कि बिन्दु C′ भी एक स्थिर साम्य का बिन्दु है। बिन्दु A′ अस्थिर साम्य की स्थिति को बताता है: बिन्दु A′ के बायीं ओर 'अतिरिक्त माँग' है जो कि कीमत को A′ से दूर बायें की ओर बढ़ायेगी, बिन्दु A′ के दायें को 'अतिरिक्त पूर्ति' है जो कि कीमत को A′ से दूर दायें की ओर घटायेगी। स्पष्ट है कि बिन्दु A′ अस्थिर साम्य का बिन्दु है।

दिखने मे चित्र 3 के (a) तथा (b) एकसे लगते हैं, परन्तु उनमे अन्तर है। चित्र 3 (a) में स्थिर साम्य के बिन्दु B पर पूर्ति रेखा माँग रेखा को नीचे से काटती है तथा चित्र 3 (b) मे स्थिर साम्य बिन्दु B′ पर पूर्ति रेखा माँग रेखा को ऊपर से काटती है। इसी प्रकार का अन्तर बिन्दुओं A व A′, तथा C व C′ पर मिलेगा।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विस्तृत विवेचना के बाद हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर आते हैं:

(i) जब माँग रेखा और पूर्ति रेखा दोनों ऋणात्मक ढाल वाली होती हैं, तो मार्शल की रीति के अनुसार वह बिन्दु स्थिर साम्य का होगा जहाँ पर पूर्ति रेखा माँग रेखा को नीचे से काटती है, वालरस की रीति के अनुसार ऐसा बिन्दु अस्थिर साम्य का बिन्दु होगा; वालरस की रीति के अनुसार वह बिन्दु स्थिर साम्य का बिन्दु होगा जिस पर पूर्ति रेखा माँग रेखा को ऊपर से काटती है, मार्शल की रीति के अनुसार ऐसा बिन्दु अस्थिर साम्य का बिन्दु होगा।

(ii) हम देख चुके हैं कि जो मार्शल के अनुसार स्थिर साम्य है वह वालरस के अनुसार अस्थिर साम्य है, इन दो स्थितियों का हम किस प्रकार से सामंजस्य (reconcile) कर सकते हैं? दोनों में अन्तर समय अवधियों (time periods) का अन्तर है। वालरस का ध्यान अल्पकाल पर था जिसमें कि समायोजन का भार कीमत पर रहता है; जबकि मार्शल का ध्यान दीर्घकाल पर था जिसमें कि समायोजन का भार मात्रा पर रहता है।[5]

(iii) प्रकट रूप से इन विरोधी स्थितियों की तुलना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्पष्ट करती है कि साम्य की स्थिति को प्राप्त करने में समायोजन की प्रक्रिया को बताना कितना महत्वपूर्ण है; केवल दो स्थैतिक साम्यों की तुलना पर्याप्त नहीं है।[6]

---

5 The difference lies because of the difference in time periods. Walras was thinking of the short-period in which the burden of adjustment is upon price; whereas Marshall was thinking of the long-period in which the burden of adjustment is upon quantity.

6 "The comparison of these seemingly contradictory positions is important because it demonstrates how important it is to specify the process (of adjustment) involved in achieving an equilibrium; simply comparing two static equilibria is not enough."

परिशिष्ट 2
(APPENDIX 2)

स्थायित्व की दशाएं—2
[Stability Conditions—2]
मकड़ी-जाल प्रमेय : प्रावैगिक स्थायित्व तथा अस्थायित्व का एक सरल अध्ययन
[COBWEB THEOREM : AN ELEMENTARY ANALYSIS OF DYNAMIC STABILITY AND UNSTABILITY]

1. प्राक्कथन (Introduction)

हम जानते है कि किसी वस्तु का 'सन्तुलन मूल्य' उस वस्तु की माँग रेखा (DD) तथा पूर्ति रेखा (SS) के कटाव-बिन्दु (point of intersection) द्वारा निर्धारित होता है। जब यह सन्तुलन मूल्य एक बार स्थापित हो जाता है तो यह तब तक अपरिवर्तित (unchanged) रहेगा जब तक कि DD तथा SS रेखाएं अपरिवर्तित रहती हैं। यदि बाजार मे वास्तविक मूल्य (actual price) सन्तुलन मूल्य से भिन्न है, तो शीघ्र ही बाजार की शक्तियाँ (अर्थात् माँग व पूर्ति की शक्तियाँ) कार्य करेंगी ताकि वास्तविक मूल्य सन्तुलन मूल्य की ओर चले और शीघ्र ही सन्तुलन मूल्य के बराबर हो जाये। परन्तु वास्तविक जीवन मे सदैव ऐसा नही होता।

एक वस्तु के सतुलन-मूल्य का उपर्युक्त विवेचन स्थैतिक विश्लेषण (Static analysis) पर आधारित है। स्थैतिक विश्लेषण यह मान लेता है कि माँग मे परिवर्तनो के साथ पूर्ति शीघ्र समायोजन (instantaneous adjustment) कर लेती है[1]; अथवा स्थैतिक विश्लेषण समय की पूर्णतया उपेक्षा (ignore) करता है और केवल सन्तुलन की स्थिति पर ध्यान देता है तथा उस प्रक्रिया पर ध्यान नही देता है जिसके द्वारा सन्तुलन की स्थिति पर पहुँचा जाता है। स्थैतिक विश्लेषण 'सन्तुलन की ओर जाने की प्रवृत्ति' को भी मान लेता है; परन्तु इस प्रकार की मान्यता उचित नहीं है यदि 'समय' या 'समय-विलम्बों' (time-lags) को ध्यान मे रखा जाये। अत: जब 'समय' पर ध्यान दिया जाता है तो स्थैतिक विश्लेषण कार्य नही करता और वह अपर्याप्त (inadequate) रहता है। जब आर्थिक विश्लेषण में 'समय' या 'समय-विलम्बो' को शामिल किया जाता है तो ऐसे विश्लेषण को 'प्रावैगिक विश्लेषण' (dynamic analysis) कहा जाता है। 'मकड़ी-जाल प्रमेय या सिद्धान्त' एक सरल प्रावैगिक विश्लेषण को प्रस्तुत करता है।

2. मकड़ी-जाल प्रमेय का विचार (The Concept of Cobweb Theorem)

कृषि-उत्पादन की एक विशेषता यह है कि उत्पादन का निर्णय लेने में (अर्थात बीजो को बोने या पौधो को लगाने मे) तथा वास्तविक उत्पादन या वस्तु की पूर्ति के बाजार में प्राप्य होने के बीच कुछ 'समय-अन्तर' (time-interval) रहता है। दूसरे शब्दों में, एक कृषि-वस्तु एक समय-अवधि में (in one period) मे बोई जाती है और फसल दूसरी समय-अवधि मे तैयार होती है व

---

[1] माँग के साथ पूर्ति के शीघ्र समायोजन के लिए पूर्ण बाजार यन्त्र (perfect market mechanism) का होना आवश्यक है। इसका अर्थ है कि वस्तुओं (व सेवाओ) का निरन्तर उत्पादन होता है और 'समय-विलम्ब' (time lags) मौजूद नही होते; वस्तुओं व सेवाओ की प्राप्यता (availability) तथा कीमतो के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान होता है; तथा बाजार कीमतों के उत्तर (response) मे साधनों की पूर्ण गतिशीलता होती है। परन्तु यह वास्तविक स्थिति नही है। वास्तविक जगत मे अपूर्णताए (imperfections) होती हैं, बाजार में अपूर्णताओं के कारण सन्तुलन की ओर समायोजन का समय लम्बा हो जाता है (अर्थात् समय-विलम्ब उत्पन्न हो जाते हैं); अथवा, अपूर्णताएं सन्तुलन स्थिति से दूर जाने के चलन (movement) को उत्पन्न कर सकती हैं।

काटी जाती है [जैसे, 6 महीने या 1 साल बाद, रबर (rubber) के सम्बन्ध मे 5 साल बाद]; इस प्रकार 'उत्पादन के निर्णय मे' तथा 'वस्तु की पूर्ति के बाजार में प्राप्य होने' के बीच एक 'समय-विलम्ब' (*time-lag*) रहता है। यहाँ पर समय-विलम्ब के अभिप्राय (implications) इस प्रकार हैं। यदि किसी एक साल या एक समय-अवधि में फसल के समय पर कीमत अधिक है औसत लागत से, तो कृषक (farmers) यह आशा कर सकते हैं कि दूसरे साल या दूसरी समय-अवधि मे लगभग वही कीमत रहेगी और, परिणामस्वरूप, दूसरी साल फसल इतनी अधिक हो जाती है कि जब वह बाजार में आती है तो कीमत कम हो जाती है औसत लागत से। इसके परिणामस्वरूप, अगले वर्ष (या अगली समय-अवधि मे) उत्पादन इतना कम हो जाता है कि कीमत बढ़ती है और बढकर औसत लागत से अधिक हो जाती है; और इस प्रकार का चक्र (cycle) चलता रहता है। इस सिद्धान्त या माडल को 'मकडी-जाल सिद्धान्त' (Cobweb Theorem) या 'मकडी-जाल माडल' (Cobweb Model) कहा जाता है; यह सिद्धान्त कृषि-वस्तुओं या ऐसी वस्तुओं, जिनका उत्पादन निरन्तर (continuous) नही होता है बल्कि जिनमे 'समय-विलम्ब' (time-lag) रहता है, की कीमतों (तथा उत्पादन) में चक्रीय-चलन (cyclical movement) की व्याख्या करता है। जब 'समायोजन के रास्ते या उसकी प्रक्रिया' (path or process of adjustment) को चित्र या ग्राफ द्वारा दिखाया जाता है, तो एक मकडी-जाल की तरह का चित्र प्राप्त होता है, इसलिए इस सिद्धान्त का नाम 'मकड़ी-जाल सिद्धान्त या माडल या प्रमेय' (Cobweb Theory or Model or Theorem) पड़ गया है। अतः,

> **"मकड़ी-जाल प्रमेय प्रावैगिक (dynamic) विश्लेषण का एक सरल टुकड़ा (piece) है जो कि कीमतों में परिवर्तनों का वस्तुओं के उत्पादन पर प्रभाव को बताता है, जबकि वस्तु के उत्पादन के निर्णय और वस्तु के प्राप्य होने के बीच 'विलम्ब' अर्थात 'समय-विलम्ब' ('lag' or time-lag) होता है।[1]**

उत्पादन-प्रक्रिया (production process) के अन्तर्गत 'उत्पादन-योजनाओं' तथा उनके 'पूरा होने' के बीच समय-विलम्ब के परिणामस्वरूप—

(i) समायोजन का रास्ता सन्तुलन की स्थिति से दूर ले जा सकता है; दूसरे शब्दों मे, कीमत में परिवर्तन के कारण, माँग के साथ पूर्ति का विलम्बित समायोजन (lagged adjustment of supply to demand) **'अस्थायी उतार-चढ़ावों'** (*unstable fluctuations*) को उत्पन्न कर सकता है, अर्थात उतार-चढ़ाव बढ़ जाते हैं और सन्तुलन कीमत प्राप्त नही होती है; इस प्रकार 'अस्थायी संतुलन' (*unstable equilibrium*) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

अथवा

(ii) समायोजन का रास्ता सन्तुलन की स्थिति की ओर ले जा सकता है; अर्थात सन्तुलन-कीमत की ओर **'स्थायी उतार-चढ़ाव'** (*stable fluctuations*) प्राप्त हो सकते हैं और 'सन्तुलन कीमत' या **'स्थायी सन्तुलन'** (*stable equilibrium*) तक पहुँचा जा सकता है; परन्तु सन्तुलन की स्थिति तक पहुँचने में कई समय-अवधियाँ (several time periods) लग सकती हैं।

अथवा

(iii) समायोजन का रास्ता ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है जिसमें बाजार कीमत व मात्रा न तो सन्तुलन की ओर जाती (या converge होती) हैं और न ही 'सन्तुलन की स्थिति से दूर' जाती हैं[2]; दूसरे शब्दों में, **'तटस्थ उतार-चढ़ावों'** (*neutral fluctuations*) की स्थिति प्राप्त हो

[1] "The Cobweb Theorem is an elementary piece of dynamic analysis which demonstrates the effects of changes in price on the output of products where there is lag (or time-lag) between decision to produce and the output becoming available."

[2] "The process of adjustment may lead to a situation where market price and quantity neither converge toward nor move further away from equilibrium"

सकती है; इसका अर्थ है कि 'सन्तुलन कीमत' के चारों तरफ 'एक निश्चित आकार के उतार-चढ़ाव' (fluctuations of a given size around the position of equilibrium) होते रहते हैं, न तो सन्तुलन कीमत प्राप्त हो पाती है और न ही उतार-चढ़ाव इतने बड़े (large) होते हैं कि वे कीमत को 'सन्तुलन-कीमत' से दूर तथा और दूर करते जायें।

अतः

> "मकड़ी-जाल सिद्धान्त सन्तुलन के स्थायित्व के एक ऐसे विश्लेषण की स्थिति का नाम है जिसमें कि कीमत में परिवर्तनों के उत्तर में पूर्ति का समायोजन 'विलम्ब' (या समय-विलम्ब) के साथ होता है।"[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मकड़ी-जाल सिद्धान्त के दो उद्देश्य (*two objectives or purposes*) होते हैं—

(i) यह एक सरल प्रावैगिक सिद्धान्त या माडल है जो कि, सामान्यतया, बाजारों के स्थायित्व तथा अस्थायित्व की व्याख्या करता है। [दूसरे शब्दों में, यह माँग, पूर्ति तथा कीमत के प्रावैगिक परिवर्तनों के सरलतम माडल को बताता है।][6]

(ii) स्थायित्व दशाओं (stability conditions) के प्रावैगिक विश्लेषण के परिणामस्वरूप, मकड़ी-जाल सिद्धान्त कृषि-वस्तुओं, जिनका उत्पादन असतत (discontinuous) होता है, की कीमतों व उत्पादन में 'चक्रीय उतार-चढ़ावों' (cyclical fluctuations) की एक सरल व्याख्या प्रस्तुत करता है। [परन्तु कड़े रूप में (strictly) मकड़ी-जाल सिद्धान्त 'व्यापार-चक्रों' (business cycles) का सिद्धान्त नहीं है क्योंकि 'व्यापार-चक्रों' का सम्बन्ध 'कुल क्रिया' (total activity) से होता है न कि केवल एक क्षेत्र कृषि से।]

3. मकड़ी-जाल सिद्धान्त या प्रमेय की मान्यताएं (Assumptions of Cobweb Model or Theorem)

मकड़ी-जाल माडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

(i) बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मान ली जाती है।

(ii) माँग तथा पूर्ति रेखाएं अपरिवर्तित रहती हैं, वे अपनी स्थितियों (positions) को नहीं बदलती हैं। सुविधा के लिए यह भी मान लिया जाता है कि वे सीधी रेखाएं (straight lines or linear) होती हैं।

(iii) यह मान लिया जाता है कि उत्पादन निरन्तर (continuous) नहीं होता, अर्थात उत्पादन असतत (discontinuous) होता है; इसका अभिप्राय है कि उत्पादन यानी पूर्ति एक निश्चित समय-अन्तर (a certain time-interval) के बाद प्राप्त होती है।

यह मान लिया जाता है कि समय समान अन्तरों (equal intervals) में विभाजित होता है; जैसे 6 महीने या 1 साल, या 2 साल, इत्यादि। यहाँ पर सुविधा के लिए हमने प्रत्येक समय-अन्तर को 1 साल मान लिया है। प्रत्येक साल को 'एक समय-अवधि' (one period) कहा जा सकता है।

[उदाहरणार्थ, पहली साल को 'समय-1' (period 1), दूसरी साल को 'समय-2' (period 2), कहा जा सकता है, इत्यादि।]

[इस विचार को बताने के लिए चिह्नों (symbols) का प्रयोग भी किया जाता है। वर्तमान समय-अवधि (या साल) को t द्वारा बताया जा सकता है, तथा इसके बाद की समय-अवधियों को

---

[5] "The Cobweb Theorem is a name given to an analysis of stability of equilibrium in a situation in which supply responds to price changes with a lag (or time-lag)."

[6] It is a simple dynamic model that explains the stability and unstability of markets generally. [In other words, it povides "the simplest model of the dynamics of demand, supply and price."]

$t+1, t+2, t+3$, इत्यादि द्वारा बताया जाता है। t से पहले की समय-अवधियों को $t-1$, $t-2$, इत्यादि द्वारा बताया जाता है।]

(iv) यह मान लिया जाता है कि पूर्ति को, कीमत व माँग में परिवर्तनों के साथ, समायोजन में कुछ समय लगता है (जैसा कि कृषि-वस्तुओं के सम्बन्ध मे होता है); अर्थात 'समय-विलम्ब का विचार' (the concept of time lag) शामिल कर लिया जाता है; और इस दृष्टि से पूर्ति रेखा को एक विशेष अर्थ प्रदान किया जाता है जो कि निम्न विवरण से स्पष्ट होता है—

(a) यदि वर्तमान समय (t) की कीमत P_t है तो वर्तमान समय (t) में पूर्ति (s_t), पिछले समय (t−1) में उत्पादन के सम्बन्ध मे लिए गये निर्णयों का परिणाम होगी। इसका अर्थ है कि वर्तमान समय t की पूर्ति s_t निर्भर करती है पिछले समय (t−1) की कीमत P_{t-1} पर। चिह्नों में (in symbols),

$S_t = f\ (P_{t-1})$

[इसको हम इस प्रकार पढ़ते है : वर्तमान समय की पूर्ति s_t फंक्शन[6] है पिछले समय की कीमत P_{t-1} की]

[इस विचार को थोड़ी भिन्नता के साथ इस प्रकार भी बता सकते हैं। यदि वर्तमान समय t है और इस समय मे कीमत P_t है, तो पूर्तिकर्ता (suppliers) अगले समय (t+1) के लिए पूर्ति की मात्रा वर्तमान समय (t) मे निर्धारित करेंगे, यह मानते हुए कि वर्तमान समय की कीमत P_t ही अगले समय (t+1) मे प्रचलित रहेगी। चिह्नो मे,

$s_{t+1} = f\ (P_t)$, [अगले समय की पूर्ति S_{t+1} फंक्शन है पिछले समय की कीमत P_t की।]

(b) जब एक बार पूर्ति की योजनाएं (supply plans) बना ली जाती हैं तो वे अपरिवर्तित (unchangeable) रहती हैं; और वास्तव में पूर्ति की जाने वाली मात्रा बेच दी जायेगी चाहे जो भी कीमत मिले।

उपर्युक्त मान्यता के अन्तिम भाग का अर्थ है कि किसी समय में कीमत का समायोजन (adjustment) इस प्रकार हो जाता है कि उस समय की पूर्ति की समस्त मात्रा बिक जाती है ताकि कोई भी स्टाक या इनवेन्ट्रियाँ (stocks or inventories) नही बचती हैं।

(v) मांग रेखा का अभिप्राय या अर्थ वही रहता है जैसा कि सामान्यता लगाया जाता है। दूसरे शब्दो मे, वर्तमान समय t की माँग (D_t) निर्भर करती है वर्तमान समय की कीमत P_t पर। चिह्नों (symbols) में,

$D_t = f(P_t)$ [वर्तमान समय की माँग D_t फंक्शन है वर्तमान कीमत P_t की]

अब हम नं० (iv) व (v) की मान्यताओ को एक साथ एक जगह निम्न प्रकार से बता सकते हैं। यद्यपि S_t तथा D_t दोनों क्रमशः (respectively) वर्तमान समय t की पूर्ति तथा माँग को बताते हैं, परन्तु वे विभिन्न चरो (different variables) के फंक्शन हैं। चिह्नो मे,

$$S_t = f(P_{t-1})$$
$$D_t = f(P_t)$$

4. मकड़ी-जाल माडल के तीन प्रमापित रूप (Three Standard Forms of Cobweb Model)

बाजार में स्थायित्व की विशेषताओ को मकड़ी-जाल माडल के तीन रूपो मे व्यक्त किया जाता है[7]—

---

[6] फंक्शन (function) के लिए 'f' का प्रयोग किया है; सरल भाषा मे 'फंक्शन' का अर्थ है 'निर्भर करना' (depend on) फंक्शन के लिए हिन्दी भाषा में 'फलन' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है।

[7] "The characteristics of stability in the market are expressed in the three forms of Cobweb Model."

1. केन्द्र-अभिसरण मकड़ी-जाल माडल (Convergent Cobweb Model) अथवा परिमन्दित मकड़ी-जाल (Damped Cobweb Model)
2. केन्द्र-अपसरण मकड़ी-जाल माडल (Divergent Cobweb Model) अथवा विस्फोटक मकड़ी-जाल सिद्धान्त (Explosive Cobweb Model)
3. निरन्तर उतार-चढ़ाव वाला मकड़ी-जाल माडल (Perpetually or Continually Fluctuating Cobweb Model)[8], अथवा अ-परिमन्दित मकड़ी-जाल माडल (Non-damped Cobweb Model)

अब हम मकड़ी-जाल के तीनों माडलों की अलग-अलग विस्तृत रूप से व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

5. केन्द्र-अभिसरण अथवा परिमन्दित मकड़ी-जाल माडल (Convergent or Cobweb Model)

मकड़ी-जाल के एक माडल में कीमत (तथा उत्पादन) के, सतुलन की स्थिति के चारों तरफ, उतार-चढ़ाव (fluctuations) होते हैं; परन्तु उतार-चढ़ाव कमजोर तथा और कमजोर होते जाते हैं अथवा वे परिमन्दित (damped) हो जाते हैं, तथा अन्त मे वे बिलकुल समाप्त हो जाते और संतुलन की स्थिति प्राप्त हो जाती है; अथवा यह कहिए कि कीमत (तथा मात्रा) संतुलन की स्थिति की ओर अभिसरण (converge) कर जाते हैं। ऐसे माडल को 'केन्द्र-अभिसरण मकड़ी जाल माडल' (convergent cobweb model) या 'परिमन्दित मकड़ी-जाल माडल' (damped cobweb model) कहते हैं। दूसरे शब्दों मे, ऐसे माडल में 'केन्द्र-अभिसरण उतार-चढ़ाव' (convergent fluctuations) अथवा 'परिमन्दित उतार-चढ़ाव' (damped fluctuation) होते हैं। वास्तव में, यह माडल **'प्रावैगिक रूप से स्थायी स्थिति'** (*dynamically stable case*) को बताता है।

केन्द्र-अभिसरण मकड़ी-जाल सिद्धान्त को चित्र 1 में दिखाया गया है।
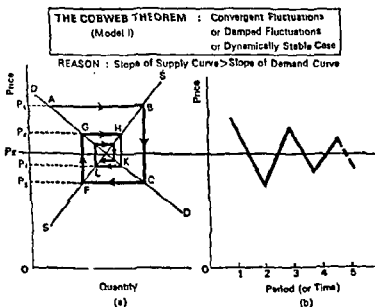
चित्र 1

[8] इसे सक्षेप मे 'निरन्तर मकड़ी-जाल सिद्धान्त' (Continuous Cobweb Model) भी कहा जाता है।

अब हम चित्र-1 के भाग (a) पर ध्यान देते हैं; माना कि वर्तमान समय या 'समय-अवधि 1' (period 1) में वस्तु की कीमत P_1 है, (जैसा कि माँग रेखा DD का बिन्दु A बताता है); यह कीमत P_1 ऊँची है संतुलन कीमत P_E से। उत्पादक यह आशा करेंगे कि कीमत P_1 अगली समय-अवधि अर्थात् 'समय अवधि 2' में भी प्रचलित रहेगी और इसीलिए वे, (समय अवधि 1 की कीमत P_1 के आधार पर), समय अवधि 2 के लिए पूर्ति B (अर्थात P_1 B) के उत्पादन की योजना बनायेंगे। जब समय अवधि 2 वास्तव में आती है, तो बाजार मे वस्तु की वास्तविक पूर्ति (actual supply) 'B' (या P_1 B) होगी, (यदि अन्य किसी प्रकार की बाधाए उत्पन्न न हों), और इस पूर्ति को बेच दिया जायेगा जो भी कीमत प्राप्त होगी। पूर्ति की मात्रा B बहुत अधिक है और इस समस्त पूर्ति B को कीमत P_2 पर बेचा जा सकेगा (जैसा कि माँग रेखा DD का बिन्दु C बताता है); यह कीमत P_2 नीची है संतुलन कीमत P_E से। अब उत्पादक यह आशा करेंगे कि कीमत P_2 समय अवधि 3 में भी प्रचलित रहेगी और इसलिए, (इस कीमत P_2 के आधार पर), वे समय अवधि 3 के लिए पूर्ति F (या P_2 F) के उत्पादन की योजना बनायेंगे। जब समय अवधि 3 वास्तव में आती है, तो बाजार में वास्तविक पूर्ति F (या P_2 F) के बराबर होगी। परन्तु यह पूर्ति F कम है और समस्त पूर्ति F को कीमत P_3 पर बेचा जा सकेगा (जैसा कि माँग रेखा DD का बिन्दु G बताता है); यह कीमत P_3 ऊँची है संतुलन कीमत P_E से; परन्तु यह कीमत P_3, समय अवधि 1 की कीमत P_1 की तुलना मे बहुत नीची है, तथा कीमत P_3 अधिक निकट है संतुलन कीमत P^E के। समय अवधि 3 की कीमत P_3 के आधार पर, उत्पादक समय अवधि 4 के लिए पूर्ति H (या P_3 H) की योजना बनायेंगे। जब समय अवधि 4 वास्तव में आती है, तो कुल पूर्ति H कीमत P_4 पर बेची जायेगी (जैसा कि माँग रेखा DD का बिन्दु K बताता है); कीमत P_4 नीची है संतुलन कीमत P_E से, परन्तु कीमत P_4 सतुलन कीमत P_E के बहुत निकट है। इस प्रकार समायोजन की प्रक्रिया (process of adjustment) चलती रहेगी (यदि किसी प्रकार की बाधाएं उत्पन्न नही होती हैं) और कीमत अन्त मे संतुलन कीमत P की ओर अभिसरण (converge) कर जाती है अर्थात सतुलन कीमत पर पहुच लिया जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि संतुलन की स्थिति तक पहुंचने के लिए 'समायोजन की प्रक्रिया' कई समय अवधियाँ (several time periods) लेती हैं। यह समायोजन की प्रक्रिया एक **'प्रावैगिक रूप से स्थायी स्थिति'** (*dynamically stable case*) को बताती है। समायोजन प्रक्रिया का रूप मकड़ी-*जाल की तरह बन जाता है (जिसका मुह केन्द्र या सतुलन की ओर होता है)* जैसा कि चित्र 1 के भाग (a) में मोटी रेखाओ व तीरो (thick lines and arrows) द्वारा दिखाया गया है।

चित्र 1 के भाग (b) में सतुलन कीमत P_E के चारो तरफ 'कीमत के उतार-चढ़ावो' को अलग से दिखाया गया है। इस चित्र से स्पष्ट है कि समय अवधियो के साथ कीमत के उतार-चढ़ाव घटते जाते हैं तथा वे संतुलन के अधिक निकट आते जाते हैं, और अन्त मे संतुलन की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

6. **केन्द्र-अपसरण अथवा विस्फोटक मकड़ी-जाल माडल** (Divergent or Explosive Cobweb Model)

मकड़ी-जाल के एक माडल में संतुलन की स्थिति के चारो तरफ कीमत (व उत्पादन) के उतार-चढ़ाव, विस्तृत (wider) तथा और अधिक विस्तृत होते जाते है, और सतुलन की स्थिति से दूर तथा और दूर होते जाते हैं; दूसरे शब्दों मे, कीमत (व उत्पादन) के उतार-चढाव संतुलन की स्थिति से दूर होते हुए विस्फोटक (explosive) होते जाते हैं। ऐसे माडल को 'केन्द्र-अपसरण या विस्फोटक मकड़ी-जाल माडल' (Divergent or Explosive Cobweb Model) कहते है। ऐसे माडल में 'केन्द्र-अपसरण उतार-चढाव' (divergent fluctuations) या 'विस्फोटक उतार-चढ़ाव' (explosive fluctuations) होते हैं। दूसरे शब्दों में, यह एक **'प्रावैगिक रूप से अस्थायी स्थिति'** (*dynamically unstable case*) को बताता है।

केन्द्र-अपसरण मकड़ी-जाल को चित्र-2 में दिखाया गया है।
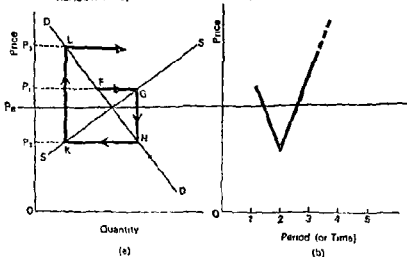
चित्र 2

अब हम चित्र 2 के भाग (a) पर ध्यान देते हैं। माना कि वर्तमान समय या 'समय अवधि 1' में वस्तु की कीमत P_1 है (जैसा कि मांग रेखा DD का बिन्दु F बताता है); कीमत P_1 ऊँची है संतुलन कीमत P_E से। उत्पादक यह आशा करेंगे कि समय अवधि 1 की कीमत P_1 ही समय अवधि 2 में प्रचलित रहेगी, और इसलिए वे समय अवधि 2 के लिए पूर्ति G (या P_1 G) के उत्पादन के लिए योजना बनायेंगे। जब समय अवधि 2 वास्तव में आती है, तो समय अवधि 2 में समस्त पूर्ति G कीमत P_2 पर बेची जायेगी (जैसा कि मांग रेखा DD का बिन्दु H बताता है); यह कीमत P_2 बहुत नीची है संतुलन कीमत P_E से। अब उत्पादक यह आशा करेंगे कि समय अवधि 2 की कीमत P_2 ही समय अवधि 3 में प्रचलित रहेगी; और इसलिए वे समय अवधि 3 के लिए पूर्ति K (या P_2 K) के उत्पादन की योजना बनायेंगे। परन्तु समय अवधि 3 में समस्त पूर्ति K कीमत P_3 पर बेची जायेगी (जैसा कि मांग रेखा DD का बिन्दु L बताता है; यह कीमत P_3 संतुलन कीमत P_E से ऊपर है और उससे बहुत दूर है। इस प्रकार समायोजन की प्रक्रिया चलती रहेगी; कीमत, संतुलन कीमत से, दूर और दूर होती (या diverge) करती जायेगी। यह समायोजन की प्रक्रिया एक 'प्रावैगिक रूप से अस्थायी स्थिति' (*dynamically unstable case*) को बताती है। यह 'समायोजन की प्रक्रिया' एक 'केन्द्र-अपसरण मकड़ी-जाले' (diverging Cobweb) का रूप धारण कर लेती है जैसा कि चित्र 2 के भाग (a) में मोटी रेखाओं व तीरों (thick lines and arrows) द्वारा दिखाया गया है।

चित्र 2 के भाग (b) में 'संतुलन कीमत' के चारों तरफ कीमत के उतार-चढ़ावों को अलग से दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि समय अवधियों के साथ, कीमत के उतार-चढ़ाव बढ़ते जाते हैं तथा वे संतुलन की स्थिति से, दूर व और दूर होते (या diverge करते) जाते हैं।

7. निरन्तर उतार-चढ़ाव वाला मकड़ी-जाल माडल (Perpetually or Continually Fluctuating Cobweb Model) अथवा 'अ-परिमन्दित' मकड़ी-जाल सिद्धान्त (Non-damped Cobweb Model)

मकड़ी-जाल के एक माडल में संतुलन की स्थिति के चारो तरफ कीमत का, ऊंचे से नीचे को, निरन्तर उतार-चढ़ाव होता रहता है (तथा उत्पादन का, नीचे से ऊचे को, निरन्तर उतार-चढ़ाव होता रहता है), परन्तु सन्तुलन की स्थिति कभी प्राप्त नहीं होती है। दूसरे शब्दों में, संतुलन की स्थिति के चारो तरफ कीमत (या मात्रा) के उतार-चढ़ाव एक समान आकार या फैलाव के होते हैं।[9] अथवा यह कहिए कि ऐसे माडल के अन्तर्गत निरन्तर उतार-चढ़ाव (perpetual or continuous fluctuations) या 'अ-परिमन्दित' उतार-चढ़ाव (non-damped fluctuations) होते हैं। ऐसे माडल को 'निरन्तर उतार-चढ़ाव वाला मकड़ी जाल' (Perpetually fluctuating Cobweb Model) या 'अ-परिमन्दित मकड़ी-जाल सिद्धान्त' (Non-damped Cobweb Model) कहते हैं। ऐसे माडल को चित्र 3 में दिखाया गया है।
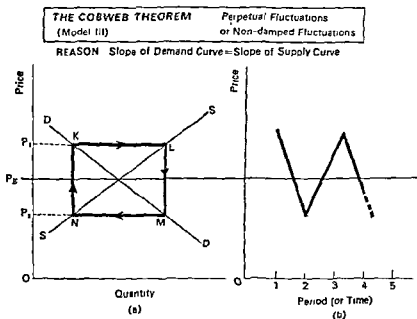
चित्र 3

अब हम चित्र 3 के भाग (a) पर ध्यान देते है। माना कि वर्तमान समय अथवा समय अवधि 1 मे कीमत P_1 है; यह कीमत संतुलन-कीमत P_g से ऊँची है। उत्पादक यह आशा करेंगे कि समय अवधि 1 की कीमत P_1 ही समय अवधि 2 मे प्रचलित रहेगी, और इसलिए वे समय अवधि 2 के लिए पूर्ति L (या P_1 L) के उत्पादन की योजना बनायेंगे। परन्तु जब समय अवधि 2 आती है तो समस्त पूर्ति L कीमत P_2 पर बेची जा सकेगी (जैसा कि माग रेखा DD का विन्दु M बताता है)। अब उत्पादक यह आशा करेंगे कि यह कीमत P_2 ही समय अवधि 3 में प्रचलित रहेगी; और इसलिए वे समय अवधि 3 के लिए पूर्ति N (या P_2 N) के उत्पादन की योजना बनायेंगे। परन्तु समय अवधि 3

[9] In one model price perpetually fluctuates around equilibrium from high to low (and output from low to high) but equilibrium is never reached. In other words, fluctuations in price (and quantity) are of constant amplitude around the equilibrium.

में समस्त पूर्ति N को कीमत P_1 पर बेचा जा सकेगा (जैसा कि मांग रेखा DD का बिन्दु K बताता है), और यह कीमत वही है जिससे कि हमने समय अवधि 1 में शुरू किया था। इस प्रकार से कीमत, संतुलन-कीमत P_E के, चारो तरफ चक्कर काटती रहती है जैसा कि चित्र 3 के भाग (a) में मोटी रेखाओं तथा तीरों द्वारा दिखाया गया है। यहां पर कीमत, संतुलन-कीमत P_E की ओर न तो अभिसरण (converge) ही करती है और न उससे अपसरण (diverge) ही करती है; वह, संतुलन-कीमत के चारों तरफ, एक समान आकार (constant amplitude) के साथ उतरती चढ़ती रहती है। चित्र 3 के भाग (b) में कीमत के उतार-चढ़ाव को अलग से दिखाया गया है।

8. मकड़ी-जाल माडल के स्थायित्व तथा अस्थायित्व का कारण (Cause of Stability and Unstability of Cobweb Model)

मकड़ी-जाल माडल का स्थायित्व निर्भर करता है मांग व पूर्ति रेखाओ के ढालों (slopes) के बीच सम्बन्ध पर—

(i) केन्द्र-अभिसरण मकड़ी-जाल (Convergent Cobweb) तब उत्पन्न होता है जबकि पूर्ति रेखा का ढाल अधिक होता है मांग रेखा के ढाल से; (ऐसी स्थिति को चित्र 1 में दिखा चुके हैं)। "इस बात का अर्थ है कि कीमत में परिवर्तनों के प्रति उत्पादकों की प्रतिक्रिया (response) सापेक्षिक रूप से कम होती है उपभोक्ताओं की तुलना में। उत्पादकों की कम प्रतिक्रिया (lesser response) अन्त मे संतुलन की स्थिति में पहुंचने मे सहयोग देती है, बशर्ते कि मांग व पूर्ति रेखाओं मे कोई परिवर्तन न हो।"[10]

(ii) केन्द्र-अपसरण मकड़ी-जाल (divergent Cobweb) तब उत्पन्न होता है जबकि मांग रेखा का ढाल अधिक होता है पूर्ति रेखा के ढाल के; (ऐसी स्थिति को चित्र 2 मे दिखाया जा चुका है)। इस बात का अर्थ है कि कीमत मे परिवर्तनों के प्रति उत्पादकों की प्रतिक्रिया अधिक होती है जो कि उच्चावचनो (fluctuations) को अधिक विस्तृत कर देती है। उपभोक्ता या क्रेता एक दी हुई कीमत पर, वस्तु की उस समस्त मात्रा को लेने को तैयार रहते हैं जिसकी कि बाजार मे पूर्ति की जाती है। परन्तु वस्तु की कितनी मात्रा की पूर्ति की जाये, इस बात का निर्णय उत्पादक करते हैं।"[11]

(iii) मकड़ी-जाल माडल के निरतर उच्चावचन (perpetual fluctuations) होते हैं जबकि पूर्ति रेखा का ढाल बराबर होता है मांग रेखा के ढाल के; (जैसा कि चित्र 3 में दिखाया जा चुका है)। इसका अर्थ है कि कीमतों में परिवर्तनों के प्रति क्रेताओ तथा उत्पादको की प्रतिक्रियाएं (responses) एक समान (identical) होती हैं।

9. मकड़ी-जाल माडल की सीमाएं अथवा आलोचनाएं (Limitations or Criticism of Cobweb Model)

मकड़ी-जाल सिद्धान्त की मुख्य आलोचना या सीमा है कि यह अत्यन्त सरल है क्योंकि इसकी मान्यताएं अवास्तविक (unrealistic) हैं—(अ) यह मान लेता है कि पूर्ति योजनाएं (supply plans) सदैव पूरी हो जाती हैं, अर्थात् 'नियोजित पूर्ति' (planned supply) बराबर हो जाती है

---

10 "This means that the producers respond less, relatively speaking, to changes in price than do the consumers. The producers' lesser response causes equilibrium eventually to be reached, provided of course that the demand and supply curves stay put."

11 "The producers' greater responsiveness to price causes widening fluctuations. The buyers, always take, at a price, whatever quantity is put on the market. But the producers' decide what the quantity is to be."

'वास्तविक पूर्ति' (actual supply) के। (ब) यह मान लेता है कि एक समयावधि में नियोजित पूर्ति निर्भर करती है पिछली समय अवधि की कीमत पर; तथा बाजार कीमत सदैव वर्तमान पूर्ति को वर्तमान माँग के बराबर कर देती है।

परन्तु उपर्युक्त सरल मान्यताएं वास्तविक जीवन में प्राय: पूरी नहीं होती हैं—

(i) वास्तविक जगत मे प्राय: 'वास्तविक पूर्ति' (actual supply) 'नियोजित पूर्ति' (planned supply) के बराबर नही होती। उदाहरणार्थ, वास्तविक पूर्ति अनियन्त्रित (uncontrolled) बातों, जैसे खराब मौसम की दशाओं के कारण, नियोजित पूर्ति से कम हो सकती है; अथवा अच्छे मौसम की दशाओं के कारण वास्तविक पूर्ति अधिक हो सकती है नियोजित पूर्ति से।

(ii) यह आवश्यक नही है कि बाजार की कीमत ऐसी हो जो कि सदैव वर्तमान पूर्ति को वर्तमान माँग के बराबर करे। उपज मे परिवर्तन के कारण वस्तु की अतिरिक्त मात्रा (surplus) को, तत्काल बाजार मे बेचने के लिए न लाकर 'बफर-स्टाक' (buffer stock) का निर्माण करने की दृष्टि से इकट्ठा या स्टोर (store) किया जा सकता है। इसी प्रकार किसी समय पर पूर्ति की कमी को पूरा किया जा सकता है वस्तु को 'बफर स्टाक' में से निकाल कर बाजार मे बेचने से।

(iii) वास्तविक जीवन में इस बात की सम्भावना होती है कि उत्पादक 'अनुभव' (experience) से सीखते हैं; जबकि मकड़ी-जाल सिद्धान्त का अभिप्राय है कि उत्पादक अनुभव से बिलकुल नही सीखते। यदि कृषक या उत्पादक पिछले अनुभव से सीखते हैं तो 'नियोजित पूर्ति' केवल पिछली कीमतो पर ही निर्भर नही करेगी बल्कि वह इस बात पर भी निर्भर करेगी कि उत्पादक भविष्य में क्या आशा करते हैं। उदाहरणार्थ, अस्थायी मकड़ी-जाल माडल (unstable coweb model) बताता है कि उच्चावचन अधिक तथा और अधिक होते जाते है; परन्तु वास्तविक बाजार में यदि कीमतें बहुत नीची या बहुत ऊँची हो जाती हैं, तो व्यापारी या उत्पादक अपने व्यवहार मे परिवर्तन करेंगे। इस प्रकार यह सम्भव है कि विस्फोटक उच्चावचन (explosive fluctuations) उत्पन्न न हो।[12]

10. निष्कर्ष (Conclusion)

1. हमें यह नही भूलना चाहिए कि मकड़ी-जाल सिद्धान्त प्रावैगिक विश्लेषण (dynamic analysis) का केवल एक सरल टुकड़ा (simple piece) है। यद्यपि यह बहुत सरल है, परन्तु फिर भी यह बाजार के प्रावैगिक स्थायित्व या अस्थायित्व के समझने मे सहयोग या एक अन्तर्दृष्टि (*insight*) प्रदान करता है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध मे मकड़ी-जाल सिद्धान्त मोटे रूप से (roughly) लागू होता है, अथवा समझने के लिए एक मोटी रूपरेखा (rough outline) प्रस्तुत करता है।
2. मकड़ी-जाल सिद्धान्त बताता है कि कुछ स्थितियो मे (अर्थात जब पूर्ति रेखा का ढाल अधिक होता है माँग रेखा के ढाल से), बाजार मे सन्तुलन की स्थिति वास्तव मे

[12] If farmers or producers learn from past experience then planned supply would not depend soley on past prices but also on what producers expected to happen in the future. For example, the unstable or explosive cobweb model shows price fluctuations becoming larger and larger but, in a real market, if prices become extremely low or extremely high, traders or producers would change their behaviour. And, thus, explosive fluctuations may not occur.

प्राप्त हो जाती है, परन्तु 'समायोजन की प्रक्रिया' को कई समयावधियाँ लग जाती हैं सन्तुलन तक पहुँचने में।[13]

3. मकड़ी-जाल सिद्धान्त इस बात को बिलकुल स्पष्ट करता है कि बाजार के स्थायित्व का विश्लेषण, बिना प्रावैगिक विश्लेषण (dynamic analysis) के नहीं किया जा सकता; अर्थात बाजार के स्थायित्व को जानने के लिए यह जरूरी है कि कीमत व उत्पादन में 'समायोजन की प्रक्रिया' अथवा 'समय-रास्ते' (time path) की जानकारी प्राप्त की जाये। मार्शल तथा वालरस दोनों के अनुसार एक बाजार स्थायित्व की दशा में होगा यदि माँग और पूर्ति रेखाओं की शक्लें सामान्य (normal) हैं (अर्थात माँग रेखा नीचे को गिरती हुई तथा पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होती है)।[14] मकड़ी-जाल सिद्धान्त के अन्तर्गत माँग व पूर्ति रेखाओं की शक्लें सामान्य (normal) होती हैं, परन्तु फिर भी एक स्थिति में 'स्थायी सन्तुलन' (stable equilibrium) हो सकता है, तथा दूसरी स्थिति या दशाओं में अस्थायी सन्तुलन हो सकता है। अतः स्थायित्व की स्थिति (condition of stability) का उचित विश्लेषण केवल 'प्रावैगिक विश्लेषण' (dynamic analysis) द्वारा ही सम्भव है, जैसा कि मकड़ी-जाल सिद्धान्त स्पष्ट करता है।

प्रश्न

1. साम्य से आप क्या समझते हैं ? आंशिक और सामान्य साम्यों के विचारों की व्याख्या कीजिए तथा आर्थिक विश्लेषण में उनके महत्त्व को बताइए।
   What do you understand by equilibrium ? Explain the concepts of partial and general equilibria and indicate their importance in economic analysis.
2. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए :
   (अ) 'स्थिर', 'अस्थिर' तथा 'तटस्थ' साम्य।
   (ब) 'एकाकी' तथा 'अनेक तत्त्वीय' साम्य।
   अपने उत्तर को चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।
   Explain the following :
   (a) Stable, Unstable and Neutral equilibria.
   (b) Unique and Multiple equilibria.
   Illustrate your answer with the help of diagrams.
3. अर्थशास्त्र में साम्य के अर्थ तथा महत्त्व को बताइए। स्थिर या स्थायी साम्य, तटस्थ साम्य तथा अस्थायी साम्य के बीच सावधानीपूर्वक अन्तर स्पष्ट कीजिए।
   Explain the meaning and import nce of equilibrium in Economics. Carefully distinguish among stable equilibrium, neutral equilibrium and unstable equilibrium.

---

[13] The Cobweb Model shows that under certain circumstances (i.e. when the slope of supply curve is greater than that of demand curve), equilibrium is actually achieved in the market; but the process of adjustment may take several periods to reach the equilibrium.

[14] अर्थात, ऐसी माँग व पूर्ति रेखाओं का कटाव-बिन्दु, मार्शल तथा वालरस दोनों के अनुसार, स्थायी सन्तुलन को बतायेगा।

4. "अर्थशास्त्र का विज्ञान असंतुलन की स्थिति को मानकर चलता है परन्तु साथ ही साथ वह संतुलन (या साम्य) की स्थिति को प्राप्त करने की प्रवृत्ति को भी मानता है।" इस कथन पर टीका (comment) कीजिए तथा संतुलन (या साम्य) के विचार को स्पष्ट कीजिए।
   "The science of Economics presupposes a state of disequilibrium but a tendency to attain the position of equilibrium." Comment on the above statement and clarify the concept of equilibrium. (Lucknow)
   [संकेत—प्रश्न के प्रथम भाग के उत्तर बताइए अर्थशास्त्र यह मानता है कि वास्तविक जीवन मे असंतुलन की स्थिति पायी जाती है न कि सतुलन (या साम्य) की स्थिति, परन्तु अर्थ-व्यवस्था या आर्थिक इकाइयो की प्रवृत्ति सतुलन (या साम्य) की स्थिति पर पहुचने की होती है; इसके लिए 'साम्य का महत्व' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत सम्बन्धित (relevant) विषय-सामग्री लीजिए। दूसरे भाग के उत्तर मे साम्य के अर्थ को स्पष्ट कीजिए, इसके लिए 'साम्य का अर्थ' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री लीजिए।]
5. स्थिर (या स्थायी) तथा अस्थिर (या अस्थायी) साम्यो के सम्बन्ध मे मार्शल तथा वालरस के विचारों की पूर्ण विवेचना कीजिए।
   Discuss fully the views of Marshall and Walras on stable and unstable equilibria.

   अथवा

   साम्य (या संतुलन) के स्थायित्व के सम्बन्ध में—
   (अ) मार्शल का विश्लेषण, जिसे कभी-कभी 'कीमत-निर्भरता रीति' कहते है, साम्य तक पहुँचने के लिए निर्भर करता है 'मात्रा की गतियो' पर।
   (ब) वालरस का विश्लेषण, जिसे कभी-कभी 'मात्रा-निर्भरता रीति' कहते हैं, साम्य तक पहुँचने के लिए निर्भर करता है 'कीमत की गतियों' पर।
   उपर्युक्त दृष्टिकोणों की पूर्ण विवेचना कीजिए।
   In the context of the analysis of stability of equilibrium—
   (a) Marshallian approach, sometimes called as '*price dependent approach*', depends on the 'movements of quantity' to reach equilibrium.
   (b) Walrasian approach, sometimes called as '*quantity dependent approach*' depends on the 'movements of price' to reach equilibrium.
   Discuss fully the above two approaches.
   [संकेत—इन दोनो प्रश्नों के उत्तर एक समान ही हैं, इनके उत्तर के लिए इस अध्याय के परिशिष्ट I को देखिए।]
6. मकड़ी-जाल प्रमेय की व्याख्या कीजिए, यह कीमत व उत्पादन मे किस प्रकार के उच्चावचनों (fluctuations) की व्याख्या करता है। इसकी सीमाओ को बताइए।
   Explain 'Cobweb theorem' indicating the type of price and output fluctuations which it can explain. Indicate its limitations.

   अथवा

   मकड़ी-जाल प्रमेय की सहायता से यह बताइए कि सभी बाजार स्थायी संतुलन की ओर जाने की प्रवृत्ति नही रखते, बाजार शक्तियाँ ऐसे उच्चावचनो को उत्पन्न करने के योग्य होती हैं जो कि संतुलन की ओर जाने की कोई प्रवृत्ति नही रखती।
   Show with the help of Cobweb Theorem that not all markets tend to a stable equilibrium; market forces are capable of producing fluctuations which have no tendency to equilibrium.

अथवा

'मकड़ी-जाल प्रमेय संतुलन के स्थायित्व का एक सरल प्रावैगिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।' इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

'Cobweb theorem provides an elementary dynamic analysis of stability of equilibrium.' Explain this statement critically

अथवा

संतुलन के स्थायित्व की समस्या पर मकडी-जाल सिद्धान्त क्या प्रकाश डालता है ?

What light does the Cobweb theorem throw on the problems of the stability of equilibrium ?

अथवा

"ऊपर को चढ़ती हुई पूर्ति रेखा तथा नीचे को गिरती हुई मांग रेखा की सामान्य स्थिति के सम्बन्ध मे मार्शल तथा वालरस दोनो इस बात से सहमत थे कि ऐसी स्थिति एक 'स्थायी संतुलन' की स्थिति है, परन्तु प्रावैगिक विचार या विश्लेषण, जैसे कि मकड़ी-जाल सिद्धान्त मे उत्पादन-विलम्ब सतुलन के अस्थायित्व तथा अपूर्ण समायोजन को उत्पन्न कर सकता है।" इस कथन के सदर्भ मे मकड़ी-जाल सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

"In the normal case of a positively sloping supply curve and negatively sloping demand curve, both Marshall and Walras agreed, this was a case of stable equilibrium, dynamic considerations such as the production lag in the Cobweb case may cause instability and imperfect adjustment to equilibrium." In the light of this remark discuss critically the Cobweb Theorem.

अथवा

'अपने मोटे रूप में मकड़ी-जाल प्रमेय का प्रयोग भविष्यवाणी करने के लिए नहीं किया जा सकता है, जब तक कि उत्पादक अनुभव से सीखने के लिए अयोग्य हों।' इस कथन के सन्दर्भ में मकडी-जाल सिद्धान्त की विवेचना, उसकी मान्यताओ व सीमाओं को बताते हुए, कीजिए।

'The Cobweb Theorem in its crude form cannot be used to make predictions unless the producers are incapable of learning from experience.' In the light of above remark discuss the Cobweb theorem indicating its assumptions and limitations.

[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर एकसमान है, इनके उत्तर मे मकडी-जाल सिद्धान्त की पूर्ण विवेचना, आलोचना सहित कीजिए, देखिए इस अध्याय की परिशिष्ट 2 को।]

7. सतुलन (या साम्य) को परिभाषित कीजिए तथा प्रावैगिक सतुलन के स्थायित्व की दशाओं को बताइए।

Define equilibrium and state the conditions of stability of dynamic equilibrium.

[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर मे, संक्षेप मे संतुलन के अर्थ को बताइए। दूसरे भाग के उत्तर मे, मकड़ी-जाल सिद्धान्त की सहायता से प्रावैगिक सतुलन की दशाओं को बताइए, देखिए परिशिष्ट 2 को।]

8. सतुलन को परिभाषित कीजिए तथा मकडी-जाल प्रमेय की सहायता से यह बताइए कि दी हुई दशाओं के अन्तर्गत व्यवहार मे सतुलन वास्तव मे प्राप्त किया जा सकता है।

Define equilibrium and show with the help of the cobweb theorem that under given conditions equilibrium can actually be achieved in practice.

अथवा

संतुलन को परिभाषित कीजिए तथा उचित चित्रों की सहायता से यह बताइए कि वास्तविक जगत में समय-समय पर प्रावैगिक साम्य वास्तव में प्राप्त हो जाता है।

Define equilibrium and show, with the help of suitable diagrams, that dynamic equilibrium is actually achieved in the real world from time to time.

[संकेत—इन दोनों प्रश्नों का उत्तर एक ही है। प्रथम भाग के उत्तर मे साम्य के अर्थ को संक्षेप में बताइए। दूसरे भाग में मकड़ी-जाल सिद्धान्त की चित्रों की सहायता से विवेचना कीजिए; मकड़ी-जाल सिद्धान्त का केन्द्र-अभिसरण माडल (convergent model) इस बात को स्पष्ट करता है कि वास्तविक जीवन में प्रावैगिक संतुलन या साम्य प्राप्त किया जा सकता है, यद्यपि संतुलन तक पहुँचने में कई समयावधियाँ लग सकती हैं जैसा कि समायोजन की प्रक्रिया बताती हैं; इसके लिए परिशिष्ट 2 देखिए।]

9. (अ) संतुलन को परिभाषित कीजिए और स्थैतिक व प्रावैगिक संतुलन के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
   (ब) सिद्ध कीजिए कि व्यवहार मे समय-समय पर संतुलन स्थापित हो सकता है।
   (स) व्यावहारिक जीवन में संतुलन के विचार के प्रयोग को बताइए।
   (a) Define equilibrium and explain the difference between static and dynamic equilibrium.
   (b) Prove that equilibrium is capable of being achieved in actual practice.
   (c) Show the use of the concept of equilibrium in actual practice.

[संकेत—प्रश्न के (अ) भाग के उत्तर में संतुलन या साम्य के अर्थ व परिभाषा को दीजिए तथा स्थैतिक व प्रावैगिक साम्य के बीच अन्तर को बताइए। भाग (ब) के उत्तर में मकड़ी-जाल सिद्धान्त के केन्द्र-अभिसरण माडल (convergent model) की सहायता से स्पष्ट कीजिए कि व्यवहार में साम्य प्राप्त किया जा सकता है, यद्यपि साम्य तक पहुँचने में कई समयावधियाँ लग सकती हैं जैसा कि समायोजन की प्रक्रिया द्वारा स्पष्ट होता है, कारण भी बताइए; परिशिष्ट 2 देखिए। भाग (स) के उत्तर में साम्य के महत्व को बताइए।]

खण्ड 2
उपभोक्ता माँग का सिद्धान्त
(Theory of Consumer Demand)

10

उपयोगिता विश्लेषण–1
(Utility Analysis–1)

उपयोगिता, उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम
(Utility, Law of Diminishing Utility and Law of Equi-Marginal Utility)

उपयोगिता का अर्थ (Meaning of Utility)

वस्तु की वह शक्ति, गुण या क्षमता (power, quality or capacity) जिससे किसी व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, की जा सकती है, उपयोगिता कहलाती है। संक्षेप में, अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की 'आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति' (Want satisfying power) को उपयोगिता कहते हैं।

उपयोगिता की उपर्युक्त परिभाषा को पूर्णरूप से समझने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(1) 'आवश्यकता-पूर्ति' की शक्ति के दो अभिप्राय (implications) हो सकते हैं—(i) 'सन्तुष्टि प्रदान करने की क्षमता' (capacity to give satisfaction) या 'अनुमानित सन्तुष्टि' (expected satisfaction), (ii) वस्तु का प्रयोग कर लेने के बाद जो सन्तुष्टि प्राप्त होती है अर्थात् 'वास्तविक सन्तुष्टि' (realised satisfaction), इसे कुछ अर्थशास्त्री 'सन्तोषजनकता' (satisfyingness) भी कहते हैं। 'अनुमानित सन्तुष्टि' वास्तविक सन्तुष्टि से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकती है। अतः प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों में से किसको उपयोगिता की परिभाषा के अन्तर्गत माना जाये।

आधुनिक अर्थशास्त्री, सामान्यतया, उपयोगिता का अर्थ अधिक विस्तृत विचार 'अनुमानित सन्तुष्टि' (expected satisfaction) से लेते हैं। 'अनुमानित सन्तुष्टि' इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है, वस्तु के लिए इच्छा जितनी तीव्र होगी उतनी ही अधिक उससे सन्तुष्टि मिलने का अनुमान या आशा होगी। इसलिए 'अनुमानित सन्तुष्टि' (expected satisfaction) के स्थान पर 'इच्छा की तीव्रता' (intensity of desire) या केवल 'इच्छा करना' (desiredness) के शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। अत फ्रेजर (Fraser) के अनुसार उपयोगिता का अर्थ 'इच्छा करने' (desiredness) से लिया जाता है न कि 'सन्तोषजनकता' (satisfyingness) से।"[1]

(2) अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ 'लाभदायकता (usefulness) या नैतिक विचारों (moral or ethical considerations) से सम्बन्धित नहीं होता। वस्तु की आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति' ही उपयोगिता है चाहे वस्तु लाभदायक हो या हानिकारक। शराब जैसी हानिकारक वस्तु

[1] "On the whole, in recent years, the wider definition is preferred and utility is identified with 'desiredness' rather than with satisfyingness." —Fraser

या विष जैसी घातक वस्तु भी उपयोगिता रखती है क्योंकि इनसे मनुष्य विशेष की आवश्यकता की पूर्ति होती है।[2]

(3) उपयोगिता केवल वस्तुगत (objective) ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत (subjective) तथा सापेक्षिक (relative) होती है। वस्तु विशेष के केवल आन्तरिक गुण को उपयोगिता कहना पर्याप्त नहीं है। उदाहरणार्थ, एक प्यासे व्यक्ति के लिए पानी उपयोगी है, दूसरे व्यक्ति के लिए जो प्यासा नहीं है, पानी उपयोगी नहीं है। दूसरे शब्दों मे, उपयोगिता व्यक्ति विशेष की इच्छा की तीव्रता पर, उसकी रुचि, आदत, फैशन तथा परिस्थितियों पर निर्भर करती है। उपयोगिता व्यक्तिगत व सापेक्षिक होने के कारण, व्यक्ति-व्यक्ति के साथ परिवर्तित होती रहती है। इतना ही नहीं, एक व्यक्ति के लिए उपयोगिता भिन्न-भिन्न समय पर बदलती रहती है; उदाहरणार्थ, कम्बल एक व्यक्ति के लिए सर्दी मे उपयोगी है परन्तु उसी व्यक्ति के लिए गर्मी मे नहीं है।

संक्षेप मे उपयोगिता का अर्थ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

उपयोगिता न तो लाभदायकता को और न तृप्ति को बताती है बल्कि किसी वस्तु के लिए इच्छा की तीव्रता को बताती है। प्रो. फ्रेजर (Fraser) के शब्दों में, यह केवल इच्छा करना (desiredness) है।[3]

क्या उपयोगिता एक गणनावाचक विचार है या क्रमवाचक विचार ?
(IS UTILITY AN ORDINAL OR A CARDINAL CONCEPT ?)
अथवा
क्या उपयोगिता को मापा जा सकता है ?
(CAN UTILITY BE MEASURED ?)

उपयोगिता के मापन (quantitive measurement) के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में दो दृष्टिकोण है—(1) गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach); तथा (2) क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach)। आगे हम इन दोनों दृष्टिकोणों का विवेचन करते हैं।

गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal approach)—यद्यपि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है, परन्तु मार्शल तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयोगिता को मोटे रूप से द्रव्य रूपी पैमाने द्वारा मापा जा सकता है। एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए उतनी कीमत देना चाहेगा जितनी कि उससे उपयोगिता मिलती है। दूसरे शब्दों मे, **किसी वस्तु के लिए दी जाने वाली कीमत मोटे रूप से उस वस्तु की उपयोगिता का माप है।** उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति फाउण्टेन पैन के लिए 4 रुपये देने को तत्पर है, तो उसके लिए पैन की उपयोगिता 4 रुपये के बराबर है।

इस प्रकार उपयोगिता मापनीय (measurable) है। इस दृष्टिकोण को **'गणनावाचक दृष्टिकोण'** कहते हैं तथा इस दृष्टिकोण या विचारधारा के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को **'गणनावाचक अर्थशास्त्री'** (Cardinalists) कहा जाता है। 1, 2, 3, 4, इत्यादि संख्याओं को 'गणनावाचक संख्याएँ' (Cardinal numbers) कहा जाता है। यह संख्याएँ बताती हैं कि 4 दुगुना बड़ा है 2 से, *इन दोनों का निरपेक्ष अन्तर (absolute difference) 2 है,* **तथा इनका जोड़ 6 है।** **'गणनावाचक दृष्टिकोण' के अनुसार उपयोगिताओं को 'गणनावाचक संख्याएं' प्रदान (assign) की जा**

---

[2] किसी वस्तु की इच्छा (desire) की जाती है, केवल यही बात उस वस्तु को उपयोगिता से आभूषित (invest) करने के लिए पर्याप्त है, चाहे वह वस्तु अहितकर हो या लाभदायक।

[3] "Utility signifies not 'usefulness', nor 'satisfaction', but the intensity of desire for a thing." In the words of Fraser, "It is simply desiredness"

सकती हैं, जैसे किसी वस्तु की पहली इकाई से 6 इकाई (अर्थात् 6 पैसे या 6 रुपये, इत्यादि)[1] के बराबर उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरी इकाई से 4 के बराबर तथा तीसरी इकाई से 2 के बराबर; इस प्रकार वस्तु की तीन इकाइयों से 12 इकाई के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। अतः वस्तु विशेष की तीन इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता को गणनावाचक संख्या 12 प्रदान की जा सकती है; दूसरे शब्दों में, उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) किया जा सकता है। चूंकि उपयोगिताओं को गणनावाचक संख्याएँ (cardinal numbers) प्रदान की जाती हैं, इसलिए इस दृष्टिकोण को 'गणनावाचक दृष्टिकोण' (Cardinal Approach) या 'गणनावाचक उपयोगिता दृष्टिकोण' (Cardinal Utility Approach) या केवल 'गणनावाचक उपयोगिता' (Cardinal Utility) कहते हैं।

क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal approach)—परन्तु कुछ अर्थशास्त्री जैसे, पेरिटो (Pareto), ऐलन (Allen), हिक्स (Hicks) इत्यादि मार्शल के विचार से सहमत नहीं हैं; उनका कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता है। इसके वे निम्न कारण बताते हैं :

(1) उपयोगिता का अर्थ चाहे सन्तुष्टि से लिया जाये या इच्छा की तीव्रता से, दोनों ही मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिगत (subjective) विचार हैं जिन्हें किसी वस्तुगत पैमाने (objective standard) से नहीं मापा जा सकता है।

(2) उपयोगिता केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ ही भिन्न-भिन्न नहीं होती, बल्कि यदि एक ही व्यक्ति लिया जाये तो भी भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया (reaction) होगी। अतः उपयोगिता हर समय बदलती रहती है, और ऐसी वस्तु को, जो कि हर समय बदलती रहती है, कैसे मापा जा सकता है।

(3) उपयोगिता को मापने के लिए कोई निश्चित तथा स्थिर (constant) पैमाना नहीं यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, परन्तु द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं होता, वह बदलता रहता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण हिक्स का कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता और इसलिए उन्होंने उपयोगिता विश्लेषण (Utility-Analysis) के स्थान पर 'तटस्थता वक्र विश्लेषण' (Indifference-Curve Analysis) को नवीन रीति निकाली जिसमें उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं है। (तटस्थता वक्र विश्लेषण के लिए अध्याय 12 देखिए।)

इस दृष्टिकोण को 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' (Ordinal Approach) कहते हैं तथा इस दृष्टिकोण या विचारधारा के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को 'क्रमवाचक अर्थशास्त्री' (Ordinalists) कहा जाता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि (first, second, third, and so on) को "क्रमवाचक संख्याएँ, (Ordinal numbers) कहा जाता है। ये संख्याएं निरपेक्ष अन्तर (absolute difference) के सम्बन्ध में कुछ नहीं बताती और न इनको जोड़ा ही जा सकता है। ये केवल इस बात को बताती हैं कि द्वितीय प्रथम से अधिक है या तृतीय द्वितीय से अधिक है परन्तु उनमें कितना निरपेक्ष अन्तर है इसको नहीं जाना जा सकता। (इसके विपरीत 'गणनावाचक संख्याएँ' निरपेक्ष अन्तर को बताती हैं।)

"यह विचारधारा (view) गणनावाचक मात्राओं (cardinal quantities) के विचार का ही अस्वीकार करती है। इसके अनुसार उपयोगिताओं को केवल 'क्रमवाचक संख्याएँ (Ordinal numbers) ही प्रदान (assign) की जा सकती हैं। उपयोगिताओं को एक क्रम (order) में व्यवस्थित (arrange) किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, प्रथम, द्वितीय, इत्यादि। परन्तु उनको संख्या-

---

[1] कुछ अर्थशास्त्री उपयोगिता की इकाई को Util के नाम से पुकारते हैं; उदाहरणार्थ उपयोगिता की 6 इकाई को वे 6 Utils कहेंगे।

त्मक माता या परिमाण (numerical magnitude) प्रदान नहीं किया जा सकता। एक कमीज की उपयोगिता सेब की तुलना में अधिक हो सकती है, परन्तु एक व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि कमीज की उपयोगिता कितनी अधिक है। क्रमवाचक दृष्टिकोण के लिए उपयोगिता की 'इकाई' (unit) का कोई अर्थ नहीं होता। जब व्यक्ति वस्तुओं का मूल्यांकन करते हैं, तो वे उनको मूल्य या महत्त्व के एक क्रम में व्यवस्थित करते हैं, वे उनको गणनावाचक संख्याएँ प्रदान नहीं करते।"[5] चूंकि उपयोगिताओं को क्रमवाचक सख्याएँ प्रदान की जाती हैं, इसलिए इस दृष्टिकोण को 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' (Ordinal Approach) या 'क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण' (Ordinal Utility Approach) या केवल 'क्रमवाचक उपयोगिता' (Ordinal Utility) कहते हैं।

निष्कर्ष—यद्यपि 'गणनावाचक दृष्टिकोण' पुराना मत है, परन्तु इसका अभी बिलकुल अन्त नहीं हुआ है। 'गणनावाचक अर्थशास्त्रियों' तथा 'क्रमवाचक अर्थशास्त्रियों' में अभी तक विवाद चल रहा है। परन्तु सामान्यतया आधुनिक अर्थशास्त्री 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' को मान्यता देते हैं और इनके अनुसार उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) नहीं बल्कि क्रमवाचक विचार (ordinal concept) है।

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता
(MARGINAL UTILITY AND TOTAL UTILITY)

सीमान्त उपयोगिता का अर्थ—किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) के प्रयोग से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, **"वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता में वृद्धि है जो कि उपभोग में एक और इकाई के परिणामस्वरूप होती है।"**[6]

सीमान्त उपयोगिता को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

रोटियों की संख्या	सीमान्त उपयोगिता		कुल उपयोगिता
1	4	Positive Utility	4
2	3		7
3	2		9
4	1		10
5	0	Zero Utility	10→पूर्ण तृप्ति का बिन्दु
6	—2	Negative Utility	8 (Point of Satiety)

उपर्युक्त उदाहरण में माना कि उपभोक्ता 3 रोटियों का उपभोग करता है तो उसको कुल उपयोगिता 9 इकाइयों के बराबर मिलती है। यदि वह एक और रोटी (अर्थात् चौथी रोटी) का

---

[5] "The view (i. e ordinal approach) denies the very notion of cardinal quantities of utility. The only numbers that can be assigned to utilities are ordinal numbers Utilities can be arranged in *order* for example, first, second, and so on. They cannot however be assigned numerical magnitude A shirt may be said to have greater utility than an apple; one may not say *how many times* the utility of the shirt is greater. A 'Unit' of utility has no meaning for the ordinal approach When men value goods, they arrange them in order of value, they do not attach cardinal number to them "

[6] "The marginal utility of any quantity of a commodity is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption." —*Boulding*

उपभोग करता है तो कुल उपयोगिता बढ़ कर 10 इकाइयों के बराबर हो जाती है अर्थात् कुल उपयोगिता में वृद्धि एक इकाई के बराबर होती है। अतः 4 रोटियों की सीमान्त उपयोगिता एक इकाई के बराबर हुई। दूसरे शब्दों में,

चित्र—1

सीमान्त उपयोगिता 'कुल उपयोगिता में परिवर्तन' को बताती है।

उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि 4 रोटियों तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक (positive) है; अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता कम हो जाती है और 5वीं रोटी के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता शून्य (Zero) हो जाती है, इस स्थान पर कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है। इसलिए इस बिन्दु को पूर्ण तृप्ति का बिन्दु (point of satiety) कहते है। यदि 5वी रोटी के बाद और रोटियो का प्रयोग किया जाता है तो अनुपयोगिता होने लगती है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (Negative) होने लगती है। व्यवहार मे उपभोक्ता सामान्यतया 5 रोटियो के बाद और रोटियो का उपभोग करना पसन्द नही करेगा। सीमान्त उपयोगिता रेखा (Marginal Utility Line) को चित्र नं. 1 में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है और 5वीं रोटी पर शून्य हो जाती है तथा इसके बाद और रोटियो के प्रयोग से ऋणात्मक हो जाती है।
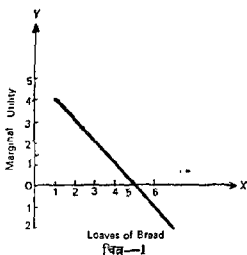
कुल उपयोगिता का अर्थ—प्रो. मेयर्स (Meyers) के अनुसार, कुल उपयोगिता सन्तुष्टि की यह मात्रा है जो कि वस्तु की निश्चित मात्रा के उपभोग से या उसके स्वामित्व से प्राप्त होती है।[7] दूसरे शब्दो में, वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं। मेयर्स (Meyers) के शब्दो में "किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों के उपभोग के परिणामस्वरूप प्राप्त सीमान्त उपयोगिताओं का योग कुल उपयोगिता है।"[8]

रोटियो के उदाहरण से स्पष्ट है कि (i) जैसे-जैसे रोटियों की उत्तरोत्तर इकाइयो का प्रयोग किया जाता है, कुल उपयोगिता बढ़ती है परन्तु यह घटती हुई दर से बढ़ती है 2 रोटियो के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता 3 से बढ़ी, 3 रोटियो के प्रयोग करने से वह 2 से बढ़ी, 4 रोटियो के प्रयोग करने से वह 1 से बढ़ी, इस प्रकार कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है। (ii) 5 रोटियो के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता है और उपभोक्ता को अधिकतम कुल उपयोगिता मिलती है, इसलिए इस बिन्दु को 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (point of satiety) कहते हैं। (iii) 5वी रोटी के बाद यदि और रोटियो का प्रयोग किया जाता है तो अतिरिक्त (additional) रोटियो से ऋणात्मक उपयोगिता मिलने लगती है इसलिए कुल उपयोगिता घटने लगती है।

---

[7] "Total utility is the amount of satisfaction derived from the consumption or possession of a good." —*A. L. Meyers*

[8] "Total utility is the sum of the marginal utilities associated with the consumption of the successive units." —*A. L. Meyers*

चित्र नं. 2 मे कुल उपयोगिता को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है, रोटियो की उत्तरोत्तर इकाइयो के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि होती है, 5वी रोटी पर कुल उपयोगिता का बढना बन्द होता है और उसे अधिकतम कुल उपयोगिता प्राप्त होती है, तत्पश्चात कुल उपयोगिता गिरने लगती है।
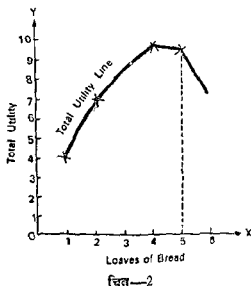
चित्र—2

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता में सम्बन्ध (Relation between Marginal Utility and Total Utility)

रोटियो के उदाहरण से सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता मे सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है.

(1) प्रारम्भ मे, रोटियो की उत्तरोत्तर इकाइयो (successive units) के उपभोग से (अर्थात 4 रोटियो तक) सीमान्त उपयोगिता धनात्मक रहती है तथा कम होती जाती है और कुल उपयोगिता बढती जाती है परन्तु घटती हुई दर से बढती है।

(2) एक बिन्दु पर (अर्थात् 5वी रोटी पर) सीमान्त उपयोगिता घटकर शून्य हो जाती है, इसलिए इस स्थान पर कुल उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता है और वह अधिकतम हो जाती है। अतः इस बिन्दु को पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (point of satiety) कहते हैं। दूसरे शब्दो में, यह कहा जाता है कि जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है वहाँ पर कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।
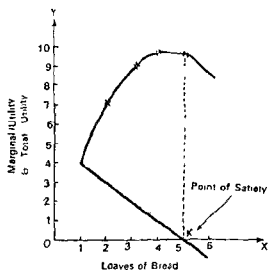
(3) यदि पूर्ण तृप्ति के बिन्दु के बाद (अर्थात् 5वी रोटी के बाद) और अधिक रोटियो का प्रयोग किया जाता है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (Negative) हो जाती है और इसलिए कुल उपयोगिता गिरने लगती है।

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता के उपर्युक्त सम्बन्ध को चित्र न. 3 द्वारा दिखाया जा सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि 4 रोटियों तक सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है और कुल उपयोगिता मे वृद्धि होती है। 5वी रोटी पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है तथा कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है। इसके बाद रोटियो के प्रयोग करने से सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है और कुल उपयोगिता गिरने लगती है।

चित्र- 3

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम
(LAW OF DIMINISHING MARGINAL UTILITY)

1. नियम का आधार (Basis of the Law)

'उपयोगिता ह्रास नियम' उपभोग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम को फ्रेंच अर्थशास्त्री गोसेन (Gossen) के नाम पर गोसेन का प्रथम नियम (Gossen's First Law) या तृप्ति का नियम (Law of Satiety) भी कहा जाता है। यद्यपि आवश्यकताएं अनन्त होती हैं परन्तु उनकी एक विशेषता यह है कि एक समय पर किसी आवश्यकता विशेष की सन्तुष्टि की जा सकती है। आवश्यकता के इसी गुण पर उपयोगिता ह्रास नियम आधारित है।[9]

2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का कथन (Statement of Diminishing Marginal Utility)

प्रो. मार्शल ने इस नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है :

"किसी मनुष्य के पास किसी वस्तु के स्टॉक की मात्रा में वृद्धि होने से जो अतिरिक्त लाभ (additional benefit) उसको प्राप्त होता है, तो अन्य बातों के समान रहने पर, वह वस्तु के स्टॉक की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ-साथ घटता जाता है।"[10]

कुछ दशाओ मे यह सम्भव हो सकता है कि किसी वस्तु की एक या दो इकाइयों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता बढ़े और तत्पश्चात् घटनी शुरू हो। अतः ऐसी सम्भावना को ध्यान मे रखते हुए आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम के कथन मे 'एक सीमा के बाद', 'एक बिन्दु के बाद' (after a point) या 'अन्त में' (eventually) शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसी एक परिभाषा विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री प्रो. बोल्डिंग ने दी है—

"जब कोई उपभोक्ता, अन्य वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए, किसी वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो परिवर्तनशील वस्तु (variable commodity) की सीमान्त उपयोगिता अन्त में अवश्य घटती है।"[11]

3. घटती हुई सीमान्त उपयोगिता के कारण (Reasons for Diminishing Marginal Utility)

प्रो. बोल्डिंग ने घटती हुई सीमान्त उपयोगिता के नियम के निम्न दो मुख्य कारण बताये हैं

(1) वस्तुएं एक दूसरे की अपूर्ण स्थानापन्न होती हैं (Commodities are Imperfect Substitutes)। व्यवहार मे वस्तुएं एक दूसरे के स्थान पर पूर्णतया प्रतिस्थापित नहीं की जा सकती है, दूसरे शब्दों मे, वस्तुओं को उचित अनुपातों मे ही प्रयोग किया जा सकता है।[12] माना कि X रोटी की मात्रा के साथ मक्खन की Y मात्रा का प्रयोग उचित अनुपात को बनाता है।

---

[9] दैनिक जीवन मे हम यह अनुभव करते हैं कि यदि किसी वस्तु की अधिक इकाइयाँ उपभोक्ता के पास बढ़ती जाती हैं तो उस वस्तु की बाद को आने वाली इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता कम होती जाती है और एक सीमा के बाद वह उपयोगिता बिलकुल नही रह जाती है अर्थात् पूर्ण तृप्ति हो जाती है। दैनिक जीवन के इसी अनुभव के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने 'सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम' का प्रतिपादन किया है।

[10] "The additional benefit which a person derives from a given increase of a stock of a thing diminishes, other things being equal, with every increase in the stock that he already has." —*Marshall*

[11] "As a consumer increases the consumption of any one commodity, keeping constant the consumption of all other commodities, the marginal utility of the variable commodity must eventually decline." —*Boulding*

[12] Commodities are not perfectly substitutable one for the other. That is to say there are certain appropriate proportions in which commodities tend to be consumed." —*Boulding*

यदि रोटी की X मात्रा को स्थिर रखा जाये तथा मक्खन की मात्रा में वृद्धि करते चलें तो मक्खन की उत्तरोत्तर (successive) इकाइयों से घटती हुई सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी।

(2) विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है (Satiability of Particular Wants)। किसी भी आवश्यकता विशेष की पूर्ति की जा सकती है; हमारे उपभोग करने की क्षमता (capacity) सीमित है और हम किसी वस्तु की अनन्त मात्रा का उपभोग नहीं कर सकते। वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों का प्रयोग करने से एक बिन्दु ऐसा आ जाता है जहां पूर्ण तृप्ति मिल जाती है तथा वस्तु की अधिक इकाइयों के प्रयोग करने से सन्तुष्टि को बढ़ाया नहीं जा सकता। स्पष्ट है कि वस्तु की अधिक इकाइयों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है और अन्त में शून्य हो जाती है और इस स्थिति में कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है।

उदाहरण द्वारा नियम की व्याख्या

निम्न तालिका एक उपभोक्ता के लिए रोटियों के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता को बताती है:

रोटियों की संख्या	सीमान्त उपयोगिता	कुल उपयोगिता
1	2	2
2	4	6
3	2	8
4	1	9
5	0 → पूर्ण तृप्ति का बिन्दु	→ 9
6	—2	7

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि यदि उपभोक्ता 2 रोटियों का प्रयोग करता है तो प्रारम्भ में सीमान्त उपयोगिता बढ़ती है अर्थात् दूसरी रोटी की उपयोगिता, पहली की अपेक्षा अधिक है। परन्तु दूसरी रोटी के बाद से (अर्थात् एक सीमा के बाद से) अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता घटने लगती है; चौथी रोटी पर सीमान्त उपयोगिता घटकर 1 इकाई के बराबर हो जाती है और कुल उपयोगिता बढ़ कर 9 इकाइयों के बराबर हो जाती है; दूसरे शब्दों में, कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है। अतः नियम को कुल उपयोगिता के शब्दों में भी परिभाषित किया जाता है—

जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो कुल उपयोगिता, अन्त में, घटती हुई दर से बढ़ती है।[11]

यदि अब एक और रोटी अर्थात् पाँचवीं रोटी का प्रयोग किया जाता है तो सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है और कुल उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता है अर्थात् उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है। इस बिन्दु को 'पूर्ण तृप्ति बिन्दु' (point of satiety) कहते हैं। इस पूर्ण तृप्ति के बिन्दु के बाद यदि एक और रोटी अर्थात् 6वीं रोटी का उपभोग किया जायगा तो उपभोक्ता को ऋणात्मक उपयोगिता (अर्थात् अनुपयोगिता) प्राप्त होगी, व्यवहार में, सामान्यतया, वह 6वीं रोटी का उपभोग नहीं करेगा।

4. चित्र द्वारा निरूपण (Diagrammatic Representation)

चित्र न. 1 के दो भाग हैं। नीचे के भाग में नियम को सीमान्त उपयोगिता के शब्दों में तथा ऊपर के भाग में कुल उपयोगिता के शब्दों में व्यक्त किया गया है। चित्र के नीचे के भाग से

11 As more units of a good are used, total utility eventually increases at a decreasing rate.

स्पष्ट है कि रोटियों की उत्तरोत्तर इकाइयों का उपभोग करने से प्रारम्भ में हो सकता है कि सीमान्त उपयोगिता बढ़े, परन्तु एक बिन्दु के बाद (माना दूसरी रोटी के बाद) से सीमान्त उपयोगिता गिरने लगती है, अतः सीमान्त उपयोगिता रेखा (अर्थात् MU-Curve) गिरती हुई रेखा हो जाती है। 5वीं इकाई पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है अर्थात् उपभोक्ता को पूर्ण तृप्ति प्राप्त हो जाती है, अतः इस बिन्दु (S) को 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (point of satiety) कहा जाता है।

चित्र नं. 4 के ऊपर के भाग मे कुल उपयोगिता रेखा (अर्थात् TU-Curve) का प्रारम्भिक भाग ABC, X-axis के प्रति उन्नतोदर (convex) है जिसका अर्थ है कि प्रारम्भ मे (माना वस्तु की 2 इकाइयो के प्रयोग तक) कुल उपयोगिता बढती हुई गति से बढ़ती है।[14] दूसरे शब्दो मे, जब तक सीमान्त उपयोगिता बढती है तब तक कुल उपयोगिता बढ़ती हुई गति से बढ़ेगी, अर्थात् कुल उपयोगिता रेखा (TU-curve) X-axis के प्रति उन्नतोदर होगी; चित्र से स्पष्ट है कि R बिन्दु तक सीमान्त उपयोगिता बढ़ती है; इसलिए कुल उपयोगिता रेखा C बिन्दु तक, जो कि बिन्दु R के ठीक ऊपर है, X-axis के प्रति उन्नतोदर होगी। बिन्दु R के बाद सीमान्त उपयोगिता गिरने लगती है, इसलिए C बिन्दु के बाद से कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है, अर्थात् कुल उपयोगिता रेखा (TU-curve) X-axis के प्रति नतोदर (concave) हो जाती है पाँचवी इकाई अर्थात् बिन्दु G पर उपयोगिता अधिकतम हो जाती है (क्योंकि वहाँ पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है); अतः बिन्दु G 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' है। पाँचवी इकाई के बाद से TU-रेखा गिरने लगती है क्योंकि सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (negative) हो जाती है। बिन्दु 'C' तक कुल उपयोगिता रेखा उन्नतोदर (convex) है और C बिन्दु पर वह मोड़ लेती है तथा उसके बाद नतोदर (concave) हो जाती है; इसलिए बिन्दु 'F' को 'मोड़ का बिन्दु' (Point of Inflexion) कहते हैं। यदि प्रारम्भ में सीमान्त उपयोगिता नहीं बढ़ती बल्कि प्रारम्भ से ही घटती है, तो इसका अर्थ है
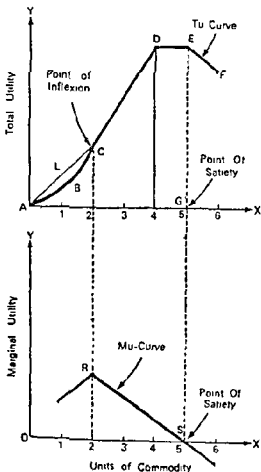
चित्र—4

[14] पाठकों के लिए नोट : यदि कुल उपयोगिता बढती हुई गति से बढ़नी है तो कुल उपयोगिता रेखा को X-axis के प्रति उन्नतोदर (convex) बनाया जाता है। यदि कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है तो 'कुल उपयोगिता रेखा' को X-axis के प्रति नतोदर (concave) बनाया जाता है। इन दोनों बातों को इस अध्याय के परिशिष्ट (Appendix) में पूर्णतया स्पष्ट किया गया है, अतः चित्र नं 4 के ऊपर के भाग को समझने के लिए परिशिष्ट को पढ़ना आवश्यक है।

कि प्रारम्भ से ही कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ेगी, अर्थात TU-रेखा का प्रारम्भिक भाग ALC X-axis के प्रति नतोदर होगा; दूसरे शब्दों में TU-रेखा का आकार ALCDEF होगा न कि ABCDEF।

5. **नियम की मान्यताएँ (Assumptions or Conditions or Limitations of the Law) अथवा 'अन्य बातें समान रहें' वाक्यांश का अर्थ (Meaning of the Phrase 'Other Things Being Equal')**

मार्शल तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने नियम की परिभाषा में 'अन्य बातें समान रहें' वाक्यांश का प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह है कि इस नियम की कुछ मान्यताएँ या सीमाएँ या शर्तें हैं जिनके अन्तर्गत ही यह नियम लागू होगा अन्यथा नहीं। नियम की मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

(1) वस्तु का उपभोग उपयुक्त इकाइयों (proper or suitable units) में किया जाना चाहिए।

(2) वस्तु की सभी इकाई गुण तथा मात्रा में समान होनी चाहिए।

(3) वस्तु की इकाइयों का उपभोग लगातार होना चाहिए।
तथा दूसरी रोटी 4 घण्टे बाद तो निश्चय ही दूसरी रोटी की उपयोगिता अधिक होगी।

(4) वस्तु के मूल्य मे परिवर्तन नहीं होना चाहिए। उदाहरणार्थ, माना कि सन्तरो की कीमत 25 पैसे प्रति इकाई है। यदि दो सन्तरो का उपभोग करने के बाद दुकानदार 5 पैसे प्रति सन्तरा देने को तत्पर है तो निश्चय ही तीसरे सन्तरे की उपयोगिता दूसरे की अपेक्षा अधिक होगी।

(5) वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं (substitutes) का मूल्य भी समान रहना चाहिए।

(6) उपभोक्ता की मानसिक स्थिति मे कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(7) उपभोक्ता की रुचि (taste), आदत (habits), फैशन (fashion), स्वभाव (temperament) तथा आय (income) समान रहनी चाहिए।

(8) आवश्यकता एक ही होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं को यदि एक ही सामूहिक नाम के अन्तर्गत रखा जाय तो यह नियम लागू नहीं होगा। उदाहरणार्थ शान-शौकत, दिखावा, द्रव्य का अधिक संचय होना, इत्यादि, ये सब एक आवश्यकता को नहीं बताते बल्कि बहुत-सी आवश्यकताओं के समूह को बताते हैं। यह नियम केवल एक आवश्यकता के सम्बन्ध में ही लागू होगा।

निष्कर्ष

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस बात को अनुभव किया कि किसी वस्तु के प्रयोग से यह हो सकता है कि प्रारम्भ में उपयोगिता बढ़े परन्तु एक सीमा के बाद वह अवश्य गिरने लगेगी। इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम की परिभाषा मे 'एक बिन्दु के बाद' या 'एक सीमा के बाद' या 'अन्त में' (eventually) वाक्यांश का प्रयोग करते है, अर्थात् एक बिन्दु के बाद से उपयोगिता अवश्य घटेगी। इस प्रकार की एक परिभाषा प्रो. बोल्डिंग ने दी है जिसको हम पहले लिख चुके है। अतः

> **यदि मान्यताएँ पूर्ववत रहो हैं तो, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, इस नियम का कोई 'वास्तविक अपवाद' (real exception) नहीं रह जाता है और नियम पूर्णरूप से सर्वव्यापी (universal) हो जाता है।**

उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व
(IMPORTANCE OF LAW OF DIMINISHING UTILITY)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के निम्नलिखित महत्त्व है

(1) **विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन इस नियम के क्रियाशील होने के कारण होता**

है। जब किसी वस्तु की पूर्ति अधिक हो जाती है तो उपभोक्ताओं के लिए उसकी उपयोगिता कम होने लगती है। अतः उत्पादक उत्पत्ति के साधनों को उस वस्तु के उत्पादन से हटाकर दूसरी वस्तु के उत्पादन में लगा देता है और इस प्रकार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता रहता है। टाउसिग (Taussig) ने ठीक कहा है :

"यह नियम उत्पादित वस्तुओं में बढ़ती हुई विभिन्नता तथा उत्पादन और उपभोग के जटिल होते जाने की व्याख्या करता है।"[15]

(2) यह नियम 'मांग के नियम' की व्याख्या करता है अर्थात इस बात पर प्रकाश डालता है कि मांग रेखा दाएँ को गिरती हुई क्यों होती है। यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग करता है तो उसके लिए वस्तु की उपयोगिता कम होती जाती है, इसलिए वह वस्तु की अधिक मात्रा प्रयोग करने के लिए कम कीमत देना चाहेगा। दूसरे शब्दों में, वस्तु की कम कीमत पर (अर्थात कीमत गिर जाने पर) उसकी अधिक मात्रा का प्रयोग (अर्थात अधिक मात्रा की मांग) करेगा। यही बात माग का नियम बताता है। इसी प्रकार वस्तु की कम इकाइयों का प्रयोग करने से उसकी उपयोगिता अधिक होगी, इसलिए उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा प्रयोग करने के लिए अधिक कीमत दे सकेगा। दूसरे शब्दों में, वस्तु की ऊँची कीमत पर उसकी कम मात्रा की मांग करेगा। यही बात मांग का नियम बताता है।

उपर्युक्त तर्क को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं :
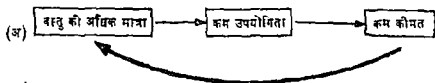
चित्र—5
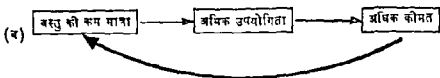
चित्र—6

यदि हम तर्क (अ) तथा (ब) को उल्टे तरीके से देखें, जैसा कि लम्बे तीर बताते हैं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा मांगी जायेगी और अधिक कीमत पर वस्तु की कम मात्रा मांगी जायेगी। यही मांग का नियम है।

---

[15] "It is this fact of Diminishing Utility that explains the growing variety in the articles produced and the growing complexity of production and consumption." —Taussig

(3) यह नियम 'आधुनिक कर प्रणाली' का आधार है—अधिक धन होने के कारण धनवान व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता, गरीबों की अपेक्षा, कम होती है। इसीलिए सरकार धनवानों पर अधिक कर लगाती है और गरीबों पर कम। दूसरे शब्दों में, वर्तमान टैक्स प्रणाली (progressive taxation) उपयोगिता ह्रास नियम पर ही आधारित है।

(4) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of equi-marginal utility) भी उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है -प्रत्येक व्यक्ति अपने सीमित साधनों से अधिकतम सन्तोष प्राप्त करना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपभोक्ता सबसे प्रथम उस वस्तु पर अपनी सीमित आय को व्यय करता है जो कि उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु जब वह इसी एक वस्तु पर अपना धन व्यय करता जाता है तो क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम के कारण उसकी उपयोगिता गिरती जाती है और उपभोक्ता को अनुभव होता है कि अब उसकी यह आवश्यकता अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रह गयी है बल्कि दूसरी आवश्यकता अधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसा अनुभव होते ही वह द्रव्य को पहले कम लाभदायक प्रयोग से दूसरे अधिक लाभदायक प्रयोग में हस्तान्तरित कर देता है। अतः उपयोगिता ह्रास नियम के कारण वह अपनी आय को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित करता जायेगा जब तक कि प्रत्येक प्रयोग से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जाय। यही सम-सीमान्त उपयोगिता नियम है जो कि उपभोक्ता को अपनी सीमित आय के व्यय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने में सहायता करता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपयोगिता ह्रास नियम की मदद से ही सम-सीमान्त उपयोगिता नियम निकाला जाता है।

(5) 'उपभोक्ता की बचत' का सिद्धान्त भी उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है—उपभोक्ता किसी वस्तु का प्रयोग या उपभोग करने के लिए जब पहली इकाई खरीदता है तो उसके लिए दी जाने वाली कीमत की अपेक्षा उसे अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। परन्तु जैसे-जैसे वह वस्तु की अधिक इकाइयों को खरीदता जाता है तो बाद में आने वाली इकाइयों की उपयोगिता, उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार घटती जाती है और एक स्थान ऐसा आता है जहाँ पर कि वस्तु की सीमान्त इकाई की उपयोगिता ठीक कीमत के बराबर हो जाती है। इस सीमान्त इकाई पर उपभोक्ता को कोई बचत (surplus) प्राप्त नहीं होती, परन्तु सीमान्त इकाई से पहले की सब इकाइयों पर उस उपभोक्ता को बचत प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि 'उपभोक्ता की बचत' का विचार उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है।

(6) यह नियम विनिमय-मूल्य (value-in-exchange) तथा प्रयोग-मूल्य (value-in-use) के अन्तर को बताता है—उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की पूर्ति (जैसे पानी, हवा, सूर्य की रोशनी) जितनी अधिक होगी उतनी ही उसकी सीमान्त उपयोगिता कम होगी और इसलिए उसका 'विनिमय-मूल्य' (अर्थात् कीमत) कम या शून्य होगा, यद्यपि उसका 'प्रयोग मूल्य' (अर्थात् कुल उपयोगिता) अधिक हो सकती है।

प्रतिस्थापन का नियम
(THE LAW OF SUBSTITUTION)

प्राक्कथन (Introduction)

प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (Principle of Substitution) या प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) एक महत्त्वपूर्ण व्यापक (general) नियम है जो कि दैनिक जीवन के अनुभव पर आधारित है। मनुष्य अपने सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। अतः वह अपने सीमित साधनों को इस प्रकार से व्यय करना चाहता है कि उसे अधिकतम सन्तोष मिले। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह पहले अधिक जरूरी आवश्यकताओं की

पूर्ति करेगा और बाद में कम जरूरी आवश्यकताओं की। परन्तु एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते जाने से, उपयोगिता ह्रास नियम के कारण, उसकी उपयोगिता कम होती जायेगी। अब उपभोक्ता के लिए दूसरी आवश्यकता अधिक जरूरी प्रतीत होने लगती है। ऐसा अनुभव करते ही वह अपने साधन को कम लाभदायक प्रयोग से अधिक लाभदायक प्रयोग मे हस्तान्तरित कर देता है; दूसरे शब्दों में, कम लाभदायक वस्तु के स्थान पर अधिक लाभदायक वस्तु का प्रतिस्थापन करने लगता है और ऐसा तब तक करता जायेगा जब तक कि दोनो वस्तुओ से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जायें। इसी प्रकार उत्पत्ति के क्षेत्र मे, एक उत्पादक अधिक महँगे साधन के स्थान पर सस्ते साधन का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों से सीमान्त उत्पादकताएँ (marginal productivities) बराबर न हो जायें।

प्रतिस्थापन के नियम का सामान्य कथन (General Statement of the Law of Substitution)

कम-उपयोगी वस्तु (law-utility commodity) के स्थान पर अधिक-उपयोगी वस्तु (high-utility commodity) का या महँगे उत्पत्ति के साधन (high-cost factor of production) के स्थान पर कम-महँगे साधन (low-cost factor) का प्रतिस्थापन करना ही प्रतिस्थापन का नियम या सिद्धान्त कहा जाता है। प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादक तथा व्यक्ति प्रतिस्थापन की सहायता से अपने सन्तोष या उपयोगिता या लाभ को अधिकतम करता है। अत प्रतिस्थापन का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रों मे लागू होता है।

सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal Utility)

अथवा

एक उपभोक्ता का संतुलन (*Consumer's Equilibrium*)

उपभोग में प्रतिस्थापन के सिद्धान्त को प्रायः सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने की दृष्टि से उपभोक्ता अपने सीमित द्रव्य या सीमित वस्तु को विभिन्न प्रयोगों मे इस प्रकार बाँटता है कि प्रत्येक प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता समान मिले। नियम की आधुनिक व्याख्या के परिणामस्वरूप इसे 'आनुपातिकता का नियम' (Law of proportionality) भी कहते है; इसका विवरण आगे दिया गया है।

यह नियम 'उपभोक्ता के सन्तुलन' (Equilibrium of Consumer) को बताता है। जब प्रत्येक दिशा से उपयोगिता बराबर होती है तो उपभोक्ता को अधिकतम सन्तोष प्राप्त होता है क्योंकि ऐसी स्थिति मे वह द्रव्य या वस्तु को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित करके उपयोगिता या सन्तोष मे कोई वृद्धि नही कर सकता। अत अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने के कारण उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति मे रहता है।

सम-सीमान्त उपयोगिता का कथन (Statement of the Law)

मार्शल ने इस नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है,

> "यदि किसी व्यक्ति के पास एक ऐसी वस्तु है जो अनेक प्रयोगों में लायी जा सकती है तो वह उसको विभिन्न प्रयोगो में इस प्रकार बांटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगो मे समान रहे, क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एक प्रयोग में दूसरे की अपेक्षा अधिक है तो वह दूसरे प्रयोग से वस्तु की मात्रा हटाकर तथा उसका प्रयोग पहले में करके लाभ प्राप्त कर सकता है।"[18]

मार्शल की उपर्युक्त परिभाषा एक व्यापक परिभाषा है; यद्यपि यह परिभाषा वस्तु के सम्बन्ध मे दी गयी है, परन्तु यदि वस्तु के स्थान पर द्रव्य का प्रयोग किया तो यह द्रव्य के सम्बन्ध

---

[18] "If a person has a thing which he can put to several uses he will distribute it among

में भी लागू होती है। द्रव्य एक ऐसी वस्तु है जिसको अनेक प्रयोगों में बाँटा जा सकता है अर्थात् विभिन्न वस्तुओं पर व्यय किया जा सकता है। द्रव्य के सम्बन्ध में नियम का कथन, इस प्रकार दिया जा सकता है—

> एक व्यक्ति अपनी सीमित आय (अर्थात् द्रव्य) से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करेगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किये गये द्रव्य की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) समान हो।

नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भांति यह नियम भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है। मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

(1) मनुष्य को विवेकशील प्राणी (rational person) मानकर चलते हैं। उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है और इसलिए अपनी सीमित (आय को सोच-समझकर व्यय करता है। वह द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर व्यय करते समय उनसे प्राप्त उपयोगिताओं की तुलना करता है।

(2) उपभोक्ता की आय, रुचि इत्यादि एक निश्चित समयावधि में समान रहते हैं और उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

(3) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है अर्थात् द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं होता।

(4) उपभोक्ता अपने द्रव्य को बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रा (very small amounts) में व्यय करता है।

(5) उपयोगिता को द्रव्य रूपी पैमाने से मापा जा सकता है।

उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा नियम का स्पष्टीकरण

माना एक व्यक्ति के पास 8 रुपये हैं जिन्हें वह दो वस्तुओं—गेहूँ और चीनी—पर व्यय करना चाहता है और वह प्रत्येक वस्तु पर एक-एक रुपये करके व्यय करता है। वस्तुओं पर प्रत्येक 1 रुपये के व्यय करने से प्राप्त उपयोगिताएँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैं :

द्रव्य (रु०) की इकाइयाँ	गेहूं से उपयोगिता	चीनी से उपयोगिता
1	18 (1)	14 (3)
2	16 (2)	12 (5)
3	14 (4)	10 (7)
4	12 (6)	8
5	10 (8)	6
6	8	4
7	6	2
8	4	0

---

these uses in such a way that it has the same marginal utility in all. For if it had a greater marginal utility in one use than another he would gain by taking some of it from second use and applying into the first."

उपभोक्ता सर्वप्रथम 1 रुपये को उस वस्तु पर व्यय करेगा जिससे उसको अधिकतम उपयोगिता मिलती है। तालिका से स्पष्ट है कि रुपये की पहली इकाई वह गेहूं पर व्यय करेगा क्योंकि उसे 18 इकाइयों के बराबर उपयोगिता मिलती है। दूसरे रुपये को भी वह गेहूं पर व्यय करेगा। तीसरे को वह गेहूँ या चीनी मे से किसी पर व्यय कर सकता है क्योंकि दोनों दिशाओं से समान उपयोगिता अर्थात् 14 के बराबर उपयोगिता मिलती है; माना कि तीसरा रुपया वह चीनी पर व्यय करता है, चौथा रुपया गेहू पर, पाँचवाँ रुपया चीनी पर, छठा रुपया गेहूँ पर, सातवाँ रुपया चीनी पर तथा आठवाँ रुपया गेहूँ पर व्यय करता है। दोनो वस्तुओ पर द्रव्य की व्यय की जाने वाली इकाइयों को कोष्ठको (brackets) मे दिखाया गया है। इस प्रकार उपभोक्ता 8 रुपये में से 5 रुपये गेहूँ पर और 3 रुपये चीनी पर व्यय करता है। द्रव्य को इस प्रकार से व्यय करने से दोनो दिशाओं से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हैं अर्थात् 10 के बराबर हैं। अतः उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। यह सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं पर भी इस प्रकार लागू होगा। इसको चित्र संख्या 7 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र मे दो रेखाएँ खीची गयी है जो कि गेहूँ तथा चीनी पर द्रव्य को व्यय करने से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिताओ को बताती हैं। चित्र से स्पष्ट है कि गेहूं पर 5 रुपये व्यय करने से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता FE के बराबर तथा चीनी पर 3 रुपये व्यय करने से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता BC के बराबर है, ये दोनों सीमान्त उपयोगिताएँ (10 इकाई के) बराबर हैं। दोनो दिशाओ से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होने से ही उपभोक्ता को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।
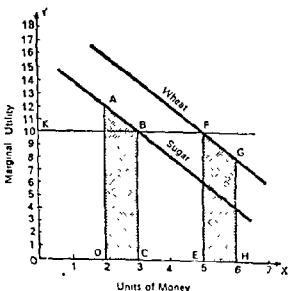
चित्र—7

माना कि वह अपने व्यय करने के क्रम को बदल देता है। 5 रुपये के स्थान पर वह 6 रुपये गेहूँ पर और 3 रुपये के स्थान पर 2 रुपये चीनी पर व्यय करता है। ऐसा करने से उसे EFGH के बराबर कुल उपयोगिता मे वृद्धि होती है और DABC के बराबर कुल उपयोगिता मे नुकसान होता है। स्पष्ट है कि नुकसान लाभ की अपेक्षा अधिक है। अतः उपभोक्ता को अधिकतम लाभ तभी होगा जबकि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ दोनों दिशाओ से बराबर हों।

नियम की आधुनिक व्याख्या—आनुपातिकता का नियम (Modern Interpretation of the Law—Law of Proportionality)

आधुनिक अर्थशास्त्री सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को अधिक उचित तरीके से बताते हैं। नियम की नयी व्याख्या निम्न विवरण से स्पष्ट है। माना कि एक व्यक्ति के पास किसी वस्तु की 4 इकाइयाँ हैं और इस स्थिति में उसको वस्तु से 7 रुपये के बराबर सीमान्त उपयोगिता मिलती है। यदि वस्तु की कीमत 7 रुपये से कम है तो उसके लिए वस्तु की अधिक इकाइयों को खरीदना लाभदायक होगा क्योंकि कीमत की अपेक्षा मे उसको उपयोगिता अधिक मिलती है। उपभोक्ता वस्तु की अधिक इकाइयाँ उस स्थान तक खरीदता जायेगा जब तक कि वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर न हो जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत में अनुपात इकाई के बराबर होना चाहिए, (यदि यह अनुपात ठीक इकाई के बराबर नहीं हो पाता तो जहाँ तक सम्भव हो इकाई के निकट होना चाहिए)। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु A से प्राप्त होने वाली उपयोगिता 7 रुपये के बराबर है और उसकी कीमत 7 रुपये है तो उपयोगिता तथा कीमत में अनुपात ($\frac{7}{7} = 1$) इकाई के बराबर होगा। इसी प्रकार उपभोक्ता दूसरी वस्तु B को उस सीमा तक खरीदेगा जहाँ पर कि वस्तु B से मिलने वाली उपयोगिता तथा उसकी कीमत का अनुपात इकाई के बराबर हो जाये। अतः एक वस्तु A की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) तथा कीमत (Price) का अनुपात, दूसरी वस्तु B की सीमान्त उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात के बराबर होना चाहिए क्योंकि दोनों अनुपात इकाई के बराबर हैं। यह तर्क दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध मे भी लागू होगा। माना कि एक व्यक्ति अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं A, B, C इत्यादि पर व्यय करना चाहता है, तो अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने और सन्तुलन की स्थिति मे रहने के लिए निम्न सम्बन्ध पूरा होना चाहिए :

$$\frac{\text{Marginal Utility of A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{M. U. of A}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{M. U. of C}}{\text{Price of C}} = \text{etc},$$

चूँकि एक वस्तु की उपयोगिता तथा कीमत का अनुपात दूसरी वस्तु की उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात के बराबर होता है, इसलिए सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को 'आनुपातिका का नियम' (Law of Proportionality) भी कहते हैं।

'प्रतिस्थापन का नियम' या 'सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम' का क्षेत्र, प्रयोग या महत्व

(SCOPE OR APPLICATION OR IMPORTANCE OF THE 'LAW OF SUBSTITUTION' OR THE 'LAW OF EQUI-MARGINAL UTILITY')

मार्शल के अनुसार "प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है।"[17] सम-सीमान्त उपयोगिता नियम बताता है कि एक व्यक्ति अपने सीमित साधन (अर्थात द्रव्य) को असीमित आवश्यकताओं के समक्ष किस प्रकार से व्यय करे कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। रोबिन्स की परिभाषा भी सीमित साधनों तथा असीमित आवश्यकताओं के बीच मानव व्यवहार के सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है। अतः इस नियम को *'अर्थशास्त्र का आधार'* कहा जा सकता है। इस नियम का विभिन्न क्षेत्रों मे प्रयोग निम्न विवरण से स्पष्ट है .

(1) उपभोग के क्षेत्र में प्रयोग

'उपभोग में प्रतिस्थापन के सिद्धान्त' को सम-सीमान्त उपयोगिता नियम कहा जाता है जिसका

---

17 "The application of the principle of substitution extends over almost every field of economic enquiry." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 341.

अध्ययन विस्तृत रूप से हम कर चुके हैं। यह नियम बताता है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधन (वस्तु या द्रव्य) को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटता है कि प्रत्येक प्रयोग से सीमान्त उपयोगिताएं बराबर हों।

(2) उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग

प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके लिए उत्पादक उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को इस प्रकार मिलायेगा कि कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में उत्पादक को प्रतिस्थापन के सिद्धान्त की सहायता लेनी पड़ती है। अधिकतम उत्पत्ति कम से कम लागत पर प्राप्त करने के लिए उत्पादक एक महँगे तथा कम उत्पादक साधन के स्थान पर सस्ते तथा अधिक उत्पादक साधन का प्रतिस्थापन करेगा और उस सीमा तक प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ बराबर न हो जायें। इस बात को प्रो० बेनहम ने निम्न प्रकार से व्यक्त किया :

$$\text{यदि } \frac{\text{Marginal Product of Factor A}}{\text{Price of Factor A}} > \frac{\text{Marginal Product of Factor B}}{\text{Price of Factor B}}$$

तो उत्पादक साधन B के स्थान पर साधन A का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों अनुपात बराबर न हो जायें। यह बात दो से अधिक साधनों के सम्बन्ध में लागू होगी, अर्थात्

$$\frac{\text{M. P. of Factor A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{M. P. of Factor B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{M. P. of Factor C}}{\text{Price of C}} = \text{ect.}$$

इसी प्रकार उत्पत्ति के एक साधन के विभिन्न प्रयोगों के सम्बन्ध में भी यह नियम लागू होता है। उदाहरणार्थ, भूमि को विभिन्न प्रयोगों (खेती करने, मकान निर्माण करने, इत्यादि) में उत्पादक इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक दिशा से सीमान्त उत्पादकताएँ समान हों।

(3) विनिमय के क्षेत्र में प्रयोग

(अ) वास्तव में, विनिमय एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक वस्तु की न्यूनता (scarcity) होने के कारण उसकी कीमत ऊँची हो जाती है तो हम अधिक न्यून वस्तु (more scarce good) के स्थान पर कम न्यून वस्तु (less scarce good) का प्रतिस्थापन करने लगते है और इस प्रकार से न्यून वस्तु की कमी समाप्त हो जाती है तथा उसकी कीमत गिर जाती है। (ब) मूल्य निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता मदद करती है। एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर ही देना चाहेगा, सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देगा। (स) इसी प्रकार वस्तु-विनिमय के सम्बन्ध में व्यक्तियों के बीच दो वस्तुओं का विनिमय तब तक होगा जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए दोनों वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जायें, तभी वस्तु-विनिमय से दोनों पक्षों को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

(4) वितरण के क्षेत्र में प्रयोग

वितरण की समस्या है कि संयुक्त उत्पादन में से विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का हिस्सा कैसे निश्चित किया जावे ? इसको हल करने के लिए हम प्रतिस्थापन या सम-सीमान्त उत्पादकता के नियम की मदद लेते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही मूल्य दिया जाता है।

(5) राजस्व के क्षेत्र में प्रयोग

सरकार का उद्देश्य अपनी सीमित आय से अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum Social Advantage) प्राप्त करना होता है। इसमें सम-सीमान्त उपयोगिता नियम मदद करता है। सरकार अपनी सीमित आय को विभिन्न मदों (items) पर इस प्रकार व्यय करती है कि प्रत्येक दिशा में 'सीमान्त सामाजिक उपयोगिता' बराबर हो।

नियम की आलोचना या सीमाएं
(CRITICISM OR LIMITATIONS OF THE LAW)

प्रतिस्थापन के नियम या सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की कई आलोचनाएँ भी हैं जिनका निचोड़ यह है कि बहुत सी सीमाओं तथा कठिनाइयों के परिणामस्वरूप यह नियम व्यावहारिक जीवन में लागू नही हो पाता है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ तथा सीमाएँ निम्न हैं :

(1) **प्रायः उपभोक्ता हिसाबी स्वभाव के नहीं होते** (Generally consumers do not go into details of calculations)—इस नियम की मान्यता है कि अधिकतम सन्तुष्टि को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं का हिसाब लगाकर ही उन पर द्रव्य व्यय करना चाहिए। परन्तु व्यवहार में अधिकांश व्यक्ति इस हिसाबी पचड़े में नही पड़ते, वे अपनी आय को आदत इत्यादि के वश होकर व्यय करते है।

(2) **वस्तुओं की अविभाज्यता** (Indivisibility of goods)—प्रो० बोल्डिंग ने इस सीमा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। नियम लागू होने के लिए एक मान्यता यह है कि प्रयोग की जाने वाली वस्तु को छोटी-छोटी इकाइयों (doses or units) में प्रयोग किया जाय। परन्तु बहुत-सी वस्तुओं—जैसे, रेडियो, पंखा, कार, मकान इत्यादि ऐसी हैं जिनको छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित नही किया जा सकता और इसलिए उन वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना करना सम्भव नहीं और न ही इनकी तुलना अन्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं से की जा सकती है। उदाहरणार्थ, कारों (cars) की सीमान्त उपयोगिता की तुलना केलों की सीमान्त उपयोगिता से नहीं की जा सकती क्योंकि कार को टुकड़े-टुकड़े करके या छोटी-छोटी इकाइयों में नही खरीदा जा सकता।

(3) **अनिश्चित 'बजट-अवधि' या कुछ वस्तुओं का अधिक टिकाऊ होना** (Indefinite 'Budget-Period' or some goods are more durable)—प्रो० बोल्डिंग (Boulding) के अनुसार, हमारी बजट अवधि (Budget-Period) निश्चित नहीं है जबकि यह नियम एक निश्चित बजट अवधि में ही लागू होता है। समय की वह अवधि जिसमें कि हम यह विचार करते हैं कि अपनी आय का कितना भाग विभिन्न वस्तुओं पर व्यय किया जाये, उसे 'बजट अवधि' कहते हैं, यह प्राय. एक साल होती है, इससे भी अधिक कोई भी अवधि हो सकती है। नियम के अनुसार, उपभोक्ता अपनी एक बजट अवधि की सीमित आय से उस अवधि में ही अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी हैं जो कि एक बजट-अवधि में खरीदी जाती हैं जबकि उनका प्रयोग दूसरी बजट-अवधि में भी किया जाता है, उदाहरणार्थ, कार, पंखा, फर्नीचर इत्यादि टिकाऊ वस्तुएँ (durable goods) है जिनका वर्षों तक प्रयोग किया जाता है। ऐसी वस्तुओं को खरीदते समय हम उनकी उपयोगिताओं की तुलना केवल बजट-अवधि के लिए ही नही करते बल्कि आने वाले कई वर्षों तक प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं को भी ध्यान में रखते हैं। अत. ऐसी स्थिति में यह नियम लागू नहीं होता।

(4) **आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन** (Habit, customs and fashion)—व्यवहार में मनुष्य प्राय. आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन से प्रभावित होता है। वह सोच-समझकर विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं को ध्यान में रखकर व्यय नहीं करता। रीति-रिवाज, फैशन इत्यादि के कारण वह उन वस्तुओं पर तथा उन प्रयोगों में अपनी आय को व्यय करता है जिनसे उसको कम उपयोगिता मिलती है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति पुत्र होने पर रीति-रिवाज के कारण समाज में अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को पार्टी देता है जबकि इसके उसको उपयोगिता कम मिलती है। इसी प्रकार, फैशन के वश एक सामान्य आय का व्यक्ति एक बड़े होटल में 75 पैसे या एक रुपये में चाय का एक प्याला पीता है जबकि उसकी उपयोगिता कम है; इसी प्रकार

आदतवश मनुष्य सिगरेट, शराब इत्यादि पर अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय कर देता है। अतः आदत, रीति-रिवाज, फैशन इत्यादि इस नियम के लागू होने में बाधक होते हैं।

(5) अज्ञानता, आलस्य तथा लापरवाही (Ignorance, laziness and carelessness)—बहुत से उपभोक्ता बाजार में प्रचलित विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों तथा अन्य बातों से अनभिज्ञ होते हैं और इसलिए वे अपनी आय को व्यय करते समय विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं की ठीक प्रकार से तुलना न कर सकने के कारण अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर पाते। इसी प्रकार उपभोक्ता आलस्य या लापरवाही के कारण भी अपनी सीमित आय को ऐसी वस्तुओं पर या ऐसे प्रयोगों में व्यय करता है जिससे कम उपयोगिता मिलती है।

(6) अधिकतम कुल उपयोगिता आवश्यक रूप से अधिकतम सन्तुष्टि को नहीं बताती (Maximum total utility does not necessarily mean maximum satisfaction)—कुछ आलोचकों के अनुसार, इस नियम के द्वारा कुल उपयोगिता को अधिकतम किया जा सकता है परन्तु कुल सन्तुष्टि को नहीं, क्योंकि उपयोगिता (utility) तथा सन्तुष्टि (satisfaction) एक ही बात नहीं है। उपयोगिता इच्छा की तीव्रता का माप है जबकि सन्तुष्टि वस्तु के प्रयोग कर लेने के बाद प्राप्त होती है। अतः कुल उपयोगिता का आवश्यक रूप से कुल सन्तुष्टि के बराबर होना जरूरी नहीं है।

(7) वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन (Change in the price of commodities)—वस्तुओं की कीमतें प्रायः बाजार में बदलती रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप उनकी उपयोगिताएँ भी बदलती रहती है और इसलिए विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना करना कठिन हो जाता है। अतः वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नियम के लागू होने में बाधक होता है।

(8) कुछ वस्तुओं का न मिलना (Non-availability of some commodities)—कभी-कभी व्यवहार में अधिक उपयोगी वस्तुएँ नहीं मिलती और उसके स्थान पर हमें कम उपयोगी वस्तुएँ खरीदनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ, 7'O-Clock ब्लेड के न मिलने के कारण कोई अन्य कम अच्छा ब्लेड खरीदना पड़ता है। अतः ऐसी स्थिति में हम अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम नहीं कर पाते और यह नियम लागू नहीं होता।

(9) पूरक वस्तुएँ (Complementary goods)—कुछ वस्तुएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं और वे एक साथ एक निश्चित अनुपात में प्रयोग की जाती हैं; जैसे—डबल रोटी तथा मक्खन, फाउन्टेनपेन तथा स्याही, दूध-चीनी-चाय इत्यादि। इन वस्तुओं को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग नहीं किया जा सकता और इसलिए इन वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता।

(10) नियम की कुछ अन्य मान्यताएँ भी गलत हैं (Some other assumptions of the law are also wrong)—नियम की कई मान्यताएँ गलत हैं जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं और कुछ अन्य का विवरण कर रहे हैं—(i) उपयोगिता को ठीक प्रकार मापा नहीं जा सकता जबकि यह नियम यह मानकर चलता है कि उसे मापा जा सकता है। (ii) यह नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलता है जबकि यह गलत है क्योंकि द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में अन्तर पड़ता है। (iii) मनुष्य सदैव विवेकशील (rational) नहीं होता।

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

नियम की अधिकांश सीमाएँ तथा आलोचनाएँ उनकी मान्यताओं से सम्बन्धित हैं : (अ) यद्यपि उपयोगिता को बिलकुल सही प्रकार से नहीं मापा जा सकता परन्तु मोटे रूप में द्रव्य रूपी

पैमाने से इसे अवश्य मापा जा सकता है। (ब) यद्यपि उपयोगिता तथा सन्तुष्टि एक बात नहीं है परन्तु फिर भी दोनों में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। इसलिए अधिकतम उपयोगिता तथा अधिकतम सन्तुष्टि को मोटे रूप से एक ही माना जा सकता है। (स) अधिकांश व्यक्ति विवेकशील होते हैं और सोच-समझकर व्यय करते हैं।

नियम की कुछ सीमाओं के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति सचेत अथवा अचेत रूप से इस नियम का पालन करता है। यह नियम भी अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भांति आर्थिक प्रवृत्ति का द्योतक है। इसलिए प्रो. चैपमैन का कथन उचित है :

> "यद्यपि हम प्रतिस्थापन या सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार अपनी आय को वितरित करने में ठीक उसी प्रकार विवश नहीं होते जिस प्रकार कि एक पत्थर ऊपर फेंके जाने पर विवश होकर नीचे भूमि पर गिरता है, परन्तु फिर भी हम, वास्तव में, मोटे रूप से ऐसा ही करते हैं क्योंकि हम में तर्क बुद्धि है।"[18]

उपयोगिता के मापने से सम्बन्धित कठिनाइयों तथा आलोचनाओं को दूर करने की दृष्टि से प्रो. हिक्स ने उपभोक्ता के सन्तुलन को तटस्थता नक्र रेखाओं (Indifference curves) द्वारा बताया है।

परिशिष्ट : 1 [APPENDIX]

कुल उपयोगिता वक्र के उन्नतोदर तथा नतोदर होने की रेखागणित[1]

(GEOMETRY OF TOTAL UTILITY CURVE BEING CONVEX AND CONCAVE)

अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं; और यदि सीमान्त उपयोगिता बढ़ती है तो यह यह कहा जाता है कि कुल उपयोगिता बढ़ती हुई दर से बढ़ती है, रेखागणित (geometry) में इस बात को X-axis के प्रति उन्नतोदर (convex) रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र नं० 8 में कुल उपयोगिता रेखा AB X-axis के प्रति उन्नतोदर है। चित्र से स्पष्ट है कि 1 इकाई के प्रयोग से एक व्यक्ति को CD के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है, 2 इकाइयों से EF के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि बिन्दु C से एक रेखा CG, X-axis के समान्तर (parallels) खींची जाये जो कि EF को G बिन्दु पर मिलती है तो CD और GF बराबर होंगी तथा CD और EF के अन्तर को EG बतायेगी; दूसरे, शब्दों
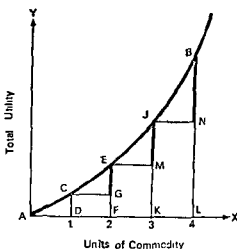
चित्र—8

18 "We are not, of course, compelled to distribute our income according to the Law of Substitution or Equi marginal Expenditure, as a stone thrown in air is compelled, in a sense, to fall back to the earth, but, as a matter of fact, we do so in a certain rough fashion because we are reasonable." —Chapman, *Outline of Political Economy* p. 48.

1 पाठकों के लिए नोट—इस परिशिष्ट का अध्ययन इस अध्याय मे पृष्ठ 199 पर दिए गये चित्र नं 4 को अच्छी तरह से समझने के लिए आवश्यक है।

में, दूसरी इकाई के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) मोटी रेखा EG के बराबर होगी। इसी प्रकार तीसरी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) मोटी रेखा JM के बराबर, तथा चौथी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता मे वृद्धि मोटी रेखा BN के बराबर होगी। चित्र से स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता में वृद्धि EG, JM तथा BN मोटी रेखाएँ व्यक्त करती हैं; और यह भी स्पष्ट है कि BN अधिक है JM से, तथा JM अधिक है EG से; दूसरे शब्दो में, कुल उपयोगिता बढ़ती हुई गति मे बढ़ रही है। इस प्रकार यदि 'कुल उपयोगिता रेखा' X-axis के प्रति उन्नतोदर है तो इसका अभिप्राय है कि कुल उपयोगिता बढ़ती हुई गति से बढ़ती है।

एक-एक करके अतिरिक्त इकाइयो के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं; यदि सीमान्त उपयोगिता घटती है तो यह कहा जाता है कि कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है; रेखागणित (geometry) मे इस बात को X-axis के प्रति नतोदर (concave) रेखा द्वारा दिखाया जाता है। चित्र नं. 9 मे कुल उपयोगिता रेखा EF, X-axis के प्रति नतोदर है। चित्र से स्पष्ट है कि एक इकाई के प्रयोग से एक व्यक्ति को AB के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है, 2 इकाइयो से CD के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि बिन्दु A से एक रेखा AK, X-axis के सामानान्तर खीची जाये जो कि CD को K बिन्दु पर मिलती है तो CD और AB के अन्तर को CK बतायेगी, दूसरे शब्दों में, दूसरी इकाई के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त उपयोगिता) मोटी रेखा CK के बराबर होगी। इसी प्रकार तीसरी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता मे वृद्धि मोटी रेखा GL के बराबर, तथा चौथी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि मोटी रेखा JP के बराबर होगी। चित्र से स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता में वृद्धि CK, GL तथा JP मोटी रेखाएँ व्यक्त करती हैं और यह भी स्पष्ट है कि JP कम है GL से, और GL कम है CK से; दूसरे शब्दो में कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ रही है। इस प्रकार यदि 'कुल उपयोगिता रेखा' X-axis के प्रति नतोदर है तो इसका अभिप्राय है कि कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है।
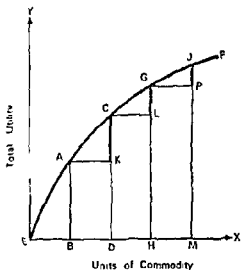
चित्र—9

प्रश्न

1. 'उपयोगिता एक क्रमवाचक विचार है न कि एक गणनावाचक विचार।' विवेचना कीजिए।
   'Utility is an ordinal concept and not a cardinal concept. Discuss.
2. सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का अन्तर बताइए। यह सिद्ध कीजिए कि जब एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, तो उसकी कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।

Distinguist between marginal utility and total utility. Show how the total utility is at its maximum when marginal utility is zero.

3. "जब कोई उपभोक्ता, अन्य वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए, किसी एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अन्त मे अवश्य घटती है।" विवेचना कीजिए।

As a consumer increases the consumption of any one commoditry, keeping constant the consumption of all other commodities, the marginal utility of the variable commodity must eventually decline." Discuss.

अथवा

'जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाइयों का उपभोग या क्रय किया जाता है, तो कुल उपयोगिता, अन्त मे, घटती हुई दर से बढ़ती है।' विवेचना कीजिए।

'As more units of a good are consumed or purchased, total utility eventually increases at a decreasing rate.' Discuss.

अथवा

'किसी वस्तु की जितनी अधिक मात्रा हमारे पास होगी, उतनी ही उस वस्तु की अतिरिक्त मात्रा के लिए हमारी आवश्यकता कम होगी।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

'The more of a thing we have, the less we want it.' Discuss this statement.

4. उपयोगिता ह्रास नियम को बताइए और व्याख्या कीजिए कि किस प्रकार इससे माँग का नियम निकाला जाता है।

State the Law of Diminishing utility and explain how it leads to the Law of Demand.

5. उपभोग में प्रतिस्थापन के नियम की व्याख्या कीजिए। वास्तविक जीवन में इस नियम के लागू होने में क्या कठिनाइयाँ हैं ?

Explain the Law of substitution as applied to consumption. What are the difficulties of its application in real life.

6. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को बताइए। यह बताइए कि जीवन में रीति-रिवाज और फैशन के प्रभाव से इस नियम मे किस प्रकार का परिवर्तन हो जाता है ?

Explain the Law of Equimarginal Utility. Show how is it modified in life by the influence of custom and fashion.

7. उपयोगिता विश्लेषण की सहायता से एक उपभोक्ता के सतुलन की विवेचना कीजिए।

Discuss consumer's equilibrium with the help of utility analysis.

11

उपयोगिता विश्लेषण-2
(Utility Analysis-2)

उपभोक्ता की बचत
(Consumer's Surplus)

उपभोक्ता की बचत
(CONSUMER'S SURPLUS)

प्राक्कथन (Introduction)

'उपभोक्ता की बचत' या 'उपभोक्ता का अतिरेक' (Consumer's surplus) का विचार कल्याणवादी आर्थिक विश्लेषण (welfare economic analysis) में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि इस विचार को सर्वप्रथम फ्रांस के अर्थशास्त्री ड्यूपिट (Dupuit) ने प्रस्तुत किया, परन्तु मार्शल पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होने इस विचार (concept) की अधिक वैज्ञानिक ढंग से तथा विस्तृत रूप से व्याख्या की और इसे कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अत मार्शल को ही 'उपभोक्ता की बचत' के विचार का जन्मदाता कहा जा सकता है।[1]

उपभोक्ता की बचत का आधार—उपयोगिता ह्रास नियम (Basis of Consumer's Surplus—The Law of Diminishing Utility)

उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार, किसी वस्तु की इकाइयों का प्रयोग करते जाने से बाद में आने वाली इकाइयों की उपयोगिता पहले की इकाइयो की अपेक्षा कम होती जाती है। इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता वस्तु विशेष की शुरू की इकाइयो के लिए अधिक कीमत देने को तत्पर रहता है क्योकि उनसे उसे अधिक उपयोगिता मिलती है अपेक्षाकृत बाद की इकाइयों के; परन्तु बाजार मे उपभोक्ता वस्तु की सभी इकाइयों के लिए समान कीमत देता है। उपभोक्ता किसी वस्तु को उस सीमा तक खरीदता है जहाँ पर कि उससे प्राप्त होने वाली उपयोगिता गिरकर उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर हो जाती है। वस्तु की इस सीमान्त इकाई के प्रयोग से उपभोक्ता को कोई अतिरेक या बचत प्राप्त नही होती क्योंकि जितनी उपयोगिता उसे मिलती है ठीक उसके बराबर कीमत के रूप में वह उपयोगिता खोता है अर्थात् सीमान्त इकाई पर उपयोगिता तथा अनुपयोगिता दोनों बराबर होती हैं। परन्तु सीमान्त इकाई से पहले की इकाइयों मे से प्रत्येक की उपयोगिता कीमत से अधिक होती है। इस प्रकार उपभोक्ता को सीमान्त इकाई से पहले की इकाइयो पर एक प्रकार की बचत का अनुभव होता है और इसे उपभोक्ता की बचत कहते हैं। स्पष्ट है कि उपभोक्ता की बचत 'उपयोगिता की घटने की प्रवृत्ति' पर आधारित होती है।

---

[1] यह दैनिक जीवन का अनुभव है कि अधिकांश वस्तुओं को खरीदने के लिए उपभोक्ता जितनी कीमत देता है (अर्थात् कीमत के रूप में उपयोगिता का त्याग करता है) उससे अधिक उपयोगिता उसे उस वस्तु के प्रयोग से प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ, हम एक समाचार-पत्र के लिए 25 पैसे देते है, परन्तु उससे कही अधिक उपयोगिता (माना कि 100 पैसों के बराबर उपयोगिता) हमें मिलती है; तो इस प्रकार हमें (100–25 =) 75 पैसों के बराबर बचत या अतिरेक (surplus) का अनुभव होता है, इसे ही 'उपभोक्ता की बचत' कहा जाता है।

उपयोगिता की बचत की परिभाषा (Definition of Consumer's Surplus)

प्रो. मार्शल ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार दी है :

"किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता जो कीमत देने को तत्पर होता है तथा जो कीमत वह वास्तव में देता है, उसका अन्तर (excess) ही अतिरिक्त सन्तुष्टि (surplus satisfaction) का आर्थिक माप है। इसको उपभोक्ता की बचत कहा जाता है।"[2]

मार्शल की परिभाषा के अन्तर्गत निहित विचार को ही विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न शब्दों में व्यक्त किया है। प्रो. जे.के. मेहता के अनुसार, "किसी वस्तु से प्राप्त उपभोक्ता की बचत उस वस्तु के प्रयोग से प्राप्त उपयोगिता तथा उसकी प्राप्त करने के लिए त्याग की जाने वाली उपयोगिता के अन्तर के बराबर होती है।"[3]

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—माना कि एक उपभोक्ता केलों का उपभोग करना चाहता है। बाजार में केलों की कीमत 10 पैसे प्रति केला है। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार, जैसे-जैसे उपभोक्ता केलो का उपभोग करता जायेगा उसके लिए बाद मे आने वाली इकाइयों की उपयोगिता, पहली इकाइयों की अपेक्षा घटती जायेगी। दूसरे शब्दों मे, शुरू की इकाइयो के लिए उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तैयार होगा क्योकि उनसे बाद की इकाइयो की अपेक्षा, अधिक उपयोगिता मिलती है। अग्र उदाहरण से समस्त स्थिति स्पष्ट होती है :

केलों की इकाइयां	प्राप्त उपयोगिता अर्थात् कीमत जो उपभोक्ता देने को तैयार है (पैसों में)	बाजार में कीमत (पैसों मे)	उपभोक्ता की बचत (पैसो मे)
1	80	10	80 – 10 = 70
2	70	10	70 – 10 = 60
3	50	10	50 – 10 = 40
4	30	10	30 – 10 = 20
5	10	10	10 – 10 = 00
	कुल उपयोगिता = 240 पैसे	कुल कीमत = 10 × 5 = 50 पैसे	उपभोक्ता की कुल बचत = 190 पैसे

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता को केले की पहली इकाई से 80 पैसे के बराबर उपयोगिता मिलती है, जबकि बाजार मे कीमत 10 पैसे है, अत इस प्रथम इकाई पर वह 70 पैसे की बचत का अनुभव करता है। इसी प्रकार दूसरी इकाई पर 60, तीसरी पर 40, चौथी पर 20 पैसो के बराबर बचत का अनुभव करता है। पाँचवे केले (अर्थात् सीमान्त इकाई) पर उसको कोई बचत नहीं होती क्योंकि प्राप्त उपयोगिता तथा कीमत दोनों बराबर हो जाती है। अत 5 केलो का उपभोग करने से उपभोक्ता को (70 + 60 + 40 + 20 + 0) = 190 पैसों के बराबर कुल बचत प्राप्त होती है।

[2] "The excess of the price which he would be willing to pay rather than go without the thing, over that which he actually does pay is the economic measure of this surplus satisfaction. It may be called consumer's surplus."

—Marshall, *Principles of Economics*, p. 124.

[3] "Consumer's surplus obtained by a person from a commodity is the difference between the satisfaction which he derives from it and which he foregoes in order to procure that commodity." —J. K. Mehta, *Groundwork of Economics*, p. 52.

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण—माँग रेखा बताती है कि एक उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न मात्राओं को किन कीमतों पर खरीदने को तत्पर होगा; दूसरे शब्दों में, माँग रेखा उन कीमतों को बताती है जो कि उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न मात्राओं के लिए देने को तत्पर है, या यह कहिये कि माँग रेखा वस्तु की विभिन्न मात्राओं से मिलने वाली उपयोगिताओं को बताती है। माँग रेखा के नीचे का क्षेत्रफल उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता को बताता है। चित्र 1 में PD माँग रेखा है तथा माना कि वस्तु की बाजार कीमत OP_1 है। इस कीमत पर उपभोक्ता वस्तु की OQ मात्रा खरीदता है, तो OQ मात्रा से मिलने वाली कुल उपयोगिता माँग रेखा के नीचे के क्षेत्रफल OPEQ के बराबर होगी। परन्तु बाजार में उपभोक्ता एक इकाई के लिए OP_1 कीमत देता है अर्थात् वह $OQ \times OP_1$ या OP_1EQ के बराबर कुल कीमत देता है; दूसरे शब्दों में, वह OP_1EQ के बराबर उपयोगिता का त्याग करता है।

चित्र—1

अतः चित्र में—
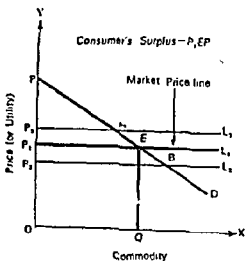
कुल उपयोगिता = क्षेत्रफल OPEQ

कुल कीमत जो उपभोक्ता वास्तव में देता है = क्षेत्रफल OP_1EQ

उपभोक्ता की बचत = कुल उपयोगिता − कुल कीमत

$= OPEQ - OP_1EQ$

$= P_1EP$ क्षेत्रफल

दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की बचत, माँग रेखा तथा कीमत रेखा के बीच का क्षेत्रफल होता है। यदि कीमत गिरकर OP_3 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर P_3BP हो जाती है। यदि कीमत बढ़कर OP_2 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत घटकर P_2AP हो जाती है। अतः सामान्यतया कीमत में कमी उपभोक्ता की बचत में वृद्धि करती है, और इसके विपरीत, कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की बचत में कमी करती है।

मार्शल ने बताया कि किसी देश में उपभोक्ता की बचत वहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। उन्नतशील देशों में परिवहन तथा संवादवहन, समाचार-पत्र इत्यादि की अधिक तथा सस्ती सुविधाएँ होती हैं जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को अधिक 'उपभोक्ता की बचत' प्राप्त होती है। इसके विपरीत पिछड़े तथा अविकसित देशों में ये सब सुविधाएँ बहुत कम तथा महँगी होती हैं; परिणामस्वरूप, ऐसे देशों के निवासियों को उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है।

उपभोक्ता की बचत की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF CONSUMER'S SURPLUS)

मार्शल का उपभोक्ता की बचत का विचार अग्र मान्यताओं पर आधारित है :

(1) उपयोगिता मापनीय है तथा इसे मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है। (2) मार्शल ने प्रत्येक वस्तु को एक स्वतन्त्र (independent) वस्तु माना है। दूसरे शब्दों में, वस्तु विशेष की उपयोगिता उसकी स्वय की पूर्ति पर निर्भर करती है और दूसरी वस्तुओं की पूर्ति से प्रभावित नही होती। (3) खरीदने की समस्त क्रिया मे मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। (4) मार्शल ने यह भी माना कि विचाराधीन वस्तु के कोई स्थानापन्न (substitutes) नहीं हैं और यदि उसकी स्थानापन्न वस्तुएँ है तो उन सबको एक वस्तु ही मान लेना चाहिए। (5) मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को सम्पूर्ण बाजार के सम्बन्ध मे भी बताया। बाजार की उपभोक्ता की बचत को निकालने के लिए उन्होने यह माना कि **बाजार में उपभोक्ताओं की आय, रुचि, फैशन, इत्यादि में अन्तर तथा विभिन्नताएं एक दूसरे को नष्ट (neutralize or cancel out) कर देती हैं,** इसलिए इन अन्तरो का कोई प्रभाव नही रह जाता।

उपभोक्ता की बचत की माप
(MEASUREMENT OF CONSUMER'S SURPLUS)

मार्शल के अनुसार, किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है, इसलिए उनके अनुसार, उपभोक्ता की बचत को भी मुद्रा की सहायता से माप सकते हैं। तालिका के रूप मे दिये गये उदाहरण की सहायता से उपभोक्ता की बचत की माप को स्पष्ट किया जा सकता है। यदि हम प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता से वस्तु की खरीदी जाने वाली इकाइयो की कुल कीमत को घटा दें, तो उपभोक्ता की बचत प्राप्त हो जायेगी। उदाहरण में, प्राप्त कुल उपयोगिता 240 पैसो मे बराबर है और कुल कीमत 50 पैसे है, तो उपभोक्ता की बचत = 240 – 50 = 190 पैसो के। दूसरे शब्दो मे, **उपभोक्ता की बचत को निकालने का गणितात्मक सूत्र इस प्रकार दिया जा सकता है :**

उपभोक्ता की बचत = (कुल उपयोगिता) – [(वस्तु की कीमत) × (वस्तु की खरीदी जाने वाली इकाइयो की संख्या)]

मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को केवल एक व्यक्ति के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण बाजार के लिए भी बताया। उन्होने यह माना कि बाजार मे यद्यपि व्यक्तियों की आय, रुचि, फैशन इत्यादि मे अन्तर होता है, परन्तु ये अन्तर या विभिन्नताएं एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। इसलिए,

बाजार में सभी उपभोक्ताओ द्वारा प्राप्त उपभोक्ता की बचत
= [माँग-मूल्यो का योग (Aggregate market demand prices)]
– [वास्तविक कीमत (Actual selling price)]

माँग-मूल्य वह मूल्य है जिस पर एक व्यक्ति वस्तु-विशेष को खरीदने को तैयार है, अर्थात् यह प्राप्त होने वाली उपयोगिता को बताता है। अत बाजार मे विभिन्न उपभोक्ताओ के माँग-मूल्यो को जोडने से बाजार मे प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता मालूम कर ली जाती है।

उपभोक्ता की बचत को मापने की कठिनाइयाँ या आलोचना
(DIFFICULTIES IN THE MEASUREMENT OF CONSUMER'S SURPLUS OR ITS CRITICISM)

उपभोक्ता की बचत उपयोगिता के घटने की प्रवृत्ति पर आधारित है, परन्तु उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है जिसको मापना कठिन है और इसलिए उपभोक्ता की बचत को भी ठीक प्रकार से नही मापा जा सकता। उपभोक्ता की बचत के विचार के सम्बन्ध मे आलोचको का कहना है कि (अ) यह विचार (concept) सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित नही है क्योंकि गलत मान्यताओं पर आधारित है; (ब) यदि इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित भी मान लिया जाये तो इसको मुद्रा रूपी पैमाने

से मापा नहीं जा सकता; और (रा) इसलिए इसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं रह जाता। वास्तव मे, इस विचार की अधिकांश आलोचनाएँ अवास्तविक मान्यताओं तथा उपयोगिता को मापने की कठिनाइयों से सम्बन्धित हैं। इसकी मुख्य आलोचनाएँ या इसके मापने से सम्बन्धित मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :

(1) **उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता**—(Utility cannot be measured)—उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है जिसे निश्चित रूप से कीमत के रूप मे अर्थात् मुद्रा रूपी पैमाने से मापा नहीं जा सकता। परन्तु मार्शल तथा उनके समर्थकों का कहना है कि निश्चित रूप से न सही परन्तु मोटे रूप से मुद्रा की सहायता से उपयोगिता को अवश्य मापा जा सकता है क्योंकि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिताओं के अनुसार ही उपभोक्ता कीमत देता है या देने को तैयार होता है।

(2) **द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान नहीं रहती** (Marginal utility of money does not remain constant)—मार्शल ने यह माना कि किसी वस्तु को खरीदने की क्रिया में उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। परन्तु यह मान्यता उचित नहीं है। उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयाँ खरीदता जाता है, वैसे-वैसे उसके पास द्रव्य की मात्रा कम होती जाती है, परिणामस्वरूप द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है। अतः ऐसी स्थिति में उपभोक्ता की बचत को मापना कठिन हो जाता है। 'द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहने' की मान्यता मे सत्यता का अंश तब हो सकता है जबकि उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय करता है। प्रो हिक्स (Hicks) ने इस कठिनाई को हल करने की दृष्टि से बताया कि उपभोक्ता की बचत का अर्थ द्राव्यिक आय (money income) में वृद्धि से लिया जाना चाहिए जो कि वस्तु विशेष की कीमत मे कमी होने के कारण होती है।

(3) **उपभोक्ता को पूरी मांग-तालिका की जानकारी नहीं होती** (Consumer does not know the full demand schedule)—यदि उपभोक्ता को किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित करने का डर दिखाया जाये तो वह उस वस्तु के लिए कितना मूल्य देने को तैयार होगा, यह ठीक-ठीक जानना उपभोक्ता के लिए बहुत कठिन है। इसी प्रकार वस्तु की विभिन्न इकाइयों के लिए वह कितना-कितना मूल्य देने को तैयार होगा यह जानना भी बहुत कठिन है, वह मांग-मूल्यों का केवल एक साधारण अनुमान ही लगा सकता है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता व्यावहारिक जीवन मे पहले बाजार मे प्रचलित कीमत को मालूम करता है, तब वह यह निश्चित करता है कि वस्तु विशेष की कितनी इकाइयाँ खरीदी जायें। संक्षेप मे, कठिनाई यह है कि उपभोक्ता की माँग तालिका कल्पित होती है और केवल अनुमान पर आधारित होती है, इसलिए उपभोक्ता की बचत को ठीक-ठीक नहीं मापा जा सकता है।

(4) **उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियों में भिन्नता होती है** (Consumer's economic conditions differ)—बाजार मे सभी उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियाँ एकसमान नहीं होती, कुछ धनी होते हैं तथा कुछ निर्धन, और धनी व्यक्तियों के लिए रुपये की उपयोगिता निर्धन व्यक्तियों की अपेक्षा कम होती है। एक धनी व्यक्ति एक वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को तैयार हो सकता है जबकि एक निर्धन व्यक्ति उसी वस्तु के लिए कम कीमत देने को तैयार होता है, परन्तु बाजार मे दोनों व्यक्ति उस वस्तु के लिए एक ही कीमत देते हैं। अतः धनी व्यक्ति को, निर्धन की अपेक्षा, अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों मे, बाजार मे उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियों मे अन्तर होने के कारण उपभोक्ता की बचत को ठीक प्रकार से नहीं मापा जा सकता।

परन्तु यह कठिनाई एक बड़ी बाधा (obstacle) नहीं है। जब बाजार में बहुत व्यक्ति होते है तो 'औसत का नियम' (Law of averages) लागू होने लगता है। कुछ धनी व्यक्तियों का धन (wealth) दूसरे व्यक्तियों की गरीबी द्वारा सन्तुलित हो जाता है और इसलिए बाजार मे उपभोक्ताओं के आर्थिक अन्तरों पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है।

(5) **उपभोक्ताओं की रुचियों तथा चेतन्यताओं में अन्तर** (Consumers differ in tastes and sensibilities)—यदि यह मान लें कि बाजार में सभी उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियाँ एकसमान है तो भी उनको रुचियो तथा चेतन्यताओं में अन्तर होता है। एक व्यक्ति की इच्छा वस्तु विशेष के लिए अधिक तीव्र हो सकती है अपेक्षाकृत दूसरे व्यक्ति के; ऐसी स्थिति में पहला व्यक्ति, दूसरे की अपेक्षा, उस वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को तैयार होगा और इसलिए पहले व्यक्ति को अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी क्योंकि बाजार में दोनों के लिए वस्तु की कीमत एक ही है।

परन्तु यह कठिनाई उपभोक्ता की बचत को मापने में एक बड़ी बाधा नहीं है क्योंकि इस स्थिति में भी 'औसत का नियम' लागू होता है। जब बाजार में व्यक्तियों की अधिक संख्या होती है तो उनकी रुचियों तथा चेतन्यताओं मे अन्तर एक दूसरे को नष्ट या सन्तुलित कर देते हैं और इस प्रकार अन्तरों पर ध्यान देने की कोई विशेष आवश्यकता नही होती है।

(6) **स्थानापन्न वस्तुओं के कारण कठिनाई** (Difficulties owing to the presence of substitutes)—उदाहरणार्थ, चाय तथा कॉफी एक दूसरे की स्थानापन्न वस्तुएँ हैं। **चाय तथा कॉफी दोनों की संयुक्त कुल उपयोगिता इन दोनों की अलग-अलग उपयोगिता के योग से अधिक होगी।** माना कि दोनों के उपलब्ध न होने पर उपभोक्ता को 80 इकाइयों के बराबर 'सन्तुष्टि की हानि' या 'अनुपयोगिता' (loss of satisfaction or disutility) होती है और केवल चाय न मिलने पर उसे 30 इकाइयों के बराबर अनुपयोगिता मिलती है क्योंकि वह एक सीमा तक कॉफी का प्रयोग करके सन्तुष्टि की हानि को पूरा कर देता है। यदि उसे केवल कॉफी नही मिलती है तो उसे 20 इकाइयों के बराबर अनुपयोगिता मिलती है क्योंकि एक सीमा तक चाय का प्रयोग करके वह अनुपयोगिता को कम कर देता है। इस प्रकार दोनों की अलग-अलग उपयोगिताओ का योग 20 + 30 = 50 इकाइयों के बराबर होता है जबकि दोनों की सयुक्त कुल उपयोगिता 80 इकाइयों के बराबर है और यह अधिक है। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता की बचत को ठीक-ठीक मापना बहुत कठिन है। (इस कठिनाई को दूर करने के लिए मार्शल ने यह सुझाव दिया कि स्थानापन्न वस्तुओ को एक ही वस्तु मान लेना चाहिए और तब उनसे प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की बचत को मापना चाहिए।)

(7) **जीवन रक्षक तथा परम्परागत आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत अनिश्चित होती है**—यदि जीवन रक्षक तथा आवश्यक वस्तुओ के प्रयोग से वंचित कर दिये जायें तो हम उनको प्राप्त करने के लिए सब कुछ देने को तैयार हो जाते हैं। एक प्यासा या भूखा व्यक्ति पानी या रोटी से वंचित कर देने की अवस्था मे, एक गिलास पानी या रोटी के लिए कितना मूल्य देने को तैयार होगा, यह कहना कठिन है और इस प्रकार उपभोक्ता की बचत को मापा नही जा सकता।

(8) **प्रतिष्ठात्मक वस्तुओ के सम्बन्ध में भी उपभोक्ता की बचत अनिश्चित होती है**—प्रतिष्ठात्मक वस्तुओ जैसे, हीरे, जवाहरात इत्यादि के सम्बन्ध मे उपभोक्ता की बचत को मालूम करना कठिन है। इन वस्तुओ की ऊँची कीमतो पर ही धनी व्यक्तियो को इनसे अधिक उपयोगिता मिलती है, इनकी कीमतो के कम हो जाने से उपयोगिता कम हो जाती है। अत. प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं की कीमतो में कमी हो जाने से प्राय उपभोक्ता की बचत मे वृद्धि नही होती और इस प्रकार इन वस्तुओ के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत अनिश्चित हो जाती है।

(9) **उपभोक्ता के लिए वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों के खरीदने के साथ-साथ प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता घटती जाती है**—पेटन (Patten) के अनुसार, जब उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयाँ खरीदता जाता है तो उसके लिए प्रारम्भिक इकाइयों (earlier units) की उपयोगिता कम होती जाती है। उपभोक्ता की बचत की सही माप के लिए यह जरूरी है कि इस प्रकार की घटती हुई उपयोगिता को ध्यान मे रखा जाये, इसका अर्थ है कि प्रत्येक अतिरिक्त

इकाई के खरीदने पर उपभोक्ता की माँग-सारणी में परिवर्तन किया जाये और ऐसा करना कठिन है। इसलिए उपभोक्ता की बचत की सही माप नही की जा सकती है।

परन्तु यह कठिनाई सत्य नहीं है। प्रथम, पीगू (Pigou) का कहना है कि किसी वस्तु के प्रयोग में थोड़ी वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वस्तु की प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता में कोई विशेष अन्तर नही होता। दूसरे, यह कठिनाई तब सत्य होती है जबकि माँग-मूल्यों की सूची (list of demand prices) वस्तु की विभिन्न इकाइयों की औसत उपयोगिता (average utility) को बताती, जबकि ऐसा नही है। उदाहरणार्थ, माना कि एक उपभोक्ता को पहली कमीज से 10 रु. के बराबर उपयोगिता मिलती है। दूसरी कमीज को खरीदने से उसको 8 रु की उपयोगिता मिलती है, तो दो कमीजों के खरीदने के बाद औसत उपयोगिता (10 + 8)/2 = 9 रु. होगी। तीसरी कमीज से 6 रु. की उपयोगिता मिलती है, तो अब एक कमीज की औसत उपयोगिता (10 + 8 + 6)/3 = 8 रु. के बराबर होगी। यदि माँग-रेखा औसत उपयोगिताओं को बताये तो वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों के प्रयोग से प्रारम्भिक इकाइयों की औसत उपयोगिता घटती जायेगी। परन्तु माँग-मूल्यों की सूची अतिरिक्त इकाइयों (additional units) से प्राप्त अतिरिक्त उपयोगिता (additional utility) को बताती है। उपभोक्ता को दूसरी रोटी से जो उपयोगिता मिलती है, वह पहली रोटी के अतिरिक्त मिलती है जो कि 8 रु के बराबर है। अत ऐसी स्थिति में अधिकाधिक इकाइयों के प्रयोग से प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

(10) यह विचार काल्पनिक तथा अव्यावहारिक है (The concept is imaginary and impractical)—प्रो. निकोलसन (Nicholson) ने इसको काल्पनिक तथा अव्यावहारिक कहा। उनके अनुसार यह कहना कोई महत्त्व नहीं रखता कि इंगलैण्ड की 100 पौण्ड वार्षिक आय की उपयोगिता मध्य अफ्रीका की 1,000 पौण्ड वार्षिक आय के बराबर है।

मार्शल ने इसके जवाब में कहा कि इस प्रकार का कथन महत्त्वहीन नही है। इंगलैण्ड एक उन्नतशील देश है जहाँ पर जीवन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ जैसे बिजली, यातायात व संवाद-वहन के साधन, मनोरंजन की सुविधाएँ, खाने-पीने की वस्तुएँ, सस्ते दामों पर आसानी से उपलब्ध हैं और वहां उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होती है। इसके विपरीत, मध्य अफ्रीका एक अविकसित तथा पिछड़ा हुआ देश है जहाँ पर कि ये सब वस्तुएँ तथा सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं, और यदि कुछ हैं तो वे थोड़ी मात्रा में हैं तथा महँगी हैं और वहाँ उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है। इस प्रकार मार्शल ने बताया कि यह विचार काल्पनिक तथा अव्यावहारिक नही है, यह विचार तो देशों की आर्थिक उन्नति की तुलना करने में सहायता देता है।

निष्कर्ष—इस विचार की आलोचनाओं या इसके मापने से सम्बन्धित कठिनाइयों के अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि उपभोक्ता की बचत का विचार सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्ण रूप से सही नही है तथा इसकी पूर्ण रूप से सही माप नही हो सकती, परन्तु यह विचार कोरी कल्पना नही है और न बिलकुल अव्यावहारिक है। व्यावहारिक जीवन में बहुत-सी वस्तुओं के प्रयोग से हम उपयोगिता की बचत का अनुभव करते हैं। यद्यपि निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कितनी उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है, इसका द्रव्य की सहायता से केवल मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। रोबर्टसन (Robertson) का कथन ठीक है :

यदि हम इस विचार से बहुत अधिक आशा न करें तो यह बौद्धिक रूप से आदरणीय है तथा व्यावहारिक कार्यों में मार्ग-प्रदर्शन करने की दृष्टि से लाभदायक है।[4]

[4] Provided, "you do not expect too much from it," the concept of consumer's surplus is "both intellectually respectable and useful as a guide to practical action".

उपभोक्ता की बचत का महत्त्व

(IMPORTANCE OF THE CONCEPT OF CONSUMER'S SURPLUS)

उपभोक्ता की बचत के महत्त्व को हम दो भागो में अध्ययन कर सकते है : (I) सैद्धान्तिक महत्त्व, तथा (II) व्यावहारिक महत्त्व ।

(I) सैद्धान्तिक महत्त्व (Theoretical Importance)

उपभोक्ता की बचत का विचार किसी वस्तु के 'उपयोग-मूल्य' (value-in-use) **तथा विनिमय-मूल्य** (value-in-exchange) **के अन्तर को स्पष्ट करता है।** यह दैनिक जीवन का अनुभव है कि बहुत-सी वस्तुओ, जैसे—दियासलाई, समाचार-पत्र, पोस्टकार्ड इत्यादि की उपयोगिता (अर्थात् उपयोग-मूल्य) अधिक होती है परन्तु उनके लिए दी जाने वाली कीमत (अर्थात् विनिमय-मूल्य) बहुत कम होती है। ऐसी वस्तुओ के प्रयोग से उपभोक्ता को 'उपभोक्ता की बचत' बहुत अधिक प्राप्त होती है। इस प्रकार यह विचार बताता है कि यह आवश्यक नही है कि किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर हो।

(II) व्यावहारिक महत्त्व (Practical Importance)

(1) दो देशो या एक ही देश में भिन्न-भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना में मदद—जो देश अधिक उन्नतिशील होगा वहां पर विभिन्न प्रकार की वस्तुए तथा सुविधाए पर्याप्त मात्रा में तथा सस्ती होगी और इसलिए उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होगी। दूसरे शब्दो मे, जिस देश में लोगों को अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है वह देश आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नतिशील माना जायेगा। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की सहायता से किसी भी समय दो देशों की आर्थिक स्थितियो की तुलना की जा सकती है। इसी प्रकार एक ही देश मे विभिन्न समयों पर उसकी आर्थिक स्थितियो की तुलना इस विचार की मदद से की जा सकती है।

(2) एकाधिकारी को मूल्य निर्धारण में सहायक—यदि एकाधिकारी की वस्तु ऐसी है जिससे उपभोक्ताओ को बहुत अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य ऊँचा करके अपना लाभ बढ़ा सकता है। परन्तु मूल्य ऊँचा करते समय वह इस बात का ध्यान रखता है कि मूल्य इतना ऊँचा न हो कि वह सारी उपभोक्ता की बचत को समाप्त कर दे, नही तो उपभोक्ताओ मे असन्तुष्टि फैलेगी और उसका एकाधिकार खतरे मे पड़ सकता है। वह मूल्य ऊँचा करते समय उपभोक्ता की बचत अवश्य छोड़ देता है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ की माप में सहायता—प्राय. एक देश दूसरे देशों से ऐसी वस्तुओ का आयात करता है जो कि अपने देश मे कम हो तथा महँगी हो। ऐसी स्थिति मे देश मे वे वस्तुएँ सस्ती मिलने लगेगी जिनका आयात किया जा रहा है, परिणामस्वरूप उपभोक्ता इन वस्तुओ के लिए पहले की अपेक्षा बाजार मे कम कीमत देंगे और इस प्रकार उन्हें सन्तुष्टि का अतिरेक (surplus) अनुभव होगा, दूसरे शब्दो मे, उन्हे उपभोक्ता की बचत प्राप्त होने लगेगी। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न लाभ को मापता है।

(4) राजस्व के क्षेत्र में (In the field of Public Finance)—मार्शल ने 'उपभोक्ता की बचत' के विचार का प्रयोग टैक्स तथा अनुदान (tax and bounty or tax and subsidy) के प्रभावो के विश्लेषण के लिए किया।

पहले हम किसी वस्तु पर टैक्स के लगाने के प्रभावो का विश्लेषण करेंगे। जब किसी वस्तु पर टैक्स लगाया जाता है तो उसकी कीमत मे वृद्धि होगी और उपभोक्ता की बचत मे कमी हो जायेगी। दूसरी ओर टैक्स द्वारा सरकार अपनी आय को बढ़ाती है। अतः टैक्स लगाते समय सरकार अतिरिक्त आय (additional revenue) से प्राप्त उपयोगिता तथा उपभोक्ता की बचत में कमी, इन दोनो की तुलना करती है। यदि टैक्स ऐसा है जिसके लगाने से उपभोक्ता की बचत मे कमी अधिक होती है

अपेक्षाकृत अतिरिक्त आय की उपयोगिता के, तो ऐसा टैक्स उचित नही होगा और सरकार ऐसे टैक्स को लगाना पसन्द नहीं करेगी।

टैक्स के प्रभावों का अध्ययन हम, चित्रों की सहायता से, तीन प्रकार के उद्योगों के अन्तर्गत करेंगे—(i) बढ़ती हुई लागत वाले उद्योग (Increasing Cost Industry) (ii) घटती हुई लागत वाले उद्योग (Decreasing Cost Industry) तथा (iii) स्थिर लागत वाले उद्योग (Constant Cost Industry)।

तीनों प्रकार के उद्योगों की स्थिति को चित्र 2 (a), (b), तथा (c) मे दिखाया गया है।
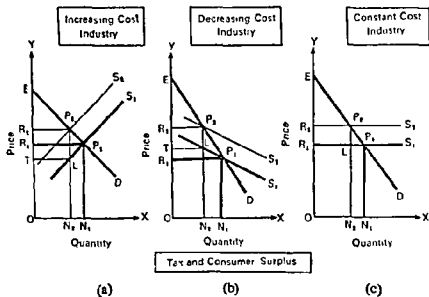
चित्र—2

चित्र 2 (a) बढ़ती हुई लागत के उद्योग को दिखाता है, इसलिए पूर्ति रेखा S_1 ऊपर को चढ़ती हुई है; चित्र 2(b) घटती हुई लागत के उद्योग को बताता है, इसलिए पूर्ति रेखा S_1 नीचे को गिरती हुई है; चित्र 2(c) स्थिर लागत उद्योग को बताता है, इसलिए पूर्ति रेखा S_1 एक पडी हुई रेखा है।

टैक्स लगने से पहले तीनो चित्रों में शुरू की (original) कीमत P_1N_1 है तथा वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्रा ON_1 है; उपभोक्ता की बचत ER_1P_1 है (क्योंकि उपभोक्ता की बचत माँग रेखा तथा कीमत रेखा के बीच के क्षेत्रफल द्वारा मापी जाती है)।

अब माना कि सरकार द्वारा वस्तु पर टैक्स लगा दिया जाता है। टैक्स लगने पर वस्तु की कीमत बढेगी। तीनों चित्रों 2 (a), 2 (b) तथा 2 (c) मे नयी पूर्ति रेखा स्थिति S_2 हो जाती है तथा कीमत बढ़कर P_2N_2 हो जाती है और खरीदी जाने वाली मात्रा घट कर ON_2 हो जाती है। दोनो पूर्ति रेखाओं S_1 तथा S_2 के बीच खड़ी दूरी टैक्स की मात्रा बताती है (क्योंकि कीमत मे वृद्धि टैक्स के कारण हुई है); अतः तीनों चित्रों में टैक्स की मात्रा P_2L है, अर्थात् वस्तु की एक इकाई बिकने पर सरकार को टैक्स के रूप में P_2L आय प्राप्त होती है। टैक्स लगने के कारण कीमत में वृद्धि होती है और इसलिए उपभोक्ता की बचत घट जाती है; तीनों चित्रो मे घटी हुई उपभोक्ता की बचत ER_2P_2 द्वारा दिखायी गयी है।

चित्र 2 (a) में वस्तु की एक इकाई पर टैक्स की मात्रा P_2L है, वस्तु की कुल मात्रा ON_2 या TL बिकती है; अतः सरकार को कुल टैक्स के रूप मे मिलने वाली आय $= TL \times P_2L = P_2LTR_2$।

अतः चित्र 2 (a) में, टैक्स लगने के बाद उपभोक्ता

की बचत में कमी या नुकसान $= EP_1R_1 - EP_2R_2 = R_1P_1P_2R_2$

टैक्स लगने के बाद सरकार

को टैक्स के रूप में प्राप्त कुल आय $= P_2LTR_2$

स्पष्ट है कि चित्र 2 (a) में, टैक्स लगने के बाद उपभोक्ता की बचत मे नुकसान (अर्थात् $R_1P_1P_2R_2$) कम है अपेक्षाकृत सरकार को टैक्स के रूप मे मिलने वाली कुल आय (अर्थात् P_2LTR_2) के। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बढ़ती हुई लागत वाले उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु पर सरकार का टैक्स लगाना उचित है। इसकी व्याख्या इस तरह से की जा सकती है। जब टैक्स लगने के कारण कीमत बढ जाती है तो उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा खरीदेंगे, परिणामस्वरूप वस्तु का उत्पादन कम हो जायेगा, और चूंकि उद्योग बढती हुई लागतो के अन्तर्गत कार्य कर रहा है इसलिए उत्पादन कम होने से उत्पादन-लागत मे कमी हो जायेगी। उत्पादन-लागत मे कमी एक सीमा तक वस्तु की कीमत मे वृद्धि की क्षतिपूर्ति (compensation) कर देगी, इसलिए वस्तु की कीमत मे वृद्धि टैक्स की पूरी मात्रा के बराबर नही होती है; परिणामस्वरूप उपभोक्ता की बचत का नुकसान कम होता है।

चित्र 2 (b) में,

उपभोक्ता की बचत का नुकसान $= EP_1R_1 - EP_2R_2 = R_1P_1P_2R_2$

सरकार को टैक्स के रूप मे प्राप्त कुल आय $= P_2LTR_2$

स्पष्ट है कि चित्र 2 (b) में उपभोक्ता की बचत का नुकसान ($R_1P_1P_2R_2$) अधिक है अपेक्षाकृत टैक्स के रूप में प्राप्त आय (P_2LTR_2) के; दूसरे शब्दों में, घटती हुई लागत के उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु पर सरकार का टैक्स लगाना उचित नही है।

चित्र 2 (c) में,

उपभोक्ता की बचत का नुकसान $= EP_1R_1 - EP_2R_2$

$= R_1P_1P_2R_2$

सरकार को टैक्स के रूप मे प्राप्त कुल आय $= P_2LR_1R_2$

स्पष्ट है कि चित्र 2 (c) में उपभोक्ता की बचत का नुकसान ($R_1P_1P_2R_2$) अधिक है अपेक्षाकृत टैक्स के रूप में प्राप्त आय ($P_2LR_1R_2$) के; दूसरे शब्दो में, स्थिर लागत के उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु पर सरकार का टैक्स लगाना उचित नही है।

उपर्युक्त विवरण का निचोड़ है कि केवल बढ़ती हुई लागत वाले उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु पर सरकार का टैक्स लगाना उचित है क्योंकि ऐसे उद्योग पर टैक्स लगाने से उपभोक्ता की बचत का नुकसान कम होगा अपेक्षाकृत टैक्स के रूप में प्राप्त आय के। घटती हुई लागत तथा स्थिर लागत के उद्योगो पर सरकार द्वारा टैक्स लगाने का औचित्य (justification) नही है।

अब हम एक उद्योग को सरकार द्वारा दिये जाने वाले 'अनुदान' या 'आर्थिक सहायता' (subsidy or bounty) के प्रभावों की विवेचना करते हैं। अनुदान देने का मुख्य उद्देश्य है कि वस्तु की कीमत मे कमी हो जायें ताकि उपभोक्ता उसकी मात्रा खरीद सके, इस प्रकार अनुदान देकर सरकार उद्योग विशेष को प्रोत्साहित करती है। अनुदान देने के कारण कीमत मे कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की बचत मे वृद्धि होती हैं, परन्तु, दूसरी ओर, अनुदान के रूप मे सरकार को नुकसान होता है। अतः सरकार ऐसे उद्योग को अनुदान देगी जहां पर कि उपभोक्ता की बचत अधिक होती है अपेक्षाकृत अनुदान के रूप मे नुकसान के।

चित्र 3 के (a), (b) तथा (c) क्रमश. बढ़ती हुई लागत, घटती हुई लागत, तथा स्थिर लागत के उद्योगों को बताते है। अनुदान देने से पहले, तीनो चित्रो (a), (b) तथा (c) मे

चित्र—3
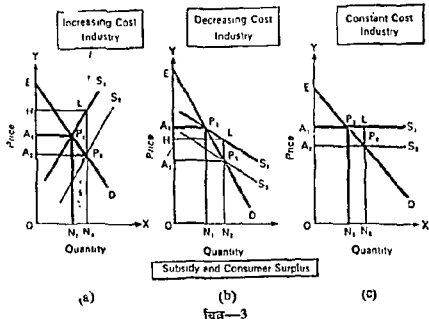
वस्तु की कीमत P_1N_1 है, खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा ON_1 है, तथा उपभोक्ता की बचत EA_1P_1 है।

अनुदान देने के बाद तीनों चित्रों में पूर्ति की स्थिति नयी पूर्ति रेखा S_2 बताती है और कीमत घटकर P_2N_2 हो जाती है। कीमत घटने के कारण उपभोक्ता की बचत बढ़ जायेगी; तीनों चित्रों में उपभोक्ता की बचत बढ़कर EA_2P_2 हो जाती है।

अनुदान के कारण कीमत में कमी होती है; इसलिए (तीनो चित्रों में) दोनों पूर्ति रेखाओं S_1 तथा S_2 के बीच बिन्दु P_2 से ऊपर को खड़ी दूरी P_2L अनुदान की मात्रा को बताती है; अनुदान की यह मात्रा वस्तु की एक इकाई पर है। अतः अनुदान की कुल मात्रा को ज्ञात करने के लिए वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा ON_2 या A_2P_2 को P_2L से गुणा कर दिया जाता है; दूसरे शब्दों में, चित्र 3 (a) तथा 3 (b) में अनुदान की कुल मात्रा $= A_2P_2LH$ है तथा चित्र 3 (c) मे अनुदान की कुल मात्रा $= A_2P_2LA_1$

चित्र 3 (a) में,

अनुदान के रूप में सरकार को नुकसान $= A_2P_2LH$

उपभोक्ता की बचत में वृद्धि $= EA_2P_2 - EA_1P_1$

$= A_2P_2P_1A_1$

चित्र 3 (a) से स्पष्ट है कि अनुदान के रूप मे नुकसान (A_2P_2LH) अधिक है अपेक्षाकृत उपभोक्ता की बचत में वृद्धि ($A_2P_2P_1A_1$) के; अतः सरकार बढ़ती हुई लागत के उद्योग को अनुदान नही देगी।

चित्र 3 (b) में,

अनुदान के रूप में सरकार को नुकसान $= A_2P_2LH$

उपभोक्ता की बचत मे वृद्धि $= EA_2P_2 - EA_1P_1$

$= A_2P_2P_1A_1$

चित्र 3 (b) से स्पष्ट है कि अनुदान के रूप मे नुकसान (A_2P_2LH) कम है अपेक्षाकृत

उपभोक्ता की बचत में वृद्धि ($A_2P_2P_1A_1$) के; अतः सरकार घटती हुई लागत के उद्योग को अनुदान देना पसन्द करेगी।

चित्र 3 (c) में,

अनुदान के रूप में सरकार को नुकसान $= A_2P_2LA_1$

उपभोक्ता की बचत मे वृद्धि $= EA_2P_2 - EA_1P_1$

$= A_2P_2P_1A_1$

चित्र 3 (c) से स्पष्ट है कि अनुदान के रूप मे नुकसान ($A_2P_2LA_1$) अधिक है अपेक्षाकृत उपभोक्ता की बचत मे वृद्धि ($A_2P_2P_1A_1$) के; अतः सरकार स्थिर लागत के उद्योग को अनुदान नहीं देगी।

उपर्युक्त विवेचन का निचोड़ है कि सरकार द्वारा घटती हुई लागत के उद्योग को अनुदान देना उचित होगा; बढ़ती हुई लागत तथा स्थिर लागत के उद्योगों को अनुदान देने का कोई औचित्य (justification) नहीं है।

प्रश्न

1. उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्त्व को समझाइए।
   Explain the doctrine of consumer's surplus. Explain its theoretical and practical importance.
2. उपभोक्ता की बचत की धारणा की व्याख्या कीजिए। उपभोक्ता की बचत को मापने से सम्बन्धित कठिनाइयों की विवेचना कीजिए।
   Explain the concept of consumer's surplus. Discuss the difficulties regarding the measurement of consumer's surplus.

12

तटस्थता-वक्र विश्लषण-1

(Indifference Curve Analysis-1)

तटस्थता-वक्र रेखाओं का अर्थ तथा उनकी विशेषताएँ
(The Concept and Characteristics of Indifference Curves)

उपयोगिता विश्लेषण के दोष
(DEFECTS OF UTILITY ANALYSIS)

मार्शल का माँग सिद्धान्त 'उपयोगिता-दृष्टिकोण' (utility approach) पर आधारित है अर्थात् उनके अनुसार, उपयोगिता को मापा जा सकता है। मार्शल ने माँग सिद्धान्त की व्याख्या उपयोगिता, सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) के आधार पर की है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता। मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण के निम्न दोष बताये गये :

(1) किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता एक व्यक्तिगत (subjective) धारणा है जो कि व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में निवास करती है। अतः एक व्यक्तिगत भावना (subjective feeling) को किसी वस्तुगत पैमाने (objective standard) से मापने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

(2) उपयोगिता केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ ही भिन्न-भिन्न नहीं होती, बल्कि यदि एक ही व्यक्ति लिया जाये तो भी भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ (reactions) होंगी। अतः उपयोगिता हर समय बदलती रहती है और ऐसी वस्तु को, जो कि परिवर्तनशील है या हर समय बदलती रहती है, मापा नहीं जा सकता है।

(3) उपयोगिता को मापने के लिए कोई निश्चित तथा स्थिर (constant) पैमाना नहीं है। यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, परन्तु द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं है, वह बदलता रहता है। मार्शल ने द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लिया जो कि गलत है। जैसा कि हिक्स ने बताया है कि इस मान्यता के परिणामस्वरूप मार्शल 'आय-प्रभाव' (income-effect) पर ध्यान न दे सके।

(4) मार्शल यह भी मानकर चले कि एक वस्तु की माँग अन्य वस्तुओं की माँग से बिलकुल स्वतन्त्र (independent) होती है, वह अन्य वस्तुओं की माँग से प्रभावित नहीं होती या उस पर निर्भर नहीं करती है। इस मान्यता के परिणामस्वरूप मार्शल के सिद्धान्त का प्रयोग एक वस्तु-मॉडल (single-commodity model) तक ही सीमित रह जाता है; उसको सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) अर्थात् स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं (substitutes and complementary goods) के सम्बन्ध में प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है।

स्पष्ट है कि मार्शल की 'उपयोगिता विश्लेषण' (utility analysis) अवास्तविक तथा अनुचित मान्यताओं पर आधारित है; परिणामस्वरूप इसका महत्त्व और प्रयोग सीमित रह जाता है।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण का आधार : क्रमवाचक उपयोगिता
(BASIS OF INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS ORDINAL UTILITY)

मार्शल की 'उपयोगिता विश्लेषण' के अन्तर्गत उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्रियों, ऐलन तथा हिक्स (Allen and Hicks) ने 'तटस्थता विश्लेषण' (indifference analysis) को जन्म दिया; इसे 'प्राथमिकता दृष्टिकोण' (preference approach) या 'प्रतिस्थापन विश्लेषण' (substitution analysis) भी कहते हैं। **'प्राथमिकता दृष्टिकोण' उपयोगिता के विचार को अस्वीकार (deny) नहीं करता, यह तो केवल उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन की आवश्यकता को दूर कर देता है। 'उपयोगिता विश्लेषण' का दृष्टिकोण संख्यात्मक (cardinal approach) है, जबकि 'प्राथमिकता विचार' (preference approach) का दृष्टिकोण क्रमसूचक (ordinal approach) है।** इस व्याख्या के अन्तर्गत *यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि वस्तु विशेष से उपभोक्ता को कितनी उपयोगिता* मिलती है या इसकी उपयोगिता दूसरी वस्तु की उपयोगिता से कितनी अधिक है। इसके अन्तर्गत तो उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय केवल अपने 'प्रायमिकता क्रम' (scale of preference) को ध्यान में रखना है अर्थात् वह वस्तुओं को उनके महत्त्व के अनुसार क्रम में रखता है। प्रत्येक क्रम (scale) सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताता है और प्रत्येक क्रम को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, इत्यादि क्रमसूचक या क्रमवाचक सख्याए (ordinal numbers) प्रदान की जाती हैं। चूंकि इन क्रमवाचक सख्याओ को जोड़ा नही जा सकता, इसलिए 'प्राथमिकता दृष्टिकोण' को 'क्रमवाचक उपयोगिता का सिद्धान्त' (Theory of Ordinal Utility) भी कहा जाता है। इस 'प्राथमिकता क्रम' की सहायता से, उपयोगिता के बिना संख्यात्मक मापन के, उपभोक्ता यह बता सकता है **कि वस्तुओं का कोई एक संयोग वस्तुओ के किसी दूसरे संयोग से उसे अधिक पसन्द है, कम पसन्द है या बराबर पसन्द है।**

तटस्थता विश्लेषण का संक्षिप्त ऐतिहासिक विकास
(BRIEF HISTORICAL EVOLUTION OF THE INDIFFERENCE ANALYSIS)

सर्वप्रथम एजवर्थ (Edgeworth) ने सन् 1881 में प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा पूरक वस्तुओं (competitive and complementary goods) के अध्ययन के लिए तटस्थता-वक्र रेखाओ का प्रयोग किया। इसके पश्चात् सन् 1906 में इटेलियन अर्थशास्त्री पेरिटो (Pareto) ने एजवर्थ की रीति को अपनाया।

वास्तव मे, पेरिटो प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने स्पष्ट रूप से उपयोगिता की अमापनीयता (immeasurability) पर बल दिया। पेरिटो ने इस बात पर जोर दिया कि उपयोगिता की तुलना की जा सकती है परन्तु उसे 'निरपेक्ष रूप से' (in the absolute sense) मापा नहीं जा सकता।' इस तथ्य के आधार पर उसने बताया कि 'उपयोगिता के विचार' के स्थान पर 'प्राथमिकता क्रम' (scale of preference) के विचार का प्रयोग करना वांछनीय होगा।

पेरिटो का मुख्य दोष यह था कि वे अपने विश्लेषण मे पूर्ण रूप से अनुरूप (consistent) नही थे, यद्यपि उन्होने अपने नये सिद्धान्त की स्थापना की परन्तु वे उपयोगिता से सम्बन्धित विचारो का प्रयोग करते रहे। अत. बाद मे अन्य अर्थशास्त्रियो ने तटस्थता विश्लेषण मे सुधार किये। सन् 1913 मे जोनसन (Johnson) तथा सन् 1915 मे स्लट्स्की (Slutsky) ने कुछ सुधार किये। सन् 1934 मे प्रो हिक्स तथा प्रो ऐलन ने 'मूल्य सिद्धान्त का पुनर्निर्माण' (A Reconstruction of the Theory of Value) के नाम से एक लेख प्रकाशित किया जिसमे तटस्थता विश्लेषण का अधिक वैज्ञानिक रूप से विकास किया। तत्पश्चात् प्रो. हिक्स ने अकेले अपनी पुस्तक *Value and Capital* मे तटस्थता विश्लेषण को पूर्णरूप मे विकसित किया।

तटस्थता-वक्र की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF INDIFFERENCE CURVE)

तटस्थता-वक्र के अर्थ को जानने से पूर्व तटस्थता तालिका (indifference schedule) को समझना आवश्यक है। प्रो. मेयर्स (Meyers) के अनुसार—

> **तटस्थता तालिका वह तालिका है जो कि दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे कि किसी व्यक्ति को समान सन्तोष प्राप्त होता है। यदि इस तटस्थता तालिका को एक रेखा के रूप में दिखाया जाये तो हमें तटस्थता-वक्र रेखा प्राप्त हो जाती है।[1]**

तटस्थता-वक्र रेखा दो वस्तुओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जिनसे समान सन्तुष्टि मिलती है और इसलिए उनके बीच व्यक्ति तटस्थ (indifferent) रहता है। स्पष्ट है कि ऐसी रेखा का नाम तटस्थता-वक्र रेखा पड़ा। चूंकि तटस्थता रेखा पर प्रत्येक बिन्दु समान सन्तुष्टि को बताता है, इसलिए इसे 'समान-सन्तुष्टि रेखा' (Iso-utility curve) भी कहते हैं।

तटस्थता-वक्र रेखा को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। निम्न तालिका सन्तरों तथा अमरूदों के विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है और जिनके चुनाव के प्रति वह तटस्थ रहता है :

संयोग संख्या	सन्तरों (X) की संख्या		अमरूदों (Y) की संख्या
1	2	+	6
2	3	+	4
3	4	+	3

उपर्युक्त तालिका को चित्र 1 द्वारा दिखाकर तटस्थता-वक्र रेखा प्राप्त की जाती है। चित्र में X-axis पर सन्तरे तथा Y-axis पर अमरूद दर्शाये गये हैं। I एक तटस्थता-वक्र रेखा है जिस पर कि सन्तरों तथा अमरूदों के विभिन्न संयोगों से समान सन्तुष्टि मिलती है।

तटस्थता मानचित्र (Indifference Map)

उपर्युक्त तालिका में सन्तरों (X) तथा अमरूदों (Y) के 'समान सन्तुष्टि या उपयोगिता' वाले तमाम संयोगों को एक ही तटस्थता-वक्र रेखा द्वारा दिखाया गया है क्योंकि इन संयोगों के लिए अलग-अलग वक्र रेखाएँ नहीं बनाई जा सकती। परन्तु यदि सन्तरों (X) तथा अमरूदों (Y) के ऐसे संयोग बना लिये जायें जिनसे उपभोक्ता को भिन्न-भिन्न सन्तोष या उपयोगिता प्राप्त होती है, तब ये संयोग केवल एक वक्र रेखा द्वारा नहीं दिखाये जा सकते बल्कि इन संयोगों को अलग-अलग वक्र रेखा द्वारा दिखाया जा सकता है। इस प्रकार **जब बहुत-से तटस्थता-वक्रों को, जो कि उपभोक्ता विशेष के लिए सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताते हैं, एक ही चित्र में दिखाया जाता है तब इस चित्र को 'तटस्थता मानचित्र' (indifference map) कहते हैं।** एक तटस्थता-वक्र रेखा सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताती है, जैसे-जैसे वक्र रेखाएं दायें को ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं वैसे-वैसे सन्तुष्टि का स्तर बदलता जाता है और वे अधिक सन्तुष्टि को बताती हैं। इसके विपरीत जैसे-जैसे

---

[1] "An indifference schedule may be defined as a schedule of various combination of goods that will be equally satisfactory to the individual concerned. If we depict this in the form of a curve we get an indifference curve." —A. L. Meyers.

ये रेखाएं बायें को नीचे की ओर खिसकती जाती हैं वैसे-वैसे कम सन्तुष्टि को बताती हैं। चित्र 2 'तटस्थता मानचित्र' को बताता है।
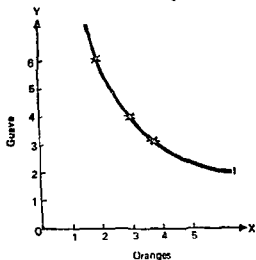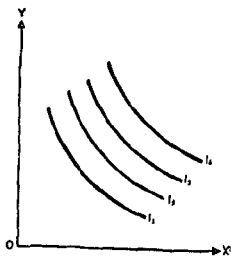
चित्र 1 चित्र 2

'तटस्थता मानचित्र' की तुलना 'भौगोलिक परिधिरेखा मानचित्र' (geographical contour map) से की जा सकती है। एक परिधिरेखा (contour) समान ऊंचाई की जगहों को दिखाती है; इसी प्रकार एक तटस्थता-वक्र रेखा समान सन्तुष्टि प्रदान करने वाली दो वस्तुओं के संयोगो को बताती है। विभिन्न परिधिरेखाएं विभिन्न ऊँचाइयो को बताती हैं; इसी प्रकार विभिन्न तटस्थता वक्र रेखाएं सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों (levels) को बताती हैं।

तटस्थता-वक्र रेखाओं की मान्यताएं
(ASSUMPTIONS OF INDIFFERENCE CURVES)

तटस्थता-वक्र रेखाओं की मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं।

(i) एक उपभोक्ता किसी वस्तु की कम मात्रा की तुलना मे अधिक मात्रा को पसन्द करता है, यदि किसी अन्य वस्तु के उपभोग मे कोई कमी नही होती।[2] दूसरे शब्दो मे, किसी वस्तु के उपभोग या उसकी मात्रा मे वृद्धि से उपभोक्ता के सन्तुष्टि के स्तर मे वृद्धि होती है; परन्तु उपभोक्ता यह नही बता सकता है कि कितनी वृद्धि होती है अर्थात् उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नही होती।

(ii) एक व्यक्ति यह बता सकता है कि वस्तुओ के एक संयोग (combination) की उपयोगिता दूसरे संयोग की अपेक्षा अधिक है, कम है या बराबर है। अत वह विभिन्न संयोगों को प्राथमिकता के अनुसार एक क्रम मे रख सकता है।

(iii) व्यक्ति विशेष यह जानता है कि वस्तुओं के एक संयोग से दूसरे संयोग को प्राप्त करने में 'उपयोगिता मे परिवर्तन' अपेक्षाकृत इस दूसरे संयोग से तीसरे संयोग पर जाने में, अधिक है, कम है, या बराबर है।

(iv) उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है। दूसरे शब्दो में, अपनी दी हुई आय से एक उपभोक्ता अपनी कुल सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है।[3]

(v) वस्तुएं एकरूप तथा विभाज्यनीय (homogeneous and divisible) होती हैं।

[2] "The consumer prefers more of any commodity to less of it, given that the consumption of no other commodity decreases."

[3] The consumer attempts to maximize the total satisfaction obtainable from his given money income.

तटस्थता-वक्र रेखाओं की विशेषताएं अथवा गुण
(CHARACTERISTICS OR PROPERTIES OF INDIFFERENCE CURVES)

तटस्थता-वक्र रेखाओं की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(1) एक तटस्थता रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है अर्थात उसका ढाल (slope) ऋणात्मक (negative) होता है। इसका सरल तथा स्पष्ट कारण यह है कि यदि उपभोक्ता एक वस्तु (X) की इकाइयां बढाता जाता है तो उसे दूसरी वस्तु (Y) की इकाइयां कम करनी पड़ेंगी तभी उसे विभिन्न संयोगों से समान सन्तोष या उपयोगिता मिलेगी। यह तभी सम्भव है जबकि रेखा का ढाल ऋणात्मक हो।

(2) तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (convex to the origin) होती है। इसका बायां भाग सापेक्षिक रूप से ढालू (relatively steep) तथा दायां भाग सापेक्षिक रूप से समतल (relatively horizontal) होता है। तटस्थता रेखा के मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होने का अर्थ है कि जब एक उपभोक्ता रेखा पर बायें से दायें को नीचे की ओर चलता है तो वह X वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को Y वस्तु की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित करता है। दूसरे शब्दों में, रेखा का उन्नतोदर आकार 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (diminishing marginal rate of substitution) को बताता है।

चित्र 3

यह बात चित्र 3 से स्पष्ट हो जाती है। उपभोक्ता रेखा के a बिन्दु से l बिन्दु की ओर चलता है अर्थात् बायें से दायें को नीचे की ओर चलता है। X वस्तु की एक इकाई AB (या bc) को Y वस्तु की FG (या ab) इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित (substitute) किया जाता है। यदि X को एक और इकाई BC (या de) द्वारा बढाया जाता है तो X की इस एक और इकाई BC (या de) को Y की GH (या cd) इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार X की एक और अतिरिक्त इकाई fg (या CD) को Y की ef (या HJ) इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है, इत्यादि। चित्र से स्पष्ट है कि X की प्रत्येक इकाई को Y की घटती हुई मात्रा ($JK < HJ < GH < FG$ अथवा $gh < ef < cd < ab$) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को **X की 'Y के लिए घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर'** (marginal rate of substitution of X for Y is diminishing) कहते हैं।[4]

साधारणतया तटस्थता रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है तथा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होती है परन्तु कुछ परिस्थितियों में इसका आकार भिन्न हो जाता है जैसा कि चित्र 5 तथा 6 में दिखाया गया है।

[4] यदि तटस्थता-वक्र रेखा 'मूल बिन्दु के प्रति नतोदर' (concave to the origin) है तो ऐसी

जब दो वस्तुएं X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं तो इन दोनों में सीमान्त प्रतिस्थापन की दर स्थिर (constant) होगी तथा तटस्थता-वक्र रेखा एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा होगी।[8]

इसको चित्र 5 में रेखा I द्वारा दिखाया गया है। माना कि हम तटस्थता-वक्र रेखा I पर बिन्दु a से शुरू करते हैं। माना कि वस्तु X को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है जैसा कि चित्र 5 में हम वस्तु X को bg (यानी AB), cd (यानी BC) तथा ej द्वारा बढ़ाते हैं, तो इसकी प्रतिक्रिया में उपभोक्ता Y की जो मात्रा क्रमशः घटाने को तत्पर होता है वह समान या स्थिर (constant) रहेगी जैसा चित्र में वस्तु Y की ab (यानी JK), gc तथा de मात्राएँ बताती हैं, Y की ये मात्राएँ बराबर या समान हैं। स्पष्ट है कि जब दो वस्तुए X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न होती हैं तो
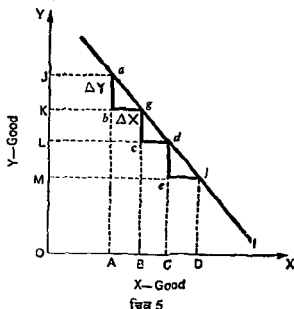
चित्र 5
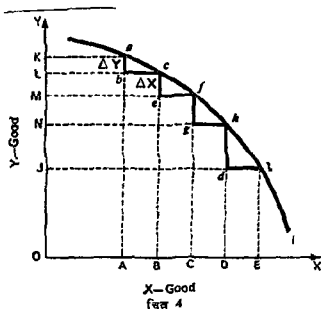
चित्र 4

तटस्थता-वक्र रेखा 'बढ़ती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (increasing marginal rate of substitution) को बतायेगी, जैसा कि चित्र 4 में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को वस्तु Y की बढ़ती हुई मात्रा (hd > fg > ce > ab) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। परन्तु तटस्थता रेखा का ऐसा आकार एक सामान्य (normal) बात नहीं होती, तथा दो वस्तुओं X तथा Y के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर बढ़ती हुई नहीं हो सकती।

[8] When the two goods X and Y are perfect substitutes, the marginal rate of substitution between the two will be constant and the indifference curve will be a negatively sloping straight line.

X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS_{XY}) = स्थिर (constant)

[इस बात को हम एक दूसरी प्रकार से भी बता सकते हैं। हम जानते हैं कि एक तटस्थता-वक्र रेखा के किसी बिन्दु पर MRS_{XY} बताती है तटस्थता-वक्र रेखा के ढाल (slope) को। चूंकि 'एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा' का ढाल उसकी सम्पूर्ण लम्बाई पर स्थिर या समान होता है, इसलिए एक सीधी रेखा के आकार वाली तटस्थता-वक्र रेखा दो वस्तुओं X तथा Y के बीच एक स्थिर या समान सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बतायेगी।]*

परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं की बात केवल सैद्धान्तिक (theoretical) है। वास्तविक जीवन मे कोई भी दो वस्तुएं पूर्णरूप मे स्थानापन्न नहीं होती हैं और यदि वे पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे दो वस्तुएं केवल एक ही वस्तु की दो इकाइयां है।

जब दो वस्तुएं X तथा Y पूर्ण पूरक (*perfect complementary*) होती हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे सदैव एक निश्चित अनुपात में माँगी जाती हैं—

> दो वस्तुओं के पूर्ण पूरक होने की स्थिति में तटस्थता वक्र-रेखा का आकार L आकार का हो जाता है; अर्थात तटस्थता-वक्र रेखा दो सीधी रेखाओं द्वारा निर्मित होगी, प्रत्येक सीधी रेखा एक अक्ष (one axis) के प्रति समानान्तर (parallel) होगी तथा वे एक-दूसरे को समकोण (right angle) पर मिलेंगी तथा समकोण का मोड़ (या कोना) मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होगा। ऐसी तटस्थता-वक्र रेखा बताती है कि दो वस्तुएं सदैव एक साथ एक निश्चित अनुपात में माँगी जाती हैं।'

ऐसी तटस्थता-वक्र रेखा को चित्र 6 मे दिखाया गया है। माना कि दो वस्तुएं, X तथा Y, 2 : 3 के एक निश्चित अनुपात में मांगी जाती है, अर्थात वस्तु X की 2 इकाइयां तथा वस्तु Y की 3 इकाइयां एक साथ मांगी जाती हैं, यह बात तटस्थता रेखा I_1 पर बिन्दु A बताता है। चूंकि ये वस्तुएं 2 : 3 के निश्चित अनुपात मे मांगी जाती है, इसलिए यदि हम X की मात्रा को 2 इकाई से बढ़ाकर 4 इकाई कर देते हैं तो Y की मात्रा को 3 से बढ़ा कर 6 इकाई करना होगा, यह संयोग दूसरी तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु B बताता है।
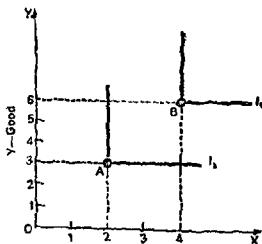
चित्र 6

* We know that MRSxy *indicates* the slope of an indifference curve at a point on it. As the straight line has the same or constant slope throughout its length, therefore the straight line Indifference curve will indicate the same or constant MRSxy throughout.

' In the case of two goods being *perfect* complementary, the indifference curve becomes L—shaped; that is, the indifference curve will *consist of* two straight lines each running parallel to one of the axes and meeting at *right angle*, and the right angle bent or corner will be convex to the origin. Such an *indifference* curve indicates that the two commodities will always be jointly demanded in a fixed ratio.

तटस्थता रेखा I_1 (या I_2) की पड़ी हुई भुजा (horizontal arm) यह बताती है कि वस्तु Y की मात्रा को स्थिर रखते हुए, वस्तु X की मात्रा में कोई भी वृद्धि संतुष्टि के स्तर को नहीं बढ़ायेगी, और वस्तु X की समस्त बढ़ी हुई मात्रा बेकार (useless) रहेगी। इसी प्रकार से तटस्थता, वक्र रेखा I_1 (या I_2) की खड़ी भुजा (vertical arm) यह बताती है कि वस्तु X की मात्रा स्थिर रखते हुए, वस्तु Y की मात्रा मे कोई भी वृद्धि संतुष्टि के स्तर को नही बढ़ायेगी, और Y की समस्त बढ़ी हुई मात्रा बेकार रहेगी। दोनों वस्तुओं को सदैव एक निश्चित अनुपात (यहां पर 2 : 3 के अनुपात) में मांगा जायेगा।

उपर्युक्त समस्त विवरण से एक महत्वपूर्ण बात स्पष्ट होती है—

तटस्थता-वक्र रेखा की वक्रता (curvature) दो वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता तथा पूरकता के अंश को बताती है। तटस्थता-वक्र रेखा जितनी ही कम वक्रता लिए हुए होगी उतना ही स्थानापन्नता का अंश अधिक होगा। पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं के लिए तटस्थता-वक्र रेखाएं सीधी या सरल रेखाएँ हो जाती हैं; वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से ऐसी दो वस्तुएं भिन्न नहीं होतीं बल्कि एक ही वस्तु की दो इकाइयाँ होती हैं। इसके विपरीत, जितनी ही तटस्थता रेखाओं में वक्रता अधिक होगी उतना ही पूरकता का अंश अधिक होगा, पूर्ण पूरकता की स्थिति में तटस्थता रेखाओं का आकार L-आकार का हो जायेगा।[8]

चित्र 7

(3) तटस्थता रेखाएं कभी एक-दूसरे को नहीं काटती हैं। एक रेखा सन्तुष्टि के किसी एक स्तर को बताती है तथा विभिन्न रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरो को बताती हैं। यदि दो रेखाएँ एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं (चित्र 7) तो इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता को E बिन्दु पर समान सन्तुष्टि मिलती है चाहे वह I_1 पर हो या I_2 पर, परन्तु यह असम्भव है क्योंकि दो रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताती हैं।

[इसी बात को गणितात्मक रूप मे निम्न प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है :
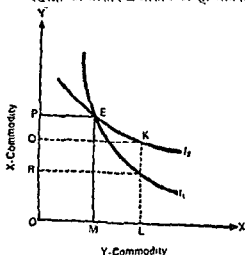
I_1 तटस्थता रेखा के लिए :

$$OP_y + OM_x = OR_y + OL_x \quad \ldots(i)$$

I_2 तटस्थता रेखा के लिए :

$$OP_y + OM_x = OQ_y + OL_x \quad \ldots(ii)$$

(i) तथा (ii) से हमें प्राप्त होता है

$$OR_y + OL_x = OQ_y + OL_x$$

अर्थात् $OR_y = OQ_y$

[8] The curvature of an indifference curve indicates the degree of substitutability and complementarity between two commodities. The less curved the indifference curve, the greater the degree of substitution. For perfect substitutes the indifference curves become straight lines; from the practical point of view this implies that the two commodities are not different but they are simply the two units of the same commodity. If, on the other hand, the commodities are complementary, the indifference curve becomes more curved. The greater the curvature the greater the degree of complementarity; for perfect complementarity it becomes L—shaped.

परन्तु यह असम्भव है क्योंकि चित्र से स्पष्ट है कि OQ मात्रा अधिक है OR से। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि दो तटस्थता रेखाएँ एक-दूसरे को नहीं काट सकतीं।]

(4) यह आवश्यक नहीं कि तटस्थता-वक्र रेखाएँ अनिवार्य रूप से एक-दूसरे के समानान्तर (parallel) हों। समानान्तर तटस्थता रेखाओं का अर्थ है कि सभी तटस्थता तालिकाओं में दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन दर (rate of substitution) समान है, परन्तु ऐसा होना अनिवार्य नहीं।

जब व्यय दो वस्तुओं से अधिक वस्तुओं पर बाँटा जाता है तो तटस्थता-वक्र रेखा की सरलता समाप्त हो जाती है; तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप (dimensions) की आवश्यकता पड़ेगी तथा तीन से अधिक वस्तुओं के लिए रेखागणित (Geometry) हमारा साथ छोड़ देती है और हमें या तो बीजगणित (Algebra) की सहायता लेनी पड़ती है या हम शब्दों में व्यक्त करते हैं। परन्तु तटस्थता विश्लेषण के सिद्धान्त अप्रभावित (unaffected) रहते हैं।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर
(MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

1. प्राक्कथन

प्रो. हिक्स तथा ऐलन ने मूल्य-सिद्धान्त (Theory of Value) का पुनर्निर्माण अधिमान के शब्दों में (in terms of preference) किया। इनके अनुसार चूंकि उपयोगिता या सीमान्त उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता, इसलिए मूल्य-सिद्धान्त को उपयोगिता के शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः प्रो. हिक्स मूल्य-सिद्धान्त को 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के शब्दों में व्यक्त करते हैं क्योंकि उनका कथन है कि सीमान्त उपयोगिता का कोई निश्चित अर्थ नहीं है, जबकि 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का निश्चित अर्थ है।

2. सीमान्त प्रतिस्थापन दर की परिभाषा (Definition of Marginal Rate of Substitution)

दो वस्तुओं X तथा Y के संयोग में यदि एक वस्तु अर्थात् X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो यह स्वाभाविक है कि दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटायी जायेगी ताकि उपभोक्ता की सन्तुष्टि में कोई कमी न हो, वह पहले के समान बनी रहे। अतः,

> **X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की वह मात्रा है जो कि X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने की प्रक्रिया में घटायी जाती है ताकि उपभोक्ता का पहले के समान ही सन्तोष का स्तर बना रहे।**

सीमान्त प्रतिस्थापन दर का अर्थ निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है :

Y वस्तु		X वस्तु	X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (M. R. S. of X for Y)
60	+	1	
48	+	2	12 : 1
40	+	3	8 : 1

तालिका से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में एक उपभोक्ता Y वस्तु की 60 इकाइयाँ तथा X वस्तु की 1 इकाई के संयोग से चलता है। अब वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करता है तो उसे Y की 12 इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं ताकि उसका सन्तोष समान बना रहे, अतः X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर 12 : 1 हुई। यदि वह X वस्तु की 1 और अतिरिक्त इकाई बढ़ाता है तो उसे Y की 8 इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं, दूसरे शब्दों में, X वस्तु की 1 इकाई, Y वस्तु की 8 इकाइयों की

स्थानापन्न (substitute) है, और X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर 8 : 1 हुई। अतः, X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की वे इकाइयां हैं जिनके लिए X की एक इकाई स्थानापन्न (substitute) है। यह ध्यान रखने की बात है कि दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन दर, 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (diminishing marginal rate of substitution) होती है।[9]

उदाहरण से स्पष्ट है कि पहले X की एक इकाई Y की 12 इकाइयों की स्थानापन्न है, बाद में X की एक इकाई Y की 8 इकाइयों की स्थानापन्न है; इस प्रकार से दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई होती है।

3. **सीमान्त प्रतिस्थापन दर एक तटस्थता-वक्र रेखा के ढाल को मापती है** (Marginal rate of substitution measures the slope of an indifference curve)

चित्र 8 तथा 9 में हम तटस्थता रेखा I का ढाल P बिन्दु पर विचार करते हैं। यदि P तथा Q बिन्दु बहुत निकट हैं (जैसा कि चित्र 9 में दिखाया गया है) तो मोटे तौर पर हम कह सकते है कि *KT रेखा, तटस्थता रेखा के P बिन्दु पर स्पर्श रेखा (tangent) होगी और कोण*
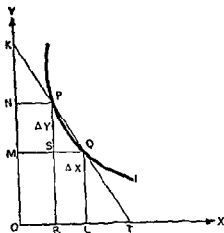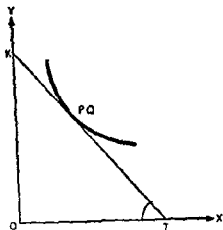
चित्र 8 चित्र 9

XTK तटस्थता रेखा के P बिन्दु पर ढाल (slope) को बतायेगा। चित्र 8 में माना कि उपभोक्ता P बिन्दु से Q बिन्दु पर आता है अर्थात् X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करता है तथा Y वस्तु की कुछ इकाइयां कम कर देता है। X वस्तु की मात्रा में वृद्धि को ΔX द्वारा बताते हैं तथा Y वस्तु की मात्रा में कमी को $-\Delta Y$ द्वारा बताया जाता है, अतः X को Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर $-\Delta Y : \Delta X$ हुई या $-\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ हुई।[10] अब हम नीचे यह सिद्ध करेंगे कि तटस्थता रेखा का

[9] Thus, the marginal rate of substitution of X for Y will be the number of units of Y for which one unit of X is a substitute. It should be noted that the marginal rate of substitution between two commodities is diminishing.

[10] ΔY के पहले ऋणात्मक चिह्न (−) लगाया जाता है क्योंकि ΔY, Y में कमी को बताता है और ΔX, X में वृद्धि को बताता है। यदि $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ के पहले ऋणात्मक चिह्न (−) न भी लगा हो तो भी इसका अभिप्राय है कि उसके पहले (−) है जो कि छिपा हुआ (implicit) है।

ढाल सीमान्त प्रतिस्थापन दर $\left(\text{अर्थात्} \frac{\Delta Y}{\Delta X}\right)$ को बताता है। चित्र 8 में,

तटस्थता-वक्र रेखा का P बिन्दु पर ढाल

= Tangent KT का ढाल (यदि P तथा Q बहुत निकट हैं)

= Tan of /XTK

= Tan of (180° – /OTK)

= – Tan of /OTK

= – Tan of /PQS

∵ /OTK = /PQS (दोनों corresponding angles हैं)

$= -\frac{PS}{SQ}$

$= -\frac{\Delta Y}{\Delta X}$

$= MRS_{xy}$ (अर्थात् Marginal Rate of Substitution of X for Y)

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तटस्थता-वक्र रेखा का ढाल सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बताता है।

4. **सीमान्त प्रतिस्थापन दर दो वस्तुओं X तथा Y की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को बताती है (The MRS indicates the ratio of the marginal utilities of two goods X and Y)**

चूंकि सीमान्त उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता इसलिए दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात का कोई अर्थ नहीं होता। अतः

> प्रो. हिक्स X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा Y वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के अनुपात के स्थान पर X वस्तु की मात्रा में परिवर्तन तथा Y वस्तु की मात्रा में परिवर्तन के अनुपात को लेते हैं, और वे इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं। इस प्रकार प्रो. हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ (precise meaning) प्रदान करते हैं जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई हैं।[11]

चित्र 8 में उपभोक्ता P बिन्दु से Q बिन्दु पर पहुंचने में X वस्तु की SQ मात्रा प्राप्त करता है तथा Y वस्तु की PS मात्रा खोता है। उपयोगिता के शब्दों में, प्राप्त लाभ (gain) = SQ × वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता तथा नुकसान (loss) = PS × वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता, जबकि हम यह मान लेते हैं कि SQ तथा PS बहुत थोड़ी (small) मात्राएँ हैं। चूंकि P तथा Q दोनों एक ही तटस्थता रेखा पर हैं इसलिए दोनों बिन्दुओं पर उपभोक्ता को कुल उपयोगिता या कुल सतुष्टि समान रहती है; दूसरे शब्दों में, उपयोगिता में प्राप्त लाभ तथा उपयोगिता में नुकसान बराबर होंगे, अतः,

SQ × वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता = PS × वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता

---

[11] Since marginal utility cannot be measured so that the ratio of two marginal utilities can have no meaning. *In place of ratio of the marginal utility of X to the marginal utility of Y Hicks takes the ratio of change in the quantity of X to that of Y. This he calls 'marginal rate of substitution'.* Thus, he gives a precise meaning to the ratio of two marginal utilities when the quantities possessed of both commodities are given.

अर्थात् $\frac{X \text{ की सीमान्त उपयोगिता}}{Y \text{ की सीमान्त उपयोगिता}} = \frac{PS}{SQ}$

$= \frac{\Delta Y}{\Delta X}$

$= MRS_{xy}$ (X को Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर)

अतः स्पष्ट है कि प्रो. हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते है और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं। इसमें सीमान्त उपयोगिताओं को मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती, दोनों वस्तुओं की मात्राओं में परिवर्तन, जो कि मापनीय है, को मालूम करके ही काम चलाया जाता है।

घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त

(THE PRINCIPLE OF DIMINISHING MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

1. सिद्धान्त या नियम का कथन (Statement)

साधारणतया किन्हीं दो वस्तुओं से सम्बन्धित सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई (diminishing) होती है। जब उपभोक्ता X वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग करता है तो Y वस्तु की इकाइयों की संख्या, जो कि वह X वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए परित्याग करने को तैयार है, में कमी होती जाती है। इसे ही 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' कहते है। प्रो हिक्स ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया है—

> **"माना कि हम वस्तुओं की एक दी हुई मात्रा से प्रारम्भ करते है, और X की मात्रा में वृद्धि और Y की मात्रा में कमी इस प्रकार से करते जाते हैं कि उपभोक्ता की स्थिति न तो पहले से अच्छी ही होती है और न बुरी ही, तब Y की मात्रा जो कि X की दूसरी अतिरिक्त इकाई की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है, वह Y की उस मात्रा से कम होगी जोकि X की पहली अतिरिक्त इकाई की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है। दूसरे शब्दों में, जितनी ही अधिक X, Y के लिए प्रतिस्थापित की जाती है उतनी ही X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर कम ही जायेगी।"[12]**

2. सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation)

चित्र 10 मे, माना कि उपभोक्ता a बिन्दु से *l* बिन्दु की ओर चलता है अर्थात् वह X वस्तु की मात्रा बढ़ाता जाता है और Y की मात्रा घटाता जाता है ताकि उसके कुल सन्तोष मे कोई अन्तर न पड़े, यानी उसकी स्थिति पहले से न तो अच्छी ही हो और न बुरी ही हो। वह X वस्तु को एक इकाई AB (या bc) द्वारा बढाता है तब उसको Y वस्तु की FG (या ab) इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं। यदि X को एक और इकाई de (या BC) द्वारा बढाया जाता है तो X की इस एक और इकाई de को Y की cd इकाइयो द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार X की एक और अतिरिक्त इकाई fg को Y की ef इकाइयो द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। अत चित्र से स्पष्ट है कि X की प्रत्येक इकाई को Y की घटती हुई मात्रा

---

12 "Suppose we start with a given quantity of goods and then go on increasing the amount of X and diminishing that of Y in such a way that the consumer is left neither better off nor worse off on balance, then the amount of Y which has to be subtracted in order to set off a second unit of X will be less than that which has to be subtracted in order to set off the first unit. In other words, the more X is substituted for Y the less will be the marginal rate of substitution of X for Y."
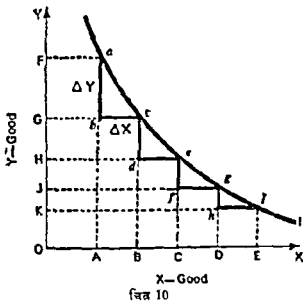
चित्र 10

(gh < ef < cd < ab) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को X की Y के लिए घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर (diminishing marginal rate of substitution of X for Y) कहते हैं।

दो वस्तुओं के संयोग में यदि एक वस्तु X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटानी पड़ेगी क्योंकि तभी उपभोक्ता का सन्तोष समान रहेगा। यदि Y वस्तु की मात्रा को स्थिर रखा जाता है तथा X की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो स्पष्ट है कि उपभोक्ता का सन्तोष समान नहीं रहेगा बल्कि बढ़ जायगा। अत. कुल सन्तोष को समान बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि दो वस्तुओं के संयोग में यदि एक वस्तु की मात्रा बढ़ायी जाती है तो दूसरे की घटानी पड़ेगी।

यदि एक वस्तु X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो इसकी अतिरिक्त इकाइयों (additional units) से उपभोक्ता को घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होगी अर्थात् उपभोक्ता इसको घटता हुआ महत्त्व (significance) प्रदान करेगा। यदि इस बात को दो वस्तुओं X तथा Y के संयोग के सदर्भ में सोचा जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि यदि X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो X का सीमान्त महत्त्व Y के शब्दों में घटता जाता है (the marginal significance of X in terms of Y goes on decreasing)। यह बात इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी। यदि पहले X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई Y वस्तु को 6 इकाइयों के लिए प्रतिस्थापित की जाती थी तो X वस्तु की दूसरी अतिरिक्त इकाई Y वस्तु की 6 इकाइयों के लिए प्रतिस्थापित नहीं की जायेगी बल्कि Y की कम इकाइयों, माना 3 इकाइयों, के लिए प्रतिस्थापित की जायेगी क्योंकि X की घटती हुई मात्रा के परिणामस्वरूप X का महत्त्व Y के शब्दों में कम होता जाता है। अतः यह बात घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर की व्याख्या करती है।

दो वस्तुओं के संयोग में जिस वस्तु (अर्थात् Y) की मात्रा कम होती जाती है तो उसकी उपयोगिता या महत्त्व उपभोक्ता के लिए बढ़ता जाता है। पहले यदि उपभोक्ता Y की 6 इकाइयों का प्रतिस्थापन X को एक इकाई के लिए करता था तो अब वह ऐसा नहीं करेगा क्योंकि Y की मात्रा घटते जाने से Y का महत्त्व उसके लिए बढ़ता जाता है; अतः वह Y की कम इकाइयों अर्थात् 3 इकाइयों का ही प्रतिस्थापन X की एक अतिरिक्त इकाई के लिए करेगा। इसका अर्थ भी यही हुआ कि सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है।

3. सिद्धान्त के अपवाद (Exceptions)

साधारणतया दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई ही होती है; परन्तु इसके दो मुख्य अपवाद भी हैं:

(i) यदि दो वस्तुएं ऐसी हैं जो एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (*perfect substitute*) हैं तो इन दोनों में सीमान्त प्रतिस्थापन की दर स्थिर (constant) होगी तथा तटस्थता-वक्र रेखा

एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा होगी। इस बात को चित्र 11 मे दिखाया है। चित्र 11 से स्पष्ट है कि वस्तु X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई (जैसे bg, cd तथा ef) की प्रतिक्रिया मे Y की जो मात्रा घटायी जाती है वह एकसमान या बराबर रहती है (अर्थात ab=gc = de)। इस प्रकार यहाँ पर MRS_{xy} = constant.
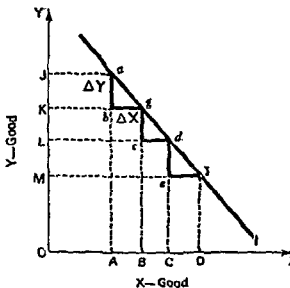
चित्र 11

परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं की बात केवल सैद्धान्तिक (theoretical) है। वास्तविक जीवन मे कोई भी दो वस्तुएँ पूर्णरूप से स्थानापन्न नही होती हैं, और यदि वे पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे दो वस्तुएँ केवल एक ही वस्तु की दो इकाइयाँ हैं।

(ii) यदि दो वस्तुएँ ऐसी है जो एक-दूसरे की पूर्ण पूरक (perfect complementary) हैं तो तटस्थता-वक्र रेखा का आकार L–आकार का हो जाता है। ऐसी तटस्थता-वक्र रेखा बताती है कि दो वस्तुएँ सदैव एक साथ एक निश्चित अनुपात में माँगी जाती हैं।

यह बात चित्र 12 में दिखायी गयी है। माना कि दो वस्तुएँ, X तथा Y, 2 : 3 के एक निश्चित अनुपात में माँगी जाती हैं; अर्थात वस्तु X की 2 इकाइयाँ तथा वस्तु Y की 3 इकाइयाँ एक साथ माँगी जाती हैं; यह बात चित्र 12 में तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु A बताता है। चूंकि ये वस्तुएँ सदैव 2 : 3 के निश्चित अनुपात में माँगी जाती हैं, इसलिए यदि हम वस्तु X की मात्रा को 2 इकाई से बढ़ाकर 4 इकाई कर देते हैं तो Y की मात्रा को 3 से बढ़ाकर 6 इकाई करना होगा, यह संयोग दूसरी तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु B बताता है।
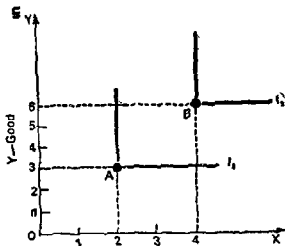
चित्र 12

4. घटती हुई उपयोगिता का नियम तथा घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त (The Law of Diminishing Utility and the Principle of Diminishing Marginal Rate of Substitution)

प्रायः कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा यह कहा जाता है कि 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर सिद्धान्त' 'घटती हुई उपयोगिता के नियम' का केवल रूपान्तरण (translation) है। ऐसा

दो कारणों से कहा जाता है। प्रथम, एक वस्तु से दूसरी वस्तु का प्रतिस्थापन सीमान्त उपयोगिता के आधार पर ही होता है। दूसरे, जिस प्रकार सीमान्त उपयोगिता घटती है उसी प्रकार सीमान्त प्रतिस्थापन दर भी घटती है।

परन्तु हिक्स के अनुसार, 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' 'घटती हुई उपयोगिता के नियम' का केवल रूपान्तरण (translation) नहीं है। प्रथम, घटती हुई उपयोगिता का नियम, उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) पर आधारित है जबकि 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम' के लिए उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे, उपयोगिता ह्रास नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लेता है जबकि घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का नियम ऐसा नहीं मानता। तीसरे, उपयोगिता ह्रास नियम केवल एक वस्तु का अध्ययन करता है और यह बताता है कि एक वस्तु की उपयोगिता में कमी होती है; यह दूसरी सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) के प्रभाव पर ध्यान नहीं देता। परन्तु घटती हुई प्रतिस्थापन दर का नियम दो सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन करता है और बताता है कि एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती हुई होती है तथा दूसरी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती हुई। चौथे, सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो. हिक्स दो वस्तुओं के सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएं दी हुई होती हैं। दूसरे शब्दों में,

$$\frac{X \text{ की सीमान्त उपयोगिता}}{Y \text{ की सीमान्त उपयोगिता}} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= X$ की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRY_{xy})
(जबकि ΔY, Y में परिवर्तन को तथा ΔX, X में परिवर्तन को बताता है)

अतः उपर्युक्त बातों के आधार पर प्रो. हिक्स का कथन है कि 'घटती हुई प्रतिस्थापन दर का नियम' उपयोगिता ह्रास नियम का केवल रूपान्तरण नहीं है।

प्रश्न

1. तटस्थता-वक्र की परिभाषा दीजिए। तटस्थता-वक्रों की मान्यताओं व विशेषताओं को बताइए।
   Define an 'indifference curve'. Explain the assumptions and characteristics of indifference curves.
2. 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' के विचार को परिभाषित कीजिए। बताइए—
   (अ) सीमान्त प्रतिस्थापन दर एक तटस्थता-वक्र रेखा के ढाल को मापती है।
   (ब) सीमान्त प्रतिस्थापन दर दो वस्तुओं X तथा Y की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को बताती है।
   Define 'Marginal Rate of Substitution'. Explain :
   (a) Marginal Rate of Substitution measures the slope of an indifference curve.
   (b) Marginal Rate of Substitution indicates the ratio of the marginal utilities of the two commodities X and Y.
3. 'सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम' का 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम' द्वारा प्रतिस्थापन केवल अनुवाद मात्र नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह उपभोक्ता-माँग के सिद्धान्त में एक परिवर्तन है'।—हिक्स। विवेचना कीजिए।

"The replacement of the principle of diminishing marginal utility by the principle of diminishing marginal rate of substitution is not a mere translation. It is a positive change in the theory of consumer's demand." —Hicks. Discuss.

अथवा

'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम' की व्याख्या कीजिए। यह नियम 'सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम' पर कहाँ तक एक सुधार माना जा सकता है ?

State and explain the Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution. How far can this law be treated as an improvement over the Law of Diminishing Marginal Utility ?

13

तटस्थता-वक्र विश्लेषण–2

(Indifference Curve Analysis–2)

तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता का सन्तुलन
(Indifference Curve Analysis of Consumer's Equilibrium)

उपभोक्ता का सन्तुलन
(CONSUMER'S EQUILIBRIUM)

1. प्राक्कथन : मार्शल का दृष्टिकोण अथवा उपयोगिता विश्लेषण रीति (Introduction : Marshall's View or Utility Analysis Approach) ।

एक उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जायेगा जबकि वह अपनी सीमित द्राव्यिक आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि मिले।

सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण के अन्तर्गत 'सम-सीमान्त उपयोगिता नियम' (Law of Equi-marginal Utility) उपभोक्ता के सन्तुलन को बताता है। माना कि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई है, वस्तुओं की कीमतें दी हुई हैं, उपभोक्ता अपनी 'समस्त आय' (total income) को व्यय करता है और वह अपनी समस्त आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि उसे अधिकतम कुल सन्तुष्टि प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में,

> एक व्यक्ति अपनी सीमित दी हुई द्राव्यिक आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए, अर्थात सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए, द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करेगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किये गये द्रव्य की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता (अर्थात सीमान्त उपयोगिता) समान हो।[1]

उपर्युक्त कथन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। माना कि किसी वस्तु X की कीमत 7 रु. है। माना कि उपभोक्ता को इस वस्तु X की तीन इकाइयों के खरीदने से 10 इकाई (अर्थात 10 रु.) के बराबर सीमान्त उपयोगिता मिलती है; स्पष्ट है उसको उपयोगिता अधिक मिल रही है अपेक्षाकृत वस्तु की कीमत के, और उपभोक्ता को लाभ (gain) रहता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता वस्तु की और अधिक इकाइयाँ खरीदता जायेगा (और उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार वस्तु X से प्राप्त होने वाली उपयोगिता घटती जायेगी), तथा वह वस्तु की अधिक इकाइयाँ उस स्थान

---

[1] In order to get maximum satisfaction from his given limited money income, that is, to acquire the position of equilibrium, a person will spend his money on different commodities in such a way so that the utility received from the last unit of money spent on each commodity (that is, marginal utility) is the same.

तक खरीदेगा जहा पर कि वस्तु से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता घटकर ठीक वस्तु की कीमत के बराबर न हो जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत मे अनुपात इकाई के बराबर होना चाहिए (यदि यह अनुपात ठीक इकाई के बराबर नही हो पाता तो जहा तक सम्भव हो, इकाई के निकट होना चाहिए।) उपर्युक्त उदाहरण मे माना कि वस्तु X की पांच इकाइयां खरीदने पर उपभोक्ता को 7 इकाई के बराबर सीमान्त उपयोगिता मिलती है तथा वस्तु की कीमत 7 रु. है, तो सीमान्त उपयोगिता तथा कीमत मे अनुपात ($\frac{7}{7}=1$) इकाई के बराबर होगा।

इसी प्रकार से उपभोक्ता दूसरी वस्तु Y को उस सीमा तक खरीदेगा जहां पर कि वस्तु Y से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत का अनुपात इकाई के बराबर हो जाये। अत: उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, **एक वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता** (Marginal Utility) **तथा उसकी कीमत** (Price) **का अनुपात, दूसरी वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर होना चाहिए** (क्योंकि दोनों अनुपात इकाई के बराबर हैं)। यह तर्क **दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी लागू होगा।**

माना वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता को MU_X द्वारा तथा उसकी कीमत को P_X द्वारा बताते हैं और वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता को MU_Y द्वारा तथा उसकी कीमत को P_Y द्वारा बताते हैं, तो **उपभोक्ता के सन्तुलन की दशा** (*Condition of Consumer's Equilibrium*) को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं—

$$\frac{MU_X}{P_X}=\frac{MU_Y}{P_Y}$$

[शब्दो मे, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत का अनुपात बराबर होना चाहिए, दूसरी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत के अनुपात के।]

उपर्युक्त दशा को हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं (दोनों तरफ हम $\frac{P_X}{MU_Y}$ से गुणा कर देते हैं)—

$$\frac{MU_X}{MU_Y}=\frac{P_X}{P_Y}$$

[शब्दों मे, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं का अनुपात बराबर होना चाहिए, उनकी कीमतों के अनुपात के।]

आगे के विवरण से स्पष्ट होगा कि एक उपभोक्ता के सन्तुलन की उपर्युक्त दशा को तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा भी प्राप्त किया जा सकेगा।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता के संतुलन की विवेचना करने के पहले हम उन मान्यताओं (assumptions) को स्पष्ट करेंगे जिन पर कि यह विवेचन आधारित है।

2. मान्यताएं (Assumptions)

1. मनुष्य को विवेकशील व्यक्ति (rational person) मानकर चलते हैं। इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीमित द्राव्यिक आय को सोच-समझकर व्यय करता है और अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है।

2. विश्लेषण की सुविधा के लिए यह मान लिया जाता है कि व्यक्ति दो वस्तुओ X तथा Y को खरीदता है। [निःसन्देह इस आधार पर प्राप्त निष्कर्ष दो वस्तुओ से अधिक वस्तुओं के लिए भी सत्य होंगे।]

3. समय विशेष के लिए वस्तुओं की कीमतें दी हुई मान ली जाती हैं, उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

4. समय विशेष के लिए उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई मान ली जाती है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

5. समय विशेष के लिए उपभोक्ता की रुचियाँ तथा पसन्दें भी स्थिर मान ली जाती हैं।

6. यह मान लिया जाता है कि वस्तुएं छोटी-छोटी इकाइयों में विभाज्यनीय (divisible) हैं।

7. यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता अपनी दी हुई कुल आय को वस्तुओं पर व्यय करता है। (यदि वह अपनी दी हुई समस्त आय को व्यय नहीं करता है, कुछ द्रव्य उसके पास बच जाता है तो वह अपनी कुल आय से कुल उपयोगिता को अधिकतम नहीं कर पायेगा।)

8. उपभोक्ता के संतुलन के लिए तटस्थता-वक्र विश्लेषण यह मानकर चलता है कि उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) नहीं किया जा सकता है, उपयोगिताओं की केवल तुलना की जा सकती है, अर्थात यह 'क्रमवाचक उपयोगिता' (Ordinal Utility) के विचार पर आधारित है। [इसके विपरीत मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण गणनावाचक उपयोगिता (Cardinal Utility) पर आधारित है।][2]

3. तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता के संतुलन की दशा (Condition of consumer's equilibrium under indifference curve analysis)

एक उपभोक्ता अधिकतम सतुष्टि तब प्राप्त करेगा अर्थात संतुलन की दशा में तब होगा जबकि निम्न तीन दशाएं पूरी होती हैं—

(i) एक उपभोक्ता उस बिन्दु पर संतुलन की दशा में होगा जहाँ पर कि कीमत-रेखा या बजट-रेखा (price line or budget line) तटस्थता-वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है।

(ii) उपर्युक्त दशा से संतुलन की दूसरी दशा प्राप्त होती है जो कि इस प्रकार है : दो वस्तुओं (X तथा Y) की सीमान्त प्रतिस्थापन दर (marginal rate of substitution) = कीमतों के अनुपात के; अर्थात $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$ [आगे हम देखेंगे कि उपभोक्ता के संतुलन की इस दशा से हम मार्शल द्वारा बतायी गयी संतुलन की दशा, $\frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$ को प्राप्त करते हैं।]

(iii) स्थायी (stable) संतुलन के लिए संतुलन के बिन्दु पर सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई (diminishing) होनी चाहिए, अर्थात संतुलन बिन्दु पर तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex to the origin) होनी चाहिए।

नीचे हम उपभोक्ता के संतुलन की इन तीनों दशाओं की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

4. तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता के संतुलन की दशाओं की व्याख्या (Exposition of the conditions of consumer's equilibrium under indifference curve analysis)

तटस्थता-वक्र रेखा दो वस्तुओं, माना कि नारंगी (वस्तु X) तथा केले (वस्तु Y) के विभिन्न

---

[2] क्रमवाचक उपयोगिता (Ordinal utility) तथा गणनावाचक उपयोगिता (Cardinal utility) के विस्तृत विवरण के लिए अध्याय 10 को देखिए।

संयोगो को बनाती है जिनके प्रति उपभोक्ता तटस्थ रहता है। अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने की दृष्टि मे उपभोक्ता इन दोनो वस्तुओ के कौनसे संयोग को चुनेगा यह उन वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतो पर निर्भर करेगा। माना कि उपभोक्ता 1 रुपये को दो वस्तुओं—नारंगी तथा केलों—पर व्यय करना चाहता है। माना कि नारंगी (X) की कीमत 20 पैसे (P_X) प्रति इकाई तथा केले (Y) की कीमत 10 पैसे (P_Y) प्रति इकाई है।

उपभोक्ता अपनी 1 रुपये की आय को नारंगी और केलो पर कई प्रकार से व्यय कर सकता है : एक वस्तु पर अधिक तथा दूसरी वस्तु पर कम व्यय कर सकता है। एक सिरे की स्थिति (extreme case) यह हो सकती है कि वह अपनी 1 रुपये की समस्त आय को केवल नारंगी पर ही व्यय करे जिस दिशा मे वह 5 नारंगी (अर्थात् चित्र 1 मे OM नारंगी) खरीदेगा, तथा केले बिलकुल नही खरीदेगा, दूसरे सिरे की स्थिति यह हो सकती है कि वह अपनी 1 रुपये की समस्त आय को केवल केलो पर ही व्यय करे जिस दशा में वह 10 केले (चित्र 1 में OL केले) खरीदेगा और नारंगी बिलकुल नही खरीदेगा। चित्र 1 मे यह स्थिति LM रेखा द्वारा दिखायी गयी है। LM रेखा, 'कीमत रेखा' (price line) या 'बजट रेखा' (budget line) या 'व्यय रेखा' (outlay line) कहलाती है। **अतः, कीमत रेखा दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि एक उपभोक्ता वस्तुओं की कीमत के आधार पर अपनी दी हुई आय से खरीद सकता है। दूसरे शब्दों में, कीमत रेखा एक उपभोक्ता की दी हुई आय को दो वस्तुओं पर व्यय करने की सभी सम्भावनाओं को व्यक्त करती है।**[3]
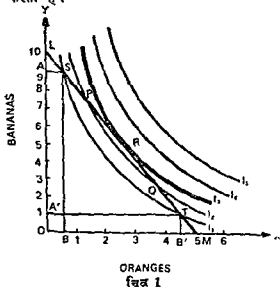
चित्र 1

चित्र 1 में LM कीमत रेखा तटस्थता रेखा I_1 को S तथा T बिन्दुओ पर काटती है। उपभोक्ता या SA नारंगी तथा SB केलों के संयोग या TA' नारंगी तथा TB' केलो के संयोग का उपभोग कर सकता है, उपभोक्ता को दोनो संयोगो से समान सन्तोष मिलता है। LM कीमत रेखा I_2 को P तथा Q बिन्दुओ पर काटती है। P तथा Q नारंगी तथा केलो के दो अन्य संयोगो को बताते हैं जिनमे से उपभोक्ता, अपनी दी हुई आय तथा दी हुई कीमतो के आधार पर, किसी को भी चुन सकता है। एक ओर S तथा T संयोगो और दूसरी ओर P तथा Q संयोगो के बीच उपभोक्ता बाद के (अर्थात् P तथा Q) संयोगो को चुनेगा क्योंकि वे एक ऊंची तटस्थता-वक्र रेखा पर हैं और इसलिए अधिक सन्तोष को बताते हैं। LM रेखा I_3 को R बिन्दु पर स्पर्श करती है। R बिन्दु नारंगी तथा केलों के अन्य संयोगो को बताता है जिसको कि उपभोक्ता, दी हुई आय तथा दी हुई कीमतो के आधार

---

[3] कीमत रेखा को 'उपभोग सम्भावना रेखा' (consumption possibility line) भी कहते हैं क्योंकि कीमत रेखा यह बताती है कि दी हुई आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतो के आधार पर एक उपभोक्ता के लिए उन दोनो वस्तुओ की कितनी-कितनी मात्रा का उपभोग सम्भव है।

पर, प्राप्त कर सकता है। एक ओर P तथा Q संयोगों और दूसरी ओर R संयोग के बीच उपभोक्ता बाद के (अर्थात् R) संयोग को चुनेगा क्योंकि R बिन्दु एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा पर है और अधिक सन्तुष्टि को बताता है। LM कीमत रेखा I_3 तटस्थता रेखा से ऊँची किसी तटस्थता रेखा को न काट सकती है और न स्पर्श कर सकती है। अतः दी हुई आय तथा दी हुई कीमतों के आधार पर उपभोक्ता के लिए बिन्दु R द्वारा बताये गये नारंगी तथा केलों के संयोग के अतिरिक्त किसी अन्य अधिक सन्तोष प्रदान करने वाले संयोगों को चुनना सम्भव नहीं है क्योंकि ये संयोग उसकी आय के बाहर होंगे, अतः वह R संयोग को चुन लेता है : जिस पर उसे अधिकतम सन्तुष्टि मिलती है, इस प्रकार R बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में होगा। दूसरे शब्दों में,

उपभोक्ता का सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर कीमत रेखा तटस्थता-वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है।

अब हम उपभोक्ता के संतुलन की दूसरी दशा को लेते हैं। उपभोक्ता बिन्दु R पर सन्तुलन की स्थिति में है। इस संतुलन बिन्दु पर X वस्तु (अर्थात् नारंगी) की Y वस्तु (अर्थात् केलों) के लिए प्रतिस्थापन दर (Marginal Rate of Substitution) X तथा Y वस्तुओं के कीमत अनुपात (price-ratio) के बराबर है। यह बात निम्न विवरण से स्पष्ट हो जायेगी। हम जानते हैं कि दो वस्तुओ X तथा Y मे सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS_{XY}) = तटस्थता-वक्र रेखा के ढाल के; तथा चित्र 1 से स्पष्ट है कि R बिन्दु (अर्थात उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु) पर, तटस्थता-वक्र रेखा का ढाल = कीमत रेखा LM के ढाल के। अब हम समस्त स्थिति नीचे लिखते हैं—

X वस्तु की Y वस्तु के लिए प्रतिस्थापन दर (MRSxy)

$$= \text{Slope of Indifference Curve } I_3 \text{ (at point R)}$$

$$= \text{Slope of the price line LM}$$

$$= \text{Tan of } \angle \text{LMO}$$

$$= \frac{OL}{OM}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{Income}}{\text{Price of Y}}}{\dfrac{\text{Income}}{\text{Price of X}}}$$

$$= \frac{\dfrac{1}{\text{Price of Y}}}{\dfrac{1}{\text{Price of X}}}$$

$$= \frac{\text{Price of X}}{\text{Price of Y}}$$

$$= \text{Price Ratio of two Commodities}$$

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है—

उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति में दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर, उन वस्तुओं की कीमत अनुपात के बराबर होती है। संक्षेप में, उपभोक्ता के संतुलन की दशा है :

$$MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$$

हम जानते है कि $MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y}$ (जबकि MU_X वस्तु-X की सीमान्त उपयोगिता है तथा MU_Y वस्तु-Y की सीमान्त उपयोगिता है), और अभी हम ऊपर देख चुके हैं कि उपभोक्ता के सतुलन की स्थिति मे $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$; अतः संतुलन की इस दशा को हम इस प्रकार लिख सकते हैं:—

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

or $\frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$ (हम MRS_{XY} को हटा देते हैं)

or $\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$ $\left(\text{हम दोनों तरफ } \frac{MU_Y}{P_X} \text{ से गुणा कर देते हैं}\right)$

ध्यान रहे कि मार्शल ने भी एक उपभोक्ता के संतुलन की यही दशा बतायी है; इस प्रकार मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण तथा हिक्स की तटस्थता-वक्र विश्लेषण दोनो के द्वारा उपभोक्ता के सतुलन की एकसमान दशा प्राप्त होती है।

अब हम उपभोक्ता के सतुलन की तीसरी दशा को लेते है। उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए यह भी आवश्यक है कि सन्तुलन बिन्दु (R) पर, X वस्तु की Y वस्तु के लिए प्रतिस्थापन दर घटती हुई हो अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) हो अन्यथा सन्तुलन की स्थिति एक स्थायी सन्तुलन (stable equilibrium) की स्थिति नहीं होगी। यह बात निम्न विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।

माना कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई नही है, तो वह स्थिर (constant) हो सकती है या बढती हुई (increasing) हो सकती है। वह स्थिर नहीं हो सकती क्योकि इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक अतिरिक्त (additional) इकाई से प्राप्त उपयोगिता समान होगी, परन्तु यह सम्भव नही है। यदि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ती हुई (increasing) है, अर्थात् सन्तुलन के बिन्दु पर यदि तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम एक वस्तु X की इकाइयाँ बढ़ाते जाते हैं तो वस्तु X की अतिरिक्त इकाइयों की उपयोगिता (दूसरी वस्तु Y के शब्दों मे) बढ़ती जाती है, परन्तु यह बात भी सम्भव नही है।

चित्र 2

अतः उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु पर प्रतिस्थापन दर न स्थिर (constant) हो सकती है और न बढ़ती हुई (increasing), बल्कि वह घटती हुई होगी। इस बात को चित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र मे यद्यपि R बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कीमत अनुपात के बराबर है, परन्तु R बिन्दु एक स्थायी
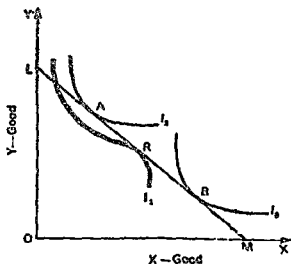
(stable) संतुलन की स्थिति नहीं है क्योंकि यहाँ पर प्रतिस्थापन दर घटती हुई नहीं है बल्कि बढ़ती हुई है, [अर्थात् तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है। इसका अर्थ यह हुआ कि R बिन्दु से बायें को हटने पर उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता रेखा I_2 पर पहुँचकर बिन्दु A पर संतुलन की स्थिति में होगा; या दायें की ओर हटने पर उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर पहुँचकर बिन्दु B पर संतुलन की स्थिति में होगा। इस प्रकार उपभोक्ता बिन्दु R से दायें या बायें हटकर ऊँची तटस्थता रेखा पर पहुँचकर अपनी संतुष्टि को बढ़ा सकेगा। स्पष्ट है कि बिन्दु R एक स्थायी संतुलन का बिन्दु नहीं है।

5. निष्कर्ष (Conclusion)

1. उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपभोक्ता के संतुलन के लिए निम्न दशाओं का पूरा होना आवश्यक है—

(i) कीमत-रेखा तटस्थता-वक्र पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है; और यह स्पर्श बिन्दु (point of tangency) उपभोक्ता के संतुलन को बताता है।

(ii) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS_{XY}) = कीमत अनुपात $\left(\frac{P_X}{P_Y}\right)$

(iii) स्थायी संतुलन के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर संतुलन के बिन्दु पर घटती हुई (diminishing) होनी चाहिए, अर्थात् तटस्थता-वक्र रेखा मूल बिन्दु (origin) के प्रति उन्नतोदर (convex) होनी चाहिए।

वास्तव में संतुलन की दशा नं. (i) के आधार पर दशा नं. (ii) प्राप्त होती है, और दशा नं. (ii) बताती है—

$$MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$$

$$\because \quad MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y}$$

$$\therefore \quad \frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

or $\quad \frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$ [उपभोक्ता के संतुलन की यही दशा मार्शल ने बतायी है।]

2. स्पष्ट है कि हिक्स ने तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता के सन्तुलन की वही दशा बतायी जो कि मार्शल ने उपयोगिता विश्लेषण द्वारा बतायी। परन्तु दोनों में मुख्य अन्तर इस प्रकार है—(i) हिक्स द्वारा बतायी गयी सन्तुलन की दशा क्रमवाचक उपयोगिता (ordinal utility) पर आधारित है जबकि मार्शल द्वारा दी गयी सन्तुलन की दशा गणनावाचक उपयोगिता (cardinal utility) पर आधारित है। (ii) मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण रीति द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलती है, जबकि हिक्स की तटस्थता-वक्र विश्लेषण रीति, उपभोक्ता के सन्तुलन के सन्दर्भ में, द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहती। (यह बात आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायगी।)

3. तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अनुसार एक उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए, अपनी दी हुई सीमित द्राव्यिक आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतों के आधार पर, सबसे ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा पर पहुंचने का प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दों में,

"यह विश्लेषण इस बुनियादी मूल्यांकन (value judgement) को लेकर चलता है कि 'उपभोक्ता को वह मिलना चाहिए जो कि वे चाहते हैं।' परन्तु यह विश्लेषण

इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहता कि जब उपभोक्ता एक नीची तटस्थता-वक्र रेखा से ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा पर जाता है तो उपभोक्ता की 'सन्तुष्टि' में वृद्धि किस दर से होती है : बढ़ती हुई दर से, घटती हुई दर से, अथवा समान दर से; और इस प्रकार यह विश्लेषण इस सम्बन्ध मे कुछ नही बताता कि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती है, घटती है, या समान रहती है।"[4]

प्रश्न

1 मार्शल तथा हिक्स के अनुसार उपभोक्ता के सन्तुलन की क्या दशाएं हैं ?
What are the conditions of a consumer's equilibrium according to Marshall and Hicks ?

अथवा

यह मानते हुए कि उपयोगिता की माप हो सकती है, सिद्ध कीजिए कि उपयोगिता विश्लेषण से और तटस्थता विश्लेषण से, उपभोक्ता के सन्तुलन की एकसमान शर्तें प्राप्त होती हैं। प्रमाण के लिए रेखाचित्रों और/या गणित-सूत्रों (फारमूलों) का प्रयोग कीजिए।
Supposing that utility can be measured, show that utility analysis and indifference analysis give the same conditions of equilibrium of the consumer. Use diagrams and/or formulae to prove your answer.

अथवा

"कीमत तथा तटस्थता-वक्र रेखा के बीच स्पर्शता (tangency), कीमतों व सीमान्त उपयोगिता के बीच आनुपातिकता (proportionality) को, तटस्थता-वक्रों के शब्दों में, व्यक्त करती है।" विवेचना कीजिए।
"Tangency between price-line and indifference curve is the expression, in terms of indifference curves, of the proportionality between marginal utility and prices." Discuss.

अथवा

तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा एक उपभोक्ता के सन्तुलन की विवेचना कीजिए।
Discuss the indifference curve analysis of a consumer's equilibrium.

---

4 "This (indifference curve) analysis involves the basic value judgement that consumers 'should get what they want.' The present analysis, however, says nothing at all about whether the consumer's 'happiness' increases at an increasing a decreasing or at a constant rate as he moves from a lower to a higher indifference curve, and thus nothing at all about whether the marginal utility of money increases, decreases or remains constant."

14

तटस्थता-वक्र विश्लेषण—3
(*Indifference Curve Analysis-3*)

प्रभाव : आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा कीमत प्रभाव
(*EFFECTS* : Income Effect, Substitution Effect, and Price Effect)

आय प्रभाव
(INCOME EFFECT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण (utility analysis) का एक मुख्य दोष यह था कि इसने आय में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप माँग में होने वाले परिवर्तन पर उचित ध्यान नहीं दिया। परन्तु तटस्थता-वक्र विश्लेषण इस बात पर भी ध्यान देता है कि आय में परिवर्तन होने से माँग में किस प्रकार परिवर्तन होता है; अर्थात् यह 'माँग पर आय के प्रभाव' का भी अध्ययन करता है।

2. 'आय प्रभाव' का अर्थ तथा आय उपभोग रेखा (The Concept of 'Income Effect' and Income Consumption Curve)

यदि वस्तुओं की कीमतें यथास्थिर (same) रहती हैं, परन्तु उपभोक्ता की आय में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होता है तो वह वस्तुओं की कम माँग या अधिक मांग कर सकता है और उसका संतोष पहले की अपेक्षा घट सकता है या बढ़ सकता है; हिक्स (Hicks) इसको 'आय प्रभाव' कहते हैं; हेनरी शुल्ज (Henry Schultz) ने इसको 'अप्रत्यक्ष प्रभाव' (indirect effect) कहा है। संक्षेप में, आय प्रभाव को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :

> **आय प्रभाव माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन है जो कि केवल आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है, जबकि वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।[1]**

आय प्रभाव को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है; ऐसी रेखा को जो कि आय प्रभाव को दिखाती है हिक्स 'आय उपभोग रेखा' (*Income Consumption Curve*) कहते हैं; संक्षेप में इसको ICC कहा जाता है। चित्र 1 में ICC रेखा को दिखाया गया है। (i) माना कि दो वस्तुएँ X तथा Y की कीमतें दी हुई हैं तथा वे स्थिर हैं; (ii) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे उपभोक्ता की आय में वृद्धि होती है वैसे-

---

[1] Income effect is the change in the quantity demanded resulting solely from a change in income, when the prices of the commodities remain constant.

चित्र 1
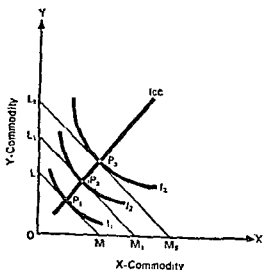
वैसे कीमत रेखा (price line) LM अपने आपको समानान्तर (parallel) रखते हुए दायें को खिसकती जाती है, जैसा कि चित्र में LM रेखा की स्थिति L_1M_1 तथा L_2M_2 हो जाती है। कीमत रेखाएं समानान्तर रहती हैं क्योंकि X तथा Y वस्तुओं की कीमतों (माना P_x तथा P_y) में कोई परिवर्तन नहीं होता है, कीमत अनुपात $\frac{P_x}{P_y}$ समान (constant) रहता है, दूसरे शब्दों में कीमत रेखाओं के ढाल (slopes) समान रहते हैं। कीमत रेखाओं LM, L_1M_1 तथा L_2M_2 के सन्दर्भ (reference) में उपभोक्ता के संतुलन की स्थितियाँ क्रमश P_1, P_2 तथा P_3 बिन्दु बताते हैं। उपभोक्ता-सतुलन के इन बिन्दुओं को मिलाने से जो रेखा प्राप्त होती है उसे हिक्स (तथा अनेक अन्य अर्थशास्त्री) 'आय उपभोग रेखा' कहते हैं। हम आय उपभोग रेखा को इन शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं—

आय उपभोग रेखा उपभोक्ता के संतुलन बिन्दुओं का रास्ता (locus) है, जबकि केवल आय में परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, यदि दो वस्तुओं X तथा Y की कीमतें स्थिर रहती हैं, तो 'आय उपभोग रेखा' उपभोग (या माँग) में परिवर्तनों को बताती है जो कि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होते हैं। संक्षेप में, आय उपभोग रेखा वस्तुओं की उपभोग की मात्राओं पर आय प्रभाव को रेखा के रूप में व्यक्त (trace out) करती है।*

'आय उपभोग रेखा' को अन्य नामों से पुकारा जाता है। प्रो. रायन (Prof. Ryan) इसे 'व्यय उपभोग रेखा' (Expenditure Consumption Curve) कहते हैं। प्रो. बोल्डिंग (Prof. Boulding) इसको 'रहन-सहन के स्तर की रेखा' (Scale of Living Line) या 'जीवन-प्रमाप की रेखा' (Standard of Life Line) कहते हैं क्योंकि यह उपभोग को बढाने के सर्वोत्तम (best) तरीके को बताती है जैसे-जैसे उपभोक्ता का कुल व्यय (total outlay) अर्थात् उसकी कुल आय (total income) बढ़ती है।

3. आय प्रभाव का स्वभाव तथा आय उपभोग रेखा की शक्ल (Nature of Income Effect and the Shape of Income Consumption Curve)

आय प्रभाव धनात्मक (*positive*) हो सकता है या ऋणात्मक (*negative*), सैद्धांतिक दृष्टि से कुछ दशाओं में वह तटस्थ (*neutral*) भी हो सकता है। आगे हम प्रत्येक स्थिति का विस्तारपूर्वक विवेचन करते है।

* Income Consumption Curve is a locus of points of consumer equilibrium when only income is changed. In other words, Income Consumption Curve indicates the changes in consumption (or demand) as a result of changes in consumer's income, prices of the commodities remaining the same. Briefly, Income Consumption Curve traces out the income effect on the consumption of the quantities of the goods.

एक वस्तु के लिए आय प्रभाव धनात्मक होगा जबकि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के परिणाम-स्वरूप वस्तु के उपभोग (या उसकी माँग) में भी वृद्धि होती है। यह सामान्य स्थिति (normal case) है और ऐसी स्थिति में वस्तु को 'सामान्य वस्तु' (*normal good*) अथवा 'श्रेष्ठ वस्तु' (*superior good*) कहा जाता है, प्रो. बोल्डिंग के शब्दों में इसे 'धनवान व्यक्ति की वस्तु' (rich man's good) भी कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, एक वस्तु को सामान्य या श्रेष्ठ तब कहा जायेगा जबकि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के साथ उपभोग की जाने वाली या माँगी जाने वाली मात्रा में भी वृद्धि होती है।[1]

चित्र 2

जब X तथा Y दोनों वस्तुओं का आय प्रभाव धनात्मक होता है तो आय उपभोग रेखा (ICC) का ढाल धनात्मक होगा अर्थात् वह ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र 2 में दिखाया गया है। ऊपर को चढ़ती हुई आय उपभोग रेखा बताती है कि आय में वृद्धि के साथ दोनों वस्तुओं X तथा Y का उपभोग बढ़ता है, अर्थात दोनों वस्तुएं X तथा Y 'सामान्य' या 'श्रेष्ठ' वस्तुएं हैं। परन्तु विभिन्न वस्तुओं के लिए ऊपर को चढ़ती हुई आय उपभोग रेखाओं का ढाल भिन्न होगा जैसा कि चित्र 2 में ICC_1, ICC_2 तथा ICC_3 रेखाएं दिखाती हैं। [इस चित्र में सरलता के लिए हमने तटस्थता-वक्र रेखाओं तथा कीमत रेखाओं को नहीं दिखाया है।]
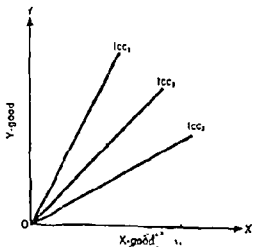
एक वस्तु के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होगा जबकि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के साथ उसके उपभोग (या माँग) में कमी होती है। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तुएं जिनका ऋणात्मक आय प्रभाव होता है उनको 'निम्न कोटि की वस्तुएं' (inferior goods) कहा जाता है; प्रो. बोल्डिंग ऐसी वस्तुओं के लिए 'निर्धन व्यक्तियों की वस्तुएं' (*poor men's goods*) शब्द का प्रयोग करते हैं। निर्धन व्यक्तियों के लिए 'सामान्य' या 'श्रेष्ठ' वस्तुओं का खरीदना कठिन होता है क्योंकि प्राय: इन वस्तुओं की कीमतें ऊँची होती हैं। परन्तु जैसे उनकी आय बढ़ती है वे निम्न कोटि की वस्तुओं के स्थान पर श्रेष्ठ वस्तुओं का प्रतिस्थापन (substitution) करने लगते हैं, और इस प्रकार आय में वृद्धि के साथ निम्न कोटि की वस्तुओं का उपभोग (या उनकी माँग) कम होने लगती है।

निम्न कोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में, ICC या तो पीछे को बायें की ओर झुक सकती है या दायें को झुक सकती है (the ICC may turn back either to the left or to the right); यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वस्तु X निम्न कोटि की है या वस्तु Y निम्न कोटि की है। इन दोनों स्थितियों को चित्र 3 (a) तथा (b) में दिखाया गया है।

यदि X वस्तु निम्न कोटि की है तो चित्र 3 (a) ICC की शक्ल को दिखाता है। चित्र से स्पष्ट है कि ICC का ढाल O से R तक धनात्मक है अर्थात् वह ऊपर को चढ़ती हुई है जिसका अर्थ है कि आय

[1] A good is said to be normal or superior if the quantity consumed or demanded increases with the increase in income.

मे वृद्धि के साथ दोनों वस्तुओं X तथा Y के उपयोग मे वृद्धि होती है। परन्तु बिन्दु R के बाद से ICC पीछे बायें को झुक जाती है जो कि बताती है कि आय मे वृद्धि के साथ बिन्दु R के बाद से वस्तु X
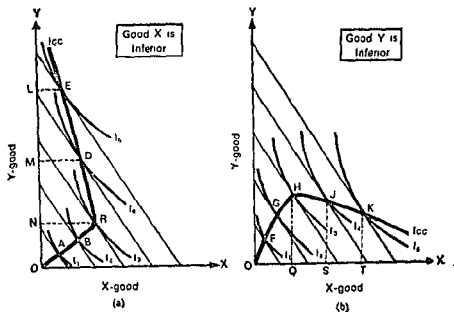
चित्र 3

का उपभोग घटने लगता है, परन्तु वस्तु Y का उपभोग बढ़ता जाता है।[4] इस प्रकार X एक निम्न कोटि की वस्तु है और Y एक श्रेष्ठ (या सामान्य) वस्तु है।

यदि Y-वस्तु निम्न कोटि की है तो चित्र 3 (b) ICC की शक्ल को दिखाता है। इस चित्र मे ICC का ढाल O से H तक धनात्मक है परन्तु H के बाद से यह पीछे दायें को झुक जाती है जो कि बताती है कि बिन्दु H के बाद से, आय में वृद्धि के साथ, वस्तु Y का उपभोग घटता जाता है, परन्तु वस्तु X का उपभोग बढता रहता है।[5] इस प्रकार वस्तु Y एक निम्न कोटि की वस्तु है और वस्तु X एक श्रेष्ठ (या सामान्य) वस्तु है।

बिना तटस्थता रेखाओ तथा कीमत रेखाओं के दिखाये हुए निम्न कोटि की वस्तुओ की आय उपभोग रेखाओ को दिखाने वाले चित्रों 3 (a) तथा (b) की स्थितियों को एक ही चित्र 4 में दिखाया जा सकता है। जब वस्तु X निम्न कोटि की है तो आय उपभोग रेखा की शक्ल ICC_1 होगी; यह बिन्दु R से पीछे को बायें की ओर झुक जाती है। जब वस्तु Y निम्न कोटि की है तो आय उपभोग रेखा की शक्ल ICC_2 होगी; यह बिन्दु H से पीछे को दायें की ओर झुक जाती है।

---

4 पड़ी दूरी (horizontal distance) वस्तु X की मात्रा को बताती है; चित्र 3 (a) से स्पष्ट है कि $EL < DM < RN$, अर्थात् बिन्दु R के बाद से X की मात्रा घटती जाती है। खड़ी दूरी (vertical distance) Y की मात्रा को बताती है; चित्र से स्पष्ट है कि A से लेकर E तक प्रत्येक बिन्दु पर खडी दूरी बढ़ती जाती है, अर्थात् Y की मात्रा बढती जाती है।

5 खड़ी दूरी Y की मात्रा को बताती है, चित्र से स्पष्ट है कि $KT < JS < HQ$, अर्थात् बिन्दु H के बाद से Y की मात्रा घटती जाती है। पडी दूरी, जो कि X की मात्रा को बताती है, O से K तक प्रत्येक बिन्दु पर बढ़ती जाती है।

अब हम तटस्थ आय प्रभाव (neutral income effect) की विवेचना करते हैं। आय प्रभाव तब तटस्थ कहा जाता है जबकि आय में वृद्धि होने पर वस्तु के उपभोग (या उसकी मांग) में कोई वृद्धि या कमी नहीं होती है। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तुएँ जिनका तटस्थ आय प्रभाव होता है उनको तटस्थ वस्तुएँ (neutral goods) कहा जाता है।

चित्र 4

चित्र 5 (a) तथा (b) में तटस्थ आय प्रभाव को दिखाया गया है। जब वस्तु Y तटस्थ है तो ICC की शक्ल एक पड़ी रेखा होगी जैसा कि चित्र 5 (a) में दिखाया गया है. पड़ी हुई ICC बताती है कि आय में वृद्धि के साथ Y की मात्रा (जोकि A, B तथा C से टूटी हुई खड़ी रेखाएं बताती है) समान रहती है, अर्थात् उसमें न वृद्धि होती है और न कमी; परन्तु वस्तु X की मात्रा बढ़ती जाती है। अतः वस्तु Y एक तटस्थ वस्तु है तथा वस्तु X एक सामान्य या श्रेष्ठ वस्तु है।
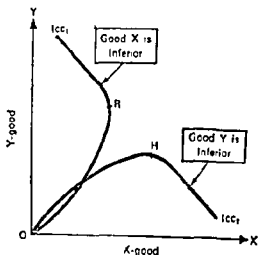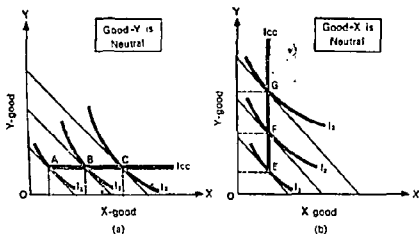
चित्र 5

जब वस्तु X तटस्थ है तो ICC की शक्ल एक खड़ी रेखा होगी जैसा कि चित्र 5 (b) में दिखाया गया है, खड़ी हुई ICC बताती है कि आय में वृद्धि के साथ X की मात्रा (जो कि E, F, तथा G से टूटी हुई पड़ी रेखाएं बताती है) समान रहती है अर्थात् उसमें न वृद्धि होती है और न कमी; परन्तु वस्तु Y की मात्रा बढ़ती जाती है। अत. वस्तु X एक तटस्थ वस्तु है तथा वस्तु Y एक सामान्य या श्रेष्ठ वस्तु है।

इस प्रकार 'आय उपभोग रेखा' की शक्ल को देखने से हम बता सकते हैं कि एक वस्तु 'सामान्य

या श्रेष्ठ' है अथवा निम्न कोटि की है या तटस्थ है। सारी स्थिति का साराश नीचे दी गयी तालिका द्वारा दिया जा सकता है :

ICC की शक्ल	वस्तु का स्वभाव	
	X-वस्तु	Y-वस्तु
1. धनात्मक ढाल [चित्र 2]	सामान्य या श्रेष्ठ	सामान्य या श्रेष्ठ
2. जब ICC पीछे को बायें की ओर झुक जाती है [चित्र 3(a)]	निम्न कोटि की	श्रेष्ठ
3. जब ICC पीछे को दायें की ओर झुक जाती है [चित्र 3 (b)]	श्रेष्ठ	निम्न कोटि की
4. जब ICC पड़ी हुई (horizontal) होती है [चित्र 5(a)]	श्रेष्ठ	तटस्थ
5. जब ICC खड़ी हुई होती है [चित्र 5(b)]	तटस्थ	श्रेष्ठ

प्रतिस्थापन प्रभाव
(SUBSTITUTION EFFECT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) के परिणामस्वरूप उस वस्तु के उपभोग *(या माँग) पर दो प्रकार के प्रभाव पड़ते है : (i) आय प्रभाव (income effect) तथा (ii) प्रति-*स्थापन प्रभाव (substitution effect)। माना कि दो वस्तुओं X तथा Y में से एक वस्तु X की कीमत घट जाती है, तो उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) बढ जायेगी;[6] यह 'कीमत में घटने का आय प्रभाव' (income effects of a price-fall) है; इस आय प्रभाव के कारण उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता रेखा पर चला जाता है (अर्थात् उसकी संतुष्टि पहले से बढ़ जाती है)। पुनः वस्तु X की कीमत घटने का अर्थ है कि X तथा Y की सापेक्षिक कीमतो (relative prices) में परिवर्तन हो जाता है तथा वस्तु X के सस्ती हो जाने से उपभोक्ता वस्तु X का अधिक प्रयोग करेंगे, अर्थात् वस्तु X का प्रतिस्थापन वस्तु Y के स्थान पर करेंगे, इसे 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' कहा जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि प्रतिस्थापन **प्रभाव 'केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन' के परिणामस्वरूप होता** है; कीमत मे कमी के होने के कारण 'आय प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव' दोनो एक साथ उत्पन्न होते हैं; प्रतिस्थापन प्रभाव को तभी मालूम किया जा सकता है जबकि आय प्रभाव को किसी तरह से समाप्त (neutralize) किया जा सके (अर्थात् उपभोक्ता की आय को स्थिर या समान रखा जा सके) क्योंकि प्रतिस्थापन प्रभाव 'केवल सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन' का परिणाम होता है।

2. प्रतिस्थापन प्रभाव की परिभाषा (Definition of Substitution Effect)

प्रतिस्थापन प्रभाव को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं :

केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप किसी वस्तु के उपभोग *(या*

---

[6] माना कि वस्तु X की कीमत 10 रु. थी और एक उपभोक्ता उसकी 3 इकाइयों का प्रयोग करने के लिए $10 \times 3 = 30$ रु. व्यय करता था, कीमत घटकर 6 रु. हो जाती है तो अब उपभोक्ता 3 इकाइयो के लिए $6 \times 3 = 18$ रु. व्यय करेगा; अर्थात् उसकी वास्तविक आय $(30 - 18 = 12$ रु.) से बढ़ जाती है, यह 'कीमत घटने का आय-प्रभाव' है।

> उसकी मांग) में परिवर्तन को प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता है, जबकि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहती है।[7]

उपभोक्ता की 'वास्तविक आय' (real income) को स्थिर रखने के लिए, ताकि केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के कारण उपभोग पर प्रभाव को मालूम किया जा सके, 'कीमत में परिवर्तन के कारण आय प्रभाव' को समाप्त करने के लिए साथ ही साथ उपभोक्ता की 'द्राव्यिक आय' (money income) में परिवर्तन करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि वस्तु X की कीमत घट जाती है तो उपभोक्ता की 'वास्तविक आय' में वृद्धि होगी, यह आवश्यक है कि उपभोक्ता की 'द्राव्यिक आय' को इतनी मात्रा से घटाया जाये जिससे कि 'वास्तविक आय' में वृद्धि समाप्त (cancel or neutralize) हो सके; तब ही प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात किया जा सकेगा क्योंकि प्रतिस्थापन प्रभाव केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन का परिणाम होता है। आय प्रभाव को समाप्त करने के लिए उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में परिवर्तन के लिए अर्थशास्त्री 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (*compensating variation in income*) शब्द का प्रयोग करते हैं। दूसरे शब्दों में,

> कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन को समाप्त (neutralize) करने के लिए उसकी द्राव्यिक आय में जो परिवर्तन किया जाता है उसे 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' कहते हैं।[8]

3. प्रतिस्थापन प्रभाव की व्याख्या (Explanation of Substitution Effect)

प्रतिस्थापन प्रभाव के दो रूप, थोड़ी भिन्नता के साथ, दिये जाते हैं :

(i) एक रूप हिक्स द्वारा दिया गया है जो कि 'हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव' (*Hicks' Substitution Effect*) के नाम से जाना जाता है।

(ii) दूसरा रूप रूस के अर्थशास्त्री स्लट्स्की द्वारा दिया गया है जो कि 'स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव' (*Slutsky's Substitution Effect*) के नाम से जाना जाता है।

वास्तव में इन दोनों में अन्तर द्राव्यिक आय की उस मात्रा से सम्बन्धित है जो कि कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन को समाप्त करने के लिए जरूरी है।[9]

अब हम दोनों विचारों की विस्तृत व्याख्या करते हैं।

हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव—हिक्स के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव तब उत्पन्न होता है जबकि, सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप, उपभोक्ता पहले की तुलना में न तो अच्छी स्थिति में होता है और न ही खराब स्थिति में; वह तो दो वस्तुओं की खरीदों (purchases) को केवल पुनःव्यवस्थित (rearrange) कर लेता है, अर्थात् वह सस्ती वस्तु को महँगी वस्तु के स्थान पर प्रतिस्थापित करता है। दूसरे शब्दों में, **हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव के अनुसार सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के बाद उपभोक्ता एक ही तटस्थता रेखा पर चलता है।**[10]

---

[7] The change in consumption (or demand) of a commodity caused by a change in the relative prices alone, real income remaining constant, is called substitution effect.

[8] "The change in money income in order to neutralize or compensate the change in real income of the consumer as a result of a change in relative prices is called 'compensating variation in income.'"

[9] As a matter of fact the two views differ with respect to the magnitude or quantum of the change in money income necessary to cancel or neutralize the change in real income of the consumer which occurs owing to change in price.

[10] According to Hicksian substitution effect the consumer moves on the same indifference curve after the change in relative prices.

एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से (theoretically) यह सम्भव है कि सापेक्षिक कीमतो में परिवर्तन आवश्यक रूप से आय प्रभाव को उत्पन्न न करे। (यह बात थोड़ा आगे दिये गये विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।) इस प्रकार हम हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव की विवेचना निम्न दो स्थितियों मे कर सकते है—

(i) वह प्रतिस्थापन प्रभाव जिसमें सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव नही होता।

(ii) वह प्रतिस्थापन प्रभाव जिसमें सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव होता है और जिसको समाप्त करने के लिए 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (Compensating variation in income) करना पड़ता है, (अर्थात् 'प्रतिस्थापन प्रभाव आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन के साथ')।

(i) अब हम पहले प्रकार के प्रतिस्थापन प्रभाव को लेते है। हम कुछ बातो को मानकर चलते हैं—(a) दो वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन हो जाता है और एक वस्तु सस्ती तथा दूसरी वस्तु महँगी हो जाती है। (b) माना कि वस्तु X की कीमत मे कमी होती है, तो दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन हो जायेगा, परन्तु हम यह भी मान लेते है कि साथ ही साथ वस्तु Y की कीमत मे इस प्रकार वृद्धि हो जाती है कि वह वस्तु X की कीमत मे कमी को पूर्णतया नष्ट (offset) कर देती है। परिणामस्वरूप उपभोक्ता का कुल सतोष पहले के समान ही बना रहता है। दूसरे शब्दो में, यह कहा जा सकता है कि यहाँ पर वस्तुओं की कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव उत्पन्न नही होता। (c) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर रहती है।

उपभोक्ता का सन्तोष पहले के समान बना रहता है इसका अर्थ है कि वह पुरानी ही तटस्थता-वक्र रेखा पर बना रहता है। परन्तु पुरानी तटस्थता रेखा पर रहते हुए भी उपभोक्ता अपनी खरीद को फिर से व्यवस्थित (rearrange) करेगा, अर्थात वह सस्ती वस्तु X को महँगी वस्तु Y के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) करेगा; दूसरे शब्दो मे, वह उसी तटस्थता-वक्र रेखा पर नीचे की ओर किसी बिन्दु पर चला जायेगा।

चित्र 6

समस्त स्थिति चित्र 6 से स्पष्ट होती है। चित्र मे कीमत रेखा (price line) की प्रारम्भिक स्थिति LM है तथा उपभोक्ता बिन्दु E पर सतुलन की स्थिति मे है। वस्तु X की कीमत गिरती है और साथ ही साथ वस्तु Y की कीमत मे वृद्धि होती है जो कि X कीमत मे कमी को पूर्णतया नष्ट कर देती है; परिणामस्वरूप कीमत रेखा की नयी
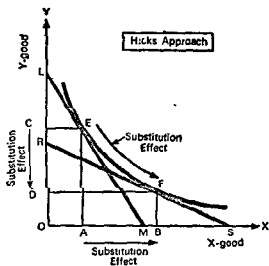
एक ही तटस्थता रेखा पर चलन का अर्थ है कि उपभोक्ता की सन्तुष्टि का स्तर एकसमान रहता है, अर्थात् उपभोक्ता पहले की तुलना मे न तो अच्छी स्थिति मे होता है और न ही खराब स्थिति मे।

स्थिति RS हो जाती है और अब (अर्थात् कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप) उपभोक्ता उसी तटस्थता रेखा पर नीचे की ओर बिन्दु F पर संतुलन की स्थिति में पहुंच जाता है। इसका अभिप्राय है कि वह अपनी खरीद को फिर से व्यवस्थित (rearrange) करता है अर्थात् वह सस्ती वस्तु X को AB के बराबर अधिक मात्रा खरीदता है और वस्तु Y की मात्रा CD के बराबर घटा देता है; इस प्रकार वह X का Y के स्थान पर प्रतिस्थापन करता है। अत.

(a) प्रतिस्थापन प्रभाव एक ही तटस्थता वक्र रेखा पर E से F तक चलन है।

(b) दूसरे शब्दों में, वस्तु X पर प्रतिस्थापन प्रभाव है AB के बराबर X की मात्रा में वृद्धि।

(c) दूसरे शब्दों में, वस्तु Y पर प्रतिस्थापन प्रभाव है CD के बराबर Y की मात्रा में कमी।

(ii) अब हम प्रतिस्थापन-प्रभाव की दूसरी स्थिति को लेते हैं, अर्थात् 'प्रतिस्थापन प्रभाव आय में क्षतिपूरक परिवर्तन के साथ' (substitution effect with compensating variation in income) को लेते हैं। इस स्थिति को चित्र 7 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र 7

उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई है तथा वस्तुओं की कीमतें भी दी हुई हैं, तथा (चित्र 7 में) कीमत रेखा LM है; उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति बिन्दु R बताता है (अर्थात् इस बिन्दु पर उपभोक्ता के पास X वस्तु की OA मात्रा तथा Y वस्तु की OC मात्रा का संयोग है); यह शुरू की स्थिति है।

माना—
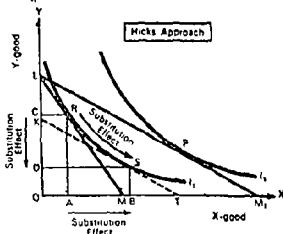
(a) वस्तु X की कीमत घटती है।

(b) वस्तु Y की कीमत समान या स्थिर रहती है।

(c) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर या समान है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर वस्तु X की कीमत घटने के तात्कालिक परिणाम (immediate consequences) होंगे—

(a) नई कीमत-रेखा LM_1 होगी।

(b) वस्तु X की कीमत घटने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय (या क्रय-शक्ति) बढ़ेगी, और इसलिए उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 के बिन्दु P पर साम्य की स्थिति में होगा। (ध्यान रहे कि आय प्रभाव का अर्थ है ऊँची तटस्थता रेखा पर जाना।)

प्रतिस्थापन प्रभाव को मालूम करने के लिए वास्तविक आय (या क्रय शक्ति) में वृद्धि को नष्ट (neutralize) करना होगा और इसके लिए उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में इतनी कमी करनी पड़ेगी जिससे कि वह पहली तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर ही बना रहे (और I_2 पर न जा सके); अर्थात् उपभोक्ता की 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (compensating variation in income) या 'समतुल्य परिवर्तन' (equivalent variation) करना पड़ेगा। चित्र में 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' को ज्ञात करने के लिए हम एक काल्पनिक कीमत रेखा KT खींचते हैं जो कि नयी कीमत रेखा LM_1

के समानान्तर होती है तथा पहली तटस्थता-वक्र रेखा I_1 को किसी एक बिन्दु (S पर) स्पर्श करती है। काल्पनिक कीमत रेखा KT नयी कीमत रेखा LM_1 के समानान्तर खींची जाती है, इसका अभिप्राय है कि KT रेखा का ढाल LM_1 रेखा के ढाल के बराबर होगा, और चूंकि LM_1 कीमत रेखा का ढाल नये कीमत अनुपात को बताता है, इसलिए काल्पनिक कीमत रेखा KT भी नये कीमत अनुपात को बताती है। इस काल्पनिक कीमत रेखा KT को खींचने से यह पता चल जाता है कि कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन के बाद, उपभोक्ता की द्राव्यिक आय को LK (वस्तु Y के शब्दों में) के बराबर घटाना पड़ेगा तब ही उपभोक्ता पहली तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर रह सकेगा अर्थात् तब ही उसका सतोष समान रह सकेगा अथवा यह कहिए कि तब ही उपभोक्ता पहले की तुलना में न अच्छी स्थिति में होगा और न बुरी स्थिति में। दूसरे शब्दों में, हिक्स के अनुसार, प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' बराबर होगा LK के (Y के शब्दों में)। स्पष्ट है कि हिक्स के अनुसार,

(a) प्रतिस्थापन प्रभाव प्रारम्भिक साम्य की स्थिति बिन्दु R से काल्पनिक साम्य की स्थिति बिन्दु S तक चलन है; दोनों बिन्दु एक ही तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर स्थित हैं, अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव एक ही तटस्थता-वक्र रेखा पर चलन (movement) है।

(b) अथवा, वस्तु X पर प्रतिस्थापन प्रभाव बराबर है X की मात्रा में AB की वृद्धि।

(c) अथवा, वस्तु Y पर प्रतिस्थापन प्रभाव बराबर है Y की मात्रा में CD की कमी।
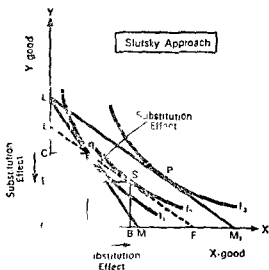
चित्र 8

स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव (Slutsky's substitution effect): अभी तक प्रतिस्थापन प्रभाव पर हिक्स के दृष्टिकोण की विवेचना कर रहे थे; अब स्लट्स्की के दृष्टिकोण की व्याख्या करते हैं। दोनों में थोड़ा अन्तर है। स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र 8 में दिखाया गया है।

उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई है, तथा वस्तुओं की कीमतें दी हुई हैं और (चित्र 8 में) कीमत रेखा LM है; उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति बिन्दु R बताता है (अर्थात् इस बिन्दु पर उपभोक्ता के पास X वस्तु की OA मात्रा तथा Y वस्तु की OC ... संयोग या पैकिट (combination or packet) है; यह शुरू की स्थिति है।

मान...

(a) वस्तु X की कीमत घटती है।

(b) वस्तु Y की कीमत स्थिर या समान रहती है।

(c) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय समान रहती है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर वस्तु X की कीमत घटने के तात्कालिक परिणाम होंगे—

(a) नयी कीमत रेखा LM_1 होगी

(b) वस्तु X की कीमत घटने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय (या क्रय शक्ति) बढ़ेगी, और इसलिए उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_3 के बिन्दु P पर साम्य या संतुलन की स्थिति में होगा।

प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि को नष्ट करना होगा अर्थात् उसकी द्राव्यिक आय में कमी करनी होगी; परन्तु प्रश्न यह उठता है कि उसकी द्राव्यिक आय को कितनी मात्रा से घटाया जाये।

स्लट्स्की के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की आय उस मात्रा से परिवर्तित की जानी चाहिए (यहाँ पर घटायी जानी चाहिए) जिससे कि उपभोक्ता वस्तुओं के प्रारम्भिक पैकिट या संयोग (original packet or combination of goods) को खरीद सके।

उपभोक्ता की द्राव्यिक आय इतनी घटायी जाये कि वह वस्तुओं के प्रारम्भिक पैकिट को खरीद सके, इसके लिए चित्र 8 में एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खींची जाती है जो कि प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु R से गुजरती है तथा नयी कीमत रेखा LM_1 के समानान्तर (parallel) होती है। LM_1 रेखा वस्तुओं के नये कीमत-अनुपात को बताती है और चूंकि काल्पनिक कीमत रेखा EF समानान्तर है LM_1 रेखा के, इसलिए काल्पनिक कीमत रेखा EF भी नये कीमत अनुपात को बतायेगी। चूंकि EF रेखा बिन्दु R से गुजरती है इसलिए उपभोक्ता वस्तुओं के प्रारम्भिक पैकिट को खरीद सकेगा; अत: उपभोक्ता की आय को LE के बराबर (Y के शब्दों मे) घटाना पड़ेगा। परन्तु यह स्पष्ट है कि अब उपभोक्ता वास्तव मे वस्तुओं के प्रारम्भिक पैकिट R को नहीं खरीदेगा क्योंकि अब वस्तु X सापेक्षिक रूप से सस्ती हो गयी है तथा वस्तु Y सापेक्षिक रूप से महँगी हो गयी है। अत: कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन के कारण उपभोक्ता अपनी खरीद को फिर से व्यवस्थित करेगा और वह सस्ती वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदेगा। काल्पनिक कीमत रेखा EF एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 के लिए बिन्दु S पर स्पर्श-रेखा (tangent) है। अत: उपभोक्ता अब बिन्दु S पर संतुलन की स्थिति में होगा। इस प्रकार—

(a) स्लट्स्की के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव है बिन्दु R से काल्पनिक बिन्दु S तक चलन (movement); स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव, हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव की भांति, प्रारम्भिक तटस्थता रेखा अर्थात् 'एक ही तटस्थता रेखा पर चलन नहीं' है; स्लट्स्की एक नीची तटस्थता-वक्र रेखा से एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा पर चलन की आज्ञा देते हैं।

(b) वस्तु X पर प्रतिस्थापन प्रभाव बराबर है X की मात्रा मे AB की वृद्धि।

(c) वस्तु Y पर प्रतिस्थापन प्रभाव बराबर है Y की मात्रा मे CD की कमी।

4. हिक्स तथा स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभावों की तुलना (Comparison of Hicks' and Slutsky's Substitution Effects)

हिक्स तथा स्लट्स्की के दृष्टिकोणों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित है—

(i) इन दोनों के प्रतिस्थापन प्रभावों में मुख्य अन्तर द्राव्यिक आय (money income) की मात्रा में निहित है जिसके द्वारा वास्तविक आय (real income) मे परिवर्तन की क्षतिपूर्ति (compensation) करने के लिए, द्राव्यिक आय को परिवर्तित किया जाता है (अर्थात् स्थिति के अनुसार घटाया या बढ़ाया जाता है)। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में उस मात्रा (magnitude) से परिवर्तन किया जाना चाहिए जिससे कि उसको प्रारम्भिक (original) संतोष प्राप्त हो जाये, अर्थात् हिक्स उपभोक्ता को प्रारम्भिक तटस्थता-वक्र रेखा पर ही चलन (movement) की आज्ञा देते है। स्लट्स्की के अनुसार उपभोक्ता की द्राव्यिक आय मे उस मात्रा से परिवर्तन किया

जाना चाहिए जिससे कि उपभोक्ता वस्तुओं के प्रारम्भिक पेकिट (original packet of goods) को खरीद सके, और वे उपभोक्ता को एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा पर पहुंचने की आज्ञा देते है, तथा इस दृष्टि से, स्लट्स्की उपभोक्ता की 'आवश्यकता से अधिक क्षतिपूर्ति' (over compensate) करते है।

(ii) स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से महत्त्व (empirical advantage) रखता है क्योंकि उपभोक्ता की आय में क्षतिपूरक कमी की मात्रा (size of the required compensating reduction in consumer's income) को आसानी से निर्धारित किया जा सकता है। [चित्र 8 में R बिन्दु पर वस्तुओं की खरीदी गयी मात्राओं की जानकारी तथा कीमतों की जानकारी के आधार पर द्राव्यिक आय में कमी LE को आसानी से मालूम किया जा सकता है।]

उसके विपरीत हिक्स के अनुसार 'आय में क्षतिपूरक कमी' (compensating reduction in money income) तभी मालूम हो सकती है जबकि प्रारम्भिक (original) तटस्थता-वक्र रेखा के शक्ल की जानकारी हो, अर्थात् उपभोक्ता की रुचियों व पसन्दों (tastes and preferences) की जानकारी हो; परन्तु इनको व्यावहारिक दृष्टि से मालूम नहीं किया जा सकता; इसलिए आय मे आवश्यक कमी (required income reduction) को मालूम या निर्धारित नही किया जा सकता है। अत हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव के सम्बन्ध मे एक हानि या असुविधा यह है कि यह व्यवहार मे प्रयोग की दृष्टि से व्यर्थ या खाली है। (The Hicks' effect has the disadvantage of being empirically empty.)

कीमत प्रभाव
(PRICE EFFECT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

परम्परागत माँग रेखा (traditional demand curve) मुख्यतया दो मान्यताओं पर आधारित है : (i) एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन, कमी या वृद्धि, होती है, जबकि अन्य वस्तुओं की कीमतें समान या स्थिर रहती हैं; तथा (ii) उपभोक्ता की आय स्थिर या समान रहती है।

यदि किसी वस्तु X की कीमत में परिवर्तन होता है, माना उसकी कीमत घट जाती है, तो सामान्य स्थिति मे उसकी माँग मे वृद्धि होगी क्योंकि उपभोक्ता सस्ती वस्तु X को, अन्य वस्तुओं (जो कि अपेक्षाकृत महँगी हैं) के स्थान पर प्रतिस्थापित करेगा। इसे 'कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप प्रतिस्थापन प्रभाव' (*substitution effect of a change in price*) कहा जाता है। पुन:, आय के स्थिर रहने की मान्यता व्यावहारिक जीवन मे सही नही पायी जाती है। किसी एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) में परिवर्तन हो जाता है। इसे 'कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव' (*income effect of a change in price*) कहा जाता है। मार्शल का माँग-विश्लेषण इस आय प्रभाव की उपेक्षा (neglect) करता है।

हिक्स तथा एलन (Hicks and Allen) ने बताया कि 'कीमत परिवर्तन का माँग पर कुल प्रभाव' ('*total effect*' of a price change on demand) के दो अंग होते है : (i) प्रतिस्थापन प्रभाव तथा (ii) आय प्रभाव।

2. कीमत-प्रभाव की परिभाषा (The Concept of Price-Effect)

कीमत-प्रभाव को हम निम्न शब्दों मे परिभाषित कर सकते है :

कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की माँगी गयी मात्रा पर 'कुल प्रभाव' को कीमत-प्रभाव मापता है।[11]

---

[11] Price effect measures the '*total effect*' of a price change on the quantity demanded of a commodity by the consumer.

कीमत-प्रभाव के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि उन मान्यताओं को ध्यान में रखा जाये जिन पर यह आधारित है। कीमत-प्रभाव निम्न मान्यताओं पर आधारित है—

(i) एक वस्तु (माना X) की कीमत में परिवर्तन होता है; (माना कि कीमत गिरती है)।

(ii) दूसरी वस्तु (माना Y) की कीमत समान या स्थिर रहती है।

(iii) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय (money income) स्थिर रहती है।

(iv) वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) बढ़ती है; वास्तविक आय में वृद्धि (या परिवर्तन) को नष्ट (neutralize) नहीं किया जाता या यह कहिए कि उसकी क्षतिपूर्ति (compensation) नहीं की जाती; दूसरे शब्दों में, 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (compensating variation in income) नहीं होता है और उपभोक्ता की स्थिति को, पहले की तुलना में, अच्छी (या खराब, यदि वस्तु X की कीमत बढ़ती है) होने दिया जाता है।

3. कीमत-प्रभाव का रेखीय प्रस्तुतीकरण : 'कीमत उपभोग रेखा'; सामान्य वस्तुओं की स्थिति (Graphic representation of Price-Effect : 'Price Consumption Curve'; Case of 'Normal Goods'.)

कीमत-प्रभाव को हम चित्र 9 द्वारा समझाते है। द्राव्यिक आय दी हुई है, तथा वस्तु X और Y की कीमतें दी हुई हैं, इनके आधार पर कीमत रेखा की शुरू की स्थिति (original position) LM है; तथा उपभोक्ता बिन्दु A पर साम्य की स्थिति में है और इस शुरू की साम्य की स्थिति बिन्दु A पर उपभोक्ता वस्तु X की OR मात्रा तथा वस्तु Y की OQ मात्रा खरीदता है। अब हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय तथा वस्तु Y की कीमत समान (या स्थिर) रहती है, परन्तु वस्तु X की कीमत घटती है। ऐसी स्थिति में उसी द्राव्यिक आय से वस्तु X की OM मात्रा के स्थान पर अधिक मात्रा OM_1 खरीदी जा सकेगी। चूंकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है इसलिए उपभोक्ता सदैव Y की OL मात्रा ही खरीदेगा, अर्थात Y के शब्दों में उपभोक्ता की आय हमेशा OL रहेगी और कीमत-रेखा का बिन्दु L स्थिर रहेगा। इस प्रकार नयी कीमत-रेखा LM_1 होगी तथा उपभोक्ता के साम्य की नयी स्थिति ऊंची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 के बिन्दु B पर होगी, और इस बिन्दु B पर उपभोक्ता X-वस्तु की OS मात्रा तथा Y-वस्तु की OT मात्रा खरीदेगा। माना कि वस्तु X की कीमत और अधिक गिरती है, नयी कीमत-रेखा की स्थिति LM_2 हो जाती है तथा उपभोक्ता ऊंची तटस्थता-वक्र रेखा I_3 के बिन्दु C पर साम्य की स्थिति प्राप्त करता है। **उपभोक्ता के इन साम्य बिन्दुओं A, B तथा C को मिलाने से एक रेखा प्राप्त होती है जिसे कीमत-उपभोग-रेखा (*Price Consumption Curve* या संक्षेप में, *PCC*) कहते हैं।** कभी-कभी इसे 'भेंट या ऑफर रेखा' (*Offer Curve*) भी कह दिया जाता है। कीमत उपभोग रेखा को अग्रलिखित शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है :
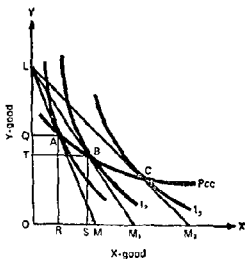
चित्र 9

कीमत उपभोग रेखा यह बताती है कि एक वस्तु X की कीमत किस प्रकार से उपभोक्ता के लिए उस वस्तु X की मांग को प्रभावित (या परिवर्तित) करती है, जबकि दूसरी वस्तु Y की कीमत तथा उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर (या समान) रहती है। दूसरे शब्दों में, कीमत उपभोग रेखा कीमत-प्रभाव के रास्ते को बताती है।[12]

कीमत उपभोग रेखा वस्तु X की कीमतों तथा प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु X की उपभोक्ता द्वारा माँगी जाने वाली मात्राओ के समूहों (sets) को बताती है। इस प्रकार से यह रेखा उस सूचना को बताती है जिसके आधार पर उपभोक्ता की मांग रेखा का निर्माण किया जा सकता है।[13]

चित्र 9 में PCC नीचे को गिरती हुई है। नीचे को गिरती हुई PCC बताती है कि यदि वस्तु X की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा तथा वस्तु Y की कम मात्रा खरीदता है। दूसरे शब्दो मे, जिस वस्तु के लिए PCC नीचे को गिरती हुई होती है उसको 'सामान्य वस्तु' (Normal good) कहा जाता है। [PCC की अन्य शक्लें हो सकती है जिनके बारे मे हम आगे बतायेंगे।]

4. कीमत-प्रभाव को 'प्रतिस्थापन प्रभाव' तथा 'आय-प्रभाव' में तोड़ना या अलग करना—'हिक्स की रीति' (Decomposing Price Effect into 'Substitution Effect' and 'Income Effect'—*Hicksian Method*)

कीमत प्रभाव दो प्रभावो का योग है: प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव। दूसरे शब्दो मे, कीमत उपभोग रेखा इन दोनो प्रभावो को अपने मे शामिल रखती है। अब हम मांग पर कीमत के कुल प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव मे तोड़ेंगे। इसके लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है: (i) हिक्स की रीति तथा (ii) स्लट्स्की की रीति। पहले हम हिक्स की रीति की विवेचना करते हैं।

कीमत प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव मे तोड़ने की हिक्स की रीति को चित्र 10 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

उपभोक्ता की द्राव्यिक आय दी हुई है तथा वस्तु X और Y की कीमतें दी हुई है जिनके आधार पर कीमत रेखा की स्थिति LM है; उपभोक्ता P बिन्दु पर साम्य की स्थिति मे है; यह प्रारम्भिक स्थिति है।

माना वस्तु X की कीमत घट जाती है (जबकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है) तो उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदेगा, नयी कीमत रेखा LM_1 हो जाती है और अब उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता रेखा I_2 के बिन्दु R पर साम्य की स्थिति मे होगा। तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु P से ऊँची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु R तक चलन 'कीमत प्रभाव' (Price Effect) या 'अन्तिम कीमत प्रभाव' (Final Price Effect) या 'कुल कीमत प्रभाव' (Total Price Effect) है। अब हम इस कीमत प्रभाव के दोनो अगो (प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव) को अलग करते है।

वस्तु X की कीमत मे कमी होने से दोनो वस्तुओ X तथा Y की सापेक्षिक कीमतो मे

---

12 Price consumption curve shows how the price of one good X affects (or changes) the consumer's demand of X, price of the other good Y and his money income remaining constant. In other words, price consumption curve traces the path of price-effect.

13 "The PCC represents sets of prices of X and the quantities of X the consumer buys at each price. ... curve, therefore, contains the information from which the consumser's demand curve can be constructed."

चित्र 10

परिवर्तन हो जाता है, परन्तु साथ ही साथ उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि भी हो जाती है। प्रतिस्थापन प्रभाव को मालूम करने के लिए वास्तविक आय में वृद्धि को नष्ट (neutralize) करना पड़ेगा अर्थात् द्राव्यिक आय में कमी करनी पड़ेगी। हिक्स के अनुसार द्राव्यिक आय को उस मात्रा से घटाना पड़ेगा जिससे कि उपभोक्ता का संतोष पहले के समान हो जाये अर्थात् उपभोक्ता पहली तटस्थता-वक्र रेखा पर आ जाये। इसके लिए हम नयी कीमत रेखा LM_1 के समानान्तर (parallel) एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खींचते हैं जो कि प्रारम्भिक (original) तटस्थता-वक्र रेखा I_1 को बिन्दु T पर स्पर्श करती है। कीमत रेखा LM_1 वस्तु X तथा Y के नये कीमत अनुपात को बताती है; और चूंकि काल्पनिक कीमत रेखा EF समानान्तर है LM_1 के, इसलिए EF रेखा भी नये कीमत अनुपात को बतायेगी। इस काल्पनिक कीमत रेखा EF के खींचने से हमें 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' (compensating variation in income) प्राप्त हो जाता है जो कि LE (Y के शब्दों में) है; अर्थात् द्राव्यिक आय में LE के बराबर कमी कर देने से वह पहली तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु T पर साम्य की स्थिति में आ जाता है और उसका संतोष पहले के समान हो जाता है। अतः एक ही तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर P से T तक चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है। यदि अब द्राव्यिक आय में कमी (अर्थात् LE) को उपभोक्ता को वापस कर दिया जाये तो वह I_1 तटस्थता-वक्र रेखा पर बिन्दु T से ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु R पर चला जायेगा, अर्थात T से R तक चलन आय-प्रभाव होगा।
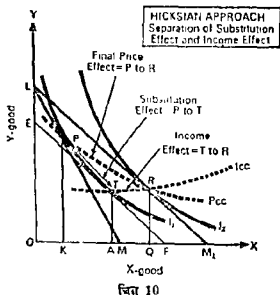
स्पष्ट है कि 'बिन्दु P से बिन्दु R तक का चलन' अर्थात 'कीमत-प्रभाव' दो चरणों (steps) में होता है—(i) पहले तो एक ही तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु P से काल्पनिक बिन्दु T तक चलन, जो कि प्रतिस्थापन प्रभाव है; (ii) दूसरे, तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु T से ऊँची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु R तक चलन, जो कि आय-प्रभाव है। संक्षेप में समस्त स्थिति को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

कीमत प्रभाव	=	प्रतिस्थापन प्रभाव	+	आय प्रभाव
↓		↓		
बिन्दु P में बिन्दु R तक चलन	=	बिन्दु P से बिन्दु T तक चलन	+	बिन्दु T से बिन्दु R तक चलन
↓		↓		
KQ	=	KA	+	AQ
(X की मात्रा में कुल वृद्धि)		(X की मात्रा में प्रतिस्थापन-प्रभाव के कारण वृद्धि)		(X की मात्रा में आय-प्रभा[illegible]ारण वृद्धि)

5. 'कीमत-प्रभाव' को 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' तथा 'आय-प्रभाव' में तोड़ना—'स्लट्स्की की रीति' (Decomposing Price Effect into 'Substitution Effect' and 'Income Effect'—*Slutsky's Method*)

कीमत प्रभाव को प्रतिस्थापन-प्रभाव तथा आय-प्रभाव में तोड़ने की स्लट्स्की की रीति हिक्स की रीति से थोड़ी भिन्न है। स्लट्स्की की रीति को चित्र 11 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र 11

चित्र 11 में उपभोक्ता के साम्य की प्रारम्भिक स्थिति (original position) तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु A बताता है। माना कि वस्तु X की कीमत घटती है, जबकि वस्तु Y की कीमत तथा उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर रहती है। परिणामस्वरूप कीमत रेखा की नयी स्थिति LM_1 हो जाती है और उपभोक्ता ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_3 पर बिन्दु C पर साम्य प्राप्त कर लेता है। बिन्दु A से बिन्दु C तक चलन कीमत-प्रभाव है।
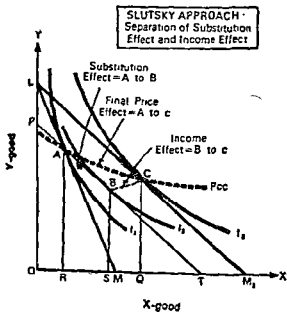
वस्तु X की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की 'वास्तविक आय' में वृद्धि होगी; प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए वास्तविक आय में वृद्धि को नष्ट करना होगा अर्थात उपभोक्ता की 'द्राव्यिक आय' को घटाना पड़ेगा। स्लट्स्की के अनुसार उपभोक्ता की द्राव्यिक आय को उतनी मात्रा से घटाना चाहिए जिससे कि उपभोक्ता वस्तुओं के प्रारम्भिक पेकिट (original packet of goods) को खरीद सके; चित्र में बिन्दु A वस्तुओं के प्रारम्भिक पेकिट को बताता है। ऐसा करने के लिए हम एक काल्पनिक कीमत रेखा PT खींचते हैं जो कि बिन्दु A से गुजरती है तथा LM_1 के समानान्तर होती है। अतः उपभोक्ता की द्राव्यिक आय LP (Y के शब्दों में) घटानी चाहिए। अब काल्पनिक कीमत रेखा PT के सन्दर्भ में उपभोक्ता बिन्दु A द्वारा बताये जाने वाले वस्तुओं के प्रारम्भिक पेकिट को खरीद सकता है, यदि वह ऐसा चाहे तो; परन्तु उपभोक्ता वास्तव में वस्तुओं के प्रारम्भिक पेकिट को नहीं खरीदेगा क्योंकि वस्तु X सस्ती हो गयी है इसलिए वह वस्तु X का Y के स्थान पर प्रतिस्थापन करेगा। काल्पनिक कीमत रेखा PT के सन्दर्भ में उपभोक्ता अब एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु B पर साम्य की स्थिति में होगा। इस प्रकार प्रारम्भिक साम्य की स्थिति A से साम्य की काल्पनिक स्थिति बिन्दु B तक चलन को स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता है; स्पष्ट है कि स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता को एक ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा पर चलन की आज्ञा देता है। यदि अब द्राव्यिक आय में कमी (LP के बराबर) को उपभोक्ता को वापस कर दिया जाये, तो वह काल्पनिक साम्य की स्थिति बिन्दु B से ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_3 पर अन्तिम (final) साम्य की स्थिति बिन्दु C पर पहुच जायेगा; B से C तक का यह चलन आय-प्रभाव को बताता है। अतः स्लट्स्की के अनुसार,

कीमत-प्रभाव	= प्रतिस्थापन-प्रभाव	+ आय-प्रभाव
↓	↓	
A से C तक चलन	= A से B तक चलन	+ B से C तक चलन
↓	↓	↓
RQ	= RS	+ SQ
(X की मात्रा में कुल वृद्धि)	(X की मात्रा में प्रतिस्थापन-प्रभाव के कारण वृद्धि।)	(X की मात्रा में आय-प्रभाव के कारण वृद्धि)

6. **हिक्स तथा स्लट्स्की की रीतियों में अन्तर** (Difference between the approaches of Hicks and Slutsky)

मुख्य अन्तर इस प्रकार है :

(i) दोनों की रीतियों में एक प्रमुख अन्तर प्रतिस्थापन-प्रभाव के सम्बन्ध में है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में उतनी मात्रा में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) करना चाहिए जिससे उपभोक्ता प्रारम्भिक तटस्थता-वक्र रेखा पर पहुँच जाये (अर्थात उसका सतोष पहले के समान हो जाये); हिक्स के अनुसार एक ही तटस्थता-वक्र रेखा पर चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है। इसके विपरीत स्लट्स्की के अनुसार उपभोक्ता की द्राव्यिक आय में उतनी मात्रा से परिवर्तन करना चाहिए जिससे कि उपभोक्ता वस्तुओं के प्रारम्भिक संयोग या पैकिट को खरीद सके; स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव के अन्तर्गत उपभोक्ता को एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा पर जाने की आज्ञा है।

चित्र 12

(ii) स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से महत्त्व (empirical advantage) रखता है क्योंकि उपभोक्ता की 'द्राव्यिक आय में क्षतिपूरक परिवर्तन की मात्रा' (compensating variation in money income) को आसानी से निर्धारित किया जा सकता है। इसके विपरीत हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव प्रयोग की दृष्टि से व्यर्थ या खाली है (Hicks' substitution effect has the disadvantage of being empirically empty)।[14]

हिक्स तथा स्लट्स्की की रीतियों के अन्तर को हम एक ही चित्र में दिखाकर तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। दोनों की रीतियों को चित्र 12 में एक साथ दिखाया गया है।

चित्र 12 के विवरण को अग्र तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है·
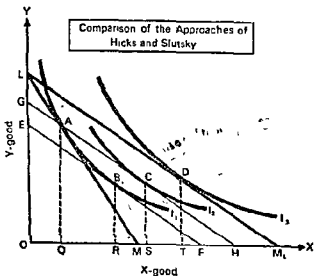
[14] हिक्स तथा स्लट्स्की की रीतियों में अन्तर हम पहले 'प्रतिस्थापन प्रभाव' की विवेचना करते समय भी विस्तृत रूप से बता चुके हैं; यहाँ पर उसी अन्तर को संक्षेप में विद्यार्थियों की सुविधा के लिए फिर दे दिया है।

Method or Approach	Substitution Effect on good X		Income Effect on good X		Price Effect on good X
Hicks	QR	+	RT	=	QT
Slutsky	QS	+	ST	=	QT

7. कीमत प्रभाव तथा निम्न कोटि की वस्तुएँ

अभी तक हमारा विश्लेषण 'सामान्य वस्तुओं' (normal goods) के सम्बन्ध में रहा है; परन्तु हमने स्पष्ट रूप से 'सामान्य वस्तु' की कोई परिभाषा नहीं दी है। अब हम 'सामान्य वस्तु' तथा निम्न कोटि की वस्तु' के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए उनकी परिभाषाएं देंगे, तथा 'निम्न कोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध मे कीमत-प्रभाव' की विवेचना करेंगे। इसके पश्चात हम 'गिफिन वस्तुओं' (Giffen goods) के सम्बन्ध मे कीमत-प्रभाव का विश्लेषण करेंगे, गिफिन वस्तुए एक विशेष प्रकार की निम्न-कोटि की वस्तुएँ होती है।[15]

यह ध्यान रखने की बात है कि **प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव ऋणात्मक (negative) होता है;** इसका अभिप्राय है कि किसी वस्तु की कीमत मे कमी उस वस्तु की माँग मे वृद्धि जरूर करेगी, और कीमत मे वृद्धि उस वस्तु की माँग मे कमी अवश्य करेगी। दूसरे शब्दो मे, 'ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव' (negative substitution effect) 'कीमत मे परिवर्तन' तथा वस्तु की 'माँगी जाने वाली मात्रा' मे उलटे सम्बन्ध को बताता है।[16]

आय-प्रभाव धनात्मक (positive) हो सकता है या ऋणात्मक (negative)। सामान्य परिस्थितियों (normal situations) मे आय-प्रभाव धनात्मक होता है, अर्थात् आय मे वृद्धि होने से वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा मे वृद्धि होती है और आय में कमी होने से वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा मे कमी होती है। अब हम 'सामान्य वस्तु' (normal good) को निम्न शब्दो में परिभाषित कर सकते हैं—

> **एक सामान्य वस्तु वह है जिसके लिए आय प्रभाव धनात्मक होता है। 'सामान्य वस्तुओं' को यह नाम इसलिए दिया जाता है क्योंकि लगभग सभी परिस्थितियों में आय प्रभाव धनात्मक होता है, यह एक सामान्य स्थिति होती है।**[17]

सामान्य वस्तुओं के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त ध्यान मे रखना चाहिए—

'एक धनात्मक आय-प्रभाव ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव को बलवान (rein-

---

15 Giffen goods are a special type of inferior goods.

16 कुछ अर्थशास्त्री (जैसे Stonier and Hague) प्रतिस्थापन प्रभाव के लिए 'धनात्मक' (positive) शब्द का प्रयोग करते है न कि 'ऋणात्मक' (negative) शब्द का; यद्यपि 'धनात्मक' शब्द का प्रयोग वे 'उलटे सम्बन्ध' (inverse relation) के लिए ही करते हैं। परन्तु यह अधिक तर्कपूर्ण व सगतिपूर्ण (logical and consistent) है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के लिए ऋणात्मक शब्द का प्रयोग किया जाये क्योंकि सामान्यतया हम अर्थशास्त्र मे किन्हीं दो मात्राओं के बीच उलटे सम्बन्ध (inverse relationship between any two quantities) के लिए 'ऋणात्मक' शब्द का प्रयोग करते हैं, इसके विपरीत किन्हीं दो मात्राओं के बीच सीधे सम्बन्ध (direct relationship) के लिए 'धनात्मक' शब्द का प्रयोग करते हैं।

17 A normal good is one for which the income effect is positive. Normal goods are given this name because in almost all cases the income effect is positive, this is the normal situation.

force) करता है। इस प्रकार एक सामान्य वस्तु के लिए कीमत में परिवर्तन के साथ माँगी गयी मात्रा सदैव विपरीत दिशा में चलती है। सभी सामान्य वस्तुओं के लिए माँग का नियम सदैव लागू होता है।[18]

सामान्य वस्तुओं के सम्बन्ध में आय प्रभाव धनात्मक होता है, परन्तु कुछ असामान्य स्थितियों (unusual cases) में आय-प्रभाव ऋणात्मक हो सकता है। ऋणात्मक आय प्रभाव का अर्थ है कि वास्तविक आय में वृद्धि एक वस्तु की माँग (या उसके उपभोग) में कमी करती है और वास्तविक आय में कमी उस वस्तु की माँग में वृद्धि करती है। ऐसी वस्तुओं को **'निम्न कोटि की वस्तुएं'** (inferior goods) कहा जाता है। एक निम्न कोटि की वस्तु को हम निम्न शब्दों में परिभाषित करते हैं :

एक निम्न कोटि की वस्तु वह है जिसके लिए आय-भाव ऋणात्मक होता है।[19]

अब हम 'निम्न कोटि की वस्तुओं' के सम्बन्ध में कीमत-प्रभाव की विवेचना चित्र 13 की सहायता से करते हैं। चित्र में प्रारम्भिक (original) कीमत रेखा LM है और बिन्दु R उपभोक्ता के प्रारम्भिक साम्य को बताता है। माना वस्तु X की कीमत में कमी हो जाती है, परिणामस्वरूप नयी कीमत-रेखा LM_1 हो जाती है और उपभोक्ता नयी साम्य की स्थिति बिन्दु S पर पहुंच जाता है। अतः तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु R से ऊंची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु S तक चलन कीमत प्रभाव है; अर्थात् वस्तु X के शब्दों में कीमत-प्रभाव X की मात्रा में Q_1Q_2 के बराबर वृद्धि है।

चित्र 13

वस्तु X एक निम्न कोटि की वस्तु है, इसकी पुष्टि के लिए हमें यह देखना होगा कि आय प्रभाव ऋणात्मक है या नहीं। अब हम प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव को अलग करने के लिए एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खींचते हैं जो कि LM_1 के समानान्तर (parallel) है। यह काल्पनिक कीमत रेखा EF तटस्थता-वक्र रेखा I_1 को बिन्दु T पर स्पर्श करती है। अतः एक ही तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर बिन्दु R से T तक चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है अथवा वस्तु X की मात्रा में Q_1Q_3 के बराबर वृद्धि प्रतिस्थापन-प्रभाव है। बिन्दु T से S तक चलन 'आय-प्रभाव' है अर्थात् X की मात्रा में Q_3Q_2 के बराबर कमी आय प्रभाव है; चूंकि आय में वृद्धि से X की माँगी जाने वाली मात्रा घटती है, इसलिए आय-प्रभाव ऋणात्मक है। ऋणात्मक प्रतिस्थापन-प्रभाव के कारण वस्तु X की मात्रा में वृद्धि Q_1Q_3 के बराबर होती है, जबकि ऋणात्मक आय-प्रभाव के कारण X की मात्रा में कमी Q_3Q_2 के बराबर होती है; परिणामस्वरूप, X की मात्रा में वास्तविक (net or final) वृद्धि Q_1Q_2 के बराबर होती है और यह वस्तु X पर 'कीमत-प्रभाव' या 'अन्तिम कीमत-प्रभाव' (final price effect on X) है।
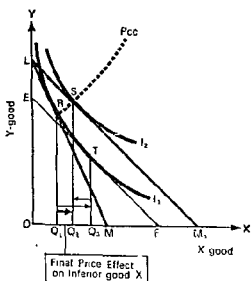
---

[18] "A positive income effect reinforces the negative substitution effect. Thus, for a normal good, the quantity demanded always varies inversely with price. The law of demand applies to all normal goods.

[19] An inferior good is one for which the income effect is negative.

यहाँ पर ऋणात्मक आय-प्रभाव के होने पर भी वस्तु X पर माँग का नियम लागू होता है (अर्थात् वस्तु X की कीमत मे कमी होने पर उसकी माँग मे Q_1Q_2 के बराबर वृद्धि होती है); इसका कारण यह है कि ऋणात्मक आय-प्रभाव इतना बलवान (strong) नहीं है कि वह समस्त प्रतिस्थापन-प्रभाव को खतम कर दे, दूसरे शब्दों में, यहाँ पर प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक बलवान है और ऋणात्मक आय-प्रभाव कमजोर है।

8. कीमत-प्रभाव तथा गिफिन वस्तुएं (Price Effect and Giffen goods)

अब हम एक विशेष प्रकार की निम्न कोटि की वस्तुओ, जिन्हें 'गिफिन वस्तुएँ' कहा जाता है, के सम्बन्ध मे कीमत प्रभाव की विवेचना करेंगे।

कुछ वस्तुएं ऐसी हो सकती है जिनके लिए ऋणात्मक आय प्रभाव इतना बलवान हो सकता है कि वह समस्त प्रतिस्थापन प्रभाव को खतम करके उससे अधिक हो सकता है। ऐसी स्थिति का अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा खरीदेगा यदि उसकी कीमत गिर जाती है तथा अधिक मात्रा खरीदेगा *यदि उसकी कीमत बढ़ जाती है, स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति मे माँग का नियम लागू नहीं होता।* ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जबकि उपभोक्ता 'सम्बन्धित निम्न कोटि की वस्तु' पर अपनी आय का एक काफी बड़ा भाग व्यय करता है ताकि वस्तु की कीमत मे कमी उपभोक्ता की वास्तविक आय (real income) मे पर्याप्त या महत्त्वपूर्ण वृद्धि कर देती है। ऐसी निम्न कोटि की वस्तु को 'गिफिन वस्तु'[20] कहा जाता है और ऐसी स्थिति को 'गिफिन का विरोधाभास' (Giffen's paradox) कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे,

> **एक गिफिन वस्तु (i) एक विशेष प्रकार की निम्न कोटि की वस्तु होती है तथा (ii) यह उपभोक्ता के बजट में इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है कि वह अपनी आय का एक बड़ा भाग इस वस्तु पर व्यय करता है। ऐसी वस्तु के सम्बन्ध में माँग का नियम लागू नहीं होता; अर्थात् ऐसी वस्तु की माँग कीमत मे कमी के साथ घटती है तथा कीमत मे वृद्धि के साथ बढ़ती है। ऐसी स्थिति को 'गिफिन का विरोधाभास' कहा जाता है। टेकनीकल भाषा में, जब एक निम्न कोटि की वस्तु का 'कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप *ऋणात्मक आय प्रभाव*' (negative income effect of price fall) प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है, तो ऐसी वस्तु को 'गिफिन वस्तु' कहा जाता है।**[21]

[20] "It owes this name to Sir Robert Giffen, who is said to have claimed during the nineteenth century that a rise in the price of bread often caused such a severe fall in the real incomes of the poorer labouring classes that they were forced to curtail their consumption of meat and other more expensive foods. Bread being still the cheapest food, they consumed more of it and not less, now that its price was higher. Similarly, if the price of bread fell, people would buy less of it. For their real income would now have risen, and they would curtail their purchases of bread in order to obtain a more varied diet."

[21] A Giffen good is (i) a special type of inferior good and (ii) it is quite important in the consumer's budget in the sense that he spends a large proportion of his income on it. The law of demand does not apply in the case of such a good, that is, the demand for such a good decreases with the decrease in price and increases with the increase in price.

(Continued)

एक गिफिन वस्तु की कीमत मे कमी के परिणाम को चित्र 14 मे दिखाया गया है। उपभोक्ता की प्रारम्भिक (original) साम्य की स्थिति तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर विन्दु R बताता है। माना वस्तु X की कीमत घटती है, परिणामस्वरूप नई कीमत रेखा LM_1 हो जाती है और उपभोक्ता ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर विन्दु S पर नयी साम्य की स्थिति प्राप्त कर लेता है। कीमत उपभोग रेखा PCC पीछे को झुकती हुई है। प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव को अलग करने के लिए LM_1 के समानान्तर एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खीचते है। रेखा EF तटस्थता-वक्र रेखा I_1 को विन्दु T पर स्पर्श करती है। अतः,
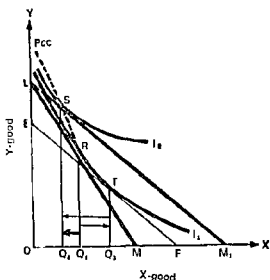
चित्र 14

प्रतिस्थापन प्रभाव = R से T तक चलन
= वस्तु X की मात्रा में Q_1Q_3 के बराबर वृद्धि

आय प्रभाव = T से S तक चलन
= वस्तु की मात्रा में Q_3Q_2 के बराबर कमी

वस्तु X की मात्रा
में वास्तविक (net) कमी $= Q_1Q_2$

स्पष्ट है कि एक गिफिन वस्तु की कीमत मे कमी उस वस्तु की माँग मे कमी कर देती है; इसका कारण है कि ऋणात्मक आय प्रभाव कहीं अधिक बलवान होता है प्रतिस्थापन प्रभाव से, बलवान ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है।

9. कीमत उपभोग रेखा की शक्ल तथा वस्तु की किस्म (Shape of Price Consumption Curve and the Kind of Good)

अधिकांश स्थितियों में कीमत-उपभोग रेखा (अथवा PCC) की शक्ल देखकर हम यह कह सकते हैं कि एक वस्तु 'श्रेष्ठ या सामान्य' (superior or normal) है, या निम्न कोटि की (inferior) है, या तटस्थ (neutral)। हम जानते हैं कि एक वस्तु 'सामान्य' होगी जबकि आय-प्रभाव धनात्मक (positive) होता है, एक वस्तु निम्न कोटि की होती है जबकि आय-प्रभाव ऋणात्मक (negative) होता है, एक वस्तु तटस्थ होती है जबकि आय प्रभाव शून्य (zero) होता है।

(i) एक वस्तु X सामान्य होगी यदि PCC का ढाल ऋणात्मक है या वह पड़ी हुई है (A good X is normal when PCC has a negative slope or it is horizontal)

यदि PCC का ऋणात्मक ढाल है तो वस्तु X एक 'सामान्य' (या 'श्रेष्ठ') वस्तु होगी।

Such a situation is called Giffen's Paradox. In technical language, when the 'negative income effect of price fall' of an inferior good is so strong as to outweigh the 'substitution effect', such a good is known as Giffen good.

चित्र 15

यह स्पष्ट है कि जब तक आय प्रभाव धनात्मक नही होगा तब तक PCC का ढाल ऋणात्मक नही हो सकता; यह चित्र 9 (पृष्ठ 261) से स्पष्ट है।

यदि PCC का ढाल शून्य है अर्थात् वह एक पड़ी हुई रेखा है तो वस्तु X एक 'सामान्य' वस्तु होगी क्योंकि आय प्रभाव धनात्मक होगा जैसा कि चित्र 15 मे दिखाया गया है। वस्तु X की कीमत मे कमी होने से नयी कीमत रेखा LM_1 हो जाती है। LM के समानान्तर एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खीची जाती है। अन प्रतिस्थापन-प्रभाव के कारण X की मात्रा मे वृद्धि Q_1Q_2 के बराबर होती है, तथा आय-प्रभाव के कारण X की मात्रा मे वृद्धि Q_2Q_3 के बराबर होती है (अर्थात् आय-प्रभाव धनात्मक है)।
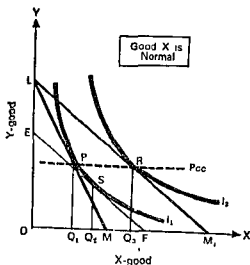
अत: जब PCC का 'ऋणात्मक ढाल' होता है या यह 'पड़ी हुई' होती है तो यह निश्चित है कि वस्तु X एक 'सामान्य' वस्तु है; चित्र 16 में PCC_1 का ऋणात्मक ढाल है तथा PCC_2 पडी हुई है; इस चित्र में, सरलता के लिए, तटस्थता-वक्र रेखाओ तथा कीमत रेखाओं को नही दिखाया गया है।

चित्र 16

(ii) **वस्तु X एक निम्न कोटि की वस्तु होगी जबकि PCC खड़ी हुई हो या पीछे को चढ़ती हुई हो** (Good X is an inferior good when the PCC is vertical or it is backward sloping)

चित्र 17 मे PCC खडी हुई है। वस्तु X की कीमत मे कमी होने से नयी कीमत रेखा LM_1 हो जाती है; परन्तु वस्तु X की मात्रा अपरिवर्तित (unchanged) रहती है। ऐसा तब ही हो सकता है जबकि 'ऋणात्मक आय-प्रभाव' प्रतिस्थापन-प्रभाव को ठीक नष्ट (just neutralize) कर देता है। चित्र 17 मे प्रतिस्थापन प्रभाव है X की मात्रा मे Q_1Q_2 के बराबर वृद्धि, यह ठीक नष्ट हो जाता है ऋणात्मक आय प्रभाव से जो कि X की मात्रा मे Q_2Q_1 के बराबर कमी करता है। चूंकि आय प्रभाव ऋणात्मक है इसलिए वस्तु X एक निम्न कोटि की वस्तु है।

गिफिन वस्तुओ के सम्बन्ध मे PCC पीछे को झुकी हुई होती है जैसा कि चित्र 14 (पृष्ठ 269) मे दिखाया गया है।

अतः जब PCC खडी हुई या पीछे को झुकती हुई होती है तो वस्तु X निम्न कोटि की होती है; चित्र 18 मे, सरलता के लिए, तटस्थता-वक्र रेखाओं तथा कीमत-रेखाओ को नही दिखाया

गया है, चित्र में PCC_e खड़ी हुई है तथा PCC_f पीछे को झुकी हुई है।

चित्र 17 चित्र 18

(iii) यदि PCC का ढाल धनात्मक (positive slope) है तो निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वस्तु X एक 'सामान्य' वस्तु है या निम्न कोटि की वस्तु या एक तटस्थ वस्तु है; एक धनात्मक ढाल वाली PCC_i विभिन्न स्थितियों में, तीनों प्रकार की वस्तुओं को बता सकती है। यह बात चित्र 19 के (a), (b) तथा (c) से स्पष्ट होती है।

चित्र 19 के (a), (b) तथा (c) तीनों में PCC ऊपर को ...ती हुई है (अर्थात् उसका ढाल धनात्मक है); परन्तु चित्र 19 (a) में वस्तु X एक 'सामान्य' वस्तु है क्योंकि आय प्रभाव
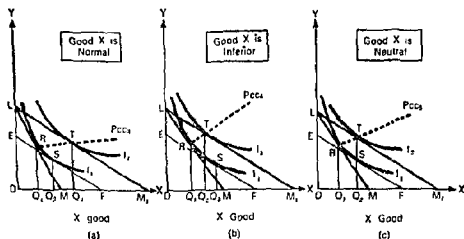
चित्र 19

धनात्मक है; चित्र 19 (b) में वस्तु X 'निम्न कोटि' की है क्योंकि आय प्रभाव ऋणात्मक है; चित्र 19 (c) में वस्तु X 'तटस्थ' है क्योंकि आय प्रभाव शून्य (zero) है।

PCC की शक्ल तथा वस्तु X के स्वभाव के सम्बन्ध की सारी स्थितियों को चित्र 20 तथा नीचे दी गयी तालिका द्वारा संक्षेप में बता सकते हैं :

PCC की शक्ल (Shape)	वस्तु X का स्वभाव (Nature)
1. ऋणात्मक ढाल (Negative Slope) PCC_1	सामान्य (Normal)
2. पडी हुई रेखा (Horizontal Line) PCC_2	सामान्य
3. धनात्मक ढाल (Positive Slope) PCC_3 PCC_4 PCC_5	अनिश्चित (uncertain) वस्तु X 'सामान्य' या 'निम्न कोटि' की (inferior) या 'तटस्थ' (neutral) हो सकती है।
4. खडी रेखा (Vertical Line) PCC_6	निम्न कोटि की (Inferior)
5. पीछे को झुकती हुई (Backward Sloping) PCC_7	निम्न कोटि की वस्तु—'गिफिन वस्तु' चित्र 20 (Inferior good—Giffen good)
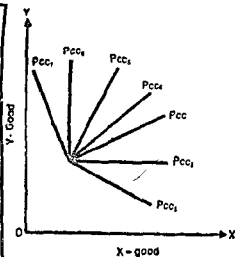
चित्र 20

परिशिष्ट (Appendix) : कीमत-उपभोग-रेखा (या कीमत-प्रभाव) से सामान्य माँग रेखा का निकालना

(DERIVATION OF TRADITION DEMAND CURVE FROM PRICE-CONSUMPTION-CURVE OR PRICE-EFFECT)

'कीमत उपभोग रेखा' तथा 'सामान्य माँग रेखा' में समानताएँ व अन्तर (Similarities and Differences between Price Consumption Curve and Ordinary Demand Curve)

तटस्थता-वक्र रेखाओं की सहायता से साधारण माँग रेखा (Ordinary or conventional demand curve) को निकाल सकते हैं। ऐसा करने में हम 'कीमत उपभोग रेखा' (price-consumption curve) की सहायता लेते हैं। अत माँग रेखा को निकालने से पूर्व 'कीमत उपभोग रेखा' तथा 'माँग रेखा' की समानता तथा अन्तर को समझना आवश्यक है।

चित्र 21 में ABC 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) है। चित्र में उपभोक्ता जब साम्य स्थिति A पर है तो वह $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु की OR मात्रा खरीदता है, या उपभोग करता है, जब उपभोक्ता साम्य स्थिति B पर है तथा कीमत गिर कर $\frac{OL}{OK_1}$ हो जाती है तो वह वस्तु की

अधिक मात्रा OS उपभोग करता है। यदि कीमत और कम होकर $\frac{OL}{OK_2}$ हो जाती है तथा उपभोक्ता साम्य स्थिति C पर है तो वह वस्तु की और अधिक मात्रा OT खरीदता है। स्पष्ट है कि कीमत गिरने पर वस्तु की माँग बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) कीमत में परिवर्तन तथा उससे सम्बन्धित उपभोग की मात्रा में परिवर्तन के बीच सम्बन्ध को बताती है। यही बात सामान्य माँग रेखा बताती है कि विभिन्न कीमतों पर माँगी गयी मात्रा क्या होगी। इस प्रकार दोनों रेखाएँ एक-सी प्रतीत होतीं क्योंकि वे एकसी बात बताती हैं।

चित्र 21

परन्तु दोनों रेखाओं में समानता होते हुए भी निम्न अन्तर है :

(1) एक सामान्य माँग रेखा को खींचते समय माँगी जाने वाली वस्तु की मात्रा को X-axis पर तथा कीमत को Y-axis पर दिखाया जाता है।

कीमत-उपभोग रेखा (PCC) दो वस्तुओं के सम्बन्ध में खीची जाती है जिनमें से एक को X-axis पर तथा दूसरी को Y-axis पर दिखाया जाता है। एक वस्तु के स्थान पर द्रव्य या आय (money or income) को भी ले सकते हैं, ऐसी स्थिति में द्रव्य या आय को Y-axis पर तथा वस्तु को X-axis पर दिखाया जाता है।

(2) माँग रेखा के सम्बन्ध में कीमत को प्रत्यक्ष रूप में Y-axis पर दिखाया जाता है। अतः कीमतों में परिवर्तन तथा उनसे सम्बन्धित वस्तु की माँगी गयी मात्राओं को सीधे तथा आसानी से माँग रेखा से जाना जा सकता है।

परन्तु कीमत-उपभोग रेखा के सम्बन्ध में कीमत को प्रत्यक्ष रूप से नही दिखाया जाता है, कीमत को मालूम करने के लिए कीमत-रेखा की सहायता लेनी पड़ती है। कीमत रेखा दो वस्तुओं के कीमत अनुपात को बताती है, यदि Y-axis पर द्रव्य या आय तथा X-axis पर वस्तु को दिखाया गया है तो कीमत रेखा का ढाल वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बतायेगा। (जैसे, चित्र में सन्तुलन स्थिति A पर वस्तु की कीमत $\frac{OL}{OK}$ होगी, सन्तुलन की स्थिति B पर वस्तु की कीमत $\frac{OL}{OK_2}$ होगी, इत्यादि।) स्पष्ट है कि कीमत-उपभोग-रेखा से कीमतों में परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से तथा आसानी से मालूम नही किया जा सकता है जबकि सामान्य माँग रेखा से कीमतों में परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से तथा आसानी से मालूम किया जा सकता है और इस दृष्टि से सामान्य माँग रेखा, कीमत-उपभोग रेखा की अपेक्षा, श्रेष्ठ प्रतीत होती है।

(3) सामान्य माँग रेखा आय को स्थिर (constant) मानकर चलती है। कीमतों में परिवर्तन वास्तविक आय को प्रभावित करते हैं, परन्तु माँग रेखा 'कीमत के आय-प्रभाव तथा प्रति-स्थापन' को छोड़ देती है।

कीमत-उपभोग रेखा आय को स्पष्ट रूप से Y-axis पर दिखाती है और यह कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' पर ध्यान देती है। अतः कीमत-

उपभोग रेखा अधिक गहराई तक जाती है (it goes much deeper), यह माँग के पीछे क्या कारण है उन तक जाती है और इस दृष्टि से यह, सामान्य माँग रेखा की अपेक्षा, अधिक श्रेष्ठ है।

(4) मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में माँग रेखा को प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति रेखा के साथ रखकर मूल्य-निर्धारण किया जा सकता है जबकि कीमत-उपभोग रेखा मूल्य निर्धारण में इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से सहायक नहीं होती।

माँग रेखा का निकालना (Derivation of Demand Curve)

कीमत-उपभोग रेखा से सामान्य माँग रेखा को निकाला जा सकता है। तटस्थता-वक्र रेखाओं की सहायता से माँग रेखा निकालने के कई तरीके हैं। उनमे से एक मुख्य तरीके का यहाँ पर विवेचन किया गया है। चित्र 21 मे Y-axis पर आय (income) तथा X-axis पर वस्तु X को दिखाया गया है। माना उपभोक्ता की आय स्थिर तथा दी हुई है, चित्र मे यह OL द्वारा दिखाई गयी है। I_1, I_2 तथा I_3 तीन तटस्थता-वक्र रेखाएँ हैं, वस्तु की कीमत में कमी होने के कारण 'कीमत-रेखा' (price line) की स्थितियाँ LK, LK_1 तथा LK_2 हैं। A, B तथा C उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु हैं। इनको मिलाने से 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) प्राप्त होती है। सन्तुलन बिन्दु A से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डालने पर वह X-axis के R बिन्दु पर मिलता है। सन्तुलन बिन्दु A बताता है कि उपभोक्ता OE द्रव्य + OR वस्तु की मात्रा अपने पास रखना पसन्द करता है, दूसरे शब्दों में, वह OR वस्तु की मात्रा के लिए EL द्रव्य व्यय करता है। वस्तु की कीमत, 'कीमत-रेखा' LK का ढाल (slope) बताता है अर्थात् वस्तु की प्रति इकाई कीमत $\frac{OL}{OK}$ है, अतः सन्तुलन स्थिति A पर उपभोक्ता $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु की OR मात्रा खरीदता है। इसी प्रकार सन्तुलन स्थिति B पर वह $\frac{OL}{OK_1}$ कीमत पर वस्तु की OS मात्रा खरीदता है तथा सन्तुलन स्थिति C पर वह $\frac{OL}{OK_2}$ कीमत पर वस्तु की OT मात्रा खरीदता है।

यहाँ पर अब यह कठिनाई उठती है कि $\frac{OL}{OK}, \frac{OL}{OK_1}$ तथा $\frac{OL}{OK_2}$ कीमतों को चित्र मे कैसे दिखाया (अर्थात plot किया) जाये ? इसके लिए निम्न तरीका अपनाया जाता है। R के दाहिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर निशान (mark) लगाते हैं, माना वस्तु X की एक इकाई RU के बराबर है। इसके बाद हम U से UP रेखा, LK कीमत-रेखा के समानान्तर खीचते हैं। LK कीमत-रेखा का ढाल (slope) वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बताता है, इसलिए LK रेखा के समानान्तर खींची गयी रेखा UP का ढाल भी वस्तु की कीमत को बतायेगा। UP रेखा का ढाल (slope) $= \frac{PR}{RU}$ अर्थात वस्तु की कीमत $\frac{PR}{RU}$ हुई, चूंकि RU=1 के, इसलिए वस्तु की कीमत PR के बराबर हुई। अतः PR कीमत पर वस्तु की OR मात्रा खरीदी जाती है, इस प्रकार माँग रेखा का एक बिन्दु P मालूम (plot) कर लिया गया है। इसी प्रकार S के दाहिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर SV दूरी काट ली, V से VP_1, LK_1, कीमत रेखा के समानान्तर खीचो। चूंकि LK_1 का ढाल (slope) वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बताता है, इसलिए VP_1 का ढाल भी वस्तु की कीमत को बतायेगा, VP_1 का ढाल $\frac{P_1S}{SV}$, चूंकि SV = 1, इसलिए वस्तु की कीमत P_1S हुई। अतः P_1S कीमत पर वस्तु की OS मात्रा खरीदी जाती है। इस प्रकार माँग रेखा का एक दूसरा बिन्दु P_1 मालूम कर लिया जाता है। इसी प्रकार माँग रेखा का तीसरा बिन्दु P_2 मालूम

कर लिया जाता है अर्थात् P_2T कीमत पर वस्तु की OT मात्रा खरीदी जाती है। अत. P, P_1, तथा P_2 बिन्दुओं को मिला देने से सामान्य माँग रेखा (conventional demand curve) DD प्राप्त हो जाती है ।

प्रश्न

1. किसी वस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों की विवेचना कीजिए ।

   Discuss the income and substitution effect of a given fall in the price of a commodity.

2. तटस्थता-वक्र विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता के व्यवहार पर—

   (अ) आय में परिवर्तन के प्रभाव तथा (ब) कीमत में परिवर्तन के प्रभाव, को बताइए ।

   Explain with the help of indifference curve technique the effects of (a) a change in income and (b) a change in price on the behaviour of the consumer. (Poona)

3. तटस्थता-वक्र विश्लेषण का प्रयोग करते हुए बताइए कि 'कीमत-प्रभाव', 'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' को शामिल करता है । आय-प्रभाव तथा प्रतिस्थापन-प्रभाव को अलग करने के लिए हिक्स तथा स्लट्स्की दोनों की रीतियों का प्रयोग कीजिए ।

   Using indifference curve technique, show that 'price effect' consists of 'income effect' and 'substitution effect'. Use the technique of Hicks as well as that of Slutsky for the separation of 'income effect' and 'substitution effect'.

4. तटस्थता-वक्र विश्लेषण की सहायता से 'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' को समझाइए ।

   Explain 'income effect' and 'substitution effect' with the help of indifference curve technique.

5. किसी वस्तु के मूल्य-परिवर्तन से होने वाले "आय-प्रभाव" और "प्रतिस्थापन-प्रभाव" को एक दूसरे से अलग कीजिए ।

   किन अवस्थाओं मे वस्तु के मूल्य मे गिरावट आने पर भी उसकी माँग में कमी हो सकती है ?

   अपने उत्तर के लिए तटस्थता-रेखाओं का प्रयोग कीजिए ।

   Differentiate between 'income effect' and 'substitution effect' caused by the change in the price of a commodity.
   Under what conditions may the fall in the price of the commodity lead to a reduction in the demand for it ?
   Use 'indifference curves' for answering the question.

6. एक उपभोक्ता के तटस्थता-वक्र पर नीचे को चलने से प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्यों गिरती है ?

   दो वस्तुओं के तटस्थता मानचित्र पर 'कीमत-उपभोग वक्र' तथा 'आय-उपभोग वक्र' खींचिए ।

   Why does the marginal rate of substitution fall as we move along a consumer's indifference curve ? Draw the 'price-consumption curve' and the 'income-consumption curve' on an indifference map for two commodities.

7. कीमत-उपभोग-वक्र से प्रत्येक वस्तु का माँग वक्र कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

   How can we get the demand curve for each commodity from the price-consumption curve ?

8. उदासीनता-वक्र प्रणाली से उपभोक्ता माँग-वक्र को निकालिए । किन परिस्थितियों मे आय-उपभोग-वक्र पीछे की ओर गिरने वाला होगा ?

   Derive a consumer demand curve from a system of indifference curves. In what circumstances would an income-consumption-curve be backward falling. (Sagar)

15

तटस्थता-वक्र विश्लेषण—4
(*Indifference Curve Analysis-4*)

उपभोक्ता की बचत का तटस्थता वक्र विश्लेषण तथा हिक्स का दृष्टिकोण
(Indifference Curve Analysis of Consumer's Surplus and Hick's Approach)

हिक्स द्वारा उपभोक्ता की बचत का पुनर्निर्माण
(REHABILITATION OF CONSUMER'S SURPLUS BY HICKS)

1. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल के अनुसार किसी वस्तु के वंचित रहने की दशा में उपभोक्ता वस्तु के लिए जितनी कीमत देने को तैय्यार है तथा वास्तव मे वह बाजार मे जितनी कीमत देता है, इनदोनो के अन्तर को 'उपभोक्ता की बचत' कहा जाता है।

मार्शल द्वारा दिये गये 'उपभोक्ता की बचत' के विचार की आलोचना कई आधारो पर की गयी है। परन्तु मुख्य आलोचना दो आधारभूत (basic) मान्यताओ से सम्बन्धित है—(i) उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) किया जा सकता है; अर्थात् उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) है। (ii) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है; इसका अभिप्राय है कि मार्शल ने 'आय-प्रभाव' (income effect) की उपेक्षा की, अर्थात् आय-प्रभाव को शून्य मान लिया। परन्तु ये दोनो मान्यताएँ अवास्तविक हैं।

हिक्स ने उपभोक्ता की बचत के विचार का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न किया; उन्होंने उपर्युक्त अवास्तविक मान्यताओ को हटाया और इसके लिए तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रयोग किया।

तटस्थता वक्र विश्लेषण यह मान कर चलता है कि उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) नही बल्कि एक क्रमवाचक विचार (ordinal concept) है। इस प्रकार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन की कठिनाई हटा दी जाती है। दूसरे, तटस्थता वक्र विश्लेषण आय-प्रभाव पर ध्यान देता है और इस प्रकार यह द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता के स्थिर रहने की मान्यता को दूर करता है।

2. तटस्थता वक्र रेखाओं द्वारा उपभोक्ता की बचत की माप (Measurement of Consumer Surplus by using Indifference Curves)

उपभोक्ता की बचत के मार्शल के दृष्टिकोण को चित्र 1 मे दिखाया गया है। मार्शल की उपभोक्ता की बचत संतुलन कीमत रेखा PN तथा माँग रेखा DD के बीच का क्षेत्रफल है; अर्थात्

छाया-अंकित क्षेत्रफल (shaded area) PEA उपभोक्ता की बचत है। यहाँ पर द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता स्थिर या समान (constant) मान ली गयी है, अर्थात् आय प्रभाव को छोड़ दिया गया है।
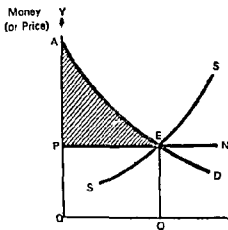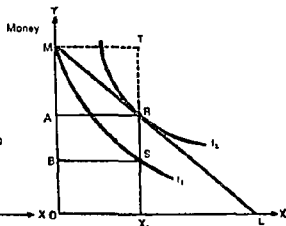
चित्र 1 चित्र 2

तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से उपभोक्ता की बचत को ज्ञात करते समय हिक्स ने आय प्रभाव को ध्यान में रखा। मार्शल की परिभाषा के आधार पर हिक्स की उपभोक्ता की बचत को चित्र 2 में दिखाया गया है। चित्र में Y-axis पर (वस्तु Y के स्थान पर) द्रव्य या द्राव्यिक आय को तथा X-axis पर वस्तु X को दिखाया गया है।[1] माना उपभोक्ता की द्राव्यिक आय OM है। वस्तु X की कीमत को कीमत-रेखा ML का ढाल (slope) बताता है। यदि वस्तु X प्राप्य नहीं है तो उपभोक्ता बिन्दु M पर होगा; यह बिन्दु M 'द्रव्य OM + वस्तु X की शून्य मात्रा' के संयोग को बताता है। कीमत रेखा ML के सन्दर्भ में उपभोक्ता बिन्दु R पर साम्य की स्थिति में है; बिन्दु R 'द्राव्यिक आय OA + वस्तु X की OX_1 मात्रा' के संयोग को बताता है; इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु X की OX_1 मात्रा MA या TR द्राव्यिक आय को व्यय करके खरीदता है। बिन्दु R एक ऊंची तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर है अपेक्षाकृत बिन्दु M के जो नीची तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर है। यदि वस्तु प्राप्य नहीं है तो उपभोक्ता बिन्दु M पर होगा; उपभोक्ता बिन्दु M तथा S द्वारा बताये गये संयोगों के प्रति तटस्थ होगा क्योंकि ये दोनों बिन्दु एक ही तटस्थता रेखा I_1 पर हैं। इसका अभिप्राय है कि वस्तु X के न मिलने की दशा में उपभोक्ता वस्तु X की OX_1 मात्रा के लिए TS (या MB) द्रव्य देने को तत्पर है, परन्तु वास्तव में वह OX_1 मात्रा को खरीदने के लिए TR (या MA) द्रव्य देता है। अतः

उपभोक्ता की बचत = द्रव्य की मात्रा जो कि उपभोक्ता देने को तत्पर है − द्रव्य की मात्रा जो वह वास्तव में देता है
= TS − TR
= RS (या AB)

[1] It is assumed that the prices of all other commodities are constant so that each amount of money corresponds to a definite amount of other goods.

इस प्रकार RS उपभोक्ता की बचत की द्राव्यिक माप (money measure) है; अर्थात्, यह द्राव्यिक आय में वृद्धि है जो कि उपभोक्ता वस्तु X को खरीदने के अवसर मिलने के परिणामस्वरूप प्राप्त करता है।[5]

यहा पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि क्या चित्र 2 मे हिक्स की उपभोक्ता की बचत का माप RS, मार्शल की उपभोक्ता की बचत के माप के बराबर होगा या नहीं। हिक्स के अनुसार दोनो तब बराबर होंगे जबकि तटस्थता वक्र विश्लेषण के सम्बन्ध में भी द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान मान ली जायें। तटस्थता वक्र रेखाओ के शब्दो मे द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता की समानता या स्थिरता (constancy) की मान्यता का अर्थ है कि दोनो तटस्थता वक्र रेखाओ I_1 तथा I_2 का ढाल बिन्दु R तथा S पर बराबर होगा, अर्थात् I_1 तथा I_2 खड़े रूप मे समानान्तर (vertically parallel) होंगी। इस विशेष स्थिति (special situation) को चित्र 3 मे दिखाया गया है। चित्र 3 मे तटस्थता-वक्र रेखा I_1 इस प्रकार खीची गयी है कि बिन्दु S पर स्पर्श रेखा GH कीमत रेखा ML के समानान्तर है। अत: बिन्दु R तथा S पर तटस्थता वक्र रेखाओं I_2 तथा I_1 के ढाल बराबर होंगे और द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहेगी। ऐसी विशिष्ट स्थिति मे हिक्स की उपभोक्ता की बचत RS मार्शल की उपभोक्ता की बचत के बराबर होगी। इस स्थिति के अलावा अन्य स्थितियो मे हिक्स की उपभोक्ता की बचत की माप तथा मार्शल की उपभोक्ता की बचत की माप मे अन्तर होगा।
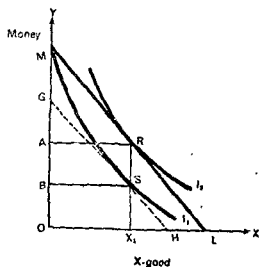
चित्र 3

3. चार उपभोक्ता की बचतें (The Four Consumer's Surpluses)

यद्यपि हिक्स ने उपभोक्ता की माप करते समय आय-प्रभाव पर ध्यान दिया, परन्तु प्रारम्भ मे उन्होंने उपभोक्ता की बचत का अर्थ मार्शल की भाँति ही लिया। दूसरे शब्दो मे, वस्तु से वंचित रहने की दशा मे उपभोक्ता वस्तु के लिए कितना द्रव्य देने को तत्पर है तथा वास्तव मे वह कितना द्रव्य देता है, इन दोनो के अन्तर को ही, मार्शल की भाँति, हिक्स ने उपभोक्ता की बचत कहा। परन्तु बाद मे हिक्स ने अपने लेख 'The Four Consumer's Surpluses' मे, जो कि *Review of Economic Studies*, 1943, मे प्रकाशित हुआ, उपभोक्ता की बचत को कुछ भिन्न प्रकार से परिभाषित किया। उनके द्वारा दिये गये उपभोक्ता की बचत के अर्थ के सार (substance) को निम्नलिखित शब्दो मे दिया जा सकता है :

> उपभोक्ता की बचत द्रव्य की वह मात्रा है जो कि उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के बाद, उपभोक्ता को इस प्रकार दी जाती है या उससे इस प्रकार से ली जाती है ताकि उपभोक्ता पहले की तुलना में न तो अच्छी स्थिति में रहता है और न

5 Thus RS is the money measure of consumer surplus; that is, it is the gain in money income which the consumer gets because of the opportunity to purchase the good X.

बुरी स्थिति में। इसका अभिप्राय है कि, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के बाद, उपभोक्ता एक ही तटस्थता वक्र रेखा पर रहता है।[3]

'कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय प्रभाव' को ध्यान में रखते हुए हिक्स उपभोक्ता की बचत को एक अधिक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और वह कीमत में वृद्धि या कमी के **'समतुल्य परिवर्तन'** (Equivalent Variation or EV) तथा **'क्षतिपूर्ति परिवर्तन'** (Compensating Variation or CV) के बीच अन्तर करते हैं।

'समतुल्य परिवर्तन' (EV) को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है :

"समतुल्य परिवर्तन वह द्राव्यिक आय है जो कि उपभोक्ता से ली जाती है (जैसे, टैक्स के रूप में) या उपभोक्ता को दी जाती है (जैसे अनुदान यानी subsidy के रूप में) ताकि उपभोक्ता उस वास्तविक आय के स्तर को प्राप्त कर सके जो कि उसको मिलता यदि कीमत में परिवर्तन होता, परन्तु कीमत में वास्तव में परिवर्तन नहीं होता है।"[4]

'क्षतिपूर्ति परिवर्तन' (CV) को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जाता है :

"क्षतिपूर्ति परिवर्तन वह द्राव्यिक आय है जो कि उपभोक्ता के लिए कीमत में परिवर्तन की क्षतिपूर्ति (compensation) करती है, कीमत में परिवर्तन वास्तव में होता है। यह द्राव्यिक आय एक टैक्स या अनुदान (subsidy) है जो कि कीमत में परिवर्तन को ठीक नष्ट कर देती है और इस प्रकार यह उपभोक्ता को उसके वास्तविक आय के प्रारम्भिक स्तर पर पहुँचा देती है—अर्थात् उस आय के स्तर पर पहुंचा देती है जो कि कीमत में परिवर्तन के पहले रहता है।"[5]

EV तथा CV के उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखने से 'चार उपभोक्ता की बचतों' को समझने में सुविधा होगी। चार उपभोक्ता की बचतें निम्नलिखित हैं :

(i) आय में मात्रा-क्षतिपूर्ति परिवर्तन (The Quantity-Compensating Variation in income)

(ii) आय में कीमत-क्षतिपूर्ति परिवर्तन (The Price-Compensating Variation in income)

(iii) आय में कीमत-समतुल्य परिवर्तन (The Price-Equivalent Variation in income)

(iv) आय में मात्रा-समतुल्य परिवर्तन (The Quantity-Equivalent Variation in income)

अब उपर्युक्त उपभोक्ता की बचतों की, चित्रों की सहायता से, विस्तृत विवेचना करेंगे।

---

[3] Consumer surplus may be considered as the amount of money that must either be paid to the consumer or must be taken away from him, after some change has occurred in his economic position, in such a way that the consumer is neither better off nor worse off. This implies that the consumer remains on the same indifference curve even after the change in his economic position has taken place.

[4] "Equivalent Variation (EV) is the money income that must be taken (as tax) from or given (as subsidy) to a consumer so that he may attain the level of real income that would have resulted from a price change that *does not* actually occur."

[5] "Compensating Variation (CV) is the money income that just compensates the consumer for a price change that *does* actually occur. It is the tax or subsidy that exactly offsets the price change and thus leaves the consumer at his original level of real income—the level of income prior to the price change."

(i) आय में मात्रा-क्षतिपूर्ति परिवर्तन(The Quantity-Compensating Variation in income)

चित्र 4 मे प्रारम्भिक (original) कीमत-रेखा ML है; इस कीमत रेखा का ढाल वस्तु X कीकी १ १ को बतायेगा (माना कि कीमत P_1 है); उपभोक्ता के साम्य की प्रारम्भिक स्थिति बिन्दु P बताता है।
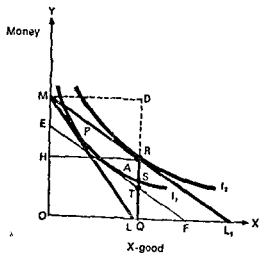
चित्र 4

माना कि वस्तु X की कीमत गिरती है (माना वह घटकर P_2 हो जाती है), जबकि अन्य वस्तुओं की कीमतें समान रहती है; परिणामस्वरूप नयी कीमत रेखा ML_1 हो जाती है तथा उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर बिन्दु R पर साम्य प्राप्त कर लेता है। बिन्दु R पर उपभोक्ता वस्तु X की OQ मात्रा खरीदने के लिए DR (या MH) द्रव्य की मात्रा देता है। अब हम वस्तु X की कीमत मे कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की संतुष्टि में वृद्धि का द्राव्यिक माप ज्ञात करते है। उपभोक्ता की संतुष्टि मे वृद्धि का द्रव्य मे एक माप RS है। उपभोक्ता से RS द्रव्य की मात्रा [प्रत्यक्ष (direct) टैक्स के रूप में] ली जा सकती है और ऐसा करने से उपभोक्ता प्रारम्भिक तटस्थता-वक्र रेखा I_1 पर रहेगा और उसकी प्रारम्भिक (original) संतुष्टि मे कोई कमी नही होगी। दूसरे शब्दों मे, कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता की संतुष्टि में वृद्धि की क्षतिपूर्ति (compensation) द्रव्य की मात्रा RS करती है; इसलिए द्रव्य की मात्रा RS 'आय मे क्षतिपूर्ति परिवर्तन' (compensating variation in income) को बताता है। चूंकि यहाँ पर, कीमत मे परिवर्तन के बाद भी, वस्तु X की वही समान मात्रा (same quantity) OQ खरीदी जाती है, इसलिए द्रव्य की मात्रा RS को 'आय में मात्रा-क्षतिपूर्ति परिवर्तन' (Quantity-Compensating Variation in income) कहा जाता है।

(ii) आय में कीमत-क्षतिपूर्ति परिवर्तन (Price-Compensating Variation in income)

यदि केवल RS द्रव्य की मात्रा ले ली जाती है, तो वास्तव मे उपभोक्ता पहले की तुलना मे अच्छी स्थिति मे (better off) रहेगा। द्राव्यिक आय मे RS के बराबर हानि या कमी होने के बाद भी, ML_1 के समानान्तर (parallel) एक कीमत-रेखा बिन्दु S से गुजरेगी और वह I_1 की तुलना मे एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा के लिए स्पर्श-रेखा (tangent) होगी। यदि उपभोक्ता को सतुष्टि के प्रारम्भिक स्तर पर (जो कि I_1 बताता है) पर भेजना है तो, कीमत में कमी के बाद, उससे RT (या ME) के बराबर द्रव्य की मात्रा लेनी पड़ेगी। इस प्रकार जब उपभोक्ता से द्राव्यिक आय RT (जो कि RS से अधिक है) ले ली जाती है, तो नयी कीमत-रेखा EF तटस्थता-वक्र रेखा I_1 से बिन्दु A पर स्पर्श-रेखा (tangent) होगी, इस बिन्दु पर उपभोक्ता वास्तव मे सतुष्टि के प्रारम्भिक स्तर पर वापस आ जायेगा। अतः, द्रव्य की मात्रा RT, कीमत मे कमी के कारण, उपभोक्ता की सतुष्टि में वृद्धि का पूर्ण और सही माप (full and exact measure) है; यह द्रव्य की मात्रा RT (या ME) 'आय में कीमत-क्षतिपूर्ति परिवर्तन' (Price-Compensation Variation in income) कही जाती है।

मात्रा-क्षतिपूर्ति परिवर्तन RS तथा कीमत-क्षतिपूर्ति परिवर्तन RT में अन्तर नहीं रहेगा यदि तटस्थता वक्र रेखाएं I_1 तथा I_2 खड़े रूप में समानान्तर (vertically parallel) हों।

(iii) आय में कीमत-समतुल्य परिवर्तन (The Price-Equivalent Variation in income)

अब हम यह मालूम करेंगे कि प्रारम्भिक कीमत (original price) पर आय में कितनी वृद्धि बराबर या समतुल्य (equivalent) होगी कीमत में प्रस्तावित कमी (proposed fall in price) के; चित्र 5 में वस्तु X की कीमत में प्रस्तावित कमी कीमत-रेखा की स्थिति में ML से ML_1 का परिवर्तन बताता है। ध्यान रहे कि हमने 'कीमत में प्रस्तावित कमी' शब्दों का प्रयोग किया है, इसका अभिप्राय है कि कीमत में वास्तव में कमी नहीं होती है (और कीमत रेखा ML द्वारा बतायी गयी कीमत ही चालू रहती है); कीमत में कमी के स्थान पर द्राव्यिक आय में वृद्धि करके उपभोक्ता को ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर ले जाया जाता है; 'कीमत में प्रस्तावित परिवर्तन' के बराबर आय में वृद्धि की जाती है; 'आय में समतुल्य परिवर्तन' का यही अभिप्राय (implication) है।

चित्र 5

चित्र 5 में ML प्रारम्भिक कीमत-रेखा है; इस रेखा का ढाल वस्तु X की कीमत बताता है, माना कि कीमत P_1 है, तथा शुरू में उपभोक्ता बिन्दु R पर साम्य की स्थिति में है। यदि कीमत में कमी होती (जो कि कीमत रेखा ML_1 द्वारा बतायी जाती) तो उपभोक्ता ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 के बिन्दु A पर नयी साम्य की स्थिति में पहुंच जाता। 'कीमत में प्रस्तावित कमी' की जगह पर उपभोक्ता को समतुल्य द्राव्यिक आय RP दी जा सकती है। द्राव्यिक आय में यह समतुल्य वृद्धि RP उसी ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर ले जायेगी और उपभोक्ता बिन्दु B पर साम्य की स्थिति में हो सकता है; इस बिन्दु B पर वह, वस्तु X की प्रारम्भिक मात्रा ON के स्थान पर, एक भिन्न मात्रा OH खरीदेगा। द्राव्यिक आय की यह मात्रा RP **'आय में कीमत-समतुल्य परिवर्तन'** (The Price-Equivalent Variation in income) **कही जाती है।**
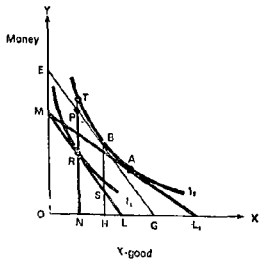
(iv) आय में मात्रा-समतुल्य परिवर्तन (The Quantity-Equivalent Variation in income)

द्राव्यिक आय में वृद्धि के बाद भी, यदि उपभोक्ता वस्तु X की पहले के समान प्रारम्भिक मात्रा ON ही खरीदना चाहता है, तो वह I_2 की तुलना में, एक नीची तटस्थता-वक्र रेखा पर होगा क्योंकि बिन्दु P तटस्थता रेखा I_2 के नीचे है; I_2 के नीचे एक तटस्थता-वक्र रेखा कीमत रेखा EG को बिन्दु P पर स्पर्श करेगी। अतः वस्तु X की प्रारम्भिक मात्रा ON को खरीदने के लिए उपभोक्ता को 'कीमत में प्रस्तावित परिवर्तन' के समतुल्य द्राव्यिक आय (equivalent money income) RT दी जानी चाहिए, तभी उपभोक्ता को कीमत में प्रस्तावित कमी के कारण आय में वृद्धि का पूर्ण माप (full measure) प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, द्राव्यिक आय RT को (जोकि RP से अधिक है) **'आय में मात्रा-समतुल्य परिवर्तन'** (The Quantity-Equivalent Variation in Income) **कहा जाता है।**

कीमत-समतुल्य परिवर्तन RP तथा मात्रा-समतुल्य परिवर्तन RT मे अन्तर समाप्त हो जायेगा यदि तटस्थता-वक्र रेखाएं I_1 और I_2 खडे रूप मे समानान्तर (vertically parallel) हो।

प्रश्न

1. हिक्स की उपभोक्ता की माप की रीति मार्शल की रीति से किस प्रकार श्रेष्ठ है ?
   How is the technique of measurement suggested by Hicks an improvement over that of Marshall ?
2. हिक्स द्वारा उपभोक्ता की बचत के पुनर्निर्माण (reformulation) पर एक सुन्दर नोट लिखिए।
   Write a lucid note on the reformulation of consumer's surplus by Hicks.

16

तटस्थता-वक्र विश्लेषण-5
(*Indifference Curve Analysis-5*)

तटस्थता-वक्रों के प्रयोग
(Uses of Indifference Curves)

तटस्थता-वक्र रेखा के प्रयोग
(USES OF INDIFFERENCE CURVES)

आर्थिक विश्लेषण में तटस्थता-वक्र विधि एक महत्वपूर्ण यन्त्र (tool) है। इसका प्रयोग उपभोग, उत्पादन, विनिमय, कराधन (taxation) इत्यादि, क्षेत्रों में किया जाता है। तटस्थता-वक्र विश्लेषण के कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग नीचे दिये गये हैं।

(1) विनिमय के सिद्धान्त में (In the Theory of Exchange)

सुविधा के लिए हम यह मान लेते है कि दो व्यक्ति A तथा B हैं जो कि दो वस्तुओं X तथा Y का आपस में विनिमय (exchange) करते है। चित्र 1 (a) में व्यक्ति A के 'अधिमान-क्रमों' (scale of preferences) को तटस्थता-वक्र रेखाओं I_A, II_A तथा III_A द्वारा दिखाया गया है;
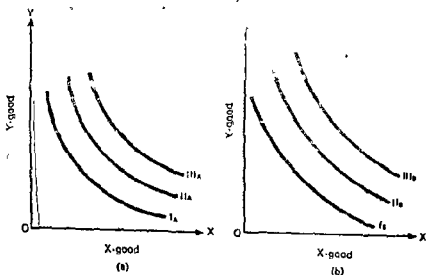
Indifference Curves for person A   Indifference Curves for person B

चित्र 1

और चित्र 1 (b) में व्यक्ति B के 'अधिमान-क्रमों' को तटस्थता-वक्र रेखाओं I_B, II_B तथा III_B द्वारा दिखाया गया है।

व्यक्ति B के तटस्थता मानचित्र (Indifference map of B) को 180° घुमाकर (अर्थात् पूरा उलट कर) व्यक्ति A के तटस्थता मानचित्र के ऊपर इस प्रकार से रख दिया जाता है (देखिए चित्र 2) ताकि दोनों मानचित्रों (maps) के अक्ष (axes) एक सन्दूक (box) का निर्माण करते हैं। इस चित्र को 'ऐजवर्थ का सन्दूक-चित्र' (Edgeworth's Box Diagram) कहा जाता है। चित्र 2 में O_A व्यक्ति A के लिए मूल बिन्दु (origin) है तथा O_B व्यक्ति B के लिए मूल बिन्दु है; व्यक्ति A की तटस्थता रेखाएं O_A के प्रति उन्नतोदर (convex) है तथा व्यक्ति B की तटस्थता रेखाएं O_B के प्रति उन्नतोदर है। वस्तु X की मात्रा O_A से दायें की ओर तथा O_B से बायें की ओर नापी जाती है, वस्तु Y की मात्रा O_A से ऊपर की ओर तथा O_B से नीचे की ओर नापी जाती है। O_AN (या O_BM) दोनों व्यक्तियों के पास वस्तु X की स्टाक में मात्रा को बताता है तथा O_AM (या O_BN) दोनों व्यक्तियों के पास वस्तु Y की स्टाक में मात्रा को बताता है। इस प्रकार यदि व्यक्ति A के पास वस्तु X की O_AX_1 मात्रा है तो व्यक्ति B के पास वस्तु की शेष मात्रा O_BX_2 होगी। सन्दूक या आयत (box or rectangle) पर या उसके अन्दर कोई भी बिन्दु दोनों व्यक्तियों के बीच वस्तुओं के सम्भावित वितरण (*possible distribution*) को बताता है। *माना कि बिन्दु L (जहाँ पर I_A तथा I_B काटते हैं)* वस्तुओं के शुरू के वितरण (initial allocation of goods) को बताता है; अर्थात् A के पास वस्तु X की O_AX_1 मात्रा तथा वस्तु Y की O_AY_1 मात्रा है, जबकि B के पास वस्तु X की O_BX_2 मात्रा तथा वस्तु Y की O_BY_2 मात्रा है। बिन्दु L पर व्यक्ति A के पास वस्तु Y की अधिक मात्रा तथा वस्तु X की कम मात्रा है, अतः व्यक्ति A, व्यक्ति B के साथ, वस्तु Y का वस्तु X के बदले में विनिमय करने को तैयार हो जायेगा। [टेकनीकल शब्दों में, बिन्दु L पर व्यक्ति A के वास्ते वस्तु X की वस्तु Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (marginal rate of substitution of X for Y, or *briefly*, MRS_{XY}) काफी ऊँची है, यह बात स्पर्श रेखा (tangent) JK के ढाल से स्पष्ट होता है, इसके विपरीत इस बिन्दु L पर व्यक्ति B के वास्ते वस्तु X की वस्तु Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (*MRS_{XY}*) *कम है, यह बात* स्पर्श रेखा PR के ढाल से स्पष्ट है।) अतः व्यक्ति A वस्तु X की एक इकाई के लिए वस्तु Y की अधिक मात्रा त्याग करने को तत्पर हो जायेगा, जबकि व्यक्ति B को विनिमय के वास्ते प्रेरित करने के लिए व्यक्ति A द्वारा वस्तु Y की उतनी अधिक मात्रा त्याग करने की जरूरत नहीं है। अतः A तथा B के
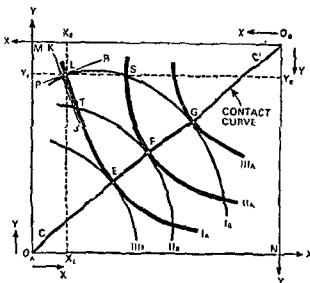
Optimum Conditions of Exchange
चित्र 2

बीच दो वस्तुओं के विनिमय की स्थिति मौजूद है।[1]

एक व्यक्ति या दोनों व्यक्ति विनिमय से लाभ उठा सकते हैं; माना कि शुरू की स्थिति (starting position) बिन्दु L है,[2] दोनों पक्ष विनिमय द्वारा अपनी स्थितियों को सुधारने या लाभ उठाने के लिए अनेक रास्ते अपना सकते है। व्यक्ति A द्वारा व्यक्ति B के साथ वस्तु Y का वस्तु X के लिए विनिमय का एक रास्ता तटस्थता-वक्र रेखा I_A पर नीचे दायें की ओर चलने का हो सकता है। तटस्थता-वक्र रेखा I_A पर चलने से व्यक्ति A की संतुष्टि (satisfaction) पहले के समान ही रहती है, अर्थात् उसकी स्थिति पहले की तुलना में खराब नहीं होती, परन्तु व्यक्ति B की संतुष्टि उत्तरोत्तर (successively) बढ़ती जाती है क्योंकि व्यक्ति B उत्तरोत्तर ऊँची तटस्थता रेखाओं पर (जैसे II_B के बिन्दु T पर, तथा III_B के बिन्दु E पर,) पहुँचता जाता है, बिन्दु E पर तटस्थता रेखा I_A स्पर्श करती है तटस्थता रेखा III_B को. इस बिन्दु E पर दोनों व्यक्तियों के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन की दर समान हो जाती है और इसलिए इस बिन्दु के बाद दोनों पक्षों में कोई विनिमय नहीं होगा; दूसरे शब्दो मे, दोनों व्यक्तियों के बीच, वस्तुओं X तथा Y के वितरण की दृष्टि से, **बिन्दु E 'वितरण का एक अनुकूलतम बिन्दु'** (*A point of optimal distribution*) है।

इसी प्रकार दोनों व्यक्तियों A तथा B के बीच वस्तुओं X तथा Y के विनिमय का (एक सिरे का) दूसरा रास्ता तटस्थता रेखा I_B पर नीचे दायें की ओर चलने का हो सकता है। यहाँ पर व्यक्ति B बिन्दु L से केवल एक ही तटस्थता रेखा I_B पर नीचे को खिसकता जाता है और इसलिए उसकी संतुष्टि पहले के समान रहती है, अर्थात व्यक्ति B की स्थिति पहले की तुलना में खराब नहीं होती; परन्तु व्यक्ति A की संतुष्टि बढ़ती जाती है क्योंकि वह उत्तरोत्तर ऊँची तटस्थता रेखाओं पर (जैसे II_A के बिन्दु S पर, तथा III_A के बिन्दु G पर) पहुँचता जाता है। बिन्दु G पर तटस्थता रेखा I_B स्पर्श करती है तटस्थता रेखा III_A को; इस बिन्दु G पर दोनों व्यक्तियों के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन की दर समान हो जाती है, और इसलिए इस बिन्दु के बाद दोनों पक्षों में कोई विनिमय नहीं होगा; अर्थात बिन्दु G वस्तुओं के 'अनुकूलतम वितरण' (optimal distribution) का एक दूसरा बिन्दु होगा।

दोनों पक्षों में विनिमय का एक रास्ता बिन्दु L से F तक हो सकता है, बिन्दु F पर दोनों व्यक्तियों को लाभ है क्योंकि व्यक्ति A एक ऊँची तटस्थता रेखा II_A पर और व्यक्ति B एक ऊँची तटस्थता रेखा II_B पर पहुँच जाता है। बिन्दु F पर II_A तथा II_B तटस्थता रेखाए एक दूसरे को स्पर्श करती हैं, अर्थात् इस बिन्दु पर दोनों व्यक्तियों के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर समान है, अतः बिन्दु F वस्तुओं के 'अनुकूलतम वितरण' का एक तीसरा बिन्दु है। ध्यान रहे कि बिन्दु F उन मध्य की स्थितियों (intermediate situations) में से एक स्थिति को बताता है जिसमे कि दोनों पक्षों को विनिमय से लाभ होता है। परन्तु प्रत्येक स्थिति मे सिद्धान्त एक ही रहता है, अर्थात् दोनों व्यक्तियों में विनिमय उस सीमा तक होता है जहाँ पर सीमान्त प्रतिस्थापन की दर समान हो जाती है।

वास्तव में दोनों व्यक्तियों की तटस्थता-वक्र रेखाएँ असंख्य बिन्दुओं पर एक दूसरे को स्पर्श कर सकती है, परन्तु सरलता व सुविधा की दृष्टि से हमने चित्र मे तीन स्पर्श बिन्दु E, F तथा G ही दिखाये हैं।

यदि दोनों व्यक्तियों A तथा B के बीच वस्तुओं के 'अनुकूलतम वितरण के बिन्दुओं' (points of optimal distribution) E, F तथा G को मिला दें तो हमें एक रेखा CEFGC' प्राप्त हो जाती है जिसे

---

[1] "Individual A is willing to exchange a larger amount of Y per unit of X than is necessary in order to induce individual B to make an exchange. Clearly an exchange involving A's trading some Y to B in return for some X is indicated." That is, the stage is set for exchange.

[2] Every point in the box is either an intersection point (such as point L) or is a point of tangency of an Indifference curve of A with an indifference curve of B

'Contact curve' या 'Contact locus' या 'Conflict curve' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में,

Contact curve एक व्यक्ति (माना A) तथा दूसरे व्यक्ति (माना B) की तटस्थता रेखाओ के बीच स्पर्श बिन्दुओ (points of tangency) का रास्ता (locus) है। प्रत्येक स्पर्श बिन्दु पर दो वस्तुओं के लिए दो व्यक्तियो के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर बराबर होती है, और यह 'साम्य' (equilibrium) या वस्तुओं के 'अनुकूलतम वितरण' (optimum distribution) के लिए आवश्यक दशा होती है। अत: एक contact curve वस्तुओं के अनुकूलतम वितरण को बताता है। Contact curve से हटकर चलन (movement) का अभिप्राय है कि दोनों व्यक्तियों को हानि होगी, वे नीची तटस्थता-वक्र रेखाओं पर होंगे। इस दृष्टि से contact curve पर बिन्दु, 'कुशल बिन्दु' (efficient points) होंगे। Contact curve पर बिन्दु कुशलता की कसौटी (criterion) से मेल खाते हैं; जब वस्तुओ का वितरण इस प्रकार से हो जाता है कि एक व्यक्ति की स्थिति अच्छी (better off) नही की जा सकती बिना दूसरे व्यक्ति की स्थिति खराब (worse off) हुए, तो ऐसी स्थिति को कुशलता की स्थिति या (कुशलता स्थिति की कसौटी) कहा जाता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि contact curve पर प्रत्येक बिन्दु केवल कुशलता की दृष्टि से अनुकूलतम होता है।[3]

Contact curve पर दोनों व्यक्ति वास्तव मे वस्तुओं के किस वितरण पर (अर्थात् किस बिन्दु पर) पहुँचेंगे, यह बात दोनों व्यक्तियों की तुलनात्मक सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करेगी। यदि व्यक्ति A की सौदा करने की शक्ति अधिक मजबूत है तो वस्तुओं का वितरण बिन्दु G के पास होगा; यदि व्यक्ति B सौदा करने की अधिक शक्तिशाली स्थिति मे है तो वस्तुओं का वितरण बिन्दु E के निकट होगा।

(2) कराधान में प्रयोग (Use in Taxation)

तटस्थता-वक्रों का प्रयोग आय-कर (income tax) तथा वस्तु-कर (excise tax or commodity tax) की सापेक्षिक कुशलता (relative efficiency) की जाँच करने के लिए किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, तटस्थता-वक्रो की सहायता से यह दिखाया जा सकता है कि उपयोगिता को अधिकतम करने वाले उपभोक्ता (utility maximizing consumer) की दृष्टि से आय-कर अधिक श्रेष्ठ है अपेक्षाकृत उसके बराबर वस्तु-कर (equivalent excise tax) के।

चित्र 3 में, माना कि उपभोक्ता की दी हुई द्राव्यिक आय OL के बराबर है। यदि वह अपनी इस समस्त आय को वस्तु X पर व्यय करता है तो वह वस्तु X की OM मात्रा खरीद पाता है; दूसरे शब्दों मे, उपभोक्ता की प्रारम्भिक (original) कीमत-रेखा LM है। माना कि कर के लगने

---

[3] The Contact Curve is the locus of the points of tangency between indifference curves of one individual (say, A) and indifference curves of another individual (say, B). At each point of tangency the marginal rate of substitution between the two individuals (for the two goods) is equal, and this is the necessary condition for equilibrium or optimal distribution of goods between the two persons. Thus, a contact curve shows the optimal distribution of goods. Any movement away from the contact curve will mean a loss to both the persons, they will be on lower indifference curves In this sense, the points on the contact curve are efficient points They conform to the criterion of efficiency; when goods get distributed in such a way that one person cannot be made better off without making someone else worse off, the situation is called the situation of efficiency (or the criterion of efficiency). Thus, it should not be forgotten that every point on the contact curve is optimal only from an efficient point of view.

चित्र 3

से पहले उपभोक्ता की प्रारम्भिक साम्य की स्थिति E है; बिन्दु E बताता है कि उपभोक्ता के पास द्रव्य की OP मात्रा तथा वस्तु X की OR मात्रा का संयोग (combination) है; दूसरे शब्दों में उपभोक्ता वस्तु X की OR (या LG) मात्रा खरीदने के लिए LP (या GE) द्रव्य की मात्रा व्यय करता है।

माना कि सरकार वस्तु X पर वस्तु-कर लगा देती है; यह भी मान लिया जाता है कि कर के ठीक बराबर वस्तु X की कीमत में वृद्धि हो जाती है। कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु महँगी हो जाती है और इसलिए नयी कीमत-रेखा की स्थिति LM_1 हो जाती है। अब उपभोक्ता की नयी सतुलन की स्थिति बिन्दु F बताता है, इस बिन्दु पर तटस्थता रेखा I_2 नयी कीमत-रेखा LM_1 को स्पर्श करती है। वस्तु F पर संतुलन होने का अभिप्राय है कि अब उपभोक्ता वस्तु X की कम मात्रा अर्थात् OQ (या LA) मात्रा खरीदेगा और इस मात्रा को खरीदने के लिए वह अपनी द्राव्यिक आय की LH (या AF) मात्रा व्यय करेगा। यदि टैक्स नहीं लगता तो उपभोक्ता वस्तु X की इस मात्रा OQ (या LA) को खरीदने के लिए पुरानी कीमत रेखा LM के बिन्दु B पर होता, अर्थात वह, टैक्स न लगने की स्थिति मे, X की OQ (या LA) मात्रा को खरीदने के लिए AB द्रव्य व्यय करता न कि AF (या LH) द्रव्य की मात्रा जो कि वह टैक्स लगने के बाद व्यय करता है। दूसरे शब्दों में, टैक्स आगम (tax revenue) जोकि सरकार को जाता है $=AF-AB=BF$; अतः पुरानी व नयी कीमत रेखाओं के बीच अन्तर BF टैक्स की मात्रा को बताता है।

सरकार इस टैक्स आगम BF को वस्तु पर टैक्स न लगाकर आय-टैक्स द्वारा भी प्राप्त कर सकती है; यदि सरकार ऐसा करती है तो नयी कीमत-रेखा CD होगी। यह कीमत-रेखा CD पुरानी कीमत-रेखा LM के समानान्तर (parallel) होगी क्योंकि वस्तु X की कीमत में कोई अन्तर नहीं हुआ है, केवल उपभोक्ता की आय पर टैक्स LC लगाया गया है जो कि वस्तु-टैक्स BF के बराबर है (चित्र से स्पष्ट है कि $LC=BF$)। अब उपभोक्ता की नयी साम्य स्थिति बिन्दु T पर होगी, जो कि, I_2 की तुलना में, एक ऊंची तटस्थता रेखा I_3 पर है और उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा OS खरीदेगा। स्पष्ट है कि वस्तु-टैक्स BF लगने पर उपभोक्ता नीची तटस्थता रेखा I_2 पर बिन्दु F पर साम्य की स्थिति मे होगा, परन्तु BF के बराबर LC आय-टैक्स लगने के बाद उपभोक्ता ऊँची तटस्थता रेखा I_3 पर बिन्दु T पर साम्य की स्थिति में होगा और उसकी संतुष्टि अधिक होगी। इस प्रकार, उपभोक्ता की दृष्टि से, आय-टैक्स अधिक कुशल होता है अपेक्षाकृत वस्तु-टैक्स के।

(3) भौतिक नियंत्रणों का लगाना—राशनिंग, कोटा, लाइसेन्स, इत्यादि (Imposition of Physical Controls : rationing, quotas, licencing, etc.)

युद्ध के समय मे या कुछ अन्य आर्थिक परिस्थितियों के कारण कुछ वस्तुओं की कमी (shortage) हो जाती है, परिणामस्वरूप कीमतें बढ़ने लगती हैं और मुद्रा-

चित्र 4

स्फीति (inflation) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मौद्रिक तथा प्रशुल्क नीतियों (monetary and fiscal policies) की सहायता से मुद्रा-स्फीति तथा चढती हुई कीमतों को रोकने के प्रयत्न किये जाते हैं। कुछ दशाओं में प्रत्यक्ष कीमत नियंत्रण (direct price control) लगाने पड़ते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष कीमत नियंत्रण 'काले बाजार' (black market) को जन्म देते है; इसलिए कीमत नियंत्रण के साथ-साथ कोटा, लाइसेन्स, राशनिंग, इत्यादि 'भौतिक नियंत्रण' (physical controls) भी लगाने पड़ते हैं ताकि 'काले बाजार' को पूर्णतया रोका जा सके या उसको बहुत कम किया जा सके। परन्तु राशनिंग इत्यादि के लगने से उपभोक्ताओं की संतुष्टि में कमी हो जाती है, इस बात को तटस्थता-वक्र रेखाओं की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। राशन की व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक उपभोक्ता को एक राशन कार्ड दिया जाता है जिसके द्वारा वह विभिन्न वस्तुओं की सरकार द्वारा निर्धारित मात्राएं खरीद सकता है।

तटस्थता-वक्र रेखाओं के राशनिंग म प्रयोग को चित्र 4 द्वारा दिखाया गया है। यहां पर निम्न मान्यताओं के आधार पर चलते हैं :

(i) दो उपभोक्ता A तथा B हैं।

(ii) दोनों व्यक्तियों की आय का स्तर समान (same level of income) है। इसलिए चित्र 4 में दोनों उपभोक्ताओं के लिए एक ही कीमत रेखा LM है।

(iii) दोनों उपभोक्ताओं की वस्तु X तथा Y के सम्बन्ध में रुचियां व पसन्दें (tastes and preferences) भिन्न हैं; इस बात को दोनों उपभोक्ताओं की तटस्थता-वक्र रेखाओं के ढालों (slopes or steepness) में अन्तर के द्वारा बताया जाता है। चित्र 4 में व्यक्ति A की तटस्थता रेखाएं IA_1 तथा IA_2 हैं, ये रेखाएं अधिक ढालू या अधिक गहरी हैं जो कि बताती हैं कि व्यक्ति A वस्तु X को अधिक पसन्द करता है। व्यक्ति B की तटस्थता-वक्र रेखाएँ IB_1 तथा IB_2 हैं और ये कम ढालू या कम गहरी हैं जो कि बताती हैं कि व्यक्ति B वस्तु Y को अधिक पसन्द करता है।

सरकार द्वारा राशन लगाने से पहले उपभोक्ता A तटस्थता रेखा IA_1 पर बिन्दु R पर संतुलन की स्थिति में है, (अर्थात् वह वस्तु X की OX_3 मात्रा + वस्तु Y की Y_3 मात्रा का संयोग खरीदता है), तथा उपभोक्ता B तटस्थता रेखा IB_1 पर बिन्दु P पर सतुलन की स्थिति में है (अर्थात् वह वस्तु X की OX_1 मात्रा + वस्तु Y की OY_1 मात्रा खरीदता है)। माना कि सरकार राशन लगा देती है, यहां पर यह मान लिया जाता है कि राशन लगने के बाद व्यक्ति आपस में वस्तुओं का विनिमय नहीं कर सकते हैं। माना कि राशन लगने के परिणामस्वरूप दोनों व्यक्तियों A तथा B को X की OX_2 मात्रा + Y की OY_2 मात्रा खरीदनी पड़ती है, अर्थात् दोनों व्यक्ति कीमत रेखा LM के बिन्दु T पर होंगे।

बिन्दु T पर पहुंचने का मतलब है कि उपभोक्ता B नीची तटस्थता रेखा IB_2 पर आ जाता है और उपभोक्ता A भी नीची तटस्थता रेखा IA_2 पर पहुंच जाता है; दूसरे शब्दों में, **राशन के कारण दोनों उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि पहले की तुलना में कम हो जाती है।**

यदि यह मान लिया जाय कि राशन की व्यवस्था लागू करने के बाद सरकार की ओर से दोनों **व्यक्तियों के बीच विनिमय की कोई रुकावट नहीं है, तो दोनों व्यक्तियों की सन्तुष्टियों में कोई कमी नहीं होगी।** यदि व्यक्ति A वस्तु Y की ΔY मात्रा व्यक्ति B को दे देता है तथा व्यक्ति A वस्तु X की ΔX मात्रा व्यक्ति B से प्राप्त कर लेता है, तो दोनों व्यक्ति ऊँची तटस्थता रेखाओं पर पहुँच जायेंगे, अर्थात् व्यक्ति B ऊँची तटस्थता रेखा IB_1 के बिन्दु P पर पहुँच जायेगा तथा व्यक्ति A ऊँची तटस्थता रेखा IA_1 के बिन्दु R पर पहुँच जायेगा।

अभी तक हमने जिस उदाहरण की विवेचना की है उसमें दोनों व्यक्तियों A तथा B की समान आय मान ली थी। अब इस मान्यता को हटा देते हैं, अर्थात् हम यह मानकर चलते है कि उपभोक्ताओं की द्राव्यिक आयों मे अन्तर है। ऐसी स्थिति में राशनिंग का उपभोक्ताओं की संतुष्टियो पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इसको जानने के लिए हमे आय के वितरण (distribution of income) या उनकी पसन्दो की सापेक्षिक शक्ति (relative strength of their preferences) को ध्यान में रखना होगा।

माना कि व्यक्ति A की आय अधिक है अर्थात् व्यक्ति A धनवान है और,(चित्र 5 में) उसकी कीमत रेखा LM है। व्यक्ति B की आय कम है अर्थात् व्यक्ति B गरीब है तथा उसकी कीमत रेखा (चित्र 5 मे) EF है। राशनिंग से पहले धनवान व्यक्ति A बिन्दु P पर संतुलन की स्थिति मे है तथा गरीब व्यक्ति B बिन्दु T पर संतुलन की स्थिति में है। माना सरकार द्वारा राशनिंग लगा देने से दोनों व्यक्ति वस्तु X की X_1 मात्रा + वस्तु Y की Y_1 मात्रा प्राप्त कर सकेंगे; वस्तुओं का यह संयोग बिन्दु R बताता है। यह निश्चित है कि बिन्दु R पर पहुँचने से धनी व्यक्ति की संतुष्टि कम हो जायेगी (क्योकि बिन्दु R तटस्थता रेखा IA_1 के नीचे है) और इसलिए उसकी स्थिति पहले की तुलना मे खराब हो जायेगी। परन्तु गरीब व्यक्ति B के बारे में हम निश्चित रूप से यह नही कह सकते कि उसकी स्थिति पहले की तुलना मे खराब हो जायेगी या अच्छी जब तक कि उसकी तटस्थता-वक्र रेखाओ की शक्ल की जानकारी प्राप्त न कर लें। यदि उसकी तटस्थता-वक्र रेखा की शक्ल IB_1 की भांति है तो उसकी स्थिति पहले से अच्छी हो जायेगी; यदि उसकी तटस्थता रेखा की शक्ल IB_2' की तरह है तो उसकी स्थिति पहले से खराब हो जायेगी। (वास्तव में तटस्थता रेखाओं की निश्चित शक्लों को मालूम करना कठिन है।)
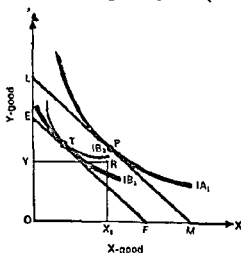
चित्र 5

(4) रहन-सहन के सूचनांक में प्रयोग (*Use in the Theory of Cost of Living Index Numbers*)

तटस्थता-वक्रों की सहायता से सूचनाक समस्या (Index Number Problem) की व्याख्या की जा सकती है। सूचनांक समस्या के अन्तर्गत हम दो समय-अवधियों—माना अवधि 1

(period 1) तथा अवधि 2 (period 2)—में उपभोक्ताओं के रहन-सहन के स्तर की तुलना करके यह मालूम करते हैं कि अवधि 2 में उपभोक्ताओं का रहन-सहन स्तर अवधि 1 की तुलना में बढ़ गया है या घट गया है।
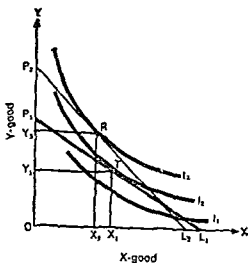
चित्र 6

हम निम्न मान्यताओं को लेकर चलते हैं: (i) एक उपभोक्ता दो वस्तुओं X तथा Y को दो समय-अवधियों—अवधि 1 तथा अवधि 2—में खरीदता है।

समय-अवधि 1 में वह वस्तु X की X_1 मात्रा $P_X{}^1$ कीमत पर तथा वस्तु Y की Y_1 मात्रा $P_Y{}^1$ कीमत पर खरीदता है। अवधि 2 में वह वस्तु X की X_2 मात्रा कीमत $P_X{}^2$ पर तथा वस्तु Y की Y_2 मात्रा कीमत $P_Y{}^2$ पर खरीदता है।

(ii) उपभोक्ता की रुचियाँ तथा पसन्दें (tastes and preferences) समान रहती हैं; अर्थात् उपभोक्ता की तटस्थता-वक्र रेखाएँ (चित्र 6 में I_1, I_2 तथा I_3) दोनों अवधियों के लिए एक ही रहती हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण मान्यता है।

अवधि 1 में उपभोक्ता की दी हुई द्राव्यिक आय तथा दो वस्तुओं की कीमतों $P_X{}^1$ तथा $P_Y{}^2$ के आधार पर कीमत रेखा P_1L_1 है और उपभोक्ता बिन्दु T पर साम्य की स्थिति में है (अर्थात् वह वस्तु X की X_1 मात्रा + वस्तु Y की Y_1 मात्रा खरीदता है।) अवधि 2 में कीमतों में परिवर्तन होता है; माना कि वस्तु Y की कीमत घटती है तथा वस्तु X की कीमत बढ़ती है, परिणामस्वरूप नयी कीमत रेखा की स्थिति P_2L_2 हो जाती है और अब उपभोक्ता नयी साम्य की स्थिति को तटस्थता-वक्र रेखा I_3 के बिन्दु R पर प्राप्त कर लेता है (अर्थात् वह वस्तु X की X_2 मात्रा + वस्तु Y की Y_2 मात्रा खरीदता है)। स्पष्ट है कि अवधि 1 की तुलना में उपभोक्ता अवधि 2 में अच्छी स्थिति में होगा क्योंकि वह ऊँची तटस्थता रेखा I_3 पर पहुँच जाता है।

(5) एक व्यक्तिगत श्रमिक की पूर्ति रेखा (Supply Curve of an Individual Labour)

तटस्थता-वक्र रेखाओं की सहायता से एक श्रमिक की पूर्ति रेखा को प्राप्त (derive) किया जा सकता है। एक श्रमिक की पूर्ति रेखा को ज्ञात करने के लिए हम निम्न कदमों (steps) को लेते हैं:

(i) *यहाँ पर एक उपभोक्ता या व्यक्ति का व्यवहार इस दृष्टि से अध्ययन किया जाता है कि* **वह अपनी सेवाओं को उत्पादकों या फर्मों को बेचता है।** (यहाँ पर वस्तुओं के खरीदने वाले की दृष्टि से एक उपभोक्ता या व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जाता है।)

(ii) अब इस पर विचार किया जायेगा कि **एक उपभोक्ता का आय** (income) **के प्रति क्या दृष्टिकोण** (attitude) **होता है।** सामान्यतया एक उपभोक्ता या व्यक्ति अधिक आय को प्राप्त करना चाहेगा; अधिक आय को प्राप्त करने के लिए वह अधिक कार्य करेगा (अर्थात एक दिये हुए समय में अपनी अधिक सेवाएं बेचेगा)। अधिक कार्य का अर्थ है कि व्यक्ति को कुछ आराम* (leisure) *का त्याग करना होगा; जीवन में कार्य ही नहीं बल्कि आराम भी आवश्यक है। अतः*

* By leisure we simply mean the time not spent in remunerative work from which money income is derived.

चित्र 7

एक व्यक्ति को 'अधिक आय से उपयोगिता में लाभ' का 'आराम में कमी से उपयोगिता में हानि' के साथ संतुलन करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, 'कार्य' (work) तथा 'आराम' (leisure) प्रतिस्पर्धात्मक (competitive) होते हैं।[5] अथवा यह कहिए कि 'कार्य' और 'आराम' एक-दूसरे के स्थानापन्न (substitutes) होते हैं तथा श्रमिक-के-रूप-में-उपभोक्ता (worker-consumer) को 'कार्य' व 'आराम' के बीच चुनाव करना पड़ता है।
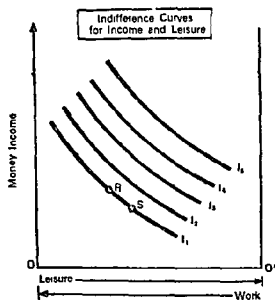
(iii) अब हमारा कदम है 'आय' और 'आराम' के लिए तटस्थता-वक्र रेखाओं (Indifference curves for income and leisure) का बनाना।[6] चित्र 7 में 'आय और आराम' के लिए तटस्थता-वक्र रेखाएं I_1, I_2, I_3, I_4 तथा I_5 दिखायी गयी हैं। Y-axis पर 'एक दिन की द्राव्यिक आय' (money income for a day) को दिखाया गया है। X-axis पर O से दायें की ओर 'आराम' (leisure) को मापा जाता है तथा O' से बायें की ओर 'कार्य' (work) को नापा जाता है। तटस्थता-वक्र रेखा I_1 का प्रत्येक बिन्दु (जैसे बिन्दु R तथा S) 'आय और कार्य' के उन संयोगों को बताता है जो कि व्यक्ति को एक समान संतुष्टि देते हैं और उपभोक्ता प्रत्येक संयोग के प्रति तटस्थ होता है। उपभोक्ता बिन्दु R से S तक जाने में कुछ आय का त्याग करता है परन्तु उसकी क्षतिपूर्ति करने (compensation) के लिए उसे
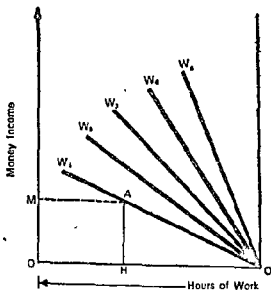
चित्र 8

[5] Thus, an individual will have to balance the gain in utility from more income against the loss of utility owing to decrease in leisure. In other words, work and leisure are competitive.

[6] आय, कार्य तथा आराम; इनके सम्बन्ध को ध्यान में रखना जरूरी है। 'कार्य तथा आय में सीधा सम्बन्ध होता है; अर्थात्, अधिक कार्य करने से अधिक आय प्राप्त होती है व कम कार्य करने से कम आय। आय प्राप्त करने की दृष्टि से कार्य न करना आराम है; यह कार्य और आराम में सम्बन्ध है; इस सम्बन्ध के कारण 'कार्य' और 'आराम' को X-axis पर विपरीत दिशाओं में मापा जाता है, जैसा कि चित्र 7 में दिखाया गया है।

पर्याप्त आराम प्राप्त हो जाता है और इसलिए वह दोनों संयोगों के बीच तटस्थ रहता है। परन्तु अन्य बातों के समान रहते हुए अधिक आय, कम आय की तुलना में, पसन्द की जायेगी; इसलिए ऊँची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर एक संयोग, तटस्थता रेखा I_1 के किसी भी संयोग की तुलना में, अधिक पसन्द किया जायेगा। इसी प्रकार ऊँची तटस्थता रेखाओं I_3, I_4 तथा I_5 के संयोग क्रमश: अधिक पसन्द किये जायेंगे।[7]

(iv) चित्र 8 में प्रति घंटे मजदूरी की विभिन्न दरों (different wage rates per hour) को दिखाया गया है।

सीधी रेखाओं (straight lines) $O'W_1$, $O'W_2$, $O'W_3$, इत्यादि के ढाल मजदूरी-दरों को बताते हैं। उदाहरणार्थ,

Slope of $O'W_1$

$$= \text{Tangent of angle } OO'A$$
$$= \frac{AH \text{ (or } MO)}{O'H}$$
$$= \frac{\text{Income}}{\text{Hours of Work}}$$
$$= \text{Wage per hour}$$

इसी प्रकार अन्य सीधी रेखाओं W_2, W_3, W_4 तथा W_5 के ढाल प्रति घंटे की मजदूरी दर को बताते हैं।

(v) अब हम एक उपभोक्ता के 'आय और आराम' अथवा 'आय और कार्य' के अनुकूलतम संयोगों (Optimum combinations of 'Income and Leisure' or 'Income and Work') को बता सकेंगे। एक विवेकपूर्ण व्यक्ति (rational consumer) उस उच्चतम (highest) तटस्थता-वक्र रेखा पर पहुँचने का प्रयत्न करेगा जिस पर कि वह पहुँच सकता है।

चित्र 9 मे $O'W_1$ रेखा प्रति घंटे की एक मजदूरी दर (an hourly wage rate) को बताती है; यदि यह मजदूरी रहती है तो $O'W_1$ तटस्थता-वक्र रेखा I_1 के बिन्दु E पर स्पर्श-रेखा (tangent) होगी; $O'W_1$ के सन्दर्भ मे I_1 उच्चतम तटस्थता रेखा होगी। इसी प्रकार W_2 तथा I_2 बिन्दु F पर, W_3 तथा I_3 बिन्दु G पर, W_4 तथा I_4 बिन्दु H पर, W_5 तथा I_5 बिन्दु K पर स्पर्श करते हैं। बिन्दु E, F, G, H तथा K 'आय और आराम के अनुकूलतम संयोगों' (Optimum Combinations of Income and Leisure) को बताते हैं। इन बिन्दुओं को मिला देने से हमें एक रेखा EFGHK प्राप्त होती है जिसे 'मजदूरी-पेश करने की रेखा' (Wage offer curve) कहा जाता है। यह मजदूरी-पेश-रेखा बताती है कि विभिन्न मजदूरी-दरों पर एक व्यक्ति कितने घंटे कार्य करने के लिए पेश (offer) करने को तैयार है।

---

[7] इन तटस्थता-वक्र रेखाओं की शक्ल की विवेचना करते हैं। चित्र 7 में, शुरू में (अर्थात् बायें से शुरू में) तटस्थता रेखाएँ तेजी से गिरती हैं और बाद में (अर्थात् दायीं ओर) कुछ समतल (somewhat flat) हो जाती हैं। इसका अभिप्राय है कि जब आराम के घंटे कम हैं तो आराम के एक घंटे की उपयोगिता अधिक है, अर्थात् आराम के एक घंटे को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त आय का त्याग करना पड़ेगा; परन्तु जब आराम के घंटे अधिक हैं तो और अधिक आराम के घंटों को प्राप्त करने के लिए ज्यादा आय का त्याग नहीं करना पड़ेगा। उस व्यक्ति के लिए, जो बिलकुल आराम नहीं चाहता है, तटस्थता रेखाएँ पूर्णतया समतल (perfectly flat) होंगी। उन व्यक्तियों के लिए, जो अधिक आराम चाहते हैं, तटस्थता रेखाएँ बहुत अधिक ढालू (highly steep) होंगी। अत: तटस्थता-वक्र रेखाओं की शक्लों मे परिवर्तन द्वारा 'आय और आराम' के प्रति विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों को दिखाया जा सकता है।
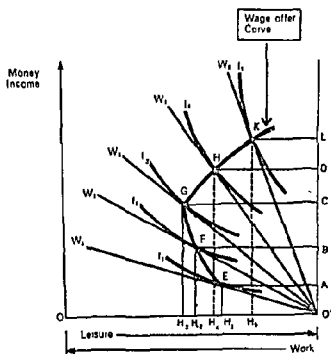
चित्र 9

यदि यह ध्यान रखा जाये कि W_1, W_2, W_3 इत्यादि रेखाओं के ढाल मजदूरी-दर को बताते हैं (जैसा कि चित्र 8 में स्पष्ट किया जा चुका है), तो मजदूरी की विभिन्न दरों पर श्रमिक कितने-कितने घंटे कार्य करेगा यह बात निम्न तालिका में स्पष्ट की गयी है—

मजदूरी-दर (Wage-rate)	कार्य करने के घंटे (Hours of Work)
$\frac{EH_1}{O'H_1}$	AE (or $O'H_1$)
$\frac{FH_2}{O'H_2}$	BF
$\frac{GH_3}{O'H_3}$	CG
$\frac{HH_4}{O'H_4}$	DH
$\frac{KH_5}{O'H_5}$	LK

उपर्युक्त विवरण तथा चित्र 9 से स्पष्ट है कि E से G तक तो मजदूरी बढ़ने पर श्रमिक की पूर्ति (अर्थात् कार्य करने के घंटे) में भी वृद्धि होती है, परन्तु बिन्दु G के बाद से बिन्दु K तक मजदूरी-दर बढ़ने पर श्रमिक की पूर्ति घटती है (अर्थात् श्रमिक कम घंटे कार्य करने को पेश करता है)। दूसरे शब्दों में, बिन्दु G के बाद से 'मजदूरी-पेश-रेखा' पीछे को झुक जाती (backward-sloping) है,

जिसका अभिप्राय है कि बिन्दु G के बाद से मजदूरी में वृद्धि होने पर श्रमिक कम घंटे कार्य करते हैं। ऐसा क्यों है ? इसकी व्याख्या 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' (substitution-effect) तथा 'आय-प्रभाव' (income-effect) के शब्दों में की जाती है। **'मजदूरी में वृद्धि के कारण प्रतिस्थापन-प्रभाव'** के परिणामस्वरूप श्रमिक अधिक घंटे कार्य करने को प्रोत्साहित होंगे अर्थात् वे 'आराम' (leisure) में कमी गे और उसके स्थान पर 'कार्य-घंटों' (hours of work) का प्रतिस्थापन करेंगे। **'मजदूरी में वृद्धि के कारण आय-प्रभाव'** का परिणाम यह होगा कि एक सीमा के बाद (जैसा कि चित्र में बिन्दु G के बाद से) ऊँची मजदूरी प्राप्त करने से श्रमिक अधिक 'आराम' चाहते है और कार्य के घंटों में कमी कर देते हैं। एक सीमा के बाद ऊँची मजदूरी मिलने के कारण श्रमिको के लिए 'आराम' एक 'श्रेष्ठ वस्तु' (superior good) हो जाती है तथा 'कार्य-घंटे' एक निम्न कोटि की वस्तु (inferior good) हो जाती है। अतः ऊँची मजदूरी-दर पर श्रमिक श्रेष्ठ वस्तु 'आराम' अधिक चाहने लगता है अपेक्षाकृत निम्न कोटि की वस्तु 'कार्य' के। दूसरे शब्दो मे, एक सीमा के बाद ऊँची मजदूरी दर पर 'आय-प्रभाव' अधिक प्रबल (strong) हो जाता है 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' की तुलना मे, और 'मजदूरी-पेश-रेखा' पीछे को झुक जाती है।

चित्र मे मजदूरी-पेश-रेखा एक व्यक्ति (या श्रमिक) की पूर्ति रेखा की जानकारी (information) को बताती है, अर्थात् मजदूरी-पेश-रेखा की सहायता से एक श्रमिक की पूर्ति रेखा को निकाला (derive किया) जा सकता है।

(vi) अब हम मजदूरी-पेश-रेखा की सहायता से एक व्यक्ति या श्रमिक की पूर्ति रेखा बनाते है। पीछे दी गयी तालिका मे एक ओर 'मजदूरी-दरें' हैं और दूसरी ओर 'कार्य करने के घंटे' (अर्थात् श्रमिक की पूर्ति की मात्रा) है, जैसा कि पीछे दी गयी तालिका से स्पष्ट है, यदि इनको हम चित्र 10 मे दिखाते हैं तो एक श्रमिक की पूर्ति रेखा SS प्राप्त हो जाती है। यह पूर्ति रेखा 'मजदूरी' तथा 'श्रमिक की पूर्ति' के बीच सामान्य (usual) सम्बन्ध बताती है।

चित्र 10 से स्पष्ट है कि बिन्दु G के बाद से मजदूरी-दर मे वृद्धि होने पर भी श्रमिक की पूर्ति (अर्थात् कार्य करने के घंटे) घटने लगती है जैसा कि पड़ी रेखाओं (horizontal lines) को देखने से स्पष्ट होता है। ऐसी पूर्ति रेखा को 'श्रमिक की पीछे को झुकने वाली पूर्ति रेखा' (backward sloping supply curve of labour) कहा जाता है।
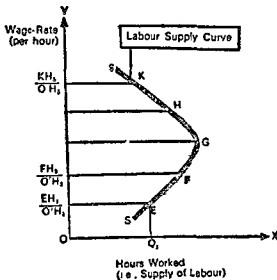
चित्र 10

(6) उपभोक्ता की बचत का अध्ययन (Study of Consumer's Surplus)

तटस्थता रेखाओं की सहायता से उपभोक्ता की बचत के विचार की व्याख्या की जाती है। यह बात आगे चित्र 11 द्वारा स्पष्ट की जाती है। माना कि उपभोक्ता की द्रव्य-आय (money income) OA है। X वस्तु को X-axis पर दिखाया गया है। AB कीमत रेखा (price line) है। P बिन्दु उपभोक्ता का

सन्तुलन बिन्दु है जो कि X वस्तु की OQ मात्रा + OM द्रव्य के संयोग को बताता है अर्थात् उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा को खरीदने के लिए AM या LP द्रव्य देता है। S बिन्दु नीचे की तटस्थता-वक्र रेखा I_2 पर है, इसका अर्थ है कि X वस्तु की उतनी ही मात्रा OQ को खरीदने के लिए उपभोक्ता LS या AN द्रव्य देने को तैयार है, परन्तु वास्तव में LP या AM द्रव्य देता है, अतः LS − LP = PS या MN उपभोक्ता की बचत हुई।

चित्र 11

(7) उत्पादन के क्षेत्र में (In the Field of Production)

उत्पादन के क्षेत्र में तटस्थता-वक्र रेखाओं को सम-उत्पाद रेखाएँ (Isoproduct or Equal Product curves) कहा जाता है। समउत्पाद रेखाओं की सहायता से 'साधनों को प्रयोग की दृष्टि से एक फर्म (या उत्पादक) के साम्य' को ज्ञात किया जा सकता है। इसके लिए देखिए 'सम-उत्पाद रेखाएं-4' शीर्षक अध्याय 25 में चित्र 4 को।
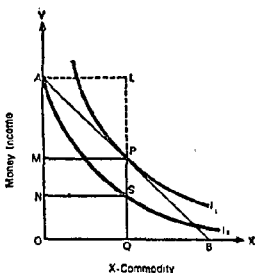
प्रश्न

1. तटस्थता-रेखाओं की परिभाषा दीजिए; इन्हें क्यों ईजाद किया गया ? इनके कुछ उपयोग बताइए।

   Define indifference curves; state why was the technique of indifference curves invented and show a few of its uses. (Agra)

   [संकेत—प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर में बताइए कि उपयोगिता को नापा नहीं जा सकता, इस कठिनाई को दूर करने के लिए, तटस्थता-वक्र विश्लेषण का जन्म हुआ।]

2. चित्रों की सहायता से तटस्थता रेखाओं के प्रयोग को निम्न क्षेत्रों में बताइए :
   (अ) विनिमय के सिद्धान्त में।
   (ब) कराधान के क्षेत्र में; या राशनिंग में।

   With the help of diagrams indicate the use of indifference curves in the following fields :
   (a) In the theory of exchange.
   (b) In the field of taxation or in rationing.

3. चित्रों द्वारा बताइए कि तटस्थता रेखाओं से किस प्रकार श्रमिक की पूर्ति रेखा निकाली जाती है।

   Explain with the help of diagrams how supply curve for labour is derived from indifference curves.

17

तटस्थता-वक्र विश्लेषण-6
(Indifference Curve Analysis-6)

तटस्थता-वक्र विश्लेषण का मूल्यांकन
(Evaluation of Indifference Curve Analysis)

तटस्थता-वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(CRITICAL ESTIMATE OF THE INDIFFERENCE CURVE TECHNIQUE)

यह कहा जाता है कि हिक्स के तटस्थता विश्लेषण ने मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोषों को दूर किया तथा पुराने निष्कर्षों का पुर्ननिर्माण करते हुए उन्हें अधिक निश्चित तथा वैज्ञानिक रूप दिया। प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या तटस्थता विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण के ऊपर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह आवश्यक है कि हम तटस्थता विश्लेषण के गुण (merits) तथा दोष (demerits) दोनों का अध्ययन करें और तत्पश्चात एक निष्कर्ष पर पहुँचें।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण के गुण तथा श्रेष्ठता (Merits and Superiority of Indifference Curve Technique)

(1) मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) पर आधारित है, जबकि **तटस्थता विश्लेषण के अन्तर्गत उपयोगिता जैसे मनोवैज्ञानिक विचार को मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती।** यह विश्लेषण तो केवल यह बताता है कि एक उपभोक्ता दो वस्तुओं के एक संयोग को, दूसरे संयोग की अपेक्षा में, कम, बराबर या अधिक पसन्द करता है, परन्तु उपभोक्ता यह नहीं कह सकता कि वह एक संयोग को, दूसरे की अपेक्षा, परिमाणात्मक रूप से कितना पसन्द करता है।

(2) **प्रो. हिक्स ने दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक नया नाम दिया जिसे कि वे प्रतिस्थापन की सीमान्त-दर कहते हैं।** यह विचार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन मे स्वतन्त्र (free) है। यह विचार मार्शल के अस्पष्ट विचार को अधिक निश्चित रूप मे रखता है और इसलिए प्रो. हिक्स अपने विचार को अधिक श्रेष्ठ बताते हैं।

(3) **मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर** (constant) **मानकर चलता है, जबकि तटस्थता विश्लेषण ऐसी मान्यता पर आधारित नहीं है।** दूसरे शब्दो में, तटस्थता विश्लेषण कम मान्यताओं पर आधारित है और उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

(4) **तटस्थता-विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उस वस्तु की माँग पर**

पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करते में 'आय-प्रभाव' (जिसका अध्ययन मार्शल ने नहीं किया था) तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' दोनों को ध्यान में रखता है। अतः यह उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है। वास्तव में, आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण में 'प्रतिस्थापन' को प्रमुख स्थान देने का श्रेय हिक्स को है।

(5) तटस्थता विश्लेषण सम्बन्धित वस्तुओं (Related goods), अर्थात प्रतिस्पर्द्धात्मक (Competitive) तथा पूरक (Complementary) वस्तुओं का भी अध्ययन करता है, जबकि मार्शल ने ऐसा नहीं किया। अतः यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। मार्शल ने केवल एक वस्तु का ही अध्ययन किया जैसे कि उस वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर करती हो; वास्तव में, वस्तु विशेष की उपयोगिता अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।

(6) तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में भी किया जाता है। अतः प्रो. हिक्स ने तटस्थता विश्लेषण के रूप में सभी क्षेत्रों के लिए एक एकीकृत सिद्धान्त (unified theory) प्रस्तुत की। यह इस सिद्धान्त की श्रेष्ठता को बताता है।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण के दोष (Defects of Indifference Curve Technique)

कई विख्यात अर्थशास्त्रियों, जैसे आर्मस्ट्रांग (W.E Armstrong), न्यूमैन तथा मोरगेन्सटर्न (Neumann and Morgenstern), नाईट (Knight), शुम्पीटर (Schumpeter), रोबर्टसन (Robertson), इत्यादि द्वारा तटस्थता-वक्र विश्लेषण के प्रति अनेक महत्त्वपूर्ण आलोचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) प्रो. आर्मस्ट्रांग (Armstrong) के अनुसार तटस्थता-वक्र विश्लेषण का एक गम्भीर दोष इस बात में निहित है कि 'तटस्थता' शब्द का क्या अर्थ लेते हैं। प्रो. आर्मस्ट्रांग का दृष्टिकोण इस प्रकार है :

> अधिकांश दशाओं में उपभोक्ता की तटस्थता इसलिए होती है कि उपभोक्ता वस्तुओं के वैकल्पिक संयोगों की उपयोगिता के अन्तर को ज्ञात करने में पूर्णतया योग्य नहीं होता है। इसका अर्थ है कि वस्तुओं के किन्हीं दो संयोगों के बीच उपभोक्ता इसलिए तटस्थ नहीं होता कि उनसे समान उपयोगिता (या सन्तुष्टि) मिलती है बल्कि वह उनके बीच तटस्थ इसलिए होता है कि उन संयोगों के बीच उपयोगिता का अन्तर इतना कम होता है कि उसका अनुमान या मूल्यांकन नहीं कर पाता है।[1]

चित्र 1

यदि प्रो. आर्मस्ट्रांग की आलोचना को सही माना जाये तो यह तटस्थता-वक्र विश्लेषण की जड़ों को ही काट देती है और यह विश्लेषण टूट जाता है या समाप्त हो जाता है।

प्रो. आर्मस्ट्रांग की आलोचना को चित्र 1 द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में तटस्थता-वक्र रेखा I पर हम चार बिन्दु
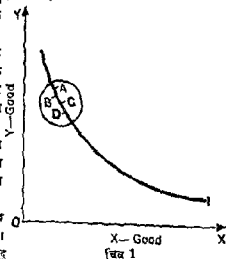
[1] In most cases the consumer's indifference is because the consumer is not fully able to perceive the difference of utility between alternative combinations of goods. This means that a consumer indicates his indifference between any two combination of goods not because they provide him equal utility (or satisfaction) but because the differences between the combinations is so small that he cannot judge them.

A, B, C तथा D लेते है जो कि एक-दूसरे के बहुत निकट है। इनमे से प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओ X तथा Y के एक सयोग को बताता है। तटस्थता-वक्र विश्लेषण के सामान्य अर्थ (usual meaning) के अनुसार किन्ही भी दो बिन्दुओं, जैसे A तथा B, B तथा C, C तथा D के बीच तटस्थता का सम्बन्ध (relation of indifference) होगा। परन्तु प्रो. आर्मस्ट्रांग इसका भिन्न अर्थ लेते हैं जो कि इस प्रकार है :

"आर्मस्ट्रांग की दृष्टि मे एक उपभोक्ता किन्ही दो सयोगो, जैसे A तथा B, के प्रति इसलिए तटस्थ नही होगा क्योकि सयोग A की उपयोगिता बराबर या समान है संयोग B की उपयोगिता के, बल्कि वह इसलिए तटस्थ होगा क्योकि A तथा B की कुल उपयोगिताओ मे अन्तर इतना कम है कि उपभोक्ता उसको अनुभव या ज्ञात नही कर सकता। परन्तु यदि हम A की तुलना C मे (या D से) करें तो A तथा B, और B तथा C के बीच कुल उपयोगिताओ का अस्पष्ट अन्तर इकट्ठा होकर इतना बड़ा हो जाता है कि उसे अनुभव या ज्ञात किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता या तो A को C के स्थान पर पसन्द करेगा, या इसके विपरीत C को A के स्थान पर पसन्द करेगा। इस प्रकार, (उपयोगिताओ का अन्तर अस्पष्ट या अज्ञात होने के कारण) A तथा B और B तथा C के बीच जो तटस्थता का सम्बन्ध (relation of indifference) सत्य होता है वह A तथा C के बीच सत्य नही उतरता। इस प्रकार जब एक बार तटस्थता की असंक्रमकता (intransitivity of indifference) को मान लिया जाता है तो तटस्थता-वक्रो की प्रणाली टूट जाती है।"[2]

(2) **'जोखिम' या 'प्रत्याशा की अनिश्चितता'** (risk or uncertainty of expectation) के मौजूद होने पर तटस्थता-वक्र विश्लेषण उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या नही कर सकता है।

न्यूमैन तथा मौरगेंस्टर्न, और आर्मस्ट्रांग के अनुसार क्रमवाचक उपयोगिता पर आधारित तटस्थता-वक्र विश्लेषण टूट जाता है जैसे ही हम 'चुनावों के परिणामों के सम्बन्ध में प्रत्याशा की अनिश्चितता को शामिल कर लेते हैं।'[3]

"हम एक स्थिति को मान कर चलते हैं जिसमे कि एक व्यक्ति के समक्ष तीन विकल्प A, B तथा C हैं, और वह A को पसन्द करता है B के स्थान पर तथा C को पसन्द करता है A के स्थान पर। माना कि A के घटित होने की सम्भावना निश्चित है, तथा B या C के घटित होने की सम्भावना 50-50 की है। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता का चुनाव, पसन्द की तीव्रता के तुलनात्मक अनुपातो (comparctive ratios of preference intensity) द्वारा निर्देशित होगा।"[4]

---

[2] "On Armstrong's interpretation the consumer will be indifferent, say, between A and B not because the total utility of combination A is identical with the total utility of combination B but because the difference in the total utilities of A and B is so small that it is imperceptible to the consumer. However, if we compare A to C (or to D) the imperceptible difference between total utilities of A and B and of B and C (or D) may have accumulated so as to become perceptible In this situation the consumer will either prefer A to C, or conversely C to A. The relation of indifference which was true (because the difference was imperceptible to the consumer) between A and B and between B and C does not hold between A and C. Once we admit intransitivity of indifference the system of indifference curves breaks down"

[3] According to Neumann and Morgenstern, and Armstrong, the indifference curve analysis, based on ordinal utility system, breaks down as soon as we introduce 'uncertainty of expectation with regard to the consequences of choice'.

[4] "Let us consider a situation in which the individual is confronted with three alternatives, A, B and C, such that he prefers A to B and C to A. Let us suppose that the prospect of A occuring is certain, that of B or C 50-50. In this situation the individual choice will be dictated by comparative ratios of preference intensity."

इसका अर्थ है कि उपभोक्ता का चुनाव निर्भर करेगा B के ऊपर A के लिए पसन्द की सापेक्षिक मात्रा की तुलना (Comparison of relative degree of preference of A over B) पर, तथा A के ऊपर C के लिए पसन्द की सापेक्षिक मात्रा की तुलना पर, जबकि वह B या C के प्राप्त करने के अवसरों को भी ध्यान में रखेगा। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता चुनाव की क्रिया नहीं कर सकता जब तक कि तीनों विकल्पों से मिलने वाली उपयोगिता (या संतुष्टि) के अन्तरों की मात्रा (amount) को नहीं जानता, और इसका अर्थ है कि 'गणनावाचक उपयोगिता' (यानी उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन) का विचार प्रवेश कर जाता है, परन्तु तटस्थता-वक्र विश्लेषण आधारित है क्रमवाचक उपयोगिता पर।[5]

इस प्रकार क्रमवाचक उपयोगिता पर आधारित तटस्थता-वक्र विश्लेषण उस स्थिति में उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या नहीं कर सकता जबकि उपभोक्ता के समक्ष 'जोखिम' या 'अनिश्चितता' होती है; तटस्थता-वक्र विश्लेषण टूट जाता है।

(3) **तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत बहुत कम अनुभव सिद्ध विषय-सामग्री (low empiric content) होती है; अथवा तटस्थता-वक्र विश्लेषण का प्रयोग व्यावहारिक अनुसन्धान (empirical research) में नहीं किया जा सकता है।** दूसरे शब्दों में तटस्थता-वक्र रेखाएं काल्पनिक (imaginary) होती है, वे काल्पनिक प्रयोग (hypothetical experimentation) के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हैं, तटस्थता-वक्रों की सही व निश्चित शक्ल को नापने के लिए कोई व्यावहारिक रीति नहीं निकल पायी है। अतः **शुम्पीटर के शब्दों में,**

> "व्यावहारिक दृष्टि से हम कोई सुधार नहीं कर पाये जबकि हम विशुद्ध काल्पनिक तटस्थता रेखाएं खींचते हैं और जब हम विशुद्ध काल्पनिक उपयोगिता फलनों (functions) की बात करते हैं।"[6]
>
> "वास्तव में तटस्थता फलनों के परिमाणात्मक मापन की कठिनाई का कारण है सिद्धान्त के एक विशेष तार्किक ढाँचे का होना, कठिनाई आँकड़ों की कमी की या सांख्यिकीय तकनीकों की अपर्याप्तता की नहीं होती है।"[7]

(4) **तटस्थता-वक्र विश्लेषण भी, उपयोगिता विश्लेषण की भांति, कई अवास्तविक मान्यताओं (unrealistic assumptions) पर आधारित है।** इन अवास्तविक मान्यताओं का विवेचन नीचे दिया गया है —

(i) तटस्थता-वक्र विश्लेषण **'पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकरूप (homogeneous) वस्तुओं'** की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है, जबकि वास्तविक जीवन में 'एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा भेदित वस्तुएं' (monopolistic competition and differentiated products) पायी जाती हैं। व्यावहारिक जीवन में उपभोक्ता का व्यवहार विज्ञापन, प्रसार तथा दिमाग में वस्तु-विभेद (product differentiation) को उत्पन्न करने वाली अन्य आधुनिक रीतियों से प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों में, जैसा

---

[5] This implies that the consumer can not exercise a choice unless he knows the difference in the amount of utility (or satisfaction) he gets from the three alternatives; and this means that the concept of cardinal utility (or quantitative measurement of utility) comes in, whereas indifference curve analysis is based on ordinal utility.

[6] "From a practical stand point we are not much better off when drawing purely imaginary indifference curves than we are when speaking of purely imaginary utility functions."

[7] "As a matter of fact the difficulty of quantifying indifference functions arises out of the peculiar logical structure of the theory and is not to be interpreted as reflecting lack of data or inadequacy of statistical techniques."

कि डॉ. आर. टी. नौरिस (Dr. R. T. Norris) बताते हैं, तटस्थता-वक्र विश्लेषण एकाधिकारी प्रतियोगिता के सिद्धांत के विकास के परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनों को शामिल नहीं करता।

(ii) तटस्थता-वक्र विश्लेषण **इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि एक उपभोक्ता अपने व्यवहार में पूर्णतया विवेकपूर्ण** (perfect ration) होता है; अर्थात् वह अपनी संतुष्टि या उपयोगिता को अधिकतम करता है और ऐसा करने के लिए वह सबसे ऊँची सम्भव (highest possible) तटस्थता-वक्र रेखा पर पहुँचने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह कहा जाता है कि व्यावहारिक जीवन में उपभोक्ता सदैव विवेकपूर्ण तरीके से कार्य नहीं करता है; अनेक बातें उसके विवेकपूर्ण व्यवहार को सशोधित (modify) करती हैं—

(अ) वास्तविक जीवन में एक उपभोक्ता व्यय करते समय प्रायः आदतों, रीति-रिवाजों, परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है न कि केवल विवेकशीलता (अर्थात् संतुष्टि को अधिकतम करने के उद्देश्य) से।

(ब) व्यावहारिक जीवन में उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र (indifference map) की पूर्ण जानकारी नहीं होती है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक जीवन में एक व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं के सैकड़ों संयोगों से प्रत्याशित (expected) उपयोगिता की सही गणनाएं व तुलनाएं नहीं कर पाता है और इसलिए संयोगों के बीच विवेकपूर्ण चुनाव नहीं कर पाता है। प्रो. बोल्डिंग के शब्दों में, "हम कुछ निश्चित स्थितियों में चुनाव कर सकते हैं। परन्तु हमारे लिए स्थितियों की बहुत अधिक संख्या के बीच चुनाव करना सम्भव नहीं है।"[8]

(स) तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत वस्तुओं के स्वभाव पर बिना ध्यान दिये हुए वस्तुओं के संयोग बना लिये जाते हैं; इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के विवेकशून्य या बेतुके (absurd) संयोग बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, हम में से कितने व्यक्ति 2 रेडियो या 4 पेन्टों के संयोग को खरीदेंगे, अथवा 3 स्कूटर व 5 कमीज के संयोग, या 5 जोड़ी जूते व 2 घड़ियों के संयोग को खरीदेंगे। ये सब संयोग बेतुके या बेवकूफी के संयोग लगते हैं।

(द) इसके अतिरिक्त यह मान्यता भी अवास्तविक है कि सभी वस्तुएं पूर्णतया विभाज्यनीय (perfect divisible) होती हैं, तटस्थता-वक्र रेखाएं अभंग (continuous or smooth) तभी हो सकती है जबकि वस्तुओं के पूर्ण विभाजकता की अवास्तविक मान्यता को लेकर चला जाये।

उपर्युक्त समस्त विवरण उन अवास्तविक मान्यताओं को स्पष्ट रूप से प्रकाश में लाता है जिन पर तटस्थता-वक्र विश्लेषण आधारित है।

(5) क्रमवाचक उपयोगिता (ordinal utility) पर आधारित तटस्थता-वक्र विश्लेषण, मार्शल के गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण (cardinal utility analysis) के ऊपर इस दृष्टि से सुधार कहा जाता है कि तटस्थता-वक्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम मान्यताओं (fewer assumptions) पर आधारित होता है। परन्तु यह विचार 'वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत कमजोर' (very weak scientifically) है। इस सन्दर्भ में गणितात्मक अर्थशास्त्री एन. ज्योरजेसक्यू रोगेन (mathematical economist N. Georgescu—Roegen) के शब्द उपयुक्त (relevant) हैं—

---

8 "We make choice in particular situations, we do not contemplate making choices in an indefinitely large number of situations."—Boulding

"इस आधार पर कि चलने के लिए केवल दो पैरों की ही आवश्यकता है, क्या हम ऐसे जानवरों के अस्तित्व को मना कर सकते हैं जिनके कि दो पैर से अधिक पैर होते हैं ?"*

(6) तटस्थता विश्लेषण के बारे में एक आलोचना यह की जाती है कि यह कोई आधारभूत नवीनता लिये हुए नहीं है; पुराने विचारों को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर दिया गया है, पुरानी शराब नयी बोतल में भर दी गयी है। उदाहरणार्थ, 'परिमाणवाचक प्रणाली' (cardinal number system) के एक, दो, तीन इत्यादि के स्थान पर 'क्रमवाचक प्रणाली' (ordinal number system) के पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि का प्रयोग; 'उपयोगिता' के स्थान पर 'अधिमान क्रम' (preference scale); 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर', तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम' के स्थान पर 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का प्रयोग किया गया है। उपयोगिता विश्लेषण रीति में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति

$$\frac{\text{M.U. of X}}{\text{Price of X}}=\frac{\text{M.U. of Y}}{\text{Price of Y}}=\frac{\text{M.U. of Z}}{\text{Price of Z}}, \text{ इत्यादि,}$$

समीकरण द्वारा बतायी जाती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अनुसार, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर=वस्तुओं का कीमत अनुपात (price ratio), का यह समीकरण दिया जाता है। अतः कहा जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति पुरानी रीति को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर देती है। परन्तु प्रो. हिक्स इस विचार से सहमत नहीं हैं।

(7) जब व्यय दो से अधिक वस्तुओं पर किया जाता है तो तटस्थता रेखाएँ अपनी सरलता को खो देती हैं। तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप (three dimensions) चाहिए; तीन वस्तुओं से अधिक होने पर रेखागणित (geometry) विफल (fail) हो जाती है तथा हमें बीजगणित (algebra) का सहारा लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में तटस्थता-वक्र विश्लेषण रीत बहुत जटिल हो जाती है। इसका प्रयोग केवल वे ही अर्थशास्त्री अच्छी तरह से कर सकते हैं जिनका गणित का ज्ञान तथा अध्ययन बहुत अधिक हो।

प्रश्न

1. तटस्थता-वक्र विश्लेषण किस प्रकार से उपयोगिता विश्लेषण की तुलना में श्रेष्ठ है ?
   How is indifference curves analysis superior to utility analysis ?
   (Jabalpur, Agra)
2. क्या आप समझते हैं कि क्रमवाचक उपयोगिता पर आधारित तटस्थता-वक्र विश्लेषण श्रेष्ठ है गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण से ?
   Do you think that ordinal utility based indifference curve technique is superior to cardinal utility analysis ?
3. तटस्थता-वक्र विश्लेषण का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
   Give a critical evaluation of Indifference Curve Analysis.

* "Could we refuse to take account of animals with more than two feet, on the ground that only two feet are needed for walking ?"

18

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त
(The Theory of Revealed Preference)

1. प्राक्कथन (Introduction)

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का निर्माण प्रो. सेम्युलसन (Samuelson) ने किया।[1] इससे पहले माँग-सिद्धान्त पर दो विचारधाराएँ (two views) थी : एक, मार्शल का उपयोगिता-विश्लेषण तथा दूसरा, 'हिक्स-ऐलन (Hicks-Allen) का तटस्थता-वक्र विश्लेषण'। मार्शल का उपभोक्ता का माँग सिद्धान्त 'गणनावाचक उपयोगिता' (*cardinal utility*) पर आधारित है, अर्थात् इस बात पर आधारित है कि उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) किया जा सकता है; हिक्स का माँग सिद्धान्त 'क्रमवाचक उपयोगिता' (*ordinal utility*) पर आधारित है, अर्थात् इस बात पर आधारित है कि उपयोगिता की केवल तुलना की जा सकती है, उसका परिमाणात्मक मापन नही हो सकता। परन्तु इन दोनों सिद्धान्तों ने 'अन्तर्निरीक्षणात्मक रीति' ('*introspective*' method) का प्रयोग किया है; अर्थात् ये दोनों सिद्धान्त उपभोक्ता की माँग की मनोवैज्ञानिक व्याख्या (psychological explanation) करते हैं; 'अन्तर्निरीक्षणात्मक रीति' इस बात की व्याख्या करती है कि उपभोक्ता, कीमतों व आयों में काल्पनिक (imaginary) परिवर्तनो के उत्तर मे, किस प्रकार व्यवहार करेंगे। चूंकि हिक्स का तटस्थता-वक्रो के शब्दो में उपभोक्ता माँग सिद्धान्त 'क्रमवाचक उपयोगिता' और 'अन्तर्निरीक्षणात्मक रीति' पर आधारित है, इसलिए तटस्थता-वक्रों के हिक्स के सिद्धान्त को उपभोक्ता की माँग का 'अन्तर्निरीक्षणात्मक क्रमवाचक उपयोगिता सिद्धान्त' ('*introspective ordinal utility theory*' of consumer's demand) भी कहा जाता है।

प्रो. सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त उपभोक्ता के व्यवहार की एक 'वैज्ञानिक व्याख्या' (*scientific explanation*) प्रदान करता है जिसे उपभोक्ता की माँग की 'आचरणात्मक व्याख्या' (*behaviouristic explanation*) कहा जाता है। **विभिन्न कीमत-आय की स्थितियों के अन्तर्गत 'आर्थिक बाजारों' में उपभोक्ता के देखे जाने वाले वास्तविक व्यवहार** (observed actual behaviour) **के आधार पर प्रो. सेम्युलसन ने उपभोक्ता की माँग की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है।** प्रो. सेम्युलसन की रीति मे, विभिन्न वस्तुओ के सयोगो के सम्बन्ध में उपभोक्ता द्वारा अपनी पसन्दों या अपने अधिमानो (preferences) को बताने के लिए उपभोक्ता को किसी 'अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना' (introspective information) की आवश्यकता नही होती। अतः 'अन्तर्निरीक्षणात्मक या मनोवैज्ञानिक व्याख्या' (*introspective or psychological* explanation) की तुलना मे प्रो. सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'आचरणात्मक व्याख्या' (*behaviouristic* explanation) प्रदान करता है। चूंकि सेम्युलसन का सिद्धान्त 'क्रमवाचक उपयोगिता'

[1] Prof. Samuelson developed his theory of revealed preference in his article 'Consumption Theory in Terms of Revealed Preference,' *Economica*, 1948.

(ordinal utility) तथा 'आचरणात्मक व्याख्या' पर आधारित है, इसलिए इसको उपभोक्ता की माँग का 'आचरणवादी क्रमवाचक उपयोगिता सिद्धान्त' (*behaviourist ordinal utility theory*) भी कहा जा सकता है। प्रो सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त को कभी-कभी 'माँग के तार्किक सिद्धान्त का तीसरा मूल' (the third ro— —f the logical theory of demand)[2] भी कहा जाता है।

2. प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Revealed Preference Theory)

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

(i) उपभोक्ताओं की रुचियाँ (tastes) दी हुई (given) होती हैं और विश्लेषण की अवधि मे उनमें कोई परिवर्तन नही होता।

(ii) 'चुनाव अधिमान को प्रकट या व्यक्त करता है' (*choice reveals preference*); अर्थात् वस्तुओ के एक संयोग के लिए उपभोक्ता का चुनाव उसके अधिमान को बताता या प्रकट करता है। दूसरे शब्दों में, सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'अधिमान परिकल्पना' (Preference Hypothesis) पर आधारित है।

(iii) यह 'मजबूत क्रम' (strong ordering) या 'अधिमान परिकल्पना के मजबूत स्वरूप' (strong form of the preference hypothesis) पर आधारित है; अर्थात् यह विभिन्न वैकल्पिक स्थितियो के प्रति तटस्थता के दृष्टिकोण को त्याग देता है (it excludes the attitude of indifference between various alternative situations)। दूसरे शब्दों में, यह 'एक-क्रिया प्रकट-अधिमान मान्यता' (the single-act-revealed preference) पर आधारित है। सरल शब्दों में, उपर्युक्त विवरण का अर्थ है कि एक दी हुई कीमत-आय स्थिति (price-income situation) के अन्तर्गत उपभोक्ता केवल एक ही संयोग (only one or single combination) को चुनता है।

(iv) यह 'सामंजस्य' (*consistency*) तथा 'संक्रमकता' (transitivity) की मान्यताओ पर आधारित है। वास्तव मे 'सामंजस्य जाँच' (consistency test) 'मजबूत-क्रम-परिकल्पना' ('strong ordering' hypothesis)) में छिपी हुई (hidden) है। सामंजस्य मान्यता (consistency assumption) का अर्थ है : **"चुनाव सम्बन्धी व्यवहार के कोई भी ऐसे दो अवलोकन** (observations) **नहीं होते जो कि एक व्यक्ति के अधिमान के बारे में परस्पर-विरोधी लक्षण** (conflicting evidence) **प्रदान करें।"**[3] उदाहरणार्थ, यदि एक स्थिति मे एक व्यक्ति वस्तु B की तुलना मे वस्तु A को चुनता है तो किसी भी अन्य स्थिति में, जिसमें कि A और B दोनों मौजूद हैं, वह वस्तु A की तुलना में वस्तु B को नही चुन सकता यदि उसके व्यवहार में 'सामंजस्य' (consistency) है।[4] चूंकि यहाँ पर तुलना दो स्थितियों के बीच है, इसलिए ऐसे 'सामंजस्य' को हिक्स **'दो पदों का सामंजस्य'** (*two term consistency*) कहते हैं।

'संक्रमकता' (*transitivity*) **'तीन पदो के सामंजस्य'** (*three term consistency*) से सम्बन्धित होती है; इसका अर्थ है : यदि A पसन्द किया जाता है B के मुकाबले में, तथा B पसन्द किया जाता है C के मुकाबले मे, तो उपभोक्ता A को पसन्द करेगा C के मुकाबले मे।

---

[2] "The logical theory of demand derives from three bases : marginal utility hypothesis, indifference preference hypothesis, and revealed-preference hypothesis." Thus, revealed-preference theory can be said as 'the third root of the logical theory of demand.'

[3] "No two observations of choice behaviour are made which provide conflicting evidence to the individual's preference."

[4] For example, if an individual chooses A rather than B in a particular instance, then he cannot (consistently) choose B rather than A in any other instance in which A and B both are present.

स्पष्ट है कि यदि उपभोक्ता वैकल्पिक (alternative) स्थितियों के बीच सामंजस्यपूर्ण चुनाव (consistent choice) कर सके तो इसके लिए 'सामजस्य या सक्रमकता' (consistency or transitivity) की मान्यता आवश्यक है।

(v) एक व्यक्ति को एक वस्तु के खरीदने के लिए राजी (induce) किया जाना सम्भव है यदि उसकी कीमत पर्याप्त मात्रा मे कम कर दी जाती है।

3. प्रकट अधिमान सिद्धान्त के विचार की व्याख्या (Explanation of the basic idea of revealed preference theory)

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त एक सरल विचार (simple idea) पर आधारित है। जब एक उपभोक्ता वस्तुओं के किसी एक विशेष सयोग (combination or basket) को खरीदने का निर्णय करता है, तो ऐसा वह दो कारणों से करेगा या तो उपभोक्ता इस विशेष सयोग को दूसरे सयोग *की तुलना मे अधिक पसन्द करता है, अथवा यह विशेष संयोग दूसरे सयोग की तुलना मे अधिक सस्ता* है। माना कि उपभोक्ता वस्तुओ के संयोग B की तुलना मे सयोग A को खरीदता है। केवल इतनी सूचना के आधार पर यह कहना उचित नही है कि उपभोक्ता B की तुलना मे A को पसन्द करता है। यह सम्भव है कि उपभोक्ता महँगे होने के कारण संयोग B को नही खरीद सकता है और इसलिए संयोग A को खरीदता है। यदि कीमत-सूचना दी हुई है तो हम एक अधिक निश्चित कथन (statement) दे सकते हैं। यदि संयोग A, सयोग B की तुलना मे, अधिक महँगा है और उपभोक्ता सयोग A को खरीदता है, तो ऐसा वह इसलिए करता है कि वह सयोग A को अधिक पसन्द करता है। ऐसी स्थिति मे हम यह कह सकते है कि B की तुलना मे A को 'प्रकट रूप से पसन्द किया गया है', अथवा A की तुलना मे B को 'प्रकट रूप से निम्न कोटि का समझा गया है'।[5]

प्रकट-अधिमान के विचार को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया गया है। माना X तथा Y दो वस्तुएं हैं; उनकी कीमतें, तथा उपभोक्ता की आय दी हुई हैं, इनके आधार पर उपभोक्ता की कीमत-रेखा LM खीची गयी है। दूसरे शब्दो मे, कीमत-रेखा LM दी हुई कीमत-आय स्थिति (given price-income situation) को बताती है। उपभोक्ता कीमत-रेखा LM पर वस्तु X तथा Y के किसी भी संयोग या पेकिट को, जैसे A, B या C खरीद सकता है; या कीमत-रेखा के नीचे किसी भी पेकिट (जैसे, E, F या G) को खरीद सकता है। दूसरे शब्दो मे त्रिकोण (triangle) LOM 'उपभोक्ता के चुनाव त्रिकोण' (*consumer's choice triangle*) को बताता है। माना कि उपभोक्ता पेकिट या सयोग A को वास्तव में खरीदता है (अर्थात् उसका चुनाव करता है); दूसरे शब्दों मे, A उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति को बताता है। परिभाषा के अनुसार, LM रेखा पर कोई भी अन्य बिन्दु (जैसे C या B) A के बराबर ही महँगा (equally expensive) है। कीमत रेखा
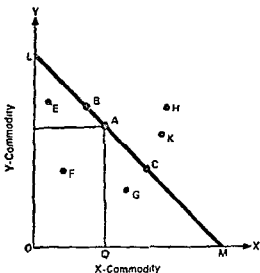
चित्र 1

[5] We may say in this situation that A has been *revealed preferred* to B, or B is *revealed inferior* to A.

LM के नीचे प्रत्येक बिन्दु (जैसे, E, F या G) वस्तुओं की कम मात्राओं (smaller amounts) को बताते हैं अपेक्षाकृत किसी भी बिन्दु के जो कि LM रेखा के ऊपर है; इसका अभिप्राय है कि ऐसे नीचे के बिन्दु (lower points), A की तुलना में, कम महँगे (less expensive) हैं (अर्थात्, सस्ते हैं)।

चूंकि उपभोक्ता संयोग A को वास्तव में खरीदता है अपेक्षाकृत किसी भी अन्य संयोग के (जो कि चाहे 'कम महँगे' हैं, जैसे E, F तथा G; या 'एक समान महँगे' हैं, जैसे B और C), तो इसका अभिप्राय है कि LM रेखा के ऊपर या उसके नीचे कोई भी बिन्दु, बिन्दु A की तुलना में, प्रकट रूप से निम्न कोटि का (inferior) समझा जाता है, अथवा यह कहिए कि A को चुनने में उपभोक्ता, अन्य सभी सम्भव संयोगों के ऊपर, संयोग A के लिए अपने अधिमान (preference) को प्रकट (reveal) करता है; अर्थात् 'चुनाव अधिमान को प्रकट करता है' (choice reveals preference)। चूंकि LM रेखा के ऊपर प्रत्येक बिन्दु (जैसे, H या K), बिन्दु A की तुलना में अधिक महँगा है (अर्थात् दी हुई आय से उपभोक्ता उनको नहीं खरीद सकता है), तो हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये बिन्दु, बिन्दु A की तुलना में, प्रकट रूप से निम्न कोटि के नहीं समझे जा सकते।[6]

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'मजबूत क्रम' (strong ordering) या 'अधिमान परिकल्पना के मजबूत स्वरूप' (strong form of preference hypothesis) पर आधारित है। इसका अभिप्राय है कि अपने अधिमान के क्रम (scale of preference) में उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को एक निश्चित क्रम (definite ordering) प्रदान करता है। चित्र 1 में अन्य सभी वैकल्पिक (alternative) संयोगों के ऊपर उपभोक्ता संयोग A को चुनता है; अर्थात् उपभोक्ता विभिन्न वैकल्पिक संयोगों के प्रति तटस्थ (indifferent) नहीं होता, बल्कि वह संयोग A के लिए, अन्य सभी संयोगों के ऊपर, एक निश्चित अधिमान को प्रकट करता है। अतः, "**मजबूत क्रम विभिन्न वैकल्पिक स्थितियों के बीच तटस्थता के सम्बन्ध को छोड़ देता है।**"[7]

परन्तु जे. आर. हिक्स अपनी पुस्तक *Revision of Demand Theory* में 'मजबूत क्रम' (*strong ordering*) को स्वीकार नहीं करते हैं बल्कि 'कमजोर क्रम' (*weak ordering*) या 'अधिमान परिकल्पना के कमजोर स्वरूप' (*weak form of the preference hypothesis*) को अधिक सही मानते हैं। हिक्स एक और अतिरिक्त मान्यता (an additional assumption) को मानकर चलते हैं और वह है कि एक उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक मात्रा के संयोग को, वस्तुओं की कम मात्रा के संयोग की तुलना में, सदैव पसन्द करेगा। हिक्स के 'कमजोर क्रम' के अन्तर्गत 'चुनाव के त्रिकोण' (choice of triangle) के अन्दर सभी वैकल्पिक संयोगों की तुलना में संयोग A को पसन्द किया जायेगा, परन्तु कीमत-रेखा पर विभिन्न बिन्दुओं (अर्थात् विभिन्न संयोगों) की तुलना में उपभोक्ता A को या तो पसन्द करेगा या A के प्रति तटस्थ (indifferent) रहेगा। 'मजबूत क्रम' तथा 'कमजोर क्रम' के बीच अन्तर को प्रो. हिक्स के शब्दों में बताया जा सकता है :

---

[6] As the consumer actually purchased A rather than any of the other combinations, (which are either less expensive such as E, F and G, or equally expensive, such as B and C) it means that any point on or below LM is *revealed inferior* to A; or in choosing A the consumer reveals his preference for A over all other possible combinations; - that is, choice reveals preference. Further, since any point above LM (such as H or K) is more expensive than A (that is, the consumer cannot purchase them with the given income), we should note that none of these can be revealed inferior to A.

[7] Thus, "strong ordering excludes the relation of indifference between various alternative situations."

"मजबूत क्रम के अन्तर्गत चुनी हुई स्थिति, त्रिकोण के अन्दर और उसके ऊपर सभी अन्य स्थितियों की तुलना में, पसन्द की गयी दिखायी जाती है; जबकि कमजोर क्रम के अन्तर्गत चुनी हुई स्थिति, त्रिकोण के अन्दर सभी स्थितियो की तुलना मे पसन्द की जाती है परन्तु उसी रेखा (same boundary) पर अन्य स्थितियो की तुलना में वह तटस्थ हो सकती है।"[8]

यह भी ध्यान देने की बात है कि सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान एक 'सांख्यिकीय विचार' (*statistical concept*) नही है। सांख्यिकीय विचार के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता को किसी एक विशेष संयोग के प्रति चुनाव करने की क्रिया का कई बार प्रयोग करने का अवसर या आज्ञा दी जाती है; अर्थात, उपभोक्ता इस विशेष संयोग को, वैकल्पिक (alternative) संयोग के मुकाबले मे, बार-बार (more frequently) चुनता है। प्रकट अधिमान के इस सांख्यिकीय विचार की तुलना में सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान वैकल्पिक सयोगो के प्रति तटस्थता के सम्बन्ध (relation of indifference) को त्याग देता है और वह 'चुनाव की एक क्रिया' (single act of choice) पर आधारित होता है जिसमें कि उपभोक्ता केवल एक विशेष संयोग (माना A) को खरीदता है।[9] इस प्रकार "सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त मे तटस्थता का त्याग केवल एक सुविधा की बात नही है बल्कि उनकी (अर्थात् सेम्युलसन की) रीति-विधान (methodology) की जरूरतो की अनिवार्यता के कारण है।"[10]

4. प्रकट-अधिमान सिद्धान्त तथा सूचनांक (Revealed Preference Theory and Index Number)

प्रकट अधिमान सिद्धान्त को सूचनांक के रूप (index number form) मे भी व्यक्त (express) किया जा सकता है। हम दो समय-अवधियो (two periods) को लेते हैं—समय-अवधि 1 तथा समय-अवधि 2। माना कि समय-अवधि 1 तथा समय-अवधि 2 मे Q_1 तथा Q_2 क्रमशः दो वस्तुओ के संयोग को बताते हैं; इसी प्रकार दोनो अवधियों में क्रमशः P_1 और P_2 कीमत-समूहो (price sets) को बताते हैं।

माना कि उपभोक्ता Q_2 की तुलना में Q_1 को पसन्द करता है तो इस कथन को सूचनांक सूत्र (index number formula) द्वारा इस प्रकार बताया जाता है—$\Sigma P_1Q_1 \geqslant \Sigma P_1Q_2$; जबकि ΣP_1Q_1 वस्तुओं के संयोग Q_1 पर कुल व्यय को बताता है और ΣP_1Q_2 वस्तुओ के संयोग Q_2 पर कुल व्यय को बताता है जबकि कीमत P_1 होती है। $\Sigma P_1Q_1 \geqslant \Sigma P_1Q_2$; की दशा का अभिप्राय है कि संयोग Q_1 पर किया गया कुल व्यय संयोग Q_2 को खरीदने के लिए भी पर्याप्त था; अर्थात् उपभोक्ता के लिए संयोग Q_2 एक सम्भावित विकल्प (possible alternative) था, परन्तु उपभोक्ता वास्तव मे Q_1 को खरीदता है, Q_2 को नही; इस प्रकार Q_2 की तुलना मे Q_1 के प्रति अधिमान (preference) प्रकट (reveal) किया जाता है।

---

[8] "Under strong ordering the choosen position is shown to be preferred to all other positions *in* and *on* the triangle, while under weak ordering it is preferred to all positions within the triangle, but may be indifferent to other positions on the same boundary as itself."

[9] It is to be further noted that Samuelson's revealed preference is *not a statistical* concept. To be a statistical concept, it is necessary that the consumer is permitted to exercise his choice for a particular combination A several times, i.e., the consumer chooses a particular combination more frequently out of the alternatives open to him. In contrast to this statistical concept of revealed preference, Samuelson's revealed preference rejects the 'indifference' amongst the various combinations open to the consumer and it is based on a 'single act of choice' in which the consumer buys a particular combination of good A.

[10] Thus, "the rejection of 'indifference' in Samuelson's theory is not a matter of convenience, but dictated by the requirements of his methodology."

"परन्तु सूचनांक सूत्र केवल एक रूपान्तर-मात्र (tautological) है और उसका कोई नया या भिन्न आर्थिक अर्थ नहीं है, यह केवल कुछ प्रकार की रचनाओं (constructions) के लिए अधिक सुविधाजनक हो सकता है।"[11]

उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत प्रमेय
(FUNDAMENTAL THEOREM OF CONSUMER THEORY)
अथवा
सेम्युलसन का मांग प्रमेय
(SAMUELSON'S DEMAND THEOREM)

1. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल द्वारा प्रस्तुत किये गये परम्परागत (traditional) माँग के नियम को प्रकट-अधिमान सिद्धान्त द्वारा निकाला जा सकता है। मार्शल के माँग के नियम का कथन इस प्रकार दिया जा सकता है : यदि आय और अन्य कीमतें स्थिर रहती हैं, तो एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि उसकी माँगी गयी मात्रा में कमी उत्पन्न करेगी; तथा इसके विपरीत की स्थिति भी सही होगी। संक्षेप में, माँग का नियम 'कीमत' तथा 'माँगी गयी मात्रा' में उलटा सम्बन्ध (inverse relation) बताता है।[12]

2. 'आधारभूत प्रमेय' का कथन (Statement of the 'Fundamental Theorem')

सेम्युलसन 'धनात्मक माँग की आय लोच' (positive income elasticity of demand) की मान्यता लेकर चलते हैं; इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता की आय मे वृद्धि (या कमी) के साथ वस्तु की माँगी गयी मात्रा में भी वृद्धि (या कमी) होगी। धनात्मक माँग की आय लोच की मान्यता के आधार पर सेम्युलसन 'मार्शल के माँग के नियम' (Marshall's Law of Demand) या 'माँग प्रमेय' (demand theorem) को निकालते हैं। सेम्युलसन अपने 'माँग प्रमेय' को 'उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत प्रमेय' (*fundamental theorem of consumption theory*) कहते हैं। वे 'आधारभूत प्रमेय' का कथन इस प्रकार देते हैं :

"एक वस्तु (सरल या संयुक्त) जिसकी माँग में सदैव वृद्धि होती है जबकि केवल द्राव्यिक आय में वृद्धि हो, तो ऐसी वस्तु की माँग निश्चित रूप से संकुचित (shrink) होगी जबकि केवल उसकी कीमत में वृद्धि होती है।"[13]

ऊपर दिये गये प्रमेय (theorem) के कथन का पहला भाग—अर्थात् 'एक वस्तु जिसकी माँग में सदैव वृद्धि होती है जबकि केवल द्राव्यिक आय मे वृद्धि हो'—'आय' और 'माँग' में सीधा या धनात्मक सम्बन्ध (direct or positive relation) बताता है; अर्थात्, माँग की धनात्मक आय लोच (positive income elasticity of demand) की मान्यता को बताता है। प्रमेय के कथन का दूसरा भाग माँग के नियम को अर्थात् 'कीमत और माँग के उलटे सम्बन्ध' को बताता है; परन्तु इस सम्बन्ध के होने के लिए सेम्युलसन माँग की धनात्मक आय लोच को आवश्यक दशा (necessary condition) मानते हैं।

अतः 'आधारभूत प्रमेय' (Fundamental Theorem) को निम्न प्रकार से दूसरे शब्दों में भी बताया जा सकता है :

'धनात्मक आय लोच का अभिप्राय है ऋणात्मक कीमत लोच।' ('Positive

---

[11] "However, the index number formula is only tautological and has no additional economic meaning except that for some constructions it may be more convenient."

[12] If income and other prices are held constant, the increase in the price of a good must cause a decrease in the amount of it demanded, and vice versa.

[13] "Any good (simple or composite) that is known always to increase in demand when money income alone rises must definitely shrink in demand when its price alone rises."

income elasticity implies negative price elasticity.')[14]

3. आधारभूत प्रमेय का रेखागणित सबूत (Geometrical Proof of the Fundamental Theorem)

चित्र 2 द्वारा हम 'आधारभूत प्रमेय' की व्याख्या करते हैं। दो वस्तुओं X तथा Y को लिया गया है। वस्तु Y के शब्दों में उपभोक्ता की आय OL है तथा वस्तु X के शब्दो मे OM है। दूसरे शब्दों में, यदि उपभोक्ता अपनी समस्त आय को वस्तु X पर व्यय करता है तो वह X की OM मात्रा खरीद सकता है; और यदि वह अपनी समस्त आय को वस्तु Y पर व्यय करता है तो वह Y की OL मात्रा खरीद सकता है। अतः LM कीमत-रेखा है जो कि शुरू की (original) कीमत-आय की स्थिति को बताती है। LM रेखा पर तथा त्रिकोण OML के अन्दर सभी संयोग (combinations) उपभोक्ता को प्राप्य हैं या उपभोक्ता की पहुँच (reach) में हैं और वह इनमें से किसी भी संयोग को खरीद सकता है। माना कि उपभोक्ता X तथा Y के उस सयोग को खरीदते हुए देखा जाता है जो कि LM रेखा पर बिन्दु A बताता है। 'चुनाव अधिमान को प्रकट करता है' (*choice reveals preference*), इस बात के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक दी हुई कीमत-आय की स्थिति के अन्तर्गत X तथा Y के सभी प्राप्य संयोगो (available combinations) के ऊपर संयोग A के प्रति अधिमान प्रकट किया जाता है; अर्थात, चित्र 2 में, क्षेत्रफल (area) OML के अन्दर सभी बिन्दुओं की तुलना मे A को पसन्द किया जाता है।
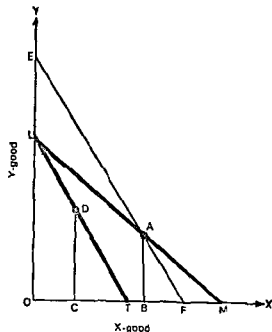
चित्र 2

माना कि वस्तु X की कीमत बढ़ती है, जबकि वस्तु Y की कीमत समान रहती है; तो नयी कीमत-आय रेखा LT होगी। अब हमारा उद्देश्य वस्तु X की कीमत में वृद्धि का उपभोक्ता की माँग पर प्रभाव को मालूम करना है, जबकि हम यह मान कर चलते हैं कि आय में परिवर्तन के साथ उपभोक्ता की माँग में सीधा परिवर्तन (direct variation) होता है; अर्थात माँग की धनात्मक आय लोच (positive income elasticity of demand) की मान्यता को ध्यान में रखा जाता है।[15]

नयी कीमत-आय स्थिति, जो कि LT रेखा बताती है, के अन्तर्गत उपभोक्ता प्रारम्भिक (original) संयोग A को नही खरीद सकता क्योंकि अब वह उपभोक्ता की पहुँच के बाहर हो जाता है। अब हम उपभोक्ता की क्षतिपूर्ति (compensation) कुछ अतिरिक्त द्राव्यिक आय (extra

[14] ऋणात्मक कीमत लोच (negative price elasticity) कीमत और माँगी गयी मात्रा मे उलटे सम्बन्ध (inverse relation) को बताती है।

[15] 'It is now our object to deduce the effect of a rise in the price of X on the consumer's demand for it, assuming that the consumer's demand varies directly with his income, that is, the assumption of positive income elasticity of demand is kept in mind.

money income) देकर करते हैं ताकि उपभोक्ता वस्तु X के प्रारम्भिक (original) संयोग A को, X की बढ़ी हुई कीमत के बाद भी, खरीद सके। चित्र में ऐसा हम एक काल्पनिक कीमत रेखा EF खींच कर करते हैं, EF रेखा प्रारम्भिक बिन्दु A से गुजरती है तथा नयी कीमत-रेखा LT के समानान्तर (parallel) खींची जाती है। इस काल्पनिक कीमत-रेखा EF को खींचकर हम अतिरिक्त द्राव्यिक आय (Y के शब्दों मे) मालूम कर लेते हैं जो कि चित्र में LE है। इस अतिरिक्त द्राव्यिक आय LE को, जो कि उपभोक्ता की क्षतिपूर्ति करती है और प्रारम्भिक संयोग A की खरीद सम्भव बनाती है, सेम्युलसन 'अधिक-क्षतिपूर्ति प्रभाव' (*Over-Compensation Effect*) कहते हैं; हिक्स इसको 'लागत-अन्तर' (*Cost-Difference*) कहते हैं।

काल्पनिक कीमत-आय की नयी स्थिति (जो कि EF रेखा बनाती है) के अन्तर्गत उपभोक्ता के चुनाव का त्रिकोण OFE है। अब हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि इस स्थिति के अन्तर्गत उपभोक्ता किस संयोग को चुनेगा। [उपभोक्ता के व्यवहार के सम्बन्ध में 'चुनाव का सामंजस्य' (consistency of choice)—यह प्रकट अधिमान सिद्धान्त की एक मुख्य मान्यता है जिसे ध्यान मे रखना चाहिए।] यदि उपभोक्ता अपने व्यवहार में 'सामंजस्य' (consistency) रखता है तो वह बिन्दु A के नीचे कीमत-रेखा EF के भाग AF पर कोई बिन्दु नहीं चुनेगा। AF पर सभी बिन्दु उपभोक्ता के प्रारम्भिक चुनाव के त्रिकोण (consumer's original triangle of choice) OML के अन्दर मौजूद हैं और यदि वह बिन्दु A के नीचे AF पर कोई भी बिन्दु चुनता है तो उसके चुनाव का व्यवहार 'असामंजस्यपूर्ण' (inconsistent) हो जायेगा। प्रारम्भिक चुनाव के त्रिकोण OML के अन्दर व उसके ऊपर सभी बिन्दुओं की तुलना में उपभोक्ता पहले ही अपने अधिमान को प्रकट (reveal) कर चुका है; अपने चुनाव में 'सामंजस्य' बनाये रखने के लिए वह बिन्दु A के नीचे AF पर नहीं जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अब ऐसे संयोग को नही चुन सकता जिससे उपभोक्ता को वस्तु X की अधिक मात्रा प्राप्त हो सके।

अभी हम देख चुके हैं कि उपभोक्ता बिन्दु A के नीचे कीमत-रेखा EF के भाग AF पर कोई बिन्दु नहीं चुन सकता। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता को 'अतिरिक्त द्राव्यिक आय' (extra money income), जो कि चित्र में EL है, देने के बाद वह या तो बिन्दु A चुन सकता है या बिन्दु A के बायें ओर काल्पनिक कीमत-रेखा EF के भाग AE पर कोई बिन्दु चुन सकता है। भाग AE पर किसी भी बिन्दु को चुनने में उपभोक्ता का व्यवहार 'असामंजस्यपूर्ण' (inconsistent) नहीं होगा क्योंकि प्रारम्भिक कीमत-आय रेखा LM के सन्दर्भ (reference) में AE पर सभी बिन्दु उपभोक्ता की पहुँच (reach) के बाहर थे। यदि उपभोक्ता प्रारम्भिक संयोग A को चुनता है तो इसका अभिप्राय है कि वस्तु X की वही समान मात्रा (चित्र में OB) खरीदता है; यदि वह बिन्दु A के बायें ओर भाग AE पर कोई बिन्दु चुनता है तो इसका अभिप्राय है कि वह वस्तु X की कम मात्रा खरीदता है (अपेक्षाकृत वस्तु X की प्रारम्भिक मात्रा OB के)।

अतः हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि यदि वस्तु X की कीमत में वृद्धि होती है और यदि उपभोक्ता को कीमत में वृद्धि की क्षतिपूर्ति (compensation) अतिरिक्त द्राव्यिक आय देकर कर दी जाती है, तो उपभोक्ता या तो वस्तु X की वही मात्रा खरीदेगा अथवा पहले की तुलना में वस्तु X की कम मात्रा खरीदेगा। अब यदि दी गयी अतिरिक्त द्राव्यिक आय वापस ले ली जाती है (अर्थात् कोई (over-compensation effect नहीं रह जाता है), तो उपभोक्ता के पास प्रारम्भिक द्राव्यिक आय रह जायेगी परन्तु वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत भी बनी रहेगी; ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता कीमत-रेखा LT का सामना करेगा और उपभोक्ता की वस्तु X की खरीद बिन्दु B (जो कि X-axis पर है) के बायें की तरफ होगी—अर्थात वह कीमत रेखा LT के किसी बिन्दु, माना D, पर होगा, जहाँ पर वह वस्तु X की OC मात्रा खरीदेगा जो कि कीमत में वृद्धि होने से पहले वस्तु X की मात्रा OB से

कम है। यह तभी होगा जबकि हम यह मान लेते हैं कि द्राव्यिक आय में कमी होने के साथ वस्तु X की माँग में भी कमी होगी, *अर्थात् 'माँग की धनात्मक आय लोच'* (*positive income elasticity* of demand) की मान्यता को स्वीकार किया जाता है।

अतः, माँग की धनात्मक आय लोच की मान्यता के आधार पर, मार्शल के माँग नियम (अर्थात् कीमत-माँग के उलटे सम्बन्ध) को, वस्तु की कीमत मे वृद्धि के सन्दर्भ में, सिद्ध कर दिया गया है। इसी प्रकार वस्तु की कीमत मे कमी के सन्दर्भ में भी कीमत-माँग के उलटे सम्बन्ध को, पहले की तुलना में उलटे तर्क (reverse logic) का प्रयोग करके, सिद्ध किया जा सकता है।

4. **आधारभूत प्रमेय की 'स्पष्ट' तथा 'छिपी हुई' मान्यताएँ** (Explicit and Implicit Assumptions behind the Fundamental Theorem)

'आधारभूत प्रमेय' चार मान्यताओ पर आधारित है; दो मान्यताएँ 'स्पष्ट' (explicit) हैं तथा शेष दो 'छिपी हुई' (implicit) हैं।

'स्पष्ट मान्यताओ' को पहले बताया जा चुका है, सुविधा के लिए उन्हें दुबारा यहाँ बताते हैं; वे हैं : (i) 'माँग की धनात्मक आय लोच' (positive income elasticity of demand) तथा (ii) 'चुनाव का सामंजस्य' (consistency of choice)।

दो 'छिपी हुई मान्यताएँ,' जिन्हे पहले स्पष्ट रूप से नही बताया गया है, इस प्रकार हैं : (i) यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता वस्तुओ के एक बड़े सयोग को छोटे संयोग की तुलना में पसन्द करता है। दूसरे शब्दो मे, उपभोक्ता को कीमत-रेखा पर एक संयोग को चुनने की आज्ञा रहती है, परन्तु 'चुनाव के त्रिकोण' के अन्दर से किसी सयोग को चुनने की आज्ञा नही रहती है।[16] (ii) प्रत्येक कीमत-आय स्थिति मे उपभोक्ता वस्तुओं के केवल एक सयोग को चुन सकता है।[17]

5. **निष्कर्ष** (Conclusion)

दो 'स्पष्ट' तथा दो 'छिपी हुई' मान्यताओ के आधार पर सेम्युलसन का 'आधारभूत प्रमेय' सिद्ध कर दिया गया है। मार्शल के माँग के नियम के कीमत-माँग के उलटे सम्बन्ध (inverse relation) को, माँग की धनात्मक आय लोच की मान्यता के आधार पर, निकाला जाता है।

सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का मूल्यांकन
(EVALUATION OF SAMUELSON'S REVEALED PREFERENCE THEORY)

माँग के प्रारम्भिक सिद्धान्तो, जैसे मार्शल का माग का उपयोगिता सिद्धान्त (जो कि गणनावाचक उपयोगिता अर्थात cardinal utility पर आधारित है) तथा प्रो. हिक्स का माँग का तटस्थता-वक्र विश्लेषण सिद्धान्त (जो कि क्रमवाचक उपयोगिता अर्थात ordinal utility पर आधारित है) के ऊपर सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त कुछ गुण अवश्य रखता है। परन्तु सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त भी दोषो व कमजोरियो से मुक्त (free) नहीं है। नीचे हम प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के गुण व दोषों की विवेचना करते हुए उसका मूल्याकन प्रस्तुत करते हैं।

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के गुण (Merits of the Revealed Preference Theory)

1. सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का एक बड़ा गुण है कि यह **माँग सिद्धान्त के प्रति अर्थमितीय दृष्टिकोण रखता है** (*it has econometric approach to theory of demand*); इसका अर्थ है कि यह उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार के अवलोकन (observation of actual behaviour)

---

[16] It is assumed that "the consumer prefers a larger collection of goods to a smaller," in other words, the consumer is always allowed to choose a combination on the price line and he is never allowed to choose a combination from within a choice triangle.

[17] He is shown to choose only one combination or collection of goods in every price-income situation.

पर आधारित है, और इसलिए यह वास्तविकता के अधिक निकट है। प्रो. हिक्स इस बात को स्वयं स्वीकार करते हैं, उनके शब्दों में,

> "इसमें कोई सन्देह नही है कि अर्थमिति अब आर्थिक अनुसंधान का एक मुख्य रूप है; एक सिद्धान्त जो कि अर्थमिति-शास्त्रियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है उस सीमा तक वह उस सिद्धान्त से श्रेष्ठ है जिसका प्रयोग अर्थमिति-शास्त्रियों द्वारा नही किया जा सकता है।"[18]

दूसरे शब्दों में, प्रारम्भिक सिद्धान्तों द्वारा उपभोक्ता के व्यवहार के सम्बन्ध में बताये गये 'मनोवैज्ञानिक या अन्तर्निरीक्षणात्मक व्याख्या' (psychological or introspective explanation) को सेम्युलसन त्याग देते हैं। सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'वैज्ञानिक तथा आचरणात्मक दृष्टिकोण' (scientific and behaviouristic approach) रखता है क्योंकि यह उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार के अवलोकन पर आधारित है। संक्षेप मे, 'विषय-सामग्री' (content) की दृष्टि से सेम्युलसन का सिद्धान्त 'वास्तविक तथा अनुभवआश्रित' (realistic and empirical) है, इसका प्रयोग अर्थमिति-शास्त्रियो द्वारा किया जा सकता है।

2. सेम्युलसन का सिद्धान्त अपेक्षाकृत कम मान्यताओं पर आधारित है और यह प्रारम्भिक सिद्धान्तों (earlier theories) की दो अवास्तविक मान्यताओं का त्याग कर देता है जो कि इस प्रकार हैं—(i) उपभोक्ता के उपयोगिता-अधिकतम करने के व्यवहार (या विवेकपूर्ण व्यवहार) की मान्यता, तथा (ii) निरन्तरता की मान्यता।[19] अब हम प्रारम्भिक सिद्धान्तों की इन दोनों अवास्तविक मान्यताओं का अलग-अलग नीचे थोड़ा विवेचन देते हैं।

उपयोगिता-अधिकतम करने की मान्यता : मार्शल का माँग का उपयोगिता सिद्धान्त तथा हिक्स का तटस्थता-वक्र सिद्धान्त दोनो ही इस मान्यता पर आधारित हैं कि उपभोक्ता सदैव ही पूर्ण विवेकपूर्णता (perfect rationality) के साथ कार्य करता है, अर्थात वह सदैव अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। परन्तु वास्तविक जीवन में, अनेक अवसरों पर, एक उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम नही करता है। इस प्रकार से उपयोगिता-अधिकतम करने की मान्यता सदैव वास्तविक (realistic) नहीं होती है, और सेम्युलसन ने अपने प्रकट अधिमान सिद्धान्त में इस मान्यता को त्याग दिया। सेम्युलसन अपने सिद्धान्त को 'सामंजस्य मान्यता' (consistency assumption) पर आधारित करते हैं जो कि वास्तविक जीवन के अधिक निकट हैं।

'निरन्तरता' (Continuity) मान्यता : माँग का तटस्थता-वक्र सिद्धान्त 'निरन्तरता' की मान्यता पर अर्थात 'वस्तुओं के पूर्ण विभाज्य होने' (perfect divisibility of commodities) की मान्यता पर आधारित है, और तटस्थता रेखाएं 'निरन्तर या अभंग रेखाएं' (continuous curves) होती हैं। इसका अभिप्राय है कि एक तटस्थता-वक्र रेखा दो वस्तुओं के सभी सम्भव संयोगों को बताती है चाहे वे सभी संयोग बाजार में वास्तव मे प्राप्य हो या न हों। इस प्रकार निरन्तरता की मान्यता अवास्तविक है। सेम्युलसन इस अवास्तविक मान्यता को त्याग देते हैं और अपने सिद्धान्त को

[18] "There can be no doubt that econometrics is now a major form of economic research; a theory which can be used by econometrists is to that extent a better theory than one which cannot."

परन्तु यह ध्यान रहे कि प्रो. हिक्स, प्रो. सेम्युलसन द्वारा अपनाये गये रीति-विधान को बिलकुल उसी रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। (But it should be kept in mind that Hicks does not follow exactly the methodology of Samuelson.)

[19] Samuelson's theory is based on relatively fewer assumptions, and it rejects the two unrealistic assumptions of earlier theories which are: (i) The assumption of utility—maximisation behaviour (or rational behaviour of a consumer), and (ii) The assumption of continuity.

'अनिरन्तरता' (*discontinuity*) पर आधारित करते हैं जो कि वास्तविक जगत-स्थिति (real world situation) को बताती है। हिक्स भी इस बात को अपने संशोधित मांग सिद्धान्त (revised demand theory) में स्वीकार करते हैं। यद्यपि हिक्स 'अनिरंतरता' या वस्तुओं की 'अविभाज्यता' की मान्यता से सहमति रखते हैं परन्तु वह संयुक्त वस्तु द्रव्य (composite good money) के सम्बन्ध में 'विभाज्यता' की कुछ मात्रा को बनाये रखते हैं, और इसे वे छोटी-छोटी इकाइयों में या सूक्ष्म रूप से विभाज्य मानते हैं।[20]

[निःसन्देह, प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के ग्राफिक प्रस्तुतीकरण (graphical presentation) के लिए एक अभंग या निरंतर कीमत-आय रेखा (continuous price-income line) खींची जाती है और उपभोक्ता इस रेखा के भीतर या इस रेखा पर कोई एक संयोग चुनता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यहाँ पर निरंतरता की मान्यता मौजूद है क्योंकि प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तुओं के 'वास्तव में प्राप्य संयोगों' के बीच में से ही चुनाव करता है, वह वस्तुओं के सभी सम्भव तथा काल्पनिक (imaginary) संयोगों के बीच में से चुनाव नहीं करता है।]

प्रकट अधिमान सिद्धान्त के दोष या कमजोरियाँ (Deffects or Weaknesses of Revealed preference theory)

1. यह सिद्धान्त उपभोक्ता के व्यवहार में 'तटस्थता' की सम्भावना को स्वीकार नहीं करता है; परन्तु प्रो. आर्मस्ट्रांग के अनुसार यह बात वास्तविक अनुभव के विपरीत है।[21] सेम्युलसन का सिद्धान्त 'मजबूत क्रम परिकल्पना' (strong ordering hypothesis) पर आधारित है; इसका अभिप्राय है कि वस्तुओं के संयोग के सम्बन्ध में उपभोक्ता की पसन्द चुनाव-की-एक ही-क्रिया (a single act of choice) में व्यक्त या प्रकट होती है; वस्तुओं के किन्हीं भी दो संयोगों के बीच में 'तटस्थता' (indifference) की कोई भी सम्भावना नहीं होती है।

परन्तु वास्तविक जीवन में वस्तुओं के कुछ संयोगों के बीच उपभोक्ता के सामने 'तटस्थता' की सम्भावना रहती है। अवलोकनों (observations) की एक बड़ी संख्या में से पसन्द या अधिमान का निर्णय किया जाता है, और यदि ऐसा है, तो तटस्थता की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। एक उपभोक्ता A तथा B के बीच तटस्थ होगा यदि अवलोकनों की एक बड़ी संख्या दोनों संयोगों में से किसी एक के लिए एक निश्चित पसन्द नहीं बताती है, अतः वास्तविक जीवन में तटस्थता की सम्भावना उत्पन्न होती है।[22]

यदि प्रो. आर्मस्ट्रांग के दृष्टिकोण—अर्थात, 'चुने हुए बिन्दु' (choosen point) के चारों तरफ तटस्थता के बिन्दु होते हैं—को स्वीकार कर लिया जाता है तो वह सबूत (proof), जो कि सेम्युलसन का सिद्धान्त माँग के नियम के सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है, टूट जाता है।

इस बात को चित्र 3 की सहायता से बताया जा सकता है। इस चित्र में—

(i) LM-रेखा मूल (original) कीमत-रेखा या बजट-रेखा या कीमत-आय रेखा है।

---

[20] Though Hicks agrees with the assumption of 'discontinuity' or 'indivisibility' of commodities, yet he maintains some degree of divisibility in the case of composite commodity money which is supposed to be finally divisible.

[21] It does not recognise the possibility of 'indifference' in consumer's behaviour; but, according to Prof. Armstrong, this is contrary to the actual experience.

[22] But in real life a consumer faces the possibility of indifference among some combinations of goods. The preference has to be judged from a large number of observations, and, if it is so, the possibility of indifference cannot be ruled out. A consumer will be indifferent between two combinations A and B if a large number of observations do not indicate or reveal a definite preference for any one of the two; hence, the possibility of indifference emerges in real life.

(ii) माना कि इस कीमत-आय स्थिति में उपभोक्ता संयोग A को चुनता है।

चित्र 3

(iii) माना कि वस्तु X की कीमत बढ़ती है, तो नयी बजट-रेखा या कीमत-आय रेखा LP होगी; (क्योंकि X की कीमत में वृद्धि के बाद उसकी कम मात्रा खरीदी जायेगी, जबकि Y की कीमत समान या स्थिर रहती है)।

(iv) वस्तु X की कीमत मे वृद्धि के बाद भी यदि उपभोक्ता प्रारम्भिक संयोग A को चुनना पसन्द करता है तो उसे LT के बराबर द्रव्य की अतिरिक्त मात्रा या आर्थिक सहायता (subsidy) देनी पड़ेगी।[23]

(v) आर्मस्ट्रांग के अनुसार चुने गये बिन्दु के चारो तरफ 'तटस्थता के बिन्दु' (points of indifference) होगें। चित्र 3 मे बिन्दु A *वास्तव में* चुना गया बिन्दु है; बिन्दु A के चारो तरफ बिन्दु, जैसे E तथा C (जो कि एक वृत्त यानी circle के अन्दर दिखाये गये हैं) तटस्थ (indifferent) होगें A के प्रति। अब कीमत-आय स्थिति TR के अन्तर्गत उपभोक्ता AR पर किसी भी बिन्दु C (जो कि बिन्दु A के नीचे है) को चुन सकता है AT पर किसी भी अन्य बिन्दु E (जो कि बिन्दु A के ऊपर है) के स्थान पर; ऐसा इसलिए है क्योंकि उपभोक्ता वृत्त (circle) के अन्दर संयोगों के बीच तटस्थ है। अब,
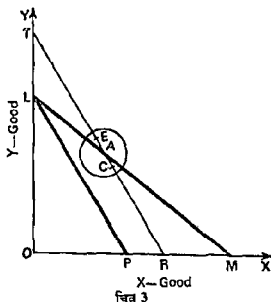
> नयी कीमत-आय स्थिति TR (जो कि वस्तु X की बढ़ी हुई या ऊँची कीमत को बताती है क्योंकि TR समानान्तर है LP के) के अन्तर्गत यदि उपभोक्ता बिन्दु C को चुनता है, तो इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदता है जबकि उसकी कीमत मे वृद्धि हो गयी है, और यह बात माँग के नियम के विपरीत है। इस प्रकार यदि आर्मस्ट्रांग के दृष्टिकोण—अर्थात, चुने हुए बिन्दु के चारों तरफ 'तटस्थता के बिन्दु' होते हैं—को स्वीकार दिया जाता है तो माँग के नियम (या उपभोग के आधारभूत प्रमेय) का सेम्युलसन द्वारा दिया गया सबूत—कि किसी वस्तु की माँग का संकुचन होता है यदि उसकी कीमत बढ़ती है—टूट जाता है।[24]

[23] दूसरे शब्दों में, नई बजट-रेखा या कीमत-आय रेखा LP के समानान्तर (parallel) एक काल्पनिक कीमत-आय रेखा TR खीचनी पड़ेगी ताकि आर्थिक सहायता (LT) को ज्ञात किया जा सके। काल्पनिक कीमत-आय रेखा TR नये कीमत-अनुपात या नयी कीमत-आय स्थिति को बतायेगी क्योंकि यह वस्तु X की कीमत मे वृद्धि के बाद नयी कीमत-आय रेखा LP के समानान्तर है।

[24] If the consumer chooses point C under price-income situation TR (which reflects the higher price of X because TR is parallel to LP), this means that the consumer buys more of X when its price has increased, and this is against the Law of Demand. Thus, if Armstrong's view point—that points of indifference exist around the choosen point—is accepted, then Samuelson's proof of the Law of Demand (or the Fundamental Theorem

2. सेम्युलसन का सिद्धान्त कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन की केवल आंशिक व्याख्या प्रदान करता है।[25] सेम्युलसन, माँग प्रमेय (demand theorem) या माँग के नियम को, धनात्मक आय लोच (positive income elasticity) की मान्यता के आधार पर निकालते हैं, और इसलिए इनका सिद्धान्त केवल आय-प्रभाव को मान्यता (recognition) देता है जो कि कीमत में एक दिये हुए परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। *परन्तु कीमत मे परिवर्तन के कारण माँग मे परिवर्तन दो बातो का परिणाम होता है*—आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव; सेम्युलसन का सिद्धान्त प्रतिस्थापन प्रभाव की उपेक्षा (या उसको ignore) करता है और आय-प्रभाव पर विचार करता है। इस प्रकार सेम्युलसन का सिद्धान्त माँग की केवल आंशिक व्याख्या (partial explanation) प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त आलोचना की कड़ाई (rigour) कम हो जाती है यदि हम निम्नलिखित दो बातो को ध्यान मे रखें—

(i) सेम्युलसन का प्रकट अधिमान सिद्धान्त उपभोक्ता-व्यवहार के वास्तविक अवलोकलन पर आधारित है, अर्थात यह सिद्धान्त स्वभाव मे अनुभवआश्रित (empirical) है। अत अनुभवआश्रित दृष्टिकोण से (परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से नही) प्रतिस्थापन प्रभाव के छोड दिये जाने को उचित कहा जा सकता है क्योकि अवलोकलन के स्तर पर आय-प्रभाव तथा प्रतिस्थापन-प्रभाव के बीच भेद नही किया जा सकता है।[26]

(ii) अपने एक लेख ('Consumption Theorems in terms of Overcompensation rather than Indifference Comparisons') मे सेम्युलसन आय-प्रभाव तथा अतिक्षतिपूर्ति-प्रभाव (overcompensation effect) के बीच अन्तर करते है। अतिक्षतिपूर्ति-प्रभाव हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव की भाँति नही है जिसमे कि सतुष्टि का स्तर समान रहता है क्योकि उपभोक्ता उसी एक तटस्थता-वक्र रेखा पर चलता है। सेम्युलसन का अतिक्षतिपूर्ति-प्रभाव 'स्लट्स्की' (Slutsky) की तरह के प्रतिस्थापन-प्रभाव' को बताता है जिसमे कि उपभोक्ता को एक ऊंची तटस्थता-वक्र रेखा पर जाने की आज्ञा दे दी जाती है और इस अर्थ मे स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता की 'अति-क्षतिपूर्ति' (Overcompensation) करता है।[27] सेम्युलसन इस दृष्टिकोण को इसलिए पसन्द करते हैं क्योकि वह 'तटस्थता के सम्बन्ध' (relation of indifference) का त्याग कर देते है और वह अपने सिद्धान्त को अर्थमिति-शास्त्रियों (econometricians) द्वारा प्रयोग हो सकने वाला बनाना चाहते हैं।

3. **सेम्युलसन का माँग प्रमेय प्रतिबन्ध-युक्त है।** (Samuelson's demand theorem is Conditional)। सेम्युलसन का माँग सिद्धान्त धनात्मक (positive) आय लोच (या धनात्मक आय प्रभाव) की मान्यता या प्रतिबन्ध (condition) पर आधारित है; जब आय प्रभाव (या आय लोच) ऋणात्मक (negative) होता है तो सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त

---

of consumption)—that the demand for a commodity contracts when its price rises—breaks down.

[25] Samuelson's theory offers only a partial explanation of the change in demand as a result of change in price.

[26] "From the empirical (though, of course, certainly not from the theoretical) point of view the exclusion of substitution effect can be justified on the ground that on the plane of observation the income and the substitution effects are indistinguishable."

[27] Cf. To use the words of Samuelson · "Indeed, from the present standpoint of narrowest *revealed* preference, it is an absolute advantage that the consumer is not constrained to remain on the same level of indifference, since that is a requirement so hard to verify by price-quantity observations alone."

माँग सिद्धान्त की व्याख्या नही कर सकता। इस प्रकार सेम्युलसन का माँग सिद्धान्त प्रतिबन्ध-युक्त (conditional) है, यह तभी कार्य करता है जबकि धनात्मक आय प्रभाव का प्रतिबन्ध मौजूद हो इसका अभिप्राय है—

(i) सेम्युलसन का सिद्धान्त निम्न कोटि की वस्तुओ (inferior goods) के सम्बन्ध में जिनके लिए आय-प्रभाव ऋणात्मक होता है, माँग मे परिवर्तन (जो कि कीमत मे परिवर्तन के उत्तर मे होते है) की व्याख्या नही कर सकता है।

(ii) सेम्युलसन का सिद्धान्त 'गिफिन-विरोधाभास' (Giffen's Paradox) की व्याख्या नही कर सकता; अर्थात यह 'गिफिन वस्तुओं' (Giffen's goods) के माँग के स्वभाव की व्याख्या नही कर सकता। गिफिन वस्तुए एक विशेष प्रकार की निम्न कोटि की वस्तुएं होती है (अ) जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का एक अच्छा भाग खर्च करता है, तथा (ब) इन वस्तुओं के लिए ऋणात्मक आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव से कहीं अधिक बलवान (strong) होता है; इसका परिणाम यह होता है कि गिफिन वस्तुओ की कीमत में कमी इन वस्तुओं की माँग में कमी होती है (उनकी माँग मे वृद्धि नही करती)। दूसरे शब्दो मे, गिफिन वस्तुओ के सम्बन्ध मे कीमत और माँग मे परिवर्तनो के बीच सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है।

इस प्रकार सेम्युलसन का सिद्धान्त उपर्युक्त स्थितियो की व्याख्या नही कर सकता क्योंकि यह धनात्मक आय प्रभाव की मान्यता या दशा या प्रतिबन्ध (condition) के अन्तर्गत ही कार्य कर सकता है। दूसरे शब्दो मे,

> सेम्युलसन का माँग का नियम या उपभोग का आधारभूत प्रमेय संकीर्ण या कम विस्तृत है क्योंकि यह ऋणात्मक आय प्रभाव तथा गिफिन के विरोधाभास, (और प्रतिस्थापन प्रभाव) को मान्यता नही देता। इसके विपरीत हिक्स का माँग का नियम अधिक विस्तृत या अधिक सामान्य है क्योंकि यह आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव और गिफिन के विरोधाभास की एक समन्वित व्याख्या प्रस्तुत करता है।[18]

सेम्युलसन ने उपर्युक्त आलोचना के प्रति रक्षा (defence) अनुभव आश्रित आधारों (empirical grounds) पर की है। उनके अनुसार, वास्तविक जीवन में आय-प्रभाव सामान्यतया धनात्मक होता है (ऋणात्मक नही), और वे गिफिन-विरोधाभास को मान्यता नही देते क्योंकि ऐसी स्थिति वास्तविक जीवन मे 'ना' के बराबर पायी जाती हैं।[19]

4. **कुछ आलोचकों का दृष्टिकोण है कि सेम्युलसन ने 'चुनाव' (choice) का अर्थ 'पसन्द या अधिमान'** (preference) बताया है, परन्तु वास्तविक जीवन में यह अर्थ सभी स्थितियों में सही नहीं उतरता है। यह अर्थ पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे सही हो सकता है, परन्तु अनिश्चितता की स्थिति मे और जब उपभोक्ता 'खेल सिद्धान्त की भाँति युक्तियो का प्रयोग' (use of strategies

---

[18] Samuelson's Law of Demand or Fundamental Theorem of consumption is less inclusive because it does not recognise negative income effect and Giffen's Paradox, (and substitution effect). Whereas Hicks' Law of Demand is more general because it provides an integrated explanation both for 'income effect' and 'substitution effect', and also for Giffen's Paradox.

[19] In other words, the views of Samuelson on Giffen's Paradox can be put as follows :

"But the phenomenon of Giffen's Paradox reminds us that the Marshallian proposition is not a true theorem, and it is rather to a theory's credit than discredit if it refuses to enunciate a false theorem."

"On Samuelson's analysis the only valid theorem in the Demand Theory is the one that links inversely income to price elasticity." In other words, Samuelson's theory argues deductively from positive income elasticity to negative price elasticity.

of the game theory type) करते है तब यह अर्थ सही नही उतरता है। [निःसन्देह, तटस्थता-वक्र विश्लेषण भी इन स्थितियो या दशाओ मे लागू नही होता है।]

वास्तव मे, मजबूत क्रम की मान्यता के अतिरिक्त, 'चुनाव' का अर्थ 'पसन्द या अधिमान' से लिया जाना इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता अपने व्यवहार मे पूर्णरूप से सामजस्यपूर्ण व विवेकपूर्ण (consistent and rational) है। परन्तु वास्तविक जीवन मे उपभोक्ता सदैव पूर्ण विवेकशीलता (perfect rationality) के साथ कार्य नही करते हैं। [यह आलोचना उपयोगिता विश्लेषण तथा तटस्थता-वक्र विश्लेषण के सम्बन्ध मे भी लागू होती है।]

निष्कर्ष (Conclusion)

1. सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का दृष्टिकोण 'आचरणात्मक' (behaviouristic) है, यह उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार के अवलोकन (observation) पर आधारित है, और इसलिए व्यक्तिनिरपेक्ष तथा वैज्ञानिक (objective and scientific) हैं। दूसरे शब्दो मे, सेम्युलसन का सिद्धान्त 'अन्तर्निरीक्षणात्मक' (introspective) तटस्थता-वक्र विश्लेषण के ऊपर रीति-विधान (methodology) की दृष्टि से श्रेष्ठ है।
2. परन्तु सेम्युलसन का सिद्धान्त क्षेत्र की दृष्टि से सकीर्णात्मक (restrictive in scope) है। यह 'धनात्मक आय प्रभाव' की दशा या प्रतिबन्ध पर आधारित है; यह ऋणात्मक आय-प्रभाव तथा गिफिन के विरोधाभास को मान्यता नही देता और प्रतिस्थापन प्रभाव को 'ना' के बराबर या बहुत कम महत्त्व देता है। इस प्रकार यह विषय-सामग्री (content) की दृष्टि से एक पूर्ण सिद्धान्त (complete theory) नही है। वास्तव मे इस सिद्धान्त के अन्तर्गत जो कड़ाई व रीतिविधान की श्रेष्ठता का लाभ प्राप्त होता है वह उसके प्रयोग के क्षेत्र की सीमितता मे खो जाता है।[30]

प्रश्न

1. उपभोक्ता के व्यवहार के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
   Explain the revealed preference theory of consumer behaviour.
2. उपभोग सिद्धान्त के आधारभूत प्रमेय (Fundamental Theorem of Consumer Theory) की विवेचना कीजिए।
   Discuss the Fundamental Theorem of Consumer Theory.

   अथवा

   "एक वस्तु (सरल या सयुक्त) जिसकी माँग मे सदैव वृद्धि होती है जबकि केवल द्राव्यिक आय मे वृद्धि हो, तो ऐसी वस्तु की माँग निश्चित रूप से संकुचित (shrink) होगी जबकि केवल उसकी कीमत मे वृद्धि होती है।" विवेचना कीजिए।

   "Any good (simple or composite) that is known always to increase in demand when money income alone rises must definitely shrink in demand when its price alone rises." Discuss.
3. सेम्युलसन के माँग के प्रकट-अधिमान सिद्धात का आलोचनात्मक मूल्यांकन दीजिए।
   Give a critical evaluation of Samuelson's revealed preference theory of demand.

   अथवा

   'सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के अन्तर्गत जो कड़ाई व रीतिविधान की श्रेष्ठता का लाभ

[30] As a matter of fact what is gained in rigour and methodology is lost in the narrowness of the scope of its application.

प्राप्त होता है वह इसके प्रयोग के क्षेत्र की सीमितता मे खो जाता है।' इस कथन के सन्दर्भ में सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

'In Samuelson's revealed preference theory what is gained in rigour and methodology is lost in the narrowness of the scope of its application.' In the light of this remark give a critical evaluation of Samuelson's revealed preference theory.

अथवा

क्या सेम्युलसन् का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त हिक्स के तटस्थता-वक्र विश्लेषण के ऊपर सुधार है? आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

Is Samuelson's theory of revealed preference an improvement over Hicks' indifference curve analysis? Discuss critically.

माँग की लोच
(*Elasticity of Demand*)

माँग का नियम केवल गुणात्मक कथन (qualitative statement) है। यह मूल्य मे परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप माँग के परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है। माँग का नियम यह नही बताता कि कीमत मे परिवर्तन के कारण माँग मे कितना परिवर्तन होता है। इस बात को जानने के लिए अर्थशास्त्रियो ने माँग की लोच का टेक्नीकल विचार (technical concept) प्रस्तुत किया है।

माँग की लोच की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच, कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के उत्तर में, माँग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप है। इसका पूरा नाम **'माँग की कीमत-लोच'** (price elasticity of demand) है, क्योंकि माँग में परिवर्तन, कीमत मे परिवर्तन के उत्तर मे होता है।

1. **सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दों में,**

"माँग की लोच का विचार बाजार की कीमत (माना P) में परिवर्तन के उत्तर में माँग की मात्रा (माना Q) में परिवर्तन के अंश अर्थात् माँग में प्रतिक्रियात्मकता के अंश (degree of responsiveness) को बताता है। यह मुख्यतया प्रतिशत परिवर्तनों (percentage changes) पर निर्भर करता है और P तथा Q को नापने में प्रयोग की जाने वाली इकाइयो से स्वतन्त्र होता है।"[1]

2. **श्रीमती जोन रोबिन्सन** ने माँग की लोच की गणितात्मक परिभाषा (numerical definition) इस प्रकार दी है .

"माँग की लोच, कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप खरीदी गयी मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।"[2]

सक्षेप मे इसको निम्न सूत्र द्वारा बताया जाता है·

$$e_p = \frac{\text{माँग मे आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$ जबकि e_p=माँग की कीमत लोच।

3. कीमत (अर्थात् P) मे परिवर्तन होने पर माँग की मात्रा (Q) मे परिवर्तन होगा;

[1] "This(i e., Elasticity of demand) is a concept devised to indicate the degree of responsiveness of Q demanded to changes in market P It depends primarily on *percentage* changes and is independent of units used to measure Q and P." —Samuelson

[2] "The elasticity of demand at any price or at any output, is the proportional change of amount purchased in response to a small change in price, divided by the proportional change of price." —Mrs. Joan Robinson.

अर्थात् कुल आगम (total revenue), जो कि P × Q द्वारा व्यक्त किया जाता है, में परिवर्तन होगा। दूसरे शब्दों में,

> **माँग की लोच का विचार मुख्यतया इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह "इस बात का सूचक है कि कुल आगम में किस प्रकार परिवर्तन होता है, जबकि कीमत में परिवर्तन माँग की मात्रा में परिवर्तन उत्पन्न करता है।"[3]**

माँग की लोच के विचार के बारे में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए -

(i) माँग की लोच का सम्बन्ध कीमत तथा माँग की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तनों (relative changes), अर्थात् आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तनों (proportional or percentage changes) से होता है।

(ii) (अ) इसके अन्तर्गत हम माँग के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा (ब) जो अल्प समय के लिए ही हो।[4]

(iii) माँग की लोच किसी दी हुई माँग रेखा की एक विशेषता है (Elasticity of demand is one characteristic of any given demand curve)।

बिन्दु लोच तथा चाप लोच (Point Elasticity and Arc Elasticity)

माँग रेखा (DD) के किसी बिन्दु (P) पर माँग की लोच मालूम की जाये तो इसे 'माँग की बिन्दु लोच' (Point Elasticity of Demand) कहते हैं। वास्तव में, माँग की लोच माँग रेखा के किसी एक बिन्दु की स्थिति पर निर्भर करती है, इसलिए इसको ज्ञात करने के लिए हमको कीमतों और मात्राओं में बहुत सूक्ष्म परिवर्तनों को ध्यान में रखना चाहिए।[5] परन्तु प्रायः हम कुछ कीमतों तथा उनसे सम्बन्धित मात्राओं को लेकर ही चलते हैं और माँग रेखा के स्वभाव (nature) को उसके प्रत्येक बिन्दु पर ठीक प्रकार से नहीं जानते। दूसरे शब्दों में, व्यवहार में कीमतों तथा मात्राओं में सूक्ष्म परिवर्तन हमें मालूम नहीं होते इसलिए 'माँग की बिन्दु लोच' को ज्ञात करना कठिन होता है।

चित्र 1

अतः व्यावहारिक जीवन में हम 'बिन्दु लोच' न मालूम करके **'चाप लोच'** (Arc Elasticity) मालूम करते हैं। चित्र 1 से स्पष्ट है कि **'चाप लोच' किसी माँग रेखा (DD) के एक 'चाप'** (Arc) PQ पर निकाली जाती है अर्थात् यह मूल्यों और मात्राओं के एक क्षेत्र (range) से सम्बन्धित होती है। जब हम किसी माँग रेखा (DD) पर दो बिन्दुओं (P and Q) को लेकर चलते हैं तो इन बिन्दुओं से अनेक माँग रेखाएं खींच
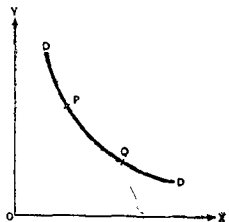
---

[3] "Elasticity of demand is primarily important *as an indicator* of how total revenue changes when a change in P induces a change in Q."

[4] 'कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव' के परिणामस्वरूप माँग में जो परिवर्तन होता है उसमें सटोरियों का प्रभाव अधिक रहता है; अतः माँग के ऐसे परिवर्तनों को माँग की लोच नहीं मानना चाहिए। इसी प्रकार यदि आज की माँग की तुलना आज से 10-15 वर्ष पूर्व की माँग से की जाय तो आज की माँग में जो परिवर्तन दिखायी पड़ेगा, वह केवल मूल्य के परिवर्तन का परिणाम न होकर बदलती हुई इच्छाओं, फैशन, रीति-रिवाजों, इत्यादि का परिणाम होगा।

[5] "Elasticity is a function of a point on the demand curve and should be calculated in terms of infinitesimal changes in price and quantity."

सकते हैं—एक सीधी रेखा तथा बहुत-सी वक्र रेखाएं जिनकी वक्रता (curvature) भिन्न-भिन्न होगी। जब हम इन दो बिन्दुओं के बीच मांग की लोच ज्ञात करते हैं तो वास्तव मे हम इन दोनों बिन्दुओं के बीच चाप के क्षेत्र पर माँग की लोचो का औसत (average of the elasticities over the arc between these two points) निकालते है। इसे, 'बिन्दु लोच' से भेद प्रकट करने के लिए 'चाप लोच' कहते हैं।
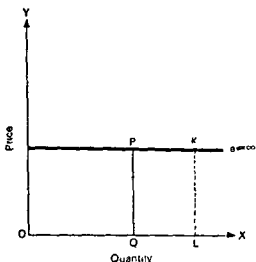
चित्र 2

'माँग की कीमत-लोच' की श्रेणियाँ या मात्राएं

(DEGREES OF THE 'PRICE ELASTICITY OF DEMAND')

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की माँग पर एकसा प्रभाव नही होता अर्थात् कुछ वस्तुओं की माँग की लोच कम होती है तथा कुछ की अधिक। माँग की लोच की पाँच श्रेणियां हैं: (1) पूर्णतया लोचदार माँग, (2) अत्यधिक लोचदार माँग, (3) लोचदार माँग, (4) बेलोच माँग, तथा (5) पूर्णतया बेलोच माँग।

(1) **पूर्णतया लोचदार माँग** (Perfectly elastic demand)—**जब वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन** (infinitesimal change) **होने पर माँग में बहुत अधिक कमी या वृद्धि हो जाती है, तब वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार कही जाती है।** यह चित्र 2 से स्पष्ट है। पूर्णतया लोचदार माँग की दशा में माँग-रेखा आधार रेखा (X-axis) के समानान्तर (parallel) होती है। चित्र में मूल्य PQ है तो माँग OQ है, परन्तु मूल्य में बिना परिवर्तन हुए (अर्थात् मूल्य KL यानी PQ रहता है) माँग OQ से OL हो जाती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की माँग केवल काल्पनिक होती है। वास्तविक जीवन मे पूर्णतया लोचदार माँग का उदाहरण नही मिलता। चूंकि इस प्रकार की दशा में कीमत मे शून्य परिवर्तन होने पर माँग मे अनन्त (infinity) परिवर्तन होता है। इसलिए गणित की भाषा में हम इसे $e=\infty$ द्वारा व्यक्त करते है। यद्यपि व्यावहारिक जीवन में पूर्णतया लोचदार माँग नही पायी जाती, फिर भी यह माँग की लोच की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है।

(2) *अत्यधिक लोचदार माँग (Highly elastic demand)*—*जब किसी वस्तु की माँग* **में आनुपातिक परिवर्तन** (proportionate change), **कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार माँग कहते हैं।** उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु के मूल्य मे 20 प्रतिशत कमी होती है, परन्तु उसकी माँग में 40 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है तो ऐसी वस्तु की माँग अधिक लोचदार कही जायेगी। ऐसी वस्तु की माँग की लोच को 'इकाई से अधिक लोच' भी कहते हैं। और गणित की भाषा मे $e > 1$ द्वारा व्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दो मे, चित्र 3 से स्पष्ट है कि कीमत मे कमी होने के बाद कुल आगम (total revenue after the decrease in price) OLKS अधिक है, पुराने कुल आगम OQPT से, इसलिए माँग की लोच इकाई से अधिक है।

[इसको समझने के लिए इसी अध्याय में आगे 'माँग की लोच को मापने की रीतियाँ' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत पहली रीति अर्थात् 'कुल आगम या व्यय रीति' (Total Revenue or Outlay Method) को देखिए।]

इस प्रकार की लोच प्राय. विलासिता की वस्तुओं (जैसे टाई, मोटरकार, इत्यादि) में होती है।

(3) लोचदार माँग (Elastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है तब ऐसी वस्तु की माँग को 'लोचदार माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत में 20% की वृद्धि होती है और उसकी माँग में ठीक 20% कमी हो जाती है, तो यह लोचदार माँग कहलायेगी। इस प्रकार की लोच को 'इकाई के बराबर लोच' भी कहते हैं; गणित की भाषा मे इसको e = 1 द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में, चित्र 4 मे कीमत में कमी के बाद नया कुल आगम OLKS
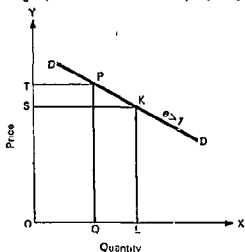
चित्र 3

बराबर है, पुराने कुल आगम OQPT के, इसलिए e = 1 है। परन्तु ध्यान रहे कि इस रेखा के प्रत्येक बिन्दु पर e = 1 नही होती, रेखा के केवल मध्य में ही ऐसा है।[6] यदि माँग रेखा को सीधी रेखा द्वारा न बताकर वक्र (curve) द्वारा बताया जाये तो 'माँग की इकाई लोच' को rectangular hyperbola (ऐसी वक्र रेखा जिसको दोनों सिरो पर बढ़ाये जाने पर वह X-axis तथा Y-axis
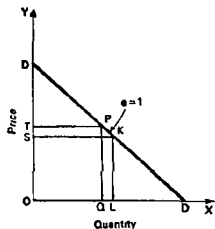
चित्र 4
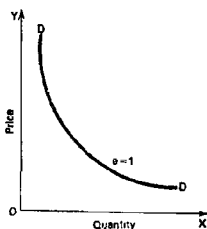
चित्र 5

को काटती नही है) द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि साथ के दूसरे चित्र 5 मे दर्शाया गया है। इस वक्र की समस्त लम्बाई पर e = 1 होती है क्योंकि इस वक्र के बिन्दुओ पर 'कुल आगम' बराबर रहता है।

[6] इसको समझने के लिए इस अध्याय में आगे 'माँग की लोच को नापने की तीसरी रीति' अर्थात् 'बिन्दु रीति या रेखागणित रीति' को पढ़िए।

चित्र 6

इस प्रकार की लोच आरामदायक वस्तुओं (जैसे, साइकिल, घड़ी, बिजली का पंखा, इत्यादि) में पायी जाती है।
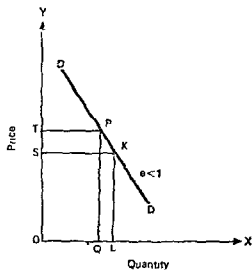
(4) **बेलोच माँग (Inelastic demand)**—जब किसी वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की क़ीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को 'बेलोच माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में 50% की वृद्धि होती है, परन्तु माँग में केवल 10% कमी होती है, तो ऐसी माँग को बेलोच माँग कहा जाता है। इस प्रकार की लोच को 'इकाई से कम लोच' भी कहते हैं; गणित की भाषा में इसको $e<1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में, चित्र 5 से स्पष्ट है कि कीमत में कमी होने के बाद नया कुल आगम OLKS कम है पुराने कुल आगम OQPT से, इसलिए माँग की लोच इकाई से कम है।

ऐसी लोच प्रायः अनिवार्य वस्तुओं (जैसे अनाज) में पायी जाती है।

(5) **पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly inelastic demand)**—जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी माँग में बिलकुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को 'पूर्णतया बेलोच माँग' कहते हैं। माँग में बिलकुल परिवर्तन न होने के कारण ऐसी स्थिति को गणित की भाषा

चित्र 7 चित्र 8

में $e=0$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्णतया बेलोचदार माँग केवल एक काल्पनिक स्थिति की द्योतक है, वास्तविक जीवन में इस प्रकार की माँग की लोच का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। इस प्रकार की दशा में माँग-रेखा आधार-रेखा (X-axis) पर लम्ब

(perpendicular) होती है जैसाकि चित्र 7 में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जब मूल्य OQ है तो माँग OT या QP है, यदि मूल्य बढ़कर OL हो जाता है तो माँग उतनी ही (LK यानी QP) रहती है।

माँग की कीमत-लोच (Price Elasticity of Demand) की पाँचों श्रेणियों या दशाओं को हम एक ही चित्र (चित्र 8) द्वारा भी दिखा सकते हैं।

माँग की लोच को मापने की रीतियाँ

(METHODS FOR MEASURING ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच को मापने की मुख्य रीतियाँ तीन हैं: (1) कुल व्यय रीति, (2) आनुपातिक रीति, तथा (3) बिन्दु रीति।

(1) कुल आगम या व्यय रीति (Total Revenue or Outlay Method)

मार्शल द्वारा प्रतिपादित इस रीति द्वारा मूल्य में परिवर्तन होने से पहले और बाद में कुल आगम या कुल व्यय की तुलना करके यह ज्ञात किया जाता है कि माँग की लोच 'इकाई के बराबर' है, अथवा 'इकाई से अधिक' या 'इकाई से कम' है।

(अ) माँग की लोच इकाई से अधिक ($e > 1$)—कुल व्यय मूल्य-परिवर्तन से विपरीत दिशा में चलता है (Total outlay moves in the opposite direction from price)—जब किसी वस्तु के मूल्य में कमी होने पर कुल व्यय की मात्रा बढ़ती है या मूल्य में वृद्धि होने से कुल व्यय की मात्रा घटती है, तो ऐसी वस्तु की माँग की लोच को 'इकाई से अधिक' कहते हैं। उदाहरणार्थ:

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय
4 रुपये	100 इकाइयाँ	400 रुपये
2 रुपये	300 इकाइयाँ	600 रुपये

(ब) माँग की लोच इकाई के बराबर ($e = 1$)—मूल्य में परिवर्तन होने पर कुल व्यय अप्रभावित रहता है (Total outlay is unaffected by price changes)—जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने पर भी कुल व्यय की मात्रा यथास्थिर रहती हैं तब माँग की लोच 'इकाई के बराबर' कही जाती है। उदाहरणार्थ:

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय
4 रुपये	100 इकाइयाँ	400 रुपये
2 रुपये	200 इकाइयाँ	400 रुपये

(स) माँग की लोच इकाई से कम ($e < 1$)—कुल व्यय उसी दिशा में चलता है जिस दिशा में मूल्य परिवर्तन (Total outlay moves in the same direction as price)—जब किसी वस्तु के मूल्य मे कमी होने पर कुल व्यय की मात्रा में कमी होती है या मूल्य में वृद्धि होने पर कुल व्यय की मात्रा में भी वृद्धि होती है तो माँग की लोच 'इकाई से कम' कही जाती है। उदाहरणार्थ:

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय
4 रुपये	100 इकाई	400 रुपये
2 रुपये	150 इकाई	300 रुपये

कुल व्यय रीति को चित्र 9 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में किसी वस्तु पर कुल व्यय (total outlay) को X-axis पर दिखाया गया है, तथा कीमत को Y-axis पर।

चित्र 9

(i) जब कीमत OP_1 से गिरकर OP_2 हो जाती है, तो कुल व्यय जो कि X-axis पर मापा जाता है, बढ़ जाता है, अतः इस क्षेत्र (range) में लोच इकाई से अधिक है। (ii) इसी प्रकार जब कीमत OP_3 से नीचे गिरती है, तो कुल व्यय (कीमत की प्रत्येक कमी के साथ) घटता है। अतः OP_3 से नीचे सब कीमतों पर लोच इकाई से कम है। (iii) परन्तु OP_2 तथा OP_3 कीमतों के बीच में माँग की लोच इकाई के बराबर है क्योंकि इस क्षेत्र (range) में कुल व्यय समान रहता है।

(2) 'आनुपातिक रीति' या 'प्रतिशत रीति' अथवा 'चाप लोच' को ज्ञात करने की रीति (Proportional Method or Percentage Method or Method for Measuring 'Arc Elasticity')

इस रीति के अन्तर्गत माँग में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) को कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग देते हैं। माँग की लोच निम्न सूत्र द्वारा निकालते हैं :

$$e_p = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{माँग की पूर्व (original) मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत (original price)}}}$$

जबकि

Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन
Δq = माँग में सूक्ष्म परिवर्तन
q = माँग की पूर्व मात्रा
Δp = कीमत में सूक्ष्म परिवर्तन
p = पूर्व कीमत

$$= \frac{\dfrac{\Delta q}{q}}{\dfrac{\Delta p}{p}},$$

$$= \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$= \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

इस सूत्र में माँग की लोच निकालने में एक कठिनाई सामने आती है : "माँग की मात्रा में आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन, माँग की पूर्व (original) मात्रा पर या नयी मात्रा पर, और कीमत में आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन पूर्व कीमत पर या नयी कीमत पर निकाला जा सकता है।"[7] अतः माँग की लोच की संख्या (figure) कितनी होगी यह इस बात पर निर्भर करेगी

[7] उदाहरण के लिए माना कि किसी वस्तु की कीमत 6 रुपये है तो उसकी माँग 36 इकाइयों की है, यदि उसकी कीमत बढ़कर 8 रुपये हो जाती है तो उसकी माँग घटकर 30 इकाई के बराबर हो

कि आनुपातिक परिवर्तन निकालने में कौनसी रीति का प्रयोग किया गया है। इस कठिनाई को दूर करने का एक तरीका यह है कि माँग का आनुपातिक परिवर्तन न तो माँग की पूर्व मात्रा पर निकाला जाये और न नयी मात्रा पर, बल्कि दोनों मात्राओं के मध्य बिन्दु (अर्थात् औसत) पर निकाला जाये; इसी प्रकार कीमत का आनुपातिक परिवर्तन न तो पूर्व कीमत पर निकाला जाये और न नयी कीमत पर, बल्कि दोनों कीमतों के मध्य बिन्दु (अर्थात् औसत) पर निकाला जाये। ऐसी स्थिति में सूत्र इस प्रकार हो जायेगा :

$$e_p = \frac{\dfrac{\text{माँग की मात्रा में परिवर्तन}}{(\text{पूर्व मात्रा} + \text{नयी मात्रा})/2}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{(\text{पूर्व कीमत} + \text{नयी कीमत})/2}}$$

$$= \frac{\dfrac{q \sim q_1}{\dfrac{q+q_1}{2}}}{\dfrac{p \sim p_1}{\dfrac{p+p_1}{2}}} = \frac{\dfrac{q \sim q_1}{q+q_1}}{\dfrac{p \sim p_1}{p+p_1}}$$

जबकि, q=माँग की पूर्व मात्रा
q_1=माँग की नयी मात्रा
p=पूर्व कीमत
p_1=नयी कीमत
$\sim$यह चिह्न दो संख्याओं के बीच 'अन्तर' को बताता है।

[उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत 6 रुपये है तो उसकी माँग 36 इकाइयों की है, कीमत 8 रुपये हो जाने पर माँग 30 इकाइयों के बराबर हो जाती है। इस उदाहरण में,

$$e_p = \frac{\dfrac{36 \sim 30}{36+30}}{\dfrac{6 \sim 8}{6+8}} = \frac{\dfrac{6}{66}}{\dfrac{2}{14}} = \frac{\dfrac{1}{11}}{\dfrac{1}{7}} = \frac{1}{11} \times \frac{7}{1} = \frac{7}{11} = \cdot 63$$

जाती है। इस उदाहरण में, मांग में 6 का परिवर्तन 36 पर निकाला जा सकता है तो आनुपातिक परिवर्तन $\frac{6}{36}$ होगा, या 30 पर निकाला जा सकता है तो माँग में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{6}{30}$ होगा, जो कि पहले से भिन्न है। इसी प्रकार कीमत में 2 का परिवर्तन 6 पर निकाला जा सकता है तो कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{2}{6}$ होगा या 8 पर निकाला जा सकता है तो कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{2}{8}$ होगा जो कि पहले से भिन्न है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि कीमत में परिवर्तन न तो छोटी संख्या (6) और न बड़ी संख्या (8) पर निकाला जाये बल्कि दोनों संख्याओं के मध्य (6 + 8)/2 पर अर्थात् दोनों संख्याओं के औसत पर निकाला जाये। इसी प्रकार माँग में परिवर्तन न तो छोटी संख्या (30) पर और न बड़ी संख्या (36) पर निकला जाये बल्कि दोनों के मध्य (30 + 36)/2 पर अर्थात् दोनों संख्या के औसत पर निकाला जाये।
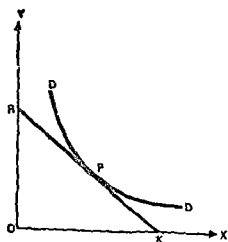
चित्र 10

अर्थात् माँग की लोच इकाई से कम है।]

(3) बिन्दु-रीति या रेखागणित रीति (Point Method or Geometrical Method)

इस रीति द्वारा हम माँग रेखा के किसी बिन्दु पर माँग की लोच निकाल सकते है। चित्र 10 मे DD माँग रेखा के P बिन्दु पर लोच मालूम करने के लिए, P बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा (tangent) RK खीची जाती है और उसे दोनो ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X-axis को K बिन्दु पर तथा Y-axis को R बिन्दु पर काटती है। माँग की लोच का सूत्र निम्न प्रकार है :

$$e = \frac{\text{नीचे का भाग (Lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग (Upper sector)}}$$

$$= \frac{PK}{PR}$$

यदि Lower sector $>$ Upper sector से, तो $e > 1$

यदि Lower sector $<$ Upper sector से, तो $e < 1$

यदि Lower sector $=$ Upper sector के, तो $e = 1$

माँग की लोच तथा उपयोगिता ह्रास नियम
(ELASTICITY OF DEMAND AND THE LAW OF DIMINISHING UTILITY)

माँग की लोच का उपयोगिता ह्रास नियम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार किसी वस्तु की पूर्ति मे वृद्धि के साथ सीमान्त उपयोगिता घटती है तथा पूर्ति मे कमी के साथ सीमान्त उपयोगिता बढती है। परन्तु सभी वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिता समान गति से नहीं घटती है। कुछ वस्तुओ (आवश्यकता की वस्तुएँ, जैसे नमक इत्यादि) के प्रयोग से हमे शीघ्र ही सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है, अर्थात् सीमान्त उपयोगिता शीघ्र गिर जाती है, ऐसी वस्तुओं के मूल्य मे अधिक कमी होने पर भी इनकी माँग में वृद्धि नही होगी। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तुओं की माँग की लोच बेलोच होती है। परन्तु कुछ वस्तुएं जैसे आराम तथा विलासिता की वस्तुएं, ऐसी होती हैं जिनकी पूर्ति मे वृद्धि के साथ सीमान्त उपयोगिता धीरे-धीरे गिरती है, अतः ऐसी वस्तुओ के मूल्य में थोड़ी कमी होने पर उनकी माँग अधिक बढ जाती है और ऐसी वस्तुओं की माँग लोचदार होती है। अतः स्पष्ट है कि जिन वस्तुओं की उपयोगिता शीघ्र गिरती है उनकी माँग बेलोच (inelastic) होती है तथा जिन वस्तुओं की उपयोगिता धीरे-धीरे गिरती है उनकी माँग लोचदार (elastic) होती है। इस प्रकार माँग की लोच, उपयोगिता ह्रास नियम से सम्बन्धित है।

माँग की लोच तथा उपभोक्ता की बचत
(ELASTICITY OF DEMAND AND CONSUMER'S SURPLUS)

माँग की लोच का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव पड़ता है। आवश्यक वस्तुओं (Neccessaries) तथा रस्मी आवश्यकता की वस्तुएं (Conventional necessaries) की माँग की लोच बेलोच होती है। इन वस्तुओं (जैसे, नमक, अनाज, इत्यादि) का मूल्य प्रायः नीचा होता है, जबकि उपभोक्ता इनके लिए अधिक कीमत देने को तत्पर होते हैं, अतः उपभोक्ता जो देने को तत्पर हैं और जो वास्तव में देते हैं—इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत होती है, और यह बेलोच वस्तुओं में अधिक प्राप्त होती है। इसके विपरीत विलासिता तथा आराम की वस्तुओं की मांग लोचदार होती है और इन वस्तुओं का मूल्य प्रायः ऊँचा रहता है। परिणामस्वरूप इनसे उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है। इस प्रकार बेलोचदार माँग की वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत अधिक और लोचदार माँग की वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है।

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
(FACTORS INFLUENCING ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

(1) वस्तु का गुण (Nature of commodity)—(i) प्रायः आवश्यकता की वस्तुओं (Necessaries) तथा रस्मी आवश्यकताओं की वस्तुओं (Conventional necessaries) की माँग की लोच बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, नमक, अनाज इत्यादि वस्तुओं की कीमत बढ़ने या घटने पर इनकी माँग अधिक घटती या बढ़ती नहीं है क्योंकि ये जीवन के लिए आवश्यक हैं, और कीमत में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता आवश्यकतानुसार जितनी मात्रा जरूरी है, इनको खरीदेंगे ही। इसी प्रकार रस्मी आवश्यकताओं की माँग पर भी मूल्य परिवर्तन का प्रभाव बहुत कम होता है।

(ii) प्रायः आरामदायक वस्तुओं (Comforts) की माँग की लोच औसत दर्जे की या साधारण लोचदार (moderately elastic) होती है। ऐसी वस्तुओं के उपभोग से हमारी कार्यक्षमता बढ़ती है परन्तु इनकी अनुपस्थिति से कार्यशक्ति में विशेष कमी नहीं होती। अतः ऐसी वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर उनकी माँग पर प्रभाव, आवश्यक वस्तुओं की अपेक्षा तो अधिक पड़ता है, परन्तु वैसे प्रभाव साधारण (moderate) ही पड़ता है।

(iii) प्रायः विलासिता की वस्तुओं (Luxuries) की माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। ऐसी वस्तुओं के प्रयोग करने से हमारी कार्यक्षमता बढ़ती है। अतः इन वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर इनकी माँग पर अनुपात से अधिक प्रभाव पड़ता है।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि विलासिता की वस्तुओं की माँग सदैव अधिक लोचदार हो तथा आवश्यकताओं की माँग की लोच सदैव बेलोचदार हो क्योंकि आवश्यकताओं का यह एक वर्गीकरण सापेक्षिक है कार जैसी विलासिता की वस्तु डाक्टरों के लिए आवश्यक है और उसके लिए कार की माँग की लोच बेलोचदार होगी।

(2) वस्तु के स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि (Range of substitutes)—यदि किसी वस्तु की अनेक स्थानापन्न वस्तुएं हैं तो उसकी माँग की लोच अधिक लोचदार होगी क्योंकि वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाने पर इसके स्थान पर दूसरी स्थानापन्न वस्तु का प्रयोग किया जाने लगेगा। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत में कमी हो जाती है तो अन्य वस्तुओं के स्थान पर इसका प्रयोग होने लगेगा और इसकी माँग बढ़ जायेगी (उदाहरणार्थ, चीनी तथा गुड़ स्थानापन्न वस्तुएं हैं; चीनी की कीमत में वृद्धि होने से चीनी की माँग कम हो जायेगी क्योंकि अब उपभोक्ता चीनी के स्थान

पर गुड़ का प्रयोग करने लग जायेंगे); यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं हैं तो उसकी माँग बेलोचदार होगी।

(3) वस्तु के अनेक प्रयोग (Varietpofuses)—ऐसी वस्तुएँ जिनको अनेक प्रयोगों में लाया जा सकता है, जसे बिजली कोयला इत्यादि उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। यदि बिजली की दर बढ़ती है तो इसकी माँग बहुत घटेगी क्योंकि अब इसका प्रयोग कम महत्वपूर्ण प्रयोगों जैसे (कमरा गर्म करने, पानी गर्म करने, इत्यादि) से हटाकर केवल महत्त्वपूर्ण प्रयोगों (जैसे, रोशनी इत्यादि) में ही किया जायेगा।

(4) वस्तु के प्रयोग को स्थगित किया जा सकता है (Possibility of the postponement of the use of a commodity)—यदि वस्तु ऐसी है कि इसके प्रयोग को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सके तो उसकी माँग की लोच अधिक लोचदार होगी। उदाहरणार्थ, यदि ऊनी कपड़े की कीमत बढ़ जाती है तो उसकी माँग अधिक गिर जायेगी क्योंकि लोग इसके प्रयोग को स्थगित कर देंगे और पुराने कोट-पेंट इत्यादि की मरम्मत कराके काम चलायेंगे।

(5) मूल्य-स्तर (Price-level)—इस सम्बन्ध मे मार्शल ने कहा है कि "माँग की लोच ऊँची कीमतों के लिए अधिक होती है, मध्यम कीमतों के लिए पर्याप्त होती है तथा जैसे-जैसे कीमत घटती जाती है वैसे-वैसे लोच भी घटती जाती है और यदि कीमतें इतनी गिरें कि तृप्ति की सीमा आ जाये तो लोच धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।"[8]

परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य है कि समाज के एक वर्ग अर्थात् धनी वर्ग के लिए कुछ वस्तुओं (जैसे, हीरे, कारें, इत्यादि) की माँग की लोच, ऊँची कीमतों पर भी लोचदार नहीं होती, बल्कि बेलोचदार होती हैं। हीरों या कारों की माँग केवल धनी वर्ग द्वारा ही की जाती है क्योंकि इनकी कीमतें पहले से ही काफी ऊँची होती हैं तथा इन वस्तुओं की कीमतों में और वृद्धि या कमी हो जाती है तो इनकी माँग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(6) आय वर्ग (Income group)—माँग की लोच का सम्बन्ध एक दिये हुए आय वर्ग से होता है। धनी वर्ग के लिए वस्तुओं की माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है क्योंकि उनके लिए कीमतों में वृद्धि या कमी विशेष महत्त्व नहीं रखती जबकि निर्धन वर्ग के लिए प्रायः वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है क्योंकि उनकी माँग कीमतों मे परिवर्तन से अधिक प्रभावित होती है।

(7) समाज में धन के वितरण का लोच पर, प्रभाव (Effect of the distribution of wealth)—प्रो टाउसिग (Taussig) के अनुसार, सामान्यतया समाज मे धन के असमान वितरण होने से माँग की लोच बेलोच होती है तथा धन के समान वितरण के साथ लोचदार हो जाती है। असमान वितरण के परिणामस्वरूप समाज दो भागों में बँट जाता है—थोड़े से व्यक्तियों का धनी वर्ग तथा अधिकांश व्यक्तियो का निर्धन वर्ग। कीमतों में थोडी वृद्धि या कमी धनी वर्ग के लोगो की माँग को अधिक प्रभावित नही करती; इसी प्रकार निर्धनों के लिए भी लोच सामान्यतया बेलोचदार ही रहती है क्योंकि वे केवल आवश्यकता की वस्तुए ही खरीद पाते हैं। परन्तु धन के समान वितरण से लगभग सभी व्यक्तियो की क्रय-शक्ति ठीक होती है और कीमतो में वृद्धि या कमी का सब लोगों पर प्रभाव पड़ता है, अत. माँग लोचदार हो जाती है।

(8) उपभोक्ता की आय का व्यय किया जाने वाला भाग (Part of the consumer's income spent)—जिन वस्तुओ पर आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय किया जाता है उनकी माँग

---

[8] "The elasticity of demand is great at high prices and great or at least considerable for medium price, but it declines as the price falls, and gradually fades away if the fall goes so fast . . . atiety level is reached."

—Marshall, *Principles of Economics*, p. 87.

की लोच बेलोचदार होती है, इसके विपरीत जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। उदाहरणार्थ, सुई, डोरा, बटन इत्यादि पर उपभोक्ता आय का बहुत थोड़ा-सा भाग व्यय करता है, अतः इनकी कीमत में वृद्धि या कमी से मांग पर कोई प्रभाव नही पडता और इनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है। इसके विपरीत कपड़ा, रेडियो, साइकिल इत्यादि पर आय का बड़ा भाग व्यय किया जाता है इसलिए इनकी मांग की लोच लोचदार होती हैं।

(9) **संयुक्त माँग (Joint Demand)**—कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो कि दूसरी वस्तु के साथ माँगी जाती है, जैसे डबलरोटी तथा मक्खन, निब और स्याही, दियासलाई तथा सिगरेट। ऐसी वस्तुएं जो दूसरी वस्तुओं के साथ माँगी जाती हैं उनकी माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है, उदाहरणार्थ, यदि सिगरेट की माँग नहीं गिरती है और वह पहले जैसे ही बनी रहती है तो दियासलाई की कीमत बढ़ने पर भी दियासलाई की माँग नही घटेगी क्योंकि सिगरेट पीने वालों के लिए यह जरूरी है और इस प्रकार दियासलाई की माँग की लोच बेलोचदार हुई।

(10) **मनुष्य के स्वभाव तथा आदतों का प्रभाव (Effect of human nature and habits)**—यदि किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की आदत पड़ गयी है (जैसे, विशेष ब्रांड की चाय या विशेष ब्रांड की सिगरेट पीने की), तो उस वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी वह उसका प्रयोग कम नही करेगा तथा वस्तु की माँग बेलोचदार रहेगी। इसी प्रकार रीति-रिवाज (social customs) में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की माँग की लोच भी बेलोचदार रहती है।

(11) **समय का प्रभाव (Influence of time)**—प्रो. मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि समय का माँग की लोच पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग पर तत्काल ही प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें कुछ समय लगता है। अतः साधारण रूप में यह कहा जा सकता है कि समय जितना कम होगा, वस्तुओं की माँग की लोच कम लोचदार होगी और समय जितना अधिक होगा माँग की लोच अधिक लोचदार होगी क्योंकि उपभोक्ता दूसरी स्थानापन्न वस्तुओं को ज्ञात करके प्रयोग में लाने लगेगा।

माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व
(PRACTICAL UTILITY OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच का केवल सैद्धान्तिक महत्त्व ही नहीं है, बल्कि यह बहुत-सी व्यावहारिक समस्याओं के सुलझाने में मदद करती है। कीन्स (Keynes) के अनुसार, मार्शल की सबसे बड़ी देन **माँग की लोच का सिद्धान्त है, तथा इसके अध्ययन के बिना मूल्य तथा वितरण के सिद्धान्तों की विवेचना सम्भव नहीं है।** माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट है :

(1) **मूल्य सिद्धान्त में (In Theory of Value)**

(i) माँग की लोच का सिद्धान्त **किसी फर्म के साम्य की दशाओं के निर्धारण में सहायक** होता है। एक फर्म साम्य की दशा में तब होती है जबकि सीमान्त आगम (Marginal Revenue) = सीमान्त लागत (Marginal Cost)। परन्तु सीमान्त आगम माँग की लोच पर निर्भर करता है।

(ii) **एक एकाधिकारी उत्पादक (Monopolist) अपनी वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग की लोच के विचार की सहायता लेता है।** एकाधिकारी का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अर्थात वह 'मूल्य प्रति इकाई × बिक्री की गई मात्रा' के गुणनफल को अधिकतम करता है। यदि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है तो वह वस्तु की कीमत ऊँची-निर्धारित करेगा और ऐसा करने में उसकी बिक्री की गयी मात्रा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि उसकी वस्तु की माँग की लोच अधिक लोचदार है तो वस्तु का मूल्य नीचा रखकर अधिक बिक्री करेगा और लाभ को अधिकतम करेगा।

(iii) एकाधिकारी मूल्य-विभेदीकरण (Price discrimination) में भी लोच के विचार की सहायता लेता है। मूल्य-विभेद का अर्थ है कि विभिन्न ग्राहकों अथवा विभिन्न वर्गों या विभिन्न बाजारों में एक ही वस्तु के भिन्न मूल्य प्राप्त करना। मूल्य-विभेद उन्ही दो बाजारों या वर्गों के बीच सम्भव हो सकेगा, जिनमे वस्तु की माँग की लोच समान नही है। जिस बाजार या वर्ग में माँग की लोच लोचदार है वहाँ एकाधिकारी कम मूल्य रखेगा और जहाँ माँग की लोच बेलोचदार है वहाँ वस्तु की कीमत ऊँची रखेगा।

(iv) इसी प्रकार राशिपतन (dumping) करते समय भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों की माँग की लोच ध्यान में रखता है।

(v) संयुक्त पूर्ति (Joint Supply) से सम्बन्धित मूल्य निर्धारण में माँग की लोच का विचार सहायक होता है। जब दो या दो से अधिक वस्तुओं का उत्पादन साथ-साथ होता है (जैसे, गेहूँ तथा भूसा) तो उत्पादित वस्तुओं की लागतों को अलग-अलग मालूम करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति मे उत्पादक माँग की लोच का सहारा लेता है, जिसकी माँग बेलोच होती है उसकी लागत अधिक मानी जाती है और उसका मूल्य ऊँचा रखा जाता है, जिस वस्तु की माँग लोचदार होती है उसकी लागत कम मानी जाती है और उसका मूल्य नीचा रखा जाता है।

(2) वितरण सिद्धान्त में (In the Theory of Distribution)

माँग की लोच का विचार विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार (reward) निर्धारित करने मे भी सहायक होता है। उत्पादक उन उत्पत्ति के साधनों को अधिक पुरस्कार देता है जिनकी माँग की लोच उनके लिए बेलोचदार है तथा उन साधनो को कम पुरस्कार देता है जिनकी लोच उसके लिए लोचदार होती है। उदाहरणार्थ, किसी मालिक को श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी यदि उनकी माँग बेलोचदार है और कम मजदूरी दी जायगी, यदि मजदूरों की माँग लोचदार है।

(3) सरकार के लिए महत्त्व (Significance for the Government)

(i) सरकार या वित्तमन्त्री अधिक आय (revenue) प्राप्त करने के लिए कर लगाता है परन्तु इस दृष्टि से कर लगाते समय वस्तुओं की माँग की लोच को ध्यान में रखना होता है। वित्तमन्त्री बेलोचदार माँग वाली वस्तुओं पर कर लगाकर अधिक धन प्राप्त कर सकेगा क्योंकि कर के परिणाम-स्वरूप ऐसी वस्तुओ की कीमत बढने पर उसकी माँग मे कोई विशेष कमी नही आयेगी, इसके विपरीत लोचदार माँग वाली वस्तु पर कर लगाने से अधिक आय प्राप्त नही होगी क्योंकि कर के परिणाम स्वरूप ऐसी वस्तुओ की कीमत बढ़ने पर इनकी माँग बहुत गिर जायेगी।

(ii) कर लगाते समय सरकार को कर-भार (Incidence of taxation) का भी ध्यान रखना पडता है। सरकार का यह दृष्टिकोण होता है कि विभिन्न व्यक्तियों (उत्पादकों तथा उपभोक्ताओ) पर कर का भार न्यायपूर्ण (equitable) हो। सरकार को कर-भार को जानने के लिए माँग की लोच के विचार की मदद लेनी पड़ती है। यदि वस्तु बेलोचदार माँग वाली है तो उत्पादक कर के भार (burden) का अधिकाश भाग उपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित कर देंगे। इसके विपरीत यदि वस्तु लोचदार माँग वाली है तो उत्पादक उसके मूल्य को अधिक बढाकर कर-भार का अधिक भाग उपभोक्ताओ पर हस्तान्तरित नही कर पायेंगे क्योंकि अधिक ऊंचा मूल्य करने पर वस्तु की माँग बहुत कम हो जायेगी।

(iii) माँग की लोच की धारणा सरकार को यह निश्चित करने में मदद करती है कि वह कौनसे उद्योगों को सार्वजनिक सेवाएँ (Public Utilities) घोषित करके उनका स्वामित्व और प्रबन्ध अपने हाथ में ले। ऐसे उद्योग जिनकी वस्तुओं की माँग बेलोचदार होती है तथा साथ ही जिनका स्वामित्व व्यक्तिगत (private) एकाधिकारियो के हाथ में होता है, उन्हें सरकार जनता के हित मे सार्वजनिक सेवाएं घोषित करके अपने हाथ मे ले लेती है।

(iv) माँग की लोच का विचार सरकार को कुछ अन्य आर्थिक नीतियों में सहायता देता है। सरकार व्यापार-चक्र, मुद्रा-स्फीति (inflation) तथा मुद्रा-विस्फीति (deflation) की दशाओं इत्यादि के नियन्त्रण में अन्य बातों के साथ माँग की दशाओं तथा माँग की लोच को ध्यान में रखती है।

(v) किसी देश की सरकार को अपनी मुद्रा-चलन (currency) की उचित विनिमय-दर निर्धारण में माँग की लोच के विचार से सहायता मिलती है। यदि सरकार देश की 'विपरीत भुगतान की बाकी' (adverse balance of payments) को सुधारने के लिए मुद्रा-चलन का अवमूल्यन (devaluation) करना चाहती है तो उसे देश के आयातों तथा निर्यातों के माँग की लोच को ध्यान में रखना पड़ेगा। यदि उसके आयातों तथा निर्यातों दोनों की माँग बेलोचदार है तो सरकार को अवमूल्यन द्वारा 'विपरीत भुगतान की बाकी' को सुधारने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

(4) यातायात की भाड़े की दर निश्चित करने में माँग की लोच मदद करती है।

यदि वस्तु ऐसी है कि जिसके यातायात की माँग लोचदार है तो रेलवे भाड़े की दर कम रखेंगी और यदि बेलोचदार है तो ऊँची दर निश्चित करेगी अर्थात रेलवे वस्तु के भाड़े की दर उतनी तय करती है जितनी कि वस्तु सहन कर सके।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व (Significance in the Theory of International Trade)

किन्हीं दो देशों के बीच 'व्यापार की शर्तों' (Terms of trade) के अध्ययन में माँग की लोच की धारणा सहायक होती है।* 'व्यापार की शर्तें' देश की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करती हैं; जबकि सौदा करने की शक्ति वास्तव में आयातों तथा निर्यातों की माँग तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर करती है। यदि देश के निर्यातों की माँग बेलोचदार है तो वे विदेशों में ऊंची कीमतों पर बिक सकेंगे, यदि हमारे आयातों की माँग हमारे लिए बेलोचदार हैं तो उन्हें हमें ऊँची कीमत पर भी खरीदना पड़ेगा। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार 'व्यापार की शर्तें' माँग की लोच पर निर्भर करती हैं।

(6) 'सम्पन्नता के बीच गरीबी' के विरोधाभास की व्याख्या (Explanation of the 'Paradox of Poverty in Plenty')

उदाहरणार्थ, कृषि उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है और सम्पन्नता दिखायी देती है, परन्तु फिर भी इस सम्पन्नता के बीच किसान गरीब रह सकते हैं यदि उत्पादक की वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है क्योंकि ऐसी स्थिति में मूल्य कम होने पर भी किसानों का अतिरिक्त उत्पादन नहीं बिक पायेगा और उन्हें लाभ के स्थान पर नुकसान होगा।

माँग की लोच तथा माँग-रेखा के ढाल में सम्बन्ध
(RELATION BETWEEN ELASTICITY OF DEMAND AND THE SLOPE OF THE DEMAND CURVE)

साधारणतः यह कहा जाता है कि :

(i) यदि माँग की रेखा समतल (flat)[10] है तो वह बतायेगी कि माँग की लोच अधिक लोचदार (highly elastic) है अर्थात् इकाई से अधिक है, जैसा कि चित्र 12 से स्पष्ट है।

---

* यदि कोई देश अपनी निर्यात की वस्तु को महँगे दामों पर बेचता है या आयातों को नीचे दामों पर खरीदता है, तो 'व्यापार की शर्तें' उसके पक्ष में कही जाती हैं। इसकी विपरीत दशाओं में 'व्यापार की शर्तें' देश के विपक्ष में होंगी।

[10] यदि माँग रेखा पूर्ण समतल या पड़ी रेखा (horizontal) है, जैसा कि आगे चित्र 11 में AB रेखा है, तो यह 'पूर्णतया लोचदार माँग' (perfectly elastic demand) को बताती है। यदि माग रेखा आधार-रेखा (X-axis) पर खड़ी रेखा (vertical line) है जैसा कि चित्र 11 में CD रेखा है, तो यह 'पूर्णतया बेलोच माँग' (perfectly inelastic

(ii) यदि माँग की रेखा ढालू (steep) है तो वह यह बताती है कि माँग की लोच कम लोचदार (inelastic) है अर्थात इकाई से कम है जैसा कि चित्र 13 से स्पष्ट है।

(iii) यदि सीधी माँग रेखा (straight line demand curve) है जो कि न बहुत समतल (flat) है और न बहुत ढालू (steep) बल्कि ऐसी है जो कि X-axis के साथ 45° का कोण बनाती
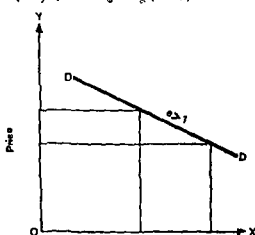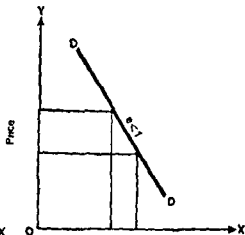
चित्र 12 चित्र 13

demand) को बताती है। पड़ी रेखा (PB) तथा खड़ी रेखा (PD) के बीच एक रेखा PK को खींचते हैं जो कि $\angle DPB$ को bisect करती है।

यदि अब PK रेखा को उठाकर PB की ओर चलाया जाये और यदि वह PK_1 या PK_2 का स्थान ग्रहण कर लेती है तो स्पष्ट है कि माँग की लोच 'अधिक लोचदार' या 'लोच इकाई से अधिक' होगी; और यदि PK रेखा को PK_2 के बाद और चलाया जाय ताकि वह PB रेखा से मिल जाये तो स्पष्ट है कि माँग की लोच पूर्णतया लोचदार हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे रेखा अधिक समतल (flat) होती *जाती है वैसे-वैसे वह अधिक लोच को* बताती है और जब वह पूर्णतया समतल या पड़ी हुई रेखा (perfectly flat or horizontal) हो जाती है तो वह पूर्णतया लोचदार माँग (perfectly elastic demand) को बताती है।
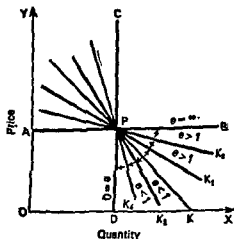
चित्र 11

यदि PK रेखा को उठाकर PD की ओर चलाया जाये और यदि वह PK_3 या PK_4 का स्थान ग्रहण कर लेती है तो स्पष्ट है कि माँग की लोच कम लोचदार होगी या इकाई से कम होगी; और यदि PK रेखा को PK_4 के बाद और चलाया जाये ताकि वह PD रेखा से मिल जाये तो स्पष्ट है कि माँग पूर्णतया बेलोच (perfectly inelastic) हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे रेखा अधिक ढालू (steep) होती जाती है, वैसे-वैसे वह कम लोच को बताती है और जब वह पूर्ण ढालू या खड़ी रेखा (perfectly steep or vertical line) हो जाती है तब वह पूर्णतया बेलोच माँग (perfectly in elastic demand) को बताती है।

है तो यह 'लोचदार माँग' या 'इकाई के बराबर' लोच को (माँग-रेखा के मध्य पर) बताती है जैसा कि चित्र 14 से स्पष्ट है; अथवा, यदि माँग की रेखा एक Rectangular Hyperbola है, जैसा कि चित्र 15 में दिखाया गया है, तो माँग की लोच वक्र रेखा की समस्त लम्बाई पर 'इकाई के बराबर' होगी।
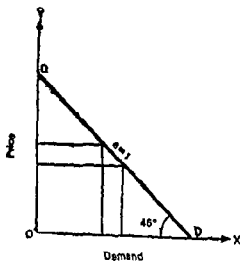
चित्र 14
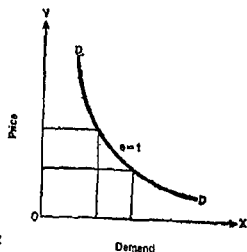
चित्र 15

परन्तु इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि 'माँग रेखा का समतल होना या ढालू होना माँग की लोच की श्रेणी (degree) की पूर्ण तथा उचित जाँच नहीं है।' ("But 'flatness' and 'steepness' are not perfect tests for elasticity.")

यह निम्न तथ्यों से स्पष्ट है:

(i) यदि दो माँग-रेखाएं भिन्न-भिन्न माप (scale) पर खींची जाती हैं तो उनका आकार (अर्थात् समतल होना या ढालू होना) अलग-अलग होगा, यद्यपि यह हो सकता है कि वे दोनों माँग

चित्र 16

चित्र 17

चित्र 18

रेखाएं एक ही प्रकार की माँग की दशाओं को बतायें। उदाहरणार्थ, चित्र 16 तथा चित्र 17 में माँग रेखाएँ एक प्रकार की माँग की दशाओं को बताती हैं, परन्तु फिर भी चित्र 16 में माँग रेखा अधिक समतल (flat) है जबकि चित्र 17 में माँग रेखा समतल (flat) न होकर ढालू (steep) है। यह अन्तर इसलिए है कि दोनों चित्रों में X-axis पर भिन्न-भिन्न माप (scale) लिये गये हैं।
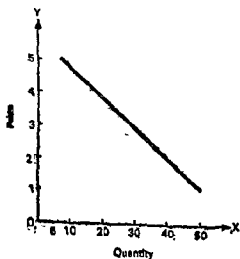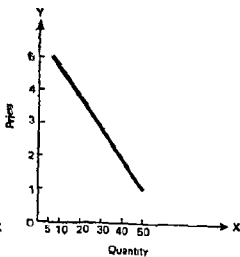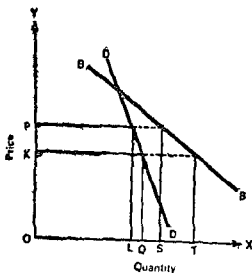
परन्तु यदि दोनों माँग रेखाएँ एक ही माप (scale) पर खींची जायं तो अवश्य ही समतल माँग रेखा ('Flat' demand curve), ढालू माँग रेखा ('Steep' demand curve) की अपेक्षा अधिक लोचदार होगी। इस बात को चित्र 18 मे दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि यदि माँग रेखा DD पर विचार किया जाये (जो कि ढालू है) तो माँग में परिवर्तन LQ, मूल्य में परिवर्तन PK की अपेक्षा कम है अर्थात् 'माँग की लोच बेलोच या इकाई से कम' है। यदि माँग रेखा BB पर विचार किया जायें (जो कि समतल है) तो माँग में परिवर्तन ST, मूल्य में परिवर्तन PK की अपेक्षा अधिक है, अर्थात् माँग की लोच 'अधिक लोचदार' या 'इकाई से अधिक' है।

(ii) यद्यपि माँग रेखा का ढाल एक ही हो, तो भी उस माँग रेखा की सम्पूर्ण लम्बाई पर एक समान माँग की लोच नही होगी, उसके भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर माँग की लोच भिन्न-भिन्न होगी। चित्र 19 में DD माँग रेखा का एक ही ढाल है अर्थात् यह X-axis के साथ 45° का कोण बनाती है, परन्तु फिर भी इसके विभिन्न बिन्दुओ पर माँग की लोच भिन्न-भिन्न है—P_1 बिन्दु[11] पर $e<1$, P बिन्दु (जो कि मध्य बिन्दु है) पर $e=1$ तथा P_2 बिन्दु पर $e>1$।

चित्र 19

निष्कर्ष—माँग की लोच केवल माँग रेखा के ढाल (slope) पर ही निर्भर नही करती है। वास्तव में माँग की लोच दो बातों पर निर्भर करती है: (i) माँग रेखा के ढाल (slope) पर,
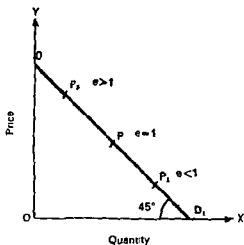
[11] किसी बिन्दु पर माँग की लोच मालूम करने के लिए हमे 'बिन्दु रीति' (Point Method) ध्यान मे रखना चाहिए। P_1 बिन्दु पर माँग की लोच $= \frac{\text{Lower sector}}{\text{Upper sector}} = \frac{P_1D_1}{P_1D}$ चूकि P_1D_1 (Lower sector) $<$ P_1D (Upper sector) से इसलिए, $e<1$; इसी प्रकार से P बिन्दु (जोकि मध्य बिन्दु है) पर $e=1$, P_2 बिन्दु पर $e>1$।

तथा (ii) X-axis और Y-axis से 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' (price and quantity point) की स्थिति पर। मांग रेखा पर प्रत्येक बिन्दु 'कीमत' तथा 'माँगी गयी मात्रा' में सम्बन्ध बताता है, और उसके प्रत्येक बिन्दु को 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' कहा जाता है। चित्र 19 में P, P_1 तथा P_2 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' है। P_1 बिन्दु पर माँग की लोच केवल मांग रेखा के ढाल पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि X-axis और Y-axis से P_1 की स्थिति क्या है। इसी प्रकार से P तथा P_2 पर माँग की लोच दोनों बातों पर निर्भर करती है।

माँग की लोच के प्रकार
(KINDS OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच तीन प्रकार की होती है : (1) माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand), (2) माँग की आय-लोच (Income Elasticity of Demand), (3) माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand) तथा (4) माँग की प्रतिस्थापन लोच (Demand Elasticity of Substitution)। इनमे से 'माँग की कीमत लोच' का अध्ययन हम पहले ही कर चुके है। अब यहाँ पर हम 'मांग की आय लोच', 'मांग की आड़ी लोच' तथा 'माँग की प्रतिस्थापन लोच' का अध्ययन करेंगे।

माँग की आय लोच
(INCOME ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की आय लोच की परिभाषा

उपभोक्ता की आय माँग को प्रभावित करने वाले तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व है। 'माँग की आय लोच' आय में परिवर्तन के उत्तर (response) में माँग में परिवर्तन की मात्रा का माप है। अधिक निश्चित रूप से इसकी परिभाषा इस प्रकार है—यदि कीमत तथा अन्य बातें यथास्थिर रहें, तो माँग में हुए आनुपातिक परिवर्तन को आय में हुए आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर 'माँग की आय लोच' प्राप्त की जाती है।

माँग की आय लोच को नापने की रीति

$$e_i = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$

जबकि e_i = Income Elasticity of Demand (माँग की आय लोच)

यह ध्यान रहे कि 'मांग की आय लोच' पर विचार करते समय हम मान लेते हैं कि उस वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता, वह पूर्ववत् रहती है।

माँग की आय लोच के मापने के उपर्युक्त सूत्र की अपेक्षा और अधिक सही सूत्र निम्न प्रकार दिया जाता है :

$$e_i = \frac{\dfrac{Q \sim Q_1}{Q + Q_1}}{\dfrac{I \sim I_1}{I + I_1}}$$

जबकि, Q = माँग की पूर्व मात्रा
Q_1 = माँग की नयी मात्रा
I = पूर्व आय
I_1 = नयी आय

माँग की आय लोच की श्रेणियाँ (Degrees)

सामान्यतया माँग की आय लोच धनात्मक (positive) होती है अर्थात् आय मे वृद्धि या कमी के साथ उपभोक्ता वस्तुओं को अधिक या कम मात्रा खरीदता है। दूसरे शब्दों में, आय में परिवर्तन तथा माँग मे परिवर्तन एक ही दिशा मे होते हैं। परन्तु कुछ दशाओं में 'मांग की आय लोच' ऋणात्मक (negative) भी होती है। अर्थात् आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता कुछ वस्तुओं

की कम माँग करता है या उन पर कम खर्च करता है। यह स्थिति निम्न कोटि की वस्तुओं (inferior goods) के सम्बन्ध में पायी जाती है।

'माँग की आय लोच' की निम्न पाँच श्रेणियाँ हैं :

(1) **माँग की शून्य आय लोच** (Zero income elasticity of demand)—जब आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग की मात्रा मे या खरीद मे कोई भी परिवर्तन नहीं होता तो माँग की आय लोच शून्य कही जाती है। शून्य माँग की लोच एक 'विभाजक रेखा' (dividing line) की भाँति काम करती है। इसके एक ओर तो माँग की आय लोच ऋणात्मक (negative) होती है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ माँग की मात्रा मे या वस्तु पर खर्च मे कमी होती है; जबकि 'माँग की शून्य आय लोच' की दूसरी ओर माँग की आय लोच धनात्मक (positive) होती है।

(2) **ऋणात्मक माँग की आय लोच** (Negative income elasticity of demand)—निम्न कोटि की वस्तुओं (जैसे वेजीटेबिल आयल, शुद्ध घी की अपेक्षा मे) के सम्बन्ध में माँग की आय लोच ऋणात्मक होती है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ इन वस्तुओं पर कम खर्च किया जाता है।

(3) **माँग की आय लोच इकाई के बराबर** (Unitary income elasticity of demand)—इसका अर्थ है कि उपभोक्ता की आय का अनुपात जो कि वह वस्तु विशेष पर व्यय करता है, आय मे वृद्धि के पहले तथा बाद मे दोनों दशाओं मे एक समान रहता है। यह एक 'विभाजक रेखा' (dividing line) की भाँति कार्य करती है। इसके एक ओर 'माँग की इकाई से अधिक आय लोच' होती है और दूसरी ओर 'माँग की इकाई से कम आय लोच' होती है।

(4) **माँग की आय लोच 'इकाई से अधिक'** (Income elasticity of demand greater than unity)—इसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का *व्यय अधिक अनुपात में करता है। प्रायः विलासिता-वस्तुओं के सम्बन्ध मे माँग की आय लोच* इकाई से अधिक पायी जाती है।

(5) **माँग की आय लोच 'इकाई से कम'** (Income elasticity of demand less than unity)—इसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का व्यय कम अनुपात में करता है। ऐसी माँग की आय लोच प्रायः आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में पायी जाती है।

माँग की आड़ी लोच
(CROSS ELASTICITY OF DEMAND)

प्राक्कथन

माँग की आड़ी लोच के विचार का नियमित रूप से विकास मूर (More) द्वारा अपनी पुस्तक *Synthetic Economics* मे किया गया है और इस विचार को अधिक विस्तृत रूप मे *कीमत के सिद्धान्त (Theory of Value) मे प्रोफ़ेसर रॉबर्ट टिफ़िन (Robert Tiffin) ने किया है।*

दो वस्तुओं की माँग परस्पर इस प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है कि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में परिवर्तन ला सकता है; जबकि दूसरी वस्तु की कीमत पूर्ववत् रहती है। वस्तुएं तीन प्रकार की हो सकती हैं : प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएं (competing goods or substitutes), पूरक वस्तुएं (complementary goods) या अनाश्रित वस्तुएं (independent goods)। माँग की आड़ी लोच द्वारा हम प्रथम दो प्रकार की सम्बन्धित वस्तुओं के बीच 'सम्बन्ध की मात्रा' (degree of relationship) माप सकते हैं।

माँग की आड़ी लोच की परिभाषा

एक वस्तु की माँग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन के उत्तर (response) में होता है, उसे माँग की आड़ी लोच कहते हैं। माना कि दो वस्तुएं X तथा Y हैं। 'माँग की कीमत लोच' मे हम X वस्तु की कीमत मे परिवर्तन करते हैं, और फिर देखते हैं कि X वस्तु की माँग की

मात्रा मे कितना परिवर्तन होता है। माँग की आडी लोच मे हम Y की कीमत मे परिवर्तन करते हैं और फिर देखते है कि X की माँग मे कितना परिवर्तन होता है। अधिक निश्चित रूप में, माँग की आड़ी लोच को X वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन को Y वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त किया जाता है।

माँग की आड़ी लोच के मापने की रीति

$$\text{माँग की आडी लोच} = \frac{\text{X वस्तु की माँग मे आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{Y वस्तु की कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$

माँग की आड़ी लोच निकालने में उपर्युक्त सूत्र को और अधिक सही रूप में निम्न प्रकार से बताते हैं :

$$\text{माँग की आडी लोच} = \frac{\dfrac{Q \sim Q_1x}{Qx + Q_1x}}{\dfrac{Py \sim P_1y}{Py + P_1y}}$$

जबकि Qx = X वस्तु की पूर्व मात्रा
Q_1x = X वस्तु की नयी मात्रा
Py = Y वस्तु की पूर्व कीमत
P_1y = Y वस्तु की नयी कीमत

माँग की आड़ी लोच के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें

(i) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे को पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) हैं तो उनके बीच प्रतिस्थापन की दर समान रहेगी, और ऐसी स्थिति मे एक वस्तु का मूल्य कम होने पर, यदि दूसरी वस्तु का मूल्य यथास्थिर रहे, उपभोक्ता दूसरी वस्तु के स्थान पर पूर्ण रूप से पहली वस्तु को प्रयोग मे लाना चाहेगा। ऐसी स्थिति में प्रतिस्थापन की दर असीमित या अनन्त (infinite) कही जाती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन मे ऐसी दो वस्तुएं जो कि पूर्ण स्थानापन्न हों, नही पायी जाती, और यदि पायी जाती हैं तो इसका अर्थ है कि वे वस्तुए भिन्न-भिन्न दो वस्तुएँ नहीं बल्कि एक ही वस्तु है।

(ii) (अ) व्यावहारिक जीवन में ऐसी वस्तुएँ पायी जाती हैं जो कि बहुत निकट या अच्छी स्थानापन्न (close or good substitutes) हों। ऐसी वस्तुओं की माँग की आड़ी लोच बहुत अधिक होगी। अच्छी स्थानापन्न वस्तुओं के सम्बन्ध मे यदि एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि होती है तो दूसरी वस्तु की माँग मे वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ, कॉफी की कीमत में वृद्धि होती है, तो अन्य बातें यथावत रहने पर, चाय की माँग मे वृद्धि होगी। दूसरे शब्दो मे, दो प्रतियोगी वस्तुओं में सम्बन्ध सीधा या धनात्मक (direct or positive) होता है। ऐसी दशा मे हम माँग की आड़ी लोच की प्राप्त संख्या (numerical value) के पहले धनात्मक चिह्न (sign of plus) लगाते हैं।

दूसरे शब्दों में, यदि माँग की आड़ी लोच को धनात्मक संख्या (positive numerical vaule) दी हुई है, तो उसको देखकर हम यह कह सकते हैं कि सम्बन्धित दो वस्तुएं प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ हैं।

(ब) वस्तुओं की तुलना करते समय, माँग की आड़ी लोच का अंक (coefficient or numerical value) जितना अधिक होगा उतनी ही वे वस्तुएँ अधिक निकट की स्थानापन्न होंगी।

(iii) (अ) यदि दो वस्तुए ऐसी हैं जिनकी संयुक्त माँग (joint demand) है अर्थात् पूरक वस्तुए (complementary goods) है, जैसे डबल रोटी तथा मक्खन, तो रोटी की कीमत में थोड़ी कमी मक्खन की माँग को बढ़ा देगी। अत स्पष्ट है कि ऐसी वस्तुओं में सम्बन्ध उलटा (inverse) या ऋणात्मक (negative) होता है। इसलिए ऐसी दशा मे माँग की आडी लोच के अंक (numerical value) के पहले ऋण का चिह्न (sign of minus) लगाते है।

दूसरे शब्दों में, यदि माँग की आड़ी लोच का ऋणात्मक अंक (negative value) दिया हुआ है तो उसे देखकर हम यह कह सकते हैं कि दो वस्तुएं पूरक वस्तुएं हैं, न कि प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएं।

(ब) यहाँ पर आड़ी लोच का अंक जितना अधिक होगा उतनी ही वस्तुएं अधिक निकट की पूरक वस्तुए होंगी।

(iv) यदि माँग की आड़ी लोच का अंक (coefficient of numerical value) शून्य है, तो इसका अर्थ है कि दो वस्तुएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित नहीं हैं—न तो वे स्थानापन्न वस्तुएँ हैं और न पूरक वस्तुएं बल्कि अनाश्रित वस्तुएं (independent goods) है।

प्रतिस्थापन की माँग लोच
(DEMAND ELASTICITY OF SUBSTITUTION)

1. **प्राक्कथन** (Introduction)

प्रतिस्थापन की लोच (elasticity of substitution) का विचार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है; इसका प्रयोग उपभोग तथा उत्पादन दोनों मे किया जाता है। यह विचार 'प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect) पर आधारित है; प्रतिस्थापन की लोच उस सुगमता (ease) को मापती है जिससे कि एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु को, या एक उत्पत्ति के साधन के स्थान पर दूसरे साधन को, प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जब यह वस्तुओ के बीच प्रतिस्थापन की मात्रा (degree) को मापता है तो इसे 'प्रतिस्थापन की माँग लोच' (*Demand Elasticity of Substitution*) कहते हैं; और जब यह उत्पत्ति के साधनों के बीच प्रतिस्थापन की मात्रा को नापता तो इसे 'प्रतिस्थापन की साधन लोच' (*Factor Elasticity of Substitution*) कहते हैं। *यहाँ पर हम 'प्रतिस्थापन की माँग लोच' (Demand Elasticity of substitution) की विवेचना करेंगे।* **इसको हम आगे संक्षेप मे 'प्रतिस्थापन की लोच' (Elasticity of Substitution) कहेंगे।**

2. **प्रतिस्थापन की माँग लोच का विचार तथा उसका अर्थ** (The Concept and Meaning of Demand Elasticity of Substitution)

प्रतिस्थापन की लोच निर्भर करती है 'प्रतिस्थापन प्रभाव' पर और इसको किसी भी तटस्थता-वक्र रेखा के किसी भी बिन्दु पर मापा जा सकता है। इसको एक सामान्य तरीके (general way) *से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—*

> **प्रतिस्थापन की माँग लोच, दो वस्तुओं के कीमत-अनुपात में परिवर्तन के उत्तर में, उस सीमा या मात्रा को मापती है जहाँ तक कि एक वस्तु दूसरी वस्तु के स्थान पर प्रतिस्थापित की जा सकती है, यदि उपभोक्ता संतुष्टि के एक समान स्तर को बनाये रखता है अर्थात उपभोक्ता एक हो दी हुई तटस्थता-वक्र रेखा पर रहता है।**[11]

माना कि उपभोक्ता दो वस्तुओ X तथा Y को खरीदता है, माना कि X की कीमत घट जाती है (और Y की कीमत समान रहती है), और इस प्रकार दोनो वस्तुओ के कीमत-अनुपात मे परिवर्तन हो जाता है। *अब उपभोक्ता सस्ती वस्तु X का, मँहगी वस्तु Y के स्थान पर प्रतिस्थापन* करेगा। दूसरे शब्दों में, इन वस्तुओं के कीमत अनुपात मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप दोनो वस्तुओं

---

[11] Demand Elasticity of Substitution measures the extent (or degree) to which one good can be substituted for another good in response to a given change in their price ratio, if the consumer maintains the same level of satisfaction, that is, if he remains on the same given indifference curve.

दो उत्पत्ति के साधनो के बीच 'प्रतिस्थापन की साधन लोच' को भी इसी प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं—

Factor Elasticity of Substitution measures the extent (or degree) to which one factor can be substituted for another factor in response to a given change in their price ratio, if the total output remains the same that is, if the producer remains on the same isoproduct vecur

X तथा Y का मिलाने (या संयोग करने) तथा खरीदने का अनुपात भी परिवर्तित हो जायेगा। अब हम प्रतिस्थापन की माँग लोच (E_s) की एक अधिक सही (precise) परिभाषा देते हैं—

> दो वस्तुओं X तथा Y के बीच प्रतिस्थापन की लोच इन दो वस्तुओं के खरीदे जाने वाले संयोग-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन तथा इन वस्तुओं के कीमत-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन के बीच अनुपात को बताती है।[13]

उपर्युक्त परिभाषा को हम निम्नलिखित गणितात्मक सूत्र (mathematical formula) द्वारा बता सकते हैं—

$$Es = \frac{\text{X तथा Y के संयोग-अनुपात मे आनुपातिक परिवर्तन (Proportional change in the combination-ratio of X and Y)}}{\text{X तथा Y के कीमत अनुपात मे आनुपातिक परिवर्तन (Proportional change in the price-ratio of X तथा Y)}}$$

$$= \frac{\dfrac{\Delta\left(\dfrac{X}{Y}\right)}{\dfrac{X}{Y}}}{\dfrac{\Delta\left(\dfrac{P_X}{P_Y}\right)}{\dfrac{P_X}{P_Y}}}$$

[वास्तव मे इस सूत्र के पहले ऋणात्मक चिन्ह (minus sign) होना चाहिए, परन्तु इसे सरलता के लिए छोड़ दिया है।]

जबकि,

$\frac{X}{Y}$ = दो वस्तुओ X तथा Y का संयोग-अनुपात (combination ratio)

$\Delta\left(\frac{X}{Y}\right)$ = X तथा Y के संयोग-अनुपात मे परिवर्तन

$\frac{P_X}{P_Y}$ = X तथा Y का कीमत-अनुपात

$\Delta\left(\frac{P_X}{P_Y}\right)$ = X तथा Y के कीमत-अनुपात मे परिवर्तन

हम प्रतिस्थापन के लोच के विचार को एक उदाहरण द्वारा समझा सकते हैं। माना कि वस्तु X (या चाय) की कीमत 10 रु प्रति किलोग्राम है और वस्तु Y (या काफी) की कीमत 15 रु. प्रति किलोग्राम है। माना एक उपभोक्ता वस्तु X की 2 किलो मात्रा तथा वस्तु Y की 3 किलो मात्रा खरीदता है; इस प्रकार X तथा Y का संयोग अनुपात (combination ratio) $\frac{2}{3}$ है और उनका कीमत अनुपात $\frac{10}{15}$ या $\frac{2}{3}$ हैं। अब माना कि वस्तु X की कीमत गिरकर 8 रु प्रति किलो हो जाती है और Y की कीमत समान रहती है। अब उपभोक्ता सस्ती वस्तु X को महगी वस्तु Y के स्थान पर प्रतिस्थापित करेगा। माना कि उपभोक्ता अब वस्तु X की 3 किलो मात्रा तथा वस्तु Y की 2 किलो

[13] Elasticity of substitution between two goods X and Y is the ratio of the proportional change in the combination-ratio in which the two goods are purchased to a given proportional change in their price ratio.

मात्रा खरीदता है। परिवर्तित दशा में X तथा Y का नया संयोग-अनुपात $\frac{3}{2}$ तथा नया कीमत अनुपात $\frac{8}{15}$ होगा। अब हम प्रतिस्थापन की लोच के सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$$E_s = \frac{\text{X तथा Y के संयोग–अनुपात मे आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{X तथा Y के कीमत अनुपात मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\frac{2}{3}-\frac{3}{2}}{\frac{2}{3}}}{\dfrac{\frac{2}{3}-\frac{8}{15}}{\frac{2}{3}}}$$

$$= \frac{\dfrac{-\frac{5}{6}}{\frac{2}{3}}}{\dfrac{\frac{2}{15}}{\frac{2}{3}}}$$

$$= -\frac{\frac{5}{6}\times\frac{3}{2}}{\frac{2}{15}\times\frac{3}{2}}$$

$$= -\frac{\frac{5}{4}}{\frac{1}{5}}$$

$$= -\frac{25}{4}$$

$$= -6{\cdot}2$$

ऋणात्मक चिन्ह बताता है कि दो वस्तुएं स्थानापन्न (substitutes) हैं, तथा प्रतिस्थापन की लोच का अंक (numerical value) बताता है कि दोनो वस्तुएं अच्छी स्थानापन्न (good substitutes) हैं। दूसरे शब्दों मे, सुविधा के लिए यदि हम ऋणात्मक चिह्न छोड दें, तो हम देखते हैं $E_S > 1$।

इस विचार को अच्छी तरह से समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि **'माँग की आड़ी लोच'** (*Cross Elasticity of Demand*) तथा **'प्रतिस्थापन की माँग लोच'** (Demand Elasticity of Substitution) के बीच अन्तर को समझ लिया जाये। **माँग की आड़ी लोच** एक वस्तु X की माँग मे आनुपातिक परिवर्तन तथा दूसरी वस्तु Y की कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन के अनुपात को बताता है।[14] माँग की आडी लोच की दशा मे हम 4 चरों (*four variables*) से सम्बन्ध रखते हैं—एक वस्तु X की माँग तथा उसी वस्तु X की माँग मे परिवर्तन, और दूसरी वस्तु Y की दी हुई कीमत तथा इसी वस्तु Y कीमत मे परिवर्तन। **प्रतिस्थापन की माँग लोच** बताती है **अनुपातों में परिवर्तनों के अनुपात** (*ratio of the changes in the ratios*) को। दूसरे शब्दो मे, प्रतिस्थापन की माँग लोच दो वस्तुओ X तथा Y के 'संयोग–अनुपात मे परिवर्तन' तथा इन्ही दो वस्तुओ X तथा Y के 'कीमत-अनुपात में परिवर्तन' के बीच अनुपात को बताती है। दूसरे शब्दो मे, प्रतिस्थापन की माँग लोच के अन्तर्गत हम 8 चरों (*eight variables*) से सम्बन्ध रखते हैं—एक वस्तु X की दी हुई कीमत तथा मात्रा और इसी वस्तु की परिवर्तित (changed) कीमत व मात्रा; और दूसरी वस्तु Y के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार के 4 चर।

अब हम प्रतिस्थापन की लोच की श्रेणियो (*degrees*) की विवेचना करते हैं; इसकी 5 श्रेणियां हैं जिसमे से 2 श्रेणियां एक सिरे की स्थितियां (extreme cases) हैं। आगे हम पाँचो श्रेणियों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

[14] Cross Elasticity of demand is the ratio of the proportional change in the demand of one commodity X and the proportional change in the price of another commodity Y.

1. **प्रतिस्थापन की अनन्त लोच** (Infinite Elasticity of Substitution) अथवा $E_S = \infty$; लोच की ऐसी स्थिति तब होगी जबकि दो वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न (Perfect substitutes) मान ली जाती हैं। जब दो वस्तुए पूर्ण स्थानापन्न होती हैं तो दोनों के बीच प्रतिस्थापन का अनुपात (ratio of substitution) समान या स्थिर रहेगा। दूसरे शब्दों मे, जब एक वस्तु X की कीमत घटती है और दूसरी वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है तो उपभोक्ता वस्तु X को, वस्तु Y के स्थान पर, पूर्णतया प्रतिस्थापित करेगा। ऐसी दो वस्तुओ X तथा Y के बीच प्रतिस्थापन की लोच अनन्त (infinite) कही जाती है। परन्तु वास्तविक जीवन मे कोई भी दो वस्तुएं पूर्ण स्थानापन्न नही होती हैं; और यदि दो वस्तुएं पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे वस्तुएं भिन्न नही हैं बल्कि एक ही हैं अथवा एक ही वस्तु की इकाइयाँ है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक जीवन मे किन्ही भी दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की लोच अनन्त नही होती। ऐसी स्थिति केवल एक सिरे की सैद्धान्तिक स्थिति (one theoretical extreme case) है।

2. **शून्य प्रतिस्थापन की लोच** (Zero Elasticity of Substitution) अथवा $E_s = 0$; ऐसी स्थिति तब होगी जबकि दो वस्तुएं X तथा Y सदैव एक निश्चित या स्थिर अनुपात मे प्रयोग की जाती हैं अर्थात् जबकि दो वस्तुएं पूरक (complementary) होती हैं। ऐसी वस्तुओ के सम्बन्ध में यदि उनके कीमत-अनुपात में परिवर्तन होता है तो भी इन दो वस्तुओ के माँग-अनुपात या संयोग-अनुपात में कोई भी परिवर्तन नही होगा; अर्थात् इन वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की कोई सम्भावना नही होगी और इसलिए इनके बीच प्रतिस्थापन की लोच शून्य होगी। यह एक सिरे की दूसरी स्थिति (another extreme case) है।

इन दो सिरे की स्थितियों (two extreme cases) के बीच प्रतिस्थापन की लोच (E_S) ऊँची, साधारण, या नीची (high, moderate or low) हो सकती है। E_S ऊँची कही जायेगी जबकि $E_S > 1$, वह साधारण होगी जबकि $E_S = 1$, तथा वह नीची होगी जबकि $E_S < 1$।

2. **ऊँची प्रतिस्थापन की लोच** (High Elasticity of Substitution) अथवा $E_S > 1$; ऐसी स्थिति तब होगी जबकि दो वस्तुएं X तथा Y अच्छे स्थानापन्न (good substitutes) हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होगी जबकि दो वस्तुओं X तथा Y के माँग-अनुपात या संयोग-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन अधिक है इन वस्तुओं के कीमत-अनुपात मे आनुपातिक परिवर्तन से।

4. **साधारण प्रतिस्थापन की लोच** (Moderate Elasticity of Substitution) अथवा $E_S = 1$; ऐसा तब होगा जबकि दो वस्तुओं X तथा Y के संयोग-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन ठीक बराबर है इन वस्तुओं के कीमत-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन के।

5. **नीची प्रतिस्थापन की लोच** (Low Elasticity of substitution) अथवा $E_S < 1$; ऐसी स्थिति तब होगी जबकि दो वस्तुएं X तथा Y अच्छे स्थानापन्न नही है, अर्थात वे बुरे स्थानापन्न हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होगी जबकि दो वस्तुओं X तथा Y के संयोग-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन कम है अपक्षाकृत इन वस्तुओं के कीमत-अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन के।

तीन माँग की लोचों E_p, E_i तथा E_s में सम्बन्ध
(RELATIONSHIP AMONG THREE ELASTICITIES OF DEMAND E_p, E_i AND E_s)

माँग की कीमत लोच (E_p) निर्भर करती है 'कीमत-प्रभाव' (price effect) पर, माँग की आय लोच निर्भर करती है 'आय-प्रभाव' (income effect) पर, तथा माँग की प्रतिस्थापन लोच निर्भर करती है 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' (substitution effect) पर। हम जानते हैं कि कीमत प्रभाव = आय प्रभाव + प्रतिस्थापन प्रभाव। अतः उपर्युक्त तीनो लोच भी आपस में सम्बन्धित होनी

चाहिए। इन तीनो लोचों में पारस्परिक सम्बन्ध को निम्नलिखित गणितात्मक सूत्र (mathematical formula) द्वारा बताया जाता है—

$$E_p = KX.E_i + (1 - KX)E_s$$

जबकि,

E_p = माँग की कीमत-लोच

E_i = माँग की आय-लोच

E_s = माँग की प्रतिस्थापन लोच

KX = उपभोक्ता की आय का वह भाग जो कि उपभोक्ता वस्तु X पर खर्च करता है।

(1 − KX) = उपभोक्ता की आय का वह भाग जो कि वह अन्य वस्तु (Y) या अन्य वस्तुओं पर व्यय करता है।

हम जानते है कि एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि (या कमी) उस वस्तु की माँगी गयी मात्रा में कमी (या वृद्धि) उत्पन्न करती है। कीमत मे परिवर्तन के उत्तर मे एक वस्तु की माँग पर प्रभाव दो प्रकार के प्रभावो का परिणाम होता है—आय-प्रभाव तथा प्रतिस्थापन-प्रभाव। उपर्युक्त समीकरण (या सूत्र) के दायी ओर दो भाग हैं, प्रथम भाग $KX.E_i$ आय प्रभाव को बताता है तथा दूसरा भाग $(1-KX)E_s$ प्रतिस्थापन प्रभाव को बताता है। अब हम इन दोनों भागो की व्याख्या कुछ विस्तार के साथ देते हैं—

1. समीकरण की दायी ओर का प्रथम भाग KXE_i यह बताता है कि वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप आय-प्रभाव किस प्रकार उस वस्तु की माँग को प्रभावित करता है। वास्तव मे आय-प्रभाव दो बातो पर निर्भर करता है—(i) द्राव्यिक आय का भाग या अनुपात (proportion) जो कि उपभोक्ता वस्तु X पर व्यय करता है; तथा (ii) माँग की आय लोच (E_i) पर। अब हम इन दोनों बातो को अलग-अलग लेते हैं:

   (i) उपभोक्ता की द्राव्यिक आ का अनुपात(या भाग)जो कि पिछले समय मे(previously) वस्तु X पर व्यय किया गया है, यह निर्धारित करेगा कि वस्तु X की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता की (वास्तविक) आय कितनी मात्रा (amount) से बढेगी। आय मे यह वृद्धि प्राप्य होगी वस्तु X की और अधिक मात्रा खरीदने के लिए तथा अन्य वस्तुओ को खरीदने के लिए भी। "दी हुई आय-लोच के अन्तर्गत, जितना ही अधिक एक उपभोक्ता की आय का अनुपात या भाग वस्तु X पर व्यय किया गया था और जिसकी कीमत अब गिर गयी है, तो आय में उतनी ही अधिक वृद्धि प्राप्य होगी (इस वस्तु X तथा अन्य वस्तुओं की) नयी खरीदों के लिए और परिणामस्वरूप इस वस्तु (X) की खरीद मे उतनी ही अधिक वृद्धि होगी।"[15]

   (ii) दूसरी बात, जिस पर आय-प्रभाव निर्भर करता है, है 'माँग की आय-लोच का आकार' (size of income elasticity of demand)। "यह (अर्थात आय लोच का आकार) इस बात को निर्धारित करता है कि वस्तु (X) की कीमत मे कमी के परिणामस्वरूप आय में प्राप्य वृद्धि का कितना अनुपात (या

---

[15] "The income elasticity of demand being given, the greater the proportion of one's income spent on the good (X) whose price has fallen, the greater the amount of income set free for new purchases (both of that good and other goods) and the greater the consequent increase in the purchases of the good in question"

भाग) वस्तु (X) पर व्यय किया जायेगा जिसकी कीमत गिर गयी है तथा कितना भाग दूसरी वस्तुओं पर व्यय किया जायेगा।"[16]

उपर्युक्त सूत्र या समीकरण में KX आय का वह अनुपात या भाग है जो कि उपभोक्ता वस्तु X पर व्यय करता है तथा E_i माँग की आय लोच है। अतः समीकरण की दायीं ओर का प्रथम भाग अर्थात $KX.E_i$ माँग (या माँग की कीमत लोच E_p) पर आय-प्रभाव के असर (influence) को बताता है।

2. वास्तव में वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता सस्ती वस्तु X का अधिक प्रतिस्थापन करेगा महँगी वस्तु Y के स्थान पर जिसकी कीमत स्थिर रहती है। वस्तु X का प्रतिस्थापन (substitution) दो बातों पर निर्भर करेगा—
   (i) वह सीमा जहाँ तक कि वस्तु X प्रतिस्थापित (substitute) की जा सकती है वस्तु Y के स्थान पर, अर्थात् प्रतिस्थापन की लोच (E_s) पर निर्भर करेगा।
   (ii) आय का वह भाग (या अनुपात) जो कि वस्तु X पर व्यय नहीं किया जाता है अर्थात आय का वह भाग जो कि दूसरी वस्तु Y पर व्यय करने के लिए प्राप्य है। आय का ऐसा भाग या अनुपात $(1-KX)$ है; KX आय का वह भाग है जो कि वस्तु X पर व्यय किया जाता है, अतः $(1-KX)$ आय का वह भाग होगा जो कि दूसरी वस्तु Y पर व्यय किया जायेगा।

इस प्रकार से समीकरण के दायीं ओर का दूसरा भाग $(1-KX)E_s$ माँग (या माँग की कीमत लोच E_p) पर प्रतिस्थापन प्रभाव के असर को बताता है।

अतः उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रभावों (अर्थात् आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव) को मिलाने से हमें यह सूत्र या समीकरण (formula of equation) प्राप्त हो जाती है—$E_p = KX.E_i + (1-KX)E_s$ जो कि तीनों लोचों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताती है। वास्तव में उपर्युक्त समीकरण यह बताती है कि कीमत प्रभाव निर्भर करता है आय-प्रभाव तथा प्रतिस्थापन-प्रभाव पर, तथा तीनों प्रभाव अपनी लोचों में दिखायी पड़ते हैं।[17]

यह स्पष्ट है कि यदि तीन लोचों में से कोई दो लोच दी हुई हैं तथा आय का वह भाग या अनुपात भी दिया हुआ है जो कि उपभोक्ता एक वस्तु पर व्यय करता है, तो तीसरी लोच के मूल्य (value) को ज्ञात किया जा सकता है। इस बात को नीचे दिये गये दो उदाहरणों, जो कि स्टोनियर तथा हेग (Stonier and Hague) द्वारा दिये गये हैं, की सहायता से समझाया जा सकता है। निम्न उदाहरणों में माँग की कीमत लोच (E_p) के मूल्य (value) को ज्ञात किया गया है जबकि अन्य बातें दी हुई हैं—

उदाहरण 1—माना कि एक वस्तु X के लिए माँग की आय लोच $(E_i)=2$ है, इस वस्तु X तथा दूसरी वस्तु Y के बीच प्रतिस्थापन की लोच $(E_s)=3$ है, तथा उपभोक्ता वस्तु X पर अपनी आय का $\frac{1}{10}$ भाग व्यय कर रहा है अर्थात $KX=\frac{1}{10}$ के है। अब हम सूत्र या समीकरण में इन मूल्यों (values) का प्रयोग करके माँग की कीमत लोच (E_p) ज्ञात कर सकते हैं—

$$E_p = KX.E_i + (1-KX)E_s$$

[16] "This (that is, the size of income elasticity) determines what proportion of the income set free by the fall in price will be spent on good (X) whose price has fallen and what proportion will be spent on other goods."

[17] As a matter of fact the above equation indicates that price effect depends on the income effect and the substitution effect and the three effects are reflected in their elasticities.

$=\frac{1}{10}\times 2+\left(1-\frac{1}{10}\right)\times 3$

$=\frac{2}{10}+\frac{9}{10}\times 3$

$=\frac{2}{10}+\frac{27}{10}$

$=\frac{29}{10}$

$=2{\cdot}9$ [सरलता के लिए ऋणात्मक चिह्न छोड़ दिया गया है।]

उदाहरण 2—माना कि एक वस्तु X के लिए आय लोच (E_i) तथा प्रतिस्थापन लोच (E_s) दोनों 1 के बराबर हैं, तथा उपभोक्ता वस्तु X पर अपनी आय का $\frac{1}{4}$ भाग व्यय करता है, अर्थात $KX=\frac{1}{4}$ के है। अब हम इन मूल्यों का निम्न समीकरण प्रयोग करते हैं—

$E_p=KX.E_i+(1-KX)E_s$

$=\frac{1}{4}.1+\left(1-\frac{1}{4}\right)\times 1$

$=\frac{1}{4}+\frac{3}{4}$

$=1$ [स्पष्ट है कि जब E_i तथा E_s दोनों 1 के बराबर हैं तो E_p भी 1 के बराबर होगी।]

परिशिष्ट (Appendix)

पूर्ति की लोच (ELASTICITY OF SUPPLY)

माग की लोच की भांति पूर्ति की लोच भी होती है। पूर्ति का नियम, मांग के नियम की भांति, *केवल गुणात्मक कथन है अर्थात् पूर्ति का नियम मूल्य में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति में* केवल परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है। पूर्ति का नियम यह नहीं बताता कि कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप पूर्ति मे कितना परिवर्तन होता है। इस बात को जानने के लिए अर्थ-शास्त्रियों ने 'पूर्ति की लोच' का टेक्नीकल विचार प्रस्तुत किया है। यह विचार बताता है कि कीमत मे कमी या वृद्धि से पूर्ति की मात्रा मे निश्चित रूप से कितनी कमी या वृद्धि होती है।

पूर्ति की लोच की परिभाषा (Meaning of the Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच, कीमत में थोड़े से परिवर्तन के उत्तर (response) में, पूर्ति की मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप है। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि पूर्ति की लोच कीमत में परिवर्तन के उत्तर में पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की गति (rate or ease) को बताती है।

पूर्ति की लोच की गणितात्मक परिभाषा (Numerical Definition) इस प्रकार दी जाती है। पूर्ति की लोच कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'पूर्ति की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन' (proportional change) को 'कीमत के आनुपातिक परिवर्तन' से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसको सूत्र (formula) द्वारा निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है:

$e_s=\frac{\text{पूर्ति मे आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन}}$ जबकि e_s पूर्ति की लोच का चिह्न है।

पूर्ति की लोच के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए—(i) इसके अन्तर्गत हम पूर्ति के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा (ii) जो अल्प समय के लिए हो।[1]

पूर्ति की लोच की श्रेणियां या मात्राएं (Degrees of Elasticity of Supply)

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की पूर्ति पर एकसा प्रभाव नहीं होता, अर्थात् कुछ वस्तुओं की लोच कम होती है तथा कुछ वस्तुओं की अधिक। पूर्ति की लोच की पांच श्रेणियां होती हैं:

(1) **पूर्णतया लोचदार पूर्ति (Perfectly elastic supply)**—जब मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी, या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन (infinitesimal change) होने पर, पूर्ति में बहुत अधिक परिवर्तन (कमी या वृद्धि) हो जाती है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णतया लोचदार कही जाती है। ऐसी लोच को 'अपरिमित लोच' (infinite elasticity) कहते हैं तथा इसको इस प्रकार व्यक्त करते हैं : $e_s = \infty$. चित्र 1 से स्पष्ट है कि पूर्णतया लोचदार पूर्ति की दशा में पूर्ति रेखा आधार रेखा (X-axis) के समान्तर है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच केवल काल्पनिक होती है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है।
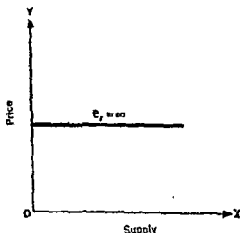
चित्र 1

(2) **अत्यधिक लोचदार पूर्ति (Highly elastic supply)**—जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (proportional change), कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में 20 प्रतिशत कमी होती है परन्तु उसकी पूर्ति में 40 प्रतिशत की कमी हो जाती है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति अधिक लोचदार पूर्ति कही जायेगी। ऐसी वस्तु की पूर्ति की लोच को 'इकाई से अधिक लोच' भी कहते हैं और गणित की भाषा में $e_s > 1$ द्वारा व्यक्त करते हैं। चित्र 2 द्वारा अधिक लोचदार पूर्ति को बताया गया है।
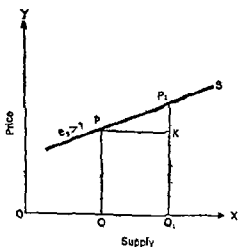
चित्र 2

(3) **लोचदार पूर्ति या औसत दर्जे की लोचदार पूर्ति (Elastic supply)**—जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन

[1] कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव के परिणामस्वरूप जो पूर्ति में परिवर्तन होता है उसमें सटोरियों का प्रभाव अधिक रहता है, अतः पूर्ति के ऐसे परिवर्तनों को पूर्ति की लोच नहीं मानना चाहिए।

(क्रमशः)

ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की पूर्ति को लोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत मे 20% की वृद्धि होती है और उसकी पूर्ति मे भी ठीक 20% की वृद्धि हो जाती है तो यह 'लोचदार पूर्ति' की दशा कहलायेगी। इस प्रकार की लोच को **'इकाई के बराबर लोच'** भी कहते है। गणित की भाषा में इसको $e_s=1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

एक सीधी पूर्ति रेखा (Straight line supply curve) जो कि मूल बिन्दु (origin) से गुजरती है 'पूर्ति की इकाई लोच' (unit elasticity of supply) को बताती है जैसा कि *चित्र 3 मे बताया गया है।*

बेलोच पूर्ति (Inelastic supply)—जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को 'बेलोच पूर्ति' कहते हैं।
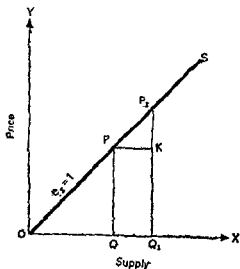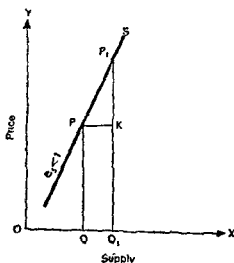
चित्र 3 चित्र 4

उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत मे 50% की वृद्धि होती है व उसकी पूर्ति मे केवल 10% की वृद्धि होती है, तो ऐसी पूर्ति को बेलोच पूर्ति कहा जाता है। इस प्रकार की लोच को **'इकाई से कम लोच'** भी कहते हैं; गणित की भाषा में इसको $e_s<1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र 4 में बेलोच पूर्ति को दिखाया गया है।

(5) **पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति** (Perfectly inelastic supply)—**जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी पूर्ति में बिलकुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति कहते हैं।** चूंकि पूर्ति मे बिलकुल परिवर्तन नही होता इसलिए ऐसी स्थिति को गणित की भाषा मे $e_s=0$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र 5 मे पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति को दिखाया गया है। OP कीमत पर पूर्ति PQ है, कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है, परन्तु पूर्ति में कोई परिवर्तन नही होता है।

इसी प्रकार यदि आज की पूर्ति की तुलना आज से 10-15 वर्ष पूर्व की पूर्ति से की जाये तो आज की पूर्ति मे जो परिवर्तन दिखायी पड़ेगा, वह केवल मूल्य मे परिवर्तन का परिणाम न होकर पूर्ति को प्रभावित करने वाली अन्य बातों का परिणाम होगा।

पूर्ति की लोच को मापने की रीतियाँ (Methods for Measuring Elasticity of Supply)

चित्र 5

पूर्ति की लोच को मापने की दो मुख्य रीतियां हैं: (1) आनुपातिक रीति (Proportional Method), तथा (2) बिन्दु रीति (Point Method)

(1) आनुपातिक रीति या प्रतिशत रीति (Proportional method or Percentage method)—इस रीति के अन्तर्गत पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) को कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग दिया जाता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा निकाली जाती है :
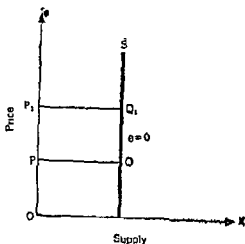
$$e_s = \frac{\text{पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत मे आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{पूर्ति मे परिवर्तन}}{\text{पूर्ति की पूर्व (original) मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत (original price)}}}$$

$$= \frac{\dfrac{\Delta q}{q}}{\dfrac{\Delta p}{p}}$$

जबकि, Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन का चिह्न
Δq = पूर्ति में परिवर्तन
q = पूर्ति की पूर्व मात्रा
Δp = कीमत में परिवर्तन
p = पूर्व कीमत

$$= \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$= \frac{\Delta q}{\Delta p} \cdot \frac{p}{q}$$

इस सूत्र से बिलकुल ठीक व सही उत्तर निकालने के लिए कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसमे संशोधन किया है। इसका सशोधित रूप निम्न प्रकार से दिया जाता है :

$$e_s = \frac{\dfrac{\text{पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन}}{\dfrac{(\text{पूर्व मात्रा} + \text{नयी मात्रा})}{2}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\dfrac{(\text{पूर्व कीमत} + \text{नयी कीमत})}{2}}}$$

$$\frac{\dfrac{q \sim q_1}{\dfrac{q+q_1}{2}}}{\dfrac{p \sim p_1}{\dfrac{p+p_1}{2}}} = \frac{\dfrac{q \sim q_1}{q+q_1}}{\dfrac{p \sim p_1}{p+p_1}}$$

जबकि,
q=पूर्ति की पूर्व मात्रा
q_1=पूर्ति की नयी मात्रा
p=पूर्व की कीमत
p_1=नयी कीमत

(2) बिन्दु रीति या रेखागणित रीति (Point method or geometrical method)—इस रीति द्वारा हम पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम कर सकते हैं। चित्र 6 में SS पूर्ति रेखा के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम करना है। पूर्ति रेखा SS को नीचे की ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिलती है और बिन्दु P से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डाला जाता है ताकि वह X-axis को N बिन्दु पर मिलता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा दी जाती है :

$$e_s = \frac{TN}{ON}$$

चूंकि यहा पर TN<ON, इसलिए $e_s < 1$; चित्र 7 में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच, $e_s = \frac{TN}{ON}$; चूकि यहा पर TN>ON, इसलिए $e_s > 1$; चित्र 8 में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$; यहां पर O तथा T बिन्दु एक ही हैं इसलिए TN=ON, अत: $e_s = 1$.

चित्र 9 में यह दिखाया है कि पूर्ति रेखा सीधी रेखा (straight line) न होकर वक्र रेखा (curve) है, इस supply curve के p बिन्दु पर पूर्ति की लोच को मालूम करना है।
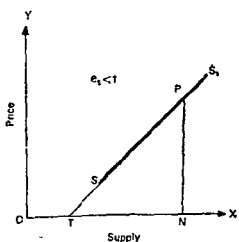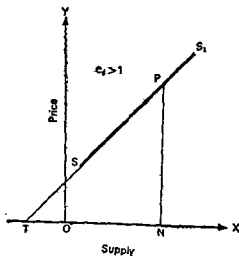
चित्र 6 चित्र 7

p बिन्दु से होती हुई एक स्पर्श रेखा (tangent) खीची जाती है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिले, तो $e_s = \frac{TN}{ON}$ चूंकि यहा पर TN<ON, इसलिए $e_s < 1$
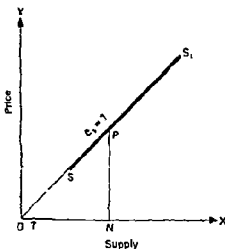
चित्र 8
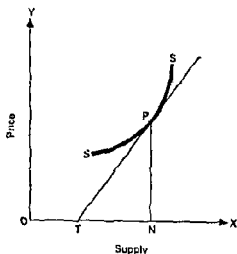
चित्र 9

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING ELASTICITY OF SUPPLY)

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(1) वस्तु की प्रकृति (Nature of the commodity)—यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली (perishable) है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर इसकी पूर्ति को बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता है। इसके विपरीत यदि वस्तु टिकाऊ (durable) है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी क्योंकि कीमत मे परिवर्तन होने पर इनकी मात्रा को परिवर्तित किया जा सकता है।

(2) उत्पादन प्रणाली (Method and technique of production)—यदि किसी वस्तु की उत्पादन प्रणाली सरल है तथा उसमें कम पूंजी की आवश्यकता पड़ती है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है क्योंकि पूर्ति को, कीमत में परिवर्तन होने पर, सुगमता से घटाया या बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत यदि उत्पादन प्रणाली जटिल है तथा उसमे बहुत अधिक पूंजी का प्रयोग होता है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति बेलोचदार होती हैं क्योंकि इनकी पूर्ति को बढ़ाना या घटाना आसान नहीं होता है।

(3) उत्पादन लागत (Cost of production)—किसी वस्तु की पूर्ति की लोच उत्पादन लागत से भी प्रभावित होती है। यदि वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम (अर्थात् लागत वृद्धि नियम) के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत बढ़ने पर भी इनकी पूर्ति को बढ़ाना कठिन है, पूर्ति बढ़ने से लागत बढ़ती है। इसके विपरीत यदि वस्तु का उत्पादन लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी।

(4) समय (Time)—समय पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाला एक मुख्य तत्त्व है। जितना लम्बा समय होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच अधिक होगी तथा जितना समय कम होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच बेलोच होगी। समय अधिक होने से वस्तु की पूर्ति को आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है, परन्तु समय कम होने से ऐसा करना कठिन होता है।

प्रश्न

1. 'माँग की कीमत लोच' की श्रेणियो या मात्राओं की व्याख्या कीजिए। माँग की लोच को मापने की मुख्य विधियो की विवेचना कीजिए।
   Explain the degrees of 'Price Elasticity of Demand'. Discuss the main methods adopted to measure the elasticity of demand.
2. माँग की कीमत लोच को परिभाषित कीजिए। 'बिन्दु लोच' तथा 'चाप-लोच' के अन्तर को स्पष्ट कीजिए। इन दोनो को मापने की रीतियो को बताइए।
   Define 'price elasticity of demand'. Distinguish between 'point elasticity' and 'arc elasticity'. Give the methods for measuring these two elasticities.
3. लोचदार माँग तथा बेलोचदार माँग मे अन्तर बताइए। कुछ वस्तुओ की माँग अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक लोचदार क्यो होती है ?
   Distinguish between elastic and inelastic demand. Why is the demand for some commodities more elastic than for others ?
4. माँग की लोच से क्या तात्पर्य है ? माँग की लोच का कर-लगाने तथा एकाधिकारी के लाभो पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
   What is elasticity of demand ? Discuss the effect of elasticity of demand on : Taxation and Monopoly profits.
5. किसी वस्तु की माँग की कीमत तथा आय लोचो मे अन्तर बताइए। माँग की कीमत लोच को मापने की विभिन्न रीतियाँ क्या हैं ?
   Distinguish between price and income elasticities of demand for a commodity. What are the different ways of measuring price elasticity of demand ?
6. माँग की लोच की परिभाषा दीजिए। माँग की लोच तथा माँग-रेखा के ढाल (slope) मे क्या सम्बन्ध है ?
   Define the term 'Elasticity of Demand'. What is the relation between elasticity of demand and the slope of the demand curve ?

   अथवा

   'माँग रेखा का समतल होना या ढालू होना माँग की लोच की श्रेणी की पूर्ण तथा उचित जाच नही है'। इस कथन की विवेचना कीजिए।
   'Flatness' and 'Steepness' are not perfect tests for elasticity. Discuss this statement.

   अथवा

   माँग की लोच केवल माँग रेखा के ढाल पर ही नही बल्कि 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' की स्थिति पर भी निर्भर करती है। इस कथन की विवेचना कीजिए।
   Elasticity of Demand does not depend merely on the slope of the demand curve but also on the position of 'price and quantity point.' Discuss this statement.
7. माँग के नियम तथा माँग की लोच मे अन्तर स्पष्ट कीजिए। माँग की लोच को कैसे मापा जा सकता है ?
   Distinguish between Law of Demand and Elasticity of Demand. How can elasticity of demand be measured ?
   [संकेत—'माँग का नियम' कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग मे केवल परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है, जबकि 'माँग की लोच' का विचार कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग मे परिवर्तन की मात्रा (quantity) को मापता

है। इसके पश्चात् 'माँग के नियम' के कथन को दीजिए; तथा 'माँग की लोच' का अर्थ और परिभाषा दीजिए। दूसरे भाग के उत्तर में माँग की लोच को मापने की तीनों रीतियों को दीजिए।]

8. माँग की कीमत लोच, माँग की आय लोच, तथा माँग की प्रतिस्थापन लोच के विचारों को पूरी तरह से समझाइए। इन तीनों लोचों के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।
Explain fully the concepts of Price Elasticity of Demand, Income Elasticity of Demand, and Demand Elasticity of substitution. Discuss the inter-relationship of these three elasticities.

खण्ड 3
उत्पादन का सिद्धान्त
(THEORY OF PRODUCTION)

उत्पादन फंक्शन
(*Production Function*)

उत्पादन फंक्शन या फलन
(PRODUCTION FUNCTION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

'उत्पादन फंक्शन (या फलन)' के अर्थ को समझने से पहले यह आवश्यक है कि **हम यह** जानकारी प्राप्त करलें कि **'फंक्शन'** (function) **का क्या अर्थ है।** 'फंक्शन' गणित का शब्द है। जब हम यह कहते हैं कि y 'फंक्शन' है x का तो इसका अभिप्राय है कि y निर्भर करता है x पर; अर्थात् जब **x** को मूल्य (value) प्रदान करते हैं तो उससे सम्बन्धित y के मूल्य को मालूम किया जा सकता है।

y तथा x के उपर्युक्त फंक्शनल सम्बन्ध (functional relation) को संक्षेप में निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं :

$$y = f(x)$$

इसको हम इस प्रकार पढ़ते हैं—'y, x का फंक्शन है' (अर्थात् y निर्भर करता है x के मूल्यों पर)।

अर्थशास्त्र में हम अनेक फंक्शनल सम्बन्धों (functional relations) को पाते हैं।[1] **'उत्पादन फंक्शन'** (Production Function) 'उत्पत्ति के साधनों' ('inputs' or 'factors of *production*') *तथा उनके प्रयोग से प्राप्त 'उत्पादन' (output) के बीच सम्बन्ध को बताता है।*

2. **उत्पादन फंक्शन की परिभाषा** (Definition of Production Function)

एक उत्पादन फंक्शन, एक दिये हुए समय के लिए (for a specified period of time), 'उत्पादन की मात्रा' तथा 'उत्पत्ति के साधनों' में भौतिक सम्बन्ध (physical relationship) को बताता है। अग्रलिखित परिभाषा इसके अर्थ को पूर्णतया स्पष्ट करती है :

---

1 उदाहरण के लिए किसी वस्तु की माँग उसकी कीमत पर निर्भर करती है, जबकि अन्य बातों में कोई परिवर्तन नहीं होता है, इस फंक्शनल सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त करेंगे $D=f(p)$, जबकि $D=$ माँगी जाने वाली मात्रा, $p=$ कीमत। माँग, कीमत के अतिरिक्त, अन्य कई बातों पर निर्भर करती है, जैसे उपभोक्ताओं की आय (income), स्पर्धात्मक वस्तु की कीमत, इत्यादि, ऐसे सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त करेंगे, $D=f(p, y, c)$, जबकि $D=$ माँगी जाने वाली मात्रा, $p=$ वस्तु की कीमत, $y=$ उपभोक्ता की आय, तथा $c=$ स्पर्धात्मक वस्तु की कीमत। इसी प्रकार 'उपभोग फंक्शन' (Consumption Function) समाज में 'कुल उपभोग' (total consumption) तथा 'कुल आय' (total income) में इस सम्बन्ध को बताता है कि कुल उपभोग निर्भर करता है कुल आय पर, अर्थात् $c=f(y)$, जबकि $c=$ कुल उपभोग, तथा $y=$ कुल आय। इस प्रकार अर्थशास्त्र में अनेक फंक्शनल सम्बन्ध होते हैं।

एक फर्म का उत्पादन फंक्शन, एक दिये हुए समय में (या प्रति इकाई समय में), साधनों के सभी सम्भव संयोगों तथा प्रत्येक संयोग से सम्बन्धित उत्पादन (अर्थात् अधिकतम उत्पादन) के बीच सम्बन्ध को बताता है, जबकि टेक्नीकल ज्ञान की स्थिति दी हुई हो। संक्षेप में, उत्पादन फंक्शन उत्पादन सम्भावनाओं की एक सूची (catalogue) है।[1]

एक उत्पादन फंक्शन को निम्न प्रकार से गणितात्मक समीकरण (mathematical equation) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

$$X=f(a, b, c, \ldots)$$

X कुल उत्पादन को, तथा a, b, c, इत्यादि विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को बताते हैं। कुल उत्पादन X निर्भर करता है साधन a, b, c, इत्यादि की मात्राओं (तथा किस्मों) पर; अर्थात् एक फर्म कुल उत्पादन X को बढ़ा सकती है यदि वह, एक दिये हुए समय मे, साधन a, b, c, इत्यादि की मात्रा बढ़ाती है।

3. उत्पादन फंक्शन के पीछे मान्यताएं (Assumptions behind a Production Function)

उत्पादन फंक्शन की परिभाषा से स्पष्ट है कि वह निम्न मान्यताओं पर आधारित है—

(i) यह मान लिया जाता है कि दिये हुए समय के अन्तर्गत 'टेक्नोलोजी' या 'उत्पादन कला की स्थिति' या 'टेक्नीकल ज्ञान की स्थिति' दी हुई है, उसमें दिये हुए समय के अन्तर्गत कोई परिवर्तन नही होता है।

(ii) यह मान लिया जाता है कि फर्म, उत्पादन की अधिकतम कुशल तकनीक (technique), जो कि समय विशेष मे प्राप्य है, का प्रयोग करेगी, जबकि फर्म के लिए लागत-व्यय (cost outlay) दिया हुआ है।

4. उत्पादन फंक्शन का स्वभाव या उसकी विशेषताएं (Nature or Characteristics of a Production Function)

(1) उत्पादन फंक्शन 'साधनो की भौतिक मात्रा' (physical quantities of inputs) तथा 'उत्पादन की भौतिक मात्रा' (physical quantities of output) में सम्बन्ध को बताता है। अत, उत्पादन फंक्शन अर्थशास्त्र के बाहर (external to economics) है और वह 'उत्पादन इंजीनियरिंग' (production engineering) के क्षेत्र मे आता है। दूसरे शब्दों में, एक उत्पादन फंक्शन का बनाना इंजीनियरिंग समस्या (engineering problem) है, न कि आर्थिक समस्या; एक उत्पादन फंक्शन की स्वयं कोई मौद्रिक विशेषताएँ (monetary characteristics) नहीं होतीं।

(2) यद्यपि एक उत्पादन फंक्शन की कोई मौद्रिक विशेषताएँ नहीं होतीं, अर्थात् यद्यपि 'उत्पादन फंक्शन' उत्पादित वस्तु की कीमत और साधनों की कीमतों से पूर्णतया स्वतन्त्र (totally independent) होता है, परन्तु ये कीमतें ही एक फर्म के इस निर्णय को प्रभावित करती हैं कि वह किस वस्तु का और कितनी मात्रा में उत्पादन करेगी। दूसरे शब्दों में,

> "एक इंजीनियर साधनों के भौतिक संयोगों (physical combinations) में दिलचस्पी रखता है, जबकि एक व्यापारी ऐसे संयोगों के द्राव्यिक पक्षों (monetary elements) में दिलचस्पी रखती है।"[2]

---

[1] A firm's production function, during a given period of time (or per unit of time), indicates the physical relationship between all possible combinations of inputs and the output (i.e., maximum output) corresponding to each combination, when the state of technical knowledge is given in short, the production function is a catalogue of output possibilities.

[2] "The engineer is interested in physical combinations; the businessman is interested in the monetary elements of such combinations."

(3) एक उत्पादन फंक्शन दी हुई टेकनोलोजी या टेकनीकल ज्ञान की स्थिति के संदर्भ (reference) में परिभाषित किया जाता है।[4] दूसरे शब्दों में,

प्रत्येक फर्म का उत्पादन फंक्शन टेकनोलोजी की स्थिति द्वारा निर्धारित होता है। जब टेकनोलोजी में सुधार[5] होता है; तो एक नया उत्पादन फंक्शन प्राप्त हो जाता है। इस नये उत्पादन फंक्शन का अभिप्राय है कि साधनों की पहली मात्रा से ही उत्पादन का अधिक प्रवाह (greater flow of output) प्राप्त होगा, अथवा, उत्पादन की पहली मात्रा साधनों की कम मात्राओं के प्रयोग करने से ही प्राप्त हो जायेगी।[6]

(4) एक उत्पादन फंक्शन एक दिये हुए समय (for a given period of time) या प्रति इकाई समय (per unit of time) के सन्दर्भ में होता है।[7]

(5) एक उत्पादन फंक्शन के स्वभाव को जानने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि उत्पादन (output) में परिवर्तन करने के लिए साधनों (inputs) की मात्राओं में किस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है।

एक साधन की मात्रा को उसके कार्य करने के समय की लम्बाई के शब्दों में नापा जाता है, जैसे, श्रम-घण्टों में (in man-hours), मशीन-घण्टों में (in machine-hours), इत्यादि। यद्यपि एक फर्म एक पूरे व्यक्ति या पूरी मशीन से कम को प्रयोग में नहीं ला सकती, परन्तु वह इन साधनों को लम्बे या कम समय के लिए प्रयोग में ला सकती है, और इस प्रकार प्रयोग में आने वाले इन साधनों की मात्राओं को परिवर्तित कर सकती है।[8]

किसी फर्म के उत्पादन फंक्शन को निर्धारित करते समय, साधनों की परिवर्तनशीलता या स्थिरता[9] तथा उनकी पूर्ण विभाज्यता या अविभाज्यता[10] को ध्यान में रखना होगा। ["साधनों की

---

[4] "A production function is defined for a given state of technical knowledge."

[5] Improvement in technology may take various forms, for example, "improved labour skills, new kinds of raw materials, technically better machines, improved knowledge of the ways in which to combine the different factors."

[6] The form of the production function of each firm is determined by the state of technology. When technology improves, a new production function comes into being. The new production function implies a greater flow of output from the same inputs, or the same output from smaller quantities of inputs.

[7] उदाहरणार्थ, माना कि पूंजी की 20 इकाइयों + श्रम की 5 इकाइयों तथा भूमि की 4 इकाइयों के संयोग से 4 घण्टे में किसी वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन होता है, तो साधन-उत्पादन का यह सम्बन्ध (input-output relationship) उत्पादन फंक्शन है जो कि एक दिये हुए समय अर्थात् 4 घण्टे के सन्दर्भ में है।

[8] *The quantity of a factor has to be measured in terms of the length of time for which it is used, e.g., in man-hours, machine-hours and so on.* While a firm cannot employ less than a *whole* man or machine, it can employ them for longer or shorter periods of time, and in that way can vary the *quantities* of these factors used.

[9] साधनों की मात्राओं में परिवर्तन करके उत्पादन में परिवर्तन किया जाता है। उत्पादन में परिवर्तन करने के लिए या तो सभी साधनों की मात्राओं को बढ़ाया जा सकता है या कुछ को स्थिर (fixed) रखकर केवल कुछ को परिवर्तित किया जा सकता है। यदि एक साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाता है और अन्य को परिवर्तित किया जाता है तो पहले साधन को 'स्थिर साधन' (fixed factor) तथा अन्य साधनों को 'परिवर्तनशील साधन' (variable factors) कहा जाता है।

[10] प्रत्येक साधन के कार्य करने के समय की मात्रा (amount of time) को, एक बिन्दु के बाद, एक न्यूनतम (minimum) से घटाने में कठिनाइयाँ हैं। 'आंशिक-समय' (part-time) या 'अधिक-समय' (over-time) कार्य करने वाले श्रमिकों को छोड़कर, प्रत्येक श्रमिक को 'कार्य

ये विशेषताएँ एक उत्पादन फंक्शन के स्वभाव को निर्धारित करने मे सहायता करती हैं, और इसलिए ये विशेषताएँ इस बात के निर्धारण में सहायक होती हैं कि, उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर, साधनों की भौतिक उत्पादकताएँ क्या होंगी।"[11]

साधनों की स्थिरता (fixity) तथा परिवर्तनशीलता (variability) के आधार पर ही दो प्रकार के उत्पादन फंक्शन होते हैं—प्रथम, वे उत्पादन फंक्शन जिनमें कुछ साधनों की मात्राएँ स्थिर रहती हैं और कुछ की परिवर्तनशील, दूसरे, वे उत्पादन फंक्शन जिनमे सभी साधन परिवर्तनशील रहते हैं। इनका विवरण संक्षेप मे आगे किया गया है।

(6) माना कि एक उत्पादन फंक्शन मे कुछ साधन स्थिर है तथा कुछ परिवर्तनशील। सुविधा के लिए हम मान लेते है कि फर्म एक साधन (माना श्रम) को परिवर्तनशील रखती है तथा अन्य सभी साधनो को स्थिर रखती है, दूसरे शब्दों में, हम **'एक परिवर्तनशील साधन वाले उत्पादन फंक्शन'** (production function with one variable input) की विवेचना करते हैं। ऐसे उत्पादन फंक्शन को 'अल्पकालीन उत्पादन फंक्शन' (short-period production function) भी कहते हैं क्योंकि अल्पकाल मे ही कुछ साधन स्थिर रहते हैं, दीर्घकाल में तो सभी साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं।

> जब एक फर्म, अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए, एक साधन (माना, श्रम) में वृद्धि करके उत्पादन को बढ़ाती है, तो वह स्थिर साधनो और परिवर्तनशील साधन के बीच अनुपातो (proportions) को परिवर्तित करती है।[12]

परिवर्तनशील अनुपातो के नियम मे ऐसा ही होता है। अत **'उत्पत्ति ह्रास नियम' या 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम'** उत्पादन फंक्शन की एक अवस्था (phase) है।[13]

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम को तीन अवस्थाओं (stages) में विभाजित किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए, जब एक साधन को परिवर्तनशील रखा जाता है तो 'साधन-उत्पादन सम्बन्ध' अर्थात् उत्पादन फंक्शन ('input-output relation', that is, production function) को तीन अवस्थाओं में बाँटा जाता है—

अवस्था एक (stage I) मे कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढता है या सीमान्त उत्पादन (marginal product) बढता है। दूसरे शब्दो मे, पहली अवस्था **'बढ़ते हुए उत्पादन'** अर्थात् 'बढ़ते हुए औसत उत्पादन' (stage of increasing average product) की होती है।

करने की एक न्यूनतम आकार की इकाई' (a minimum size of unit of work) के शब्दों मे रोजगार देना होगा, जैसे 8 घण्टे प्रतिदिन तथा एक सप्ताह या एक महीने के लिए। इसी प्रकार से एक फर्म किसी एक मशीन को एक न्यूनतम आकार से छोटे आकार में प्रयोग नही कर सकती, जैसे एक blast-furnace के आकार को, टेकनीकल कारणो के परिणामस्वरूप, एक न्यूनतम आकार से नीचे नही घटाया जा सकता है। जब प्रयोग में लाये जाने वाले किसी साधन की मात्रा को किसी एक न्यूनतम आकार से नीचे नही घटाया जा सकता है, तो यह कहा जाता है कि साधन 'अविभाज्य' इकाइयों ('indivisible' units) में प्राप्य है। यदि साधन को छोटी से छोटी किसी मात्रा मे प्राप्त किया जा सकता है, जैसे श्रम घण्टों (man-hours) या श्रम-मिनटों (man-minutes) अपेक्षाकृत श्रम-सप्ताहो (man-weeks) की तुलना में, तो ऐसे साधनो को 'पूर्णतया विभाज्य' (perfectly divisible) कहा जाता है।

[11] "Both the variability or fixity of factors, and their perfect divisibility or indivisibility, have to be taken into account in specifying the production function of a firm. These features help to determine the nature of a production function, hence what the physical productivities of the factors will be at different levels of output."

[12] When a firm, keeping other factors constant, expands its output by increasing the amount of one factor (say, labour), it changes the *proportions* between the fixed inputs and the variable input.

[13] The law of diminishing returns or variable proportions is a phase of production function.

अवस्था दो (stage II) में कुल उत्पादन, घटती हुई दर से बढ़ता है, अर्थात् सीमान्त उत्पादन घटने लगता है, और औसत उत्पादन भी गिरने लगता है। अतः दूसरी अवस्था 'घटते हुए औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन' (stage of diminishing average and marginal product) की होती है।

अवस्था तीन (stage III)) में सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक (negative) हो जाता है और इससे 'कुल उत्पादन' घटने लगता है; अर्थात् तीसरी अवस्था 'घटते हुए कुल उत्पादन' (stage of diminishing total product) की होती है।

[नोट—'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' के उदाहरण तथा चित्र, तीनों अवस्थाओं के पूर्ण विवरण, एवं इनके लागू होने के कारण के लिए देखिए 'उत्पत्ति ह्रास नियम' के अध्याय को।[14]]

(7) **अब हम ऐसे उत्पादन फंक्शन को लेते हैं जिसमें सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं,** और कोई भी साधन स्थिर नहीं होता। ऐसे उत्पादन फंक्शन को **'दीर्घकालीन उत्पादन फंक्शन'** (long-term production function) भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में, अब हम **'सभी परिवर्तनशील साधनों के साथ उत्पादन फंक्शन'** (production function with all the variable inputs) की संक्षिप्त विवेचना करते हैं।

> जब सभी साधनों में एक साथ परिवर्तन होता है तो यह कहा जाता है कि फर्म के **'प्लांट का पैमाना'** (scale of plant) बदल गया। ऐसी स्थिति में उत्पादन या प्रतिफल (production or returns) में जो परिवर्तन होता है उसके लिए **'पैमाने का प्रतिफल'** (returns to scale) के वाक्यांश (phrase) का प्रयोग किया जाता है।

यहां यह मान लिया जाता है कि सभी साधनों को एक समान अनुपात में (in the same proportion or in equal proportion) बढ़ाया जाता है। **जब साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है) तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा तीन अवस्थाएं** (three stages) **दिखाती है—**

(i) **पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था** (Stage of increasing returns to scale)—इस अवस्था में कुल उत्पादन, साधनों में वृद्धि के अनुपात से अधिक अनुपात में बढ़ता है। उदाहरणार्थ, ऐसी स्थिति में यदि सभी साधनों को 10% से बढ़ाया जाता है [अर्थात् पैमाने (scale) को 10% से बढ़ाया जाता है], तो उत्पादन (output) 15% से बढ़ जायेगा, अर्थात् 10% से अधिक बढ़ेगा। पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल प्राप्त होने का मुख्य कारण बड़े पैमाने की विभिन्न प्रकार की बचतें (economies) हैं। परन्तु ध्यान रहे कि टेकनोलोजी में सुधार के परिणाम-स्वरूप बचतों को शामिल नहीं किया जाता है क्योंकि उत्पादन फंक्शन एक दी हुई टेकनोलोजी के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है।[15]

(ii) **पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल की अवस्था** (Stage of constant returns to scale)—इस अवस्था में उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है जिस अनुपात में साधनों को बढ़ाया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि सभी साधनों को 10% से बढ़ाया जाता है तो उत्पादन भी 10% से बढ़ेगा। इस अवस्था में बड़े पैमाने की सभी बचतें समाप्त (exhaust) हो जाती हैं।

(iii) **पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था** (Stage of decreasing returns to

---

[14] परीक्षा में उत्पादन फंक्शन पर प्रश्न के स्वभाव के अनुसार विद्यार्थी उदाहरण तथा चित्र को दे सकते हैं या छोड़ सकते हैं।

[15] Improvements in technology are not part of the concept of returns to scale. This concept which is a form of production function, deals with a given technology.

scale)—इस अवस्था में कुल उत्पादन, साधनों में वृद्धि के अनुपात से कम अनुपात में बढ़ता है। उदाहरणार्थ, यदि सभी साधनों को 10% से बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन केवल 8% से ही बढ़ता है, अर्थात् 10% से कम बढ़ता है।

(8) अभी तक हमने उत्पादन फंक्शन के दो रूप देखे। पहले रूप में एक साधन को परिवर्तनशील रखा तथा अन्य सभी साधनों को स्थिर रखा। दूसरे रूप में सभी साधनों को परिवर्तनशील रखा। अब हम एक ऐसे उत्पादन फंक्शन को लेते हैं जिसमें कुछ साधनों को स्थिर रखकर केवल दो साधनों को परिवर्तनशील रखते हैं और ये दो साधन एक दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) भी किये जा सकते हैं।

इस प्रकार का उत्पादन फंक्शन बताता है कि उत्पादन के एक निश्चित स्तर (माना 500 इकाइयाँ) को दो परिवर्तनशील साधनों (माना, श्रम तथा पूंजी) के कई संयोगों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, इसी प्रकार उत्पादन के दूसरे स्तर (माना 1000 इकाइयों) की प्राप्ति के लिए दोनों परिवर्तनशील साधनों के कई संयोग हो सकते हैं। यह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है :

	श्रम की इकाइयाँ	पूंजी की इकाइयाँ	उत्पादन की इकाइयाँ
स्थिति एक (Situation I)	10	8	500
	6	12	500
	2	20	500
स्थिति दो (Situation II)	20	10	1000
	15	20	1000
	10	35	1000

यदि हम स्थिति I को एक चित्र द्वारा दिखाएं तो हमें बायें से दायें को गिरती हुई एक रेखा प्राप्त हो जायेगी, जिसे अर्थशास्त्री 'सम-उत्पाद रेखा' (Isoproduct curve) कहते हैं क्योंकि यह रेखा 'समान उत्पादन', जो दो साधनों (श्रम तथा पूंजी) के विभिन्न संयोगों द्वारा प्राप्त होता है, को बताती है। इसी प्रकार यदि स्थिति II को चित्र द्वारा व्यक्त किया जाये तो हमें एक दूसरी 'सम-उत्पाद रेखा' प्राप्त हो जायेगी जो कि उत्पादन के एक दूसरे 'समान स्तर' को बतायेगी; इत्यादि।

अतः,

'दो परिवर्तनशील साधनों वाले उत्पादन फंक्शन' (production function with two variable inputs) को सम-उत्पादन रेखाओं के एक परिवार (a family of isoproduct curves) के द्वारा दिखाया जा सकता है।

प्रश्न

1. उत्पादन फंक्शन को परिभाषित कीजिए तथा उसकी सामान्य विशेषताओं को बताइए।
   Define 'production function' and discuss its general characteristics.

   or

   Discuss the nature of production function.

उत्पत्ति के नियम

(Law of Returns)

उत्पत्ति ह्रास नियम
(LAW OF DIMINISHING RETURNS)

विभिन्न उत्पत्ति के साधनो के सयोग (combination) से किसी वस्तु का उत्पादन होता है। कम लागत तथा कुशल उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पत्ति के साधनो को उचित अनुपातों में मिलाया जाय।

उत्पत्ति के नियम यह बताते है कि साधनो की मात्रा मे वृद्धि करने से किस अनुपात मे उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होगी। उत्पत्ति के प्राय तीन नियम बताये जाते हैं—(1) यदि उत्पत्ति के साधनो मे वृद्धि करने के अनुपात से अधिक उत्पादन बढता है तो इसे 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' (Law of increasing returns) कहते है। (2) उत्पादन के साधनो का अधिक प्रयोग करने तथा उत्पादन को बढाते जाने से जब बडे पैमाने की उत्पत्ति की सब बचतें समाप्त हो जाती है और वस्तु की प्रति इकाई लागत निम्नतम हो जाती है तो कहा जाता है कि उत्पादन 'अनुकूलतम स्तर' (optimum scale) पर हो रहा है; यदि इसी स्थिति मे उत्पादन चलता रहता है तो 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of constant returns) लागू होता है। (3) यदि साधनो की वृद्धि की अपेक्षा उत्पादन कम अनुपात मे बढता है तो इसे 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of diminishing returns) कहते हैं।

कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार, उत्पत्ति का मूलतया एक ही नियम है और वह है 'उत्पत्ति ह्रास नियम'। उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति स्थिरता नियम केवल थोड़े समय के लिए ही लागू होते हैं, अन्त मे, उत्पत्ति ह्रास नियम ही क्रियाशील होता है। दूसरे शब्दो मे, 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' तथा 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' उत्पत्ति ह्रास नियम की अस्थायी अवस्थाएँ (temporary phases) है।

मार्शल (तथा अन्य प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्रियो) के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम केवल कृषि या भूमि पर ही लागू होता है। मार्शल ने केवल भूमि को स्थिर माना तथा उत्पत्ति के अन्य साधनो को परिवर्तनशील रखा। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल के मत से सहमत नही है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार, यह नियम केवल कृषि या भूमि के सम्बन्ध मे लागू नहीं होता बल्कि उद्योगो तथा अन्य सभी क्षेत्रो मे लागू होता है।

आधुनिक मत—परिवर्तनशील अनुपातों का नियम
(MODERN VIEW—THE LAW OF VARIABLE PROPORTIONS)

1. प्राक्कथन (Introductory)

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार यदि किसी भी एक साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूंजी या प्रबन्ध) को स्थिर रखा जाये तथा अन्य साधनो को बढाया जाय तो उत्पत्ति ह्रास नियम

लागू होगा। उत्पत्ति ह्रास नियम की इस व्यापक क्रियाशीलता (general applicability) की बात पर जोर देने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति ह्रास नियम को 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' (Law of variable proportions) कहते है।[1]

2. नियम का कथन (Statement of the Law)

'उत्पत्ति ह्रास नियम' या 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' एक टेकनोलोजीकल सिद्धान्त (technological principle) है। यह प्रयोग मे लाये जाने वाले परिवर्तनशील उत्पत्ति के साधनों की भौतिक मात्राओ (physical quantities of inputs) तथा उत्पादन की भौतिक मात्राओं में सम्बन्ध बताता है।

श्रीमती जोन रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के अनुसार,

"उत्पत्ति ह्रास नियम बताता है कि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाय तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाय तो, एक निश्चित बिन्दु के बाद, उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी।"[2]

प्रो. बेनहम के अनुसार,

"उत्पादन के साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात ज्यों-ज्यों बढ़ाया जाता है त्यों-त्यों, एक बिन्दु के बाद, उस साधन का सीमान्त तथा औसत उत्पादन घटता जाता है।"[3]

अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने भी इसी प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं।[4]

---

1 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' के अतिरिक्त इस नियम को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जिनका विवरण यहाँ दिया जाता है। इसको **'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम'** इसलिए कहते हैं क्योंकि उत्पादन की मात्रा उत्पत्ति के साधनो के परिवर्तनशील अनुपातों पर निर्भर करती है। इसे **'अनुपात का नियम'** (Law of proportionality) भी कहा जाता है क्योंकि उत्पादन उत्पत्ति के साधनो के मिलाने के अनुपात पर निर्भर करता है। इसे **'प्रतिफल का नियम'** (Law of returns) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनो के मिलाने के अनुपात में परिवर्तन करने से उत्पादन या प्रतिफल मे परिवर्तन होता रहता है। इसे **'असमान अनुपातीय प्रतिफल का नियम'** (Law of non-proportional returns or Law of non-proportionate output) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनो के मिलने के अनुपात मे परिवर्तन करने से उत्पादन या प्रतिफल मे असमान अनुपात मे परिवर्तन होता है, जैसे कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ सकता है या घटती हुई गति से, इत्यादि। इसे **'सीमान्त उत्पादकता ह्रास नियम' या 'घटती हुई सीमान्त उत्पादकता का नियम'** (Law of diminishing marginal productivity) भी कहते है क्योंकि एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। प्रो. बोल्डिंग (Boulding) इसे **'अन्ततः घटती हुई सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम'** (Law of eventually diminishing marginal physical productivity) कहना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उनके अनुसार, 'घटता हुआ प्रतिफल' (diminishing returns) एक ढीला (loose) शब्द है जिसके कई अर्थ निकाले जा सकते हैं। प्रो. सेम्युलसन (Samuelson) तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन इसको पुराने नाम अर्थात् **'उत्पत्ति ह्रास नियम या ह्रासमान प्रतिफल नियम'** (Law of diminishing returns) के नाम से ही पुकारते हैं।

2 "The Law of Diminishing Returns, as it is usually formulated, states that with a fixed amount of any one factor of production successive increases in the amount of other factors, will, after a point, yield a diminishing increment of the product."
—Mrs. Joan Robinson : *The Economics of Imperfect Competition*, p. 330.

3 "As the proportion of one factor in a combination of factors is increased, after a point, the marginal and average product of that factor will diminish."
—Benham : *Economics*, p. 128.

4 कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों (स्टिगलर, बोल्डिंग तथा सेम्युलसन) की परिभाषाएँ नीचे दी गयी है :

"If the quantity of one productive service is increased by equal increments, the quantities of other productive services remaining fixed, the resulting increments of product will decrease after a certain point." —Stigler, *Theory of Price*, p. 116. (Contd.)

3. नियम की व्याख्या (Explanation)

श्रीमती जोन रोबिन्सन उत्पत्ति के एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखती हैं। प्रो. बेनहम अन्य साधनो को स्थिर रखकर केवल एक साधन मे वृद्धि करके सीमान्त उत्पादन मालूम करते है। कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्री, जैसे, स्टिगलर, बोल्डिंग इत्यादि भी अन्य साधनों को स्थिर रखकर केवल एक साधन को परिवर्तनशील रखते हैं। परन्तु इन दोनो दृष्टिकोणो मे कोई अन्तर नही है क्योकि मुख्य बात यह है कि कुछ साधन स्थिर होने चाहिए और कुछ परिवर्तनशील।

इस नियम को समझने के लिए तीन शब्दो का समझना आवश्यक है—कुल उत्पादन (Total Product), सीमान्त उत्पादन (Marginal Product) तथा औसत उत्पादन (Average Product) *किसी परिवर्तनशील साधन (variable factor) के एक निश्चित इकाइयो के प्रयोग से* जो उत्पादन प्राप्त होता है उसे **'कुल उत्पादन'** (TP) कहते हैं। साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन मे जो वृद्धि होती है उसे **'सीमान्त उत्पादन'** (MP) कहते हैं। कुल उत्पादन मे परिवर्तनशील साधन की प्रयोग की जाने वाली कुल इकाइयो का भाग देने से जो प्राप्त होता है उसे **'औसत उत्पादन'** (AP) कहते हैं।[3]

इस नियम को सीमान्त उत्पादन (Marginal Product), **कुल उत्पादन** (Total Product) **तथा औसत उत्पादन** (Average Product), **इन तीन शब्दो** (terms) **में व्यक्त किया जाता है।** यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है। माना कि श्रम परिवर्तनशील साधन है तथा भूमि और पूंजी स्थिर हैं। श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयो के प्रयोग करने से जो उत्पादन प्राप्त होता है वह निम्न तालिका मे दिया गया है :

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन (TP) (मैट्रिक टनों मे)	औसत उत्पादन (AP) (मैट्रिक टनो मे)	सीमान्त उत्पादन (MP) (मैट्रिक टनों मे)	विशेष कथन (Remarks)
1	4	4·0	4	
2	11	5·5	7	
3	19	6·33	8	Stage I
4	27	6·75	8	
5	34	6·8	7	
6	39	6·5	5	
7	42	6·0	3	
8	44	5·5	2	Stage II
9	45	5·0	1	
10	45	4·5	0	
11	44	4·0	–1	Stage III

"As we increase the quantity of any one input which is combined with a fixed quantity of the other inputs, the marginal physical productivity of the variable input must eventually decline." —Boulding, *Economic Analysis*, p. 589.

"An increase in some inputs relative to other comparatively fixed input will cause output to increase, but after a point the extra output resulting from the same additions of input will become less and less. This falling off of extra returns is a consequence of the fact that the new 'doses' of the varying resources have less and less of the constant resources to work with." —Samuelson, *Economics—An Introductory Analysis* (Asian ed.) p. 27.

[3] उदाहरणार्थ, माना कि परिवर्तनशील साधन श्रम है तथा अन्य साधन स्थिर हैं। माना कि 4 श्रमिको का प्रयोग करने मे वस्तु का उत्पादन 23 इकाइयो के बराबर होता है, तो यह 'कुल

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग करने से प्राप्त उत्पादन को तीन अवस्थाओं (three stages) में बांट सकते हैं :

प्रथम अवस्था (Stage I)—प्रारम्भ मे जब श्रम की इकाइयों को बढाया जाता है तो स्थिर साधनों (भूमि तथा पूजी) का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है और सीमान्त उत्पादन बढ़ता ; अर्थात कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढता है; अत आरम्भ में प्रथम अवस्था में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन तीनों बढते हैं।

इस अवस्था मे ही एक स्थान पर (उदाहरण में 4 इकाई पर) सीमान्त उत्पादन (MP) अधिकतम होकर घटना शुरू हो जाता है[6] परन्तु फिर भी औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है और एक स्थान पर (अर्थात श्रम की 5वी इकाई पर) AP बढ़कर अधिकतम हो जाती है। चूंकि इस अवस्था में औसत उत्पादन (AP) निरन्तर बढ़ता है इसलिए **इस अवस्था को 'बढ़ते हुए औसत उत्पादन की अवस्था'** (Stage of Increasing Average Returns) **कहते हैं।**[7]

दूसरी अवस्था (Stage II)—इस अवस्था में औसत उत्पादन गिरने लगता है। कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढता है क्योंकि सीमान्त उत्पादन (MP) भी गिर रहा है। चूंकि इस अवस्था से औसत उत्पादन गिरने लगता है, इसलिए यह कहा जाता है कि **इस अवस्था से 'घटते हुए औसत उत्पादन का नियम'** (Law of diminishing average returns) **लागू हो जाता है।**

तीसरी अवस्था (Stage III)—इस अवस्था से कुल उत्पादन गिरने लगता है क्योंकि

उत्पादन' (TP) हुआ। यदि श्रम की एक और इकाई बढायी जाती है अर्थात् 5 श्रमिक हो जाते हैं तो कुल उत्पादन 26 इकाइयो के बराबर हो जाता है। केवल पाँचवें श्रमिक के प्रयोग से कुल उत्पादन मे $(26-23)=3$ इकाइयो से बराबर वृद्धि होती है, इसे **'सीमान्त उत्पादन'** (MP) कहते हैं। कुल उत्पादन अर्थात् 26 इकाइयो मे साधन श्रम की कुल इकाइयो अर्थात् 5 इकाइयों का भाग देने से $\frac{26}{5}=5\cdot2$ इकाइयो के बराबर उत्पादन प्राप्त होता है, इसे **'औसत उत्पादन'** (AP) कहते हैं।

[6] मार्शल के अनुसार जहाँ तक सीमान्त उत्पादन (MP) बढ़ता है वहाँ तक 'बढ़ते हुए उत्पादन की अवस्था' (Increasing Returns) रहती है और जहाँ से सीमान्त उत्पादन घटने लगता है वहाँ से 'घटते हुए उत्पादन की अवस्था' (Diminishing Returns) लागू हो जाती है। परन्तु अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार जहाँ तक औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है वहाँ तक 'बढ़ते हुए उत्पादन की अवस्था' रहती है तथा जहाँ से औसत उत्पादन (AP) घटने लगता है वहाँ से 'घटते हुए उत्पादन की अवस्था' लागू होने लगती है।

[7] इस अवस्था में एक बात यह ध्यान रखने की है कि यद्यपि एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादन घटता है परन्तु फिर भी औसत उत्पादन बढता है। ऐसा क्यों होता है? जब तक प्रयोग में लाये जाने वाला अन्तिम श्रमिक कुल उत्पादन मे पिछले सभी श्रमिको के औसत उत्पादन से अधिक उत्पादन बढ़ाता है तब तक औसत उत्पादन बढ़ेगा और यदि कम उत्पादन बढ़ाता है तो औसत घटेगा। यह बात एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है—माना 9 श्रमिक लगे हुए हैं तो वस्तु का कुल उत्पादन 45 टन है, इसलिए औसत उत्पादन (AP) 5 टन हुआ। यदि एक श्रमिक और लगाया जाता है और उसका सीमान्त उत्पादन 8 टन है तो अब कुल श्रमिक 10 हुए कुल उत्पादन $(45+8)=53$ टन हुआ, और औसत उत्पादन $\frac{53}{10}=5\cdot3$ टन हुआ; अर्थात् औसत उत्पादन बढ़ जाता है क्योंकि विचाराधीन अन्तिम श्रमिक (अर्थात् 10वें श्रमिक) का सीमान्त उत्पादन पिछले सब श्रमिकों (अर्थात् 9 श्रमिकों) के औसत उत्पादन से अधिक है। इसके विपरीत यदि 10वें श्रमिक का सीमान्त उत्पादन 3 टन है तो औसत उत्पादन गिरेगा क्योंकि यह पिछले सब श्रमिकों के औसत उत्पादन से कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि सीमान्त उत्पादन रेखा (MP curve) औसत उत्पादन रेखा (AP curve) को उसके सबसे ऊँचे बिन्दु पर काटेगी क्योंकि जब $MP>AP$, AP रेखा ऊपर बढ़ती हुई होगी, तथा जब $MP<AP$, तो AP रेखा गिरती हुई होगी, जैसा कि नियम के चित्र 1 से स्पष्ट होता है।

सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक (negative) हो जाता है। चूंकि इस अवस्था से उत्पादन गिरने लगता है इसलिए यह कहा जाता है कि इस अवस्था से 'घटते हुए कुल उत्पादन का नियम' (Law of diminishing total returns) लागू हो जाता है।

नियम की चित्र 1 द्वारा व्याख्या की जा सकती है।
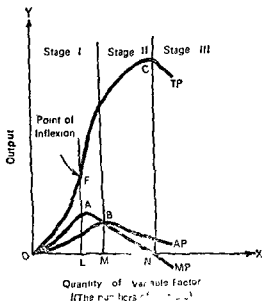
चित्र 1

चित्र में तीनों अवस्थाएं स्पष्ट हैं जिनकी व्याख्या हम ऊपर कर चुके है।

(i) बिन्दु 'F' को 'मोड़ का बिन्दु' (point of inflexion) कहते है, क्योंकि इस बिन्दु के पहले तक कुल उत्पादन (TP) तीव्र गति से बढ़ता है (क्योंकि सीमान्त उत्पादन तेजी से बढ़ता है) और इसलिए O से F तक TP रेखा OX के प्रति उन्नतोदर (convex) है; तथा इस बिन्दु के बाद से कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है (क्योंकि सीमान्त उत्पादन घटने लगता है) और इसलिए इस बिन्दु के बाद से TP रेखा OX के प्रति नतोदर (concave) हो जाती है। यह ध्यान रखने की बात है कि बिन्दु F, बिन्दु A (जहा पर कि सीमान्त उत्पादन अधिकतम है) के ठीक ऊपर है।

(ii) व्यवहार मे एक उत्पादक प्राय दूसरी अवस्था (stage II) मे पाया जायेगा। तीसरी अवस्था मे पाये जाने का कोई प्रश्न ही नही है क्योंकि इस अवस्था मे कुल उत्पादन (TP) घटने लगता है। पहली अवस्था मे भी उत्पादक नही पाया जायेगा क्योकि इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP) तथा औसत उत्पादन (AP) बढते है। उत्पादक केवल दूसरी अवस्था मे ही पाया जायेगा क्योंकि इसमे सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) दोनो घटने लगते है और कुल उत्पादन (TP) घटती हुई दर से बढ़ते-बढ़ते बिन्दु C पर अधिकतम होता है (यहा पर सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है), दूसरे शब्दो मे, उत्पादक OM से कम और ON से अधिक श्रमिकों को नही लगायेगा; इसलिए बिन्दु *M* तथा *N* दो सीमा की स्थितियो (*limiting positions*) को बताते है।

(iii) बिन्दु A पर सीमान्त उत्पादन अधिकतम हो जाता है और उसके बाद से घटने लगता है इसलिए इसको 'घटते हुए सीमान्त उत्पादन का बिन्दु' (point of diminishing marginal returns) कहते है। बिन्दु B के बाद से औसत उत्पादन घटने लगता है इसलिए इसे 'घटते हुए औसत उत्पादन का बिन्दु' (point of diminishing average returns) कहते हैं। इसी प्रकार बिन्दु C के बाद से कुल उत्पादन घटने लगता है इसलिए इसे 'घटते हुए कुल उत्पादन का बिन्दु' (point of diminishing total returns) कहते है। सक्षेप मे, इस व्याख्या के सन्दर्भ मे इस नियम का कथन इस प्रकार भी दिया जाता है,

"यदि हम अन्य साधनों की स्थिर मात्राओं के साथ परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों का प्रयोग करते है तो, अन्य बातों के समान रहने पर, हम उन बिन्दुओं

पर पहुँचेंगे जिनके बाद से सीमान्त उत्पादन, तत्पश्चात औसत उत्पादन और अन्त में कुल उत्पादन घटने लगते हैं।"[1]

4. उत्पत्ति ह्रास नियम तथा लागत (Law of Diminishing Returns and Cost)

यदि 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' या 'उत्पत्ति ह्रास नियम' को लागत की दृष्टि से देखा जाय तो इसे **'परिवर्तनशील लागत का नियम'** (Law of variable cost) या 'लागत वृद्धि नियम' (Law of increasing cost) कहते हैं। प्रारम्भ में, अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तनशील साधन की इकाइयों को बढ़ाया जाता है तो अनुपात से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है, इसका अर्थ यह हुआ कि सीमान्त लागत (marginal cost) तथा औसत लागत (average cost) दोनों घटती हैं।[2] यदि परिवर्तनशील साधन की ओर अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो पहले सीमान्त लागत (MC) एक बिन्दु पर निम्नतम होकर बढ़ने लगती है, इसके पश्चात् औसत लागत एक बिन्दु पर निम्नतम होती है और फिर बढ़ने लगती है। सीमान्त लागत रेखा (MC) औसत लागत रेखा (AC) के निम्नतम बिन्दु से गुजरती है। इसको चित्र 2 द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) घटते हैं। K बिन्दु पर औसत लागत (AC) निम्नतम हो जाती है; इसके बाद बढ़ती है, सीमान्त लागत (MC) भी K बिन्दु से गुजरती हुई बढ़ती है। K बिन्दु के बाद से AC तथा MC दोनों बढ़ने लगते हैं और इस बिन्दु के बाद से 'लागत वृद्धि नियम' लागू हो जाता है।
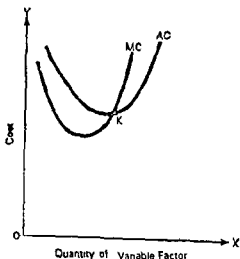
चित्र 2

5. उत्पत्ति ह्रास नियम की मान्यताएं या सीमाएं (Assumptions or Limitations of the Law of Diminishing Returns)

यह नियम कई मान्यताओं पर आधारित है। मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं :

(i) यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के साधनों के मिलने के अनुपात में जैसा चाहे वैसा परिवर्तन किया जा सकता है। (ii) यह नियम तभी लागू होगा जबकि एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखा जाय या अन्य साधन स्थिर हों और एक साधन परिवर्तनशील रहे। (iii) परिवर्तनशील साधन की सब इकाई एक-रूप (homogeneous) होनी चाहिए। (iv) यह सम्भव है कि प्रारम्भिक दशा (initial stage) में यह नियम लागू न हो जबकि परिवर्तनशील साधन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बढ़ाया जाता है; ऐसी स्थिति में थोड़े समय के लिए 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' लागू होगा। उत्पत्ति ह्रास नियम तभी लागू होगा जबकि परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त मात्रा का प्रयोग हो चुका हो। (v) यह मान लिया जाता है कि संगठन, उत्पादन के ढंगों, टेकनोलोजी

---

[1] "If we add more units of the variable factor to fixed quantities of other factors, other conditions remaining the same, we will reach points beyond which the marginal, then the average, and finally the total outputs diminish."

[2] एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) को उत्पादन करने से कुल लागत में जो परिवर्तन होता है उसे सीमान्त लागत (MC) कहते हैं। कुल लागत में उत्पादन का भाग देने से जो प्राप्त होता है वह औसत लागत (AC) होगी।

इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यदि इनमे परिवर्तन होता है तो उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति भविष्य के लिए स्थगित हो जाती है। (vi) नियम का सम्बन्ध वस्तु की भौतिक मात्रा (physical quantity) से है न कि उसके मूल्य (value) से, एक निश्चित बिन्दु के बाद वस्तु की मात्रा मे ह्रास होता है। वस्तु की मात्रा का मूल्य तो बाजार की दशाओं पर निर्भर करता है जिसमें दिन प्रति दिन परिवर्तन होते रहते है। (vii) यदि हम लागत की दृष्टि से देखें तो 'लागत वृद्धि नियम' तब लागू होगा जबकि परिवर्तनशील साधनों या साधन की कीमत तथा उत्पादित वस्तु की कीमत बढ़ी हुई हो।

6. उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने की दशाएं या कारण (Conditions or Causes of the Operation of the Law of Diminishing Returns)

मार्शल के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम कृषि में लागू होता है और उनके अनुसार इसके लागू होने का मुख्य कारण यह है कि कृषि मे प्रकृति का हाथ रहता है। यह विचारधारा उचित नही है। यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों मे लागू होता है। इसके लागू होने का कारण प्रकृति की प्रधानता नही है वरन् अन्य कारण हैं, जैसे, एक या एक से अधिक साधनो का स्थिर रहना, उत्पादक साधनो का सीमित (scarce) होना, इत्यादि।

नियम के लागू होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(i) एक या एक से अधिक साधनो का स्थिर होना (Fixity of one or more than one factors of production)—यदि अन्य साधनों (भूमि तथा पूंजी) को स्थिर रखा जाय तथा एक साधन (श्रम) को बढाया जाय तो परिवर्तनशील साधन (श्रम) को स्थिर साधनों (भूमि तथा पूंजी) की कम और कम मात्रा के साथ कार्य करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति मे श्रम की उत्पादक शक्ति कम होती जायेगी और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। इसी बात को हम दूसरे शब्दों मे निम्न दो प्रकार से और व्यक्त कर सकते हैं:

(अ) उत्पादक साधनों की सीमितता (Scarcity of productive resources)—यदि किसी उत्पत्ति के साधन की पूर्ति को अधिक नही बढाया जा सकता तो उत्पादक को उस साधन की सीमित मात्रा से (अर्थात् साधन की दी हुई स्थिर मात्रा से) ही कार्य चलाना पड़ेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा।[10] (ब) 'अनुकूलतम संयोग' के आगे जाने से (Going beyond the optimum combination of factors of production)—जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन को परिवर्तनशील रखा जाता है तो एक बिन्दु पर उत्पत्ति के साधनों के संयोग का अनुकूलतम अनुपात प्राप्त हो जाता है। उत्पादन को बढ़ाने के लिए, यदि अब अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ, परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। संक्षेप मे, अनुकूलतम संयोग के आगे जाने से उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।[11]

---

[10] उदाहरणार्थ, कृषि भूमि पर आधारित है, परन्तु भूमि लगभग स्थिर है। इसलिए कृषि को बढ़ाने के लिए भूमि की सीमित मात्रा के साथ श्रम तथा पूंजी का अधिक प्रयोग किया जायेगा, परिणामस्वरूप, एक बिन्दु के बाद, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। इसी प्रकार एक उद्योग मे यदि किसी मशीन या कच्चे माल की कमी है तो इस सीमित उत्पादक साधन के साथ अन्य साधनो की अधिक मात्रा के प्रयोग से उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। किसी उत्पादक साधन की सीमितता (scarcity) उसकी पूर्ति मे कमी के कारण हो सकती है या उस साधन को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित करने की बहुत ऊँची लागत के कारण हो सकती है।

[11] अनुकूलतम सयोग के आगे जाने का एक कारण यह हो सकता है कि उद्योग विशेष मे नयी फर्मों का प्रवेश अधिक लागत (high cost) के कारण कठिन हो। जब नयी फर्मों का प्रवेश

(ii) **उत्पत्ति के साधन एक दूसरे के अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं** (Factors of production are imperfect substitutes for one another)—श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, एक साधन को दूसरे के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। यदि यह बात सच नहीं होती तो, एक साधन की मात्रा स्थिर होने पर और अन्य साधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होने पर यह सम्भव होता कि उत्पादन का एक भाग स्थिर साधन की सहायता से किया जाय और तत्पश्चात जबकि इस स्थिर साधन तथा अन्य साधनों में अनुकूलतम संयोग स्थापित हो जाये, तो स्थिर साधन के स्थान पर अन्य साधन का स्थानापन्न किया जाये तथा स्थिर लागत पर उत्पादन को बढ़ाया जाय।[12]

7. नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल कृषि तथा भूमि से निकालने वाले व्यवसायों (extractive industries), जैसे खान खोदना, मछली पकड़ना, मकान बनाना, इत्यादि में ही लागू होता है, निर्माण उद्योगों (manufacturing industries) में नहीं। परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है। जब भी एक या एक से अधिक उत्पत्ति के साधन स्थिर होते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील रहते हैं तो अनुकूलतम सयोग के बाद से यह नियम लागू होगा, चाहे वह कृषि हो, उद्योग या उत्पादन का कोई अन्य क्षेत्र।

8. उत्पत्ति ह्रास नियम के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion)

(i) यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

(ii) यद्यपि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम दो भिन्न स्थितियों (situations) में लागू होते हैं, परन्तु ये एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। उत्पत्ति वृद्धि नियम, तथा उत्पत्ति स्थिरता नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम की अस्थायी अवस्थाएं (temporary phases) हैं।

(iii) यदि एक या एक से अधिक उत्पत्ति के साधन स्थिर रहते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील हैं तो यह नियम आवश्यक रूप से लागू होगा। श्रीमती जोन रोबिन्सन ने ठीक कहा है कि **उत्पत्ति ह्रास नियम एक 'तार्किक अनिवार्यता'** (logical necessity) **है और उत्पत्ति वृद्धि नियम एक 'अनुभवसिद्ध तथ्य'** (empirical fact) है।[13] उत्पत्ति वृद्धि नियम 'अनुभवसिद्ध' इसलिए है कि यह व्यवहार में बहुत-सी स्थितियों (cases) में क्रियाशील होता है; यद्यपि यह जरूरी नहीं है कि यह नियम आवश्यक रूप से प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो। उत्पत्ति ह्रास नियम एक 'तार्किक

कठिन है तो उत्पादन में वृद्धि वर्तमान फर्मों द्वारा की जायेगी। ऐसी स्थिति में वर्तमान फर्मों को अपने 'अनुकूलतम आकार' से आगे जाना पड़ेगा और इसलिए सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों बढ़ेंगी अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा।

[12] "A moment's reflection will show that what the law of Diminishing Returns really states is that there is a limit to the extent to which one factor of production can be substituted for another, or in other words, that the elasticity of substitution between the factors is not finite. If this were not true, it would be possible, when one factor of production is fixed in amount and the rest are in perfectly elastic supply, to produce part of the output with the aid of the fixed factor and then, when the optimum proportion between this and other factors was attained, to substitute some other factor for it to increase output for it at constant cost."

—Mrs. Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p. 336.

[13] "The Law of Diminishing Returns...is merely a matter of logical necessity. But the Law of Increasing Returns is a matter of empirical fact."—Mrs. Joan Robinson, *op cit*, p. 333.

अनिवार्यता' इसलिए है कि यह उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी अवस्था में आवश्यक रूप से लागू होगा क्योंकि उत्पत्ति के साधन सीमित हैं और वे एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं हैं।

उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित किया जा सकता है
(THE WORKING OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS CAN BE POSTPONED)

कृषि, उद्योग, इत्यादि क्षेत्रों में इस नियम की क्रियाशीलता को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोग, कृषि कला में सुधार, यातायात तथा संवाद-वहन के साधनों में विकास, उन्नत बीज, अच्छी खाद, इत्यादि के प्रयोग से कृषि के क्षेत्र में इस नियम की क्रियाशीलता को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है। इसी प्रकार उद्योगों में भी नये आविष्कारों के प्रयोग, उत्पादन की नयी रीतियों की खोज, इत्यादि से इस नियम की क्रियाशीलता को बहुत समय के लिए रोका जा सकता है। अमरीका, ब्रिटेन, यूरोप के उन्नतशील देशों, तथा रूस में उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप ही उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को रोका जा सका है। यह ध्यान रहे कि उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को कुछ समय तक ही स्थगित किया जा सकता है परन्तु उसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता।

उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS)

(1) उत्पत्ति ह्रास नियम **अर्थशास्त्र का एक आधारभूत** (fundamental) **नियम है।** **कृषि,** खान खोदना, मछली पकड़ना, मकान बनाना, उद्योग-धन्धे, इत्यादि **सभी क्षेत्र उत्पत्ति ह्रास प्रवृत्ति से प्रभावित होते हैं।**

(2) यह नियम ही **एक देश से दूसरे देश में जनसंख्या के प्रवास** (migration) **के लिए उत्तरदायी है।** एक ओर भूमि पर जनसंख्या का दबाव तथा दूसरी ओर उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण भूमि से अधिक उत्पादन न मिल सकने के कारण ही एक देश से दूसरे देश को जनसंख्या का प्रवास हुआ है।

(3) **माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है।** माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त बताता है कि जनसंख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ती है; खाद्यान्नों के धीमी गति से बढ़ने का कारण है कि खाद्यान्नों के उत्पादन पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

(4) **रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है।** गहरी खेती में जब भूमि के एक दिये हुए टुकड़े पर श्रम तथा पूंजी की अधिकाधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो पहले की इकाइयों की अपेक्षा बाद की इकाइयों की उत्पत्ति घटती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई से पहले की इकाइयों को जो बचत प्राप्त होती है उसको रिकार्डो ने लगान कहा। स्पष्ट है, यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण ही प्राप्त होता है। विस्तृत खेती में जो बचत श्रेष्ठ भूमियों को, निम्न कोटि की भूमियों के ऊपर प्राप्त होती है, उसे रिकार्डो ने लगान कहा; परन्तु निम्न कोटि की भूमियों को जोत में लाने का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता है।

(5) **सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त** (marginal productivity theory), जिसके अनुसार उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार दिया जाता है, उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता पर आधारित है।

(6) **किसी देश या क्षेत्र** (region) **में लोगों का जीवन-स्तर इस नियम द्वारा प्रभावित**

होता है। किसी देश मे, यदि जनसंख्या अन्य साधनो (भूमि, पूंजी, टेकनोलोजी) की अपेक्षा तीव्र गति से बढती है, तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा और लोगों का जीवन-स्तर नीचा हो जायेगा। इसके विपरीत, यदि पूजी तथा टेकनोलोजी इत्यादि, जनसख्या की अपेक्षा, तीव्र गति से बढ़ते हैं तो उत्पत्ति वृद्धि नियम (जो कि उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अवस्था है) लागू होगा और जीवन-स्तर ऊंचा होगा।

(7) **यह नियम बहुत से आविष्कारों के लिए उत्तरदायी है।** बहुत से आविष्कार तथा उत्पत्ति की नयी रीतियों की खोज इस नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए ही की गयी है। इस नियम की प्रवृत्ति को लम्बे समय तक रोकने के लिए आज भी मनुष्य नयी खोजों के लिए प्रयत्नशील है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम या वर्द्धमान प्रतिफल नियम
(LAW OF INCREASING RETURNS)

1. प्राक्कथन (Introduction)

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि उत्पत्ति के साधनों की मात्रा मे वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होगी। एक या एक से अधिक साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाय, और यदि परिवर्तनशील साधनो मे वृद्धि करने के अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़े तो इसे उत्पत्ति वृद्धि नियम कहेंगे।

2. उत्पत्ति वृद्धि नियम का कथन (Statement of the Law of Increasing Returns)

मार्शल के अनुसार,

"श्रम तथा पूंजी में वृद्धि सामान्यतया संगठन को अधिक श्रेष्ठ बनाती है जिसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूंजी की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है।"[14]

मार्शल के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम केवल निर्माण उद्योगों में ही लागू होता है। परन्तु यह विचार गलत है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार,

'जब किसी प्रयोग में किसी उत्पत्ति के साधन की अधिक मात्रा लगायी जाती है, तो प्रायः संगठन में सुधार हो जाता है जिससे उत्पत्ति के साधनों की प्राकृतिक इकाइयां (मनुष्य, एकड़ या द्राव्यिक पूंजी) अधिक कुशल हो जाती है। ऐसी स्थिति में उत्पादन को बढ़ाने के लिए साधनों की भौतिक मात्रा में आनुपातिक वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती।"[15]

श्रीमती जोन रोबिन्सन आगे लिखती हैं: यह नियम या प्रवृत्ति, उत्पत्ति ह्रास नियम की भांति, उत्पत्ति के सभी साधनो के सम्बन्ध मे समान रूप से लागू हो सकती है, परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के विपरीत, यह प्रत्येक दशा में लागू नही होती है। कभी साधनो की वृद्धि से कुशलता में सुधार होंगे और कभी नही भी होंगे।[16]

---

[14] "An increase of labour and capital leads generally to improved organization, which increases the efficiency of the work of labour and capital"
—Marshall, *Principles of Economics* p. 265.

[15] "When an increased amount of any factor of production is devoted to a certain use, it is often the case that improvements in organization can be introduced which will make natural units of the factors (men, acres or money capital) more efficient, so that an increase in output does not require a proportionate increase in the physical amount of factors".

[16] Mrs. Joan Robinson further adds, "This law, or rather tendency, like the Law of Diminishing Returns, may apply equally to all the factors of production, but unlike the Law of Diminishing Returns, it does not apply in every case. Sometimes an increase of the factors will lead to improvements in efficiency, and sometimes it will not"
—Mrs. Joan Robinson: *Economics of Imperfect Competition*, pp. 333-34.

3. उत्पत्ति वृद्धि नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Increasing Returns)

उत्पत्ति वृद्धि नियम के पीछे मुख्य बात यह है कि साधनों की अधिक इकाइयो के प्रयोग से संगठन में सुधार होते हैं, साधनो की कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है, बड़े पैमाने की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं, स्थिर तथा अविभाज्य साधनो (indivisible factors) का प्रयोग भलीभांति होने लगता है। इन सबके परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादन बढ़ता है; अर्थात् कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है, तथा औसत उत्पादन भी बढ़ता है, जब साधनो के मिलने का अनुपात अनुकूलतम हो जाता है तो उसके बाद से सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों गिरने लगते हैं अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।

इस नियम को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है:

परिवर्तनशील साधन (श्रम) की इकाइयां	कुल उत्पादन (Total Product)	सीमान्त उत्पादन (Marginal Product)	औसत उत्पादन (Average Product)
1	10	10	10
2	25	15	12·5
3	47	22	15·6
4	77	30	19 2
5	112	35	22 4

उदाहरण से स्पष्ट है कि अन्य साधनो को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयों को बढ़ाने से सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) बढते हैं और कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है। नियम को चित्र 3 द्वारा बताया जाता है :
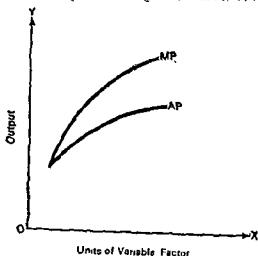
चित्र 3

4. उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा लागत (The Law of Increasing Returns and Cost)

लागत की दृष्टि से इस नियम को 'लागत ह्रास नियम' (Law of Decreasing Cost) कहा जाता है। चूंकि जिस अनुपात मे परिवर्तनशील साधन या साधनों को बढ़ाया जाता है उससे अधिक उत्पादन प्राप्त होता है, इसलिए सीमान्त लागत (marginal cost) तथा औसत लागत (average cost) घटती हैं। इन लागतो के घटने के कारण ही इस नियम को लागत ह्रास नियम कहते हैं। इसको हम चित्र 4 द्वारा स्पष्ट करते हैं।

5. उत्पत्ति वृद्धि नियम की सीमाएं (Limitations of the Law)

(i) यह आवश्यक नही है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम प्रत्येक दशा मे आवश्यक रूप से लागू हो। यदि परिवर्तनशील साधन की इकाई, स्थिर साधन की अपेक्षा छोटी है, तो प्रारम्भिक दशा से ही उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा अन्यथा प्रारम्भ से ही उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक दशा मे यह आवश्यक नही है कि परिवर्तनशील साधन या साधनों की मात्रा मे वृद्धि करने से सगठन मे सुधार हो, साधनो की कार्यक्षमता मे वृद्धि हो और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो।

(ii) यह प्रश्न उठता है कि क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने के बाद वह अनिश्चित समय तक क्रियाशील रहेगा ? इसका उत्तर स्पष्ट 'ना' (No) है। जब तक साधनों के मिलने के अनुकूलतम अनुपात की ओर अग्रसर किया जाता है तब तक यह नियम लागू होगा। जब एक बार अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जाता है और इसके बाद यदि परिवर्तनशील साधन की मात्रा को और बढ़ाया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा।

चित्र 4

6. उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने की दशाएं या कारण (Conditions or Causes of its Operation)

नियम के लागू होने के कारण निम्नलिखित हैं :

(i) साधनों की अविभाजकता (Indivisibility of factors of production)—श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार नियम के क्रियाशील होने का मुख्य कारण है उत्पत्ति के साधनों की अविभाजकता। अविभाजकता का अर्थ है कि साधनों को प्रायः हम छोटे-छोटे टुकड़ों में नहीं बाँट सकते हैं। मैनेजर, भूमि, मशीन-औजारों के रूप में पूंजी, इत्यादि साधन एक सीमा तक अविभाज्य हैं। किसी भी एक अविभाज्य साधन के साथ प्रारम्भ में यदि परिवर्तनशील साधन या साधनों की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है तो अविभाज्य साधन का भलीभांति प्रयोग नहीं होता है। परन्तु परिवर्तनशील साधन की मात्रा के एक सीमा तक बढ़ाने से अविभाज्य साधन का प्रयोग अच्छी प्रकार से होने लगता है, उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है और लागत घटती है; अर्थात उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।[17]

(ii) पर्याप्त मात्रा में साधनों की पूर्ति की प्राप्यता (Adequate availability of the supply of factors)—यदि सभी आवश्यक साधनों की पूर्ति आसानी से और पर्याप्त मात्रा में की जा सकती है तथा प्रत्येक साधन के अनुपात में कमी या वृद्धि की जा सकती है तो परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू होगा और एक सीमा तक अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़ेगा तथा लागत गिरेगी, अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा।

---
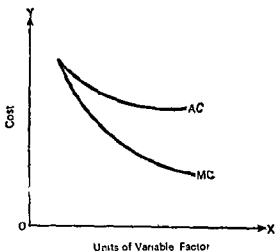
[17] उदाहरणार्थ, माना एक साहसी अपनी फर्म में 1000 रुपये प्रति माह पर एक कुशल मैनेजर रखता है जो कि वस्तु विशेष की 500 इकाई प्रति दिन के उत्पादन की व्यवस्था कुशलतापूर्वक कर सकता है। यदि फर्म प्रारम्भ में केवल 250 इकाइयों का ही उत्पादन करती है तो भी साहसी को उस मैनेजर को रखना पड़ेगा। 250 इकाई के उत्पादन के लिए मैनेजर को काट कर दो टुकड़ों में विभक्त नहीं किया जा सकता ताकि आधा मैनेजर 250 इकाइयों का आधा उत्पादन कर सके। यदि अधिक श्रम इत्यादि लगाकर उत्पादन बढ़ाया जाता है तो अविभाज्य मैनेजर का अधिक अच्छा प्रयोग होगा, उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ेगा, प्रति इकाई लागत कम होगी क्योंकि अब मैनेजर के 1000 रुपये वेतन की लागत अधिक इकाइयों (माना 500 इकाइयों) पर फैलेगी। इस प्रकार साधनों की अविभाजकता के कारण उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

(iii) बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचतें (Economies of large scale production)— कुछ उद्योगो मे उत्पत्ति के साधनों को बढ़ाने से बड़े पैमाने की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती है जिसके कारण एक सीमा तक उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है, लागत घटती है और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

यद्यपि यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों मे लागू होता है परन्तु कृषि की अपेक्षा उद्योगो में यह विशेष रूप से लागू होता है। इसका कारण है कि उद्योगों मे सभी साधनों को आसानी से घटाया-बढ़ाया जा सकता है (जबकि कृषि मे भूमि सीमित रहती है), श्रम विभाजन तथा बड़े पैमाने की बचतें आसानी से प्राप्त होती हैं तथा उद्योगों में अनुसन्धान तथा परीक्षण की अधिक सुविधाएं रहती हैं।

7. नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल निर्माण उद्योगो मे ही लागू होता है क्योंकि उद्योगो मे मनुष्य का हाथ (प्रकृति की अपेक्षा) अधिक होता है। परन्तु यह विचारधारा गलत है। नियम के लागू होने का कारण मनुष्य के हाथ की प्रधानता नहीं है बल्कि अन्य कारण हैं जिनका अध्ययन हम ऊपर कर चुके हैं। जब तक उत्पत्ति के साधनो के अनुकूलतम अनुपात की स्थापना की ओर अग्रसर (move) किया जाता है, यह नियम उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र मे लागू होगा।

8. उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति ह्रास नियमों की तुलना (Comparison of the Law of Increasing and Diminishing Returns)

(i) यदि एक साधन के अधिक प्रयोग करने से कुशलता बढ़ती है तब उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है; यदि साधन के अधिक प्रयोग से कुशलता घटती है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

दूसरे शब्दो मे, उत्पत्ति ह्रास नियम तब क्रियाशील होता है जबकि उत्पत्ति के साधन गलत अनुपातो में मिला दिये जाते हैं, उत्पत्ति ह्रास नियम साधनों के गलत अनुपातो के परिणामों को बताता है। उत्पत्ति वृद्धि नियम तब लागू होता है जबकि एक साधन को बढ़ाने से साधनों के अनुपातों में सुधार होता है और पैमाने की बचतें (economies of scale) प्राप्त होती हैं।

(ii) उत्पत्ति वृद्धि नियम तब लागू होगा जबकि हम 'अनुकूलतम' की ओर अग्रसर होते हैं; उत्पत्ति ह्रास नियम तब लागू होता है जबकि हम अनुकूलतम के आगे (beyond) जाते हैं।

9. उत्पत्ति वृद्धि नियम के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम एक ही प्रकार के तत्वों (same set of facts) से सम्बन्धित नहीं होते; वे भिन्न परिस्थितियो (different situations) में लागू होते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी वे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में एक सीमा तक उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, अनुकूलतम की अवस्था मे उत्पत्ति स्थिरता नियम लागू होता है, तत्पश्चात उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। दूसरे शब्दो में, उत्पत्ति वृद्धि नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अस्थायी अवस्था है; अन्त मे उत्पत्ति ह्रास नियम आवश्यक रूप से लागू होता है।

क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल खाता है ?
(IS INCREASING RETURNS COMPATIBLE WITH PERFECT COMPETITION)

वास्तव में, 'बढते हुए प्रतिफल' (increasing returns) तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' आपस मे मेल नहीं खाते; बढते हुए प्रतिफल के क्रियाशील रहने से पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। इसका कारण इस प्रकार है: किसी उद्योग मे सभी फर्मों को बढते हुए प्रतिफल एक साथ प्राप्त नहीं होते; पहले एक फर्म या कुछ फर्में बढ़ते हुए प्रतिफल को प्राप्त करने मे सफल होती हैं; अर्थात्

एक फर्म या कुछ फर्मों को, अपने विस्तार के साथ बचतें प्राप्त होती हैं तथा उस एक फर्म या उन कुछ फर्मों की उत्पादन लागत कम होती है। यह एक विकासमान फर्म या ये कुछ विकासमान फर्में, लागत में ह्रास के परिणामस्वरूप अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देती; धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम होती जाती है और अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार 'बढ़ते हुए प्रतिफल' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' दोनों का सहअस्तित्व (co-existence) नहीं हो सकता।

[उपर्युक्त बात को प्रो. सेम्युलसन (Samuelson) इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"फर्मों की लगातार गिरती हुई लागतों के अन्तर्गत, उनमें से एक या कुछ फर्में अपनी उत्पादन-मात्राओं को इस प्रकार बढ़ायेंगी ताकि बाजार में उद्योग की कुल उत्पादन-मात्रा में से उनकी उत्पादन-मात्राएं एक महत्त्वपूर्ण भाग हो जायें। तब हमें इस प्रकार की स्थितियाँ प्राप्त हो सकती हैं : (1) एक अकेला *एकाधिकारी जो कि उद्योग पर प्रभुत्व रखेगा;* (2) *थोड़े बड़े विक्रेता जो कि संयुक्त रूप से उद्योग पर* प्रभुत्व रखेंगे, इनको 'अल्पाधिकारी' (oligopolists) कहा जाता है; या (3) प्रतियोगिता में किसी प्रकार की अपूर्णता, जो कि स्थायी रीति से या अन्तर्विरामी (intermittent) कीमत-युद्धों की एक शृंखलाओं के सम्बन्ध में, अर्थशास्त्रियों के पूर्ण प्रतियोगिता के मॉडल (model), जिसमें कि किसी भी फर्म का उद्योग-कीमत पर कोई नियन्त्रण नहीं होता, से एक महत्त्वपूर्ण अन्तर या विचलन (departure) को बताता है।"[16]]

उत्पत्ति स्थिरता नियम
(LAW OF CONSTANT RETURNS)

1. प्राक्कथन

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी। 'उत्पत्ति स्थिरता नियम', उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच, अन्तःकालीन स्थिति (*transitional stage*) में क्रियाशील होता है। **चाहे यह नियम कितने ही थोड़े समय के लिए क्रियाशील रहे परन्तु यह उस स्थिति में लागू होता है जहाँ पर उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति समाप्त होती है और उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति प्रारम्भ नहीं हो पाती है।** इस प्रकार से यह नियम उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

2. उत्पत्ति स्थिरता नियम का कथन तथा व्याख्या (Statement and Explanation of the Law)

यदि एक या एक से अधिक साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों को बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में बढ़ती हुई उत्पत्ति प्राप्त होगी।

> **उत्पादन के साधनों का अधिक प्रयोग करने तथा उत्पादन को बढ़ाते जाने से जब बड़े पैमाने की सब उत्पत्ति की बचतें समाप्त हो जाती हैं और वस्तु की प्रति इकाई लागत निम्नतम हो जाती है तो कहा जाता है कि उत्पादन 'अनुकूलतम स्तर' (optimum scale) पर हो रहा है, यदि इसी स्थिति में उत्पादन चलता रहता है तो 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of Constant Returns) या 'स्थिर लागत नियम' (Law of Constant Costs) लागू होता है।**

---

[16] "Under persisting decreasing costs for the firms, one or a few of them will so expand their q's as to become a significant part of the market for the industry's total Q. We shall then end up (1) with a single monopolist who dominates the industry; (2) with a few large sellers who together dominate the industry and who will later be called 'oligopolists,' or (3) with some kind of imperfection of competition that, in either a stable way or in connection with a series of intermittent price wars, represents an important departure from the economist's model of 'perfect' competition wherein no firm has any control over industry price."

यदि इस अवस्था में, जैसे मशीन इत्यादि को स्थिर रखकर, परिवर्तनशील साधन (श्रम) की एक और इकाई बढायी जाती है तो 'अनुकूलतम स्तर' भंग हो जायेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। यदि इस अवस्था में सब साधन स्थिर रखे जाते हैं और उनमें कोई परिवर्तन नही किया जाता है तो उत्पादन स्थिर लागत (constant cost) पर जारी रहेगा।

माना कि इस अवस्था में 4 मशीन तथा 400 श्रमिक मिलकर किसी वस्तु की 1000 इकाइयो का उत्पादन करते हैं और प्रति इकाई न्यूनतम लागत 5 रु. है। यदि इस स्थिति में उत्पादन चलता रहता है तो कहा जायेगा कि 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' लागू हो रहा है। हम वस्तु की 1000 इकाइयां और उत्पादन कर सकते हैं यदि 4 मशीन तथा 400 श्रमिक और लगाएं। दूसरे शब्दों मे, स्थिर लागत पर उत्पादन को अनिश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है यदि साधनो के वर्तमान संयोग (present set-up) को कई गुना किया जाय। इस उदाहरण मे यदि हम 1020 इकाइयां उत्पन्न करना चाहें तो हमें किसी एक साधन की मात्रा को अधिक बढ़ाना होगा (क्योकि वर्तमान संयोग को दुगुना करने से कोई मतलब नही निकलेगा) और ऐसी स्थिति में यह बढा हुआ उत्पादन स्थिर लागत पर प्राप्त नही होगा।

साधारण उत्पत्ति के नियमों मे प्राय. एक साधन को परिवर्तनशील रखकर अन्य सभी साधनो को स्थिर रखा जाता है। यदि हम 'अनुकूलतम स्तर' पर समान लागत पर अधिक उत्पादन करना चाहते हैं तो हमें सभी उत्पत्ति के साधनो को समान अनुपात (same proportion) में बढ़ाना होगा। इसलिए 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' को एक दूसरी प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। **प्रो. स्टिगलर (Stigler) के शब्दों में, "जब सभी उत्पादक सेवाओं को एक दिये हुए अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है।"**[19] इस परिभाषा में यह ध्यान देने की बात है कि इसमें किसी भी साधन को स्थिर नही रखा गया है, सभी साधनों को बढ़ाकर उसी अनुपात में उत्पादन प्राप्त किया जाता है। वास्तव में, ऐसी स्थिति को **'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम'** (Law of Constant Returns to Scale) कहते हैं। अत: यह कहा जाता है कि अनुकूलतम बिन्दु पर उत्पादन *'स्थिरता प्रतिफल' (constant returns) तथा 'पैमाने का स्थिर प्रतिफल'* (constant returns to scale) दोनों के अधीन होता है।[20]

कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार, कोई 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of Constant Returns) नहीं होता बल्कि केवल 'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' (Law of Constant Retuins to Scale) होता है।
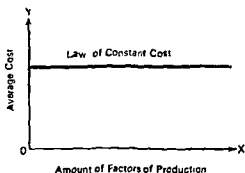
चित्र 5

उपर्युक्त विवरण को स्पष्ट रूप से समझने के लिए 'पैमाने का उत्पादन' या **'पैमाने का प्रतिफल'** (returns to scale) को ठीक प्रकार से समझ लेना आवश्यक है। दीर्घकाल मे सभी उत्पत्ति के साधनों को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। जब किसी फर्म द्वारा प्रयोग किये जाने वाले सभी साधनों की मात्राओ (प्लांट तथा मशीनरी को मिलाकर) मे परिवर्तन होता है तो हम कहते

[19] "When all the productive services are increased in a given proportion, the product is increased in the same proportion." —Stigler, *The Theory of Price*, p. 129.

[20] "Production at the optimum point is, therefore, subject to both constant returns and constant returns to scale."

है कि 'उत्पादन का पैमाना' (scale of production) बदल गया है। यदि उत्पत्ति के सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (माना कि सभी को दुगुना कर दिया जाता है), तो उत्पादन (output) तीन प्रकार से प्रभावित हो सकता है—उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ सकता है, अधिक अनुपात में बढ़ सकता है या कम अनुपात में बढ़ सकता है। यदि उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है जिसमें साधन बढ़ाये गये हैं, तो हम कहते हैं कि फर्म को **'पैमाने का स्थिर उत्पादन'** (constant returns to scale) प्राप्त होता है; यदि उत्पादन, साधनों की अपेक्षा, कम अनुपात से बढ़ता है, तो हम कहते हैं कि फर्म को **'पैमाने का घटता हुआ उत्पादन'** (decreasing returns to scale) प्राप्त होता है; और, यदि उत्पादन, साधनों की अपेक्षा अधिक अनुपात में बढ़ता है, तो हम कहते हैं कि फर्म को **'पैमाने का बढ़ता हुआ उत्पादन'** (increasing returns to scale) प्राप्त होता है।

'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' अर्थात् 'स्थिर लागत नियम' (Law of Constant Cost) को चित्र 5 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

प्रश्न

1. "क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने का कारण उत्पादन के साधनों की सीमितता है।" विवेचना कीजिए।

   "The operation of the Law of Diminishing Returns is due to the scarcity of the factors of production." Discuss.

   अथवा

   "उत्पत्ति ह्रास नियम साधनों के बीच अपूर्ण स्थानापन्नता के कारण लागू होता है।" विवेचना कीजिए।

   'The Law of Diminishing Returns is due to the imperfect substitutability between factors of production.' Discuss. (Bihar)

   [संकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम के आधुनिक मत अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' की संक्षेप में विवेचना कीजिए, तथा नियम को लागत के शब्दों में बताइए; तत्पश्चात् इस नियम के लागू होने के कारणों पर प्रकाश डालिए।]

2. "उत्पत्ति ह्रास नियम केवल कृषि में ही लागू नहीं होता बल्कि यह सभी प्रकार के जटिल उत्पादन के लिए सत्य होता है।" इसकी विवेचना कीजिए और उत्पत्ति ह्रास नियम को बताइए।

   "The Law of Diminishing Returns is not applicable to agriculture alone; it is valid for all complex production." Discuss this and state the Law of Diminishing Returns. (Bihar and Bhagalpur)

   [संकेत—'उत्पत्ति ह्रास नियम' अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातों' के नियम का कथन दीजिए, उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण कीजिए, नियम को लागत के शब्दों में (चित्र सहित) भी व्यक्त कीजिए; तत्पश्चात् नियम के लागू होने के कारणों को बताइए; इसके बाद बताइए कि यह नियम कृषि तथा उद्योग दोनों में लागू होता है (अर्थात् नियम के क्षेत्र को संक्षेप में बताइए) और अन्त में निष्कर्ष दीजिए।]

3. "परिवर्तनशील अनुपातों का नियम या उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थशास्त्र का एक आधारभूत सिद्धांत है।" विवेचना कीजिए।

   "The law of variable proportions or the law of diminishing returns is a fundamental principle of economics." Discuss. (Magadh)

4. "यदि हम अन्य साधनो की स्थिर मात्राओं के साथ परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों का प्रयोग करते है तो, अन्य बातो के समान रहने पर, हम उन बिन्दुओ पर पहुँचेंगे जिनके बाद से सीमान्त उत्पादन, तत्पश्चात औसत उत्पादन और अन्त में कुल उत्पादन घटने लगते हैं।" इस कथन की पूर्णतया व्याख्या कीजिए।
"If we add more of the variable factor to fixed quantities of other factors, other conditions remaining the same, we will reach points beyond which the marginal, then the average, and finally the total outputs diminish." Discuss fully this statement.

अथवा

"उत्पादन के साधनो के सयोग मे एक साधन का अनुपात ज्यो-ज्यो बढता जाता है त्यो-त्यो, एक बिन्दु के बाद, उस साधन का सीमान्त तथा औसत उत्पादन घटता जाता है।" विवेचना कीजिए।
"As the proportion of one factor in a combination of factors is increased, after a point, the marginal and average product of that factor will diminish." Discuss.
[संकेत : उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की पूर्ण व्याख्या दीजिए।]

5. 'असमान अनुपातीय प्रतिफल के नियम' की व्याख्या कीजिए।
Explain the Law of Non-proportional Outputs.
[संकेत : परिवर्तनशील अनुपातो के नियम अर्थात उत्पत्ति ह्रास नियम की पूर्ण व्याख्या दीजिए।]

6. "उत्पत्ति वृद्धि तथा स्थिरता नियम केवल उत्पत्ति ह्रास नियम के ही अस्थायी रूप है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
"The laws of increasing and constant returns are only the temporary phases of the Law of Diminishing Returns" Analyse this statement.
[संकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' की उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा विवेचना करते हुए अन्त मे यह निष्कर्ष दीजिए कि उत्पत्ति वृद्धि तथा स्थिरता नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम के ही अस्थायी रूप हैं।]

7. क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का परीक्षण कीजिए तथा यह दिखाइए कि यह (i) माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त, तथा (ii) लगान के सिद्धान्त से किस प्रकार सम्बन्धित हैं?
Explain the Law of Diminishing Returns and indicate its bearing on (i) the Malthusian Theory of Population, and (ii) the Theory of Rent.
[संकेत—प्रथम भाग मे 'उत्पत्ति ह्रास नियम' अर्थात् 'परिवर्तनशील अनुपातो के नियम' का कथन दीजिए, उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण कीजिए, तथा नियम को लागत के शब्दों मे (चित्र सहित) भी व्यक्त कीजिए; दूसरे भाग मे 'उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्त्व' नामक शीर्षक के अन्तर्गत point (3) तथा (4) लिखिए।]

8. उदाहरण की सहायता से उत्पत्ति वृद्धि नियम के स्वभाव तथा कारणो को समझाइए। क्या यह नियम असीमित रूप से लागू हो सकता है?
Explain with an example the nature and causes of Increasing Returns. Can it operate without limit?
[संकेत—दूसरे भाग मे यह स्पष्ट कीजिए कि यह नियम असीमित रूप से लागू नही हो सकता, यह तो 'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' या उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अस्थायी अवस्था (phase) है।]

9. उत्पत्ति वृद्धि नियम का कथन दीजिए और उसे समझाइए। स्पष्ट कीजिए कि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा पूर्ण प्रतियोगिता का सहअस्तित्व नहीं हो सकता।
State and explain the Law of Increasing Returns. Explain how increasing returns and perfect competition cannot co-exist.
[संकेत—प्रथम भाग मे उत्पत्ति वृद्धि नियम की उदाहरण तथा रेखाचित्रों द्वारा व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग के लिए 'क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल खाता है ?' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को लिखिए।]

10. "प्रकृति द्वारा निभायी गयी भूमिका उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुरूप होती है; जबकि मनुष्य द्वारा निभायी गयी भूमिका उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुरूप होती है।" व्याख्या कीजिए।
"The part played by nature conforms to diminishing returns while the part which man plays conforms to increasing returns." Explain.
[संकेत—उत्पत्ति ह्रास नियम तथा उत्पत्ति वृद्धि नियम दोनों की परिभाषाए दीजिए; उत्पत्ति ह्रास नियम की उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा बहुत संक्षेप में व्याख्या कीजिए; उदाहरण तथा रेखाचित्र की प्रारम्भिक अवस्था मे उत्पत्ति वृद्धि नियम का भी स्पष्टीकरण हो जायेगा। तत्पश्चात् दोनों नियमों के लागू होने के कारणों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए यह बताइए कि मार्शल का यह विचार गलत है कि प्रकृति की प्रधानता के कारण उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और मनुष्य की प्रधानता के कारण उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।]

11. "उत्पत्ति ह्रास नियम एक 'तार्किक अनिवार्यता' (logical necessity) है और उत्पत्ति वृद्धि नियम एक 'अनुभव सिद्ध तथ्य' (empirical fact) है।" विवेचना कीजिए।
"The Law of Diminishing Returns is merely a matter of logical necessity. But the Law of Increasing Returns is a matter of empirical fact." Discuss. (Agra)
[संकेत—'उत्पत्ति ह्रास नियम' तथा 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' दोनों की परिभाषाएं दीजिए; उत्पत्ति ह्रास नियम की उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा संक्षेप में व्याख्या कीजिए, उदाहरण तथा रेखाचित्र की प्रारम्भिक अवस्था में उत्पत्ति वृद्धि नियम का भी स्पष्टीकरण हो जायेगा। तत्पश्चात् दोनों नियमो के लागू होने के कारणों पर संक्षेप मे प्रकाश डालिए। अन्त मे निष्कर्ष दीजिए कि उत्पत्ति ह्रास नियम एक तार्किक अनिवार्यता है और उत्पत्ति वृद्धि नियम एक अनुभव सिद्ध तथ्य है।]

22

सम-उत्पाद रेखाएं-1

(Iso-product Curves-1)

सम-उत्पाद रेखाओं का अर्थ तथा उनकी विशेषताएं
(The Concept and Characteristics of Isoproduct Curves)

वस्तुओं के उपभोग में तथा साधनों के प्रयोग में कई दृष्टियो से समानता है। जिस प्रकार से उपभोग में कई वस्तुओं का संयुक्त रूप में प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन में कई साधनों का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। पुन: वस्तुओ के विभिन्न संयोग समान सन्तुष्टि प्रदान कर सकते हैं। उसी प्रकार उत्पादन मे भी, दी हुई टैकनीकल दशाओं के अन्तर्गत, उत्पत्ति के विभिन्न साधनो के संयोग समान उत्पादन प्रदान कर सकते हैं; सरलता के लिए हम केवल दो उत्पत्ति के साधनों के संयोग को (जिस प्रकार कि उपभोग में दो वस्तुओं के संयोग को) लेते हैं जो कि समान उत्पादन प्रदान करते हैं; साधनो के ऐसे विभिन्न संयोगो को वक्र-रेखाओं में व्यक्त किया जाता है और ऐसी रेखाओं को 'सम-उत्पाद रेखाएं' (Iso-product curves) कहते हैं।

सम-उत्पाद रेखा की परिभाषा तथा उसका अर्थ (Definition and Meaning of an Iso-product Curve)

एक सम-उत्पाद रेखा तटस्थता-वक्र रेखा की भांति होती है। एक तटस्थता-वक्र रेखा दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगो को बताती है जो कि उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। इसी प्रकार एक सम-उत्पाद रेखा दो साधनों के विभिन्न संयोगो को बताती है जिनसे एक फर्म उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित करती है। कीरस्टेड (Keirstead) के शब्दों मे,

> **"सम-उत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब सम्भावित संयोगों को बताती है जो कि एक समान कुल उत्पादन प्रदान करते हैं।"[1]**

सम-उत्पाद रेखा (Iso-product curve or Isoquant or Equal product curve) को कभी-कभी 'उत्पादन तटस्थता रेखा' (*Production Indifference Curve*) भी कहते हैं क्योंकि यह 'उपभोग मे तटस्थता-वक्र रेखा' की भांति होती है। कभी-कभी इसे **'उत्पादन का तटस्थता-वक्र विश्लेषण'** (*Indifference curve analysis of production*) भी कहा जाता है।

सम-उत्पाद रेखा को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना कि श्रम तथा पूंजी दो उत्पत्ति के साधन हैं। माना कि इन साधनो के विभिन्न संयोग 500 इकाई के बराबर उत्पादन देते हैं :

अग्रलिखित उदाहरण को चित्र 1 द्वारा व्यक्त किया है। IP सम-उत्पाद रेखा है जो श्रम तथा पूंजी के उन विभिन्न संयोगो को बताती है जिनसे एक फर्म या उत्पादक को

---

[1] "Isoproduct curve represents all possible combinations of the two factors that will give the same total product." —Keirstead.

पूंजी की इकाइयां (Units of Capital)	श्रम की इकाइयां (Units of Labour)	कुल उत्पादन (Total Production)
6	3	500
4	6	500
2	9	500

एक समान उत्पादन (अर्थात् 500 इकाई के बराबर उत्पादन) प्राप्त होता है।
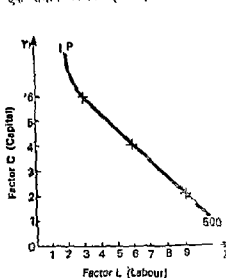
चित्र 1
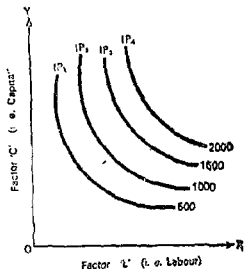
चित्र 2

सम-उत्पाद मानचित्र (Iso-product Map)

एक उत्पादक या फर्म के लिए एक नहीं बल्कि अनेक सम-उत्पादक रेखाएं हो सकती है; प्रत्येक सम-उत्पाद रेखा उत्पादन की विभिन्न मात्रा को बताती है जैसे 500 इकाई, 1000 इकाई, 1500 इकाई, 2000 इकाई, इत्यादि। **जब कई सम-उत्पाद रेखाओं को, जो कि एक उत्पादक या फर्म के लिए उत्पत्ति की विभिन्न 'समान मात्राओं' को बताती है, एक ही चित्र में दिखाया जाता है तब इस चित्र को 'सम-उत्पाद मानचित्र' (Iso-product Map) कहते हैं।** नीची सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन की कम मात्रा को तथा ऊँची सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन की अधिक मात्रा को बताती हैं। एक सम-उत्पाद मानचित्र को चित्र 2 में दिखाया गया है।

सम-उत्पाद रेखाओं की मान्यताएं (Assumptions of Iso-product Curves)

सम-उत्पाद रेखाओं की मुख्य मान्यताएँ निम्न है :

(1) सम-उत्पाद रेखाओं को खीचते समय सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के केवल दो साधन किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

[जब दो से अधिक साधन प्रयोगों मे लाये जाते हैं तो सम-उत्पादन रेखा की सरलता समाप्त हो जाती है। तीन साधनों के लिए हमे तीन माप (three dimensions) की आवश्यकता पड़ेगी तथा तीन से अधिक साधनों के लिए रेखागणित (Geometry) हमारा साथ छोड़ देती है और हमें या तो बीजगणित (Algebra) की सहायता लेनी पड़ती है या हम शब्दो मे व्यक्त करते हैं; परन्तु सम-उत्पाद विश्लेषण (Iso-product analysis)) अप्रभावित रहता है।]

(2) यह मान लिया जाता है कि उत्पादन की टेक्नीकल दशाएं (technical production conditions) दी हुई हैं तथा स्थिर (constant) हैं।

(3) यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के साधन छोटी-छोटी इकाइयों में विभाज्यनीय (divisible) हैं। इस मान्यता के परिणामस्वरूप ही हम समतल सम-उत्पाद रेखाएँ (smooth iso-product curves) खीच पाते हैं।

(4) यह मान लिया जाता है कि दी हुई 'उत्पादन की टेकनीकल दशाओं' के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले साधन पूरी कुशलता के साथ मिलाये जाते हैं जितना कि सम्भव है।[2]

तटस्थता-वक्र रेखाओं तथा सम-उत्पाद रेखाओं में अन्तर (Difference between Indifference Curves and Isoproduct Curves)

दोनों मे मुख्य अन्तर निम्नलिखित है :

(1) तटस्थता-वक्र रेखाओं को केवल एक क्रम (order) मे रखा जा सकता है, हम केवल यह कह सकते है कि एक तटस्थता-वक्र रेखा दूसरे की अपेक्षा सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर को बताती है परन्तु हम यह नही कह सकते कि सन्तुष्टि कितनी अधिक है। दूसरे शब्दो मे, **एक तटस्थता-वक्र रेखा को परिमाणात्मक मूल्य** (numerical value) **प्रदान नहीं कर सकते** क्योकि सन्तुष्टियो को परिमाणात्मक रूप से मापने के लिए कोई भौतिक इकाई (physical unit) नही है, परन्तु **सम-उत्पाद रेखाओं को परिमाणात्मक मूल्य प्रदान किये जा सकते हैं** क्योकि साधनो के सयोग द्वारा उत्पादित वस्तु को भौतिक इकाइयो मे मापा जा सकता है।[3]

(2) एक दिये हुए समय के अन्तर्गत एक उपभोक्ता का व्यय लगभग उसकी द्राव्यिक आय द्वारा सीमित होता है, परन्तु एक उत्पादक या व्यापारी उत्पादन के साधनो पर अपने व्यय को, एक सीमा तक, परिवर्तित कर सकता है।[4]

सम-उत्पाद रेखाओं की विशेषताएं या गुण
(CHARACTERISTICS OR PROPERTIES OF ISOPRODUCT CURVES)

(1) तटस्थता-वक्र रेखा की भाँति **एक सम-उत्पाद रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होती है अर्थात उसका ढाल ऋणात्मक होता है।** एक सम-उत्पाद रेखा का बाये से दाये नीचे की ओर ढाल एक साधन का दूसरे साधन के लिए टेकनीकल स्थानापन्नता (technical substitutability) पर निर्भर करता है, अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया मे एक साधन को दूसरे से प्रतिस्थापित करने की योग्यता करने पर निर्भर करता है।[5] एक सम-उत्पाद रेखा के ऋणात्मक ढाल का कारण यह है कि यदि एक फर्म एक साधन 'L' की इकाइयाँ बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन 'C' की इकाइयाँ घटानी पडेगी तभी उसे इन दो साधनो के विभिन्न सयोगो से समान-उत्पादन मिलेगा। लेफ्टविच (Leftwich) के शब्दो मे, "जब साधन टेकनीकल स्थानापन्न (Technical substitutes) है, तब एक साधन की कम मात्रा प्रयुक्त करने पर हानि-पूर्ति के लिए दूसरे साधन की

[2] It is assumed that under given 'technical production conditions' the factors used are being combined as efficiently as possible.

[3] Indifference curves can only be put in an order; we can say that one indifference curve represents a higher level of satisfaction than another but we cannot say how much higher. In other words, *we cannot assign a numerical value to indifference curves* because satisfaction cannot be quantitatively measured in physical units. But, *we can assign a numerical value to iso-product curves* because the commodity produced by the com i ation of factors of production can be measured in physical units.

[4] The expenditure of the consumer is almost limited by his money income during a given period of time; whereas the producer or businessman can change, to a certain extent, his expenditure on factors of production hired to produce a commodity.

[5] "The downward slope of an isoquant from left to right depends upon the technical substitutability of one resource for the other, that is, upon the ability of one resource to substitute itself for the other in the productive process."

अधिक मात्रा प्रयुक्त करनी पड़ेगी यदि कुल उत्पादन समान रहता है।"[6]

[यदि फर्म एक साधन की मात्रा स्थिर रखकर दूसरे की मात्रा बढ़ाती है तो उसे या तो बढ़ता हुआ प्रतिफल (increasing returns) या घटता हुआ प्रतिफल (decreasing returns) प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि वह दोनों साधनों की मात्रा को बढ़ाता है तो उसे उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त नहीं होगी। उत्पादन की समान मात्रा तभी प्राप्त होगी जबकि एक साधन को बढ़ाने पर दूसरे को घटाया जाता है। सम-उत्पाद रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होनी चाहिए।]

(2) सम-उत्पाद रेखाएं कभी एक दूसरे को काटती नहीं हैं या वे एक दूसरे को स्पर्श नहीं करती हैं अर्थात् वे एक दूसरे के लिए स्पर्श-रेखाएं (tangents) नहीं होतीं। यदि एक सम-उत्पाद रेखा दूसरी को काटती है या दूसरी को स्पर्श करती है तो इसका अर्थ है कि कटाव का बिन्दु (point of intersection) या स्पर्श-बिन्दु (point of tangency) दो सम-उत्पाद रेखाओं पर होगा। जब इस बिन्दु को नीचे की सम-उत्पाद रेखा की दृष्टि से देखेंगे तो यह उत्पादन की कम मात्रा को बतायेगा; यदि इसे दूसरी ऊँची सम-उत्पाद रेखा की दृष्टि से देखेंगे तो वही बिन्दु उत्पादन की अधिक मात्रा को बतायेगा। परन्तु एक ही बिन्दु दो साधनों के दो विभिन्न संयोगों को नहीं बता सकता और न ही वह एक बिन्दु उत्पत्ति की दो भिन्न मात्राओं को बता सकता है।[7]

(3) सम-उत्पाद रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex to the origin) होती है। सम-उत्पाद रेखा के मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होने का अर्थ है कि जब उत्पादक एक सम-उत्पाद रेखा पर बायें से दायें नीचे की ओर चलता है (अर्थात् उत्पादन की मात्रा समान रखी जाती है) तो वह साधन L की प्रत्येक इकाई को साधन C की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित करता है। (देखिए चित्र 3) दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखा का उन्नतोदर आकार 'घटती हुई सीमान्त टेकनीकल प्रतिस्थापन दर' (Diminishing marginal rate of technical substitution) को बताता है।

यह बात चित्र 3 से स्पष्ट होती है। उत्पादक IP रेखा के बिन्दु a से बिन्दु *l* की ओर चलता है अर्थात् वह बायें से दायें नीचे की ओर चलता है। साधन L (अर्थात् श्रम) की एक इकाई AB या bc को साधन C (अर्थात् पूंजी) की FG या ab इकाइयों के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) किया जाता है। यदि L को एक और इकाई BC (या de) द्वारा बढ़ाया जाता है तो L की इस एक और इकाई BC (या de) को C की GH (या cd) इकाइयों
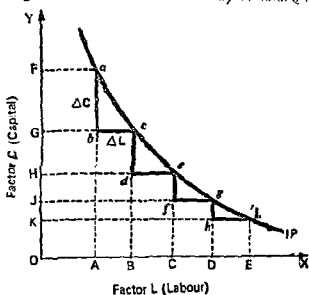
चित्र 3

[6] "When resources are technical substitutes if less of one is used more of the other must be used to compensate for its loss if total product is to remain constant."

[7] But one given point cannot indicate two different combinations of the two factors nor can the same point blow hot and cold and represent two different quantities of the product.

के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है; इसी प्रकार L की एक और अतिरिक्त इकाई fg (या CD) को C की ef (या HJ) इकाइयों के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है; इत्यादि। चित्र से स्पष्ट है कि साधन L की प्रत्येक इकाई को साधन C की घटती हुई मात्रा (JK < HJ < GH < FG अथवा gh < ef < cd < ab) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को L की C के लिए 'घटती हुई सीमान्त टैकनीकल प्रतिस्थापन दर' (Marginal Rate of Technical Substitution of L for C is diminishing) कहते हैं।[8]

साधारणतया एक सम-उत्पाद रेखा मूल-बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है तथा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है; परन्तु कुछ परिस्थितियों में इसका आकार भिन्न हो सकता है जैसा कि चित्र 5 तथा 6 में दिखाया गया है।

जब दो साधन L तथा C पूर्ण स्थानापन्न होते हैं तो इन दोनों के बीच टैक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर स्थिर (constant) होगी और सम-उत्पाद रेखा एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा होगी।[9]

इस बात को चित्र 5 में IP रेखा द्वारा दिखाया गया है। माना कि हम IP रेखा पर बिन्दु a से शुरू करते हैं। माना कि साधन L को एक-एक इकाई करके बढ़ाया जाता है जैसा कि चित्र 5 में

[8] यदि सम-उत्पाद रेखा 'मूल बिन्दु के प्रति नतोदर' (concave to the origin) है तो ऐसी स्थिति में सम-उत्पाद रेखा 'बढ़ती हुई सीमान्त टैक्नीकल प्रतिस्थापन दर' (increasing marginal rate of technical substitution) को बतायेगी, जैसा कि चित्र 4 में दिखाया
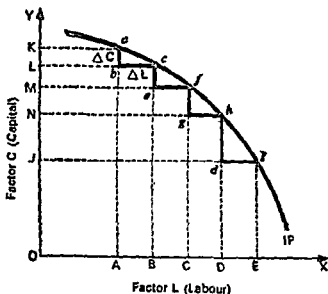
चित्र 4

गया है। चित्र से स्पष्ट है कि साधन L की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को साधन C की बढ़ती हुई मात्रा (hd > fg > ce > ab) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। परन्तु सम-उत्पाद रेखा का ऐसा आकार एक सामान्य (normal) बात नहीं होती, तथा दो साधनों L तथा C के बीच सीमान्त टैकनीकल प्रतिस्थापन दर बढ़ती हुई नहीं हो सकती।

[9] When the two factors L and C are perfect substitutes, the marginal rate of technical substitution between the two will be constant and the iso-product curve will be a negatively sloping straight line.

चित्र 5

हम साधन L को bg (यानी AB), cd (यानी BC), तथा ef द्वारा बढाते हैं, तो इसकी प्रतिक्रिया मे उत्पादक साधन C की जो मात्रा क्रमश: घटाने को तत्पर होता है वह समान या स्थिर (constant) रहेगी जैसा कि चित्र 5 मे साधन C की ab (यानी JK), gc (यानी KL), तथा de मात्राए बताती हैं, साधन C की मात्राए बराबर या समान हैं। स्पष्ट है कि जब दो साधन L तथा C पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होते हैं तो L की C के लिए टैक्नीकल प्रतिस्थापन सीमान्त दर $(MRTS_{LC})$ = स्थिर (constant)
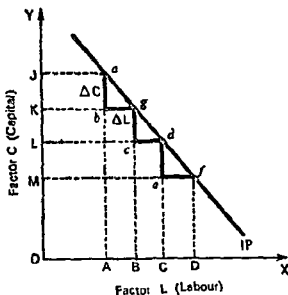
[इस बात को हम एक दूसरी प्रकार से भी बता सकते हैं। हम जानते हैं कि एक सम-उत्पाद वक्र-रेखा के किसी बिन्दु पर $MRTS_{LC}$ बताती है सम-उत्पाद वक्र-रेखा के ढाल (slope) को। चूंकि एक ऋणात्मक-ढाल वाली सीधी रेखा का ढाल उसकी सम्पूर्ण लम्बाई पर स्थिर या समान होता है, इसलिए एक सीधी रेखा के आकार वाली सम-उत्पाद रेखा दो साधनों L तथा C के बीच एक स्थिर या समान सीमान्त टेकनीकल प्रतिस्थापन दर को बतायेगी।][10]

परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ण स्थानापन्न साधनों (perfectly substitutable factors) की बात केवल सैद्धान्तिक है। वास्तविक जीवन में कोई भी दो साधन पूर्ण रूप से स्थानापन्न नही होते हैं और यदि वे पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे दो साधन केवल एक ही साधन की दो इकाइयां हैं।

जब दो साधन L तथा C पूर्ण पूरक (perfect complementary) होते हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे सदैव एक निश्चित अनुपात मे मांगे जाते हैं—

> **दो साधनों के पूर्ण पूरक होने की स्थिति में सम-उत्पाद वक्र-रेखा का आकार L-आकार का हो जाता है; अर्थात सम-उत्पाद वक्र-रेखा दो सीधी रेखाओं द्वारा निर्मित होगी, प्रत्येक सीधी रेखा एक अक्ष (one axis) के प्रति समानान्तर (parallel) होगी तथा वे एक दूसरे को समकोण (right angle) पर मिलेंगी तथा समकोण का मोड़ (या कोना) मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होगा। ऐसी सम-उत्पाद वक्र-रेखा बताती है कि दो साधन सदैव एक साथ एक निश्चित अनुपात में मांगे जाते हैं।**[11]

[10] We Know that $MRTS_{LC}$ indicates the slope of an isoproduct curve at a point on it. As the straight line has the same or constant slope throughout its length, therefore the straight line isoproduct curve will indicate the same or constant $MRTS_{LC}$ throughout

[11] In the case of two factors being perfect complementary, the isoproduct curve becomes L-shape; that is, the iso-product curve will consist of two straight lines each running parallel to one of the axes and meeting at right angle, and the right angle bent or corner will be convex to the origin. Such an isoproduct curve indicates that the two factors will always be jointly demanded in a fixed or constant ratio.

ऐसी सम-उत्पाद रेखा को चित्र 6 में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि दो साधन L तथा C, 2 : 3 के एक निश्चित (या स्थिर) अनुपात में माँगे जाते है; अर्थात साधन L की 2 इकाइयाँ तथा साधन C की 3 इकाइयाँ एक साथ माँगी जाती हैं, यह बात सम-उत्पाद रेखा IP_1 पर बिन्दु A बताता है, चूंकि ये साधन 2 : 3 के निश्चित अनुपात में माँगे जाते है, इसलिए यदि हम L की मात्रा को 2 इकाई से बढ़ाकर 4 इकाई कर देते है तो C की मात्रा को बढ़ाकर 6 इकाई करना होगा, यह संयोग (combination) दूसरी सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर बिन्दु B बताता है।
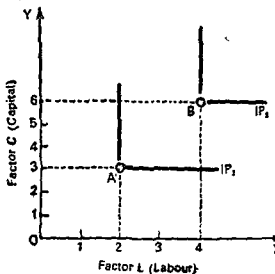
चित्र 6

सम-उत्पाद रेखा IP_1 (या IP_2) की पडी हुई भुजा (horizontal arm) यह बताती है कि, साधन C की मात्रा को स्थिर रखते हुए, साधन L की मात्रा में कोई भी वृद्धि उत्पादन के स्तर को नहीं बढ़ायेगी, और साधन L की समस्त बढी हुई मात्रा बेकार रहेगी। इसी प्रकार से सम-उत्पाद रेखा IP_1 (या IP_2) की खड़ी भुजा (vertical arm) यह बताती है कि, साधन L की मात्रा स्थिर रखते हुए, साधन C की मात्रा मे कोई भी वृद्धि उत्पादन के स्तर को नही बढ़ायेगी, और साधन C की समस्त बढी हुई मात्रा बेकार रहेगी। दोनों साधनो को सदैव एक निश्चित अनुपात (यहाँ पर 2 : 3 के अनुपात) मे माँगा जायेगा।

उपर्युक्त समस्त विवरण से एक महत्वपूर्ण विशेषता (characterstic) स्पष्ट होती है—सम-उत्पाद रेखा की वक्रता दो साधनो के बीच स्थानापन्नता तथा पूरकता के अंश को बताती है। सम-उत्पाद रेखा जितनी ही कम वक्रता लिए हुए होगी उतना ही *स्थानापन्नता का अंश अधिक होगा। पूर्ण स्थानापन्न साधनो के लिए सम-उत्पाद* रेखाएं सीधी या सरल रेखाएं हो जाती है, वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से ऐसे दो साधन भिन्न नहीं होते बल्कि एक ही साधन की दो इकाइयाँ होती हैं। इसके विपरीत, जितनी ही सम-उत्पाद रेखाओं मे वक्रता अधिक होगी उतना ही पूरकता का अंश अधिक होगा; पूर्ण पूरकता की स्थिति में सम-उत्पाद रेखाओ का आकार L आकार का हो जायेगा।[12]

(5) रिज रेखाएं[13] : उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएं (Ridge Lines : Boundaries for the economic region of production)—सम-उत्पाद रेखाओ की एक विशेषता और है

[12] The curvature of an iso-product curve indicates the degree of substitutability and complementarity between two factors The less curved the isoproduct curves, the greater the degree of substitution For perfect substitutes the isoproduct curves become straight lines; from the practical point of view this implies that the two factors are not different but they are simply the two units of the same factor. If, on the other hand, the factors are complementary, the isoproduct curves become more curved The greater the curvature the greater the degree of complementarity; for perfect complementarity isoproduct curves become L-shape.

[13] *Ridge lines के हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार हो सकते है—'मेड़ रेखाएं' या 'कूटक रेखाएं'।*

जो कि उत्पादन प्रक्रिया (Production Process) में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सम-उत्पाद रेखाएं अपने ऊपर पीछे की ओर झुकती हैं' (bend back upon themselves) अथवा यह कहिए कि उनके 'ऊपर को चढ़ते हुए भाग' (positively sloped segments) होते है, जैसा कि चित्र 7 मे दिखाया गया है। चित्र में IP_2 सम-उत्पाद रेखा D तथा A बिन्दुओं, IP_1 रेखा E तथा B बिन्दुओं, और IP_3 रेखा F तथा C बिन्दुओं पर पीछे की ओर झुकती है। A, B तथा C बिन्दुओं को मिलाने से OR रेखा प्राप्त होती है तथा D, E और F को मिला देने से OL रेखा प्राप्त होती है; OR तथा OL रेखाए रिज-रेखाएं (या मेड़ रेखाए) हैं। ये 'रिज-रेखाएं उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएं हैं। सम-उत्पाद रेखाओं के केवल वे भाग जो कि रिज रेखाओं के बीच में हैं, उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं।
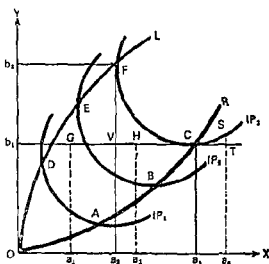
चित्र 7

रिज रेखाओं पर एक व्याख्यात्मक नोट
(AN EXPLANATORY NOTE ON RIDGE LINES)

चित्र 7 मे X-axis पर साधन X (माना श्रम) की विभिन्न मात्राओं a_1, a_2, a_3, a_4, a_5 इत्यादि को दिखाया गया है तथा Y-axis पर साधन Y (माना पूंजी) की विभिन्न मात्राओं b_1, b_2 इत्यादि को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि साधन X को a_4 मात्रा तथा साधन Y को b_1 मात्रा का संयोग उत्पादन की IP_3 मात्रा की उत्पत्ति करता है। यदि सम-उत्पाद रेखा IP_3 पर नीचे की ओर चलें तो हम साधन X का प्रतिस्थापन (substitution) करते जायेंगे अर्थात् साधन X की मात्रा को बढाते जायेंगे और साधन Y का त्याग करते जायेंगे जब तक हम साधन Y की b_1 मात्रा पर न पहुँच जायें; और ऐसा करने में उत्पादन की मात्रा या उत्पादन-स्तर IP_3 मे कोई कमी नहीं होगी। **मात्रा b_1 साधन Y की न्यूनतम मात्रा है जो कि उत्पादन के IP_3 स्तर की उत्पत्ति के लिए प्रयोग की जा सकती है।** साधन Y की b_1 मात्रा को स्थिर रखते हुए, यदि बिन्दु C पर हम साधन X की मात्रा को और अधिक बढ़ायें तो कुल उत्पादन गिरेगा; जैसे यदि साधन X की a_4 मात्रा को बढ़ाकर a_5 मात्रा कर दी जाये और जबकि साधन Y की b_1 मात्रा को स्थिर रखा जाता है तो हम चित्र में बिन्दु T पर होंगे जो कि उत्पादन स्तर IP_3 से नीचे है, स्पष्ट है कि पहले की अपेक्षा कुल उत्पादन गिर जाता है। इसका अभिप्राय है कि बिन्दु C के बाद साधन X की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात् MP_x) ऋणात्मक (negative) है तभी साधन X की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करने से कुल उत्पादन घटता है। दूसरे

[11] पाठकों के लिए नोट—परीक्षा में, प्रश्न विशेष के स्वभाव को देखते हुए, यदि सम-उत्पाद रेखाओं की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण देना है, तो विद्यार्थियों को यहाँ तक ही विषय-सामग्री लिखना पर्याप्त होगा। यदि प्रश्न में स्पष्ट रूप से 'रिज रेखाओं' के बारे में पूछा गया है तो इसके आगे दिये गये व्याख्यात्मक विवरण को अवश्य लिखना चाहिए।

शब्दो में, बिन्दु C पर $MP_x=0$; बिन्दु C के बायें ओर यदि हम साधन X की मात्रा बढाते है, जबकि साधन Y की मात्रा b_1 पर स्थिर रखते है, तो साधन X की वृद्धि हमे ऊँची तथा और ऊँची सम-उत्पाद रेखा पर ले आयेगी और इस प्रकार MP_x धनात्मक (positive) होगी। चित्र से स्पष्ट है कि यदि साधन X की मात्रा a_1 है तो हम G बिन्दु पर होगें और G बिन्दु से एक सम-उत्पाद रेखा खीची जा सकेगी जो कि IP_1 से ऊँची होगी; इसी प्रकार यदि साधन X की मात्रा बढाकर a_2, a_3 तथा a_4 कर दी जाती है तो हम क्रमश. V, H तथा C बिन्दुओ पर पहुँच जायेगे और बिन्दु C से होती हुई सम-उत्पाद रेखा ऊँची होगी बिन्दु H से गुजरने वाली सम-उत्पाद रेखा से और यह ऊँची होगी बिन्दु V से गुजरने वाली सम-उत्पाद रेखा से। **संक्षेप में बिन्दु C के बायें को साधन X की सीमान्त उत्पादकता अर्थात MP_x धनात्मक (positive) है, बिन्दु C पर $MP_x=0$ है, तथा बिन्दु C के बाद MP_x ऋणात्मक (negative) है।** यदि हम चाहते हैं कि बिन्दु C के बाद साधन X की मात्रा को बढाने से कुल उत्पादन मे कमी न हो तो हमे साधन Y की मात्रा को b_1 से ऊपर बढाना होगा तभी हम बिन्दु S पर पहुँचेगें जो IP_3 सम-उत्पाद रेखा पर है, दूसरे शब्दो मे, बिन्दु C के बाद पहले के समान उत्पादन स्तर IP_3 को प्राप्त करने के लिए हमे दोनो साधनो X तथा Y की मात्रा मे वृद्धि करनी होगी जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक रूप से उत्पादन लागत बढ जायेगी और ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' (economic nonsense) की होगी। अत, सम-उत्पाद रेखा IP_3 के सन्दर्भ मे बिन्दु C उत्पत्ति के साधनो (X तथा Y) के विवेकपूर्ण सयोग (rational combination) की सीमा (boundary) होगी क्योकि इस बिन्दु पर $MP_x=0$ है और इसके आगे फर्म साधनो का कोई भी संयोग प्रयोग मे नही लायेगी अर्थात् बिन्दु C के बाद 'उत्पादन का अनार्थिक क्षेत्र' (uneconomic region of production) होगा। दूसरे शब्दो मे, **बिन्दु C के बाद सम-उत्पाद रेखा का 'पीछे को झुकने वाला भाग' या 'ऊपर को चढ़ता हुआ भाग' यह बताता है कि उत्पादन के एक निश्चित स्तर को प्राप्त करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं को बढ़ाना होगा और ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' को या 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' को बतायेगी।**

इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_3 के सन्दर्भ मे बिन्दु F पर साधन Y की सीमान्त उत्पादकता शून्य होगी अर्थात् $MP_y=0$, और फर्म बिन्दु F के आगे साधनों के किसी भी सयोग को प्रयोग मे नही लायेगी क्योकि ऐसा करने से उसे, उत्पादन का IP_3 स्तर प्राप्त करने के लिए, दोनो साधनो Y तथा X की मात्रा बढानी होगी, जिससे उत्पादन-लागत बढ़ जायेगी तथा ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' की होगी और फर्म 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' मे प्रवेश करेगी; दूसरे शब्दो मे बिन्दु F के बाद सम-उत्पाद रेखा का 'पीछे को झुकता हुआ भाग' या 'ऊपर को चढता हुआ भाग' दोनो साधनों की वृद्धि को या 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' को बताता है। स्पष्ट है कि बिन्दु F 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' (boundary for economic region of production) को बताता है।

इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_2 बिन्दु E तथा B पर अपने ऊपर पीछे को झुकती है। बिन्दु B पर $MP_x=0$, तथा बिन्दु E पर $MP_y=0$ है। इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_1 बिन्दु D तथा A पर पीछे की ओर झुकती है, बिन्दु A पर $MP_x=0$ तथा बिन्दु D पर $MP_y=0$ है।

यदि बिन्दु A, B तथा C को मिला दिया जाये तो हमे **रिज रेखा OR** प्राप्त हो जायेगी—

(i) रिज रेखा OR साधन Y की न्यूनतम मात्राओं को बताती है जो कि उत्पादन को विभिन्न मात्राओं के लिए आवश्यक है।

(ii) रिज रेखा OR उन बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जहाँ पर कि $MP_x=0$ है; क्योकि बिन्दु A, B तथा C पर साधन X की सीमान्त उत्पादकता (MP_x) शून्य है।

(iii) रिज रेखा OR 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' (boundary line for economic region of production) है; क्योंकि रिज रेखा OR के एक तरफ साधन X तथा Y के वे संयोग हैं जो कि एक फर्म उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की उत्पत्ति के लिए प्रयोग मे लायेगी, तथा दूसरी ओर दोनों साधनो के वे संयोग हैं जो कि फर्म प्रयोग में नही लायेगी। संक्षेप मे, रिज रेखा 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र' को 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' से पृथक करती है।

यदि बिन्दु D, E तथा F को मिला दिया जाये तो हमे रिज रेखा OL प्राप्त हो जायेगी—

(i) रिज रेखा OL साधन X की न्यूनतम मात्राओं को बताती है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं के लिए आवश्यक हैं।

(ii) रिज रेखा OL उन बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जहाँ पर कि $MR_y = 0$ है; क्योंकि बिन्दु D, E तथा F पर साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (MP_y) शून्य है।

(iii) रिज रेखा OL 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' है; क्योंकि रिज रेखा OL के एक तरफ साधन X तथा Y के वे संयोग हैं जो कि एक उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की उत्पत्ति के लिए प्रयोग मे लायेगी तथा दूसरी ओर दोनों साधनों के वे संयोग हैं जो कि फर्म प्रयोग मे नही लायेगी। संक्षेप मे, रिज रेखा OL 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र' को 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' से पृथक करती है।

समग्र रूप मे,

> साधन X तथा Y के सभी विवेकपूर्ण संयोग (rational combinations) रिज रेखाओं के बीच में होंगे; दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखाओं के केवल वे भाग जो कि दोनों रिज रेखाओं के बीच में होते हैं वे ही उत्पादन के लिए उपयुक्त (relevant) होंगे।

प्रश्न

1. सम-उत्पाद रेखाएं क्या हैं? उनकी विशेषताओ को बताइए।
   What are Isoproduct curves? Explain their characteristics.
2. सम-उत्पाद रेखाओं की परिभाषा दीजिए। वे तटस्थता-वक्र रेखाओं से किस प्रकार भिन्न होती हैं? 'रिज रेखाएं' क्या हैं?
   Define Equal-Product curves. How do they differ from Indifference curves? What are 'ridge lines'?
3. आप 'उत्पादन तटस्थता रेखा' से क्या समझते हैं? निम्न को समझाइए: (अ) सम-उत्पाद रेखाएं मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होती हैं। (ब) सम-उत्पाद रेखाओं की वक्रता उस सुगमता (ease) को बताती है जिससे कि साधन एक दूसरे से प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं।
   What do you understand by 'Production Indifference Curves'? Explain the following: (a) Isoproduct curves are convex to the origin. (b) The curvature of the isoproduct curves indicates the ease with which the two factors can be substituted for each other.

सम-उत्पाद रेखाएं–2
(*Iso-product Curves–2*)

टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर
(Marginal Rate of Technical Substitution)

1 प्राक्कथन (Introduction)

दो साधनो X तथा Y के सयोग (combination) मे यदि एक साधन X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो यह स्वाभाविक है कि दूसरे साधन Y की मात्रा घटायी जायेगी ताकि उत्पादन-स्तर समान बना रहे, अर्थात् कुल उत्पादन मे कोई परिवर्तन न हो। टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दो साधनों के बीच प्रतिस्थापन की दर को बताती है, जबकि उत्पादन के स्तर में कोई परिवर्तन न हो। 'उत्पादन के क्षेत्र मे टेकनीकल प्रतिस्थापन की दर' का विचार 'उपभोक्ता के माँग सिद्धान्त मे तटस्थता-वक्र विश्लेषण के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के विचार की भाँति है।

2. टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की परिभाषा (Definition of Marginal Rate of Technical Substitution)

उत्पत्ति के साधनो के विभिन्न सयोग उत्पादन के एक दिये हुए स्तर को उत्पादित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों मे, एक साधन को दूसरे के स्थान पर इस प्रकार से प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है कि उत्पादन का एकसमान स्तर बना रहे। एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर प्रयोग करने की योग्यता को टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर द्वारा मापा जाता है।[1] टेकनीकल प्रतिस्थापन को सीमान्त दर की परिभाषा[2] नीचे दी गयी है :

> एक साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y की वह मात्रा है जो X की एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाने की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है ताकि उत्पादन का स्तर पहले के समान स्थिर बना रहे।[3]
>
> अथवा
>
> साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y की वह

1 The ability to use one factor (or input) in place of another is measured by the marginal rate of technical substitution (MRTS).

2 विद्यार्थियो के लिए नोट—दो परिभाषाओ मे से कोई भी एक परिभाषा, जो कि विद्यार्थियो को आसान लगती है, याद रखना पर्याप्त है।

3 The Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y is the amount of Y which has to be subtracted in order to set off one additional unit of X, when the output is maintained at the constant level.

मात्रा है जिसके लिए X की एक इकाई स्थानापन्न (substitute) है, जबकि उत्पादन का स्तर पहले के समान बना रहे।[4]

टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) का अर्थ निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है :

संयोग संख्या (Combination Numbers)	साधन Y की इकाइयाँ	साधन X की इकाइयाँ	उत्पादन का स्तर	साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की दर [MRTS of X for Y *i.e.* $MRTS_{XY}$]
1	50	1	500 इकाइयाँ	—
2	40	2	500 इकाइयाँ	10 : 1
3	34	3	500 इकाइयाँ	6 : 1

तालिका से स्पष्ट है कि एक उत्पादक साधन Y की 50 इकाइयों तथा साधन X की 1 इकाई के संयोग से 500 इकाई के बराबर किसी वस्तु का उत्पादन करता है। अब वह साधन X की एक इकाई से बढ़ाता है तो उसे साधन Y की 10 इकाइयाँ घटानी पड़ती है ताकि उत्पादन का वही स्तर बना रहे; दूसरे शब्दों में, साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y की 10 इकाइयाँ हैं जो कि साधन X की 1 इकाई बढ़ाने की प्रतिक्रिया में घटायी जाती हैं;[5] अतः MRTS of X for Y (संक्षेप में, $MRTS_{XY}$) $=10:1$.

10 इकाइयाँ साधन Y की *मात्रा में परिवर्तन को बताती हैं, इसको हम गणित की भाषा में* ΔY लिख सकते हैं; तथा 1 इकाई साधन X की मात्रा में परिवर्तन को बताती है, इसको हम ΔX लिख सकते हैं। अतः,

$$MRTS_{XY}=10:1$$
$$=\Delta Y:\Delta X$$
$$=\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

अतः टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को निम्न प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है :

> **साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y में परिवर्तन की मात्रा है जो कि X में एक इकाई के परिवर्तन की क्षतिपूर्ति (compensation) के लिए आवश्यक है, यदि उत्पादन स्थिर रहता है।[6] इसको प्रायः इस प्रकार लिखते हैं :**

$$MRTS_{XY}=\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

[4] The MRTS of factor X for factor Y is the amount of Y for which one unit of X is a substitute, if output is maintained at a constant level.

[5] यदि साधन X की 1 इकाई और बढ़ायी जाती है तो तालिका से स्पष्ट है कि साधन Y की 6 इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं, ऐसी स्थिति में $MRTS_{XY}=6:1$.

[6] Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y is the amount of change in Y that is required to compensate for a unit change in X, if output remains constant. This is usually written as $MRTS_{XY}=\frac{\Delta Y}{\Delta X}$

(Continued)

3. टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक सम-उत्पाद रेखा के ढाल को मापती है (Marginal Rate of Technical Substitution measures the slope of an isoproduct curve)

चित्र 1 में हम सम-उत्पाद रेखा IP का ढाल P बिन्दु पर विचार करते हैं। यदि P तथा Q बिन्दु बहुत निकट हैं (जैसा कि चित्र 2 से स्पष्ट है) तो मोटे तौर पर हम कह सकते है कि ST रेखा सम-उत्पाद रेखा के P बिन्दु पर स्पर्श-रेखा (tangent) होगी तथा कोण (angle) OTS सम-उत्पाद रेखा के P बिन्दु पर ढाल (slope) को बतायेगा। चित्र 1 में माना कि उत्पादक P बिन्दु से Q बिन्दु पर आता है, अर्थात् X-साधन की एक अतिरिक्त इकाई प्रयोग करता है तथा Y-साधन की कुछ इकाइयां कम कर देता है। X-साधन की मात्रा मे वृद्धि को ΔX द्वारा बताते हैं तथा Y वस्तु की मात्रा में कमी को $-\Delta Y$ द्वारा बताया जाता है, अतः साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRT_{XY}) $= -\Delta Y : \Delta X$ हुई या $-\dfrac{\Delta Y}{\Delta X}$ हुई।
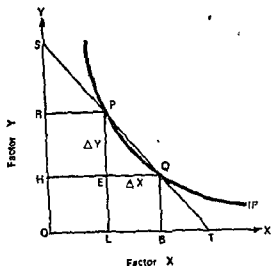
चित्र 1

अब हम नीचे सिद्ध करेंगे कि सम-उत्पाद रेखा का ढाल टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' $\left(\text{अर्थात्} -\dfrac{\Delta Y}{\Delta X}\right)$ को बताता है। चित्र 1 मे,

सम-उत्पाद रेखा का बिन्दु P पर ढाल (Slope of Isoproduct Curve at Point P)

= Tangent ST का ढाल (यदि p तथा Q बहुत निकट हैं।)
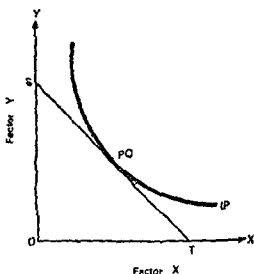
चित्र 2

$MRTS_{XY}$ को हम इस प्रकार पढ़ते हैं—Marginal Rate of Technical Substitution of X for Y [X की Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर]

यदि हम $MRTS_{YX}$ लिखते हैं तो इसका अभिप्राय है—Marginal Rate of Technical Substitution of Y for X [Y की X के लिए टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर]। यहाँ (क्रमशः)

$=$ Tan of angle OTS
$=$ Tan of angle EQP ($\because \angle OTS = \angle EQP$ दोनों corresponding angles हैं)

$$=\frac{\text{Perpendicular (लम्ब)}}{\text{Base (आधार)}}$$

$$=\frac{PE}{EQ}$$

$$=-\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$=MRTS_{XY}$ (अर्थात् Marginal Rate of Technical Substitution of X for Y)

4. टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दो साधनों X तथा Y की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात को बताती है (The MRTS indicates the ratio of the marginal productivities of two factors X and Y)

चित्र 1 में उत्पादक बिन्दु P से बिन्दु Q पर पहुंचने में साधन Y की PE मात्रा घटाता है तथा साधन X की EQ मात्रा बढ़ाता है (अर्थात वह साधन X को साधन Y के स्थान पर प्रतिस्थापित करता है)। परन्तु ऐसा करने में कुल उत्पादन समान रहता है क्योंकि चलन (movement) एक ही सम-उत्पाद रेखा पर है। दूसरे शब्दों में, साधन Y की मात्रा में थोड़ी कमी (अर्थात् PE कमी) के कारण भौतिक उत्पादन (physical output) में हानि (या कमी) होगी जो कि बराबर होगी साधन X की मात्रा में थोड़ी वृद्धि (अर्थात् EQ वृद्धि) के कारण भौतिक उत्पादन मे लाभ के, क्योंकि तभी कुल उत्पादन समान रहेगा।

उत्पादन में हानि (loss) $=$ साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity of Factor Y, that is, MP_Y) $\times PE$

उत्पादन में लाभ (gain) $=$ साधन X की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity Factor of X, that is, MP_X) $\times EQ$

उत्पादन में हानि $=$ उत्पादन में लाभ

$$MP_Y \times PE = MP_X \times EQ$$

अथवा, $$\frac{PE}{EQ} = \frac{MP_X}{MP_Y}$$

अथवा $$\frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{MP_X}{MP_Y}$$

अर्थात् $$MRTS_{XY} = \frac{MP_X}{MP_Y}$$

स्पष्ट है कि साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर X तथा Y की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात को बताती है।

5. सारांश (Summary)

उपर्युक्त विवरण का सारांश निम्नलिखित है :

1. टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक साधन (माना Y) में कमी को

पर हम साधन Y को एक-एक इकाई करके बढ़ाते हैं और तब यह देखते हैं कि इसकी प्रतिक्रिया मे X की कितनी मात्रा घटानी पड़ती है। दूसरे शब्दों में,

$$MRTS_{YX} = \frac{\Delta X}{\Delta Y}.$$

मापती है जो कि दूसरे साधन (मात्रा X) की एक इकाई की वृद्धि के परिणामस्वरूप करनी पड़ती है ताकि उत्पादन स्तर ठीक पहले के समान बना रहे।[7]

2. एक सम-उत्पाद रेखा के किसी एक बिन्दु पर साधन X की साधन Y के लिए टैकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर सम-उत्पाद रेखा के उस बिन्दु पर ढाल (slope) के बराबर होती है।[8]

3. साधन X की साधन Y के लिए टैकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर साधन X की सीमान्त उत्पादकता तथा साधन Y की सीमान्त उत्पादकता के अनुपात को भी बताती है।[9]

टैकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त
(THE PRINCIPLE OF DIMINISHING MARGINAL RATE OF TECHNICAL SUBSTITUTION)

1. कथन (Statement)

सामान्यतया दो साधनो X तथा Y के बीच टैकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है। इस सिद्धान्त का कथन निम्न प्रकार से दिया जा सकता है·

दो साधनों X तथा Y के संयोग में यदि एक साधन X की मात्रा बढ़ायी जाती है तो दूसरे साधन Y की मात्रा घटानी पड़ेगी ताकि कुल उत्पादन समान रहे; ऐसी स्थिति में साधन X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की साधन Y की घटती हुई मात्रा द्वारा प्रतिस्थापित (substitute) किया जायेगा। इसको X की Y के लिए टैकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त कहा जाता है।[10]

2. सिद्धान्त का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagramatic Presentation)

चित्र-3 मे माना कि उत्पादक I P-रेखा पर बिन्दु a से बिन्दु I की ओर चलता है अर्थात् वह साधन X की मात्रा बढाता जाता है और साधन Y की मात्रा घटाता जाता है ताकि उसके कुल उत्पादन मे अन्तर नही पड़ता, कुल उत्पादन समान रहता है। साधन X की एक इकाई AB या bc को साधन Y की FG या ab इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) किया जाता है। यदि साधन X को एक और इकाई BC या de द्वारा बढ़ाया जाता है तो X की इस एक और इकाई BC या de को साधन Y की GH या cd इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार साधन X की एक और अतिरिक्त इकाई fg को साधन Y की ef इकाइयो के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है; इत्यादि।

---

[7] The Marginal Rate of Technical Substitution measures the reduction in one factor (say, Y) in reaction to per unit increase in the other factor (say, X) that is just sufficient to maintain a constant level of output

[8] The Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y at a point on an isoproduct curve is equal to the slope of the isoproduct curve at that point.

[9] The Marginal Rate of Technical Substitution is also equal to the ratio of the marginal product of factor X to the marginal product of factor Y.

[10] In the combination of two factors X and Y if one factor X is increased then the other factor Y has to be decreased so that the total product remains the same; under such a situation every additional unit of factor X will be substituted for decreasing amount of Y. This is known as the Principle of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution.

इस प्रकार,

चित्र 3 से स्पष्ट है कि साधन X की प्रत्येक इकाई को साधन Y की घटती हुई मात्रा ($JK < HJ < GH < FG$ अथवा $gh < ef < cd < ab$) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को 'साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर' कहते हैं। दूसरे शब्दों में एक सम-उत्पाद रेखा का मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होना टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर बताता है।
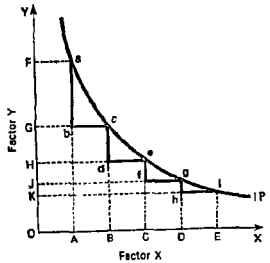
चित्र 3

3. 'टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर' के सिद्धान्त के मुख्य अपवाद (Main exceptions of the Principle of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution)
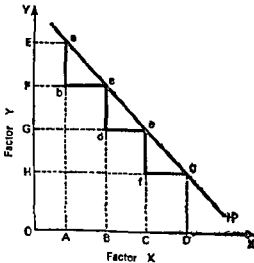
चित्र 4

साधारणतया एक सम-उत्पाद रेखा दायें से बायें नीचे को गिरती हुई होती है तथा मूलबिन्दु (origin) के प्रति उन्नतोदर होती है (अर्थात् दो साधनों के बीच टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है)। परन्तु कुछ स्थितियों में सम-उत्पाद रेखा का आकार भिन्न हो सकता है अर्थात् यह सम्भव है कि टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई न हो। ऐसी स्थितियों को चित्र 4 तथा चित्र 5 में दिखाया गया है; दूसरे शब्दों में, टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के सिद्धान्त के दो मुख्य अपवादों को चित्र 4 तथा चित्र 5 बताते हैं।

चित्र 4 उस स्थिति को बताता है जबकि दो साधन X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होते हैं। दूसरे शब्दों में :

> जब दो साधन X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न होते हैं तो इन दोनों के बीच टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर स्थिर या एक समान (constant) होगी और सम-उत्पाद रेखा एक ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा होगी।[11]

[11] When the two factors X and Y are perfect substitutes, the marginal rate of technical substitution between the two will be constant and the iso-product curve will be a negatively sloping straight line.

इस बात को चित्र 4 मे I P-रेखा द्वारा दिखाया गया है। माना कि हम IP रेखा पर बिन्दु a से शुरू करते है। माना कि साधन X को एक-एक इकाई करके बढाया जाता है जैसा कि हम चित्र 4 मे साधन X को bc (या AB), de (या BC), तथा fg (या CD) द्वारा बढ़ाते हैं, तो इसकी प्रतिक्रिया (response) मे उत्पादक साधन Y की जो मात्रा क्रमश. (respectively) घटाने को तत्पर होता है वह समान या स्थिर (constant) रहेगी जैसा कि चित्र 4 मे साधन Y की ab (या EF), cd (या FG), तथा ef मात्राए बताती हैं, अर्थात् ab=cd=ef। स्पष्ट है कि जब दो साधन X तथा Y पूर्ण स्थानापन्न होते हैं तो X की Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{XY}$) = स्थिर (constant)। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ण स्थानापन्न साधनों (perfectly substitutable factors) की बात केवल सैद्धान्तिक है। वास्तविक जीवन मे कोई भी दो साधन पूर्ण स्थानापन्न नही होते, और यदि वे पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अभिप्राय है कि वे दो साधन केवल एक ही साधन की दो इकाइयां हैं। दो साधनो के पूर्ण स्थानापन्न होने की स्थिति केवल एक सिरे की स्थिति (one extreme situation) को बताती है।
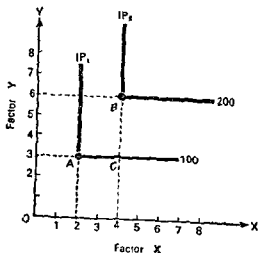
चित्र 5

चित्र 5 में सम-उत्पाद रेखाएं IP_1 तथा IP_2 उस स्थिति को बताती हैं जबकि दो साधन X तथा Y पूर्ण पूरक (perfect complementary) होते हैं; पूर्ण पूरक होने का अभिप्राय है कि वे सदैव एक निश्चित अनुपात में माँगे जाते हैं—

> दो साधनों X तथा Y के पूर्ण पूरक होने की स्थिति में सम-उत्पाद वक्र रेखा का आकार L-आकार का हो जाता है; अर्थात् सम-उत्पाद वक्र रेखा दो सीधी रेखाओं द्वारा निर्मित होगी, प्रत्येक सीधी रेखा एक अक्ष (one axis) के प्रति समानान्तर (parallel) होगी तथा वे एक दूसरे को समकोण (right angle) पर मिलेंगी तथा समकोण का मोड़ (या कोना) मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होगा। ऐसी सम-उत्पाद रेखा बताती है कि दो साधन सदैव एक साथ एक स्थिर या निश्चित अनुपात मे माँगे जाते हैं।[12]

चित्र 5 से स्पष्ट है कि दो साधन X तथा Y, 2 3 के एक निश्चित (या स्थिर) अनुपात मे माँगे जाते हैं; अर्थात् साधन X की 2 इकाइयाँ तथा साधन Y की 3 इकाइयां एक साथ माँगी जाती है; यह बात सम-उत्पाद रेखा IP_1 पर बिन्दु A बताता है। चूंकि ये साधन 2 : 3 के निश्चित अनुपात मे माँगे जाते हैं, इसलिए यदि हम साधन X की मात्रा को 2 इकाई से बढाकर 4 इकाई

---

[12] In the case of two factors X and Y being perfect complementary, the iso-product curve becomes L-shape. That is, the iso-product curve will consist of two straight lines each running parallel to one of the axes and meeting at right angle, and the right angle bent or corner will be convex to the origin. Such an iso-product curve indicates that the two factors will always be jointly demanded in a fixed or constant ratio.

कर देते हैं तो साधन Y की मात्रा को 3 से बढ़ाकर 6 इकाई करना होगा, यह संयोग (combination) दूसरी सम-उत्पाद रेखा I P_2 पर बिन्दु B बताता है।

सम-उत्पाद रेखा I P_1 (या I P_2) की पड़ी हुई भुजा (horizontal arm) यह बताती है कि, साधन Y की मात्रा को स्थिर रखते हुए, साधन X की मात्रा में कोई भी वृद्धि उत्पादन के स्तर को नही बढायेगी, और साधन X की समस्त बढी हुई मात्रा बेकार रहेगी। इसी प्रकार से सम-उत्पाद रेखा I P_1 (वा IP_2) की खडी भुजा (vertical arm) यह बताती है कि, साधन X की मात्रा स्थिर रखते हुए, साधन Y की मात्रा मे कोई भी वृद्धि उत्पादन के स्तर को नही बढ़ायेगी और साधन Y की समस्त बढ़ी हुई मात्रा बेकार रहेगी। दोनों साधनो को सदैव एक निश्चित या स्थिर अनुपात (यहां पर 2 : 3 के अनुपात) में मांगा जायेगा।

स्पष्ट है कि पूर्ण पूरक साधनो के सम्बन्ध में टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई नही होती। पूर्ण स्थानापन्न साधनो की भाँति पूर्ण पूरक साधनो की स्थिति भी एक सिरे की स्थिति (one extreme) है।

वास्तव में उपर्युक्त दो मुख्य अपवादों (exceptions) के समस्त विवरण से एक महत्त्वपूर्ण बात स्पष्ट होती है—

> सम-उत्पाद रेखा की वक्रता दो साधनों के बीच स्थानापन्नता तथा पूरकता के अंश को बताती है। सम-उत्पाद रेखा जितनी ही कम वक्रता लिये हुए होगी उतना ही स्थानापन्नता का अंश अधिक होगा। पूर्ण स्थानापन्न साधनों के लिए सम-उत्पाद रेखाएं गिरती हुई सरल रेखाएं हो जाती हैं; वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से ऐसे दो साधन भिन्न नहीं होते बल्कि एक ही साधन की दो इकाइयां होती हैं। इसके विपरीत, जितनी ही सम-उत्पाद रेखाओं में वक्रता अधिक होगी उतना ही पूरकता का अंश अधिक होगा, पूर्ण पूरकता की स्थिति में सम-उत्पाद रेखाओं का आकार L-आकार का हो जाता है।[13]

4. **टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर तथा उत्पत्ति ह्रास नियम (Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution and the Law of Diminishing Returns)**

टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त वास्तव मे उत्पत्ति ह्रास नियम का विस्तार मात्र (extension) है। हम जानते हैं :

साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की

$$\text{सीमान्त दर } (MRTS_{XY}) = \frac{\text{साधन X की सीमान्त उत्पादकता } (MP_X)}{\text{साधन Y की सीमान्त उत्पादकता } (MP_Y)}$$

जब एक सम-उत्पाद रेखा पर साधन X की मात्रा बढायी जाती है तथा साधन Y की मात्रा घटायी जाती है ताकि कुल उत्पादन समान रहे, तो उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुसार साधन X की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Product of X, अर्थात् MP_X) घटती जायेगी और साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात् (MP_Y) बढ़ती जायेगी। इसलिए साधन Y की घटती हुई मात्रा

[13] The curvature of an iso-product indicates the degree of substitutability and complementarity between two factors. The less curved the iso-product curves, the greater the degree of substitution. For perfect substitutes the iso-product curves become falling straight lines; from the practical point of view this implies that the two factors are not different but they are simply the two units of the same factor. If, on the other hand, the factors are complementary, the isoproduct curves become more curved. The greater the curvature the greater the degree of complementarity; for perfect complementarity iso-product curves become L-shape.

का प्रतिस्थापन साधन X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए किया जायेगा ताकि कुल उत्पाद समान रहे; दूसरे शब्दों में, टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त लागू होगा।

प्रश्न

1. टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के विचार को समझाइये तथा बताइये कि (अ) यह एक सम-उत्पाद रेखा के ढाल को मापता है; तथा (b) यह दो साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात को बताता है।
   Explain the concept of 'Marginal Rate of Technical Substitution' and show that (a) it measures the slop of an iso-product curve, and (b) it indicates the ratio of the marginal productivities of two factors.
2. टेकनीकल प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर के सिद्धान्त का कथन दीजिए और उसकी व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त किस प्रकार से उत्पत्ति ह्रास नियम से सम्बन्धित है ?
   State and explain the principle of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution. How is it related to the Law of Diminishing Returns ?

24

सम-उत्पाद रेखाएं-3
(Iso-product Curves-3)

पैमाने के प्रतिफल
(Returns to Scale)

1 प्राक्कथन : 'अनुपात' तथा 'पैमाने' के विचार (Introduction : The Concepts of 'Proportion' and 'Scale')

'पैमाने के प्रतिफल' (*returns to scale*) के विचार को अच्छी प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम दो विचारों (concepts)—'अनुपात' तथा 'पैमाने'—को समझ लें।

अनुपात (Proportion)

> **स्थिर साधन या साधनों के साथ एक परिवर्तनशील साधन के संयोग (combination) को 'एक अनुपात' कहा जाता है।**[1]
>
> अथवा
>
> **"एक स्थिर साधन का सहायक परिवर्तनशील साधनों के साथ संयोग को 'एक अनुपात' कहा जाता है।"**[2]

[एक प्लांट (plant) अनुपातों का योग होता है, या प्लांट को एक बहुत बड़ा अनुपात कहा जा सकता है।[3] एक प्लांट के अन्तर्गत मशीनें होती हैं और इस स्थिर साधन के साथ अनेक परिवर्तनशील साधनों, जैसे श्रम, कच्चा माल, यन्त्र, टाइपराइटर्स, टेलीफोन, फाइलें, मेजें, कुर्सियों, इत्यादि का संयोग किया जाता है। प्लांट के अन्तर्गत कोई भी साधन या तो सहायक परिवर्तनशील साधन हो सकता है जो कि स्थिर साधन के साथ मिलकर कार्य करता है या कोई भी साधन एक स्थिर साधन हो सकता है जो कि परिवर्तनशील साधन के साथ मिलकर कार्य करता है। कुछ दशाओं मे एक साधन स्थिर तथा परिवर्तनशील दोनों की भाँति कार्य कर सकता है, परिवर्तनशील साधन एक स्थिर साधन के साथ मिल सकते हैं और यह स्थिर साधन स्वय एक परिवर्तनशील साधन हो सकता है, किसी दूसरे स्थिर साधन के साथ मिलकर कार्य करने के सन्दर्भ मे।[4]]

अनुपात का विचार अल्पकाल (short period) से सम्बन्ध रखता है क्योंकि अल्पकाल में हम स्थिर साधनों के साथ परिवर्तनशील साधन की अधिकाधिक मात्रा का प्रयोग करके ही उत्पादन को बढ़ा पाते हैं।

'उत्पत्ति ह्रास नियम' के पीछे 'अनुपात' का विचार है; इस नियम के अन्तर्गत अन्य साधन

---

[1] The combination of one variable factor with a fixed factor or factors is called *a proportion.*

[2] "The combination of a fixed factor with a complement of varible resources is *a proportion.*"

[3] "The plant constitutes an aggregate of proportions; or the plant as a whole may be said as one large proportion."

[4] "There may be 'wheels within wheels' : variables co-operating with a fixed agent which in its turn is a variable in relation to another fixed agent."
For example, "The floor space in a given plant is fixed, and the number of rooms is variable in relation to this floor space. In its turn, the room is fixed in relation to desks, the variable."

या साधनों को स्थिर रखते हैं और एक साधन को परिवर्तनशील रखकर 'परिवर्तनशील साधन' तथा 'स्थिर साधन या साधनों' के बीच मिलने के अनुपात में परिवर्तन होता है और इसके परिणामस्वरूप उत्पादन या प्रतिफल (returns) में परिवर्तन होता है।

पैमाना (*Scale*)

'अनुपात' तथा 'पैमाने' में स्पष्ट अन्तर किया जाता है। 'पैमाने' को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :

> **"जितना गुना सभी अनुपातों को दोहराया जाता है, अर्थात जितना गुना स्थिर, और इसलिए परिवर्तनशील, साधनों को बढ़ाया जाता है, तो यह फर्म के पैमाने को स्थापित करता है।"[5]**

सरल शब्दों में,

> **पैमाने में वृद्धि का अर्थ है सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाना, अर्थात साधन-अनुपातों को स्थिर रखते हुए सभी साधनों को बढ़ाया जाता है।[6]**

पैमाने का विचार दीर्घकाल (long period) से सम्बन्ध रखता है क्योंकि इसमें स्थिर साधनों को परिवर्तित करके फर्म के आकार को बढ़ाया जाता है, कोई भी साधन स्थिर नहीं रह जाता है।

'पैमाने' तथा 'अनुपात' के विचारों को सम-उत्पाद रेखाओं की सहायता से चित्र 1 तथा 2 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र 1
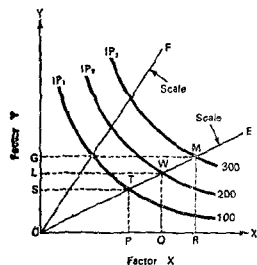
मूल बिन्दु (origin) से खींची गयी कोई भी रेखा (line or ray) 'पैमाने' (*scale*) को बताती है, जैसा कि चित्र 1 में OE तथा OF रेखाएँ हैं। OE रेखा पर आगे की ओर चलने पर दोनों साधनों X तथा Y की निरपेक्ष मात्राओं (absolute amounts) में वृद्धि होती है, और उत्पादन बढ़ता है अर्थात 100 से 200 तथा 300 इकाइयों के बराबर हो जाता है। **OE रेखा की सम्पूर्ण लम्बाई पर दोनों साधनों X तथा Y का अनुपात समान रहेगा।** इसका कारण है कि इस रेखा का ढाल (*slope*) दोनों साधनों Y तथा X के अनुपात (ratio or proportion) को बताता है; OE रेखा के बिन्दुओं T, W तथा M पर दोनों साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप इन बिन्दुओं पर उत्पादन बढ़ता है अर्थात 100, 200 तथा 300 इकाइयों के बराबर होता है; परन्तु इन सभी उत्पादन के स्तरों पर दोनों साधन Y तथा X का अनुपात समान रहता है, अर्थात्

---

[5] "The number of times all proportions are reproduced, that is, the number of times the fixed, and therefore also the variable, resources are multiplied, establishes the *scale of* the firm."

[6] An increase in *scale* implies that all factors are increased in the same proportion; that is, keeping factor-proportions constant, all the factors are increased.

इसको हम एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं—

"Changing the *scale* of the firm implies changing all the fixed factors, and in the same proportion."

$$\frac{\text{साधन Y}}{\text{साधन X}} = \frac{PT \ (or\ OS)}{OP} = \frac{WQ \ (or\ OL)}{OQ} = \frac{MR(or\ OG)}{OR}$$ [7]

स्पष्ट है कि रेखा OE 'पैमाने' को बताती है; अर्थात, रेखा OE को पैमाना-रेखा (*scale line*) कहा जाता है क्योंकि यह साधनों के उन सब संयोगों को जोड़ती है जो कि साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में परिवर्तनों को बताते हैं परन्तु साधनों का एक स्थिर या समान अनुपात बनाये रखते हैं।[8]

रेखा OF भी एक 'पैमाने' को बताती है, अर्थात रेखा OF भी एक पैमाना-रेखा है। यह OE से इस बात में भिन्न है कि इस पर साधन X तथा Y के मिलने का स्थिर अनुपात (constant proportion) वह नहीं है जो कि रेखा OE पर है।

चित्र 2

अब हम 'अनुपात' के विचार को एक चित्र द्वारा स्पष्ट करते हैं। चित्र 2 में Y-axis पर किसी एक बिन्दु A से एक पड़ी रेखा AB खींची जाती है जो कि X-axis के समानान्तर (parallel) है। रेखा AB 'अनुपात' को बताती है। उत्पादन को 100, 200 या 300 तथा और अधिक इकाइयों तक बढ़ाने के लिए रेखा

---
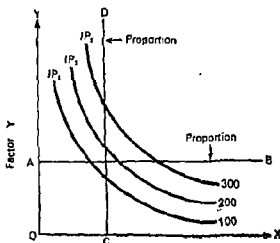
[7] OE रेखा का ढाल दोनों साधनों Y तथा X के मिलने के अनुपात को बताता है; अर्थात

OE रेखा का ढाल (Slope) = Tan of angle EOP

$$= \frac{\text{Perpendicular (लम्ब)}}{\text{Base (आधार)}}$$

$$= \frac{TP}{OP}$$

$$= \frac{\text{OS of Factor Y}}{\text{OP of Factor X}} \qquad ...(1)$$

इसी प्रकार,

$$\text{OE रेखा का Slope} = \frac{WQ}{OQ} = \frac{\text{OL of Factor Y}}{\text{OQ of Factor X}} \qquad ...(2)$$

$$\text{OE रेखा का Slope} = \frac{MR}{OR} = \frac{\text{OG of Factor Y}}{\text{OR of Factor X}} \qquad ...(3)$$

दूसरे शब्दों में (1), (2) तथा (3) से स्पष्ट है—

$$\frac{\text{OS of Factor Y}}{\text{OP of Factor X}} = \frac{\text{OL of Factor Y}}{\text{OQ of Factor X}} = \frac{\text{OG of Factor Y}}{\text{OR of Factor X}}$$

स्पष्ट है कि OE रेखा के किसी भी बिन्दु पर दोनों साधनों Y तथा X का अनुपात समान रहता है यद्यपि उनकी निरपेक्ष मात्राओं में वृद्धि होती है।

[8] Line OE is called a *scale line* because it connects all those combinations of factors which show changes in absolute amount of factors but maintain a constant proportion.

AB पर दायें (right) की ओर चला जाता है। इस रेखा पर दायें की ओर चलने का अर्थ है कि एक साधन Y को OA मात्रा पर स्थिर रखा जाता है और दूसरे साधन X को बढ़ाया जाता है तथा इस प्रकार स्थिर साधन Y का परिवर्तनशील साधन X के साथ अनुपात बदलता जाता है। इस प्रकार AB रेखा पर चलन साधनों के अनुपातों में परिवर्तन को बताता है।

इसी प्रकार X-axis पर किसी भी बिन्दु C से एक खड़ी रेखा CD खींची जा सकती है; यह रेखा CD भी 'अनुपात' को बताती है, परन्तु यहां पर साधन X की मात्रा को OC पर स्थिर रखकर साधन Y को परिवर्तनशील रखा जाता है; जबकि AB रेखा पर इसका उलटा था।

संक्षेप में,

> **सम-उत्पाद रेखाओं के एक मानचित्र (map of isoproduct curves) में मूल बिन्दु (origin) से खींची गयी कोई भी रेखा 'पैमाने' (*scale*) को बताती है, जबकि X-axis के किसी बिन्दु से खींची गयी खड़ी रेखा (vertical line) या Y-axis के किसी बिन्दु से खींची गयी पड़ी रेखा (horizontal line) 'अनुपात' (*proportion*) को बताती है।**

2. **'पैमाने के प्रतिफल' का विचार (The Concept of 'Returns to Scale')**

'पैमाने के अर्थशास्त्र' में केन्द्रीय समस्या 'पैमाने के प्रतिफल' हैं। (The central problem in the economics of scale is 'returns to scale.')

> **पैमाने के प्रतिफल का विचार इस बात का अध्ययन करता है कि यदि सब साधनों में आनुपातिक परिवर्तन कर दिया जाये ताकि साधनों के मिलने के अनुपातों में कोई तबदीली न हो तो उत्पादन में किस प्रकार से परिवर्तन होगा।**[9]

साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में तो परिवर्तन हो परन्तु उनके मिलने के अनुपात में परिवर्तन न हो, यह बात एक 'पैमाना रेखा' (scale line) बताती है।[10] अतः 'पैमाने के प्रतिफल के विचार' को दूसरे शब्दों में निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जाता है :

> **"यदि एक विशिष्ट पैमाना रेखा पर साधनों की मात्राओं को परिवर्तित किया जाता है तो उत्पादन में परिवर्तन होगा। साधनों में इस प्रकार के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पादन की प्रतिक्रिया (responsiveness) को पैमाने के प्रतिफल कहा जाता है।"**[11]

पैमाने के प्रतिफल की समस्या इस बात को मालूम करना है कि जब एक पैमाना रेखा पर साधनों में कोई आनुपातिक वृद्धि (proportionate increase) की जाती है तो उत्पादन में किस अनुपात में वृद्धि होगी।[12]

जब साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि की जाती है) तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा या प्रतिफल (returns) तीन अवस्थाएं (stages) दिखाते हैं—

(i) पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था (Stage of *Increasing Returns to Scale*)

---

9 The concept of 'returns to scale' studies how the output changes when all inputs (or factors) are changed proportionately so that the proportions among them do not change.

10 'पैमाना रेखा' की पूर्ण व्याख्या हम पहले कर चुके हैं।

11 "As the quantities of inputs are varied along a particular scale line, output will vary. The responsiveness of output to such changes in inputs is called returns to scale."

12 The problem of returns to scale is to find out in what proportion output increases when there is some proportionate increase in inputs (or factors) along a scale line.

(ii) पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल की अवस्था (Stage of *Constant Returns to Scale*)

(iii) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था (Stage of *Decreasing Returns to Scale*)

इन तीनों अवस्थाओं का पूर्ण विवरण आगे दिया गया है।

3. पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

यदि सभी साधनों को 10% से बढ़ाया जाता है [अर्थात पैमाने (scale) को 10% से बढ़ाया जाता है] और उत्पादन 15% से बढ़ जाता है अर्थात् 10% से अधिक बढ़ता है, तो ऐसी अवस्था 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' की अवस्था कही जायेगी।

इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :

जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (अर्थात् एक पैमाना रेखा पर चला जाता है) और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप यदि उत्पादन में अधिक अनुपात में वृद्धि होती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन प्रक्रिया (production process) पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल उत्पन्न करती है।[13]

दूसरे शब्दों में,

पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः कम और कम वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है।[14]

[यह कथन चित्र 3 से बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।]

चित्र 3 में IP_1 IP_2, IP_3 तथा IP_4 सम-उत्पाद रेखाएँ हैं जो क्रमशः 10, 20, 30 तथा 40 इकाइयों के बराबर उत्पादन को बताती हैं। ये सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन में एक समान वृद्धि (equal addition to output) अर्थात् 10 इकाइयों के बराबर एकसमान वृद्धि बताती हैं। ये सम-उत्पाद रेखाएँ पैमाना-रेखा OE को टुकड़ों (segments) में (जैसे, AB, BC तथा CD में) बाँट देती हैं। पैमाना रेखा OE का प्रत्येक टुकड़ा दोनों साधनों X तथा Y की एक निश्चित मात्रा को बतायेगा। चित्र 3 में प्रत्येक

चित्र 3

टुकड़े की लम्बाई कम होती जाती है अर्थात् CD < BC < AB। इन घटते हुए टुकड़ों (decreasing segments) का अभिप्राय है कि दो साधनों X तथा Y की क्रमशः कम मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन
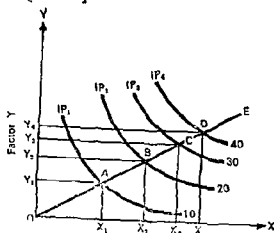
[13] When all inputs or factor are increased in the same proportion (that is, when the movement is along a scale line) and the scale of production is thus enlarged, and if it results in an output increase that is more than proportionate, then the production process is said to yield *increasing returns to scale.*

[14] Under increasing returns to scale, successively smaller and smaller increments in inputs are required to obtain successively equal increases in output.

मे एक समान वृद्धि (चित्र 3 में 10 इकाइयों के बराबर वृद्धि) प्राप्त की जाती है। ऐसी स्थिति को 'पैमाने के बढते हुए प्रतिफल' की अवस्था कहते हैं।

सामान्य शब्दो मे (in general terms) इस स्थिति को नीचे व्यक्त किया गया है : सम-उत्पाद रेखाएं एक पैमाना-रेखा (scale line) को टुकड़ो मे बाँट देती है। यदि उत्पादन के किसी क्षेत्र (range) पर इन टुकड़ो की लम्बाई क्रमश: घटती जाती है जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु (origin) से दूर हटते जाते हैं (अर्थात जैसे फर्म बड़ी होती जाती है), तो फर्म 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' के अन्तर्गत कार्य करती हुई कही जाती है क्योंकि दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमश: कम और कम वृद्धि की आवश्यकता होती है उत्पादन में क्रमश. समान वृद्धि करने के लिए।[15]

4. पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

यदि सभी साधनो को 10% से बढाया जाता है (अर्थात् पैमाने को 10% से बढ़ाया जाता है) और उत्पादन भी 10% से बढ जाता है, तो ऐसी अवस्था 'पैमाने के समान प्रतिफल' की अवस्था कही जाती है। इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :

जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (अर्थात एक पैमाना-रेखा पर चला जाता है) और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप यदि उत्पादन मे भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन-प्रक्रिया (productive process) 'पैमाने के समान प्रतिफल' उत्पन्न करती है।

दूसरे शब्दो मे,

पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः एकसमान वृद्धि की ही आवश्यकता पड़ती है।

[यह कथन चित्र 4 से बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।]
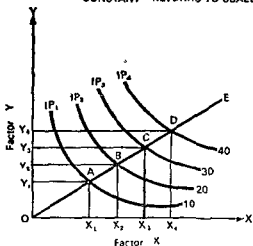
चित्र 4

चित्र 4 में सम-उत्पाद रेखाए पैमाना-रेखा OE को टुकड़ों (segments) मे (जैसे AB, BC तथा CD में) बाँट देती है। पैमाना-रेखा OE का प्रत्येक टुकडा दोनों साधनों X तथा Y की एक *निश्चित मात्रा को बतायेगा।* चित्र 4 में प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बराबर है अर्थात् AB = BC = CD। इन बराबर टुकड़ों का अभिप्राय है कि दो साधनों X तथा Y की क्रमश: बराबर मात्राओ के प्रयोग से उत्पादन मे एक समान वृद्धि (चित्र 4 में 10 इकाइयो के बराबर वृद्धि) प्राप्त की जाती है। ऐसी स्थिति को 'पैमाने के स्थिर या समान प्रतिफल' की अवस्था कहते हैं।

---

15 Successive isoproduct curves divide a scale line into segments. If, over any range of output the length of these segments decreases as we move away from the origin (that is, as the firm grows bigger), then the firm is said to be working under *'increasing returns to scale'*, because successively smaller increases in the two factors employed are required to obtain equal successive addition to output.

सामान्य शब्दों में इस स्थिति को नीचे व्यक्त किया गया है :

सम-उत्पाद रेखाएं एक पैमाना रेखा को टुकड़ों में बाँट देती हैं। यदि उत्पादन के किसी क्षेत्र पर इन टुकड़ो की लम्बाई क्रमशः बराबर रहती है जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु से दूर हटते जाते हैं (अर्थात् जैसे फर्म बड़ी होती जाती है), तो फर्म 'पैमाने के समान प्रतिफल' के अन्तर्गत कार्य करती हुई कही जाती है क्योंकि दोनों साधनों की मात्राओ मे क्रमशः समान वृद्धि की आवश्यकता होती है उत्पादन में क्रमशः समान वृद्धि करने के लिए।

5. पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

यदि सभी साधनों को 10% से बढ़ाया जाता है (अर्थात् पैमाने को 10% से बढ़ाया जाता है) और उत्पादन 7% से बढ़ता है अर्थात् 10% से कम बढता है, तो ऐसी स्थिति 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' की अवस्था कही जायेगी। इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :

जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है (अर्थात् एक पैमाना रेखा पर चला जाता है) और इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप यदि उत्पादन में कम अनुपात में वृद्धि होती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन-प्रक्रिया (production process) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल उत्पन्न करती है।

दूसरे शब्दो मे,

पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। [यह कथन चित्र 5 से बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।]

चित्र 5 में सम-उत्पाद रेखाएँ पैमाना-रेखा OE को टुकड़ों मे (जैसे AB, BC तथा CD में) बाँट देती हैं। पैमाना-रेखा OE का प्रत्यक टुकड़ा दोनों साधनों X तथा Y की एक निश्चित मात्रा को बतायेगा। चित्र 5 में प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बढ़ती जाती है अर्थात् CD > BC > AB। इन बढते हुए टुकड़ों (increasing segments) का अभिप्राय है दो साधनो X तथा Y की क्रमश. अधिक मात्राओ के प्रयोग से उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त की जाती है। ऐसी स्थिति को 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' की अवस्था कहते हैं।

चित्र 5

सामान्य शब्दो में (in general terms) इस स्थिति को नीचे व्यक्त किया गया है :

सम-उत्पाद रेखाएँ एक पैमाना-रेखा को टुकड़ों में बाँट देती हैं। यदि उत्पादन के किसी क्षेत्र (range) पर इन टुकड़ो की लम्बाई क्रमशः बढती जाती है जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु (origin) से दूर हटते जाते हैं (अर्थात् जैसे फर्म बड़ी होती जाती
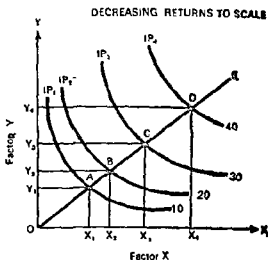
है) तो फर्म पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत कार्य करती हुई कही जाती है क्योंकि दोनों साधनों की मात्राओं मे क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि की आवश्यकता होती है उत्पादन मे क्रमशः समान वृद्धि करने के लिए।

6. पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल (Varying Returns to Scale)

उपर्युक्त विवरण से यह नही समझ लेना चाहिए कि अलग-अलग उत्पादन फक्शन (production function) पैमाने के प्रतिफल की अलग-अलग स्थितियों या अवस्थाओं को बताते हैं। वास्तव मे प्राय एक ही उत्पादन-फक्शन पैमाने के प्रतिफल की तीनो अवस्थाओं को बताता है, पहले 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था' प्राप्त होती है, तत्पश्चात 'पैमाने के समान प्रतिफल की अवस्था' और अन्त मे 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था' प्राप्त होती है। 'पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल' नीचे दिये गये चित्र 6 से स्पष्ट होते हैं :
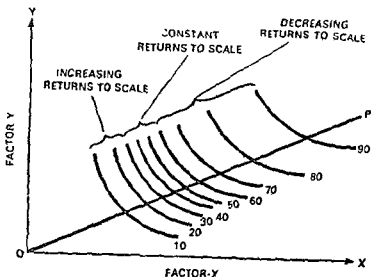
चित्र 6

7. पैमाने के प्रतिफल के निर्धारक तत्त्व (Underlying Determinants of Returns to Scale)

वे कौन से तत्त्व हैं जो पैमाने के प्रतिफल को निर्धारित करते हैं ? दूसरे शब्दों मे, पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के क्या कारण हैं ? अब हम पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थाओं के लागू होने के कारणों की विवेचना करते हैं।

'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' (Increasing Returns to Scale) के लागू होने के निम्न कारण बताये जाते हैं

(i) अविभाज्यताएँ (Indivisibilities)—उत्पत्ति के साधन अविभाज्य (indivisible) होते हैं। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की एक निम्नतम सीमा या उसका एक निम्नतम आकार होता है जिसके नीचे हम उसको छोटे-छोटे टुकडों मे विभाजित नही कर सकते हैं। मशीन, प्रबन्धक (manager), विपणन (marketing), वित्त (finance), और अनुसन्धान तथा विज्ञान मे 'अविभाज्यता का तत्त्व' (element of indivisibility) होता है।

उत्पादन के पैमाने को बढाने से उन अविभाज्य साधनो ('indivisible' or 'lumpy' factors) का, जो पहले से प्रयोग मे आ रहे है अधिक अच्छा प्रयोग होने लगता है, या पैमाने के बढने के कारण नये अविभाज्य साधनो का प्रयोग सम्भव हो जाता है। इन सब बातों के कारण उत्पादन

कुशलता (productive efficiency) बढती है; परिणामस्वरूप, प्रारम्भ मे जिस अनुपात में साधनो को बढाया जाता है उससे अधिक अनुपात मे उत्पादन या प्रतिफल प्राप्त होता है।

परन्तु अविभाज्यता एक मात्रा (degree) की बात है। यद्यपि एक आधा मैनेजर, आधा एकाउण्टेण्ट या आधा श्रमिक नही हो सकता, परन्तु इनकी सेवाओं को आंशिक काल (part time) के लिए प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार ये अविभाज्य साधन समय-आधार (time-basis) पर विभाज्य हो जाते हैं। इसी प्रकार मशीनो तथा यन्त्रो, जैसे एक टाइपराइटर को आधा नही किया जा सकता परन्तु उसे थोडे समय (एक घण्टे या दो घण्टे) के लिए किराये (rent) पर दिया जा सकता है। इसी प्रकार अविभाज्य प्रबन्ध (management) अपने उत्तरदायित्व (responsibility) को दूसरे को वितरण (delegate) करके विभाज्य साधन हो सकता है।

अतः कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियो, मुख्यतया प्रो. चेम्बरलिन (Prof. Chamberlin), 'अविभाज्यता' (indivisibility) को 'पैमाने के बढते हुए प्रतिफल' का महत्वपूर्ण कारण नहीं मानते।

(ii) आकार की कुशलता (Dimentional Efficiency)—पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल का एक मुख्य कारण केवल बडे आकार के परिणामस्वरूप प्राप्त कुशलता है। उदाहरणार्थ, यदि एक पाइप (pipe) की चौड़ाई (diameter) दुगुनी कर दी जाती है तो किसी भी तरल पदार्थ (liquid) की दुगुनी से अधिक मात्रा उसमे से गुजर सकेगी। एक लकड़ी का बक्स जो कि 3 फुट घन (3 foot cube) है, 1 फुट घन (1 foot cube) वाले लकड़ी के बक्स की तुलना में, 27 गुना अधिक माल रख सकता है, जबकि बड़े बक्स को बनाने मे छोटे बक्स की तुलना मे केवल 9 गुनी लकड़ी ही अधिक लगेगी।[16] परन्तु एक सीमा या बिन्दु के बाद इस प्रकार की बड़े आकार की कुशलता समाप्त हो जायेगी।

(iii) **श्रम का अधिक विशिष्टीकरण** (Greater specialization of labour)—**प्रो. चैम्बरलिन** पैमाने के सिद्धान्त (theory of scale) मे श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण पर बहुत बल देते है। उत्पादन के पैमाने को बढाने से जटिल श्रम-विभाजन तथा अधिक श्रम-विशिष्टीकरण सम्भव हो जाता है। जटिल श्रम-विभाजन के कारण श्रमिको को अपनी योग्यतानुसार कार्य मिल जाता है तथा एक ही कार्य को बार-बार करने से वे अधिक कुशल हो जाते हैं।

अब हम 'पैमाने के स्थिर या समान प्रतिफल' के लागू होने के कारणों की विवेचना करेंगे। पैमाने के बढते हुए प्रतिफल की अवस्था सदैव नही रह सकती, कुछ समय बाद फर्म को पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने लगते है, अर्थात् यदि साधनो को दुगुना या तिगुना कर दिया जाय तो उत्पादन भी दुगुना या तिगुना हो जायेगा।

'पैमाने के समान प्रतिफल' का अभिप्राय है कि फर्म के उत्पादन के पैमाने में परिवर्तनो का साधनो के प्रयोग की कुशलता पर कोई प्रभाव नही पडता। अत. केवल उन फर्मों को ही, जो कि ऐसे उद्योगो मे कार्य करती हैं जिनमें साधनो के विशिष्टीकरण (अर्थात् जटिल श्रम-विभाजन) के लाभ या तो कम है या उन लाभो को उत्पादन के कम स्तरो पर ही प्राप्त किया जा सकता है, उत्पादन के बड़े फैलाव (range) तक 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' प्राप्त होते हैं।[17]

---

16 "If the diameter of a pipe is doubled, the flow through it is more than doubled. A wooden box that is a 3-foot cube can contain 27 times as much as a box that is 1-foot cube, but only 9 times as much wood is needed for the larger box."

17 "*Constant returns to scale* implies that changes in the scale of the firm's output will have no effect on the efficiency with which it utilizes inputs. Presumably only firms operating in industries in which the benefits of input specialization (i e, a complex division of labour) are either small or can be fully realized at relatively modest levels of output would experience constant returns to scale over wide ranges of output."

अब हम 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' के लागू होने के कारणों की विवेचना करते हैं। पैमाने के स्थिर प्रतिफल के पश्चात् एक फर्म को अन्त में 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' प्राप्त होंगे। इसके लागू होने के कारणो पर अर्थशास्त्रियों में कोई एकमत (agreement) नही है। (अ) कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार एक साहसी एक स्थिर और अविभाज्य साधन है, दीर्घकाल में यद्यपि सभी साधनो को बढ़ाया जा सकता है परन्तु साहसी को नही। साहसी और उसके निर्णय लेने की क्रिया अविभाज्य हैं। इस मत के अनुसार 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' परिवर्तनशील अनुपातों (variable proportions) के केवल एक विशिष्ट रूप (special case) ही हैं। (ब) कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के लागू होने का कारण यह है कि फर्म के विकास के परिणाम-स्वरूप, एक सीमा के बाद, प्रबन्ध अत्यन्त जटिल हो जाता है। एक सीमा के बाद फर्म के विकास के साथ प्रबन्ध तथा समन्वय (organization and co-ordination) की कठिनाइयां इतनी बढ़ जाती है कि वे श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के सभी लाभो को समाप्त कर देती हैं और पैमाने के घटते हुए प्रतिफल प्राप्त होने लगते हैं।

प्रश्न

1 'अनुपात' (*proportion*) तथा 'पैमाने' (*scale*) के विचारो मे अन्तर स्पष्ट कीजिए। 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' (*Decreasing Returns to Scale*) की व्याख्या कीजिए। क्या आप 'घटते हुए प्रतिफल' (*Decreasing returns*) तथा 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' (*Decreasing returns to scale*) के बीच कोई अन्तर करते हैं ?
Distinguish between 'Proportion' and 'Scale'. Explain the Decreasing Returns to Scale. Can you make any distinction between 'Decreasing returns' and 'Decreasing returns to scale' ?

2. 'पैमाने के प्रतिफल' के विचार से आप क्या समझते हैं ? 'पैमाने के बढते हुए प्रतिफल', 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' तथा 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' को समझाइए।
What do you understand by the concept of 'returns to scale' ? Explain 'Increasing returns to scale', 'Constant returns to scale' and 'Decreasing returns to scale'.

25

सम-उत्पाद रेखाएं-4
(*Iso-product Curves-4*)

साधनों के संयोग का चुनाव
(Choice of Factor Combination)

साधनों का न्यूनतम-लागत संयोग
(LEAST-COST COMBINATION OF FACTORS)
अथवा
एक उत्पादक या फर्म का साधनों के संयोग के चुनाव के सम्बन्ध में साम्य
(EQUILIBRIUM OF A PRODUCER OR A FIRM WITH REGARD TO THE CHOICE OF FACTOR COMBINATION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

उत्पादन (output) साधनो (inputs) पर निर्भर करता है। साधनों के प्रयोग करने की दृष्टि से एक उत्पादक या फर्म साम्य (equilibrium) की दशा में तब होगी जबकि वह उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को न्यूनतम कुल लागत पर उत्पादित करती है, अर्थात जबकि वह 'साधनो के न्यूनतम-लागत संयोग' को चुनती है।

टैकनोलोजीकल दृष्टिकोण से एक सम-उत्पाद रेखा पर सभी बिन्दु एक समान कुशलता (equal efficiency) को बताते हैं; अर्थात एक ही उत्पादन-मात्रा (same output) को विभिन्न साधन-संयोगो द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। चूंकि एक फर्म को प्रयोग में लाये जाने वाले साधनो के लिए एक निश्चित कीमत देनी पड़ेगी, इसलिए एक सम-उत्पाद रेखा (iso-product curve) पर उत्पादन के एक निश्चित स्तर को उत्पादित करने की कुल लागत निर्भर करेगी 'साधन संयोग' (factor-combination) पर तथा साधनों की कीमतों (factor-prices) पर।

> अतः, जबकि एक सम-उत्पाद रेखा पर सभी साधन-संयोग 'एक समान टैकनोलोजीकल कुशलता को बताते है, परन्तु साधनों का वह संयोग, जिसके द्वारा उत्पादन के एक निश्चित स्तर को न्यूनतम कुल लागत पर उत्पादित किया जा सकता है 'आर्थिक दृष्टि से अधिकतम कुशल संयोग' को बताता है।[1]

चूंकि प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है जो कि कुल आगम (total revenue) तथा कुल लागत (total cost) का अन्तर होता है, इसलिए—

एक फर्म साधनों के उस संयोग को चुनेगी जो कि उत्पादन के एक दिये हुए स्तर को

---

[1] "Thus, while all factor combinations along an isoquant represent equal *technological* efficiency, the combination with which the particular output level can be produced at lowest total cost represents the *economically* most efficient combination."

कुल लागत को न्यूनतम करता है; दूसरे शब्दों में, एक फर्म साधनो के उस संयोग को चुनेगी जो कि एक दिये हुए व्यय के लिए उत्पादन को अधिकतम करता है।[2]

संक्षेप मे, एक फर्म द्वारा साधनो के एक सयोग का चुनाव निर्भर करेगा—

(i) उत्पादन की टेकनोलोजीकल कुशलता या उत्पादन की टेकनोलोजीकल सम्भावनाओ पर जो कि सम-उत्पाद रेखाएँ (iso-product curves) बताती है।

(ii) साधनो की कीमतों पर; साधनो की कीमतें लागत को प्रभावित करके आर्थिक कुशलता को प्रभावित करती हैं। साधनों की कीमते 'सम-लागत रेखा' (isocost line) बताती हैं।

अतः, हमारा अगला कदम 'सम-लागत रेखा' के विचार को पूर्णतया समझना है।

2. सम-लागत रेखा (Iso-cost Line)

एक सम-लागत रेखा साधनो के विभिन्न संयोगो को बताती है जो कि एक फर्म दिये हुए लागत-व्यय (cost-outlay) द्वारा खरीद सकती है। [सम-लागत रेखा को कई अन्य नामो से भी पुकारा जाता है, जैसे, 'साधन-कीमत रेखा' (factor-price line) या केवल 'कीमत रेखा' (price line), 'साधन-लागत रेखा' (factor-cost line), 'व्यय-रेखा' (outlay line), 'व्यय-परिधि रेखा' (outlay contour), 'फर्म की बजट-नियन्त्रण रेखा' (firm's budget constraint line)।]
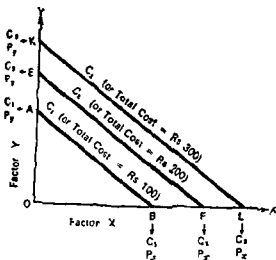
चित्र 1

'सम-लागत रेखा' या 'साधन-कीमत रेखा' को चित्र 1 में दिखाया गया है। साधन X को X-axis पर तथा साधन Y को Y-axis पर दिखाया गया है। यह मान लिया जाता है कि साधनो की कीमतें दी हुई हैं तथा वे फर्म के लिए स्थिर हैं। [इसका अभिप्राय यह है कि साधन-बाजार (factor-market) मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मान ली जाती है ताकि फर्म साधनो की कितनी ही मात्रा को दी हुई कीमत पर प्राप्त कर सकती है।] माना कि फर्म के पास साधनो पर कुल व्यय (total expenditure) करने के लिए 100 रु. है, अर्थात् फर्म का कुल लागत-व्यय (total cost-outlay) या कुल लागत (total cost) 100 रु. मान ली जाती है, माना कि इस कुल लागत के लिए हम C_1 का चिह्न (symbol) प्रयोग करते हैं। माना कि साधन X की कीमत 5 रु. है इस कीमत के लिए हम P_x का चिह्न प्रयोग करते हैं; तथा साधन Y की कीमत 10 रु. है और इस कीमत के लिए हम P_y चिह्न का प्रयोग करते हैं।

यदि फर्म समस्त लागत व्यय 100 रु. (अर्थात् C_1) को साधन X पर व्यय करती है तो वह $\frac{100 \text{ रु.}}{5 \text{ रु.}} = 20$ इकाइयाँ साधन X की खरीद सकेगी, जो कि चित्र 1 में बिन्दु B द्वारा दिखायी गयी है। इसको हम सामान्य चिह्नों (general symbols) मे भी व्यक्त कर सकते है; यदि

[2] A firm will choose that combination of factors which minimizes the total cost for any given level of output. Or, what amounts to the same thing, for a given outlay or expenditure, the firm will try to maximize output

100 रु. के स्थान पर C_1 चिह्न लिखें तथा साधन X की कीमत 5 रु. के स्थान पर P_x लिखे तो बिन्दु B साधन X की $\frac{C_1}{P_x}$ मात्रा को बतायेगा। दूसरे शब्दों मे, बिन्दु B साधन X की $\frac{C_1}{P_x}$ मात्रा तथा साधन Y की शून्य मात्रा (zero quantity of Y) के संयोग को बतायेगा। इसी प्रकार यदि फर्म अपने समस्त लागत व्यय 100 रु. (अर्थात् C_1) को साधन Y पर व्यय करता है तो वह $\frac{100 \text{ रु.}}{10 \text{ रु.}} = 10$ इकाइयां साधन Y की खरीद सकेगा जो कि चित्र 1 में बिन्दु A द्वारा दिखाई गयी है। दूसरे शब्दो में, बिन्दु A साधन Y की दस इकाइयों तथा साधन X की शून्य इकाइयों के संयोग को बताता है। इसको भी हम सामान्य चिह्नो मे व्यक्त कर सकते हैं; यदि 100 रु. के स्थान पर C_1 लिखें तथा Y की कीमत 10 रु. के स्थान पर P_y लिखे तो बिन्दु A साधन Y की $\frac{C_1}{P_y}$ मात्रा को बतायेगा। बिन्दु A तथा बिन्दु B को मिला देने से हमे एक 'सम-लागत रेखा' (isocost line) AB प्राप्त हो जाती है, और यह रेखा साधन X तथा साधन Y के विभिन्न संयोगो को बताती है जो कि फर्म एक दी हुई लागत C_1 (अर्थात् 100 रु.) से खरीद सकेगी। स्पष्ट है कि इस सम-लागत रेखा AB पर साधनों के प्रत्येक संयोग की लागत एक समान (अर्थात् C_1 या 100 रु.) होगी।

माना कि फर्म का लागत-व्यय 200 रु. है अर्थात् C_2 है। चूकि साधन X तथा साधन Y की कीमतें (अर्थात् P_x और P_y) स्थिर रहती हैं, इसलिए फर्म अब साधन X तथा Y की अधिक मात्राएं खरीद सकेगी। यदि फर्म अपने समस्त लागत-व्यय C_2 को साधन X पर खर्च करती है तो वह साधन X की $\frac{C_2}{P_x}$ मात्रा खरीद सकेगी जो कि बिन्दु F बताता है। इसी प्रकार फर्म यदि समस्त लागत C_2 को साधन Y पर व्यय करती है तो वह साधन Y की $\frac{C_2}{P_y}$ मात्रा को खरीद सकेगी जो कि बिन्दु E बताता है। E तथा F को मिला देने से नई सम-लागत रेखा EF प्राप्त हो जाती है जिस पर साधन X तथा साधन Y के प्रत्येक संयोग की एक समान लागत C_2 होगी। यदि फर्म के पास लागत-व्यय 300 रु. या C_3 है तो अब एक और नई सम-लागत रेखा KL प्राप्त हो जायेगी।

लागत-व्यय जितना अधिक होगा उतनी ही ऊंची सम-लागत रेखा होगी; दूसरे शब्दों मे, लागत व्यय बढ़ने के साथ-साथ सम-लागत रेखा मूल बिन्दु (origin) से दूर होती जायेगी। ध्यान रहे ये सब रेखाएं (अर्थात् AB, EF, तथा KL) समानान्तर (parallel) रहेंगी क्योंकि साधनों की कीमतें समान या स्थिर रहती हैं और इसलिए प्रत्येक रेखा का ढाल (slope) समान रहता है।[3]

उपर्युक्त विवरण के पढने के बाद सम-लागत रखा को निश्चित शब्दो (precise terms) में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :

> **एक सम-लागत रेखा साधनों की अधिकतम मात्रा के विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि फर्म साधनों की एक दी हुई कीमतों पर, तथा एक दी हुई लागत या व्यय द्वारा, खरीद सकती है।[4]**

---

[3] प्रत्येक सम-लागत रेखा का ढाल समान रहता है, यह बात आगे के विवरण को पढ़ने से पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगी।

[4] An *iso-cost line* represents the maximum amount of the different combinations of inputs which the firm can purchase at *given prices of the inputs* and with a given cost or outlay

एक सम-लागत रेखा के ढाल के आर्थिक अर्थ (economic interpretation) को समझना आवश्यक है। अब हम चित्र 1 में सम-लागत रेखा AB के ढाल पर विचार करते हैं—

सम-लागत रेखा AB का ढाल (slope)

$$= \text{Tan of angle OBA}$$
$$= \frac{\text{Perpendicular (लम्ब)}}{\text{Base (आधार)}}$$
$$= \frac{OA}{OB}$$
$$= \frac{\frac{C_1}{P_y}}{\frac{C_1}{P_x}}$$
$$= \frac{C_1}{P_y} \times \frac{P_x}{C_1}$$
$$= \frac{P_x}{P_y}$$

= **Price Ratio of X and Y**[5]

चूंकि साधन X तथा Y की कीमतें समान रहती है, इसलिए चित्र 1 मे अन्य सम-लागत रेखाओं EF तथा KL का ढाल भी एक समान ही होगा और वह $\frac{P_x}{P_y}$ द्वारा बताया जायेगा; दूसरे शब्दों में, सभी सम-लागत रेखाओ का ढाल बराबर है इसलिए ये सब रेखाएं एक दूसरे के समानान्तर (parallel) होंगी।

स्पष्ट है—

एक सम-लागत रेखा साधनों की कीमतों को बताती है। दूसरे शब्दों में, एक सम-लागत रेखा का ढाल साधनों की कीमतों के अनुपात को बताता है।[6]

एक सम-लागत रेखा का ढाल ऋणात्मक (negative) होता है। इसका कारण स्पष्ट है कि यदि फर्म एक साधन (माना X) को अधिक खरीदना चाहती है बिना अधिक द्रव्य व्यय किये

---

[5] *हम साधन-बाजार (factor market) मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मानकर चले है।* चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता मे साधन की कीमत साधन की सीमान्त लागत (marginal cost अर्थात् MC) के बराबर होती है, इसलिए साधन X की कीमत P_x के स्थान पर हम साधन X की सीमान्त लागत MC_x तथा साधन Y की कीमत P_y के स्थान पर साधन Y की सीमान्त लागत MC_y लिख सकते हैं; अतः

सम-लागत रेखा AB का ढाल $= \frac{P_x}{P_y}$

$$= \frac{MC_x}{MC_y}$$

= Ratio of Marginal Costs of X and Y

[6] The prices of inputs are represented by an iso-cost line. In other words, the slope of an iso-cost line indicates the ratio of the prices of the inputs.

हुए (अर्थात् लागत-व्यय समान रहता है), तो उसे दूसरे साधन (अर्थात् X) की कम मात्रा खरीदनी पड़ेगी।[7]

अब तक हम दोनों साधनों की कीमतों को स्थिर या समान रखकर चले थे; किसी भी एक साधन की कीमत में परिवर्तन होने से सम-लागत रेखा की स्थिति बदल जाती है और दूसरी सम-लागत रेखा पहली सम-लागत रेखा के समानान्तर नहीं होगी। माना कि एक फर्म कुल व्यय या कुल लागत 100 रु. करना चाहती है; माना साधन X की कीमत 5 रु. (अर्थात् P_x) है और साधन Y की कीमत 10 रु. (अर्थात् P_y) है। ऐसी स्थिति में सम-लागत रेखा AB है (देखिए चित्र 2)। अब माना कि साधन X की कीमत 5 रु. से घटकर 3 रु. हो जाती है तो अब फर्म दिये हुए लागत-व्यय (अर्थात् 100 रु.) से साधन X की अधिक इकाइयां खरीद सकेगी, माना कि वह X की OD मात्रा खरीदती है; चूंकि साधन Y की कीमत मे कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिए Y की उतनी ही मात्रा OA खरीदी जायेगी, अर्थात बिन्दु A स्थिर (fixed) रहेगा। अब नई सम-लागत रेखा AD होगी। यदि साधन X की कीमत और गिरती है तो बिन्दु A तो स्थिर ही रहेगा परन्तु बिन्दु D और आगे खिसक जायेगा क्योंकि अब साधन X की और अधिक मात्रा खरीदी जा सकेगी। इसके विपरीत, यदि साधन X की कीमत स्थिर रहती है और साधन Y की कीमत गिरती है तो बिन्दु B स्थिर (fixed) रहेगा और बिन्दु A आगे को खिसकता जायेगा।
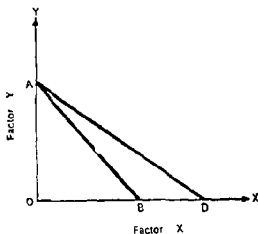
चित्र 2

3. साधनों का न्यूनतम-लागत संयोग (Least-Cost Combination of Factors)

एक फर्म साधनों के प्रयोग की दृष्टि से साम्य की स्थिति मे तब होगी जबकि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, ऐसा तब होगा जबकि वह साधनों का अधिकतम कुशल प्रयोग करे अर्थात् साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग का चुनाव करे।

दो साधनों की अनुकूलतम मात्राओं (optimum quantities) या दो साधनो के न्यूनतम-लागत संयोग का चुनाव करने के लिए एक फर्म को (i) साधनो की भौतिक उत्पादकताओं

[7] हम यह बात इस प्रकार कह सकते हैं कि यदि हम एक सम-लागत रेखा पर बायें से दायें नीचे की ओर चलते हैं तो लागत-व्यय को समान रखते हुए साधन X का साधन Y के लिए प्रतिस्थापन (substitution) करते जाते हैं। दूसरे शब्दों में—

> दो साधन X तथा Y की कीमत का अनुपात $\frac{P_x}{P_y}$, जो कि सम-लागत रेखा के ढाल को मापता है, वित्तीय दशाओं (financial conditions) को बताता है जिनके अन्तर्गत फर्म के लिए एक साधन का दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापन करना सम्भव होता है।
>
> The ratio of the prices of the two factors X and Y, $\frac{P_x}{P_y}$, which measures the slope of an iso-cost curve, states the financial conditions under which it is possible for the firm to substitute one factor for another.

(physical productivities) तथा (ii) साधनों की कीमतों को ध्यान मे रखना होगा । साधनों की उत्पादकताओं को सम-उत्पाद रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है और साधनों की कीमतों को, उसी एक चित्र मे, सम-लागत रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है ।

साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग का हम दो दृष्टिकोण से अध्ययन करेंगे—(i) **जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई हो** (when the output is given), तो फर्म के सामने यह समस्या होती है कि दिये हुए उत्पादन को न्यूनतम सम्भव लागत (lowest cost possible) पर उत्पादित करे; दूसरे शब्दों मे, फर्म सबसे नीची सम-लागत रेखा (lowest iso-cost) पर पहुंचने का प्रयत्न करेगी। संक्षेप मे, समस्या है : **लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई है ।**

(ii) **जबकि लागत या व्यय** (cost or outlay) **दिया हुआ हो**, तो फर्म के सामने यह *समस्या होती है कि दिए हुए लागत-व्यय 'cost-outlay) के अन्तर्गत अधिकतम उत्पादन करे ।* दूसरे शब्दो मे, फर्म सबसे ऊंची सम-उत्पाद रेखा (highest iso-product curve) पर पहुंचने का प्रयत्न करेगी जो कि दी हुई सम-लागत रेखा सम्भव कर सकेगी। संक्षेप मे, समस्या है : **उत्पादन को अधिकतम करना जबकि लागत-व्यय दिया हुआ हो ।**

साधनो के न्यूनतम लागत संयोग के दोनो दृष्टिकोणो को हम एक-एक करके अब नीचे अध्ययन करते हैं ।

(i) **लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई है** (Minimizing cost when the output is given)

यह दिया हुआ है कि किसी वस्तु की 100 इकाइयो का उत्पादन करना है । चित्र 3 में यह सम-उत्पाद रेखा IP_2 द्वारा दिखाया गया है । EF सम-लागत रेखा C_1 लागत को (माना 400 रु. की लागत को), AB सम-लागत रेखा C_2 लागत (माना 500 रु.) को, तथा KL सम-लागत रेखा C_3 लागत (माना 600 रु.) को बताती है ।

वस्तु की 100 इकाई के उत्पादन के लिए न्यूनतम-लागत संयोग को मालूम करने का अर्थ है सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर एक ऐसे बिन्दु को ज्ञात करना जो कि इस सम-उत्पाद रेखा पर किसी भी अन्य बिन्दु (अर्थात् किसी भी अन्य साधन-संयोग) की तुलना मे कम लागत को बताये । उदाहरणार्थ, चित्र मे हम IP_2 रेखा पर बिन्दु R और T पर साधन-सयोग की तुलना करते है । बिन्दु R पर साधन X तथा साधन Y का संयोग C_3 लागत (अर्थात् 600 रु.) को बताता है । बिन्दु T से एक सम-लागत रेखा खीची जा सकती है [जिसे कि चित्र मे बिन्दुकीय रेखा (dotted line) द्वारा दिखाया गया है] जो कि KL रेखा से नीची होगी, अर्थात् T बिन्दु पर साधन संयोग की लागत C_3 से कम होगी ।
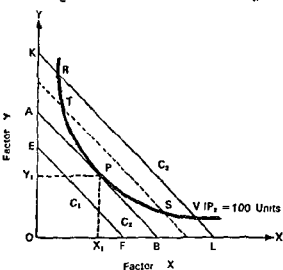
चित्र 3

बिन्दु R तथा बिन्दु T की तुलना इस बात को बताती है कि 'न्यूनतम-लागत साधन-संयोग' को ज्ञात किया जा सकता है यदि हम सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर 'ऊँची लागत

सम-लागत रेखाओं' (high cost iso-costs) से 'नीची लागत सम-लागत रेखाओं' (low cost iso-costs) की दिशा में चलते चलें जब तक कि 'सबसे नीची सम-लागत रेखा' (lowest iso-cost) पर न पहुँच जायें। चित्र में 'सबसे नीची सम-लागत रेखा' (अर्थात् C_2) बिन्दु P पर प्राप्त होती है। यह बिन्दु P सम-उत्पाद रेखा IP_2 तथा सम-लागत रेखा C_2 का स्पर्श बिन्दु (point of tangency) है।

यदि हम सम-उत्पाद रेखा IP_2 पर बिन्दु P से और आगे को चलते हैं तो हम 'ऊँची लागत सम-लागत रेखाओं' (high cost iso-cost curves) पर पहुंच जायेंगे जैसा कि चित्र में बिन्दु S तथा V बताते हैं। स्पष्ट है कि बिन्दु P 'साधनों के न्यूनतम लागत-संयोग' को बताता है; यह बिन्दु P साधन X की X_1 मात्रा तथा साधन Y की Y_1 मात्रा के संयोग को बताता है। संक्षेप में,

एक सम-उत्पाद रेखा तथा एक सम-लागत रेखा का स्पर्शबिन्दु साधनों के न्यूनतम लागत संयोग को बताता है। दूसरे शब्दों में, स्पर्शता (tangency) का अर्थ है न्यूनतम लागत।[8]

(ii) उत्पादन को अधिकतम करना जबकि लागत-व्यय दिया हुआ हो (Maximizing output when the cost-outlay is given)

माना कि एक फर्म किसी वस्तु के उत्पादन में C_2 लागत-व्यय (माना C_2=500 रु.) करना चाहती है। चित्र 4 में C_2 लागत-व्यय को सम-लागत रेखा AB द्वारा दिखाया गया है। फर्म इस दिये हुए लागत-व्यय से अधिकतम उत्पादन करना चाहेगी, अर्थात् वह सबसे ऊँची सम-उत्पाद रेखा पर पहुंचना चाहेगी। अतः उत्पादक दी हुई सम-लागत रेखा C_2 (अर्थात् AB) पर चलेगा जब तक कि वह उच्चतम (highest) सम-उत्पाद रेखा पर न पहुंच जाये। चित्र 4 में ऐसा बिन्दु P पर होता है। बिन्दु P सम-लागत रेखा C_2 (या AB) तथा सम-उत्पाद रेखा IP_2 का स्पर्श बिन्दु है।

चित्र 4

यद्यपि IP_2 से ऊंची भी सम-उत्पाद रेखाएं हैं (जैसे IP_3), परन्तु IP_2 से ऊंची सम-उत्पाद रेखाओं पर पहुंचने के लिए C_2 से अधिक लागत-व्यय की आवश्यकता होगी, और चूंकि लागत-व्यय C_2 दिया हुआ है इसलिए IP_2 से ऊंची सम-उत्पाद रेखाओं पर नहीं पहुंचा जा सकता। स्पष्ट है कि स्पर्श बिन्दु P पर, दी हुई लागत C_2 द्वारा, अधिकतम उत्पादन हो रहा है, अर्थात् फर्म साधन X की X_1 मात्रा तथा, साधन Y की Y_1 मात्रा के संयोग का प्रयोग करेगी और बिन्दु P द्वारा बताया गया यह संयोग ही न्यूनतम लागत संयोग होगा। हम पुनः पहले के निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं, अर्थात् स्पर्शता का अर्थ है न्यूनतम लागत (Tangency means minimum cost)।
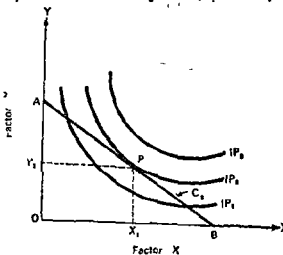
[8] The point of tangency between an iso-product curve and an iso cost line gives the least-cost factor combination. In other words, tangency means minimum cost.

स्पर्श बिन्दु P (चित्र 3 तथा चित्र 4) पर एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने की है। बिन्दु P पर 'सम-उत्पाद रेखा का ढाल' तथा 'सम-लागत रेखा का ढाल' दोनों एक ही है। हम जानते हैं कि—

सम-उत्पाद रेखा का ढाल (slope) = साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Technical Substitution of factor X for factor Y, that is, $MRTS_{xy}$)

$$\text{सम-लागत रेखा का ढाल (slope)} = \frac{\text{Price of factor X}}{\text{Price of factor Y}} = \frac{P_x}{P_y}$$

चूंकि दोनों रेखाओं के ढाल स्पर्श बिन्दु P पर बराबर हैं, इसलिए

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$$

उपर्युक्त विवरण के आधार पर 'साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग' या 'साधनों के प्रयोग की दृष्टि से एक फर्म के साम्य' की दशा निम्न सिद्धान्त द्वारा बतायी जाती है—

एक दी हुई लागत के अन्तर्गत उत्पादन को अधिकतम करने के लिए या एक दिये हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करने की दृष्टि से एक साहसी (या फर्म) को साधनों को ऐसी मात्राओं में प्रयोग में लाना होगा ताकि टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर और साधनों का कीमत अनुपात बराबर हो।[9]

हम जानते हैं कि 'साधन X की साधन Y के लिए टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' बराबर होती है 'साधन X की सीमान्त उत्पादकता और साधन Y की सीमान्त उत्पादकता' अनुपात के;[10] अर्थात्,

$$\begin{array}{c}\text{Marginal Rate of Technical} \\ \text{Substitution of factor X for factor Y}\end{array} = \frac{\text{Marginal Productivity of Factor X}}{\text{Marginal Productivity of Factor Y}}$$

or $$MRTS_{xy} = \frac{MP_x}{MP_y} \qquad \ldots(i)$$

हम पहले देख चुके है कि स्पर्श बिन्दु P (point of tangency) पर,

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} \qquad \ldots(ii)$$

(i) तथा (ii) के आधार पर साधनों के न्यूनतम लागत संयोग के लिए निम्न दशा (condition) प्राप्त होती है :

$$\frac{MP_x}{MP_y} = \frac{P_x}{P_y}$$

or $$\frac{MP_x}{P_x} = \frac{MP_y}{P_y}$$

[9] "In order either to maximize output subject to a given cost or to minimize cost subject to a given output, the entrepreneur must employ inputs in such amounts as to equate the marginal rate of technical substitution and the input-price ratio."

[10] इसके पूर्ण विवरण के लिए देखिए अध्याय 23 : 'सम-उत्पाद रेखाएं-2'।

अर्थात्

'साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग' या 'फर्म के साधनों के प्रयोग की दृष्टि से साम्य' के लिए साधन X की सीमान्त उत्पादकता (MP_x) और साधन X की कीमत (P_x) का अनुपात बराबर होना चाहिए, साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (MP_y) और साधन Y की कीमत (P_y) के अनुपात के।

यह ध्यान देने की बात है कि मार्शल तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'उत्पादन के क्षेत्र में प्रतिस्थापन का नियम' (Law of Substitution in the field of Production) उपर्युक्त बात को ही बताता है। इस प्रकार साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग के सम्बन्ध में सम-उत्पाद रेखा तथा सम-लागत रेखा द्वारा प्राप्त परिणामो (iso-product—iso-cost results) को परम्परावादी शब्दों (traditional terms) में भी व्यक्त किया जा सकता है।

सारांश (Summary)

'साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग' अथवा 'साधनों के प्रयोग की दृष्टि से एक उत्पादक (या साहसी या फर्म) के साम्य' के लिए निम्न दशा पूरी होनी चाहिए :

सम-उत्पाद रेखा तथा सम-लागत रेखा एक बिन्दु पर स्पर्श करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, स्पर्शता का अर्थ है न्यूनतम लागत।[11]

अर्थात्

टेक्नीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बराबर होनी चाहिए साधनों की कीमत के अनुपात के।[12]

अर्थात्

एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता और उसकी कीमत के अनुपात के बराबर होना चाहिए।[13]

प्रश्न

1. एक फर्म साधनो के उस संयोग को चुनेगी जो कि उत्पादन के एक दिये हुए स्तर की कुल लागत को न्यूनतम करता है; दूसरे शब्दों में, एक फर्म साधनों के उस संयोग को चुनेगी जो कि एक दिये हुए व्यय के लिए उत्पादन को अधिकतम करता है।

   उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिए।

   'A firm will choose that combination of factors which minimizes the total cost for any given level of output. Or, what amounts to the same thing, for a given outlay or expenditure, the firm will try to maximize output.' Discuss the above statement

   अथवा

   "एक दी हुई लागत के अन्तर्गत उत्पादन को अधिकतम करने के लिए या एक दिये हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करने की दृष्टि से एक साहसी (या एक फर्म) को

---

[11] The iso-product curve and the iso-cost line would be tangent at a point. In other words, tangency means minimum cost.

[12] Marginal rate of technical substitution should equal input-price ratio.

[13] The ratio of marginal productivity of one factor to its price should equal the ratio of marginal productivity of the other factor to its price.

साधनो को ऐसी मात्राओ मे प्रयोग मे लाना होगा ताकि टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर और साधनो का कीमत अनुपात बराबर हो।" विवेचना कीजिए।

"In order either to maximize output subject to a given cost or to minimize cost subject to a given output, the entrepreneur (or the firm) must employ inputs in such amounts as to equate the marginal rate of technical substitution and the input-price ratios." Discuss.

अथवा

एक उत्पादक या फर्म की साधनों के संयोग के चुनाव के सम्बन्ध मे साम्य की स्थिति की विवेचना कीजिए।

Discuss the condition of equilibrium of a producer or a firm with regard to the choice of factor combination.

26

जनसंख्या के सिद्धान्त
(Theories of Population)

प्राचीन समय से ही जनसंख्या की समस्या मे अर्थशास्त्रियो ने रुचि दिखाई है। **वाणिज्य-वादी अर्थशास्त्री** (mercantalists) देश की आर्थिक प्रगति तथा शक्ति के लिए धनी या अधिक जनसंख्या का होना अच्छा समझते थे। **प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री** (Physiocrats) जनसख्या की वृद्धि के विरुद्ध नही थे वे 'प्राकृतिक व्यवस्था' (natural order) मे विश्वास रखते थे, इसलिए प्राकृतिक रूप में यदि जनसख्या घटती है या बढ़ती है तो वे उसे बुरा नहीं समझते थे। **एडम स्मिथ** (Adam Smith) जनसख्या के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता नही समझते थे क्योंकि उनके अनुसार जनसख्या माँग तथा पूर्ति के अनुसार अपने आप को समायोजित (adjust) कर लेती है। **माल्थस** (Malthus) से पहले इन प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने जनसंख्या के सम्बन्ध में किसी पूर्ण तथा निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन नही किया। माल्थस प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने जन-संख्या के सिद्धान्त को एक निश्चित रूप दिया। माल्थस के सिद्धान्त के बाद जनसंख्या के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये। जनसख्या के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त (Malthusian Theory of Population)
2. अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त (Optimum Theory of Population)
3. जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition)
4. जनसख्या का जैवकीय सिद्धान्त—लोजिस्टिक वक्र रेखा (The Biological theory of Population—The Logistic Curve)
5. शुद्ध पुनरुत्पादन दर का सिद्धान्त (Theory of Net Reproduction Rate)

अब हम इनमें से प्रत्येक सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION)

प्राक्कथन (Introductory)

यद्यपि जनसंख्या की समस्या ने विद्वानो तथा अर्थशास्त्रियों का ध्यान बहुत पहले से आकर्षित किया है, परन्तु माल्थस प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने जनसंख्या के सिद्धान्त को एक निश्चित रूप दिया। इस दृष्टि से माल्थस का नाम जनसख्या के सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। माल्थस एक निराशावादी पादरी थे जिन्होने कई वर्षों के अध्ययन के पश्चात् अपने विचारो को 1798 मे एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया, इस पुस्तक पर उनका नाम नही दिया गया था। सन् 1803 मे इसका दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ जिसका

नाम *An Essay on the Principle of Population*[1] रखा गया। इस दूसरे संस्करण को ही माल्थस के विचारो का आधार माना जाता है।

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की पृष्ठभूमि (Background of the Malthusian Theory of Population)

प्रथम, जिस समय माल्थस ने जनसंख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उस समय सारा यूरोप नेपोलियन की लडाइयो की आग में जल रहा था, चारों तरफ मुसीबतें तथा गरीबी फैली हुई थी। इन लडाइयो ने खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओ की बहुत कमी कर दी थी। एक ओर तो वस्तुओं की कमी के कारण *'आर्थिक असन्तुष्टि'* (*economic discontent*) बहुत प्रबल हो रही थी और दूसरी ओर बेकारी तीव्र गति से बढ रही थी। दूसरे, औद्योगिक क्रान्ति अभी कठिनाई से आरम्भ ही हुई थी, जीवन-निर्वाह के साधनो में कोई विशेष परिवर्तन होता नही दिखाई पडता था; परन्तु जनसख्या में वृद्धि बडी तीव्र गति से हो रही थी। उपर्युक्त सब बातो ने माल्थस के 'जनसख्या सिद्धान्त' के प्रतिपादन को प्रभावित किया। तीसरे, माल्थस की पुस्तक के प्रकाशन का तात्कालिक कारण गोडविन (Godwin) की पुस्तक *'An Enquiry into Political Justice'* का प्रकाशन था। गोडविन आशावादी होने के कारण मानव समाज का भविष्य बहुत उज्ज्वल समझते थे परन्तु माल्थस निराशावादी थे, अत वे गोडविन के विचारो से सहमत नही थे। परिणामस्वरूप माल्थस ने गोडविन की पुस्तक के उत्तर मे अपनी पुस्तक लिखी, इसके कारण उन्होने अपनी पुस्तक की भाषा प्रभावशील तथा कठोर रखी।

माल्थस के सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of the Malthusian Theory)

माल्थस अपने जनसंख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय निम्न मान्यताओं को लेकर चले: (1) मनुष्य की प्रजनन शक्ति (fecundity) स्थिर रहती है। (2) जीवन-स्तर तथा जनसंख्या में सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् जीवन-स्तर बढने पर जनसंख्या में वृद्धि होगी क्योंकि अधिक बच्चों का पालन-पोषण किया जा सकेगा। इसके विपरीत जीवन-स्तर में कमी होने पर जनसंख्या में कमी होगी।

माल्थस का जनसंख्या का नियम (Malthusian Law of Population)

माल्थस के जनसख्या के नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

"उत्पादन कलाओं की एक दी हुई स्थिति के अन्तर्गत, जनसंख्या जीवन-निर्वाह के साधनों से अधिक तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति दिखलाती है।" ("In a given state of the arts of production, population tends to outrun subsistence.")

माल्थस के जनसंख्या के नियम या सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Malthusian Law of Population or Theory of Population)

इस नियम की पूर्ण तथा विस्तृत व्याख्या के लिए **माल्थस के सिद्धान्त की मुख्य बातों** (main features) का विवरण नीचे दिया गया है:

(1) **खाद्यान्न तथा जनसंख्या की वृद्धि में सम्बन्ध**—(अ) खाद्यान्न की अपेक्षा जनसंख्या मे तीव्र गति से बढने की प्रवृत्ति होती है। (ब) माल्थस ने इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए गणित का रूप दिया। उन्होने बताया कि जनसंख्या *'ज्यामितिक वृद्धि'* (Geometrical Progression) तथा खाद्यान्न *'अकगणित वृद्धि'* (Arithmetical Progression) के अनुसार बढ़ती है। ज्यामितिक **वृद्धि** का अर्थ है 1, 2, 4, 8, 16, 32, इत्यादि तथा अकगणित **वृद्धि** का अर्थ है 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 इत्यादि। परन्तु माल्थस के सिद्धान्त को शाब्दिक अर्थ मे नही लेना चाहिए। उन्होने

---

1 पूरा नाम इस प्रकार है: *"An Essay on the Principle of Population as it Affects the Future Improvement of Society."*

गणितात्मक रूप केवल इस बात को समझाने के लिए दिया था **कि जनसंख्या की प्रवृत्ति, खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ने की होती है।** (ख) मनुष्य की प्रजनन शक्ति बहुत तीव्र होती है और यदि बाधाएं न हों तो किसी देश की जनसंख्या प्रत्येक 25 वर्ष में दुगुनी हो जाये, जबकि खाद्यान्नों में वृद्धि इस अनुपात में नहीं होगी क्योंकि कृषि में शीघ्र ही उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है। (द) स्पष्ट है कि माल्थस के सिद्धान्त का आधार उत्पत्ति ह्रास नियम (law of diminishing returns) है। भूमि सीमित है, उसकी पूर्ति (supply) को नहीं बढ़ाया जा सकता। यदि कृषि कला में कोई उन्नति नहीं होती तो भूमि पर अधिक पूंजी तथा श्रम का प्रयोग करने से सीमान्त उत्पादन में ह्रास होता जायेगा।

(2) **नैसर्गिक प्रतिबन्ध तथा माल्थूसियन चक्र** (Positive checks and Malthusian cycle)—जनसंख्या खाद्यान्न की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ती है, इसलिए प्रत्येक देश में कुछ समय बाद एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब खाद्यान्न की कमी हो जाती है। यह अति-जनसंख्या (over-population) की स्थिति है। ऐसी स्थिति में प्रकृति बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगाती है, अर्थात् अकाल, भयंकर बीमारियां, बाढ़, भूकम्प, युद्ध, इत्यादि लागू होने लगते हैं और इनसे देश में बड़ी विपत्ति फैलती है तथा लाखों व्यक्तियों की असामयिक मृत्यु हो जाती है। प्रकृति द्वारा लगाये गये इन प्रतिबन्धों को माल्थस ने 'नैसर्गिक प्रतिबन्ध' (positive checks) कहा। इन नैसर्गिक प्रतिबन्धों द्वारा जनसंख्या में कमी होती है और जनसंख्या का खाद्यान्न के साथ सन्तुलन (balance) स्थापित हो जाता है। परन्तु यह सन्तुलन बहुत थोड़े समय तक ही रहता है। मानव के बढ़ने की स्वाभाविक इच्छा (inherent urge) शीघ्र कार्य करने लगती है, जनसंख्या पुनः बढ़कर खाद्यान्न की पूर्ति से अधिक हो जाती है; प्रकृति पुनः नैसर्गिक प्रतिबन्धों द्वारा बढ़ी जनसंख्या को कम करके उसका सन्तुलन खाद्यान्न के साथ स्थापित कर देती है। घटनाओं का यह चक्र (cycle) चलता रहेगा; इसे 'माल्थूसियन चक्र' (Malthusian cycle) कहते हैं। इस 'माल्थूसियन चक्र' को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया गया है।
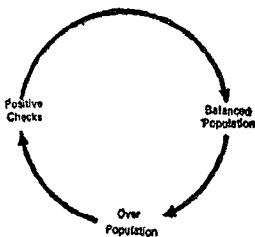
चित्र 1

निष्कर्ष : निवारक प्रतिबन्ध (Conclusion : Preventive checks)—घटनाओं के इस चक्र तथा नैसर्गिक प्रतिबन्धों के कष्टों से बचने के लिए माल्थस ने सुझाव दिया कि मनुष्य को स्वयं जनसंख्या पर रोक लगानी चाहिए। इसके लिए उन्होंने देर से शादी करने, संयम से रहने तथा अविवाहित या ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने का सुझाव दिया। इन प्रतिबन्धों को माल्थस ने 'निवारक प्रतिबन्ध' (preventive checks) कहा। [ध्यान रहे कि माल्थस ने सन्तान निग्रह के आधुनिक कृत्रिम साधनों के बारे में कुछ नहीं कहा, उनका निवारक प्रतिबन्धों से अर्थ केवल नैतिक संयम (moral restraints) से ही था; कृत्रिम साधनों के प्रयोग पर माल्थस के अनुयायियों, जो कि नव-माल्थसवादी (New Malthusians) कहलाते हैं, ने ही अधिक जोर दिया है।]

माल्थस के सम्पूर्ण सिद्धान्त को हम सक्षप मे निम्न चार्ट (chart) द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं :
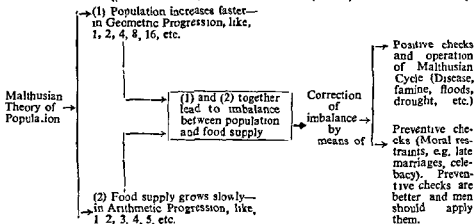
माल्थस के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Malthusian Theory of Population)

माल्थस के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार हैं ·

(1) **मनुष्य की सन्तान-उत्पादन शक्ति (fecundity) स्थिर नहीं रहती**—माल्थस ने इस जीवशास्त्रीय सिद्धान्त (biological theory) की उपेक्षा की कि सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य की सन्तान उत्पादन शक्ति कम होती है, स्थिर नहीं रहती।

(2) **जीवन स्तर ऊंचा होने के साथ जनसंख्या घटती है, बढ़ती नहीं**—यूरोपीय देशों तथा अन्य उन्नतशील देशो का अनुभव यह सिद्ध करता है कि आर्थिक सम्पन्नता तथा जीवन-स्तर मे वृद्धि के साथ जनसंख्या मे कमी होने की प्रवृत्ति क्रियाशील होने लगती है।

[जीवन-स्तर ऊंचा होने से पुरुष तथा स्त्रिया देर से शादी करते हैं तथा कम सन्तान चाहते हैं ताकि वे अपने बच्चो के उचित पालन-पोषण तथा उच्च शिक्षा पर धन व्यय कर सकें और उनका भावी जीवन सुखी बना सकें। शिक्षित स्त्रिया कम सन्तान चाहती हैं। इस प्रकार शिक्षा प्रसार तथा उच्च जीवन-स्तर के परिणामस्वरूप जनसख्या मे कमी होती है न कि वृद्धि, जैसा कि माल्थस का विचार था।]

(3) **सिद्धान्त का गणितात्मक रूप उचित नहीं है**—इतिहास साक्षी है कि जनसंख्या मे वृद्धि ज्यामितिक गति तथा खाद्यान्न मे वृद्धि अकगणित गति से नही होती; वास्तव मे, जनसख्या या खाद्यान्न की वृद्धि को कोई निश्चित गणितात्मक रूप नही दिया जा सकता।

परन्तु यह आलोचना सही नही है। माल्थस का आशय जनसंख्या की प्रवृत्ति का खाद्यान्न की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढने से था, इस बात को समझाने के लिए ही उन्होने ज्यामितिक वृद्धि तथा अकगणित वृद्धि के शब्दो का प्रयोग किया। अपनी पुस्तक के बाद के सशोधित सस्करणो मे उन्होंने इन शब्दो को भी हटा दिया था।

(4) **माल्थस भावी वैज्ञानिक आविष्कारों का ठीक अनुमान नहीं लगा सके**—माल्थस का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि कृषि मे उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण खाद्यान्नों मे कमी हो जाती है। परन्तु कृषि में वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप नयी रीतियो, उन्नत बीज, खादो, इत्यादि के प्रयोग से उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को बहुत समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। माल्थस कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रगति का अनुमान नही लगा सके। इसी प्रकार **यातायात व संवादवहन के साधनों मे बहुत अधिक प्रगति हुई है**, परिणामस्वरूप खाद्यान्नो को एक जगह या देश से दूसरी जगह या देश को आसानी से ले जाया जा सकता है और इस प्रकार देश विशेष मे खाद्यान्न की कमी को दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार **औद्योगिक क्षेत्र में भी वैज्ञानिक**

प्रगति तथा बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप जीवन-निर्वाह की वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकी हैं। अतः माल्थस विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक उन्नति का ठीक अनुमान नहीं लगा सके।

(5) **जनसंख्या की तुलना कुल राष्ट्रीय आय से करनी चाहिए**—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, एक देश की जनसंख्या की तुलना उस देश की कुल राष्ट्रीय आय से करनी चाहिए, न कि केवल खाद्यान्नों से। अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त (Optimum theory of population) का यही आधार है। एक देश में खाद्यान्न का उत्पादन कम हो सकता है, परन्तु यदि वह देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नतशील है तो वह अपने यहां के बने हुए माल के बदले में दूसरे कृषि प्रधान देशों से खाद्यान्न मंगा सकता है और अधिक जनसंख्या का पालन-पोषण कर सकता है। सेलिगमैन (Seligman) ने ठीक कहा है कि जनसंख्या की समस्या केवल एक संख्या (या मात्रा) की समस्या नहीं है बल्कि कुशल उत्पादन तथा समान वितरण की समस्या भी है।[2] [दूसरे शब्दों में, यदि जनसंख्या में वृद्धि के साथ देश का कुल उत्पादन भी बढ़ता है तथा धन का उचित वितरण होता है तो जनसंख्या की वृद्धि से कोई हानि नहीं।]

(6) **जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम-शक्ति में भी वृद्धि**—प्रो. केनन (Cannan) के अनुसार, प्रत्येक अतिरिक्त श्रमिक संसार में केवल खाने के लिए मुंह लेकर ही नहीं आता बल्कि वह दो हाथ लेकर भी आता है जिससे उत्पादन किया जा सकता है। वास्तव में, प्रो. केनन का कथन भी प्रो. सेलिगमैन के कथन की पुष्टि करता है, अर्थात् जनसंख्या की समस्या केवल संख्या की समस्या ही नहीं बल्कि कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है।

(7) **प्राकृतिक विपत्तियों (या नैसर्गिक प्रतिबन्धों) का होना अति-जनसंख्या का सूचक नहीं**—माल्थस के अनुसार, यदि किसी देश में अति-जनसंख्या है तो वहां पर नैसर्गिक प्रतिबन्ध कार्यशील हो जायेंगे; दूसरे शब्दों में, नैसर्गिक प्रतिबन्धों का पाया जाना अति-जनसंख्या का सूचक है, परन्तु यह विचारधारा गलत है। जिन देशों में न्यून जनसंख्या है वहां भी नैसर्गिक प्रतिबन्ध अर्थात् प्राकृतिक विपत्तियां पायी जाती हैं। वास्तव में, प्राकृतिक विपत्तियां तो प्राकृतिक हैं। वे उत्पादन की अकुशलता, धन का असमान वितरण, चिकित्सा-विज्ञान का अपर्याप्त विकास इत्यादि के परिणाम हैं न कि अति-जनसंख्या के।

(8) **जनसंख्या की वृद्धि सदैव हानिकारक नहीं होती**—जनसंख्या में प्रत्येक वृद्धि को माल्थस हानिकारक समझते थे, परन्तु यह विचार गलत था। यदि किसी देश की जनसंख्या, उस देश के प्राकृतिक साधनों की अपेक्षा कम है (अर्थात् देश में न्यून जनसंख्या है) तो जनसंख्या में वृद्धि लाभदायक होगी क्योंकि सभी प्राकृतिक साधनों का भलीभांति प्रयोग करके उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाया जा सकेगा। यदि देश में अति-जनसंख्या है तो जनसंख्या में वृद्धि हानिकारक होगी।

(9) **माल्थस का जनसंख्या का नियम असत्य सिद्ध हुआ**—माल्थस का जनसंख्या का नियम है कि जनसंख्या, खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ती है। परन्तु इतिहास ने इसको गलत सिद्ध किया। यूरोपीय देशों में एक ओर तो कृत्रिम साधनों के प्रयोग से जनसंख्या तीव्र गति से नहीं बढ़ी, दूसरी ओर कृषि में वैज्ञानिक रीतियों के प्रयोग से खाद्यान्न में बहुत वृद्धि हुई है। आज तो कुछ यूरोपीय देशों (जैसे फ्रांस) में तो जनसंख्या के कम होने की समस्या उत्पन्न हो रही है।

(10) **स्थैतिक दृष्टिकोण (Static approach)**—माल्थस का नियम उत्पत्ति ह्रास नियम तथा प्राकृतिक साधनों (भूमि) की सीमितता पर आधारित है। इस अर्थ में माल्थस का सिद्धान्त स्थैतिक है क्योंकि किसी एक निश्चित समय पर साधनों की मात्रा स्थिर हो सकती है परन्तु सदैव

---

[2] "The problem of population is not one of mere size but of efficient production and equitable distribution."

के लिए नही। समय के साथ पश्चिमी देशो मे ज्ञान तथा टेकनोलोजी (technology) मे बहुत विकास हुआ है, प्राप्त भूमि तथा अन्य साधनो मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि कृषि योग्य भूमि की मात्रा मे वृद्धि महत्त्वपूर्ण नही है वरन् अतिरिक्त भूमि का महत्व इस बात से मापा जा सकता है कि उससे कितना अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जाता है।[3]

कुछ अर्थशास्त्री माल्थस के सिद्धान्त को प्रावैगिक (dynamic) **बताते हैं** क्योंकि माल्थस का सिद्धान्त एक समयावधि के भीतर (over a period of time) जनसंख्या के विकास (growth) की प्रक्रिया (course) का अध्ययन करता है।

माल्थस के सिद्धान्त की सत्यता (Validity of the Malthusian Theory)

माल्थस के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गयी। प्रश्न यह उठता है कि क्या माल्थस का सिद्धान्त बिलकुल बेकार है तथा उसमे कोई सत्यता नही है? **क्या आधुनिक समाज के लिए माल्थस के सिद्धान्त का भय** (terror) **समाप्त हो गया है?**

वास्तव मे, माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की कडी आलोचना होने पर भी उसमे सत्यता का पर्याप्त अंश है। यह कहा जा सकता है कि विकसित तथा उन्नतशील देशों के लिए माल्थस के सिद्धान्त *का भय समाप्त-सा प्रतीत होता है या बहुत कम हो गया है, परन्तु अविकसित देशों के लिए* उनके सिद्धान्त का भय आज भी उपस्थित है अर्थात् उनका सिद्धान्त अविकसित देशो मे लागू होता है। निम्न विवरण इस सम्बन्ध मे विस्तृत प्रकाश डालता है

(1) इगलैण्ड, अमरीका तथा यूरोप के उन्नतशील देशो मे माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा प्रतीत होता है अर्थात् माल्थस का सिद्धान्त लागू नही होता। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर कम हो गयी है, वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारो के परिणामस्वरूप औद्योगिक तथा कृषि उत्पादकता में बहुत वृद्धि हुई है, तथा इसमें खाद्यान्न की कमी की समस्या नहीं है। इन देशो में माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा तीव्र गति से नही बढ़ी। इतना ही नही कुछ देशो, जैसे फ्रांस, इंगलैण्ड, अमरीका इत्यादि में न्यून जनसंख्या की समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना अनुभव की जाने लग गयी है।

(2) विकसित तथा उन्नत देशो में कृत्रिम साधनो के प्रयोग द्वारा जनसख्या को कम किया गया है। यह बात परोक्ष रूप से माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करती है और इस दृष्टि से ये देश भी माल्थस के सिद्धान्त से अप्रभावित नही रहे हैं।[4]

---

[3] "Malthus' argument was based on the law of diminishing returns and the assumption that the supply of natural resources (land) was fixed. It is in this sense that Malthus' analysis was static for it is true at any *point in time* the volume of resources available to people is indeed fixed, but *not through time*. With the passing of time we, in the western world, have seen the tremendous growth of knowledge and technology, and a significant increase in the amount of available land and other resources. We should note that it is not the increase in tillable land that is important; rather the value of the additional land is to be measured by the amount of additional output that it produces."

[4] **प्रो. टोमस** के अनुसार, यह तथ्य कि एक उच्च जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए परिवार को सीमित किया जाता है माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करता है क्योंकि इसके अनुसार, जीवन निर्वाह के साधन इतने पर्याप्त नही होते कि जनसख्या में वृद्धि तथा जीवन स्तर मे वृद्धि या एक निश्चित जीवन स्तर को बनाये रखें—इन दोनो के लिए पूरे पड जायें। यदि लोग स्वय अपने परिवारो को सीमित करते हैं ताकि जीवन स्तर को बनाये रख सके, या इसी दृष्टि से शादी को स्थगित करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि माल्थस का सिद्धान्त (अर्थात् जनसख्या जीवन-निर्वाह के साधनो [illegible] है) क्रियाशील होता है।

"The fact that family limitation is practised in order to maintain a high standard of living may be considered a substantiation of the Malthusian doctrine for it indicates that

(3) माल्थस के नियम की इस सत्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि यदि किसी प्रकार के प्रतिबन्ध न हों तो जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ेगी।

(4) सेम्युल्सन (Samuelson) के अनुसार, माल्थस का सिद्धान्त आज भी एक जीवित प्रभाव है। माल्थस के विचार प्रत्यक्ष रूप से उत्पत्ति ह्रास नियम पर निर्भर करते हैं, और उसमें आज भी सत्यता है।[5]

(5) माल्थस का सिद्धान्त भारत, चीन इत्यादि अल्पविकसित देशों मे पूरी तरह क्रियाशील है। इन देशो में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, और खाद्यान्न धीमी गति से, दूसरे शब्दों मे, इन देशों में खाद्यान्न-पूर्ति तथा जनसंख्या मे बहुत असन्तुलन है। सेम्युल्सन के शब्दों में, "भारत, चीन तथा संसार के अन्य भागों में, जहाँ जनसंख्या और खाद्य पूर्ति में सन्तुलन एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, जनसंख्या का व्यवहार (behaviour) समझने के लिए माल्थस के सिद्धान्त में आज भी सत्यता के तत्त्व (germs) महत्त्वपूर्ण हैं।"[6]

माल्थस के सिद्धान्त के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion regarding the Malthusian Theory)

पश्चिमी उन्नत देशो मे माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा हो गया है या कम हो गया है, अर्थात् यह सिद्धान्त इन देशो मे लागू नही होता, परन्तु अल्पविकसित देशो मे माल्थस के सिद्धान्त का भय अब भी है और यह सिद्धान्त इन देशो मे भलीभांति लागू होता है।

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त तथा भारत
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION AND INDIA)

भारत मे माल्थस का सिद्धान्त लागू होता है, यह निम्न विवरण से स्पष्ट है :

(1) भारत मे जनसख्या बहुत तीव्र गति से (लगभग 2·5 प्रतिशत प्रतिवर्ष) बढ रही है, जबकि खाद्यान्न की पूर्ति इस दर से नही हो रही है। देश को लाखो टन खाद्यान्न प्रतिवर्ष विदेशों से मगाना पडता है। (2) देश मे सामाजिक तथा धार्मिक दशाएं आज भी जन्म दर को बढ़ाने मे सहायक है। भारत मे अब भी छोटी आयु में विवाह करने की प्रथा अधिकांश लोगों में प्रचलित है। देश मे जन्म दर ही नही बल्कि मृत्यु दर भी ऊंची है। (3) यद्यपि कृषि के ढंगों में पहले की अपेक्षा थोड़ा परिवर्तन हुआ है, परन्तु अभी भी कृषि अधिकतर पुराने ढंगों से की जाती है। अतः कृषि मे उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को नही रोका जा सका है। (4) देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है, इसलिए जन्म दर को रोकने के लिए निवारक प्रतिबन्धों या कृत्रिम साधनो का प्रयोग बहुत कम मात्रा में किया जा रहा है। (5) देश में अभी उद्योग-धन्धों का भी पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाया है। देशवासियों का जीवन स्तर बहुत नीचा है। देश में जनसख्या को रोकने के लिए नैसर्गिक प्रतिबन्ध, जैसे, अकाल, बीमारियां, बाढ़ इत्यादि क्रियाशील है।

---

the means of subsistence are not sufficient to allow both an increase in population and a rise in, or the maintenance of, the standard of living. Wherever people deliberately choose to limit their families in order to maintain their standard, or even where marriage is postponed for the same reason, it can be contended that the Malthusian principle that population is limited by the means of subsistence is in operation."

[5] "It (*i.e.*, Malthus' Theory) is still a living influence today. Malthus' views depend directly on the law of diminishing returns and they continue to have relevance."

[6] "Nevertheless, the germs of truth in his doctrine are still important for understanding the population behaviour of India, China, and other parts of the globe where the balance of numbers and food supply is a vital factor."

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त
(OPTIMUM THEORY OF POPULATION)

प्राक्कथन (Introduction)

माल्थस ने देश विशेष की जनसंख्या की तुलना उस देश में उत्पादित खाद्यान्नों से की तथा सामान्यतया जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि को हानिकारक समझा। उनका यह दृष्टिकोण उचित नहीं था। **सेलिगमेन** (Seligman) का यह कथन उचित है कि **जनसंख्या की समस्या केवल संख्या या आकार** (number or size) **की समस्या नहीं है वरन् यह कुशल उत्पादन तथा न्यायसंगत वितरण की समस्या है।** दूसरे शब्दों मे, जनसंख्या मे वृद्धि या कमी अर्थात् जनसंख्या के आकार को देश के कुल उत्पादन तथा धन के उत्पादन तथा उसके न्यायपूर्ण वितरण की तुलना मे देखना चाहिए। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए जनसंख्या का एक नया सिद्धान्त बनाया जो 'अनुकूलतम जनसख्या सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। केनन (Cannan), **कार-सौन्डर्स** (Carr-Saunders), डाल्टन, रोबिन्स आदि अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का उद्देश्य (Object of the Optimum Theory)

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त यह बताने का प्रयत्न करता है कि किसी देश के लिए आर्थिक दृष्टि से जनसख्या का कौन सा आकार आदर्श (ideal) या अनुकूलतम है। यह जनसंख्या मे परिवर्तन तथा प्रति व्यक्ति आय मे परिवर्तन के बीच सम्बन्ध का अध्ययन करता है और बताता है कि जनसख्या का वह आकार आदर्श या अनुकूलतम होगा जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी।

'अनुकूलतम के विचार का प्रयोग' (Application of the 'Concept of Optimum')

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त यह नही बताता कि जनसख्या मे क्यो और किस प्रकार से वृद्धि होती है, इस दृष्टि से इसको जनसंख्या का सिद्धान्त नही कहा जा सकता है। वास्तव मे, **यह सिद्धान्त तो जनसंख्या के क्षेत्र में केवल 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग करता है अर्थात उत्पत्ति के साधनों के मिलाने के अनुकूलतम अनुपात के विचार की सहायता लेता है।** एक उत्पादक विभिन्न उत्पत्ति के साधनो को अनुकूलतम अनुपात मे मिलाता है ताकि उसको अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो। इसी प्रकार से यदि देश के अन्य दिये हुए साधनो के साथ जनसख्या को अनुकूलतम अनुपात में मिलाया जाता है तो देश का उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी। दूसरे शब्दो मे, देश के साधनों को देखते हुए जनसख्या न कम होनी चाहिए और न अधिक वरन् ठीक (just right) या अनुकूलतम होनी चाहिए तभी प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी। स्पष्ट है कि **जनसंख्या के क्षेत्र में अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विचार 'अनुकूलतम' का प्रयोग** (application) **ही अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त है।**

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of the Optimum Theory of Population)

यह सिद्धान्त दो मान्यताओ पर आधारित है

(1) यह मान लिया जाता है कि जनसख्या मे वृद्धि के साथ **कुल जनसंख्या मे कार्यवाहक जनसंख्या** (working population) **का अनुपात स्थिर रहता है।** इसका अर्थ यह हुआ कि श्रमिक के औसत उत्पादन (average product) तथा प्रति व्यक्ति आय (per capita income) मे सीधा सम्बन्ध रहता है, श्रमिक के औसत उत्पादन के घटने-बढने से प्रति व्यक्ति आय भी घटेगी-बढेगी और जब प्रति श्रमिक औसत उत्पादन अधिकतम होगा तो प्रति व्यक्ति आय भी अधिकतम होगी।

(2) यह भी मान लिया जाता है कि एक समय विशेष पर जनसख्या में वृद्धि के साथ प्राकृतिक साधनों, तकनीकी ज्ञान, पूजी इत्यादि मे कोई परिवर्तन नही होता। इसका अर्थ यह हुआ कि एक बिन्दु के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जायेगा।

'अनुकूलतम जनसंख्या' की परिभाषा (Definition of 'Optimum Population')

साधनों तथा पूंजी की एक दी हुई मात्रा और तकनीकी ज्ञान की एक दी हुई स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या से अर्थ, सामान्यतया, जनसंख्या के उस आकार से लिया जाता है जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो तथा जिसमें थोड़ी-सी वृद्धि या कमी होने पर प्रति व्यक्ति आय में कमी हो जाय।

अर्थशास्त्रियों द्वारा अनुकूलतम जनसंख्या की दी गई परिभाषाओं में थोड़ी भिन्नता पायी जाती है। यह बात निम्न मुख्य परिभाषाओं से स्पष्ट होती है :

(1) डाल्टन (Dalton) के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय प्रदान करती है।"[7] रोबिन्स (Robbins) के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिससे अधिकतम उत्पादन सम्भव होता है।"[8]

[डाल्टन तथा रोबिन्स की परिभाषाओं में थोड़ा अन्तर है। डाल्टन के अनुसार, अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना है, अर्थात् वह न केवल उत्पत्ति को ही ध्यान में रखते है बल्कि धन के उचित वितरण पर भी बल देते हैं। इस प्रकार डाल्टन का दृष्टिकोण सरल है तथा व्यावहारिकता रखता है। रोबिन्स के अनुसार, अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना नहीं है वरन् कुल उत्पादन का अधिकतम होना है। यदि जनसंख्या बढ़ने से कुल उत्पादन में वृद्धि, जनसंख्या पर होने वाले व्यय (अर्थात् जनसंख्या के उपभोग) से अधिक होती है, तो जनसंख्या का बढ़ाना ठीक होगा। अतः रोबिन्स के अनुसार, जिस जनसंख्या पर देश का कुल उत्पादन अधिकतम हो जाय, वह अनुकूलतम जनसंख्या होगी। यद्यपि रोबिन्स, डाल्टन, की भांति, धन या कुल उत्पादन के वितरण पर बल नहीं देते हैं, परन्तु उन्होने अनुकूलतम जनसंख्या के विचार में उपभोग के विचार को सम्मिलित करके उसे विस्तृत कर दिया है। रोबिन्स के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु, डाल्टन के अनुकूलतम बिन्दु से, बहुत आगे होगा क्योंकि रोबिन्स के अनुसार जनसंख्या का वह स्तर अनुकूलतम है जहाँ पर उसका उत्पादन तथा उपभोग दोनों बराबर हों। यद्यपि रोबिन्स का दृष्टिकोण अधिक विस्तृत है, परन्तु डाल्टन का दृष्टिकोण अधिक सरल तथा व्यावहारिक है।]

(2) प्रो. बोल्डिंग के अनुसार, "जिस जनसंख्या पर जीवन-प्रमाप (standard of life) अधिकतम होता है, वह अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।"[9] प्रो. बोल्डिंग 'रहन-सहन का स्तर' (standard of living) के स्थान पर 'जीवन-प्रमाप' शब्द का प्रयोग करते है। 'अधिकतम जीवन-प्रमाप' एक विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत 'अधिकतम आय' से प्राप्त भौतिक सुख के अतिरिक्त 'अभौतिक पक्ष' (non-material side) या 'गुणात्मक पक्ष' (qualitative aspect) भी आ जाता है अर्थात् इसके अन्तर्गत मनुष्य के चरित्र, अच्छा स्वास्थ्य, इत्यादि पर भी ध्यान दिया जाता है।

[केनन (Cannan)[10], हिक्स (Hicks)[11] इत्यादि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को ही अनुकूलतम जनसंख्या का सूचक मानते हैं।]

---

[7] "Optimum population is that which gives the maximum income per head." —Dalton.

[8] Optimum population is "the population which just makes the maximum returns possible" —Robbins.

[9] "The population at which the standard of life is a maximum is called the optimum population" —Boulding, *Economic Analysis*, p. 658.

[10] केनन के अनुसार, "एक दिये हुए समय पर, अर्थात् ज्ञान तथा परिस्थितियां समान रखने पर, एक बिन्दु ऐसा होता है जहां पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है, तथा इस स्थिति में श्रम की मात्रा ऐसी होती है कि उसमें वृद्धि तथा कमी दोनों ही उत्पत्ति में कमी लाती हैं।"
"At any given time or, what comes to the same thing, knowledge and circumstances remaining the same, there is what may be called a maximum return, when the amount of labour is such that both an increase and a decrease in it would diminish proportionate returns." —Cannon, Quoted by J. K. Mehta.

[11] हिक्स के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या, जनसंख्या का वह स्तर है जिस पर प्रति व्यक्ति

(क्रमशः)

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Optimum Theory of Population)

जनसंख्या में वृद्धि या कमी के साथ कार्यवाहक जनसंख्या (working population or labour force) में वृद्धि या कमी होगी। यदि किसी देश में जनसंख्या बहुत कम है तो कार्यवाहक जनसंख्या भी कम होगी, इसलिए देश के अधिकांश उत्पादक साधनों का प्रयोग भलीभांति नहीं हो पायेगा और प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन अर्थात् प्रति व्यक्ति आय कम होगी। जैसे जनसंख्या बढ़ेगी, श्रम-विभाजन बढ़ेगा, बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, देश के साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगेगा, और प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। दूसरे शब्दों मे, प्रारम्भ में जनसंख्या की वृद्धि के साथ श्रम की सीमान्त उत्पादकता (marginal product) तथा औसत उत्पादकता (average product) बढ़ेगी अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of increasing returns) लागू होगा। एक बिन्दु ऐसा आयेगा जबकि जनसंख्या का, अन्य उत्पत्ति के साधनों के साथ, बिलकुल ठीक (just right) या अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जायेगा; इस स्थान पर प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन (AP) अर्थात् प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी और यह अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु होगा। *इस स्थान पर उत्पत्ति समता नियम (Law of constant returns) क्रियाशील होगा।* यदि जनसंख्या में इस बिन्दु के बाद और अधिक वृद्धि होती है तो जनसंख्या का अन्य साधनों के साथ आदर्श या अनुकूलतम अनुपात टूट जायेगा और जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि के साथ श्रम का सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) गिरता जायेगा, अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of diminishing returns) लागू होने लगेगा।

उपर्युक्त विवरण से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :

(1) अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त उत्पत्ति के नियमों (Laws of returns) से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, यह परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of variable proportions) या 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of diminishing returns) पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, अनुकूलतम जनसंख्या वह जनसंख्या है जहाँ पर उत्पत्ति की वृद्धि (increasing returns) समाप्त होती है तथा उत्पत्ति का ह्रास (decreasing returns) क्रियाशील होना प्रारम्भ होता है। इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस बिन्दु से औसत उत्पादन (AP) गिरना प्रारम्भ होता है, उस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम होगी और जनसंख्या का यह स्तर अनुकूलतम होगा।
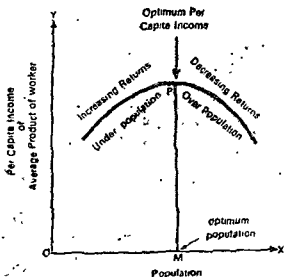
चित्र 2

(2) अनुकूलतम जनसख्या से कम जनसंख्या को (अर्थात् जब

उत्पादन अधिकतम होगा।" Hicks defines "the optimum population as that level of population which would make output per head a maximum."

—Hicks, *The Social Framework*, p. 271.

तक उत्पत्ति वृद्धि नियम क्रियाशील है) न्यून जनसंख्या (under-population) कहते हैं; तथा अनुकूलतम से अधिक जनसंख्या (अर्थात् जब उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है) को अति-जनसख्या (over-population) कहते हैं।

अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त की उपर्युक्त व्याख्या को हम चित्र 2 द्वारा स्पष्ट करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि OM अनुकूलतम जनसख्या है, अनुकूलतम बिन्दु से पहले उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है और 'न्यून-जनसख्या' रहती है; अनुकूलतम बिन्दु के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और 'अति-जनसख्या' होती है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि अनुकूलतम जनसंख्या OM वह जनसंख्या है जहां पर 'उत्पत्ति की वृद्धि' समाप्त होती है और 'उत्पत्ति का ह्रास' प्रारम्भ होता है।

'समायोजन-अभाव' की मात्रा (Degree of 'Maladjustment') को मापने का प्रो. डाल्टन का सूत्र

यदि हम किसी देश के लिए अनुकूलतम जनसंख्या ज्ञात कर लें तो 'समायोजन-अभाव की मात्रा' (Degree of maladjustment) को ज्ञात किया जा सकता है। समायोजन-अभाव का अर्थ है कि वास्तविक जनसख्या अनुकूलतम जनसख्या से कितनी कम या अधिक है अर्थात् किस सीमा तक 'न्यून-जनसख्या' या 'अति-जनसख्या' है। इस 'समायोजन-अभाव' को मापने के लिए प्रो. डाल्टन ने निम्न सूत्र दिया है.

$M = \frac{A-O}{O}$ जबकि, M = समायोजन-अभाव की मात्रा (Maladjustment), A = वास्तविक जनसख्या (Actual population), O = अनुकूलतम जनसंख्या (Optimum population)

यदि M धनात्मक (positive) है तो यह अति-जनसख्या को बताता है; यदि M ऋणात्मक (negative) है तो यह न्यून जनसंख्या का द्योतक है, जब M शून्य (zero) होता है तो वास्तविक जनसख्या और अनुकूलतम जनसख्या बराबर होगी।

अनुकूलतम जनसंख्या के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें (Some important points regarding the Optimum Population)

(1) **अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु स्थिर (fixed) नहीं होता**—यह बिन्दु विज्ञान की उन्नति, नये प्राकृतिक साधनो की खोज तथा उत्पादन कला की नयी रीतियों के अनुसन्धान आदि के साथ बदलता रहता है। अनुकूलतम जनसख्या के परिवर्तनशील स्वभाव (dynamic nature) को चित्र 3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। किसी देश के लिए विज्ञान तथा उत्पादन कला के दिये हुए ज्ञान की स्थिति मे अनुकूलतम जनसख्या OM है। विज्ञान तथा उत्पादन कला में उन्नति हो जाने के परिणामस्वरूप 'प्रति व्यक्ति आय रेखा' या 'औसत उत्पादन रेखा' (AP_1) ऊपर को खिसक जाती है और अब उसकी नयी स्थिति (AP_2) हो जाती है। परिवर्तित स्थिति मे अनुकूलतम
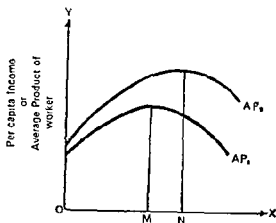
चित्र 3

जनसंख्या ON हो जाती है। OM जनसंख्या जो कि पहले अनुकूलतम थी अब न्यून जनसख्या हो जाती है।

(2) **बोल्डिग, बाई (Bye) इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या एक परिमाणात्मक (quantitative) ही नहीं बल्कि गुणात्मक (qualitative) विचार भी है,** अर्थात् इसके अन्तर्गत मनुष्य के चरित्र, स्वास्थ्य, इत्यादि पर भी ध्यान दिया जाता है। परन्तु इन गुणात्मक बातो को शामिल करने से, किसी समय पर एक देश के लिए सही रूप से अनुकूलतम जनसख्या को मालूम करना अत्यन्त कठिन या असम्भव हो जाता है।

(3) अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त एक 'वस्तुगत आधार' (objective basis) प्रदान करता है जिसके आधार पर जनसख्या अनुकूलतम से अधिक है तभी उसकी वृद्धि को रोकना चाहिए अन्यथा नही।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Optimum Theory of Population)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्न है :

(1) **सही अर्थ में यह सिद्धान्त जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं है**—यह सिद्धान्त तो केवल अर्थशास्त्र के विख्यात विचार 'अनुकूलतम' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र मे करता है। यह जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित नियमां के बारे मे कुछ नही कहता है। इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि सही अर्थ मे यह जनसख्या का सिद्धान्त नही है।

(2) **यह स्थैतिक (Static) विचार है**—*यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि किसी समय* विशेष पर, अनुकूलतम जनसंख्या मालूम करने के लिए, प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान इत्यादि अर्थात् वातावरण (environment) स्थिर समझ लिया जाता है। परन्तु ये दोनो मान्यताएं त्रुटिपूर्ण हैं; वास्तविक संसार गत्यात्मक (dynamic) है, वातावरण तथा परिस्थितियां निरन्तर परिवर्तित होती रहती है; इनको स्थिर मानने का अर्थ है कि यह सिद्धान्त स्थैतिक है।

परन्तु यह सिद्धान्त यह मानता है कि समय के साथ मनुष्य के स्वभाव, वातावरण तथा परिस्थितियो मे परिवर्तन होता है और इसलिए अनुकूलतम बिन्दु मे परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त को प्रावैगिक (dynamic) विचार बताते है।

(3) **यह राष्ट्रीय आय के वितरण पर ध्यान नहीं देता**—प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना ही पर्याप्त नही है। यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि का उचित वितरण न हो और वह थोडे से लोगो के हाथो मे ही केन्द्रित हो जाय, ऐसा होना समाज के लिए हानिकर होगा।

परन्तु यह आलोचना महत्त्वपूर्ण नही रह जाती क्योंकि कुछ अर्थशास्त्री, जैसे प्रो. बाई (Bye), अनुकूलतम जनसख्या के विचार के अन्तर्गत धन के उचित और न्यायसगत वितरण को सम्मिलित करते हैं। परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि ऐसा करने से अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करना अधिक कठिन हो जाता है।

(4) **यह सिद्धान्त जनसंख्या पर केवल आर्थिक दृष्टि से ही विचार करता है**—किसी देश के लिए अनुकूलतम जनसख्या के आकार को मालूम करने के लिए केवल आर्थिक परिस्थितियो को ही ध्यान मे नहीं रखना चाहिए, वरन् देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा सैनिक परिस्थितियो को भी दृष्टि मे रखना चाहिए। जनसख्या का एक आकार आर्थिक दृष्टि से अनुकूलतम हो सकता है, परन्तु देश की सैनिक तथा प्रतिरक्षा (Defence) की दृष्टि से वह अपर्याप्त हो सकता है।

(5) **यह सिद्धान्त सामाजिक उद्देश्यो (social goals) के प्रति संकीर्ण (narrow) दृष्टिकोण रखता है**—केवल प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना ही पर्याप्त नही है। किसी देश की प्रगति के लिए स्वस्थ, शिक्षित, बुद्धिमान (intelligent) तथा उचित नैतिक स्तर की जनसख्या का होना भी अति आवश्यक है। अत यह कहा जाता है कि इस सिद्धान्त का दृष्टिकोण संकुचित है।

इस आलोचना का महत्त्व कम रह जाता है क्योंकि कुछ अर्थशास्त्री, जैसे बोल्डिंग, बाई इत्यादि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अधिकतम प्रति व्यक्ति आय के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य सब बातों का समावेश करते है; परन्तु इन सब गुणात्मक बातो को सम्मिलित करने से जनसंख्या के अनुकूलतम आकार का ठीक-ठीक ज्ञात करना और भी कठिन हो जाता है, वरन् लगभग असम्भव ही हो जाता है।

(6) इस सिद्धान्त का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है—परिस्थितियो में परिवर्तन के साथ अनुकूलतम का बिन्दु निरन्तर बदलता रहता है, इसलिए इसको ठीक-ठीक मापना बहुत कठिन है; गुणात्मक बातो को सम्मिलित करने से इसे सही रूप से मालूम करने की कठिनाई और भी अधिक बढ जाती है। चूंकि अनुकूलतम जनसख्या को ठीक प्रकार से मालूम करना असम्भव है, इसलिए इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नही रह जाता तथा यह आर्थिक नीति (economic policy) के मार्ग-प्रदर्शन की दृष्टि से बेकार हो जाता है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion regarding Optimum Theory of Population)

अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त का महत्त्व इस बात मे निहित है कि इसने 'माल्थूसियन भूत' (Malthusian Devil) के डर को कम करके जनसख्या को सही रूप मे समझाने का दृष्टिकोण दिया। इस सिद्धान्त ने स्पष्टतया बताया कि जनसख्या की प्रत्येक वृद्धि से डरने की आवश्यकता नही है; यदि जनसख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो उसका बढ़ना हितकर है। इस सिद्धान्त की सबसे बडी कठिनाई यह है कि किसी समय पर अनुकूलतम जनसख्या को निश्चित रूप से ज्ञात करना बहुत कठिन या लगभग असम्भव है। इसलिए प्रो. हिक्स (Hicks) के शब्दो मे, "यह बहुत ही कम व्यावहारिक महत्त्व का विचार है।"[11]

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की माल्थस के सिद्धान्त से तुलना
(COMPARISON OF OPTIMUM THEORY OF POPULATION WITH MALTHUSIAN THEORY)

जनसख्या के दोनो सिद्धान्तो मे बहुत अन्तर है। प्रश्न उठता है कि क्या अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त के ऊपर सुधार हैं? निम्न आधारों पर अनुकूलतम सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ कहा जा सकता है:

(1) माल्थस ने जनसख्या की तुलना केवल देश मे उत्पादित खाद्यान्नो से की। उनके अनुसार, जनसख्या का खाद्य-सामग्री से अधिक हो जाने पर देश विशेष को बहुत संकट का सामना करना पड़ेगा।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त जनसख्या की तुलना, खाद्य पूर्ति से न करके, देश के कुल उत्पादन से करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसख्या के खाद्य पूर्ति से अधिक हो जाने पर कोई चिन्ता या संकट की बात नही होगी यदि देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नतशील है, क्योंकि यह औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात करके अन्य देशो से खाद्य सामग्री मगा सकेगा।

(2) माल्थस के अनुसार, जनसख्या की प्रत्येक वृद्धि हानिकारक है। उनके अनुसार, जनसख्या सदैव खाद्यान्नो की अपेक्षा तीव्र गति मे बढती है। वे जनसख्या को केवल आकार या सख्या (size or number) की समस्या समझते थे।

अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त के अनुसार यदि जनसख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढती है, तो जनसख्या की वृद्धि लाभदायक होगी। जनसख्या की वृद्धि तभी हानिकारक होगी जबकि वह अनुकूलतम बिन्दु से अधिक हो जाती है अर्थात् जब प्रति व्यक्ति आय गिरने लगती

[11] It is "a notion of extremely little practical interest."

है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या की समस्या केवल आकार या संख्या की समस्या नही है वरन् कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है।

(3) माल्थस का सिद्धान्त वास्तव में जनसंख्या का सिद्धान्त है क्योंकि यह जनसंख्या के विकास (growth) से सम्बन्धित नियमों तथा उसका समाज पर प्रभाव का अध्ययन करता है।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त सही अर्थ में जनसंख्या का सिद्धान्त नही है क्योंकि यह तो केवल 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र मे करता है; यह तो केवल जनसख्या तथा उत्पादक साधनो (productive resources) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है परन्तु अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त की श्रेष्ठता इस बात मे निहित है कि वह जनसंख्या मे वृद्धि या कमी को ठीक व सन्तुलित दृष्टि से समझने मे सहायक है।

(4) माल्थस का सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम तथा प्राकृतिक साधनो (भूमि) की सीमितता पर आधारित है। इस अर्थ मे माल्थस का सिद्धान्त स्थैतिक (static) है क्योंकि किसी एक निश्चित समय पर साधनो की मात्रा स्थिर हो सकती है, परन्तु सदैव के लिए नही। यद्यपि भूमि के कुल क्षेत्रफल को नही बढाया जा सकता है परन्तु गहरी खेती तथा वैज्ञानिक रीतियो का प्रयोग करके भूमि की उपज बहुत अधिक बढायी जा सकती है अर्थात् 'भूमि की प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply of land) को बढाया जा सकता है। एक दूसरी दृष्टि से माल्थस का सिद्धान्त प्रावैगिक (dynamic) बताया जाता है। माल्थस का सिद्धान्त एक समयावधि के भीतर (over a period of time) जनसंख्या के विकास की प्रक्रिया (course) का अध्ययन करता है। अतः इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री इसे प्रावैगिक सिद्धान्त कहते हैं।

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त किसी समय विशेष पर जनसख्या के अनुकूलतम आकार को मालूम करने के लिए वातावरण (environment) तथा परिस्थितियों को स्थिर मान लेता है, जबकि वास्तविक जीवन मे यह स्थिर नही रहते। इस दृष्टि से अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त भी स्थैतिक है। परन्तु यह सिद्धान्त यह मानता है कि समय के साथ मनुष्य के स्वभाव, वातावरण तथा परिस्थितियो मे परिवर्तन होता है और अनुकूलतम बिन्दु मे परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त को प्रावैगिक सिद्धान्त बताते है।

(5) माल्थस का सिद्धान्त जनसंख्या को केवल परिमाणात्मक (quantitative) दृष्टि से ही देखता है। यह जनसंख्या के गुणात्मक (qualitative) पक्ष अर्थात् जनसख्या के स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर, ईमानदारी, इत्यादि गुणो के सम्बन्ध मे कुछ नही कहता है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ अर्थशास्त्री (जैसे प्रो. बाई. बोल्डिंग इत्यादि) परिमाणात्मक पक्ष के साथ-साथ गुणात्मक पक्ष का भी समावेश करते है। इस सिद्धान्त के अनुसार जनसख्या के ऐसे आकार को मालूम करने की समस्या होती है जिस पर न केवल प्रति व्यक्ति आय ही अधिकतम हो बल्कि जनसख्या का स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर, ईमानदारी इत्यादि भी उच्चतम स्तर पर हो। परन्तु इन सब बातो को शामिल करने से अनुकूलतम जनसख्या को ठीक-ठीक मालूम करना लगभग असम्भव हो जाता है।

(6) माल्थस ने 'अति-जनसख्या' को खाद्य सामग्री के शब्दो में परिभाषित किया। यदि किसी देश मे जनसख्या खाद्यान्नो से अधिक है तो वह 'अति-जनसख्या' होगी और उस देश मे प्राकृतिक संकट, जैसे, अकाल, बीमारियां, बाढ, सूखा, इत्यादि लागू होगे। दूसरे शब्दों में, माल्थस के अनुसार, ये प्राकृतिक सकट 'अति-जनसंख्या' के सूचक है।

अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त 'अति-जनसख्या' को उत्पादकता (productivity) के शब्दो मे परिभाषित करता है। जितनी जनसख्या देश के उत्पादक साधनो के पूर्ण प्रयोग के लिए आवश्यक है, यदि जनसख्या इस संख्या से अधिक है तो यह स्थिति 'अति-जनसख्या' की होगी। इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी देश में प्राकृतिक संकटो का पाया जाना 'अति-जनसंख्या' का सूचक

नहीं है। प्राकृतिक संकटों की अनुपस्थिति मे भी 'अति-जनसंख्या' हो सकती है यदि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय गिर रही है।

(7) माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी (pessimistic) है। माल्थस के अनुसार, जनसंख्या, खाद्यान्नों की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ेगी। इसका परिणाम होगा—अति-जनसंख्या, कष्ट (misery), मृत्यु, थोड़े समय के लिए जनसंख्या तथा खाद्य-पूर्ति मे सन्तुलन होगा, तत्पश्चात् पुन: अति-जनसंख्या होगी। दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक देश को 'माल्थुसियन चक्र' (Malthusian cycle) से निकालना होगा (माल्थुसियन चक्र के लिए चित्र 1 देखिए)। इस प्रकार माल्थस ने संसार का बड़ा अन्धकारमय (gloomy) चित्र प्रस्तुत किया है।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी (optimistic) है। इसके अनुसार, जनसंख्या की वृद्धि से डरने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि वह देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण की दृष्टि से अधिक न हो। "माल्थस को आने वाले नर्क का डर था; अनुकूलतम सिद्धान्त के प्रतिपादकों को आने वाले स्वर्ग का गर्व है।"[13] अत: अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त, माल्थुसियन निराशावादी दृष्टिकोण के स्थान पर, आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त, माल्थस के सिद्धान्त के ऊपर कई दृष्टियों से सुधार है। माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी है तथा जनसंख्या की समस्या के सम्बन्ध में एक संकुचित दृष्टिकोण रखता है। अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी है और जनसंख्या के सम्बन्ध में एक सन्तुलित तथा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण रखता है। परन्तु अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करना बहुत कठिन है, इसलिए इस सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व बहुत कम रह जाता है। वास्तव मे, माल्थस तथा अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त, दोनो ही अपूर्ण तथा अपर्याप्त हैं।

न्यून-जनसंख्या तथा अति-जनसंख्या
(UNDER-POPULATION AND OVER-POPULATION)

न्यून-जनसंख्या (Under-population)—**माल्थस के अनुसार,** यदि देश में उत्पादित खाद्यान्नों की अपेक्षा जनसंख्या कम है तो इसे न्यून-जनसंख्या कहा जा सकता है। परन्तु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है। वास्तव में, माल्थस ने न्यून-जनसंख्या की स्थिति पर विचार ही नहीं किया, उन्होंने तो केवल अति-जनसंख्या की स्थिति का ही अध्ययन किया। **अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार,** यदि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण के लिए कम है तो इसे न्यून-जनसंख्या कहा जायेगा। ऐसी स्थिति मे जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ेगी वैसे-वैसे देश के उत्पादक साधनों का भलीभांति प्रयोग होगा, उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे वृद्धि होगी; जब प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो जायेगी तो जनसंख्या अनुकूलतम हो जायेगी; संक्षेप मे, **यदि जनसंख्या अनुकूलतम बिन्दु से कम है तो इसे न्यून-जनसंख्या कहेंगे।**

अति-जनसंख्या (Over-population)—**माल्थस के अनुसार,** यदि देश मे उत्पादित खाद्यान्नों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक है तो इसे अति-जनसंख्या कहेंगे। ऐसी स्थिति मे यदि मनुष्य जनसंख्या को स्वयं रोकने का प्रयत्न नहीं करता है तो प्राकृतिक प्रकोप (जैसे, अकाल, बीमारियाँ, बाढ़, सूखा इत्यादि) लागू हो जायेंगे। अत: माल्थस के अनुसार, किसी देश मे विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक प्रकोपों का पाया जाना अति जनसंख्या का चिह्न है। यद्यपि माल्थस का सिद्धान्त एक सीमा तक अविकसित तथा पिछड़े हुए देशों में लागू होता है, परन्तु यह दृष्टिकोण पूर्णतया ठीक नहीं है। **अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार,** यदि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण

[13] "Malthus was obsessed by the fear of an impending economic 'Hell', the propounders of the optimum theory are related with the hopes of a coming 'paradise'."—R. Chatterji.

शोषण की दृष्टि से अधिक है तो इसे अति-जनसख्या कहा जायेगा। ऐसी स्थिति मे उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय गिरेगी। संक्षेप मे, **यदि संख्या अनुकूलतम बिन्दु से अधिक है तो इसे अति-जनसंख्या कहेंगे।**

अति-जनसंख्या को रोकने के उपाय (Measures to check over-population)—अति-जनसख्या के कारण देश मे बचत (saving) कम होगी, परिणामस्वरूप विनियोग (investment) कम होगा और देश का आर्थिक विकास रुक जायेगा। देश के निवासियो का जीवन-स्तर बहुत नीचा हो जायेगा। इन सब परिणामो से बचने के लिए आवश्यक है कि जनसख्या को रोका जाय।

अति-जनसख्या को रोकने के उपाय बतलाते समय यह ध्यान रखने की बात है कि अति-जनसंख्या की समस्या प्राय अविकसित देशो की समस्या है। अति-जनसंख्या को रोकने के मुख्य उपाय निम्न है

(1) **कृषि उत्पादन में वृद्धि**—कृषि की आधुनिक रीतियो के प्रयोग से, भूमि-रक्षण को रोकने से, नयी भूमि जोत मे लाने से, जोत की नवीन तथा वैज्ञानिक रीतियो का प्रयोग करने से कृषि उत्पादन को पर्याप्त मात्रा मे बढाना आवश्यक है।

(2) **तीव्र औद्योगीकरण**—कोलिन क्लार्क (Colin Clark), किंग्सले डेविड (Kingsley David) इत्यादि ने जनसख्या को कम करने के लिए तीव्र गति से औद्योगीकरण पर बल दिया है। औद्योगीकरण परोक्ष रुप मे जनसख्या को कम करने मे सहायक है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप लोगो का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा, ऊँचे जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए वे कम बच्चे चाहेंगे और अपना परिवार छोटा रखेंगे।

(3) **परिवार नियोजन**—लोगो मे छोटे परिवार रखने के लाभो का प्रसार करना चाहिए, जन्म-दर को कम करने के लिए लोगो मे विभिन्न प्रकार के **कृत्रिम साधनों** के सम्बन्ध मे बड़े पैमाने पर प्रचार करना आवश्यक है ताकि वे उनका प्रयोग करें। कृत्रिम साधनो के सम्बन्ध मे यह ध्यान रखने की बात है कि वे विश्वसनीय तथा सस्ते हों। अतः निरन्तर **अनुसन्धान** (research) की आवश्यकता है ताकि एक विश्वसनीय तथा सस्ता कृत्रिम साधन ज्ञात किया जा सके।

(4) **सदैव बीमार रहने वाले तथा दिमाग खराबी वाले व्यक्तियों के विवाहों को रोकना**—ऐसा करना आवश्यक है ताकि जनसंख्या का गुणात्मक (qualitative) दृष्टि से स्तर ऊँचा हो अर्थात् जनसंख्या का स्वस्थ तथा बुद्धिमान होना आवश्यक है।

(5) **शिक्षा तथा सामाजिक सुधार**—अधिक स्कूल तथा कॉलिज खोलकर शिक्षा का प्रसार किया जाय ताकि अधिकाधिक व्यक्ति साक्षर एव शिक्षित होकर परिवार नियोजन के महत्त्व को समझ सकें। अविकसित देशो मे प्राय विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ (जैसे छोटी उम्र में शादी करना, जातिवाद, इत्यादि) पायी जाती है जो जनसख्या वृद्धि मे सहायक होती है। शिक्षा द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जा सकेगा।

(6) **जनसंख्या से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करना**—किसी देश की उचित जनसंख्या नीति बनाने के लिए आवश्यक है कि वह जनसख्या के सम्बन्ध मे पर्याप्त मात्रा मे तथा विश्वसनीय आँकडे एकत्रित करें। इस सम्बन्ध मे एक दक्ष-जन-गणना विभाग होना चाहिए। जन-गणना विभाग का स्थायी होना अधिक अच्छा है ताकि अनुभव प्राप्त कार्यकर्ता उसमे बने रहें।

(7) **आर्थिक विकास**—वास्तव मे, जनसख्या की समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। इसलिए सरकार को देश के चहुँमुखी आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित प्रयत्न करने चाहिए। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप रोजगार बढेगा, लोगो की आय बढेगी तथा उनका जीवन स्तर ऊँचा होगा।

निष्कर्ष—अति-जनसंख्या की समस्या को केवल संख्या की समस्या नहीं समझना चाहिए, यह सामाजिक सुधार, कानूनी परिवर्तन, शिक्षा प्रसार तथा आर्थिक उन्नति की समस्या है।

क्या बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव अवांछनीय है ?
(IS INCREASING POPULATION ALWAYS UNDESIRABLE ?)

माल्थस समझते थे कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि अथवा बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव हानिकारक है। यह दृष्टिकोण उचित नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव अवांछनीय हो। वास्तव में, अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त इस बात पर उचित प्रकाश डालता है। यदि देश की जनसंख्या अनुकूलतम से कम है तो जनसंख्या का बढ़ना देश के लिए हितकर है। जनसंख्या का अनुकूलतम से कम होने का अर्थ है कि वह देश के उत्पादन साधनों के पूर्ण शोषण के लिए कम है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादक साधनों का भलीभाँति प्रयोग होगा, उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा, विशिष्टीकरण सम्भव होगा, बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होगी तथा लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होगा। दूसरे शब्दों में, यदि देश में न्यून-जनसंख्या है तो जनसंख्या में वृद्धि होना लाभदायक है।

इसके अतिरिक्त यह ध्यान रखने की बात है कि जिन उन्नतशील देशों में आर्थिक उन्नति का स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है, उनमे अति-जनसख्या का डर बहुत दूर (remote) हो जाता है। अतः ऐसे देशों मे एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि देश के बाजार (home market) को विस्तृत करती है, विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है, बेरोजगारी समाप्त होती है तथा रोजगार का एक ऊँचा स्तर बनाये रखने में सुविधा होती है।

• स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि सदैव अवांछनीय नहीं होती; जनसंख्या की वृद्धि हानिकारक तभी होती है जबकि वह अनुकूलतम बिन्दु से अधिक हो।

जनांकिकीय (या जनसंख्या) संक्रमण सिद्धान्त
(THEORY OF DEMOGRAPHIC TRANSITION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियो, जैसे थोमसन, नोटेस्टीन, ब्लेकर (W. S. Thomson, F.W. Notestein, C.P. Blacker) इत्यादि ने 'जनसख्या सक्रमण सिद्धान्त' या 'जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त' (Theory of Demographic Transition) को प्रतिपादित (formulate) किया।

यह सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश डालता है कि दीर्घकाल मे जनसंख्या का विकास किस प्रकार होता है। यह सिद्धान्त आर्थिक विकास तथा जनसख्या विकास मे सम्बन्ध स्थापित करता है और औद्योगिक व उन्नत देशो (industrialised and advanced countries) के वास्तविक अनुभव पर आधारित है। आर्थिक विकास के साथ जनसख्या विकास मे परिवर्तन होते है तथा आर्थिक विकास की ऊँची अवस्थाओं मे जनसख्या विकास मे कमी हो जाती है और अन्त में स्थायित्व (stability) आ जाती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, आर्थिक विकास के प्रभाव के अन्तर्गत, जनसख्या विकास कई अवस्थाओं (stages) से गुजरता है। कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार जनसख्या विकास तीन अवस्थाओं (*three stages*), कुछ के अनुसार चार अवस्थाओं (*four stages*), तथा कुछ के अनुसार पाँच अवस्थाओं (*five stages*) से गुजरता है। वास्तव मे जनसंख्या विकास की अवस्थाओ मे अन्तर कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है क्योंकि सिद्धान्त का आधारभूत दृष्टिकोण (basic approach) एक ही है।

2. जनसंख्या विस्फोट का विचार (The Concept of Population Explosion)

'जनसंख्या विस्फोट' का विचार जनसख्या सक्रमण सिद्धान्त (theory of demographic

transition) से सम्बन्धित है। साधारण बोलचाल की भाषा मे या एक सामान्य व्यक्ति के लिए 'जनसख्या विस्फोट' का अर्थ है जनसंख्या विकास मे बहुत तीव्र गति से वृद्धि; सामान्य दृष्टि से यह अर्थ गलत नही है।

> वास्तव में जनसंख्या विस्फोट केवल एक 'सामान्य विचार' या एक 'फैशनेबिल शब्द' नहीं है, बल्कि आर्थिक साहित्य में इसका एक विशिष्ट अर्थ है। यह विचार जनसंख्या विकास की दूसरी अवस्था को बताता है; दूसरे शब्दों में, उस अवस्था को बताता है जिसमें कि जन्म दर लगभग स्थिर रहती है परन्तु मृत्यु दर में तीव्र कमी हो जाती है और इस प्रकार जन्म दर और मृत्यु दर में बहुत अधिक अन्तर हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या विस्फोटक तरीके से बढ़ती है। इस प्रकार अर्थशास्त्र में 'जनसंख्या विस्फोट' का एक विशिष्ट या टेकनीकल अर्थ होता है।[14]

अब हम, सक्षेप में, जनसख्या विकास की चारो अवस्थाओ को बताते है जिससे 'जनसख्या विस्फोट' का अर्थ और अधिक स्पष्ट हो जायेगा—

1. पहली अवस्था मे जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनो ही ऊँची होती है और दोनो मे अन्तर बहुत थोडा होता है, इसलिए जनसख्या मे वृद्धि बहुत धीमी या ना के बराबर होती है। ध्यान रहे कि यहाँ पर जनसंख्या मे स्थायित्व (stability) आर्थिक विकास के निम्नतर स्तर पर होता है, अथवा यह कहिए कि इस अवस्था मे आर्थिक विकास ना के बराबर होता है।

2. **दूसरी अवस्था** मे मृत्यु दर में तीव्र कमी हो जाती है, परन्तु जन्म दर ऊंची बनी रहती है और उसमें लगभग कोई कमी नही होती है; जन्म दर तथा मृत्यु दर मे अन्तर बहुत अधिक हो जाता है, परिणामस्वरूप जनसख्या मे विस्फोटक विस्तार (*explosive expansion in population*) होता है। अत जनसंख्या विकास की दूसरी अवस्था को 'जनसंख्या विस्फोट' (*population explosion*) कहा जाता है।

3. **तीसरी अवस्था** मे जन्म दर में भी बहुत कमी हो जाती है (और मृत्यु दर काफी नीची बनी रहती है जो कि पहले से ही गिर चुकी थी), अतः जनसंख्या विकास धीमा हो जाता है।

4. **चौथी अवस्था** मे मृत्यु दर तथा जन्म दर दोनो मे थोडी और कमी आ सकती है, ये दोनो दरें बहुत नीचे स्तर पर बनी रहती हैं, उनमे स्थायित्व आ जाता है। परिणामस्वरूप जनसंख्या विकास अत्यत धीमा हो जाता है और उसमे भी स्थायित्व आ जाता है अथवा जनसख्या मे ना के बराबर विकास होता है।[15]

---

[14] As a matter of fact the concept of 'population explosion' is not a general concept or a 'fashionable word', but it has a specific or particular meaning in economic literature. It indicates the second stage of population growth; in other words, it indicates that stage of population growth in which birth rate remains almost stationary but a sharp decline in death rate occurs and, thus, the gap between birth rate and death rate becomes very large and, consequently, population expands explosively. Thus, 'population explosion' has a particular or technical meaning.

[15] The stage of stable population growth may be disturbed and population may again start rising rapidly as a result of some new developments, such as change in ideas or values, or the need of building up large reserves of army

But, as pointed out by Kingsley Davis, we should also not forget that in the modern world of today "national strength does not rest soley on population size, particularly as science and economic efficiency take precedence over sheer manpower. However, when other things are equal, sheer numbers count heavily."

3. जनसंख्या विकास की अवस्थाओं की व्याख्या (Exposition of the stages of population growth)

जनसंख्या विस्फोट के विचार को समझने की दृष्टि से हम जनसंख्या विकास की चारों अवस्थाओं का बहुत संक्षिप्त विवरण दे चुके हैं। अब हम 'जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त' (Theory of Demographic Transition) को अच्छी प्रकार से समझने के लिए जनसंख्या विकास की चारों अवस्थाओं का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम अवस्था (*First Stage*) : इस अवस्था मे जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनों ऊँची होती हैं, उनमें स्थायित्व (stability) होती है और वे एक दूसरे के बहुत निकट होती हैं; परिणामस्वरूप दोनों में अन्तर (gap) बहुत कम होता है और इसलिए जनसंख्या विकास बहुत धीमा होता है अथवा यह स्थिर (stable or static) रहती है। यह अवस्था एक कृषि-सम्बन्धी व पिछड़ी हुई अर्थ-व्यवस्था (agrarian and backward economy) मे कार्यशील होती है; ऐसी अर्थव्यवस्था मे औद्योगिक तथा व्यावसायिक क्रियाएं बहुत कम होती है; अल्पविकास की मात्रा (degree of under-development) बहुत ऊँची होती है; तथा अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय उत्पादन व उपभोग के एक बहुत नीचे स्तर पर कार्य करती हैं और व्यक्तियो का जीवन स्तर बहुत नीचा होता है।

ऊँची जन्म दर या प्रजनन दर (fertility rate) के ऊँचे होने के कारण सामाजिक तथा आर्थिक दोनों होते हैं। **मुख्य कारण निम्नलिखित हैं**—(i) कम आयु में शादियाँ, निरक्षरता (illiteracy) का होना, ऐसे सामाजिक विश्वासों व परम्पराओं तथा धार्मिक दृष्टिकोणों का होना जिससे ऊँची जन्म दर प्रोत्साहित होती है। (ii) बड़े आकार के परिवार के आर्थिक लाभ होते हैं; बच्चे छोटी उम्र से ही कार्य करना शुरू कर देते हैं, वे कृषि कार्यों में तथा परम्परागत पारिवारिक व्यवसायों (traditional family occupations) में मदद करते हैं; सामान्यतया बच्चों की शिक्षा पर बहुत ही कम व्यय होता है या कुछ भी व्यय नही होता, तथा रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा होता है। बच्चे एक दायित्व (liability) नही समझे जाते बल्कि वे एक निश्चित सम्पत्ति (positive asset) समझे जाते हैं क्योंकि वे परिवार की आय में वृद्धि करते हैं; इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था में ये अपने माता-पिता के लिए सामाजिक बीमा (social insurance) की भाँति समझे जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक व आर्थिक तत्व ऊँची जन्म दर या प्रजनन दर को प्रोत्साहित करते हैं और उसे बनाये रखते हैं।

ऊँची मृत्यु दर के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—कम मात्रा में तथा निम्न कोटि की खुराक का मिलना, खराब सफाई की दशाओं का होना, बीमारियों को रोकने व उनका उपचार करने के लिए चिकित्सा-सुविधाओं की अनुपस्थिति; ये सब बातें ऊँची मृत्यु दर को प्रोत्साहित करती हैं और उसे बनाये रखती हैं। बीमारियों के प्रचलन (prevalence) तथा खाद्यानों की प्राप्ति के आधार पर प्रति वर्ष मृत्यु दर मे थोड़ी कमी या वृद्धि हो सकती है।

[सन् 1921 से पहले भारत की जनसंख्या विकास की पहली अवस्था में रखा जा सकता है।]

दूसरी अवस्था (*Second Stage*) : **इस अवस्था में मृत्यु दर** (death rate or mortality rate) **में तीव्र कमी हो जाती है जबकि जन्म दर (या प्रजनन दर) ऊँची बनी रहती है;** इस प्रकार दोनो दरो में एक बड़ा अन्तर हो जाता है और जनसंख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ती है; अर्थात् जनसंख्या 'विस्फोटक तरीके से' (explosively) बढ़ती है और यह अवस्था 'जनसंख्या विस्फोट' की अवस्था कही जाती है।

दूसरी अवस्था मे देश में आर्थिक विकास को प्रक्रिया (process) शुरू हो जाती है और जनसंख्या की सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं में सामान्य सुधार (general improvement)

हो जाता है। दूसरे शब्दों में, **मृत्यु दर में तीव्र कमी निम्न कारणों से होती है**—(i) खाद्यानों की पूर्ति अधिक व नियमित हो जाती है; यह कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि तथा यातायात व संवादवहन के साधनों मे विकास का परिणाम होता है। (ii) बीमारियों तथा महामारियों (epidemics) पर अच्छा नियंत्रण हो जाता है क्योंकि महत्त्वपूर्ण व जीवन-रक्षक दवाइयाँ (जैसे antibiotics, germecides, vaccines, etc.) प्राप्य होने लगती हैं। (iii) कृषि और आर्थिक विकास के कारण व्यक्तियों की आय बढ़ जाती है और उनका रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है, मकानों और पहनने के कपड़ों की अच्छी व्यवस्था हो जाती है, नगरों के विकास और नागरीकरण (urbanisation) के कारण सरकार को अधिक अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं व उपायों का प्रबन्ध करना पड़ता है, सफाई (sanitation) की दशाओं में काफी सुधार हो जाता है।

उपर्युक्त सभी बातें मृत्यु दर पर संचयी प्रभाव (cumulative effect) डालती हैं और मृत्यु दर में तीव्र कमी हो जाती है।

मृत्यु दर को प्रभावित करने वाले उपर्युक्त कारण स्वभाव मे 'बाह्यजात' (*Exogenous* or outside the system) होते हैं जो कि लोगो द्वारा आसानी से स्वीकार कर लिए जाते है। दूसरे शब्दो मे,

> **आधुनीकरण तथा आर्थिक विकास के प्रति मृत्यु दर की प्रतिक्रिया सुगम, शीघ्र तथा अवश्यम्भावी होती है क्योंकि मृत्यु दर में कमी का होना एक सार्वभौमिक स्वीकृत उद्देश्य है और इसके प्रति कोई सामाजिक बाधाएं नहीं होतीं।**[16]

दूसरी ओर, इस अवस्था में, जन्म दर ऊँची (व लगभग स्थिर) बनी रहती है—

> **आधुनीकरण तथा आर्थिक विकास के प्रति जन्म दर या प्रजनन दर की प्रतिक्रिया बहुत धीमी होती है क्योंकि प्रजनन दर गहरे व जमे हुए सामाजिक विश्वासों और परम्पराओं, संस्थाओं, तथा दृष्टिकोणों से नियन्त्रित होती हैं।**[17]

नोटेस्टीन (Notestein) के शब्दों मे,

> **प्रजनन दर में कमी के लिए सामाजिक लक्ष्यों में परिवर्तन की आवश्यकता होती है—उन सामाजिक लक्ष्यों को जो कि समूह के जीवित रहने के प्रति निर्देशित (directed) होते हैं बदलना होगा उन लक्ष्यों में जो कि व्यक्ति के कल्याण और विकास के प्रति निर्देशित होते हैं। यह परिवर्तन, अर्थात् सामाजिक लक्ष्यों तथा उनको प्राप्त करने के लिए सामाजिक यन्त्र (equipment) दोनों में परिवर्तन, एक धीमी प्रक्रिया है।**[18]

वास्तव में, मृत्यु दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व 'बाह्यजात' (*exogenous* or outside the system) होते हैं और मृत्यु दर में सुगमता से कमी कर देते हैं; जबकि जन्म दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व 'अन्तरजात' (*endogenous* or within the system) होते हैं तथा वे जन्म दर को धीमी गति से कम कर पाते हैं।

---

16 The response of death rate or mortality to the forces of modernisation and economic development is easy, quick and inevitable because the reduction of mortality is a universally acceptable goal and faces no social obstacles.

17 The response of birth rate or fertility to the forces of modernisation and economic development is very slow because birth rate or fertility is governed by deep rooted and established social beliefs and customs, institutions, and attitues.

18 "The reduction of fertility requires a shift in social goals from those directed towards the survival of the group to those directed toward the welfare and development of the individual This change, both of goals and the social equipment by which they are achieved, is at best a slow process."

उपर्युक्त बात का परिणाम यह होता है कि इस अवस्था (stage) में,

जन्म दर या प्रजनन दर में कमी में 'समय-विलम्ब' या 'विलम्ब' (*time lag* or *lag*) होता है अपेक्षाकृत मृत्यु दर में कमी के; यह 'विलम्ब' जनसंख्या में तीव्र वृद्धि को अर्थात् 'जनसंख्या विस्फोट' को उत्पन्न करता है।[19]

तीसरी अवस्था (*Third Stage*) : इस अवस्था में जन्म दर में तीव्र कमी होती है जबकि पहले से घटी हुई मृत्यु दर एक नीचे स्तर पर बनी रहती है। इस प्रकार जन्म दर तथा मृत्युदर में अन्तर कम हो जाता है और **जनसंख्या विकास धीमा हो जाता है।**

जब आर्थिक विकास की एक ऊँची अवस्था पहुँच जाती है तो जन्म दर में कमी हो जाती है, लोग परिवार के छोटे आकार को पसन्द करने लगते हैं। **मुख्य सामाजिक व आर्थिक कारण जो कि जन्म दर में तीव्र कमी करते हैं; निम्नलिखित हैं—(i)** अधिक आर्थिक विकास तथा औद्योगीकरण के साथ जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों या नगरों की ओर जाने लगती है [अर्थात् नागरीकरण (urbanisation) की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है]; सामाजिक गतिशीलता (social mobility) बढ़ती है और इसलिए लोग परिवार को छोटा रखना पसन्द करते हैं। (ii) अपने तथा अपने बच्चों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने की इच्छा; (iii) शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार; सामाजिक विश्वासों, रीति-रिवाजों व परम्पराओं के बुरे प्रभावों को शिक्षा कम करती है, धार्मिक दृष्टिकोणों में कड़ाई कम हो जाती है। इस प्रकार बड़े पैमाने पर शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया (process) में मदद करती है और लोग यह अनुभव करते हैं कि कम बच्चों का होना व उनका भरण-पोषण (maintenance) एक ऊँचे जीवन स्तर पर बनाये रखना अधिक अच्छा है। (iv) समाज में औरतों के स्तर तथा उनकी भूमिका (status and role) में परिवर्तन; औरतों की शिक्षा में विस्तार के साथ औरतों को समाज में एक ऊँचा स्तर या स्थान प्राप्त होता है, अधिक संख्या में औरतें विभिन्न प्रकार के रोजगारों (jobs) में कार्य करने लगती हैं, परिणामस्वरूप वे कम बच्चों को चाहती हैं, इस सम्बन्ध में गर्भ-निरोध के कृत्रिम साधनों (contraceptives) से बहुत सहायता मिलती है। ये परिवर्तन पहले ऊँचे आय वर्गों और शहरों में होते हैं तथा इसके बाद नीचे आय-वर्गों व गाँवों में भी होने लगते हैं। (v) जीवन-स्तर के ऊँचे उठ जाने के कारण बच्चों के पालन-पोषण के खर्चे बहुत बढ़ जाते हैं, ऐसी स्थिति में परिवार का बड़ा आकार एक सम्पत्ति (asset) के रूप में नहीं समझा जाता बल्कि वह एक बोझ या देयता (liability) हो जाता है। (vi) वृद्धा अवस्था में माँ-बाप की बच्चों पर निर्भरता कम हो जाती है क्योंकि, आर्थिक विकास के एक ऊँचे स्तर के साथ, सरकार सामाजिक सुरक्षा (social security) की व्यवस्था करती है, निःशुल्क या सस्ती चिकित्सा की सुविधाओं को बढ़ाती है, वृद्धा अवस्था में पेन्शन की व्यवस्था के क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। अतः व्यक्तियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन होता है और वे छोटे आकार के परिवार पसन्द करते हैं।

उपर्युक्त सभी कारणों का जन्म दर पर संचयी प्रभाव (cumulative effect) पड़ता है और जन्म दर में तीव्र कमी हो जाती है; दूसरे शब्दों में; आर्थिक विकास की ऊँची अवस्थाओं और आधुनीकरण के साथ, प्रो. रोसटोव के वाक्यांश में (in the phrase of Prof. Rostow), 'बच्चों को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति' ('the propensity to have children') में तीव्र कमी हो जाती है।

मृत्यु दर, जिसमें कि दूसरी अवस्था में कमी हो चुकी होती है, **में कुछ और कमी हो जाती है** क्योंकि मकानों की सुविधाओं, सफाई, चिकित्सा सुविधाओं, बीमारियों व महामारियों पर नियंत्रण, इत्यादि में और अधिक सुधार हो जाते हैं।

---

[19] There remains a time-lag (or lag) in the reduction of fertility in comparison to the reduction in mortality; this 'lag' causes a rapid rise in population or "population explosion."

इस प्रकार, तीसरी अवस्था में नीची जन्म दर तथा मृत्यु दर होती है और दोनों के बीच अन्तर थोड़ा होता है; परिणामस्वरूप जनसंख्या विकास बहुत धीमा हो जाता है ।

चौथी अवस्था (*Fourth stage*) : इस अवस्था में, आर्थिक विकास की बहुत ऊंची स्थिति प्राप्त हो जाने के साथ जन्म दर में कुछ और कमी हो जाती है; जीवन स्तर का बहुत ऊंचा हो जाना, शिक्षा का और अधिक विस्तार होना, जन्म दर को नियंत्रित करने के लिए बड़े पैमाने पर कृत्रिम साधनों का प्रयोग होने लगना, इत्यादि बातें जन्म दर में और कमी ला देती हैं ।

इस अवस्था में नीची जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर दोनों लगभग स्थायी (stabilise) हो जाती हैं और इसलिए जनसंख्या विकास भी, एक बहुत नीची दर पर, स्थायी हो जाता है; अथवा जनसंख्या स्थिर हो सकती है और कुछ स्थितियों में घट भी सकती है ।

जनसंख्या विकास की उपर्युक्त चारों अवस्थाओं को चित्र 4 द्वारा दिखाया जा सकता है ।
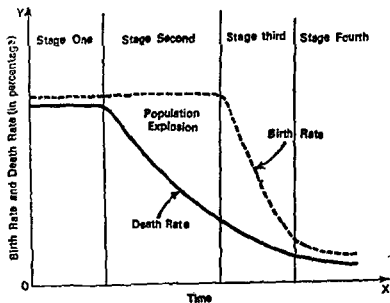
चित्र 4

चित्र 4 स्वयं व्याख्यात्मक (self explanatory) है; चित्र में जनसंख्या विकास की चारों अवस्थाएं स्पष्ट हैं तथा चित्र से यह बात भी स्पष्ट है कि जनसंख्या विकास की दूसरी अवस्था 'जनसंख्या विस्फोट' की अवस्था है ।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार जनसंख्या विकास की तीन अवस्थाएं होती हैं । अवस्था तीन तथा अवस्था चार को मिलाकर एक अवस्था की जा सकती है, और इस प्रकार से जनसंख्या विकास की तीन अवस्थाएं होंगी ।

कुछ अर्थशास्त्री, जैसे सी.पी. ब्लेकर (C.P. Blacker) जनसंख्या विकास को पाँच अवस्थाओं में बांटते हैं । अब हम, संक्षेप में, ब्लेकर के दृष्टिकोण की विवेचना करते हैं । ब्लेकर के अनुसार जनसंख्या विकास निम्नलिखित पाँच अवस्थाओं से गुजरता है—

पहली अवस्था (Stage I) : यह अवस्था 'ऊँची स्थिर' जनसंख्या अर्थात् '*High Stationary*' population को बताती है; इसको संक्षेप में हम HS कहेंगे । इस अवस्था में ऊँची मृत्यु दर (High Mortality) और ऊँची जन्म दर (High Fertility) होती है और ये बहुत निकट (close) होती हैं, और इसलिए जनसंख्या लगभग स्थायी होती है । (देखिए चित्र 5)

ऐसी स्थिति पिछड़ी हुई कृषि-अर्थव्यवस्था (primitive agrarian economy) में पायी जाती है अथवा यह अवस्था 'जीवन-निर्वाह संतुलन जनसंख्या' ('subsistence equilibrium population) को बताती है।

दूसरी अवस्था (Stage II) : यह अवस्था **'प्रारम्भिक बढ़ती हुई'** जनसंख्या अर्थात '*Early Expanding*' population को बताती है; इसको संक्षेप में हम ES कहेंगे। इस अवस्था में जन्म दर या प्रजनन दर लगभग स्थिर रहती है जबकि मृत्यु दर घटने लगती है। इस प्रकार जन्म दर तथा मृत्यु दर में अन्तर बढ़ जाता है और जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगती है।

तीसरी अवस्था (Stage III) : यह अवस्था **'समयोत्तर बढ़ती हुई'** जनसंख्या अर्थात् '*Late Expanding*' population को बताती है, इसको संक्षेप में हम LE कहेंगे। इस अवस्था में जन्म दर या प्रजनन दर में कमी शुरू हो जाती है, और जन्म दर तथा मृत्यु दर मे अन्तर काफी कम हो जाता है, परिणामस्वरूप जनसंख्या विकास धीमा हो जाता है।

चौथी अवस्था (Stage IV) : यह अवस्था **'नीची स्थिर'** जनसंख्या अर्थात् '*Low Stationary*' population को बताती है; इसको संक्षेप में हम LS कहेंगे। इस अवस्था मे जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनों गिरती जाती हैं और एक स्थान पर बराबर हो जाती हैं, इसके बाद जन्म दर और गिर जाती है तथा मृत्यु दर कुछ ऊँची रहती है जन्म दर से; (देखिए *चित्र 5*) इस अवस्था में जनसंख्या विकास लगभग स्थिर हो जाता है।

पाँचवी अवस्था (Stage V) : यह अवस्था **'घटती हुई'** जनसंख्या अर्थात् '*Diminishing*' *population* को बताती है; इसको हम संक्षेप में D कहेंगे। इस अवस्था में नीची (low) जन्म दर कम रहती है नीची (low) मृत्यु दर से; परिणामस्वरूप जनसंख्या घटती है।

जन्म दर तथा मृत्यु दर के घटने के कारणों तथा जन्म दर और मृत्यु दर के बीच समय-विलम्ब (time-lag) के बारे में हम पहले ही विवेचना कर चुके हैं।

जनसंख्या विकास की उपर्युक्त पाँचों अवस्थाओं को हम चित्र 5 द्वारा दिखा सकते हैं। चित्र स्वयं-व्याख्यात्मक (self-explanatory) है। वास्तव में प्रथम तीन अवस्थाएं महत्त्वपूर्ण
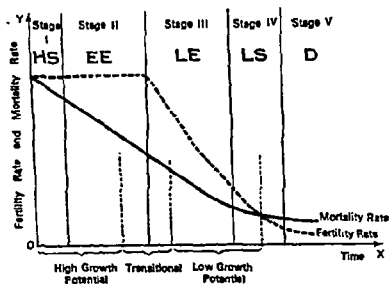
चित्र 5

हैं, जबकि आज के सन्दर्भ में अन्तिम दो अवस्थाओं का कोई अनुभवजन्य आधार (empirical basis) नहीं है।

थोमसन (W.S. Thomsan) तथा नोटेस्टीन (F.W. Notestein) के अनुसार जनसंख्या विकास की केवल तीन अवस्थाएं (*three stages*) होती हैं। प्रथम अवस्था जनसंख्या की 'ऊँची विकास शक्ति' (*High Growth Potential*) को बताती है; तीसरी अवस्था जनसंख्या की 'नीची विकास शक्ति' (*Low Growth Potential*) को बताती है, तथा दूसरी अवस्था एक 'अन्तःकालीन स्थिति' (*Transitional Stage*) को बताती है जिसमे कि जनसंख्या 'ऊँची विकास शक्ति' की प्रथम अवस्था से 'नीची विकास शक्ति' की तीसरी अवस्था मे जाने के लिए परिवर्तन की प्रक्रिया (process of change) में होती है। इन तीनों अवस्थाओं को हम चित्र 5 में बता सकते हैं। ब्लेकर (Blacker) की पहली अवस्था तथा दूसरी अवस्था का शुरू का एक बड़ा भाग मिलकर 'ऊँची विकास शक्ति' (*High Growth Potential*) को बताते हैं; दूसरी अवस्था का बाद का भाग तथा तीसरी अवस्था का शुरू का एक छोटा भाग मिलकर 'अन्तःकालीन अवस्था' (*Transitional Stage*) को बताते है; तीसरी अवस्था का शेष भाग तथा चौथी अवस्था का शुरू का आधा भाग मिलकर 'नीची विकास शक्ति' (*Low Growth Potential*) को बताते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार चित्र का शेष भाग उपयुक्त (relevant) नहीं है।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि 'जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त' या 'जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त' (Theory of Demographic Transition) के अन्तर्गत जनसंख्या विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियों में थोड़ा मतभेद है। परन्तु जनसंख्या विकास की अवस्थाओं की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद एक महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। वास्तव में 'जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त' निम्न तीन पक्षों (aspects) की विवेचना व व्याख्या प्रस्तुत करता है।

1. मृत्यु दर (death rate or mortality rate) में कमी होने की व्याख्या।
2. मृत्यु दर में कमी की तुलना में जन्म दर या प्रजनन दर में कमी के सम्बन्ध में समय विलम्ब रहता है। (There remains time-lag of fertility decline behind mortality decline)
3. जन्म दर या प्रजनन दर में कमी की व्याख्या।

4. जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Theory of Demographic Transition)

निःसन्देह जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त सरल है और यह औद्योगिक व उन्नत देशों (industrialised and developed countries) के वास्तविक अनुभव पर आधारित है; परन्तु इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक रीति-विधान सम्बन्धी आलोचना (Criticism of methodological nature) की जाती है जो कि निम्नलिखित हैं।

यह सिद्धान्त कड़े रूप (strict sense) में एक 'सिद्धान्त' (*'theory'*) नहीं है। यह केवल जनांकिकीय घटनाओं (demographic events) का एक सामान्य या मोटा विवरण (broad description) प्रस्तुत करता है—

> "इस सिद्धान्त के व्याख्यात्मक भाग (explanatory parts) मोटे ऐतिहासिक सामान्यीकरणों व अन्तंदृष्टियों (insights) को बताते हैं, उनका स्वभाव एक 'सिद्धान्त' का नहीं है जिस अर्थ में कि वास्तव में एक सिद्धान्त समझा जाता है; अर्थात व्याख्यात्मक भागों का स्वभाव प्रारम्भिक मान्यताओं तथा सम्बन्धों के

आधार पर तर्क द्वारा निकाले गये समन्वित निष्कर्षों के एक समूह के रूप में नहीं हैं।"[19]

दूसरे शब्दों में,

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त के व्याख्यात्मक भागों की कमियाँ रीतिविधान सम्बन्धी स्वभाव (methodological nature) की हैं। प्रजनन दर तथा मृत्यु दर में कमी तथा उनके बीच समय-विलम्ब (time-lag) की व्याख्याएं (explanations) गलत नहीं हैं, "परन्तु वे (अर्थात व्याख्याएं) एक एकीकृत (unified) तथा स्पष्ट तार्किक (logical) ढाँचा नहीं रखती हैं।"[21]

जनसंख्या का जैवकीय सिद्धान्त—लोजिस्टिक वक्र रेखा
(THE BIOLOGICAL THEORY OF POPULATION—THE LOGISTIC CURVE)

- प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक काल में जीवशास्त्रियों (Biologists) तथा अंकशास्त्रियों (Statisticians) ने जनसंख्या के विकास से सम्बन्धित गहन अध्ययन किये हैं। एक ऐसा अध्ययन अमरीका के प्रसिद्ध जीवशास्त्री रेमोण्ड पर्ल (Raymond Pearl) ने किया है जो 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त' (Logistic curve theory) के नाम से प्रसिद्ध है। यह लोजिस्टिक वक्र रेखा का सिद्धान्त जनसंख्या के विकास के स्वरूप (nature) पर प्रकाश डालता है। प्रो. पर्ल ने फल की मक्खियों की संख्या की वृद्धि के स्वरूप का अध्ययन किया, तत्पश्चात् इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त का कथन

प्रो. पर्ल ने बताया कि जनसंख्या सदैव तीव्र गति से नहीं बढ़ती है। यदि जनसंख्या के विकास को ग्राफ द्वारा दिखाया जाय तो अंग्रेजी के अक्षर-'एस' (S) की भांति एक वक्र रेखा प्राप्त होगी जिसे गणित में 'लोजिस्टिक वक्र रेखा' कहते हैं। इसीलिए इस सिद्धान्त का नाम 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त' पड़ा। यह रेखा बताती है कि जनसंख्या पहले बहुत धीमी गति से बढ़ती है, उसके बाद तीव्र गति से बढ़ती है और अन्त में या तो स्थिर हो जाती है या गिरने लगती है, परन्तु कम होने पर भी यह पहले से अधिक रहती है। यह क्रम चलता रहता है। कुल मिलाकर जनसंख्या की प्रवृत्ति बढ़ने की ही रहती है।

सिद्धान्त की व्याख्या

जनसंख्या के विकास के क्रम को चित्र 6 से स्पष्ट किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जनसंख्या आरम्भ में, अर्थात् A बिन्दु से धीमी गति से बढ़ती है, इसके बाद B बिन्दु से तीव्र गति से बढ़ने लगती है, तत्पश्चात् C बिन्दु से स्थिर या गिरने लगती है, परन्तु गिरने पर भी वह पहले से अधिक ही रहती है। जनसंख्या विकास के इस क्रम को निम्न विवरण से स्पष्ट किया जा सकता है: किसी देश के विकास के प्रारम्भिक चरणों में जनसंख्या की वृद्धि में बाधाएं होती हैं, जैसे खाद्यान्नों की कमी, सुरक्षा की कमी इत्यादि। इन बाधाओं के कारण देश में प्रारम्भ में जनसंख्या बहुत धीमी गति से बढ़ती है। जैसे-जैसे देश का विकास होता जाता है, ये बाधाएं दूर होती जाती हैं और जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है। परन्तु जब देश सभ्यता के

---

[19] "The explanatory parts of the 'theory' are more in the nature of broad historical generalisations and insights rather than 'in' a theory, in the usual sense of the word, that is, a system of related deductions derived from initial premises and relationship."

[21] The shortcomings of the explanatory parts of the theory of demographic transition are of a *methodological nature*. The explanations of the decline of fertility rate and mortality rate and the time-lag between the two are not incorrect, "but they do not possess a unified and distinct logical structure."
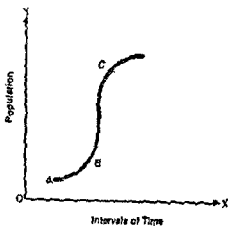
चित्र 6

उच्चतर चरण (advance stage) में पहुँच जाता है जो जनसंख्या या तो स्थिर हो जाती है अथवा गिरने लगती है; यह स्थिति अमरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय देशों में पायी जाती है।

सिद्धान्त के गुण (Merits of the Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या घटती-बढ़ती है परन्तु कुल मिलाकर इसकी प्रवृत्ति बढ़ने की होती है। इस दृष्टि से यह माल्थस के सिद्धान्त का समर्थन करती है, क्योंकि माल्थस के अनुसार भी जनसंख्या की प्रवृत्ति बढ़ने की होती है। परन्तु एक दूसरी दृष्टि से यह सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त को खण्डित (contradict) करता है जो निम्न विवरण से स्पष्ट हो जाता है। यह विवरण इस सिद्धान्त के गुणों पर भी प्रकाश डालता है।

(1) माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या सदैव तीव्र गति से बढ़ती है, परन्तु यह सिद्धान्त ऐसा नहीं कहता। इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रारम्भ में जनसंख्या धीमी गति से बढ़ती है, फिर तीव्र गति से बढ़ती है, तत्पश्चात् स्थिर हो जाती है या गिरने लगती है।

(2) माल्थस के अनुसार, जनसंख्या तथा सभ्यता के विकास में सीधा सम्बन्ध होता है, परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार, इन दोनों में उलटा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी देश के सभ्यता के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाने पर उसकी जनसंख्या कम होने लगती है जबकि माल्थस का विचार था कि सभ्यता के विकास तथा आर्थिक सम्पन्नता के साथ जनसंख्या बढ़ती है जो गलत है। इस दृष्टि से यह सिद्धान्त मानव के भविष्य के सम्बन्ध में आशावादी है। उपर्युक्त दोनों दृष्टियों से यह सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार हैं :

(1) इस सिद्धान्त में केवल जैविकीय पक्ष (*biological aspect*) की ही प्रधानता है; जबकि जनसंख्या के एक पूर्ण सिद्धान्त के लिए अन्य पक्षों, जैसे, सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(2) यह सिद्धान्त वातावरण (environment) में परिवर्तन तथा परिणामस्वरूप, मनुष्य के विचारों, स्वभाव, चरित्र इत्यादि में परिवर्तनों पर उचित ध्यान नहीं देता।

निष्कर्ष (Conclusion)

इन आलोचनाओं के होने पर भी व्यावहारिक जीवन में (विशेषतया यूरोपीय देशों में) मोटे रूप से जनसंख्या के विकास का क्रम इसी सिद्धान्त के अनुसार ही पाया जाता है। इस सिद्धान्त को बहुत मान्यता प्राप्त हुई है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर का सिद्धान्त
(THEORY OF NET REPRODUCTION RATE)

प्राक्कथन

आधुनिक काल मे जीवशास्त्रियों तथा अंकशास्त्रियों ने जनसंख्या के विकास से सम्बन्धित गहन अध्ययन किये हैं। एक ऐसा अध्ययन प्रसिद्ध अंकशास्त्री कुजिस्की (Kuczynsky) ने किया है जो 'शुद्ध पुनरुत्पादन दर का सिद्धान्त' के नाम से विख्यात है। यह सिद्धान्त जनसंख्या के मापने की रीति पर प्रकाश डालता है।

प्रो. पर्ल ने किसी देश की जनसंख्या की भविष्य की प्रवृत्ति मापने के लिए एक प्रकार के सूचनांकों (index numbers) का प्रयोग किया जो उनके नाम पर 'Pearl's Vital Index Numbers' कहे जाते है। उसके अनुसार, यदि किसी देश में एक दिये हुए समय मे जन्म दर मृत्यु दर से अधिक है तो जनसंख्या में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि जन्म दर मृत्यु दर से कम है तो जनसंख्या में कमी होगी। परन्तु Pearl's Vital Index उतना सन्तोषजनक नहीं है जैसा कि ऊपर से दिखायी पड़ता है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त का कथन (Statement of the Theory of Net Reproduction Rate)

कुजिस्की (Kuczynsky) ने बताया है कि किसी देश मे जनसंख्या की वृद्धि की दर जन्म दर तथा मृत्यु दर के अन्तर पर निर्भर नहीं करती। यह तो उन औरतों की संख्या पर निर्भर करती है जो बच्चे उत्पन्न करने की आयु (child bearing age) की हैं। इस बात को जानने के लिए अर्थात् जनसंख्या के विकास की वास्तविक स्थिति को ज्ञात करने के लिए शुद्ध पुनरुत्पादन दर की रीति का प्रयोग किया जाता है। **"जिस दर से स्त्री जाति अपने आपको प्रतिस्थापित करती है वह शुद्ध पुनरुत्पादन दर कहलाती है।"**[21]

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त की व्याख्या तथा गणना (Explanation and Calculation)

वास्तव मे, जन्म दर तथा मृत्यु दर के अन्तर के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि जनसंख्या में वृद्धि हो रही है या कमी। कुछ देशों मे यह देखा गया कि जन्म दर मृत्यु दर से अधिक थी परन्तु देश की जनसंख्या गिर रही थी। इसका कारण यह हो सकता है कि अधिकांश नये बच्चे जन्म लेने के बाद सन्तान उत्पादन की आयु तक पहुंचने से पहले ही मर जाते होंगे। इसके विपरीत यह भी देखा गया कि मृत्यु दर के जन्म दर से अधिक होते हुए भी किसी देश की जनसंख्या में कमी होने के स्थान पर वृद्धि होती है; इसका कारण यह हो सकता है कि अधिक मृत्यु बूढ़े लोगों की होती हो। अतः जनसंख्या के विकास की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए शुद्ध पुनरुत्पादन दर निकालनी पड़ती है। शुद्ध पुनरुत्पादन दर की गणना (calculation) निम्न प्रकार से की जाती है:

(1) सर्वप्रथम, उन औरतों की कुल संख्या मालूम कीजिए जो सन्तान उत्पादन आयु (child bearing age) की हो (अर्थात 15-50 या 15-45 वर्ष के अन्तर्गत आती हो); इसके पश्चात् उनको उचित (suitable) आयु-वर्गों (जैसे 15-20, 20-25, 25-30 इत्यादि) में बाँट दीजिए।

(2) यह मालूम कीजिए कि प्रत्येक आयु-वर्ग की औरतों के कितनी लड़कियों के उत्पन्न होने की सम्भावना है।

(3) क्रम 2 के अन्तर्गत निकाली गयी लड़कियों में से उन लड़कियों की संख्या घटा दीजिए जिनकी सन्तान उत्पन्न करने की आयु प्राप्त करने से पहले ही मृत्यु हो जाने की सम्भावना है या जो अविवाहित रहती हैं या विधवा हो जाती हैं, इसके लिए जन्म दर तथा मृत्यु दर के आँकड़ों की सहायता लेनी पड़ेगी।

---

[21] "The rate at which the female population is replacing itself is the net reproduction rate".

(4) क्रम 3 से प्राप्त संख्या हमें उन लड़कियों की संख्या बतायेगी जो वास्तव में सन्तान उत्पादन आयु से गुजरती हैं और लड़कियों को जन्म देंगी।

(5) क्रम 4 का क्रम 1 से अनुपात (ratio) मालूम कर लिया जाता है और यही अनुपात शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) कहलाती है। इसमें तीन निम्न स्थितियाँ हो सकती हैं :

(अ) यदि सन्तान उत्पादन आयु की औरतों की कुल संख्या 1000 है अर्थात् क्रम 1 = 1000 औरतों के है; तथा माना कि वास्तव में, सन्तान उत्पादन की आयु से गुजरने वाली कुल लड़कियों की संख्या भी 1000 है, अर्थात् क्रम 4 = 1000 औरतों के है, क्रम 4 का क्रम 1 के साथ अनुपात होगा $\frac{1000}{1000} = 1$, इस स्थिति में शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) इकाई (unity) के बराबर हुई, इसका अर्थ है कि *वर्तमान जनसंख्या स्वयं को पूर्णतया प्रतिस्थापित (replace)* करती है, अर्थात् जनसंख्या स्थिर (stationary) रहेगी।

(ब) यदि क्रम 1 = 1000 औरतों के, तथा क्रम 4 = 900 औरतों के, तो NRR $= \frac{900}{1000} = \cdot 9$ *अर्थात् NRR इकाई से कम है और जनसंख्या गिर रही है।*

(स) यदि क्रम 1 = 1000 औरतों के, तथा क्रम 4 = 1500 औरतों के, तो NRR $= \frac{1500}{1000} = 1 \cdot 5$ अर्थात् NRR इकाई से अधिक है और जनसंख्या में वृद्धि हो रही है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of the Theory of Net Reproduction Rate)

(1) यह सिद्धान्त 'सन्तान उत्पादन शक्ति' (fecundity) तथा 'प्रजनन-उर्वरता' (fertility) में स्पष्ट अन्तर करता है। प्रकृति मनुष्य को बहुत अधिक 'सन्तान उत्पादन शक्ति' प्रदान करती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में इस शक्ति में—लड़कियों की मृत्यु, विधवापन (widowhood), जन्म दर को कम करने के लिए कृत्रिम साधनों के प्रयोग, इत्यादि के कारण—बहुत कमी हो जाती है अर्थात् 'प्रजनन उर्वरता' कम रहती है। दूसरे शब्दों में, 'प्रजनन उर्वरता' प्राप्त 'सन्तान उत्पादन शक्ति' है (fertility is realized fecundity)। माल्थस ने इन दोनों में कोई अन्तर नहीं किया था जो कि उचित नहीं था।

(2) कई यूरोपीय देशों की शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) इकाई से कम है; यह बात भी माल्थस के इस कथन का खण्डन करती है कि जनसंख्या सदैव बढ़ती है।

(3) यह सिद्धान्त जनसंख्या के विकास के माप के लिए एक विवेकपूर्ण (rational) दृष्टिकोण प्रदान करता है; परन्तु यह सिद्धान्त भी जनसंख्या का एक पूर्ण सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तो केवल जनसंख्या के विकास के मापने की रीति प्रस्तुत करता है और अन्य पहलुओं (aspects) पर चुप है।

जनसंख्या की वृद्धि तथा आर्थिक विकास
(POPULATION GROWTH AND ECONOMIC DEVELOPMENT)

आज के युग में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जनसंख्या का विकास किसी देश के आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है। 'अनु-जनसंख्या' (under-population) तथा 'अति-जनसंख्या' (over-population) दोनों ही सामान्यतया, आर्थिक विकास में बाधक हैं। पहले हम **अनु-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास** के सम्बन्ध पर विचार करेंगे, तत्पश्चात **अति-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास** पर।

अनु-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास (Under-population and Economic Development)

अनु-जनसंख्या का अर्थ है कि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्णशोषण के लिए अपर्याप्त है। प्रो. हिक्स (Hicks) के अनुसार, कम जनसंख्या एक देश की अर्थ-व्यवस्था के उचित विकास के लिए निम्न दो प्रकार से बाधक होती है :

(1) एक देश मे बहुत से ऐसे कार्य होते हैं जिनमें श्रम की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है—जैसे रेलों, पुलों, सड़कों इत्यादि के निर्माण में। जनसंख्या की कमी के कारण इनका निर्माण सम्भव नही हो पायेगा या इनका निर्माण बहुत धीमी गति से होगा और इतने लम्बे समय मे पूर्ण हो पायेगा कि इनके बनाने वालो को उनके जीवनकाल मे कोई लाभ नही होगा। इन आधारभूत तत्वों की अनुपस्थिति मे देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कम होगा और देश के आर्थिक विकास मे बाधा पड़ेगी।

(2) देश में जनसंख्या की कमी के कारण विशिष्टीकरण (specialization) तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं हो पायेगा। श्रमिक विभिन्न प्रकार के कार्यों मे विशिष्टीकरण प्राप्त करते हैं, तथा विशिष्ट मशीनों (highly specialized equipment) के प्रयोग से उनकी दक्षता और अधिक बढ़ती है। इस विशिष्टीकरण के कारण ही बड़े पैमाने के उद्योग सम्भव हो सके हैं। परन्तु जनसंख्या की कमी के कारण विशिष्टीकरण सम्भव नही होगा और इसलिए बड़े पैमाने के उद्योग स्थापित नही किये जा सकेंगे। दूसरे, जनसंख्या की कमी के कारण देश में उत्पादित औद्योगिक वस्तुओं का बाजार संकीर्ण होगा जिससे औद्योगीकरण को प्रोत्साहन नही मिलेगा। तीसरे, बड़े तथा आधारभूत उद्योगों की कमी के कारण देश की कृषि भी पिछड़ी अवस्था में रहेगी। उन्नत कृषि के लिए मशीनें, ट्रेक्टर, खाद इत्यादि की आवश्यकता है जो बड़े पैमाने के उद्योगों द्वारा ही प्राप्त हो सकते है। इस प्रकार बड़े पैमाने के उद्योगों की अनुपस्थिति मे कृषि भी पिछड़ी अवस्था में रहेगी। संक्षेप में, जनसंख्या की कमी के कारण देश 'बड़े पैमानों की बचतों' से वंचित रहेगा, देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कम होगा तथा देश के आर्थिक विकास मे बाधा होगी।

प्रो. हिक्स के अनुसार कम तथा अनु-जनसंख्या की उपर्युक्त हानियाँ (disadvantages) एक सीमा तक देशों मे व्यापार द्वारा कम हो सकती हैं। एक कम जनसंख्या वाला देश अपनी स्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं के उत्पादन मे विशिष्टीकरण कर सकता है और अतिरिक्त उत्पादन (surplus production) को दूसरे देशों में बेचकर उन देशों से वे वस्तुएँ प्राप्त कर सकता है जिनका उत्पादन वह स्वयं नहीं करता है। परन्तु विदेशी व्यापार द्वारा विशिष्टीकरण की सीमा को अधिक नही बढ़ाया जा सकता है क्योंकि वस्तुओं को एक देश से दूसरे देश को लाने ले जाने में बहुत खर्चा पड़ता है।

उपर्युक्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक है ताकि विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों को कार्यान्वित किया जा सके, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने के उद्योग सम्भव हो सकें, तथा देश मे वस्तुओं के लिए एक अच्छा बाजार मिल सके। स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि सदैव हानिकारक नही होती; यदि जनसंख्या अनुकूलतम से अधिक हो जाती है तब उसका बढ़ना उचित नहीं होगा।

अति-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास (Over-population and Economic Development)

अति-जनसंख्या की कई हानियाँ है जो कि एक देश के आर्थिक विकास मे बाधक होती हैं। वे निम्न हैं।

(1) उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना (Law of diminishing returns starts operating)—विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के संयोग से उत्पादन किया जाता है। यदि देश मे जनसंख्या बढ़ती जाती है तो श्रम, अन्य उत्पत्ति के साधनो अर्थात् भूमि तथा पूंजी की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है; परिणामस्वरूप कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है अर्थात् सीमान्त उत्पादन

तथा औसत उत्पादन घटने लगते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है। यदि श्रम के साथ-साथ भूमि तथा पूंजी मे भी वृद्धि होती है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नही होगा। पूंजी में वृद्धि हो सकती है परन्तु भूमि मे वृद्धि नही की जा सकती है क्योंकि वह सीमित है। केवल एक सीमा तक ही गहरी खेती द्वारा भूमि की 'प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार अति-जनसंख्या हानिकारक सिद्ध होती है क्योंकि उसकी वृद्धि के साथ-साथ अन्य उत्पत्ति के साधनो, विशेषतया भूमि, को उसी अनुपात मे नही बढ़ाया जा सकता जिस अनुपात मे जनसंख्या बढ़ती है।

(2) **जीवन स्तर में गिरावट** (Fall in the standard of living)—जनसंख्या मे वृद्धि के साथ खाद्य पदार्थों, वस्त्रो, मकानों इत्यादि की माँग मे बहुत अधिक वृद्धि होती है। परन्तु इन वस्तुओ की पूर्ति को उसी अनुपात मे नही बढाया जा पाता है क्योकि उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील रहता है। परिणामस्वरूप जीवन स्तर गिरने लगता है तथा लोगो को गरीबी तथा कष्टो का सामना करना पड़ता है।

(3) **पूंजी निर्माण में बाधा** (Hinderance in capital formation)—अविकसित देशो (जैसे भारत) मे अधिक जनसंख्या पूजी निर्माण मे एक बड़ी बाधा होती है। आर्थिक विकास के लिए कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि क्षेत्रो मे अधिक विनियोग (investment) की आवश्यकता होती है। अधिक विनियोग के लिए आवश्यक है कि देश मे अधिक बचत (savings) हो। परन्तु उच्च जन्म दर (high birth rate) तथा अति-जनसंख्या बचतो को कम करती है; परिणामस्वरूप पूजी निर्माण की दर निम्न हो जाती है। अतः अति-जनसंख्या देश के आर्थिक विकास मे बहुत बड़ी बाधा है।

परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि जब एक देश इतना अधिक धनवान हो जाता है कि वह अपने साधनो से ही पूजी-यन्त्र (capital equipment) को तीव्र गति से बढ़ा सकता है तो ऐसे देश मे अति-जनसंख्या का डर बहुत दूर (remote) हो जाता है। अत. उन्नतशील देशों (advanced countries) मे जनसख्या वृद्धि लाभदायक सिद्ध होती है। ऐसे देशो में जनसंख्या मे वृद्धि के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होगी, विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा क्योकि नये मकानों, नयी मशीनो, इत्यादि की माँग बढ़ेगी, बेकारी दूर होगी और रोजगार को बनाये रखना आसान होगा। परन्तु अविकसित देशो मे परिस्थितियाँ भिन्न होती है, इसलिए इनमे उच्च जन्म दर तथा तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसख्या आर्थिक विकास को रोकती है।

प्रश्न

1. माल्थस के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा उसकी सीमाएँ बताइए।
Explain critically Malthus's Theory of Population and point out its limitations.

[संकेत—प्रथम भाग मे 'माल्थस के जनसख्या के नियम' का कथन दीजिए तथा इसकी 'पूर्ण व्याख्या' कीजिए; दूसरे भाग मे संक्षेप मे सिद्धान्त की 'आलोचना' लिखिए, और बहुत ही सक्षेप मे 'माल्थस के सिद्धान्त की सत्यता' पर प्रकाश डालिए; तथा अन्त में निष्कर्ष दीजिए।]

2. 'वर्तमान समाज के लिए माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त का आतंक नष्ट हो गया है।' क्या आप इस विचार से सहमत है? कारण बताइए।
"The Malthusian Theory of Population has lost its terror for modern society." Do you agree with this view? Give reasons.

[संकेत—प्रश्न के उत्तर को तीन भागों में बाँटिए। प्रथम भाग में माल्थस के जनसंख्या के नियम का कथन दीजिए तथा संक्षेप में उसकी व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग में सिद्धान्त की संक्षेप में आलोचना दीजिए। तीसरे भाग में बताइए कि सिद्धान्त की आलोचना के आधार पर ही कुछ लोगों द्वारा यह कहा जाता है कि वर्तमान समाज के लिए इस सिद्धान्त का आतंक समाप्त हो गया है। परन्तु यह पूर्णतया सही नहीं है, सिद्धान्त में आज भी सत्यता का अंश है; अतः सिद्धान्त की सत्यता पर प्रकाश डालिए, अन्त में निष्कर्ष दीजिए। ध्यान रहे कि समस्त विवरण संक्षिप्त होना चाहिए क्योंकि उत्तर लम्बा है।]

3. माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त को बताइए। क्या भारत में यह लागू होता है? भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या को आप कैसे रोकेंगे?
State the Malthusian theory of population. Is it applicable to India? How will you check the increasing population in India?

4. जनसंख्या के अनुकूलतम सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Critically examine the Optimum Theory of Population.

5. 'अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त केवल अर्थशास्त्र के विख्यात 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र में करता है।' इस कथन को ध्यान में रखते हुए अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

'The Optimum Theory of Population is merely an application of the famous concept of optimum in the field of population.' In the light of the above remark give a critical estimate of the Optimum Theory of Population.

[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग में 'अनुकूलतम के विचार' को समझाइए तथा बताइए कि 'अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त' अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विचार अनुकूलतम का प्रयोग ही जनसंख्या के क्षेत्र में करता है। देखिए 'अनुकूलतम के विचार का प्रयोग' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री। दूसरे भाग में अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा दीजिए, रेखाचित्र द्वारा सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए, डाल्टन का सूत्र समझाइए, बहुत संक्षेप में सिद्धान्त की आलोचना दीजिए और अन्त में निष्कर्ष दीजिए।]

6. "विशिष्ट रूप से, क्यों न जनसंख्या को उस बिन्दु तक बढ़ने दिया जाय जहाँ पर कि उत्पत्ति-वृद्धि समाप्त होती है तथा उत्पत्ति-ह्रास प्रारम्भ होता है। यह बिन्दु अधिकतम वास्तविक मजदूरी या अधिकतम वास्तविक आय को बताता है और इसे अनुकूलतम जनसंख्या कहते हैं।" —सैम्युलसन। उपर्युक्त कथन की पृष्ठभूमि में अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का, उत्पत्ति के नियमों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुए, आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
"Specifically, why not aim at letting population grow up to the exact point where increasing returns end and decreasing returns begin? This point will give the highest level of real wages or real incomes and is called the Optimum Population."—*Samuelson*. In the light of this remark give a critical estimate of Optimum Theory of Population indicating its close connection with the laws of returns.

[संकेत—प्रश्न के उत्तर को तीन भागों में बाँटिए। प्रथम भाग में अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का उद्देश्य बताइए तथा 'अनुकूलतम जनसंख्या' की परिभाषा दीजिए। दूसरे भाग में इस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए, व्याख्या में स्पष्ट कीजिए कि यह सिद्धान्त घनिष्ठ रूप से उत्पत्ति के नियमों से सम्बन्धित है, इस बात को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट

कीजिए; डाल्टन के सूत्र को भी बताइए। तीसरे भाग मे बहुत संक्षेप मे सिद्धान्त की आलोचना दीजिए और अन्त मे निष्कर्ष दीजिए।]

7. "जनसख्या की समस्या केवल आकार की समस्या नही है बल्कि यह तो कुशल उत्पादन तथा न्यायपूर्ण वितरण की समस्या है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
"The problem of population is not one of mere size but of efficient production and equitable distribution." Examine critically.
[संकेत—प्राक्कथन मे बताइए कि अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या की समस्या केवल आकार या सख्या की समस्या नही है बल्कि कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है; इस प्राक्कथन के पश्चात् अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।]

8. अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। किस सीमा तक यह माल्यस के जनसख्या के सिद्धान्त के ऊपर सुधार है ?
Examine critically the Optimum Theory of Population. How far is it an improvement over the Malthusian Theory of Population ?
[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त का उद्देश्य दीजिए, अनुकूलतम जनसख्या की परिभाषा दीजिए, चित्र की सहायता से सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए, डाल्टन का सूत्र भी दीजिए, बहुत संक्षेप मे इसकी आलोचनाएँ भी लिखिए। दूसरे भाग मे अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त की तुलना, माल्थस के सिद्धान्त से कीजिए, तथा निष्कर्ष निकालिए कि यद्यपि अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त कुछ दृष्टियों से माल्यस के सिद्धान्त पर सुधार है परन्तु कोई भी सिद्धान्त पूर्ण नही है।]

9. डाल्टन और रोबिन्स के विचारो के सन्दर्भ मे अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। क्या अनुकूलतम जनसख्या सिद्धान्त माल्यस के जनसख्या सिद्धान्त के ऊपर सुधार है ?
Critically explain the Optimum Theory of Population with particular referance to the views of Dalton and Robbins in this respect. Is the Optimum population Theory an improvement over the Malthusian Theory of Population ?
(Agra, M A., 1975)

10. "माल्थस का जनसख्या सिद्धान्त निराशावादी है तथा अनुकूलतम जनसख्या का सिद्धान्त आशावादी है। परन्तु उनमे से कोई भी जनसख्या का एक पूर्ण सिद्धान्त नही है।" विवेचना कीजिए।
"The Malthusian Theory of Population is pessimistic and Optimum Theory of Population is optimistic, but none of them is an adequate theory of population." Discuss.
[संकेत—प्रश्न को तीन भागो मे बाँटिए। प्रथम भाग मे माल्थस के जनसंख्या के नियम का कथन दीजिए तथा संक्षेप मे उसकी व्याख्या कीजिए, दूसरे भाग मे अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा दीजिए तथा अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की चित्र की सहायता से बहुत सक्षेप मे व्याख्या कीजिए। तीसरे भाग मे दोनो सिद्धान्तो की तुलना कीजिए और अन्त मे निष्कर्ष दीजिए कि माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी है जबकि अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी है, परन्तु दोनो अपूर्ण हैं।]

11. आप 'अति-जनसंख्या' से क्या समझते हैं ? क्या बढती हुई जनसख्या सदैव अवांछनीय है ?
What do you understand by over-population ? Is increasing population always undesirable ?

[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग में माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त तथा अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त, दोनों की दृष्टियों से अति-जनसंख्या के विचार को स्पष्ट कीजिए और बताइए कि यह विचार अधिक उचित है कि जब जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से अधिक हो जाती है तो 'अति-जनसंख्या' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके पश्चात् बहुत संक्षेप में अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की चित्र की सहायता से व्याख्या कीजिए। दूसरे भाग में स्पष्ट कीजिए कि जनसंख्या का बढ़ना तभी हानिकारक होगा जबकि वह 'अनुकूलतम' से बढ़ जाय।]

12. आप 'जनसंख्या विस्फोट' से क्या समझते हैं ? जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition) को समझाइए।

What do you understand by 'population explosion'. Explain the theory of Demographic Transition.

13. जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या दीजिए।

Discuss critically the Theory of Demographic Transition.

अथवा

"जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त के व्याख्यात्मक भाग मोटे ऐतिहासिक सामान्यीकरणों व अन्तर्दृष्टियों (broad historical generalisations and insights) को बताते हैं; उनका स्वभाव एक 'सिद्धान्त' का नहीं है जिस अर्थ मे कि वास्तव मे एक सिद्धान्त समझा जाता है; अर्थात व्याख्यात्मक भागों का स्वभाव प्रारम्भिक मान्यताओं तथा सम्बन्धों के आधार पर तर्क द्वारा निकाले गये समन्वित निष्कर्षों के एक समूह के रूप में नहीं हैं।" इस कथन के सन्दर्भ में जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

"The explanatory part of the 'Theory of Demographic Transition' are more in the nature of broad historical generalisations and insights rather than 'in' a theory, in the usual sense of the word, that is, a system of related deductions derived from initial premises and relationship."

In the light of this statement give a critical explanation of the Theory of Demographic Transition.

14. एक देश के जनसंख्या के विकास तथा उसके आर्थिक विकास के बीच सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

Examine the relation between the growth of population of a country and its economic development.

[संकेत—देखिए 'जनसंख्या की वृद्धि तथा आर्थिक विकास' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री।]

27

रेखीय प्रोग्रामिंग : एक ग्राफिक विवेचन

(Linear Programming : A Graphical Treatment)

1. प्राक्कथन तथा पृष्ठभूमि
(INTRODUCTION AND BACKGROUND)

रेखीय प्रोग्रामिंग एक आर्थिक विचार नहीं है; दूसरे शब्दों मे, इसका आर्थिक तत्त्व (economic content) शून्य होता है; यह पूर्णरूप से एक गणितात्मक तकनीक (mathematical technique) है। चलन-कलन (calculus) की भाँति, अथवा गणित की किसी भी अन्य शाखा की भाँति, यह केवल आर्थिक सूचना, जो कि हमारे पास पहले से है या जिसको हम मान लेने के लिए तैयार हैं, के अभिप्रायों को ज्ञात करने में सहायता करता है। जब चरों (variables) के बीच सम्बन्ध रेखीय (linear) होते हैं (अर्थात सम्बन्धों को सीधी रेखाओं (straight lines) के रूप में दिखाया जा सकता है), तो प्रोग्रामिंग को 'रेखीय प्रोग्रामिंग' (Linear Programming) कहा जाता है; तथा जब चरो के बीच सम्बन्ध रेखीय नही होते, तो प्रोग्रामिंग को 'अ-रेखीय प्रोग्रामिंग' (Non linear Programming) कहते हैं। 'रेखीयता' (linearity) की मान्यता समस्याओं के विवेचन को आसान बना देती है और इसलिए रेखीय प्रोग्रामिंग का आधुनिक युग में बहुत विकास हुआ है; इसके विपरीत 'अ-रेखीय प्रोग्रामिंग' बहुत कड़ा व जटिल होता है और इसकी प्रगति बहुत धीमी है। ध्यान रहे कि प्रोग्रामिंग, चाहे वह रेखीय हो या अ-रेखीय, केवल एक गणितात्मक तकनीक है।

रेखीय प्रोग्रामिंग एक गणितात्मक तकनीक है जिसके द्वारा एक दिये हुए उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए 'सर्वोत्तम या अनुकूलतम' (best or optimum) रीति का चुनाव किया जाता है, जबकि कुछ दशाएं दी हुई होती हैं। दूसरे शब्दो में, रेखीय प्रोग्रामिंग का सम्बन्ध साधनो के बंटन (allocation) के निर्णयों के विश्लेषण से होता है ताकि किसी दिये हुए लक्ष्य को 'अधिकतम' (*maximisation*) या 'न्यूनतम' (*minimisation*) किया जा सके (जैसे कि लाभ को अधिकतम करना या लागत को न्यूनतम करना), जबकि दशाए या सीमाएं दी हुई होती है। रेखीय प्रोग्रामिंग को कभी-कभी 'गणितात्मक प्रोग्रामिंग' (mathematical programming) या 'क्रिया-विश्लेषण' (activity analysis) भी कहा जाता है। रेखीय प्रोग्रामिंग जटिल गणित का प्रयोग करता है तथा बिजली के कम्प्यूटरो (electric computers) के आविष्कार के परिणामस्वरूप रेखीय प्रोग्रामिंग का बहुत विकास हुआ है।[1]

---

[1] सर्वप्रथम 1939 मे रूस के अर्थशास्त्री कांटोरोविच (L V. Kantorovich) ने रेखीय प्रोग्रामिंग पर कार्य किया। परन्तु रेखीय प्रोग्रामिंग मे आधारभूत कार्य के लिए श्रेय अमेरिका के गणितज्ञ (mathematician) जी. बी डांटजिग (G. B Dantzig) को जाता है जिन्होंने कम्प्यूटेशन (क्रमशः)

रेखीय प्रोग्रामिंग एक ऐसा तकनीक है जो कि अल्पकाल में समस्याओ के विवेचन के लिए उपयोगी होता है, जबकि साधन स्थिर होते है। व्यापार, उद्योग तथा सरकार के लिए 'निर्णय-लेने मे मदद' के रूप में रेखीय प्रोग्रामिंग बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। रेखीय प्रोग्रामिंग का एक बहुत बड़ा लाभ है कि कम्प्यूटर का सहयोग लेकर जटिल गणनाएं (complex calculations) कुछ सैकड़ों मे ही की जा सकती है; एक बहुत बड़ा कम्प्यूटर 900 वस्तुओ और हजारों विभिन्न साधनो तक से सम्बन्धित समस्याओ का विवेचन कर सकता है।

साधनो की सीमितता अर्थशास्त्र के लिए बुनियादी बात है, और इसलिए अर्थशास्त्र की केन्द्रीय समस्या है 'अनुकूलतम की समस्या' (problem of optimisation), अर्थात किसी लक्ष्य को 'अधिकतम करने' या 'न्यूनतम करने' की समस्या है। परम्परागत 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (traditional marginal analysis approach) तथा 'रेखीय प्रोग्रामिंग रीति' दोनो 'अनुकूलतम करने' (optimisation) की समस्या का विवेचन करती हैं, परन्तु दोनो मे गणितात्मक तकनीक के प्रयोग के सम्बन्ध मे अन्तर रहता है, सीमान्त विश्लेषण रीति चलन-कलन (differential calculus) का प्रयोग करती है, जबकि रेखीय प्रोग्रामिंग के क्षेत्र मे चलन-कलन कार्य नही करता बल्कि रेखीय प्रोग्रामिंग एक बीजगणित (algebra) के तकनीक, जिसको 'सिम्पलेक्स रीति' (simplex method) कहा जाता है, का प्रयोग करता है। परम्परागत सीमान्त विश्लेषण तथा रेखीय प्रोग्रामिंग के बीच अन्तर दोनो की 'मान्यताओ में अन्तर' के कारण होता है। सीमान्त विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित होता है—(i) साधनो की पूर्ण विभाज्यता तथा एक सतत 'उत्पादन फलन (perfect divisibility of factors and a continuous production function), (ii) साधनो के बीच आसान प्रतिस्थापन (easy substitution), (iii) साधनो की प्राप्यता बिना किसी स्थिर सीमा के। इन मान्यताओ के अन्तर्गत ही चलन-कलन उपयोगी होता है। परन्तु इस प्रकार की मान्यताएं व्यावहारिक जीवन में नही पायी जाती हैं, और इसलिए सीमान्त विश्लेषण (या चलन-कलन) एक फर्म की आर्थिक व व्यावसायिक समस्याओ के व्यावहारिक हलों (practical solutions) के लिए उपयुक्त नही होता। वास्तविक जीवन में साधन (जैसे, भूमि, एक मशीन की उत्पादन-क्षमता, वित्तीय व साख सम्बन्धी सुविधाएं, इत्यादि) अल्पकाल मे सीमित होती हैं, साधनो को आसानी से एक दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) नही किया जा सकता है, एक फर्म के लिए रीतियां या प्रक्रियाएं (methods or processes) केवल सीमित मात्रा मे ही प्राप्य होती हैं जिनके बीच फर्म चुनाव कर सकती है। अनेक व्यापारिक समस्याओं के सम्बन्ध मे बातें या दशाएं बिलकुल निश्चित नही होती है, बल्कि दशाएं केवल उन 'न्यूनतम' या 'अधिकतम' आवश्यकताओ को बताती हैं जिनको पूरा किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, हम क्षमता (capacity) को लेते हैं; व्यवहार मे यह नही बताया जा सकता कि कितनी निश्चित क्षमता (precise capacity) का प्रयोग किया जाएगा, केवल यह बताया जा सकता है कि कितनी 'अधिकतम क्षमता' (maximum capacity) प्राप्य है, यह सम्भव है और उचित है कि क्षमता का एक भाग अप्रयुक्त (unutilised) रह जाये। इसी प्रकार से यह सम्भव है या उचित है कि किसी वस्तु का उत्पादन एक न्यूनतम निश्चित मात्रा से

(computation) के एक श्रेष्ठ तकनीक को मालूम किया। सन् 1947 में डॉटजिग ने अमरीका की हवाई-शक्ति (U S. Air Force) तथा अन्य बड़े संगठनों के आन्तरिक नियोजन से सम्बन्धित समस्याओ को हल करने के लिए इसका प्रयोग किया। इसके बाद से रेखीय प्रोग्रामिंग का प्रयोग बहुत बड़ी संख्या मे प्रबन्धकीय नियोजन समस्याओं (managerial planning problems) को हल करने मे प्रयोग किया गया है। अनेक विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्रियो, जैसे, Koopmans, Samuelson, Solow, Dorfman, इत्यादि ने रेखीय प्रोग्रामिंग के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया है।

अधिक हो जाये। इन सब बातों का अभिप्राय है कि दशाए या संलग्न-दशाएं (side-conditions) 'असमानताओं' (inequalities) के रूप में दी हुई होती हैं, अर्थात 'अधिक होने' (greater than) या 'कम होने' (less than) के रूप में दी हुई होती हैं। ऐसी व्यावहारिक दशाओं के अन्तर्गत सीमान्त विश्लेषण (जो कि चलन-कलन अर्थात (differential calculus) का प्रयोग करता है) असफल रहता है, और रेखीय-प्रोग्रामिंग (जो कि उच्चतर टेकनीकल गणितात्मक तरीकों का प्रयोग करता है) व्यापारिक व आर्थिक बातों के सम्बन्ध में व्यावहारिक निर्णयों के लेने में अधिक उपयोगी होता है।

रेखीय प्रोग्रामिंग की परिभाषा
(DEFINITION OF LINEAR PROGRAMMING)

रेखीय प्रोग्रामिंग में दो शब्द हैं—'रेखीय' (*Linear*) तथा 'प्रोग्रामिंग' (*Programming*) रेखीय' का अर्थ है कि विशिष्ट समस्या (जिसको रेखीय प्रोग्रामिंग द्वारा हल किया जा सकता है) के अन्तर्गत सभी सम्बन्ध रेखीय हैं अर्थात उन सम्बन्धों को 'सीधी रेखाओं' (straight lines) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। 'प्रोग्रामिंग' का अर्थ है व्यवस्थित नियोजन करना या निर्णय-लेना (systematic planning or decision-taking), दूसरे शब्दों में, यह एक 'विशिष्ट प्रोग्राम' या 'कार्य की योजना (plan of action) के निर्धारण की प्रक्रिया (process) को बताता है। **हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि रेखीय प्रोग्रामिंग में 'रेखीयता'** (linearity) **अर्थात 'रेखीय सम्बन्ध'** (linear relationship) केन्द्रीय स्थान रखता है; जब सम्बन्ध 'अ-रेखीय' (non-linear) होते हैं, तो हम इसे 'अ-रेखीय प्रोग्रामिंग' (non-linear programming) कहते हैं जो कि बहुत कठिन व जटिल होता है और इसकी प्रगति बहुत कम व धीमी है।

रेखीय प्रोग्रामिंग एक गणितात्मक तकनीक है जिसका सम्बन्ध 'अनुकूलतम करने' (*optimisation*) **से होता है, अर्थात् किसी लक्ष्य के 'अधिकतम करने'** (*maximisation*) **या 'न्यूनतम करने'** (*minimisation*) **में होता है, जबकि कुछ प्रतिबन्ध या संलग्न-दशाएं** (constraints or side-conditions) दी हुई होती हैं, जैसे, टेकनीकल, संस्थात्मक (institutional) तथा वित्तीय (financial) प्रतिबन्ध। प्रतिबन्ध या दशाए समीकरण (equation) के रूप में एकदम निश्चित नहीं होतीं, बल्कि वे 'अधिक होने' (*greater than*) या 'कम होने' (*less than*) का रूप लेती हैं; दूसरे शब्दों में, प्रतिबन्ध या दशाएं 'रेखीय असमानताओं' (*linear inequalities*) के रूप में व्यक्त की जाती हैं। लक्ष्य (objective) हो सकता है किसी मात्रा (जैसे, लाभ, आय, इत्यादि) के 'अधिकतम करने' का, अथवा किसी मात्रा (जैसे, लागत, यात्रा की दूरी, इत्यादि) को 'न्यूनतम करने' का। जिस मात्रा को अधिकतम या न्यूनतम करने का लक्ष्य होता है उसे **'लक्ष्य-फलन'** (*objective function*) कहा जाता है, लक्ष्य-फलन प्रायः एक समीकरण (equation) के रूप में होता है। जिन चरों (variables) पर 'लक्ष्य-फलन' निर्भर करता है उनमें 'रेखीय सम्बन्ध' (linear relations) होते हैं, अर्थात् रेखीय-प्रोग्रामिंग में एक **'रेखीय लक्ष्य-फलन'** (*linear objective function*) होता है। इसके अतिरिक्त एक 'फर्म' या कोई भी एक 'निर्णय लेने वाली इकाई' (a 'decision-taking unit') धनात्मक उत्पादन (positive output), या 'धनात्मक लाभ' या 'धनात्मक कीमत' चाहती है; 'ऋणात्मक उत्पादन' (negative output) या 'ऋणात्मक कीमत', इत्यादि की कोई जगह या अर्थ रेखीय प्रोग्रामिंग के लिए नहीं होता है। इस प्रकार रेखीय प्रोग्रामिंग एक ऐसा हल (solution) प्रस्तुत करता है जो 'अ-ऋणात्मक' (*non-negative*) होना है, दूसरे शब्दों में, रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत, प्रतिबन्धों या संलग्न-दशाओं (constraints or side-conditions) के अतिरिक्त, **'अ-ऋणात्मक दशाएं'** (*non negative conditions*) भी होनी हैं।

अब हम रेखीय प्रोग्रामिंग को टेकनीकल शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं—

रेखीय प्रोग्रामिंग एक गणितात्मक तकनीक है जो कि अनेक चरों के एक 'रेखीय

लक्ष्य-फलन' को अनुकूलतम करता है (अर्थात् अधिकतम या न्यूनतम करता है), जबकि रेखीय लक्ष्य-फलन 'रेखीय-असमानताओं के रूप में अनेक प्रतिबन्धों या दशाओं' के अधीन होता है।

Linear Programming is a mathematical technique for the optimisation (that is, maximisation or minimisation) of a linear objective function of a number of variables, subject to a number of constraints or conditions in the form of linear inequalities.

एक रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या तब उत्पन्न होती है जबकि दो या अधिक क्रियाएं (*activities*), जिन्हें कभी-कभी 'उम्मीदवार' (*candidates*) भी कहा जाता है, सीमित साधनों के लिए प्रतियोगिता (compete) करती है और जब यह माना जा सकता है कि समस्या के अन्तर्गत सभी सम्बन्ध रेखीय (linear) होते हैं। एक रेखीय प्रोग्रामिंग-समस्या के तीन मुख्य अंग होते हैं.

1. **एक 'रेखीय लक्ष्य-फलन'** (A 'Linear Objective Function')—इसको अधिकतम या न्यूनतम करना होता है, अथवा यह कहिए कि इसको 'अनुकूलतम' करना होता है।

2. **रेखीय असमानताओं के रूप में प्रतिबन्धों का एक समूह** (A Set of Constraints in the Form of Linear Inequalities)—ये प्रतिबन्ध दिये हुए साधनों के सन्दर्भ में समस्या के लिए सलग्न-दशाओं (side-conditions) या टेक्नीकल सीमाओं (technical specifications) को बताते हैं।

3. **अ-ऋणात्मक दशाओं का एक समूह** (A Set of Non-negative Conditions)—ये इसलिए होती हैं कि ऋणात्मक मात्राएं (negative quantities) प्राप्त न हों; दूसरे शब्दों में, ये इसलिए होती हैं ताकि समस्या का 'धनात्मक हल' (positive solution) अथवा 'अ-ऋणात्मक हल' (non-negative solution) प्राप्त हो सके।

रेखीय प्रोग्रामिंग की मुख्य धारणाएं या शब्द
(BASIC CONCEPTS OR TERMS OF LINEAR PROGRAMMING)

रेखीय प्रोग्रामिंग की अपनी एक निजी भाषा, शब्दावली या धारणाएं (own language, terms or concepts) है। अतः रेखीय प्रोग्रामिंग को अच्छी प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मुख्य धारणाओं या शब्दों को थोड़े विस्तार के साथ समझ लिया जाये। इसकी मुख्य धारणाएं या शब्द निम्नलिखित हैं :

1. अनुकूलतम करना (Optimisation), अथवा अनुकूलतम चुनाव (optimal choice)
2. रेखीयता (Linearity)
3. प्रक्रिया (Process)
4. 'लक्ष्य-फलन' (Objective function), कभी-कभी इसे 'मूलतत्त्व फलन' (the criterion function) भी कहते हैं।
5. प्रतिबन्ध (Constraints or Restraints), अथवा सलग्न दशाएं (side-conditions), कभी-कभी इसे 'सरचनात्मक प्रतिबन्ध' (structural constraints) भी कहा जाता है।
6. सम्भाव्य हल (Feasible Solutions), अथवा सम्भाव्य क्षेत्र (Feasible Region)
7. अनुकूलतम हल (*Optimum Solution*)

अब हम इनमें से प्रत्येक धारणा या शब्द की अलग-अलग विस्तार के साथ विवेचना करते हैं।

अनुकूलतम करना (Optimisation)

रेखीय प्रोग्रामिंग की केन्द्रीय विशेषता है कि किसी दिये हुए लक्ष्य को अनुकूलतम करना।

इसका अर्थ है एक व्यावसायिक फर्म किसी मात्रा (जैसे, लाभ)[1] को 'अधिकतम' करेगी, अथवा किसी मात्रा (जैसे, लागत) को 'न्यूनतम' करेगी। 'अधिकतम' या 'न्यूनतम' करने के लिए फर्म प्राप्य अनेक वैकल्पिक (alternative) रीतियों या प्रक्रियाओं में से सर्वोत्तम चुनाव (best choice) अथवा 'अनुकूलतम चुनाव' (*optimal choice*) करेगी।

रेखीयता (Linearity)

रेखीय प्रोग्रामिंग के लिए रेखीयता की मान्यता आधारभूत है। गणित की भाषा में चरों में रेखीय सम्बन्ध तब होता है जबकि उनमे से किसी भी चर की शक्ति या घात (power or degree) 1 से ज्यादा नहीं होती है।[2] अर्थशास्त्र की भाषा में दो या दो से अधिक चरों में रेखीय सम्बन्ध तब होता है जबकि उनमे प्रत्यक्ष और आनुपातिक सम्बन्ध (direct and proportional relation) होता है। उदाहरणार्थ 'रेखीय' (linear) का अर्थ है कि किसी साधन की मात्रा मे 10% का परिवर्तन उत्पादित-मात्रा मे भी ठीक 10% का परिवर्तन उत्पन्न करेगा; और इसका अर्थ है 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale)। इस प्रकार, अर्थशास्त्र मे 'रेखीयता' का अर्थ है 'स्थिर प्रतिफल' (constant returns); इसका अर्थ यह भी होता है कि सीमान्त उत्पादकता (marginal product) तथा औसत उत्पादकता (average product) बराबर होते हैं; साधनों तथा उत्पादित वस्तु की कीमतें दी हुई व स्थिर होती हैं। लागत के शब्दों में इसका अर्थ है कि एक सीमा या क्षेत्र तक प्रति इकाई लागत (अर्थात औसत लागत) स्थिर होती है तथा औसत परिवर्तनशील लागत व सीमान्त लागत बराबर होती है।[4] ग्राफ पर रेखीय सम्बन्ध का अर्थ है सीधी रेखाएं।[5]

रेखीयता का विचार एक सरलीकृत (simplifying) मान्यता है; रेखीयता की मान्यता बातों को आसान बनाती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि रेखीयता की मान्यता एक अवास्तविक मान्यता है, कई स्थितियों मे रेखीय सम्बन्ध व्यवहार मे पाये जाते हैं।[6] कई स्थितियों में चरों (जैसे, एक फर्म का उत्पादन, उसकी उत्पादन-लागत, इत्यादि) में एक निश्चित रेखीय सम्बन्ध नहीं होता है, परन्तु वह सम्बन्ध रेखीयता के बहुत निकट हो सकता है और इसलिए रेखीय मान्यता व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उपयोगी हो सकती है। उदाहरणार्थ, दो साधनों के लिए एक सम-उत्पाद रेखा (iso-product or equal-product curve) सामान्यता अ-रेखीय (non-linear) होती है। रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत सम-उत्पाद रेखाएं सरल रेखाओं के भागों (segments of straight line)

---

[1] We should keep in mind that the concepts of 'maximisation' or 'minimisation' convey a different meaning in comparison to their meaning in traditional microeconomics For example, there is a distinction between the content of the 'profit-maximisation' principle used in microeconomics and 'maximisation of profit' used in linear programming technique "We wish to say that these terms are different and convey two distinct ideas. The '*profit maximisation*' *principle of microeconomics* means simply the equality of marginal cost and marginal revenue. While '*maximisation of profit*' *used in linear programming* relates to the actual increase of profits and escalation of it."

[2] In mathematical language the variables have *linear* relationships if none of the variable is raised to a power greater than 1.

[4] In terms of cost, this means that costs per unit are constant over a certain range and that average variable cost and marginal cost are equal.

[5] Linear relationship takes the form of straight lines on graphs.

[6] उदाहरणार्थ, जब एक फर्म किसी साधन को स्थिर (constant) कीमत पर खरीदती है तो फर्म के सामने उस साधन के लिए कुल लागत रेखा रेखीय (अर्थात् सरल रेखा) होती है। जब किसी वस्तु की एक दी हुई स्थिर कीमत होती है तो उस वस्तु की बिक्री के परिणामस्वरूप प्राप्त कुल आगम रेखा (total revenue curve) रेखीय होती है अर्थात एक सरल रेखा होती है। दो साधनों के लिए सम-लागत रेखा (iso-cost curve) रेखीय होगी, यदि उनकी कीमतें दी हुई व स्थिर हैं।

की भाँति समझी जाती हैं न कि अभंग वक्र-रेखाओं (smooth curves) की भाँति जैसा कि हम सामान्यतया माइक्रो अर्थशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं।

[सभी गणितात्मक प्रोग्रामिंग रेखीय नहीं होती हैं। अ-रेखीय या वक्रीय प्रोग्रामिंग (non-linear or *curvilinear programming*) भी होती है। अ-रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत जटिल गणितात्मक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है, और इसलिए इसकी प्रगति बहुत धीमी है। एक और प्रकार की प्रोग्रामिंग होती है जिसको 'पूर्ण संख्या प्रोग्रामिंग' (*Integer programming*) कहा जाता है; इस प्रकार की प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत समस्याएं इस प्रकार से निर्धारित की जाती हैं ताकि हलों (solutions) को 'पूर्ण संख्याओं' ('whole numbers' or 'integers') में प्राप्त किया जाये। उदाहरणार्थ, एक यातायात समस्या का हल है 10 बसें या 6 हवाई जहाज, न कि $9\frac{1}{4}$ बसें या $5\frac{3}{4}$ हवाई जहाज; 'पूर्ण संख्या प्रोग्रामिंग' के अन्तर्गत भिन्नों (fractions) का कोई स्थान नहीं होता है।]

प्रक्रिया या क्रिया (Process or Activity)

'प्रक्रिया' (process), जिसे 'क्रिया' (activity) भी कहा जाता है, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण धारणा या विचार है और इसको गणितात्मक प्रोग्रामिंग का 'प्रेरक-विचार' (*motivating-idea*) कहा जाता है। दूसरे शब्दों मे, ऐसी समस्याएं जिनके विश्लेषण के लिए रेखीय प्रोग्रामिंग की आवश्यकता पड़ती है, सामान्यतया 'प्रक्रिया के विचार' (concept of process) के चारों तरफ केन्द्रित रहती है। प्रक्रिया के विचार को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है :

> **एक प्रक्रिया किसी उत्पादक-क्रिया को सम्पादन करने की एक विशिष्ट रीति है। प्रक्रिया का विचार मुख्यता टेकनोलोजीकल है, अर्थात्, एक प्रक्रिया विशिष्ट साधनों का एक संयोग है जिसके द्वारा एक विशिष्ट माला का उत्पादन किया जाता है।**[7]

[उदाहरणार्थ, एक निश्चित फार्मूला या एक निश्चित रीति द्वारा साबुन का बनाना एक 'प्रक्रिया' है। इसी प्रकार दो साधनों का संयोग, जैसे, 'एक ट्रक तथा एक ड्राइवर' एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक विशिष्ट उत्पादक क्रिया की जाती है, अर्थात् 'एक ट्रक व एक ड्राइवर' मिलकर रोज या हफ्ते में एक बार किसी वस्तु को एक निश्चित दूरी तक ले जाने की उत्पादक क्रिया करते हैं।]

वास्तव मे, रेखीय प्रोग्रामिंग के लिए **परम्परागत उत्पादन फलन** (conventional production function) और कुछ नहीं है बल्कि एक प्रक्रिया है। प्रो. डार्फमैन (Dorfman) के शब्दो मे, "परम्परागत उत्पादन फलन को एक फार्मूला (या रीति) की भाँति समझा जा सकता है जो कि उन सब प्रक्रियाओं के साधनो (inputs) तथा उत्पादन-मात्राओं (outputs) को सम्बन्धित करता है जिनके द्वारा किसी एक कार्य को किया जाता है।"[8]

हमारे लिए प्रक्रिया के **'स्तर'** (*'level'* of a process) शब्द को भी समझ लेना जरूरी है; यह साधनो के 'प्रयोग होने' (utilisation) के विशेष स्तर को तथा उसके परिणामस्वरूप प्राप्त उत्पादन-माला के स्तर को बताता है। हम **'स्तर'** के विचार को अग्रलिखित शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं—

---

[7] A process is a specific method of performing some productive activity. The concept of process is essentially technological, that is, a process is a combination of particular inputs to produce a particular output.

[8] "The conventional production function can be thought of as the formula (that is, method) relating the inputs and outputs of all the processes by which a given task can be accomplished."

एक प्रक्रिया के 'स्तर' का अर्थ है कि साधनों की कितनी मात्राओं (अथवा साधनों के किस स्तर) का प्रयोग किया जा सकता है उत्पादन की एक विशिष्ट मात्रा (या स्तर) को प्राप्त करने के लिए। दूसरे शब्दों में, "एक प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर के अन्तर्गत उत्पादन-मात्रा का एक विशिष्ट स्तर तथा साधनों की मात्राओं का एक विशिष्ट समूह होता है।[9]

किसी उत्पादक क्रिया के सम्बन्ध में यह सम्भव है कि एक फर्म या एक उद्योग को केवल एक ही 'प्रक्रिया' प्राप्य हो, परन्तु, सामान्यतया, किसी उत्पादक-क्रिया को करने के लिए कई वैकल्पिक प्रक्रियाएं (several alternative processes) प्राप्य होती हैं। रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक का सम्बन्ध वैकल्पिक प्रक्रियाओं के बीच चुनाव करने से होता है। दूसरे शब्दों में,

"प्रक्रियाओं के शब्दों में, उत्पादन-क्षेत्र में चुनावों का अर्थ है कि किन प्रक्रियाओं का प्रयोग करना है और किस सीमा (या स्तर) तक प्रत्येक प्रक्रिया को प्रयोग करना है··· । गणितात्मक (या रेखीय) प्रोग्रामिंग आर्थिक चुनाव के इस पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करता है।[10] गणितात्मक प्रोग्रामिंग का उद्देश्य, दी हुई परिस्थितियों में, उत्पादक प्रक्रियाओं के अनुकूलतम स्तरों को निर्धारित करना है।"[11]

चित्र 1

'प्रक्रिया' तथा प्रक्रिया के 'स्तर' को चित्र न. 1 द्वारा स्पष्ट किया गया है। इस चित्र में एक उत्पादक-क्रिया (productive activity), जिसमें कि दो साधनों को प्रयोग किया जाता है, की 'प्रक्रिया' (process) को दिखाया गया है। साधन C (माना पूंजी) को X-axis पर तथा साधन L (माना श्रम)

---
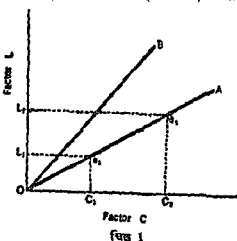
9 'Level' of a process means what quantities of inputs (or what level of inputs) are used to get a particular quantity (or level) of output. In other words, "every level of a process involves a particular level of output, and a particular set of quantities of inputs."

10 *Explanatory Note* In traditional economic analysis, economists are generally used to thinking in terms of decisions or choices regarding what quantities of various factors or inputs are to be employed, they simply take decisions or choices regarding the substitution of one factor for another. But in practical situations such substitution *is not possible. In practice a firm* cannot substitute one *factor A for another factor B* unless it does some of its work in a different way, that is, unless it uses a different process; for example, it may have to substitute a process which uses more of A and less of B in comparison to the previous process. In other words, inputs cannot be substituted or changed without a change in the process. Thus, linear programming is not concerned simply with the substitution of one factor for another, but it is concerned with the substitution of one process for another Thus, linear programming is not concerned with the choice among different inputs as such, but it is concerned with the choice among different processes; linear programming focuses on this aspect of economic choice.

11 "In terms of processes, choices in the productive sphere are simply decisions as to which processes are to be used and the extent (or the level) to which each is to be employed Mathematical (or linear) programming focusses on this aspect of economic choice The objective of mathematical programming is to determine the optimal levels of productive processes in given circumstances."

को Y-axis पर दिखाया गया है; तथा 'प्रक्रिया' (process) को रेखा OA दिखाती है, अथवा यह कहिए कि एक 'प्रक्रिया A' को रेखा OA दिखाती है। इसी प्रकार रेखा OB एक दूसरी 'प्रक्रिया B' को दिखाती है। अब हम प्रक्रिया A को लेते हैं। उत्पादन-मात्रा को रेखा OA पर मापा जाता है, मूल बिन्दु O शुरूआत का बिन्दु (starting point) है। [यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि चित्र दो आयाम वाला (two dimensional) है परन्तु यह तीन चरों (three variables) को दिखाता है—दो साधनों को तथा एक वस्तु की उत्पादित-मात्रा को।]

माना कि उत्पादित वस्तु X है; माना कि साधन C की C_1 इकाइयाँ तथा साधन L की L_1 इकाइयाँ मिलकर वस्तु X को a_1 इकाइयाँ उत्पादित करती हैं। इसी प्रकार वस्तु X की a_2 इकाइयाँ उत्पादित की जाती है साधन C की C_2 इकाइयों तथा साधन L की L_2 इकाइयों के संयोग द्वारा। **प्रक्रिया रेखा OA पर बिन्दुओं, जैसे a_1, a_2, इत्यादि, को प्रक्रिया के 'स्तर'** (levels) कहा जाता है। हम कह सकते हैं कि प्रक्रिया A को स्तर a_1 पर चलाने के लिए फर्म को साधन C की C_1 इकाइयों तथा साधन L की L_1 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार का कथन स्तर a_2 के सम्बन्ध में, अथवा रेखा OA पर किसी भी अन्य बिन्दु के सम्बन्ध में, भी दिया जा सकता है। इस प्रकार प्रक्रिया का प्रत्येक स्तर उत्पादित-मात्रा के एक विशेष स्तर, तथा साधनों की मात्राओं के एक विशेष समूह को बताता है।[12]

अब हम एक **प्रक्रिया की विशेषताओं या मान्यताओं** (*characteristics or assumptions of a process*) की विवेचना करते है, इनको नीचे दिया गया है—

1. किसी वस्तु को उत्पादित करने के लिए एक फर्म के सामने प्रक्रियाओं की केवल एक निश्चित संख्या ही प्राप्य होती है; इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया को, वस्तु को उत्पादित करने के लिए, कई स्तरों पर चलाया जा सकता है। **एक प्रक्रिया को दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है।** (One process can be substituted for another.)

2. **प्रत्येक प्रक्रिया साधनों को स्थिर अनुपात में प्रयोग करती है; इसको 'साधनों के बीच आनुपातिकता'** भी कहा जाता है। (Each process uses inputs in fixed proportion or ratio, this is also called 'proportionality between inputs'.)

   उदाहरणार्थ, एक प्रक्रिया साधन C की 3 इकाइयों तथा साधन L की 1 इकाई का प्रयोग करके एक वस्तु की 20 इकाइयाँ उत्पादित करती है। यह प्रक्रिया दो साधनों को 3 : 1 के स्थिर अनुपात में प्रयोग करती है; इस स्थिर अनुपात को बदला नहीं जा सकता है चाहे प्रक्रिया का स्तर कुछ भी हो। दूसरे शब्दों में, **एक प्रक्रिया के अन्तर्गत साधनों के बीच कोई प्रतिस्थापन नहीं हो सकता है।** (In other words, there cannot be any substitution of inputs within a process.)। [इसकी तुलना में, परम्परागत सीमान्त विश्लेषण सिद्धान्त साधनों के बीच आसान प्रतिस्थापन मान लेता है।]

3. **उत्पादन की प्रत्येक प्रक्रिया 'पैमाने के स्थिर प्रतिफलों' द्वारा शासित होती है।** (Each process of production is governed by constant returns to scale.)। 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' का अर्थ है कि यदि साधनों को एक निश्चित अनुपात (माना 10%) से बढाया जाता है, तो उत्पादित-मात्रा भी उसी अनुपात

---

[12] Thus, every level of the process indicates a particular level of output and a particular set of quantities of inputs.

(अर्थात् 10%) से बढ़ेगी। [दूसरे शब्दों में, 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' का अभिप्राय है कि यदि सभी साधनों को एक सामान्य अंक (common factor) से गुणा कर दिया जाता है, तो उत्पादित-मात्रा को भी उसी अंक से गुणा कर दिया जायेगा।][13] **'पैमाने का स्थिर प्रतिफल' साधनों और उत्पादित-मात्रा के बीच आनुपातिकता को बताता है।**[14]

4. **प्रक्रियाएं एक दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं।** (The processes are independent of each other)। इसका अर्थ है कि जब दो या अधिक प्रक्रियाओं का एक साथ प्रयोग किया जाता है, तो वे एक दूसरे के कार्य पर कोई प्रभाव नहीं डालती हैं। दूसरे शब्दों में, स्वतन्त्रता का अर्थ है कि प्रक्रिया A के स्तर में परिवर्तन के कारण दूसरी प्रक्रिया B के स्तर में परिवर्तन की जरूरत नहीं पड़ती, और न ही प्रक्रिया B में, प्रक्रिया A की भाँति, परिवर्तन की जरूरत पड़ती है, और न इसका उल्टा ही नहीं होता है। वास्तव में, 'प्रक्रियाओं की स्वतन्त्रता' की मान्यता एक सरलीकृत (simplifying) मान्यता है।[15]

5. 'स्थिर अनुपातों', 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' तथा 'प्रतिक्रियाओं के बीच स्वतन्त्रता' की मान्यताएं रेखीयता (linearity) को उत्पन्न करती हैं।[16] **ये मान्यताएं ऐसी सम-उत्पाद रेखाओं को उत्पन्न करती हैं जो कि सरल रेखाओं के टुकड़ों से बनी होती हैं और उनमें कोने होते हैं।**[17] (These assumptions generate iso-product (or equal product) curves made up of straight line segments and having corners or kinks)। [इसके विपरीत, परम्परागत सिद्धान्त अभग सम-उत्पाद रेखाओं (smooth iso-product curves) को मान लेता है; परन्तु रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक में अभग सम-उत्पाद रेखाओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।]

अब हम चित्रों की सहायता से एक प्रक्रिया की विभिन्न विशेषताओं या मान्यताओं को स्पष्ट करते हैं। दूसरे शब्दों में, चित्रों की सहायता से हम 'स्थिर अनुपातों' (Fixed Proportions), 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale), तथा 'प्रक्रियाओं में स्वतन्त्रता (independence of processes) की व्याख्या कर सकते हैं तथा सम-उत्पाद रेखाओं को निकाल (या derive कर) सकते हैं।

पहले हम **'साधनों के स्थिर अनुपात' की विशेषता लेते हैं।** चित्र 1 इस बात की व्याख्या करता है कि उत्पादित-मात्रा के सभी धनात्मक स्तरों (positive levels) पर एक प्रक्रिया के अन्तर्गत जिस अनुपात में साधन मिलाये जाते हैं वह अनुपात सदैव स्थिर रहता है। चित्र 1 में;

---

[13] In other words, constant returns to scale implies that if all inputs are multiplied by some common factor, then the level of output will be multiplied by the same factor.

[14] Constant returns to scale indicates a relation of 'proportionality' between the inputs and the output

[15] In other words, independence means that changing the level of one process A neither requires a change in the level of the other process B, nor it causes such a change in the process B, and vice-versa As a matter of fact, the assumption of 'independence of processes' is a simplifying assumption

[16] The assumptions of 'fixed proportions', 'constant returns to scale', and 'independence', lead to linearity

[17] यह बात थोड़ा आगे चलकर एक चित्र की सहायता से स्पष्ट हो जायेगी।

उत्पादन (Output) स्तर a_1 पर,

$$\text{साधन अनुपात} = \frac{L_1}{C_1}$$

$$= \frac{a_1C_1}{OC_1}$$

$$= \text{Slope of the process ray OA}$$

उत्पादन स्तर a_2 पर

$$\text{साधन अनुपात} = \frac{L_2}{C_2}$$

$$= \frac{a_2C_2}{OC_2}$$

$$= \text{Slope of the process ray OA}$$

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि प्रक्रिया-रेखा OA के प्रत्येक बिन्दु पर (केवल मूल बिन्दु अर्थात origin को छोड़कर) प्रयोग में लाये जाने वाले साधनों का अनुपात प्रक्रिया रेखा OA के ढाल (slope) के बराबर होता है, और चूंकि प्रक्रिया रेखा OA का ढाल एक-समान है, इसलिए इस विशिष्ट प्रक्रिया के लिए साधनों का अनुपात सदैव एक ही या स्थिर होगा। अत एक प्रक्रिया को निम्नलिखित शब्दों में भी परिभाषित किया जा सकता है—

> एक प्रकिया उत्पादन की एक रीति है जिसमें उत्पादन के सभी धनात्मक स्तरों पर सभी साधन एक स्थिर अनुपात में प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु प्रत्येक प्रक्रिया साधनों के एक भिन्न स्थिर अनुपात को प्रयोग में लाती है। दूसरे शब्दों में, साधनों के विभिन्न (स्थिर) अनुपातों को विभिन्न प्रक्रियाएं समझा जा सकता है जिनके अनुसार उत्पादन की दी हुई मात्राएं उत्पादित की जाती हैं।[18]

चित्र 1 में, OA रेखा साधनों के एक दिये हुए स्थिर अनुपात को बताती है, और यह एक प्रक्रिया है। रेखा OB साधनों के एक दूसरे दिये हुए स्थिर अनुपात को बताती है, और यह एक दूसरी प्रक्रिया है (क्योंकि OB का ढाल भिन्न है OA के ढाल से), इत्यादि। इस प्रकार **एक प्रक्रिया और कुछ नहीं बल्कि साधनों के संयोग का एक दिया हुआ स्थिर अनुपात है। 'साधनों में आनुपातिकता'** (proportionality between the inputs) **के कारण ही एक प्रक्रिया का ग्राफीकल प्रस्तुतीकरण एक सरल रेखा द्वारा होता है जो कि मूल-बिन्दु से होती हुई ऊपर को जाती है।**[19]

अब हम **'पैमाने के स्थिर प्रतिफल'** (constant returns to scale) अथवा **'साधनों और उत्पादित-मात्रा के बीच आनुपातिकता'** (proportionality between the inputs and the output) की व्याख्या चित्र 2 की सहायता से करते हैं।

एक प्रक्रिया-रेखा (process ray) बताती है कि साधनों C तथा L में वृद्धि करने से कुल उत्पादन में किस प्रकार परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, **एक प्रक्रिया रेखा उत्पादन पैमाने को बताती है और उत्पादन-पैमाना आसानी से निर्धारित हो जाता है 'पैमाने के स्थिर**

---

[18] A process is a method of production in which all factors are used in fixed proportions at all possible levels of output But each process uses a different 'fixed proportion of inputs' In other words, the different (fixed) proportions in which inputs are used can be thought of as different processes according to which given quantities of output are produced

[19] Thus, one process is nothing but one given fixed proportion of the combination of factors or inputs It is because of the *proportionality between the inputs* that the graphical presentation of a process is a straight line through origin
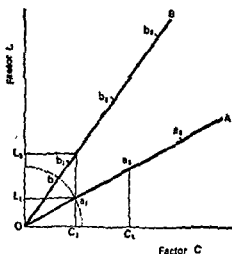
चित्र 2

प्रतिफलों (अथवा साधनों व उत्पादन-मात्रा में आनुपातिकता के सम्बन्ध) द्वारा।[20] पैमाने के स्थिर प्रतिफल का अर्थ है कि यदि साधनों को एक निश्चित अनुपात (माना 15%) से बढ़ाया जाता है तो उत्पादन भी उसी अनुपात (अर्थात 15%) में बढ़ता है। ग्राफ या चित्र के शब्दों में (देखिए चित्र 2) पैमाने के स्थिर प्रतिफल का अर्थ है कि प्रक्रिया रेखा के विभिन्न बिन्दुओं पर उत्पादन के स्तर उसी अनुपात में होते हैं जिसमें कि विभिन्न बिन्दुओं की दूरियां मूल बिन्दु से होती हैं।[21] उदाहरणार्थ, यदि उत्पादन $a_2 = 2 \times$ उत्पादन a_1, तो (समान त्रिकोणों के नियम अर्थात the law of similar triangles के अनुसार) इसका अर्थ है कि भाग Oa_2 की लम्बाई दुगुनी है भाग Oa_1 की लम्बाई से, अथवा यह कहिए कि भाग Oa_1 = भाग a_1a_2। यदि हम प्रक्रिया रेखा OA पर ऐसे उत्पादन स्तर को मालूम करना चाहते हैं जो कि उत्पादन a_1 का तिगुना है (अर्थात $3a_1$ के बराबर है) तो मूल बिन्दु से ऐसी दूरी पर निशान लगायेंगे जो कि दूरी Oa_1 की तिगुनी है। हम यह कह सकते हैं कि a_2 उस उत्पादित-मात्रा को बताता है जो $2 \times a_1$ है, तथा a_3 उस मात्रा को बताता है जो कि $3 \times a_1$ है, इत्यादि। इस प्रकार प्रक्रिया रेखा OA पर बिन्दुओं के ऐसे निशान लगाये जाते हैं ताकि किन्हीं भी दो बिन्दुओं (जैसे a_1 तथा a_2, a_2 तथा a_3) के बीच दूरी बराबर हो, अर्थात $Oa_1 = a_1a_2 = a_2a_3$। स्पष्ट है कि प्रक्रिया रेखा OA पर एक उत्पादन-पैमाना (output scale) बना लिया जाता है। इसी प्रकार से हम प्रक्रिया रेखा OB पर भी एक उत्पादन पैमाना बना सकते हैं। परन्तु सामान्यतया इन दो प्रक्रिया रेखाओं पर उत्पादन पैमाना भिन्न होगा, वह एक समान नहीं होगा। इसका अर्थ है कि प्रक्रिया रेखा OB पर बिन्दु b तथा प्रक्रिया रेखा OA पर बिन्दु a_1 जो कि मूल बिन्दु O से बराबर दूरी पर हैं (क्योंकि वे मूल बिन्दु को केन्द्र या centre मानते हुए खींचे गये बिन्दुकीय वृत या dotted circle पर है), आवश्यक रूप से या सामान्यतया उत्पादन की एक बराबर या समान मात्रा को नहीं बताते।[22] दूसरे शब्दों में, प्रत्येक प्रक्रिया का उत्पादन पैमाना भिन्न होता है। यह सम्भव है कि प्रक्रिया रेखा OB पर एक दूसरा बिन्दु बिन्दु b_1 (जिसकी दूरी प्रक्रिया रेखा OA के बिन्दु a_1 से अधिक है) उस समान उत्पादन-मात्रा को बताये जो कि बिन्दु a_1 बताता है। प्रक्रिया रेखा OB पर बिन्दु b_2 उस उत्पादन-मात्रा को बताता है जो कि मात्रा b_1 की दुगुनी है, अर्थात भाग $Ob_2 = 2 \times Ob_1$; इसी प्रकार से उत्पादन $b_3 = 3 \times Ob_1$, इत्यादि। दूसरे

[20] In other words, a process ray shows the output scale, and the output scale is easily determined by the assumption of constant returns to scale (that is, by the proportionality relationship between the inputs and the output)

[21] Diagramatically (see figure 2), the constant returns to scale implies that the levels of output at different points on the process ray are proportional to their distances from the origin

[22] माना कि प्रक्रिया रेखा OA पर बिन्दु a_1 उत्पादन की 30 इकाइयाँ बताता है, तो यह जरूरी नहीं है कि प्रक्रिया रेखा OB पर बिन्दु b (जिसकी दूरी मूल बिन्दु से वही है जो कि बिन्दु a_1 की है) भी 30 इकाई के बराबर उत्पादन मात्रा को बताये।

शब्दों में, $Ob_1 = b_1b_2 = b_2b_3$, इत्यादि । उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है--

विभिन्न प्रक्रियाओं का उत्पादन-पैमाना भिन्न होता है। इसका अर्थ है कि विभिन्न प्रक्रियाओं पर ऐसे बिन्दु, जो कि मूल बिन्दु से बराबर दूरी पर होते हैं, वे आवश्यक रूप से और सामान्यतया एक समान या एक बराबर उत्पादन मात्रा को नहीं बताते। परन्तु प्रत्येक प्रक्रिया की दो सामान्य विशेषताएं होती है: (i) स्थिर साधन अनुपात, परन्तु स्थिर साधन अनुपात प्रत्येक प्रक्रिया के लिए एक समान नहीं होते, बल्कि प्रत्येक प्रक्रिया के लिए वे भिन्न होते हैं;[11] तथा (ii) साधनों और उत्पादित-मात्रा में आनुपातिकता होती है, (अर्थात प्रत्येक प्रक्रिया पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अन्तर्गत कार्य करती है।)[4]

अब हम प्रक्रियाओं की सहायता से सम-उत्पाद रेखाएं ('iso-product or equal product curves' या iso-quants) निकालते हैं। प्रत्येक प्रक्रिया-रेखा (process ray) पर ऐसे बिन्दुओं (या स्तरों) को मालूम करना सम्भव है जो कि उत्पादन के समान स्तरों को बताते है। माना कि एक फर्म को केवल तीन प्रक्रियाएं A, B, तथा D प्राप्य है जैसा कि चित्र 3 मे दिखाया गया है। माना कि a_1, b_1 तथा d_1 बिन्दु (या स्तर) उत्पादन की समान मात्रा (माना 20 इकाई) को बताते है। यदि समान उत्पादन बताने वाले इन बिन्दुओं को सरल रेखाओं की एक श्रृंखला (a series of straight lines) द्वारा मिला दिया जाये तो (चित्र 3 में) हमें एक सम-उत्पाद रेखा I_1I_1 प्राप्त हो जाती है। चित्र 3 में बिन्दु a_2, b_2 तथा d_2 उत्पादन के एक दूसरे समान स्तर को (माना 40 इकाइयों के बराबर उत्पादन को) बताते हैं; यदि हम इन बिन्दुओं को सरल रेखाओं की एक श्रृंखला द्वारा मिला दें तो हमें एक दूसरी सम-उत्पाद रेखा I_2I_2 प्राप्त हो जाती है।

चित्र 3

रेखीय प्रक्रियाओं की अनूठी विशेषताओं (unique properties of linear processes) के कारण रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत सम-उत्पाद रेखाएं, कुछ पक्षों मे (in some respects),

---
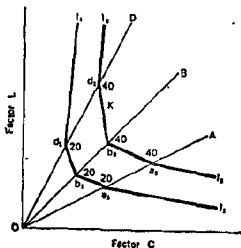
[11] *Explanatory note* For example, in fig 2, the slope of the process ray OB is steeper than that of the process ray OA, it is clear that the ratio of L to C for process B is greater than that of process A. This means that process A requires L_1 units of factor L to be combined with C_1 units of factor C, while process B requires a greater amount of factor L (i.e. L_2 units) to be combined with C_2 units of factor C. If for example, factor L stands for labour and C for factor capital, then we can say that the process B is more labour intensive than the process A; Or, conversely, that process A is more capital intensive than process B.

[4] Output scale of different processes is different. This means that points on different processes which are equidistant from the origin do not necessarily and generally indicate the same quantity of output, but each process has two common properties (i) fixed input proportion it is not the same for each process, it is different for different processes, (ii) the proportionality between inputs and output (i. e. each process operates under constant returns to scale).

परम्परागत विश्लेषण की सम-उत्पाद रेखाओ से भिन्न होती है। रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत प्रयोग की जाने वाली एक सम-उत्पाद रेखा के सम्बन्ध मे निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए।

1 सम-उत्पाद रेखाए सरल रेखाओं के भागो या टुकड़ों द्वारा निर्मित होती हे, तथा सम-उत्पाद रेखाओ मे कोने (corners) होते है, जैसा कि सम-उत्पाद रेखा I_1I_1 मे बिन्दु a_1, b_1 तथा d_1 पर कोने हैं, इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा I_2I_2 मे बिन्दु a_2, b_2 तथा d_2 पर कोने है।

[इसके विपरीत परम्परागत (traditional) विश्लेषण अर्थात सीमान्त विश्लेषण के अन्तर्गत सम-उत्पाद रेखाए अभंग (smooth) होती है।]

2. प्रत्येक सम्भव उत्पादन-स्तर के लिए एक भिन्न सम-उत्पाद रेखा होती है। इसके अतिरिक्त, उत्पादन जितना अधिक होगा, सम-उत्पाद रेखा मूल बिन्दु से उतनी ही अधिक दूर होगी।

चित्र 3 मे, सम-उत्पाद रेखा I_1I_1 बताती है 20 इकाइयों के बराबर उत्पादन को, और I_2I_2 रेखा अधिक उत्पादन स्तर, अर्थात 40 इकाइयो के बराबर उत्पादन, को बताती है, और इसलिए I_2I_2 रेखा मूल बिन्दु से अधिक दूर है अपेक्षाकृत I_1I_1 रेखा के।

3. किन्ही दो प्रक्रिया-रेखाओ के बीच एक सम-उत्पाद रेखा का रेखीय भाग (linear segment) सदैव समानान्तर (parallel) होगा किसी भी अन्य सम-उत्पाद रेखा के तत्सम्बन्धित रेखीय भाग के।[25] उदाहरणार्थ, चित्र 3 मे, सम-उत्पाद रेखा I_2I_2 का भाग d_2b_2 समान्तर है सम-उत्पाद रेखा I_1I_1 के भाग d_1b_1 के। [इसका कारण है कि त्रिकोण (triangle) Od_2b_2 की Od_2 तथा Ob_2 भुजाए (sides), रेखा d_1b_1 द्वारा आनुपातिक भागो (proportional segments) मे काट दी जाती है, अर्थात $Od_1/d_1d_2 = Ob_1/b_1b_2$]

4 सम-उत्पाद रेखा I_2I_2 के भाग d_2b_2 पर बिन्दु K दो प्रक्रियाओ D तथा B के सयोग को बताता है। बिन्दु K के मौजूद होने का अर्थ यह नही है कि एक चौथी प्रक्रिया भी मौजूद है जिसको कि मूल बिन्दु तथा बिन्दु K से गुजरने वाली रेखा द्वारा बताया जा सकता हो, ऐसा इसलिए नहीं हो सकता है कि हम यह मान कर चले है कि फर्म को केवल तीन प्रक्रियाए (A, B तथा D) ही प्राप्य है; दूसरे शब्दो मे, इसका अर्थ है कि फर्म के लिए प्राप्य टॅकनोलोजी केवल तीन प्रक्रियाओ के प्रयोग के लिए ही आज्ञा देती है।[26] बिन्दु K प्रक्रिया B तथा प्रक्रिया D के केवल एक संयोग को बताता है और यह बिन्दु K वही समान उत्पादन (अर्थात 40 इकाई) बताता है जो कि बिन्दु d_2, या b_2 या a_2 बताता है। [इसी प्रकार से भाग d_2b_2 पर कोई भी अन्य बिन्दु प्रक्रिया D तथा प्रक्रिया B के एक अन्य सयोग को बताता है। इसी प्रकार से भाग b_2a_2 पर अनेक बिन्दु है जो कि B तथा A प्रक्रियाओ के अनेक सयोगो को बताते है जिनके द्वारा समान उत्पादन (अर्थात 40 इकाई) प्राप्त किया जा सकता है।] इस प्रकार, यद्यपि फर्म तकनोकी दृष्टि से केवल तीन स्पष्ट प्रक्रियाए प्रयोग कर सकती हैं, परन्तु उसके सामने 'प्रक्रियाओ के सयोगो' की एक बडी सख्या होती है[27] जिनके बीच वह चुनाव कर सकती है।[28]

---

25 The linear segment of an iso-product curve between any two process rays will always be parallel to the corresponding linear segment of any other iso-product curve. [For example, in figure 3, the d_2b_2 segment of iso-product curve I_2I^2 is parallel to the d_1 b_1 segment of the isoproduct Curve I_1I_1]

26 दूसरे शब्दो मे, तीन प्रक्रियाओ का अर्थ है कि फर्म के लिए जो टॅक्नोलोजी प्राप्य है वह केवल तीन साधन-अनुपातो (three input ratios) के प्रयोग की आज्ञा देती है। चित्र 3 मे इन साधन-अनुपातो को तीन रेखाओ OA, OB, तथा OD के ढाल (slopes) बताते है। ध्यान रखिए कि एक प्रक्रिया और कुछ नही है बल्कि एक 'स्थिर साधन-अनुपात' (fixed input-ratio) होती है, यदि तीन साधन-अनुपात है तो तीन प्रक्रियाए होंगी, अथवा यह कहिए कि जितने साधन अनुपात होगे उतनी ही प्रक्रियाए होगी।

27 परन्तु साथ ही साथ हमे एक रेखीय प्रोग्रामिंग की इस मान्यता को नही भूल जाना चाहिए कि किसी समय विशेष पर प्रक्रियाओ की जो सख्या प्राप्य होती है वह केवल कुछ या सीमित (finite) ही होती है।

28 Thus, though the firm can use only three technically distinct processes, it has in fact a very large number of process combinations to choose from.

लक्ष्य फलन (Objective Function)

लक्ष्य-फलन उस निश्चित लक्ष्य (या उद्देश्य) को बताता है जिसको प्राप्त करना है; अथवा यह कहिए कि लक्ष्य-फलन लक्ष्य के उन तत्वों या निर्धारक-तत्वों (determinants) को बताता है जिनको कि 'अधिकतम' या 'न्यूनतम' करना होता है। यदि लाभों, आयों या उत्पादित-मात्राओं को अधिकतम करना है, तो इनको लक्ष्य-फलन (objective functions) कहा जायेगा। यदि लागतों को न्यूनतम करना है तो इनको भी लक्ष्य-फलन कहा जायेगा। मूल लक्ष्य या समस्या (original objective or problem) को 'प्राथमिक समस्या या लक्ष्य' (*Primal Problem or Objective*) कहा जाता है, और इसके विपरीत समस्या या लक्ष्य को **'प्राथमिक-विपरीत समस्या या लक्ष्य'** (*Dual Problem or Objective*) कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि लाभ को अधिकतम करना 'प्राथमिक समस्या' है, तो 'प्राथमिक-विपरीत समस्या' होगी लागत को न्यूनतम करना। इसको उल्टे ढंग से भी कह सकते है, अर्थात, यदि लागत को न्यूनतम करना 'प्राथमिक समस्या' है, तो 'प्राथमिक-विपरीत समस्या' होगी लाभ को अधिकतम करना। वास्तव में, 'प्राथमिक समस्या' तथा 'प्राथमिक-विपरीत समस्या' एक ही समस्या या लक्ष्य के केवल दो पक्ष (two aspects) होते हैं।

"रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत एक विशेष समस्या के हल को प्राप्त करने के लिए उस समस्या को 'प्राथमिक' (primal) रूप मे निर्मित किया जाये अथवा 'प्राथमिक-विपरीत' (dual) रूप में, यह निम्न बातों पर निर्भर करेगा—(i) समस्या को किस रूप मे निर्माण करने से इच्छित सूचना अधिक प्रत्यक्ष रूप से मिल सकती है, तथा (ii) समस्या के किस रूप को अधिक आसानी से हल किया जा सकता है।"[29] रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत एक समस्या को स्थापित करने या निर्मित करने में गहरे विचार (deep thinking) तथा कड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है।

एकदम शुरू से समस्या विश्लेषण को बिना दुबारा किये हुए, गणित की विधि से 'लागत को न्यूनतम करने की समस्या' (जिसको कि प्राथमिक-विपरीत या dual कहा जा सकता है) को 'लाभ को अधिकतम करने की समस्या' (जिसको कि प्राथमिक या primal कहा जा सकता है) में बदला जा सकता है; इसी प्रकार गणित विधि की सहायता से इसकी उल्टी बात को भी किया जा सकता है। दूसरे शब्दों मे, गणित विधि की सहायता से 'प्राथमिक-विपरीत' को 'प्राथमिक' में, तथा 'प्राथमिक' को 'प्राथमिक-विपरीत' मे बदला जा सकता है।[30]

'प्रतिबन्ध' अथवा 'संलग्न-दशाएं' (Constraints or Side-Conditions)

'प्रतिबन्ध' उन सीमाओं (limitations) को बताते हैं जिनका कि एक फर्म को कुछ क्रियाओं को करने या कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने में सामना करना पड़ता है। यदि एक उपभोक्ता अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है, तो उसे अपनी आय या बजट की सीमा के अन्तर्गत कार्य करना पड़ेगा; अतः उपभोक्ता के लिए उसकी आय या उसका बजट एक 'प्रतिबन्ध' है। **इसी प्रकार** से एक फर्म को अनेक प्रकार की सीमाओं या प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता है; कुछ **विशिष्ट** प्रकार के साधनों की मात्रा सम्बन्धी सीमाएं, अथवा फर्म द्वारा प्रयोग की जाने वाली सुविधाओं की सीमाएं, हो सकती है। [उदाहरणार्थ, यदि एक फर्म अपने आगम (revenue) को अधिकतम करना चाहती है, तो ऐसा करने मे उसे 'किसी साधन की मात्रा की सीमा या प्रतिबन्ध' का सामना करना पड़ सकता है, जैसे कि फर्म के पास केवल 5 मशीनें ही हों, फर्म के पास 'माल रखने की जगह' केवल एक निश्चित वर्ग फीट ही हो; फर्म की वित्तीय व साख सम्बन्धी सुविधाएं सीमित हों; इत्यादि।]

---

[29] "Whether or not a particular problem to be programmed should be set up for solution in its primal or its dual form depends upon (i) which formulation yields more directly the desired information and (ii) which formulation can be more easily solved."

[30] In other words, by mathematical device or procedure the 'dual' can be changed into 'primal', and the 'primal' can be changed into 'dual'

प्रतिबन्धों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बात ध्यान में रखने की है—

प्रतिबन्ध 'असमानताओं' (inequalities) के रूप में होते हैं, इसलिए प्रतिबन्धों को 'असमानताएं' भी कहा जाता है।[31]

वास्तविक व्यापारिक स्थितियों में एक साधन को या एक सुविधा को 'पूर्ण सीमा (full extent) तक' प्रयोग कर सकते हैं या 'पूर्ण सीमा से कम' प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, हम एक 'गोदाम की जगह' को लेते हैं, माना कि एक फर्म के पास 'माल रखने की या गोदाम की जगह' 500 वर्ग फीट से ज्यादा नहीं है; फर्म '500 वर्ग फीट से **कम जगह**' को प्रयोग में ला सकती है, परन्तु वह '500 वर्ग फीट से **अधिक** जगह' का प्रयोग **नहीं** कर सकती है, ज्यादा से ज्यादा वह 'सम्पूर्ण 500 वर्ग फीट की जगह के **बराबर**' प्रयोग में ले सकती है। अतः हम कह सकते हैं कि 'जगह बराबर है 500 वर्ग फीट के, या कम है 500 वर्ग फीट से'; गणित की भाषा में इसको संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैं : जगह (space) $\geqslant$ 500 **वर्ग फीट**, यह एक '**असमानता**' (*inequality*) है। वास्तविक जीवन में एक फर्म को इस प्रकार के 'असमानताओं के रूप में अनेक प्रतिबन्ध' (many such constraints in the form of inequalities) का सामना करना पड़ता है।

परम्परागत सीमान्त विश्लेषण 'चलन-कलन की गणितीय विधि' (tool of differential calculus) का प्रयोग करता है, परन्तु 'असमानताओं के रूप में प्रतिबन्ध या सीमाएं' रखने वाली आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में चलन-कलन की विधि को प्रयोग में लाना कठिन है या अनुचित है। 'असमानताओं' की स्थिति में मैट्रिक्स ऐलजबरा की विधियों (tools of matrix algebra), जिन पर कि रेखीय प्रोग्रामिंग की विधियाँ आधारित होती हैं, का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से निम्न साराश निकलता है—

1. प्रतिबन्ध, रेखीय प्रोग्रामिंग की आधारशिलाएं होते हैं, क्योंकि बिना प्रतिबन्धों के एक प्रोग्रामिंग समस्या का बनाना तथा हल करना सम्भव नहीं है।[32]
2. रेखीय प्रोग्रामिंग के लिए प्रतिबन्ध 'असमानताओं' के रूप में होते हैं, न कि 'समीकरणों' (equations) के रूप में।
3. एक दृष्टि से रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक श्रेष्ठ है परम्परागत सीमान्त विश्लेषण से, क्योंकि रेखीय प्रोग्रामिंग मैट्रिक्स ऐलजबरा का प्रयोग करता है और 'असमानताओं के रूप में प्रतिबन्धों' वाली व्यावहारिक आर्थिक समस्याओं का हल प्रस्तुत कर सकता है, जबकि सीमान्त विश्लेषण चलन-कलन का प्रयोग करता है और 'असमानताओं' वाली आर्थिक समस्याओं को हल करने में असमर्थ रहता है।

इसके अतिरिक्त, आर्थिक व निर्णय लेने के क्षेत्र (economic and decision taking field) में एक फर्म या उत्पादक या साहसी के सामने '**अ-ऋणात्मक दशाएं**' (*non-negative conditions*) भी होती हैं। रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्याओं (जैसे, लाभ का अधिकतम करना, लागत को न्यूनतम करना, वस्तुओं को ट्रकों, रेलों या जलयानों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को न्यूनतम लागत पर ले जाना; इत्यादि) के उद्देश्यों या परिणामों का ऋणात्मक शब्दों (negative terms) में कोई अर्थ नहीं होता है, वे अ-ऋणात्मक (non-negative) होते हैं। सामान्यतया, रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्याओं को हल करने के लिए बिजली के कम्प्यूटरों (या मशीनों) की सहायता ली जाती है। एक कम्प्यूटर ऋणात्मक मूल्य (negative values) प्रस्तुत कर सकता है, उदाहरणार्थ, एक कम्प्यूटर माल की पूर्ति करने वाले कुछ स्थानों से कुछ अन्य स्थानों को जलयानों या ट्रकों द्वारा ले जाने वाले माल की 'ऋणात्मक मात्रा' का परिणाम दे सकता है, जब तक कि कम्प्यूटर को स्पष्ट रूप से यह न बताया गया

[31] *Constraints* are in the form of 'inequalities', hence, constraints are also called *inequalities*.
[32] "Constraints are the foundations of a linear programme; for without them one cannot pose and solve a programming problem."

हो कि ऐसा नहीं करना है। कम्प्यूटर (या मशीन) यह तर्क कर सकता है कि यदि कुछ रास्तों पर ट्कों या जलयानों द्वारा माल ढोने को शून्य (zero) कर देना लाभदायक है, तो यह और भी ज्यादा लाभदायक होगा कि उन रास्तों पर माल ढोने को शून्य से भी कम कर दिया जाये, अर्थात् उसको ऋणात्मक (negative) कर दिया जाये। अतः 'अ-ऋणात्मक दशाओं' (non-negative conditions) को स्पष्ट रूप से बता देना जरूरी है।

संक्षेप में समस्त स्थिति को इस प्रकार बताया जा सकता है—

प्रोग्रामिंग तकनीकों का इस प्रकार से निर्माण किया जाता है कि वे 'असमानताओं के रूप में प्रतिबन्धों' तथा 'अ-ऋणात्मक दशाओं' दोनों पर एक साथ विचार कर सकें।[33]

सम्भाव्य हल अथवा सम्भाव्य क्षेत्र (Feasible Solution or Feasible Region)

प्रतिबन्धों (constraints) की सहायता से हम एक रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या का 'सम्भाव्य हल' (feasible solution) प्राप्त कर सकते हैं, दूसरे शब्दों में,

सम्भाव्य हल वे हल हैं जो सभी प्रतिबन्धों को सन्तुष्टि करते हैं। (Feasible solutions are those solutions which satisfy all the constraints.)

सम्भाव्य हल (या सम्भाव्य क्षेत्र) के विचार को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है; उदाहरण को विभिन्न टुकड़ों में बाँट कर व्यवस्थित ढंग से दिया गया है—

1. माना कि एक फर्म द्वारा दो वस्तुओं I तथा II का उत्पादन किया जा रहा है; X_1 बताता है वस्तु I की मात्रा को तथा X_2 बताता है वस्तु II की मात्रा को।
2. माना कि तीन साधन हैं; 'श्रम' को a द्वारा, 'यन्त्र' (equipment) को b द्वारा, तथा 'भूमि' को c द्वारा बताया गया है।
3. अब हम कुछ 'प्रतिबन्धों' को बताते हैं जिनका कि फर्म को सामना करना पड़ता है। माना कि साधन a की अधिकतम प्राप्य मात्रा 60 इकाई है, साधन b की अधिकतम प्राप्य मात्रा 24 इकाई है, तथा साधन c की अधिकतम प्राप्य मात्रा 84 इकाई है।

माना कि साधन a को 5 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है वस्तु I की एक इकाई के उत्पादन के लिए; तथा साधन a की 15 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है वस्तु II की एक इकाई के उत्पादन के लिए। उपर्युक्त सूचना के आधार पर 'साधन a की प्राप्यता (availability) के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध' को असमानता के रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$5X_1 + 15X_2 \leq 60$ [नोट : इसकी व्याख्या के लिए देखिए फुटनोट 34][34]

---

[33] Programming techniques are formulated in such a way so that they can take care of 'inequality constraints' and 'non-negative conditions' at the same time.

[34] ∵ वस्तु I की 1 इकाई के उत्पादन के लिए साधन a की 5 इकाइयाँ चाहिए।
∴ वस्तु I की X_1 इकाई के उत्पादन के लिए साधन a की $5X_1$ इकाइयों की जरूरत होगी।
इसी प्रकार,
∵ वस्तु II की 1 इकाई के उत्पादन के लिए साधन a की 15 इकाइयाँ चाहिए।
∴ वस्तु II की X_2 इकाइयों के उत्पादन के लिए साधन a की $15X_2$ इकाइयों की जरूरत होगी।

परन्तु साधन की कुल प्राप्य मात्रा 60 इकाइयों से अधिक नहीं हो सकती; दूसरे शब्दों में, *साधन की कुल प्राप्य मात्रा 60 इकाई के 'बराबर' (equal to) हो सकती है, या 60 इकाई से 'कम' (less than)*। अतः हम समस्त स्थिति को निम्नलिखित 'असमानता' (inequality) के रूप में लिख सकते हैं

$$5X_1 + 15X_2 \leq 60$$

अब हम यह मान लेते हैं कि साधन b की 3 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है वस्तु I की एक इकाई के उत्पादन के लिए; तथा साधन b की 4 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है वस्तु II की एक इकाई के उत्पादन के लिए। अतः 'साधन b की प्राप्यता के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध' को असमानता के रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$3X_1 + 4X_2 \leqslant 24$$

अब हम यह मान लेते हैं कि साधन c की 12 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है वस्तु I की एक इकाई के उत्पादन के लिए; तथा साधन c की 7 इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है वस्तु II की एक इकाई के उत्पादन के लिए। अतः 'साधन c की प्राप्यता के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध' को असमानता के रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$12X_1 + 7X_2 \leqslant 84$$

हम उपर्युक्त समस्त सूचना को संक्षेप में निम्न प्रकार से एक तालिका के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

	वस्तु I तथा वस्तु II के 1 इकाई के उत्पादन के लिए साधन की मात्रा या इकाइयाँ [Amount or units of input required for 1 unit of output of commodities I and II]		
साधन (Inputs)	वस्तु I [Commodity I] [माना वस्तु I की इच्छित इकाइयाँ X_1 हैं। Suppose required units of commodity I is X_1	वस्तु II [Commodity II] [माना कि वस्तु II की इच्छित इकाइयाँ X_2 हैं/ Suppose required units of commodity II is X_2]	साधन की कुल प्राप्य मात्रा [Total amount of input available] इकाइयाँ (Units)
a	5	15	60
b	3	4	24
c	12	7	84

वस्तु I तथा वस्तु II के उत्पादन में साधनों a, b तथा c की प्राप्यता (availability) से सम्बन्धित 'प्रतिबन्धों' को (जिनकी विस्तृत व्याख्या हम पहले ही कर चुके हैं) को एक जगह इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$5X_1 + 15X_2 \leqslant 60 \quad \dots(1)$$
$$3X_1 + 4X_2 \leqslant 24 \quad \dots(2)$$
$$12X_1 + 7X_2 \leqslant 84 \quad \dots(3)$$

चित्र 4

अब हम उपर्युक्त 'प्रतिबन्धों या असमानताओं' को तथा 'सम्भाव्य हल' या 'सम्भाव्य क्षेत्र' (जिसमें सम्भाव्य हल होते हैं) के विचारों को चित्र या ग्राफ द्वारा स्पष्ट करते हैं। ग्राफ द्वारा प्रस्तुतीकरण के लिए हम 'कम होने' (less than) के चिह्न (अर्थात् <) को छोड़ देते हैं और प्रत्येक प्रतिबन्ध को एक समीकरण (equation) मानकर चलते हैं।

असमानता न. 1 को समीकरण
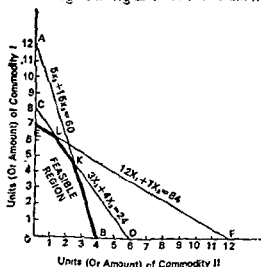
मानकर चलते हैं (चिह्न < को छोड देते हैं), और इसको निम्न प्रकार से लिखते हैं—

$$5X_1+15X_2=60 \qquad \ldots(4)$$

यदि $X_1=0$ रखें, तो हम समीकरण न. 4 को X_2 के मूल्य के लिए हल कर सकते हैं, अर्थात

$$0+15X_2=60$$

or $$X_2=\frac{60}{15}=4$$

इस प्रकार, यदि $X_2=0$ रखें, तो हम समीकरण न. 4 को X_1 के लिए हल कर सकते हैं, अर्थात

$$5X_1+0=60$$

or $$X_1=\frac{60}{5}=12$$

अब $X_1=12$ तथा $X_2=4$ को ध्यान मे रखते हुए हम एक रेखा AB खींच सकते हैं, जैसा कि चित्र 4 में दिखाया गया है; और यह रेखा AB ग्राफ के रूप मे प्रस्तुतीकरण है समीकरण नं. 4 का, अर्थात समीकरण $5X_1+15X_2=60$ का।

असमानता न० 2 को एक समीकरण के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$3X_1+4X_2=24 \qquad \ldots(5)$$

पहले हम $X_1=0$ और फिर $X_2=0$ रखते है और तब समीकरण न. 5 को हल करते हैं। ऐसा करने से X_1 तथा X_2 के हमे निम्न मूल्य प्राप्त होते हैं—$X_1=8$, तथा $X_2=6$। अब हम चित्र 4 मे CD रेखा खींचते हैं जो कि समीकरण नं० 5 अर्थात समीकरण $3X_1+4X_2=24$ को बताती है।

अब हम असमानता न. 3 को इस प्रकार समीकरण के रूप मे रखते हैं—

$$12X_1+7X_2=84 \qquad \ldots(6)$$

पहले हम $X_1=0$ और फिर $X_2=0$ रखते हैं और तब समीकरण नं. 6 को हल करते हैं। ऐसा करने से X_1 तथा X_2 के हमे मूल्य प्राप्त हो जाते हैं जो कि इस प्रकार हैं—$X_1=7$ तथा $X_2=12$ अब हम चित्र 4 मे रेखा EF खींचते हैं जो कि समीकरण नं. 6 अर्थात $12X_1+7X_2=84$ को बताती है।

चित्र 4 मे रेखा CD काटती है रेखा EF को बिन्दु L पर; तथा रेखा AB काटती है रेखा CD को बिन्दु K पर। अत, विभिन्न समीकरणों से बँधे हुए क्षेत्रफलों के सामान्य भाग (common part) को क्षेत्रफल OELKB बताता है।[35] दूसरे शब्दो मे,

> **क्षेत्रफल OELKB सब प्रतिबन्धों की संतुष्टि करता है और इसलिए यह 'सम्भाव्य हलो का क्षेत्र' या 'सम्भाव्य क्षेत्र' को बताता है; सम्भाव्य हल इस क्षेत्रफल के अन्दर होते हैं तथा परिधि रेखा (boundary line) ELKB पर होते हैं। हमें यह बात विशेष तौर पर ध्यान में रखनी चाहिए कि बिन्दु E, L, K, तथा B कोनों (corners) को बताते हैं।[36]**

---

[35] Hence the area OELKB represent the common part of all the areas outlined by the various equations.

[36] The area OELKB satisfies all the constraints and, hence, it is called the *'region of feasible solutions'* or the *'feasible region'*, the feasible solutions lie within this area and on the boundary line ELKB We should take special note of the fact that points E, L, K and B represent *Corners.*

अनुकूलतम हल (Optimum Solution)

सम्भाव्य हलों में से सर्वोत्तम हल को 'अनुकूलतम हल' कहा जाता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि रेखीय प्रोग्रामिंग में अनुकूलतम हल प्रायः एक कोने पर प्राप्त होता है।[37] चित्र 4 में इस प्रकार के कोने बिन्दु E, L, K या B बताते हैं।] कभी-कभी रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक एक अकेला अनुकूलतम हल नहीं दे पाता, बल्कि कई अनुकूलतम हल प्रस्तुत करता है। निस्सन्देह, अनुकूलतम हल को प्राप्त करने के लिए, 'प्रतिबन्धों' के साथ-साथ, 'लक्ष्य-फलन' को लेना पड़ता है; बिना 'लक्ष्य-फलन' के सन्दर्भ के 'अनुकूलतम हल' को प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे शब्दों में,

> एक 'सम्भाव्य हल' वह हल है जो कि सभी दिये हुए प्रतिबन्धों की सन्तुष्टि करता है; तथा एक 'अनुकूलतम सम्भाव्य हल' या 'अनुकूलतम हल' वह हल है जो कि लक्ष्य-फलन को संतुष्टि करता है।[38]

[सामान्यतया, एक गणित व कम्प्यूटर की रीति, जो कि 'सिम्पलेक्स रीति' (Simplex Method) कही जाती है, का प्रयोग अनुकूलतम हल को प्राप्त करने में किया जाता है।[39] सिम्पलेक्स रीति बहुत जटिल होती है। "संक्षेप में इसका सार है: सिम्पलेक्स रीति सम्भाव्य हलों की लगातार व बार-बार जाँच करती है, लगातार व बार-बार अनुचित हलों को निकालती जाती है जब तक कि अनुकूलतम हल प्राप्त न हो जाये।"][40]

[इस अध्याय में हम रेखीय प्रोग्रामिंग के एक ग्राफिक विवेचन अर्थात 'ग्राफ द्वारा विवेचन (non-mathematical or graphical treatment) से सम्बन्ध रखते हैं, न कि गणितात्मक सिम्पलेक्स रीति से।]

रेखीय प्रोग्रामिंग के सरल उदाहरण
(SIMPLE EXAMPLES OF LINEAR PROGRAMMING)

रेखीय प्रोग्रामिंग के अर्थ तथा उसके मुख्य विचारों या धारणाओं (b... concepts) की विस्तृत विवेचना ऊपर की जा चुकी है। अब हम रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक का दो सरल उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं। एक उदाहरण किसी मात्रा को 'न्यूनतमकरने' की समस्या का है, तथा दूसरा उदाहरण किसी मात्रा को 'अधिकतम करने' की समस्या का है।[41]

'न्यूनतम करने' का उदाहरण: 'खुराक की समस्या' जिसमें खुराक की लागत को न्यूनतम करना है। (An example of Minimisation : A problem of diet involving the minimisation of Cost.)

एक व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रकार के पौष्टिक तत्वों (nutrients) की प्रतिदिन-न्यूनतम आवश्यकताएं (daily minimum requirements) होती हैं। इस उदाहरण के विभिन्न अंगों को हम निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर रहे हैं:

1. सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि एक व्यक्ति को तीन प्रकार के पौष्टिक तत्वों

---

[37] The Optimum Solution is the best out of the feasible solutions. It is to be noted that in linear programming technique optimum solution is generally found at a *Corner*.

[38] A 'feasible solution' is that solution which satisfies all the given constraints. And an 'optimum feasible solution' or 'optimum solution' is that solution which satisfies the objective function

[39] सिम्पलेक्स रीति बहुत कठिन या जटिल होती है और सरल नहीं होती जैसा कि इसके नाम में शब्द 'सिम्पलेक्स' (अर्थात सरल) आभास देता हुआ लगता है।

[40] "In essence, the simplex method...consists of successively testing feasible solutions, successively eliminatin... ...e poorer ones, until finally the optimum solution emerges."

[41] ये दोनों उदाहरण प्रो. ए. सी. चियांग (Prof A. C. Chiang) पर आधारित हैं।

की आवश्यकता है—कैलशियम (calcium), प्रोटीन (protein), तथा कैलोरीज (calories)।

2. यह भी मान लेते हैं कि एक व्यक्ति की खुराक मे दो प्रकार के खाद्य पदार्थों (food items) का प्रयोग हो रहा है—खाद्य पदार्थ न. I तथा खाद्य पदार्थ नं. II।
3. इन दोनों खाद्य पदार्थों की कीमतों व उनमे पौष्टिक-तत्त्वों की मात्राओं को, तथा एक व्यक्ति के लिए प्रत्येक पौष्टिक-तत्त्व की न्यूनतम-आवश्यकता को निम्न तालिका (table) मे दिखाया गया है :

	खाद्य पदार्थ नं. I (प्रति किलो) Food I (per kilo)	खाद्य पदार्थ नं II (प्रति किलो) Food II (per kilo)	
कीमत (Price)	·60 रु०	1 00 रु०	पौष्टिक तत्त्वों की प्रतिदिन न्यूनतम आवश्यकता (Minimum daily requirement of nutrients)
Calcium (unit)	10	4	20
Protein (unit)	5	5	20
Calories (unit)	2	6	12

[नोट : इस तालिका को देखने से सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है, परन्तु फिर भी इसकी व्याख्या के लिए फुट नोट नं. 42 को देखिए।][42]

4. माना खाद्य पदार्थ I की x_1 मात्रा तथा खाद्य पदार्थ II की x_2 मात्रा खरीदी जायेगी।
5. माना कि कुल लागत C के बराबर है, जो कि व्यक्ति के लिए खाद्य पदार्थों की x_1 तथा x_2 मात्राओं को खरीदने से होगी। इस लागत C को ही न्यूनतम करना हमारा लक्ष्य (objective) है।

उपर्युक्त समस्त सूचना के आधार पर हम रेखीय प्रोग्रामिंग की इस समस्या को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं :

Objective Function : Minimize $C = 0{\cdot}6x_1 + x_2$

Constraints : $10x_1 + 4x_2 \geqslant 20$ (Calcium Constraint)

$5x_1 + 5x_2 \geqslant 20$ (Protein Constraint)

$2x_1 + 6x_2 \geqslant 12$ (Calorie Constraint)

Non-negative Conditions : $x_1 \geqslant 0$ [अथवा, इनको इस प्रकार भी लिख सकते हैं—
$x_2 \geqslant 0$ $\quad x_1, x_2 \geqslant 0$]

नोट : इन सब समीकरणों तथा असमानताओं (equations and inequalities) को समझने के लिए देखिए फुटनोट नं० 43.][43]

---

[42] तालिका से स्पष्ट है कि खाद्य पदार्थ I की प्रति किलो कीमत 60 रु. है तथा खाद्य पदार्थ II की प्रति किलो कीमत 1 रु. है। खाद्य पदार्थ I की 1 किलो मात्रा से कैलशियम की 10 इकाइयाँ तथा खाद्य पदार्थ II की 1 किलो की मात्रा से कैलशियम की 4 इकाइयां प्राप्त होती हैं; तथा कैलशियम की कुल न्यूनतम आवश्यकता 20 इकाइयों की है। इसी प्रकार तालिका मे प्रोटीन तथा केलोरीज के बारे मे सूचना को पढ सकते हैं।

[43] माना कि पौष्टिक तत्त्वों की न्यूनतम मात्रा को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को खाद्य पदार्थ I की x_1 मात्रा तथा खाद्य पदार्थ II की x_2 मात्रा खरीदनी चाहिए; (x_1 तथा x_2 के मूल्यों (values)

(क्रमश)

अब हम पीछे दी गयी रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या को ग्राफ द्वारा हल (solve) करते हैं, अर्थात्, समस्या का 'अनुकूलतम हल' (*Optimum solution*) को ग्राफ द्वारा बताते हैं।

अनुकूलतम हल 'सम्भाव्य हलों' (feasible solutions) में से एक होगा, अर्थात् वह 'सम्भाव्य क्षेत्र' (feasible region) में होगा।

अतः 'अनुकूलतम हल' को मालूम करने के लिए पहले हमें 'सम्भाव्य क्षेत्र' को मालूम करना पड़ेगा; तथा सम्भाव्य क्षेत्र को मालूम करने के लिए प्रतिबन्धों (constraints) को ग्राफ में दिखाना पड़ेगा।

प्रतिबन्धों को ग्राफ में दिखाने के लिए हम उनके 'असमानताओं (inequalities) के रूप को बदल कर उन्हें 'समीकरणों' (equations) के रूप में रखते हैं—

$$10x_1+4x_2=20 \quad \ldots \quad (1)$$
$$5x_1+5x_2=20 \quad \ldots \quad (2)$$
$$2x_1+6x_2=12 \quad \ldots \quad (3)$$

हम समीकरण (equation) न. 1 को ग्राफ पर प्लोट (plot) करके रेखा AB प्राप्त

को हम ज्ञात करेंगे।] अब हम तालिका की सहायता से प्रतिबन्धों (constraints) को असमानताओं (inequalities) के रूप में लिख सकते हैं—

∵ खाद्य पदार्थ I की 1 इकाई (अर्थात 1 किलो) से कैलशियम की 10 इकाइयाँ प्राप्त होती हैं।
∴ खाद्य पदार्थ I की x_1 इकाइयों से कैलशियम की $10x_1$ इकाइयाँ प्राप्त होंगी।
इसी प्रकार,
∵ खाद्य पदार्थ II की 4 इकाई (या 1 किलो) से कैलशियम की 4 इकाइयाँ प्राप्त होती हैं।
∴ खाद्य पदार्थ II की x_2 इकाइयों से कैलशियम की $4x_2$ इकाइयाँ प्राप्त होंगी।
खाद्य पदार्थ I तथा II दोनों से मिलकर कैलशियम की न्यूनतम आवश्यकता 20 इकाइयों के बराबर तो होनी ही चाहिए, परन्तु कैलशियम की प्राप्ति 20 इकाइयों से ज्यादा भी हो सकती है। अतः कैलशियम के प्रतिबन्ध (*Calcium Constraint*) को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं:

$$10x_1+4x_2 \geqslant 20$$

इसी प्रकार से हम प्रोटीन तथा कैलोरीज के प्रतिबन्धों को क्रमशः (respectively) नीचे दिये रूप में लिख सकते हैं :

$$5x_1+5x_2 \geqslant 20 \quad \text{(Protein Constraint)}$$
$$2x_1+6x_2 \geqslant 12 \quad \text{(Calories Constraint)}$$

चूंकि खाद्य पदार्थ I की x_1 मात्रा तथा खाद्य पदार्थ II की x_2 मात्रा ऋणात्मक (negative) नहीं हो सकती है, अर्थात x_1 तथा x_2 के मूल्य (values) शून्य (zero) से कम नहीं होंगे, वे 'शून्य के बराबर' हो सकते हैं या 'शून्य से अधिक' हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में, '*अ-ऋणात्मक दशाओं*' (*Non-negative conditions*) को निम्न प्रकार से लिखा जायेगा :

$$x_1 \geqslant 0$$
$$x_2 \geqslant 0 \qquad [\text{अथवा, } x_1, x_2 \geqslant 0]$$

अब हम '*लक्ष्य-फलन*' (*Objective function*) को लेते हैं। माना दोनों खाद्य पदार्थों की x_1 तथा x_2 मात्राओं के प्रयोग करने से कुल लागत C है—

∵ खाद्यपदार्थ I की 1 इकाई (या 1 किलो) की कीमत अर्थात व्यक्ति के लिए लागत 0.6 रु. है
∴ खाद्यपदार्थ I की x_1 इकाइयों की व्यक्ति के लिए लागत 0.6 x_1 रु. होगी

इसी प्रकार से खाद्यपदार्थ II की x_2 इकाई की कीमत अर्थात व्यक्ति के लिए लागत $1 \times x_2 = x_2$ रु. होगी। इन दोनों खाद्यपदार्थों की कुल कीमत अर्थात व्यक्ति के लिए कुल लागत बराबर होनी चाहिए C रु. के, दूसरे शब्दों में—

$$C = 0.6x_1 + x_2$$

यह 'लक्ष्य-फलन' है जो कि बताता है कि हमारा लक्ष्य कुल लागत C को न्यूनतम (minimize) करना है।

करते हैं;[44] देखिए चित्र 5 को । चूंकि प्रत्येक प्रतिबन्ध 'अधिक होने या बराबर होने' (अर्थात $\geqslant$) के प्रकार का है, इसलिए इस रेखा AB के दायें (right) की तरफ के क्षेत्र में सभी बिन्दु तथा स्वयं इस रेखा की परिधि या बोर्डर (border) पर बिन्दु 'कैलशियम प्रतिबन्ध' (*Calcium Constraint*) को सन्तुष्टि करते है । रेखा AB को 'कैलशियम बोर्डर' (calcium border) भी कहा जाता है ।
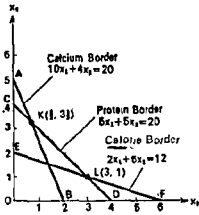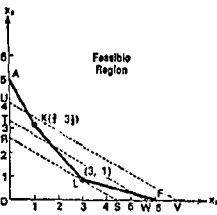
चित्र 5 चित्र 6

इसी प्रकार (चित्र 5 में) समीकरण नं. 2 को ग्राफ पर प्लोट (plot) करके रेखा CD प्राप्त हो जाती है जो कि प्रोटीन बोर्डर (protein border) को बताती है; इस रेखा के बोर्डर पर तथा इस रेखा के दायीं तरफ के क्षेत्र में सभी बिन्दु 'प्रोटीन प्रतिबन्ध' (protein constraint) की संतुष्टि करते हैं ।

इसी प्रकार समीकरण नं० 3 को ग्राफ पर प्लोट करके रेखा EF प्राप्त हो जाती है (चित्र 5 में), जो कैलोरी बोर्डर (calorie border) को बताती है अर्थात कैलोरी प्रतिबन्ध की संतुष्टि करती है ।

चित्र 5 में कोनेदार रेखा AKLF पर प्रत्येक बिन्दु तथा इस रेखा AKLF के दायीं तरफ के क्षेत्र में प्रत्येक बिन्दु 'तीनों प्रतिबन्धों' की एक साथ संतुष्टि करता है । दूसरे शब्दों में, कोनेदार रेखा AKLF के दायीं तरफ का समस्त क्षेत्र **'सम्भाव्य-क्षेत्र'** (*feasible region*) है, जिसमें कि प्रत्येक बिन्दु **'सम्भाव्य हल'** (***feasible solution***) को बताता है, परन्तु ध्यान रहे कि कोनेदार बाउण्ड्री रेखा (kinked boundary line) AKLF भी सम्भाव्य-क्षेत्र मे शामिल होती है । 'सम्भाव्य-क्षेत्र' को अलग से चित्र 6 में भी दिखाया गया है ।

यह ध्यान देने की बात है कि सम्भाव्य-क्षेत्र की कोनेदार बाउण्ड्री तीनों प्रतिबन्धो के कुछ

---

[44] व्याख्यात्मक (explanatory) **नोट** : किसी प्रतिबन्ध को ग्राफ पर कैसे प्लोट करते हैं, इस बात को हम पहले बता चुके हैं; पाठको की सुविधा के लिए फिर बताते हैं । समीकरण $10x_1+4x_2=20$ में पहले हम $x_1=0$ रखते हैं, तो हमे प्राप्त होगा $4x_2=20$, अथवा $x_2=\frac{20}{4}=5$. इसके बाद हम $x_2=0$ रखते हैं तो हमे प्राप्त होगा $10x_1=20$, अथवा $x_1=\frac{20}{10}=2$. इस प्रकार $x_1=2$ जो कि चित्र 5 मे बिन्दु B बताता है, तथा $x_2=5$ जो कि चित्र में बिन्दु A बताता है; A तथा B को मिला देने से हमें रेखा AB प्राप्त हो जाती है जो कि 'कैलशियम प्रतिबन्ध' या 'कैलशियम बोर्डर' को बताती है । इस रेखा की परिधि (border) पर तथा इस रेखा के दायी तरफ के क्षेत्र मे सभी बिन्दु कैलशियम प्रतिबन्ध की संतुष्टि करते है ।

चुने हुए टुकड़ो (या भागों) तथा अक्षों (axes) से बनी हुई है। चित्र 5 में बाउण्ड्री (AKLF) पर, 'कोने वाले बिन्दु' (*corner points*), जिनको 'सिरे के बिन्दु' (*extreme points*) भी कहा जाता है, दो बोर्डर रेखाओं के कटाव-बिन्दु हैं (जैसे बिन्दु L तथा K);[45] अथवा एक बोर्डर रेखा तथा एक अक्ष (axis) के कटाव पर है (जैसे बिन्दु F तथा A)।[46] ये 'सिरे-के-बिन्दु' या 'कोने वाले बिन्दु' अनुकूलतम-हल (optimal solution) को प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।[47]

सम्भाव्य-क्षेत्र मे सभी बिन्दु दोनो खाद्य पदार्थों के उन सभी सयोगों (combinations) को बताते हैं जो कि 'सभी प्रतिबन्धो' (all constraints) की, तथा 'अ-ऋणात्मक दशाओं' (non-negative conditions) की भी, सतुष्टि करते हैं। परन्तु इन सयोगों में कुछ संयोग नीची क्रय-लागत (lower purchasing cost) को बतायेंगे अपेक्षाकृत अन्य संयोगों के। प्रतिदिन खुराक की लागत C को न्यूनतम करने के लिए हमें लक्ष्य-फलन (objective function) पर विचार करना होगा।

लक्ष्य फलन है—

$$C = \cdot 6x_1 + x_2$$

अथवा $$x_2 = C - \cdot 6x_1 \qquad \ldots(4)$$

[नोट : इसको समझने के लिए फुटनोट 48 को देखिए]।[48]

C को पेरामीटर (या स्थिर सख्या) मानते हुए, हम समीकरण न. 4 को समानान्तर सरल रेखाओ के एक परिवार के रूप मे ग्राफ पर दिखा या प्लोट कर सकते है; इनमें से प्रत्येक का ढाल −0 6 से सम्बन्धित कोण के बराबर होगा। इनमें से तीन सम्भव रेखाओ को, बिन्दुकीय रेखाओ

---

[45] चित्र 5 मे बिन्दु L के coordinates है (3, 1) तथा बिन्दु K के $(\frac{2}{3}, 3\frac{1}{3})$; ये ग्राफ पर देखने से मालूम पड़ जाते हैं। बिन्दु L के coordinates को दो युगपत समीकरणों (simultaneous equations)—$5x_1 + 5x_2 = 20$ तथा $2x_1 + 6x_2 = 12$—को हल करके भी ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार बिन्दु K के coordinates को $5x_1 + 5x_2 = 20$ तथा $10x_1 + 4x_2 = 20$ समीकरणो को हल करके ज्ञात किया जा सकता है।

[46] बिन्दु F के coordinates हैं (6, 0), तथा बिन्दु A के coordinates हैं (0, 5) जसा कि ग्राफ से स्पष्ट होता है, अर्थात चित्र 5 से।

[47] It is to be noted that the kinked boundary of the feasible region is composed of selected segments of the three constraint borders and of the axes. Further, in Fig. 5, the *corner-points*, also called as *extreme points* occur either at the intersection of two border-lines (e. g., points L and K) or at the intersection of one border line and one axis (e g , points F and A) *The corner-points or extreme-points are significant from the point of view of optimal solution.*

[48] लक्ष्य-फलन को $x_2 = C - 6x_1$ के रूप मे इसलिए रखते है ताकि इसकी तुलना एक सरल रेखा के प्रमापित समीकरण (standard equation of a straight line) $Y = mx + c$ से कर सकें, इस समीकरण मे c एक constant या parameter है तथा m सरल रेखा के ढाल को बताता है अर्थात यदि यह सरल रेखा x-axis के साथ ϕ के बराबर कोण (angle) बनाती है तो $\tan\ \phi = m$, अथवा कोण $\phi = \tan^{-1}(m)$; कोण ϕ के मूल्य को हम log table से मालूम कर सकते है यदि m का मूल्य दिया हो। हमारे इस उदाहरण मे अर्थात लक्ष्य-फलन के समीकरण $x_2 = C - \cdot 6x_1$ मे m का मूल्य $-\cdot 6$ दिया हुआ है, इसलिए कोण $\phi = \tan^{-1}(m) = \tan^{-1}(-6)$, और इस प्रकार हम कोण ϕ का मूल्य मालूम करके $x_2 = C - \cdot 6x_1$ को ग्राफ पर खीच सकते है, अथवा यह कहिए कि लक्ष्य-फलन के समीकरण $x_2 = C - \cdot 6x_1$ को हम ग्राफ पर समानान्तर रेखाओं के एक परिवार (a family of parallel lines) के रूप मे खीच सकते है, प्रत्येक समानान्तर रेखा का ढाल $-\cdot 6$ से सम्बन्धित कोण के बराबर होगा (इसको हम log table की सहायता से मालूम कर सकते हैं)।

(dotted lines) के रूप में चित्र 6 में दिखाया गया है।[49] इनमें से प्रत्येक रेखा लागत अर्थात C के एक निश्चित मूल्य (definite value) को बताती है, वास्तव में ये तीनों रेखाएं एक प्रकार से 'सम लागत रेखाएं' (*iso-cost lines*) हैं। अतः लागत को न्यूनतम करने के लिए हमें 'सम्भाव्य-क्षेत्र' (feasible region) में रहते हुए सबसे नीची सम-लागत रेखा (lowest iso-cost line) को चुनना होगा। चित्र 6 से स्पष्ट है कि सम्भाव्य-क्षेत्र में रहते हुए सबसे नीची सम-लागत रेखा RS है जो कि 'कोने के बिन्दु' या 'सिरे के बिन्दु' L को 'सम्पर्क' (*contact*) करती हुई जाती है, ग्राफ से पता चलेगा कि इस बिन्दु L के coordinates है—$x_1=3$ तथा $x_2=1$।

स्पष्ट है कि हमारी रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्या का 'अनुकूलतम सम्भाव्य हल' (*optimal feasible solution*) अथवा, संक्षेप में, 'अनुकूलतम हल' (*optimal solution*) है खाद्य पदार्थ I की 3 इकाइयाँ (क्योंकि $x_1=3$ है) तथा खाद्य पदार्थ II की 1 इकाई (क्योंकि $x_2=1$ है)। इसका अर्थ है कि खूराक की न्यूनतम लागत है—$C=\cdot 6x_1+x_2=\cdot 6(3)+1=$ Rs 2·80, जबकि दोनों खाद्य पदार्थों की कीमतें दी हुई हैं। यह ध्यान देने की बात है 'अनुकूलतम हल' सामान्यतया किसी एक 'कोने के बिन्दु' (corner-point) या एक 'सिरे के बिन्दु' (extreme point) पर ही प्राप्त होता है (जैसा कि हमारे उदाहरण में कोने का बिन्दु L अनुकूलतम हल को बताता है)।

अब हम $x_1=3$ तथा $x_2=1$ को ध्यान में रखते हुए प्रतिबन्धों अर्थात् असमानताओं की सहायता से कैलशियम, प्रोटीन तथा कैलोरीज की प्रयोग की जाने वाली इकाइयों को मालूम करते हैं—

Constraint	Minimum Requirement	Remarks
Calcium Constraint $10x_1+4x_2$ or $10(3)+4(1)$ or $30+4$ or 34	20	According to the Optimal Solution 34 units of calcium are used whereas the minimum requirement is 20 units; thus, the *Optimal Solution overfulfills the calcium requirement.*
Protein $5x_1+5x_2$ Constraint or $5(3)+5(1)$ or $15+5$ or 20	20	According to the Optimal Solution 20 units of Protein are used and the minimum requirement is also 20 units. Thus, the *Optimal Solution exactly fulfills the protein requirement.*
Calories Constraint $2x_1+6x_2$ or $2(3)+6(1)$ or $6+6$ or 12	12	According to the Optimal Solution 12 units of calories are used and the minimum requirement is also 12 units; thus, the Optimal Solution exactly fulfills the calories requirement.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अनुकूलतम हल प्रोटीन तथा कैलोरीज की आवश्यकताओं (requirements) की 'पूर्ण रूप से सतुष्टि' (exactly fulfill) करता है, जबकि कैलशियम की आवश्यकता को 'पूर्ण रूप से अति-सतुष्टि' (overfulfill) करता है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न नहीं

[49] इसको समझने के लिए फुटनोट न. 48 को देखिए।

होती जबकि सभी प्रतिबन्ध 'निश्चित समीकरणों' (exact equations) के रूप में होते।[50]

कीमत-परिवर्तनों का प्रभाव (Effect of Price Changes)

अनुकूलतम हल को मालूम करते समय हम खाद्यपदार्थ नं. 1 तथा नं II की कीमतों को दिया हुआ या स्थिर मान कर चले थे, माना कि उनकी कीमतें क्रमशः P_1 तथा P_2 है। माना कि खाद्यपदार्थों की कीमतों P_1 तथा P_2 में परिवर्तन हो जाता है, तो अनुकूलतम हल पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? हम जानते हैं कि एक सम-लागत रेखा (iso-cost line) का ढाल कीमतों के अनुपात, अर्थात् $-\frac{P_1}{P_2}$, को बताता है, हमारे उदाहरण में, कीमतों का अनुपात, अर्थात् सम लागत रेखा का ढाल, $= -\frac{6}{1} = -6$]। इसलिए, **कीमतों में परिवर्तन का तात्कालिक प्रभाव सम-लागत रेखाओं पर पड़ेगा।** परन्तु कई सम्भावनाएं उत्पन्न हो सकती है, कुछ निम्नलिखित हैं—

1. यदि दोनों कीमतें एक ही अनुपात में परिवर्तित होती हैं, तो सम-लागत रेखाओं का ढाल अपरिवर्तित (unchanged) रहेगा। ऐसी स्थिति में प्रारम्भिक अनुकूलतम हल (अर्थात् $x_1 = 3$ तथा $x_2 = 1$) बना रहेगा; यद्यपि P_1 तथा P_2 में वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप लागत C का अक बढ़ जायेगा या घट जायेगा।
2. दोनों कीमत विभिन्न अनुपात में परिवर्तित हो सकती है, परन्तु दोनों के परिवर्तन में अन्तर बहुत थोड़ा हो सकता है। ऐसी स्थिति में सम-लागत रेखाओं के ढाल में बहुत थोड़ा परिवर्तन होगा [माना कि हमारे उदाहरण में सम-लागत रेखा के ढाल में -6 से परिवर्तन हो सकता है -4 का या -8 का], चित्र 6 को देखने से स्पष्ट होता है कि ऐसी स्थिति में सम-लागत रेखा RS थोड़ा दायें या थोड़ा बायें को हट सकती है, परन्तु फिर भी वह बिन्दु L से 'सम्पर्क'

---

[50] व्याख्यात्मक (explanatory) नोट : वास्तव में उपर्युक्त खुराक समस्या (diet problem) और कुछ नहीं है बल्कि न्यूनतम-लागत-सयोग (least-cost combination) की समस्या का एक दूसरा रूप है। सम-लागत (iso-cost) का विचार बिलकुल परम्परागत विश्लेषण (traditional analysis) की भाँति है जिसमें कि चलन-कलन (differential calculus) का प्रयोग किया जाता है। परन्तु यहाँ पर परम्परागत विश्लेषण के 'अभग सम-उत्पाद रेखा' (smooth iso-product curve) के स्थान पर 'कोनेदार बाउण्ड्री वाले सम्भाव्य क्षेत्र' (feasible region with a kinked boundary) का प्रतिस्थापन (replacement) हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप चलन-कलन के अन्तर्गत **'स्पर्श बिन्दु'** (*point of tangency*) के विचार के स्थान पर रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत **'सम्पर्क बिन्दु'** (*point of contact*) का विचार होता है। चित्र 6 में 'सम्पर्क-बिन्दु' बाउण्ड्री के एक सिरे-के-बिन्दु या कोने-के-बिन्दु L पर है। वास्तव में रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्याओं का अनुकूलतम हल सामान्यतया एक सिरे-के-बिन्दु या कोने के बिन्दु पर ही प्राप्त होता है। एक सिरे का बिन्दु सदैव दो प्रतिबन्ध बोर्डरों (two constraint borders) के कटाव को अथवा एक प्रतिबन्ध बोर्डर तथा एक अक्ष (axis) के कटाव को बताता है, इसलिए 'अनुकूलतम कोने' (optimum corner) को मालूम कर लेने के बाद हम दो सम्बन्धित काटने वाली रेखाओं के समीकरणों को एक साथ (simultaneously) हल करके भी 'अनुकूलतम हल' को प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान उदाहरण में इसे 'अनुकूलतम कोना' बिन्दु L बताता है जो कि प्रोटीन तथा कैलोरी बोर्डरों का कटाव-बिन्दु (point of intersection) है। प्रोटीन तथा कैलोरी के समीकरण हैं—

$$5x_1 + 5x_2 = 20$$
$$2x_1 + 6x_2 = 12$$

इन युगपत समीकरणों (simultaneous equations) को हल करके हम x_1 तथा x_2 के मूल्य (values) प्राप्त कर लेते हैं, इनको हल करने से प्राप्त होता है—$x_1 = 3$ तथा $x_2 = 1$; ये मूल्य 'अनुकूलतम हल' बताने वाले कोने के बिन्दु L के हैं।

(contact) स्थापित करती हुई जायेगी, अर्थात् पहले वाला ही अनुकूलतम हल बना रहेगा और उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस प्रकार से हम देखते हैं कि चलन-कलन (differential calculus) के अन्तर्गत 'स्पर्श-बिन्दु' (point of tangency) की भांति, रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत 'सम्पर्क-बिन्दु' (point of contact), अर्थात् 'अनुकूलतम कोना' (optimum corner), कीमत में थोड़े परिवर्तनों के प्रति चेतनाशील (sensitive) नहीं होता।[51]

3 दोनों कीमतों में इस प्रकार का परिवर्तन हो सकता है कि सम-लागत रेखा की स्थिति ऐसी हो जाये कि वह प्रोटीन बोर्डर के समानान्तर (parallel) हो जाये।[52] ऐसी स्थिति में सबसे नीची सम-लागत रेखा 'सम्भाव्य क्षेत्र' के किसी एक 'कोने के बिन्दु' पर सम्पर्क (contact) स्थापित नहीं करेगी बल्कि सम्भाव्य क्षेत्र की बाउण्ड्री के एक समस्त सिरे (edge) के साथ सम्पर्क स्थापित करेगी, जैसा कि चित्र 6 में सबसे नीची सम-लागत रेखा सम्भाव्य क्षेत्र की बाउण्ड्री के एक समस्त सिरे KL के साथ 'सम्पर्क' स्थापित करेगी। इसके परिणामस्वरूप भाग KL पर सभी बिन्दु, बिन्दु K से लेकर बिन्दु L तक, समान रूप से अनुकूलतम हल को बतायेंगे। इस दशा से ऐसा प्रतीत होता है एक रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या का अनुकूलतम हल, सभी स्थितियों में, सदैव किसी एक 'कोने के बिन्दु' पर प्राप्त नहीं होता। परन्तु गहराई से सोचने से पता लगेगा कि इस प्रकार की 'बहु-अनुकूलतम दशा' (multiple optimum case) में भी अनुकूलतम हल एक कोने पर नहीं तो दो कोनों (K तथा L) पर प्राप्त होता है। अतः इस दृष्टि से यह बात गलत नहीं है कि एक रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या का अनुकूलतम हल सदैव किसी एक 'कोने' (corner) पर प्राप्त होता है। वास्तव में, रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्याओं के अनुकूलतम हल को मालूम करने की 'सिम्प्लेक्स रीति' (Simplex Method), जो कि बीजगणित (algebra) पर आधारित है, के पीछे यही विचारधारा है।

---

[51] Thus, like the 'point of tangency' in differential calculus, the 'point of contact' (or the 'optimum corner') is not sensitive to small changes in price parameter.

[52] माना दोनों खाद्यपदार्थों की कीमतें बराबर हो जाती है, जैसे, $P_1 = P_2 = 1$, तब सम-लागत रेखा का ढाल होगा—$\frac{P_1}{P_2} = -1$; प्रोटीन बोर्डर का ढाल भी -1 है; अतः -1 का ढाल रखने वाली सम-लागत रेखाएं समानान्तर (parallel) होंगी प्रोटीन बोर्डर के। ऐसी स्थिति में सबसे नीची सम-लागत रेखा सम्भाव्य क्षेत्र की बाउण्ड्री के एक समस्त सिरे के साथ सम्पर्क स्थापित करेगी, जैसाकि चित्र 6 में, सबसे नीची सम-लागत रेखा सम्भाव्य-क्षेत्र की बाउण्ड्री के एक समस्त सिरे KL के साथ सम्पर्क स्थापित करेगी।

[प्रोटीन बोर्डर का ढाल -1 है; इसको जानने के लिए हम प्रोटीन बोर्डर के समीकरण को एक सरल रेखा के प्रमापित समीकरण (standard equation) $Y = mx + c$ के रूप में रखकर, इस प्रमापित समीकरण से तुलना करते हैं; इस प्रमापित समीकरण में सरल रेखा का ढाल है m; प्रोटीन बोर्डर की समीकरण है—

$$5x_1 + 5x_2 = 20$$

$$\text{or} \quad 5x_2 = -5x_1 + 20$$

$$\text{or} \quad x_2 = -x_1 + 4$$

यहाँ पर यदि x_2 को Y मान लें तथा $-x_1$ अर्थात् (-1) x को mx मान लें, $c = 4$, तो प्रोटीन बोर्डर का ढाल $= m = -1$ इस प्रकार प्रोटीन बोर्डर का ढाल -1 है।]

अधिकतम करने का उदाहरण : एक फर्म द्वारा लाभ को अधिकतम करने की समस्या
(AN EXAMPLE OF MAXIMISATION : A PROBLEM OF THE MAXIMISATION OF PROFIT BY A FIRM)

एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है। इस उदाहरण के विभिन्न अंगों को इस प्रकार लिख सकते हैं—

1. माना कि फर्म दो वस्तुओं, वस्तु I तथा वस्तु II का उत्पादन करती है।
2. वस्तु I पर औसत लाभ 40 रु. प्रति टन है, तथा वस्तु II पर 30 रु. प्रति टन है।
3. फर्म या प्लांट के तीन उत्पादन विभाग हैं—कटिंग (cutting), मिश्रण अर्थात मिक्सिंग (mixing), तथा पैकेजिंग (packaging)। प्रत्येक विभाग में यंत्र (equipment) को 8 घंटे प्रतिदिन प्रयोग किया जा सकता है; दूसरे शब्दों में, प्रत्येक विभाग में प्रतिदिन की क्षमता (daily capacity) 8 घंटे की है।
4. उत्पादन की प्रक्रिया (process of production) इस प्रकार है—
   (i) वस्तु I पहले काटी (या cut की) जाती है और बाद में उसका पैकिंग किया जाता है। इस वस्तु के प्रत्येक टन के लिए 'कटिंग क्षमता' (cutting capacity) के $\frac{1}{2}$ घंटे तथा पैकिंग क्षमता (packing capacity) के $\frac{1}{3}$ घंटे का प्रयोग किया जाता है।
   (ii) वस्तु II पहले मिश्रित या मिक्स (mix) की जाती है और इसके बाद उसका पैकिंग किया जाता है। इस वस्तु के प्रत्येक टन के लिए मिक्सिंग क्षमता (mixing capacity) के 1 घंटे का तथा पैकिंग क्षमता के $\frac{2}{3}$ घंटे का प्रयोग किया जाता है।

समस्या यह है कि फर्म प्रतिदिन दोनों वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन करे कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो? समस्या की उपर्युक्त समस्त सूचना को निम्नलिखित तालिका (table) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है :

	Hours of processing needed per ton of		Daily capacity (in hours)
	Product I	Product II	
Cutting	$\frac{1}{2}$	0	8
Mixing	0	1	8
Packaging	$\frac{1}{3}$	$\frac{2}{3}$	8

5. माना कि वस्तु I की x_1 मात्रा तथा वस्तु II की x_2 मात्रा का उत्पादन किया जाता है, ताकि फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। [x_1 तथा x_2 के मूल्यों (values) को हमें मालूम करना है।]
6. माना कि कुल लाभ π (पाई) के बराबर है जो कि उत्पादक को वस्तुओं की x_1 तथा x_2 मात्राओं को उत्पादित करके बेचने से प्राप्त होता है। हम ऊपर बिन्दु (point) नं. 2 में बता चुके हैं कि वस्तु I की 1 इकाई (या 1 टन) पर लाभ 40 रु. है, इसलिए वस्तु I की x_1 इकाइयों पर लाभ $40x_1$ होगा। वस्तु II पर औसत लाभ (या 1 टन पर लाभ) 30 रु. है, इसलिए वस्तु II की x_2 इकाइयों पर लाभ $30x_2$ होगा। इस प्रकार कुल लाभ $\pi = 40x_1 + 30x_2$; इस लाभ π को अधिकतम करना हमारा लक्ष्य है अर्थात हमारा लक्ष्य-फलन (objective function) है : $\pi = 40x_1 + 30x_2$।

उपर्युक्त समस्त सूचना के आधार पर हम रेखीय प्रोग्रामिंग की इस समस्या को आगे दिये अनुसार लिख सकते हैं :

Objective Function : Maximize $\pi = 40x_1 + 30x_2$

Constraints :
$x_1 \leqslant 16$ (Cutting Constraint)
$x_2 \leqslant 8$ (Mixing Constraint)
$x_1 + 2x_2 \leqslant 24$ (Packaging Constraint)

Non-negative Conditions :
$x_1 \geqslant 0$ [अथवा, इसको इस प्रकार भी लिख सकते हैं—
$x_2 \geqslant 0$ $x_1, x_2 \geqslant 0$]

[नोट : ऊपर दिये गये प्रतिबन्धों या असमानताओं (constraints or inequalities) को समझने के लिए देखिए फुटनोट नं० 53][53]

अब हम ऊपर दी गयी रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या को ग्राफ द्वारा हल करते हैं, अर्थात समस्या के 'अनुकूलतम हल' को ग्राफ द्वारा बताते हैं।

अनुकूलतम हल 'सम्भाव्य हलों' (feasible solutions) में से एक होगा, अर्थात् वह 'सम्भाव्य-क्षेत्र' (feasible region) में होगा।

अत: अनुकूलतम हल को मालूम करने के लिए पहले हमें सम्भाव्य-क्षेत्र को मालूम करना पड़ेगा; तथा सम्भाव्य-क्षेत्र को मालूम करने के लिए प्रतिबन्धों (constraints) को ग्राफ में दिखाना पड़ेगा।

प्रतिबन्धों को ग्राफ में दिखाने के लिए हम उनके 'असमानताओं' (inequalities) के रूप को बदल कर उन्हें 'समीकरणों' (equations) के रूप में रखते हैं—

$$x_1 = 16 \quad \ldots(1)$$
$$x_2 = 8 \quad \ldots(2)$$
$$x_1 + 2x_2 = 24 \quad \ldots(3)$$

---

[53] तालिका की सहायता से हम 'प्रतिबन्धों या असमानताओं' को लिख सकते हैं—

∵ वस्तु I की 1 इकाई (या 1 टन) के उत्पादन में कटिंग की प्रक्रिया के लिए $\frac{1}{2}$ घंटा चाहिए।

∴ वस्तु I की x_1 इकाइयों के उत्पादन में कटिंग के लिए $\frac{1}{2}x_1$ घंटे चाहिए।

परन्तु ये $\frac{1}{2}x_1$ घंटे कटिंग विभाग की प्रतिदिन की क्षमता (daily capacity) 8 घंटे से 'कम होंगे या उसके बराबर' ($\leqslant$); दूसरे शब्दों में, *Cutting Constraint* है—

$$\frac{1}{2}x_1 \leqslant 8$$
or
$$x_1 \leqslant 16$$

∵ वस्तु II की 1 इकाई (या 1 टन) की मिक्सिंग के लिए 1 घंटा चाहिए।

∴ वस्तु II की x_2 इकाइयों की मिक्सिंग के लिए $1 \times x_2 = x_2$ घंटे चाहिए।

परन्तु ये x_2 घंटे मिक्सिंग विभाग की प्रतिदिन की क्षमता 8 घंटे से कम होंगे या उसके बराबर' ($\leqslant$); दूसरे शब्दों में, *Mixing Constraint* है—

$$x_2 \leqslant 8$$

∵ वस्तु I की 1 इकाई (या 1 टन) के पैकिंग के लिए $\frac{1}{3}$ घंटे चाहिए।

∴ वस्तु I की x_1 इकाइयों के पैकिंग के लिए $\frac{1}{3}x_1$ घंटे चाहिए।

इसी प्रकार,

∵ वस्तु II की 1 इकाई (या 1 टन) के पैकिंग के लिए $\frac{2}{3}x_2$ घंटे चाहिए।

∴ वस्तु II की x_2 इकाइयों के पैकिंग के लिए $\frac{2}{3}x_2$ घंटे चाहिए।

परन्तु दोनों वस्तुओं के पैकिंग के लिए कुल घंटे अर्थात $\frac{1}{3}x_1 + \frac{2}{3}x_2$, पैकिंग विभाग की प्रतिदिन की क्षमता 8 घंटे से 'कम होंगे या उसके बराबर' ($\leqslant$); दूसरे शब्दों में, *packaging constraint* है—

$$\frac{1}{3}x_1 + \frac{2}{3}x_2 \leqslant 8$$
or
$$x_1 + 2x_2 \leqslant 24$$

हम समीकरण नं. 1 को ग्राफ में प्लोट करके रेखा AB प्राप्त करते हैं, देखिए चित्र नं. 7 को। चूंकि प्रत्येक प्रतिबन्ध 'कम होने या बराबर होने' ($\leqslant$) के प्रकार का है, इसलिए इस रेखा AB के बायें (left) की तरफ के क्षेत्र मे सभी बिन्दु तथा स्वयं इस रेखा की परिधि या बोर्डर पर सभी बिन्दु 'कटिंग प्रतिबन्ध' (cutting constraint) की सन्तुष्टि करते हैं। रेखा AB को 'कटिंग बोर्डर' (cutting border) भी कहा जाता है।

इसी प्रकार (चित्र नं. 7 में) समीकरण न. (2) को ग्राफ पर प्लोट करके रेखा CD प्राप्त हो जाती है जो कि 'मिक्सिंग बोर्डर' (mixing border) को बताती है; इस रेखा के बोर्डर पर तथा इस रेखा के बायें तरफ के क्षेत्र मे सभी बिन्दु 'मिक्सिंग प्रतिबन्ध'[54] की संतुष्टि करते हैं।
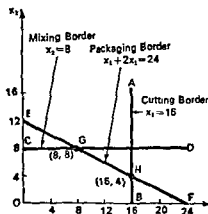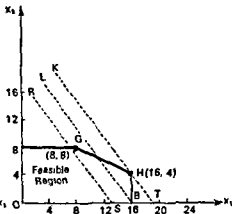
चित्र 7 चित्र 8

इसी प्रकार (चित्र 7 मे) समीकरण न. (3) को ग्राफ पर प्लोट करके रेखा EF प्राप्त हो जाती है जो कि 'पैकेजिंग बोर्डर' (packaging border) को बताती है अर्थात 'पैकेजिंग प्रतिबन्ध' की संतुष्टि करते हैं।

चित्र 7 मे कोनेदार रेखा CGHB पर प्रत्येक बिन्दु तथा इस रेखा CGHB के बायी तरफ के क्षेत्र मे प्रत्येक बिन्दु 'तीनो प्रतिबन्धो' की एक साथ सतुष्टि करता है। दूसरे शब्दो में, कोनेदार रेखा CGHB के बायी तरफ का समस्त क्षेत्र **'सम्भाव्य-क्षेत्र'** (*feasible region*) है, जिसमे कि प्रत्येक बिन्दु 'सम्भाव्य हल' (feasible solution) को बताता है, परन्तु ध्यान रहे कि कोनेदार बाउण्ड्री रेखा (kinked boundary line) CGHB भी सम्भाव्य-क्षेत्र मे शामिल होती है। सम्भाव्य-क्षेत्र को अलग से चित्र 8 में दिखाया गया है।

यह ध्यान देने की बात है कि सम्भाव्य-क्षेत्र की कोनेदार बाउण्ड्री तीनो प्रतिबन्धो के कुछ चुने हुए टुकडो (या भागो) तथा अक्षो (axes) से बनी हुई है। चित्र 7 मे बाउण्ड्री (CGHB) पर **'कोने वाले बिन्दु'** (*corner points*), जिनको **'सिरे के बिन्दु'** (*extreme points*) भी कहा जाता है, दो बोर्डर रेखाओ के कटाव-बिन्दु हैं (जैसे बिन्दु G तथा H)[55], अथवा एक बोर्डर रेखा तथा एक अक्ष

---

[54] प्रतिबन्धो (constraints) को ग्राफ पर प्लोट करने का तरीका हम पहले बता चुके हैं।

[55] चित्र 7 मे बिन्दु G के coordinates हैं (8, 8) तथा बिन्दु H के coordinates हैं (16, 4), ये ग्राफ पर देखने से मालूम पड़ जाते हैं। बिन्दु G के coordinates को दो युगपत समीकरणो (simultaneous equations)—$x_1=16$ तथा $x_1+2x_2=24$—को हल करके भी ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार बिन्दु H के coordinates को $x_1=16$ तथा $x_1+2x_2=24$ समीकरणो को हल करके भी ज्ञात किया जा सकता है।

(axis) के कटाव पर हैं (जैसे, बिन्दु C तथा B)।[56] ये सिरे-के-बिन्दु या कोने-वाले-बिन्दु अनुकूलतम हल (optimal solution) को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।[57]

सम्भाव्य-क्षेत्र में सभी बिन्दु दोनों वस्तुओं की मात्राओं के उन सभी संयोगों (combinations) को बताते हैं जो कि 'सभी प्रतिबन्धों' की, तथा 'अ-ऋणात्मक दशाओं' (non-negative conditions) की भी, संतुष्टि करते हैं। परन्तु इन संयोगों में से कुछ संयोग नीचे लाभ (lower profit) को बतायेंगे अपेक्षाकृत अन्य संयोगों के। लाभ को अधिकतम करने के लिए हमें लक्ष्य-फलन (objective function) पर विचार करना होगा। लक्ष्य-फलन है—

$$\pi = 40x_1 + 30x_2$$

$$\text{अथवा} \quad -30x_2 = -\pi + 40x_1$$

$$\text{अथवा} \quad 30x_2 = \pi - 40x_1$$

$$\text{अथवा} \quad x_2 = \frac{\pi}{30} - \frac{4}{3}x_1 \qquad \ldots(4)$$

[नोट : इसको समझने के लिए देखिए फुटनोट नं० 58][58]

π को पैरामीटर (या स्थिर संख्या) मानते हुए, हम समीकरण नं. 4 को समानान्तर सरल रेखाओं के एक परिवार के रूप में ग्राफ पर दिखा या प्लोट कर सकते हैं; इनमें से प्रत्येक का ढाल $-\frac{4}{3}$ से सम्बन्धित कोण के बराबर होगा। इनमें से तीन सम्भव रेखाओं को, बिन्दुकीय रेखाओं (dotted lines) के रूप में चित्र 8 में दिखाया गया है।[59] इनमें से प्रत्येक रेखा लाभ अर्थात π के एक निश्चित मूल्य (definite value) को बताती है, वास्तव में ये तीनों रेखाएं एक प्रकार से 'सम-लाभ रेखाएं' (*Iso-profit lines*) हैं। अतः लाभ को अधिकतम करने के लिए हमें सम्भाव्य-क्षेत्र (feasible region) में रहते हुए सबसे ऊँची सम-लाभ रेखा (highest iso-profit line) को चुनना होगा।

---

[56] बिन्दु C के coordinates हैं (0, 8) तथा बिन्दु B के coordinates हैं (16, 0), जैसा कि ग्राफ से स्पष्ट होता है।

[57] *The corner points or extreme-points are significant from the point of view of optimal solution.*

[58] लक्ष्य-फलन को $x_2 = \frac{\pi}{30} - \frac{4}{3}x_1$, के रूप में इसलिए रखते हैं ताकि इसकी तुलना एक सरल रेखा के प्रमापित समीकरण (standard equation of a straight line) $y = mx + c$ से कर सकें, इस प्रमापित समीकरण में c एक constant या parameter है, तथा m सरल रेखा के ढाल को बताता है अर्थात यदि यह सरल रेखा x-axis के साथ ϕ के बराबर कोण (angle) बनाती है तो $\tan\phi = m$, अथवा कोण $\phi = \tan^{-1}(m)$; कोण ϕ के मूल्य को हम log table से मालूम कर सकते हैं यदि m का मूल्य दिया हुआ हो। हमारे इस उदाहरण में अर्थात लक्ष्य-फलन के समीकरण $x_2 = \frac{\pi}{30} - \frac{4}{3}x_1$ में m का मूल्य $\left(-\frac{4}{3}\right)$ है, इसलिए कोण $\phi = \tan^{-1}(m) = \tan^{-1}\left(-\frac{4}{3}\right)$, और इस प्रकार हम कोण ϕ का मूल्य मालूम करके, $x_2 = \frac{\pi}{30} - \frac{4}{3}x_1$ को ग्राफ पर खींच सकते हैं, अथवा यह कहिए कि लक्ष्य-फलन के समीकरण $x_2 = \frac{\pi}{30} - \frac{4}{3}x_1$ को हम ग्राफ पर समानान्तर रेखाओं के एक परिवार (a family of parallel lines) के रूप में खींच सकते हैं; प्रत्येक समानान्तर रेखा का ढाल $-\frac{4}{3}$ से सम्बन्धित कोण के बराबर होगा (इसको हम log table की सहायता से, मालूम कर सकते हैं)।

[59] इसको समझने के लिए उपर्युक्त फुटनोट नं. 58 को देखिए।

चित्र 8 से स्पष्ट है कि सम्भाव्य-क्षेत्र में रहते हुए सबसे ऊँची सम-लाभ रेखा KT है जो कि कोने-के-बिन्दु या सिरे-के-बिन्दु H को 'सम्पर्क' (*contact*) करती हुई जाती है; ग्राफ से पता चलेगा कि इस बिन्दु H के coordinates हैं—$x_1 = 16$ तथा $x_2 = 4$।

स्पष्ट है कि हमारी रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्या का 'अनुकूलतम सम्भाव्य हल' (*optimal feasible solution*) अथवा, संक्षेप में, 'अनुकूलतम हल' (*optimal solution*) है वस्तु I की 16 इकाइयाँ (क्योंकि $x_1 = 16$) तथा वस्तु II की 4 इकाइयाँ (क्योंकि $x_2 = 4$)। इन मूल्यों को हम लक्ष्य-फलन में रखकर अधिकतम लाभ की संख्या या अंक को मालूम कर सकते हैं—

$$\pi = 40x_1 + 30x_2$$

or $$\pi = 40(16) + 30(4)$$

or $$\pi = 640 + 120$$

or $$\pi = \text{Rs. } 760$$

अतः हमारा अनुकूलतम हल है कि फर्म को प्रतिदिन वस्तु I की 16 टन मात्रा तथा वस्तु II की 4 टन मात्रा उत्पादित करनी चाहिए और तब उसको अधिकतम लाभ 760 रु. प्राप्त होगा।

अब हम $x_1 = 16$ तथा $x_2 = 4$ को ध्यान में रखते हुए प्रतिबन्धों या असमानताओं की सहायता से यह मालूम करेंगे कि अनुकूलतम हल की स्थिति में प्लांट (या फर्म) के विभिन्न विभागों—कटिंग, मिक्सिंग तथा पैकेजिंग—की क्षमता (capacity) का प्रयोग किस सीमा तक होगा और किस सीमा तक इन विभागों की क्षमता अप्रयुक्त (unutilized) रह जायेगी। यह बात निम्न तालिका से स्पष्ट होगी :

Constraints		Maximum Capacity	Remark's
Cutting Constraint $[x_1 \leqslant 16]$	For Optimal Solution : $x_1 = 16$	16	Cutting constraint is exactly fulfilled.
Mixing Constraint $[x_2 \leqslant 8]$	For Optimal Solution : $x_2 = 4$	8	Mixing constraint is not exactly fulfilled, Unutilised capacity remains.
Packaging Constraint $[x_1 + 2x_2 \leqslant 24]$	For Optimal Solution : $x_1 + 2x_2$ or $16 + 2(4)$ or $16 + 8$ or 24	24	Packaging constraint is exactly fulfilled.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अनुकूलतम-हल कटिंग-क्षमता तथा पैकेजिंग-क्षमता का पूर्ण प्रयोग कर लेता है; परन्तु मिक्सिंग क्षमता का पूर्ण प्रयोग नहीं कर पाता है, कुछ क्षमता अप्रयुक्त (unutilised) रह जाती है। ऐसी स्थिति इसलिए उत्पन्न होती है कि 'प्रतिबन्ध' असमानताओं के रूप में होते हैं, निश्चित समीकरणों (exact equations) के रूप में नहीं होते।

प्रश्न

1. आप रेखीय प्रोग्रामिंग से क्या समझते हैं? रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत 'प्रक्रिया या क्रिया' (process or activity) के विचार को पूर्णतया समझाइए।
   What do you understand by Linear Programming. Explain fully the concept of a 'process or activity' under linear programming.

2. रेखीय प्रोग्रामिंग को परिभाषित कीजिए। निम्नलिखित धारणाओं को समझाइए—(अ) रेखीयता तथा (ब) प्रतिबन्ध।
   Define Linear Programming. Explain the following concepts : (a) Linearity, and (b) Constraints.
3. रेखीय प्रोग्रामिंग को परिभाषित कीजिए। 'अधिकतम करने' या 'न्यूनतम करने' के एक सरल उदाहरण द्वारा, चित्रों की सहायता से, रेखीय प्रोग्रामिंग के विचार को स्पष्ट कीजिए।
   Define Linear Programming. With the help of diagrams illustrate the concept of linear programming using a simple example of 'maximisation' or 'minimisation'.

28

खण्ड 4
वस्तु-मूल्य निर्धारण
(Commodity Pricing)

बाजार के रूप
(Market Structures)

एक फर्म अपनी वस्तु का कितना उत्पादन करेगी और उस किस कीमत पर बेचेगी यह बात बाजार के रूप पर निर्भर करेगी। बाजार स्थितियाँ या बाजार के रूप कई बातो पर निर्भर करते हैं : (i) वस्तु का स्वभाव, अर्थात् वस्तु एकरूप (homogeneous) है या भेदित (differentiated), (ii) क्रेताओ तथा विक्रेताओ की सख्या अधिक है या कम, (iii) क्रेताओ तथा विक्रेताओ मे पारस्परिक निर्भरता का अंश। सक्षेप मे, बाजार के रूप प्रतियोगिता के अश पर निर्भर करते है। मोटे तौर पर दो स्थितियाँ होती हैं (i) पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition) या 'विशुद्ध प्रतियोगिता' (pure competition), तथा (ii) अपूर्ण प्रतियोगिता (imperfect competition) इसके कई रूप हो सकते हैं, जैसे एकाधिकारी प्रतियोगिता (monopolistic competition), अल्पाधिकार (oligopoly), द्वयधिकार (duopoly), एकाधिकार, (monopoly)। बाजार के रूपो में दो सिरे की स्थितियाँ (two extreme situations) हैं—एक सिरे पर 'पूर्ण प्रतियोगिता' या 'विशुद्ध प्रतियोगिता' तथा दूसरे सिरे पर 'विशुद्ध एकाधिकार'—इन दोनों के बीच बाजार की विभिन्न स्थितियाँ होती हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता
(PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषा (Definition of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता का **सार** (essence) यह है कि इसमे कोई भी एक क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नही कर सकता है वस्तु का एक ही मूल्य होता है। **श्रीमती जोन रोबिन्सन** के अनुसार,

> "पूर्ण प्रतियोगिता उस दशा में होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है : प्रथम, विक्रेताओ की संख्या बहुत अधिक होती है जिससे किसी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत ही थोड़ा भाग होता है; तथा दूसरे, सभी ग्राहक-प्रतियोगी विक्रेताओ के बीच चुनाव करने की दृष्टि से, समान होते हैं जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।"[1]

पूर्ण प्रतियोगिता के लिए दशाएँ (Conditions for the perfect competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के लिए अग्रलिखित दशाओ का पूरा होना आवश्यक है

[1] "Perfect competition prevails when the demand for the output of each producer is perfectly elastic. This entails, that the number of sellers is large so that the output of any one seller is a negligibly small proportion of the total output of the commodity, and second, that buyers are all alike in respect of their choice between rival sellers, so that the market is perfect."

—Mrs. Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 18.

(1) **स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अधिक संख्या** (Large number of independently acting sellers and buyers)—(i) पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है और वे छोटे (small) होते हैं। अतः प्रत्येक विक्रेता वस्तु की कुल पूर्ति का इतना थोड़ा भाग उत्पादित करता है कि उत्पादन में कमी या वृद्धि करके वह व्यक्तिगत रूप में बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता। इसी प्रकार प्रत्येक क्रेता कुल पूर्ति का बहुत ही थोड़ा भाग खरीदता है और इसलिए अपनी क्रय की मात्रा को कम या अधिक करके वह व्यक्तिगत रूप में मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता।[2]

(ii) क्रेता तथा विक्रेता स्वतन्त्र रूप से (independently) कार्य करते हैं। विक्रेताओं में कोई समझौता (agreement) या गुप्त-सन्धि (collusion) नहीं होती और इस प्रकार वे व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकते। इसी प्रकार क्रेता भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं और उनमें कोई समझौता या गुप्त-सन्धि नहीं होती।

(2) **एकरूप वस्तु** (Homogeneous Product)—(i) वस्तु विशेष एकरूप होती है चाहे वह किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित की जाय या किसी भी विक्रेता द्वारा बेची जाय। दूसरे शब्दों में, **वस्तु का प्रमापीकरण** (standardization) होता है तथा वस्तु की इकाइयाँ, चाहे वह किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित हों, एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं। अतः कोई भी उत्पादक या विक्रेता प्रचलित कीमत से ऊँची कीमत नहीं ले सकेगा क्योंकि यदि वह ऐसा करता है तो क्रेता वही वस्तु दूसरे उत्पादक या विक्रेताओं से कम कीमत पर खरीद लेगा।

(ii) केवल वस्तु का ही नहीं, बल्कि **विक्रेताओं का भी प्रमापीकरण** होना चाहिए ताकि क्रेताओं द्वारा एक विक्रेता की अपेक्षा दूसरे को पसन्द करने का कोई कारण न मिले। विभिन्न विक्रेताओं के व्यक्तित्व (personality) में, उनकी ख्याति (reputation) में तथा उनके विक्रय स्थानों (localities) में कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए कि क्रेता एक विक्रेता की अपेक्षा दूसरे को पसन्द करें।

(iii) चूंकि फर्में प्रमापित वस्तु (standardized commodity) का उत्पादन करती हैं इसलिए 'गैर-कीमत प्रतियोगिता' (non-price competition) के लिए कोई जगह नहीं होती।[3]

(3) **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश तथा बहिर्गमन** (Free entry and exit of firms)—पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों को उद्योग में प्रवेश या उसमें से बहिर्गमन की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इसके अभिप्राय अग्रलिखित हैं

---

[2] यद्यपि व्यक्तिगत रूप से कोई विक्रेता या उत्पादक अपने उत्पादन में वृद्धि या कमी करके वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता परन्तु ध्यान रहे कि एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry) में समस्त उत्पादक एक समूह (group) के रूप में बाजार मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि उद्योग विशेष में 4,000 फर्में हैं और प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को 100 इकाइयों से घटा देती है तो कुल उत्पादन $4,000 \times 100 = 4,00,000$ इकाइयों से घट जायेगा, परिणामस्वरूप बाजार मूल्य बढ़ जायेगा। अतः एक व्यक्ति उत्पादक मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु सब उत्पादक एक समूह के रूप में मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वस्तु का मूल्य एक फर्म के लिए निश्चित (fixed) रहता है, परन्तु कुल पूर्ति अर्थात् कुल उत्पादन में परिवर्तनों के कारण मूल्य में वृद्धि या कमी होती है। इसी प्रकार यद्यपि एक क्रेता व्यक्तिगत रूप से मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु सभी क्रेताओं द्वारा वस्तु की कुल माँग में वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप बाजार मूल्य में अवश्य परिवर्तन होगा।

[3] इसका अर्थ है कि वस्तु के गुण में अन्तर व विज्ञापन के आधार पर कोई प्रतियोगिता नहीं होती। विक्रेता विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा क्रेताओं के मस्तिष्क में कोई वस्तु-विभेद (product differentiation) उत्पन्न नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, 'विज्ञापन तथा प्रसार पर व्यय' जिन्हें, विक्रय लागतें (selling costs) कहते हैं, की अनुपस्थिति होती है।

(i) यदि किसी फर्म या कुछ फर्मों की प्रवृत्ति उत्पत्ति के साधनों पर एकाधिकार शक्ति प्राप्त करके वस्तु की पूर्ति पर एकाधिकारी शक्ति अर्जित करने की है तो उद्योग में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश के कारण ऐसा नहीं हो सकेगा।

(ii) इसके अतिरिक्त इस दशा का अर्थ है कि दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ (normal profit) ही होगा।[4]

(4) **बाजार का पूर्ण ज्ञान** (Perfect knowledge of the market)—पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है; अर्थात् बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों मे, 'क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट सम्पर्क' (close contact of buyers and sellers) होता है। पूर्ण ज्ञान के परिणामस्वरूप बाजार मे वस्तु विशेष की एक ही कीमत प्रचलित रहेगी।

(5) **क्रेताओं तथा विक्रेताओं में पूर्ण गतिशीलता** (Perfect mobility amongst buyers and sellers) होनी चाहिए, उनके क्रय तथा विक्रय मे किसी प्रकार की बाधा नही होनी चाहिए।[5]

(6) **उत्पत्ति के साधनों का पूर्णतया गतिशील होना** (Perfect mobility of factors of production)—पूर्ण प्रतियोगिता मे उत्पत्ति के साधन एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे पूर्णतया गतिशील होते है। सरकार की ओर से या किसी अन्य प्रकार की रुकावट उनकी गतिशीलता में बाधक नही होती है।

(7) **समस्त उत्पादकों या फर्मों का बहुत समीप होना** (All the producers are sufficiently close to each other)—पूर्ण प्रतियोगिता में यह भी मान लिया जाता है कि समस्त उत्पादक बहुत समीप हो जिससे कि कोई परिवहन लागतें न हों। परिणामस्वरूप, बाजार में वस्तु की कीमत एक ही होगी, उसमे परिवहन लागतों के कारण अन्तर नहीं होगा।[6]

पूर्ण प्रतियोगिता की सब दशाओं का सार है कि इसके अन्तर्गत वस्तु की कीमत एक ही होती है। टेकनीकल शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की मांग पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) होती है, अर्थात् माग रेखा एक पडी हुई रेखा होती है। कोई भी क्रेता या विक्रेता अपनी कार्यवाहियों से वस्तु के मूल्य को प्रभावित नही कर सकता है। दूसरे शब्दो में,

---

[4] यदि फर्मों को अधिक लाभ (excess profit) प्राप्त हो रहा है अर्थात् कीमत अधिक है लागत से, तो लाभ के आकर्षण से नयी फर्में उद्योग मे प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढ़ेगी, कीमत घटकर ठीक लागत के बराबर हो जायेगी और फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि कुछ फर्मों को हानि हो रही है तो वे उद्योग को छोड देंगी, पूर्ति घटेगी, कीमत बढ़कर ठीक लागत के बराबर हो जायेगी और फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। अत: फर्मों को दीर्घकाल में न लाभ होगा और न हानि बल्कि केवल सामान्य प्राप्त होगा।

[5] दूसरे शब्दो मे, क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच किसी तरह का स्नेह (attachment) नही होना चाहिए, उन्हें केवल कीमत से ही स्नेह होना चाहिए क्योंकि केवल ऐसी स्थिति में क्रेताओं की प्रवृत्ति सबसे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेता से खरीदने की तथा विक्रेताओ की प्रवृत्ति सबसे अधिक कीमत पर खरीदने वाले क्रेता को बेचने की होगी। इस दशा के कारण भी वस्तु की एक ही कीमत रहेगी।

[6] मार्शल के अनुसार, वस्तु की कीमत में परिवहन लागतो के बराबर तक अन्तर हो सकता है और फिर भी बाजार पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार कहा जायेगा। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त बताया जाता है कि परिवहन लागतें न हों ताकि वस्तु की एक ही कीमत रहे।
"It is also convenient when discussing perfect competition to make the assumption that all producers work sufficiently close to each other, for there to be no transport costs."
—Stonier and Hague, *A Textbook of Economic Theory*, p. 126.

एक उत्पादक या फर्म की अपनी कोई मूल्य नीति नहीं होती; प्रत्येक फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है, 'मूल्य निर्धारित करने वाली' (price-maker) नहीं; प्रत्येक फर्म मूल्य को दिया हुआ मानकर उसके अनुसार वस्तु के उत्पादन की मात्रा निर्धारित करती है, अर्थात् प्रत्येक फर्म 'मात्रा-समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) होती है।

विशुद्ध प्रतियोगिता या परमाणुवादी प्रतियोगिता
(PURE COMPETITION OR ATOMISTIC COMPETITION)

प्रो. चेम्बरलिन (Chamberlin) 'पूर्ण प्रतियोगिता' (perfect competition) तथा 'विशुद्ध प्रतियोगिता' (pure competition) के बीच अन्तर करते हैं। कुछ अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगिता' के लिए 'परमाणुवादी प्रतियोगिता' (atomistic competition) शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

प्रो. चेम्बरलिन के अनुसार,

> विशुद्ध प्रतियोगिता एकाधिकारी तत्त्वों से पूर्णतया स्वतन्त्र (unalloyed with monopoly elements) होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा यह अधिक सरल तथा कम विस्तृत विचार होता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में केवल 'एकाधिकारी तत्त्व की अनुपस्थिति की पूर्णता' (perfection in the absence of monopoly) ही नहीं बल्कि कई प्रकार की पूर्णता भी पायी जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता में साधनों की पूर्ण प्रवाहिता (fluidity) या गतिशीलता (mobility) हो सकती है और इस दृष्टि से घर्षण (friction) की अनुपस्थिति हो सकती है। इसमें भविष्य के बारे में पूर्ण ज्ञान हो सकता है और परिणामस्वरूप अनिश्चितता की अनुपस्थिति हो सकती है। इसमें और भी ऐसी पूर्णता हो सकती है जिसे कि अर्थशास्त्री अपनी समस्या के लिए सुविधाजनक तथा लाभदायक पाता है।[7] दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में पायी जाने वाली कई दशाएँ, जैसे, बाजार की पूर्ण जानकारी, उत्पत्ति के साधनों की पूर्ण गतिशीलता, इत्यादि विशुद्ध प्रतियोगिता में नहीं होती है।

विशुद्ध प्रतियोगिता के लिए केवल तीन दशाओं का होना आवश्यक है :

(i) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अधिक संख्या होती है।

(ii) एकरूप वस्तु होती है तथा वस्तु-विभेद की पूर्ण अनुपस्थिति रहती है।

(iii) उद्योग में फर्मों का प्रवेश तथा उसमें से बहिर्गमन स्वतन्त्र होता है। ये तीनों दशाएँ पूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम तीन दशाएँ हैं; पूर्ण प्रतियोगिता की अन्य दशाएँ विशुद्ध प्रतियोगिता में शामिल नहीं होती।

---

[7] In pure competition, "the adjective 'pure' being choosen deliberately to describe competition unalloyed with monopoly elements. It is a much simpler and less inclusive concept than 'perfect' competition, for the latter may be interpreted to involve perfection in many other respects than in the absence of monopoly. It may imply, for instance, an absence of friction in the sense of an ideal fluidity or mobility of factors such that adjustments to changing conditions which actually involve time are accomplished instantaneously in theory. It may imply perfect knowledge of the future and the consequent absence of uncertainty. It may involve such further 'perfection' as the particular theorist finds convenient and useful to his problem.

—Edward Chamberlin, *The Theory of Monopolistic Competition*, p. 6.

यद्यपि विशुद्ध प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा, अधिक सरल है तथा कम विस्तृत (less inclusive) है, **परन्तु दोनों में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है, अन्तर केवल मात्रा** (degree) का है; दोनों मे आधारभूत बातें एक ही हैं :

विशुद्ध प्रतियोगिता में भी, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता वस्तु को 'कीमत ग्रहण करने वाला' (price-taker) होता है, 'कीमत निर्धारित करने वाला' (price-maker) नहीं।

प्रत्येक उत्पादक के लिए कीमत दी हुई होती है और तदनुसार वह उत्पादन की मात्रा समायोजित करता है। अत: प्रत्येक उत्पादक **'मात्रा समायोजित करने वाला' (quantity-adjuster) होता है; उसकी अपनी कोई 'मूल्य नीति' (price-policy) नहीं होती।**

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, **विशुद्ध प्रतियोगिता में भी एक व्यक्तिगत उत्पादक के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है,** अर्थात् माँग रेखा पडी हुई रेखा (horizontal line) होती है।[8]

पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का औचित्य
(THE JUSTIFICATION OF PERFECT OR PURE COMPETITION)

विशुद्ध प्रतियोगिता या पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएँ वास्तविक जीवन मे नही पायी जाती है : (i) सभी वस्तुओ के सम्बन्ध मे क्रेताओ तथा विक्रेताओ की सख्या अधिक नही होती, व्यवहार मे कई वस्तुओ का उत्पादन केवल थोडे से उत्पादक करते हैं जो वस्तु के मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। इसी प्रकार कुछ वस्तुओं के क्रेता अत्यन्त बडे तथा प्रभावशाली होते है। (ii) वास्तविक जीवन मे विभिन्न उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तु मिलती-जुलती (similar) होती है परन्तु एक रूप (exactly identical or homogeneous) नही होती। विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा क्रेताओं के मस्तिष्क मे वस्तु-विभेद (product differentiation) उत्पन्न किया जाता है। (iii) उद्योग विशेष मे फर्मों का प्रवेश स्वतन्त्र नही होता, उसमे कई प्रकार की बाधाएँ रहती है। (iv) यद्यपि यातायात तथा सवादवाहन के साधनो मे पर्याप्त विकास हुआ है परन्तु फिर भी क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नही होता। (v) उत्पत्ति के साधनो मे पूर्ण गतिशीलता नही पायी जाती; इत्यादि। अत यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है।

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि जब विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है तथा वास्तविक जीवन मे नही पायी जाती तो हम इसका अध्ययन ही क्यो करते है ? क्या पूर्ण प्रतियोगिता एक मिथ्यावाद (myth) है ? पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन का क्या औचित्य है ?

यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि उसका अध्ययन बेकार है। पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन निम्न बातो के कारण आवश्यक तथा उचित है

(1) वास्तविक अर्थ-व्यवस्था के कार्यकरण को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

(i) वास्तविक जीवन मे 'अपूर्ण प्रतियोगिता' या 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition) पायी जाती है, इसमे 'एकाधिकार' तथा 'प्रतियोगिता' दोनो के तत्वों का मिश्रण होता है। स्पष्ट है कि ऐसी वास्तविक स्थिति को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता को समझना आवश्यक है।

---

[8] आंग्ल अर्थशास्त्री प्राय 'पूर्ण प्रतियोगिता' के शब्द का प्रयोग करते हैं परन्तु अमरीकन अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगिता' के शब्द का प्रयोग करना अधिक पसन्द करते है क्योंकि इसमे पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा, कम मान्यताएँ होती हैं।

(ii) 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की वास्तविक स्थिति मे लगभग उन्ही आधारभूत विश्लेषणात्मक यन्त्रो (basic analytical tools) का प्रयोग किया जाता है जो कि पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रयुक्त होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन से अन्तर्दृष्टियो (insights) का प्रयोग वास्तविक जगत की स्थितियों को समझने के लिए आवश्यक है।

(2) **व्यवहार में प्रतियोगिता क्यों पूर्ण प्रतियोगिता से कम होती है,** इस बात को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन जरूरी है ।

(i) प्रतियोगिता आर्थिक इकाइयो को बाध्य कर देती है कि वे समाज के लाभ के लिए कार्य करें। प्रतियोगिता वस्तुओ की कीमतों को कम करके उत्पादको या व्यापारियो के लाभो को कम करती है। इसलिए वास्तविक जगत मे व्यापारियो तथा उत्पादको के लिए यह अधिक लाभदायक होता है कि वे जहाँ तक हो सके प्रतियोगिता से बचे या उसे हटाये। अत. पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन इस बात की व्याख्या करता है कि व्यवहार मे प्रतियोगिता क्यो 'पूर्ण प्रतियोगिता' से कम होती है।

(ii) वास्तविक जगत मे विभिन्न स्थितियो मे, प्रतियोगिता की कितनी कमी है अर्थात् उसमे कितनी अपूर्णता (imperfection) है, यह 'पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति' से तुलना करके ज्ञात किया जा सकता है। अत. स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था (free enterprise economy) के अन्तर्गत वास्तविक बाजारो के अध्ययन के लिए पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता एक आधार (base or benchmark) का कार्य करती है।

विशुद्ध एकाधिकार
(PURE MONOPOLY)

एकाधिकारी वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो। विशुद्ध एकाधिकार मे प्रतियोगिता शून्य होती है। **विशुद्ध एकाधिकार के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :**

(1) **वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादन केवल एक फर्म द्वारा हो। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी 'एक-फर्म उद्योग' (one-firm industry) होता है।**

(2) **वस्तु के कोई निकट या अच्छे स्थानापन्न (close or good substitutes) न हों। दूसरे शब्दों में, वस्तु की माँग की आड़ी लोच शून्य होती है।**

(3) **उद्योग में नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हों।**

> टेक्नीकल शब्दों में, विशुद्ध एकाधिकार एक-फर्म उद्योग होता है और इस फर्म की वस्तु तथा अर्थ-व्यवस्था में किसी भी अन्य वस्तु के बीच माँग की आड़ी लोच (cross-elasticity of demand) शून्य होती है।*

एकाधिकारी के अर्थ या अभिप्रायो को भलीभाँति समझने के लिए निम्न बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है :

(i) उपर्युक्त तीनो दशाओ के कारण एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है और इसलिए वह मूल्य को प्रभावित कर सकता है। इसके विपरीत विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता मे कोई भी विक्रेता या उत्पादक वस्तु के बाजार मूल्य को प्रभावित नही कर सकता।

---

* In technical language, the pure monopoly is one-firm industry where cross-elasticity of demand between the product of the monopoly firm and any other product in the economy is zero.

(ii) एकाधिकार के अन्तर्गत विज्ञापन तथा प्रसार की आवश्यकता नही पड़ती क्योंकि प्रतियोगी उत्पादक नही होते। यदि विज्ञापन किया भी जाता है तो वह केवल जनता से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए किया जाता है।

(iii) यद्यपि एक एकाधिकारी मिलती-जुलती तथा निकट रूप से सम्बन्धित वस्तुओं के प्रत्यक्ष **प्रतियोगिता** से पृथक रहता है, परन्तु उसे अप्रत्यक्ष **प्रतियोगिता** का सामना करना पड़ता है जो कभी-कभी बहुत तीव्र हो सकती है।[10] दूसरे शब्दो में, कुछ विशुद्ध एकाधिकारियो को 'सम्भावित प्रतियोगिता' (potential competition) का सामना करना पड़ सकता है जिससे उनकी कीमत तथा उत्पादन नीतियों पर प्रभाव पड़ता है।

(iv) व्यवहार मे विशुद्ध एकाधिकारी नही पाया जाता क्योंकि उसकी तीनो दशाओं का पूर्णरूप से पाया जाना अत्यन्त कठिन है। किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई स्थानापन्न अवश्य होता है और उस एक उत्पादक को अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता का सामना सदैव करना पड़ता है। जिस प्रकार पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता एक सिरे (extreme) की स्थिति को बताता है, उसी प्रकार विशुद्ध एकाधिकार दूसरे सिरे की स्थिति को बताता है।

वास्तव में व्यावहारिक जगत मे एकाधिकार का अर्थ केवल एक उत्पादक से नही होता बल्कि उस उत्पादक या कुछ उत्पादकों से होता है जो कि वस्तु की कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादित करते है और इसलिए बाजार तथा बाजार की कीमत को प्रभावित कर सकते है। अतः **व्यवहार में एकाधिकारी शक्ति का सार बाजार नियन्त्रण है।**

अपूर्ण प्रतियोगिता
(IMPERFECT COMPETITION)

परम्परागत मूल्य सिद्धान्त ने दो सिरे की स्थितियों—एक ओर पूर्ण प्रतियोगिता तथा दूसरी ओर विशुद्ध एकाधिकार—पर ध्यान दिया। ये दोनो स्थितियां वास्तविक ससार मे नही पायी जाती हैं। श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, वास्तविक जगत में 'पूर्ण प्रतियोगिता' होती है, जबकि प्रो. चैम्बरलिन के अनुसार, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता'।

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Meaning of Imperfect Competition)

> **अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णताओं की उपस्थिति। दूसरे शब्दो मे, जब प्रतियोगिताओं की दशाओं में किसी भी दशा का अभाव होता है तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।**[11]

यदि क्रेताओ तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक नही है; या क्रेताओ तथा विक्रेताओं की संख्या तो अधिक है परन्तु वस्तु एक रूप नही है, अर्थात् उसमे विभिन्नता है; या क्रेताओ तथा विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान नही है, तो प्रत्येक दशा मे अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

टेकनीकल शब्दों में,

अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है, जबकि एक व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की मांग

---

[10] "While a monopoly is isolated from *direct competition* with producers of identical or closely related commodities, it is nevertheless subject to *indirect competition* that is sometimes very keen.

[11] Imperfect competition implies imperfection in perfect or pure competition. In other words, imperfect competition prevails when any of the conditions of perfect competition is absent.

पूर्णतया लोचदार नहीं होती।[12] अथवा, प्रो. लर्नर (Lerner) के शब्दों में, अपूर्ण प्रतियोगिता तब पायी जाती है जबकि एक विक्रेता अपनी वस्तु के लिए एक गिरती हुई मांग रेखा का सामना करता है।[13]

अपूर्ण प्रतियोगिता एक विस्तृत शब्द है और यह पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार के बीच समस्त क्षेत्र को बताता है; अर्थात् इसके अन्तर्गत 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition), 'अल्पाधिकार' (oligopoly) तथा 'द्वयधिकार' (duopoly) की स्थितियाँ भी शामिल होती हैं। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली प्रतिनिधि स्थिति नहीं होती।[14]

अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण (Causes of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता के उत्पन्न होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(1) **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की कम संख्या** (Small number of buyers and sellers)—क्रेताओं तथा विक्रेताओं की कम सख्या होने के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता हो सकती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत क्रेता तथा विक्रेता अपने कार्यों से वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकेंगे।

(2) **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अज्ञानता** (Ignorance of sellers and buyers)—विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अज्ञानता के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। क्रेताओं तथा विक्रेताओं की सख्या अधिक हो सकती है। परन्तु यदि उन्हें बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान नही है अर्थात् उन्हें बाजार की कीमतों तथा मात्राओं की जानकारी नही है तो एक वस्तु की विभिन्न कीमतें होगी और प्रतियोगिता अपूर्ण होगी।

(3) **वस्तु की इकाइयों में वास्तविक व काल्पनिक अन्तर** (Real or imaginary differences in the units of a commodity)—जब विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु या विभिन्न विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं में अन्तर होगा तो वस्तु की कई कीमतें होंगी और प्रतियोगिता अपूर्ण हो जायेगी। वस्तु की इकाइयों मे अन्तर वास्तविक हो सकता है या काल्पनिक।

अन्तर के कारण निम्न हो सकते हैं: (i) विभिन्न विक्रेताओं की वस्तु के गुण (material content) में वास्तविक अन्तर हो सकता है। (ii) कुछ विक्रेताओं का स्थान (location) दूसरों की अपेक्षा अच्छा हो सकता है। उदाहरणार्थ, धनवान व्यक्ति स्वच्छ तथा फैशनेबल स्थान पर स्थित विक्रेता की दूकान से वस्तु का खरीदना पसन्द करेंगे चाहे उन्हें कुछ ऊँची कीमत देनी पड़े। (iii) प्रायः

---

[12] Imperfect competition prevails when the demand for the individual firm's product is not perfectly elastic.

[13] "Imperfect competition obtains when the seller is confronted with a falling demand curve for his product."

[14] Thus, there is no single representative case of imperfect competition as there is of perfect competition.

स्टोनियर तथा हेग के शब्दों में, "यद्यपि अपूर्ण प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक (distinguishing) विशेषता यह है कि औसत आगम रेखाएं (average revenue curves) अपनी सम्पूर्ण लम्बाई तक नीचे की ओर गिरती हैं, परन्तु वे नीचे की ओर विभिन्न दरों से गिर सकती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की एक अकेली स्थिति से तुलना की जा सकने वाली अपूर्ण प्रतियोगिता। की कोई एक अकेली स्थिति नही होती बल्कि उसके स्थान पर हमे ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जहाँ पर कि फर्म की औसत आगम रेखा नीचे की ओर केवल बहुत धीमी गति से गिरती है और जहाँ पर कि प्रतियोगिता लगभग पूर्ण हो; तथा अन्य स्थितियों मे रेखा का ढाल अत्यन्त गहरा (steep) हो सकता है तथा प्रतियोगिता अत्यन्त अपूर्ण हो सकती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली स्थिति नहीं होती है, बल्कि यह एक सम्पूर्ण क्षेत्र या स्थितियों की एक श्रृंखला (series) होती है जो कि उत्तरोत्तर (progressively) अधिकाधिक अपूर्ण प्रतियोगिता को बताती है।"

क्रेता वस्तु को उन विक्रेताओं से खरीदना पसन्द करेंगे जिनका व्यवहार अच्छा है चाहे उन्हें वस्तु के लिए कुछ ऊँची कीमत देनी पड़े। (iv) जो विक्रेता अपने ग्राहकों को साख की सुविधाएँ प्रदान करता है वह अधिक ग्राहक आकर्षित करेगा तथा अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा उसी वस्तु की ऊँची कीमत प्राप्त कर सकेगा। (v) **विज्ञापन तथा प्रसार** द्वारा विक्रेता क्रेताओं के मस्तिष्क में यह धारणा उत्पन्न कर सकते हैं कि उनकी वस्तु अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है (चाहे वह वास्तव में श्रेष्ठ हो या न हो) और इसलिए वस्तु की कीमत में भिन्नता हो जाती है।

ध्यान रहे कि यद्यपि श्रीमती जोन रोबिन्सन अपूर्ण प्रतियोगिता में 'वस्तु-विभेद' (product differentiation) शब्द का प्रयोग नहीं करती है, परन्तु उपर्युक्त सब दशाएँ लगभग वही है जो कि प्रो. चेम्बरलिन वस्तु-विभेद के लिए बताते हैं।

(4) **क्रेताओं की सुस्ती तथा अगतिशीलता** (Inertia or immobility of buyers)—यह सम्भव है कि क्रेताओं को विभिन्न विक्रेताओं के द्वारा ली जाने वाली कीमतों का ज्ञान हो परन्तु केवल सुस्ती तथा लापरवाही के कारण वे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेताओं से वस्तु नहीं खरीदते। इस कारण वस्तु की कई कीमतें प्रचलित रह सकती हैं।

(5) **ऊँचा यातायात व्यय** (High transport cost)—यदि वस्तु को विभिन्न स्थानों पर लाने-ले-जाने में ऊँची यातायात लागत पड़ती है तो विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में वस्तु की कीमत में अन्तर रहेगा और अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो जायेगी।

एकाधिकारी प्रतियोगिता
(MONOPOLISTIC COMPETITION)

'एकाधिकारी प्रतियोगिता' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म (leading type) है; अतः ढीले रूप में (loosely) 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' प्रायः एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिभाषा (Definition of Monopolistic Competition)

प्रो. चेम्बरलिन ने एकाधिकारी प्रतियोगिता के विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि व्यावहारिक जीवन में न पूर्ण प्रतियोगिता और न विशुद्ध एकाधिकार पाया जाता है बल्कि इन दोनों के मध्य की स्थिति पायी जाती है।

> **एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार का वह रूप है जिसमें कि बहुत सी छोटी फर्में होती हैं और उनमें से प्रत्येक फर्म मिलती-जुलती** (similar) **वस्तुएँ बेचती हैं परन्तु वस्तुएँ एक रूप** (homogeneous or exactly identical) **नहीं होतीं, वस्तुओं में थोड़ी भिन्नता या भेद** (differentiation) **होता है।**

वस्तु-विभेद (product differentiation) के कारण प्रत्येक विक्रेता एक सीमा तक वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार वह अपने क्षेत्र में एक छोटा सा एकाधिकारी होता है, परन्तु इन एकाधिकारी विक्रेताओं में बड़ी तीव्र प्रतियोगिता भी होती है। अतः ऐसी स्थिति को प्रो. चेम्बरलिन ने 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' कहा क्योंकि **इसमें एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों की विशेषताओं का मिश्रण** होता है। एकाधिकारी प्रतियोगिता को **'समूह सन्तुलन'** (group equilibrium) भी कहा जाता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)

एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ या दशाएँ निम्न हैं:

(1) **स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं की अधिक संख्या** (Large number of independently acting sellers)—(i) पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी विक्रेताओं या उत्पादकों की अधिक संख्या होती है, प्रत्येक विक्रेता या उत्पादक छोटा (small) होता है और कुल उत्पत्ति का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है।

(ii) उत्पादकों या विक्रेताओं में प्रतियोगिता होती है, वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं, उनमें कोई समझौता (agreement) या गुप्त सन्धि (collusion) नहीं होती।

(2) **वस्तु-विभेद या वस्तु-भिन्नता** (Product differentiation or product heterogeneity)—पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एक रूप या प्रमापित (standardized) होती है। इसके विपरीत एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तुएँ मिलती-जुलती (similar) होती हैं परन्तु एक रूप नहीं होतीं, उनमें थोड़ा भेद या भिन्नता रहती है। **'वस्तु-विभेद' या 'वस्तु-भिन्नता' एकाधिकारी प्रतियोगिता की एक आधारभूत प्रभेदक** (distinguishing) **विशेषता होती है; यह विशेषता ही इसे पूर्ण प्रतियोगिता से प्रभेदित** (differentiate) **करती है;** यदि वस्तु-विभेद की दशा को निकाल दिया जाय तो हम लगभग विशुद्ध प्रतियोगिता या पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पहुँच जायेंगे।

(अ) वस्तु-विभेद के अभिप्राय (implications) इस प्रकार हैं :

(i) वस्तु-विभेद के कारण **'एकाधिकार तत्त्व'** (monopoly element) उत्पन्न होता है। चूँकि वस्तु में थोड़ी भिन्नता होती है इसलिए प्रत्येक उत्पादक एक छोटे एकाधिकारी की भाँति होता है और एक सीमा तक अपनी वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

(ii) यद्यपि वस्तु-विभेद उपस्थित होता है परन्तु वस्तुएँ मिलती-जुलती भी होती हैं। दूसरे शब्दों में, वस्तुएं एक दूसरे की निकट स्थानापन्न (close substitutes) होती हैं, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं होतीं। इसका अर्थ है कि उत्पादकों में प्रतियोगिता होती है और एक उत्पादक के कीमत-उत्पादन निर्णय (price-output decision) दूसरे उत्पादक के कीमत-उत्पादन निर्णय को प्रभावित करते हैं।

दूसरे शब्दों में,

"एकाधिकारी प्रतियोगिता को कभी-कभी 'विभेदककरण' (differentiation) तथा 'अधिक संख्या की स्थिति' कहा जाता है।"[15]

(ब) वस्तु-विभेद निम्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है :

(i) **वस्तु की भौतिक विशेषताओं** (Physical characteristics) **में अन्तर के कारण;** जैसे, वस्तु के गुण, ट्रेडमार्क, पेकिंग, डिजाइन, रंग, इत्यादि में अन्तर होने के कारण वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(ii) **वस्तु को बेचने की दशाओं में अन्तर के कारण;** जैसे, अच्छा विक्रय स्थान (locality), नम्र आचरण के साथ सेवा (courteous service), उधार की सुविधाएँ, बेचने वाली सुन्दर लड़कियाँ (charming sales girls), इत्यादि के कारण क्रेता एक विक्रेता से वस्तुएँ खरीदना पसन्द करेंगे अपेक्षाकृत दूसरे के। इस प्रकार विक्रय दशाओं में अन्तर के कारण वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(iii) **विज्ञापन तथा प्रसार के कारण,** निरन्तर विज्ञापन तथा प्रसार की आधुनिक रीतियों द्वारा एक विक्रेता क्रेताओं में इस बात का विश्वास उत्पन्न करता है कि उसकी वस्तु अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इस प्रकार क्रेताओं के मस्तिष्क में वस्तु-विभेद उत्पन्न किया जाता है। यह **वस्तु-विभेद वास्तविक** (real) **हो सकता है** अर्थात् वस्तु विशेष वास्तव में गुण में श्रेष्ठ हो सकती है, या **वस्तु-विभेद काल्पनिक** (imaginary) **हो सकता है** अर्थात् वस्तुओं के गुणों में वास्तविक अन्तर नहीं होता बल्कि केवल ट्रेड मार्क, पेकिंग, डिजाइन, रंग, इत्यादि में अन्तर करके विज्ञापन द्वारा

---

15 Indeed, monopolistic competition is sometimes called *the case of differentiation and large numbers.*

क्रेताओ के मस्तिष्को मे यह धारणा पैदा कर दी जाती है कि वस्तु विशेष दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ है। दूसरे शब्दों मे, वस्तु विशेष के लिए चाहे क्रेताओ की पसन्द विवेकपूर्ण (rational) हो या अविवेकपूर्ण (irrational), दोनो दशाओ मे वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(3) **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश** (*Free entry of firms*)

(i) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योगो मे पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति नयी फर्में स्वतन्त्र रूप से प्रवेश कर सकती हैं, **परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में इनका प्रवेश कुछ कठिन होता है**; इसका कारण है : वस्तु-विभेद का होना तथा अधिक वित्तीय बाधाओ (financial obstacles) का सामना करना। एक नयी फर्म को न केवल पर्याप्त पूँजी की ही आवश्यकता पड़ती है, बल्कि उसमे वर्तमान फर्मों के ग्राहकों को भी तोड सकने की क्षमता होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि नयी फर्मों को अनुसन्धान तथा वस्तु-विकास (research and product development) पर पर्याप्त धन व्यय करना पड़ेगा ताकि उसकी वस्तु की विशेषताएँ बाजार मे स्थित अन्य वस्तुओं से भिन्न हो। साथ ही अपनी नयी वस्तु के प्रति ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए उन्हें विज्ञापन तथा प्रसार पर पर्याप्त मात्रा मे धन व्यय करना पड़ेगा।

(ii) चूंकि एकाधिकारी प्रतियोगिता मे फर्मों का प्रवेश स्वतन्त्र होता है, इसलिए दीर्घकाल मे एकाधिकारी प्रतियोगिता मे भी, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, फर्मों को साधारणतया केवल 'सामान्य लाभ' (normal profit) ही प्राप्त होता है।[16]

(4) **गैर-मूल्य प्रतियोगिता** (Non-price competition)—एकाधिकारी प्रतियोगिता मे वस्तुएँ प्रभेदित (differentiated) होती हैं, इसलिए फर्मों मे तीव्र (vigorous) गैर-मूल्य प्रतियोगिता होती है। इसका अर्थ है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता मे स्पर्द्धा केवल मूल्य पर ही आधारित नही होती बल्कि वस्तु के गुण (product quality), वस्तु के विक्रय से सम्बन्धित दशाओ या सेवाओ, विज्ञापन इत्यादि पर भी आधारित होती है; ऐसी स्पर्द्धा या प्रतियोगिता को **'गैर-मूल्य प्रतियोगिता'** कहते हैं। ट्रेडमार्क तथा ब्राण्ड-नामो पर अधिक बल दिया जाता है और इनके द्वारा विक्रेता क्रेताओ के मस्तिष्को मे यह बात जमाने का प्रयत्न करते है कि उनके ट्रेडमार्क या ब्राण्ड की वस्तु दूसरे विक्रेताओ की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हैं।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (distinguishing feature) वस्तु-विभेद है जो कि इसको पूर्ण प्रतियोगिता से भेदित (differentiate) करती है। यद्यपि एकाधिकारी प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है परन्तु, जैसा कि एकाधिकारी प्रतियोगिता की दशाओ से स्पष्ट है, यह पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है। इसलिए यह कहा जाता है कि **एकाधिकारी प्रतियोगिता 'अपूर्ण प्रतियोगिता का न्यूनतम अपूर्ण रूप' है।**[17]

अल्पाधिकार

'अल्पाधिकार' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है। इसमे बाजार की वे सब स्थितियाँ

---

[16] दीर्घकाल मे यदि कुछ फर्मों को अधिक लाभ प्राप्त होता है, तो नयी फर्में उद्योग मे प्रवेश करेंगी और अधिक लाभ समाप्त हो जायेगा। यदि कुछ फर्मों को दीर्घकाल मे नुकसान होता है तो वे उद्योग को छोड़ देंगी, और नुकसान समाप्त हो जायेगा। दूसरे शब्दो मे, दीर्घकाल मे फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा, न अतिरिक्त लाभ होगा और न हानि।

[17] Monopolistic competition is said to be the "least imperfect form of imperfect competition."
इसके विपरीत चूंकि एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता से बहुत दूर होता है और इसमें पूर्णता अधिकतम होती है, इसलिए यह कहा जाता है कि एकाधिकार 'अपूर्ण प्रतियोगिता का अधिकतम अपूर्ण रूप' (monopoly is the most imperfect form of imperfect competition) होता है।

शामिल होती हैं जो कि पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थितियों में उपयुक्त (fit) नहीं बैठती।

अल्पाधिकार का अर्थ (Meaning of Oligopoly)

अल्पाधिकार का अर्थ है थोड़े विक्रेताओं (few sellers) में प्रतियोगिता, अर्थात् अल्पाधिकार उस समय उत्पन्न होता है जबकि केवल थोड़े से विक्रेता होते हैं। -

यह 'एकाधिकार' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' और 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' दोनों से भिन्न होता है—एकाधिकार में केवल एक विक्रेता होता है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है।[18]

अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(1) **विक्रेताओं का थोड़ा होना (Fewness of sellers)**—अल्पाधिकार की प्रमुख विशेषता है कि इसमें थोड़े से विक्रेता होते हैं। थोड़े विक्रेताओं के होने के अभिप्राय इस प्रकार हैं :

(i) थोड़े विक्रेता होने के कारण प्रत्येक विक्रेता कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादन करता है और पूर्ति के एक बड़े भाग पर नियन्त्रण (control) होने के कारण वह बाजार में वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

(ii) अल्पाधिकार की एक मुख्य विशेषता **विक्रेताओं की पारस्परिक निर्भरता (mutual interdependence)** है। यह बात पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता में नहीं पायी जाती है। चूंकि विक्रेता थोड़े होते है, इसलिए एक विक्रेता की क्रियाओं तथा नीतियों का प्रभाव दूसरे प्रतियोगी विक्रेताओं (rivals) की कीमत तथा उत्पादन नीति पर पड़ता है; इस प्रकार उनमें पारस्परिक निर्भरता होती है। दूसरे शब्दों में,

> "अल्पाधिकार उस समय उपस्थित हो जाता है जब विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि एक की क्रियाओं का स्पष्ट तथा महत्त्वपूर्ण प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। एक अल्पाधिकारी उद्योग की सभी फर्में एक ही नाव में होती हैं। यदि एक फर्म नाव को हिलाती है तो दूसरी फर्में प्रभावित होंगी और प्रायः वे सम्बन्धित फर्म को पहचान लेंगी तथा वे उससे बदला ले सकती हैं।"[19]

(iii) चूंकि विक्रेताओं में पारस्परिक निर्भरता होती है और एक अल्पाधिकारी प्रतियोगी विक्रेताओं के सम्भावित व्यवहार तथा प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यताओं को आधार मानकर चल सकता है, इसलिए **अल्पाधिकारी बाजारों के सम्बन्ध में साधारणीकरण (generalization)** करना अत्यन्त कठिन है, **अल्पाधिकार का सिद्धान्त विशेष स्थितियों तथा व्यवहार-रूपों** (special cases and behaviour patterns) का एकत्रीकरण (collection) होता है।[20]

(2) **लगभग प्रमापित वस्तु या भेदित वस्तु** (Virtually standardized products or

---

[18] Oligopoly means competition among few sellers; that is, it occurs where there are only a few sellers. It differs both from monopoly, where there is only one seller, and from perfect and monopolistic competition, where there are many.

[19] "Indeed, it can be said that oligopoly exists whenever the number of sellers is so few that the actions of one will have obvious and significant repercussions on the others. The firms of an oligopolistic industry are all in the same boat. If one rocks the boat, the others will be affected and in all probability will know the identity of the responsible firm and can retaliate."

[20] अल्पाधिकारी यह अनुभव करते है कि प्रतियोगिता द्वारा आक्रामक मूल्य-कमी (aggressive price-cutting) का कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलता। अतः यह अधिक अच्छा है कि शान्ति (peace) स्थापित की जाय। शान्ति स्थापित करने के विभिन्न तरीकों के आधार पर विभिन्न प्रकार के अल्पाधिकारी संगठनों का जन्म हो जाता है।

differentiated products)—अल्पाधिकारी लगभग एकरूप या प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं, या भेदित वस्तु (differentiated product) का। इस आधार पर अल्पाधिकारी को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—'विशुद्ध अल्पाधिकारी' (pure oligopoly)'[1] तथा 'भेदित अल्पाधिकारी' (differentiated oligopoly)। **'विशुद्ध अल्पाधिकार' में विक्रेताओं की वस्तु एकरूप** *होती है। 'भेदित अल्पाधिकार' या 'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार' (oligopoly with product* differentiation) में विक्रेताओं की वस्तु मिलती-जुलती (similar) होती है, परन्तु एकरूप नहीं, उनमें कुछ अन्तर या भिन्नता रहती है।

यह सुगमता से समझा जा सकता है कि **'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार'** (oligopoly with product differentiation) **वास्तव में 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की ही एक विशेष स्थिति** (special case) है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में यदि विक्रेताओं की संख्या बहुत कम हो जाती है तो अल्पाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(3) **एक अल्पाधिकारी फर्म का वस्तु के मूल्य पर नियंत्रण** *'पारस्परिक निर्भरता'* **के कारण सीमित रहता है।** यदि एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को घटाती है तो प्रतियोगी फर्मों के ग्राहक टूट कर इसकी ओर आकर्षित होंगे और इसकी बिक्री बढ़ेगी, बदले में प्रतियोगी फर्में (rivals) कीमत घटा देंगी। परिणामस्वरूप, कीमत-युद्ध (price-war) होगा और सभी फर्मों को हानि होगी। इसके विपरीत यदि एक अल्पाधिकारी अपनी कीमत बढ़ाता है तो प्रतियोगी फर्मों की अपनी वर्तमान कीमतों पर ही बिक्री तथा लाभ में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, "एक कीमत-वृद्धि करने वाले अल्पाधिकारी को ऊँची कीमत के कारण स्वयं बाजार से निकलने का भय रहता है और इससे उसके प्रतियोगियों को लाभ होता है।"[2] उपर्युक्त कारणों से अल्पाधिकारी बाजार में फर्मों की यह प्रबल प्रवृत्ति रहती है कि कीमतों को बार-बार (frequently) न बदला जाय।

(4) **फर्मों का प्रवेश तथा बहिर्गमन कठिन** (Difficult entry and exit of firms)—अल्पाधिकारी उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश अत्यन्त कठिन होता है। अल्पाधिकारी फर्मों के पास आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति के अधिकांश भाग का स्वामित्व हो सकता है, उनकी वस्तुएँ पेटेण्ट द्वारा सुरक्षित हो सकती है, आरम्भ से ही नयी फर्म को स्थापित करने के लिए बड़ी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि अल्पाधिकार फर्मों की संख्या कम होती है और वे बहुत बड़ी होती है। उपर्युक्त बाधाओं के कारण अल्पाधिकारी उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश बहुत कठिन होता है, *परन्तु एकाधिकार की भाँति असम्भव नहीं होता। इसी प्रकार फर्मों का उद्योग में से बाहर निकलना भी कठिन होता है।*

(5) **विज्ञापन तथा बिक्री बढ़ाने की क्रियाएँ** (Advertisement and sales promotion activities)—अल्पाधिकारी उद्योग विज्ञापन तथा बिक्री बढ़ाने की क्रियाओं पर प्रायः बहुत धन व्यय करते हैं। परन्तु विज्ञापन की मात्रा तथा किस्म इस बात पर निर्भर करती है कि फर्में 'प्रमापित वस्तुएँ' या 'भेदित वस्तुएँ' उत्पन्न कर रही है। उन अल्पाधिकारियों द्वारा विज्ञापन प्रतियोगिता पर अधिक धन व्यय किया जाता है जो कि भेदित वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वस्तु के विक्रय में वृद्धि के लिए वस्तु के गुण में सुधार के अतिरिक्त डिजाइन, अनुसन्धान, इत्यादि पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है।

---

[1] 'विशुद्ध अल्पाधिकार' (pure oligopoly) को 'एकरूप अल्पाधिकार' (homogeneous oligopoly) या 'अभेदित अल्पाधिकार' (undifferentiated oligopoly) या 'बिना वस्तु-विभेद के अल्पाधिकार (oligopoly without product differentiation) के अन्य नामों में भी पुकारा जाता है।

[2] "That is, a price-boosting oligopolist runs the risk of pricing himself out of the market' to the benefit of his rivals."

द्वि-अल्पाधिकार या द्वयधिकार
(DUOPOLY)

द्वि-अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें दो विक्रेता होते हैं और दोनों एक ही वस्तु बेचते हैं। दोनों विक्रेताओं की वस्तु प्रायः एकरूप (identical or homogeneous) होती है, ऐसी स्थिति में दोनों की वस्तुओं की एक ही कीमत होगी। दोनों विक्रेताओं की वस्तुओं में बहुत थोड़ा अन्तर भी हो सकता है, ऐसी स्थिति में कीमत में थोड़ा अन्तर होगा। सामान्यतया द्वि-अल्पाधिकार में वस्तुएं लगभग एकरूप ही होती है। जब दो विक्रेता एकरूप वस्तु बेचते है तो इसे 'विशुद्ध द्वि-अल्पाधिकार' (pure duopoly) कहते है। विशुद्ध द्वि-अल्पाधिकार, विशुद्ध एकाधिकार की भाँति, बहुत कम पाया जाता है, यद्यपि कभी-कभी दो विक्रेता एक बड़े समूह पर इस प्रकार प्रभुत्व (domination) रखते हैं कि लगभग द्वि-अल्पाधिकार की स्थिति उपस्थित हो जाती है।

अल्पाधिकार (oligopoly) में थोड़े विक्रेता होते हैं और जब इन थोड़े विक्रेताओं की संख्या केवल दो होती है तो द्वि-अल्पाधिकार उत्पन्न हो जाता है। अतः अल्पाधिकार की सरलतम स्थिति (simplest case) ही द्वि-अल्पाधिकार है।

अब हम द्वि-अल्पाधिकारी के मूल्य पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में विचार करते है। अल्पाधिकारी की भाँति, द्वि-अल्पाधिकार में दोनों विक्रेताओं में **'पारस्परिक निर्भरता'** होती है। यदि एक विक्रेता कीमत को घटाता है तो दूसरा भी कीमत को घटायेगा, इस प्रकार कीमत-युद्ध छिड़ जायेगा जिससे किसी भी विक्रेता को लाभ नहीं होगा। इसके विपरीत यदि एक विक्रेता कीमत को ऊँचा करता है तो उसके ग्राहक टूटकर दूसरे के पास चले जायेंगे। अतः **'द्वि-अल्पाधिकार' में अल्पाधिकार की भाँति कीमत में स्थायित्व की प्रवृत्ति रहती है।** परन्तु दोनों विक्रेताओं में समझौते की सम्भावना अधिक होती है; दोनों विक्रेता समझौता करके एक समूह के रूप में कीमत घटा-बढ़ा सकते है। समझौते द्वारा प्रायः विक्रेता वस्तु की कीमत को ऊँचा रखते है, बाजार को आपस में बाँट लेते है और अधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

यदि द्वि-अल्पाधिकार के अन्तर्गत वस्तु में थोड़ा-सा अन्तर होता है तो प्रत्येक विक्रेता का अपना बाजार होता है, प्रत्येक अपने क्षेत्र में एक एकाधिकारी की भाँति होता है और वस्तु का मूल्य एकाधिकारी की भाँति निर्धारित करता है।

क्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियां
(MARKET SITUATIONS ACCORDING TO BUYERS)

ऊपर हम विक्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियों का अध्ययन कर चुके है। इसी प्रकार क्रेताओं की दृष्टि से अर्थात् क्रेताओं की संख्या के आधार पर भी बाजार के कई रूप होते हैं।

जब क्रेताओं की सख्या पर्याप्त होती है तो ऐसी स्थिति को **'क्रेता-एकाधिकार प्रतियोगिता'** (monopsonistic competition) कहते है।

जब क्रेताओं की सख्या बहुत अधिक होती है तो बाजार की ऐसी स्थिति को **''पूर्ण प्रतियोगिता''** (perfect competition) कहते है।

जब केवल एक क्रेता (तथा अनेक विक्रेता) होता है तो बाजार की ऐसी स्थिति को **'क्रेता-एकाधिकार'** (Monopsony) कहा जाता है। चूंकि क्रेता एक होता है, इसलिए यह मूल्य पर प्रबल प्रभाव रखता है।

बाजार में जब क्रेताओं की सख्या कम, सीमित या थोड़ी होती है तो ऐसी स्थिति को **'क्रेता-अल्पाधिकार'** (Oligopsony) कहा जाता है। चूंकि 'क्रेता-अल्पाधिकार' में क्रेताओं की संख्या कम होती है इसलिए उनमे समझौते की सम्भावना अधिक रहती है और समझौते द्वारा क्रेता बाजार मूल्य को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं।

जब केवल दो क्रेता होते हैं तो ऐसी स्थिति को 'द्विक्रेता-अल्पाधिकार' (Duopsony) कहते हैं।

विक्रेताओं तथा क्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियों को संक्षेप में निम्न चार्ट में दिखाया गया है :

बाजार का विक्रेताओं (अर्थात् पूर्ति) का पक्ष [Sellers side (i.e., supply side) of the market]	बाजार का क्रेताओं (अर्थात् माँग) का पक्ष [Buyers side (i.e., demand side) of the market]
विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता (Pure or perfect competition)	विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता (Pure or perfect competition)
एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition)	क्रेता-एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopsonistic competition)
अल्पाधिकार (Oligopoly)	क्रेता-अल्पाधिकार (Oligopsony)
द्वि-अल्पाधिकार (Duopoly)	द्विक्रेता-अल्पाधिकार (Duopsony)
विशुद्ध एकाधिकार (Pure Monopoly)	क्रेता-एकाधिकार (Monopsony)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन
(A COMPARATIVE STUDY OF PERFECT AND IMPERFECT COMPETITION)

(1) पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है; परिणामस्वरूप प्रत्येक विक्रेता छोटा होता है और कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में सामान्यतया विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में तो विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है और प्रत्येक विक्रेता के पास कुल पूर्ति का थोड़ा भाग होता है; परन्तु अल्पाधिकार में विक्रेता थोड़े होते हैं और प्रत्येक विक्रेता कुल *पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादित करता है। द्वि-अल्पाधिकार में केवल दो विक्रेता ही होते हैं।*

(2) पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु प्रमापित या एकरूप होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु सामान्यतया भिन्न होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता, जो कि अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है, की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (fundamental distinguishing characteristic) वस्तु-विभेद होती है। अल्पाधिकार में वस्तु एकरूप हो सकती है या भेदित (differentiated); पहली स्थिति को 'विशुद्ध अल्पाधिकार' तथा दूसरी को 'भेदित अल्पाधिकार' कहा जाता है।

(3) पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता 'कीमत मान लेने वाला' (price-taker) होता है, 'कीमत निर्धारित करने वाला' (price-maker) नहीं होता। कीमत को दिया हुआ मानकर प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन की मात्रा को समायोजित (adjust) करती है, इसलिए प्रत्येक 'मात्रा-समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) कही जाती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद होता है, इसलिए प्रत्येक विक्रेता अपने क्षेत्र में एक छोटे एकाधिकारी की भाँति होता है तथा एक सीमा तक वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। अल्पाधिकार (oligopoly) मे विक्रेताओ मे 'पारस्परिक-निर्भरता' होती है जिसके कारण कीमत को प्रभावित करने की उनकी शक्ति सीमित हो जाती है परन्तु यदि उनमे समझौता (collusion) होता है तो वे पर्याप्त मात्रा मे वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।

(4) पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए मांग-रेखा या औसत आगम रेखा (Average Revenue Curve) पूर्णतया लोचदार होती है, अर्थात् पड़ी रेखा (horizontal line) होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में मांग रेखा (अर्थात् AR-curve) 'पूर्ण लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) होती है, अर्थात् बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है।

(5) पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश या बहिर्गमन (entry and exit) बहुत आसान होता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग में फर्मों का प्रवेश या बहिर्गमन आसान होता है, यद्यपि बहुत आसान नहीं। अल्पाधिकार मे फर्मों के प्रवेश मे अनेक महत्त्वपूर्ण बाधाएं होती हैं और इसलिए प्रवेश कठिन होता है, परन्तु विशुद्ध एकाधिकार की भाँति, पूर्णतया असम्भव नही होता।

(6) पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान (perfect knowledge) होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में ऐसा नहीं होता।

(7) पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति के साधनों की पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) होती है; परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में साधनों की गतिशीलता में कई प्रकार की बाधाऐं रहती हैं।

(8) पूर्ण प्रतियोगिता में गैर-कीमत प्रतियोगिता (non-price competition) नहीं होती अर्थात् विज्ञापन तथा प्रसार इत्यादि के लिए धन व्यय नही किया जाता क्योकि वस्तु एकरूप या मानित होती है। इसके विपरीत अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद पाया जाता है, इसलिए विज्ञापन तथा प्रसार इत्यादि पर विक्रेता बहुत अधिक धन व्यय करते हैं, इस प्रकार के व्यय या लागत को 'विक्रय लागतें' (selling costs) के नाम से पुकारा जाता है।

(9) पूर्ण प्रतियोगिता व्यावहारिक जीवन में नहीं पायी जाती, यह काल्पनिक है। इसके विपरीत अपूर्ण प्रतियोगिता व्यवहार में पायी जाती है और यह वास्तविक है। यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका अध्ययन बेकार है; वास्तव मे वास्तविक जगत के जटिल कार्यकरण को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन आवश्यक है।

प्रश्न

1. "तकनीकी शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता मे एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।" इस कथन के सन्दर्भ में पूर्ण प्रतियोगिता के अभिप्रायों को पूर्णतया समझाइए।

   "In technical words, under perfect competition the elasticity of demand for the product of an individual seller or producer is perfectly elastic." In the light of this statement explain fully the meaning and implications of perfect competition.

2. "पूर्ण प्रतियोगिता एक भ्रम है"। क्या आप इससे सहमत है? अपने उत्तर की पुष्टि मे तर्क दीजिए।

   "Perfect competition is a myth." Do you agree? Give reasons for your answer.

[संकेत—इस अध्याय मे देखिए 'पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का औचित्य' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री ।]

3. "एकाधिकारी प्रतियोगिता को कभी-कभी 'विभेदक्करण तथा अधिक सख्या की स्थिति' कहा जाता है" विवेचन कीजिए ।
Monopolistic competition is sometimes called 'the case of differentiation and large number' Discuss.
अथवा
"एकाधिकारी प्रतियोगिता मे 'एकाधिकार' तथा 'प्रतियोगिता' दोनो की विशेषताओ का मिश्रण होता है ।" स्पष्ट कीजिए ।
"There is a mixture of the elements of 'monopoly' and 'competition' in monopolistic competition" Discuss.
अथवा
एकाधिकारी प्रतियोगिता 'अपूर्ण प्रतियोगिता का न्यूनतम अपूर्ण रूप' है । स्पष्ट कीजिए ।
Monopolistic competition is said to be the 'least imperfect form of imperfect competition.' Explain
[संकेत—एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिभाषा दीजिए तथा उसकी विशेषताओ की पूर्ण व्याख्या कीजिए ।]

4. "एक अल्पाधिकारी उद्योग की सभी फर्मे एक ही नाव मे होती हैं। यदि एक फर्म नाव को हिलाती है तो दूसरी फर्मे प्रभावित होंगी और प्राय वे सम्बन्धित फर्म को पहचान लेंगी तथा वे इससे बदला ले सकती हैं ।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।
"The firms of an oligopolistic industry are all in the same boat. If one rocks the boat, the others will be affected and in all probability will know the identity of responsible firm and can retaliate." Explain the statement.
[संकेत—अल्पाधिकार की परिभाषा दीजिए तथा उसकी विशेषताओ की पूर्ण व्याख्या कीजिए ।]

5. पूर्ण, विशुद्ध, अपूर्ण तथा एकाधिकृत प्रतियोगिताओ के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। इसमे से कौनसा बाजार स्थिति का अधिक सही और वास्तविक विवरण है ?
Distinguish between perfect, pure, imperfect and monopolistic competition Which of them is a more true description of the market situation ? (Bihar)
[संकेत—पूर्ण, विशुद्ध, अपूर्ण तथा एकाधिकारी प्रतियोगिताओ के अर्थों तथा उनकी दशाओ (या विशेषताओ) को सक्षेप मे बताइए । तत्पश्चात् बताइए कि पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता की दशाएँ व्यावहारिक जीवन मे नही पायी जाती, एकाधिकारी प्रतियोगिता (जो कि अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म कही जा सकती है) अधिक सही और वास्तविक विवरण को बताती है, एकाधिकारी प्रतियोगिता के अतिरिक्त कई दशाओ मे अल्पाधिकार की स्थिति भी व्यवहार मे पायी जाती है ।]

6. 'पूर्ण प्रतियोगिता कदाचित ही पायी जाती है, और विशुद्ध एकाधिकार दुर्लभ होता है ।' विवेचना कीजिए ।
'While perfect competition is seldom found, pure monopoly is rare.' Discuss
[संकेत—प्रश्न को तीन भागो मे बाँटिए, प्रथम भाग मे पूर्ण प्रतियोगिता के अर्थ तथा उसकी दशाओ को बहुत सक्षेप मे बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि पूर्ण प्रतियोगिता वास्तविक जीवन मे नही पायी जाती। दूसरे भाग मे एकाधिकार के अर्थ को बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि पूर्ण एकाधिकार की स्थिति भी वास्तविक जीवन में नही पायी जाती । तीसरे भाग मे बताइए कि वास्तविक जीवन मे 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की स्थिति पायी जाती है और तत्पश्चात् 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' के अर्थ और विशेषताओ को बहुत सक्षेप मे बताइए ।]

प्रतिनिधि फर्म, साम्य फर्म तथा अनुकूलतम फर्म

(Representative Firm, Equilibrium Firm and Optimum Firm)

प्रतिनिधि फर्म
(REPRESENTATIVE FIRM)

प्रतिनिधि फर्म की आवश्यकता तथा पृष्ठभूमि

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत वस्तु के दीर्घकालीन सामान्य मूल्य के निर्धारण से सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' के विचार को प्रतिपादित किया।

मार्शल के अनुसार बढ़ते हुए प्रतिफल (increasing returns) के अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धात्मक दशाएं उपस्थित रह सकती हैं क्योंकि उद्योग के अन्दर सभी फर्मों का एक साथ विकास सम्भव नहीं हो सकता।[1] अतः बढते हुए प्रतिफल तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मार्शल ने यह माना कि उद्योग विशेष में फर्मों की एक बहुत बड़ी संख्या होगी, तथा उनमें से प्रत्येक विकास की विभिन्न स्थितियों में होगी। इस सम्बन्ध में मार्शल ने एक वन के वृक्षों का उदाहरण दिया। एक वन में कुछ नये वृक्षों का विकास होता है, कुछ वृक्ष विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुके होते हैं, तथा कुछ का ह्रास होता है। इसी प्रकार उद्योग विशेष में विभिन्न फर्मों का एक निश्चित जीवन-चक्र (life cycle) होता है। कुछ फर्में नयी होती हैं जो अपने जीवन के लिए संघर्ष करती हुई बढ़ती हैं, कुछ फर्में विकास की चरम सीमा पर पहुँच कर ह्रास की अवस्था में होती हैं।[2]

यदि फर्मों की एक बडी संख्या विद्यमान है और प्रत्येक के विकास की स्थिति भिन्न है तो एक कठिनाई यह उपस्थित होती है कि कौनसी फर्म की लागत के द्वारा मूल्य निर्धारित होगा? क्या सबसे अधिक कुशल फर्म (अर्थात् जिसकी लागत न्यूनतम है) की औसत लागत द्वारा मूल्य निर्धारित होगा या

---

1 वास्तव में 'बढ़ता हुआ प्रतिफल' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' आपस में मेल नहीं खाते; बढ़ते हुए प्रतिफल के क्रियाशील रहने से पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि बढते हुए प्रतिफल के क्रियाशील होने पर फर्म को, अपने विस्तार के साथ, बचतें प्राप्त होती हैं तथा उसकी उत्पादन लागत कम होती जाती है। यह विकासमान फर्म लागत में ह्रास के परिणामस्वरूप, अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देती; धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम होती जाती है और अल्पाधिकार (Oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार बढ़ता हुआ प्रतिफल तथा स्पर्द्धात्मक दशाएं साथ-साथ उपस्थित नहीं रह सकती; परन्तु मार्शल ने यह माना कि इन दोनों का सहअस्तित्व हो सकता है।

2 Marshall, *Principles of Economics*, p. 263.

सबसे कम कुशल फर्म (अर्थात् जिसकी लागत अधिकतम है) की औसत लागत द्वारा ? सबसे कुशल फर्म की औसत लागत द्वारा मूल्य निर्धारित नही हो सकता क्योकि इस फर्म की लागत न्यूनतम होगी जबकि अन्य कम कुशल फर्मों की लागत अधिक होगी और अन्य सभी फर्मों को हानि होगी, जबकि दीर्घकाल में फर्मों को हानि या लाभ नही हो सकता है, उन्हें केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार मूल्य सबसे कम कुशल फर्म की औसत लागत के बराबर नही हो सकता क्योकि इस फर्म की लागत सबसे अधिक होगी और अन्य अधिक कुशल फर्मों की लागत इससे कम होगी जिससे उन्हें लाभ होगा। परन्तु दीर्घकाल मे फर्मों को लाभ नही हो सकता, वे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकती हैं। ऐसी स्थिति मे प्रश्न यह उठता है कि दीर्घकाल मे कौनसी फर्म की लागत के बराबर मूल्य निर्धारित होगा ? इस कठिनाई को हल करने के लिए मार्शल ने बताया कि दीर्घकाल में मूल्य उस फर्म की लागत के द्वारा निर्धारित होगा जोकि सामान्यतया उद्योग में प्रचलित परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है और ऐसी फर्म को मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' कहा।

प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा तथा उसके अभिप्राय

मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' की **परिभाषा** इस प्रकार दी है : "प्रतिनिधि फर्म एक ऐसी फर्म है जिसका काफी लम्बा जीवन रहा हो, जिसे पर्याप्त सफलता मिल चुकी है, जिसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता द्वारा किया जाता है तथा जिसे उत्पादन की कुल मात्रा के परिणामस्वरूप सामूहिक उत्पत्ति की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं, जबकि उत्पादित वस्तुओं की किस्म या श्रेणी, उनके विक्रय की दशाओं तथा आर्थिक वातावरण को ध्यान मे रखा जाता है।"[3]

क्या प्रतिनिधि फर्म एक 'औसत फर्म' (average firm) होती है ? यह वर्तमान फर्मों की औसत फर्म नही होती। **यह दीर्घकालीन औसत फर्म है** जबकि वर्तमान प्रवृत्तियो का प्रभाव पूर्णतया कार्य कर चुका हो।[4] **यह एक** ऐसी विशेष प्रकार की दीर्घकाल औसत फर्म है जिसको देखकर यह जाना जा सकता है कि कहाँ तक उद्योग विशेष को आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। **मार्शल** के शब्दो मे, "यह एक ऐसी विशेष प्रकार की औसत फर्म है जिसको हमें यह मालूम करने के लिए देखना पड़ता है कि कहाँ तक बड़े पैमाने की आन्तरिक तथा बाह्य बचतें सामान्यतया उद्योग तथा देश मे प्राप्त हो चुकी हैं।"[5] दूसरे शब्दों में प्रतिनिधि फर्म दीर्घकाल में सम्पूर्ण उद्योग की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है।

एक या एक से अधिक फर्म प्रतिनिधि फर्म हो सकती है। मार्शल के अनुसार, इस प्रकार की फर्म वास्तविक जीवन मे मौजूद हो सकती है। मार्शल के शब्दों मे, "इस फर्म को आकस्मिक रूप से किसी एक फर्म या दो फर्मों को देखने से ज्ञात नही किया जा सकता; परन्तु एक विस्तृत निरीक्षण के पश्चात् स्पष्ट रूप से हम, व्यक्तिगत या संयुक्त-पूंजी प्रबन्ध के अन्तर्गत, एक (या एक से अधिक) ऐसी फर्म का चुनाव कर सकते हैं जो कि, हमारे सर्वोत्तम अनुमान के अनुसार, इस विशेष प्रकार की औसत फर्म को बतायेगी।"[6]

---

[3] "... ..representative firm must be one which has had a fairly long life, and fair success, which is managed with normal ability, and which has normal access to the economies, external and internal, which belong to that aggregate volume of production; account being taken of the class of goods produced, the conditions of marketing them and the economic environment generally." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 265.

[4] "It is a long period average firm under conditions when the present tendencies have worked out their effects in full." —*Ibid*, p. 262.

[5] "And a representative firm is that particular sort of average firm at which we need to look in order to see how far the economies, *internal and external*, of production on a large scale have extended generally in the industry and country in question." —*Ibid.*, p 265

[6] "We cannot see this by looking at one or two firms taken at random; but we can see it fairly well by selecting, after a broad survey, a firm, whether in private or joint stock *Contd.*

स्थैतिक दशा (Static or Stationary conditions)[7] के अन्तर्गत उद्योग में प्रतिनिधि फर्म एक ही आकार की रहती है, न उसका विस्तार होता है और न संकुचन। मार्शल के शब्दों में, "निस्सन्देह हम यह मान सकते हैं कि स्थिर स्थिति मे व्यवसाय की प्रत्येक इकाई का आकार समान रहता है तथा उसके व्यापारिक सम्बन्ध समान रहते है। परन्तु हमे इस सीमा तक जाने की आवश्यकता नही है। यह मान लेना पर्याप्त होगा कि फर्मों का आकार बढ़ता है तथा कम होता है, परन्तु प्रतिनिधि फर्म का आकार उसी भाँति सदैव लगभग समान रहता है जिस प्रकार कि एक तरुण वन के प्रतिनिधि वृक्ष का आकार समान रहता है . . ।"[8]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक प्रतिनिधि फर्म की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(i) यह दीर्घकालीन औसत फर्म होती है; परन्तु यह वर्तमान फर्मों की औसत फर्म नहीं होती। यह एक ऐसी औसत फर्म है जिसका अध्ययन करके हम यह जान सकते हैं कि उद्योग में बड़ी मात्रा की उत्पादन की आन्तरिक तथा बाह्य बचतें कहाँ तक उपलब्ध हो चुकी हैं।

(ii) यह न बहुत पुरानी होती है और न बहुत नयी।

(iii) इसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता वाले व्यक्ति द्वारा होता है।

(iv) स्थैतिक स्थिति में इसका न विस्तार होता है और न संकुचन।

(v) इसको न लाभ होता है और न हानि, बल्कि सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

(vi) ऐसी फर्म एक या एक से अधिक हो सकती है।

प्रतिनिधि फर्म की आलोचना (Criticism of Representative Firm)

पीगू, साफा (Sraffa), यंग, रोबिन्स इत्यादि ने प्रतिनिधि फर्म की कड़ी आलोचनाएं की हैं जिनमे मुख्य निम्न हैं :

(1) **यह विचार अस्पष्ट (vague) है।** रोबिन्स पूछते हैं—क्या यह फर्म एक 'प्रतिनिधि प्लाण्ट' (representative plant) है, या एक 'प्रतिनिधि तान्त्रिक उत्पादन इकाई' (representative technical production unit) या एक 'प्रतिनिधि व्यावसायिक संगठन' (representative business organization) है? प्रतिनिधि फर्म से कौनसा अर्थ लिया जाय, यह बात मार्शल ने पूर्णतया स्पष्ट नही की।

परन्तु रोबिन्स का कहना है कि कुल मिलाकर मार्शल के विवरण से ऐसा लगता है कि प्रतिनिधि फर्म से उनका अर्थ 'प्रतिनिधि व्यावसायिक संगठन या इकाई' से था। इस प्रकार प्रतिनिधि फर्म उद्योग विशेष की फर्मों के सभी पहलुओं का प्रतिनिधित्व करती है। इस स्थिति को मान लेने पर इस प्रथम आलोचना की कड़ाई (rigour) कम हो जाती है।

(2) **यह विचार अवास्तविक (Unreal) है**—यह फर्म अवास्तविक है क्योंकि व्यावहारिक जीवन मे यह नही देखी जा सकती। रोबर्टसन का कथन है कि व्यापार डायरेक्टरी में किसी भी फर्म को प्रतिनिधि फर्म नही कहा जा सकता।[9] प्रतिनिधि फर्म के अवास्तविक होने के सम्बन्ध में कालडोर

management (or better still, more than one), that represents, to the best of our judgement, this particular average." —*Ibid.*, p. 265.

[7] यद्यपि स्थैतिक या स्थिर दशा में सभी प्रकार के परिवर्तन की अनुपस्थिति मानी जाती है, अर्थात् व्यवसाय की सभी इकाइयो के आकार को स्थिर मानना चाहिए; परन्तु मार्शल का कथन है कि ऐसा मान लेना आवश्यक नही है; उनके अनुसार स्थैतिक दशा मे कुछ फर्मों का संकुचन तथा विस्तार हो सकता है, परन्तु प्रतिनिधि फर्म लगभग एक आकार की ही रहती है।

[8] "Of course we might assume that in our stationary state every business remained always of the same size, and with the same trade connections. But we need not go so far as that; it will suffice to suppose that firms rise and fall, but that the 'representative' firm remains always of about the same size, as does the representative tree of virgin forest..." —*Ibid.*, p. 305.

[9] "No firm in the business directory can be said to represent the representative firm." —Robertson.

का कथन है कि "प्रतिनिधि फर्म मस्तिष्क का एक यन्त्र है, न कि वास्तविकता का विश्लेषण।"[10]

इस फर्म के अवास्तविक होने के सम्बन्ध में एक बात और कही जाती है। स्थैतिक स्थिति मे प्रतिनिधि फर्म का न विकास होता है और न संकुचन। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक विशेष फर्म ही प्रतिनिधि फर्म बनी रहेगी जबकि ऐसा मानना अवास्तविक है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने उपर्युक्त आलोचना के विरुद्ध निम्न तर्क दिये हैं: रोबर्टसन का कहना है कि यह आवश्यक नहीं है कि एक ही फर्म प्रतिनिधि फर्म बनी रहे। वे बताते हैं कि इस सम्बन्ध में मार्शल द्वारा दिया गया वन तथा वृक्षों का उदाहरण महत्त्वपूर्ण है; एक ही वृक्ष वन का सदैव प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। इसी बात को रोबर्टसन दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हैं: "प्रतिनिधि फर्म किसी 'एक विशेष फर्म' को नहीं बताती बल्कि 'एक स्थिति' को बताती है जो कि विभिन्न समयों पर एक या एक से अधिक फर्मों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। यह एक लहर के शीर्ष या चोटी (crest) पर पानी की बूंदों की भाँति होती है। विभिन्न समयों पर पानी की विभिन्न बूंदें चोटी की स्थिति को प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार जो फर्म आज प्रतिनिधि हो सकती है वह कल ऐसी नहीं रहती, कोई अन्य फर्म उसका स्थान ले लेती है।"[11]

(3) यह विचार अनावश्यक (Superfluous or unnecessary) **है**—रोबिन्स ने प्रतिनिधि फर्म के विचार को अनावश्यक बताया है। रोबिन्स के अनुसार, "प्रतिनिधि फर्म या प्रतिनिधि उत्पादक की मान्यता उसी प्रकार आवश्यक नहीं है जिस प्रकार कि भूमि के एक प्रतिनिधि टुकड़े, एक प्रतिनिधि मशीन या एक प्रतिनिधि श्रमिक को मानना आवश्यक नहीं है।"[12]

(4) 'स्पर्द्धात्मक दशाएँ' तथा 'बढ़ता हुआ प्रतिफल' असंगत हैं (Competitive conditions and increasing returns are incompatible)—प्रतिनिधि फर्म निम्न तीन मान्यताओं पर आधारित है: (i) पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति, (ii) अनेक फर्मों की उपस्थिति, तथा (iii) बढ़ते हुए प्रतिफल का होना। परन्तु ये मान्यताएं गलत हैं।

'स्पर्द्धात्मक दशाओं' तथा 'बढ़ते हुए प्रतिफल की प्रवृत्ति' का दीर्घकाल मे सहअस्तित्व नहीं हो सकता है। ब ते हुए प्रतिफल के क्रियाशील रहने से दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति समाप्त हो जाती है। बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने से किसी एक फर्म को अपने विस्तार के साथ बचतें प्राप्त होंगी तथा उसकी उत्पादन-लागत कम होती जायगी। अतः यह फर्म अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देगी, धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम होती जायेगी तथा अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। ऐसी स्थिति मे मूल्य अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत निर्धारित होगा। स्पष्ट है कि स्पर्द्धात्मक दशाए तथा बढ़ता हुआ प्रतिफल दीर्घकाल मे साथ-साथ उपस्थित नहीं रह सकते; मार्शल की यह मान्यता गलत थी कि इन दोनों का सहअस्तित्व हो सकता है। स्पष्ट है कि यह आलोचना मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की जड़ों को काटती है।

निष्कर्ष—वास्तव मे, मूल्य सिद्धान्त मे प्रतिनिधि फर्म का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। दीर्घकाल मे बढ़ते हुए प्रतिफल तथा स्पर्द्धात्मक दशाओं का सहअस्तित्व नहीं हो सकता। यदि दीर्घकाल मे स्पर्द्धात्मक दशाए उपस्थित रहती हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि 'बढ़ते हुए प्रतिफल की प्रवृत्ति'

---

10 "Representative firm is a tool of mind rather than an analysis of concrete." —Kaldor.

11 "The representative firm refers not to any particular firm but to a position which may be occupied by one or more firms at different moments. It is like waterdrops on the crest of a wave; different drops of water occupy the 'crest' position at different moments. Similarly, the firm that is representative today may cease to be so tomorrow, some other firm taking its place." —Robertson.

12 "There is no more need for us to assume a representative firm, or a representative producer, than there is for us to assume a representative price or land, a representative machine or a representative worker." —Robbins.

ने अपने आपको पूर्णतया समाप्त कर दिया होगा, और तब प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार की होगी जो कि निम्नतम लागत पर वस्तु का उत्पादन करेगी तथा मूल्य इस लागत के बराबर निर्धारित होगा।

साम्य या सन्तुलन फर्म
(EQUILIBRIUM FIRM)

मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की आलोचना करते हुए पीगू ने उससे मिलता-जुलता अपना एक पृथक विचार प्रस्तुत किया। पीगू के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता तथा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति में दीर्घकाल में मूल्य प्रतिनिधि फर्म की लागत द्वारा नहीं बल्कि 'साम्य फर्म' की लागत के द्वारा निर्धारित होता है। पीगू अपने साम्य फर्म के विचार को मार्शल की प्रतिनिधि फर्म के ऊपर सुधार समझते थे, जबकि वास्तव में ऐसा कहना कठिन है।

साम्य फर्म की परिभाषा तथा अर्थ

एक उद्योग साम्य या सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जायेगा जबकि उसका कुल उत्पादन अपरिवर्तित रहता है, अर्थात् एक दिये हुए समय में वह एक निश्चित मात्रा का ही नियमित रूप से उत्पादन करता है।

पीगू के अनुसार, एक उद्योग साम्य की अवस्था में हो सकता है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में भी साम्य की अवस्था में हों, कुछ फर्मों का विकास हो सकता है तथा कुछ का संकुचन, परन्तु विस्तार (अर्थात् उत्पादन में कुल वृद्धि) ठीक संकुचन (अर्थात् उत्पादन में कुल कमी) के बराबर हो सकता है, और इस प्रकार उद्योग का कुल उत्पादन समान रह सकता है। परन्तु उद्योग के साम्य की स्थिति में रहने पर एक फर्म ऐसी हो सकती है जो स्वयं भी साम्य की स्थिति में हो अर्थात् जिसका न विकास हो रहा हो और न संकुचन; ऐसी फर्म को पीगू ने 'साम्य फर्म' कहा।

पीगू के शब्दों में साम्य फर्म की परिभाषा इस प्रकार है : "साम्य फर्म का अभिप्राय है कि जब समस्त उद्योग इस अर्थ में साम्य की स्थिति में हो कि वह नियमित रूप से y मात्रा का उत्पादन एक सामान्य पूर्ति मूल्य p के प्रत्युत्तर (response) में कर रहा हो, तो इस स्थिति में कोई एक ऐसी फर्म विद्यमान हो सकती है जो स्वयं भी व्यक्तिगत रूप में एक नियमित मात्रा x के उत्पादन के साथ साम्य में हो।"[13]

साम्य फर्म के अर्थ को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। माना सीमेण्ट उद्योग में 6 फर्में—E, F, G, H, I तथा J हैं। निम्न तालिका में इन फर्मों का 1945 तथा 1946 का सीमेण्ट उत्पादन दिखाया है :

सीमेन्ट उद्योग (टनों में)

फर्मों का नाम	1945 का उत्पादन	1946 का उत्पादन
E	100	290
F	200	250
G	600	700
H	400	400 साम्य फर्म
I	250	100
J	550	360
कुल उत्पादन	2,100	2,100

[13] "The equilibrium firm 'implies that there can exist some one firm, which, whenever the industry as a whole is in equilibrium, in the sense that it is producing a regular output y in response to a normal supply price p, will itself also individually be in equilibrium with a regular output x."

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सीमेण्ट उद्योग साम्य की स्थिति में है क्योंकि 1945 तथा 1946 दोनों वर्षों में कुल उत्पादन समान अर्थात् 2,100 टन के बराबर रहता है। E, F तथा G फर्मों का विकास हो रहा है और I तथा J फर्मों का सकुचन; परन्तु H फर्म ऐसी है जिसका न विकास हो रहा है और न संकुचन (इसका उत्पादन 400 टन के बराबर रहता है), अत: फर्म *H* 'साम्य फर्म' है। E, F तथा G फर्मों के उत्पादन मे वृद्धि I और J फर्मों के उत्पादन में कमी के ठीक बराबर है; परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पादन समान रहता है, अर्थात् उद्योग साम्य की स्थिति में रहता है।

पीगू के अनुसार मूल्य इस साम्य फर्म की (i) सीमान्त लागत (marginal cost) तथा (ii) औसत लागत (average cost) के बराबर होगा। (i) यदि मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत से कम होता है तो इस फर्म को नुकसान होगा और यह उद्योग में से निकल जायेगी। यदि मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत से अधिक है तो उस फर्म को लाभ होगा और यह फर्म साम्य फर्म नही रह जायेगी। *(ii) दूसरे, यदि मूल्य साम्य फर्म की 'औसत लागत' से कम है, तो हानि होगी और फर्म अपना संकुचन करेगी जिससे उद्योग के सन्तुलन मे गड़बड़ हो जायेगी।* यदि मूल्य साम्य फर्म को औसत लागत से अधिक है तो लाभ होगा जिससे उद्योग मे नयी फर्मों का प्रवेश होगा और इसलिए साम्य *फर्म अपनी स्थिति से हट जायेगी और दूसरी फर्म साम्य फर्म हो जायेगी। अत. मूल्य साम्य फर्म की* सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनो के बराबर होगा।

साम्य फर्म की आलोचना (Criticism of the Equilibrium Firm)

साम्य फर्म की लगभग वे ही आलोचनाए हैं जो कि प्रतिनिधि फर्म की हैं। यद्यपि पीगू का कथन है कि साम्य फर्म प्रतिनिधि फर्म के ऊपर सुधार है, परन्तु वास्तव में ऐसा नही है। साम्य फर्म की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं

(1) **साम्य फर्म का विचार अवास्तविक है तथा यह व्यवहार में नहीं पायी जाती।** उद्योग के साम्य की अवस्था मे पीगू यह मानते हैं कि (साम्य फर्म को छोड़कर) कुछ फर्मों का विकास हो सकता है तथा कुछ का सकुचन, परन्तु उत्पादन मे वृद्धि तथा संकुचन बराबर रहते हैं ताकि उद्योग का कुल उत्पादन समान रहता है, अर्थात् उद्योग साम्य की स्थिति मे रहता है। परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है क्योंकि यह आवश्यक नही है कि उत्पादन में जितना विस्तार हो ठीक उसके बराबर ही सकुचन भी हो।

(2) साम्य फर्म भी, प्रतिनिधि फर्म की भाँति, अनावश्यक बतायी जाती है।

(3) **स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ता हुआ प्रतिफल असंगत (incompatible) हैं।** साम्य फर्म का विचार भी, प्रतिनिधि फर्म की भाँति, निम्न मान्यताओ पर आधारित है: (i) पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति; (ii) अनेक फर्मों की उपस्थिति, तथा (iii) बढ़ते हुए प्रतिफल का होना; परन्तु ये मान्यताएँ गलत हैं। स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ते हुए प्रतिफल का दीर्घकाल मे सहअस्तित्व नही हो सकता है।

अनुकूलतम फर्म
(OPTIMUM FIRM)

आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने 'अनुकूलतम फर्म' के विचार को प्रस्तुत किया है। केवल 'अनुकूलतम' शब्द का अर्थ है "किसी वस्तु की सर्वोतम मात्रा या दशा, वे दशाएँ जो कि सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करती हैं।"[14] यदि शब्द अनुकूलतम को जनसंख्या के साथ जोड़ दिया जाता है तो इसका अर्थ है वह जनसख्या जो कि देश के प्राकृतिक साधनो तथा विकास की स्थिति को देखते हुए सर्वोत्तम हो। इसी प्रकार यदि 'अनुकूलतम' शब्द को फर्म के साथ जोड दिया जाये, तो 'अनुकूलतम फर्म' का अर्थ ऐसी व्यावसायिक इकाई से लिया जाता है जो कि किसी दिये हुए समय में उद्योग विशेष की दशाओं के

[14] *The word optimum, standing alone, means, "the most favourable degree or condition of* anything, the conditions that produce the best result."

अनुसार सर्वोत्तम हो। दूसरे शब्दों में, अनुकूलतम फर्म उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाकर न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन करती है।

अनुकूलतम फर्म की परिभाषा तथा उसके अभिप्राय

प्रो. बाई के शब्दो मे अनुकूलतम फर्म "व्यावसायिक उपक्रम का वह संगठन है जो, **टेकनोलोजी तथा वस्तु के बाजार की दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत, दीर्घकाल में न्यूनतम औसत लागत पर अपनी वस्तु को उत्पादित कर सके।**"[11]

दूसरे शब्दों में, किसी उपक्रम के उस पैमाने को जिस पर उत्पत्ति के साधनों के अनुकूलतम अनुपात मे मिलाने के परिणामस्वरूप औसत लागत न्यूनतम होती है, 'अनुकूलतम पैमाना' (optimum scale) कहते है तथा इस पैमाने पर कार्य करने वाली फर्म को 'अनुकूलतम फर्म' कहते हैं। संक्षेप में, 'निम्नतम न्यूनतम-लागत संयोग' (lowest least-cost combination) **वाली फर्म को 'अनकूलतम फर्म' कहा जाता है।**

'अनुकूलतम फर्म' को चित्र 1 द्वारा दिखाया गया है।

उपक्रम के विभिन्न पैमानो से सम्बन्धित विभिन्न 'न्यूनतम-लागत संयोग' होंगे। चित्र 1 मे उपक्रम के विभिन्न पैमानों से सम्बन्धित न्यूनतम-लागत संयोग को औसत लागत रेखाओं (Average cost curves or AC-curves) के न्यूनतम बिन्दुओं को E, L तथा F द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि उपक्रम का वह पैमाना जो कि AC_2 रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है, 'अनुकूलतम पैमाना' है और इस पैमाने पर कार्य करने वाली फर्म 'अनुकूलतम फर्म' है क्योंकि इसकी औसत लागत LM सबसे कम है; उत्पादन की 'अनुकूलतम मात्रा' OM है।

अनुकूलतम फर्म के अभिप्राय (implications) निम्न विवरण से स्पष्ट हैं:

(1) स्पर्द्धात्मक दशा में अनुकूलतम फर्म न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन करती है। दूसरे शब्दों मे अनुकूलतम फर्म वह फर्म है जिसे उत्पत्ति के पैमाने की बचतें पूर्णतया प्राप्त हो चुकी है (ताकि औसत लागत न्यूनतम हो जाती है) तथा पैमाने की अबचतों का प्रारम्भ नही हुआ है। (चित्र 1 में AC_2 रेखा पर L बिन्दु इस स्थिति को बताता है।)

चित्र 1

(2) अनुकूलतम फर्म एक 'आर्थिक आदर्श' (economic norm) या उपक्रम का एक 'आदर्श पैमाना' (ideal scale) है जिसके सन्दर्भ में अन्य फर्मों को आँका जा सकता है। स्पर्द्धात्मक दशाओं में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। परन्तु कई कारणो से (जिनका वर्णन आगे किया गया है) सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त नही कर पाती हैं; उद्योग विशेष में कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी होती हैं तथा कुछ बड़ी। यहा पर एक प्रश्न यह उठता है कि सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों
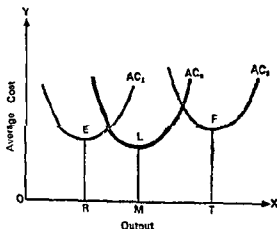
[11] Optimum firm may be defined as "that organization of business enterprise which, in given circumstances of technology and the market for its product, can produce its goods at the lowest average unit costs in the long run." —Prof. Bye.

करती हैं ? स्पर्द्धात्मक उद्योग में उन फर्मों को जो कि अनुकूलतम आकार से छोटी या बड़ी हैं, शीघ्र या देर से उद्योग से निकल जाने का भय बना रहेगा क्योंकि इन फर्मों के उत्पादन की औसत लागत अपेक्षाकृत अधिक होगी तथा उत्पादन कुशलता कम; इसके विपरीत, वे फर्में जो कि अनुकूलतम आकार के निकट होंगी, व्यवसाय या उद्योग मे टिक सकेंगी। अत: दीर्घकाल में तथा उत्पादन-कला की दी हुई स्थिति के अन्तर्गत स्पर्द्धात्मक उद्योग मे सभी फर्में अनुकूलतम आकार की ओर जाने की प्रवृत्ति रखती हैं, यद्यपि किसी समय विशेष पर यह प्रवृत्ति पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नही कर पाती। अस्पर्द्धात्मक उद्योगों (non-competitive industries) मे, फर्मों को अनुकूलतम आकार की ओर ले जाने वाली शक्तियां, स्पर्द्धात्मक उद्योगों की अपेक्षा, बहुत कम बलवान होती हैं।

(3) **अनुकूलतम फर्म तथा पूर्ण प्रतियोगिता असंगत (*incompatible*) नहीं हैं, उनका सहअस्तित्व होता है, तथा स्पर्द्धात्मक दशा में अनेक अनुकूलतम फर्म हो सकती हैं।** उपक्रम के पैमाने को बढ़ाते जाने से एक स्थिति ऐसी आती है जहा पर पैमाने की बचतें पूर्णतया प्राप्त हो जाती हैं और औसत लागत निम्नतम हो जाती है। इसके बाद यदि पैमाने को और बढ़ाया जाता है तो अबचतें प्राप्त होने लगती हैं और फर्म अनुकूलतम आकार की नही रह जाती। यदि पैमाने की प्रत्येक वृद्धि के साथ लागत घटती जाती तो फर्म विशेष अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में न टिकने देती तथा एकाधिकार की स्थिति प्राप्त कर लेती और इस प्रकार अनुकूलतम फर्म तथा प्रतियोगिता असगत हो जाते। चूंकि विकास के बाद के चरण (phase) मे अबचतें प्राप्त होने लगती है, इसलिए अनेक फर्म अनुकूलतम आकार की होती हैं तथा अनुकूलतम फर्म और प्रतियोगिता सगतपूर्ण (compatible) होते हैं।

(4) **आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अनुकूलतम फर्म का 'जैवकीय दृष्टिकोण' (biological view) लेना चाहिए, न कि 'यान्त्रिक दृष्टिकोण' (mechanical view)।** औद्योगिक वातावरण तथा बाजार की दशाओ से पृथक करके अनुकूलतम फर्म पर 'यान्त्रिक दृष्टिकोण' से विचार नही किया जा सकता क्योंकि फर्में अन्य फर्मों के संसर्ग (*association*) मे तथा अन्य फर्मों के साथ प्रतियोगिता मे होती हैं। जिस प्रकार से जीव (organisms) का विकास वंशगत गुणों (hereditary endowment) पर वातावरण के कार्यकरण द्वारा प्रभावित होता है, उसी प्रकार फर्मों का विकास प्रबन्धकीय योग्यता, वित्तीय शक्ति, इत्यादि पर अवसरो के कार्यकरण द्वारा प्रभावित होता है। समन्वय तथा प्रगुणन (grafting and proliferation) द्वारा फर्मों का विकास होता है, न कि एक रूप इकाइयों के साथ उसी प्रकार की इकाइयो को यान्त्रिक ढंग से जोड़ देने से।[16]

अत अनुकूलतम फर्म को, पृथक न की जा सकने वाली बाजार की दशाओ की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ मे, जैविकीय दृष्टिकोण से देखना चाहिए। उसकी लागतें केवल इस बात पर निर्भर नहीं करती कि वह किस प्रकार कार्य करती है (अर्थात् इस बात पर निर्भर नही करती कि फर्म के अन्दर *क्या हो रहा है), बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती हैं कि उसे क्या करना है, और यह निर्भर* करता है औद्योगिक वातावरण पर। अनुकूलतम फर्म का आकार उद्योग के विशिष्ट संगठन पर, जिसमे कि उसे कार्य करना है, निर्भर करता है। यदि वातावरण परिवर्तित होता है तो अनुकूलतम भी परिवर्तित होता है, तथा स्वय फर्म का विकास वातावरण को बदलने के लिए पर्याप्त हो सकता है।"[17]

[16] "But we cannot take a consistently mechanical view of the firm (i.e., optimum firm), abstracting from industrial environment, and juggling with different sizes of firm until we find the optimum. Firms exist in association and in competition with other firms. They are linked organically with one another. Their growth is conditioned by the play of opportunity on a given endowment of managerial ability, financial strength, and so on, just as the growth of organisms is conditioned by the play of environment on a given hereditary endowment. Firms grow by grafting and proliferation rather than as homogeneous units with which new units of the same kind are geared mechanically."

[17] "The optimum firm, therefore, must be looked at *biologically* against a background of market conditions from which we cannot abstract. Its costs depend not simply on how
(Contd.)

अनुकूलतम फर्म, प्रतिनिधि फर्म तथा साम्य फर्म

अनुकूलतम फर्म मार्शल की प्रतिनिधि फर्म से भिन्न है : (i) मार्शल की प्रतिनिधि फर्म एक दीर्घकालीन औसत फर्म है जबकि अनुकूलतम फर्म न्यूनतम-लागत फर्म है जिसे स्पर्द्धात्मक दशाओं में, दीर्घकाल मे, प्रत्येक फर्म प्राप्त करने का प्रयत्न करती है : (ii) उद्योग के साम्य की अवस्था में होने पर केवल प्रतिनिधि फर्म ही साम्य अवस्था में होती है तथा अन्य फर्में साम्य में नहीं होतीं, इसके विपरीत, अनुकूलतम फर्म का विचार बताता है कि उद्योग विशेष मे साम्य की अवस्था में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की ही होगी।

अनुकूलतम फर्म पीगू की साम्य फर्म से भिन्न है—(i) साम्य फर्म काल्पनिक है जो कि व्यवहार मे नहीं पायी जाती; यह केवल एक विश्लेषणात्मक यन्त्र (analytical tool) है। इसके विपरीत, अनुकूलतम फर्म एक वास्तविक फर्म है; यह केवल एक विश्लेषणात्मक यन्त्र नहीं है, यह अनुकूलतम आकार को बताती है जिसको स्पर्द्धात्मक दशाओं के अन्तर्गत, दीर्घकाल, मे प्रत्येक फर्म प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। (ii) उद्योग विशेष में केवल एक ही साम्य फर्म होती है, जब कि अनुकूलतम फर्म अनेक होती हैं तथा प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार की ओर जाने की प्रवृत्ति रखती है।

अनुकूलतम आकार कितना बड़ा होता है ? (अथवा अनुकूलतम आकार को प्रभावित करने वाले तत्त्व)

अनुकूलतम फर्म का आकार कितना बड़ा होगा, यह उद्योग विशेष की दशाओं पर निर्भर करेगा। उद्योग की दी हुई दशाओ तथा दिये हुए वातावरण में कोई एक अनुकूलतम आकार होगा; परन्तु दशाओ और वातावरण में परिवर्तन के साथ अनुकूलतम आकार भी परिवर्तित हो जायेगा। इसके अतिरिक्त विभिन्न उद्योगों की परिस्थितियों के अनुसार उनमे अनुकूलतम फर्म का आकार भिन्न होगा। अनुकूलतम आकार निम्न बातो पर निर्भर करता है :

(1) **टेक्नोलोजी** (Technology)—उन सब उद्योगों मे अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा जिनमें विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन की अधिक सम्भावना होती है, जिनमें बड़ी तथा महंगी मशीनों का प्रयोग (जैसे, लोहा तथा इस्पात उद्योग मे) होता है, अवशिष्ट पदार्थ (by-product) का प्रयोग किया जाता है, इत्यादि। इसके विपरीत दशाओ में अनुकूलतम फर्म का आकार छोटा होगा।

(2) **प्रबन्ध** (Management)—जिन उद्योगो में प्रबन्धकीय कुशलता का ऊंचा स्तर तथा प्रबन्धकीय विशिष्टीकरण बड़ी सीमा तक प्राप्त किया जा सकेगा उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा। इसके विपरीत, जिन उद्योगों मे प्रबन्धकीय विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं किया जा सकता उनमे अनुकूलतम आकार छोटा होगा। प्रबन्धकीय कुशलता तथा विशिष्टीकरण अनुकूलतम फर्म के आकार को निर्धारित करते हैं।

(3) **विपणन के अवसर** (Marketing opportunities)—जिन उद्योगों की वस्तुओं का बाजार विस्तृत होता है उनमे अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा; इसके विपरीत, यदि बाजार संकुचित है तो अनुकूलतम फर्म का आकार छोटा होगा। विपणन के अवसर फर्म के आकार को सीमित करते हैं।

(4) **वित्तीय सुविधाएं** (Financial facilities)—जिन उद्योगों को अच्छी वित्तीय सुविधाएं प्राप्त हैं उनमे अनुकूलतम फर्म का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होगा अन्यथा छोटा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है :

---

it does things [that is, on what is happening inside the firm], but also on what it has to do, and what it has to do depends upon the industrial environment. The size of the optimum firm depends upon particular organization of industry into which it has to fit. If the environment changes, the optimum changes, and the growth of the firm itself may be sufficient to alter the environment."

(i) अनुकूलतम आकार कोई एक आकार नही होता बल्कि वह प्रत्येक उद्योग मे भिन्न होता है। कुछ उद्योगो (जैसे, मोटरकारों तथा ट्रकों का उद्योग, लोहा तथा इस्पात उद्योग, सिगरेट उद्योग, इत्यादि) मे अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होता है, जबकि कुछ अन्य उद्योगो मे अनुकूलतम फर्म का आकार बीच का या छोटा है। हम यह नही कह सकते कि कोई एक विशेष आकार अनुकूलतम आकार होता है, विभिन्न प्रकार के उत्पादनों मे अनुकूलतम आकार भिन्न होता है।[18]

(ii) अनुकूलतम फर्म का आकार उद्योग विशेष के सगठन तथा वातावरण पर, जिसमे उसे कार्य करना है, निर्भर करता है। यदि औद्योगिक वातावरण परिवर्तित होता है तो अनुकूलतम भी परिवर्तित होता है, तथा स्वय फर्म का विकास वातावरण को बदलने के लिए पर्याप्त हो सकता है।[19]

एक उद्योग के अन्तर्गत सभी फर्में अनुकूलतम आकार की क्यों नहीं होतीं ?

यदि स्पर्द्धात्मक उद्योग मे प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखती है, परन्तु व्यवहार मे सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त नही कर पाती, फर्मों के आकारो मे बहुत भिन्नता पायी जाती है। प्रश्न यह उठता है कि सभी फर्में अनुकूलतम पैमाने पर कार्य क्यो नही करती ? इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(1) **यह आवश्यक नहीं है कि अनुकूलतम पैमाना सबसे लाभदायक हो** (The optimum scale may not necessarily be the most profitable one)—अनुकूलतम फर्म उद्योग विशेष मे न्यूनतम-लागत के पैमाने को बताती है, परन्तु यह आवश्यक नही है कि सभी दशाओ मे वह अधिकतम लाभ का पैमाना भी हो। कई दशाओ मे बाजार इतना बड़ा नहीं होता कि सभी फर्में अनुकूलतम पैमाने पर कार्य कर सकें। ऐसी स्थिति मे फर्में बड़े प्लांट का प्रयोग करके औसत लागत को न्यूनतम रखकर अनुकूलतम आकार को प्राप्त नही कर पायेंगी बल्कि वे छोटे प्लांट का प्रयोग करेंगी (जिसकी औसत लागत अनुकूलतम आकार की अपेक्षा अधिक होगी) क्योंकि वस्तु का बाजार विस्तृत नही है और तभी अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगी।

(2) **उद्योग विशेष में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से बड़ी हो सकती हैं** (Some firms may be larger than optimum size in order to attain dominance in the industry)—कुछ फर्में उद्योग मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से कही अधिक बडा आकार प्राप्त करती है। ऐसी फर्में अपने हित मे क्रय तथा विक्रय की कीमतो को प्रभावित करके अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति का लाभ उठाती है। (उदाहरणार्थ, सिगरेट बनाने वाली बडी-बड़ी कम्पनिया अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण सिगरेट की कीमतों को प्रायः लगभग स्थिर रख पाती हैं और तम्बाकू उत्पन्न करने वाले कृषकों को नीची कीमतें देती हैं।)

(3) **औद्योगिक साम्राज्य का स्वप्न** (Dream of an industrial empire)—अधिक लाभ प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ फर्में औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखती है। अतः बड़े होने तथा अधिक आदर प्राप्त करने की भावना से कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से बडे आकार को प्राप्त करती हैं।

---

[18] We cannot say that some particular size is optimal, different sizes are optimal in different types of production.

[19] For example, if "the growth of a firm reduces the competition to which it is exposed this may automatically ease the task of management : industrial combination might create an environment favourable to the operation to larger units that could survive intense competition—'favourable' in the sense of making for lower costs, not just of making for higher profits. Many of the risks which keep the optimum firm comparatively small are themselves the product of competition."

परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि सरकार एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए कार्यवाही करती है और सरकार के इस डर से कुछ फर्में जितना बड़ा आकार चाहती हैं उतना बड़ा आकार प्राप्त नहीं कर पाती।

(4) नयी परिस्थितियां तथा तेज परिवर्तनशील आर्थिक प्रक्रिया (New conditions and fast changing economic process)—नयी टेकनोलोजी, भविष्य में मजदूरी-दरें तथा मालों (materials) की कीमतों, प्राप्य बाजार के आकार, प्रबन्धकीय विशेषताओं, इत्यादि के सम्बन्ध में बहुत-सी फर्में उचित व सही निर्णय नहीं ले पाती हैं तथा वे नयी परिस्थितियों के साथ धीमी गति से समन्वय कर पाती हैं। ऐसी फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी रह जाती हैं। यदि यह मान लिया जाये कि फर्में उचित व सही निर्णय ले सकती हैं, तो भी बहुत-सी फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी रह जायेंगी क्योंकि नयी स्थितियाँ और नये बाजार उत्पन्न होते रहते हैं, तथा नये टेकनीकल परिवर्तन तेजी से और निरन्तर होते रहते हैं; व्यवहार में इन तेज परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ फर्में शीघ्रता से समायोजन नहीं कर पातीं और वे अनुकूलतम आकार से छोटे आकार की रह जाती हैं।

प्रश्न

1. मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   Write a critical note on the concept of Marshall's 'Representative Firm.' (Bhagalpur)
2. मार्शल के प्रतिनिधि फर्म के विचार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा पीगू की साम्य फर्म से उसका अन्तर बताइए।
   Examine critically Marshall's concept of 'representative firm' and distinguish it from Pigou's 'equilibrium firm.'
3. अनुकूलतम फर्म के विचार की विवेचना कीजिए। उन तत्वों को बताइए जिन पर अनुकूलतम फर्म का आकार निर्भर करता है।
   Discuss the concept of an optimum firm. State the factors on which the optimum size of a firm depends. (Ranchi)

   अथवा

   Examine the factors which determine the optimum size of a firm under competitive conditions. (Bihar)
4. अनुकूलतम फर्म के विचार तथा उसके अभिप्रायों की पूर्ण विवेचना कीजिए। क्या एक स्पर्द्धात्मक उद्योग में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की होती हैं? यदि नहीं, तो क्यों?
   Explain fully the concept and implications of optimum firm. Are all the firms in a competitive industry of equilibrium size? If not, why?
   [संकेत—दूसरे भाग में कारणों सहित बताइए कि एक स्पर्द्धात्मक उद्योग में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की नहीं होतीं। देखिए 'एक उद्योग के अन्तर्गत सभी फर्में अनुकूलतम आकार की क्यों नहीं होती?' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

30

लागत तथा आगम के विचार

(The Concepts of Cost and Revenue)

एक दी हुई कीमत पर कोई उत्पादक वस्तु विशेष का कितना उत्पादन करेगा यह बात उत्पादन लागत पर निर्भर करेगी। उत्पादन लागत प्रायः तीन अर्थों मे प्रयुक्त की जाती है : (i) द्राव्यिक लागत; (ii) वास्तविक लागत, तथा (iii) अवसर लागत । नीचे इसमे से प्रत्येक के अर्थ तथा अभिप्रायो पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है ।

द्राव्यिक लागत
(MONEY COST)

साधारणतया किसी वस्तु के उत्पादन मे विभिन्न उत्पत्ति के साधनो के प्रयोग के लिए उत्पादक जो द्रव्य व्यय करता है उसे उत्पादन की 'द्राव्यिक लागत' कहते है । परन्तु अर्थशास्त्री की दृष्टि से यह परिभाषा पूर्ण नही है । अर्थशास्त्रियो के अनुसार 'द्राव्यिक लागतो' मे निम्न तीन प्रकार की मदें (items) शामिल होती हैं

(1) **स्पष्ट लागतें** (Explicit costs)[1]—यह वे लागतें हैं जो कि एक उत्पादक स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनो (inputs) को खरीदने मे व्यय करता है । 'स्पष्ट लागतो' के अन्तर्गत निम्न प्रकार के व्यय शामिल होते है (i) **उत्पादन लागतें** (production costs)—कच्चे माल की लागत, श्रमिको की मजदूरियाँ, उधार ली गयी पूँजी का ब्याज, भूमि तथा बिल्डिगों का किराया, मशीनो (अर्थात स्थिर पूँजी) का घिसाई व्यय (depreciation charges), इत्यादि । (ii) **विक्रय लागतें** (selling costs)—विज्ञापन तथा प्रसार पर किया गया व्यय । (iii) **अन्य लागतें** (other costs)—सरकार तथा स्थानीय अधिकारियो को दिये गये कर, बीमा-व्यय, इत्यादि ।

(2) **अस्पष्ट लागतें या सन्निहित लागतें** (Implicit costs)[2]—इसमे उन साधनो तथा सेवाओ का मूल्य शामिल होता है जिनका उत्पादक या साहसी प्रयोग करता है, पर प्रत्यक्ष रूप मे उनकी कीमतें नही चुकाता अर्थात् **साहसी के स्वय के साधनों** (self-owned resources) **के बाजार दर पर पुरस्कारो को 'अस्पष्ट लागतें' कहते हैं ।**[3] यदि साहसी स्वय के साधनो को अपने व्यवसाय मे नही लगाता है तो वह उन्हें किसी दूसरे *व्यवसाय मे लगाकर उनके मालिक के रूप मे बाजार दर पर पुरस्कार प्राप्त कर सकता है ।* अत अर्थशास्त्रियो के अनुसार व्यवसाय मे साहसी के स्वयं के साधनों के (बाजार दर पर) पुरस्कारो को लागत का अग मानना चाहिए । व्यावहारिक जीवन में प्रायः एकाउन्टेन्ट या उद्योगपति 'अस्पष्ट लागतो' को 'द्राव्यिक लागत' मे शामिल नही करते ।

---

[1] स्पष्ट लागतो को 'भुगतान की गयी लागतें' (Paid-out costs) या व्यय लागतें (Expenditure costs) या 'परिव्यय लागतें' (Outlay costs) भी कहते हैं ।

[2] Implicit Cost को Non-Expenditure Costs भी कहते है ।

[3] यदि एक साहसी स्वय प्रबन्धक के रूप मे कार्य करता है, कुछ अपनी पूंजी भी लगाता है, तथा कुछ अपनी भूमि भी देता है, तो बाजार दर पर इन सब साधनो के मालिक के रूप मे उसे पुरस्कार

(क्रमशः)

(3) सामान्य लाभ (Normal profit)—अर्थशास्त्री द्राव्यिक लागत में 'सामान्य लाभ' भी शामिल करते है। किसी उद्योग मे साहसी के लिए "सामान्य लाभ, लाभ का वह स्तर (level) है जो कि साहसी को उद्योग मे बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र है।"[4] यदि साहसी को उद्योग विशेष मे दीर्घकाल मे लाभ का न्यूनतम स्तर अर्थात् सामान्य लाभ प्राप्त नही होता तो साहसी उद्योग विशेष मे कार्य नही करेगा और किसी दूसरे उद्योग मे हस्तान्तरित हो जायेगा। इस प्रकार सामान्य लाभ **साहसी को उद्योग विशेष में बनाये रखने की लागत है** और अर्थशास्त्री उसे द्राव्यिक लागत का अंश मानते हैं।

स्पष्ट है कि व्यावहारिक जीवन मे **एकाउण्टेन्ट की द्राव्यिक लागत तथा अर्थशास्त्री की द्राव्यिक लागत भिन्न हैं।** एकाउन्टेन्ट द्राव्यिक लागत मे केवल 'स्पष्ट लागतें' ही शामिल करता है; जबकि अर्थशास्त्र मे द्राव्यिक लागत मे 'स्पष्ट लागतो' के अतिरिक्त 'अस्पष्ट लागतें' तथा 'सामान्य लाभ' भी शामिल किये जाते है।

वास्तविक लागत
(REAL COST)

वास्तविक लागत का अर्थ

क्लासीकल अर्थशास्त्रियो ने वास्तविक लागत का विचार प्रस्तुत किया। उनके अनुसार किसी वस्तु की कीमत अन्त मे उसकी वास्तविक लागत पर निर्भर करती है।

क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'वास्तविक लागत' का अर्थ उन सब कष्टों, प्रयत्नों (exertions) **तथा त्याग से है जो कि किसी वस्तु के उत्पादन में उठाने पड़ते हैं।** श्रमिकों को परिश्रम के रूप में कष्ट तथा त्याग उठाना पड़ता है; पूँजीपतियों को उपभोग-त्याग (abstinence) या 'प्रतीक्षा' (waiting) के रूप मे कष्ट तथा त्याग उठाना पड़ता है क्योकि पूँजी का संचय प्रयत्नों, तथा 'उपभोग' स्थगित करने अर्थात् 'प्रतीक्षा' का परिणाम होता है। ये सब कष्ट तथा त्याग मिलकर वास्तविक लागत को बताते है। वास्तविक लागत को 'सामाजिक लागत' (Social cost) भी कहते हैं क्योंकि वस्तुओं के उत्पादन में समाज को कष्ट तथा त्याग का सामना करना पडता है।

मार्शल द्वारा वास्तविक लागत की परिभाषा—"किसी वस्तु के निर्माण में विभिन्न प्रकार के श्रमिको को जो प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रयत्न करने पड़ते हैं तथा साथ ही वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त की जाने वाली पूँजी को बचाने मे जो संयम या प्रतीक्षा आवश्यक होती है, ये सब प्रयत्न तथा त्याग मिलकर वस्तु की वास्तविक लागत कहे जाते हैं।"[5]

वास्तविक लागत के इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु के उत्पादन में जो कुल कष्ट तथा त्याग होता है उसके बराबर होगी। **इस सिद्धान्त का अभिप्राय सरल शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:** वस्तु 'अ' के उत्पादन में वस्तु 'ब' के उत्पादन की अपेक्षा तिगुना कष्ट तथा त्याग होता है तो वस्तु 'अ' की कीमत वस्तु 'ब' की कीमत की तिगुनी होगी।

वास्तविक लागत के विचार की कमजोरियां या आलोचना (Weaknesses or Criticism of the Concept of Real Cost)

(1) वास्तविक लागत कष्ट तथा त्याग पर आधारित है। (i) परन्तु 'कष्ट तथा त्याग'

(अर्थात् वेतन, ब्याज तथा लगान) मिलने चाहिए और ये उत्पादन-लागत के अंग होने चाहिए।

[4] 'Normal profit, for an entrepreneur in any industry, is that level of profit which is just sufficient to induce him to stay in the industry.

[5] "The exertions of all the different kinds of labour that are directly or indirectly involved in making it; together with the abstinences or rather the waitings required for saving the capital used in making it; all these efforts and sacrifices together will be called the real cost of production of the commodity."

—Marshall, *Principles of Economics*, p. 282.

का विचार मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिगत (psychological and subjective) है जिसको ठीक प्रकार से मापा नही जा सकता। (ii) एक ही कार्य करने मे विभिन्न व्यक्तियों के लिए कष्ट तथा त्याग भिन्न-भिन्न हो सकता है। (iii) एक ही कार्य को करने में कुछ व्यक्ति कष्ट के स्थान पर आनन्द अनुभव कर सकते है। उदाहरणार्थ, एक अध्यापक को पढाने मे कष्ट के स्थान पर आनन्द प्राप्त हो सकता है, एक गायक को अपने गीत को गाने मे अत्यन्त आनन्द मिल सकता है। ऐसी स्थिति मे इन सेवाओं का द्राव्यिक मूल्याकन कैसे किया जाये ? (iv) वास्तव मे, कार्य तथा परिश्रम करने की अपेक्षा बेकारी अधिक कष्टदायक होती है।

(2) वास्तविक लागत के विचार का अभिप्राय है कि किसी वस्तु या सेवा का मूल्य प्रत्यक्ष रूप से कष्ट तथा त्याग द्वारा निर्धारित होता है; परन्तु यह ठीक नही है। व्यावहारिक जीवन मे हम देखते हैं कि एक कुली या मजदूर का 'कष्ट तथा त्याग' बहुत अधिक होता है अपेक्षाकृत एक मैनेजर या फिल्म स्टार के; परन्तु फिर भी कुली या मजदूर को अपेक्षाकृत बहुत कम द्राव्यिक पुरस्कार मिलता है।

उपर्युक्त कमजोरियो या कठिनाइयों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने वास्तविक लागत के इस विचार को त्याग दिया। हैन्डरसन के अनुसार, **"वास्तविक लागत का सिद्धान्त हमें सन्देहात्मक विचार तथा अवास्तविकता के दलदल में डाल देता है।"**[6]

अवसर लागत
(OPPORTUNITY COST)

1. प्राक्कथन (Introduction)

कष्ट तथा त्याग पर आधारित क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के सन्देहात्मक (dubious) तथा दोषपूर्ण 'वास्तविक लागत' के विचार को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने छोड़ दिया। आधुनिक अर्थशास्त्र मे वास्तविक लागत को 'अवसर लागत' (opportunity cost) या 'त्याग किया गया विकल्प' (alternative forgone) या 'वैकल्पिक लागत' (alternative cost) या 'हस्तान्तरण आय (transfer earnings) के शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

2. अवसर लागत का अर्थ (Meaning of Opportunity Cost)

(अ) अवसर लागत वास्तविक लागत के रूप में (Opportunity cost as real cost) : लगभग प्रत्येक साधन के कई सम्भावित प्रयोग होते है। चूकि प्रत्येक साधन सीमित होता है, *इसलिए उसको सभी प्रयोगों मे पूर्ण रूप से प्रयुक्त नही किया जा सकता। समाज की दृष्टि से उसको* किसी एक उद्देश्य के लिए प्रयोग करने का अर्थ है कि उनको अन्य उद्देश्यो मे प्रयोग करने के अवसर का त्याग करना पड़ेगा। **किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत वह वस्तु है जिसका त्याग किया जाता है।**[7] *इस दृष्टि से किसी वस्तु की वास्तविक उत्पादन लागत का अर्थ उस वस्तु के उत्पादन मे* लगे प्रयत्नों, कष्टों तथा त्यागों से नहीं होता बल्कि दूसरे सर्वश्रेष्ठ विकल्प के त्याग (next best alternative forgone) से होता है। दूसरे शब्दो मे, **वस्तु Y की एक इकाई की वास्तविक उत्पादन लागत अर्थात 'अवसर लागत' वस्तु Z को त्यागी गयी मात्रा के बराबर है।**[8]

---

[6] The doctrine of real cost would "lead us into a quagmire of unreality and dubious hypothesis." —Handerson, *Supply and Demand*, p. 164.

[7] The real cost of production of a commodity is the commodity that is sacrificed.

[8] The real cost of production, that is, opportunity cost, of one unit to Y is equal to the amount of Z that must be forgone.

इसे 'अवसर लागत' या 'त्याग किया गया विकल्प' या 'वैकल्पिक लागत' इसलिए कहते है क्योंकि समाज की दृष्टि से एक वस्तु के उत्पादन का अर्थ है दूसरी वस्तु के उत्पादन के अवसरों या दूसरे विकल्पो (alternatives) का त्याग।

'वास्तविक लागत के रूप में अवसर लागत के विचार' को एक चित्र द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। सुविधा के लिए हम निम्न मान्यताओ को लेकर चलते है—(i) अर्थ-व्यवस्था मे एक दी हुई समयावधि मे साधनो की कुल मात्रा स्थिर रहती है; (ii) अर्थ-व्यवस्था में केवल दो वस्तुओ X तथा Y का उत्पादन हो रहा है; तथा (iii) पूर्ण प्रतियोगिता और पूर्ण रोजगार की स्थिति है। एक समयावधि मे अर्थ-व्यवस्था मे दो वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन के विभिन्न सम्भावित संयोगो (combinations) को चित्र 16 में AB रेखा द्वारा दिखाया गया है। AB रेखा पर C बिन्दु बताता है कि अर्थ-व्यवस्था में एक समय विधि में X वस्तु की OF मात्रा तथा Y वस्तु की OG मात्रा का उत्पादन होता है। इसी प्रकार से D बिन्दु बताता है कि अर्थ-व्यवस्था में X वस्तु की OK मात्रा तथा Y वस्तु की OH मात्रा का उत्पादन होता है। यदि अर्थ-व्यवस्था C बिन्दु से D बिन्दु पर आती है तो इसका अभिप्राय है कि X वस्तु की अतिरिक्त मात्रा ED या (FK) का उत्पादन करने के लिए अर्थ-व्यवस्था (या समाज) को Y वस्तु की CE (या GH) मात्रा के उत्पादन का त्याग, अथवा Y वस्तु की CE मात्रा को उत्पादित करने के 'अवसर' (opportunity) का त्याग, करना पड़ेगा। अतः, **X वस्तु की ED मात्रा की अवसर लागत दूसरी वस्तु Y की CE मात्रा है जिसके उत्पादन के अवसर का समाज को त्याग करना पड़ता है।**

चित्र 1

[AB रेखा को अर्थशास्त्री 'परिवर्तन रेखा' (Transformation Line) कहते हैं क्योंकि इस रेखा पर एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर वास्तव मे एक वस्तु का दूसरी वस्तु मे परिवर्तन (transformation) होता है। चित्र मे जब हम C बिन्दु से D पर जाते हैं तो हम एक दी हुई समयावधि मे Y वस्तु की CE मात्रा को X वस्तु की ED मात्रा मे परिवर्तित (transform) करते हैं।]

(ब) द्रव्य के शब्दों में अवसर लागत (Opportunity cost in terms of money) : किसी वस्तु के उत्पादन की द्राव्यिक लागत **'त्याग की गयी वैकल्पिक वस्तुओं'** (displaced alternative products) का मूल्य है।* द्रव्य के शब्दो मे व्यक्त की गयी अवसर लागत निर्भर करती है—(i) वैकल्पिक वस्तुओं (alternative commodities) के बाजार मूल्य पर; तथा (ii) विभिन्न प्रयोगो मे साधनो की भौतिक उत्पादकता (physical productivity) पर।

* In other words, the cost of producing commodity Y is the amount of money necessary to get the factors of production needed away from alternative uses.
दूसरे शब्दो मे, किसी वस्तु Y की उत्पादन लागत द्रव्य की वह मात्रा है जो कि उत्पत्ति के साधनों को दूसरे वैकल्पिक प्रयोगों से हटाकर Y के उत्पादन मे लगाने के लिए आवश्यक है

[अवसर लागत को 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) या 'हस्तान्तरण मूल्य' (transfer price) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए कम से कम इतना द्रव्य अवश्य मिलना चाहिए जितना कि उन्हें दूसरे वैकल्पिक प्रयोगों मे मिल सकता है; अन्यथा ये साधन दूसरे प्रयोगों मे हस्तान्तरित हो जायेंगे।]

अवसर लागत के अन्तर्गत 'अस्पष्ट लागतें' भी शामिल होती हैं जिन्हें व्यावहारिक जीवन में एकाउन्टेन्ट या व्यापारी तथा उद्योगपति द्राव्यिक लागत निकालते समय शामिल नहीं करते। अतः, 'द्रव्य में व्यक्त अवसर लागत' के अन्तर्गत 'स्पष्ट लागतें' तथा 'अस्पष्ट लागतें' दोनों होती हैं।

प्रो. बेनहम ने अवसर लागत या हस्तान्तरण आय की परिभाषा इन शब्दो मे की है: "द्रव्य की वह मात्रा जो कि कोई एक इकाई सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती है, उसे कभी-कभी हस्तान्तरण आय कहते हैं।"[10]

इन परिभाषाओ का अभिप्राय यह है कि यदि हम किसी उत्पत्ति के साधन को उद्योग विशेष मे बनाये रखना चाहते हैं तो उसे कम से कम द्रव्य की इतनी मात्रा अवश्य मिलनी चाहिए जो कि वह दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग मे प्राप्त कर सकता है। यदि ऐसा नही है तो वह पहले उद्योग मे काम नही करेगा बल्कि दूसरे उद्योग मे हस्तान्तरित हो जायेगा। इस दृष्टि से श्रीमती जोन रोबिन्सन 'अवसर लागत' व 'हस्तान्तरण आय' को इन शब्दो मे व्यक्त करती है . "वह मूल्य जो कि साधन की एक दी हुई इकाई को किसी उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक है, हस्तान्तरण आय या हस्तान्तरण मूल्य कहा जाता है।"[11]

3. अवसर लागत का महत्त्व (Significance)

अवसर लागत का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो मे से एक है। इसका महत्त्व निम्न से स्पष्ट होता है :

(1) उत्पत्ति के सीमित साधनों के वितरण में सहायक (Helpful in the allocation of scarce resources)—सीमित साधनों को प्रतियोगी प्रयोगो मे माँगा जाता है। अवसर लागत का सिद्धान्त बताता है कि एक प्रयोग मे उत्पत्ति के साधनों को कम से कम इतना अवश्य मिलना चाहिए जितना कि उन्हें वैकल्पिक प्रयोगों मे मिल सकता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के आधार पर साधनों का विभिन्न प्रयोगो में वितरण (allocation) होता है। 'मूल्य प्रक्रिया' (pricing process) या 'मूल्य-यन्त्र' (price-mechanism) का एक मुख्य कार्य सीमित साधनो का प्रतियोगी प्रयोगों मे वितरण करना है। इस कार्य मे अवसर लागत का सिद्धान्त सहायता करता है। इस प्रकार प्रो. बाई के शब्दों मे, "अवसर लागत का सिद्धान्त मूल्य प्रणाली का केन्द्र बिन्दु है और अर्थशास्त्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो में से है।"[12]

(2) यह लागत में परिवर्तन पर प्रकाश डालता है (It throws light on the variation in the cost of production)—प्रो. बेनहम के अनुसार, "हस्तान्तरण आय का विचार

---

[10] "The amount of money which any particular unit could earn in its best paid alternative use is sometimes called its transfer earnings" —Benham, *Economics*, p. 328.

इसी विचार को श्रीमती जोन रोबिन्सन इन शब्दो से व्यक्त करती है: "एक उद्योग की दृष्टि से साधन की किसी एक इकाई की लागत उस पुरस्कार से निर्धारित होती है जो कि वह इकाई किसी अन्य उद्योग में प्राप्त कर सकती है।"

"The cost of any unit of factor, from the point of view of one industry, is therefore determined by the reward which that unit can earn in some other industry." —Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*. p. 104.

[11] "The price which is necessary to retain a given unit of a factor in a certain industry may be called its transfer earnings or transfer price." —*Ibid*, p. 104.

[12] "It (i.e., opportunity cost) lies, indeed, at the very heart of the price system and is one of the most important principle in economics." —Prof. Bye.

इस दृष्टि से लाभदायक है कि यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक उद्योग की लागत किस सीमा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है। उदाहरणार्थ, उन विशेष श्रमिकों तथा अन्य साधनों की इकाइयों को, जो कि वर्तमान व्यवसाय में पर्याप्त ऊँची आय प्राप्त कर रही हैं आकर्षित करके यदि अल्पकाल में एक उद्योग को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जा सकता है, तो इस उद्योग में कार्य करने के लिए साधनों को और अधिक देना होगा। इसका अर्थ है कि अल्पकाल में उद्योग में उत्पादन की पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने से औसत तथा सीमान्त लागतें बहुत ऊँची होंगी क्योंकि इन साधनों की इकाइयों को तथा इसी प्रकार की पहले से कार्य कर रही इकाइयों को ऊँचे मूल्य देने पड़ेंगे।"

(3) लगान के निकालने में सहायक (Helpful in the calculation of rent)—लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताता है कि लगान अवसर लागत के ऊपर अतिरेक (surplus) है। यदि किसी साधन (माना श्रम) का पुरस्कार 50 रु. है और उसकी अवसर लागत 40 रु. है तो उसके 50 रु. के पुरस्कार में लगान = (50—40) 10 रु.। अतः लगान को ज्ञात करने के लिए साधन की अवसर लागत की सहायता ली जाती है।

4. **अवसर लागत की सीमाएं या आलोचनाएँ** (Limitation or Criticisms of Opportunity Cost) अवसर लागत की मुख्य सीमाएँ निम्न हैं

(1) **अवसर लागत का विचार 'विशिष्ट साधनों' (Specific factors) के सम्बन्ध में लागू नहीं होता।** विशिष्ट साधन वह साधन है जो केवल एक प्रयोग में ही काम में लाया जा सकता हो। अतः विशिष्ट साधनों की अवसर लागत शून्य होती है क्योंकि उसको दूसरे प्रयोगों में काम में ही नहीं लाया जा सकता है। ऐसे विशिष्ट साधनों के प्रयोग के लिए जो पुरस्कार मिलता है वह लगान होता है। [विशिष्ट साधनों को दिये गये पुरस्कार के लिए प्रो. स्टिगलर 'बिना लागत व्यय' (non-cost outlay) शब्द का प्रयोग करते हैं]। व्यावहारिक जीवन में अधिकांश साधन आंशिक रूप में विशिष्ट होते हैं और आंशिक रूप में अविशिष्ट (non-specific) होते हैं। अतः अधिकांश साधनों के पुरस्कार में लगान तथा अवसर लागत दोनों होते हैं।

(2) **अवसर लागत का सिद्धान्त यह मान लेता है कि उत्पत्ति के साधन किसी कार्य के लिए कोई विशेष रुचि या पसन्द (preference) नहीं रखते या उनमें गतिशीलता के लिए कोई सुस्ती (inertia) नहीं होती,** जबकि व्यवहार में ये मान्यताएँ गलत हैं। यदि एक श्रमिक किसी कार्य को विशेष रूप से पसन्द करता है तो उसको किसी दूसरे कार्य में 'हस्तान्तरण करने की लागत' उसकी वास्तविक 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण मूल्य' से अधिक होगी।

(3) **अवसर लागत का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जबकि व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है।**

5. **निष्कर्ष**

इन सब सीमाओं के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि अवसर लागत का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है।

स्थिर (या पूरक) तथा परिवर्तनशील (या प्रमुख) लागतें
(FIXED OR SUPPLEMENTARY AND VARIABLE OR PRIME COSTS)

1. **प्राक्कथन** (Introductory)

कुल लागत को दो भागों में बाँटा जा सकता है (i) स्थिर या पूरक लागत; तथा () परिवर्तनशील या प्रमुख लागत अर्थात्, **कुल लागत = स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत।**

2. **स्थिर या पूरक लागत का अर्थ** (Meaning of Fixed Cost)

किसी व्यवसाय के **कार्यकरण की स्थिर लागत** वह लागत है जो कि स्थिर साधनों (fixed

factors) **को प्रयोग में लाने के लिए की जाती है। स्थिर साधन वे हैं जिनकी मात्रा बहुत शीघ्रता से परिवर्तित नहीं की जा सकती** (जैसे फर्म की स्थिर पूंजी अर्थात् मशीन, यन्त्र, भूमि, बिल्डिंग इत्यादि) । स्थिर लागत को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है : **स्थिर लागतें वे लागतें हैं जो कि अल्पकाल में उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित नहीं होतीं बल्कि स्थिर रहती हैं।** यदि उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि या कमी होती है तो ये लागतें स्थिर रहेंगी। यदि अस्थायी रूप से उत्पादन बन्द हो जाता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा शून्य हो जाती है तो भी फर्म को इन लागतों को उठाना पड़ेगा। स्थिर लागतो के अन्तर्गत प्रायः इन मदो को शामिल किया जाता है : बिल्डिंग का किराया, स्थायी उच्च अफसरों के वेतन, दीर्घकालीन ऋणो पर ब्याज, घिसाई व्यय, इत्यादि।

स्थिर लागतो को **'सामान्य लागतें'** (general costs), **'पूरक लागतें'** (supplementary costs) या **'अप्रत्यक्ष लागतें'** (indirect costs) भी कहते है क्योंकि फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा इन लागतो पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर नही करती। व्यापार की भाषा मे इनको **'ऊपर की लागतें'** या **'उपरिव्यय'** (overhead costs) कहा जाता है।

3. परिवर्तनशील या प्रमुख लागत का अर्थ (Meaning of Variable Cost)

किसी व्यवसाय के कार्यकरण की परिवर्तनशील लागतें वे लागतें हैं जो कि परिवर्तनशील साधनों (variable factors) **को प्रयोग मे लाने के लिए की जाती हैं।** परिवर्तनशील साधन वे हैं जिनकी मात्रा **शीघ्रता से परिवर्तित की जा सकती है।** परिवर्तनशील लागतो को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है : **परिवर्तनशील लागतें वे लागतें हैं जो कि उत्पादन मे परिवर्तन होने के साथ परिवर्तित होती हैं।** कच्चे माल की लागत, सामान्य श्रमिकों की मजदूरियाँ इत्यादि परिवर्तनशील लागत के अन्तर्गत आती हैं। उत्पादन **के बढ़ने या घटने से ये लागतें भी बढ़ेगी या घटेगी।** यदि उत्पादन अस्थायी रूप से बन्द हो जाता है, अर्थात् उत्पादन की मात्रा शून्य हो जाती है तो परिवर्तनशील लागतें भी समाप्त हो जाती हैं। **परिवर्तनशील लागतें तभी होती हैं जबकि एक समय में कुछ निश्चित उत्पादन होता है, परिवर्तनशील लागतों की मात्रा उत्पादन के स्तर पर निर्भर करती है।**

परिवर्तनशील लागतो को **'प्रमुख लागत'** (prime cost) या **'प्रत्यक्ष लागत'** (direct cost) भी कहा जाता है क्योंकि फर्म की उत्पादित वस्तु की मात्रा प्रत्यक्ष रूप मे इन लागतो पर निर्भर करती है।

4. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो का चित्र द्वारा निरूपण (Diagramatic Representation)
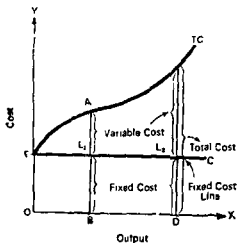
चित्र 2

चित्र 2 में स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो को दिखाया गया है। स्थिर लागत को पड़ी रेखा FC द्वारा दिखाया गया है क्योंकि उत्पादन मे परिवर्तन होने पर स्थिर लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता। TC कुल लागत रेखा है। स्थिर लागत रेखा FC तथा कुल लागत रेखा TC के बीच की जगह परिवर्तनशील लागत को बताती है। जब **उत्पादन का स्तर OB है, तो स्थिर लागत BL_1 तथा परिवर्तनशील लागत $= L_1A$**
कुल लागत $= BL_1 + L_1A = AB$

जब उत्पादन का स्तर बढ़कर OD हो जाता है, तो परिवर्तनशील लागत तथा कुल लागत में वृद्धि होगी।

स्थिर लागत $= DL_2$ (स्थिर लागत समान है, $DL_2 = BL_1$); परिवर्तनशील लागत $= L_2K$; कुल लागत $= DL_2 + L_2K = CK$

[परिवर्तनशील लागत, कुल लागत तथा स्थिर लागत का अन्तर होती है। अतः चित्र 2 मे परिवर्तनशील लागत को कुल लागत रेखा तथा स्थिर लागत रेखा के बीच की जगह द्वारा दिखाया गया है।] परन्तु परिवर्तनशील लागत को एक पृथक रेखा द्वारा भी दिखाया जा सकता है, यह चित्र 3 से स्पष्ट होता है।[13] चित्र 3 में FC रेखा स्थिर लागत रेखा है। VC रेखा परिवर्तनशील लागत रेखा है। VC रेखा मूल बिन्दु O से निकलती हुई दिखायी गयी है। इसका अर्थ है कि O बिन्दु पर उत्पादन शून्य है तो परिवर्तनशील लागत भी शून्य होगी। उत्पादन के बढ़ने के साथ परिवर्तनशील लागत भी बढ़ेगी जैसा VC रेखा बताती है। VC रेखा से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील लागत धीमी गति से बढ़ती है और बाद मे तीव्रगति से। चूंकि कुल लागत, स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत का योग होती है, इसलिए चित्र 3 मे कुल लागत रेखा TC को इन दोनों रेखाओं के ऊपर दिखाया गया है। चूंकि बिन्दु O पर परिवर्तनशील लागत शून्य है, इसलिए इस बिन्दु के सन्दर्भ मे कुल लागत स्थिर लागत के बराबर होगी, अर्थात् TC रेखा बिन्दु F से निकलती है। परिवर्तनशील लागत रेखा तथा कुल लागत रेखा के बीच स्थिर लागत के बराबर अन्तर बना रहेगा; अतः दोनों रेखाएँ समानान्तर होगी।
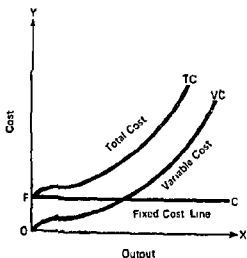
चित्र 3

5. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें (Some Important Points)

स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो के अर्थ तथा अन्तर को भलीभाँति समझने के लिए निम्न बातो को ध्यान मे रखना अत्यन्त आवश्यक है :

(i) **दोनों लागतें साथ-साथ रहती हैं,** उत्पादन दोनो का सम्मिलित परिणाम है। (ii) **स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर केवल अल्पकाल में ही लागू होता है।** दीर्घकाल मे फैक्टरी की बिल्डिंग, मशीनो, यन्त्रो, स्थायी कर्मचारियो इत्यादि सब में परिवर्तन हो जायगा, इनमें से कुछ भी स्थिर नही रहेगा। दीर्घकाल मे सभी लागत परिवर्तनशील हो जाती हैं। (iii) स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो मे अन्तर **केवल मात्रा (degree) का है, न कि किस्म (kind) का।** दूसरे शब्दो मे, **स्थिर लागतें एक समयावधि के सन्दर्भ में ही स्थिर होती हैं।**[14]

[13] विद्यार्थियों के लिए नोट—परीक्षा मे चित्र 2 तथा चित्र 3 मे से किसी एक को देना ही पर्याप्त होगा।

[14] Fixed costs are only 'fixed' with reference to some period of time.
उदाहरणार्थ, यदि एक फर्म सभी श्रमिको को 3 साल के ठेके (contract) पर नियुक्त करती हैं तो इन सामान्य श्रमिको का वेतन स्थिर लागत के अन्तर्गत आयेगा क्योंकि इन तीन वर्षो मे यदि कुछ समय के लिए उत्पादन बन्द भी हो जाता है तो भी फर्म को ठेके के अनुसार इन श्रमिकों को वेतन देना पड़ेगा। यदि ठेका नही होता तो उत्पादन बन्द होने पर इन श्रमिको को नौकरी से हटाया जा सकता था और ऐसी स्थिति मे उनका वेतन परिवर्तनशील लागत के अन्तर्गत आता है।

6. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के अन्तर का मूल्य-सिद्धान्त में महत्त्व (Significance of the Distinction between Fixed and Variable Costs in the Theory of Value)

मूल्य सिद्धान्त मे यह अन्तर निम्न प्रकार से महत्त्वपूर्ण (useful) है :

एक साहसी स्थिर तथा परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर का प्रयोग इस बात का निर्णय करने मे करता है कि यदि उत्पादित वस्तु की कुल लागत उसकी कुल विक्रय-राशि (total sales proceeds or total revenue) मे से नहीं निकलती है (अर्थात् उसको हानि होती है) तो वह अपने उत्पादन को जारी रखे या बन्द करे। दीर्घकाल में उत्पादक को अपनी वस्तु को बेचने से इतना धन या आगम (revenue) अवश्य मिल जाना चाहिए जिससे कि उसकी कुल लागत अर्थात् स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत दोनो निकल आये, यदि दीर्घकाल मे उसको हानि होती है तो वह उत्पादन बन्द कर देगा। परन्तु अल्पकाल में, एक उत्पादक हानि होने पर भी अपने उत्पादन को चालू रख सकता है यदि अपनी वस्तु को बेचकर कम से कम परिवर्तनशील लागतें निकाल लेता है, क्योंकि उसे यह आशा रहती है कि भविष्य मे अच्छा समय आ सकता है और उसकी स्थिर लागत भी निकल सकती है। अल्पकाल मे वह स्थिर लागत के निकालने की अधिक चिन्ता नही करता क्योंकि मशीन, यन्त्र, बिल्डिंग इत्यादि स्थिर पूँजी मे उसका विनियोग हो चुका है, उसे नही निकाला जा सकता जब तक कि उत्पादन को बिलकुल बन्द करके इनको किसी दूसरे को न बेच दिया जाये। अत अल्पकाल मे हानि होने पर एक उत्पादक उत्पादन जारी रख सकता है, परन्तु हानि की एक सीमा होगी जिससे अधिक हानि होने पर वह अल्पकाल मे भी उत्पादन बन्द कर देगा; और यह सीमा औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost, i e , AVC) निर्धारित करती है। अल्पकाल मे हानि की अवस्था मे उत्पादन जारी रखने के लिए वस्तु का मूल्य कम से कम औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर अवश्य होना चाहिए, यदि मूल्य इससे कम है तो उत्पादन बन्द कर दिया जायगा, अतः जिस बिन्दु पर मूल्य ठीक औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर होता है उसे अर्थशास्त्री 'उत्पादन बन्द होने का बिन्दु' (Shut down point) कहते हैं।

औसत लागतें या इकाई लागतें
(AVERAGE COSTS OR UNIT COSTS)

उत्पादक अपनी वस्तु के उत्पादन की कुल लागत मे तो रुचि रखते ही हैं, पर उनके लिए प्रति इकाई लागतें (अर्थात् इकाई लागतें) या औसत लागतें भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। वस्तुओं के प्रति इकाई मूल्यों की तुलना की दृष्टि से 'औसत लागत' विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। औसत लागतें तीन प्रकार की होती हैं : 'औसत स्थिर लागत' (Average Fixed Cost, i e., AFC), 'औसत परिवर्तनशील लागत' (Average Variable Cost., i e., AVC), तथा 'औसत कुल लागत' या 'औसत लागत' (Average Total Cost, i e , ATC or Average Cost, i.e., AC) आगे हम इन औसत लागतो का विवेचन अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो दृष्टियो से करते हैं।

अल्पकाल में औसत लागतें
(AVERAGE COSTS IN THE SHORT PERIOD)

औसत लागतों को निम्न तालिका मे दिखाया गया है :

कुल लागतें (Total Costs)				औसत लागतें (Average Costs)			
(1) कुल उत्पादन (Total Product)	(2) कुल स्थिर लागत (Total Fixed Cost)	(3) कुल परिवर्तनशील लागत (Total Variable Cost)	(4) कुल लागत (Total Cost) (2) + (3)	(5) औसत स्थिर लागत (Average Fixed Costs) (2) ÷ (1)	(6) औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Costs) (3) ÷ (1)	(7) औसत कुल लागत (Average Total Costs) (4) ÷ (1)	(8) सीमान्त लागत (Marginal Costs)
	रु.	रु.	रु.	रु.	रु.	रु.	रु.
0	100	0	100	—	—	—	—
1	100	90	190	100	90	190	90
2	100	170	270	50	85	135	80
3	100	240	340	33·33	80	113·33	70
4	100	300	400	25	75	100	60
5	100	370	470	20	74	94	70
6	100	450	550	16 67	75	91·67	80
7	100	540	640	14·29	77·14	91 43	90
8	100	650	750	12·50	81·23	93·73	110
9	100	780	880	11·11	86·67	97·78	130
10	100	930	1,030	10	93	103	150

औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost, i.e., AFC)

कुल स्थिर लागत (TFC) में सम्बन्धित उत्पादन (corresponding output) का भाग देने से औसत स्थिर लागत (AFC) प्राप्त होती है।

संक्षेप में,

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत (TFC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

कुल स्थिर लागत तो अल्पकाल में स्थिर रहती है, परन्तु औसत स्थिर लागत (AFC) स्थिर नही रहती बल्कि वह उत्पादन में प्रत्येक वृद्धि के साथ घटती जाती है। इसका कारण है कि जैसे उत्पादन बढता है वैसे कुल स्थिर लागत अधिक इकाइयों पर फैलती जाती है; परिणामस्वरूप औसत स्थिर लागत (AFC) गिरती जाती है। [उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जब उत्पादन 1 इकाई है तो 'कुल स्थिर लागत' तथा 'औसत स्थिर लागत' दोनो 100 रु. के बराबर हैं। जब उत्पादन 2 इकाई हो जाता है तो औसत स्थिर लागत (AFC) = 100/2 = 50 रु. हो जाती है। जब उत्पादन 3 इकाई है, तो AFC घटकर 100/3 = 33 33 रु. हो जाती है। इस प्रकार उत्पादन बढने से स्थिर लागत अधिक इकाइयों पर फैलती जाती है, अर्थात् AFC गिरती जाती है।] अत. AFC रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र 4 मे दिखाया गया है। ध्यान रहे कि यद्यपि AFC रेखा, उत्पादन में वृद्धि के साथ, गिरती जाती है, परन्तु वह शून्य नहीं होती, अर्थात् वह X-axis को काट नहीं सकती। दूसरे शब्दों में, AFC रेखा की शक्ल एक rectangular hyperbola की होती है जिसके दोनों सिरों को बढ़ाने पर वे Y-axis तथा X-axis को काटते नहीं हैं।

औसत परिवर्तनशील लागत (Average variable cost, i.e., AVC)

कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में सम्बन्धित उत्पादन का भाग देने से औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) प्राप्त होती है। संक्षेप में,

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

यदि उत्पादन की मात्रा थोड़ी या कम है, तो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), उत्पादन मे वृद्धि के साथ, प्रारम्भ में गिरेगी। साधारणतया किसी फर्म को स्थापित करते समय उसके 'उत्पादन की सामान्य क्षमता' (normal capacity of production) का अनुमान लगा लिया जाता है और इसी दृष्टि से उसका संगठन किया जाता है। यदि फर्म का उत्पादन उसकी 'सामान्य उत्पादन क्षमता' (normal capacity of production) से कम है तो उत्पादन मे वृद्धि के साथ औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) गिरेगी; पर ऐसा क्यो होता है? वास्तव मे 'पूर्ण उत्पादन क्षमता' (full capacity production) से कम उत्पादन मे श्रम तथा अन्य उत्पादन के साधनों की पूर्ण उत्पादन शक्ति का प्रयोग नही हो पाता है। इसलिए जब उत्पादन मे वृद्धि होने लगती है, तो उत्पत्ति के साधनो की लगभग पूर्व मात्रा ही इस वृद्धि के लिए पर्याप्त होती है क्योकि साधनों की उत्पादन शक्ति का अब अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है। परन्तु जब उत्पादन फर्म की 'पूर्ण उत्पादन क्षमता' तक पहुँच जाता है तब इसके बाद उत्पादन मे और अधिक वृद्धि से औसत परिवर्तनशील लागत तेजी से बढ़ने लगती है। इसके कारण हैं: पूर्ण उत्पादन क्षमता से आगे उत्पादन बढाने मे फर्म को, अल्पकाल मे, कम कुशल मजदूरो तथा मशीनो का प्रयोग करना पड़ेगा, इनकी अधिक मांग होने के कारण उनको कीमत भी अधिक देनी पड़ेगी; वर्तमान उत्पत्ति के साधनो का अधिक गहराई से प्रयोग करना पड़ेगा अर्थात् श्रमिको की कार्यक्षमता अतिकार्य (overstrain) के कारण कम हो जायेगी, मशीनों पर कार्य का अधिक जोर (strain) पड़ने पर वे प्रायः टूटेंगी तथा उनकी मरम्मत से या नयी मशीनों के खरीदने से लागत बढ़ेगी। अत. जब उत्पादन फर्म की 'पूर्ण उत्पादन शक्ति' से नीचा रहता है तो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) घटती है, परन्तु इस बिन्दु के बाद से यह बढने लगती है। दूसरे शब्दों मे, औसत परिवर्तनशील लागत रेखा (AVC-Curve) U-आकार की हो जाती है जैसा कि चित्र 4 मे दिखाया गया है।
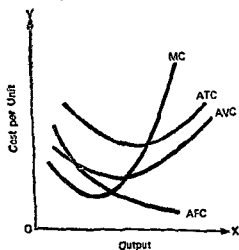
चित्र 4

औसत कुल लागत या औसत लागत (Average Total Cost or Average Cost)

कुल लागत (Total Cost) में कुल उत्पादन का भाग देने से औसत कुल लागत (ATC) या औसत लागत (AC) प्राप्त होती है। संक्षेप में,

$$\text{औसत कुल लागतें (ATC or AC)} = \frac{\text{कुल लागत (TC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

औसत कुल लागत रेखा (ATC Curve) भी U-आकार की होती है (देखिए चित्र 4)। इसकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है। **प्रथम,** ATC के U आकार की व्याख्या AFC तथा AVC रेखाओ की सहायता से की जा सकती है:

चूंकि, TC = TFC + TVC इसलिए ATC (or AC) = AFC + AVC

दूसरे शब्दों मे, AFC-Curve तथा AVC-Curve को जोड़ने से ATC-Curve प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि प्रारम्भ में उत्पादन मे वृद्धि के साथ AFC तथा AVC दोनो रेखाएँ गिरती है, इसलिए प्रारम्भिक अवस्था में ATC रेखा भी गिरेगी और एक बिन्दु पर निम्नतम हो जायेगी जहां पर फर्म की उत्पादन-क्षमता का पूर्ण प्रयोग होने लगता है। इस बिन्दु के बाद उत्पादन बढाने पर AFC तो गिरेगी परन्तु AVC रेखा ऊपर को चढने लगती है, परन्तु AVC रेखा की ऊपर को वृद्धि की गति AFC रेखा के नीचे गिरने की गति से अधिक होती है, ऐसी स्थिति मे इन दोनों रेखाओं के योग का अर्थ है कि ATC रेखा ऊपर को चढ़ने लगेगी। स्पष्ट है कि प्रारम्भ में ATC नीचे गिरती है, एक निम्नतम बिन्दु पर पहुँचती है, और इसके बाद ऊपर को चढ़ने लगती है; अर्थात् ATC रेखा U-आकार की होती है।

अभी तक हमने अल्पकालीन ATC (या AC) के U-आकार की साधारण व्याख्या AFC तथा AVC के शब्दो मे की है। परन्तु अब हम इस सम्बन्ध मे दूसरे प्रकार से अधिक विस्तृत तथा पर्याप्त व्याख्या देते है। उत्पादन के निम्न स्तर से यदि उत्पादन को बढ़ाया जाय तो फर्मों को आन्तरिक बचतें अर्थात् श्रम-बचतें (labour economies), बाजार बचतें (marketing economies), तथा प्रबन्धकीय बचतें प्राप्त होती है जिनके कारण प्रारम्भ मे औसत लागत (ATC) घटती है, अर्थात् ATC या AC रेखा गिरती है। दूसरे शब्दों में, अधिकांश उत्पादन के साधन उत्पादन के एक पर्याप्त विस्तृत स्तर पर अधिक कुशलता के साथ प्रयोग मे लाये जा सकते है, परन्तु उत्पादन के निम्न स्तर पर वे कम कुशलता से कार्य करते हैं क्योंकि वे छोटे हिस्सो मे विभाजित नहीं किये जा सकते हैं—वे 'अविभाज्य' (indivisible) होते हैं। एक प्रबन्धक को काट कर दो हिस्से नही किये जा सकते तथा वर्तमान उत्पादन का आधा उत्पादन करने को नही कहा जा सकता। इसी प्रकार से जब एक प्लान्ट का 'पूर्ण क्षमता' से कम प्रयोग किया जाता है तो उसका प्रयोग कुशलता के साथ नही किया जा सकता। टेकनीकल शब्दों में, आन्तरिक बचतों का कारण है—'अविभाज्य उत्पत्ति के साधन' (indivisible factors of production) या, संक्षेप मे, 'अविभाज्यताएँ' (indivisibilities)। इन अविभाज्यताओं के कारण ही प्रारम्भ में ATC या AC रेखा गिरती है।[15]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि निश्चित समय तक उत्पादन मे वृद्धि के साथ एक फर्म की 'अल्पकालीन औसत लागत रेखा' (AC) गिरेगी क्योंकि 'अविभाज्य उत्पादन के साधनों' का भली प्रकार से प्रयोग होता है तथा अन्य आन्तरिक बचतें प्राप्त की जा सकती है परन्तु ATC (या AC) रेखा के गिरने की एक सीमा अवश्य होगी, उत्पादन का एक ऐसा स्तर अवश्य होगा जहाँ पर कि फर्म द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले उत्पादन के साधन पूर्ण कुशलता के साथ प्रयोग किये जा रहे हो तथा जहां पर ATC निम्नतम हो। ऐसी स्थिति उत्पादन के उस स्तर पर होगी जहाँ कि सब उत्पादन के साधन एक 'उचित' (right) या 'अनुकूलतम' (optimum) अनुपात में प्रयोग किये जा रहे हों। ऐसे स्तर पर उत्पादन 'अनुकूलतम उत्पादन' (optumum output) कहा जाता है क्योंकि सभी उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम प्रयोग (optimum use) किया जा रहा है, फर्म 'अनुकूलतम उत्पादन' उत्पन्न करेगी जबकि उसकी औसत लागत (AC) न्यूनतम (minimum) होगी।

जब 'अनुकूलतम उत्पादन' से अधिक उत्पादन किया जाता है तो औसत लागत (AC) बढ़ेगी क्योंकि अब 'अविभाज्य साधनों' का पूर्ण प्रयोग से भी अधिक प्रयोग किया जा रहा है।

---

15 'अविभाज्यताओं' के सम्बन्ध मे केवल एक महत्त्वपूर्ण अपवाद है 'श्रम-विभाजन' का : यह सत्य है कि उत्पादन मे वृद्धि के साथ 'श्रम-विभाजन' के कारण श्रम-कार्यकुशलता बढ़ती है। अत यह कहना उचित नहीं होगा कि श्रम 'अविभाज्य' है।

दूसरे शब्दों मे, उनका अन्य परिवर्तनशील साधनो के साथ गलत अनुपात में प्रयोग किया जा रहा है। जिस प्रकार से औसत लागत (AC), 'अविभाज्य साधनो' के अच्छे प्रयोग से घटती है, उसी प्रकार से जब अविभाज्य साधनो का प्रयोग 'पूर्ण प्रयोग से अधिक' किया जाता है तो औसत लागत (AC) बढ़ती है। [उदाहरणार्थ, जब उत्पादन अनुकूलतम को पार कर जाता है तो प्रबन्ध का क्षेत्र बढेगा तथा प्रबन्धकीय कुशलता गिरेगी। साहसी बहुत अधिक उत्पादन की उचित देखरेख करने मे असमर्थ रहेगा और प्रबन्धकीय समस्याएँ हाथ से बाहर निकल जायेगी। प्रत्येक मशीन पर बहुत अधिक मजदूर होगे जो कि कुशलता की दृष्टि से उचित नही होंगे। इन सब कारणो से 'अनुकूलतम उत्पादन' के बिन्दु के बाद से औसत लागत बढने लगती है।] स्पष्ट है कि उत्पादन मे वृद्धि के साथ प्रारम्भ मे AC रेखा गिरती है, एक निम्नतम बिन्दु पर पहुँच जाती है, तत्पश्चात ऊपर को चढ़ने लगती है। दूसरे शब्दो मे, AC रेखा U-आकार की होती है, जैसा कि चित्र 4 में दिखाया गया है।

ध्यान रहे कि AC रेखा के आकार का स्पष्ट सम्बन्ध 'परिवर्तनशील अनुपातो का नियम' (Law of Variable Proportions) अर्थात् 'उत्पत्ति ह्रास नियम' से होता है। दूसरे शब्दो मे, AC रेखा प्रतिफल (returns) की तीनो स्थितियो—बढते, स्थिर, तथा घटते हुए प्रतिफल—को बताती है। प्रारम्भ मे AC रेखा गिरती है अर्थात 'लागत ह्रास नियम' (या उत्पत्ति वृद्धि नियम) लागू होता है, AC रेखा के निम्नतम बिन्दु पर 'स्थिर लागत नियम' (या उत्पत्ति स्थिरता नियम) लागू होता है, तथा इस बिन्दु के बाद से 'लागत वृद्धि नियम' (या उत्पत्ति ह्रास नियम) लागू होता है।

सीमान्त लागत (Marginal Cost)

एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। दूसरे शब्दो मे, एक अधिक इकाई के उत्पादन की अतिरिक्त लागत (additional cost) को सीमान्त लागत कहते हैं। माना किसी वस्तु की 2 इकाइयों के उत्पादन की कुल लागत 270 रु. है, सीमान्त लागत (MC) को मालूम करने के लिए एक और इकाई अर्थात् तीसरी इकाई का उत्पादन किया जाता है, तीन इकाइयो की कुल लागत 340 रु. है (देखिए तालिका पृष्ठ 517 पर)। अत. एक अतिरिक्त इकाई अर्थात तीसरी इकाई की अतिरिक्त लागत (340 रु. − 270 रु.) = 70 रु.। यह सीमान्त लागत हुई है।

सीमान्त लागत को अल्पकाल मे कुल परिवर्तनशील लागत द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। यदि एक अतिरिक्त इकाई या अधिक इकाइया उत्पादित की जाती हैं तो केवल परिवर्तनशील लागत में ही परिवर्तन होगा क्योंकि अल्पकाल मे स्थिर लागतें तो स्थिर रहती हैं। अत: हम 'कुल परिवर्तनशील लागत' (total variable cost) के शब्दो मे सीमान्त लागत को परिभाषित कर सकते है। अल्पकाल मे, एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। [पृष्ठ 517 पर दी गयी तालिका से स्पष्ट है कि यदि दो इकाइयो का उत्पादन किया जाता है तो TVC = 170 रु. और तीन इकाइयों की TVC = 240 रु, इसलिए सीमान्त लागत (MC) = 240 रु − 170 रु = 70 रु.। कुल लागत (TC) की सहायता से भी सीमान्त लागत (MC) 70 रु ही आती है।

सीमान्त लागत रेखा (MC-Curve) भी U-आकार की होती है, जैसा कि चित्र 4 मे दिखाया गया है। MC-रेखा के U-आकार के होने की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। सीमान्त लागत (MC) कुल लागत (TC) या कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) मे परिवर्तन को बताती है। उत्पादन मे वृद्धि के साथ प्रारम्भ मे TC तथा TVC घटती दर से बढते हैं (देखिए चित्र 3)। इसका अर्थ है कि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् MC) पिछली इकाइयों की लागत की अपेक्षा कम होती जाती है, अत प्रारम्भ मे MC गिरती है। जब TC तथा

TVC की वृद्धि रुक जाती है तो इसका अर्थ है कि MC का कम होना रुक जाता है और वह न्यूनतम बिन्दु पर पहुंच जाती है। अन्त मे, TC तथा TVC बढ़ती हुई दर से बढ़ते है, अर्थात् प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत (MC) पिछली इकाइयों की लागत से अधिक होती है, इसका अर्थ है कि MC बढ़ती है। इस प्रकार MC रेखा प्रारम्भ मे गिरती है, न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचती है और अन्त मे बढ़ने लगती है, अर्थात् MC रेखा U-आकार की होती है।

MC रेखा के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए : (i) MC रेखा AVC तथा ATC की अपेक्षा उत्पादन की कम मात्रा पर ही अपने निम्नतम बिन्दु पर पहुंच जाती है तथा (ii) MC रेखा AVC तथा ATC रेखाओ को नीचे से उनके निम्नतम बिन्दुओं पर काटती हुई गुजरती है। [(i) तथा (ii) के समझने के लिए देखिए चित्र 4। MC तथा ATC (या AVC) के सम्बन्ध की विस्तृत व्याख्या आगे की गयी है।]

सीमान्त लागत तथा औसत लागत में सम्बन्ध (Relation between Marginal Cost and Average Cost)

सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं; इनके सम्बन्ध को चित्र 5 मे दिखाया गया है। दोनो मे सम्बन्ध इस प्रकार है :

(i) जब AC गिरती है तो MC कम होगी AC से। चित्र 5 में AC रेखा A से B तक गिर रही है, अत. इस समस्त क्षेत्र मे MC, AC से नीचे अर्थात कम है। दूसरे शब्दो मे, जब तक MC, AC से कम है, तब तक (उत्पादन मे वृद्धि के साथ) AC गिरती जायेगी।

चित्र 5

(ii) जब AC बढ़ती (rising) है तो MC भी बढ़ती है और वह AC से अधिक होती है। चित्र 5 मे B से C तक AC चढ रही है, अत. MC, AC के ऊपर (अर्थात् उससे अधिक) है। दूसरे शब्दो में, जब तक MC, AC से अधिक होगी, तब तक AC मे वृद्धि होगी।
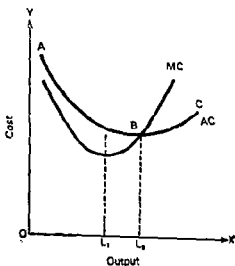
नोट—परन्तु उपर्युक्त सम्बन्धों के बारे में एक बात ध्यान रखने की है। जब औसत लागत (AC) बढ रही हो तो यह आवश्यक नही है कि MC भी सदैव जरूर बढ़ेगी; इसी प्रकार यदि AC गिर रही हो तो यह आवश्यक नही है कि MC भी सदैव जरूर गिरेगी। चित्र 5 मे OL_1 तथा OL_2 उत्पादन की मात्राओ के बीच (अर्थात् L_1L_2 उत्पादन मात्रा पर) AC गिर रही है, परन्तु MC गिरती नही बल्कि बढ़ रही है, परन्तु MC बढने पर भी AC से कम है।

(iii) यदि AC स्थिर (constant) है, तो MC=AC, तथा MC रेखा AC रेखा को नीचे से उसके निम्नतम बिन्दु (lowest point) पर काटेगी। चित्र 5 मे B बिन्दु पर AC क्षणिक रूप से स्थिर (momentarily constant) है, अर्थात् 'B' बिन्दु पर AC एक पड़ी रेखा (horizontal line) होगी, अत इस बिन्दु पर MC=AC। चित्र से स्पष्ट है कि MC, AC को उसके निम्नतम बिन्दु B पर काटती है।

MC तथा AVC मे भी उपर्युक्त तीनो सम्बन्ध पाये जाते हैं।

अब हम उपर्युक्त तीनों सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं :

(i) पहले सम्बन्ध को लीजिये। पहला सम्बन्ध है कि जब MC, AC से कम है, तो AC गिरती है। MC का AC से कम होने का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणामस्वरूप कुल लागत में जो वृद्धि होती है वह पिछली औसत लागत (previous average cost) से कम है। परन्तु जब कोई संख्या जो कि पिछले औसत से कम है, सख्याओं के एक समूह में जोड़ी जाती है और नया औसत निकाला जाता है, तो नया औसत पिछले औसत से कम होगा। इसी कारण जब MC, AC से कम होती है तो AC गिरती है।[16] एक सख्यात्मक उदाहरण लीजिए। माना एक व्यक्ति क्रिकेट के तीन खेलो मे से प्रत्येक मे 10 रन बनाता है; तो तीन खेलों के रनो का औसत $=(10+10+10)/3=10$ रन। यदि वह चौथे खेल मे 4 रन बनाता है, जो कि पिछले औसत से कम है, तो अब नया औसत $=(10+10+10+4)/4=8{\cdot}5$ रन। स्पष्ट है कि नया औसत पिछले औसत से कम है। इसी प्रकार जब तक MC, AC से कम रहेगी तब तक AC गिरेगी।]

(ii) दूसरा सम्बन्ध है कि जब MC, AC से अधिक है, तो AC बढ़ेगी। MC का AC से अधिक होने का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणामस्वरूप कुल लागत में जो वृद्धि होती है वह पिछली औसत लागत से अधिक है। परन्तु जब कोई सख्या जो कि पिछले औसत से अधिक है, सख्याओ के एक समूह मे जोड़ी जाती है और नया औसत निकाला जाता है, तो नया औसत पिछले औसत से अधिक होगा। इसी कारण जब MC, AC से अधिक होती है, तो AC बढ़ती हुई होती है।[17] (उदाहरणार्थ, माना कि एक व्यक्ति के तीन खेलो के रनो का औसत $=(10+10+10)/3=10$ रन। यदि वह चौथे खेल मे 18 रन बनाता है, जो कि पिछले औसत से अधिक है, तो नया औसत $=(10+10+10+18)/4=12$ रन। स्पष्ट है नया औसत पुराने औसत से अधिक है। इस प्रकार जब तक MC, AC से अधिक है, तब तक AC बढ़ेगी।)

(iii) जब MC = AC, तो इसका अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणामस्वरूप कुल लागत मे जो वृद्धि होगी वह पिछली औसत लागत के बराबर होगी। ऐसी स्थिति मे पुरानी औसत लागत तथा नयी औसत लागत समान होगी, अर्थात् ऐसी स्थिति में AC रेखा एक पड़ी रेखा होगी और यही रेखा MC को भी व्यक्त करेगी क्योंकि MC = AC।

औसत तथा सीमान्त लागत के सम्बन्ध को याद रखने के लिए एक चित्र भी दिया जाता है। चित्र 6 मे जब MC, AC के ऊपर (अर्थात् अधिक) है तो AC बढ़ेगी, क्योंकि MC. AC को ऊपर को अपनी ओर खींचती है। इसी प्रकार, जब MC, AC के नीचे (अर्थात् कम) है तो AC गिरेगी, क्योंकि MC, AC को नीचे को अपनी ओर खींचती है। जब MC वही है जो कि AC, तो AC पहले समान ही रहती है, क्योंकि MC, AC को अपनी ओर सीधे (horizontally) खींचती है। परन्तु इस *सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि जब AC बढ़* रही हो या घट रही हो तो यह सदैव आवश्यक नहीं है कि MC भी बढ़े या घटे यद्यपि सामान्यतया ऐसा ही होता है।
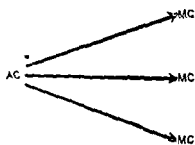
चित्र 6

(ii) तीसरे सम्बन्ध के बारे मे एक बात और है कि सीमान्त लागत (MC), AC को

[16] "When a number less than the old average is added to a group of figures and a new average calculated, the new average is less than the old average. For this reason, when MC is less than AC, AC must fall."

[17] "When a number greater than the old average is added to a group of figures and a new average calculated, the new average exceeds the old average For this reason when MC is greater than AC, AC must be rising or increasing."

सदैव उसके निम्नतम बिन्दु पर काटती है। ऐसा क्यों होता है? इसको साधारण रूप से इस प्रकार समझाया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि जब AC गिर रही है तो MC, AC के नीचे रहती है। इसी प्रकार से जब AC बढ़ रही है तो MC, AC से अधिक होती है। अतः उस क्षण पर जबकि AC गिरना बन्द कर देती है, परन्तु उसने अभी बढ़ना आरम्भ नहीं किया है तो, MC रेखा AC रेखा के निम्नतम बिन्दु से होकर गुजरती है ताकि वह AC से ऊपर रह सके जबकि AC बढ़ना प्रारम्भ करे।[18]

सीमान्त लागत का महत्त्व

मूल्य-सिद्धान्त (Price-theory) में MC के विचारों का आधारभूत महत्त्व है। सीमान्त आय (MR)[19] के साथ MC का विचार यह बताता है कि किस बिन्दु पर एक फर्म अपनी वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन निश्चित करेगी। प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इस दृष्टि से फर्म अपनी वस्तु को उस बिन्दु तक उत्पादित करेगी जहां पर कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आय अर्थात् (MR), उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन लागत अर्थात् (MC) के बराबर हो जाये। यहां पर उसके लिए लाभ को अधिकतम करने की सारी सम्भावनाएं समाप्त हो जाती हैं। संक्षेप में, प्रत्येक उत्पादक उस बिन्दु पर मूल्य तथा उत्पादन निश्चित करेगा जहां पर MR, MC के बराबर हो जाती है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, MC का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं होता क्योंकि व्यवहार में व्यापारी तथा उद्योगपति इस विचार को नहीं जानते और न इसका प्रयोग करते हैं। इस विचारधारा के प्रवर्तक (propounders) ऑक्सफर्ड के अर्थशास्त्री हाल तथा हिच (Hall and Hitch) हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, व्यापारी तथा उद्योगपति मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करते समय सीमान्त लागत (MC) को नहीं बल्कि 'पूर्ण औसत लागत' (full average cost) को ध्यान में रखते हैं; इस विचारधारा को 'पूर्ण लागत सिद्धान्त' (Full Cost Principle) के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु इस सिद्धान्त का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। अभी भी अधिकांश अर्थशास्त्री मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण में सीमान्त लागत (MC) के विचार को ही मान्यता देते हैं।

दीर्घकालीन लागतें
(LONG-RUN COSTS)

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा

दीर्घकाल वह समय है जिसमें उत्पादन-यन्त्रों तथा उत्पादन के पैमाने को बदला जा सकता है। अतः दीर्घकाल में कोई स्थिर लागतें नहीं रहती, सब लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। अतः दीर्घकाल में केवल कुल औसत लागत रेखा (ATC or AC-Curve) तथा सीमान्त लागत रेखा (MC-Curve) ही रह जाती है।

अल्पकाल में स्थिर साधनों के समूह या स्थिर प्लान्ट (fixed plant) के साथ परिवर्तनशील साधनों का अधिक प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। अल्पकाल में एक स्थिर प्लान्ट से सम्बन्धित एक निश्चित उत्पादन के लिए एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा (short run average cost curve SAC-Curve) होगी; इसी प्रकार से प्रत्येक स्थिर प्लान्ट से

[18] "As we have seen, when average cost is falling, marginal cost is below average cost. Similarly, when average cost is rising, marginal cost is greater than average cost. So at the moment when average cost stops falling but has not yet begun to rise, the marginal cost curve passes through the average cost curve (at its lowest point) in order to be above it when average cost starts to rise again."

[19] सीमान्त आय (marginal revenue) के विचार की व्याख्या इसी अध्ययन में आगे की गयी है।

सम्बन्धित उत्पादन के लिए भिन्न-भिन्न अल्पकालीन औसत लागत रेखाएं होंगी। अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं को (SAC_1, SAC_2, SAC_3) चित्र 7 में दिखाया गया है। (सुविधा के लिए केवल तीन SAC रेखाए ही दिखायी गयी है, वास्तव मे उनकी संख्या बहुत अधिक होती है।)
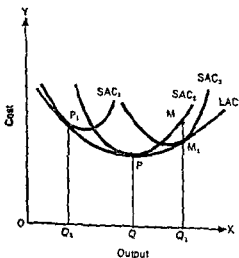
चित्र 7

अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं (SAC-Curves) को स्पर्श करती हुई यदि एक रेखा खींची जाय तो 'दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' प्राप्त हो जाती है। चित्र 7 मे LAC रेखा दीर्घकालीन लागत रेखा है। दीर्घकालीन औसत लागत रेखा यह बताती है कि उत्पादन के पैमाने (scale of production) मे परिवर्तन होने से औसत लागत किस प्रकार परिवर्तित होती है।

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) के सम्बन्ध मे निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(1) चूंकि दीर्घकालीन औसत रेखा (LAC) सब अल्पकालीन औसत लागत रेखाओ (SAC-Curves) को ढंक लेती है (अर्थात् envelope कर लेती है) इसलिए इसको 'लिफाफा या आवरण' (envelope) भी कहते हैं।

यहा पर यह ध्यान रखना चाहिए कि दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) केवल एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा को छोडकर अन्य सभी अल्पकालीन औसत रेखाओ (SAC-Curves) को उनके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श नही करती। चित्र 7 मे LAC रेखा केवल एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा SAC_2 को उसके निम्नतम बिन्दु P पर स्पर्श करती है।

एक दृष्टि से 'आवरण' या 'लिफाफा' शब्द भ्रामक है क्योंकि लिफाफा उसके अन्दर रखे हुए पत्र से बिलकुल भिन्न होता है। परन्तु दीर्घकालीन औसत लागत रूपी आवरण पर प्रत्येक बिन्दु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत रेखा पर भी होता है।[20]

(2) दीर्घकालीन नीति को निर्धारित करते समय एक फर्म भविष्य मे सम्भावित व्यापार को ध्यान मे रखते हुए कुशलतम प्लान्ट का निर्माण करने की योजना (plan) बनाना चाहेगी। इस दृष्टि से दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC-Curve) यह बताती है कि सर्वश्रेष्ठ सम्भावनाएं क्या है? अत इसको कभी-कभी 'योजना-रेखा' (planning curve) भी कहते हैं।

(3) अल्पकालीन औसत लागत रेखाओ की भांति दीर्घकालीन औसत लागत रेखाएं भी U-आकार की होती हैं; परन्तु वे अपेक्षाकृत अधिक चपटी (flat) होती हैं। जितना लम्बा समय होगा उतना ही औसत लागत रेखा का U-आकार कम गहरा (less pronounced) होगा अर्थात् चपटा होगा। दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) के अधिक चपटे (flat) होने का अर्थ है कि लागत मे वृद्धि या कमी की दर, अल्पकाल मे लागतो की अपेक्षा, कम होती है।

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा का प्रारम्भिक भाग बड़े पैमाने की 'आन्तरिक बचतो' के कारण नीचे को गिरता है, एक बिन्दु (चित्र 7 मे P बिन्दु) पर वह न्यूनतम हो जाती है, तत्पश्चात् यह

[20] "In a sense the term 'envelope' is misleading. An envelope is physically distinct from the letter which it contains, But every point on an 'envelope' long-run cost curve is also a point on one of the short-run cost curves which it envelopes."

चढ़ने लगती है। ऊपर चढ़ने का कारण है बड़े पैमाने की 'आन्तरिक अवचतों' का प्राप्त होना।

(4) दीर्घकाल में सभी उत्पादन के साधन परिवर्तनशील होते है और फर्मों के लिए प्लाण्ट के आकारों को पूर्णतया समायोजित (adjust) करने का समय रहता है, इसलिए दीर्घकालीन औसत लागत रेखा विभिन्न मात्राओं (output) के उत्पादन की सम्भावित न्यूनतम औसत लागत को बताती है। [यह बात इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है। माना कि (चित्र 7 मे) किसी समय पर एक उत्पादक लागत रेखा SAC_2 के अन्तर्गत OQ मात्रा का उत्पादन कर रहा है। वह उत्पादन को OQ से बढ़ाकर OQ_1 करना चाहता है। यह यदि उत्पादन के पुराने पैमाने (अर्थात् SAC_2) के अन्तर्गत ही उत्पादन करता है तो औसत लागत MQ_1 होगी। माना कि वह उत्पादन के पैमाने को बदल देता है और नयी अल्पकालीन लागत रेखा SAC_3 है। SAC_3 के अनुसार OQ_1 उत्पादन M_1Q_1 औसत लागत पर किया जा सकेगा जो कि MQ_1 से कम है। M_1 बिन्दु *LAC* पर भी है क्योंकि इस बिन्दु पर SAC_3 तथा *LAC* स्पर्श करते हैं, स्पष्ट है कि LAC रेखा OQ_1 उत्पादन की न्यूनतम लागत को बताती है। इस प्रकार दीर्घकालीन औसत लागत रेखा सम्भावित उत्पादन की मात्रा के लिए न्यूनतम सम्भावित लागत (lowest possible cost) को बताती है।]

चित्र 8

(5) LAC के कुछ अन्य रूप (other forms) भी हो सकते है

(i) चित्र 8 मे LAC का आकार एक ऐसी फर्म का द्योतक है, जिसका 'अनुकूलतम आकार' (optimal size) छोटा है। दूसरे शब्दों मे, फर्म को उत्पादन के थोड़े क्षेत्र (range) तक ही 'बचते' (economies) प्राप्त होती है और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत (minimum long run average cost), जो कि चित्र मे P बिन्दु बताता है, शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है, उत्पादन की थोड़ी मात्रा के बाद ही औसत लागत बढ़ने लगती है। इसके उदाहरण हैं कृषि तथा भूमि से निकलने वाले व्यवसाय (extractive industries)।
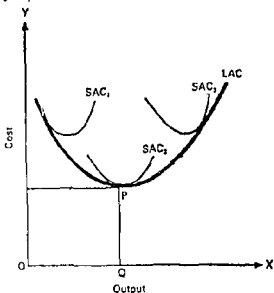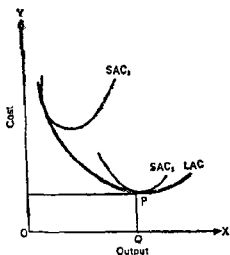
चित्र 9

(ii) चित्र 9 मे LAC रेखा का आकार एक ऐसी फर्म का द्योतक है

जिसका 'अनुकूलतम आकार' बड़ा है। दूसरे शब्दों में, फर्म को उत्पादन के एक बड़े क्षेत्र (over a wide range of production) तक 'पैमाने की बचतें' प्राप्त होती है और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत, जो कि चित्र मे P बिन्दु बताता है, बहुत देर मे प्राप्त होती है; उत्पादन की बहुत बड़ी मात्रा के बाद ही औसत लागत बढ़ना शुरू होती है।

(iii) LAC रेखा एक पड़ी हुई रेखा भी हो सकती है जैसा कि चित्र 10 मे दिखाया गया है। इसका अर्थ है कि उत्पादन 'लागत समता नियम' (Law of Constant Cost) के अन्तर्गत हो रहा है। पड़ी हुई LAC रेखा का थोड़ा भिन्न रूप भी हो सकता है जैसा कि चित्र 11 में दिखाया गया है।

चित्र 10

दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत के सम्बन्ध (Relation between Long-run Marginal Cost and Long-run Average Cost)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत (long run marginal cost अर्थात् LMC) रेखा भी U-आकार की होती है। दीर्घकाल मे स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत का अन्तर समाप्त हो जाता है, सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं, कुल परिवर्तनशील लागत तथा कुल लागत एक ही हो जाती है। अत. दीर्घकाल मे सीमान्त लागत (MC) को परिवर्तनशील लागत (VC) के शब्दो मे व्यक्त या परिभाषित नहीं किया जा सकता। दीर्घकाल में एक इकाई के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) कहते हैं।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) तथा दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) में बिलकुल वही सम्बन्ध होता है जो कि अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) तथा अल्पकालीन औसत लागत (SAC) में होता है। चित्र 12 से स्पष्ट है कि जब LAC गिरती है तो LMC उससे कम
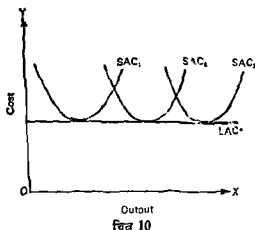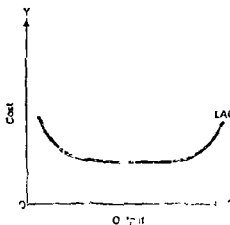
चित्र 11
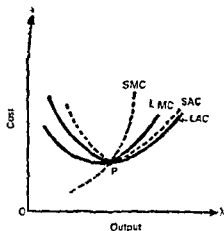
चित्र 12

होती है, LAC के न्यूनतम बिन्दु P पर LMC बराबर हो जाती है, तथा इसके पश्चात् LAC बढ़ती है और LMC उसमे अधिक रहती है। चित्र 12 में SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत लागत और अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखाएं हैं। चित्र से स्पष्ट है कि P बिन्दु पर LAC=LMC=SAC=SMC।

आगम (या आय) का विचार
(THE CONCEPT OF REVENUE)

प्रत्येक उत्पादक या फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। चूंकि लाभ उत्पादन लागत तथा विक्रय राशि के अन्तर के बराबर होता है, इसलिए अधिकतम लाभ इस बात पर निर्भर करेगा कि यथासम्भव लागत कम की जाये तथा बिक्री अधिक। यदि लागत दी हुई है तो लाभ बिक्री से प्राप्त कुल आय या आगम पर निर्भर करेगा; जितनी अधिक बिक्री होगी और जितना अधिक आय या आगम (revenue) प्राप्त होगा, उतना ही अधिक लाभ अर्जित किया जा सकेगा। अर्थशास्त्री 'आगम' (revenue) शब्द को प्राय तीन अर्थों मे प्रयोग करते हैं: 'कुल आगम' (total revenue), 'औसत आगम' (average revenue) तथा 'सीमान्त आगम' (marginal revenue)।

कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम को निम्न तालिका मे व्यक्त किया गया है.

उत्पादन की मात्रा (Output)	कुल आगम (Total Revenue) (रु. मे)	औसत आगम (Average Revenue) (रु. मे)	सीमान्त आगम (Marginal Revenue)
1	10	10	10
2	1?	9	8
3	24	8	6
4	28	7	4
5	30	6	2
6	31	5 1/6	1

कुल आगम (Total Revenue)

एक फर्म अपने उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को बेचकर जो कुल धन-राशि (sale-proceeds or receipts) प्राप्त करती है उसे कुल आगम (Total Revenue, i.e., TR) कहते हैं। यदि फर्म 3 इकाइयों को बाजार मे बेचकर 24 रु प्राप्त करती है (देखिए उक्त तालिका) तो 24 रु. कुल आगम (TR) होगा, यदि वह 5 इकाइयों को बेचकर 30 रु. प्राप्त करती है तो 30 रु. कुल आगम होगा।

'कुल आगम' को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है: **वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा को कीमत से गुणा करके कुल आगम (TR) प्राप्त किया जाता है।** उदाहरणार्थ, वस्तु की तीन इकाइयाँ बेची जाती है और प्रति इकाई कीमत 8 रु. है तो कुल आगम $=3 \times 8 = 24$ रु. है; अर्थात्

कुल आगम (Total revenue) = वस्तु की मात्रा (Quantity) × कीमत (Price)।

औसत आगम (Average Revenue)

बिक्री से प्राप्त कुल आगम (TR) में वस्तु की कुल बेची गयी मात्रा का भाग देने से 'औसत आगम' प्राप्त होता है। सक्षेप मे,

$$\text{औसत आगम (AR)} = \frac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (Output)}}$$

उदाहरणार्थ, यदि 3 इकाइयों का कुल आगम (TR) 24 रु. है तो औसत आगम $(AR) = \frac{24}{3} = 8$ रु.। वास्तव में, यह 8 रु. एक इकाई की कीमत (price) हुई। अत. 'औसत आय' (AR) तथा वस्तु की 'कीमत' एक ही बात है। इस प्रकार **औसत आगम (AR) उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर वस्तु की कीमत बताता है।** (उक्त तालिका से स्पष्ट है कि यदि उत्पादन का स्तर 3 इकाई है तो AR अर्थात् कीमत 8 रु. है; यदि उत्पादन का स्तर 5 इकाई है तो AR या कीमत 6 रु है।)

औसत आगम रेखा (AR-Curve) को मांग रेखा (Demand Curve) भी कहा जाता है। मांग रेखा वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा तथा कीमत में सम्बन्ध को बताती है। एक क्रेता किसी वस्तु के लिए जो 'कीमत' देता है वह फर्म की दृष्टि से 'औसत आगम' (AR) है। AR रेखा यह बताती है कि फर्म को वस्तु की विभिन्न मात्राओं को बेचने से कितनी कीमत या औसत आगम मिलेगा अत AR रेखा को मांग-रेखा कहा जाता है। **कुछ अर्थशास्त्री AR रेखा को मांग रेखा के स्थान पर 'विक्रय-रेखा' (sales curve) कहना अधिक पसन्द करते हैं,** क्योंकि यह विभिन्न कीमतों (या औसत आगमों) पर फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की बिक्री की मात्राओं को बताती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect competition) **में,** चाहे उसका कोई भी रूप, एकाधिकारी प्रतियोगिता, अल्पाधिकार, या एकाधिकार, हो **AR-रेखा नीचे को गिरती हुई होती है** जैसा कि **चित्र** 13 में दिखाया गया है। गिरती हुई AR-रेखा बताती है कि अपूर्ण प्रतियोगिता में यदि एक फर्म अपनी वस्तु की अधिक इकाइयाँ बेचना चाहती है तो वह पहले की अपेक्षा कम कीमत पर बेच पायेगी; अर्थात् अधिक उत्पादन बेचने के लिए फर्म को अपनी वस्तु की कीमत कम करनी पड़ेगी।[21]
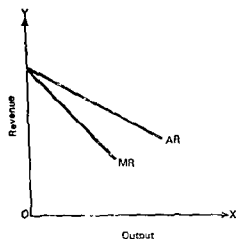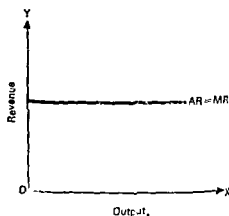
चित्र 13 चित्र 14

पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect competition) **में AR रेखा पड़ी रेखा** (horizontal line) होती है जैसा कि चित्र 14 में दिखाया गया है। पड़ी हुई AR रेखा का अर्थ है कि एक दी हुई

[21] इसका कारण अपूर्ण प्रतियोगिता के अर्थ में ही निहित है। अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म या तो पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादित करती है अथवा किसी विशेष प्रकार या ब्राण्ड की वस्तु उत्पादित करती है, ऐसी स्थिति में फर्म यदि वस्तु की अधिक मात्रा बेचना चाहती है तो उसे कीमत कम करनी पड़ेगी अन्यथा वह वस्तु की अधिक मात्रा नहीं बेच पायेगी।

कीमत पर फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है, अधिक मात्रा बेचने के लिए उसे कीमत कम नहीं करनी पड़ती। (पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एक-रूप होती है तथा क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए कोई भी विक्रेता अपनी कार्यवाहियों से वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता, वह कीमत को दिया हुआ मान लेता है और उस कीमत पर जितनी मात्रा बेचना चाहे, बेच सकता है।)

औसत आगम (AR) के सम्बन्ध में सारांश (summary) इस प्रकार है :

1. औसत आगम $(AR) = \dfrac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$
2. औसत आगम (AR) तथा कीमत (price) एक ही बात है।
3. औसत आगम रेखा (AR-Curve) 'माँग रेखा' होती है; यद्यपि कुछ अर्थशास्त्री इसको 'विक्रय-रेखा' (sales curve) कहना अधिक पसन्द करते हैं।
4. अपूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा नीचे को गिरती हुई होती है; और पूर्ण प्रतियोगिता में यह पड़ी हुई रेखा होती है।

सीमान्त आगम (Marginal Revenue)

एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) को बेचने से कुल आगम (TR) में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम (MR) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, सीमान्त आगम कुल आगम में परिवर्तन की दर को बताता है। माना किसी वस्तु की 3 इकाइयों का कुल आगम (TR) 24 रुपये है और यदि 4 इकाइयाँ बेची जाती हैं तो कुल आगम (TR) 28 रुपये है (पृष्ठ 527 पर तालिका देखिए) तो चौथी इकाई अर्थात् एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में $(28-24) =$ 4 रुपये की वृद्धि हुई और यह 4 रुपये सीमान्त आगम (MR) है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम (MR) नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) औसत आगम (AR) से कम होती है, जैसा कि चित्र 13 में दिखाया गया है। MR-रेखा AR-रेखा की अपेक्षा अधिक तेजी से गिरती है। प्रश्न यह उठता है कि MR AR से कम क्यों होता है और MR अपेक्षाकृत तेजी से क्यों गिरता है? अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए कीमत अर्थात् (AR) घटानी पड़ेगी, अतः MR, AR से कम होगा। दूसरे शब्दों में, अपूर्ण प्रतियोगिता में जब एक फर्म अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत कम करती है तो कीमत में यह कमी केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं होगी बल्कि पिछली सभी इकाइयों पर भी करनी होगी।

इस बात को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। माना कि एक फर्म 4 इकाई 7 रु. प्रति इकाई, 5 इकाई 6 रुपये प्रति इकाई के हिसाब से बेच सकती है। माना वह 5 इकाई बेचती है। जब 5वीं इकाई बेची जाती है तो 6 रुपये प्राप्त होते हैं। यह 6 रुपये कुल आगम (TR) में वृद्धि (अर्थात् MR) कही जा सकती है जबकि ऐसा कहना उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि 5वीं इकाई को बेचने के लिए फर्म को पिछली सभी इकाइयों अर्थात् पिछली 4 इकाइयों पर उसे 1 रुपये प्रति इकाई कीमत घटानी पड़ेगी। अतः

सीमान्त आगम (MR) = 6वीं इकाई से प्राप्त अतिरिक्त आगम—

पिछली चार इकाइयों पर 1 रुपये प्रति प्रकाई के हिसाब से कमी

= 6 रुपये − 4 रुपये

= 2 रुपये

(यदि पृष्ठ 527 पर तालिका को देखा जाये तो स्पष्ट होगा कि 5वीं इकाई का सीमान्त आगम 2 रुपये ही है।)

पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम (MR), औसत आगम (AR) के बराबर होता

है। चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में (AR) पड़ी हुई रेखा होती है इसलिए MR रेखा भी पड़ी हुई होती है तथा दोनों एक रेखा द्वारा ही व्यक्त किये जाते हैं, जैसा कि चित्र 14 में दिखाया गया है। पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी विक्रेता अकेले अपनी कार्यवाहियों से कीमत प्रभावित नहीं कर सकता, वह दी हुई कीमत पर अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा को बेच सकता है; अत: विक्रेता या उत्पादक को एक अतिरिक्त इकाई के बेचने से जो आगम (अर्थात् MR) प्राप्त होगा वह कीमत (अर्थात् AR) के बराबर होगा। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में MR = AR (अर्थात् Price)।

सीमान्त आगम, औसत आगम तथा लोच
(MARGINAL REVENUE, AVERAGE REVENUE AND ELASTICITY)

सीमान्त आगम तथा औसत आगम में सम्बन्ध (Relation between Marginal Revenue and Average Revenue)

सीमान्त आगम (MR) तथा औसत आगम (AR) के सम्बन्ध के बारे में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए:

(i) जब तक औसत आगम रेखा (AR-Curve) गिरती है तब तक सीमान्त आगम (MR) औसत आगम (AR) से कम होगी। MR-रेखा परिस्थितियों के अनुसार, स्वयं बढ़ती हुई (rising), गिरती हुई या पड़ी हुई (horizontal) हो सकती है, परन्तु सामान्यतया वह भी गिरेगी।

(ii) जब AR तथा MR दोनों गिरती हुई सीधी रेखाएँ (falling straight lines) होती हैं तो AR-रेखा के किसी भी बिन्दु से Y-axis पर डाले गये लम्ब (perpendicular) को MR-रेखा उसके मध्य से काटेगी। चित्र 15 में लम्ब FE को MR रेखा उसके मध्य-बिन्दु B पर काटती है। इस सम्बन्ध को गणित द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।
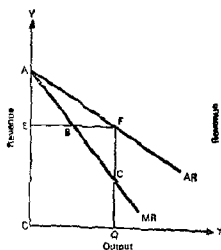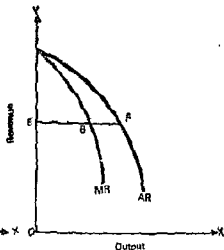
चित्र 15 चित्र 16

(iii) जब AR-रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave to the origin) होती है (जैसा कि चित्र 16 में दिखाया गया है), तो Y-axis पर खींचे गये, किसी भी लम्ब को MR-रेखा AR-रेखा की ओर आधी दूर से कम (less than half way to the AR Curve) पर काटती है। चित्र 16 में लम्ब FE को MR-रेखा B बिन्दु पर काटती है, B बिन्दु Y-axis से AR-रेखा की ओर आधी दूरी से कम है।

(iv) जब AR-रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex to the origin) होती है (जैसा कि चित्र 17 में दिखाया गया है), तो Y-axis पर खींचे गये किसी भी लम्ब को MR-रेखा AR-रेखा की ओर आधी दूरी से अधिक (more than half way to the AR-Curve) पर काटती है। चित्र 17 में लम्ब FE को MR रेखा B बिन्दु पर काटती है, B बिन्दु Y-axis से AR रेखा की ओर आधी दूरी से अधिक है।

औसत आगम, सीमान्त आगम तथा माँग की लोच में सम्बन्ध (Relation amongst Average Revenue, Marginal Revenue and Elasticity of Demand)

उत्पादन के किसी भी स्तर पर औसत आगम, सीमान्त आगम तथा माँग की लोच में सम्बन्ध मालूम किया जा सकता है। यह सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है।

चित्र 18 में DD माग-वक्र या AR-वक्र है। इसके किसी बिन्दु F पर ST स्पर्श रेखा खींची गयी है। ST रेखा को भी माँग रेखा या AR-रेखा माना जा सकता है; तथा F बिन्दु पर DD तथा ST दोनों की माँग की लोच समान होगी। AR-रेखा से सम्बन्धित MR-रेखा SN है।

चित्र 17

बिन्दु F पर (जो कि OQ मात्रा से सम्बन्धित है) माँग की लोच

$$e = \frac{\text{नीचे का भाग (lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग (upper sector)}}$$

$$= \frac{FT}{FS}$$

$$= \frac{FQ}{SE} \quad [\because \Delta' \text{ ESF तथा QFT समकोणीय (equi-angular) हैं}]$$

$$= \frac{FQ}{FL} \quad [\because \Delta' \text{ SEB तथा BFL सब तरह से समान हैं;} \quad \therefore SE = FL]$$

$$= \frac{FQ}{FQ - LQ}$$

$$= \frac{\text{Average Revenue}}{\text{Average Revenue} - \text{Marginal Revenue}}$$

अर्थात् $e = \dfrac{A}{A - M}$

जबकि A = Average Revenue
M = Marginal Revenue
e = elasticity of demand

या $eA - eM = A$

या $-eM = A - eA$

या $eM = eA - A$

या $M = \dfrac{eA - A}{e}$

या $M = A \times \frac{e-1}{e}$
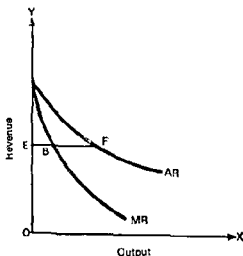
ऊपर एक स्थान पर हम देखते हैं कि

चित्र 18

$$eM = eA - A$$

या $eA - A = eM$

या $A(e-1) = eM$

या $A = M \times \frac{e}{e-1}$
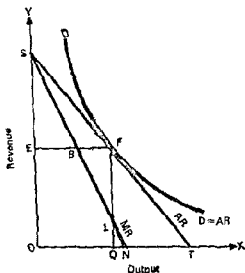
उपर्युक्त तीन मुख्य समीकरण इस प्रकार है :

1. $e = \frac{A}{A-M}$

2. $M = A \times \frac{e-1}{e}$

3. $A = M \times \frac{e}{e-1}$

उपर्युक्त समीकरणों से स्पष्ट है कि e (माँग की लोच), M (सीमान्त आगम) तथा A (औसत आगम) में से कोई भी दो मूल्य (values) दिये हैं तो तीसरा मालूम किया जा सकता है ।

प्रश्न

1. वास्तविक लागत तथा अवसर लागत में अन्तर बताइए तथा अवसर लागत के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।

   Distinguish between real cost and opportunity cost and explain the doctrine of opportunity cost.

   [संकेत—सर्वप्रथम 'कष्ट तथा त्याग' पर आधारित क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार वास्तविक लागत के विचार को समझाइए और उसकी कमजोरियों को बताइए, देखिए 'वास्तविक लागत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री । इसके पश्चात् बताइए कि कष्ट तथा त्याग पर आधारित वास्तविक लागत के विचार के दोषों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के वास्तविक लागत के विचार को त्याग दिया । आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक लागत को 'अवसर लागत' के रूप में व्यक्त किया । इसके बाद अवसर लागत के अर्थ को पूर्णतया स्पष्ट कीजिए ।]

2. अवसर लागत के सिद्धान्त को बताइए तथा समझाइए ।

   State and examine the principle of opportunity cost (Bihar)

3. प्रमुख लागत तथा अनुपूरक लागत में अन्तर कीजिए । मूल्य के सिद्धान्त में इस अन्तर का क्या महत्त्व है ?

   Distinguish between prime and supplementary costs What is the importance of this distinction in the theory of value.

4. अल्पकाल तथा दीर्घकाल में औसत लागत वक्र के व्यवहार की विवेचना कीजिए। चित्रों की सहायता से इसके आकार मे होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
Discuss the behaviour of average cost curve in the short period and long period. Explain with the help of diagrams the changes that occur in its shape. (Sagar, 1965)
[संकेत—अल्पकाल मे औसत लागत रेखा के व्यवहार के लिए देखिये 'औसत कुल लागत या औसत लागत' नामक शीर्षक की विषय-सामग्री। तत्पश्चात् दीर्घकालीन औसत लागत रेखा के लिए देखिए 'दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री, चित्र न. 7, 8, 9, 10 तथा 11 सहित।]
5. औसत और सीमान्त लागत रेखाओ के बीच रेखागणित सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
Elucidate the geometrical relationship between the Average and Marginal cost curves. (Bihar)
6. औसत तथा सीमान्त लागतो के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा उदाहरणो और चित्रों की सहायता से बताइए कि सीमान्त लागतें औसत लागतो से कम होगी यदि औसत लागतें गिर रही है तथा सीमान्त लागतें औसत लागतो से अधिक होगी यदि औसत लागतें चढ़ रही हैं।
Distinguish between average and marginal costs and show by examples and diagrams that marginal cost are less than average costs if average costs are falling and more than average costs if average costs are rising. (Punjab)
[संकेत—प्रश्न के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे औसत लागत और सीमान्त लागत के अर्थों को बताइए। दूसरे भाग मे औसत लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को बताइए, देखिए 'सीमान्त लागत तथा औसत लागत सम्बन्ध' में नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]
7. कारणो सहित स्पष्ट कीजिए कि उद्योग के उत्पादन में वृद्धि के साथ सीमान्त लागत पहले गिरती है और तत्पश्चात् चढ़ती है।
Give reasons why Marginal Costs might, at first, fall and then rise as the output in the industry expands. (Punjab)
[संकेत—इसके उत्तर के लिए देखिए 'सीमान्त लागत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री।]
8. एक फर्म के उत्पादन की औसत और सीमान्त लागतों के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। क्या एक वस्तु की उत्पादन लागत का सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है? यदि ऐसा हो सकता है, तो कैसे?
Point out the relationship between the average and the marginal costs of production of a firm. Can cost of production of a commodity be studied from the point of view of a society? If so, how? (Delhi)
[सकेत—दूसरे भाग मे बताइए कि समाज की दृष्टि से एक वस्तु की उत्पादन-लागत का अध्ययन किया जा सकता है, और ऐसा करने मे अवसर लागत के विचार की सहायता लेनी पडती है। इसके पश्चात् 'अवसर लागत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत step no. 2 के point (अ) के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री अर्थात् 'अवसर लागत वास्तविक लागत के रूप मे' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री लिखिए, (चित्र 1 भी अवश्य दीजिए)।]
9. तालिका अथवा वक्रो की सहायता से सीमान्त आगम, औसत आगम तथा कुल आगम के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्देश कीजिए। 1
Show the relationship between marginal revenue, average revenue and tota revenue with the help of either schedules or curves.

31

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म का साम्य

(Equilibrium of a Firm Under Perfect Competition)

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं (conditions) के कारण एक उत्पादक या फर्म के लिए उसकी **वस्तु की मांग रेखा पूर्णतया लोचदार होती है अर्थात् वह पड़ी हुई रेखा** (horizontal line) होती है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म **'मूल्य ग्रहण करने वाली'** (price-taker) होती है, **'मूल्य-निर्धारक'** (price-maker) नहीं; वह दिये हुए मूल्य पर केवल **'उत्पादन की मात्रा का समायोजन करने वाली'** (quantity adjuster) होती है, एक फर्म की अपनी कोई 'मूल्य-नीति' (price-policy) नहीं होती, वह उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य को स्वीकार कर लेती है।

2. फर्म के साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM OF A FIRM)

आधुनिक अर्थशास्त्री किसी वस्तु के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को 'फर्म के साम्य'[1] के शब्दों में व्यक्त करते हैं। इससे पहले कि हम फर्म के साम्य की दशाओं का अध्ययन करें, यह आवश्यक है कि 'फर्म के साम्य' के अभिप्राय को समझ लिया जाये। साम्य[2] का अर्थ है 'परिवर्तन की अनुपस्थिति' (absence of change)। इस प्रकार एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता है; एक फर्म अपने उत्पादन में तब कोई परिवर्तन (वृद्धि या कमी) नहीं करेगी जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। **अत: एक फर्म साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि उसके उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं हो अर्थात् साम्यावस्था में फर्म उत्पादन की वह मात्रा निश्चित करेगी जिस पर उसको 'अधिकतम लाभ' या 'अधिकतम शुद्ध आय'** (maximum net revenue) प्राप्त हो।

---

[1] किसी उद्योग का कुल उत्पादन उसमे कार्य करने वाली व्यक्तिगत फर्मों के उत्पादन पर निर्भर करता है। मार्शल तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगत फर्मों के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण पर उचित ध्यान न देकर कुल उद्योग की मूल्य तथा उत्पादन नीति पर ही विशेष ध्यान दिया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री व्यक्तिगत फर्म की मूल्य तथा उत्पादन नीति पर विशेष ध्यान देते हैं और इस बात को वे 'फर्म के साम्य' के शब्दो मे व्यक्त करते हैं।

[2] **साम्य के विस्तृत अर्थ, उसके प्रकार, एवं महत्व, इत्यादि के पूर्ण विवरण के लिए पुस्तक के प्रथम खण्ड के अध्याय 9 को देखिए।**

3. दो रीतियां
(TWO APPROACHES)

अधिकतम लाभ प्राप्ति की स्थिति अर्थात् एक फर्म के साम्य की स्थिति को दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

(1) **कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति** (Total Revenue and Total Cost Curves Approach)—जहाँ पर कुल आगम तथा कुल लागत का अन्तर अधिकतम होगा वहाँ पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

(2) **सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति** (Marginal and Average Curves Approach) या सीमान्त विश्लेषण की रीति (Marginal Analysis Approach)।

[इन दोनों रीतियों द्वारा फर्म के साम्य की विवेचना करते समय कुछ मान्यताओं (assumptions) को मानकर चला जाता है, इन मान्यताओं को फुट नोट 3 में दे दिया गया है।][3]

4. फर्म का साम्य—कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(EQUILIBRIUM OF A FIRM—TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

चित्र 1 में q_1 तथा q_2 के बीच उत्पादन के किसी भी स्तर पर फर्म को धनात्मक लाभ (positive profit) प्राप्त होगा।[4] चित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन की मात्रा q पर TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी MP सबसे अधिक है जो कि अधिकतम लाभ को बताती है। अतः फर्म उत्पादन की मात्रा q पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि उत्पादन के इस स्तर पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। A तथा B बिन्दुओं को 'break-even points' कहा जाता है क्योंकि इन बिन्दुओं पर TR तथा TC बराबर (break-even) होते हैं और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति अधिक अच्छी है।[5]

---

[3] (i) यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक फर्म या उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम द्राव्यिक लाभ को प्राप्त करना होता है। (ii) उत्पादन की दी हुई तकनीकी दशाओं के अन्तर्गत प्रत्येक साहसी, जहाँ तक सम्भव है, अपने उत्पादन की द्राव्यिक लागत को न्यूनतम रखेगा। (iii) सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि एक फर्म केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करती है। (iv) हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की सभी इकाइयाँ एकसमान कुशल होती हैं, तथा प्रत्येक साहसी वर्तमान मूल्य पर किसी भी साधन की जितनी इकाइयाँ चाहे प्रयोग कर सकता है।

[4] *उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर फर्म के लाभ को ज्ञात करने के लिए फर्म की 'कुल आगम रेखा'* (TR-curve) तथा कुल लागत रेखा (TC-curve) को एक चित्र में एक साथ खींचा जाता है। चित्र 1 में TR-रेखा 'कुल आगम रेखा' है तथा TC-रेखा 'कुल लागत रेखा' है; उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर इन दोनों रेखाओं के बीच खड़ी दूरी (vertical distance) लाभ को बताती है। q_1 से कम उत्पादन पर फर्म को हानि होगी क्योंकि O से q_1 तक के क्षेत्र में TC-रेखा, TR-रेखा के ऊपर रहती है। यदि फर्म q_1 इकाइयों का उत्पादन करती है अर्थात् वह A बिन्दु पर है तो कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि इस उत्पादन-स्तर पर TR=TC के, अर्थात् फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। यदि फर्म B बिन्दु पर है अर्थात् वह q_2 इकाइयों का उत्पादन करती है तो भी कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर पर भी TR=TC ; B बिन्दु के बाद TC रेखा TR रेखा के ऊपर रहती है, इसलिए q_2 उत्पादन के बाद उत्पादन के सभी स्तरों पर फर्म को हानि होगी।

[5] कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति भद्दी (cumbersome) है। इसके दो कारण हैं :' (i) TR तथा TC के बीच में खड़ी दूरी को एक निगाह डाल कर सदैव आसानी से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। (ii) प्रथम निगाह में वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करना असम्भव

(क्रमशः)

5. फर्म का साम्य—सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(EQUILIBRIUM OF A FIRM–MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

चित्र 1

1. **फर्म के साम्य की सामान्य दशा : MR = MC (and MC must be rising or MC must cut MR from below)**

एक फर्म साम्य की स्थिति मे तब होगी जब उसके कुल उत्पादन मे कोई परिवर्तन नही होता। फर्म अपने कुल उत्पादन मे कोई परिवर्तन तब नहीं करेगी जबकि उसे 'अधिकतम लाभ' प्राप्त हो रहा हो। फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त तब होगा जबकि MR = MC के हो। फर्म के साम्य की यह दशा बाजार की सभी स्थितियो मे, चाहे पूर्ण प्रतियोगिता हो या एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता, लागू होती है, इसलिए **इस दशा को फर्म के साम्य की सामान्य दशा** (general condition of equilibrium) **कहते हैं।**
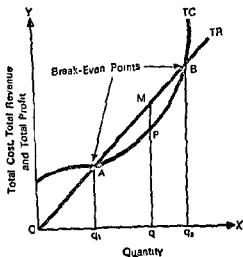
माना कि MR अधिक है MC से जैसा कि चित्र 2 मे बिन्दु A के आगे MR रेखा ऊपर है MC रेखा के, तो फर्म अपने उत्पादन को बढ़ायेगी (जैसा कि चित्र मे तीर 1 बताता है) क्योंकि इस दशा मे फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाकर अपने लाभ मे वृद्धि कर सकेगी।[6] परन्तु जब फर्म बिन्दु B पर पहुँच जाती है तो वह उत्पादन को नही बढ़ायेगी क्योंकि यहाँ पर MR = MC के है, अर्थात् बिन्दु E पर लाभ को अधिकतम करने की सब सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं,[7] बिन्दु B 'अधिकतम लाभ का बिन्दु' (Point of
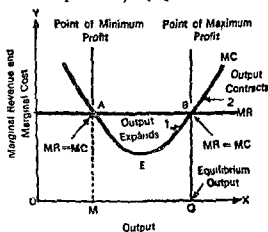
चित्र 2

है, केवल कुल आगम (TR) को ही देख कर बताया जा सकता है। जैसे चित्र 1 में Oq उत्पादन पर कुल आगम Mq है, प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करने के लिए कुल आगम Mq को उत्पादन की मात्रा Oq से भाग देकर ज्ञात करना पड़ेगा।

[6] जब MR, MC से अधिक होती है तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) अधिक होगा उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) से; स्पष्ट है कि फर्म को अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करके बेचने से लाभ होगा। दूसरे शब्दो मे, जब तक MR अधिक रहती है MC से, तब तक फर्म अपने उत्पादन को बढ़ा कर लाभ मे वृद्धि कर सकेगी।

[7] जब MR = MC के हो जाती है तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करके बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) के बराबर हो जाता है और ऐसी स्थिति मे फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाकर लाभ (क्रमशः)

Maximum Profit) है अर्थात् 'फर्म के साम्य की स्थिति' को बताता है और OQ 'उत्पादन की साम्य मात्रा' (equilibrium output) को बताता है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम लाभ के बिन्दु B (जहाँ पर MR = MC के है) पर MC रेखा MR रेखा को नीचे से काटती है अथवा MC रेखा चढ़ती हुई (rising) है।

[यदि MR कम है MC से जैसा कि चित्र 2 मे बिन्दु B के बाद मे MR रेखा MC रेखा के नीचे है, तो फर्म अपने उत्पादन को घटायेगी[8] जैसा कि चित्र मे तीर 2 बताता है और वह उत्पादन को घटा कर हानि को कम करती जायेगी, उत्पादन का घटना (contraction) बिन्दु B पर समाप्त हो जायगा क्योंकि बिन्दु B पर MR=MC के है और यहाँ पर अधिकतम लाभ प्राप्त होने से फर्म साम्य की स्थिति मे आ जायेगी।]

चित्र 2 मे बिन्दु A पर भी MR=MC के है, परन्तु यह बिन्दु निम्नतम लाभ का बिन्दु (Point of Minimum Profit) है क्योंकि बिन्दु A पर MC रेखा MR रेखा को ऊपर से काटती है।[9]

2. **पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए अपनी वस्तु की मांग रेखा अर्थात् औसत आगम रेखा (AR-Curve) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा AR, MR के बराबर होता है।** उद्योग में वस्तु की कुल पूर्ति तथा उसकी कुल माँग द्वारा वस्तु का जो मूल्य निर्धारित होता है उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है और इस प्रकार एक फर्म के लिए AR-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है। पड़ी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि दिये हुए मूल्य पर एक फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा (कम या अधिक) बेच सकती है। यह चित्र 3 मे दिखाया गया है।

चित्र 3 से स्पष्ट है कि उद्योग की पूर्ति रेखा SS तथा माग रेखा DD_1 है, दोनों P_1 बिन्दु पर काटती है; अतः उद्योग मे वस्तु का मूल्य P_1Q_1 निर्धारित होता है। फर्म इस मूल्य P_1Q_1 को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए मूल्य रेखा (Price-line) या माग रेखा (Demand curve) या औसत आगम रेखा (AR-curve) पड़ी हुई रेखा P_1L_1 होगी; इस दी हुई कीमत P_1 को फर्म दिया मान लेगी और इसके अनुसार अपने उत्पादन को निश्चित करेगी, इस दी हुई कीमत पर वह उत्पादन की कितनी ही मात्रा q_1 या q_2 या q_3 बेच सकेगी। यदि उद्योग की वस्तु की कुल माग कम हो जाती है तथा माँग रेखा गिरकर DD_2 हो जाती है तो अब नया मूल्य P_2Q_2 होगा; इस स्थिति मे फर्म

अधिकतम नहीं कर सकती; अतः बिन्दु B पर जब MR=MC के हो जाती है तो फर्म के लिए लाभ को अधिकतम करने की सम्भावनाएं समाप्त हो जाती हैं।

[8] यदि MR कम है MC से, तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) कम है उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात् MC) से, स्पष्ट है कि फर्म को अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से हानि होगी; अतः फर्म उत्पादन को घटाती जायेगी जब तक कि MR बराबर MC के न हो जाये।

[9] इसका अभिप्राय है कि यदि फर्म अपने उत्पादन को 'A' बिन्दु से आगे बढाती है अर्थात् OM मात्रा से अधिक बढ़ाती है तो सीमान्त लागत (MC) घटती जाती है और E बिन्दु पर निम्नतम होकर बढने लगती है, परन्तु बिन्दु 'A' से बिन्दु 'B' तक के क्षेत्र (range) मे अर्थात् उत्पादन के M से Q तक के क्षेत्र मे MR-रेखा MC रेखा के ऊपर रहती है अर्थात् इस क्षेत्र में फर्म अपने उत्पादन को बढ़ा कर लाभ को अधिकतम कर सकती है; 'B' बिन्दु पर उसे 'अधिकतम लाभ' प्राप्त होगा तथा बिन्दु 'B' से आगे जाने पर उसे हानि होने लगेगी।

स्पष्ट है कि एक फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त करने या फर्म के साम्य लिए MC रेखा को MR-रेखा को ऊपर से नही बल्कि नीचे से काटना चाहिए। संक्षेप मे, एक फर्म के साम्य के लिए—

MR = MC (and MC must cut MR from below or MC must be rising)
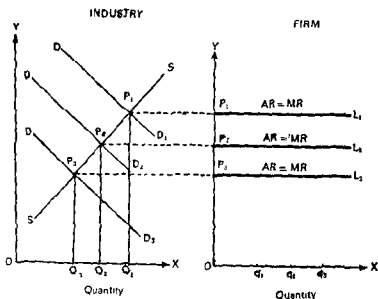
चित्र 3

की AR-रेखा P_2L_2 हो जायेगी। माँग और कम हो जाने से उद्योग की माँग रेखा DD_3 हो जाती है और मूल्य गिरकर P_3Q_3 हो जाता है, अब फर्म की AR-रेखा P_3L_3 हो जायेगी।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की कीमत एक ही रहती है और दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। अत. वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (AR) है, अर्थात् AR, MR के बराबर होगी।

3. पूर्ण प्रतियोगिता में AR (कीमत) MC के बराबर होती है। हम देख चुके हैं कि फर्म के साम्य के लिए MR = MC की दशा का होना आवश्यक है, तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे AR = MR के होती है। चूकि AR = MR तथा MR = MC, इसलिए :

$$AR = MR = MC$$

$$\text{या} \quad AR\ (Price) = MC$$

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR अर्थात् कीमत, सीमान्त लागत (MC) के बराबर होती है।
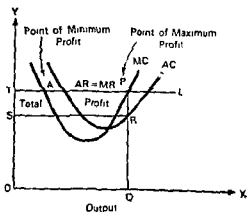
चित्र 4

4. अल्पकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of a Firm in the Short-run)

अल्पकाल मे इतना समय नही होता कि उत्पत्ति या पूर्ति को घटा-बढ़ाकर पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सके; इसलिए अल्पकाल मे एक फर्म को लाभ या शून्य लाभ, (अर्थात् सामान्य लाभ), या हानि हो सकती है। इन तीनों स्थितियो का विवरण नीचे दिया गया है:

लाभ की स्थिति : माना कि चित्र 4 मे एक फर्म के लिए 'कीमत-रेखा'

(जो कि उद्योग द्वारा निर्धारित होती है) की स्थिति TL है ।[10] फर्म इस कीमत रेखा को दिया हुआ मान लेगी और वस्तु के उत्पादन की वह मात्रा निर्धारित करेगी जहाँ पर कि MR=MC के है । चित्र 4 से स्पष्ट है कि बिन्दु P पर MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है अर्थात् MC-रेखा चढ़ती हुई (rising) है, इसलिए बिन्दु B अधिकतम लाभ का बिन्दु (Point of Maximum profit) होगा तथा फर्म के साम्य की स्थिति को बतायेगा ।[11]

फर्म को कितना लाभ होगा इस बात को जानने के लिए हम AR (अर्थात् कीमत) तथा AC रेखाओं के बीच खड़ी दूरी को ज्ञात करते हैं। चित्र 4 मे AR तथा AC रेखाओं के बीच खड़ी दूरी PR है जो कि प्रति इकाई लाभ को बताती है; कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए PR को कुल उत्पादन OQ या SR से गुणा कर दिया जाता है; अर्थात् कुल लाभ = PR × SR = आयत (rectangle) SRPT का क्षेत्रफल (area) ।

अतः जब फर्म की 'कीमत-रेखा' या 'AR=MR रेखा' की स्थिति TL है, तो—

कीमत (Price) = PQ

उत्पादन (Output) = OQ

कुल लाभ (Total Profit) = SRPT

शून्य लाभ या सामान्य लाभ की स्थिति—चित्र 5 में माना कि फर्म के लिए 'कीमत रेखा' की स्थिति (जो कि उद्योग द्वारा निर्धारित होती है) RT है। फर्म P बिन्दु पर साम्य की स्थिति मे होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR=MC के है तथा MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है । इस स्थिति मे फर्म को लाभ होगा या हानि, इसको जानने के लिए हम AR तथा AC रेखाओं की तुलना करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि AR-रेखा AC-रेखा को निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श करती है, अर्थात् P बिन्दु पर AR (कीमत) = AC के है; चूंकि कीमत (AR) ठीक औसत लागत (AC) के बराबर है, इसलिए फर्म को कोई भी अतिरिक्त लाभ (excess profit) प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसे 'शून्य लाभ' या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा ।[12] अतः बिन्दु P को 'शून्य लाभ बिन्दु' या 'सामान्य लाभ बिन्दु' कहते हैं ।

---

[10] पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म की कोई मूल्य-नीति नहीं होती, वह उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है; अर्थात् फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या 'माँग-रेखा' या 'AR-रेखा' या 'AR=MR रेखा' एक पड़ी हुई रेखा होती है (जैसा कि पहले हम चित्र 3 में बता चुके हैं) ।

[11] बिन्दु A पर MC-रेखा MR-रेखा को ऊपर से काटती है या MC-रेखा गिरती हुई है, इसलिए बिन्दु A 'न्यूनतम लाभ का बिन्दु' (Point of Minimum Profit) होगा तथा फर्म के साम्य की स्थिति को नहीं बतायेगा ।

[12] ध्यान रहे कि अर्थशास्त्र में औसत लागत (AC) के अन्तर्गत 'सामान्य लाभ' शामिल होता है, इसलिए जब कीमत (AR) औसत लागत (AC) के बराबर होती है तो इसका अर्थ है कि फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है । (क्रमशः)

संक्षेप मे, जब फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या AR-रेखा की स्थिति RT है, तो—

मूल्य (Price) = PQ
उत्पादन (Output) = OQ

फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' (या शून्य लाभ) प्राप्त होता है।

हानि की स्थिति—हानि को न्यूनतम करना (Minimization of loss)—माना कि चित्र 6 में फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या 'AR = MR रेखा' की स्थिति TC है। फर्म बिन्दु P पर साम्य की स्थिति मे होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR = MC के है तथा MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है। इस स्थिति मे फर्म को लाभ होगा या हानि इसको जानने के लिए हम AR तथा AC रेखाओ की तुलना करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि औसत लागत (AC) रेखा ऊपर है कीमत-रेखा TC के, इसलिए फर्म को हानि होगी; कुल हानि[13] = TPRL। सक्षेप मे, यदि फर्म की कीमत रेखा की स्थिति TC है तो—
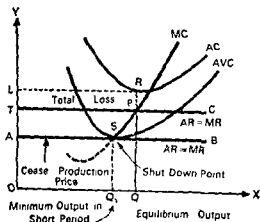
चित्र 6

मूल्य (Price) = PQ
उत्पादन (Output) = OQ
कुल हानि (Total loss) = TPRL

परन्तु यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या फर्म हानि होने पर भी उत्पादन को जारी रखेगी ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम AVC-रेखा का सहारा लेते है। दीर्घकाल मे एक उत्पादक वस्तु को उस कीमत पर बेचेगा जिस पर उसकी कुल लागत (अर्थात् स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आये, यदि कीमत कम है और दीर्घकाल मे उसकी कुल औसत लागत नही निकलती तो वह उत्पादन बन्द कर देगा। परन्तु अल्पकाल मे यदि एक उत्पादन की कुल लागत मे से केवल परिवर्तनशील लागत निकल आती है (और स्थिर लागत बिलकुल नही निकलती या आशिक रूप से निकलती है) तो फर्म हानि की स्थिति मे भी उत्पादन जारी रखेगी। चित्र 6 मे यदि 'कीमत-रेखा' या 'AR-रेखा' की स्थिति AB हो जाती है तो वस्तु की कीमत (AR) ठीक AVC के बराबर होगी जैसा कि चित्र मे 'S' बिन्दु बताता है। इस बिन्दु के नीचे कीमत होने पर फर्म अल्पकाल मे भी उत्पादन बन्द कर देगी (क्योकि उसकी परिवर्तनशील लागत भी नही निकलेगी), इस बिन्दु S को 'उत्पादन बन्द होने का बिन्दु' (Shut-down Point) कहते हैं तथा कीमत OA या कीमत-रेखा AB 'उत्पादन बन्द होने की कीमत' (Cease production Price) को बताती है। OQ_1 'अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन-मात्रा' (Minimum Output in Short Period) को बताता है।

'सामान्य लाभ' लाभ का वह न्यूनतम स्तर है जो कि एक साहसी को व्यवसाय विशेष मे बनाये रखने के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे सामान्य लाभ व्यवसाय विशेष मे साहसी के कार्य करते रहने की न्यूनतम लागत है और इसलिए अर्थशास्त्री 'सामान्य लाभ' को लागत का अग मानते है, अर्थात् लागत मे शामिल करते हैं। 'सामान्य लाभ' के विस्तृत विवरण के लिए इस पुस्तक के अध्याय 42 को देखिए।

[13] AC-रेखा तथा कीमत-रेखा TC के बीच खडी दूरी RP प्रति इकाई हानि को बताती हैं; कुल हानि को ज्ञात करने के लिए हम प्रति इकाई हानि RP को कुल उत्पादन OQ या TP से गुणा करते हैं, अर्थात् कुल हानि = RP × TP = TPRL।

[अल्पकाल मे AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु द्वारा बताये गये उत्पादन से कम, अर्थात् OQ_1 उत्पादन से कम, वस्तु की पूर्ति नहीं की जायगी। इसलिए अल्पकाल में एक फर्म की पूर्ति रेखा MC रेखा का चढ़ता हुआ वह भाग होगा जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु (चित्र मे S बिन्दु) के ऊपर है; S बिन्दु के नीचे MC-रेखा को टूटी रेखा द्वारा दिखाया गया है जिसका अर्थ है कि S बिन्दु के नीचे वस्तु की कोई पूर्ति नहीं होगी ।]

5. दीर्घकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of a Firm in the Long Period)

दीर्घकाल मे इतना समय होता है कि वस्तु की पूर्ति को घटा-बढ़ाकर पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सकता है। अतः **दीर्घकाल में एक फर्म को न लाभ होगा न हानि बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।** यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अर्थात् AR (कीमत) अधिक है AC से, तो लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्में उद्योग मे प्रवेश करेंगी, परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी और कीमत (AR) घटकर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि होती है अर्थात् कीमत (AR) कम है औसत लागत (AC) से, तो इस हानि के कारण कई फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, परिणामस्वरूप पूर्ति कम होगी और कीमत (AR) बढ़कर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल मे एक फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा; अर्थात् दीर्घकाल में AR = AC के होगी। इसके अतिरिक्त फर्म के साम्य के लिए MR = MC की दशा तो पूरी होनी ही चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा** (double condition) **पूरी होनी चाहिए :**

(i) MR = MC

(ii) AR = AC

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता मे AR = MR के होती है, इसलिए फर्म के दीर्घकालीन साम्य की उपर्युक्त दोहरी दशा को निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है :

AR(Price) = MR = MC = AC

अर्थात्

Price = Marginal Cost = Average Cost

चूंकि दीर्घकाल मे AR, MR, MC तथा AC सब बराबर होती हैं, इसलिए यह कहा जाता है कि **पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए 'सब चीजें बराबर होती हैं'** (everything is equal)।

फर्म के दीर्घकालीन साम्य को चित्र 7 द्वारा दिखाया गया है। LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (Long-run average cost curve) है, तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा (Long-run marginal cost curve) है। AR रेखा LAC रेखा के न्यूनतम बिन्दु P पर स्पर्श-रेखा (tanget) है अर्थात् P बिन्दु पर AR = AC के हैं, तथा P बिन्दु पर MR = MC के भी है। स्पष्ट है कि **बिन्दु P पर साम्य की दुहरी दशा पूरी होती है,** अतः

मूल्य (Price) = PQ
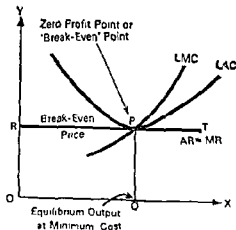
चित्र 7

उत्पादन की साम्य मात्रा (न्यूनतम लागत पर)
(Equilibrium Output at minimum cost) = OQ
फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

बिन्दु P को 'शून्य लाभ बिन्दु' (Zero Profit Point) या 'सामान्य लाभ बिन्दु' (Normal Profit Point) या 'ब्रेक-ईवन बिन्दु' (Break-even Point) कहते हैं। कीमत OR या कीमत रेखा RT 'ब्रेक-ईवन-कीमत' (Break-even Price) को बताती है।[14]

चित्र से स्पष्ट है कि 'P' बिन्दु पर AC न्यूनतम है और कीमत (AR) इस न्यूनतम AC के बराबर है, दूसरे शब्दों में, **दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साम्य की अवस्था में एक फर्म 'न्यूनतम-लागत फर्म'** (least-cost firm) **होगी**। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे AR-रेखा (या Price line) पड़ी हुई (horizontal) रेखा होती है, इसलिए AC-रेखा के निम्नतम बिन्दु पर ही AR रेखा स्पर्श रेखा (tangent) होगी; अर्थात् AR (price) बराबर होगी न्यूनतम औसत लागत के। स्पष्ट है कि दीर्घकाल मे एक फर्म 'न्यूनतम-लागत फर्म' होगी।

प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे एक फर्म के सन्तुलन को स्पष्ट कीजिए।
Explain the equilibrium of a firm under conditions of perfect competition.
[संकेत—फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की विवेचना, 'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति का प्रयोग करके, चित्रों की सहायता से कीजिए।]

2. "पूर्ण स्पर्द्धा की दशा में फर्म की समस्या केवल उत्पादन की मात्रा निश्चित करना है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
'The problem before a firm, under conditions of perfect competition, is to determine its output only.' Discuss this statement.
[संकेत—पूर्ण प्रतियोगिताओं की दशाओं के कारण एक फर्म की अपनी कोई 'मूल्य नीति' नहीं होती, प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है, अत: दी हुई कीमत पर प्रत्येक फर्म की समस्या केवल उत्पादन की मात्रा निश्चित करना होता है। इसके बाद अल्पकाल तथा दीर्घकाल मे फर्म के साम्य की स्थितियों को चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए, 'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' का प्रयोग कीजिए।]

3. "पूर्ण स्पर्धागत सस्थिति में वस्तु की कीमत उत्पादन की सीमान्त लागत और औसत लागत के बराबर होती है।" चित्रों सहित व्याख्या कीजिए।
"In a perfectly competitive equilibrium the price of a commodity is equal to the marginal and average costs of production." Discuss with diagrams.
[संकेत—एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य की स्थिति का विवेचन कीजिए।]

4. "दीर्घकाल मे प्रत्येक फर्म न्यूनतम औसत लागत पर कार्य करती है और यह लागत कीमत के बराबर होती है।" विवेचना कीजिए।
"In the long run each firm operates at the minimum average cost and this cost equals price." Comment.
[संकेत—पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य की स्थिति की पूर्ण विवेचना कीजिए।]

---

14 चूंकि P बिन्दु पर 'शून्य लाभ' या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है, इसलिए इस बिन्दु को 'शून्य लाभ बिन्दु' (Zero Profit Point) या 'सामान्य लाभ बिन्दु' (Normal Profit Point) कहते हैं। चूंकि बिन्दु P पर AR तथा AC बराबर (break even) हैं, इसलिए इस बिन्दु को 'Break even Point' भी कहते हैं तथा कीमत OR कीमत रेखा RT 'Break-even Price' को बताती है।

32

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग का साम्य

(Equilibrium of an Industry under Perfect Competition)

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग का अर्थ
(MEANING OF AN INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITON)

एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह या एकत्रीकरण है जो कि एक-रूप वस्तु उत्पादित करती है।[1] इसी बात को श्रीमती जोन रोबिन्सन इन शब्दों में व्यक्त करती हैं : "एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह है जो कि केवल एक वस्तु का उत्पादन करती है।"[2] दूसरे शब्दों में, एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry) वह है जिसमें माँग की तुलना में, फर्म इतनी छोटी होती है कि उनमें से कोई भी अकेले अपने उत्पादन-स्तर में परिवर्तन करके कीमत पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकती; अर्थात् एक फर्म के लिए कीमत-रेखा या मांग-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होगी।

2. एक उद्योग के साम्य का अर्थ
(THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM OF INDUSTRY)

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा (general condition of equilibrium of an industry) को प्रो. बोल्डिंग इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।"[3] इसका अभिप्राय है कि एक उद्योग साम्य की दशा में तब होगा जबकि उसमें "न्यूनतम लाभ प्राप्त करने वाली फर्म' (least profitable firm), जिसे प्राय: 'सीमान्त फर्म' (marginal firm) कहा जाता है, को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है।"[4]

---

[1] An industry is a group or collection of firms producing a homogeneous commodity.

[2] 'An *Industry* is any group of firms producing a single commodity.'—Mrs. Joan Robinson

[3] "An industry is said to be in equilibrium when there is no tendency for it to expand or to contract." —Boulding.

[4] यदि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त होता है तो इसका अर्थ है कि उद्योग में प्रवेश करने वाली नयी फर्म को भी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त होगा। अतः उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश होगा, उद्योग के कुल उत्पादन में वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरेगी, वर्तमान फर्मों के लाभ कम होंगे, नयी फर्मों के प्रवेश का आकर्षण कम होता जायेगा और जैसे ही सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होने लगेगा वैसे ही उद्योग पुनः साम्य की स्थिति में आ जायेगा। दूसरी ओर, यदि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ से कम लाभ प्राप्त होता है, तो यह फर्म तथा इस स्थिति में अन्य फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पादन

(क्रमशः)

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा को दूसरे शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—*एक दी हुई कीमत पर एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित* **वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात् 'S') उसकी कुल माँग (अर्थात 'D') के बराबर होती है।** संक्षेप में, **एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि S=D के हो।**

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा के लिए मुख्य बात यह है कि उसके कुल उत्पादन (अर्थात् कुल पूर्ति) मे कोई विस्तार या संकुचन नही होना चाहिए। यदि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल माँग उसकी कुल पूर्ति से अधिक है तो वस्तु की कुल पूर्ति के विस्तार या बढ़ने की प्रवृत्ति होगी। इसके विपरीत यदि वस्तु की माँग उसकी पूर्ति की तुलना मे कम है तो वस्तु की कुल पूर्ति के सकुचन या *कमी की प्रवृत्ति होगी। अत एक उद्योग के साम्य के लिए S=D के होनी चाहिए।*[5]

3. एक उद्योग का अल्पकालीन साम्य
(SHORT-RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

1. **एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अभिप्राय** (*Implications of Short-run Equilibrium of an Industry*)

(i) *अल्पकाल* **में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग का उत्पादन स्थिर** रहता है, उसमे वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नही होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि यदि उद्योग में अल्पकाल मे सभी फर्में साम्य की स्थिति में हैं (अर्थात् प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को न घटाती और न बढाती है बल्कि स्थिर रखती है) तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (constant or steady) रहेगा और उद्योग साम्य की स्थिति में होगा। प्रत्येक फर्म के साम्य के लिए $MR=MC$ की दशा पूरी होनी चाहिए। अत **एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में अल्पकालीन साम्य की स्थिति में हों।** (iii) यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है कि अल्पकाल में एक फर्म $MR=MC$ की दशा को पूरा करते हुए साम्य की स्थिति मे हो सकती है परन्तु उसे लाभ, या केवल सामान्य लाभ, **या हानि भी हो सकती है।** दूसरे शब्दो मे, **एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ बहुत अधिक लाभ या बहुत अधिक हानि का सह-अस्तित्व** (co-existence) **हो सकता है।**[6] (iv) एक उद्योग के लिए 'अल्पकालीन साम्य कीमत' पर उद्योग द्वारा

घटेगा, वस्तु की कीमत बढेगी, उद्योग मे शेष फर्मों के लाभ बढ़ेंगे, फर्में उद्योग से निकलती जायेंगी जब तक कि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त न होने लगे, और उद्योग पुनः साम्य की स्थिति मे आ जायेगा।

[5] **अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में एक उद्योग के साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होती है परन्तु दोनो कालो में S=D की दशा के अभिप्रायों** (implications) **में अन्तर होता है। अल्पकाल में** इतना अधिक समय नही होता कि उद्योग मे स्थिर साधनो (fixed factors like machine, equipment etc.) को परिवर्तित किया जा सके अर्थात् अल्पकाल मे उत्पादन-क्षमता (productive capacity) स्थिर होती है, अथवा यह कहिए कि उद्योग के आकार (size) को *परिवर्तित नही किया जा सकता अर्थात् उद्योग मे नयी फर्मों का प्रवेश (entry)* तथा उसमे से पुरानी फर्मों का बहिर्गमन (exit) नही हो सकता; दूसरे शब्दो मे, उद्योग मे फर्मों की संख्या स्थिर रहती है। अल्पकाल मे तो केवल परिवर्तनशील साधनों (variable factors) मे ही परिवर्तन करके उद्योग की पूर्ति को सीमित मात्रा मे घटा-बढ़ाकर माँग के *बराबर करके उद्योग का साम्य प्राप्त होता है।* इसके विपरीत ***दीर्घकाल में सभी साधनों को*** परिवर्तित किया जा सकता है अर्थात् उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करकेअथवा यह कहिए कि नयी फर्मों के प्रवेश या पुरानी फर्मों के बहिर्गमन द्वारा पूर्ति को घटा-बढ़ाकर; माँग के बराबर करके, उद्योग के साम्य की स्थिति प्राप्त की जाती है।

[6] Widespread profits or widespread losses may co-exist with the short-run equilibrium of an industry.

उत्पादित वस्तु की कुल माँग अर्थात् (D) उसकी कुल पूर्ति (अर्थात् S) के बराबर होती है। दूसरे शब्दों मे, एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए S=D की शर्त पूरी होनी चाहिए, परन्तु अल्पकालीन साम्य के लिए केवल 'परिवर्तनशील साधनों' (variable factors) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को माँग (D) के बराबर किया जाता है, क्योंकि अल्पकाल में इतना समय नहीं होता है कि 'स्थिर साधनों' को परिवर्तित किया जा सके या उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित किया जा सके।

2. **उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा का निर्माण** (Construction of Short-run Industry Supply Curve)

एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) बराबर होनी चाहिए, उसकी कुल माँग (D) के। उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की 'बाजार या उद्योग माँग रेखा' व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की माँग रेखाओं का क्षैतिज योग (horizontal sum) होती है। **माँग रेखा को ज्ञात करने के पश्चात् साम्य के निर्धारण के लिए उद्योग की पूर्ति रेखा का बनाना आवश्यक है।** एक उद्योग की पूर्ति रेखा बताती है कि विभिन्न सम्भावित कीमतों पर सभी फर्में वस्तु की कितनी-कितनी मात्राएँ बाजार में बेचने को तत्पर हैं। *स्पष्ट है कि मोटे रूप से (approximately)* उद्योग की पूर्ति रेखा व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओं का क्षैतिज योग है। अत. **एक उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा के निर्माण के लिए एक फर्म की पूर्ति रेखा को ज्ञात करना प्रथम कदम (first step) है।**

एक फर्म की पूर्ति रेखा MC-रेखा का वह भाग है जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु के ऊपर होता है। यह बात निम्न विवरण से स्पष्ट होती है। एक फर्म की पूर्ति रेखा विभिन्न कीमतों पर वस्तु की पूर्ति प्रस्तुत की जाने वाली विभिन्न मात्राओं को बताती है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के साम्य के लिए 'MR (या AR अर्थात् कीमत) = MC' की दशा पूरी होनी चाहिए चित्र 1 में यदि कीमत P_1 है (या कीमत-रेखा P_1T_1 है) तो फर्म S बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी (क्योंकि S बिन्दु पर MR (या AR) = MC के हैं); चूंकि S बिन्दु AVC का निम्नतम बिन्दु है, इसलिए कीमत P_1 ठीक AVC के बराबर है। यदि कीमत P_1 से कम होती अर्थात् कीमत AVC से कम होती तो फर्म अल्पकाल में भी उत्पादन को बन्द कर देती और पूर्ति शून्य हो जाती; बिन्दु S 'उत्पादन के बन्द होने का बिन्दु' (shut-down point) है। P_1 कीमत पर फर्म OQ_1 मात्रा की पूर्ति करने को तत्पर है। यदि कीमत P_2 है (या कीमत रेखा P_2T_2 है) तो फर्म L बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी, अर्थात् P_2 कीमत पर फर्म OQ_2 मात्रा की पूर्ति करेगी। इसी प्रकार यदि कीमत P_3 है तो फर्म OQ_3 मात्रा की पूर्ति करेगी। स्पष्ट है कि चित्र 1 में फर्म की MC-रेखा का SS_1 भाग, जो कि AVC रेखा के निम्नतम बिन्दु S के ऊपर है, फर्म की पूर्ति रेखा को बताता है; क्योंकि SS_1 के विभिन्न बिन्दु यह बताते हैं कि विभिन्न कीमतों पर फर्म अपनी वस्तु की कितनी-कितनी मात्रा की पूर्ति करने को तत्पर है; S बिन्दु से नीचे पूर्ति शून्य होगी, इसलिए S बिन्दु से नीचे MC-रेखा के भाग को टूटी-रेखा (dotted line) द्वारा दिखाया गया है।
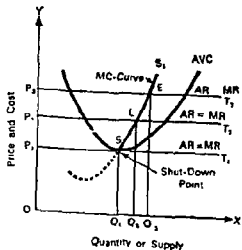
चित्र 1

एक फर्म की पूर्ति रेखा ज्ञात करने (और इस प्रकार सभी व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओं को ज्ञात करने) के पश्चात् हम उद्योग की पूर्ति रेखा ज्ञात कर सकते हैं। सुविधा के लिए तथा उदाहरणार्थ, माना कि उद्योग मे केवल 2 फर्में A तथा B हैं। जब कीमत 1 रु. है तो फर्म A 4 इकाई तथा फर्म B 8 इकाई बेचने को तत्पर है। अत 1 रु. कीमत पर बाजार मे उद्योग की कुल पूर्ति = (4 + 8) = 12 इकाई। जब कीमत 2 रु. है तो फर्म A 8 इकाई तथा फर्म B 12 इकाई बेचने
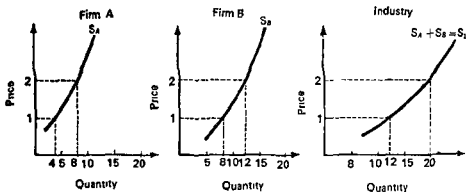
चित्र 2

को तत्पर है। अत: 2 रु. कीमत पर उद्योग की पूर्ति = (8 + 12) = 20 इकाई। उपर्युक्त विवरण से उद्योग की पूर्ति रेखा (जो कि व्यक्तिगत फर्मों की पूर्तियो का क्षैतिज योग है) के दो बिन्दु प्राप्त होते हैं—1 रु. कीमत पर उद्योग 12 इकाइयाँ तथा 2 रु. कीमत पर 20 इकाइयाँ बेचने को तत्पर है; अत: उद्योग की पूर्ति रेखा खीची जा सकती है।

चित्र 2 मे फर्म A की पूर्ति रेखा S_A तथा फर्म B की पूर्ति रेखा S_B है। उद्योग की पूर्ति रेखा (S_I) इन दोनों रेखाओ की क्षैतिज योग है, अर्थात् $S_I = S_A + S_B$। उद्योग की पूर्ति रेखा S_I को चित्र मे दायें सिरे पर दिखाया गया है।

3. अल्पकालीन साम्य (Short-run Equilibrium)

अल्पकाल मे एक उद्योग के साम्य के लिए S = D की दशा पूरी होनी चाहिए। चित्र 3 में उद्योग की माँग रेखा DD तथा उसकी पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन साम्य को बताता है क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और उसकी माँग दोनों बराबर हैं (OQ के)। उद्योग के वस्तु की साम्य कीमत (equilibrium price) P या EQ है तथा साम्य मात्रा (equilibrium quantity) OQ है।

चित्र 3 के दायें भाग मे उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अन्तर्गत एक प्रतिनिधि फर्म (typical or representative firm) की स्थिति को दिखाया गया है। उद्योग के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म कीमत को स्वीकार कर लेगी अर्थात् प्रत्येक फर्म के लिए 'कीमत रेखा' या 'माँग रेखा' या 'AR = MR रेखा' पड़ी हुई रेखा PT होगी। माना कि एक फर्म की लागत रेखाएँ AC_1 तथा MC_1 हैं; यह फर्म A बिन्दु पर साम्य की स्थिति मे होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR = MC के है, यह फर्म Oq_1 मात्रा का उत्पादन करेगी; इसे प्रति इकाई लाभ AM के बराबर होगा। यदि फर्म की लागत रेखाएँ AC_2 तथा MC_2 हैं तो फर्म B बिन्दु पर साम्य की स्थिति मे होगी क्योंकि यहाँ पर MR = MC के हैं, वह Oq_2 मात्रा का उत्पादन करेगी तथा उसे LB प्रति इकाई हानि होगी। स्पष्ट है कि एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए प्रत्येक फर्म अल्पकालीन साम्य की स्थिति में होगी; परन्तु एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) या 'हानि' का सहअस्तित्व (co-existence) हो सकता है।
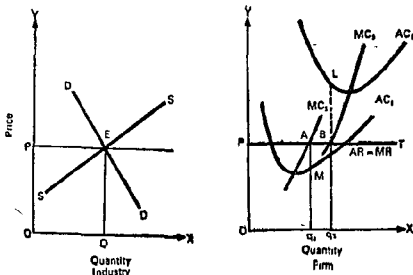
चित्र 3

4. एक उद्योग का दीर्घकालीन साम्य
(LONG-RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

1. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के अभिप्राय (Implications of Long-run Equilibrium of an Industry)

(i) दीर्घकाल में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर रहता है; उसमें वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि यदि उद्योग में सभी फर्में साम्य की स्थिति में हैं तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (constant or steady) रहेगा तथा उद्योग साम्य की स्थिति में होगा। एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए अर्थात् (1) MR = MC अथवा AR (Price) = MC (क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में MR और AR बराबर होते हैं), तथा (2) AR = AC। प्रथम दशा का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए MR (या AR अर्थात् कीमत) बराबर है MC के तो प्रत्येक फर्म के उत्पादन में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होगी। दूसरी दशा के पूरे होने का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए AR (अर्थात् कीमत) बराबर है AC के, तो प्रत्येक फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा, परिणामस्वरूप न तो नयी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग में प्रवेश करने की होगी और न पुरानी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग को छोड़कर जाने की होगी। दूसरे शब्दों में, जब एक उद्योग दीर्घकालीन साम्य में है तो उसमें फर्मों की संख्या में (अर्थात् उद्योग के आकार में) कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस प्रकार, एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में हों। (iii) एक उद्योग तथा फर्म के अल्पकालीन साम्य के लिए MR = MC की दशा पूरी होनी आवश्यक है। एक उद्योग तथा फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए (अल्पकालीन साम्य की दशा MR = MC के पूरे होने के अतिरिक्त) AR = AC की दशा भी पूरी होनी चाहिए। अतः उद्योग तथा व्यक्तिगत फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अल्पकालीन साम्य का भी साथ-साथ अस्तित्व हो।[7] इस प्रकार उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

[7] "Long run industry and individual firm equilibrium requires that short-run equilibrium exists at the same time."

एक अधिक विस्तृत तथा सामान्य विचार है और उसे 'पूर्ण साम्य' (Full Equilibrium) या 'अन्तिम साम्य' (Final Equilibrium) भी कहा जाता है। (iv) एक उद्योग के लिए साम्य कीमत पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात् S) उसकी कुल माँग (अर्थात् D) के **बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए $S = D$ की दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु दीर्घकालीन साम्य के लिए उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को माँग (D) के बराबर किया जाता है,** क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

दीर्घकाल में उद्योग में फर्मों के प्रवेश या बहिर्गमन (exit) के कारण उत्पादन लागत में परिवर्तन होंगे। लागत में परिवर्तन या लागत समायोजन (cost adjustments) इस बात पर निर्भर **करेंगे कि उद्योग 'बढ़ती हुई लागतों' के अन्तर्गत** कार्य करता है या 'स्थिर लागतों' या 'घटती हुई लागतों' के अन्तर्गत तथा लागत की स्थिति के अनुसार ही उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा निर्धारित होगी।

2. स्थिर लागतों (Constant Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में स्थिर लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि उद्योग में फर्मों की संख्या में परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।[8] इसका अभिप्राय है कि स्थिर लागत उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के कारण किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत अर्थात् उसकी लागत में कोई वृद्धि नहीं होगी तथा उद्योगों में से फर्मों के छोड़ जाने से किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत अर्थात् फर्म के लिए उसकी लागत में कोई कमी नहीं होगी।[9] ऐसी स्थिति केवल तब सम्भव है जबकि सम्पूर्ण उद्योग **इतना छोटा है कि उसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों की माँग,** उनकी कुल माँग की तुलना में, बहुत ही थोड़ी या नगण्य (negligible) है। माना कि चित्र 4 में उद्योग के वस्तु की माँग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 एक दूसरे को बिन्दु E पर काटती हैं; अर्थात् वस्तु की कीमत OP या P है। माना कि बिन्दु E उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है। दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होना आवश्यक है अर्थात् कीमत (या AR) प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत (minimum AC) के बराबर होगी; दूसरे शब्दों में, उद्योग की दीर्घकालीन साम्य कीमत P (या OP) व्यक्तिगत (individual) फर्मों की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी, तथा उद्योग का 'साम्य उत्पादन' PE (या OQ) होगा। यह शुरू की स्थिति (starting position) है।
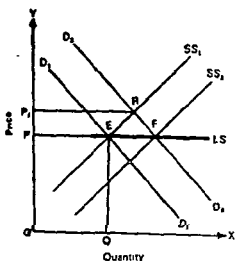
चित्र 4

[8] "An industry is said to operate under conditions of constant cost in the long-run only if the costs of the individual firm are not affected by changes in the number of firms in the industry."

[9] दीर्घकाल में जब नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग का विस्तार होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ेगी, माँग बढ़ने पर उत्पत्ति के साधनों की कीमत बढ़ सकती है अर्थात् फर्मों के लिए साधनों की लागत बढ़ सकती है। इसी प्रकार जब फर्मों के बहिर्गमन द्वारा उद्योग का संकुचन होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग कम होगी, परिणामस्वरूप उनकी कीमत अर्थात् लागत (क्रमशः)

माना कि माँग में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप माँग रेखा दायें को खिसक कर D_2D_2 की स्थिति में आ जाती है जहाँ पर कि उसके एक लम्बे समय तक रहने की आशा होती है। माँग में वृद्धि के कारण उद्योग का पहला साम्य भंग होकर नया साम्य स्थापित होगा; तथा अल्पकालीन और दीर्घ-कालीन समायोजन साथ-साथ शुरू हो जायेंगे।[10] अल्पकाल में उद्योग के नये साम्य की स्थिति R बिन्दु बताता है क्योंकि यह नयी माँग रेखा D_2D_2 तथा पुरानी पूर्ति रेखा SS_1 का ~~कटान का~~ बिन्दु है। स्पष्ट है कि माँग में वृद्धि के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़कर P_1 हो जाती है तथा फर्में केवल अपनी वर्तमान उत्पादन-क्षमता की सहायता से उत्पादन को बढ़ा पाती है और अल्पकाल में उत्पादन बढ़कर P_1R हो जाता है। उद्योग में पहले फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही थी, परन्तु अब कीमत बढ़ जाने के कारण उन्हें अतिरिक्त लाभ (excess profits) प्राप्त होने लगते हैं। परन्तु ये अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में ही रह पाते हैं। दीर्घकाल में इन लाभों से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करने लगती है, परिणामस्वरूप पूर्ति बढ़ती है और पूर्ति रेखा दायें को खिसकती जाती है, और कीमत गिरती जाती है, तथा अतिरिक्त लाभ कम होते जाते है। उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश तब बन्द हो जायेगा जबकि अतिरिक्त लाभ बिलकुल समाप्त (squeezed out) हो जाते हैं (अर्थात् फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते है) और इस प्रकार उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा (दायें को खिसक कर) SS_2 की स्थिति में आ जाती है। ध्यान रहे कि उद्योग 'स्थिर लागतों' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, इसलिए उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के कारण फर्मों की संख्या में वृद्धि होने पर तथा उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ने पर भी फर्मों की उत्पादन-लागत नही बढ़ेगी, वह समान बनी रहेगी। अब उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य F बिन्दु पर होगा, वस्तु की कीमत अल्पकालीन कीमत P_1 से घट कर पहली कीमत P के बराबर हो जायेगी (क्योंकि लागत अर्थात् औसत लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है) और यह कीमत प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी सभी प्रत्येक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा अर्थात् प्रत्येक फर्म दीर्घकालीन साम्य में होगी। चूंकि उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप फर्मों की संख्या में वृद्धि हुई है; इसलिए उद्योग की पूर्ति पहले से बढ़कर PF हो जाती है। यदि हम उद्योग के दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं E तथा F को मिला दें, तो हमें उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS (Long-run Supply Curve) प्राप्त हो जाती है जो कि एक पड़ी रेखा होती है। सक्षेप में एक स्थिर-लागत-उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा एक पड़ी रेखा या पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) रेखा होती है।

3. बढ़ती हुई लागतों (Increasing Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में बढ़ती हुई लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग के आकार तथा उत्पादन क्षमता में विस्तार होने पर सभी व्यक्तिगत फर्मों की लागतो में वृद्धि होती है।[11] इसका अभिप्राय है कि उद्योग के विस्तार तथा नयी फर्मों के प्रवेश के कारण उत्पत्ति के साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायेगा अर्थात् उनकी माँग बढ़ेगी। उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ने से उनकी कीमतों में वृद्धि होगी अर्थात् उद्योग के अन्तर्गत सभी फर्मों की उत्पादन लागत बढ़ जायेगी। इसके विपरीत, यदि उद्योग के आकार का संकुचन होता है और फर्मों का बहिर्गमन होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग कम हो जायेगी, उनकी कीमतें गिरेंगी और इस प्रकार सभी फर्मों की लागतें घट जायेंगी।

में कमी हो सकती है। परन्तु स्थिर-लागत-उद्योग ऐसा उद्योग है जिसमें फर्मों की संख्या में वृद्धि या कमी होने पर साधनों की कीमतो अर्थात् फर्मों की उत्पादन-लागतों में कोई वृद्धि या कमी नही होती।

[10] Shortrun and long-run adjustments will be set in motion simultaneously.

[11] "An industry is said to operate under conditions of increasing cost in the long run if the costs of all the individual firms tend to increase as the industry expands in size and productive

चित्र 5 में उद्योग की माँग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 बिन्दु A पर काटती है; अर्थात् वस्तु की कीमत P_1 (या OP_1) है। यह शुरू की स्थिति (starting position) है। सुविधा के लिए माना कि बिन्दु A उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है। उद्योग की साम्य कीमत P_1 (या OP_1) है तथा साम्य उत्पादन P_1A है। कीमत P_1 प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी क्योंकि एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि कीमत (या AR) = न्यूनतम औसत लागत (*minimum AC*) के।

माना कि माँग में वृद्धि होती है तथा नयी माँग रेखा की स्थिति D_2D_2 हो जाती है जहाँ पर कि उसके एक लम्बे समय तक रहने की आशा रहती है। अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन समायोजन साथ-साथ शुरू हो जायेंगे। नयी माँग रेखा D_2D_2 पुरानी पूर्ति रेखा SS_1 को *B* बिन्दु पर काटती है, अतः अल्पकाल में उद्योग का नया साम्य B बिन्दु पर होगा। स्पष्ट है कि माँग में वृद्धि के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़कर P_3 हो जाती है तथा फर्में केवल अपनी वर्तमान उत्पादन क्षमता की सहायता से थोड़ा उत्पादन बढ़ा पाती है और अल्पकाल में उद्योग का उत्पादन बढ़कर P_3B हो जाता है। उद्योग में पहले फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही थी, परन्तु अब कीमत बढ़ जाने के कारण उन्हें 'अतिरिक्त लाभ' प्राप्त होने लगते हैं। परन्तु ये अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में ही रह पाते है। दीर्घकाल में इन लाभों से आकर्षित होकर उद्योग मे नयी फर्में प्रवेश करने लगती हैं, परिणामस्वरूप पूर्ति बढ़ती है और पूर्ति रेखा दायें को खिसक जाती है, कीमत गिरती जाती है तथा अतिरिक्त लाभ
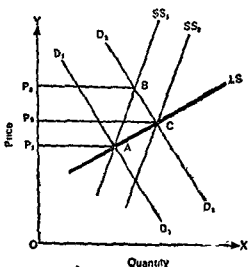
चित्र 5

कम होते जाते हैं। अतिरिक्त लाभों की समाप्ति **दो तरफा दबाव** (*two-way squeeze*) के कारण होती है—नयी फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप एक ओर तो उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बढ़ती हैं और इस प्रकार फर्मों की उत्पादन लागत बढ़ती है; दूसरी ओर नयी फर्मों के प्रवेश के कारण वस्तु की पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत गिरती है। इन दोनों बातों के कारण कीमत तथा लागत में अन्तर (अर्थात् अतिरिक्त लाभ) कम होता जाता है। नयी फर्मों का प्रवेश होना (तथा पूर्ति रेखा का दायें को खिसकना अर्थात् पूर्ति का बढ़ना) तब बन्द हो जाता है जबकि 'दो-तरफा दबाव' के कारण अतिरिक्त लाभ बिलकुल समाप्त हो जाते हैं और प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होने लगते हैं तथा उद्योग पुनः दीर्घकालीन (तथा अल्पकालीन) साम्य की स्थिति मे बिन्दु C पर आ जाता है। (बिन्दु C नयी माँग रेखा D_2D_2 तथा नयी पूर्ति रेखा SS_2 का कटाव बिन्दु है)। अब उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_2 होगा (जो कि प्रारम्भिक दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_1 से अधिक है), तथा नया दीर्घकालीन साम्य उत्पादन P_2C होगा (जो कि पहले के साम्य उत्पादन P_1A से अधिक है)। दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं A और C को मिला देने से (बढ़ती हुई लागतों के अन्तर्गत) उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा *LS* प्राप्त हो जाती है।

4. घटती हुई लागतों (Decreasing Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में घटती हुई लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग के आकार तथा उत्पादन क्षमता में विस्तार

होने पर सभी व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कमी होती है।[11] इसका अभिप्राय है कि उद्योग के विस्तार तथा नयी फर्मों के प्रवेश के कारण उत्पत्ति के साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायगा, परन्तु, 'घटती हुई लागतो' के अन्तर्गत साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग करने (अर्थात् उनकी अधिक मांग करने) पर भी साधनों की कीमत घटती है और इसलिए उद्योग मे सभी फर्मों की उत्पादन लागत घटती है। व्यावहारिक जगत मे सामान्यतया ऐसी स्थिति नही पायी जाती है। इस स्थिति का विवेचन केवल सैद्धान्तिक (theoretical) है।

चित्र 6 मे बिन्दु A प्रारम्भिक स्थिति (starting situation) को बताता है। बिन्दु A उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है; उद्योग का दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_1 है और इस मूल्य पर प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है; तथा साम्य उत्पादन P_1A है। माना कि माँग बढकर D_2D_2 हो जाती है। अल्पकाल में उद्योग के नये साम्य की स्थिति बिन्दु B बतायेगा,

चित्र 6

कीमत बढकर P_2 हो जायेगी तथा उत्पादन बढ़कर P_2B हो जाता है। कीमत के बढ़ जाने से फर्मों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकाल में इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर उद्योग मे नयी फर्में प्रवेश करेंगी, उत्पत्ति के साधनो का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जायगा परन्तु सभी फर्मों के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनों की लागत घटेगी (क्योंकि उत्पादन घटती हुई लागत के अन्तर्गत हो रहा है) और वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी अर्थात् पूर्ति रेखा SS_1 नीचे को खिसक कर SS_2 की स्थिति मे आ जायेगी। अब उद्योग C बिन्दु पर दीर्घकालीन साम्य की स्थिति मे आ जाता है, दीर्घकालीन साम्य कीमत P_3 होगी (जो कि पहली दीर्घकालीन साम्य कीमत P_1 से कम है), साम्य उत्पादन P_3C होगा (जो कि पहले साम्य उत्पादन P_1A से अधिक है), तथा साम्य कीमत P_3 पर उद्योग में पुनः सब फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं A तथा C को मिला देने से 'घटती हुई लागतों' के अन्तर्गत उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाती है।
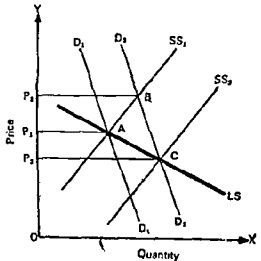
प्रश्न

1. एक उद्योग के साम्य से आप क्या समझते है? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की दशाओ की विवेचना कीजिए।
   What do you understand by equilibrium of an industry? Discuss the conditions of short-run and long-run equilibrium of an industry under perfect competition. (Agra)

---

[11] "An industry is said to operate under conditions of decreasing cost in the long-run if the costs of all the individual firms tend to decrease as the industry expands in size and productive capacity by means of the entrance of new firms."

2. 'एक फर्म के साम्य' तथा 'एक उद्योग के साम्य' के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग के साम्य की दशाओं की विवेचना कीजिए।
   Differentiate between 'equilibrium of a firm' and 'equilibrium of an industry' and discuss the conditions of equilibrium of the industry under perfect competition. (Punjab)
3. पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओ के अन्तर्गत एक फर्म की लागत रेखा को निकालिए और उसको एक उद्योग की पूर्ति रेखा से सम्बद्ध कीजिए।
   Deduce the cost curve of a firm and relate it to the supply of the industry under conditions of perfect competition. (Bhagalpur)
4. एक स्पर्धात्मक उद्योग की पूर्ति रेखा को खींचते समय आप कौनसी लागतों को ध्यान में रखेंगे? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कार्य करने वाले एक उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा को उत्पत्ति के नियम किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
   What cost would you take into account in drawing the supply curve of a competitive industry? How do laws of returns affect the long period supply curve of an industry operating under conditions of perfect competition? (Punjab)

33

एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन

(Price and Output under Monopoly)

1 एकाधिकारी के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF MONOPOLY)

एकाधिकारी के लिए तीन बातो का होना आवश्यक है—(i) एकाधिकारी अपने क्षेत्र मे एक ही उत्पादक होता है, अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते है; एकाधिकारी एक-फर्म-उद्योग (one-firm-industry) है। (ii) एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नही होती। (iii) एकाधिकारी के क्षेत्र मे फर्मों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें होती है।

उपर्युक्त तीनों बातों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है; और वह पूर्ति को घटा-बढ़ाकर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है, अर्थात् एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति (price-policy) होती है।

2. मान्यताएं
(ASSUMPTIONS)

1. एक एकाधिकारी, किसी भी अन्य उत्पादक की भाति, विवेकपूर्ण (*rational*) होता है, अर्थात् अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है। अधिकतम लाभ का अर्थ 'प्रति इकाई लाभ' को अधिकतम करने से नहीं है, बल्कि 'कुल लाभ को अधिकतम' करने से होता है।[1] दूसरे शब्दों में, अधिकतम लाभ का अर्थ है 'प्रति इकाई लाभ × विक्रय की गयी मात्रा' (profit per unit × quantity sold) को अधिकतम करना।[2]

2 एकाधिकार के अन्तर्गत एक उत्पादक होता है, परन्तु यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ताओं या क्रेताओं में प्रतियोगिता होती है तथा उनकी संख्या बहुत अधिक होती है; परिणामस्वरूप कोई भी क्रेता व्यक्तिगत रूप से वस्तु के मूल्य को प्रभावित नही कर सकता, एक क्रेता की दृष्टि से वस्तु की कीमत दी हुई होती है।

---

[1] The monopolist seeks 'maximum total profit,' not 'maximum unit profit.'

एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को नीचा रखकर प्रति इकाई कम लाभ प्राप्त कर सकता है, परन्तु वस्तु को अधिक मात्रा मे बेचकर कुल लाभ को अधिकतम कर सकता है। इसके विपरीत, यह सम्भव है कि वस्तु की प्रति इकाई कीमत ऊँची हो और इस प्रकार प्रति इकाई लाभ अधिक हो, परन्तु ऐसी स्थिति मे वस्तु की मात्रा बहुत कम बिक सकती है और परिणामस्वरूप कुल लाभ पहले की अपेक्षा कम हो सकता है। ये स्थितियाँ माग की दशा अर्थात् मांग की लोच पर निर्भर करेगी।

3. **एकाधिकारी अपनी वस्तु की कुल माँग का एक मोटा अनुमान** (*rough estimate*) **लगा सकता है**; ऐसा अनुमान इस मान्यता के आधार पर लगाया जाता है कि **प्रत्येक क्रेता या उपभोक्ता विवेकपूर्ण** (rational) **होता है**। [इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु को अपने अधिमान के एक क्रम (a scale of preferences) के आधार पर खरीदता है। इस प्रकार विभिन्न कीमतों पर उसके द्वारा मागी जाने वाली मात्राओं का अनुमान लगाया जा सकता है, अर्थात क्रेता की माग रेखा खीची जा सकती है; इन व्यक्तियों की माग रेखाओं को जोड़कर, एकाधिकारी की वस्तु की, कुल माग ज्ञात की जा सकती है। दूसरे शब्दो मे, एकाधिकारी अपनी वस्तु की कुल माग का अनुमान लगा सकता है।]

4. एकाधिकारी सभी उपभोक्ताओं या क्रेताओं के साथ एक समान व्यवहार तथा सभी से अपनी वस्तु की एक समान कीमत लेता है। दूसरे शब्दो मे एकाधिकारी, उपभोक्ताओं से, अपनी वस्तु की विभिन्न कीमतें नही लेता है।

5. यह मान लिया जाता है कि **एकाधिकारी के क्षेत्र मे नयी फर्मों के प्रवेश के सम्बन्ध में कोई सम्भावित डर** (potential threat) **नहीं होता है**। एकाधिकारी की शक्ति पर कोई नियन्त्रण (restrictions) नही होते और इसलिए उसकी वस्तु की कीमत पर कोई नियन्त्रण नही होता है।

3. एकाधिकारी एक साथ कीमत तथा पूर्ति की मात्रा दोनों को निश्चित नहीं कर सकता
(A MONOPOLIST CANNOT FIX BOTH PRICE AND OUTPUT SIMULTANEOUSLY)

यद्यपि एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है, **परन्तु माँग पर उसका कोई** अंकुश नही होता। इसलिए वह मूल्य तथा पूर्ति की मात्रा दोनो को एक साथ निश्चित नही कर सकता; एक समय पर इन दोनों मे से वह किसी एक को—**कीमत को या पूर्ति की मात्रा को—ही निश्चित कर सकता है**। यदि वह पूर्ति की मात्रा निश्चित करता है तो माँग की दशा के अनुसार उसे वस्तु की कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी। इसके विपरीत, यदि वह कीमत निश्चित करता है तो इस निश्चित की गयी कीमत पर, माँग के अनुसार, उसे पूर्ति की मात्रा निर्धारित करनी पड़ेगी। **प्रायः एकाधिकारी कीमत को निश्चित करता है** क्योंकि इस निश्चित की गयी कीमत पर वस्तु की जितनी माँग होगी उसके अनुसार वह सुगमता से वस्तु की पूर्ति की मात्रा निर्धारित कर लेगा। अतः **पूर्ति की मात्रा तथा कीमत में उसके लिए कीमत को निश्चित करना अधिक सुरक्षित रहता है और वह प्रायः कीमत ही निश्चित करता है**।[3]

4. दो रीतियां
(TWO APPROACHES)

एकाधिकारी के साम्य के लिए अर्थात् एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन-निर्धारण के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जा सकता है :

(i) **कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति** (Total revenue and total cost curves approach)—इस रीति के अन्तर्गत जिस स्थान पर कुल आगम (TR) तथा कुल लागत (TC) के बीच खड़ी दूरी अधिकतम होगी वहाँ पर एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा अर्थात् वह साम्य की स्थिति मे होगा।

---

[3] इसके विपरीत, वह पूर्ति की मात्रा भी निश्चित कर सकता है और माग की दशा के अनुसार कीमत निर्धारित हो सकती है, परन्तु माग की दशा अनिश्चित होती है तथा उस पर एकाधिकारी का कोई नियन्त्रण नही होता। यह सम्भव है कि माँग मे अधिक कमी होने पर उसकी निश्चित की हुई कुल पूर्ति की मात्रा न बिके और उसे हानि उठानी पड़े।

(ii) 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (*Marginal Analysis Approach*) अर्थात् सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति (Marginal and Average Curves Approach)—इस रीति द्वारा एकाधिकारी साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) के।

5. कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

चित्र 1 में OM से कम या ON से अधिक उत्पादन करने से फर्म को ऋणात्मक लाभ (negative profit) अर्थात् हानि होगी क्योंकि इन दोनों स्थितियों में TC-रेखा ऊपर है TR-रेखा के। M व N के बीच उसको धनात्मक लाभ (positive profit) होगा; फर्म OQ मात्रा उत्पादन करेगी क्योंकि इस मात्रा पर उसको अधिकतम लाभ जो कि EF है, प्राप्त होगा।[4] दूसरे शब्दों में, साम्य की अवस्था में फर्म OQ मात्रा उत्पादन करेगी। बिन्दु A तथा बिन्दु B र TR और TC बराबर (break-even) हैं अर्थात् इन बिन्दुओं पर एकाधिकारी को शून्य लाभ (या सामान्य लाभ) प्राप्त होता है; इन बिन्दुओं को 'Break-even points' कहते हैं।
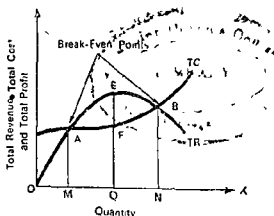
चित्र 1

[कुल आगम तथा कुल लागत की रीति भद्दी (cumbersome) है। इसके कारण हैं: (i) TR तथा TC के बीच अधिकतम खड़ी दूरी को एक ही निगाह में प्राय ठीक प्रकार से ज्ञात करना कठिन हो जाता है, तथा (ii) चित्र को देखकर प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात नहीं किया जा सकता है; कुल आगम (चित्र में EQ) में कुल उत्पादन (चित्र में OQ) का भाग देने पर ही प्रति इकाई कीमत मालूम हो सकती है।]

दूसरी रीति अर्थात् 'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' अधिक अच्छी समझी जाती है।

6. सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

1. एकाधिकारी संतुलन के लिए हम तीन बातों को ध्यान में रखते हैं—

(i) संतुलन की सामान्य दशा (general condition of equilibrium)—सीमान्त आगम (Marginal Revenue or MR) बराबर होना चाहिए सीमान्त लागत (marginal cost or MC) के।

---

[4] उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल आगम रेखा (TR) तथा कुल लागत रेखा (TC) की तुलना करके अधिकतम लाभ की स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है, एकाधिकारी वस्तु की वह मात्रा उत्पादित करेगा जहाँ पर कि TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी सबसे अधिक हो क्योंकि इस स्थिति में ही उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

(ii) एकाधिकार के अन्तर्गत, पूर्ण प्रतियोगिता की भांति, यह आवश्यक नहीं है कि संतुलन उत्पादन पर या उसके निकट MC सदैव चढ़ती हुई हो।[5]

(iii) सामान्यतया सतुलन उत्पादन के लिए माँग की लोच इकाई से कम नहीं होगी।[6]

अब हम इन तीन दशाओं की एक-एक करके व्याख्या प्रस्तुत करते है।

एकाधिकारी के संतुलन या साम्य के लिए, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) का बराबर होना आवश्यक है। एकाधिकारी साम्य की स्थिति मे तव होगा जबकि उसके कुल उत्पादन मे कोई परिवर्तन न हो रहा हो, उसके कुल उत्पादन मे कोई परिवर्तन तब नही होगा जबकि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो, अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जबकि MR = MC के हो।

यदि MR अधिक है MC से[7], तो इसका अर्थ यह हुआ कि अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम मे वृद्धि अधिक है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत मे वृद्धि के; अर्थात् एकाधिकारी को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से लाभ होगा। इस प्रकार जब तक MR अधिक है MC से, तो एकाधिकारी अतिरिक्त उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगा, परन्तु अब MR, MC के बराबर हो जायेगा तो अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम ठीक उस अतिरिक्त इकाई की लागत के बराबर होगा तथा एकाधिकारी के लिए अब उत्पादन को और बढ़ाकर लाभ को अधिकतम करने की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। **यदि MR कम है MC से,** तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम मे वृद्धि कम है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत मे वृद्धि के, अर्थात् एकाधिकारी को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से हानि होगी। अत **एकाधिकारी उत्पादन को केवल उस सा-- तक ही करेगा जहां पर कि अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम बराबर है उस अतिरिक्त इकाई की लागत के; अर्थात् जहाँ पर MR = MC के है।**

अब हम एकाधिकारी सतुलन से सम्बन्धित दूसरी बात को लेते हैं। हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत संतुलन (या साम्य) उत्पादन (equilibrium output) पर या उसके निकट सीमान्त लागत अर्थात MC चढ़ती हुई (rising) होती है, परन्तु एकाधिकार के अन्तर्गत ऐसा होना जरूरी नही है। **एक एकाधिकारी चढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर सीमान्त लागत के साथ संतुलन की स्थिति में हो सकता है;** ये तीन स्थितिया क्रमश उन स्थितियो से सम्बन्धित होती हैं जबकि उत्पादन बढती हुई लागत, घटती हुई लागत या स्थिर लागत के अन्तर्गत होता है।[8] एकाधिकारी सतुलन के लिए जिन दशाओ का पूरा होना जरूरी है वे इस प्रकार हैं--MR = MC **तथा प्रत्येक स्थिति में MC-रेखा को, MR-रेखा को, नीचे से काटना चाहिए।**[9]

अब हम एकाधिकारी सतुलन से सम्बन्धित तीसरी बात को लेते है। एकाधिकारी सतुलन के

---

[5] Under Monopoly, like perfect competition, it is not necessary that MC must be rising at or near the equilibrium output.

[6] Generally, for equilibrium output under monopoly elasticity of demand will not be less than one.

[7] सीमान्त आगम (MR) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) मे वृद्धि, *तथा सीमान्त लागत (MC) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत* (TC) मे वृद्धि।

[8] *A monopolist can be in equilibrium with rising, decreasing or constant marginal costs*; these three situations relate respectively to the situations when production is being carried on under increasing cost, decreasing cost or constant cost.

[9] The conditions which must be satisfied for monopoly equilibrium are *MR=MC and that MC-curve should cut MR-curve from below.*

सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक बात (theoretical point) ध्यान में रखने की है—

सामान्यतया, एक एकाधिकारी अपनी वस्तु के उत्पादन का वह स्तर निर्धारित नहीं करेगा जिस पर कि उसकी औसत आगम रेखा (अर्थात् AR-रेखा) या मांग रेखा की मांग की लोच इकाई से कम हो, यदि उसकी सीमान्त लागत (अर्थात MC) धनात्मक (positive) हो जैसा कि सामान्य स्थिति में होता है। [केवल सीमान्त लागत (MC) के शून्य होने की विशेष स्थिति मे एकाधिकारी उत्पादन का वह स्तर निर्धारित करेगा जिस पर कि मांग की लोच इकाई के बराबर हो।][10]

अथवा

एक एकाधिकारी सदैव AR-रेखा या मांग रेखा के उस भाग मे संतुलन की स्थिति में होगा जिसमें कि मांग की लोच इकाई से अधिक है। [केवल MC के शून्य होने की विशेष स्थिति मे एकाधिकारी AR-रेखा के उस बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में होगा जिस पर कि मांग की लोच इकाई के बराबर है।][11]

उपर्युक्त कथन को हम चित्र 2 की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं। सरलता की दृष्टि से हमने गिरती हुई AR तथा MR रेखाओं को सरल रेखाएं (straight lines) ले लिया है।

चित्र 2 मे बिन्दु P मध्य-बिन्दु है AR-रेखा (या मांग रेखा) का, और इसलिए बिन्दु P पर मांग की लोच (e)=1 है; बिन्दु P के बायीं ओर e > 1, तथा बिन्दु P के दायीं ओर e < 1 है।

चित्र 2

MR-रेखा X-अक्ष (X-axis) को बिन्दु Q पर काटती है, इसलिए इस बिन्दु Q पर MR=0; बिन्दु Q ठीक नीचे है बिन्दु P के, इसलिए कीमत PQ पर MR=0 (इसका अर्थ है कि यहां पर कुल आगम अर्थात (total revenue) या TR अधिकतम होगा। PQ कीमत से अधिक कीमत पर MR धनात्मक (positive) होगा (इसका अर्थ है कि TR बढ़ता हुआ अर्थात (increasing) होगा); PQ कीमत से कम कीमत पर MR ऋणात्मक (negative) होगा (इसका अर्थ है कि TR घटता हुआ अर्थात (decreasing) होगा। एक एकाधिकारी, या कोई भी उत्पादक, अपनी बिक्री को उस सीमा तक नहीं ले जायेगा जहां पर कि MR ऋणात्मक हो जाये क्योंकि ऐसी स्थिति कुल आगम (TR) में कमी करेगी।

---
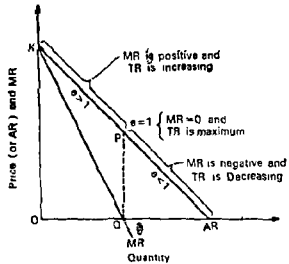
[10] Generally, a monopolist will not determine or produce that level of output of his commodity at which the elasticity of the average revenue curve (or demand curve) is less than one, provided marginal cost is positive which is the usual or normal situation. [In the special case of marginal cost being zero, the monopolist will fix that level of output at which elasticity of demand is equal to one]

[11] A monopolist will always be in equilibrium in that part of AR-curve or demand curve where the elasticity is greater than one. [In the special case of MC being equal to zero, the monopolist will be in equilibrium at that point of the AR-curve where elasticity is equal to one.

एकाधिकारी उस स्थिति में अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा, अर्थात संतुलन में होगा, जबकि MR=MC के होगी। चूंकि सीमान्त लागतें (marginal costs) व्यवहार में, सामान्यतया, धनात्मक होती हैं, इसलिए एकाधिकारी का संतुलन-उत्पादन (equilibrium output) वहां पर होगा जहां पर कि उसका सीमान्त आगम (MR) भी धनात्मक हो। इसका अर्थ है कि AR-रेखा (या मांग रेखा) पर संतुलन बिन्दु वहां पर होगा जहां पर कि मांग की लोच इकाई से अधिक होगी (अर्थात जहा पर $e > 1$ होगी)।

केवल सीमान्त लागत (MC) के शून्य[12] होने की विशेष स्थिति मे एकाधिकारी OQ मात्रा (चित्र 2) का उत्पादन करेगा क्योंकि ऐसी स्थिति मे MC-रेखा X-axis के साथ मिल (या coincide) कर जायेगी (केवल तभी MC=0 के होगी), और बिन्दु Q पर MR तथा MC दोनों बराबर होगी। बिन्दु Q पर MR=0 और इससे सम्बन्धित कीमत PQ होगी, अर्थात बिन्दु P पर $e=1$ के होगी। अत., जब केवल MC=0 होती है तब एकाधिकारी वह कीमत निर्धारित करेगा जहा पर कि मांग की लोच $(e)=1$ के हो। परन्तु सामान्य परिस्थितियों मे एकाधिकारी सदैव उस कीमत व उत्पादन स्तर को निर्धारित करेगा जहा पर कि मांग की लोच (e) अधिक होगी इकाई से (अर्थात जहां पर $e > 1$ होगी)।

2. **मांग पक्ष (Demand Side)**—एकाधिकार के लिए अपनी वस्तु की मांग रेखा अर्थात् AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) कम होता है। कीमत (AR) से।

नीचे को गिरती हुई AR-रेखा का अर्थ है कि एकाधिकारी को वस्तु की अधिक मात्रा बेचने के लिए कीमत घटानी पड़ेगी। चूंकि एकाधिकारी के पास ही वस्तु की कुल पूर्ति होती है, इसलिए वस्तु की पूर्ति की मात्रा घटाने-बढ़ाने से उसकी कीमत प्रभावित होगी, वस्तु की अधिक मात्रा बेचने के लिए उसको कीमत घटानी पड़ेगी।

एकाधिकार में सीमान्त आगम (MR), कीमत (AR) से कम होता है। एकाधिकारी को वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत कम करनी पड़ती है, इसके कारण सीमान्त आगम (MR) कीमत (अर्थात् AR) से कम रहता है। एकाधिकारी जब एक अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए कीमत घटाता है तो उसे कीमत की कटौती केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं बल्कि पिछली सब इकाइयों पर करनी पड़ती है, इसलिए अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) कम होता है कीमत (अर्थात् AR) से।[13]

---

[12] खनिज स्रोत (mineral spring) की दशा मे MC = 0 होगी क्योंकि इसकी कोई परिवर्तनशील या कार्यशील लागत (variable or working cost) नही होगी।

[13] इस बात को एक उदाहरण द्वारा पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। माना एकाधिकारी 10 इकाइयो को 1 रुपया प्रति इकाई की दर से बेच सकता था, यदि वह 10 इकाइयाँ न बेच कर 11 इकाइयाँ बेचता है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी, माना कि वह अब 95 पैसे प्रति इकाई की दर से वस्तु को बेचता है अत.,

सीमान्त आगम (MR) = 11वी इकाई से प्राप्त आगम–पिछली 10 इकाइयो पर 5 पैसे प्रति इकाई की दर से कीमत की कुल कटौती = 95 पैसे – 50 पैसे = 45 पैसे।

11वी अतिरिक्त इकाई को 95 पैसे मे बेचा जाता है, इसलिए प्रकट रूप से (apparently) ऐसा प्रतीत होता है कि 95 पैसे ही सीमान्त आगम (MR) है, परन्तु यह MR नहीं है; इस 95 पैसे मे से पिछली 10 इकाइयों पर 5 पैसे प्रति इकाई की दर से कीमत मे कमी के कारण (95 – 50 = 45) पैसे सीमान्त आगम होगा।

एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) मे जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम (MR) कहते हैं, यदि इस मूल परिभाषा को ध्यान में रखे तो भी MR 45 पैसे के बराबर आयेगा; यह अग्रलिखित से स्पष्ट है

(क्रमशः)

एकाधिकारी को कीमत निश्चित करते समय मांग की लोच को भी ध्यान में रखना पड़ता है। यदि उसकी मांग की लोच अधिक है तो वह वस्तु की कीमत अपेक्षाकृत कम रखकर बहुत अधिक मात्रा बेचेगा, ऐसा करने से उसका प्रति इकाई लाभ कम होगा परन्तु कुल लाभ (अर्थात् 'प्रति इकाई लाभ × बिक्री की गयी मात्रा') अधिकतम होगा। इसके विपरीत, यदि मांग बेलोचदार है तो वह वस्तु की ऊँची कीमत रख सकेगा क्योंकि ऐसा करने से उसकी मांग में कोई विशेष कमी नहीं होगी और वह अपने लाभ को अधिकतम कर सकेगा।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखने की बात है कि "MR-रेखा मांग की लोच पर प्रकाश डालती है तथा MC-रेखा लागत के व्यवहार को बताती है। MR तथा MC के बराबर करने में एकाधिकारी इन दोनों (अर्थात् मांग की लोच तथा लागत) पर ध्यान दे लेता है।"[14]

3. पूर्ति पक्ष (Supply Side)—एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा या बहुत नियन्त्रण होता है। लागत रेखाओं की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, एकाधिकार के अन्तर्गत अल्पकाल में स्थिर लागत (fixed cost) तथा परिवर्तनशील लागत (variable cost) दोनों होती हैं और दीर्घकाल में केवल परिवर्तनशील लागत ही होती है।

4. अल्पकाल में एकाधिकारी का साम्य (Equilibrium of a monopolist in the short period)—एकाधिकारी वह मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करेगा जहां पर कि MR = MC के है। अल्पकाल में एकाधिकारी को 'लाभ' या 'शून्य लाभ' (अर्थात् केवल 'सामान्य लाभ') प्राप्त हो सकता है तथा उसे 'हानि' भी हो सकती है। एकाधिकारी के सम्बन्ध में एक सामान्य धारणा है कि उसको हानि नहीं हो सकती है, परन्तु यह एक गलत धारणा है।[15] एक एकाधिकारी, चूंकि वह एक एकाधिकारी है, आवश्यक रूप से सदैव अधिक लाभ
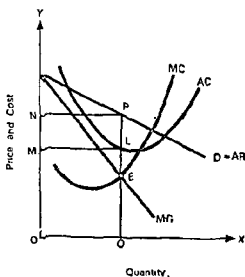
चित्र 3

---

11 इकाइयों को बेचने से कुल आगम = 11 × 95 पैसे = 10.45 रु.
10 इकाइयों (यदि 10 इकाइयाँ बेची जाती) से बेचने के कुल आगम = 10 × 1 रु. = 10.00 रु.
अतः 11वीं अतिरिक्त इकाई के बेचने से कुल आगम में वृद्धि (अर्थात् MR) = 45 पैसे
उपर्युक्त विवरण में स्पष्ट है कि MR (जो कि 45 पैसे है), AR (जो कि 95 पैसे है) से कम है।

[14] "Elasticity of demand is reflected in the marginal revenue curve, and the behaviour of costs in the marginal cost curve. In equalizing marginal revenue and marginal cost the monopolist shall have taken account of both these factors."

[15] इस प्रकार की गलत धारणा का मुख्य कारण है कि व्यवहार में बहुत अधिक लाभ प्राप्त करने वाले एकाधिकारी हमारा ध्यान आकर्षित कर लेते हैं जबकि कम लाभ या शून्य लाभ वाले एकाधिकारियों की अवहेलना हो जाती है।

प्राप्त नहीं कर सकता।[16] एकाधिकारी के लाभ की मात्रा उसकी माग तथा लागत की दशाओं पर निर्भर करती है। यदि अल्पकाल मे उसकी वस्तु की माग कमजोर है तो वस्तु की कीमत इतनी कम हो सकती है कि उसकी पूरी लागत न निकले तथा एकाधिकारी को हानि हो। परन्तु इसमे सन्देह नही कि एकाधिकारी के लिए अल्पकाल में भी शून्य लाभ या हानि की सम्भावना अत्यन्त कम रहती है, दीर्घकाल मे तो उसे लाभ ही प्राप्त होता है। चित्रों की सहायता से लाभ, शून्य लाभ तथा हानि की स्थितियों को दिखाया गया है।

चित्र 3 में एकाधिकारी के लाभ की स्थिति को दिखाया गया है। एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन वहां पर निश्चित करेगा जहा पर कि MR=MC के। चित्र 3 मे स्पष्ट है कि E बिन्दु पर MR=MC के। यदि E बिन्दु से होती हुई एक खडी रेखा खीची जाये जो कि कीमत रेखा अर्थात् AR-रेखा को P बिन्दु पर तथा X-axis को Q बिन्दु पर मिलती है, तो PQ कीमत होगी और एकाधिकारी OQ मात्रा उत्पादित करेगा। लाभ तथा हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए AR तथा AC की तुलना की जाती है। चित्र से स्पष्ट है कि AR, AC से ऊपर है इसलिए इन दोनों के बीच की खडी दूरी PL प्रति इकाई लाभ को बताती है। कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए प्रति इकाई लाभ PL को कुल उत्पादन OQ अर्थात् ML मे गुणा कर दिया जाता है, PL तथा ML का गुणनफल आयत PLMN के क्षेत्रफल को बताता है, अत

कीमत (Price) = PQ
उत्पादन की मात्रा (Output) = OQ
कुल लाभ (Total Profit) = PLMN

चित्र 4 में, एकाधिकारी को शून्य लाभ प्राप्त होता है। एकाधिकारी की वस्तु की माँग कमजोर हो सकती है और ऐसी दशा मे कीमत (AR) ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो सकती है; अतः एकाधिकारी को शून्य लाभ प्राप्त होगा।[17] चित्र 4 मे E बिन्दु पर MR=MC
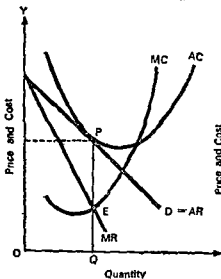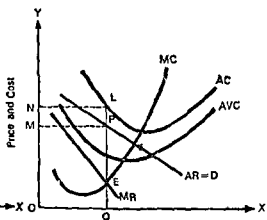
चित्र 4 चित्र 5

[16] But a monopolist, simply because he is a monopolist, does not necessarily earn always large profits.

[17] अर्थशास्त्र मे औसत लागत मे सामान्य लाभ (normal profit) शामिल होता है, इसलिए जब कीमत (AR) = औसत लागत (AC), तो एकाधिकारी को सामान्य लाभ प्राप्त होता है। चूंकि उसको कोई अतिरिक्त लाभ प्राप्त नहीं होता, इसलिए उसे शून्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

के है, इस बिन्दु से होती हुई खडी रेखा AR को P बिन्दु पर तथा X-axis को Q बिन्दु पर मिलती है। बिन्दु P पर AR=AC के है। अत.

कीमत=PQ,

उत्पादन की मात्रा =OQ

एकाधिकारी को 'शून्य लाभ' या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है।

चित्र 5 में एकाधिकारी को हानि हो रही है। एकाधिकारी की वस्तु की माग बहुत कमजोर होने के कारण कीमत (AR) औसत लागत (AC) से कम हो सकती है और इस स्थिति में एकाधिकारी को हानि होगी, परन्तु हानि दीर्घकाल मे समाप्त हो जायेगी और उसे लाभ प्राप्त होगा। सामान्यतया अल्पकाल में भी एकाधिकार के लिए हानि की सम्भावना बहुत कम रहती है। चित्र 5 में बिन्दु E पर MR=MC के। इस बिन्दु से होती हुई खडी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है। अत. PQ कीमत को बतायेगी तथा OQ उत्पादन होगा। AC, AR के ऊपर है, इसलिए इन दोनों के बीच खडी रेखा PL प्रति इकाई हानि को बताती है, कुल हानि आयत PLNM के बराबर होगी। चूंकि कीमत (AR), AVC से अधिक है, इसलिए एकाधिकारी अल्पकाल मे हानि होने पर भी उत्पादन जारी रखेगा क्योंकि दीर्घकाल मे उसकी यह हानि समाप्त हो जायेगी और उसको लाभ प्राप्त होगा। यदि कीमत (AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम होती तो एकाधिकारी अल्पकाल मे उत्पादन को बन्द कर देगा। सक्षेप मे,

कीमत=PQ

उत्पादन की मात्रा=OQ

कुल हानि=PLNM

5. दीर्घकाल में एकाधिकारी का साम्य या संतुलन (Equilibrium of a Monopolist in the Long-run)—दीर्घकाल में एकाधिकारी अपने सभी साधनो (स्थिर तथा परिवर्तनशील) मे समायोजन (adjustment) या परिवर्तन कर सकता है और, इसलिए, वह अपने प्लाट के आकार या पैमाने (size or scale of his plant) को परिवर्तित कर सकता है। वह प्लाट के किसी भी इच्छित आकार (desired size) के साथ कार्य कर सकता है, अर्थात् वह घटती हुई लागत (decreasing cost), स्थिर लागत (constant cost) या बढ़ती हुई लागत (increasing cost) के अन्तर्गत कार्य कर सकता है; तथा हानि की स्थिति में, वह अपने प्लाट को बेचकर, उत्पादन को बिलकुल बन्द कर सकता है। एकाधिकारी प्लांट के उस आकार को चुनेगा जो कि दीर्घकालीन मांग के एक विशिष्ट स्तर (particular level of long-run demand) के लिए पूर्णतया उपयुक्त (most appropriate) हो।[18] इस प्रकार—

(i) दीर्घकाल मे एक एकाधिकारी अपने व्यवसाय को तभी जारी रखेगा जबकि वह प्लांट के **'सबसे अधिक उपयुक्त पैमाने'** के साथ कार्य करते हुए **'उत्पादन की सर्वोत्तम मात्रा का उत्पादन'** करके **'अधिकतम लाभ'** प्राप्त कर सके।[19]

(ii) दीर्घकाल में **'उत्पादन की सर्वोत्तम मात्रा'** उस बिन्दु द्वारा बताई जाती है जहाँ पर कि दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा (LRMC-रेखा), सीमान्त आगम रेखा (MR-रेखा) को नीचे से काटती है; अर्थात जहाँ पर MR=LRMC के हो। MR

---

[18] इसके विपरीत अल्पकाल मे एक एकाधिकारी अपने प्लांट के आकार (या पैमाने) को नही बदल सकता, उसे प्लाट के दिये हुए आकार (या पैमाने) के साथ कार्य करना होगा। दूसरे शब्दों मे, अल्पकाल में एकाधिकारी, दिये हुए मौजूदा प्लाट (given existing plant) के साथ कार्य करते हुए, केवल अपने उत्पादन का समायोजन (adjustment of his output) करता है।

[19] In the long run a monopolist will continue his business only if he can make *maximum profit by producing the best level of output* with the *most appropriate scale of plant.*

तथा LRMC की बराबरी इस बात को बताती है कि अधिकतम लाभ को प्राप्त करने की दृष्टि से एकाधिकारी ने अपने प्लांट के आकार या पैमाने का पूर्ण समायोजन (full adjustment) कर लिया है।

इसके विपरीत, अल्पकाल मे एक एकाधिकारी अपने प्लांट के आकार (या पैमाने) को नही बदल सकता; वह प्लाट के दिये हुए आकार (या पैमाने) के साथ कार्य करके ही लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दो मे, अल्पकाल मे वह सीमान्त आगम (MR) तथा अल्पकालीन सीमान्त लागत (SRMC) मे बराबरी, अर्थात MR = SRMC, स्थापित करने का प्रयत्न करता है। **MR तथा SRMC की बराबरी बताती है कि अल्पकाल में अपने प्लांट के दिये आकार के साथ कार्य करते हुए एकाधिकारी उत्पादन को 'अधिकतम लाभ के स्तर' तक ले जाता है।**

(iii) दीर्घकाल मे एकाधिकारी के लिए प्लांट का 'सबसे उपयुक्त पैमाना' वह पैमाना होगा—

1. जहाँ पर कि 'उत्पादन के सर्वोत्तम स्तर' पर SRAC-रेखा स्पर्श करेगी LRAC-रेखा को, (ध्यान रहे कि 'उत्पादन का सर्वोतम स्तर' उस बिन्दु पर होगा जहाँ पर कि MR = LRMC के); तथा
2. जहाँ पर MR = SRMC के। इन दोनो बातो का अर्थ है कि दीर्घकाल मे एकाधिकारी दीर्घकालीन सतुलन तथा अल्पकालीन सतुलन दोनो एक साथ प्राप्त करेगा।[18] अत एकाधिकारी के दीर्घकालीन सतुलन के लिए निम्न दोहरी दशा पूरी होनी चाहिए—

   1. MR = LRMC
   2. MR = SRMC

   दूसरे शब्दों मे, **एकाधिकारी के दीर्घकालीन संतुलन की दशा होगी—**

   MR = SRMC = LRMC

   यहाँ पर यह बात भी ध्यान रखने की है कि उत्पादन के जिस स्तर पर संतुलन की यह दशा पूरी होगी वहाँ पर SRAC-रेखा tangent (या स्पर्श-रेखा) होगी LRAC-रेखा के प्रति (जैसा कि ऊपर भी कह चुके है)।

एकाधिकारी के दीर्घकालीन संतुलन की तीन सम्भावनाएं (*three possibilities*) है। **इन तीन सम्भावनाओ** को बताने से पहले हमारे लिए **'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने'** (*Optimum Scale of Plant*) को समझ लेना उचित होगा। दीर्घकाल मे एक फर्म या प्लांट 'अनुकूलतम पैमाने' पर कार्य करता हुआ कहा जायेगा जबकि, सतुलन की दशा में, वह प्लाट 'दीर्घकालीन औसत लागत' रेखा (LRAC-रेखा) के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करता है। एकाधिकारी के दीर्घकालीन सतुलन **की तीन सम्भावनाएं निम्न हैं—**

1. एकाधिकारी वस्तु की दीर्घकालीन माँग तथा उसकी दीर्घकालीन लागत मे ऐसा सम्बन्ध हो सकता है कि एकाधिकारी **'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से कम आकार के प्लांट'** (*a less than optimum scale of plant*) का निर्माण करे।
2. एकाधिकारी वस्तु की माँग इस प्रकार की हो सकती है कि एकाधिकारी **'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने के आकार'** (*an optimum scale of plant*) का निर्माण करे।

---

[18] In the long run 'the most appropriate scale of plant' for the monopolist is that scale—1. where SRAC-curve is tangent to the LRAC-curve 'at the best level of output' (and we know that 'the best level of output' implies the satisfaction of the condition MR = LRMC; and 2 where MR = SRMC These two conditions imply that, in the long run, the monopolist will acquire both long-run equilibrium and short-run equilibrium simultaneously.

3 कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत 'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से अधिक आकार के प्लांट' (*a greater than optimum scale of plant*) का निर्माण करे।

अब हम प्रत्येक सम्भावना की विस्तार के साथ, चित्रों की सहायता से व्याख्या करते हैं।

'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से कम पर' दीर्घकालीन एकाधिकारी सन्तुलन (*Long-run monopoly equilibrium at less than optimum scale of plant*). यह सम्भव है कि एकाधिकारी वस्तु की माग (अर्थात् उसका बाजार) इस प्रकार से सीमित हो कि उसकी सीमान्त आगम रेखा (MR – रेखा) उसकी दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LRAC – रेखा) को उसके न्यूनतम बिन्दु के बायें ओर किसी स्थान पर काटे। यदि ऐसी स्थिति है तो एकाधिकारी 'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से कम पर' कार्य करेगा।[21]

किसी दिये हुए समय पर अधिकतम लाभ को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि एकाधिकारी ऐसे स्तर पर कार्य करे जहाँ पर कि वर्तमान प्लांट की MC = MR के हो। परन्तु दीर्घकाल मे यह सम्भव होगा कि प्लांट के आकार में समायोजन करके (by adjusting the size of the plant) लाभ को बढ़ाया जा सके। अत:

> **दीर्घकाल में जब प्लांट का समायोजन पूर्ण हो जाता है तो MR बराबर होगी LRMC तथा SRMC दोनों के; दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में एकाधिकारी उस बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में होगा जहाँ पर MR = SRMC = LRMC इसके अतिरिक्त, उत्पादन की इस सन्तुलन-मात्रा पर SRAC स्पर्श-रेखा (tangent) होगी LRAC के प्रति।[22]**
>
> **"MR तथा LRMC की बराबरी प्राप्त करने की असफलता का अर्थ है लाभप्रद सभी प्लांट-समायोजनों को पूरा करने की असफलता। SRMC तथा MR की बराबरी प्राप्त करने की असफलता का अर्थ है निर्माण किये प्लांट को सबसे अधिक लाभदायक उत्पादन-मात्रा के स्तर पर कार्य करने की असफलता।"** इस प्रकार एक एकाधिकारी जो कि दीर्घकालीन सन्तुलन में है वह साथ-साथ अल्पकालीन सन्तुलन में भी होगा; दूसरे शब्दों में, दीर्घकालीन सन्तुलन एक अल्पकालीन सन्तुलन भी होता है।[23]

एकाधिकारी दीर्घकालीन समायोजन तथा सन्तुलन की एक स्थिति को चित्र 6 में दिखाया गया है; इस चित्र में एकाधिकारी सन्तुलन की स्थिति में 'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से कम पर' कार्य कर रहा है।

---

[21] It is possible that the demand for the product of the monopolist (*i.e.* monopolist's market) may be limited in such a way that his marginal revenue curve (MR-curve) cuts his long run average cost curve (LRAC-curve) somewhere to the left of the lowest (or minimum) point of LRAC-curve. If this is the situation, then the monopolist will operate at less than optimum scale of plant.

[22] In the long period when the adjustment of plant is complete, MR will be equal to both LRMC and SRMC. In other words, in the long run the monopolist will be in equilibrium at the point where MR = SRMC = LRMC. Further, at this equilibrium output SRAC will be tangent to the LRAC.

[23] "Failure to attain equality of MR and LRMC would indicate failure to complete all plant adjustments which are profitable. Failure to attain equality of SRMC and MR would indicate the failure to operate at the most profitable output level with the plant constructed." Thus, a monopolist in the long run equilibrium is also necessarily in the short run equilibrium; in other words, long run equilibrium is also one short-run equilibrium.
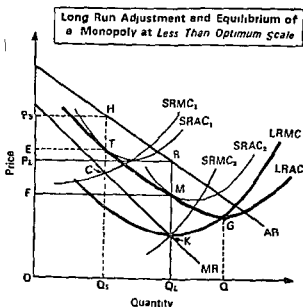
चित्र 6

माना कि, चित्र 6 मे, शुरू मे प्लाट के आकार की अल्पकालीन लागत रेखाओं को $SRAC_1$ तथा $SRMC_1$ द्वारा दिखाया गया है। उत्पादन-मात्रा का अधिकतम लाभप्रद स्तर (most profitable level of output) बिन्दु C बताता है जहाँ पर कि $MR = SRMC_1$ के; इसका अभिप्राय है कि एकाधिकारी फर्म OQ_s के बराबर उत्पादन करेगी। चूंकि दीर्घकाल में फर्म उत्पादन-मात्रा को कम से कम औसत लागत, जो कि सम्भव है, पर उत्पादित करेगी, इसलिए $SRAC_1$ – रेखा स्पर्श-रेखा (tangent) होगी LRAC-रेखा के प्रति बिन्दु T पर, अर्थात् $SRAC_1$-रेखा LRAC-रेखा को स्पर्श करेगी सन्तुलन उत्पादन-मात्रा OQ_s पर। एकाधिकारी P_s कीमत निर्धारित करेगा तथा $HTEP_s$ के बराबर लाभ प्राप्त करेगा।

परन्तु अधिकतम लाभप्रद उत्पादन-स्तर OQ_s पर, (अर्थात् बिन्दु C पर), MR बराबर नहीं है LRMC के, क्योंकि वस्तु की माँग की तुलना में प्लाट का आकार काफी छोटा है। इसलिए एकाधिकारी प्लांट के आकार को बढायेगा; प्लाट के नये आकार को, चित्र 6 में, अल्पकालीन लागत रेखाओ $SRAC_2$ तथा $SRMC_2$ द्वारा दिखाया गया है। इस नये प्लाट के सन्दर्भ में बिन्दु K पर $MR = SRMC_2 = LRMC$; दूसरे शब्दो में, OQ_L उत्पादन-मात्रा (output) सबसे अधिक लाभप्रद उत्पादन को बतायेगी, और उत्पादन के इस स्तर OQ_L पर $SRAC_2$ स्पर्श-रेखा (tangent) होगी LRAC के प्रति बिन्दु M पर, क्योंकि एकाधिकारी फर्म OQ_L उत्पादन को, सबसे कम लागत, जो कि सम्भव है, पर उत्पादित करेगी।

इस प्रकार दीर्घकालीन समायोजन के बाद एकाधिकारी OQ_L मात्रा का उत्पादन करेगा क्योंकि इस उत्पादन-मात्रा पर $MR = SRMC_2 = LRMC$; यही दशा एकाधिकारी की दीर्घ-कालीन सन्तुलन की दशा है।[24] यह दीर्घकालीन सन्तुलन स्थिति एक अल्पकालीन सन्तुलन स्थिति भी है (क्योंकि यहाँ पर $MR = SRMC_2$); दूसरे शब्दों मे, एकाधिकारी दीर्घकालीन सन्तुलन स्थिति तथा अल्पकालीन सन्तुलन स्थिति दोनो मे एक साथ होगा। इस प्रकार—

---

[24] इसके बाद एकाधिकारी को अपने प्लांट के आकार को बढ़ाने की जरूरत नही पड़ेगी क्योंकि नयी फर्मों का प्रवेश (entry) बन्द रहता है।

कीमत $= P_LO$ (या RQ_L)

उत्पादन-मात्रा $= OQ_L$

लाभ $= RMFP_L$

चित्र 6 मे एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उत्पादन-मात्रा OQ_L कम है अनुकूलतम उत्पादन (OQ) से, क्योंकि एकाधिकारी LRAC-रेखा के न्यूनतम (lowest) बिन्दु G के बायें ओर (बिन्दु K पर) सन्तुलन की स्थिति मे है। इस प्रकार सन्तुलन उत्पादन (equilibrium output) OQ_L < अनुकूलतम उत्पादन (optimum output) OQ से, और इस प्रकार कुछ अतिरिक्त उत्पादन-क्षमता (some excess capacity) रह जाती है। इसका कारण यह है कि एकाधिकारी-वस्तु की माँग या उसका बाजार इतना बड़ा नही है कि एकाधिकारी पैमाने की आन्तरिक बचतों (internal economies of scale) का पूरा लाभ उठा सके और अनुकूलतम उत्पादन OQ का उत्पादन कर सके।[21]

प्लांट के अनुकूलतम पैमाने पर एकाधिकारी का दीर्घकालीन सन्तुलन (*Long Run Monopoly Equilibrium at Optimum Scale*): यह सम्भव है कि एकाधिकारी वस्तु की मांग इस प्रकार की हो कि उसकी MR-रेखा उसकी LRAC-रेखा को न्यूनतम बिन्दु पर काटे; अर्थात, दीर्घकालीन समायोजन के बाद एकाधिकारी 'अनुकूलतम पैमाने' पर कार्य करे। दीर्घकाल में एकाधिकारी दीर्घकालीन-संतुलन तथा अल्पकालीन-संतुलन दोनो स्थितियो में एक साथ होगा। दीर्घकाल में एकाधिकारी के संतुलन के लिए निम्न दशा पूरी होनी चाहिए—

MR = SRMC = LRMC, तथा संतुलन उत्पादन के इस स्तर पर SRAC-रेखा स्पर्श-रेखा (tangent) होगी LRAC-रेखा के प्रति।
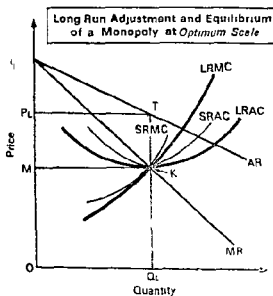
चित्र 7

चित्र 7 मे एकाधिकारी के दीर्घकालीन संतुलन की दशा बिन्दु K पर (जो कि LRAC-रेखा

[21] For example, An electric power company in a small town sometimes faces this situation; the limited local market for electricity limits the operation of the plant to the optimum level.

का न्यूनतम बिन्दु भी है) पूरी हो रही है; अर्थात बिन्दु K पर MR=SRMC=LRMC तथा इसी बिन्दु पर SRAC-रेखा स्पर्श-रेखा (tangent) है LRAC-रेखा के प्रति। इस प्रकार चित्र 7 बताता है कि एकाधिकारी 'अनुकूलतम पैमाने पर' कार्य कर रहा है और दीर्घकालीन सतुलन की स्थिति में है। अतः, सतुलन-स्थिति मे—

कीमत $=P_LO$ (या TQ_L)
उत्पादन-मात्रा $=OQ_L$
लाभ $=TKMP_L$

'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से अधिक पर' एकाधिकारी का दीर्घकालीन संतुलन (*Long Run Monopoly Equilibrium at a Greater than Optimum Scale of Plant*) · यह सम्भव है कि एकाधिकारी वस्तु की मांग इतनी अधिक हो कि उसकी MR-रेखा उसकी LRAC-रेखा को न्यूनतम बिन्दु के दायें ओर काटे, अर्थात दीर्घकालीन समायोजन के बाद एकाधिकारी 'प्लांट के अनुकूलतम पैमाने से अधिक पर' कार्य करे। दीर्घकाल मे एकाधिकारी दीर्घकालीन-सतुलन तथा अल्पकालीन संतुलन दोनो स्थितियो मे एक साथ होगा। दीर्घकाल मे एकाधिकारी के सतुलन के लिए निम्न दशा पूरी होनी चाहिए—

MR=SRMC=LRMC तथा सतुलन-उत्पादन के इस स्तर पर SRAC-रेखा स्पर्श-रेखा (tangent) होगी LRAC-रेखा के प्रति।
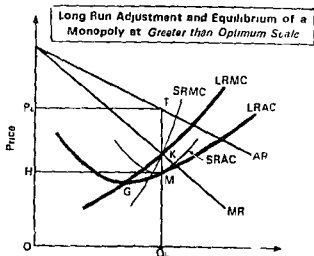
चित्र 8

चित्र 8 में एकाधिकारी के दीर्घकालीन सतुलन की दशा बिन्दु K पर पूरी होती है (बिन्दु K, LRAC-रेखा के न्यूनतम बिन्दु G के दाये ओर है), अर्थात बिन्दु K पर MR=SRMC=LRMC तथा बिन्दु K के ठीक नीचे बिन्दु M पर SRAC-रेखा स्पर्श-रेखा (tangent) है LRAC-रेखा के प्रति। इस प्रकार चित्र 8 बताता है कि एकाधिकारी 'प्लाट के अनुकूलतम पैमाने से अधिक पर' कार्य कर रहा है और दीर्घकालीन सतुलन की स्थिति मे है। अत: सतुलन-स्थिति मे,

कीमत $=P_LO$ (या TQ_L)
उत्पादन-मात्रा $=OQ_L$
लाभ $=TMHP_L$

क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊँची होती है ?
(IS MONOPOLY PRICE ALWAYS HIGHER THAN COMPETITIVE PRICE ?)

एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, उसका पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है तथा वह अपने लाभ को अधिकतम करने का पूरा प्रयत्न करता है। अतः हम यह सोचते हैं कि एकाधिकारी कीमत स्पर्द्धात्मक कीमत से बहुत अधिक ऊंची होती है। **यद्यपि कुछ स्थितियों में, अल्पकाल में, एकाधिकारी की कीमत नीची हो सकती है और उसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो सकता है या हानि भी हो सकती है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रायः एकाधिकारी कीमत स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊँची होती है और एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ अर्जित करता है।**

एकाधिकारी की कीमत कितनी ऊँची होगी यह बात माँग की लोच तथा लागत के व्यवहार पर निर्भर करेगी। यदि एकाधिकारी वस्तु की माग बेलोचदार है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत ऊँची रख सकेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की मात्रा मे कोई विशेष कमी नही होगी। इसके विपरीत, यदि माँग अत्यधिक लोचदार हैं तो एकाधिकारी को वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी ताकि वस्तु की अधिक मात्रा बेचकर वह अपने लाभ को अधिकतम कर सके।

कुछ दशाओं में एकाधिकारी वस्तु की कीमत को स्पर्द्धात्मक कीमत से नीचा रख सकता है: (i) यदि AC तथा MC रेखाएं तेजी से नीचे को गिर रही हैं, अर्थात् एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' (अर्थात् 'उत्पत्ति वृद्धि नियम') के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह अपनी वस्तु की अपेक्षाकृत नीची कीमत रखकर लाभ को अधिकतम करेगा। (ii) यदि किसी क्षेत्र में उत्पत्ति के बडे पैमाने की बचतो के परिणामस्वरूप एकाधिकारी स्थिति प्राप्त की जा सकती है, तो एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर करके अत्यन्त नीची प्रति इकाई लागत प्राप्त करेगा, परिणामस्वरूप स्पर्द्धात्मक दशाओं की अपेक्षा नीची कीमत रखेगा।

परन्तु कुल मिलाकर एकाधिकारी वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊंची रहने की होती है।

एकाधिकारी शक्ति की सीमाएं
(LIMITATIONS OF THE MONOPOLY POWER)

व्यवहार मे विशुद्ध या पूर्ण एकाधिकार नही पाया जाता। यद्यपि एकाधिकारी की पूर्ति तथा मूल्य पर एक बड़ी सीमा तक नियन्त्रण होता है, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि व्यवहार में एकाधिकारी सदैव बहुत ऊँचा मूल्य रख सकता है। यद्यपि एकाधिकारी अपने क्षेत्र मे अकेला होता है तथा पूर्ति पर उसका लगभग पूर्ण नियन्त्रण होता है, परन्तु माग पर उसका नियन्त्रण नहीं होता है। यदि उसकी वस्तु की माँग की लोच कम है तो वह ऊँची कीमत रखकर और कम मात्रा बेचकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा। इसके विपरीत, यदि उसकी वस्तु की मांग अत्यधिक लोचदार है तो उसे कीमत नीचे रखनी पडेगी और वस्तु की अधिक मात्रा बेचनी पडेगी।

निम्न तत्त्व एकाधिकारी शक्ति को सीमित करते हैं :

(1) **सम्भावित प्रतियोगियों का भय** (Fear of potential rivals)—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य ऊँचा रखकर बहुत अधिक लाभ अर्जित करता है तो इस लाभ से आकर्षित होकर कुछ शक्तिशाली प्रतियोगी उसके क्षेत्र मे प्रवेश कर सकते हैं और इस प्रकार उसका एकाधिकार समाप्त हो सकता है। ये प्रतियोगी देश के अन्दर से उत्पन्न हो सकते हैं या देश के बाहर से। अतः सम्भावित प्रतियोगियों के भय से एकाधिकारी अपने मूल्य को अधिक ऊँचा नही रख पाता है।

(2) **राज्य का हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण** (Government's intervention and control)—यदि एकाधिकारी मूल्य अधिक ऊंचा है तो सरकार, सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए, हस्तक्षेप कर सकती है और एकाधिकारी को उचित कीमत रखने को बाध्य कर सकती है।

सरकार सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं (जैसे, बिजली, गैस इत्यादि) को या तो स्वयं अपने स्वामित्व मे रखती है या व्यक्तिगत एकाधिकारियों के लिए कीमत निर्धारित कर देती है। अतः सरकारी हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण के भय से एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत सदैव ऊंची नही रख पाता।

(3) **नयी स्थानापन्न वस्तुओं की सम्भावना** (Possibility of new close substitutes)—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की ऊँची कीमत रखकर अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है, तो इस बात की सम्भावना रहती है कि एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु की खोज या आविष्कार हो जाये और इसके उत्पादन से एकाधिकार को आघात पहुँचे।

(4) जनमत (Public opinion)—यदि एकाधिकारी ऊंची कीमत रखकर उपभोक्ताओं का शोषण करता है तो उपभोक्ता आपस मे सगठित होकर 'उपभोक्ता संघ' बना सकते हैं तथा एकाधिकार के विरुद्ध एक कड़ा जनमत उत्पन्न हो सकता है। परिणामस्वरूप, सरकार हस्तक्षेप करने को बाध्य हो सकती है और एकाधिकारी उद्योग का राष्ट्रीयकरण भी कर सकती है। अतः कड़े जनमत के उत्पन्न हो जाने के डर से एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को अधिक ऊंचा रखने से डरता है।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य और उत्पादन की तुलना
(COMPARISON OF PRICE AND OUTPUT UNDER PERFECT COMPETITION AND MONOPOLY)

1. **पूर्ण प्रतियोगिता के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है :** (i) क्रेता तथा विक्रेताओं की बहुत अधिक सख्या, (ii) एक रूप वस्तु; (iii) उद्योग मे फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश; (iv) बाजार का पूर्ण ज्ञान, तथा (v) उत्पत्ति के साधनों मे पूर्ण गतिशीलता।

एकाधिकार की दशाएं निम्न हैं। (i) एक उत्पादक होता है; (ii) एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नही होती, तथा (iii) एकाधिकारी क्षेत्र में फर्मों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें होती हैं।

2. स्पर्द्धात्मक फर्म तथा एकाधिकारी फर्म दोनो अपने लाभ को अधिकतम करना चाहते हैं। जिस स्थान या बिन्दु पर अधिकतम लाभ प्राप्त होगा वहा फर्म साम्य या सतुलन की स्थिति मे होगी।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों के अन्तर्गत फर्म के 'संतुलन की दशा' (Condition of equilibrium) **है—MR = MC :** सतुलन की एक ही दशा होने पर भी दोनो के कीमत तथा उत्पादन निर्धारण मे अन्तर रहता है। इसका कारण है एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं मे अन्तर का होना [जैसा कि हम ऊपर पहले बिन्दु (point) के अन्तर्गत देख चुके हैं]। अतः सतुलन की स्थिति को प्राप्त करने की एक समान दशा (अर्थात MR = MC) दोनो बाजार-स्थितियो मे भिन्न परिणामों को जन्म देती है।

> एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता दोनों में फर्म के सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से (या बायें से) काटती है। परन्तु ऐसा होने पर भी दोनो स्थितियो मे भी एक मुख्य अन्तर है जो कि इस प्रकार है—
>
> **पूर्ण प्रतियोगिता मे संतुलन के बिन्दु पर या उसके निकट MC-रेखा सदैव चढ़ती हुई (*rising*) होगी; जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत सदैव ऐसा होना आवश्यक नहीं है। एकाधिकार के अन्तर्गत सन्तुलन के बिन्दु पर या उसके निकट MC-रेखा चढ़ती हुई (*rising*), स्थिर(*constant*) या गिरती हुई (*falling*) हो सकती है।**

दोनों स्थितियों के अन्तर्गत उपर्युक्त अन्तर को हम थोड़ा विस्तार के साथ चित्रों की सहायता से स्पष्ट करते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म सन्तुलन की दशा में तभी होगी जबकि MC—रेखा MR—रेखा को नीचे से काटती है; यदि MC—रेखा MR—रेखा को ऊपर से काटती है तो लाभ अधिकतम (maximum) नहीं होंगे बल्कि न्यूनतम (minimum) होंगे;

इसको चित्र 9 में दिखाया गया है; चित्र में बिन्दु B सन्तुलन की स्थिति को बताता है।

दूसरे शब्दों में, चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता में MR—रेखा एक पड़ी रेखा (horizontal line) होती है, इसलिए यदि MC-रेखा को MR—रेखा को नीचे से काटना है तो सन्तुलन के बिन्दु पर या उसके निकट MC—रेखा चढ़ती हुई (*rising*) होगी। (जैसा कि चित्र 9 से स्पष्ट है)।

चित्र 9

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के सन्तुलन में होने के लिए गिरती हुई (*falling*) MC—रेखा मेल नहीं खाती (या compatible) नहीं है, क्योंकि गिरती हुई MC—रेखा कभी भी पड़ी हुई MR—रेखा को नीचे से नहीं काट सकती है, और कभी भी सन्तुलन स्थापित नहीं हो पायेगा।

चित्र 10

इसके विपरीत एकाधिकारी फर्म चढ़ती हुई, गिरती हुई, तथा स्थिर MC—रेखा के साथ सन्तुलन की स्थिति में हो सकती है; परन्तु इसके साथ-साथ यह जरूरी है कि MC—रेखा MR—रेखा को नीचे से (या बाय से) काटे।

चित्र 10 में एकाधिकारी बढ़ती हुई लागतों (increasing costs) के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। इस चित्र में सन्तुलन बिन्दु *E* पर *MC*—रेखा MR—रेखा को नीचे से काटती है तथा MC—रेखा चढ़ती हुई *rising*) है। चित्र 10 से स्पष्ट है—
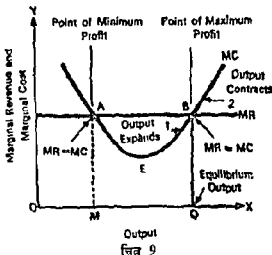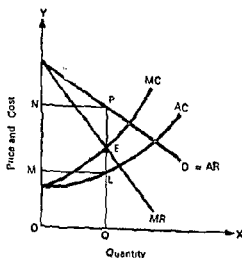
कीमत = PQ

उत्पादन = OQ
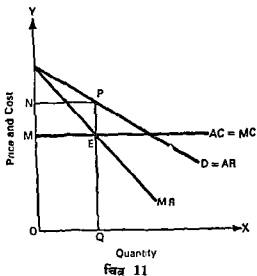
लाभ = PLMN

चित्र 11

चित्र 11 में एकाधिकारी स्थिर लागतों (Constant costs) के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। इस चित्र में **सन्तुलन बिन्दु E पर** MC—रेखा MR—रेखा को नीचे से (या बायें से) काटती है तथा MC—**रेखा स्थिर (*Constant*) है** या पड़ी हुई है। चित्र 11 से स्पष्ट है—

कीमत = PQ
उत्पादन = OQ
लाभ = PLMN

चित्र 12 में एकाधिकारी घटती हुई लागतों (decreasing costs) के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। इस चित्र में सन्तुलन बिन्दु E पर MC—रेखा MR—रेखा को नीचे से (या बायें से) काटती है तथा MC—**रेखा गिरती हुई (*falling*) है**। चित्र 12 से स्पष्ट है—

कीमत = PQ
उत्पादन = OQ
लाभ = PLMN

चित्र 12

चित्र 12 के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने की है कि यदि MC—रेखा अधिक तेजी से गिरती है MR—रेखा की तुलना में, तो ऐसी दशा मे एकाधिकारी के लिए सन्तुलन प्राप्त करना असम्भव होगा क्योंकि ऐसी दशा मे MC—रेखा MR—रेखा को नीचे से (*या बायें से*) नही काट पायेगी।

3. **पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए माँग रेखा अर्थात् AR-रेखा पूर्णतया लोचदार होती है। सरल शब्दों में, AR-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है।** पड़ी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म दी हुई कीमत पर वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। उद्योग में वस्तु की कुल पूर्ति तथा कुल माँग की शक्तियो द्वारा जो कीमत निर्धारित हो जाती है उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है। एक फर्म व्यक्तिगत रूप से अपनी क्रियाओ से कीमत को प्रभावित नही कर सकती, वह दी हुई कीमत के अनुसार अपने उत्पादन को समायोजित करती है। अत: यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है; 'मूल्य निर्धारक' (price-maker) नही होती; वह केवल 'मात्रा समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) होती है। दूसरे शब्दों मे, एक फर्म की कोई 'मूल्य-नीति' नही होती। ध्यान रहे कि पूर्ण प्रतियोगिता मे यद्यपि एक फर्म के लिए माग रेखा (या AR-रेखा) पड़ी हुई रेखा होती है, परन्तु सम्पूर्ण उद्योग के लिए माग रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है।
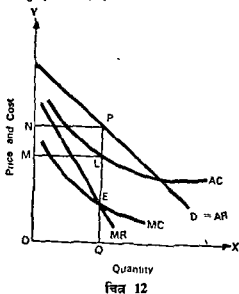
एकाधिकारी के लिए अपनी वस्तु की मांग रेखा या AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है। इसका अर्थ है कि यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की अधिक मात्रा को वेचना चाहता है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी। चूंकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक होता है इसलिए वस्तु की पूर्ति को घटाने या बढ़ाने से कीमत अवश्य प्रभावित होगी। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी की अपनी 'मूल्य-नीति' होती है।

4. **पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम (MR) बराबर होता है औसत आगम (AR) के। दूसरे शब्दो मे, सीमान्त आगम (MR) तथा मूल्य (price) दोनों बराबर होते हैं।** पूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु की कीमत (AR) दी हुई होती है, इसलिए एक फर्म उसी कीमत पर वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है, अर्थात् वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (AR) है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे MR, AR (price) के बराबर होती है; दोनों को एक ही पड़ी रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

एकाधिकार में MR कम होता है AR (कीमत) से। यदि एकाधिकारी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचना चाहता है तो उसे कीमत (AR) घटानी पडेगी, परिणामस्वरूप सीमान्त आगम (MR), कीमत (AR) से कम होगा; इसलिए MR रेखा को AR रेखा के नीचे गिरती हुई रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

5. **पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारी मूल्य सामान्यतया ऊंचा तथा उत्पादन कम होता है।** दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता मे मूल्य (AR) = सीमान्त लागत (MC) के, जबकि एकाधिकार मे मूल्य (AR) अधिक होता है सीमान्त लागत (MC) से। इन दशाओं को निम्न विवरण से स्पष्ट किया जाता है :

पूर्ण प्रतियोगिता मे AR = MR के और फर्म के साम्य की स्थिति मे MR = MC के; इसलिए AR = MR = MC के हुआ। दूसरे शब्दों मे, कीमत (AR) = MC के।

एकाधिकार मे AR अधिक होती है MR से और एकाधिकारी के साम्य की स्थिति में MR = MC के होती है; इसलिए AR (कीमत) अधिक होगी सीमान्त लागत (MC) से।

उपर्युक्त विवरण को हम चित्र 13 द्वारा भी समझा सकते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि MC-रेखाओ को जोड़ने से सम्पूर्ण उद्योग की पूर्ति रेखा (अर्थात् MC-रेखा) प्राप्त की जा सकती है। चित्र 13 में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सम्पूर्ण उद्योग की मांग रेखा (अर्थात् AR-रेखा) D=AR द्वारा व्यक्त की गयी है।[26] हम यह मान लेते हैं कि मांग तथा लागत की दशाओ मे कोई अन्तर नही होता और यह स्पर्द्धात्मक उद्योग एकाधिकारी उद्योग हो जाता है, तो एकाधिकारी के लिए ये ही AR तथा MC रेखाए रहती है।

चित्र 13

हम देख चुके है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे AR=MR=MC के अर्थात् AR (कीमत)

---
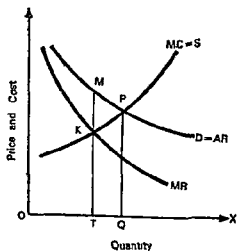
[26] ध्यान रहे कि हम एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry), न कि एक स्पर्द्धात्मक फर्म (competitive firm), की तुलना एकाधिकारी (या एकाधिकारी उद्योग) से कर रहे हैं।

= MC के होती है; जबकि एकाधिकारी कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित करता है जहां पर MR = MC के होती है। चित्र 13 से स्पष्ट है कि स्पर्द्धात्मक उद्योग की माग रेखा 'D = AR' उसकी पूर्ति रेखा 'MC = S' को P बिन्दु पर काटती है, अत. पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य PQ निर्धारित होगा। एकाधिकारी के लिए K बिन्दु पर, MR = MC के, इसलिए एकाधिकारी मूल्य MT होगा। स्पष्ट है :

एकाधिकारी मूल्य MT अधिक है स्पर्द्धात्मक मूल्य PQ से; एकाधिकारी उत्पादन OT कम है स्पर्द्धात्मक उत्पादन OQ से।

(6) **अन्त में, एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में लाभ की स्थिति की तुलना** करते हैं। अल्पकाल मे, पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनो मे फर्म को लाभ, शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ) तथा हानि—तीनो स्थितिया सम्भव है, परन्तु एकाधिकार मे शून्य लाभ तथा हानि की प्रवृत्ति बहुत कम रहती है।

दीर्घकाल मे स्पर्द्धात्मक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है क्योंकि यदि कोई अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है तो नयी फर्मों के प्रवेश के कारण समाप्त हो जायेगा। जबकि एकाधिकारी उद्योग मे फर्म को लाभ अर्थात् 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) प्राप्त होना प्राय निश्चित है क्योंकि नयी फर्मों का प्रवेश नही हो पाता है।

विभेदकारी एकाधिकारी अथवा मूल्य विभेद
(DISCRIMINATING MONOPOLY OR PRICE DISCRIMINATION)

कई परिस्थितियों मे एक एकाधिकारी विभिन्न क्रेताओ को एक ही वस्तु विभिन्न मूल्यों पर बेचना सम्भव तथा लाभदायक पाता है।

मूल्य विभेद की परिभाषा (Definition of Price Discrimination)

श्रीमती जोन रोबिन्सन ने विभेदकारी एकाधिकारी अथवा मूल्य विभेद की परिभाषा इस प्रकार दी है, "एक ही नियन्त्रण के अन्तर्गत उत्पादित एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को विभिन्न कीमतो पर बेचने का कार्य मूल्य विभेद कहा जाता है।"[37]

मूल्य विभेद के लिए दशाएं (Conditions for Price Discrimination)

पूर्ण प्रतियोगिता मे क्रेताओ के बीच विभेदीकरण (discrimination) सम्भव नही है, मूल्य विभेद तथा पूर्ण प्रतियोगिता असगत (incompatible) हैं। पूर्ण प्रतियोगिता मे एक-रूप वस्तु बेचने वाले विक्रेता बहुत अधिक सख्या मे होते है। ऐसी परिस्थितियों में यदि एक विक्रेता किसी क्रेता या कुछ क्रेताओ से अन्य क्रेताओ की अपेक्षा अपनी वस्तु की अधिक कीमत लेता है, तो वह क्रेता या वे कुछ क्रेता, उस विक्रेता को छोडकर, अन्य विक्रेताओ से वही वस्तु खरीद सकेंगे। इस प्रकार विभेदीकरण तथा पूर्ण प्रतियोगिता का सह-अस्तित्व नही हो सकता है। विभेदीकरण केवल अपूर्ण प्रतियोगिता में ही सम्भव है, परन्तु यह भी ध्यान रखने की बात है कि अपूर्ण प्रतियोगिता मे भी सदैव मूल्य विभेद सम्भव नही होगा।

यहा पर हम एकाधिकार, जो कि अपूर्ण प्रतियोगिता का अधिकतम अपूर्ण रूप (most imperfect form of imperfect competition) है, के अन्तर्गत मूल्य विभेद की दशाओ का अध्ययन करेंगे।

मूल्य-विभेद के **सम्भव** (possible) तथा **लाभदायक** (profitable) होने के लिए निम्न दशाओ का होना आवश्यक है। प्रथम दशा मूल्य विभेद **सम्भव** होने को तथा दूसरी उसके **लाभदायक** होने को बताती है।

[37] "The act of selling the same article, produced under a single control, at different prices to different buyers is known as *price discrimination.*"
—Mrs. John Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 197.

1. बाजारों का पृथक्कीकरण (Separation of Markets)

यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिन बाजारों में एकाधिकारी मूल्य विभेद अपनाता है वे बिलकुल पृथक रहें। यदि इन बाजारो में सम्पर्क (contact or communication) रहता है तो सस्ते बाजार में लोग एकाधिकारी वस्तु को खरीद कर महंगे बाजार में उसे बेचकर लाभ उठायेंगे और कुछ समय मे ही दोनों बाजारों में वस्तु की कीमत में अन्तर समाप्त हो जायगा तथा मूल्य विभेद टूट जायेगा। स्पष्ट है कि मूल्य विभेद के लिए यह आधारभूत दशा है कि एक उपभोक्ता द्वारा दूसरे उपभोक्ता को पुनः बिक्री (resale) की कोई सम्भावना नही होनी चाहिए।[28]

अतः **"यदि मूल्य विभेद को सफल होना है तो एकाधिकारी बाजार के विभिन्न भागों में क्रेताओं के बीच सम्पर्क बिलकुल असम्भव होना चाहिए या कम से कम अत्यन्त कठिन होना चाहिए। टेकनीकल भाषा में, विभेदकारी एकाधिकारी के विभिन्न बाजारों में कोई 'रिसन' या 'टपकन' (seepage) नहीं होनी चाहिए।"**[29]

कई तत्त्वों या दशाओ के कारण एकाधिकारी विभिन्न बाजारो को पृथक रख सकता है; विभिन्न बाजारों या बाजार के विभिन्न भागों को पृथक रखने वाले तत्त्व या कारण निम्न हैं :

(अ) उपभोक्ताओं की विशेषताओं के कारण (Owing to the peculiarities of consumers)—(i) मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि उपभोक्ता इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं कि बाजार के एक भाग मे दूसरे भाग की अपेक्षा वस्तु का मूल्य कम है।

(ii) मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि बाजार के एक भाग में उपभोक्ताओं में यह अविवेकपूर्ण धारणा (irrational feeling) हो कि वे वस्तु की ऊंची कीमत इसलिए दे रहे हैं कि वस्तु अधिक अच्छी है।

(iii) मूल्य विभेद उस समय हो सकता है जब कि मूल्य में अन्तर बहुत थोड़े हों और उपभोक्ता इन छोटे अन्तरों की कोई चिन्ता न करते हों।

(ब) वस्तु के स्वभाव के कारण (Owing to the nature of the commodity)—मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि वस्तु एक प्रत्यक्ष सेवा (direct service) हो; जैसे एक डाक्टर एक ही प्रकार की सेवा के लिए धनी व्यक्तियो से अधिक मूल्य (अर्थात् फीस) तथा निर्धनो से कम मूल्य ले सकता है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष सेवाओं की पुनः बिक्री सम्भव नहीं हो सकती, इसलिए मूल्य विभेद बना रहता है।

(स) दूरियों तथा सीमाओं की बाधाओं के कारण (Owing to distances and frontier barriers)—मूल्य विभेद तब सम्भव हो सकता है जबकि उपभोक्ता बहुत दूरी के कारण पृथक रहते हैं; या उपभोक्ताओ के बीच प्रशुल्क दीवारें (tariff walls) खड़ी कर दी गयी हो। यदि देश के बाजार (home market) मे विदेशो से वस्तु के आने पर ऊचे प्रशुल्क लगें हो और संसार के अन्य देशों में एकाधिकारी वस्तु के प्रति कोई प्रशुल्क नही है तो एकाधिकारी देश के सुरक्षित बाजार में ऊंची कीमत तथा ससार के अन्य देश या देशों मे अत्यन्त नीची कीमत रखकर दोनो बाजारों का लाभ उठायेगा।

(द) कानूनी स्वीकृति के कारण (Owing to legal sanction)—कुछ दशाओं में सरकार एकाधिकारी को वस्तु या सेवा की विभिन्न कीमतों के लेने की कानूनी स्वीकृति दे देती है; जैसे, एक

---

[28] The fundamental condition for price discrimination is that there should be no possibility of resale from one consumer to another.

[29] "So, if price discrimination is to succeed, communication between buyers in different sectors of the monopolist's market must be impossible, or at any rate extremely difficult. In technical language, there must be no 'seepage' between the discriminating monopolist's different markets."

बिजली कम्पनी रोशनी तथा पंखो के लिए ऊंची दर तथा औद्योगिक प्रयोजनों के लिए नीची दर लेती है क्योकि उसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है।

2. मांग की लोच में अन्तर (Difference in the Elasticity of Demand)

यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु के विभिन्न बाजारो को पृथक रख सकता है तो मूल्य विभेद सम्भव (possible) होगा, परन्तु मूल्य विभेद के लाभदायक (profitable) होने के लिए यह आवश्यक है कि माग की लोच विभिन्न बाजारो मे एक समान न हो।[30] जिस बाजार मे माग की लोच कम है वहा एकाधिकारी ऊची कीमत रखेगा और वस्तु की कम मात्रा बेचेगा। इसके विपरीत, जिस बाजार मे माग की लोच अधिक है उसमे वह कीमत कम रखेगा और वस्तु की अधिक मात्रा बेचेगा। इस प्रकार विभेदकारी एकाधिकारी इन दोनो बाजारो मे माग की लोच मे अन्तर का लाभ उठायेगा। यदि दोनो बाजारों मे माग की लोच समान है तो कीमतो को भिन्न रखने मे उसको कोई लाभ नही होगा।

विभेदकारी एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price under Discriminating Monopoly)

मूल्य विभेद का मुख्य उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, मूल्य विभेद के लिए दो दशाओ का होना आवश्यक है—(i) मूल्य विभेद तब सम्भव होगा जबकि विभिन्न बाजारो को या बाजार के विभिन्न भागो को पृथक रखा जा सके। (ii) मूल्य विभेद तब लाभदायक होगा जबकि विभिन्न बाजारो या बाजार के विभिन्न भागो मे माग की लोच मे अन्तर हो अर्थात् कुछ बाजारो मे माग अत्यधिक लोचदार हो और कुछ में बेलोचदार।

एक विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य के लिए (अर्थात् मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण के लिए) निम्न दो दशाओ का पूरा होना आवश्यक है:

(i) साम्य की सामान्य दशा; अर्थात् कुल उत्पादन का सीमान्त आगम (MR) = कुल उत्पादन की सीमान्त लागत (MC) के। यह दशा एकाधिकारी विभेदकारी या स्पर्द्धात्मक उत्पादक सभी के साम्य के लिए पूरी होनी आवश्यक होती है, इसलिए इस दशा को साम्य को सामान्य दशा कहते हैं।

(ii) प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम आपस में बराबर हो तथा प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम कुल उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर हो। यदि बाजार नं. 1 के सीमान्त आगम को MR_1, बाजार न 2 के सीमान्त आगम को MR_2 तथा कुल उत्पादन की सीमान्त लागत को MC द्वारा व्यक्त किया जाय, तो इस दशा को सक्षेप मे इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$MR_1 = MR_2 = MC$$

यदि बाजार न 1 का सीमान्त आगम कम है जबकि बाजार नं. 2 का सीमान्त आगम अधिक है, तो ऐसी दशा मे विभेदकारी एकाधिकारी वस्तु की कुछ मात्रा को बाजार न. 1 से हटा कर बाजार न 2 मे बेचकर अपने लाभ को बढा सकेगा, इस प्रकार का हस्तान्तरण (transfer) तब तक चलता रहेगा जब तक कि दोनो बाजारो का सीमान्त आगम बराबर न हो जाय। दूसरे शब्दो मे, वह उन बाजारो मे ऊंची कीमत लेगा जिनमे माग बेलोचदार है और उन बाजारो मे नीची कीमत लेगा जिनमे माग लोचदार है। ऐसा करने मे वह यह ध्यान रखेगा कि प्रत्येक बाजार मे अन्तिम इकाई के बेचने से प्राप्त अतिरिक्त आगम (अर्थात् सीमान्त आगम) बराबर हो।

विभेदकारी एकाधिकारी के मूल्य निर्धारण को चित्र 14 द्वारा व्यक्त किया जाता है।

चित्र 14 (a) मे बाजार न. 1 की औसत आगम तथा सीमान्त आगम रेखाए AR,

[30] "If it is possible for a monopolist to sell the same commodity in separate markets it will clearly be to his advantage to charge different prices in the different markets, provided that the elasticities of demand in the separate markets are not equal"
—Mrs Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 181.

तथा MR_1 हैं, इस बाजार में मांग की लोच कम है; चित्र 14 (b) बाजार नं. 2 की औसत आगम तथा सीमान्त आगम रेखाएं AR_2 तथा MR_2 हैं, इस बाजार में मांग की लोच अधिक है। MR_1 तथा MR_2 को जोड़ने से कुल सीमान्त आगम रेखा (total marginal revenue curve) MR प्राप्त हो जाती है जो कि चित्र 14 (c) में दिखायी गयी है; चित्र 14 (c) में कुल उत्पादन की सीमान्त लागत रेखा MC है।

एकाधिकारी उत्पादन की कुल मात्रा वहां पर निर्धारित करेगा जहां पर कि कुल सीमान्त आगम और सीमान्त लागत बराबर है; चित्र 14 (c) में R बिन्दु पर MR=MC के है, इस-

चित्र 14
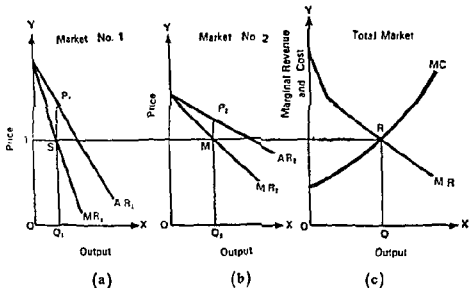
लिए एकाधिकारी OQ के बराबर कुल उत्पादन करेगा। (यह विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य की पहली दशा है)। इस कुल उत्पादन को वह बाजार नं. 1 तथा बाजार नं. 2 में इस प्रकार बांटेगा कि प्रत्येक में सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर हो तथा दोनों बाजारों में सीमान्त आगम आपस में भी बराबर हो (यह विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य की दूसरी दशा है)। यदि बिन्दु R से एक पड़ी रेखा RT खींच दी जाये तो साम्य की दूसरी दशा पूरी हो जाती है। चित्र 14 (a) में S बिन्दु पर $MR_1 = SQ_1 = MC$ के, चित्र 14 (b) में बिन्दु 'M' पर $MR_2 = MQ_2 = MC$ के; यदि इन दोनों को एक साथ देखें तो स्पष्ट है कि $MR_1 = MR_2 = MC$ के। चित्रों से स्पष्ट है:

बाजार नं. 1 में,

कीमत $= P_1Q_1$

बिक्री की मात्रा $= OQ_1$

बाजार नं. 2 में,

कीमत $= P_2Q_2$

बिक्री की मात्रा $= OQ_2$

कुल मात्रा $= OQ_1 + OQ_2$

$= OQ$

चूंकि बाजार नं. 1 में, बाजार नं. 2 की अपेक्षा, मांग की लोच कम है, इसलिए बाजार नं. 1 में मूल्य ऊंचा और बिक्री की मात्रा कम है।

राशिपतन
(DUMPING)

मूल्य विभेद का एक विशेष रूप ही राशिपतन होता है। राशिपतन का अर्थ विदेशी बाजार में वस्तु को बहुत नीची कीमत पर तथा देशी बाजार मे बहुत ऊंची कीमत पर बेचने के कार्य से लिया जाता है। राशिपतन के लिए यह आवश्यक दशा है कि देशी बाजार में एकाधिकारी वस्तु की माग बेलोच हो तथा विदेशी बाजार मे अधिक लोचदार हो। प्रायः देशी बाजार मे एकाधिकारी वस्तु से मिलती-जुलती विदेशी वस्तुओ के आने पर रोक रहती है, इसलिए एकाधिकारी के लिए देशी बाजार सुरक्षित (protected) रहता है। विदेशी बाजार में अपनी वस्तु की माँग को उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी एकाधिकारी अपनी वस्तु को औसत लागत से भी कम पर विदेशी बाजार में बेचता है तथा अपनी वस्तु से विदेशी बाजार को पाट देता है, अर्थात् अपनी वस्तु को बहुत बडी मात्रा मे वहा डम्प (dump) कर देता है, इसलिए इसका नाम डम्पिंग पड़ गया। वह विदेशी बाजार की हानि को, सुरक्षित देशी बाजार मे बहुत ऊची कीमत लेकर पूरा कर लेता है।

राशिपतन के प्रयोजन या उद्देश्य (Motives or objects of dumping)—राशिपतन के प्रमुख प्रयोजन या उद्देश्य निम्न है:

(i) **विदेशी बाजार में कड़ी प्रतियोगिता का सामना करने के लिए** एकाधिकारी राशिपतन का सहारा ले सकता है। वह अपनी वस्तु की कीमत बहुत नीची रखकर विदेशी प्रतियोगियों को हतोत्साहित करता है और इस प्रकार **अपनी वस्तु की माँग विदेशी बाजार में उत्पन्न करता है।**

(ii) **बढ़ते हुए प्रतिफल** (increasing returns) **का लाभ उठाने के लिए** एकाधिकारी राशिपतन का प्रयोग कर सकता है। एकाधिकारी अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाकर घटती हुई लागत (अर्थात् बढते हुए प्रतिफल) को प्राप्त कर सकता है और बढ़ी हुई उत्पादन की मात्रा को विदेशी बाजार में बेच सकता है।

(iii) **राशिपतन का प्रयोग अतिरिक्त उत्पादन** (surplus production) **को बेचने के लिए किया जाता है।** मांग का गलत अनुमान लगाने के कारण वस्तु का उत्पादन बहुत अधिक हो सकता है। ऐसी दशा मे उत्पादक अतिरिक्त उत्पादन को विदेशी बाजार मे कम कीमत पर बेचेगा।

मूल्य विभेद का औचित्य
(JUSTIFICATION OF PRICE DISCRIMINATION)

प्राय एक प्रश्न उठाया जाता है—क्या मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस बात पर ध्यान देना होगा कि क्या मूल्य विभेद उपभोक्ताओं के लिए लाभदायक है या हानिकारक?

प्रकट रूप से यह कहा जा सकता है कि मूल्य विभेद सामाजिक न्याय (social justice) की दृष्टि से अच्छा नही है क्योकि यह उपभोक्ताओ के बीच भेदभाव करता है। परन्तु ध्यान रहे कि कुछ परिस्थितियो मे उपभोक्ताओ के बीच भेद-भाव करने से अधिक अच्छा सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव मे इस प्रकार का सामान्य कथन पूर्णतया सही नही है कि मूल्य विभेद सदैव सामाजिक हित के विरुद्ध होता है। मूल्य विभेद की प्रत्येक परिस्थिति को उसके गुणो के आधार पर आकना पडेगा और तभी यह कहा जा सकेगा कि मूल्य विभेद न्याययुक्त है या नही।

वास्तव में कई दशाओं में मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है। ये दशाएं निम्न हैं:

(i) सार्वजनिक उपयोगी सेवाओ के सम्बन्ध मे मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है। पोस्ट आफिस पोस्ट कार्ड की कीमत नीची रखता है क्योकि निर्धन व्यक्ति इनका अधिक प्रयोग करते परन्तु पोस्ट आफिस मूल्य विभेद के कारण ही ऐसा कर सकता है, वह अपनी अन्य वस्तुओ पर ऊँची कीमत लेता है ताकि पोस्ट कार्ड की कीमत कम रख सके। इसी प्रकार रेलवे प्रथम श्रेणी के

मुसाफिरों से बहुत अधिक किराया लेकर तृतीय श्रेणी के किरायों को नीचा रखती है।

(ii) मूल्य विभेद तब उचित कहा जायेगा जबकि देश के अतिरिक्त उत्पादन को विदेशों में बेचना पड़ता है। अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए विदेशो मे वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी तथा देश मे अपेक्षाकृत ऊंची कीमत लेनी पड़ेगी। यदि विदेशों में अतिरिक्त उत्पादन नहीं बेचा जाता तो देश के कई साधनों का पूर्ण प्रयोग नही हो पायेगा तथा उद्योग विशेष को बड़े पैमाने की बचतें भी पूर्णतया प्राप्त नही हो पायेंगी। अतः स्पष्ट है कि यदि मूल्य विभेद के कारण देश के उत्पादन तथा उत्पादन-क्षमता को बढाया जा सकता है तो वह उचित है।

परन्तु कुछ दशाओं में मूल्य विभेद समाज के लिए हानिकारक भी है : (i) इसके कारण उत्पत्ति के साधनो का अधिक न्याययुक्त प्रयोगों में हस्तान्तरण नही हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी अविकसित देश मे एक विभेदकारी एकाधिकारी विलासिता की वस्तु का बड़ी मात्रा में उत्पादन कर रहा है तो यह देश के हित में नही होगा। इस प्रकार मूल्य विभेद साधनों का अनुचित वितरण (maldistribution) कर सकता है। (ii) सिद्धान्त के आधार पर मूल्य विभेद उचित नही कहा जा सकता क्योंकि विभेदकारी एकाधिकारी अपने लाभो को अधिकतम करने के लिए देश में वस्तु की कम मात्रा बेचता है तथा ऊंची कीमत लेता है।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य विभेद सभी दशाओ में उचित नही है। मूल्य विभेद की प्रत्येक परिस्थिति को उसके गुणो पर आंकना होगा और तभी मूल्य विभेद को उचित या अनुचित कहा जा सकेगा; कुछ परिस्थितियो, जैसे, सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं मे मूल्य विभेद उचित है।

प्रश्न

1. एकाधिकार को परिभाषित कीजिए तथा समझाइए कि एकाधिकारी दशाओं के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है?

   Define Monopoly and explain how price is determined under monopoly conditions ?

2. "एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह उत्पत्ति के विभिन्न नियमों के लागू होने की स्थिति मे किस प्रकार वस्तु का मूल्य निश्चित करता है ?

   "The *prima facie* interest of the owner of a monopoly is to avail maximum total net revenue." To achieve this object how he determines price under different Laws of Returns ?

3. "एकाधिकारी एक साथ कीमत तथा पूर्ति की मात्रा दोनो को निश्चित नहीं कर सकता।" इस कथन के सन्दर्भ मे एकाधिकारी मूल्य निर्धारण की पूर्ण व्याख्या कीजिए।

   "A monopolist cannot fix both price and output simultaneously." In the light of this remark discuss the price determination under monopoly.

4. "एकाधिकारी बिना ताज का बादशाह होता है।" यह बताते हुए कि एकाधिकारी किस प्रकार अपना अधिकतम एकाधिकारी शुद्ध लाभ प्राप्त करता है, इस कथन की व्याख्या कीजिए।

   "Monopolist is a king without a crown." Explain this statement showing how a monopolist gets his maximum monopoly net revenue.

   [संकेत—प्रश्न के प्रथम भाग के उत्तर को इस तरह लिखिए—जिस प्रकार एक बादशाह अपने क्षेत्र मे शक्तिशाली होता है उसी प्रकार एकाधिकारी अपने क्षेत्र में शक्तिशाली होता है। एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, उसकी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नही होती तथा उसके क्षेत्र में नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण

रुकावटें होती है। परिणामस्वरूप एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। यद्यपि एक बादशाह की भांति एकाधिकारी के सिर पर ताज नही होता परन्तु फिर भी वह अपने क्षेत्र में एक बादशाह की भांति शक्तिशाली होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि एकाधिकारी सर्वशक्तिमान होता है। एकाधिकार का वस्तु की माग पर कोई नियन्त्रण नही होता तथा उसकी शक्ति की कई सीमाएं भी होती हैं—यहा पर इन सीमाओं को बहुत संक्षेप में बताइए। प्रश्न के दूसरे भाग मे एकाधिकारी के मूल्य निर्धारण को 'सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' द्वारा, अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो में, रेखा चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।]

5. एकाधिकारी के सतुलन के सम्बन्ध मे निम्न तीन दशाओं की विवेचना कीजिए—
   (i) सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC)
   (ii) एकाधिकार के अन्तर्गत, पूर्ण प्रतियोगिता की भांति, यह आवश्यक नही है कि संतुलन उत्पादन पर या उसके निकट सीमान्त लागत (MC) सदैव चढ़ती हुई हो।
   (iii) सामान्यतया, सतुलन उत्पादन के लिए माग की लोच इकाई से कम नही होगी।

   Discuss the following three conditions in the context of the equilibrium of a monopolist—
   (i) Marginal Revenue (MR) = Marginal Cost (MC)
   (ii) Under Monopoly, like perfect competition, it is not necessary that ot or near equilibrium output MC should always be rising.
   (iii) Generally, for equilibrium output elasticity of demand is not less than one.

6. एक एकाधिकारी के दीर्घकालीन समायोजन तथा संतुलन की विवेचना कीजिए
   Discuss the long-run adjustment and equilibrium of a monopoly.

   अथवा

   दीर्घकाल मे एक एकाधिकारी उस बिन्दु पर संतुलन की दशा में होगा जहां पर कि सीमान्त आगम (MR) = अल्पकालीन सीमान्त लागत (SRMC) = दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LRMC)। विवेचना कीजिए।

   In the long-run a monopolist will be in equilibrium at the point where Marginal Revenue (MR) = Short-Run Marginal Cost (SRMC) = Long-Run Marginal Cost (LRMC). Discuss

   अथवा

   एकाधिकारी के दीर्घकालीन सतुलन की निम्नलिखित तीन सम्भावनाओ की व्याख्या कीजिए—
   (i) एकाधिकारी 'प्लाण्ट के अनुकूलतम पैमाने से कम आकार के प्लाण्ट' का निर्माण कर सकता है।
   (ii) वह 'प्लाण्ट के अनुकूलतम पैमाने के आकार' का निर्माण कर सकता है।
   (iii) वह 'प्लाण्ट के अनुकूलतम पैमाने से अधिक आकार के प्लाण्ट' का निर्माण कर सकता है।

   Explain the three possibilities of long-run equilibrium of a monopolist—
   (i) The monopolist may build 'a less than optimum scale of plant.'
   (ii) He may build 'an optimum scale of plant.'
   (iii) He may build 'a greater than optimum scale of plant.'

7. एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है ? क्या यह सच है कि एकाधिकारी मूल्य सदैव स्पर्द्धात्मक मूल्य से ऊचा होता है ?
   How is price determined under monopoly ? Is it true that monopoly price is always higher than competitive price ?

8. एकाधिकारी तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक दोनों अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते हैं। स्पष्ट कीजिए कि वे किस प्रकार से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं ?
   Both the monopolist and the competitive producer aim at maximizing their net gain. Show how they achieve their objectives.
   [संकेत—देखिए 'पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार, के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन की तुलना' शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]
9. मूल्य विभेद की परिभाषा दीजिए। मूल्य विभेद कब सम्भव, लाभदायक तथा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय होता है ?
   Define price discrimination. When is price discrimination possible, profitable and socially desirable ?
10. भेदपूर्ण एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जाता है ? मूल्य-विभेद कब सम्भव और वांछनीय है ?
    How is price determined under discriminating monopoly ? When is price discrimination possible and desirable ?
11. "एक विभेदकारी एकाधिकारी अपनी बिक्री को इस प्रकार समायोजित करता है कि किसी एक बाजार में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त सीमान्त आगम सभी बाजारों के लिए एक समान ही होगा।" व्याख्या कीजिए।
    "A discriminating monopolist adjusts his sales in such a way that the marginal revenue obtained from selling an additional unit of output in any one market is the same for all the markets." Explain and illustrate. (Agra)
    [संकेत—सर्वप्रथम 'विभेदकारी एकाधिकारी' अर्थात् 'मूल्य-विभेद' की परिभाषा दीजिए और तत्पश्चात् 'विभेदकारी एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण' को बताइए।]

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन

(*Price and Output Under Monopolistic Competition*)

प्रो. चेम्बरलिन (Chamberlin) ने 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन ने 'अपूर्ण प्रतियोगिता' के विचार प्रस्तुत किये। दोनों में थोड़ा अन्तर होते हुए भी कभी-कभी ढीले रूप में (loosely) दोनों एक मान लिये जाते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता की किसी भी दशा के अनुपस्थित होने से अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक सिरे की स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता तथा दूसरे सिरे की स्थिति पूर्ण एकाधिकार है, इन दोनों स्थितियों के बीच के समस्त क्षेत्र को आधुनिक अर्थशास्त्री अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं। 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है। परन्तु प्रायः इन दोनों को एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यद्यपि प्रो. चेम्बरलिन इन दोनों के अन्तर पर जोर देते हैं। दोनों को एक ही मान लेने के मुख्य कारण निम्न है—(i) यद्यपि एकाधिकृत प्रतियोगिता पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है, परन्तु वह अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म (leading type of imperfect competition) है, अतः दोनों ढीले रूप में एक ही मान लिये जाते हैं। (ii) यद्यपि श्रीमती जोन रोबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता में 'वस्तु विभेद' (product differentiation) शब्द का प्रयोग नहीं किया है, परन्तु उनके द्वारा अपूर्ण प्रतियोगिता के बताये गये कारणों में लगभग वे सब बातें उपस्थित हैं जो कि प्रो. चेम्बरलिन 'वस्तु विभेद' के लिए बताते हैं। उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्री कभी-कभी 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' तथा 'अपूर्ण प्रतियोगिता' को एक ही मान लेते हैं। इस दृष्टि से 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण में कोई अन्तर नहीं होगा।

1. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF MONOPOLISTIC COMPETITION)

एकाधिकृत प्रतियोगिता में—(i) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं की 'अधिक' संख्या होती है। (ii) वस्तु-विभेद (product differentiation) होता है। (iii) फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश होता है, परन्तु वस्तु-विभेद के कारण यह प्रवेश उतना सुगम नहीं होता जितना कि पूर्ण प्रतियोगिता में होता है। (iv) गैर-मूल्य प्रतियोगिता (non-price competition) भी होता है।

वस्तु-विभेद के कारण एक विक्रेता की वस्तु दूसरे के स्थान पर पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित नहीं की जा सकती। अतः प्रत्येक उत्पादक एक सीमा तक एकाधिकारी तत्त्व (monopoly element) प्राप्त कर लेता है; अर्थात् प्रत्येक उत्पादक एक सीमा तक एक छोटा-सा एकाधिकारी होता है। परन्तु

इन एकाधिकारियों में कड़ी प्रतियोगिता होती है; अतः ऐसी स्थिति को *'एकाधिकृत प्रतियोगिता'* कहा जाता है।[1]

2. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM OF A FIRM UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION)

एक स्पर्द्धात्मक फर्म तथा एक एकाधिकारी की भाँति 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के अन्तर्गत भी एक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ या 'विशुद्ध आगम' (net revenue) को अधिकतम करना होता है। साम्य का अर्थ है परिवर्तन की अनुपस्थिति। एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो; उसके कुल उत्पादन में परिवर्तन तब नहीं होगा जबकि फर्म को अधिकतम लाभ हो रहा हो। दूसरे शब्दों में, एक फर्म अपनी वस्तु का वह मूल्य तथा उसकी वह मात्रा निर्धारित करेगी जहाँ पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

3. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'फर्म के साम्य' के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जा सकता है :

(i) **'कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति'** (Total Revenue and Total Cost Curves Approach)। (ii) **'सीमान्त विश्लेषण रीति'** (Marginal Analysis Approach) अर्थात् **'सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति'** (Marginal and Average Curves Approach)।

नीचे दोनों रीतियों का अलग-अलग विवेचन किया गया है।

4. कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(TOTAL REVENUB AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

चित्र 1 में OM से कम या ON से अधिक उत्पादन करने से फर्म को हानि होगी क्योंकि इन दोनों स्थितियों में TC-रेखा ऊपर है TR-रेखा के। M तथा N के बीच फर्म को लाभ होगा; OQ उत्पादन की मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा क्योंकि इस मात्रा पर TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी EF अधिकतम है। बिन्दु A तथा बिन्दु B पर TR तथा TC बराबर हैं अर्थात् इन बिन्दुओं पर फर्म को शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ) प्राप्त होता है, इन बिन्दुओं को 'break-even points' कहते हैं।

चित्र 1

---
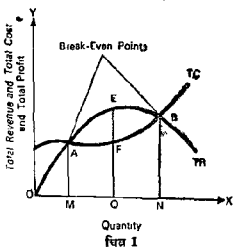
[1] प्रायः अर्थशास्त्री एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'समूह' (group) शब्द का प्रयोग 'उद्योग' (industry) के लिए करते हैं। प्रायः एकरूप वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्में मिलकर एक उद्योग का निर्माण करती हैं। चूंकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कोई भी दो फर्में एकरूप वस्तु नहीं बनातीं (उनमें अन्तर होता है यद्यपि वे मिलती-जुलती होती हैं), इसलिए एकाधिकृत

(क्रमशः)

'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' अधिक अच्छी समझी जाती है।[3]

5. सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

1. एक स्पर्द्धात्मक फर्म तथा एक एकाधिकारी की भाँति, **एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के साम्य के लिए सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) का बराबर होना आवश्यक है।** एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म साम्य की स्थिति मे तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो रहा हो। उसके कुल उत्पादन मे कोई परिवर्तन तब नही होगा जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। उसको अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जबकि MR = MC के हो।[3]

यदि (MR) अधिक है MC से तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम मे वृद्धि अधिक है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के, अर्थात् फर्म को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से लाभ होगा। इस प्रकार जब तक MR अधिक है MC से, फर्म अतिरिक्त उत्पादन करके अपने लाभ को बढा सकेगी, परन्तु जब MR, MC के बराबर हो जायेगी तो अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम ठीक उस अतिरिक्त इकाई की लागत के बराबर होगा तथा फर्म के लिए अब उत्पादन को और बढ़ाकर लाभ को अधिकतम करने की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यदि MR कम है MC से तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम मे वृद्धि कम है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के; अर्थात् फर्म को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से हानि होगी। अतः फर्म वस्तु की मात्रा उस सीमा से अधिक उत्पादित नही करेगी जहाँ पर MR = MC के हो।

2. **एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात् AR-रेखा नीचे गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR), कीमत (AR) से कम होता है।**

(i) **नीचे को गिरती हुई माँग रेखा (अर्थात् AR-रेखा) का अर्थ है** कि यदि एकाधिकृत प्रतियोगिता मे फर्म (monopolistically competitive firm) वस्तु की अधिक मात्रा बेचना चाहती है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी। गिरती हुई माँग रेखा के **दो कारण हैं—प्रथम,** पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति वस्तु एकरूप नही होती; वे मिलती-जुलती तो होती है परन्तु उनमे कुछ अन्तर अवश्य होता है। **दूसरे,** मिलती-जुलती (similar) वस्तुओं को उत्पादित करने वाले 'समूह' मे फर्मों की संख्या उतनी अधिक नही होती जितनी कि स्पर्द्धात्मक उद्योग में होती है।

प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'उद्योग' के विचार का महत्त्व लगभग समाप्त हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में अर्थशास्त्री 'उद्योग' शब्द के स्थान पर 'समूह' शब्द का प्रयोग करते हैं क्योंकि पर्याप्त रूप से मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्में 'एक समूह' मे समझी जा सकती हैं, इसी भाँति दूसरी प्रकार की मिलती-जुलती वस्तुएँ दूसरे समूह मे रखी जा सकती है। अत यह ध्यान रखने की बात है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता मे अर्थशास्त्री 'उद्योग' के स्थान पर 'समूह' शब्द का प्रयोग भी करते हैं।

[2] कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओ की रीति भद्दी है। इसके कारण हैं: (i) TR तथा TC के बीच अधिकतम खड़ी दूरी को एक ही निगाह मे प्रायः ठीक प्रकार से ज्ञात करना कठिन हो जाता है, तथा (ii) चित्र को देखकर प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात नही किया जा सकता, कुल आगम (चित्र मे EQ) में कुल उत्पादन (चित्र मे OQ) का भाग देने पर ही प्रति इकाई कीमत मालूम की जा सकती है।

[3] सीमान्त आगम (MR) का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) मे वृद्धि, तथा सीमान्त लागत (MC) का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत (TC) मे वृद्धि।

(ii) चूंकि एक 'समूह' में एकसी वस्तु उत्पन्न करने वाली अनेक फर्में कार्य करती हैं, इसलिए किसी भी एक फर्म की वस्तु की मांग उसकी प्रतियोगी फर्म की कीमत तथा उत्पादन पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में,

"एक फर्म की औसत आगम की शक्ल केवल उपभोक्ता की रुचियों तथा तरंगो से नहीं बल्कि प्रतियोगी उत्पादकों के मूल्य-उत्पादन निर्णयों द्वारा भी निर्धारित होती है।"[4]

(iii) सीमान्त आगम (MR), औसत आगम अर्थात् कीमत (AR or price) से कम होता है। इसका कारण यह है कि अतिरिक्त इकाइयों को बेचने के लिए फर्म को कीमत (AR) घटानी पड़ती है। [दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए फर्म कीमत को केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं घटाती बल्कि पिछली सब इकाइयों पर उसे कीमत घटानी पड़ती है, और इसलिए MR कम होता है AR से।][5]

3. मांग पक्ष का अध्ययन करने के पश्चात् हम अब लागत की दशाओं पर ध्यान देते हैं। लागत के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखने की हैं :

(i) एकाधिकृत प्रतियोगिता में बहुत-सी प्रतियोगी फर्में एकसी वस्तुएँ उत्पादित करती हैं, इसलिए वे लगभग एक ही प्रकार के उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग करती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि फर्मों की लागत रेखाएँ एक-दूसरे से थोड़ी-बहुत सम्बन्धित अवश्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, 'समूह' में फर्मों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ेगी जिससे कुछ फर्मों के लिए इन उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बढ़ जायेंगी और इस प्रकार उनकी लागत रेखाएँ प्रभावित होंगी।

परन्तु फिर भी विश्लेषण की सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक फर्मों के एक समूह की सभी फर्मों की लागत रेखाएँ बिलकुल एकरूप होती हैं और ये रेखाएँ एक स्तर पर ही रहती हैं (अर्थात् लागतों में कोई वृद्धि या कमी नहीं होती) चाहे समूह के फर्मों की संख्या कुछ भी हो। दूसरे शब्दों में, हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकृत समूह के लिए उत्पत्ति के साधन बिलकुल एकरूप होते हैं तथा उस समूह के लिए उनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।[6]

(ii) हम यह भी मान लेते हैं कि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक समूह के फर्मों की संख्या में वृद्धि होने पर उत्पादन की कोई बाह्य बचतें या अबचतें नहीं होतीं। प्रो. चेम्बरलिन इस मान्यता को एक 'बहादुरी की मान्यता' कहते हैं; इस मान्यता को वे बाद में ढीला कर देते हैं।[7]

(iii) एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्में वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए, केवल मूल्य में ही कमी नहीं करती बल्कि 'गैर-मूल्य प्रतियोगिता' (non-price competition) को भी अपनाती हैं अर्थात् अपनी वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए वे विज्ञापन, प्रचार, अच्छे विक्रयकर्ता (salesmen), इत्यादि पर बहुत बड़ी मात्रा में व्यय करती हैं। इस प्रकार के खर्चों को अर्थशास्त्री टेकनीकल भाषा में 'विक्रय लागतें' (selling costs) कहते हैं। ये विक्रय-लागतें कुल उत्पादन लागतो

---

[4] "The shape of the firm's average revenue curve will be determined not only by the tastes and whims of consumers, but also by the price-output decisions of rival producers."

[5] इस बात को ठीक उसी प्रकार उसी उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है जो कि अध्याय 33 के फुट नोट नं. 13 में दिया गया है।

[6] "In order to simplify the analysis, however, we shall assume that all firms in the same 'group' of monopolistically competitive firms have identical cost curves and that these curves remain at exactly the same level whatever the number of firms in the group. In other words, we assume that all factors of production are homogeneous and in perfectly elastic supply to the monopolistic group."

[7] "We also assume that there are no external economies or diseconomies of production when the number of firms in the group increases. Professor Chamberlin makes this assumption—a 'heroic' assumption as he calls it—though he later relaxes it."

(production costs) की अंग होती है। दूसरे शब्दों में, 'विक्रय लागतें' सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) की अंग होती है।

4. फर्म का अल्पकालीन साम्य (Short-run equilibrium of a firm)—अल्पकाल में फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। यदि फर्म की वस्तु की माँग प्रबल है और अन्य फर्मों द्वारा उत्पादित मिलती-जुलती वस्तुएँ उसकी अधिक निकट स्थानापन्न (close substitute) नही है तो फर्म ऊँची कीमत रखकर लाभ प्राप्त कर सकेगी; यदि माँग कुछ कमजोर है तो फर्म केवल सामान्य लाभ (या शून्य लाभ) ही प्राप्त कर सकती है; यदि माँग बहुत कमजोर है तो फर्म को हानि उठानी पड़ सकती है। चूकि अल्प काल मे फर्म अपनी उत्पादन क्षमता को माँग के अनुरूप पूरी प्रकार से नही कर पाती है, इसलिए तीनो स्थिति सम्भव है, इन तीनो स्थितियो को चित्रो की सहायता से स्पष्ट किया गया है।
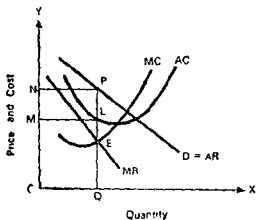
चित्र 2

चित्र 2 लाभ की स्थिति बताता है। फर्म के साम्य के लिए MR=MC के होनी चाहिए। बिन्दु E पर MR तथा MC बराबर हैं, E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा को खीचने से वह AR रेखा (अर्थात् कीमत-रेखा) को P बिन्दु पर मिलती है। चूकि AR (कीमत), AC के ऊपर है, इसलिए फर्म को PL प्रति इकाई लाभ होगा। अतः

मूल्य = PQ

उत्पादन की मात्रा = OQ

कुल लाभ = PLMN

चित्र 3 मे फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। E बिन्दु पर MR= MC के है। E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है। P बिन्दु पर AR-रेखा AC-रेखा को स्पर्श करती हुई निकलती है इसलिए P बिन्दु पर AR=AC के, अर्थात कीमत ठीक औसत लागत के बराबर है, इसका अर्थ है कि फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। अत.,

चित्र 3

मूल्य = PQ

उत्पादन की मात्रा = OQ

फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।
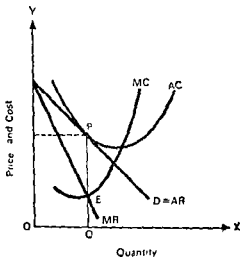
चित्र 4 हानि की स्थिति को बताती है। E बिन्दु पर MR = MC के है। E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है, इसलिए कीमत PQ हुई। चूकि AC-रेखा ऊपर है AR-रेखा (अर्थात् कीमत) के, इसलिए फर्म को खड़ी दूरी

PL के बराबर प्रति इकाई हानि होगी। कुल हानि PLMN के बराबर होगी। चूंकि कीमत PQ, AVC से अधिक है, इसलिए अल्पकाल में हानि होने पर भी फर्म उत्पादन को जारी रखेगी।

संक्षेप में,

मूल्य = PQ

उत्पादन की मात्रा = OQ

कुल हानि = PLMN
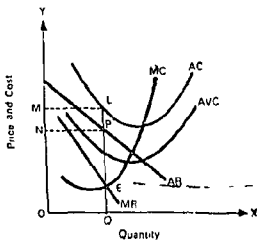
चित्र 4

5. दीर्घकालीन साम्य—'समूह साम्य' (Long-run equilibrium—'Group equilibrium')—दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। यदि अल्पकाल में 'समूह' की फर्मों को लाभ प्राप्त होता है तो दीर्घकाल मे इस लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में 'समूह' (या उद्योग) मे प्रवेश करेंगी और अतिरिक्त लाभ अर्जित करने वाली फर्मों की वस्तुओं के अधिक निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन बढ़ायेंगी। पुरानी फर्में (जिन्हें लाभ प्राप्त नही हो रहा था) भी ऐसा ही करेंगी। पुरानी तथा नयी फर्मों की इस स्पर्द्धा के कारण अतिरिक्त लाभ समाप्त हो जायेगा और फर्मों को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

अतः पूर्ण प्रतियोगिता की भांति, एकाधिकृत प्रतियोगिता में भी फर्म (या समूह) के दीर्घकालीन साम्य के लिए 'दोहरी दशा' *double condition*) पूरी होनी चाहिए :

(i) MR = MC

(ii) AR = AC

चित्र 5

दूसरी दशा के पूरे होने का अर्थ है सामान्य लाभ का प्राप्त होना। चित्र 5 मे E बिन्दु पर MR = MC के; बिन्दु E से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है; अतः कीमत PQ हुई। P बिन्दु पर AR-रेखा LAC-रेखा (long-run average cost curve) के लिए स्पर्श रेखा (tangent) है, इसलिए इस बिन्दु पर AR = AC भी हुई। स्पष्ट है कि यदि कीमत PQ है तब ही दोहरी दशा पूरी होगी। संक्षेप में,

मूल्य = PQ

उत्पादन की मात्रा = OQ

फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

उपर्युक्त दीर्घकालीन साम्य विश्लेषण के सम्बन्ध में निम्न बात ध्यान में रखनी चाहिए :

एकाधिकृत प्रतियोगिता में AR-रेखा गिरती हुई रेखा होती है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता मे AR-रेखा एक पडी हुई रेखा होती है। पूर्ण प्रतियोगिता मे पड़ी हुई AR-रेखा AC-रेखा को उसके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श करती है। इसका अर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त
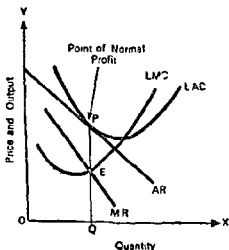
होता है और वह वस्तु की मात्रा को न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादित करती है। न्यूनतम औसत लागत पर वस्तु की उत्पादित मात्रा को टेक्नीकल भाषा में हम 'अनुकूलतम मात्रा' (optimum output) कहते हैं। एकाधिकृत प्रतियोगिता मे चूंकि AR-रेखा एक गिरती हुई रेखा होती है इसलिए वह AC-रेखा को उसके न्यूनतम बिन्दु से पहले बायें को किसी बिन्दु पर स्पर्श करेगी, जैसा कि चित्र 5 में AR-रेखा LAC-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है। इसका अर्थ यह हुआ कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म 'अनुकूलतम मात्रा' से कम मात्रा उत्पादित करती है और इस प्रकार प्रत्येक फर्म के पास 'अप्रयुक्त क्षमता' (unutilized capacity) या 'अतिरिक्त क्षमता' (excess capacity) रहती है।[8]

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन की तुलना

(COMPARISON OF PRICE AND OUTPUT UNDER PERFECT COMPETITION AND MONOPOLISTIC COMPETITION)

1. एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म है परन्तु यह पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है।

पूर्ण प्रतियोगिता की कई मुख्य दशाएं एकाधिकृत प्रतियोगिता मे होती हैं। विशेषतया, विक्रेताओं (या फर्मो) की अधिक संख्या, मूल्य प्रतियोगिता तथा फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश—ये दशाएं पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनो मे शामिल (common) हैं। **दोनों का मुख्य अन्तर वस्तु-विभेद में निहित है।** पूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु एकरूप होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता मे वस्तु-विभेद होता है, वस्तुएं मिलती-जुलती होती हैं, परन्तु पूर्णतया एकरूप नहीं होतीं, उनमें थोड़ा अन्तर अवश्य होता है। वस्तु विभेद के कारण ही एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म एक सीमा तक एकाधिकारी तत्त्व (monopoly element) अर्जित (acquire) कर लेती है। स्पष्ट है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (fundamental distinguishing feature) 'वस्तु-विभेद' है। यदि इसमे से 'वस्तु-विभेद' को निकाल दिया जाय और उसके स्थान पर 'वस्तु की एकरूपता' (homogeneity) को रख दिया जाय तो हम लगभग पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे पहुँच जायेंगे। चूंकि एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म होते हुए भी पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है, इसलिए यह कहा जाता है कि "एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का सबसे कम अपूर्ण रूप है।"[9]

2. एकाधिकृत प्रतियोगिता में माँग रेखा अर्थात् AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत गिरती हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म को वस्तु की

---

[8] एक बात और ध्यान रखने की है। अपने विश्लेषण मे हम यह मानकर चले हैं कि एक 'समूह' की विभिन्न फर्मों की लागत की दशाएँ एक समान (identical) हैं। इस मान्यता को प्रो. चेम्बरलिन ने 'बहादुरी की मान्यता' (heroic assumption) कहा है: (अ) यदि इस मान्यता को ढीला कर दिया जाये तो एक समूह के अन्तर्गत फर्मों की लागत मे थोड़ा अन्तर होगा और दीर्घकाल मे भी कुछ फर्मो को 'थोड़ा अतिरिक्त लाभ' (small excess profit) प्राप्त हो सकता है। (ब) कुछ फर्में इस प्रकार का वस्तु विभेद प्राप्त कर सकती हैं कि दीर्घकाल मे भी अन्य फर्म उनकी वस्तु की निकट स्थानापन्न न बना सकें, तो ऐसी स्थिति मे भी दीर्घकाल में कुछ फर्मों को थोड़ा अतिरिक्त लाभ प्राप्त होना रहेगा। परन्तु इन सब बातो के होते हुए भी कुल मिलाकर दीर्घकाल मे 'सामान्य लाभ' प्राप्त होने की स्थिति (चित्र 5) सही है और वास्तविकता (reality) का लगभग उचित चित्रण (reasonable portrayal) करती है।

[9] "Monopolistic competition is the most imperfect form of imperfect competition."

अधिक इकाइयाँ बेचने के लिए कीमत घटानी पड़ेगी, अर्थात् फर्म की अपनी 'मूल्य-नीति' होती है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पड़ी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म दी हुई कीमत पर वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है। वह 'मूल्य-ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है, न कि 'मूल्य-निर्धारक' (price maker)। उसकी अपनी कोई 'मूल्य-नीति' नहीं होती; वह दी हुई कीमत पर अपने उत्पादन की मात्रा को समायोजित करती है, इसलिए उसे 'मात्रा समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) कहा जाता है।

3. पूर्ण प्रतियोगिता में AR (कीमत) MR के बराबर होती है; जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में AR (कीमत) MR से अधिक होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए वस्तु की कीमत दी हुई होती है, इसलिए एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (अर्थात् AR) है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR, MR के बराबर होती है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म यदि वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचना चाहती है तो उसे कीमत (AR) घटानी पड़ेगी, परिणामस्वरूप सीमान्त आगम (MR) कम होगा कीमत (AR) से; दूसरे शब्दों में, $AR > MR$।

4. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत (AR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर होती है, जब कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत (AR) सीमान्त लागत (MC) से अधिक होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के साम्य के लिए $MR = MC$ के है, तथा पूर्ण प्रतियोगिता में $AR = MR$ के भी है, इन दोनों को मिलाने से हमें यह सम्बन्ध प्राप्त होता है : $AR = MR = MC$ अर्थात AR (कीमत) = MC (सीमान्त लागत) के।

एकाधिकृत प्रतियोगिता में भी फर्म के साम्य के लिए $MR = MC$ के, परन्तु एकाधिकृत प्रतियोगिता में $AR > MR$, और चूंकि $MR = MC$ के, इसलिए $AR > MC$, अर्थात् कीमत (AR) अधिक है MC (सीमान्त लागत) से।

5. अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता त : एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनों के अन्तर्गत एक फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ (या शून्य लाभ) तथा हानि, तीनों दशाएँ सम्भव है।

6. दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनों के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। इसका कारण है कि दोनों स्थितियों में प्रतियोगिता तथा फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश होने की दशाएँ मौजूद होती है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में 'उत्पादन न्यूनतम औसत लागत' पर होता है, अर्थात् 'अनुकूलतम मात्रा' (Optimum output) का उत्पादन किया जाता है तथा कीमत कम होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में उत्पादन 'अनुकूलतम मात्रा' से कम होता है और कीमत अपेक्षाकृत ऊँची होती है।

चित्र 6

उपर्युक्त कथन को हम चित्र 6 से स्पष्ट कर सकते है। तुलनात्मक अध्ययन तथा सरलता के लिए यहाँ पर मान लिया गया है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत
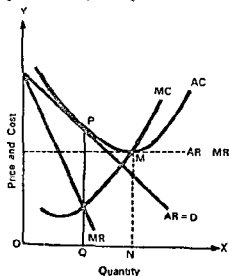
प्रतियोगिता दोनों के अन्तर्गत लागत तथा मांग दशाएँ समान हैं। चित्र 6 में एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग रेखा 'AR = D' द्वारा दिखायी गयी है। यदि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होती तो माँग रेखा पड़ी रेखा होती, चित्र मे इसको टूटी रेखा (dotted line) 'AR = MR' द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है: एकाधिकृत मूल्य PQ > स्पर्द्धात्मक मूल्य MN से, तथा एकाधिकृत मात्रा OQ < स्पर्द्धात्मक मात्रा ON से।

प्रश्न

1. एकाधिकारी प्रतियोगिता से क्या अर्थ लगाया जाता है? एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य स्थितियों का निरूपण कीजिए।
   What is meant by monopolistic competition? Clearly explain the positions of short period and long period equilibrium of a firm under monopolistic competition.
2. एकाधिकारी प्रतियोगिता से क्या अर्थ लगाया जाता है? वस्तु-विभेदीकरण के उद्देश्यो का विस्तार से वर्णन कीजिए तथा ऐसी दशाओ मे दीर्घकालीन साम्य की स्थिति का निरूपण कीजिए।
   What is meant by monopolistic competition? Describe in detail the objectives of product differentiation and state the position of long run equilibrium under such conditions.

35

अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

(Pricing under Oligopoly)

अल्पाधिकार का अर्थ तथा उसकी विशेषताएं[1]

(THE CONCEPT OF OLIGOPOLY AND ITS MAIN CHARACTERISTICS)

अल्पाधिकार का अर्थ है थोड़े विक्रेताओं (few sellers) में प्रतियोगिता; अर्थात् अल्पाधिकार उस समय उत्पन्न होता है जबकि केवल थोड़े से विक्रेता होते हैं। यह 'एकाधिकार' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' और 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' दोनों से भिन्न होता है—'एकाधिकार' में केवल एक विक्रेता होता है जबकि 'पूर्ण प्रतियोगिता' और 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' में विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है। अल्पाधिकार के अन्तर्गत यदि फर्में 'एकरूप वस्तु' (homogeneous commodity) उत्पादित करती हैं तो ऐसी स्थिति को 'विशुद्ध अल्पाधिकार' (*Pure Oligopoly*) कहा जाता है; यदि उत्पादित वस्तु भेदित (differentiated) होती है, तो ऐसी स्थिति को 'भेदित अल्पाधिकार' (*Differentiated Oligopoly*) कहा जाता है।

'फर्मों का थोड़ा होना' (fewness of firms); इसके गहरे अभिप्राय (deeper *implications*) हैं जो कि नीचे दिये गये हैं :

1. फर्मों का थोड़ा होना 'फर्मों की पारस्परिक निर्भरता' (*mutual interdependence*) को जन्म देता है; एक फर्म की कार्यविधियाँ दूसरी फर्मों पर स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रियाएं (repercussions) कर देंगी। "एक अल्पाधिकार उद्योग की सभी फर्में एक ही नाव में होती हैं। यदि एक फर्म नाव को हिलाती है तो दूसरी फर्में प्रभावित होंगी और प्रायः वे सम्बन्धित फर्म को पहचान लेंगी तथा वे उससे बदला ले सकती हैं।"[2]

2. थोड़े विक्रेता होने का अभिप्राय है कि प्रत्येक विक्रेता कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादन करता है और पूर्ति के एक बड़े भाग पर नियंत्रण होने के कारण वह बाजार में वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, एक अल्पाधिकारी फर्म या विक्रेता के सामने मांग रेखा नीचे को गिरती हुई होती है अर्थात् मांग रेखा का ढाल ऋणात्मक (negative) होता है।

एक फर्म की माँग रेखा की स्थिति तथा ढाल अन्य फर्मों द्वारा लिये गये निर्णयों (decisions) पर निर्भर करता है। अन्य फर्मों की कीमतों में परिवर्तन इस एक फर्म की माँग रेखा की स्थिति तथा ढाल में परिवर्तन कर देगा। यदि फर्म यह जानती है कि उसके द्वारा कीमत व उत्पादन की मात्रा में

---

1 अल्पाधिकार के अर्थ को हम पहले 'बाजार के रूप' नामक अध्याय में बता चुके हैं। यहाँ पर उसकी हम, सुविधा के लिए, पुनः विवेचना कर रहे हैं, प्रस्तुतीकरण में थोड़ा अन्तर है।

2 "The firms of an oligopolistic industry are all in the same boat. If one rocks the boat, the others will be affected and in all probability will know the identity of the responsible firm and can retaliate."

परिवर्तन के परिणामस्वरूप अन्य फर्में किस प्रकार की प्रतिक्रिया करेगी तो इस फर्म के समक्ष माँग रेखा निर्धारित हो सकेगी; और तब लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत व उत्पादन की मात्रा स्पष्ट रूप से निश्चित की जा सकेगी। जब अन्य फर्मों की प्रतिक्रियाएँ अनिश्चित (uncertain) रहती है तो एक फर्म की माँग रेखा की स्थिति व ढाल का निर्धारण नही हो सकेगा।'

3. **पारस्परिक निर्भरता के कारण एक अल्पाधिकारी फर्म का वस्तु की कीमत पर नियंत्रण सीमित रहता है।** यदि एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को घटाती है तो प्रतियोगी फर्मों के ग्राहक टूट कर इसकी ओर आकर्षित होंगे और इसकी बिक्री बढेगी; बदले मे प्रतियोगी फर्में (rivals) कीमतें घटा देंगी। परिणामस्वरूप कीमत-युद्ध (price-war) होगा और सभी फर्मों को हानि होगी। इसके विपरीत यदि एक अल्पाधिकारी फर्म अपनी कीमत बढ़ाती है तो प्रतियोगी फर्मों की अपनी वर्तमान कीमतो पर ही बिक्री तथा लाभ मे वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, "एक कीमत-वृद्धि करने वाले अल्पाधिकारी को ऊँची कीमत के कारण स्वयं बाजार से निकलने का भय रहता है और इससे उसके प्रतियोगियो को लाभ होता है।"[1] उपर्युक्त कारणो से अल्पाधिकारी बाजार मे फर्मों की यह प्रबल प्रवृत्ति रहती है कि कीमतो को बार-बार (frequently) न बदला जाये। दूसरे शब्दो मे, एक अल्पाधिकारी उद्योग में **'कीमत-दृढ़ता'** ***(price-rigidity)*** रहती है।

यद्यपि कीमत-दृढता रहती है,परन्तु एक अल्पाधिकारी उद्योग में फर्में अपनी बिक्री बढाने के लिए **'गैर-कीमत प्रतियोगिता'** *(non-price competition)* का सहारा लेती है, अर्थात वे प्रसार व विज्ञापन पर बहुत धन व्यय करती हैं। परन्तु विज्ञापन की मात्रा तथा किस्म इस बात पर निर्भर करती है कि 'फर्में 'एकरूप वस्तुए' (homogeneous commodities) या 'भेदित-वस्तुएँ' (differentiated commodities) उत्पन्न कर रही है। उन अल्पाधिकारियो द्वारा विज्ञापन-प्रतियोगिता पर अधिक धन व्यय किया जाता है जो कि भेदित-वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वस्तु के विक्रय में वृद्धि के लिए वस्तु के गुण में सुधार के अतिरिक्त, डिजाइन, अनुसधान, इत्यादि पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है।

4. अल्पाधिकार का कोई एक **सामान्य सिद्धान्त** (general theory) **नहीं होता है।** इसके कारण हैं—(i) पारस्परिक निर्भरता के कारण अल्पाधिकारी-अनिश्चितता (Oligopolistic uncertainty) रहती है, अनेक दशाओं में एक अल्पाधिकारी इस सम्बन्ध मे निश्चित नही होता कि उसके अपने विभिन्न कार्यों के उत्तर में प्रतियोगी फर्मों की क्या प्रतिक्रियाएँ होगी। (ii) अल्पाधिकार विभिन्न स्थितियों के एक बहुत विस्तृत क्षेत्र (range) को शामिल करता है; प्रत्येक स्थिति की अपनी निजी व अनूठी (unique) विशेषताएं होती है। इन कारणो के परिणामस्वरूप, पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की भाँति, अल्पाधिकार का कोई एक 'समन्वित सामान्य सिद्धान्त' (unified general theory) नही होता है; **अल्पाधिकार का सिद्धान्त विशेष स्थितियो तथा व्यवहार-रूपों** (special cases and behaviour patterns) का **एकत्रीकरण** (collection) होता है।

5. **अल्पाधिकारी उद्योग फर्मों को गठबन्धन** (collusion) **के लिए प्रोत्साहित** (encourage) **करता है;** गठबन्धन फर्मों या विक्रेताओ के बीच सहयोग या समन्वय (co-operation or co-ordination) के रूप को बताता है। यद्यपि गठबन्धन की व्यवस्थाओ (arrangements) को बनाये रखना कठिन होता है, परन्तु फर्मों की गठबन्धन की ओर जाने की प्रवृत्ति सदैव रहती है। गठबन्धन की प्रवृत्ति या प्रेरणा (tendency or incentive) के निम्न कारण हैं—(i) गठबन्धन फर्मों के बीच प्रतियोगिता कम करके उन्हें एकाधिकारी रूप मे कार्य करने के योग्य बनाता है और परिणामस्वरूप फर्मों के मुनाफे बढ जाते हैं। (ii) गठबन्धन अल्पाधिकारी अनिश्चितता (uncertainty) को कम करता है, यदि फर्में मिल-जुलकर कार्य करती है तो एक फर्म के द्वारा अन्य फर्मों के हितों के खिलाफ कार्य करने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है (iii) उद्योग मे पहले से स्थिति

[1] "That is, a price-boosting oligopolist runs the risk of 'pricing himself out of the market' to the benefit of his rivals."

फर्मों के बीच गठबन्धन हो जाने से नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने में सहायता मिलेगी। परन्तु, जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, गठबन्धन को बनाए रखना अत्यन्त कठिन होता है; एक बार जब गठबन्धन अस्तित्व में आ जाता है तो लाभ की तीव्र इच्छा एक अकेली फर्म को समूह या गठबन्धन से अलग हो जाने एवं स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के लिए प्रेरित करती रहती है।

अल्पाधिकार का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF OLIGOPOLY)

ऊपर हमने अल्पाधिकार के अर्थ तथा उसके अभिप्रायो की विवेचना की है। अब हम अल्पाधिकार के वर्गीकरण को समझने की स्थिति मे हैं। सामान्यतया अल्पाधिकार का वर्गीकरण गठबन्धन की मात्रा (degree) तथा वस्तु की एकरूपता या विभिन्नता के आधार पर किया जाता है। जब अल्पाधिकारी फर्में एकरूप वस्तु का उत्पादन करती है तो **'विशुद्ध अल्पाधिकार'** (*pure oligopoly*) की स्थिति कही जाती है। यदि अल्पाधिकारी फर्में भेदित (differentiated) वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तो **'भेदित अल्पाधिकार'** (*Differentiated Oligopoly*) की स्थिति कही जाती है। अल्पाधिकारी स्थितियों का एक मोटा (broad) वर्गीकरण, जो कि प्रतिनिधि अल्पाधिकार माडलों (representative oligopolistic models) को बताता है, नीचे दिया गया है—

I **'विशुद्ध अल्पाधिकार'** (Pure Oligopoly)

गठबंधन वाला अल्पाधिकार (Collusive Oligopoly)
1. पूर्ण (अथवा औपचारिक) गठबधन वाला अल्पाधिकार · कार्टेल [Complete or Formal Collusive Oligopoly : Cartel]
2. अपूर्ण (अथवा अनौपचारिक) गठबंधन वाला अल्पाधिकार · कीमत-नेतृत्व [Incomplete or Informal Collusive Oligopoly : Price Leadership]
3. बिना-गठबंधन के अल्पाधिकार [Non-collusive Oligopoly]

II भेदित अल्पाधिकार (Differentiated Oligopoly)

अब हम मुख्य अल्पाधिकारी स्थितियों के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण की विवेचना करेंगे।

पूर्ण गठबंधन वाले अल्पाधिकार अर्थात 'कार्टेल' के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण
[PRICING UNDER PERFECT COLLUSIVE OLIGOPOLY, that is, PRICING UNDER CARTEL]

1. गठबंधन का विचार (The Concept of Collusion)

हम पूर्ण गठबंधन वाले अल्पाधिकार का एक अल्पकालीन विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं। गठबन्धन का अर्थ है विक्रेताओ या फर्मो मे एक प्रकार का सहयोग अथवा उनकी नीतियो मे समन्वय ताकि पारस्परिक निर्भरता की अनिश्चितताओ से बचा जा सके।[4] फर्मों की कम संख्या होने से गठबन्धन के एक ऊँचे अश (higher degree) को प्राप्त करना आसान होगा; इसके विपरीत फर्मों की संख्या अधिक होने पर गठबधन के एक ऊँचे अंश को प्राप्त करना कठिन होगा।

2. पूर्ण गठबंधन : कार्टल तथा उसके प्रकार (Perfect Collusion · Cartel and its Types)

पूर्ण गठबंधन का रूप मुख्यतया कार्टेल होता है। "कार्टेल एक दिये हुए उद्योग मे उत्पादकों का

---

[4] Collusion means a form of cooperation among sellers or firms, or coordination of their policies, so as to escape from the uncertainties of mutual interdependence.

एक औपचारिक (formal) संगठन होता है। इसका उद्देश्य कुछ प्रबन्धकीय निर्णय एवं व्यक्तिगत फर्मों के कार्यों को एक केन्द्रीय संगठन को इस आशा से हस्तान्तरित (transfer) करना होता है जिससे व्यक्तिगत फर्मों की लाभ की स्थिति में सुधार हो।"[5] एक केन्द्रीय संगठन को हस्तान्तरित किये जाने वाले कार्यों की सीमा विभिन्न कार्टेल-स्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। यहाँ पर हम कार्टेल की दो मुख्य स्थितियों को लेते हैं—(i) **केन्द्रीकृत कार्टेल** (*Centralized Cartel*) : इसके अन्तर्गत केन्द्रीय संगठन का सदस्य-फर्मों पर लगभग पूर्ण नियन्त्रण होता है। (ii) **बाजार सह-भागी कार्टेल** (*Market sharing Cartel*) : इसके अन्तर्गत केन्द्रीय संगठन को अपेक्षाकृत कम कार्य हस्तान्तरित किये जाते हैं; इस प्रकार का कार्टेल कुछ ढीला संगठन होता है।

3. अल्पकालीन विश्लेषण (Short-run Analysis)

यहाँ पर हम एक कार्टेल के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण का एक अल्पकालीन विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं। अल्पकालीन विश्लेषण का अभिप्राय है कि "व्यक्तिगत फर्मों के लिए अपने प्लांट के पैमानों (scales of plant) को बदलने का समय नहीं होता और न नयी फर्मों के लिए उद्योग में प्रवेश करना ही सम्भव होता है। विचाराधीन उद्योग में फर्मों की संख्या निश्चित होती है।

4. केन्द्रीकृत कार्टेल के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण (Pricing under Centralized Cartel)

केन्द्रीकृत कार्टेल गठबन्धन का पूर्णतम रूप (most perfect form) है। कार्टेल के इस रूप के अन्तर्गत कीमत, उत्पादन, बिक्री तथा मुनाफों का वितरण एक केन्द्रीकृत संगठन को सौंप दिया जाता है जिसमें सदस्य फर्मों का प्रतिनिधित्व होता है। कार्टेल की नीतियाँ सदस्य फर्मों के आपसी बातचीत व समझौते से तय होती है।

हमारा विश्लेषण निम्न मान्यताओं (assumptions) पर आधारित है : (*i*) केन्द्रीय संगठन कीमत व उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय करता है। (ii) यह अर्थात् केन्द्रीय संगठन फर्मों के लिए उत्पादन-कोटा (Output quotas) निर्धारित करता है। (iii) यह ऐसी नीतियाँ अपनाता है जिससे 'उद्योग का कुल लाभ' अधिकतम हो; अथवा यह कहा जा सकता है कि इसका उद्देश्य 'फर्मों के संयुक्त लाभों' (joint profits of the firms) को अधिकतम करना होता है। यह 'उद्योग के लाभ' के वितरण के सम्बन्ध में भी निर्णय करता है। (*iv*) उद्योग में दो फर्में हैं; अर्थात् कार्टेल
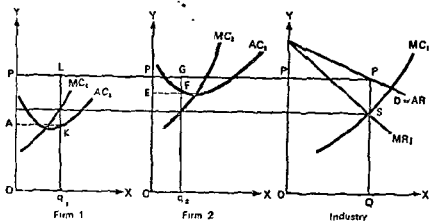
CENTRALIZED CARTEL : Maximisation of Joint Profits

चित्र 1

[5] "A cartel is a formal organization of the producers within a given industry. Its purpose is to transfer certain management decisions and functions of individual firms to a central association with the expectation that profit positions of individual firms will be improved."

एक द्वयधिकार (duopoly) है, अथवा यह कहिए कि उद्योग दो फर्मों का एक अल्पाधिकार (an oligopoly of two firms) है। मान्यताएँ (iii) तथा (iv) हमारे विश्लेषण को सरल बनाती है।

उपर्युक्त मान्यताओ के आधार पर यह स्पष्ट है कि कार्टेल एक विशुद्ध एकाधिकार (pure monopoly) की भांति कार्य करता है। दूसरे शब्दो मे, कार्टेल के लाभो के अधिकतम करने की समस्या अनिवार्य रूप से एकाधिकार की समस्या ही है क्योंकि वास्तव मे एक ही ऐजेंसी (या केन्द्रीय संगठन) सारे उद्योग के सम्बन्ध मे निर्णय लेती है। लाभ उद्योग की उस 'उत्पादन मात्रा व कीमत पर अधिकतम होगें जहा कि 'उद्योग का सीमान्त आगम' (MR_I) बराबर होगा 'उद्योग की सीमान्त लागत' (MC_I) के; अर्थात् उद्योग के लाभ के अधिकतम होने के लिए $MR_1 = MC_1$ की दशा पूरी होनी चाहिए।

केन्द्रीकृत कार्टेल के अन्तर्गत कीमत व उत्पादन के निर्धारण को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में 'उद्योग की मांग रेखा' को '$D = AR$' द्वारा दिखाया गया है; तथा उद्योग की 'सीमान्त आगम रेखा' को MR_1 द्वारा दिखाया गया है।[6] 'उद्योग की लागत रेखा' फर्म 1 तथा फर्म 2 की अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखाओ MC_1 तथा MC_2 की सहायता से निकाली जाती है; अर्थात् MC_1 तथा MC_2 का क्षैतिज योग (horizontal sum) उद्योग की सीमान्त लागत रेखा MC_I का निर्माण करता है।

उत्पादन के किसी भी एक स्तर के लिए केन्द्रीय संगठन उद्योग की लागत को न्यूनतम (minimum) करेगा; दूसरे शब्दो में,

> **"ऐसा करने (अर्थात् उद्योग की लागत को न्यूनतम करने) के लिए सदस्य फर्मों का 'उत्पादन का हिस्सा' या 'कोटा' (quota) इस तरह से वितरित (allocate) करना होगा कि 'अपने कोटा' को उत्पादित करते समय प्रत्येक फर्म की सीमान्त लागत दूसरी फर्मों के द्वारा 'अपने कोटा' को उत्पादित करते समय आने वाली सीमान्त लागत के बराबर हो।"[7]**

यदि व्यक्तिगत फर्मों को कोटा का वितरण किसी अन्य तरीके से किया जाता है तो उद्योग की लागत (अर्थात् सब फर्मों की सम्मिलित लागत) न्यूनतम नहीं हो पायेगी।[8]

कीमत P तथा उत्पादन OQ के स्तर पर कार्टेल उद्योग के लाभ को अधिकतम करेगा क्योंकि इस कीमत व उत्पादन पर उद्योग का सीमान्त आगम (MR_I) बराबर है उद्योग की सीमान्त लागत (MC_I) के; चित्र के सबसे दायें भाग मे बिन्दु S पर $MR_I = MC_I$ के है। प्रत्येक फर्म अपना वह कोटा उत्पादित करेगी जिस पर कि उसकी सीमान्त लागत (MC) बराबर हो उद्योग के सीमान्त आगम SQ के। अतः फर्म 1 का कोटा Oq_1 मात्रा है; इस उत्पादन की मात्रा पर $MC_I = MR_I$ के। फर्म 2 का कोटा Oq_2 मात्रा है; इस उत्पादन की मात्रा पर $MC_2 = MR_I$ के। दूसरे शब्दों में, जब फर्म 1 मात्रा Oq_1 तथा फर्म 2 मात्रा Oq_2 उत्पादित करती है तब उद्योग की लागत को न्यूनतम करने (और लाभ को अधिकतम करने) की यह दशा पूरी होती है—$MC_1 = MC_2 = MR_I$। यह स्पष्ट है कि

---

[6] The industry marginal revenue curve MRI which is derived from the industry (demand curve 'D=AR') shows how much each additional unit of sales by the cartel will increase total receipts.

[7] "This can be done by allocating quotas to the member firms in such a way that the marginal cost of each firm when producing its quota is equal to the marginal cost of every other firm when producing their respective quotas"

[8] The industry cost will be minimized only when the marginal cost is the same for each firm. In any other situation, the central agency could reallocate the same total output between the firms and reduce the cost. "For example, by taking one unit away from firm 1 with a marginal cost of Rs. 10 and assigning it to firm 2 with a marginal cost of Rs. 8, total cost goes down by Rs. 10 and up by Rs. 8, making total cost of the industry output lower"

बाजार (या उद्योग) का साम्य ठीक उसी प्रकार की स्थिति को बताता है जैसा कि एक एकाधिकारी के अन्तर्गत होती है; केन्द्रीकृत संगठन (central agency) का पूर्ण नियंत्रण होता है और वह एक एकाधिकार की भाँति कार्य करती है जिसके अन्तर्गत दो प्लान्ट (two plants) होते हैं, प्रत्येक प्लान्ट की एक दी हुई सीमान्त लागत रेखा होती है।

उद्योग के लाभ (या कुल संयुक्त लाभ) को चित्र 1 के सबसे दायें भाग के द्वारा नहीं बताया या निकाला जा सकता है; प्रत्येक फर्म के लाभ को मालूम करना होगा और फिर दोनों फर्मों के लाभों को जोड़कर उद्योग के कुल लाभ को मालूम किया जा सकेगा। कीमत P पर, जिस पर कि प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु को बेचती है, फर्म 1 क्षेत्रफल (area) AKLP के बराबर लाभ* उत्पन्न करती है; तथा फर्म 2 क्षेत्रफल EFGP के बराबर लाभ उत्पन्न करती है। उद्योग का कुल लाभ = AKLP + EFGP। चूंकि फर्मों की लागतों में अन्तर है, इसलिए फर्म 1 अधिक लाभ उत्पन्न करती है अपेक्षाकृत फर्म 2 के।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक फर्म का मालिक उतना ही लाभ प्राप्त करता है जितना कि वह वास्तव में उत्पन्न करता है। प्रत्येक फर्म को कितना लाभ मिलेगा यह उनमें पहले से किये गये आपसी समझौते व इकरार (prearranged agreement and contract) पर निर्भर करेगा। सदस्य फर्मों द्वारा उत्पन्न किये गये समस्त लाभ को एक जगह एकत्रित (pool) किया जाता है तथा उसके बाद केन्द्रीकृत संगठन उस लाभ को समझौते के अनुसार सदस्य फर्मों में बांटता है। निस्सन्देह (indeed) अधिक अकुशल (inefficient) फर्मों को, उनकी लागतों को देखते हुए, अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार के 'आदर्श' स्वभाव ('ideal' nature) के कार्टेल सामान्यतया व्यवहार में नहीं पाये जाते हैं। अनेक कठिनाइयों (difficulties) के कारण ये बहुत अस्थिर (highly unstable) होते हैं। मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं: (i) कुछ फर्मों की कार्टेल से अलग होने की प्रवृत्ति हो सकती है। उदाहरण में फर्म 1 अधिक लाभ उत्पन्न करती है अपेक्षाकृत फर्म 2 के; परन्तु समझौते के अनुसार फर्म 1 को कम लाभ मिल सकता है। चूंकि फर्म 1 की लागत कम है अपेक्षाकृत फर्म 2 के, फर्म 1 स्वतंत्र रूप से (independently) कार्य करके और उसी कीमत P पर अपनी वस्तु को बेचकर लाभ में वृद्धि कर सकती है और उत्पन्न किये गये समस्त लाभ को अपने पास रख सकती है। (ii) लागत में अन्तर न होने पर भी किसी एक फर्म की प्रवृत्ति या प्रेरणा (tendency or *incentive*) *कार्टेल से अलग होने की हो सकती है। निर्धारित कीमत के स्तर के आस-पास अल्पाधि*कारी उद्योग में से किसी एक फर्म की माँग-रेखा अधिक लोचदार (more elastic) हो सकती है अपेक्षाकृत उद्योग की माँग रेखा के। ऐसी स्थिति में, यदि अन्य सभी फर्में कार्टेल के समझौते को मान रही हैं, तो कार्टेल की कीमत से थोड़ी कम कीमत पर अधिक लोचदार माँग-रेखा वाली फर्म कार्टेल के अनेक ग्राहकों (customers) को तोड़ सकती है; और इस प्रकार से इस फर्म के लिए कार्टेल से अलग होने की प्रेरणा बनी रहेगी क्योंकि अलग होने से वह अपने उत्पादन की अधिक मात्रा को बेचकर अपने लाभ को बढ़ा सकेगी। स्पष्ट है कि यदि कार्टेल प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रण नहीं कर पाता है तो फर्मों की प्रवृत्ति कार्टेल से टूटकर अलग हो जाने की बनी रहेगी। इसके अतिरिक्त कार्टेल में फर्मों

* प्रति इकाई लाभ को मालूम करने के लिए कीमत (या औसत आगम Average Revenue) तथा औसत लागत (Average cost) के बीच अन्तर अर्थात् खड़ी दूरी को ज्ञात किया जाता है। चित्र 1 में फर्म 1 के लिए (उत्पादन स्तर Oq_1 पर) कीमत P तथा औसत लागत में अन्तर LK है; LK प्रति इकाई लाभ को बताता है। कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए प्रति इकाई लाभ LK को उत्पादन Oq_1 (या AK) से गुणा कर दिया जाता है; अर्थात् फर्म 1 द्वारा उत्पन्न किया जाने वाला कुल लाभ = LK × AK = AKLP। इसी प्रकार फर्म 2 द्वारा उत्पन्न किये जाने वाला कुल लाभ = GF × EE = EFGP।

की संख्या जितनी अधिक होगी कार्टेल की स्थिति को बनाये रखना उतना ही कठिन होगा।

5. बाजार सहभागी कार्टेल के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण (Pricing under the Market-sharing Cartel)

संयुक्त लाभों (joint profits) को अधिकतम करने के लिए कार्टेल की नीतियों को कड़ाई के साथ लागू करने में कठिनाइयों के परिणामस्वरूप कार्टेल का एक दूसरा रूप पाया जाता है जो कि संगठन का कुछ ढीला रूप होता है। दूसरा रूप है बाजार सहभागी कार्टेल, इस रूप के अन्तर्गत सदस्य फर्में बाजार में हिस्से (market sharing) के लिए सहमत हो सकती हैं, ऐसा वे कीमत के सम्बन्ध में समझौते या बिना समझौते के कर सकती हैं; प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अपने पास रखती है।

हम निम्नलिखित मान्यताओं (assumptions) को लेकर चलते हैं: (i) उद्योग की फर्में एकरूप (homogeneous) वस्तु उत्पादित करती हैं। वस्तु की एकरूपता के कारण वस्तु की एक कीमत (single price) होती है। (ii) उद्योग में केवल दो फर्में हैं। (iii) दोनों फर्मों की उत्पादन लागतें बराबर या समान (equal or identical) हैं। (iv) प्रत्येक सम्भव कीमत पर वे बाजार को आधा-आधा बाँटने के लिए सहमत हैं। ये सब मान्यताएँ विश्लेषण को सरल बनाने के लिए मान ली जाती हैं।

इन विशेष मान्यताओं के अन्तर्गत बाजार सह-भागी कार्टेल (market-sharing cartel) कीमत व वस्तु की मात्रा उसी प्रकार से निर्धारित करेगा जिस प्रकार से एक एकाधिकारी निर्धारित करेगा।
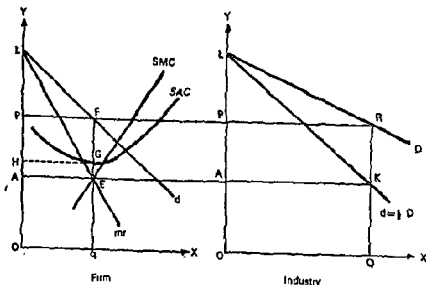
MARKET-SHARING CARTEL : Identical cost and equal market shares

चित्र 2

बाजार सहभागी कार्टेल के अन्तर्गत कीमत व उत्पादन निर्धारण की स्थिति को चित्र 2 में दिखाया गया है। चित्र 2 के दायें भाग में उद्योग (या बाजार) माँग रेखा को LD द्वारा दिखाया गया है। चूंकि फर्मों में बाजार को बराबर-बराबर अर्थात् आधा-आधा बाँटने का समझौता है, इसलिए प्रत्येक फर्म प्रत्येक सम्भव कीमत पर माँगी जाने वाली मात्रा के आधे की पूर्ति करेगी।

चित्र 2 के दायें भाग में Ld रेखा भी खींची गयी है जो कि, प्रत्येक कीमत पर, बाजार में माँगी जाने

वाली मात्रा की आधी मात्रा को बताती है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक फर्म के लिए माँग रेखा Ld होगी; अत. चित्र 2 के दाये भाग मे एक फर्म के लिए माँग रेखा को Ld द्वारा दिखाया गया है। चित्र के बायें भाग मे एक फर्म की माँग व लागत रेखाओं को दिखाया गया है। चूकि दो फर्में है और प्रत्येक फर्म की लागत समान है, इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए लागत रेखाएँ एक ही होंगी, चित्र मे इनको SAC तथा SMC रेखाओं द्वारा दिखाया गया है। चूकि प्रत्येक फर्म प्रत्येक सम्भव कीमत पर, बाजार की माँग का आधा हिस्सा पूरा करती है, इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए माँग रेखा Ld होगी जैसा कि चित्र 2 के बायें भाग मे दिखाया गया है। इस माँग रेखा Ld से सम्बन्धित सीमान्त आगम रेखा (marginal revenue curve) को चित्र के बायें भाग में mr-रेखा द्वारा दिखाया गया है; यह mr-रेखा भी प्रत्येक फर्म के लिए एक ही होगी।

एक समान सीमान्त आगम रेखाएँ तथा एक समान लागत रेखाओ के दिये हुए होने पर, प्रत्येक फर्म एक ही उत्पादन की मात्रा Oq पर अपने लाभ को अधिकतम करेगी; इस उत्पादन की मात्रा पर mr= SMC के है (जैसा कि चित्र के बायें भाग मे बिन्दु E बताता है); तथा प्रत्येक फर्म कीमत P (या Fq) निर्धारित करेगी, चूकि वस्तु एकरूप है इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए यह ही कीमत P होगी। प्रत्येक फर्म को प्रति इकाई लाभ FG होगा, अर्थात् प्रत्येक फर्म के लिए कुल लाभ = HGFP के। उद्योग का कुल लाभ इसका दुगुना होगा तथा उद्योग का कुल उत्पादन $OQ = 2 \times Oq$ के।

एक केन्द्रीकृत कार्टेल की भाँति, दी हुई मान्यताओ के अन्तर्गत, एक बाजार-सहभागी कार्टेल एक एकाधिकारी की भाति ही होगा। उद्योग का उत्पादन OQ तथा कीमत P वे ही होगे यदि उद्योग एक एकाधिकार होता। यदि एक एकाधिकारी दोनों फर्मों का मालिक होता और प्रत्येक फर्म को भिन्न प्लांट की भाँति समझता, तो उद्योग की सीमान्त लागत रेखा को प्राप्त किया जायेगा प्रत्येक फर्म की सीमान्त लागत के क्षैतिज योग (horizontal sum) द्वारा। एकाधिकारी के सामने उद्योग-माँग-रेखा LD होगी तथा उससे सम्बन्धित सीमान्त आगम रेखा Ld होगी। अत: एकाधिकारी की सीमान्त लागत रेखा उसकी सीमान्त आगम रेखा को उत्पादन के OQ स्तर पर (अर्थात् चित्र के दायें भाग मे बिन्दु K पर) काटेगी, अर्थात् इस उत्पादन OQ पर उद्योग की सीमान्त लागत = उद्योग के सीमान्त आगम के। कीमत P (या RQ) के बराबर होगी। प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने में उद्योग (या एकाधिकार) के लाभ को अधिकतम करेगी।

बाजार सहभागी कार्टेल के अस्तित्व (existence) के रास्ते में अनेक **कठिनाइयाँ या बाधक-तत्त्व** (difficulties or obstacles) हैं जिनके कारण वे प्राय: अस्थायी (unstable) होते हैं। मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित है—(i) यह आवश्यक नही है कि व्यक्तिगत फर्मों की उत्पादन लागतें समान हो (जैसा कि हमने माना है) प्राय: उनमें अन्तर होता है। लागतों में अन्तर की दशा में नीची लागत वाली फर्म कार्टेल से अलग होने की प्रवृत्ति रखेगी। (ii) कुछ फर्में जान-बूझकर या गलत अनुमान लग जाने के कारण अपने कोटा से अधिक उत्पादन कर सकती हैं और इस प्रकार वे अन्य फर्मों के बाजारो में हस्तक्षेप कर सकती हैं। (iii) व्यक्तिगत फर्मों के पास स्वतंत्र कार्य का जो अंश (degree) छोडा जाता है उससे उनकी कार्टेल से अलग होने की इच्छा बढ सकती है और उनके अलग होने की सम्भावना बहुत अधिक हो सकती है। (iv) यह आवश्यक नहीं है कि फर्मों मे बाजार का विभाजन बराबर-बराबर हो। उदाहरणार्थ, ऊँची क्षमता वाली फर्मों (high capacity firms) को नीची क्षमता वाली फर्मों की तुलना मे बाजार का एक बडा हिस्सा मिल सकता है। बाजार का विभाजन प्रादेशिक आधार (regional basis) पर हो सकता है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक फर्म एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र की मांग को पूरा कर सकती है।

संक्षेप मे, कार्टेल के निर्माण तथा उसके बने रहने के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की बाधाएँ रहती हैं, जैसे लागतो मे अन्तर, स्वार्थों मे टकराव, कुछ फर्मों के हिस्से मे घटिया क्षेत्रों का आना, एक दूसरे के प्रदेशों में हस्तक्षेप, इत्यादि। इन सब विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों के कारण कार्टेल प्राय: असफल

और अस्थायी रहते हैं। कुछ विशेष दशाओं को छोड़कर, प्रायः सरकारों द्वारा कार्टेल के विरुद्ध नियम भी बनाये जाते हैं।

अपूर्ण गठबन्धन या अनौपचारिक गठबंधन : कीमत नेतृत्व
[INCOMPLETE (OR INFORMAL) COLLUSION : PRICE LEADERSHIP]

1. प्रावकथन (Introduction)

अल्पाधिकारी फर्मों में 'अपूर्ण या अनौपचारिक गठबन्धन' (Incomplete or Informal Collusion) दो कारणों का परिणाम हो सकता है—(1) एक कार्टेल की स्थापना नहीं की जा सकती है क्योंकि वह गैर-कानूनी (illegal) है। अथवा, कुछ फर्में अपने कार्य करने की स्वतंत्रता का पूर्ण त्याग करने को तैयार न हो, कार्टेल के अन्तर्गत फर्मों की स्वतंत्रता पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है। (2) कार्टेल की अनुपस्थिति (absence) में, फर्मों का स्वार्थ इस बात में है कि वे कीमत-प्रतियोगिता में न उलझें। कार्टेल की स्थापना न हो सकने की दशा में फर्में आपस में एक 'गुप्त सज्जनता का समझौता' (a 'tacit gentleman's agreement') कर लेती हैं ताकि कीमत-युद्धों (price-wars) के प्रभावों से बचा जा सके। 'सुरक्षा के साथ बने रहने' (playing it safe) के लिए इस प्रकार के 'सज्जनता के समझौतों' में 'कीमत-नेतृत्व' (Price Leadership) एक प्रमुख रूप है।

वह फर्म 'कीमत-नेता' (price-leader) होती है जो कि उद्योग के बाजार की दशाओं का मूल्यांकन (assessment) करती है तथा एक कीमत निश्चित करती है जिसको अन्य सभी फर्में स्वीकार (agree or follow) करती है; परन्तु ध्यान रहे कि 'कीमत-नेता फर्म' तथा अन्य फर्मों में किसी प्रकार का 'कानूनी या औपचारिक समझौता' (legal or formal agreement) नहीं होता है, केवल एक 'गुप्त सज्जनता का समझौता' होता है। कीमत-नेतृत्व अल्पाधिकार उद्योग में कुछ लचीलापन (flexibility) ले आता है और एक अधिक वास्तविक व्याख्या (a more real explanation) प्रदान करता है।

एक अल्पाधिकारी उद्योग में एक फर्म 'कीमत-नेता' का कार्य दो रूपों में कर सकती है—(1) वह फर्म नेता-फर्म हो सकती है जो कि उत्पादन में अधिक कुशल (more efficient) हो, अर्थात् ऐसी फर्म हो सकती है जिसकी लागत बहुत कम हो। अत: कीमत-नेतृत्व का एक रूप **'एक नीची लागत वाली फर्म के द्वारा कीमत-नेतृत्व'** (Price-Leadership by a Low-Cost Firm) हो सकता है। (2) यह सम्भव है कि एक अल्पाधिकार उद्योग में एक फर्म बड़ी या प्रमुख (large or dominant) हो तथा अन्य फर्में छोटी हो। ऐसी स्थिति में कीमत-नेतृत्व का एक रूप **'प्रमुख या प्रधान फर्म के द्वारा कीमत-नेतृत्व'** (Price-Leadership by a Dominant Firm) हो सकता है।

उपर्युक्त दोनों रूपों का, चित्रों की सहायता से, नीचे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

2. एक नीची लागत वाली फर्म के द्वारा कीमत नेतृत्व (Price-Leadership by a Low-Cost Firm)

हम कुछ मान्यताओं (assumptions) को लेकर चलते हैं : (i) उद्योग में केवल दो फर्में है (अर्थात् द्वयधिकार duopoly है)। (ii) फर्मों में इस बात का गुप्त समझौता (tacit agreement) है कि दोनों बाजार में बराबर बराबर के हिस्सेदार हैं; अर्थात् प्रत्येक फर्म के लिए बाजार का आधा हिस्सा निर्धारित किया गया है। (iii) वस्तु एक-रूप (homogeneous) है। (iv) दोनों फर्मों के लागत-ढाँचे में अन्तर है, अर्थात् एक फर्म की लागत दूसरी से कम है।

चित्र 3 में, माना कि फर्म नं. 1 ऊंची लागत वाली फर्म है और उसकी अल्पकालीन औसत लागत तथा सीमान्त लागत रेखाएँ SAC_1 तथा SMC_1 हैं। फर्म नं. 2 नीची लागत वाली फर्म है और उसकी लागत रेखाएँ SAC_2 तथा SMC_2 हैं।

चित्र 3 में AD बाजार-माँग वक्र (market demand curve) है, AD से सम्बन्धित सीमान्त आगम रेखा (marginal revenue curve) Ad है। चूंकि (मान्यता न. (ii) के अनुसार)

प्रत्येक फर्म के लिए बाजार का आधा हिस्सा निर्धारित है, इसलिए Ad रेखा प्रत्येक फर्म के लिए माँग रेखा भी है। प्रत्येक फर्म के लिए इस माँग रेखा Ad से सम्बन्धित सीमान्त आगम रेखा को चित्र में mr रेखा द्वारा दिखाया गया है।
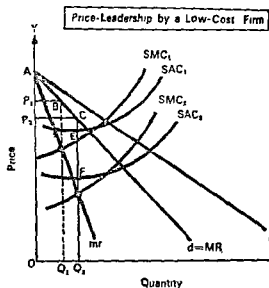
चित्र 3

ध्यान देने से पता चलता है कि कीमत के सम्बन्ध मे हित-विरोध (conflict of interest) है। ऊँची लागत वाली फर्म P_1 (या BQ_1) कीमत लेना चाहेगी और वस्तु की Q_1 मात्रा उत्पादित करना चाहेगी। इसके विपरीत नीची लागत वाली फर्म P_2 (या CQ_2) कीमत लेना चाहेगी और Q_2 मात्रा का उत्पादन करना चाहेगी।

चूंकि नीची लागत वाली फर्म, ऊँची लागत वाली फर्म की तुलना मे, कम कीमत पर वस्तु बेच सकती है, इसलिए ऊँची लागत वाली फर्म के लिए नीची लागत वाली फर्म के द्वारा निर्धारित कीमत (अर्थात् P_2) पर वस्तु को बेचने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रहता है। इस प्रकार नीची लागत वाली फर्म कीमत का नेतृत्व करने लगती है, और P_2 कीमत निर्धारित हो जाती है। इस कीमत P_2 पर नीची लागत वाली फर्म अपने लाभ को अधिकतम कर लेती है और उसको उत्पादन की प्रति इकाई पर CF के बराबर लाभ प्राप्त होता है। ऊँची लागत वाली फर्म को P_2 (या CQ_2) कीमत पर अपेक्षाकृत कम लाभ प्राप्त होता है; अर्थात् उसको प्रति इकाई पर CE के बराबर लाभ मिलता है।

3. प्रमुख या प्रधान फर्म के द्वारा कीमत नेतृत्व (Price-Leadership by a Dominant Firm)

एक अल्पाधिकारी उद्योग मे एक फर्म या एक से अधिक फर्म बहुत बड़ी हो सकती है। विश्लेषण की सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि केवल एक फर्म ही बहुत बड़ी या प्रमुख फर्म है, अन्य सभी फर्में छोटी है। उत्पादन-क्षमता की पिछली या वर्तमान बचतों (past or current economies of capacity), वित्तीय शक्ति (financial strength) या केवल पहले आरम्भ करने (early start) के कारण एक बड़ी फर्म 'प्रमुख फर्म' का दर्जा प्राप्त कर सकती है। दूसरे शब्दों में, कुशलता तथा नीची लागत के परिणामस्वरूप एक फर्म प्रमुखता (dominance) की स्थिति प्राप्त कर सकती है, तो इस दृष्टि से 'प्रमुख फर्म द्वारा कीमत-नेतृत्व' वास्तव मे 'नीची लागत वाली फर्म द्वारा कीमत-नेतृत्व' का ही एक भिन्न रूप (variant) कहा जा सकता है।

छोटी फर्मों का अस्तित्व (existence) बड़ी या प्रमुख फर्म के लिए उपयोगी रहता है क्योंकि वे (अर्थात् छोटी फर्में) उद्योग को एक स्पर्धात्मक उद्योग (competitive industry) का रूप प्रदान करती है और इस प्रकार अल्पाधिकारी उद्योग 'ट्रस्ट-विरोधी नियमों' (antitrust laws) से बचा रहता है। एक गुप्त समझौते (tacit understanding) द्वारा प्रमुख फर्म वस्तु की कीमत निर्धारित करती है और छोटी फर्मों को इस बात की आज्ञा देती है कि निर्धारित कीमत पर वे वस्तु की जितनी मात्रा चाहें बेच सकती हैं। इसके बाद शेष बाजार की माँग की पूर्ति प्रमुख फर्म द्वारा की जाती है।

ऐसी व्यवस्था से प्रत्येक छोटी फर्म की स्थिति उसी प्रकार की हो जाती है जिस प्रकार की एक स्पर्धात्मक उद्योग मे एक फर्म की स्थिति होती है। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक छोटी फर्म के

सामने एक पूर्णतया लोचदार माँग-वक्र (perfectly elastic demand curve) होता है; प्रत्येक छोटी फर्म के लिए बाजार को कीमत दी हुई होती है और फर्म, बिना बाजार-कीमत को प्रभावित किये हुए, जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। इसलिए अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए फर्म वह मात्रा उत्पादित करती है जिस पर सीमान्त लागत (न केवल सीमान्त-आगम के बराबर होती है बल्कि) कीमत के बराबर भी होती है; अर्थात्, प्रत्येक छोटी फर्म के लिए सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आगम (MR) = कीमत (Price or AR)।

सभी छोटी फर्मों को मिलाकर उनकी कुल पूर्ति रेखा को, उनके सीमान्त लागत रेखाओं के क्षैतिज जोड़ (horizontal summation of their marginal cost curves) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी पूर्ति रेखा को चित्र 4 में ΣMC द्वारा दिखाया गया है। यह पूर्ति रेखा बताती है कि सभी छोटी फर्में मिलकर बाजार में प्रत्येक सम्भव कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा की पूर्ति करेंगी।

चित्र 4

अब हम 'प्रमुख फर्म' के सामने पायी जाने वाली माँग-रेखा पर विचार करते हैं; चित्र 4 में इसको Pd रेखा द्वारा दिखाया गया है। प्रश्न यह उठता है कि इस माँग रेखा Pd को कैसे निकाला जाता है? चित्र में 'बाजार माँग रेखा' (market demand curve) AD है जो कि बताती है कि उपभोक्ता प्रत्येक सम्भव कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा बाजार में खरीदेंगे। रेखा ΣMC यह बताती है कि सभी छोटी फर्में मिलकर प्रत्येक सम्भव कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा बेचेंगी। सभी सम्भव कीमतों पर इन दोनों रेखाओं (अर्थात् AD तथा ΣMC) के बीच जो क्षितिजीय अन्तर (horizontal difference) पाये जाते हैं वे यह बताते हैं कि प्रमुख फर्म उन कीमतों पर वस्तु की कितनी मात्रा बेच सकती है। अब हम इस कथन को और अधिक स्पष्ट करते हैं। माना कि प्रमुख फर्म कीमत P निर्धारित करती है। इस कीमत पर (या इससे ऊँची कीमत पर) छोटी फर्में बाजार की समस्त माँग की पूर्ति कर लेंगी और प्रमुख फर्म के लिए बिक्री की कोई सम्भावना नहीं रह जायेगी। P_1 कीमत पर छोटी फर्में वस्तु की P_1L मात्रा बेचेंगी और प्रमुख फर्म के लिए LD मात्रा बेचने को रह जायेगी। प्रमुख फर्म की वस्तु की माँग कीमत-अक्ष (price-axis) तथा मात्रासूचक-अक्ष (quantity-axis) के साथ उचित सम्बन्ध में लाने के लिए हम बिन्दु E इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं ताकि $P_1E = LD$। इस प्रकार की क्रिया को अनेक कल्पित मूल्यों (assumed prices) के सन्दर्भ (reference) में दोहराया जा सकता है। ऐसे निर्धारित किये हुए सभी बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा Pd होगी और यह प्रमुख फर्म के सामने पायी जाने वाली माँग-रेखा होगी।

अब हम लाभ अधिकतम करने वाली कीमत और उत्पत्ति की मात्रा के निर्धारण की विवेचना करते हैं। प्रमुख फर्म की सीमान्त-आगम रेखा MR_d है तथा उसकी सीमान्त-लागत रेखा SMC_d है। प्रमुख फर्म कीमत P_2 और उत्पादन q_d निर्धारित करेगी क्योंकि इस कीमत व उत्पादन पर प्रमुख फर्म का सीमान्त आगम (MR_d) = सीमान्त लागत (SMC_d), और फर्म अपने लाभ को अधिकतम

कर सकेंगी। प्रत्येक छोटी फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए वस्तु की उतनी मात्रा उत्पादित करेगी जहाँ पर सीमान्त लागत बराबर हो सीमान्त आगम के, और प्रत्येक छोटी फर्म का सीमान्त आगम बराबर होगा कीमत P के। बिन्दु R पर सभी छोटी फर्मों की सीमान्त लागत (ΣMC) बराबर है निर्धारित कीमत P_2 के। अतः छोटी फर्मों के लिए मिलकर कुल उत्पत्ति बराबर होगी q_s के। उद्योग की कुल उत्पत्ति $= q_d + q_s = Q$। प्रमुख फर्म के लिए लाभ की मात्रा = (कीमत P_2 तथा q_d उत्पत्ति पर इसकी औसत लागत के बीच अन्तर) × (मात्रा q_d)। प्रत्येक छोटी फर्म का लाभ = (कीमत P_2 तथा सम्बन्धित उत्पत्ति पर इसकी औसत लागत के बीच अन्तर) × (उसकी उत्पत्ति की मात्रा)। चित्र 4 मे औसत-लागत रेखाओ को नही दिखाया गया है ताकि चित्र मे रेखाओ का अनावश्यक जमघट (undue cluttering) न हो।

प्रमुख फर्म के मॉडल के अनेक रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, दो या अधिक बड़ी फर्में छोटी फर्मों के एक समूह से घिरी हुई हो सकती है, ऐसी अवस्था मे छोटी फर्में एक या समस्त बडी फर्मों की ओर कीमत-नेतृत्व के लिए देख सकती हैं। बडी फर्में सामूहिक रूप से इस बात का अनुमान लगा सकती हैं कि छोटी फर्में विभिन्न कीमतो पर वस्तु की कितनी मात्राएँ बेच सकेंगी; इसके पश्चात् बड़ी फर्में बचे हुए बाजार का, अनेक सम्भव तरीको मे से किसी भी तरह से, विभाजन कर सकती हैं।

4. कीमत-नेतृत्व की कठिनाइयाँ व सीमाएँ (Difficulties and Limitations of Price Leadership)

वास्तविक जीवन मे कीमत-नेतृत्व की अनेक कठिनाइयाँ तथा सीमाएँ होती है। कुछ कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं

(1) **यदि 'कीमत-नेता' (Price-Leader) द्वारा ऊँची कीमत निर्धारित की जाती है तो अन्य फर्में 'कीमत में अप्रत्यक्ष कमी' (indirect price cuts) करके अपनी बिक्री को बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं।** कीमत मे अप्रत्यक्ष कमी के कई रूप हो सकते हैं; जैसे, फर्में निर्धारित कीमत पर बिक्री दिखाकर क्रेताओ को छूट (rebate) के रूप मे द्रव्य की कुछ मात्रा वापस कर सकती हैं; फर्में क्रेताओ से वस्तुओ की कीमतें किश्तों (instalments) मे ले सकती हैं; इत्यादि। इस प्रकार फर्में क्रेताओ को कीमत मे छूट या रियायतें (rebates and concessions) दे सकती है। इनका सामना करने के लिए कीमत-नेता फर्म स्पष्ट रूप से वस्तु की कीमत को कम कर सकती है। ऐसी परिस्थितियों में कीमत-नेतृत्व असफल हो सकता है।

(2) निर्धारित कीमत पर वस्तु को बेचते हुए भी, **छोटी फर्में गैर-कीमत प्रतियोगिता (non-price competition) का सहारा लेकर अपनी बिक्री को बढ़ाने का प्रयत्न कर सकती हैं।** गैर-कीमत प्रतियोगिता का अभिप्राय है विज्ञापन तथा प्रचार (advertisement and publicity) पर फर्में अधिक धन व्यय करके अपनी बिक्री को बढाने का प्रयत्न कर सकती हैं। परिणामस्वरूप कीमत-नेता फर्म भी गैर-मूल्य प्रतियोगिता पर अधिक धन व्यय करके अपनी बिक्री को बढाने का प्रयत्न करेगी। ऐसी परिस्थितियो मे कीमत-नेतृत्व का बना रहना कठिन हो जाता है।

(3) **फर्मों की लागतो मे अन्तर होने के कारण भी कीमत-नेतृत्व का बना रहना कठिन हो जाता है।** यदि कीमत-नेता फर्म की लागत नीची है और वह नीची कीमत निर्धारित करती है तो छोटी फर्में बुरा मान सकती है क्योंकि उनको लाभ बहुत कम होगा अपेक्षाकृत कीमत-नेता के। इसके विपरीत यदि कीमत-नेता फर्म की उत्पादन-लागत ऊँची है और वह ऊँची कीमत निर्धारित करती है, तो अन्य फर्में 'कीमत मे अप्रत्यक्ष कमी' कर सकती हैं, या नयी फर्मों के प्रवेश की सम्भावना बढ सकती है।

बिना गठबंधन के अल्पाधिकार : कोनेदार माँग रेखा का सिद्धान्त

(NON-COLLUSIVE OLIGOPOLY : THEORY OF KINKED DEMAND CURVE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

अल्पाधिकार के अन्तर्गत यदि फर्में स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है और किसी प्रकार के गुप्त या

स्पष्ट गठबंधन (tacit or open collusion) में नही होती, तो भी एक संतुलन कीमत मौजूद हो सकती है। एक मुख्य विशेषता यह होती है कि अल्पाधिकार के अन्तर्गत वस्तु की कीमतों की प्रवृत्ति 'दृढ़' (rigid) या 'कड़े' (sticky) रहने की होती है। इसका अभिप्राय है कि एक सीमा (range) के अन्दर लागत या मांग दशाओं में परिवर्तन होने पर भी कीमतों में परिवर्तन नहीं होता।.

'दृढ़ कीमतों' या 'कड़ी कीमतों' के होने के कई कारण (causes) होते हैं जो कि इस प्रकार हैं—(i) बिना-गठबन्धन के अल्पाधिकार के अन्तर्गत एक फर्म की अपनी क्रियाओं के उत्तर में दूसरी फर्मों की प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध मे अनिश्चितता (uncertainty) होती है। दूसरे शब्दों मे, बिना-गठबन्धन के अल्पाधिकार के अन्तर्गत एक फर्म के सामने 'अनिश्चितता' तथा 'अनिर्धारणीय माँग-रेखा' ('indeterminate' demand curve) होती है। अत एक बार संतोषजनक कीमत निर्धारित हो जाने के बाद, अनिश्चितता के डर के कारण, फर्म उसमें परिवर्तन नही करना चाहती हैं। (ii) यह सम्भव है कि वर्तमान कीमत अनेक 'संघर्षों' (conflicts) तथा 'कीमत-युद्धों' का परिणाम हो। अत. अनुभव के आधार पर, कोई भी फर्म वर्तमान कीमत मे परिवर्तन नही करना चाहेगी। (iii) फर्में कीमतों में परिवर्तन न करके प्राय 'गैर-कीमत प्रतियोगिता' (non-price competition) का सहारा लेती है। गैर-कीमत प्रतियोगिता का अर्थ है कि वे वस्तुओ के गुण व रूप में परिवर्तन करती हैं, विज्ञापन तथा प्रसार पर अधिक व्यय करके वस्तु की बिक्री को बढाने का प्रयत्न कर सकती है, परन्तु वे आसानी से कीमतो में परिवर्तन नही करती हैं। (iv) वर्तमान कीमत पर उपभोक्ताओ के दिमागों मे तथा वस्तु में एक प्रकार का रिश्ता या सम्बन्ध-सा स्थापित हो जाता है; कीमत मे परिवर्तन करके (विशेषतया कीमत में वृद्धि करके) फर्में इस सम्बन्ध या रिश्ते को खतम नही करना चाहती ताकि स्थिति संघर्ष-रहित (smooth) बनी रहे। (v) वर्तमान कीमत नीची कीमत हो सकती है ताकि नयी फर्मों का प्रवेश रुका रहे या सम्भावित प्रतियोगिता (potential competition) का डर कम रहे। अत फर्में वर्तमान कीमत मे परिवर्तन नही करना चाहेंगी।

अत: अल्पाधिकार के अन्तर्गत एक सीमा तक 'कीमतो की दृढ़ता' बनी रहती है। पाल एम. स्वीजी (Paul M. Sweezy) ने 'कीमत-दृढ़ता' की व्याख्या करने के लिए एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे **'कोनेदार मांग-रेखा का सिद्धान्त'** (Theory of Kinked Demand Curve) कहा जाता है। यह सिद्धान्त बताता है कि एक अल्पाधिकारी फर्म 'कोनेदार माँग रेखा' का सामना करती है; इसीलिए इस सिद्धान्त का नाम 'कोनेदार मांग-रेखा का सिद्धान्त' पड़ गया।

2. मान्यताएं (Assumptions)

कोनेदार माँग रेखा का सिद्धान्त, अल्पाधिकार के अन्य सिद्धान्तो की भांति, फर्मों के व्यवहार के सम्बन्ध मे कुछ विशेष मान्यताओं पर आधारित है; और उन मान्यताओ के ढाँचे (framework) के अन्तर्गत ही यह सिद्धान्त सही उतरता है। इस सिद्धान्त की मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. फर्में यह जानती हैं कि कीमत-युद्धो से किसी को लाभ नही होगा। दूसरे शब्दों मे, यह मान लिया जाता है कि अल्पाधिकारी उद्योग 'परिपक्व अवस्था में' (mature) होता है; ऐसा वस्तु-विभेद (product-differentiation) के साथ हो सकता है या बिना वस्तु-विभेद के हो सकता है। अत. बिना किसी गठबन्धन के उद्योग, 'एक कीमत अथवा कीमत-समूह' (a price or a cluster of prices) स्थापित कर सकता है जो सब फर्मों के लिए संतोषजनक समझी जाती है।

   यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नही करता है कि वर्तमान कीमत कैसे निर्धारित होती है; यह तो केवल इस बात की व्याख्या करता है कि वर्तमान कीमत, एक बार स्थापित हो जाने के बाद, 'दृढ़' (rigid) क्यो रहती है।

2. यह मान लिया जाता है कि यदि एक फर्म अपनी कीमत को कम करती है तो अन्य फर्में उसकी नकल (follow) करेंगी और उसी प्रकार को कमियाँ (cuts) कीमतें मे करेंगी

ताकि वे बाजार में अपने हिस्से को बनाये रख सकें। अतः वस्तु की कीमत में कमी करने से एक फर्म को कोई खास लाभ नहीं होगा, और वह केवल अपने बाजार के हिस्से को ही बनाये रख पायेगी या अपनी बिक्री (sales) में बहुत ही थोड़ी वृद्धि कर पायेगी।

3. यह मान लिया जाता है कि यदि एक फर्म कीमत में वृद्धि करती है तो अन्य फर्में उसकी नकल नहीं करेंगी और कीमत में वृद्धि नहीं करेंगी। "कीमत-बढ़ाने वाली फर्म के ग्राहक अब सापेक्षिक रूप से (relatively) नीची कीमत वाली फर्मों की तरफ चले जायेंगे और कीमत बढ़ाने वाली फर्म बाजार में अपने हिस्से का पूरा भाग नहीं, तो कम से कम एक भाग, अवश्य खो बैठेगी।"[10]

3. कोनेदार माँग रेखा का अर्थ तथा उसके अभिप्राय (The Concept and Implications of a Kinked Demand Curve)

ऊपर दी गयी मान्यताओं में से मान्यता नम्बर 2 तथा नम्बर 3 का परिणाम यह होता है कि वर्तमान कीमत (existing price) पर एक फर्म की माँग रेखा में 'तीव्र मोड़' (sharp bend) या 'एक कोना' (a corner or a kink) आ जाता है। दूसरे शब्दों में, एक अल्पाधिकारी फर्म *'एक कोनेदार माँग रेखा' का सामना करती है। ऐसी एक माँग रेखा को चित्र 5(a) में दिखाया गया है; माँग रेखा* dkD_1 [जो ठोस लाईन (solid line) द्वारा दिखायी गयी है] के बिन्दु K पर 'कोना' (kink) है।

चित्र 5(a) में एक अल्पाधिकारी फर्म के सामने माँग रेखा dKD_1 बिन्दु K पर 'कोना' रखती है और यह कोना कीमत P पर है, तथा कीमत P शुरू की संतुलन कीमत (initial equilibrium price) है। यह कीमत P दी हुई है, परन्तु यह कीमत कैसे निर्धारित होती है इस बात की व्याख्या यह सिद्धान्त (अर्थात् 'कोनेदार माँग रेखा का सिद्धान्त') नहीं करता है।

यदि एक फर्म अपनी कीमत को घटाती है [चित्र 5(a) में कीमत को P से घटाकर P_2 करती है], तो मान्यता नम्बर 2 के आधार पर अन्य फर्में भी कीमत घटायेंगी, फर्म के सामने माँग रेखा बेलोचदार (inelastic) होगी, जैसा कि चित्र 5(a) में KD_1 रेखा है। ऐसी स्थिति में कीमत घटाने वाली फर्म
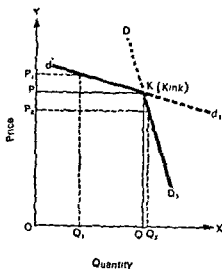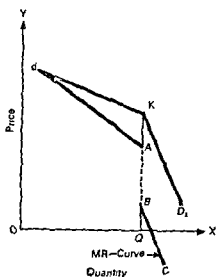
चित्र 5

[10] "The customers of the price-raising firm will shift to the other now relatively lower-priced firms and the price-raising firm will lose a part, if not all, of its share of the market."

की बिक्री में वृद्धि बहुत अमहत्त्वपूर्ण या बहुत मामूली होगी जैसा कि चित्र में QQ_2 मात्रा बताती है। दूसरी ओर, यदि फर्म कीमत को बढ़ाती है [चित्र 5(a) में P से बढ़ाकर P_1 कर देती है] तो मान्यता नम्बर 3 के आधार पर अन्य फर्में कीमतें नहीं बढ़ायेंगी, फर्म के सामने माँग रेखा अत्यधिक लोचदार (highly elastic) होगी जैसा कि चित्र मे dK रेखा है। ऐसी स्थिति में कीमत-बढ़ाने वाली फर्म की बिक्री में बहुत महत्त्वपूर्ण कमी हो जायेगी जैसा कि चित्र 5 (a) में QQ_1 मात्रा बताती है। इस प्रकार मान्यता नम्बर 2 तथा मान्यता नम्बर 3 के परिणामस्वरूप, एक अल्पाधिकारी फर्म के सामने माँग रेखा प्रारम्भिक संतुलन कीमत P से नीची कीमतों पर बेलोचदार हो जाती है, तथा कीमत P से ऊँची कीमतों पर माँग रेखा अत्यधिक लोचदार हो जाती है। दूसरे शब्दों मे, प्रारम्भिक कीमत P अर्थात् 'कोना' (kink) K पर, माँग की लोच में एकदम परिवर्तन (radical change) हो जाता है। प्रारम्भिक संतुलन कीमत P मे परिवर्तन करने से फर्मों को कोई लाभ नहीं होगा, अर्थात् कीमत P 'दृढ़' (rigid) या 'कड़ी' (sticky) बनी रहती है।

वास्तव में कोनेदार माँग रेखा dKD_1 दो भिन्न माँग रेखाओं से बनी है—ये दो भिन्न माँग रेखाएँ dd_1 तथा DD_1 हैं जैसा कि चित्र 5(a) में दिखाया गया है। अधिक लोचदार माँग रेखा dd_1 अल्पाधिकारी फर्म की वस्तु की माँग को बताती है, जबकि यह मान लिया जाता है कि बाजार में अन्य सभी फर्में अपनी कीमतों को स्थिर (constant) रखती हैं। दूसरे शब्दों मे, dd_1 'मार्शल की माँग रेखा' (Marshallian demand curve) है जो कि 'अन्य बातों के स्थिर रहने' ('other things remaining constant' or '*ceteris paribus*') की दशा के अन्तर्गत निकाली जाती है। 'कम लोचदार माँग रेखा' (less elastic demand curve) अर्थात् 'बेलोचदार माँग रेखा' (inelastic demand curve) DD_1 उसी एक फर्म की वस्तु की माँग को बताती है, जबकि यह मान लिया जाता है कि बाजार में सभी फर्में एक साथ कीमत में परिवर्तन करती हैं। जब सभी फर्में एक साथ कीमतें घटाती हैं तो कोई भी एक फर्म अपनी बिक्री को, बाजार में किसी भी दूसरी फर्म की बिक्री मे कमी के परिणामस्वरूप (at the expense of any other firm in the market), नहीं बढ़ा सकती है; दूसरे शब्दों में, फर्म बाजार में केवल अपने हिस्से को ही बनाये रख सकेगी; अतः रेखा DD_1 बाजार की माँग में एक फर्म के हिस्से को बताती है (the curve DD_1 is a share of the market curve)। दोनों माँग रेखाओं (अर्थात् dd_1 तथा DD_1) के कटाव (intersection) पर 'कोना' (kink) बन जाता है; एक अल्पाधिकारी फर्म कोनेदार माँग रेखा dKD_1 का सामना करती है। अतः कोनेदार माँग रेखा dKD_1 का ऊपर का भाग 'मार्शल की माँग रेखा' (Marshallian Demand Curve) है, जबकि dKD_1 का नीचे का भाग DK_1 बाजार की माँग में फर्म के हिस्से (a share of the market curve) को बताता है अर्थात् नीचे का भाग 'चेम्बरलिन की माँग रेखा' (a Chamberlinian Demand Curve) है।

अब हम एक अल्पाधिकारी फर्म की 'सीमान्त आगम रेखा' (marginal revenue curve) की विवेचना करते हैं। फर्म की 'कोनेदार माँग रेखा' (या 'कोनेदार औसत आगम रेखा' kinked average revenue curve) से सम्बन्धित सीमान्त आगम रेखा dABC है जैसा कि चित्र 5 (b) में दिखाया गया है। औसत आगम रेखा या माँग रेखा में 'कोना' होने के कारण सीमान्त आगम रेखा, उत्पादन स्तर Q पर, असंतत (discontinuous) है जैसा कि चित्र 5(b) में AB हिस्सा (part) बताता है। चित्र से स्पष्ट है कि सीमान्त आगम रेखा का असंतत भाग AB (discontinuous part AB) या खाली भाग (gap) AB 'कोना' K के नीचे है; तथा उत्पादन स्तर Q पर कोना K है। सीमान्त आगम रेखा का भाग dA माँग रेखा के भाग dK से सम्बन्धित है; माँग रेखा का भाग dK अत्यधिक लोचदार है और इसलिए उससे सम्बन्धित सीमान्त आगम रेखा का भाग dA धनात्मक (positive) है। सीमान्त आगम रेखा का भाग BC माँग रेखा के भाग KD_1 से सम्बन्धित समझा जा सकता है; नीची कीमतों पर माँग रेखा का भाग KD_1 बेलोचदार (inelastic) है और इसलिए सीमान्त

आगम रेखा का भाग BC, एक बिन्दु के बाद, ऋणात्मक हो जाता है।

सीमान्त आगम रेखा मे खाली जगह (gap), माँग रेखा के अधिक लोचदार भाग से कम लोचदार भाग में 'एकदम परिवर्तन' (sudden change) के कारण उत्पन्न होता है। 'कोना' (kink) से ऊपर माँग रेखा जितनी अधिक लोचदार होगी तथा 'कोना' से नीचे माँग रेखा जितनी अधिक बेलोचदार होगी, उतनी ही अधिक 'खाली जगह' (gap) या 'असततता' (discontinuity) सीमान्त आगम रेखा मे होगी; तथा खाली जगह अधिकतम (maximum) हो जायेगी जबकि कोण (angle) dKD_1 $90°$ का (अर्थात् एक right angle) होगा।

4. **लागत दशाओं में परिवर्तन** (Change in Cost Conditions)

माना कि एक अल्पाधिकारी फर्म की अल्पकालीन औसत लागत तथा सीमान्त लागत रेखाएँ (short-run average cost and marginal cost curves) SAC_1 तथा SMC_1 है जैसा कि चित्र 6 मे दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि SMC_1 रेखा 'सीमान्त आगम रेखा' को उसके असतत भाग AB मे बिन्दु L पर काटती है। अतः उत्पादन Q तथा कीमत P फर्म के लिए अधिकतम लाभ करने वाले उत्पादन तथा कीमत है। **यदि उत्पादन कम रहता है Q से** तो 'सीमान्त आगम' अधिक होगा 'सीमान्त लागत' से और फर्म के लाभ मे वृद्धि की जा सकेगी उत्पादन को Q तक बढ़ाकर। **यदि उत्पादन अधिक रहता है Q से**, तो 'सीमान्त लागत' अधिक होगी 'सीमान्त आगम' से और फर्म का लाभ घटेगा। अत फर्म उत्पादन Q तथा कीमत P पर अपने लाभ को अधिकतम करती है। प्रति इकाई लाभ को कीमत P (अर्थात् KQ) तथा औसत लागत रेखा SAC_1 के बीच खड़ी दूरी के अन्तर (vertical difference) के द्वारा ज्ञात किया जायेगा।

माना कि अल्पाधिकारी फर्म की लागतें बढ़ जाती है (साधनो को अधिक कीमतें देने के कारण या किसी अन्य कारण से), तो फर्म की लागत रेखाएँ ऊपर को खिसक जायेंगी और माना कि वे SAC_2 तथा SMC_2 की स्थिति मे आ जाती है जैसा कि चित्र 6 मे दिखाया गया है। सीमान्त लागत रेखा SMC_2 सीमान्त आगम रेखा के असतत भाग (discontinuous segment) मे एक बिन्दु (M) पर काटती है, इसलिए सतुलन कीमत P तथा उत्पादन Q मे कोई परिवर्तन नही होगा। अतः जब तक सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा के असतत भाग मे काटती रहेगी, तब तक फर्म को अपनी कीमत या उत्पादन मे परिवर्तन करने की कोई प्रेरणा (incentive) नही होगी। इसी प्रकार से यदि फर्म की लागतें घट जाती हैं तो लागत रेखाएँ नीचे को खिसक जायेंगी, परन्तु जब तक सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा के असतत भाग में काटेगी तब तक कीमत-उत्पादन मे कोई परिवर्तन नही होगे।
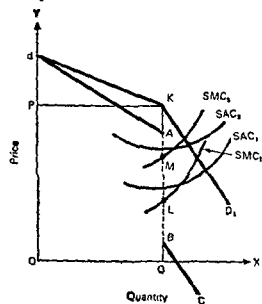
चित्र 6

यदि फर्म की लागतें बहुत ऊँची हो जाती हैं और सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा के भाग dA (चित्र 6 मे) को किसी बिन्दु पर काटती है तो अल्पाधिकारी फर्म अपने उत्पादन को उस सीमा तक घटायेगी जहा पर कि MR = MC के हो तथा अपनी कीमत को बढा देगी। इसी

प्रकार यदि फर्म की लागतें बहुत गिर जाती हैं ताकि सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा के भाग BC को किसी बिन्दु पर काटती है, तो अल्पाधिकारी फर्म कीमत को घटायेगी तथा उत्पादन को उस बिन्दु तक बढ़ायेगी जहाँ पर MR = MC के हो।

चूंकि सीमान्त आगम रेखा असंतत होती है, इसलिए फर्म की लागत रेखाओं को ऊपर चढ़ने या नीचे गिरने के लिए पर्याप्त जगह या क्षेत्र (room or range) रहता है, और लागतों में इस प्रकार वृद्धि या कमी होने पर भी कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता है जब तक सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा के असतत भाग मे काटती रहती है; (तथा जब तक फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करने का रहता है)। हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सतुलन कीमत मे ही परिवर्तन नहीं होता बल्कि उत्पादन की मात्रा मे भी परिवर्तन नहीं होता है, जब तक लागत रेखाएँ असतत क्षेत्र के अन्दर खिसकती रहती है।

5. मांग की दशाओं में परिवर्तन (Changes in Demand Conditions)

यदि लागतें समान रहती है और मांग की दशाओं में परिवर्तन होता है, तो भी, मांग मे एक बड़े क्षेत्र तक परिवर्तन (over a wide range of change in demand) होने पर भी, फर्म अपनी वस्तु की प्रारम्भिक सतुलन कीमत मे परिवर्तन नहीं करेगी। ऐसी स्थिति को चित्र 7 में दिखाया गया है।

चित्र 7 मे अल्पाधिकार के सामने 'प्रारम्भिक कोनेदार मांग रेखा' dKD_1 और उससे सम्बन्धित 'असंतत सीमान्त आगम रेखा' dABC है, SAC तथा SMC लागत रेखाएँ है और यह मान लिया जाता है कि उनमे कोई परिवर्तन नहीं होता है। प्रारम्भिक कोनेदार मांग रेखा dKD_1 के बिन्दु K पर 'कोना' है; अर्थात अल्पाधिकारी फर्म कीमत P तथा उत्पादन Q_1 को चुनती है; सीमान्त लागत रेखा SMC सीमान्त आगम रेखा के असंतत भाग AB में किसी एक बिन्दु पर काटती है, और लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत तथा उत्पादन क्रमशः (*respectively*) P तथा Q_1 है।

चित्र 7

माना कि वस्तु की मांग बढ़ जाती है और इसलिए मांग रेखा दायें को खिसक कर dK_2D_2 की स्थिति मे पहुँच जाती है; इस नयी मांग रेखा के बिन्दु K_2 पर 'कोना' है। इस नयी मांग रेखा से सम्बन्धित असंतत सीमान्त आगम रेखा dEFG है, इस नयी सीमान्त आगम रेखा का असंतत भाग EF है जो कि 'नये कोना' K_2 के ठीक नीचे है।
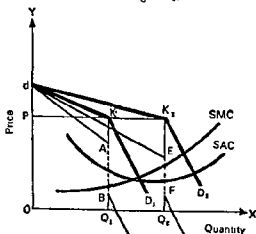
चूंकि लागत की दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है इसलिए लागत रेखाएँ SAC तथा SMC वह ही (same) रहती हैं। सीमान्त लागत रेखा SMC नयी सीमान्त आगम रेखा के असतत भाग EF मे किसी एक बिन्दु पर काटती है। अत. कीमत P में कोई परिवर्तन नहीं होता है अर्थात् वह स्थिर (constant) या 'दृढ़' (*rigid*) रहती है, परन्तु सतुलन उत्पादन (*equilibrium* output) Q_1 से बढ़कर Q_2 हो जाता है। [इसी प्रकार से यदि मांग घटती है, तो उत्पादन घट जायेगा परन्तु कीमत P वह ही रहेगी, उसमे कोई परिवर्तन नहीं होगा।]

परन्तु, यदि बाजार मांग मे बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है, तो मांग रेखा दायें को (dK_2D_2 की तुलना में) बहुत दूर खिसक जायेगी, और तब सीमान्त लागत रेखा SMC नयी सीमान्त आगम रेखा के भाग dE को किसी बिन्दु पर काटेगी, तथा ऐसी स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने के

लिए, फर्म कीमत में वृद्धि करेगी और उत्पादन में भी वृद्धि करेगी। [इसी प्रकार से यदि बाजार मांग में बहुत कमी हो जाती है तो फर्म कीमत तथा उत्पादन दोनों मे कमी कर देगी]।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष (conclusions) प्रस्तुत करते हैं :

1. कोनेदार मांग रेखा का सिद्धान्त बिना-गठबन्धन के अल्पाधिकार के अन्तर्गत 'कीमत-दृढ़ता' (price-rigidity) की व्याख्या करता है। परन्तु यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नही करता है कि प्रारम्भिक सतुलन कीमत किस प्रकार से स्थापित या निर्धारित होती है।
2. लागत तथा मांग में परिवर्तन होने पर भी वस्तु की कीमत में परिवर्तन नहीं होता है (अर्थात् कीमत 'दृढ़' रहती है) जब तक कि सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा के असंतत भाग मे से गुजरती है। लागत में परिवर्तन होने पर कीमत ही नहीं बल्कि उत्पादन भी स्थिर (constant) रहता है; परन्तु मांग में परिवर्तन होने पर कीमत तो स्थिर रहती है परन्तु उत्पादन स्थिर नहीं रहता, उत्पादन मे परिवर्तन होता है।
3. कीमत मे परिवर्तन (अर्थात् कीमत-दृढ़ता का टूटना) तब होता है जबकि मांग की दशाओं या लागत की दशाओ में बहुत बड़े या अधिक परिवर्तन हो।
4. कोनेदार मांग रेखा का सिद्धान्त अनेक अल्पाधिकारी माडलो (models) मे से एक है; और यह एक फर्म के कार्यों (actions) के उत्तर मे प्रतियोगी फर्मों (rival firms) के व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ विशेष मान्यताओं पर आधारित है।

6. कोनेदार मांग रेखा के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Kinked Demand Theory)

कोनेदार मांग रेखा के सिद्धान्त की आलोचना सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक (theoretical and empirical) दोनो आधारो पर की गयी है। मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित है—

1. कोनेदार मांग रेखा को प्रायः व्यक्तिगत (subjective) बताया जाता है—अर्थात् ऐसी मांग रेखा निर्णय लेने वाले के दिमाग मे मौजूद होती है। उसकी वास्तविक मांग रेखा, जो कि वस्तुगत (objective) होती है, भिन्न हो सकती है।[11]
2. 'कोना' (kink) इसलिए उत्पन्न होता है कि फर्म दो मान्यताओं—अर्थात, कीमत में वृद्धि की अन्य फर्मों द्वारा नकल (follow) नही की जायेगी; और दूसरे, कीमत में कमी की अन्य फर्मों द्वारा नकल की जायेगी—को मानकर चलती है।

परन्तु ये मान्यताएँ बहुत उचित (very sound) नहीं हैं क्योंकि यह तर्क दिया जा सकता है कि फर्म इन मान्यताओ को मानने के लिए तब ही तैयार होगी जबकि मांग और लागत को घटनाएँ केवल एक ही फर्म तक सीमित (restricted) हो। अन्य 'कम सीमित परिस्थितियों' (less restricted circumstances) में फर्म द्वारा इस प्रकार की मान्यताओ को मानने की सम्भावना बहुत कम होगी।

उदाहरणार्थ, माना कि फर्म को साधनों की कीमतो में वृद्धि का सामना करना पड़ता है, परन्तु यह वृद्धि सम्पूर्ण अल्पाधिकारी उद्योग के लिए हो सकती है, केवल एक फर्म के लिए नहीं। ऐसी स्थिति में फर्म द्वारा इस मान्यता को मानने की अधिक सम्भावना है कि उद्योग मे सभी फर्मों को उसी प्रकार की लागत-वृद्धियों का सामना करना पड़ेगा और इसलिए अन्य सभी फर्में भी अपनी वस्तु की कीमतों को बढ़ायेंगी।[12]

---

[11] "The kinked demand curve is often called subjective—it exists in the decision-maker's mind. His actual demand curve, the objective one, might be different."

[12] "For example, suppose that the firm experiences a rise in input prices that is not limited *[Contd.]*

अतः यह कहा जा सकता है कि कोनेदार माँग रेखा, यदि प्रयोग में लायी जा सकती है, तो वह सीमित परिस्थितियों के अन्तर्गत ही उपयोगी (useful) है।[13]

3. कोनेदार माँग रेखा का सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता कि प्रारम्भिक संतुलन कीमत कैसे स्थापित या निर्धारित की जाती है। यह तो प्रारम्भिक संतुलन कीमत या वर्तमान कीमत को दिया हुआ मान लेता है और उसके बाद वर्तमान कीमत की 'दृढ़ता' (rigidity) की व्याख्या करता है, यह 'एक कीमत-निर्धारक माडल' (a price determination model) नहीं है; और इस 'माडल' या 'सिद्धान्त' का यह एक गम्भीर दोष (serious flaw or defect) बताया जाता है।
4. कोनेदार माँग सिद्धान्त 'कीमत-दृढ़ता' की एक पूर्ण व्याख्या नहीं देता है। "निस्सन्देह, जनता द्वारा बदला लेने का डर, विदेश से प्रतियोगिता, उद्योग में सम्भावित प्रवेशकर्ताओं (potential entrants) का डर—ये सब बातें भी 'कीमत-दृढ़ता' की व्याख्या कर सकती हैं। कोने के अस्तित्व (existence) को सिद्ध करना कठिन होता है, अथवा इस बात को मालूम करना कठिन है कि यह व्यवहार में कितना प्रयोग में आता है।"[14]
5. प्रो स्टिगलर (Stigler) ने यह बताने का प्रयत्न किया कि कोनेदार माँग रेखा का सिद्धान्त व्यवहार में लागू नहीं होता है। प्रो. स्टिगलर ने सर्वेक्षण (survey) द्वारा यह देखा कि वास्तविक जीवन में 'कीमत-नेतृत्व माडल' के विभिन्न रूप अधिक पाये जाते हैं अपेक्षाकृत कोनेदार माँग रेखा के।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

यद्यपि इस सिद्धान्त की अनेक आलोचनाएँ की गयी हैं, परन्तु फिर भी यह सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है: "जिन बाजारों में किसी निश्चित कीमत-नेतृत्व का रूप उत्पन्न नहीं हुआ है या जिन बाजारों में प्रतियोगियों (rivals) की प्रतिक्रियाओं के प्रति बहुत अनिश्चितता पायी जाती है, ऐसे बाजारों में कोनेदार माँग सिद्धान्त अभी भी इस बात की एक अच्छी व्याख्या प्रदान करता है कि कीमतें क्यों 'दृढ़' या 'कड़ी' (sticky) रहती हैं।"[15]

प्रश्न

1. बिना वस्तु-विभेद के अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की विवेचना कीजिए; यह मान लीजिए की अल्पाधिकारी फर्मों में पूर्ण गठबन्धन है।
   Discuss the price and output determination under Oligopoly without product differentiation, assuming that there is perfect collusion among oligopolistic firms.
2. अल्पाधिकार के कीमत-नेतृत्व माडल की विवेचना कीजिए। क्या यह एक पर्याप्त व्याख्या प्रदान करता है?

---

to it alone, but is industrywise. The firm will be inclined to assume that all firms in the industry, having similar cost increases, will raise their selling price."

[13] "Hence, the kinked demand curve, if applicable at all, is useful only in a restricted set of circumstances."

[14] The kinked demand theory is not a complete explanation of price-rigidity. "Of course, fear of public reprisal, competition from abroad, or potential entrants into the industry may also explain price rigidity. It is difficult to prove the existence of the kink, or to estimate how commonly it applies."

[15] "The kinked demand curve continues to serve as a reasonable explanation of why prices are 'sticky' in markets where no established leadership pattern has arisen, and where considerable uncertainty remains regarding *rivals' reactions*."

Discuss the Price-Leadership model of Oligopoly. Is it an adequate explanation ?

3. अल्पाधिकार के 'कोनेदार मांग रेखा सिद्धान्त' की विवेचना कीजिए। क्या यह सिद्धान्त अल्पाधिकारी फर्मों के व्यवहार की एक सतोषजनक व्याख्या देता है ?

   Discuss the 'Kinked Demand Curve Theory' of Oligopoly. How far is this a satisfactory explanation of the behaviour of Oligopoly firms ?

   अथवा

   अल्पाधिकार के अन्तर्गत आप कीमत-दृढ़ता (Price-rigidity) की बात को कैसे समझायेंगे ?

   How would you explain the phenomena of price-rigidity under Oligopoly ?

4. द्वयाधिकार (duopoly) के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन निर्धारण की विवेचना कीजिए जबकि दोनों विक्रेताओं में पूर्ण गठबन्धन है।

   Discuss the price-output determination under duopoly when the two sellers have perfect collusion.

36

परस्पर सम्बन्धित कीमतें
(Interdependent Prices)

व्यक्तिगत वस्तुओं की कीमत-निर्धारक शक्तियों का अध्ययन करते समय अभी तक हमने यह मान लिया था कि किसी एक वस्तु की कीमत अन्य वस्तुओं की कीमतों से स्वतन्त्र (independent) होती है, परन्तु यह मान्यता या धारणा पूर्णतया सही नहीं है। वास्तव में कीमतें एक संगठन या व्यवस्था (system) की भाँति हैं जिसमें प्रत्येक कीमत अन्य सभी कीमतों से कम या अधिक मात्रा में सम्बन्धित होती है।[1] अतः वैज्ञानिक दृष्टि से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अन्य सभी वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन हो सकता है। परन्तु अधिकांश स्थितियों में अन्य वस्तुओं की कीमतों पर प्रभाव इतना कम होता है कि इस मान्यता में बहुत थोड़ी गलती होगी कि एक वस्तु की कीमत, बिना अन्य वस्तुओं की कीमतों से प्रभावित हुए, स्वतन्त्र रूप से परिवर्तित होती है। परन्तु कुछ स्थितियों में दो या दो से अधिक वस्तुओं की कीमतें इतनी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं कि किसी एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन अन्य वस्तुओं की कीमतों पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव डालता है। इस अध्याय में इस प्रकार से निकट सम्बन्धित वस्तुओं के मूल्यों का अध्ययन किया गया है।

संयुक्त माँग
(JOINT DEMAND)

संयुक्त माँग का अर्थ

किसी आवश्यकता की पूर्ति या किसी वस्तु के उत्पादन के लिए जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक साथ माँगी जाती हैं तो उनकी माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।

माँग के पारस्परिक सम्बन्ध मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं—प्रतिस्थापनात्मक (substitutive), तथा पूरक (complementary)। दो वस्तुएँ प्रतिस्थापनात्मक या स्थानापन्न (substitutes) होती हैं जबकि एक वस्तु की माँग में, वृद्धि (या कमी) के परिणामस्वरूप दूसरी वस्तु की माँग में कमी (या वृद्धि) होती है। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापनात्मक वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग मे परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में विपरीत दिशा में परिवर्तन उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, चाय तथा कॉफी, चीनी तथा गुड़ इत्यादि; यदि हम चीनी की अधिक माँग करते हैं तो गुड़ की माँग कम होगी। दो वस्तुएं पूरक होती हैं जबकि एक वस्तु की माँग में वृद्धि (या कमी) के परिणामस्वरूप दूसरी वस्तु की माँग में भी वृद्धि (या कमी) होती है। दूसरे शब्दों में, पूरक वस्तुओं मे से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में उसी प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, डबल रोटी तथा मक्खन—यदि डबल रोटी की माँग बढ़ती (या घटती) है तो मक्खन की माँग भी बढ़ेगी (या घटेगी)।

अतः टेकनीकल शब्दों में, संयुक्त माँग को इस प्रकार भी परिभाषित करते हैं—**जब दो या**

---

[1] The prices are like a system in which each is related to all the rest in greater or less degree.

दो से अधिक वस्तुएँ निकट रूप में पूरक होती हैं तो उनकी माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।[2]

चूंकि पूरक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु की माँग मे परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में उसी प्रकार का परिवर्तन करता है, इसलिए 'संयुक्त माँग' को कुछ अर्थशास्त्री निम्न प्रकार से भी परिभाषित करते है—**जब दो या दो से अधिक वस्तुओं को एक साथ प्रयोग किया जाता है, और जब एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में निश्चित रूप से उसी प्रकार का परिवर्तन करता है, तो ऐसी वस्तुओं की माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।**[3]

संयुक्त माँग प्रायः 'निकाली हुई माँग' या 'व्युत्पन्न माँग' (derived demand)[4] से सम्बन्धित होती है। किसी अन्तिम वस्तु (final commodity) के उत्पादन में कई उत्पत्ति के साधनों की माँग एक साथ होती है इसलिए इनकी माँग 'संयुक्त माँग' हुई, परन्तु इन उत्पत्ति के साधनों की माँग 'व्युत्पन्न माँग' भी होती है; इसलिए ऐसी संयुक्त माँग को **'व्युत्पन्न संयुक्त माँग'** (derived joint demand) कहते हैं।

[परन्तु ध्यान रहे कि 'संयुक्त माँग' तथा 'व्युत्पन्न माँग' दोनो के अर्थ अलग-अलग हैं, दोनों के अर्थों के सम्बन्ध मे कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। 'व्युत्पन्न माँग' इस बात से उत्पन्न होती है कि अन्तिम उपभोक्ताओं को उत्पादन की बाद की अवस्थाओं मे वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। यह उत्पादन की उत्तरोत्तर या अनुगामी अवस्थाओं (successive stages) को बताती है। संयुक्त माँग इस बात को बताती है कि कई वस्तुएं एक समय में (simultaneously) किसी एक अवस्था में माँगी जाती है या उपभोक्ता उनकी माँग स्वयं करता है। अत. इन दोनो मे भेद अनुगमन (succession) तथा समसामयिकता (simultaneity) के अन्तर में निहित है।"[5]]

संयुक्त माँग के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Pricing Under Joint Demand)

किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (अर्थात माँग) तथा सीमान्त लागत (अर्थात पूर्ति) द्वारा निर्धारित होता है। संयुक्त माँग की वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में एक मुख्य कठिनाई यह है कि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत पृथक-पृथक होती है परन्तु प्रत्येक की सीमान्त उपयोगिता अलग-अलग मालूम नहीं होती; एक उपभोक्ता तो 'वस्तुओं के संयोग की उपयोगिता' (utility of the combination of commodities) को ही जानता है, वस्तुओं की अलग-अलग सीमान्त उपयोगिता को नहीं।

---

[2] When two or more goods are closely complementary, they are said to be under 'joint demand'.

[3] When two or more products are used together, and when a change in the demand for one commodity definitely causes a similar change in the demand for the other, the products are said to be under 'joint demand'.

[4] जब किसी वस्तु या उत्पत्ति के साधन की माँग अप्रत्यक्ष रूप मे अन्तिम तथा पूर्ण वस्तु (final and finished commodity) की प्रत्यक्ष माँग के कारण उत्पन्न होती है तो ऐसी माँग को 'व्युत्पन्न माँग' या 'उत्पन्न माँग' (derived demand) कहते हैं। उदाहरणार्थ, उपभोक्ताओं द्वारा मकानों की माँग 'प्रत्यक्ष माँग' (direct demand) होती है। परन्तु एक मकान के निर्माण के लिए श्रम, ईंट, चूना, सीमेंट इत्यादि साधनों की माँग 'उत्पन्न माँग' होती है; इन उत्पत्ति के साधनों की माँग अन्तिम वस्तु (मकान) की माँग के कारण उत्पन्न होती है; इसलिए इन उत्पत्ति के साधनों की माँग को 'उत्पन्न माँग' कहा जाता है।

[5] "Derived demand arises from the fact that goods at more or less remote stages of production are needed by the final consumer. It refers to *the successive stages* of production. Joint demand refers to the fact that several articles may be demanded simultaneously *at any one stage*, or by the consumer himself. The distinction between the two, then rests in the difference between succession and simultaneity."

उदाहरणार्थ, डबल रोटी तथा मक्खन की सीमान्त लागतें अलग-अलग मालूम होती हैं जिनके आधार पर इनकी पूर्ति रेखाएं खींची जा सकती हैं; तथा उपभोक्ताओं को 'डबल रोटी तथा मक्खन के संयोग' से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता भी मालूम होती है, परन्तु उपभोक्ता यह नहीं जानता कि उसे डबल रोटी से पृथक रूप में तथा मक्खन से पृथक रूप में कितनी सीमान्त उपयोगिता मिलती है, अर्थात इन दोनो वस्तुओं की पृथक-पृथक मांग रेखाएं नहीं खींची जा सकती।

यदि हम किसी तरह से संयुक्त मांग वाली प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को पृथक रूप से मालूम कर सकें तो मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का प्रयोग करके प्रत्येक वस्तु का मूल्य निश्चित किया जा सकता है।

संयुक्त मांग वाली किसी भी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को पृथक रूप में ज्ञात करने के लिए अर्थशास्त्री एक रीति का प्रयोग करते हैं जिसे 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (Marginal Analysis Method) कहा जा सकता है। इस रीति में सर्वप्रथम हम संयुक्त मांग वाली वस्तुओं के एक संयोग को लेकर चलते हैं। इस संयोग से उपभोक्ता को एक निश्चित मात्रा में उपयोगिता प्राप्त होती है। अब इनमें से एक वस्तु को थोड़ी मात्रा (या 1 इकाई) से बढ़ाते हैं, जबकि दूसरी वस्तु (या वस्तुओं) की मात्रा को स्थिर या सीमित रखते हैं, इस दूसरे संयोग से उपभोक्ता को पहले संयोग की अपेक्षा कुछ बढ़ी हुई उपयोगिता प्राप्त होगी; यदि हम दूसरे संयोग की उपयोगिता में से पहले संयोग की उपयोगिता घटा दें तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता ज्ञात हो जायेगी। इस बात को संक्षेप में निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

1 डबल रोटी + 2 मक्खन = 3 रु. की उपयोगिता

1 डबल रोटी + 3 मक्खन = 4·25 रु. की उपयोगिता

अतः मक्खन की एक अतिरिक्त

इकाई की उपयोगिता = 1·25 रु. के

उपर्युक्त उदाहरण में मक्खन की सीमान्त उपयोगिता 1·25 रु. के बराबर है। इसी प्रकार से हम डबल रोटी की सीमान्त उपयोगिता भी ज्ञात कर सकते हैं यदि मक्खन की मात्रा स्थिर रखें तथा डबल रोटी की मात्रा को एक इकाई से बढ़ाएं।

इसी प्रकार से सीमान्त विश्लेषण की सहायता से उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त मांग में किसी भी एक साधन की सीमान्त उपयोगिता अर्थात सीमान्त उत्पादकता ज्ञात की जा सकती है। ध्यान रहे कि उत्पत्ति के साधनों के सम्बन्ध में हम सीमान्त उपयोगिता के स्थान पर सीमान्त उत्पादकता (*marginal productivity*) शब्द का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ:

10 श्रम + 50 क्विंटल कच्चा माल + 1,000 रु. पूंजी = 20 क्विंटल

जिसका मूल्य है, 2,000 रु.

11 श्रम + 50 क्विंटल कच्चा माल + 1,000 रु. पूंजी = 22 क्विंटल

जिसका मूल्य है 2,020 रु.

अतः 1 अतिरिक्त श्रम की सीमान्त उत्पादकता = 2 क्विंटल

जिसका मूल्य है 20 रु.

स्पष्ट है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता 20 रु. के बराबर है। इसी प्रकार हम किसी भी एक साधन को परिवर्तनशील रखकर तथा अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता पृथक रूप में ज्ञात कर सकते हैं।

इस प्रकार 'सीमान्त विश्लेषण रीति' की सहायता से संयुक्त मांग की वस्तुओं या उत्पत्ति के साधनों की पृथक-पृथक सीमान्त उपयोगिताएं या सीमान्त उत्पादकताएं ज्ञात हो जाती हैं (अर्थात् उनकी पृथक-पृथक मांग रेखाएं खींची जा सकती हैं); तथा उनकी सीमान्त लागतें हमें ज्ञात होती ही हैं (अर्थात उनकी पूर्ति रेखाएं खींची जा सकती हैं)। अतः इन वस्तुओं या साधनों के मूल्य उस बिन्दु

पर निर्धारित होगा जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता (या सीमान्त उत्पादकता) और सीमान्त लागत बराबर होती हैं।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि यदि संयुक्त माँग वाले साधनों के मिलने के अनुपात को टेक्नीकल कारणों से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है तो ऐसी दशा में पृथक रूप से साधनों की सीमान्त उपयोगिताएं अर्थात सीमान्त उत्पादकताएं ज्ञात नहीं की जा सकतीं।

अब हम यह देखेंगे कि **माँग तथा पूर्ति में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप संयुक्त माँग वाली वस्तुओं की कीमतों पर पृथक रूप से क्या प्रभाव पड़ेगा :** (i) माँग में परिवर्तन दोनों वस्तुओं की कीमतों को एक ही दिशा में परिवर्तित करेगा, अर्थात उपर्युक्त उदाहरण में, माँग बढ़ने से डबल रोटी तथा मक्खन दोनों की कीमतें बढ़ेंगी। (ii) यदि एक वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उसकी कीमत परिवर्तित होती है, तो दूसरी वस्तु की कीमत विपरीत दिशा में परिवर्तित होगी। उदाहरणार्थ, यदि गेहूँ की कमी के कारण डबल रोटी की पूर्ति कम हो जाती है और परिणामस्वरूप डबल रोटी की कीमत बढ़ जाती है तो डबल रोटी की माँग कम होगी; डबल रोटी की माँग कम होने से मक्खन की माँग भी कम होगी, परिणामस्वरूप मक्खन की कीमत कम हो जायेगी। स्पष्ट है कि डबल रोटी की पूर्ति में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उसकी कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु (मक्खन) की कीमत को विपरीत दिशा में परिवर्तित करता है।

उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त माँग या व्युत्पन्न संयुक्त माँग (derived joint demand) के सम्बन्ध में मार्शल ने एक विशेष स्थिति की विवेचना की है। यदि संयुक्त माँग वाले उत्पत्ति के साधनों में से एक साधन ऊँचा पारितोषण माँगता है, तो क्या वह साधन अपने उद्देश्य में सफल हो सकेगा?[4] मार्शल के अनुसार, यह साधन ऊँची कीमत प्राप्त करने में तब सफल हो सकेगा जबकि निम्न 4 दशाएं पूरी हों.

(i) वह साधन वस्तु विशेष के उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक होना चाहिए। उस साधन का अच्छा स्थानापन्न (substitute) कम कीमत (moderate price) पर प्राप्य नहीं होना चाहिए।

(ii) वह साधन अन्य साधनों के साथ जिस वस्तु को उत्पादित करता है, उस वस्तु की माँग बेलोचदार होनी चाहिए

(iii) उस साधन का मूल्य (अर्थात पारितोषण) कुल उत्पादन-लागत का केवल एक छोटा भाग होना चाहिए।

(iv) सहयोग करने वाले अन्य साधनों को दबाया (squeeze) जा सके, दूसरे शब्दों में, अन्य साधनों को कम पुरस्कार दिया जा सके। यदि साधन विशेष, ऊँची कीमत प्राप्त करने की दृष्टि से, अपनी पूर्ति कम करता है, तो अन्य सहयोग करने वाले साधनों की माँग बहुत कम हो जानी चाहिए ताकि उनको कम पुरस्कार दिया जा सके और इस प्रकार जो बचत हो उसे साधन विशेष की ऊँची कीमत के रूप में दिया जा सके।

यदि एक उत्पत्ति का साधन उपर्युक्त चारों दशाओं को पूरा करता है तो वह ऊँची कीमत प्राप्त करने में सफल होगा।

संयुक्त पूर्ति या संयुक्त लागत
(JOINT SUPPLY OR JOINT COST)

संयुक्त पूर्ति का अर्थ

कई दशाओं में एक वस्तु के उत्पादन में साथ-साथ कुछ अन्य वस्तुएं भी स्वतः

---

[4] Marshall puts the question as follows : "Let us inquire what are the conditions, under which a check to the supply of a thing that is wanted not for direct use, but as a factor of production of some commodity, may cause a great rise in its price." For this he lays down four conditions. —See Marshall's *Principles of Economics*, pp. 319-20.

(automatically) प्राप्त हो जाती हैं। यद्यपि इन वस्तुओं की माँग पृथक-पृथक होती है परन्तु उनका उत्पादन एक साथ ही होता है; इसलिए ऐसी वस्तुओं की पूर्ति संयुक्त होती है।

संयुक्त पूर्ति को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—**जब दो या दो से अधिक वस्तुएं, एक साथ ही, एक ही उत्पादन प्रक्रिया (process) में, स्वतः प्राप्त होती हैं तो ऐसी स्थिति को 'संयुक्त पूर्ति' या 'संयुक्त लागत' कहा जाता है। संयुक्त लागतों के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं को प्रायः 'संयुक्त वस्तुएं' (joint products) कहा जाता है।**[1] संयुक्त पूर्ति के उदाहरण है—रूई तथा बिनौला; भेड़ से ऊन तथा गोश्त; पत्थर का कोयला तथा गैस, इत्यादि।

ढीले रूप में, 'संयुक्त वस्तुओं' के अन्तर्गत प्रायः 'उप-उत्पादों' (by-products) को भी शामिल कर लिया जाता है, यद्यपि कड़े (strictly) रूप में ऐसा ठीक नहीं है। कड़े रूप में गैसोलीन, मिट्टी का तेल तथा चिकनाने वाले तेल वास्तव में संयुक्त वस्तुएं नहीं हैं। पैट्रोलियम की सफाई (refining) करने में सर्वप्रथम गैसोलीन उत्पादित होती है, परन्तु इस प्रक्रिया में मिट्टी का तेल तथा चिकनाने वाले तेल स्वत नहीं निकलते, बल्कि इनको प्राप्त करने के लिए और अधिक प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है और ऐसा करने में विशेष लागतें (special costs) उठानी पड़ती हैं। चूंकि 'उप-उत्पादों' को प्राप्त करने में विशेष लागतें उठानी पड़ती हैं, इसलिए दीर्घकाल में इन उप-उत्पादों को बेचने से इतना आगम (revenue) अवश्य प्राप्त हो जाना चाहिए जिससे कि ये विशेष लागतें निकल आयें।

संयुक्त पूर्ति के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination under Joint Supply)

संयुक्त वस्तुओं के उत्पादन की कुल लागत तो ज्ञात होती है, परन्तु उनकी लागतें अलग-अलग ज्ञात नहीं होतीं; संयुक्त वस्तुओं का उत्पादन एक साथ होता है, इसलिए उनकी लागतों को पृथक करना कठिन है। ऐसी परिस्थितियों में प्रश्न यह उठता है कि संयुक्त वस्तुओं की कीमतें किस प्रकार निर्धारित की जाएं ?

मूल्य निर्धारण के विश्लेषण की दृष्टि से संयुक्त वस्तुओं को प्रायः दो वर्गों में बाँटा जाता है—(i) ऐसी संयुक्त वस्तुएं जिनके अनुपातों को परिवर्तित किया जा सकता है; इसका एक उदाहरण प्रायः ऊन तथा गोश्त का दिया जाता है, हम ऐसी भेड़ों को पाल (rear) सकते हैं जो या तो ऊन अधिक दें या गोश्त अधिक दें, और इस प्रकार ऊन तथा गोश्त के अनुपात को परिवर्तित कर सकते हैं। एक दूसरा उदाहरण पत्थर का कोयला तथा गैस का है। (ii) ऐसी संयुक्त वस्तुएं जिनके अनुपात स्थिर रहते हैं, इनके अनुपातों को मनुष्य अपने प्रयत्नों से परिवर्तित नहीं कर पाता है। एक अच्छा उदाहरण रूई तथा बिनौला का दिया जाता है, एक दी हुई कपास की फसल से किस अनुपात में रूई तथा बिनौला प्राप्त होगा, प्रकृति द्वारा यह अनुपात लगभग स्थिर रहता है।

नीचे हम दोनों वर्गों की संयुक्त वस्तुओं के मूल्य निर्धारण का विवेचन करते हैं :

(i) उन संयुक्त वस्तुओं का मूल्य निर्धारण जिनका अनुपात परिवर्तित किया जा सकता है—ऐसी वस्तुओं की सीमान्त लागत को पृथक रूप से 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (Method of Marginal Analysis) द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इस रीति के अन्तर्गत हम सीमान्त लागत को ज्ञात करने के लिए एक वस्तु की उत्पादित मात्रा स्थिर रखकर दूसरी वस्तु की मात्रा को एक इकाई से बढ़ाते हैं और इसके पश्चात् कुल लागत में अन्तर ज्ञात कर लेते हैं। हम विश्लेषण के लिए पत्थर का कोयला तथा गैस का उदाहरण लेते हैं।

---

[1] When two or more products are automatically obtained at the same time in a single production process, such a case is known as 'joint supply' or 'joint cost'. Articles produced under the conditions of joint cost are usually called as 'joint products'.

माना कि,

8 इकाइयाँ पत्थर के कोयले की + 12 इकाइयाँ गैस की लागत = 300 रु.

प्रक्रिया (process) में थोड़ा परिवर्तन करने से,

8 इकाइयाँ पत्थर के कोयले की + 13 इकाइयाँ गैस की लागत = 320 रु.

अतः 1 इकाई गैस की लागत अर्थात् गैस की सीमान्त लागत = 20 रु.

सीमान्त लागत ज्ञात होने के पश्चात् वस्तु का मूल्य निर्धारण सरल हो जाता है।

परिवर्तनशील अनुपातों की संयुक्त वस्तुओं के मूल्य के सम्बन्ध मे अल्पकाल मे,

पूर्ण प्रतियोगिता मे कीमत = सीमान्त लागत (MC)

परन्तु दीर्घकाल मे मूल्य निर्धारण की समस्या हल नही होती क्योकि यह सम्भव नहीं है कि वस्तुओ की औसत लागत को पृथक रूप से ज्ञात किया जा सके, इसलिए यह नही कहा जा सकता कि दीर्घकाल मे कीमत प्रत्येक वस्तु की औसत लागत (AC) के बराबर होगी।

(ii) उन संयुक्त वस्तुओं का मूल्य निर्धारण जिनका अनुपात परिवर्तित नहीं किया जा सकता—ऐसी संयुक्त वस्तुओं की सीमान्त लागत पृथक रूप से ज्ञात नही की जा सकती। ऐसी स्थिति में *संयुक्त वस्तुओ के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध मे निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए :*

(अ) दीर्घकाल मे, संयुक्त वस्तुओ को बेचने से प्राप्त कुल आगम (total revenue) उनके उत्पादन की कुल लागत (total cost) के बराबर होना चाहिए। दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक वस्तु की कीमत इस प्रकार होनी चाहिए कि संयुक्त वस्तुओं की कुल पूर्ति बेचने से इतना विक्रय धन (sale proceeds) प्राप्त हो जाये जिससे कि कुल लागत निकल आये।

(ब) संयुक्त वस्तुओ मे से प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी माँग (अर्थात सीमान्त उपयोगिता) की सापेक्षिक शक्ति (strength) पर निर्भर करेगी। संयुक्त वस्तुओ मे से जिस वस्तु की माँग अर्थात सीमान्त उपयोगिता अधिक तीव्र होगी उसकी कीमत अधिक होगी।

उपर्युक्त बात को हम दूसरे शब्दों मे भी व्यक्त करते हैं। प्रत्येक वस्तु की कीमत 'यातायात क्या सहन कर सकेगा' (what the traffic will bear) के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होगी अर्थात इस बात से निर्धारित होगी कि वस्तु या सेवा बाजार मे क्या प्राप्त कर सकती है। रेलवे अपनी सेवाओं की दरों को इसी सिद्धान्त द्वारा निर्धारित करती है; वे हल्की तथा मूल्यवान वस्तुओ के लिए भाड़े की दर अधिक रखती हैं क्योंकि ये वस्तु ऊँची दरों को सहन कर सकती हैं।

(स) यह सम्भव हो सकता है कि संयुक्त वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु को बाजार मे बेचने योग्य बनाने के लिए कुछ विशेष लागतें (special costs) या परिवर्तनशील लागतें (variable costs or prime costs)) उठानी पड़ें। ऐसी दशा में वस्तु को बेचने से, अल्पकाल मे, कम से कम ये विशेष लागतें या परिवर्तनशील लागतें, अवश्य निकल आनी चाहिए; इस दृष्टि से ये लागतें वस्तु की निचली सीमा को निर्धारित करती हैं।

अब हम माँग में परिवर्तनों के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। माना कि दो संयुक्त वस्तुएं हैं। **अन्य बातों के समान रहते हुए, संयुक्त वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में उसी प्रकार का परिवर्तन करेगा, परन्तु दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन विपरीत दिशा में होगा।** इस सामान्य सिद्धान्त को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। हम 'रूई तथा बिनौला' की संयुक्त वस्तुओ का उदाहरण लेते है। माना कि अल्पकाल मे रूई की माँग मे अधिक वृद्धि हो जाती है, तो रूई की कीमत में उसी प्रकार का परिवर्तन होगा अर्थात् उसकी कीमत भी बढ़ेगी, रूई पर अधिक लाभ प्राप्त होने लगेगा, परिणामस्वरूप रूई का उत्पादन बढ़ेगा; परन्तु रूई के उत्पादन मे वृद्धि के साथ बिनौले का उत्पादन भी बढ़ेगा अर्थात बिनौले की पूर्ति बढ़ेगी जबकि उसकी माँग पहले के समान ही रहती है। ऐसी स्थिति मे बिनौलो की कीमत कम हो जायेगी। स्पष्ट है कि रूई की माँग मे वृद्धि से रूई की कीमत मे भी वृद्धि होती है परन्तु दूसरी वस्तु (बिनौले) की कीमत घटती है।

मिश्रित या प्रतिद्वन्द्वी माँग
(COMPOSITE OR RIVAL DEMAND)

मिश्रित या प्रतिद्वन्द्वी माँग का अर्थ

जब एक वस्तु दो या दो से अधिक प्रयोगों में माँगी जाती है, तो ऐसी माँग को मिश्रित माँग कहते हैं।[8] वस्तु की सीमितता के कारण विभिन्न प्रयोग वस्तु को अपनी ओर खींचने के लिए प्रतियोगिता करते है, इसलिए ऐसी माँग को 'प्रतिद्वन्द्वी माँग' या 'प्रतियोगी माँग' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, बिजली को रोशनी, पंखे, उद्योगों के चलाने, इत्यादि कई प्रयोगो में माँगा जाता है, इसलिए इसकी *माँग मिश्रित माँग हुई। लगभग सभी कच्ची वस्तुओं (raw materials)*, जैसे, कोयला, चमड़ा, ऊन, लोहा, चांदी इत्यादि की मिश्रित माँग होती है। इसी प्रकार लगभग सभी उत्पत्ति के साधनों (जैसे, श्रम, भूमि, पूजी) की माँग मिश्रित माँग होती है।

मिश्रित माँग वाली वस्तुओ के मूल्य निर्धारण में कोई कठिनाई नही होती। विभिन्न प्रयोगों मे वस्तु की माँगो को जोड़कर कुल माँग ज्ञात कर ली जाती है अर्थात वस्तु की कुल माँग रेखा खींची जा सकती है। वस्तु की सीमान्त लागत अर्थात पूर्ति रेखा ज्ञात रहती है। अत. वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारण होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति रेखाएं काटती हैं।

मिश्रित अथवा प्रतिद्वन्द्वी पूर्ति
(COMPOSITE OR RIVAL SUPPLY)

जब किसी आवश्यकता की पूर्ति कई वस्तुओं द्वारा की जा सकती है तो ऐसी वस्तुएं मिश्रित पूर्ति मे कही जाती हैं। दूसरे शब्दों में, जब दो या दो से अधिक वस्तुएं एक दूसरे की स्थानापन्न (substitutes) होती हैं तो वे मिश्रित पूर्ति मे कही जाती हैं। मिश्रित पूर्ति, मिश्रित माँग की उलटी होती है। मिश्रित माँग में एक वस्तु होती है जो कि **दो या दो से अधिक उद्देश्यों** में प्रयोग की जाती हैं। मिश्रित पूर्ति मे दो या दो से अधिक वस्तुएं होती हैं जो कि **एक उद्देश्य** के लिए प्रयोग की जाती है।[9] मिश्रित पूर्ति वाली वस्तुए किसी एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए आपस में प्रतियोगिता करती है, इसलिए इनको 'प्रतियोगी वस्तुए' (competitive goods) भी कहा जाता है। इन वस्तुओं की प्रतिद्वन्द्वी पूर्ति (rival supply) होती है। उदाहरणार्थ, पीने की आवश्यकता को चाय, कॉफी, का कोको द्वारा पूरा किया जा सकता है, अत: ये वस्तुए मिश्रित पूर्ति में हैं।

प्रतिस्थापन के सिद्धान्त (principle of substitution) के अनुसार प्रतियोगी वस्तुएं उस बिन्दु तक प्रयोग की जायेंगी जहाँ पर सीमान्त उपयोगिताएं (marginal utilities) या सीमान्त वास्तविक उत्पादकताए (marginal net products) उनकी कीमतों के बराबर हो। दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त वास्तविक उत्पादकता के बराबर होगी। चूंकि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत ज्ञात होती है इसलिए मिश्रित पूर्ति की वस्तुओं की कीमत उनकी सीमान्त लागत तथा सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त वास्तविक उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है।

प्रश्न

1. 'संयुक्त माँग' तथा 'मिश्रित माँग' मे भेद बताइए। संयुक्त माँग की परिस्थितियो के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण मे क्या कठिनाइयां उपस्थित होती है ?

---

[8] When a commodity is demanded for two or more different uses, the demand is said to be composite.

[9] Composite supply is the opposite of composite demand. In composite demand there is one product used for two or more purposes. In composite supply there are two or more products used for one purpose.

Distinguish between 'Joint Demand' and 'Composite Demand'. What are the difficulties of price determination under the conditions of Joint Demand ?

2. आप संयुक्त माँग से क्या समझते हैं ? संयुक्त माँग के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता ? संयुक्त माँग के अन्तर्गत एक उत्पत्ति का साधन किन दशाओं में ऊँची कीमत लेने में सफल हो सकता है ?

What do you understand by Joint Demand ? How is value determined under Joint Demand ? In what conditions a factor of production under Joint Demand can succeed in charging a high price ?

3. संयुक्त पूर्ति तथा मिश्रित पूर्ति के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। संयुक्त पूर्ति की दशाओं के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है ?

Distinguish between joint supply and composite supply. How is value determined under conditions of joint supply ?

खण्ड 5

साधन-मूल्य निर्धारण
(Factor-Pricing or Theory of Distribution)

37

वितरण के सिद्धान्त
(*Theories of Distribution*)

देश के कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय के उत्पादन में विभिन्न उत्पत्ति के साधन सहयोग देते हैं। प्रश्न यह उठता है कि प्रत्येक साधन को राष्ट्रीय आय में से कितना हिस्सा मिलेगा। दूसरे शब्दों में, साधनों के पुरस्कार (rewards or remunerations) अर्थात् उनकी कीमत किस प्रकार निर्धारित की जायेगी ?

वितरण के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता

सामान्यतया किसी साधन की कीमत उसी प्रकार निर्धारित होती है जिस प्रकार एक वस्तु की कीमत निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में, किसी साधन की कीमत, वस्तु की कीमत की भाँति, उसकी माँग तथा पूर्ति द्वारा निश्चित होती है।

परन्तु वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) तथा साधन-मूल्य-निर्धारण (factor pricing) में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर भी हैं जिनके कारण साधन-मूल्य-निर्धारण के एक पृथक सामान्य सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं—(i) किसी वस्तु की माँग प्रत्यक्ष रूप से उसकी उपयोगिता के कारण की जाती है। इसके विपरीत, साधन की माँग अप्रत्यक्ष अर्थात् व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है, साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है। (ii) किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन-लागत पर निर्भर करती है; परन्तु उत्पत्ति के साधनों की लागत का अर्थ अवसर लागत (opportunity cost) से लिया जाता है। एक साधन को किसी व्यवसाय में प्रयोग करने के लिए कम से कम इतना द्रव्य अवश्य देना पड़ेगा जितना कि उसे दूसरे वैकल्पिक प्रयोग में मिल सकता है; द्रव्य की यह मात्रा व्यवसाय की दृष्टि से साधन की लागत हुई। (iii) कुछ साधनों, जैसे श्रम, के सम्बन्ध में सामाजिक तथा मानवीय तत्त्वों को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

उपर्युक्त अन्तरों के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि साधन-मूल्य-निर्धारण वास्तव में वस्तु-मूल्य-निर्धारण का ही एक रूप है।

राष्ट्रीय आय के वितरण के सिद्धान्त

साधनों में राष्ट्रीय आय के वितरण अर्थात् साधनों के मूल्य-निर्धारण के प्रायः तीन सिद्धान्त बताये जाते हैं—(i) वितरण का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory of Distribution), (ii) सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Distribution), तथा (iii) आधुनिक सिद्धान्त—वितरण का माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त (Modern Theory—Demand and Supply Theory of Distribution)।

इनका विस्तृत विवेचन अग्र प्रकार है :

प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(CLASSICAL THEORY)

वितरण का प्रतिष्ठित सिद्धान्त एडम स्मिथ, रिकार्डो इत्यादि ने प्रतिपादित किया। इन अर्थशास्त्रियों ने वितरण का कोई एक सामान्य सिद्धान्त नही दिया बल्कि भूमि के लगान, श्रम की मजदूरी तथा पूंजी के ब्याज के अलग-अलग सिद्धान्त दिये।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय मे से सर्वप्रथम भूमि का लगान दिया जाता है, तत्पश्चात् श्रमिको को मजदूरी दी जाती है और अन्त में जो शेष बच रहता है वह साहसी को ब्याज या लाभ के रूप में प्राप्त हो जाता है।

रिकार्डो के अनुसार, लगान एक आधिक्य (surplus) है जो कि श्रेष्ठ भूमियो को सीमान्त भूमि के उत्पादन के ऊपर प्राप्त होता है। लगान देने के बाद राष्ट्रीय आय में से मजदूरो का हिस्सा दिया जाता है। मजदूरो का हिस्सा 'मजदूरी कोष' (wage fund) मे से दिया जाता है, मजदूरी केवल श्रमिको के जीवन-निर्वाह के बराबर दी जाती है। लगान तथा मजदूरी देने के बाद अन्त में जो बच रहता है वह ब्याज या लाभ हो जाता है।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त दोषपूर्ण है, इसकी मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार हैं—(i) यह साधनो के हिस्से अर्थात् उनकी कीमत के निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त (general theory) नही है; यह तो लगान तथा मजदूरी के निर्धारण के पृथक-पृथक सिद्धान्त देता है। (ii) यह सिद्धान्त 'वितरण के कार्यात्मक सिद्धान्त' (functional theory of distribution) पर कोई ध्यान नही देता। दूसरे शब्दो मे, पहले साधन विशेष की इकाइयों का पृथक रूप से पुरस्कार ज्ञात किया जाना चाहिए और तत्पश्चात् सब इकाइयो का पुरस्कार जोड़कर उस साधन के कुल वर्ग (class of the factor as a whole) का पुरस्कार ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु यह सिद्धान्त पहले साधन के कुल वर्ग का कुल हिस्सा ज्ञात करता है और इसके पश्चात् उसे साधन की विभिन्न इकाइयो में बांटता है, परन्तु यह तरीका उचित नही है।

उपर्युक्त दोषो के कारण प्रतिष्ठित सिद्धान्त को त्याग दिया गया।

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF DISTRIBUTION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त इस बात की सामान्य व्याख्या (general explanation) प्रदान करता है कि उत्पत्ति के साधनो के पुरस्कार (rewards or remunerations) अर्थात् उनकी कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 19वी शताब्दी के अन्त में जे. बी. क्लार्क (J. B. Clark), विक्स्टीड (Wicksteed), वालरस (Walras)), इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने किया; तत्पश्चात् श्रीमती जोन रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinson), हिक्स (Hicks) इत्यादि अर्थशास्त्रियो के हाथो इसका विकास हुआ।

2. सिद्धान्त का सामान्य कथन (General Statement of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त बताता है कि एक साधन की कीमत उसकी 'उत्पादकता' (productivity) पर निर्भर करती है तथा यह 'सीमान्त उत्पादकता' (marginal productivity) द्वारा निर्धारित होती है।

पहले हम उपर्युक्त कथन के पहले भाग पर ध्यान देते हैं। यहाँ पर हम इस बात की विवेचना करेंगे कि साधनो की कीमत उनकी उत्पादकता पर क्यो निर्भर करती है। किसी वस्तु की मांग प्रत्यक्ष रूप से उसकी उपयोगिता के कारण की जाती है। इसके विपरीत, एक साधन की प्रत्यक्ष रूप से, वस्तुओं

की भाँति, कोई उपयोगिता नहीं होती; साधन की अप्रत्यक्ष उपयोगिता होती है क्योंकि उसकी सहायता से वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, एक साधन की माँग 'व्युत्पन्न माँग' (derived demand) होती है; उसकी माँग इस बात पर निर्भर करती है कि वह क्या उत्पादन कर सकता है; अर्थात् साधनों की माँग उनकी 'उत्पादकता' पर निर्भर करती है। जिन साधनों की उत्पादकता अधिक होगी उनकी कीमत अधिक होगी तथा जिनकी उत्पादकता कम होगी उनकी कीमत कम होगी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पादकता साधनों के मूल्य-निर्धारण में क्यों महत्त्वपूर्ण होती है।

अब हम सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त के सामान्य कथन के दूसरे भाग पर ध्यान देते हैं। साधनों की कीमत उनकी 'उत्पादकता' पर निर्भर करती है; इस बात को अधिक निश्चित रूप से इस प्रकार कहा जाता है—**साधनों की कीमत 'सीमान्त उत्पादकता' द्वारा निर्धारित होती है।** यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि किसी साधन के मूल्य-निर्धारण में हम 'सीमान्त उत्पादकता' (Marginal Productivity) को ही क्यों महत्त्वपूर्ण मानते हैं और 'औसत उत्पादकता' (Average Productivity) को क्यों नहीं। इसका कारण है कि साधनों के प्रयोग की दृष्टि से सीमान्त उत्पादकता ही एक उत्पादक या फर्म के अधिकतम लाभ की स्थिति बतलाती या निर्धारित करती है। जिस प्रकार से एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) को बराबर करती है, उसी प्रकार से एक फर्म लाभ को अधिकतम करने के लिए साधन की सीमान्त उत्पादकता (MP अर्थात् Marginal Productivity) तथा 'साधन की सीमान्त लागत' (MFC अर्थात Marginal Factor Cost) को बराबर करती है।[1] [यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि एक उत्पादक जो कीमत एक साधन के लिए देता है वह उत्पादक की दृष्टि से साधन की लागत (Factor Cost) है तथा वह साधन की दृष्टि से पुरस्कार या आय (remuneration or income) है। अतः 'साधन की सीमान्त लागत' (Marginal Factor Cost) तथा 'साधन की सीमान्त आय' (Marginal Remuneration of the Factor) एक ही बात है।]

इस सिद्धान्त की आगे विवेचना करने से पहले यह उचित होगा कि हम 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' की मान्यताओं को जान लें।

3. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Marginal Productivity Theory)

इस सिद्धान्त की विवेचना करते समय प्रायः निम्न वस्तुएँ मान ली जाती हैं :

(i) यह मान लिया जाता है कि साधन के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है; साधन के क्रेता तथा विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं ताकि उनमें से कोई भी क्रेता या विक्रेता बड़ा या महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

(ii) यह भी मान लेते हैं कि साधन द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

(iii) यह मान लिया जाता है कि साधन की प्रत्येक इकाई एक रूप है, समान रूप से कुशल होती है तथा साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (Perfect substitutes) होती हैं

(iv) यह मान लेते हैं कि एक साधन परिवर्तनशील रहता है जबकि अन्य साधन स्थिर रहते हैं। [दूसरे शब्दों में, एक परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की कीमत को ज्ञात किया जाता है।]

(v) यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार (full employment) की स्थिति को मान लेता है।

---

[1] Just as a producer maximizes his profits when he equates marginal revenue (MR) and marginal cost (MC), he also maximizes profits if he equates the marginal productivity (MP) of each factor with its marginal cost, that is, with marginal factor cost (MFC).

(vi) यह मान लिया जाता है कि 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' (Law of Variable Proportions or Law of Diminishing Returns) क्रियाशील रहता है।

4. सीमान्त उत्पादकता के अभिप्राय (Implications of Marginal Productivity)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में 'सीमान्त उत्पादकता' मुख्य शब्द (key word) है; इसलिए इसके अर्थ तथा अभिप्रायों (meaning and implications) को पूर्णतया समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

सीमान्त उत्पादकता की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है : "अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन (total product) में जो वृद्धि होती है, उसे उस साधन की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) कहते हैं।"

सीमान्त उत्पादकता को निम्न तीन प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

(i) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity, i.e, MPP)

(ii) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity, i.e., MRP)

(iii) द्रव्य में सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य (Value of marginal physical productivity in terms of money); इसे संक्षेप में 'सीमान्त उत्पाद[1] का मूल्य' (Value of Marginal Product, i.e., VMP) कहते हैं; कुछ अर्थशास्त्री इसे 'सीमान्त मूल्य उत्पाद' (Marginal Value Product, i.e, MVP) कहते हैं।

इन तीनो विचारो का विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है :

(i) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity, i.e., MPP)—जब सीमान्त उत्पादकता को वस्तु की भौतिक मात्रा (physical quantity) मे व्यक्त किया जाता है तो उसे 'सीमान्त भौतिक उत्पादकता' (MPP) कहते हैं। **किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल भौतिक उत्पादन (total physical product) में वृद्धि को उस साधन की 'सीमान्त भौतिक उत्पादकता' कहते हैं, जबकि अन्य साधन स्थिर रखे जाते हैं।** उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् परिवर्तनशील अनुपातो के नियम (Law of Variable Proportions) के कारण प्रारम्भ मे परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढ़ती है, एक बिन्दु पर अधिकतम हो जाती है और तत्पश्चात् गिरने लगती है। दूसरे शब्दो मे, सीमान्त भौतिक उत्पादकता रेखा (MPP Curve) उल्टे U-आकार (Inverted U-Shape) की होती है जैसा कि चित्र 1 मे दिखाया गया है।
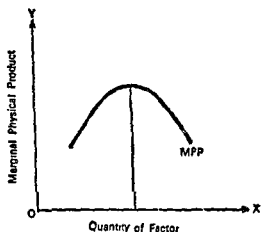
चित्र 1

(ii) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity)—वास्तव मे, एक

[1] ध्यान रहे कि 'उत्पाद' (product) तथा 'उत्पादकता' (productivity) का प्रायः एक ही अर्थ लिया जाता है; इसलिए इस अध्याय में कहीं 'उत्पाद' (product) तथा कहीं 'उत्पादकता' (productivity) शब्द का प्रयोग मिलने से विद्यार्थियों को किसी प्रकार का भ्रम नही होना चाहिए, दोनों का एक ही अर्थ है।

उत्पादक या फर्म के लिए सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है; उसके लिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसे इस भौतिक उत्पादन (physical output) को बेचने से कितना द्रव्य या आगम (money or revenue) मिलता है। फर्म इस बात में दिलचस्पी रखती है कि साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करने से उसके कुल आगम में कितनी वृद्धि होती है; दूसरे शब्दों में, वह 'सीमान्त आगम उत्पादकता' में दिलचस्पी रखती है। **अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखने पर, परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे उस साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) कहते हैं।**[3]

सीमान्त आगम उत्पादकता को एक दूसरी प्रकार से भी व्यक्त कर सकते हैं : **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को सीमान्त आगम (MR) से गुणा करने पर सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) प्राप्त हो जाती है।** संक्षेप में,

$$MRP = MPP \times MR$$

(iii) सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of marginal product, i.e., VMP) **या सीमान्त मूल्य उत्पादकता** (Marginal Value Product, i.e., MVP)—सीमान्त भौतिक उत्पादकता (*MPP*) को वस्तु (product) की कीमत से गुणा करने से 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (VMP) प्राप्त होता है। संक्षेप में,

$$VMP = MPP \times \text{price or AR}$$

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता में Price (AR) = MR,

इसलिए VMP = MPP × MR
= MRP

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में VMP तथा MRP एक ही होते हैं।

MPP, MRP तथा VMP के विचारों को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है :

साधन की इकाइयाँ (units of the factor)	कुल भौतिक उत्पाद (total physical product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (total revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP=MPP × Price)
20	100 इकाइयाँ	5 रु.	100×5 =500 रु.	—	—	—
21	104 इकाइयाँ	5 रु.	104×5 =520 रु.	(104 – 100) =4 इकाइयाँ	(520 रु. – 500 रु. =20 रु.	4 इकाइयाँ ×5 रु. =20 रु.

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए वस्तु (product) की अतिरिक्त इकाइयाँ (additional units) एक ही कीमत (अर्थात् 5 रु.) पर बिकेंगी, इस कारण पूर्ण प्रतियोगिता में MRP = VMP, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है, MRP तथा VMP दोनों 20 रुपये के बराबर हैं।

यदि अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है तो फर्म वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों को एक ही

---

[3] The increase in total revenue owing to the use of an additional unit of a variable factor is known as Marginal Revenue Product, when other factors are kept constant.

कीमत पर नहीं बेच सकती, उसे कीमत घटानी पड़ेगी। माना कि अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे फर्म अपनी वस्तु की 100 इकाइयाँ 5 रु. प्रति इकाई पर बेच सकती है। माना कि 104 इकाइयाँ बेचने के लिए उसे कीमत 5 रु. से घटाकर 4·95 रु. करनी पड़ती है; ऐसी स्थिति (अर्थात् अपूर्ण प्रतियोगिता) मे *MRP* तथा *VMP* एक समान नहीं होंगे; यह बात निम्न तालिका से स्पष्ट होती है :

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP = MPP × Price)
20	100 इकाइयाँ	5 रु.	100 × 5 = 500 रु.	—	—	—
21	104 इकाइयाँ	4·95 रु.	(104 × 4·95) = 514·80 रु.	(104 − 100) = 4 इकाइयाँ	(514·80 रु. − 500 रु.) = 14·80 रु.	(4 × 4·95 रु.) = 19·80 रु.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि MRP = 14·80 रु. और VMP = 19·80 रु.; अतः अपूर्ण प्रतियोगिता में MRP कम होती है VMP से।

5. औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के विचार (The Concepts of Average Gross Revenue Productivity, i.e., AGRP and Average Net Revenue Productivity, i.e., ANRP)

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के विचार के साथ हमें 'औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता' (AGRP) तथा 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) के विचारों को भी समझ लेना आवश्यक है।

$$\text{किसी साधन 'A' की औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता (AGRP)} = \frac{\text{कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue)}}{\text{साधन की इकाइयाँ (Total Units of Factor)}}$$

परन्तु यहाँ पर यह बात ध्यान रखने की है कि किसी फर्म का उत्पादन केवल एक साधन का परिणाम नहीं होता बल्कि फर्म का उत्पादन उस साधन को अन्य साधनों के साथ मिलाने से प्राप्त होता है। इस बात को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी साधन 'A' (माना श्रम) की मात्रा बढ़ाने मे जो कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue) प्राप्त होता है उसमे से कुछ आगम (revenue) अन्य साधनो (जैसे भूमि, पूजी, इत्यादि) के कारण होगा। अत: इस 'कुल या सम्पूर्ण आगम' में से यदि हम अन्य साधनो के आगम के हिस्से को निकाल दें तो हमें केवल साधन 'A' के कारण प्राप्त 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) प्राप्त हो जायेगा। इस 'कुल विशुद्ध आगम' मे साधन 'A' की कुल इकाइयो से भाग देने पर उस साधन की 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (Average Net Revenue Productivity, i.e., ANRP) प्राप्त हो जायेगी; संक्षेप मे,

साधन A की औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP)

$$= \frac{\text{साधन A के कारण कुल विशुद्ध आगम (Total Net Revenue Attributable to Factor A)}}{\text{साधन A की कुल इकाइयाँ (Total Units of Factor A)}}$$

[किसी साधन की विशुद्ध उत्पादकता (net productivity) को दो रीतियों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। प्रथम रीति के अन्तर्गत प्रारम्भिक विश्लेषण (elementary analysis) के लिए यह माना जा सकता है कि सहयोगी साधनों (co-operating factors) की बहुत थोड़ी मात्रा प्रयोग की जा रही है; इस मान्यता के परिणामस्वरूप कुल या सम्पूर्ण आगम (gross revenue) में इन सहयोगी साधनों का हिस्सा बहुत कम अर्थात् नगण्य (negligible) होगा। ऐसी स्थिति में विचाराधीन परिवर्तनशील साधन के द्वारा ही कुल आगम में वृद्धि होगी और इसलिए 'कुल या सम्पूर्ण उत्पादकता' (gross product) तथा विशुद्ध उत्पादकता (net product) एक ही होगी। परन्तु यह रीति अवास्तविक (unrealistic) है। दूसरी रीति अधिक वास्तविक तथा सन्तोषजनक है। एक साधन की 'सम्पूर्ण उत्पादकता' (gross productivity) में से 'विशुद्ध उत्पादकता' (net productivity) ज्ञात की जा सकती है, यदि हम यह मान लें कि अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कार (rewards) पृथक रूप से ज्ञात हैं। विचाराधीन साधन के प्रयोग के प्रत्येक स्तर पर हम फर्म के सम्पूर्ण आगम (gross revenue) में से अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कारों (rewards) के बराबर द्रव्य की मात्रा घटाकर विचाराधीन साधन की 'कुल विशुद्ध आगम' (total net revenue) ज्ञात कर सकते हैं। इस जानकारी से हम सीमान्त तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (Marginal and Average Net Revenue Productivity) मालूम कर सकते हैं। 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) में विचाराधीन साधन की इकाइयों का भाग देकर उसके 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) को ज्ञात कर लिया जाता है।]

चित्र 2

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) का आधार सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) होती है, इसलिए MRP-रेखा का आकार भी उलटे U-आकार (inverted U-shape) का होता है। MRP, AGRP तथा ANRP रेखाओं को चित्र 2 में दिखाया गया है।

MRP तथा ARP[4] में सीमान्त तथा औसत का सामान्य सम्बन्ध (usual relation)[5]

---

[4] किसी साधन के प्रयोग (employment or use) के एक स्तर पर ARP रेखा (अर्थात् AGRP या ANRP) यह बताती है कि साधन की प्रत्येक इकाई फर्म के लिए कितना औसत आगम (average revenue) प्राप्त करती है।

[5] MRP तथा ARP में सामान्य सम्बन्ध इस प्रकार होता है–(i) ARP (अर्थात् AGRP या ANRP) जब बढ़ती हुई होती है तो MRP उससे अधिक होती है, (ii) ARP के उच्चतम बिन्दु पर ARP तथा MRP बराबर होंगे; तथा (iii) जब ARP गिरती हुई होगी तो MRP उससे कम होगी।
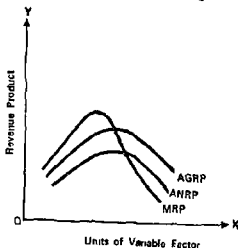
होता है: MRP-रेखा AGRP तथा ANRP रेखाओं को उनके उच्चतम बिन्दुओं पर काटती है।

[यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है। चित्र 2 में 'सीमान्त विशुद्ध आगम उत्पादकता (Marginal Net Revenue Productivity, i.e., MNRP) को नहीं दिखाया गया है। इसका कारण है कि हम यह मानकर चलते है कि केवल एक साधन ही परिवर्तनशील होता है तथा अन्य साधन स्थिर रखे जाते है। एक ही परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की स्थिति मे MRP तथा MNRP एक ही होती है।]

6. एक महत्त्वपूर्ण बात यह ध्यान रखने की है कि **एक साधन की MRP-रेखा एक फर्म के लिए उस साधन की माँग-रेखा होती है।** यह स्पष्ट है क्योंकि किसी साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर करती है।

7. **सीमान्त साधन लागत या सीमान्त पुरस्कार** (Marginal Factor Cost, i e., MFC, or Marginal Remuneration) **तथा औसत साधन लागत या औसत पुरस्कार** (Average Factor Cost, i.e., AFC, or Average Remuneration)
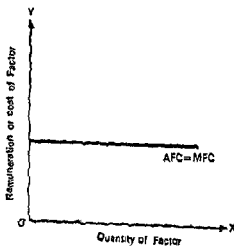
चित्र 3

एक साधन को जो पुरस्कार (remuneration) प्राप्त होता है वह साधन के लिए आय है तथा फर्म के लिए लागत है। चूंकि साधन-बाजार (factor-market) मे पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए प्रत्येक फर्म साधन-बाजार में साधन की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित मूल्य पर साधन की जितनी इकाई चाहती है प्राप्त कर सकती है। दूसरे शब्दो मे, फर्म के लिए साधन की औसत लागत (Average Factor Cost, i.e., AFC) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा फर्म के लिए साधन की औसत लागत (AFC) = साधन की सीमान्त लागत (MFC)। अत AFC तथा MFC दोनों को एक ही पडी रेखा द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि चित्र 3 में दिखाया गया है। [ध्यान रहे कि AFC के लिए हम Average Remuneration तथा MFC के लिए Marginal Remuneration शब्दो का प्रयोग भी कर सकते हैं।]

8. **साधन का मूल्य निर्धारण अथवा फर्म का साम्य** (Factor Price Determination or Equilibrium of Firm)

एक फर्म किसी साधन को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहाँ पर कि उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने से कुल आगम में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता MRP) उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् सीमान्त साधन लागत MFC या सीमान्त पुरस्कार) के बराबर हो जाय। दूसरे शब्दो में, **फर्म के साम्य के लिए निम्न दशा पूरी होनी आवश्यक है :**

MRP=MFC (or Marginal Remuneration of the Factor)[6]

---

[6] वस्तु के मूल्य की दृष्टि से फर्म के साम्य के लिए MR=MC के होती है। साधन के मूल्य की दृष्टि से MR के स्थान पर MRP तथा MC के स्थान पर MFC का प्रयोग करते हैं तथा फर्म के साम्य के लिए MRP=MFC की दशा होती है।

यदि $MRP > MFC$, तो इसका अर्थ है कि साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से फर्म के लिए कुल आगम में वृद्धि अधिक होगी अपेक्षाकृत साधन की अतिरिक्त इकाई की लागत के। ऐसी स्थिति में फर्म साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगी। यदि $MRP < MFC$ तो इसका अर्थ है कि साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से फर्म के लिए कुल आगम में वृद्धि उस अतिरिक्त इकाई की लागत से कम है; इसलिए फर्म अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन नहीं करेगी क्योंकि उसे हानि होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक फर्म, किसी साधन की इकाइयों का प्रयोग उस सीमा तक करेगी जहां पर MRP=MFC के हो। दूसरे शब्दों में, 'सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' बताता है कि एक साधन की कीमत (price or remuneration) उसकी सीमान्त उत्पादकता अर्थात् 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (MRP) के बराबर निर्धारित होगी।

अल्पकाल में फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग करने से लाभ या हानि हो सकती है। लाभ की स्थिति को चित्र 4 में दिखाया। साधन की कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ पर MRP=MFC। चित्र 4 में P बिन्दु पर MPR=MFC के है; इसलिए साधन की कीमत PQ होगी तथा साधन की OQ मात्रा प्रयोग में लायी जायेगी। इस स्थिति में फर्म को लाभ होगा या हानि, इसके लिए ANRP तथा AFC की तुलना की जाती है; चित्र से स्पष्ट है कि फर्म को PLMN के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

चित्र 4

दीर्घकाल में फर्मों को साधन की इकाइयों के प्रयोग से केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होगा अर्थात् AFC (or Average Remuneration) = ANRP के होगा। यदि AFC या (Average Remuneration) कम है ANRP से तो फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ प्राप्त होगा, इस लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करेंगी, साधन की माँग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप साधन का Average Remuneration (अर्थात् AFC) बढ़कर ठीक ANRP के बराबर हो जायगा। यदि Average Remuneration (अर्थात AFC) अधिक है ANRP से, तो फर्म को साधनों की इकाइयों के प्रयोग से हानि होगी, इस हानि के कारण कुछ फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, साधन की माँग घटेगी और परिणामस्वरूप Average Remuneration (अर्थात् AFC) घटकर ठीक ANRP के बराबर हो जायेगा। इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में फर्मों तथा उद्योग के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए :

(i) MRP=MFC (or Marginal Remuneration)
(ii) ANRP=AFC (or Average Remuneration)

चित्र 5 में P बिन्दु पर उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी होती हैं; अतः साधन की कीमत PQ होगी तथा साधन की OQ मात्रा प्रयोग की जायेगी और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।
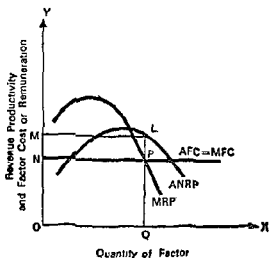
9. 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' के अन्तर्गत प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (Principle of Substitution) महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (i) एक ही साधन की विभिन्न इकाइयों के बीच लागू होता है, तथा (ii) विभिन्न साधनों के बीच लागू होता है।

(i) पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण गतिशीलता की मान्यता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त बताता है कि सभी व्यवसायों (occupations) में एक साधन की विभिन्न इकाइयों की सीमान्त उत्पादकताएं समान होती हैं। यदि ऐसा नहीं है तो साधन की इकाइयाँ कम सीमान्त उत्पादकता वाले व्यवसायों को छोड़कर अधिक सीमान्त उत्पादकता वाले व्यवसायों में चली जायेंगी; इस प्रकार का हस्तान्तरण (transference) या प्रतिस्थापन तब तक जारी रहेगा जब तक कि प्रत्येक व्यवसाय में साधन की सीमान्त उत्पादकता बराबर न हो जाय।
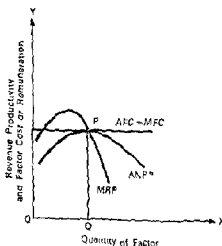
चित्र 5

(ii) विभिन्न साधनों के बीच एक फर्म सदैव ऊंची लागत वाले साधनों (high cost factors) के स्थान पर कम लागत वाले साधनों (low cost factors) का प्रतिस्थापन करती है ताकि वह 'न्यूनतम लागत संयोग' (least cost combination) को प्राप्त कर सके। परन्तु इस प्रकार का प्रतिस्थापन उस सीमा तक होगा जहां पर एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर हो जाता है। सुगमता से समझने के लिए इस बात को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

$$\frac{\text{MP of Factor A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{MP of Factor B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{MP of Factor C}}{\text{Price of C}} = \ldots\ldots$$

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

(i) प्रत्येक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के बराबर होती है।

(ii) सभी व्यवसायों में एक साधन की विभिन्न इकाइयों की सीमान्त उत्पादकताएं समान होती हैं।

(iii) न्यूनतम लागत संयोग (least cost combination) प्राप्त करने के लिए फर्म विभिन्न साधनों के बीच प्रतिस्थापन तब तक करती है जब तक कि एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर न हो जाय।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की बड़ी आलोचना की गयी है। इसकी आलोचना मुख्यतया इसकी मान्यताओं के प्रति है। मुख्य आलोचनाएं अग्रलिखित हैं :

(1) किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात (isolate) करना अत्यन्त कठिन है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा :

(i) किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है, अतः किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को पृथक करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) की सहायता से विचाराधीन साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) कुछ अर्थशास्त्रियों (जैसे हॉब्सन) के अनुसार, साधनो के मिलने का अनुपात टेकनीकल बातो के कारण स्थिर होता है और उसे बदला नही जा सकता; इसलिए सीमान्त विश्लेषण के द्वारा एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नही किया जा सकता। परन्तु सभी दशाओं में साधनो के मिलने के अनुपात स्थिर नही होते तथा दीर्घकाल में प्रायः अनुपातो को बदला जा सकता है।

(iii) इस सिद्धान्त मे यह मान लिया जाता है कि साधनों को थोड़ी मात्राओं (small quantities) में घटाया या बढाया जा सकता है। परन्तु बड़े तथा अविभाज्य साधनों (big, lumpy or indivisible factors) के सम्बन्ध में ऐसा नहीं किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे सीमान्त विश्लेषण और परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त असफल हो जाता है।

(2) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की, अवास्तविक मान्यता पर आधारित है; अतः इसे अवास्तविक तथा अव्यावहारिक कहा जा सकता है। परन्तु चेम्बरलिन (Chamberlin) ने अपूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक स्थिति मे इसका प्रयोग किया है, अपूर्ण प्रतियोगिता मे साधन की कीमत 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (MRP) के बराबर होती है, न कि 'सीमान्त उत्पादकता के मूल्य' (VMP) के बराबर।

(3) प्रत्येक फर्म या साहसी द्वारा लाभ को अधिकतम करने की मान्यता पूर्णतया सही नहीं है; व्यवहार मे एक फर्म अपनी वस्तु की उत्पादन-नीति निर्धारित करते समय लाभ के अतिरिक्त अन्य कई बातों से प्रभावित होती है।

(4) उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) की मान्यता गलत है; व्यावहारिक जीवन मे साधनों की गतिशीलता में विभिन्न प्रकार की रुकावटें होती हैं, साधनो में गतिशीलता सीमित होती है परन्तु पूर्ण नही।

(5) सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि एक साधन की सभी इकाइयाँ एकरूप (homogeneous) होती हैं। व्यवहार में साधनो की इकाइयां बिलकुल एकरूप नही होती, उनमे कम या अधिक अन्तर अवश्य होता है, वे एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं होती।

(6) पूर्ण रोजगार की मान्यता उचित नहीं है। पूर्ण रोजगार के कारण ही एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है; परन्तु व्यवहार मे पूर्ण रोजगार की स्थिति एक सामान्य स्थिति (normal situation) नही होती है; प्रायः अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर से कम स्तर पर कार्य करती है और ऐसी स्थिति मे कोई भी साधन (मान्य श्रम) इस बात की चिन्ता नही करेगा कि उसे पुरस्कार (remuneration) उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलता है या नही।

(7) यह सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में (as a general theory) अपर्याप्त है। मजदूरी का निर्धारण यद्यपि मुख्यतया श्रमिको की उत्पादकता पर निर्भर करता है परन्तु वह श्रमिको की सौदा करने की शक्ति से भी प्रभावित होता है। ब्याज का निर्धारण आंशिक रूप से पूंजी की उत्पादकता पर तथा आंशिक रूप से तरलता पसन्दगी (liquidity preference) पर निर्भर करता है। इसी प्रकार लाभ का निर्धारण आंशिक रूप से साहसी की उत्पादकता पर तथा आंशिक रूप से समाज मे प्रावैगिक परिवर्तनों (dynamic changes) पर निर्भर करता है। इसी

प्रकार भूमि का लगान केवल भूमि की उत्पादकता पर ही नही बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि भूमि की कुल पूर्ति सीमित है। स्पष्ट है कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त सभी साधनो के मूल्य निर्धारण की उचित तथा पूर्ण व्याख्या नही कर पाता। अतः सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त के रूप मे अपर्याप्त है।

(8) **यह सिद्धान्त धन के असमान वितरण का समर्थन करता है।** इस सिद्धान्त के अनुसार धनवान व्यक्तियों की आय इसलिए अधिक होती है क्योंकि वे अधिक उत्पादन करते हैं, जबकि निर्धन व्यक्तियो की आय इसलिए कम होती है क्योंकि वे कम उत्पादन करते हैं। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का सहारा लेकर धन के वर्तमान असमान वितरण का समर्थन किया जाता है। परन्तु इस प्रकार का तर्क गलत है और सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का कोई नैतिक औचित्य (moral justification) नही है।

(9) **यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान किया जाय तो कुल उत्पाद (total product) समाप्त नहीं होगा, या तो कुछ बच रहेगा या कुछ कम पड़ेगा।** ऐसा होने का कारण यह है कि कुल उत्पादन साधनो के सहयोग का परिणाम होता है; दूसरे शब्दों में, विभिन्न साधनो की सीमान्त उत्पादकताओं का योग कुल उत्पाद के बराबर नही होगा; इसे 'योग की समस्या' (adding up problem) कहा जाता है।[7] परन्तु यह आलोचना सही नहीं है क्योंकि गणित की सहायता से (Euler's Theorem द्वारा) यह सिद्ध कर दिया गया है कि विभिन्न साधनो को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान देने से कुल उत्पाद समाप्त (exhaust) हो जाता है।

(10) **फ्रीडमैन (Friedman), सेम्युलसन इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह सिद्धान्त अपूर्ण तथा एक-पक्षीय है** क्योकि यह साधन की पूर्ति पर उचित ध्यान नही देता है। यह सिद्धान्त साधन की पूर्ति को स्थिर मान लेता है और तब यह बताता है कि एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। परन्तु साधन की कीमत निर्धारण में मांग तथा पूर्ति दोनों की दशाओं पर ध्यान देना चाहिए।[8]

वितरण का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF DISTRIBUTION)
अथवा
साधनों के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF FACTOR PRICING)

1. साधन-मूल्य-निर्धारण वास्तव में वस्तु-मूल्य-निर्धारण का एक विस्तार मात्र ही है (Factor Pricing is only an Extension or Special Case of Commodity Pricing)

साधनों के मूल्य निर्धारण का 'सीमान्त उत्पादकता' का सिद्धान्त अपूर्ण है क्योंकि यह साधनो के केवल माग पक्ष की ही व्याख्या करता है तथा पूर्ति पक्ष पर उचित ध्यान नही देता।

किसी साधन के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त मांग तथा पूर्ति का सिद्धान्त है। किसी साधन का मूल्य, एक वस्तु के मूल्य की भाति, उसकी माग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न साधनो की माग तथा पूर्ति की दशाओ मे अन्तर होता है इसलिए प्रत्येक साधन के

---

[7] "The sum of the marginal productivities of the different factors of production will not be equal to total product. This is known as the 'adding up problem'."

[8] . . ."marginal productivity analysis does not provide a complete theory of the pricing of factors of production It summarizes the forces underlying the demand for factors of production but the prices of factors depend also on the conditions under which they are supplied."

पुरस्कार (अर्थात् मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ) के सिद्धान्त के सम्बन्ध में भिन्नता होती है। परन्तु साधनों का मूल्य माग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।

यद्यपि साधन-मूल्य-निर्धारण (factor pricing) वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) की भांति होता है, परन्तु दोनो मे कुछ अन्तर भी है। मुख्य अन्तर इस प्रकार है—(i) वस्तु की मांग 'प्रत्यक्ष माग' (direct demand) होती है जबकि साधन की मांग 'व्युत्पन्न माग' (derived demand) होती है अर्थात् साधन की माग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग पर निर्भर करती है। (ii) किसी वस्तु की पूर्ति उसकी द्राव्यिक लागत पर निर्भर करती है, परन्तु उत्पत्ति के साधनो की लागत का अर्थ है 'अवसर लागत' (opportunity cost); अर्थात् साधनों की पूर्ति 'अवसर लागत' पर निर्भर करती है। (iii) कुछ साधनो, जैसे श्रम, के सम्बन्ध में हमें सामाजिक तथा मानवीय तत्त्वो को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

उपर्युक्त अन्तरो के होते हुए भी इसमें सन्देह नही है कि साधन-मूल्य-निर्धारण (factor pricing) वास्तव मे वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) का ही एक विस्तार मात्र (extension) है।

2. मान्यताएँ (Assumptions)

साधन की मांग, पूर्ति, तथा मूल्य निर्धारण का विवेचन करने से पहले 'साधन की मांग तथा पूर्ति सिद्धान्त' की मुख्य मान्यताओं को जान लेना ठीक होगा। मुख्य मान्यताएं निम्न हैं:

(i) पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मान ली जाती है।

(ii) उत्पत्ति ह्रास नियम या परिवर्तनशील अनुपातो का नियम (Law of Variable Proportions) क्रियाशील रहता है।

(iii) साधन की सभी इकाइयां एकरूप (homogeneous) होती हैं और इसलिए एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती है।

(iv) प्रत्येक साधन पूर्णतया विभाज्य (divisible) होता है।

साधन की मांग (Demand of a Factor)

किसी साधन की माग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पाद (total product) में जो वृद्धि होती है उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं। एक फर्म साधन विशेष को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहां पर कि 'साधन की उत्पादकता का मूल्य' (Value of the Marginal Productivity, i.e., VMP) = 'साधन की सीमान्त लागत' (Marginal Factor Cost, i.e., MFC) के हो। यदि VMP > MFC, तो फर्म को साधन की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने में लाभ होगा क्योंकि अतिरिक्त इकाई की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (अर्थात् VMP) अधिक है साधन की उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् MFC) से। अत. जब तक VMP अधिक है MFC से, तब तक फर्म साधन की अतिरिक्त इकाइयो का प्रयोग करती जायेगी और उस स्थान पर अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग बन्द कर देगी जहां पर VMP=MFC के हो जाती है। दूसरे शब्दों मे, एक फर्म किसी साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक पुरस्कार नही देगी। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता साधन की कीमत की उच्चतम सीमा है।

किसी साधन की माग निम्न बातों से प्रभावित होती है:

(i) साधन की माग व्युत्पन्न माग (derived demand) होती है, उसकी माग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माग पर निर्भर करती है; यदि वस्तु की माग अधिक है तो साधन की माग भी अधिक होगी।

(ii) यदि साधन की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि की जा सकती है तो उसकी माग तथा

कीमत बढ़ेगी। किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता को निम्न तीन प्रकार से बढ़ाया जा सकता है :

(अ) साधन के गुण (quality) में वृद्धि करके उसकी सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है; उदाहरणार्थ, श्रमिकों को शिक्षा तथा प्रशिक्षण देकर उनकी सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

(ब) किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता अन्य सहयोगी साधनों (cooperating factors) की मात्रा पर निर्भर करेगी, उदाहरणार्थ, श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है यदि उनको अच्छे तथा नवीनतम यन्त्र और मशीनें दी जायें।

(स) तकनीकी प्रगति (technological progress) के परिणामस्वरूप साधनों की सीमान्त उत्पादकताए स्वाभाविक रूप से बढ़ जायेंगी।

(iii) अन्य साधनो की कीमत साधन विशेष की माग को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, श्रमिको की माग बढ जायेगी यदि मशीनो की कीमते बहुत ऊची हो जाती हैं क्योंकि ऐसी स्थिति मे महंगी मशीनो के स्थान पर श्रमिको का अधिक प्रयोग किया जायेगा।

4. साधन की पूर्ति (Supply of the Factor)

किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन लागत पर निर्भर करती है। इसी प्रकार से किसी साधन की पूर्ति उसकी लागत पर निर्भर करती है; परन्तु यहाँ लागत का अर्थ 'अवसर लागत' (opportunity cost) या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) से होता है। 'अवसर लागत' द्रव्य की वह मात्रा है जो किसी साधन को दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग (next best paid alternative) मे मिल सकती है। एक साधन को वर्तमान व्यवसाय मे इतना अवश्य मिल जाना चाहिए जितना कि उसे दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग मे मिल सकता है, अन्यथा वह वर्तमान व्यवसाय में कार्य नही करेगा और दूसरे वैकल्पिक प्रयोग मे हस्तान्तरित (transfer) हो जायेगा। अतः वर्तमान प्रयोग मे एक साधन की लागत या पूर्ति मूल्य (supply price) उसकी अवसर लागत पर निर्भर करता है।

चित्र 6

एक साधन की पूर्ति कई बातों से प्रभावित होती है। उदाहरणार्थ, श्रमिको की पूर्ति केवल इसी बात पर निर्भर नही करती कि उनको अधिक पुरस्कार या पूर्ति-मूल्य दिया जाय, बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने मे लागत, शिक्षा तथा प्रशिक्षण की लागत, कार्य तथा आराम (leisure) के बीच पसन्द (preference) की मात्रा, इत्यादि बातें श्रमिको की पूर्ति को प्रभावित करती हैं।

5. साधन का मूल्य या पुरस्कार निर्धारण (Determination of Price or Remuneration of the Factor)

साधन का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाती हैं। चित्र 6 मे साधन का मूल्य EQ या P निर्धारित होगा क्योंकि इस मूल्य पर साधन की माँग तथा उसकी पूर्ति दोनो बराबर है। यदि साधन का मूल्य P_1 है तो साधन की माँग $= P_1K$ होगी तथा उसकी पूर्ति $= P_1L$, अर्थात साधन की $P_1L - P_1K = KL$ के बराबर अतिरिक्त पूर्ति (excess supply) है जो कि मूल्य को E (अर्थात EQ या P) की ओर नीचे को धकेलेगी जैसा कि चित्र
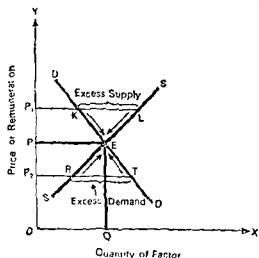
में नीचे की ओर जाते हुए तीर बताते है। यदि साधन का मूल्य P_2 है तो साधन की माँग $=P_2T$ तथा उसकी पूर्ति $=P_2R$, अतः साधन की $P_2T-P_2R=RT$ के बराबर अतिरिक्त माँग (excess demand) है जो कि साधन के मूल्य को E (अर्थात् EQ या P) की ओर ऊपर को धकेलेगी जैसा चित्र में ऊपर को जाते हुए तीर बताते हैं। स्पष्ट है कि साधन का साम्य मूल्य P या EQ ही होगा जहां पर कि उसकी माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हो जाती हैं।

प्रश्न

1. वितरण के सीमान्त उत्प‑ सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। क्या इस सिद्धान्त के कुछ अपवाद हैं ?

   Explain the margina‑ ‑ctivity theory of distribution. What are its limitations ?

2. "वितरण की समस्याएँ विनिमय की समस्या की केवल विशेष दशाएँ ही होती हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

   "Problems of distribution are only the special case of the problem of exchange." Discuss this statement.

   अथवा

   "वितरण का सिद्धान्त मूल्य के सिद्धान्त की ही एक विशेष दशा है।" विवेचना कीजिए।

   "The theory of distribution is only a special case of the theory of value." Discuss.

   अथवा

   "वितरण का सिद्धान्त मुख्यतया एक मूल्य का सिद्धान्त ही है।" विवेचना कीजिए तथा परीक्षा कीजिए कि कहाँ तक मूल्य का सिद्धान्त वितरण के सिद्धान्त में प्रयोग किया जा सकता है।

   "The theory of distribution is essentially a theory of value." Discuss and examine how far the demand and supply analysis of the theory of value is applicable to the theory of distribution.

   [संकेत—'वितरण का आधुनिक सिद्धान्त' अथवा 'साधनों के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री देखिए।]

3. क्या साधन-कीमतें वस्तुओं की कीमतों से भिन्न रूप में निर्धारित होती हैं ? यदि ऐसा नहीं है, तो मूल्य-सिद्धान्त के अतिरिक्त वितरण के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता क्यों है ?

   Are factor prices determined differently from prices of commodities ? If not why is it necessary to have a theory of distribution distinct from the theory of value ?

   [संकेत—इसका उत्तर वही होगा जो कि प्रश्न 2 का है।]

परिशिष्ट (Appendix)

योगशीलता की समस्या तथा यूलर का प्रमेय

(Adding-up Problem and Euler's Theorem)

1. प्राक्कथन : 'योगशीलता की समस्या' तथा 'यूलर के प्रमेय' की धारणाएं (Introduction : The Concepts of 'Adding-up Problem' and 'Euler's Theorem')

वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त बताता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता, या सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (value) के बराबर भुगतान या पुरस्कार (payment or reward) दिया जाता है। एक साधन की सीमान्त उत्पादकता का अर्थ है कुल उत्पादन मे वृद्धि जोकि उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने से होती है, जब कि अन्य साधनों को स्थिर रखा जाता है।[1]

यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर भुगतान किया जाता है तो एक समस्या, जिसे 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' (*problem of product-exhaustion*) अथवा 'योगशीलता की समस्या' (*adding-up problem*) कहा जाता है, उत्पन्न होती है। इस समस्या को सर्वप्रथम विकस्टीड (Wicksteed) ने, अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तिका (monograph)—'Coordination of the Laws of Distribution'—में, सन् 1894 में, स्पष्ट रूप से बताया।[2]

अब हम यह देखते हैं कि **'उत्पाद-समाप्ति समस्या' अथवा 'योगशीलता की समस्या' क्या है?** यह समस्या इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है—

> **इस समस्या का अर्थ है कि कुल उत्पाद सर्दैव समाप्त हो जाना चाहिए यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान किया जाता है; साधनों**

---

[1] In other words, when we say that each factor is paid according to its marginal product, this means that each factor is paid at a rate equal to the product added by a unit of that factor.

[2] इसके पश्चात अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी इस समस्या की विवेचना की। विक्सेल (Wicksell), जो कि विकस्टीड के समकालीन (contemporary) थे, विकस्टीड के मुख्य समर्थक थे। एजवर्थ, पेरिटो, बेरोने, तथा वालरस (Edgeworth, Pareto, Barone, and Walras) ने विकस्टीड के विचारों पर आक्रमण (attack) किया तथा उनकी आलोचना की। अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जैसे, शूल्ज, हिक्स, रोबिन्स, श्रीमती जोन रोबिन्सन, डुग्लस (Schultz, Hicks, Robbins, Mrs. Joan Robinson, Douglas), ने भी इस समस्या के कुछ पक्षों (some aspects) पर टीका (comment) की।

में कुल उत्पाद के वितरण के बाद कुछ भी नहीं बचेगा, न तो कोई अतिरेक (surplus) रहेगा और न ही कोई कमी (deficit) रहेगी। यह 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता के आधार पर, प्रत्येक साधन के हिस्से को जोड़ने से योग बराबर हो जायेगा कुल उत्पाद के; यह 'योगशीलता की समस्या' है।[3]

स्पष्ट है कि 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' या 'योगशीलता की समस्या एक ही बात है। कुल-उत्पाद के 'उत्पादन में सहयोग देने वाले साधनों' के बीच कुल उत्पाद के वितरण की ही समस्या को 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' या 'योगशीलता की समस्या' कहा जाता है।

'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' या 'योगशीलता की समस्या' को सिद्ध करने के लिए विकस्टीड ने एक प्रमाणित गणितात्मक परिणाम, जिसे यूलर का प्रमेय कहा जाता है, का प्रयोग किया।[4] यूलर का प्रमेय 'रेखीय समघात उत्पादन-फलन' (linear homogeneous production function) पर आधारित है; अर्थशास्त्र में इसका अभिप्राय है 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale)।[5]

यूलर-प्रमेय के अनुसार यदि उत्पादन-फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल वाला है अथवा, यदि उत्पादन-फलन रेखीय समघात वाला (linearly homogeneous) है, तो कुल उत्पाद समाप्त हो जायेगा।[6]

2. दो मुख्य धारणाएं (Two Key Concepts)

आगे विवेचन करने से पहले यह अधिक उचित होगा कि यूलर प्रमेय से सम्बन्धित दो मुख्य धारणाओं को ठीक प्रकार से समझ लें। ये दो मुख्य धारणाएं हैं—'उत्पादन-फलन' (*production function*), तथा 'रेखीय समघात उत्पादन-फलन' अथवा 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल वाला उत्पादन-फलन' (*'linearly homogeneous production function' or 'production function involving constant returns to scale'*)।

उत्पादन-फलन (production function) प्रयोग किये जाने वाले 'साधनों की मात्रा' तथा 'उत्पादन की मात्रा' के बीच सम्बन्ध को बताता है; दूसरे शब्दों में, 'साधन व उत्पादन के सम्बन्ध' (input-output relationship) को उत्पादन फलन कहा जाता है। यदि अन्य बातें समान रहें तो उत्पादन-प्रक्रिया (production process) में, उत्पादन-मात्रा (output) निर्भर करती है

---

[3] This problem means that total product should always exhaust, if each factor is paid according to its marginal product; after distribution of the total product among the factors nothing is left, neither surplus nor deficit. This is the *problem of product-exhaustion* In other words, on the basis of marginal productivity of each factor, the sum of the share of each factor should add up to the total product, this is the *adding-up problem.*

[4] इस प्रमेय का नाम स्विट्जरलैण्ड के एक गणितशास्त्री लियोनहार्ड यूलर (Swiss Mathematician Leonhard Euler, 1707-1783) के नाम पर यूलर-प्रमेय पड़ा।

[5] In order to prove the product-exhaustion problem or the adding-up problem, Wicksteed made use of a standard mathematical result called *Euler's Theorem*. Euler's theorem is based on the assumption of 'linear homogeneous production function, in economics this implies 'constant returns to scale'.

[नोट: 'Linear homogeneous production function' के लिए अन्य नाम भी प्रयोग किये जाते हैं, जो कि हैं—linearly homogeneous production function, or, homogeneous production function of the first degree.]

[6] According to Euler's theorem if production function involves constant returns to scale or if production function is linearly homogeneous, then the total product will exhaust.

साधनों (inputs) की मात्रा पर; इसको गणित की भाषा में कहते हैं—'उत्पादन, फलन या फंक्शन है साधनों की मात्रा का' (output is a function of inputs)।

अब हम 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale) अर्थात 'रेखीय समघात उत्पादन फलन' (linearly homogeneous production function) की धारणा को स्पष्ट करते हैं। (i) यदि साधनों को एक निश्चित अनुपात मे (माना 25% से) बढ़ाया जाता है और उत्पादन भी उसी अनुपात मे (अर्थात 25% से) बढ़ता है, तो उत्पादन फलन 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' रखता है। (ii) यदि साधनो को एक निश्चित अनुपात में (माना 25% से) बढ़ाया जाता है और उत्पादन अधिक अनुपात मे (माना 35% से) बढ़ता है, तो उत्पादन फलन 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' (*increasing returns to scale*) रखता है। (iii) यदि साधनो को एक निश्चित अनुपात मे (माना 25% से) बढ़ाया जाता है और उत्पादन कम अनुपात मे (माना 15% से) बढ़ता है, तो उत्पादन फलन 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' (decreasing returns to scale) रखता है।

जब उत्पादन फलन 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale) रखता; है तो गणित की भाषा मे इसे 'रेखीय समघात उत्पादन फलन' (linearly homogeneous production function) कहते है या 'प्रथम डिग्री के समघात वाला' उत्पादन फलन, कहा जाता है (production function is said to be 'homogeneous of the first degree)।

3 यूलर-प्रमेय की पीछे मान्यताएं (Assumptions behind Euler's Theorem)

यूलर-प्रमेय कई मान्यताओ पर आधारित है। उपर्युक्त विवरण से कुछ मान्यताओं की जानकारी प्राप्त होती है। यहाँ पर मुख्य मान्यताएं एक साथ नीचे प्रस्तुत करते हैं—

1. यह मान लिया जाता है कि उत्पादन फलन 'रेखीय समघात' वाला (linearly homogeneous) है अथवा 'प्रथम डिग्री का समघात' वाला (homogeneous of the first degree) है; अर्थशास्त्र के शब्दो मे, उत्पादन फलन 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to, scale) रखता है।
2. वस्तु तथा साधन बाजारो में पूर्ण प्रतियोगिता का मौजूद होना मान लिया जाता है।
3. *यह मान लिया जाता है कि साधन-सेवाए पूर्णतया विभाज्यनीय (perfectly divisible)* हैं, तथा सभी साधनो को स्वतन्त्रता के साथ परिवर्तित किया जा सकता है, और सभी साधनों को एक दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है। दूसरे शब्दों मे, टेकनोलोजीकल प्रक्रियाओ को पूर्णतया विभाजित किया जा सकता है।[7]
4. सरलता के लिए हम अपने विवेचन मे केवल दो साधनो, जैसे श्रम (L) तथा पूंजी (C) को लेकर चलते है।

4. यूलर-प्रमेय का कथन (Statement of Euler's Theorem)

माना कुल उत्पाद (total product) को P द्वारा बताया जाता है। एक साधन, माना श्रम (Labour) की प्रयोग मे लायी जाने वाली इकाइयो की संख्या को L द्वारा बताते है, तथा दूसरे साधन, माना पूंजी (capital) की इकाइयो की संख्या को C द्वारा बताते हैं। इसी प्रकार हम अन्य साधनो को ले सकते हैं, परन्तु सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि केवल दो साधनों का ही प्रयोग किया जा रहा है। साधन L की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) को MP_L द्वारा बताते है; इसका अर्थ है कि साधन श्रम की एक अतिरिक्त इकाई को MP_L के बराबर पुरस्कार (reward) मिलता है, इसलिए श्रम की L इकाइयो को कुल पुरस्कार (अर्थात कुल उत्पाद मे उनका हिस्सा) बराबर होगा $L \times MP_L$। [अतः एक साधन का कुल हिस्सा या कुल

[7] It is assumed that factor services are perfectly divisible; the factors can be varied freely and all factors can be substituted for each other. In other words, technological processes are fully divisible.

पुरस्कार इस प्रकार प्राप्त किया जाता है—साधन की सीमान्त उत्पादकता × साधन की प्रयोग की जाने वाली इकाइयों की संख्या।] दूसरे साधन पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को MP_C द्वारा बताते हैं, तो इस साधन पूंजी C का कुल पुरस्कार (या कुल उत्पाद में उसका हिस्सा) बराबर होगा $C \times MP_C$। इन सब चिह्नों (symbols) को ध्यान में रखते हुए हम यूलर-प्रमेय के कथन को इस प्रकार दे सकते हैं—

> 'पूर्ण प्रतियोगिता' तथा एक 'रेखीय समघात उत्पादन फलन' की मान्यता के आधार पर, यूलर-प्रमेय बताता है कि कुल उत्पाद (P) समाप्त हो जायेगा यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता (MP) के बराबर पुरस्कार मिलता है। दूसरे शब्दों में, कुल उत्पाद (P) ठीक बराबर होगा विभिन्न साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं (MP_S) को प्रत्येक साधन की प्रयुक्त की जाने वाली इकाइयों से गुणा करने से प्राप्त संख्याओं (या गुणनफलों) के योग के। संक्षेप में,
> $P = L \times MP_L + C \times MP_C + \ldots\ldots\ldots\ldots$।[8]

यूलर-प्रमेय के कथन को देते समय वस्तु या उत्पाद की कीमत छोड़ दी जाती है। ऐसा करना प्रथागत (customary) है क्योंकि कीमत, समीकरण में सभी पदों को एक ही संख्या से केवल गुणा कर देती है।[9]

[गणित में हम एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को partial derivative (या चलन-कलन differential calculus) के द्वारा व्यक्त करते हैं। यदि कुल उत्पाद P है तथा एक साधन L है, तो साधन L की सीमान्त उत्पादकता (MP_L) को $\frac{\partial P}{\partial L}$ द्वारा बतायेंगे। माना साधन (L) की प्रयोग की जाने वाली इकाइयों को भी L द्वारा बताते हैं, तो साधन L का कुल पुरस्कार या कुल हिस्सा होगा $L.\frac{\partial P}{\partial C}$; अतः $L \times MP_L$ को गणित के शब्दों में हम $L.\frac{\partial P}{\partial L}$ द्वारा बताते हैं। इसी प्रकार दूसरे साधन C की सीमान्त उत्पादकता को $\frac{\partial P}{\partial C}$ द्वारा बताते हैं, तथा साधन C का कुल पुरस्कार या कुल हिस्सा $C.\frac{\partial P}{\partial L}$ द्वारा बताया जाता है। अतः $C \times MP_C$ को गणित के शब्दों में हम $C.\frac{\partial P}{\partial C}$ द्वारा व्यक्त करते हैं। अब हम यूलर-प्रमेय को गणित (या चलन-कलन differential calculus) की भाषा में इस प्रकार लिखते हैं—

$$P = L.\frac{\partial P}{\partial L} + C.\frac{\partial P}{\partial C}\Big]$$

5. यूलर प्रमेय की सिद्धि (Proof of Euler's Theorem)

अन्य साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकताओं का भुगतान करने के बाद माना कि साहसी (entreprenuer) के पास जो अवशेष (residue) बचता है वह उसकी सीमान्त उत्पादकता से कम है, तो ऐसी स्थिति में वह एक उत्पादक व साहसी के रूप में कार्य करना बन्द कर देगा। इसके विपरीत, अन्य साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकताओं का भुगतान करने के बाद, माना, साहसी के पास जो अवशेष बचता है वह उसकी सीमान्त उत्पादकता से

---

[8] Assuming perfect competition and a linearly homogeneous production function, Euler's Theorem states that the total product (P) will be *exhausted if* each factor receives reward equal to its MP. In other words, total product (P) will be exactly equal to sums of the marginal productivities (MPs) of various factors multiplied by the amounts (or units) of each factor used. Thus,

$$P = L \times MP_L + C \times MP_C + \ldots$$

[9] In stating Euler's Theorem price of the product is omitted. "To do so is customary because the price just multiplies all the terms in the equation by the same number."

अधिक है, तो ऐसी स्थिति मे अन्य सभी साधनो के स्वामी उत्पादक व साहसी होने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार से पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कुल उत्पाद तभी समाप्त होगा जबकि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर पुरस्कार (reward) मिलता है।

परन्तु हमे इस महत्त्वपूर्ण मान्यता को नहीं भूल जाना चाहिए कि कुल उत्पाद तब ही समाप्त होगा जबकि उत्पादन-फलन 'रेखीय समघात' वाला (linearly homogeneous) है, अर्थात जबकि 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale) लागू होता है। यदि हम पैमाने के स्थिर प्रतिफल की मान्यता का त्याग कर दे, तो हमारे सामने दो विकल्प (alternatives) होगे—(i) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing returns to scale), या (ii) पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing returns to scale)। नीचे हम इन दोनो स्थितियों को अलग-अलग लेते हैं।

यदि पैमाने के प्रतिफल बढ़ते हुए हैं तो इसका अर्थ है कि औसत उत्पाद रेखा (Average Product Curve) अर्थात AP-रेखा ऊपर को चढ़ती हुई (rising) होगी। AP-रेखा तब चढ़ती हुई होगी जब कि MP-रेखा (Marginal Product Curve) ऊपर होगी AP-रेखा के; अर्थात AP-रेखा केवल तब चढ़ती हुई होगी जबकि MP अधिक होगी AP से। यदि एक साधन की इकाइयो को भुगतान सीमान्त उत्पादकता (MP) के बराबर दिया जाता है तो उस साधन का कुल हिस्सा या कुल पुरस्कार = साधन की सीमान्त उत्पादकता (MP) × साधन की इकाइयाँ। परन्तु साधन द्वारा कुल उत्पाद (total product of the factor) = साधन की औसत उत्पादकता (AP) × साधन की इकाइयाँ। चूंकि साधन की MP अधिक है AP से, इसलिए साधन का पुरस्कार अधिक होगा उसके द्वारा कुल उत्पाद की तुलना मे। इस प्रकार,

> पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत, यदि प्रत्येक साधन को सीमान्त उत्पादकता के बराबर भुगतान किया जाता है तो कुल उत्पाद से अधिक का वितरण होगा; अतः कुल उत्पाद की समाप्ति नहीं होती है। इसके अतिरिक्त, जब हम पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की बात करते हैं, तो पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता खतम हो जाती है और हम अपूर्ण प्रतियोगिता के क्षेत्र में चले जाते हैं। दूसरे शब्दों में, पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल तथा पूर्ण प्रतियोगिता मेल नहीं खाते, उनका सहअस्तित्व (coexistence) नहीं हो सकता।[10]
>
> इसका कारण है कि सभी फर्मों को एक साथ पैमाने की बचतें अर्थात पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल प्राप्त नही हो सकते; उन फर्मों की लागतें कम होगी जिनको पैमाने की बचतें प्राप्त हो रही हैं, और इसलिए वे फर्में अन्य फर्मों को प्रतियोगिता मे नही टिकने देंगी, तथा अन्त मे अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार (monopoly) की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जायेगी और दीर्घकाल मे अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।[11]

---

10 Under increasing returns to scale more than the total product will be distributed if each factor is paid equal to its marginal product; hence, total product is not exhausted. Further, when we talk of increasing returns to scale, then the assumption of perfect competition ends in the long run and we enter the field of imperfect competition. In other words, increasing returns to scale and perfect competition are incompatible, that is, they cannot coexist

11 The reason is that all firms cannot reap the increasing returns to scale, that is, economies of scale, simultaneously, those firms which are getting economies of scale will have lower cost of production and will, therefore, not permit other firms to stand in competition, and ultimately the situation will be either of oligopoly or monopoly; thus perfect competition will end and imperfect competition will prevail in the long run.

अब हम पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के अभिप्रायों को देखते हैं। इसका अभिप्राय है कि साधन की औसत उत्पाद रेखा अर्थात AP-रेखा गिरती हुई होगी। परन्तु AP-रेखा तब गिरती हुई होगी जबकि MP-रेखा नीचे होगी AP-रेखा के; अर्थात AP तब गिरेगी जब कि MP कम होगी AP से। यदि एक साधन की इकाइयों को सीमान्त उत्पादकता अर्थात MP के बराबर भुगतान दिया जाता है, तो साधन का हिस्सा या उसका पुरस्कार = साधन की MP × साधन की इकाइयाँ। साधन द्वारा कुल उत्पाद = साधन की AP × साधन की इकाइयाँ। चूंकि साधन की MP कम है AP से, इसलिए साधन का हिस्सा या पुरस्कार कम होगा उसके द्वारा कुल उत्पादन की तुलना में। इस प्रकार,

> **पैमाने के घटते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत, यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर दिया जाता है तो कुल उत्पाद से कम का वितरण होगा; अतः कुल उत्पाद की समाप्ति नहीं होगी।**[11]
>
> अतः उपर्युक्त समस्त विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—
>
> **कुल उत्पाद की समाप्ति केवल तब ही होगी जबकि पैमाने के स्थिर प्रतिफल लागू होते हैं (अर्थात उत्पादन फलन रेखीय समघात वाला है), तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मौजूद होती है।**[13]

[नोट—इस अध्याय के अन्त में यूलर प्रमेय की गणितात्मक सिद्धि या प्रूफ (mathomatical proof) भी दिए है; जिन विद्यार्थियों को चलन-कलन (differential calculus) का ज्ञान है, वे यहाँ पर गणितात्मक प्रूफ भी दे सकते हैं; अन्य विद्यार्थी उसे छोड़ सकते हैं।]

6. आलोचना (Criticism)

एफवर्थ, बेरोने, पैरिटो तथा वालरस ने 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' को सिद्ध करने के लिए विकस्टीड द्वारा यूलर-प्रमेय के प्रयोग की आलोचना की है।

यूलर-प्रमेय की आलोचनाएँ अवास्तविक मान्यताओं के सम्बन्ध में की जाती हैं। **मुख्य आलोचना** (*main criticism*) पैमाने के स्थिर प्रतिफल के सम्बन्ध में है अर्थात AC-रेखा के पड़े हुए (horizontal) होने के सम्बन्ध में है। **यह कहा जाता है कि पैमाने के स्थिर प्रतिफल पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल नहीं खाते—**

> **"इसका कारण इस प्रकार है। यदि दीर्घकालीन औसत लागत रेखा कीमत-रेखा के ऊपर है, तो फर्म अस्तित्व (existence) में नहीं आयेगी; यदि औसत लागत रेखा नीची है कीमत रेखा के, तो फर्म, उद्योग पर, एकाधिकार स्थापित कर लेगी। अन्त में, यदि औसत लागत और कीमत रेखाएँ मिल जाती हैं, तो फर्म का उत्पादन अनिर्धारणीय (indeterminate) होगा।"**[14]

इस प्रकार आलोचकों का मत है कि व्यावहारिक जगत में उत्पादन फलन 'प्रथम डिग्री का समघात' वाला (homogeneous of the first degree) नहीं होता, अर्थात पैमाने के स्थिर प्रतिफल सम्भव नहीं होते; अथवा यह कहिए कि उत्पादन फलन एक पड़ी हुई औसत लागत रेखा (horizontal average cost line) का रूप नहीं ले सकता। वास्तविक जगत में उत्पादन फलन एक U-आकार की दीर्घकालीन औसत लागत रेखा को उत्पन्न करता है; इस प्रकार के उत्पादन फलन का अर्थ है कि

---

[11] Under decreasing returns to scale, less than the total product will be distributed, if each factor is paid equal to its marginal product; total product is not exhausted.

[13] Total product will exhaust only if constant returns to scale operate (or the production *function is linearly homogeneous*), and *perfect competition prevails*.

[14] "The reasoning goes as follows : if the long-run average cost line is above the price line, the firm will not come into existence; if the cost line is below the price line, the firm will monopolize the industry. Finally, if the cost and price lines coincide, the output of the firm will be indeterminate."

एक बिन्दु तक 'पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल' (अर्थात, घटती हुई लागत) प्राप्त होते हैं, इसके बाद न्यूनतम औसत लागत के बिन्दु (point of minimum average cost) पर पहुँचा जाता है और इस बिन्दु पर क्षणिक रूप में (momentarily) पैमाने के स्थिर प्रतिफल (या स्थिर लागत) प्राप्त होते हैं, और अन्त मे 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' (या बढ़ती हुई लागत) लागू होते हैं।

इस प्रकार, विक्स्टीड के बाद, बैरोने (Barone), विकसैल तथा वालरस ने 'प्रथम डिग्री के समघात वाले उत्पादन फलन' अथवा 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' अथवा 'पड़ी हुई दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' को त्याग दिया। वे एक अधिक वास्तविक मान्यता को लेकर चले—वास्तविक जगत में एक फलन ऐसा होता है कि वह एक 'U-आकार की दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' को उत्पन्न करता है। उन्होंने बताया कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल मे एक फर्म दीर्घकालीन औसत लागत रेखा के निम्नतम बिन्दु (lowest or minimum point of the long run average cost curve) पर संतुलन की स्थिति मे होती है, और दीर्घकालीन औसत लागत रेखा के इस निम्नतम बिन्दु पर क्षणिक रूप से (momentarily) 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' लागू होते हैं। इस प्रकार—

> यदि प्रत्येक साधन अपनी सीमान्त उत्पादकता के बराबर पुरस्कार (reward) प्राप्त करता है तो कुल उत्पाद समाप्त हो जायेगा (तथा यूलर-प्रमेय लागू होगी); परन्तु ऐसा केवल दीर्घकालीन औसत लागत रेखा के न्यून बिन्दु पर होगा जहाँ पर क्षणिक रूप मे, (अथवा, उत्पादन में परिवर्तन के बहुत थोड़े से क्षेत्र पर), पैमाने के स्थिर प्रतिफल लागू होते हैं, और यहाँ पर विक्स्टीड की दशा की संतुष्टि हो जाती है।[15]

प्रो. हिक्स भी उपर्युक्त विचारधारा से सहमति रखते हैं—

> "यह अचम्भे की बात नहीं है कि इस बिन्दु पर (अर्थात् दीर्घकालीन औसत लागत रेखा के निम्नतम बिन्दु पर) विक्स्टीड की दशा पूरी होनी चाहिए। विक्स्टीड ने यह गलती की कि वह यह मानकर चले कि (दीर्घकालीन औसत) लागत रेखा के आकार से सम्बन्धित एक विशेष बिन्दु (अर्थात् निम्नतम बिन्दु) के आधार पर रेखा के सामान्य आकार के बारे में एकसमान निष्कर्ष निकाल सकते हैं।"[16]

7. निष्कर्ष (Conclusion)

'योगशीलता की समस्या' या 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' के हल के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण है कि हिक्स के दृष्टिकोण (तथा बैरोने, विकसैल और वालरस के दृष्टिकोण) के पीछे 'न्यूनतम औसत लागत' (minimum average cost) की मान्यता अधिक वास्तविक है अपेक्षाकृत विक्स्टीड की 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' या 'रेखीय समघात वाले उत्पादन फलन' की अवास्तविक व सामान्य मान्यता की तुलना मे।

दूसरे शब्दों मे, योगशीलता की समस्या या उत्पाद-समाप्ति की समस्या के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ या दृष्टिकोण (view points) मौजूद हैं—

1. विक्स्टीड द्वारा प्रस्तुत हल जो कि पैमाने के स्थिर प्रतिफल (constant returns to

---

[15] If each factor is paid reward equal to its marginal product, the total product will exhaust (and Euler's theorem would hold true) at the minimum point of the long run average cost curve at which constant returns to scale momentarily operate (or returns to scale are constant over a very small range of changes in output), and Wicksteed's condition is satisfied here.

[16] "It is not surprising that, at this point (i.e. at the minimum point of long run average cost curve), Wicksteed's condition should be satisfied. Where Wicksteed went wrong was in his assumption that he could argue from the shape of the curve at one particular point (i.e. the lowest point) to the general shape of the curve."

scale) या रेखीय समघात वाले उत्पादन फलन (linearly homogeneous production function) की मान्यता पर आधारित है।

प्रो. स्टिगलर (Stigler) उपर्युक्त दृष्टिकोण को पसन्द करते है। प्रो. स्टिगलर के शब्दों में, "विकस्टीड का हल, लेखक (अर्थात् स्टिगलर) की राय मे, अधिक अच्छा है क्योंकि—विश्लेषण के जिस स्तर पर यह उचित है—उसके लिए यह ज्ञानवर्धक या शिक्षाप्रद (informative) है; यद्यपि यह अधिक सरल मान्यताओं पर आधारित है।"[17]

2. विकसैल, वालरस तथा बेरोने द्वारा प्रस्तुत हल आधारित है 'न्यूनतम औसत लागत' पर जिस पर एक फर्म पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल मे संतुलन में होती है, तथा 'न्यूनतम औसत लागत' के बिन्दु, पर क्षणिक रूप से 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' प्राप्त होते हैं; और इस बिन्दु पर विकस्टीड के हल की सतुष्टि होती है। प्रो जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) इस दृष्टिकोण को पसन्द करते है।[18]

अनेक सैद्धान्तिक विश्लेषणो मे यूलर-प्रमेय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है और यह बताती है कि आय का वितरण उत्पादन फलन की किस्म से निकट रूप से बँधा होता है।[19]

A Note on Mathematical Proof of 'Adding-up Problem' or 'Product-exhaustion Problem' Using Euler's Theorem.

[नोट—जिन विद्यार्थियों को चलन-कलन (differential calculus) की जानकारी है वे इस गणितात्मक सिद्धि (mathematical proof) को पढ़ सकते है तथा इसे पहले दी गयी अगणितीय सिद्धि (non-mathematical proof) के बाद पृष्ठ 637 पर लिख सकते हैं; अन्य विद्यार्थियों को इस गणितात्मक सिद्धि को छोड़ देना चाहिए।]

We can use Euler's theorem to prove 'Adding-up Problem' or 'Product-exhaustion Problem' mathematically with the help of differential calculus. *This proof is based on Prof. Baumol's treatment.* Prof. Baumol starts with a total differentiation proposition. The total differentiation proposition states that if we have the function $z=f(x, y)$ and that if, in turn, x and y are both functions of some variable t, that is, $x=F(t)$ and $y=G(t)$, then

$$\frac{dz}{dt}=\frac{\partial f}{\partial x}\cdot\frac{dx}{dt}+\frac{\partial f}{\partial y}\cdot\frac{dy}{dt}$$

The above result states that the effect of a change in t on z is composed of two parts : the part which is transmitted via the effect of t on x and the part which is transmitted through y. Thus, the latter is represented by the expression $\frac{\partial f}{\partial y}\cdot\frac{dy}{dt}$. For $\frac{dy}{dt}$ is the change in y produced by the increment in t and $\frac{\partial f}{\partial y}$ is the resulting change in z produced by each unit of this change in y.

---

[17] "Wicksteed's solution is the preferable one, in the writer's (i.e. Stigler's) opinion, because—at the level of analysis to which it is appropriate—it is informative, yet based on simpler assumptions."

[18] The solution offered by Wicksell, Walras and Barone which is based on the assumption of 'minimum average cost' at which the firm is in equilibrium in the long run under perfect competition and at the 'minimum average cost point' the returns to scale are constant momentarily; and at this point Wicksteed's solution is satisfied. Professor J. R. Hicks prefers this view.

[19] Euler's theorem has been highly useful in many theoretical analyses, and it indicates that the distribution of income is closely tied in with the form of production function.

Now, to derive Euler's theorem, we note that for a linear homogeneous production function $P=g\,(L, C)$ we have, for any k

$$kP=g\,(kL, kC).$$

Taking the total derivative of kP with respect to k (that is, setting $kP=z$, $kL=x$, $kC=y$, and $k=t$ in our formula for $\left(\frac{dz}{dt}\right)$ we obtain

$$\frac{dkP}{dk}=\frac{\partial g}{\partial kL}\cdot\frac{dkL}{dk}+\frac{\partial g}{\partial kC}\cdot\frac{dkC}{dk}$$

or $$P=\frac{\partial g}{\partial kL}\cdot L+\frac{\partial g}{\partial kC}\cdot C$$

Since this result holds for any value of k it must also be valid for $k=1$ so that

$$P=\frac{\partial g}{\partial L}\cdot L+\frac{\partial g}{\partial C}\cdot C$$

This is Euler's theorem for the linear homogeneous production function $P=g\,(L, C)$. The proof holds for any number of inputs. Since $\frac{\partial g}{\partial L}$ is the marginal product of labour and $\frac{\partial g}{\partial C}$ is the marginal product of capital,

> The equation (i.e. Euler's theorem) states that the marginal product of labour multiplied by the number of labourers (each of whom is paid this amount) plus the corresponding total payment to capital exactly equal's to the total product, P.

प्रश्न

1. 'योगशीलता की समस्या' (adding-up problem) क्या है ? इसको यूलर-प्रमेय की सहायता से सिद्ध कीजिए।
   What is 'adding-up problem' ? Prove it with the help of Euler's theorem.
2. 'कुल उत्पाद समाप्त हो जायेगा यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर भुगतान दिया जाता है तथा उत्पादन-फलन रेखीय समघात वाला होता है।' इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   'Total product will exhaust only if each factor is paid according to its marginal product and production function is linearly homogeneous.' Discuss this statement critically.
3. रेखीय समघात वाले उत्पादन फलन का आर्थिक अभिप्राय क्या है ? 'योगशीलता की समस्या' या 'उत्पाद-समाप्ति की समस्या' की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   What is the economic interpretation of linearly homogeneous production function ? Discuss critically the 'adding-up problem' or 'product-exhaustion problem'.
4. योगशीलता की समस्या तथा यूलर-प्रमेय पर एक सुन्दर नोट लिखिए।
   Write a lucid note on the adding-up problem and Euler's theorem

लगान
(*Rent*)

लगान की परिभाषा (Definition of Rent)

लगान भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान है। रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमि की 'मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों' (original and indestructible powers of the soil) के प्रयोग के लिए भुगतान है। मार्शल के अनुसार समस्त समाज की दृष्टि से 'प्रकृति के नि शुल्क उपहारों से प्राप्त आय' (income derived from the free gifts of nature) को लगान कहते हैं। इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (classical economists) ने लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित किया।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि की 'सीमितता का गुण' अर्थात् 'भूमि-तत्त्व' (land element) प्रत्येक साधन प्राप्त कर सकता है और इसलिए प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। **आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए न्यूनतम पूर्ति मूल्य** (minimum supply price) **अर्थात् अवसर लागत** (opportunity cost) **के ऊपर एक बचत** (surplus) है। लगान की एक ऐसी परिभाषा **श्रीमती जोन रोबिन्सन** ने इन शब्दों में दी है—"लगान के विचार का सार (essence) वह बचत है जोकि एक साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो कि साधन को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।"[1]

कुल लगान (Gross Rent)

साधारण बोलचाल की भाषा में जब लगान शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसका अभिप्राय अर्थशास्त्र के 'कुल लगान' (Gross Rent) से होता है। एक कृषक या किरायेदार जो लगान भूमिपति या मकान मालिक को देता है वह 'कुल लगान' होता है।

कुल लगान में निम्नलिखित तत्त्व शामिल होते है: (i) केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान अर्थात् 'आर्थिक लगान', (ii) उस धनराशि का ब्याज जोकि भूमि की उन्नति पर, अर्थात् भूमि के निकट कुएँ खुदवाने, झोपडी बनवाने, खेत के चारों तरफ पक्की नालियाँ बनवाने इत्यादि पर व्यय की गयी है, (iii) भूमिपति की जोखिम (जोकि भूमि-सुधार तथा उन्नति से सम्बन्धित होती है) का पुरस्कार; तथा (iv) भूमिपति की देखरेख (अर्थात् प्रबन्ध) का पुरस्कार।

आर्थिक लगान (Economic Rent)

आर्थिक लगान कुल लगान का एक अंग है। केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को आर्थिक लगान कहते हैं। आर्थिक लगान मे अन्य तत्त्व शामिल नही होते। रिकार्डो के अनुसार, श्रेष्ठ भूमि की लागतों तथा सीमान्त भूमि की लागत का अन्तर ही आर्थिक लगान की माप है। परन्तु आधुनिक

---

[1] "The essence of the conception of *rent* is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum earnings necessary to induce it to do its work."—Mrs. Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p. 102.

अर्थशास्त्रियों के अनुसार, केवल भूमि ही नहीं बल्कि अन्य सभी साधन आर्थिक लगान प्राप्त कर सकते हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है।

ठेके का लगान (Contract Rent)

ठेके का लगान वह लगान है जो भूमिपति और काश्तकार में पारस्परिक इकरार या ठेके द्वारा निर्धारित होता है। ऐसी स्थिति में ठेके का लगान आर्थिक लगान से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकता है, यह बात दोनों पक्षों की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करेगी। जब भूमि की पूर्ति कम तथा माँग बहुत अधिक होती है और काश्तकारों में भूमि के लिए बहुत अधिक प्रतियोगिता होती है तो भूमिपति काश्तकारों से बहुत लगान लेते हैं जिसे 'अत्यधिक लगान' (rack-renting) कहते हैं।

ठेके के लगान का निर्धारण भूमि की माँग तथा पूर्ति द्वारा होता है। यदि भूमि की माँग अधिक है अर्थात् काश्तकारों में भूमि के लिए अधिक प्रतियोगिता है और पूर्ति कम है तो ठेके का लगान ऊँचा होगा तथा वह आर्थिक लगान से अधिक होगा। इसके विपरीत यदि भूमि की पूर्ति अधिक है अर्थात् भूमिपतियों में भूमि को काश्तकारों को उठाने के लिए आपस में अधिक प्रतियोगिता है तथा भूमि की माँग कम है तो लगान नीचा निर्धारित होगा और आर्थिक लगान से कम होगा।

आर्थिक लगान तथा ठेके के लगान में अन्तर

दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित है

(1) आर्थिक लगान का निर्धारण 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' (intra-marginal lands) की लागत तथा सीमान्त भूमियों की लागत के अन्तर पर निर्भर करता है।

ठेके के लगान का निर्धारण भूमि की माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है।

(2) सीमान्त भूमि की लागत बढ़ जाने से अर्थात् 'जोत की सीमा' (margin of cultivation) के आगे को खिसक जाने से आर्थिक लगान बढ़ जायेगा; इसके विपरीत सीमान्त भूमि की लागत घट जाने से अर्थात् जोत की सीमा के पीछे को खिसक जाने से आर्थिक लगान घट जायेगा।

इसके विपरीत, ठेके का लगान भूमिपति तथा काश्तकार के बीच इकरार (contract) द्वारा तय होता है, इसलिए उसमें घट-बढ़ नहीं होती जब तक कि दूसरा इकरार न किया जाय।

परन्तु ठेके का लगान आर्थिक लगान से कम या अधिक हो सकता है। प्रायः ठेके का लगान आर्थिक लगान से अधिक होता है और ऐसी स्थिति में कृषक का शोषण होता है।

(3) आर्थिक लगान श्रेष्ठ भूमियों तथा सीमान्त भूमियों की उपज पर निर्भर करता है, इसलिए यह पहले से निश्चित नहीं किया जा सकता है।

इसके विपरीत, ठेके का लगान इकरार द्वारा निश्चित होता है, इसलिए यह पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
(RICARDIAN THEORY OF RENT)

1. प्राक्कथन (Introductory)

रिकार्डो (David Ricardo) से पहले फ्रांस में फीजियोक्रेट्स (Physiocrats) के नाम से जाने वाले अर्थशास्त्रियों ने लगान के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये परन्तु डेविड रिकार्डो (1773-1823) प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने लगान सिद्धान्त का एक यथाक्रम तथा विस्तृत अध्ययन किया। रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान के सिद्धान्त को 'लगान का प्रतिष्ठित सिद्धान्त' (Classical Theory of Rent) भी कहा जाता है।

रिकार्डो के अनुसार, केवल भूमि ही लगान प्राप्त कर सकती है, अन्य साधन नहीं। रिकार्डो ने लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित किया क्योंकि वे समझते थे कि भूमि में कुछ विशेषताएं ऐसी हैं जो अन्य साधनों में नहीं होतीं, और ये विशेषताएं हैं—(i) भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार

(free gift) है, भूमि को अस्तित्व (existence) में लाने के लिए समाज को कोई लागत नहीं उठानी पड़ती; तथा (ii) भूमि सीमित होती है, समाज की दृष्टि से उसकी कुल मात्रा को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता; अतः भूमि की एक मुख्य विशेषता है 'सीमितता' (limitedness) या 'स्थिरता' (fixity)।

2. **लगान सिद्धान्त के सम्बन्ध में रिकार्डो का कथन** (Ricardo's Statement about the Theory of Rent)

रिकार्डो ने अपने लगान सिद्धान्त के सम्बन्ध में दो मुख्य बातें कहीं :

(i) **रिकार्डो ने बताया कि ऊँचे लगान प्रकृति की उदारता (bounty) के कारण नहीं होते बल्कि उसकी कृपणता या कंजूसी (nigardliness) के कारण होते हैं।**[1] रिकार्डो का यह कथन फीजियोक्रेट्स (Physiocrats)[2] के लगान सम्बन्धी विचार पर आक्रमण के रूप में था। भूमि की मात्रा सीमित होती है तथा उपजाऊ भूमि और भी सीमित होती है। अधिक उपजाऊ खेतों की मात्रा के सीमित होने के कारण मनुष्य को कम उपजाऊ खेतों पर खेती करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसके फलस्वरूप अधिक उपजाऊ खेतों पर एक प्रकार का आधिक्य प्राप्त होता है जिसे उन खेतों का लगान कह सकते हैं। इस प्रकार लगान प्रकृति की कृपणता तथा सीमितता के कारण उत्पन्न होता है, न कि उसकी उदारता के कारण जैसा कि फीजियोक्रेट्स समझते थे।

(ii) रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की दूसरी बात रिकार्डो द्वारा की गयी लगान की परिभाषा है जो इस प्रकार है—**"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के स्वामी को भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"**[4]

रिकार्डो के अनुसार, भूमि के प्रत्येक टुकड़े को प्रकृति द्वारा कुछ उर्वरा शक्ति (fertility) प्राप्त होती है जो कि 'मूल तथा अविनाशी' होती है। परन्तु भूमि कुछ उर्वरा शक्ति अर्जित (acquire) भी कर सकती है। इस प्रकार एक भूमि के टुकड़े की उर्वरा शक्ति आंशिक रूप से अर्जित की हुई (acquired) तथा आंशिक रूप से 'मूल तथा अविनाशी' होती है। रिकार्डो की परिभाषा के अनुसार, एक भूमि के टुकड़े से प्राप्त कुल उपज में से जो भाग केवल 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' के परिणाम-स्वरूप प्राप्त होता है तथा भूमि के स्वामी को दिया जाता है, वह लगान होगा।

परन्तु यहाँ पर एक कठिनाई आती है कि यह कैसे निर्धारित किया जाय कि एक भूमि के टुकड़े से प्राप्त कुल उपज में से कितना भाग उसकी 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' के कारण है और कितना भूमि 'अर्जित शक्ति' के कारण। इसके अतिरिक्त यह कहना भी उचित नहीं है कि भूमि की 'मूल शक्ति' नष्ट नहीं होती है। वास्तव में, 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' का विचार अस्पष्ट (nebulous) है।

3. **लगान एक भेदात्मक बचत है** (Rent is a Differential Surplus)

रिकार्डो के अनुसार, लगान सापेक्षिक लाभ या भेदात्मक बचत (differential gain or surplus) है। सभी भूमियाँ एकसमान नहीं होती हैं, उनमें उर्वरता या स्थिति (fertility or situation) या दोनों की दृष्टि से अन्तर या भेद होता है। इस अन्तर या भेद के कारण श्रेष्ठ भूमियों को निम्न कोटि की भूमियों की तुलना में लाभ या बचत प्राप्त होती है जिसे रिकार्डो ने लगान कहा;

---

[1] "High rents are not a sign of the bounty of nature. On the contrary, they are an indication of the nigardliness of nature."

[2] फीजियोक्रेट्स के अनुसार लगान एक प्रकार का आधिक्य (surplus) है जो मनुष्य को प्रकृति की उदारता के कारण प्राप्त होता है। रिकार्डो भी लगान को एक प्रकार का आधिक्य मानते थे; परन्तु उनके अनुसार लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि प्रकृति की कृपणता या सीमितता के कारण प्राप्त होता है।

[4] "Rent is that portion of the produce of earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil."

चकि यह लगान भूमियो मे अन्तर या भेद के कारण प्राप्त होता है, इसलिए इसे 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) कहा जाता है।

'भेदात्मक बचत' या 'लगान' का अध्ययन तीन भागों में किया जाता है :

(अ) विस्तृत खेती के अन्तर्गत 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' (Rent under extensive cultivation or Rent with extensive margin);

(ब) गहरी खेती के अन्तर्गत 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' (Rent under intensive cultivation or Rent with intensive margin); और

(स) 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' भूमि की स्थितियो मे अन्तर के कारण (Rent owing to the difference in situations of the plots of land)

(अ) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान—रिकार्डो ने एक नये देश का उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रारम्भ म देश मे जनसख्या कम होती है, उसकी खाद्यान्न की सम्पूर्ण आवश्यकता केवल सर्वश्रेष्ठ अर्थात् प्रथम श्रेणी की भूमियो पर खेती करने से पूरी हो जाती है। इस स्थिति मे लगान उत्पन्न नही होता क्योंकि जनसख्या की कमी तथा भूमि के अधिक होने के कारण प्रथम श्रेणी की भूमि सुगमता से प्राप्त हो जाती है ताकि उसके प्रयोग के लिए कुछ देना नही पडता। जनसंख्या मे वृद्धि और परिणामस्वरूप खाद्यान्नो की बढती हुई माँग मे वृद्धि के कारण निम्न कोटि की भूमियाँ—जैसे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी की भूमियाँ—प्रयोग मे लायी जायेंगी। यहाँ मान लिया जाता है कि (i) सब भूमि के टुकडों का क्षेत्रफल समान है, तथा (ii) भूमि के प्रत्येक टुकडे पर श्रम तथा पूजी की समान मात्राएं लगायी जाती है। ऐसी स्थिति मे श्रेष्ठ भूमियो पर अधिक उपज प्राप्त होगी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की भूमियो के; दूसरे शब्दो मे, श्रेष्ठ भूमियो की औसत लागत कम होगी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की भूमियों के।

किसी समय विशेष पर जोती जाने वाली भूमियों में से सबसे निम्न कोटि की भूमि (inferior-most land) को 'सीमान्त भूमि' (marginal land) कहते है, तथा इससे श्रेष्ठ भूमियो को 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' (intra-marginal lands) कहते है। बाजार मे वस्तु की कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत (जोकि सबसे अधिक लागत है) के बराबर होगी, यदि ऐसा नही होगा तो सीमान्त भूमि जोत से निकल जायेगी। 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' के काश्तकारों (cultivators) के लिए औसत लागत कम होगी अपेक्षाकृत सीमान्त भूमि की औसत लागत के, परन्तु सभी काश्तकार बाजार में समान कीमत पर ही वस्तु को बेचेंगे। स्पष्ट है कि 'पूर्व सीमान्त भूमियों' को 'अतिरेक' या 'बचत' (surplus) प्राप्त होगी क्योकि कीमत की अपेक्षा उनकी औसत लागत कम है। इस 'बचत' को ही रिकार्डो ने लगान कहा। फैलनर (W. Fellner) के शब्दो में, **"पूर्व-सीमान्त भूमियों की लागत तथा कीमत मे अन्तर रिकार्डो का लगान है।"**[5] दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक पूर्व सीमान्त भूमि द्वारा उत्पादित वस्तु को बेचने मे प्राप्त कुल आगम (total revenue or receipts) मे से उसकी कुल लागत को घटाने से उस पूर्व सीमान्त भूमि पर लगान प्राप्त हो जायेगा। यहाँ पर लगान द्रव्य के शब्दो मे (in terms of money) व्यक्त किया गया है।

लगान को उत्पत्ति के शब्दो में (in terms of produce) भी व्यक्त किया जाता है। श्रेष्ठ भूमियों की उत्पत्ति तथा सीमान्त भूमियों की उत्पत्ति का अन्तर लगान है। इससे स्पष्ट है, रिकार्डो का लगान 'उत्पादक की बचत' (producer's surplus) है।

ध्यान रहे कि कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त भूमि को कोई 'बचत' अर्थात् 'लगान' प्राप्त नही होता है। अत सीमान्त भूमि को 'लगान-रहित भूमि' (no-rent land) भी कहा जाता है।

---

[5] "The difference between price and cost of production of intra-marginal lands is the Ricardian rent." —W. Fellner.

विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान का एक उदाहरण तथा चित्र द्वारा स्पष्टीकरण अग्र प्रकार है :

भूमियों के ग्रेड	'A' ग्रेड की भूमि	'B' ग्रेड की भूमि	'C' ग्रेड की भूमि	'D' ग्रेड की भूमि अर्थात् सीमान्त भूमि
कुल उत्पादन (गेहूं का)	40 क्विंटल	30 क्विंटल	20 क्विंटल	10 क्विंटल
लगान (उत्पत्ति के शब्दों में)	(40 – 10) = 30 क्विंटल	(30 – 10) = 20 क्विंटल	(20 – 10) = 10 क्विंटल	लगान-रहित भूमि (No-rent land)
कुल लागत (श्रम तथा पूंजी लगाने की)	200 रु.	200 रु.	200 रु.	200 रु.
बाजार मूल्य (मूल्य सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होगा)	20 रु.	20 रु.	20 रु.	$\frac{200}{10}$ = 20 रु.
लगान (द्रव्य के शब्दों में)	(40 × 20) रु. –200 रु. = 600 रु.	(30 × 20) रु. – 200 रु. = 400 रु.	(20 × 20) रु. –200 रु. = 200 रु.	(10 × 20) रु. – 200 रु. = शून्य रु. लगान-रहित भूमि (No-rent land)

उदाहरण की उपर्युक्त तालिका को दो भागों में बाँटा गया है। प्रथम भाग में लगान को 'उत्पत्ति के शब्दों में' (rent in terms of produce) दिखाया गया है तथा दूसरे भाग में लगान को 'द्रव्य के शब्दों में' (rent in terms of money) दिखाया गया है।
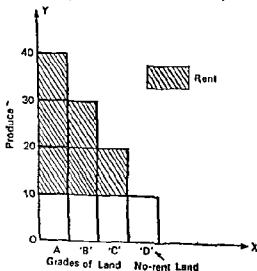
चित्र 1

उपर्युक्त उदाहरण के प्रथम भाग को अर्थात् उत्पत्ति के शब्दों में लगान को चित्र 1 में दिखाया गया है। श्रेष्ठ भूमियों A, B तथा C को सीमान्त भूमि D की तुलना में 'भेदात्मक बचत' अर्थात् 'लगान' प्राप्त होता है जो कि चित्र में रेखांकित भाग द्वारा दिखाया गया है।

(ब) गहरी खेती के अन्तर्गत लगान—निम्न कोटि की भूमियों को जोतने अर्थात् भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाकर विस्तृत खेती करने के अतिरिक्त वर्तमान भूमि के टुकड़ों पर गहरी खेती करके भी खाद्यान्न की पूर्ति को बढ़ा सकते हैं। किसी एक भूमि के टुकड़े पर श्रम तथा पूंजी की अधिक 'मात्राओं' (doses) के लगाने से, उत्पत्ति ह्रास नियम के परिणामस्वरूप, घटती हुई उपज प्राप्त होगी अर्थात् इन मात्राओं (doses) की सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। यहाँ पर 'सीमान्त भूमि' (marginal land) के स्थान पर 'सीमान्त-मात्रा' (marginal dose) का प्रयोग किया जाता है।

'सीमान्त मात्रा' की लागत ठीक उसकी उत्पादकता के बराबर होगी और इस प्रकार इस सीमान्त मात्रा पर कोई 'बचत' या 'लगान' प्राप्त नहीं होगा। परन्तु इस सीमान्त मात्रा से पूर्व की मात्राओं की उत्पादकता अधिक होगी अपेक्षाकृत उनकी लागत के (ध्यान रहे कि यह मान लिया जाता है कि सीमान्त मात्रा तथा अन्य सभी मात्राओ की लागत समान होती है।) इस प्रकार 'पूर्व-सीमान्त मात्राओं' (intra-marginal doses) को बचत या लगान प्राप्त होगा। स्पष्ट है कि गहरी खेती मे भी 'सीमान्त मात्रा' की तुलना मे पूर्व-सीमान्त मात्राओं को लगान प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ पर भी लगान एक प्रकार की 'भेदात्मक बचत' (differential gain or surplus) है।

गहरी खेती के अन्तर्गत लगान का एक उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण किया जा सकता है। माना कि श्रम तथा पूजी की एक 'मात्रा' (dose) की लागत 40 रु. है। माना कि एक भूमि के टुकडे पर इस प्रकार की 4 मात्राए लगायी जाती है। उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण इन मात्राओं से घटती हुई उत्पादकता प्राप्त होगी जैसा कि निम्न उदाहरण में दिखाया गया है :

मात्राएँ (Doses)	प्रथम मात्रा	द्वितीय मात्रा	तृतीय मात्रा	चतुर्थ मात्रा
उत्पादन	10 किलो गेहू	8 किलो गेहू	6 किलो गेहूं	2 किलो गेहूं
लगान (उत्पत्ति के शब्दो मे) Rent (in terms of produce)	(10−2) =8 किलो गेहू	(8−2) =6 किलो गेहूं	(6−2) =4 किलो गेहूं	लगान रहित मात्रा (No-rent dose)
श्रम तथा पूंजी की एक 'मात्रा' की लागत	40 रु.	40 रु.	40 रु.	40 रु.
कीमत (सीमान्त मात्रा की) औसत लागत के बराबर होगी	20 रु.	20 रु.	20 रु.	$\frac{40}{2}$=20 रु.
लगान (द्रव्य के शब्दो मे) Rent (in terms of money)	(10×20) रु. −40 रु. =160 रु.	(8×20) रु. −40 रु. =120 रु.	(6×20) रु. −40 रु. =80 रु.	(2×20) रु. −40 रु. =शून्य रु. (No-rent dose)

उपर्युक्त तालिका के दो भाग है। प्रथम भाग मे लगान को 'उत्पत्ति के शब्दो मे' (in terms of produce) तथा दूसरे भाग मे लगान को 'द्रव्य के शब्दो मे' (in terms of money) दिखाया गया है। इसे चित्र 2 द्वारा व्यक्त किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि चौथी मात्रा अर्थात् सीमान्त मात्रा से पूर्व की मात्राओं पर लगान प्राप्त होता है जिसे रेखाकित भाग से दिखाया गया है।

(स) **स्थिति तथा लगान** (Situation and rent)—कुछ भूमियाँ मण्डी के निकट होंगी। जो भूमियाँ मण्डी से दूर होंगी उनकी उपज को मण्डी तक लाने मे अपेक्षाकृत अधिक यातायात-लागत पड़ेगी। यदि यह मान लिया जाय कि सभी भूमियाँ एक समान उपजाऊ हैं, तो भी स्थिति की दृष्टि से मण्डी की निकट की भूमियाँ श्रेष्ठ होगी अपेक्षाकृत मण्डी से दूर भूमियो के। किसी समय विशेष में जोती जाने वाली भूमियो मे जो भूमि मण्डी से सबसे अधिक दूरी पर है वह 'सीमान्त भूमि' (marginal land) कही जायेगी और अन्य भूमियाँ 'पूर्व सीमान्त भूमियाँ' (intra-marginal lands) कही जायेंगी। मण्डी के निकट की भूमियो अर्थात् पूर्व-सीमान्त भूमियों की यातायात-लागत कम होगी अपेक्षाकृत सीमान्त भूमि के, स्पष्ट है कि 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' को सीमान्त भूमि की तुलना मे 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) प्राप्त होंगी अर्थात् वे लगान अर्जित करेंगी।

4. लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता (Rent does not determine Price)

कृषि की वस्तु ... नत सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है तथा लगान इस लागत के ऊपर बचत (surplus) है, इसलिए लगान लागत मे प्रवेश नही करता तथा मूल्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि वह स्वय मूल्य द्वारा प्रभावित होता है।

5. लगान एक 'अर्नाजत आय' (Unearned Income) है

एक भूमिपति को लगान केवल भूमि के स्वामित्व के कारण प्राप्त होता है; लगान उसके प्रयत्नों का परिणाम नहीं होता, लगान कीमत के लागत से अधिक होने के कारण प्राप्त होता है। इस प्रकार लगान भूमिपति के प्रयत्नों का फल नहीं होता और वह एक प्रकार की अर्नाजत आय होती है।

10 9 8 7 6 5 4 3 2 1 0
Rent
1st Dose 2nd Dose 3rd Dose 4th Dose

चित्र 2

रिकार्डो के सिद्धान्तों की आलोचना (Criticism of the Ricardian Theory of Rent)
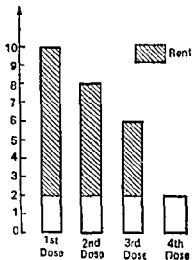
रिकार्डो के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्न हैं :

(1) रिकार्डो का यह कथन उचित नहीं है कि भूमि की शक्तियां (अर्थात् उर्वरा शक्ति) मौलिक तथा अविनाशी होती हैं। प्रकृति भूमि को कुछ उर्वरा शक्ति प्रदान करती है, परन्तु श्रम तथा पूंजी के प्रयोग द्वारा भूमि एक बड़ी मात्रा में उर्वरा शक्ति अर्जित (acquire) भी करती है। प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे निश्चित किया जाय कि भूमि की उपज में से कितना भाग भूमि की मौलिक शक्ति के कारण है और कितना भाग उसकी अर्जित शक्ति के कारण। अत: भूमि की मौलिक शक्ति का विचार अनुचित तथा अस्पष्ट (nebulous) है।

दूसरे, आज के अणु शक्ति (atomic energy and nuclear physics) के युग में भूमि की उर्वरा शक्ति को अविनाशी कहना गलत है। इसके अतिरिक्त लगातार खेती करने से, जलवायु में परिवर्तन तथा कृषि के तरीकों में परिवर्तनों के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में परिवर्तन होता रहता है। कृषि योग्य भूमियां धूल के कोलों (dust bowls) में तथा रेगिस्तान हरी भूमियों (green lands) में परिवर्तित हो जाते हैं।

[रिकार्डो के समर्थकों का कहना है कि भूमि की उर्वरा शक्ति को छोड़कर अन्य शक्तियां, जैसे किसी भूमि के टुकड़े से सम्बन्धित सूर्य की रोशनी तथा पानी की मात्रा, अविनाशी होती है।]

(2) रिकार्डो द्वारा बताया गया भूमि के जोतने का क्रम सही नहीं है। केरी तथा रोशर (Carey and Rocher) के अनुसार, लोग पहले सबसे अधिक उपजाऊ भूमि, तत्पश्चात् उससे कम उपजाऊ भूमि, फिर उससे कम उपजाऊ भूमि, इत्यादि, क्रम में भूमि को नहीं जोतते। वे सर्वप्रथम उन भूमियों को जोतते हैं जो सबसे अधिक सुविधाजनक होंगी अर्थात् जो शहरों तथा मण्डियों के निकट होंगी।

परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है। (i) वाकर (Walker) के अनुसार, सर्वश्रेष्ठ भूमि (best land) से रिकार्डो का अर्थ ऐसी भूमि से था जो कि उर्वरता तथा स्थिति (fertility and situation) दोनों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हो। (ii) रिकार्डो के सिद्धान्त में भूमि को जोतने का क्रम महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह बात महत्त्व की है कि विभिन्न भूमियों की उपज (yield) में अन्तर होना चाहिए।

(3) रिकार्डो का सिद्धान्त लगान उत्पन्न होने के कारण पर उचित प्रकाश नहीं डालता। ब्रिग्स तथा जोरडन (Briggs and Jordon) के अनुसार, रिकार्डो का सिद्धान्त केवल इस सामान्य सत्य को बताता है कि एक अधिक अच्छी वस्तु के लिए सदैव ऊंची कीमत प्राप्त होगी। इसी प्रकार एक अधिक उपजाऊ भूमि की कीमत कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक होगी क्योंकि दोनों भिन्न हैं। इस प्रकार रिकार्डो का सिद्धान्त केवल यह बताता है कि एक श्रेष्ठ भूमि का लगान निम्न कोटि की

भूमि की अपेक्षा अधिक होगा; यह सिद्धान्त यह नही बताता कि लगान क्यो उत्पन्न होता है।*

(4) यह सिद्धान्त भी, अन्य क्लासीकल सिद्धान्तो की भाँति, पूर्ण प्रतियोगिता तथा दीर्घकाल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

(5) रिकार्डो के सिद्धान्त मे सीमान्त भूमि अर्थात् लगान रहित भूमि (no-rent land) की मान्यता उचित नहीं है; व्यावहारिक जीवन मे किसी देश मे, शायद ही कोई ऐसी भूमि हो जिस पर लगान न दिया जाता हो।

(6) रिकार्डो के सिद्धान्त की यह धारणा कि लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता, पूर्णतया सही नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार कुछ दशाओ मे लगान लागत का अंग होता है और कीमत को प्रभावित करता है, जैसे एक व्यक्तिगत कृषक की दृष्टि से समस्त लगान कृषक के लिए लागत है और इसलिए यह कीमत को प्रभावित करता है। (लगान और कीमत के सम्बन्ध के पूर्ण विवरण के लिए इसी अध्याय मे आगे देखिए)।

(7) रिकार्डो के सिद्धान्त की यह धारणा कि लगान केवल भूमि को ही प्राप्त हो सकता है, सही नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार, लगान 'अवसर लागत' (opportunity cost) के ऊपर बचत (surplus) है। इस दृष्टि से लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक उत्पत्ति का साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूजी) लगान प्राप्त कर सकता है। अतः लगान के सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल भूमि के साथ स्थापित करना उचित नही है जैसा कि रिकार्डो ने किया।

निष्कर्ष

रिकार्डो के सिद्धान्त की उपर्युक्त अनेक आलोचनाओ के होते हुए भी यह सिद्धान्त बेकार नही है, इस सिद्धान्त की कई बाते ठीक हैं तथा आज भी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त मे इसका महत्त्व है। रिकार्डो ने एक मुख्य गलती यह की है कि उन्होने केवल भूमि को ही सीमित समझा और इसलिए लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित कर उसका एक पृथक सिद्धान्त बनाया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार, 'सीमितता का गुण' (quality of fixity or specificity) केवल भूमि में नही बल्कि अन्य सभी साधनो मे पाया जाता है। रिकार्डो के सिद्धान्त को आदर प्रदान करने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने 'सीमितता के गुण' के लिए 'भूमि-पक्ष' या 'भूमि-तत्त्व' (land aspect or land element) शब्द का प्रयोग किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बताया कि प्रत्येक साधन मे 'भूमि-तत्त्व' होता है और इसलिए प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियो के हाथो मे लगान-सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त बन गया है।

आभास-लगान या अर्द्ध-लगान
(QUASI-RENT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

मार्शल ने आभास-लगान के विचार को प्रस्तुत किया। मार्शल ने बताया कि 'मनुष्य द्वारा निर्मित मशीनो तथा अन्य यन्त्रो' (machines and other appliances made by man) की पूर्ति अल्पकाल मे स्थिर या बेलोचदार होती है तथा दीर्घकाल मे परिवर्तनशील या लोचदार। चूकि इन पूजीगत साधनो की पूर्ति, भूमि की भाँति, दीर्घकाल मे स्थिर नही होती है, इसलिए इनकी आयो को लगान नहीं कहा जा सकता, परन्तु अल्पकाल मे इन साधनो की पूर्ति स्थिर होती है, अतः अल्पकाल मे इन साधनो की आय 'लगान की भाँति' होती है जिसे मार्शल ने 'आभास-लगान' कहा।

अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री भी आभास-लगान के विचार को प्रस्तुत करते हैं; परन्तु उनके द्वारा आभास-लगान का प्रयोग तथा अर्थ मार्शल से बहुत भिन्न है। मार्शल तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियो दोनो के दृष्टिकोणो का विवेचन हम आगे करते है।

* Briggs and Jordon, *A Text Book of Economics* (Revised. Mackness), p. 287.

2. मार्शल का दृष्टिकोण (Marshall's View)

(i) मार्शल ने आभास लगान को मुख्यतया पूंजीगत वस्तुओं की अल्पकालीन आय के लिए प्रयुक्त किया। पूजीगत वस्तुओं, जिनकी पूर्ति अल्पकाल मे बेलोचदार तथा दीर्घकाल मे लोचदार होती है, की अल्पकालीन आयों के लिए मार्शल ने 'आभास-लगान' शब्द का प्रयोग किया।[7] उसको दूसरे शब्दो मे निम्न प्रकार भी व्यक्त किया जाता है :

"मशीन (अर्थात् पूंजीगत वस्तुओं) की अल्पकालीन आय में से उसको चलाने की अल्पकालीन लागत को घटाने से जो बचत प्राप्त होती है उसे आभास लगान कहते है। आभास लगान यह बताता है कि मशीन की अल्पकालीन आय उसके चलाने की अल्पकालीन लागत से कितनी अधिक है, इस प्रकार आभास-लगान अल्पकालीन लागत के ऊपर एक प्रकार की अल्पकालीन बचत है।"[8]

उदाहरणार्थ, माना कि अल्पकाल मे किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप मशीन की मांग तथा कीमत मे भी वृद्धि हो जायेगी। यदि मशीन पहले 100 रु. लगान प्राप्त कर रही थी तो अब वह, माना, 130 रु. प्राप्त कर सकेगी। अत अल्पकाल मे 30 रु. की अतिरिक्त आय (surplus income) प्राप्त होती है जिसे मार्शल ने 'आभास-लगान' कहा।

इस प्रकार, आभास-लगान एक अस्थायी आय है जो कि साधन की पूर्ति मे अस्थायी कमी के कारण उत्पन्न होती है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाती है जैसे ही पूर्ति बढ़ी हुई मांग के साथ समायोजित (adjust) हो जाती है।[9]

3. आधुनिक मत (Modern View)

आधुनिक अर्थशास्त्री आभास-लगान के सम्बन्ध मे एकमत नही है, उनमे बहुत विभिन्नता पायी जाती है। इसलिए कुछ अर्थशास्त्री, जैसे **प्रो. लेफ्टविच**, आभास-लगान शब्द का प्रयोग करना ही पसन्द नहीं करते हैं। **प्रो. लेफ्टविच** के शब्दो मे, "आभास-लगान शब्द, जिसका श्रीगणेश ऐल्फ्रेड मार्शल ने किया था, आर्थिक साहित्य मे इतने अस्पष्ट रूप में प्रयुक्त किया गया है कि हम पूर्ण रूप से इसका परित्याग ही करना चाहेंगे।" ऐसी दशा में नीचे हम आभास-लगान के सम्बन्ध में उस मत का विवेचन करेंगे जो अधिकांश अर्थशास्त्रियो द्वारा मान्य है।

(i) आधुनिक अर्थशास्त्री प्राय परिवर्तनशील लागत (variable cost) के ऊपर अल्पकालीन बचत (short-run surplus) को आभास लगान कहते हैं। एक आधुनिक अर्थशास्त्री के

---

[7] "Marshall used the term quasi-rent for the short-run earnings of capital goods whose supply in the short period is inelastic and in the long run elastic.

[8] "The short-run earnings of a machine minus the short-run cost of keeping it in running order is called the quasi-rent. It shows by how much the short-run earnings of the machine exceed the short-run cost of maintaining it, thus, it is a kind of short-run surplus over short-run cost."

[9] मार्शल ने आभास-लगान शब्द के प्रयोग मे एकरूपता (consistency) नही रखी। उन्होंने आभास-लगान को एक दूसरे अर्थ मे भी प्रयोग किया। **मार्शल के अनुसार मजदूरी तथा लाभ में भी आभास लगान का अंश होता है।** एक व्यक्ति की आय (अर्थात् मजदूरी या लाभ) मे एक भाग प्रकृति द्वारा दी गयी योग्यता या गुणो के कारण प्राप्त होता है तथा दूसरा भाग प्रशिक्षण (training) मे पूंजी का विनियोग कर अर्जित योग्यता या गुणो (acquired ability or qualities) के कारण होता है। मार्शल के अनुसार, व्यक्ति की वह आय जो कि अर्जित व्यक्तिगत गुणो (acquired personal qualities) के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है वह आभास-लगान कही जा सकती है। मार्शल ने बताया कि लाभ मे आभास-लगान का अश, मजदूरी मे आभास-लगान के अश की अपेक्षा, अधिक होता है। परन्तु अर्जित गुणो के कारण प्राप्त आय (अर्थात् आभास-लगान) को व्यक्ति की कुल आय या मजदूरी मे से कैसे ठीक-ठीक ज्ञात किया जाये।

चित्र 3

अनुसार आभास-लगान की परिभाषा इस प्रकार है :

"आभास-लगान कुल आगम (total revenue) तथा कुल परिवर्तनशील लागत (total variable cost) के बीच अन्तर है।"[10] "दीर्घकाल में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, आभास लगान समाप्त हो जाते हैं क्योंकि सब लागत परिवर्तनशील हो जाती है तथा कुल आगम और कुल परिवर्तनशील लागत[11] बराबर हो जाती है।"[12]

संक्षेप में, अल्पकाल में :

कुल आभास-लगान = कुल आगम (Total Revenue or TR) − कुल परिवर्तनशील लागत (Total Variable cost or TVC)

अथवा

आभास-लगान प्रति इकाई उत्पादन पर (Quasi-rent per unit of production) = *औसत आगम (Average Revenue or AR)* − *औसत परिवर्तनशील लागत* (Average Variable cost or AVC)

आभास-लगान के उपर्युक्त विचार को चित्र 3 के द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र में SRAC अल्पकालीन औसत लागत (Short-run average cost) रेखा है, SRAVC अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागत (Short-run average variable cost) रेखा है, तथा SRMC अल्पकालीन सीमान्त लागत (Short-run marginal cost) रेखा है। उद्योग विशेष में कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है, माना कि यह P_1 है। उद्योग में प्रत्येक फर्म इस मूल्य P_1 को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए कीमत रेखा (या AR-रेखा) P_1M होगी। इस दशा में फर्म OB मात्रा का उत्पादन करेगी क्योंकि इस मात्रा पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, इसका कारण है कि बिन्दु A पर लाभ को अधिकतम करने की दशा MR=MC पूरी हो रही है।

---

[10] Quasi-rent is the difference between total revenue and total variable cost.

[11] कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्तनशील लागत = कुल लागत। चूंकि दीर्घकाल में स्थिर लागतें समाप्त हो जाती हैं और सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं, इसलिए दीर्घकाल में 'कुल परिवर्तनशील लागत' या 'कुल लागत' एक ही बात है। पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में 'कुल आगम' (total revenue) तथा 'कुल परिवर्तनशील लागत' (total variable cost) बराबर हो जाती हैं, इसका अर्थ है कि 'कुल आगम' तथा 'कुल लागत' (total cost) बराबर हो जाती हैं; *'कुल आगम' तथा 'कुल लागत' बराबर होने का अभिप्राय है कि केवल 'सामान्य लाभ'* (normal profit) प्राप्त होता है।

[12] In the long run, in pure competition, quasi-rents must disappear, since all costs are variable and total revenue and total variable cost are equal."

जब कीमत P_1 (या AB) है, तो—

प्रति इकाई आभास-लगान (Quasi-rent per unit)

=औसत आगम (AR) – औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)

=AB – BK

=AK

कुल आभास लगान (Total Quasi-rent)[13]

=प्रति इकाई आभास-लगान × कुल उत्पादन

=AK × OB

=AK × LK (∴ OB=LK)

$=AKLP_1$

चित्र से स्पष्ट है कि प्रति इकाई आभास-लगान AK के दो भाग हैं : स्थिर लागत (प्रति इकाई) GK[14] तथा लाभ (प्रति इकाई) AG; दूसरे शब्दो मे, **यहाँ पर आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक है।**

यदि कीमत P_2 (या CD) है तो,

प्रति इकाई आभास लगान=औसत आगम (AR) – औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)

=CD – VD

=VC

कुल आभास लगान=VC × RV (or OD)

$=RVCP_2$

चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति में प्रति इकाई आभास लगान VC तथा प्रति इकाई स्थिर लागत (अर्थात् औसत स्थिर लागत) दोनों बराबर है; दूसरे शब्दों मे **यहाँ पर आभास लगान स्थिर लागत के बराबर है।**

यदि कीमत P_3 है तो,

प्रति इकाई आभास-लगान=ET

कुल आभास लगान =ET × ST (or OF)

$=STEP_3$

चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति में प्रति इकाई आभास-लगान ET कम है 'SRAC तथा SRAVC के बीच खड़ी दूरी से' अर्थात् ET कम है औसत स्थिर लागत (AFC) से; इस प्रकार यहाँ पर आभास-लगान स्थिर लागत से कम है।

यदि मूल्य (अर्थात् AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम है अर्थात् चित्र मे

---

[13] कुल आभास लगान को इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं :

कुल आभास लगान=कुल आगम (Total Revenue)

–कुल परिवर्तनशील लागत (Total variable cost)

$=OBAP_1 - OBKL$

$=AKLP_1$

[14] ध्यान रहे कि

AC=AFC+AVC or AC – AVC=AFC

अतः AC तथा AVC का अन्तर AFC होता है। चित्र से स्पष्ट है कि OB उत्पादन पर AC तथा AVC के बीच अन्तर खडी दूरी GK औसत स्थिर लागत अथवा स्थिर लागत प्रति इकाई (AFC) को बताती है।

मूल्य P_4 (या HJ) से कम है तो फर्म अल्पकाल में उत्पादन बन्द कर देगी। [परिणामस्वरूप बिन्दु H 'बन्द होने का बिन्दु' (shut-down point) कहा जाता है] और इस मान्यता के आधार पर यह ध्यान देने की बात है कि आभास-लगान कभी ऋणात्मक (negative) नहीं हो सकते,[15] कम से कम वे शून्य (zero) हो सकते हैं जैसा कि चित्र में बिन्दु H पर है क्योंकि इस बिन्दु पर AR तथा AVC बराबर हैं।

अब हम सामान्यीकरण (generalization) कर सकते हैं कि **आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकता है।** जब आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक होता है तो फर्म लाभ प्राप्त करती है। यदि आभास-लगान स्थिर लागत से कम होता है तो फर्म को हानि होती है। यदि आभास-लगान स्थिर लागत के बराबर होता है तो फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। अर्थात् फर्म को 'विनियोग पर सामान्य प्रतिफल' (normal return on investment) प्राप्त होता है।

4. निष्कर्ष (Conclusion)

(i) **मार्शल का आभास-लगान का विचार रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का, भूमि के अतिरिक्त अन्य साधनों के लिए, विस्तार मात्र है।**[16] पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल में भूमि की भाँति, स्थिर होती है, इसलिए उनकी अल्पकालीन आय को मार्शल ने आभास-लगान कहा। वास्तव में मार्शल का आभास-लगान का विचार 'रिकार्डो' के लगान सिद्धान्त' तथा 'लगान के आधुनिक सिद्धान्त' के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

(ii) आधुनिक अर्थशास्त्री आभास लगान का अर्थ थोड़ा भिन्न लेते हैं। **अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास लगान कुल आगम तथा कुल परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर है जो कि अल्पकाल में रहता है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है।**

दुर्लभता लगान
(SCARCITY RENT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

रिकार्डो ने 'भूमि के भेदात्मक गुण' (differential quality) तथा 'भूमि की सीमितता' (scarcity of land) दोनों बातों का अपने सिद्धान्त में समावेश किया। परन्तु रिकार्डो ने इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट रूप से नहीं समझा, उन्हें इन दोनों के सम्बन्ध में भ्रम (confusion) था; रिकार्डो ने भूमि के 'भेदात्मक गुण' पर जोर दिया, न कि भूमि की सीमितता पर। रिकार्डो के अनुसार, लगान एक 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) है—यह श्रेष्ठ भूमियों के उत्पादन तथा निम्न कोटि की भूमियों के उत्पादन में अन्तर है।

---

[15] प्रो. फ्लक्स (Flux) के अनुसार, अल्पकाल में सम्पत्ति (property) से प्राप्त समस्त आय आभास-लगान नहीं होती बल्कि आभास-लगान तो केवल सामान्य प्रतिफल (normal return) अर्थात् सामान्य लाभ के ऊपर अतिरेक (surplus) होता है। यदि आय सामान्य प्रतिफल से कम है तो प्रो. फ्लक्स इसे "ऋणात्मक आभास-लगान" (negative quasi-rent) कहते हैं। परन्तु प्रो. फ्लक्स के विचार आधुनिक अर्थशास्त्रियों को मान्य नहीं हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूंजीगत वस्तु या किसी साधन की समस्त अल्पकालीन आय जो कि कुल परिवर्तनशील आय के ऊपर अतिरेक है आभास लगान है चाहे वह "सामान्य प्रतिफल" से अधिक है या कम। इसके अतिरिक्त आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास-लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकते क्योंकि यदि कीमत (अर्थात् AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम होती है तो फर्म अल्पकाल में भी उत्पादन को बन्द कर देगी।

[16] "Marshall's concept of quasi-rent is an extension of the Ricardian rent theory to inputs other than land."

2. दुर्लभता लगान का अर्थ तथा उसका निर्धारण (Meaning of Scarcity Rent and Its Determination)

माल्थस (Malthus) तथा कुछ यूरोपीय अर्थशास्त्रियों ने लगान को एक 'दुर्लभता आय' (Scarcity income) की दृष्टि से देखा।

दुर्लभता लगान को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—**दुर्लभता लगान भूमि के प्रयोग के लिए दी गयी कीमत है जबकि भूमि की पूर्ति माँग की तुलना में सीमित होती है। दुर्लभता लगान का सिद्धान्त यह मान लेता है कि भूमि एक रूप तथा सीमित दोनों है।** यदि भूमि बहुलता मे (in abundance) या असीमित (unlimited) है (अर्थात् उसकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार है) तो भूमि के प्रयोग के लिए कोई कीमत देने की आवश्यकता नहीं पडती तथा लगान शून्य होगा। माँग मे बहुत वृद्धि होने से सब भूमि प्रयोग मे आती है और भूमि माँग की तुलना में सीमित रह जाती है। भूमि की माँग बढने पर भी उसकी पूर्ति को नही बढाया जा सकता है अर्थात् उसकी पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार है और अब भूमि के प्रयोग के लिए कुछ कीमत अर्थात् लगान देना पडेगा। किसी देश मे सभी भूमियों के एक समान उपजाऊ होने की बात मान लेने पर भी लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि की कुल पूर्ति उसकी कुल माँग की अपेक्षा कम है और ऐसी स्थिति मे भूमि के स्वामियों को 'दुर्लभता लगान' प्राप्त होगा।

दुर्लभता लगान के सिद्धान्त को स्टोनियर तथा हेग (Stonier and Hague) के शब्दों में बहुत अच्छी तरह से व्यक्त किया जा सकता है—"यह (अर्थात् दुर्लभता लगान) एक रूप भूमि की दुर्लभता या सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। यह बात विशुद्ध दुर्लभता लगान की मुख्य विशेषता है। अन्य उत्पत्ति के साधनो की कीमतों में वृद्धि, दीर्घकाल मे, प्रायः उनकी पूर्ति में वृद्धि करेगी, परन्तु लगान मे वृद्धि भूमि की पूर्ति मे वृद्धि नही कर सकती। अतः भूमि के प्रयोग के लिए ऊँची आयें दीर्घकाल मे भी उपस्थित रह सकती हैं, परन्तु अन्य साधनों के साथ ऐसा सम्भव नही है क्योंकि उनकी पूर्ति, बढ़ी हुई माँग के अनुसार, बढ जायेगी। भूमि की पूर्ति की स्थिरता वास्तव में एक रूप भूमि तथा उसके दुर्लभता लगान को अन्य उत्पत्ति के साधनो तथा उनकी कीमतो से भेदित करती है। दुर्लभता लगान, हमारे माडल[17] तथा वास्तविक जगत दोनो मे, मुख्यतया इस बात का परिणाम है कि भूमि की पूर्ति बेलोचदार है।"[18]

चित्र 4

दुर्लभता लगान के निर्धारण को चित्र 4 मे दिखाया गया है। चित्र मे AB-रेखा
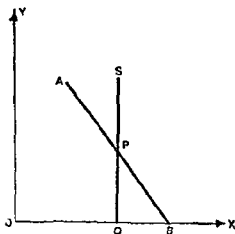
[17] हमारे माडल का अर्थ है कि दुर्लभता लगान के सैद्धान्तिक विवेचन मे हम यह मान कर चलते हैं सभी भूमि एक रूप (अर्थात् समान रूप से उपजाऊ) है, परन्तु वास्तविक जगत में सभी भूमि एकरूप नही होती।

[18] "It (i e., scarcity rent) results from the scarcity of homogeneous land. The essential feature of pure scarcity rent is this. Whilst a rise in the prices of other factors of production will often cause an increase in their supply, at any rate in the long run, a rise [*Contd.*]

भूमि की माँग रेखा है अर्थात भूमि की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) को बताती है। यदि भूमि बहुलता में है या असीमित मात्रा में है तो उसका उस सीमा तक प्रयोग किया जायेगा जहाँ पर सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है; चित्र मे ऐसी स्थिति बिन्दु B बताता है अर्थात् भूमि की केवल OB मात्रा प्रयोग की जायेगी। यदि भूमि की मात्रा असीमित नही है अर्थात वह सीमित है तथा भूमि की केवल OQ मात्रा प्राप्त है तो भूमि की पूर्ति रेखा खड़ी रेखा SQ होगी। AB तथा SQ दोनो P बिन्दु पर काटती है, अत भूमि के प्रयोग के लिए PQ दुर्लभता लगान दिया जायेगा और यह लगान भूमि की सीमान्त उत्पादकता के बराबर है (क्योंकि P बिन्दु AB रेखा पर भी है।)

3. **भेदात्मक लगान की तुलना में दुर्लभता लगान की श्रेष्ठता** (Superiority of Scarcity Rent over Differential Rent)

(i) रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त भूमि लगान-रहित भूमि (no-rent land) है। परन्तु 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' के अनुसार सीमान्त भूमि भी लगान प्राप्त कर सकती है यदि सीमान्त भूमि की माँग अथवा उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाती है।

(ii) रिकार्डो का सिद्धान्त 'भूमि की सीमितता' के स्थान पर 'भूमि के भेदात्मक गुण' पर अधिक बल देता है, रिकार्डो के अनुसार, 'लगान भेदात्मक बचत' है जो कि भूमियो की उर्वरता मे अन्तर के कारण प्राप्त होता है। परन्तु 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' के अनुसार, भूमि का लगान उसकी सीमितता के कारण होता है। परन्तु भूमि ही नही बल्कि अन्य साधन भी सीमित हो सकते हैं तथा लगान प्राप्त कर सकते है। यही बात आभास लगान तथा लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताता है। इस प्रकार 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' आधुनिक लगान सिद्धान्त के बहुत निकट है।

4. ***'दुर्लभता लगान' तथा 'भेदात्मक लगान' में अन्तर केवल दृष्टिकोण का है*** (*Distinction* between 'Scarcity Rent' and 'Differential Rent' is one of approach only)

एक भूमि द्वारा प्राप्त लगान को हम 'भेदात्मक लगान' तथा 'दुर्लभता लगान' दोनो दृष्टियों से देख सकते हैं। एक भूमि के लगान को 'भेदात्मक लगान' की दृष्टि से देखा जा सकता है यदि हम उस भूमि की उपज की तुलना निम्न कोटि की भूमियो या सीमान्त भूमि की उपज से करें। उसी भूमि के लगान को हम 'दुर्लभता लगान' की दृष्टि से देख सकते हैं यदि यह ध्यान में रखें कि लगान इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि उस प्रकार की भूमि की कुल पूर्ति, माँग की तुलना मे, सीमित है (उस प्रकार की भूमि के सीमित होने पर ही उससे निम्न कोटि की भूमि जोत में लायी जाती है)। अतः सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि 'भेदात्मक लगान' एक प्रकार से 'दुर्लभता लगान' होता है क्योंकि श्रेष्ठ भूमियो की कुल पूर्ति, उनकी माँग की तुलना मे, सीमित होती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'भेदात्मक लगान' तथा 'दुर्लभता लगान' के बीच अन्तर केवल दृष्टिकोण (approach) का ही है। अत मार्शल ने कहा कि

> **"एक अर्थ में सभी लगान दुर्लभता लगान हैं और सभी लगान भेदात्मक लगान हैं।"**[19]

---

in rent cannot increase the supply of land Higher earnings can, therefore, persist for land even in the long run, whereas with other factors this is not very likely to happen because supply will increase to meet the increased demand. It is the fixity of its supply which distinguishes homogeneous and its scarcity rent from other factors of production and the prices Scarcity rent is essentially the result of the fact that, both in our model and in the real world, land is in flexible supply."

—Stonier and Hague, *A Text Book of Economic Theory*, p. 283.

[19] Hence, Marshall observed that "in a sense all rents are scarcity rents and all rents are differential rents"

लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर
(DIFFERENCE AMONGST RENT, QUASI-RENT AND INTEREST)

लगान, आभास-लगान तथा ब्याज मे अन्तर की विवेचना को हम दो भागों में विभाजित करेंगे—(अ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल का दृष्टिकोण, तथा (ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण ।

(अ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल का दृष्टिकोण (Classical Economists' and Marshall's View)

लगान भूमि को प्राप्त होता है, यह अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में रहता है क्योंकि भूमि की पूर्ति, प्रकृति का नि:शुल्क उपहार होने के कारण, सदैव स्थिर रहती है।

मार्शल ने लगान के विचार को थोड़ा विस्तृत करने का प्रयत्न किया, उन्होंने पूंजीगत वस्तुओं की अल्पकालीन आय के लिए **आभास-लगान** शब्द का प्रयोग किया । मार्शल ने बताया कि पूंजीगत वस्तुओं, जैसे मशीनों, यन्त्रों इत्यादि की पूर्ति अल्पकाल मे, भूमि की भाँति, स्थिर हो सकती है और इसलिए इनकी अल्पकालीन आयें 'लगान की भांति' होती हैं अर्थात् 'आभास-लगान' होती हैं। मार्शल ने आभास-लगान को एक दूसरे अर्थ मे भी प्रयोग किया; उनके अनुसार मजदूरी तथा लाभ मे भी आभास-लगान का अंश होता है। दीर्घकाल मे आभास-लगान समाप्त हो जाते हैं।

ब्याज स्वतन्त्र या चल पूंजी (free or floating capital) के लिए पुरस्कार है जबकि आभास-लगान स्थिर पूंजी (fixed capital) के लिए पुरस्कार है ।

मार्शल ने लगान, आभास-लगान तथा ब्याज मे अन्तर बताते हुए स्पष्ट किया कि इनमे **अन्तर केवल मात्रा** (degree) **का है;** यह अन्तर केवल एक **'समय अवधि'** (time-span) अथवा **'समयावधि में लोच'** (elasticity over time) की बात है। भूमि तथा पूंजी प्रायः मिश्रित रूप मे पाये जाते हैं क्योंकि भूमि को प्रयोग में लाने के लिए कुछ न कुछ पूंजी का विनियोग अवश्य किया जाता है। भूमि की पूर्ति अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में लगभग पूर्णतया बेलोचदार (perfectly inelastic) होती है और इसलिए भूमि के लगान का अस्तित्व अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो मे रहता है। इसके विपरीत मनुष्यकृत पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल मे बेलोचदार तथा दीर्घकाल मे लोचदार होती है, अर्थात् आभास-लगान केवल अल्पकाल में रहता है तथा दीर्घकाल मे समाप्त हो जाता है। 'स्वतन्त्र पूंजी' (free capital) तथा 'पूंजीगत वस्तुएं या सम्पत्ति' (capital goods or capital assets) एक दूसरे में परिवर्तित किये जा सकते हैं। स्वतन्त्र पूंजी स्थिर पूंजीगत सम्पत्ति (मशीन, बिल्डिंग, औजार इत्यादि) मे परिवर्तित होती रहती हैं; तथा स्थिर पूंजी घिसाई-कोष (depreciation funds) के माध्यम से तथा अन्य रीतियों से स्वतन्त्र पूंजी मे परिवर्तित होती रहती है।

इस प्रकार लगान, आभास-लगान तथा ब्याज मे अन्तर केवल मात्रा का है; वे सम्पत्ति (property) से प्राप्त आय के विभिन्न रूप है। अतः **मार्शल** का कथन है **"इस प्रकार हमारा मुख्य सिद्धान्त है कि स्वतन्त्र पूंजी पर ब्याज तथा पूंजी के पुराने विनियोग पर आभास-लगान धीरे-धीरे एक दूसरे में मिल जाते हैं; यहाँ तक कि भूमि का लगान भी अपने में एक पृथक वस्तु नहीं है, बल्कि वह बड़ी जाति (large genus) की एक मुख्य उपजाति (leading species) है।"**[20]

(ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण (Modern Economists' View)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भी 'स्वतन्त्र या चल पूंजी' के लिए पुरस्कार ब्याज है।

---

[20] "Thus our central doctrine is that interest on free capital and quasi-rent on an old investment of capital shade into one another gradually, even the rent of land being not a thing by itself, but the leading species of a large genus."

—Marshall, *Principles of Economics*, p. 350.

परन्तु लगान और आभास-लगान के सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल के दृष्टिकोण से भिन्न है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान केवल भूमि से ही सम्बन्धित नहीं होता बल्कि प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। लगान अवसर लागत के ऊपर वह अतिरेक (surplus) है जिसका अस्तित्व अनिश्चित समय या लम्बे समय तक बना रहता है। आर्थिक लगान उन साधनों को प्राप्त होता है जिनकी पूर्ति लम्बे समय तक स्थिर या बेलोच रहती है।

आभास-लगान कुल आगम (total revenue) तथा कुल परिवर्तनशील लागत (total variable cost) के बीच अन्तर है जो कि केवल अल्पकाल में रहता है।

लगान का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF RENT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

रिकार्डो तथा क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, केवल भूमि ही लगान प्राप्त कर सकती है। भूमि प्रकृति का उपहार है, इसलिए उसकी पूर्ति स्थिर या सीमित (fixed or limited) होती है। रिकार्डो के अनुसार, भूमि का यह गुण अन्य साधनों से भिन्न है, इसलिए उन्होंने लगान के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता समझी। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, अन्य साधन (श्रम तथा पूजी), भूमि की भाँति, स्थिरता या सीमितता का गुण (quality of fixity or limitedness) अर्थात् 'भूमि तत्त्व' (land-element) अर्जित (acquire) कर सकते हैं, और इसलिए वे भी लगान प्राप्त कर सकते हैं। अत आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, प्रत्येक साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूजी या साहस) लगान प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) है।

2. आधुनिक सिद्धान्त का आधार (Basis of the Modern Theory)

आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वोन वीजर (Von Wieser) ने उत्पत्ति के साधनों को दो वर्गों मे बाँटा—(i) **पूर्णतया विशिष्ट साधन** (Perfectly Specific Factors), तथा (ii) **पूर्णतया अविशिष्ट साधन** (Perfectly Non-specific Factors)। 'पूर्णतया विशिष्ट साधन' वे है जो कि केवल एक प्रयोग मे ही प्रयुक्त(use)किये जा सकते हैं, अथवा जो पूर्णतया अगतिशील (perfectly immobile) हो। पूर्णतया अविशिष्ट साधन वे है जो कि कई प्रयोगो मे प्रयुक्त किये जा सकते हैं; अथवा जो पूर्णतया गतिशील (perfectly mobile) हो। विशिष्टता (specificity) के सम्बन्ध मे दो बातें ध्यान रखने की है (i) विशिष्टता एक गुण (quality) है जो किसी समय में कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है। जो साधन आज विशिष्ट है वह कल अविशिष्ट हो सकता है। (उदाहरणार्थ, यदि किसी भूमि के टुकडे मे चने के बीज बो दिये जाते है तो वह टुकडा विशिष्ट होगा; चने की फसल कट जाने पर वह टुकडा अविशिष्ट हो जायगा और उसको किसी भी प्रयोग मे प्रयुक्त किया जा सकेगा।) (ii) वास्तव मे कोई भी साधन न तो पूर्ण रूप से विशिष्ट होता है और न पूर्ण रूप से अविशिष्ट। एक साधन प्राय आंशिक रूप से विशिष्ट और आंशिक रूप से अविशिष्ट होता है।

वीजर के उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों (श्रीमती जोन रोबिन्सन, बोल्डिग, इत्यादि) न आधुनिक सिद्धान्त का निर्माण किया। **आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान विशिष्टता के लिए भुगतान** (payment) **है या उसका परिणाम** (result) है। आधुनिक अर्थशास्त्री 'विशिष्टता' (specificity) के लिए 'भूमि-तत्त्व' (land-element or land-aspect) शब्द का भी प्रयोग करते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि एक साधन 'भूमि-तत्त्व' के कारण लगान प्राप्त करता है। चूंकि प्राय एक साधन आंशिक रूप से विशिष्ट तथा आंशिक रूप मे अविशिष्ट होता

है, इसलिए एक साधन के पुरस्कार (remuneration or income) में उस सीमा तक लगान का अंश होता है जिस सीमा तक कि साधन विशिष्ट होता है। यह बात आगे एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट की गयी है।

3. लगान की परिभाषा तथा व्याख्या (Definition of Rent and Its Explanation)

श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, "लगान के विचार का सार वह बचत (surplus) है जोकि एक साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो कि साधन को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।"[31]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक बचत (surplus) है जो किसी भी साधन की इकाई को उसकी न्यूनतम पूर्ति कीमत (minimum supply price) अर्थात् अवसर लागत (opportunity cost)[32] के ऊपर प्राप्त होती है।

संक्षेप में,

लगान (Rent)=वास्तविक आय (Actual earnings)—अवसर लागत (Opportunity cost)

उपर्युक्त सूत्र की सहायता से हम किसी साधन की इकाई की आय में से लगान का अंश (element of rent) ज्ञात कर सकते हैं। इस बात को हम निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं :

एक मैनेजर की वर्तमान आय (Present earnings of a manager)	अवसर लागत (Opportunity cost)	लगान (अर्थात् अवसर लागत के ऊपर बचत) (Rent=Surplus over Opportunity cost)
1,000 रु.	1,000 रु.	(1,000 – 1,000) रु. = 0·0 रु. —स्थिति 1 (Case I)
	0·0 रु.	(1,000 – 0·0) रु. = 1,000 रु. —स्थिति 2 (Case II)
	700 रु.	(1,000 – 700) रु. = 300 रु. —स्थिति 3 (Case III)
	1,200 रु.	? —स्थिति 4 (Case IV)

स्थिति 1 (Case I)—माना कि एक मैनेजर की वर्तमान आय 1,000 रु. है। यदि वह वर्तमान व्यवसाय छोड़े तो दूसरे व्यवसाय में भी उसे 1,000 रु. प्राप्त हो सकता है, दूसरे शब्दों में, वह 'पूर्णतया अविशिष्ट' है अथवा वर्तमान व्यवसाय के लिए जरा भी विशिष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में साधन (मैनेजर) को अवसर लागत के ऊपर कोई बचत अर्थात् लगान प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसकी वर्तमान आय तथा अवसर लागत बराबर है। दूसरे शब्दों में, स्थिति 1 यह दिखाती है कि साधन

---

[31] "The essence of the conception of *rent* is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum earnings necessary to induce it to do its work."

[32] किसी साधन की अवसर लागत वह आय है जो कि उसे दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग (next best paid alternative) में मिल सकती है। दूसरे शब्दों में, किसी साधन की अवसर लागत साधन की वह न्यूनतम आय (minimum earnings) है जोकि उसे वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए आवश्यक है। ध्यान रहे अवसर लागत के लिए प्राय: 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' या 'पूर्ति मूल्य' (minimum supply price or simply 'supply price') के शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। अवसर लागत के पूर्ण विवरण के लिए इस पुस्तक के अध्याय 30 को देखिए।

(मैनेजर) 'पूर्णतया अविशिष्ट' (perfectly non-specific) है इसलिए उसे कोई लगान प्राप्त नही होता है। यह एक सिरे (one extreme) की स्थिति है।

स्थिति 2 (Case II)—एक दूसरी स्थिति ऐसी हो सकती है कि यदि मैनेजर अपने वर्तमान रोजगार को छोडकर किसी दूसरे व्यवसाय मे जाना चाहे तो उसे किसी भी दूसरे व्यवसाय मे कोई रोजगार प्राप्त न हो अर्थात् साधन (मैनेजर) वर्तमान व्यवसाय के लिए 'पूर्णतया विशिष्ट' (perfectly specific) है। इसका अर्थ है कि साधन की अवसर लागत शून्य है। ऐसी स्थिति मे उसकी समस्त वर्तमान आय अवसर लागत के ऊपर बचत अर्थात् लगान होगी। स्पष्ट है कि स्थिति 2 यह बात बताती है कि साधन 'पूर्णतया विशिष्ट' है और इसलिए उसकी समस्त आय लगान है। यह एक दूसरे सिरे (another extreme) की स्थिति है।

स्थिति 3 (Case III) माना कि मैनेजर को दूसरे प्रयोग मे 700 रु. मिल सकते हैं तो 700 रु. उसकी अवसर लागत हुई। ऐसी स्थिति मे उसको (1,000 – 700) रु.=300 रु. के बराबर अवसर लागत के ऊपर बचत है और यह लगान है। स्थिति 3 बताती है कि साधन (मैनेजर) आंशिक रूप से 'विशिष्ट' है तथा आंशिक रूप से 'अविशिष्ट' है।

साधन (अर्थात् मैनेजर) जिस सीमा तक दूसरे प्रयोग मे माँगा जाता है उस सीमा तक वह विशिष्ट नही है अर्थात् वह 'अविशिष्ट' (non-specific) है। उदाहरण मे, मैनेजर 700 रु. तक दूसरे प्रयोग मे मांगा जाता है इसलिए 700 रु. की सीमा तक वह 'अविशिष्ट' है और (1,000 – 700)=300 र. की सीमा तक वह 'विशिष्ट' (specific) है और यह 300 रु. ही लगान है। इससे स्पष्ट है कि लगान 'विशिष्टता' (specificity) के लिए भुगतान (payment) है या विशिष्टता का परिणाम (result) है।

स्थिति 4 (Case IV)—माना कि मैनेजर को दूसरे व्यवसाय मे 1,200 रु. मिल सकते हैं, तो 1,200 रु. उसकी अवसर लागत कही जायेगी। अत:

लगान = वास्तविक आय – अवसर लागत
= 1,000 रु. – 1,200 रु.
= – 200 रु.

परन्तु लगान एक बचत है इसलिए वह ऋणात्मक (negative) नहीं हो सकता; अतः यहाँ लगान – 200 रु. नही होगा। ऐसी दशा मे साधन का लगान क्या होगा? ऐसी स्थिति मे हम यह मान लेते है कि चूंकि साधन को दूसरे प्रयोग मे अधिक मिल सकता है इसलिए वह वर्तमान प्रयोग को छोड़कर फौरन दूसरे प्रयोग मे चला जायेगा। अब इस दूसरे प्रयोग मे मिलने वाले 1,200 रु. उसकी वर्तमान आय हो जायेगी तथा पहले प्रयोग की 1,000 रु. की आय उसकी अवसर लागत हो जायेगी; इसलिए (1,200 – 1,000)=200 र. उसका लगान होगा।

4. लगान के उत्पन्न होने का कारण

हम देख चुके हैं कि लगान 'विशिष्टता' (specificity) का परिणाम है या 'विशिष्टता' के कारण उत्पन्न होता है; जो साधन 'पूर्णतया अविशिष्ट' होते हैं उन्हें कोई लगान प्राप्त नही होता। इसी बात को हम दूसरे प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं। लगान तब उत्पन्न होता है जबकि एक साधन दुर्लभ (scarce) या सीमित होता है। **एक साधन को लगान तब प्राप्य होगा जबकि उसकी पूर्ति सीमित (limited) हो अर्थात् बेलोचदार (inelastic) हो; दूसरे शब्दों में, जब उसकी पूर्ति 'पूर्णतया लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) हो।** किसी साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' है अर्थात् 'पूर्णतया लोचदार से कम' है, इसका अर्थ है कि वह साधन 'विशिष्ट' है अर्थात् उसमें 'विशिष्टता का अंश' (element of specificity) है। अत. लगान 'विशिष्टता का परिणाम' है या लगान साधन की 'बेलोच पूर्ति का परिणाम' है—ये दोनो एक ही बातें हैं।

'पूर्णतया लोचदार पूर्ति' (perfectly elastic supply) के साधन को कोई लगान प्राप्त

नहीं होगा। एक साधन की पूर्णतया लोचदार पूर्ति है, इसका अर्थ है कि एक विशेष कीमत पर साधन की कितनी ही इकाइयाँ (any number of units) प्राप्त हो सकेंगी। इस विशेष कीमत से नीची कीमत पर साधन की किसी भी इकाई की पूर्ति की पूर्ण अनुपस्थिति (complete absence) होगी। एक साधन 'पूर्णतया लोचदार' (perfectly elastic) है, इसका अर्थ है कि वह साधन 'पूर्णतया अविशिष्ट' (perfectly non-specific) है। 'साधन की पूर्णतया लोचदार पूर्ति' (prefectly elastic supply of a factor) तथा 'पूर्णतया अविशिष्ट साधन' (perfectly non-specific factor) दोनों एक ही बात है। अत: ऐसे साधनों की पूर्ति रेखा एक पड़ी रेखा (horizontal line) होगी जैसा कि चित्र 5 में LS रेखा बताती है। ऐसे साधनों को कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में साधन को दी गयी समस्त कीमत 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) है; क्योंकि जो भी कीमत साधन को वास्तव में दी जाती है वह इसलिए देनी पड़ती है ताकि
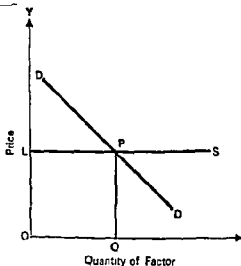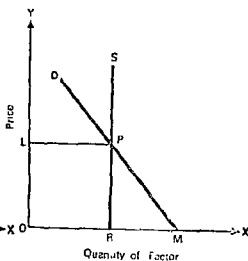
चित्र 5 चित्र 6

साधन दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित (transfer) होने से रोका जा सके। स्पष्ट है कि ऐसे साधनों की समस्त आय, 'हस्तान्तरण आय' अर्थात् 'अवसर लागत' होती है और इसलिए ऐसे साधनों को अवसर लागत के ऊपर कोई बचत नहीं होती और उन्हें कोई लगान प्राप्त नहीं होता। चित्र 5 में साधन की कुल कीमत $= PQ \times OQ = OQPL$; साधन की यह कुल कीमत (अर्थात् कुल आय) अवसर लागत है और उसे कोई लगान प्राप्त नहीं होता।

अब दूसरे सिरे (other extreme) की स्थिति को लीजिए। ऐसे साधन को लीजिए जो कि 'पूर्णतया बेलोचदार' (perfectly inelastic) है, अर्थात् 'पूर्णतया विशिष्ट' (perfectly specific) है, ऐसे साधनों की पूर्ति स्थिर होती है तथा वे एक ही प्रयोग में प्रयुक्त किये जा सकते हैं ऐसे साधनों की पूर्ति-रेखा X-axis पर खड़ी रेखा होती है जैसा कि चित्र 6 में SR-रेखा है। चित्र में DM माँग रेखा है। साधन की प्रति इकाई कीमत PR होगी। ऐसे साधन की अवसर लागत शून्य होगी क्योंकि साधन को PR से नीची कीमत देने पर भी वह दूसरे व्यवसाय में नहीं जायेगा; साधन की कुल कीमत $= PR \times OR = ORPL$; साधन की यह कुल कीमत (अर्थात् कुल आय) लगान होगी।

यदि साधन (माना श्रम) की पूर्ति 'पूर्णतया लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) है (अर्थात् साधन आंशिक रूप से विशिष्ट है तथा आंशिक रूप से अविशिष्ट है) तो साधन

की समस्त कीमत या आय मे से एक भाग लगान होगा। 'पूर्णतया लोचदार से कम पूर्ति' वाले साधन की पूर्ति रेखा बायें से दायें को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र 7 मे ES रेखा है। साधन के लिए माँग रेखा DD है। अतः साधन की साम्य कीमत (equilibrium price) अर्थात् आय PQ होगी और इस कीमत पर साधन की OQ मात्रा प्रयोग में लायी जायेगी। साधन की कुल आय या कुल कीमत = OQ × PQ = OQPW।

चित्र 7 से स्पष्ट है कि OE से कम या OE कीमत पर साधन की कोई भी इकाई कार्य करने को तत्पर नही होगी। साधन की OR मात्रा को प्रयोग मे लाने के लिए P_1 (या RA) न्यूनतम कीमत अवश्य देनी होगी अन्यथा साधन की OR मात्रा उद्योग विशेष में कार्य नही करेगी; दूसरे शब्दो मे, साधन की OR मात्रा की 'हस्तान्तरण आय या अवसर लागत' P_1 (या RA) है। यदि कीमत P_1 से बढ़कर P_2 हो जाती है तो साधन की RS अतिरिक्त इकाइयाँ (additional units) उद्योग मे कार्य करने को तत्पर हो जायेंगी यदि साधन की कीमत P_2 से बढ़ाकर P_3 कर दी जाती है तो अब साधन की ST अतिरिक्त इकाइयाँ उद्योग मे कार्य करने को आकर्षित होंगी। दूसरे शब्दो मे, पूर्ति रेखा के विभिन्न बिन्दु साधन की विभिन्न मात्राओं के लिए उन न्यूनतम कीमतो को बताते हैं जिन पर कि साधन की तत्सम्बन्धित मात्राएँ कार्य करने को या उद्योग में बने रहने को तत्पर हैं। स्पष्ट है कि
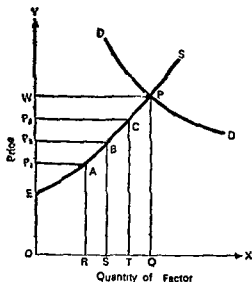
चित्र 7

'पूर्ति रेखा' के विभिन्न बिन्दु साधन की सम्बन्धित मात्राओं की 'अवसर लागत' को बताते हैं। अतः साधन की OQ मात्रा की कुल अवसर लागत = पूर्ति रेखा ES के नीचे का क्षेत्रफल OQPE; साधन की OQ मात्रा की कुल कीमत = OQ × PQ = क्षेत्रफल OQPW,

इसलिए,

साधन की मात्रा OQ का लगान = साधन की कुल कीमत (या आय)

—साधन की कुल अवसर लागत

= OQPW − OQPE

= EPW

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, उत्पत्ति का प्रत्येक साधन (भूमि, श्रम, पूजी, प्रबन्ध या साहस) लगान प्राप्त कर सकता है, साधन की वास्तविक आय मे से उसकी अवसर लागत को घटाकर लगान ज्ञात किया जाता है। लगान के उत्पन्न होने का कारण साधन की 'विशिष्टता' है, दूसरे शब्दो मे, लगान तब उत्पन्न होता है जबकि साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' हो अर्थात् 'पूर्णतया लोचदार से कम' हो। लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) है जो कि प्रत्येक साधन पर लागू होता है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त तथा आधुनिक लगान सिद्धान्त की तुलना।
(COMPARISON OF RICARDIAN THEORY AND MODERN THEORY)

दोनों सिद्धान्त प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित हैं। दोनो की तुलना आगे दी गयी है।

1. लगान का अर्थ

रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के लिए भुगतान है। इससे स्पष्ट है कि रिकार्डो के अनुसार, लगान केवल भूमि को ही प्राप्त होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार भूमि ही नहीं बल्कि प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। लगान किसी साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत (surplus) है। इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है।

रिकार्डो के सिद्धान्त तथा आधुनिक सिद्धान्त दोनों के अनुसार, लगान एक बचत या अतिरेक (surplus) है, परन्तु रिकार्डो के अनुसार, लगान सीमान्त भूमि की लागत पर अर्थात् द्राव्यिक लागत पर बचत है जबकि आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, लगान अवसर लागत पर बचत है।

2. लगान उत्पन्न होने का कारण

रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमियो की उर्वरा शक्तियो तथा स्थितियों मे अन्तर के कारण उत्पन्न होता है; श्रेष्ठ भूमियाँ निम्न कोटि की भूमियों या सीमान्त भूमि की तुलना में बचत अर्थात् लगान प्राप्त करती हैं। इस प्रकार रिकार्डो का लगान एक 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, लगान 'विशिष्टता' (specificity) का परिणाम है; अर्थात् लगान साधन की सीमितता या बेलोच पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में, किसी साधन को लगान तब प्राप्त होगा जबकि उसकी पूर्ति 'पूर्णतया लोचदार' से कम (less than perfectly elastic) हो।

3. लगान की माप

रिकार्डो के अनुसार, लगान सीमान्त भूमि की लागत की तुलना में मापा जाता है। सीमान्त भूमि 'लगान-रहित भूमि (*No-rent land*) होती है क्योंकि बाजार में वस्तु की कीमत उस सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है। श्रेष्ठ भूमियो की लागत तथा सीमान्त भूमि की लागत (अर्थात् वस्तु की कीमत) मे अन्तर ही लगान की माप है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, साधन की वास्तविक कीमत में से उसकी अवसर लागत को घटा देने पर लगान प्राप्त हो जाता है।

4. लगान तथा मूल्य

रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नही करता। वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होता है और सीमान्त भूमि पर कोई लगान प्राप्त नही होता; स्पष्ट है कि लगान लागत का अग नही होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नही करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है।

परन्तु आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार रिकार्डो का मत सही नही है। कई दशाओं में लगान लागत का अग होता है और मूल्य को प्रभावित करता है, जैसे एक उत्पादक या कृषक के लिए समस्त लगान लागत है और इसलिए लगान मूल्य को प्रभावित करता है।

लगान तथा मूल्य
(RENT AND PRICE)

लगान मूल्य को प्रभावित करता है या मूल्य लगान को प्रभावित करता है, अर्थात् लगान तथा मूल्य मे क्या सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध में दो मत हैं—(अ) रिकार्डो का मत; तथा (ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण। इन दोनो मतों का विवेचन अग्र प्रकार है।

(अ) रिकार्डो का मत (Recardo's View)

रिकार्डो का मत उनके इस वाक्य में निहित (embodiod) है—"अनाज का मूल्य इसलिए

ऊँचा नहीं होता कि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए दिया जाता क्योंकि अनाज का मूल्य ऊँचा होता है।"[33] इस वाक्य का अर्थ है (i) लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता; तथा (ii) मूल्य लगान को प्रभावित करता है।

लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता : रिकार्डो के अनुसार, कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त भूमि को कोई 'बचत' या लगान प्राप्त नही होता और वह लगान-रहित भूमि होती है। स्पष्ट है कि लगान लागत में प्रवेश नही करता और इसलिए वह मूल्य को प्रभावित नहो करता।

कीमत लगान को प्रभावित करती है। लगान श्रेष्ठ भूमियो तथा सीमान्त भूमि की लागतों का अन्तर है। चूंकि कीमत सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है इसलिए यह कहा जा सकता है कि लगान श्रेष्ठ भूमियों की लागत तथा कृषि उपज की कीमत मे अन्तर है। यदि कृषि उपज की माँग बढ़ती है तो नयी निम्न कोटि की भूमि जोत में आयेगी और पहले वाली सीमान्त भूमि अब पूर्व-सीमान्त भूमि (intra-marginal land) हो जायेगी और इसे भी अब लगान प्राप्त होने लगेगा। नयी सीमान्त भूमि की लागत पहली सीमान्त भूमि की अपेक्षा अधिक होगी, अब मूल्य नयी सीमान्त भूमि की ऊँची लागत के बराबर होगा अर्थात् मूल्य बढ जायेगा। मूल्य बढ जाने से श्रेष्ठ भूमियो की लागतो मे तथा मूल्य मे अन्तर बढ जायेगा अर्थात् लगान बढ जायेगा। स्पष्ट है कि मूल्य बढने से लगान बढ जाता है क्योंकि कृषि की सीमा (margin of cultivation) आगे को खिसकती है। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत घटती है तो कृषि की सीमा पीछे को खिसकती है अर्थात् सीमान्त भूमि की लागत तथा श्रेष्ठ भूमियो की लागतो मे अन्तर कम होता है, अर्थात् लगान कम होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रिकार्डो के अनुसार लगान कीमत को प्रभावित नही करता बल्कि कीमत लगान को प्रभावित करती है, कीमत के बढ़ने-घटने से लगान बढता-घटता है।

(4) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत (View of Modern Economists)

आधुनिक अर्थशास्त्री मूल्य तथा लगान के सम्बन्ध पर रिकार्डो के मत से सहमत नहीं हैं; उनके अनुसार, रिकार्डो का यह विचार उचित नही है कि लगान सदैव मूल्य को प्रभावित नहीं करता।

लगान मूल्य को प्रभावित करता है या नहीं यह इस पर निर्भर करेगा कि हम लगान को अर्थ-व्यवस्था के किस भाग की दृष्टि से देखते हैं—एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से या एक उद्योग की दृष्टि से या समस्त समाज (अर्थात् समस्त अर्थ-व्यवस्था) की दृष्टि से। इन तीनो स्थितियों में लगान तथा मूल्य के सम्बन्ध की विवेचना निम्न प्रकार है :

(i) सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से (From the point of view of the society as a whole)—आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार, रिकार्डो का यह विचार कि लगान मूल्य को प्रभावित नही करता, तब उचित कहा जा सकता है जबकि भूमि को सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से देखा जाय। सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से भूमि प्रकृति का उपहार है, उसकी कुल पूर्ति स्थिर है, उसकी हस्तान्तरण आय अर्थात् अवसर लागत (transfer earning or opportunity cost) शून्य होती है, क्योंकि समाज को दृष्टि से भूमि को प्रयोग मे या अस्तित्व (existence) मे लाने के लिए कोई न्यूनतम पूर्ति मूल्य (अन्य साधनों की भांति) नही देना पडता। अत. सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से भूमि की समस्त आय एक बचत (surplus) है अर्थात् लगान है और इसलिए वह लागत मे प्रवेश नही करती और मूल्य को प्रभावित नही करती।

(ii) एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से (From the point of view of an individual producer)—एक व्यक्तिगत उत्पादक एक कृषक (cultivator) हो सकता है या एक फर्म। एक उत्पादक [illegible] भूमि, श्रम, पूजी, इत्यादि साधनों को अपने व्यवसाय मे प्रयोग मे लाने

[33] "Corn is not high because a is rent prid, but rent is paid because corn is high."

के लिए देता है (और यह कीमत एक प्रकार से लगान है जोकि साधन अपनी सीमितता (scarcity) के कारण प्राप्त करते हैं) वह कीमत उसके लिए लागत है जिसको वह वस्तु की कीमत में से निकालना चाहेगा। यदि उत्पादक साधनों को बाजार मूल्य नहीं देता, जिनमें कि इन साधनों का लगान शामिल होता है, तो उसको इन साधनों की सेवाएं प्राप्त नहीं हो पायेंगी क्योंकि वे साधन दूसरे प्रयोगों में हस्तान्तरण (transfer) हो जायेंगे। अत. एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से लगान लागत का अंश होता है और मूल्य को प्रभावित करता है।[24]

(परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि यदि उत्पादक या फर्म को प्रयोग में लाये जाने वाले सभी साधनों की लागत के ऊपर कोई अतिरिक्त लाभ (excess profit) प्राप्त होता है तो वह लाभ फर्म के स्वयं के लिए लगान है। इस प्रकार के अतिरिक्त लाभ (अर्थात् फर्म को प्राप्य लगान) फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित नहीं करते, बल्कि वे इन मूल्यों के परिणाम होते हैं।)[25]

(iii) **एक उद्योग की दृष्टि से (From the point of view of an industry)**—भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को लगान कहा जा सकता है। भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—(i) हस्तान्तरण आय अर्थात् अवसर लागत, तथा (ii) अवसर लागत के ऊपर आधिक्य (surplus), उत्पादकों को भूमि को उद्योग में बनाये रखने के लिए एक न्यूनतम कीमत (अर्थात् अवसर लागत) देनी पड़ेगी नहीं तो वह भूमि दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित हो जायेगी; अर्थात् उद्योग के लिए भूमि की अवसर लागत या हस्तान्तरण आय लागत का अंग होगी; परन्तु अवसर लागत के ऊपर आधिक्य या बचत (जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री लगान कहते हैं) लागत का अंग नहीं होगी। **स्पष्ट है कि एक उद्योग की दृष्टि से भूमि के लिए दिये गये कुल भुगतान में से वह भाग जोकि अवसर लागत (या हस्तान्तरण आय) है लागत का अंग है और मूल्य को प्रभावित करता है, परन्तु वह भाग जो कि अवसर लागत के ऊपर आधिक्य है लागत का अंग नहीं होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है।[26] दूसरे शब्दों में एक उद्योग की दृष्टि से भूमि की आय (अर्थात् लगान) आंशिक रूप से 'मूल्य-निर्धारक' (price-determining) तथा आंशिक रूप से 'मूल्य-द्वारा-निर्धारित' (price determined) होती है।**

मजदूरी, ब्याज तथा लाभ में लगान तत्त्व
(RENT ELEMENT IN WAGES, INTEREST AND PROFIT)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के हाथ में लगान सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) बन जाता है। दूसरे शब्दों में, लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उत्पत्ति के अन्य साधन

[24] For the individual firm, the part of the price which it has to pay for land, labour, capital or entrepreneureship which represents the economic rent accuring to these factors because of their relative scarcity is indeed part of the firm's cost of production. Unless it pays the market price, which includes the economic rent of these factors, the firm will not be able to acquire the factor services which it must have in order to operate. Since these economic rents are part of the individual firm's cost of production, they also help to determine the prices of the products produced by the firm.

[25] It should be noted, however, that any excess profit earned by the firm over and above the cost of all the factors of production which it uses is an economic rent to the firm itself. Such excess profits do not help determine the prices at which the firms sells its products, but instead, they result from these prices.

[26] माना एक उद्योग में एक भूमि के टुकड़े को 100 रुपये का भुगतान मिलता है तथा भूमि की अवसर लागत 70 रुपये है। भूमि की कुल आय 100 रुपये में 70 रुपये लागत का अंश है जो कि मूल्य को प्रभावित करता है, तथा शेष (100 – 70) = 30 रुपये अवसर लागत के ऊपर आधिक्य या बचत है जोकि मूल्य को प्रभावित नहीं करता।

भी लगान अर्जित कर सकते हैं। एक साधन को वर्तमान प्रयोग में बनाये रखने के लिए एक न्यूनतम भुगतान देना होगा जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री साधन का 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' (minimum supply price) या उसकी 'अवसर लागत' (opportunity cost) कहते हैं। इस 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' या 'अवसर लागत' के ऊपर आधिक्य (surplus or excess) लगान होता है और इस दृष्टि से प्रत्येक साधन की आय मे से लगान तत्त्व को ज्ञात किया जा सकता है।

(1) मजदूरी में लगान तत्त्व

किसी देश (जैसे अमरीका) मे श्रमिकों की अपेक्षाकृत कमी, मजदूरी को उस दर से पर्याप्त ऊँचा कर देती है जिस पर कि श्रमिक अब भी कार्य करने को तत्पर होंगे, दूसरे शब्दो मे, श्रमिकों को उनके 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' अर्थात् अवसर लागत (minimum supply price, i.e., opportunity cost) से अधिक प्राप्त होता है और उनकी मजदूरी मे यह आधिक्य (surplus) ही लगान है। इसका कारण है कि श्रमिकों की पूर्ति बेलोचदार (inelastic) है अथवा श्रमिको की पूर्ति पूर्णतया लोचदार नही है।

प्रबन्ध सम्बन्धी श्रम (managerial labour) या उच्च कोटि के कुशल श्रमिको के वेतन या मजदूरी में भी लगान तत्त्व होता है। एक कुशल मैनेजर को वर्तमान व्यवसाय मे 5,000 रु. प्रतिमाह मिलते हैं जबकि किसी दूसरे व्यवसाय मे उसको 4,000 रु. ही प्राप्त हो सकते हैं, इस वर्तमान व्यवसाय मे उसे अपनी अवसर लागत के ऊपर 1,000 रु. अधिक प्राप्त होते है और यह आधिक्य उसके वर्तमान वेतन 5,000 रु. मे लगान तत्त्व है। इसी प्रकार एक कुशल हाकी (hockey) के खिलाड़ी को हाकी खेलने से 3,000 रु. प्रति माह प्राप्त होते है जबकि किसी दूसरे कार्य में उसको केवल 1,000 रु. मिल सकते है, अत: 2,000 रु. का आधिक्य इस खिलाड़ी की मजदूरी मे लगान तत्त्व है। अत. सैम्युलसन (Samuelson) के शब्दों मे, "अत्यधिक कुशल व्यक्तियो की ऊँची आयो में से अधिकाश को शुद्ध आर्थिक लगान कहा जा सकता है।"[22]

(2) ब्याज में लगान तत्त्व

बचतकर्ता जो कि अपनी बचतों को प्रत्यक्ष रूप से या बैंकिंग प्रणाली द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरो को उधार देते है वे एक ब्याज की दर प्राप्त करते हैं जो कि आंशिक रूप से बचतों की कमी की सूचक होती है। ब्याज का वह आधिक्य, जो कि उस ब्याज दर से अधिक है जिस पर एक बचतकर्ता अपनी बचतो को उधार देने के लिए ठीक तत्पर होता है, वास्तव मे आर्थिक लगान है। यह इस कारण उत्पन्न होता है क्योंकि बचतो की पूर्ति ब्याज दर के उत्तर (response) मे अपेक्षाकृत बेलोचदार होती है।[23]

सरल शब्दो मे, एक न्यूनतम ब्याज दर (माना 4%) पर एक बचतकर्ता अपनी बचत को उधार देने को तत्पर है, परन्तु बाजार मे यदि उसे इस न्यूनतम ब्याज दर से अधिक ब्याज दर (माना 7%) प्राप्त होती है तो ब्याज दर का आधिक्य (अर्थात् 3%) लगान तत्त्व होगा।

(3) लाभ में लगान तत्त्व

कुछ साहसियो की संगठन तथा सौदा करने की योग्यता (organising and bargaining ability) अन्य साहसियो से बहुत अधिक होती है और परिणामस्वरूप ये अधिक योग्य साहसी, अन्य साहसियो की तुलना मे 'अधिक अतिरिक्त लाभ' (excess profit) प्राप्त करते है जो

---

[22] "Most of the high earnings of outstanding individuals can probably be classified as pure economic rent"

[23] "Savers who lend their savings to others either directly or through the banking system will receive a rate of interest which reflects in part the scarcity of savings. Any interest return in excess of the rate which would have just induced a saver to lend his savings is in effect an economic rent. It results because the supply of savings is relatively inelastic with respect to the interest rate."

कि लगान कहा जा सकता है। कभी-कभी इसे 'योग्यता का लगान' (rent of ability) भी कहा जाता है।

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की दृष्टि से लाभ में लगान के तत्त्व को इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। सामान्य लाभ के ऊपर आधिक्य (excess) को 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) कहते हैं। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग सामान्यीकृत रूप में (in the generalized sense) लगान को बताता है। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग जो कि नयी वस्तुओं के श्रीगणेश या उत्पादन की नयी रीतियों के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है अथवा जो कि अन्य साधनों की सेवाओं को उनके वास्तविक मूल्य (true worth) से कम भुगतानों पर प्राप्त कर सकने की साहसी की योग्यता के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है उस भुगतान को बताता है जो कि साहसी के कार्य के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है (अर्थात् लाभ को बताता है)। इस मात्रा से अधिक लाभ आर्थिक लगान है जो कि साधन-साहसी अपेक्षाकृत सीमितता या कमी के कारण प्राप्त करता है।[29]

लगान तथा लाभ
(RENT AND PROFIT)

लाभ अनिश्चितता झेलने (uncertainty bearing) का पुरस्कार है। विस्तृत रूप में, लाभ कुल आगम (या औसत आगम) तथा कुल लागत (या औसत लागत) में अन्तर हैं, इस अन्तर का स्रोत (source) कुछ भी हो सकता है। यदि लाभ ऋणात्मक है तो हम उन्हें हानि कहते हैं। किसी समय पर एक फर्म के लाभों में विभिन्न बातें शामिल हो सकती हैं। जैसे, आभास-लगान, आकस्मिक उच्चावचनों (random fluctuations) के कारण आगमों (revenues) तथा लागतों (costs) में अन्तर, एकाधिकारी लाभ, तथा साधनों से हड़पे हुए लगान। एक पर्याप्त लम्बे समय के अन्तर्गत इनमें से बहुत-सी बातें एक दूसरे को नष्ट कर देती है या उनमें स्वयं अपने आप संशोधन (corrections) हो जाते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लाभ एक विस्तृत शब्द है और लगान उसका एक अंग हो सकता है।

लाभ तथा लगान में मुख्य अन्तर इस प्रकार है .

(1) **लाभ अनिश्चितता झेलने** (uncertainty bearing) **का पुरस्कार है जबकि लगान किसी साधन की सीमितता** (scarcity or shortage) **का परिणाम है** अर्थात् लगान तब उत्पन्न **होता है जबकि साधन की पूर्ति 'बेलोचदार'** (inelastic) **है या 'पूर्ण लोचदार से कम'** (less than perfectly elastic) है। दूसरे शब्दों में, **लाभ तथा लगान में एक आधारभूत भेद** उनके 'उत्पन्न होने **के कारण या स्रोत में अन्तर' में निहित है।** शुद्ध लाभ (pure profit) एक उत्पत्ति के साधन की सीमितता या कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न नहीं होगा, जबकि आर्थिक लगान सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। लाभ अनिश्चितता झेलने के कारण उत्पन्न होता है।[30]

---

[29] "Part of what is called excess profits—profits in excess of a normal return on invested capital—represents economic rent in the generalized sense of the term Some of the excess profits which result from the introduction of new products or of new techniques of production, or which result from the entrepreneur's ability to acquire the services of other factors of production for payments which are less than the true worth of these factors to the firm, represent a payment which is necessary to call forth the existing level of entrepreneurial activity. Profits in excess of this amount are an economic rent which the entrepreneurial factor of production is able to earn by virtue of its relative scarcity."

[30] The fundamental difference between profit and rent lies in the difference between the cause or source of their emergence. A pure profit will not arise from the shortage or scarcity of a factor of production, while an economic rent does. Profit emerges as a result of uncertainty-bearing.

(2) लाभ में लगान तत्त्व हो सकता है। सामान्य लाभ के ऊपर आधिक्य (excess) को 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) या 'लाभ' (profit) कहते है। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग सामान्यीकृत रूप मे (in the generalized sense)) लगान को बताता है। अतिरिक्त लाभ का कुछ भाग जो कि नयी वस्तुओ के श्रीगणेश या उत्पादन की नयी रीतियो के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है अथवा जो कि अन्य साधनो की सेवाओ को उनके वास्तविक मूल्य (real worth) से कम भुगतानो पर प्राप्त कर सकने की साहसी की योग्यता के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है उस भुगतान को बताता है जो कि साहसी के कार्य के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है (अर्थात् लाभ को बताता है)। इस मात्रा से अधिक लाभ आर्थिक लगान है जो कि साधन-साहसी अपेक्षाकृत सीमितता या कमी के कारण प्राप्त करता है।[31]

(3) लाभ तथा लगान मे **कुछ सामान्य अन्तर** (general differences) भी हैं: (i) लाभ ऋणात्मक (negative) भी हो सकते है और ऋणात्मक लाभो को हानि कहा जाता है, जबकि लगान ऋणात्मक नही हो सकते हैं। (ii) लगान (तथा अन्य पुरस्कारो) की तुलना मे लाभ में उतार-चढाव (fluctuations) अधिक होते हैं। तेजी (boom) मे लाभ, लगान (तथा अन्य पुरस्कारो) की अपेक्षा अधिक तेजी से बढते हैं, तथा मन्दी (depression) मे बहुत तेजी से गिरते है। (iii) लाभ एक 'बची हुई आय' (residual income) होती है जबकि लगान (तथा अन्य पुरस्कार) अनुबन्धनीय तथा निश्चित भुगतान (contractual and certain payments) होते हैं। लाभ की मात्रा इस पर निर्भर करती है कि भविष्य मे उत्पादित वस्तु की बिक्री कैसी है।

क्या लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि के सभी टुकड़े एकसमान उपजाऊ हैं तथा स्थिति की दृष्टि से भी एकसमान अच्छे हैं ?
(WILL THE RENT ARISE IF ALL THE PLOTS OF LAND ARE EQUALLY FERTILE AND EQUALLY FAVOURABLY SITUATED ?)

लगान उत्पादन की लागत के ऊपर बचत है। रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान सीमान्त भूमि (marginal land), अथवा श्रम तथा पूजी की सीमान्त मात्रा (marginal dose), की लागत के ऊपर बचत है, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' (opportunity cost or transfer earning) के ऊपर बचत है। यदि भूमि के सभी टुकड़े एकसमान उपजाऊ है तथा स्थिति की दृष्टि से सभी एकसमान अच्छे हैं तो भी लगान उत्पन्न होगा जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है .

(i) गहरी खेती के अन्तर्गत उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने के परिणामस्वरूप लगान उत्पन्न होगा। भूमि से उत्पादित वस्तु का मूल्य श्रम तथा पूजी की 'सीमान्त मात्रा' (marginal dose) की लागत के बराबर होगा। परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने के कारण श्रम तथा पूजी की पहले की मात्राए अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त मात्राए' (intra-marginal doses) 'सीमान्त मात्रा' से अधिक उत्पादन देती है। इस प्रकार भूमिपति को 'पूर्व-सीमान्त मात्राओं' पर, 'सीमान्त मात्रा' की तुलना मे, बचत प्राप्त होती है जो कि लगान है।

(ii) 'दुर्लभता लगान' (scarcity rent) उत्पन्न हो सकता है। भूमि के सभी टुकडों के समान उपजाऊ तथा स्थिति की दृष्टि से एक समान अच्छे होने पर भी लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि की कुल पूर्ति उसकी कुल माँग की तुलना मे सीमित है।

(iii) भूमि अनेक प्रयोगो मे लायी जा सकती है। माना, यदि एक भूमि के टुकड़े पर चने

---

[31] इस विषय-सामग्री को पहले दे चुके हैं, केवल विद्यार्थियो की सुविधा के लिए इसे दुबारा 'लाभ तथा लगान में अन्तर' बताने के सन्दर्भ मे दे दिया गया है।

का उत्पादन किया जाता है तो उस भूमि के टुकड़े को 'अवसर लागत' (या 'हस्तान्तरण आय') के ऊपर कोई 'आधिक्य' (surplus) अर्थात लगान प्राप्त नही होता । माना कि भूमिपति उस टुकड़े पर गेहूं का उत्पादन करता है; उस टुकड़े की अवसर लागत पर उसे 20 रु का आधिक्य प्राप्त होता है जो कि लगान है । स्पष्ट है कि भूमिपति उस भूमि के टुकड़े को गेहू के उत्पादन मे लगायेगा । यदि एक काश्तकार (cultivator) उस भूमि के टुकड़े पर चने का उत्पादन करना चाहता है तो उसे, चाहे भूमि की उर्वरता (fertility) या स्थिति कुछ भी हो, भूमिपति को 'अवसर-लागत + 20 रु.' अवश्य देना होगा नहीं तो वह भूमि दूसरे प्रयोग (अर्थात् गेहूं के उत्पादन) मे हस्तान्तरित हो जायेगी; 20 रु. का आधिक्य भूमिपति के लिए लगान है । स्पष्ट है कि लगान 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' पर आधारित है और यह भूमि के एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे 'हस्तान्तरण की सीमा' (margin of transference) पर उत्पन्न होता है ।

आर्थिक उन्नति तथा लगान
(ECONOMIC PROGRESS AND RENT)

एक भूमि के टुकड़े का लगान इस भूमि की उत्पादन-लागत तथा सीमान्त भूमि की उत्पादन-लागत का अन्तर होता है । आर्थिक उन्नति खेती के सीमान्त (margin of cultivation) को प्रभावित करके लगान को प्रभावित करती है । विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक उन्नति लगान को निम्न प्रकार से प्रभावित करती है :

(1) **कृषि में उन्नति**—कृषि मे उन्नति का अर्थ है कि कृषि-क्षेत्र मे नयी उत्पादन-रीतियों, नवीनतम यन्त्रों और मशीनो, उन्नत बीज, खाद, इत्यादि का प्रयोग करके उत्पादकता को बढ़ाना ।

(i) यदि कृषि-उन्नति सभी भूमियों को समान रूप से प्रभावित करती है तो सभी भूमियों की उत्पादकता में वृद्धि होगी । यदि कृषि उपज की माँग समान रहती है तो मूल्य गिरेगा (क्योंकि उत्पत्ति अधिक होगी), परिणामस्वरूप जो भूमियाँ जोत की सीमा पर थी वे जोत से बाहर निकल जायेंगी तथा जो भूमियाँ कृषि-उन्नति से पहले 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' (intra-marginal lands) थी वे सीमान्त भूमियाँ हो जायेंगी । इन सबके परिणामस्वरूप श्रेष्ठ भूमियो तथा सीमान्त भूमियों की लागतों में अन्तर कम हो जायेगा और इसलिए लगान कम हो जायेगा । दूसरे शब्दों में, भूमि का सीमान्त पीछे को खिसक जाता है और इसलिए लगान कम हो जाता है ।

(ii) यदि कृषि उन्नति केवल श्रेष्ठ भूमियो को प्रभावित करती है तो केवल इन भूमियों की उत्पादकता बढ़ेगी । परिणामस्वरूप, श्रेष्ठ भूमियों की उत्पादकता तथा सीमान्त भूमियो की उत्पादकता में अन्तर बढ़ जायेगा अर्थात् लगान बढ़ जायेगा ।

(iii) यदि कृषि-उन्नति केवल निम्न कोटि की भूमियो को प्रभावित करती है तो इन भूमियो की उत्पादकता बढ़ेगी । परिणामस्वरूप, श्रेष्ठ भूमियो की उत्पादकता तथा सीमान्त भूमियों की उत्पादकता मे अन्तर कम हो जायेगा अर्थात लगान कम हो जायेगा ।

(2) **यातायात में सुधार**—(i) यातायात मे सुधार के कारण वह लगान कम हो जायेगा जोकि भूमियों को उनकी स्थितियो मे अन्तर होने के कारण प्राप्त होता है ।

(ii) यदि यातायात मे सुधार के कारण देश विशेष मे कृषि उपज का आयात बढ़ जाता है तो पूर्ति मे वृद्धि के कारण देश मे कृषि-उपज का मूल्य घट जायेगा, मूल्य घट जाने से खेती की सीमा पीछे को खिसक जायेगी (अर्थात् पूर्व-सीमान्त भूमियाँ, अब सीमान्त भूमियाँ हो जायेंगी) और इसलिए आयात करने वाले देश मे लगान कम हो जायेगा ।

(iii) यातायात में सुधार के कारण जिस देश से कृषि-उपज का निर्यात होगा उस देश में उसका मूल्य बढ़ जायेगा; मूल्य बढ़ने से खेती की सीमा आगे को खिसक जायेगी (अर्थात जो भूमियाँ सीमान्त भूमियाँ थी वे अब पूर्व-सीमान्त भूमियाँ हो जायेगी तथा नयी भूमियाँ सीमान्त भूमियाँ बन

जायेंगी) और परिणामस्वरूप निर्यात करने वाले देश में लगान बढ जायेगा।

(3) जीवन-स्तर में वृद्धि—आर्थिक विकास के कारण देश मे आय का स्तर ऊँचा होगा, आय में वृद्धि के कारण खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उपज की कुल मांग में वृद्धि होगी, मूल्य बढ़ेंगे, खेती की सीमा आगे को खिसकेगी तथा लगान में वृद्धि होगी।

(4) जनसंख्या मे वृद्धि—जनसख्या मे वृद्धि के कारण कृषि उपज की माँग बढ़ेगी, माँग मे वृद्धि के कारण वर्तमान भूमियो पर अधिक गहराई से खेती की जायेगी तथा निम्न कोटि की नयी भूमियाँ भी जोत मे लायी जायेंगी अर्थात खेती की सीमा आगे को खिसकेगी और इसलिए लगान मे वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त जनसख्या मे वृद्धि के कारण शहरो का विकास होगा और अकृषि-कार्यों (non-agricultural uses) मे भूमि का प्रयोग किया जायेगा, इससे कृषि के लिए भूमि की कमी पड़ेगी तथा भूमि के लगान बढ़ेंगे।

प्रश्न

1. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।
   Examine critically the Ricardian Theory of Rent
2. "एक अर्थ मे सभी लगान दुर्लभता लगान हैं और सभी लगान भेदात्मक लगान हैं।" विवेचना कीजिए।
   "In a sense all rents are scarcity rents and all rents differential rents." Discuss.
   [संकेत—दुर्लभता लगान की पूर्ण विवेचना कीजिए।]
3 लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   Examine critically the modern theory of rent.
4. "लगान विशिष्टता का पारितोषण होता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
   "Rent is a reward for specificity." Critically examine this statement.

   अथवा

   लगान भूमि के लिए भुगतान नही है बल्कि वह साधनो मे 'भूमि-तत्त्व' के लिए भुगतान है। विवेचना कीजिए।
   Rent is not a payment for land but for the 'land-aspect' in factors. Discuss

   अथवा

   "लगान एक बचत या अतिरेक (surplus return) है जो कि एक उत्पत्ति का साधन एक उद्योग मे अपनी अवसर लागत के ऊपर प्राप्त करता है।" स्पष्ट कीजिए।
   "Rent is a surplus return which an agent of production earns in a particular industry over and above its opportunity cost." Elucidate.

   अथवा

   "लगान तब उत्पन्न होता है जबकि किसी साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम होती है।" विवेचना कीजिए।
   "Rent arises when the supply of a factor of production is less than perfectly elastic." Discuss.
   [संकेत—लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।]
5. लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताइए तथा विवेचन कीजिए कि क्या मजदूरी, ब्याज व लाभ में भी कोई लगान तत्त्व समाविष्ट है।
   State the modern theory of rent and discuss whether there is any 'rent-element' in wages, interest and profits.

6. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त से यह किस प्रकार भिन्न है ?
   Discuss the modern theory of rent. How does it differ from the Recardian theory of rent ?
7. "लगान मूल्य को निर्धारित नही करता बरन मूल्य द्वारा निर्धारित होता है।" विवेचना कीजिए।
   "Rent does not determine price but is determined by price" Comment.

   अथवा

   "लगान मूल्य द्वारा निर्धारित होता है न कि मूल्य निर्धारक होता है।" विवेचना कीजिए।
   "Rent is price-determined and not price-determining." Discuss.

   अथवा

   "अनाज का मूल्य इसलिए ऊँचा नही होता है क्योंकि लगान दिया जाता है, बल्कि ऊँचे लगान इसलिए दिये जाते हैं क्योंकि अनाज का मूल्य ऊँचा होता है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   "Corn is not high because rent is paid, but high rent is paid because corn is high." Critically examine this statement.
   [संकेत—रिकार्डो के सिद्धान्त तथा आधुनिक सिद्धान्त दोनों के अनुसार लगान तथा कीमत के सम्बन्ध की पूर्ण विवेचना कीजिए।]
8. आभास लगान के विचार की व्याख्या तथा विवेचना कीजिए।
   Explain and discuss the concept of quasi-rent.
9. आभास-लगान क्या है ? यह आर्थिक लगान तथा ब्याज से किस प्रकार भिन्न होता है ?
   What is quasi-rent ? How does it differ from economic rent and interest ?
0. भाटक (rent) तथा लाभ में क्या अन्तर है ? किस प्रकार प्रत्येक आमदनी में भाटक का कुछ अंश विद्यमान रहता है ?
   What is the difference between rent and profit ? How is some element of rent present in every income ?
1. "भूमि का लगान बड़ी जाति (large genus) की एक उपजाति (species) है।" समझाइए।
   "The rent of land is a species of a large genus." Explain. (Bihar)
   [संकेत—'आभास-लगान', 'लगान' तथा 'ब्याज' में अन्तर के सम्बन्ध मे पहले मार्शल के दृष्टिकोण को बताइए और बाद मे आधुनिक अर्थशास्त्रियो के दृष्टिकोण को भी बताइए।]
2 आभास-लगान के विचार की व्याख्या कीजिए। अपने उत्तर को एक उचित चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।
   Explain the concept of quasi-rent. Illustrate your answer with a suitable diagram. (Bihar)

40

ब्याज
(Interest)

ब्याज का अर्थ तथा स्वभाव
(MEANING AND NATURE OF INTEREST)

ब्याज की परिभाषा (Definition of Interest)

व्याज पूंजी या ऋण (loan) या ऋण-योग्य कोषों (loanable funds) के प्रयोग के लिए पुरस्कार है। इसी को अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न शब्दों मे व्यक्त किया है। मार्शल के अनुसार, "ब्याज किसी बाजार मे पूंजी के प्रयोग की कीमत है।" मेयर्स (Meyers) के अनुसार, "ब्याज वह कीमत है जो कि ऋण योग्य कोषों के प्रयोग के लिए दी जाती है।" कीन्ज (Keynes) ब्याज को विशुद्ध मौद्रिक बात मानते हैं और ब्याज को तरलता के त्याग का पुरस्कार (reward for parting with liquidity) कहते हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि ब्याज द्रव्य या पूंजी से सम्बन्धित है।

शुद्ध ब्याज तथा कुल ब्याज (Net Interest and Gross Interest)

अर्थशास्त्री 'शुद्ध ब्याज' और 'कुल ब्याज' मे अन्तर करते हैं। 'शुद्ध ब्याज' वह है जो कि केवल पूंजी के प्रयोग के लिए दिया जाता है।

एक ऋणी (borrower) द्वारा पूंजी या ऋण के प्रयोग के लिए ऋणदाता (lender) को जो भुगतान दिया जाता है उसे 'कुल ब्याज' कहते हैं। 'शुद्ध ब्याज' कुल ब्याज का एक अंग है। 'कुल ब्याज' के निम्न अंग (constituents) होते हैं

(i) **शुद्ध ब्याज** (Net interest)—केवल पूंजी या ऋण के लिए पुरस्कार ही शुद्ध ब्याज है।

(ii) **जोखिम के लिए भुगतान या पुरस्कार** (Payment or reward for risk)—एक ऋणदाता को ऋण देने मे कुछ जोखिमें उठानी पड़ती हैं, उसे इन जोखिमो के लिए भुगतान मिलना चाहिए। जोखिम दो प्रकार की होती हैं : (अ) **व्यावसायिक जोखिम** (trade risk)—जब ऋणदाता एक व्यापारी को ऋण देता है तो उसे इस बात की जोखिम रहती है कि उसको मूलधन तथा ब्याज प्राप्त होगा या नहीं. व्यापारी को हानि होने पर ऋणदाता केवल ब्याज ही नही बल्कि अपने मूलधन को भी खो सकता है। (ब) **व्यक्तिगत जोखिम** (personal risk)—यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति बेईमान हो जाता है तो ऋणदाता को ब्याज या मूलधन या दोनो के न मिलने की जोखिम रहती है।

अतः एक ऋणदाता को उपर्युक्त जोखिमो के लिए भुगतान या पुरस्कार मिलना चाहिए।

(iii) **असुविधाओं के लिए भुगतान** (Payment for inconveniences)—ऋणदाता को ऋण देने मे कुछ असुविधाओं को भी उठाना पड़ता है। यह सम्भव है कि आवश्यकता के समय ऋणदाता को अपना ऋण वापस न हो, इससे उसको असुविधा होगी और अत्यधिक आवश्यकता की दशा मे उसे स्वयं दूसरो से उधार लेना पड़ेगा। इस प्रकार की असुविधाओं के लिए एक ऋणदाता पुरस्कार चाहेगा।

(iv) **प्रबन्ध के लिए भुगतान** (Payment for management)—ऋणदाता को ऋणी

के लेन-देन के सम्बन्ध में प्रबन्ध पर कुछ व्यय करना पड़ता है; जैसे—प्रत्येक ऋणी का हिसाब-किताब रखना, ऋण-वसूली के लिए तकाजा करना, ऋण समय पर न मिलने पर कानूनी कार्यवाही करना, इत्यादि। इन सब प्रबन्ध कार्यों के लिए ऋणदाता को भुगतान मिलना चाहिए।

ब्याज के स्वभाव के सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने की है—किसी भी अन्य साधन के पुरस्कार (reward or earning) की भाँति, ब्याज एक कीमत तथा आय का साधन दोनों है। ब्याज पूंजी या ऋण या ऋण-योग्य कोषों के प्रयोग की कीमत है। मनुष्य पूंजी का विनियोग आय प्राप्त करने के लिए करता है और यह आय ही ब्याज है।

ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त
(THEORIES OF INTEREST)

ब्याज का निर्धारण किस प्रकार होता है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है और इसीलिए ब्याज निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त है, कुछ सिद्धान्त ब्याज निर्धारण में वास्तविक तत्त्वों (real factors) पर जोर देते है, और कुछ सिद्धान्त मौद्रिक तत्त्वों (monetary factors) पर बल देते हैं।

पहले हम कुछ अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्तों की विवेचना बहुत संक्षेप में करते हैं क्योंकि ये सिद्धान्त बेकार हैं और उनका केवल ऐतिहासिक महत्त्व (historical significance) ही रह गया है। ये सिद्धान्त है—(i) **ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त** (Marginal Productivity Theory of Interest), (ii) **ब्याज का त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धान्त** (Abstinence or Waiting Theory of Interest), (iii) **ऐजियो या आस्ट्रियन ब्याज का सिद्धान्त** (The Agio or the Austrian Theory of Interest), (iv) **फिशर का समय-पसन्दगी सिद्धान्त** (Fisher's Time Preference Theory of Interest)। अब हम इनमे से प्रत्येक सिद्धान्त का बहुत संक्षेप में विवरण देते हैं।

ब्याज के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार ब्याज पूंजी की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। उत्पादक या साहसी पूंजी की माँग करते है क्योंकि पूंजी में उत्पादकता होती है। पूंजी की अधिक इकाइयों के प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता (उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण) घटती जाती है। दीर्घकाल में ब्याज दर की प्रवृत्ति पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है। यदि ब्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता से अधिक है, तो पूंजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जायेगा, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ेगी और बढ़कर वह ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी। यदि ब्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता से कम है, तो पूंजी की अधिक माँग की जायेगी, पूंजी के अधिक प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरेगी और अन्त में वह ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में ब्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। इस सिद्धान्त की अनेक आलोचनाओं में से एक **मुख्य आलोचना** है कि यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह केवल पूंजी की माग पर विचार करता है और पूंजी की पूर्ति की उपेक्षा (ignore) करता है। ब्याज निर्धारण में पूंजी की माँग व पूर्ति दोनों का प्रभाव होता है।

अब हम **'ब्याज का त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धान्त'** लेते है। सर्वप्रथम सीनियर (senior) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पूंजी बचतों का परिणाम है। बचत करने में लोगों को कष्ट या त्याग (abstinence) करना पड़ता है; लोग तभी बचत कर पायेंगे जबकि वे वर्तमान उपभोग में कमी करें और ऐसा करने में उन्हें कष्ट या त्याग सहन करना होगा। यदि समाज चाहता है कि लोग बचत करें तो उनके बचत में निहित त्याग के लिए कुछ पुरस्कार मिलना चाहिए और यह पुरस्कार ही ब्याज है। परन्तु धनवान व्यक्तियों को बचत करने में कोई

कष्ट या त्याग नही होता, और इसलिए ब्याज को त्याग का पुरस्कार कहना उचित नही है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मार्शल ने 'त्याग' के स्थान पर 'प्रतीक्षा' (waiting) शब्द का प्रयोग किया। मार्शल ने बताया कि बचत के पीछे 'प्रतीक्षा' होती हैं। जब एक व्यक्ति बचत करता है तो वह अपने 'वर्तमान उपभोग' को भविष्य के लिए स्थगित (postpone) कर देता है और इस प्रकार वह भविष्य के उपभोग के लिए वर्तमान मे 'प्रतीक्षा' करता है। अत व्यक्तियो को इस 'प्रतीक्षा' के लिए 'पुरस्कार' अर्थात् 'ब्याज' मिलना चाहिए। मुख्य आलोचना है कि यह सिद्धान्त एकपक्षीय है क्योकि यह केवल पूजी की पूर्ति पर ध्यान देता है और पूजी की माँग को छोड देता है, यह इस बात की व्याख्या नही करता कि पजी क्यो माँगी जाती है।

अब हम **'एजियो या आस्ट्रियन ब्याज का सिद्धान्त'** लेते है। आस्ट्रिया के अर्थशास्त्री बाम बावर्क (Bohm Bawerk) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, लोग वर्तमान को भविष्य की अपेक्षा अधिक पसन्द करते है, इस प्रकार वर्तमान वस्तुएँ, भविष्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती है; दूसरे शब्दो मे, वर्तमान वस्तुओ पर, भविष्य की वस्तुओ की तुलना मे, एक प्रकार का प्रीमियम या एजियो (premium or agio) होता है। लोगों के लिए वस्तुओ से वर्तमान सन्तुष्टि, भविष्य मे सन्तुष्टि की अपेक्षा, अधिक होती है। यदि व्यक्ति अपनी पूजी को उधार देते हैं तो उन्हे अधिक महत्त्वपूर्ण वर्तमान सन्तुष्टि का त्याग करना पडेगा, अत. लोग तभी उधार देगे जब उन्हे वर्तमान सन्तुष्टि के त्याग के लिए कुछ पुरस्कार मिले। इस प्रकार, ब्याज वर्तमान मन्तुष्टि के त्याग का पुरस्कार है।

लोग वर्तमान सन्तुष्टि को, भविष्य मे सन्तुष्टि की अपेक्षा, क्यो अधिक महत्त्व, एजियो या प्रीमियम देते है ? इसके लिए बाम बावर्क (Bohm Bawerk) ने तीन कारण बताये—(i) भविष्य अनिश्चित होता है। यह कहना कठिन है कि भविष्य मे क्या होगा; अपने धन या पूजी से भविष्य में मिलने वाली सन्तुष्टि के बारे मे लोग अनिश्चित होते है। (ii) मनुष्य अपनी वर्तमान आवश्यकताओं को, भविष्य की आवश्यकता की अपेक्षा, अधिक तीव्रता से अनुभव करता है। (iii) वर्तमान वस्तुओं को, भविष्य की वस्तुओ की अपेक्षा, एक प्रकार की तकनीकी श्रेष्ठता (technical superiority) प्राप्त होती है। इसका कारण इस प्रकार है · पूजी उत्पादन की चक्करदार रीतियो (roundabout methods) के प्रयोग को सम्भव बनाता है, परिणामस्वरूप भविष्य मे वस्तुओ का अधिक उत्पादन होगा और उपयोगिता ह्रास नियम के कारण, उनकी उपयोगिता कम हो जायेगी। इस प्रकार वर्तमान वस्तुएँ, *भविष्य की वस्तुओ की अपेक्षा मे, अधिक उपयोगी हैं।* इस सिद्धान्त की **मुख्य आलोचना** है कि यह एकपक्षीय है क्योकि यह केवल पूजी की पूर्ति पर ही ध्यान देता है।

अब हम **फिशर के समय-पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त** की विवेचना करते है। फिशर का समय-पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त बाम बावर्क के एजियो सिद्धान्त (Agio Theory) पर ही आधारित है; *फिशर ने समय पसन्दगी पर बल दिया। फिशर तथा बाम बावर्क के सिद्धान्तो मे मुख्य* अन्तर इस प्रकार है बाम बावर्क ने भविष्य की वस्तुओ की तुलना मे वर्तमान वस्तुओ की तकनीकी श्रेष्ठता पर अधिक बल दिया, परन्तु फिशर इसे स्वीकार नही करते हैं, फिशर के अनुसार यह कहना कि लोग वर्तमान आनन्द या सन्तुष्टि (present enjoyment or satisfaction) को भविष्य के आनन्द या सन्तुष्टि की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं, पर्याप्त है। यदि लोग बचत करते हैं तो उन्हे वर्तमान आनन्द या सन्तुष्टि का त्याग करना पडेगा जो भविष्य की अपेक्षा अधिक होगा; ऐसा करने के लिए उन्हे कुछ पुरस्कार या ब्याज चाहिए। अत ब्याज समय-पसन्दगी (time-preference) की क्षतिपूर्ति (compensation) है, लोगो की जितनी वर्तमान सन्तुष्टि के लिए समय-पसन्दगी अधिक होगी उतनी ही ब्याज की ऊँची दर होगी, यदि वर्तमान सन्तुष्टि के लिए समय-पसन्दगी कम है तो ब्याज की दर कम होगी।

फिशर के अनुसार लोग अपनी आय को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय करने के

लिए आतुर (impatient) रहते हैं। यह आतुरता अर्थात् समय-पसन्दगी निम्न तत्वों पर निर्भर करती है : (i) *आय का आकार (Size of income)*—निर्धन व्यक्ति, आय कम होने के कारण वर्तमान सन्तुष्टि को, भविष्य की सन्तुष्टि की अपेक्षा, अधिक महत्त्व देंगे, अर्थात् निर्धन व्यक्तियों की समय-पसन्दगी अधिक होगी अपेक्षाकृत धनी व्यक्तियों के। (ii) *आय का समयावधि में वितरण (Distribution of income over time)*—वर्तमान तथा भविष्य के बीच आय वितरण पर भी समय-पसन्दगी निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में तीन दशाएँ सम्भव हैं—(अ) यदि किसी व्यक्ति की आय जीवन भर एक समान रहती है तो समय पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता की मात्रा व्यक्ति के स्वभाव तथा आय के आकार पर निर्भर करेगी। (ब) यदि भविष्य में व्यक्ति की आय उसकी उम्र के साथ घटती है तो उसकी समय-पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता कम होगी। (स) यदि भविष्य में व्यक्ति की आय उसकी उम्र के साथ बढ़ती है तो उसकी समय-पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता अधिक होगी। (iii) **भविष्य में आय-प्राप्ति या आय-प्रयोग की निश्चितता** (Certainty about the receipt of income or the use of income in future)—यदि व्यक्ति को भविष्य में अपनी आय-प्राप्ति अर्थात् अपनी आय के प्रयोग के सम्बन्ध में निश्चितता है तो उसकी समय-पसन्दगी अधिक होगी। (iv) **व्यक्तियों का स्वभाव** (Nature of individuals)—एक दूरदर्शी व्यक्ति भविष्य पर उचित ध्यान देगा और इसलिए उसकी समय-पसन्दगी कम होगी, इसके विपरीत जो व्यक्ति अदूरदर्शी है तथा भविष्य के बारे में लापरवाह हैं उसके लिए समय-पसन्दगी अधिक होगी।

फिशर के समय-पसन्दगी सिद्धान्त की मुख्य आलोचना है कि यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह केवल पूंजी के पूर्ति पक्ष पर ध्यान देता है और माँग पक्ष को छोड़ देता है।

उपर्युक्त सब सिद्धान्त बहुत प्राचीन हैं और बेकार है, उनका केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही है। वास्तव में ब्याज निर्धारण के मुख्य चार सिद्धान्त हैं जो कि निम्नलिखित हैं, इन सिद्धान्तों की हम एक-एक करके विस्तृत तथा आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करेंगे—

(1) ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त (Classical Theory of Interest)
(2) ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त (Liquidity Preference Theory of Interest)
(3) ब्याज का उधारदेय कोष सिद्धान्त (Loanable Funds Theory of Interest) अथवा ब्याज का नया-क्लासीकल सिद्धान्त (Neo-Classical Theory of Interest)
(4) ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest) अथवा ब्याज का नया-कीन्जियन सिद्धान्त (Neo-Keynesian Theory of Interest)

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त
(CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

मार्शल, पीगू, वालरस (Walras), नाइट (Knight) इत्यादि अर्थशास्त्री ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त के प्रतिपादक (propounders) हैं। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि ब्याज के निर्धारण में द्रव्य कोई प्रत्यक्ष पार्ट अदा नहीं करता है। यह सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण में 'उत्पादकता' (productivity) तथा 'मितव्ययिता' (thrift) जैसे वास्तविक तत्त्वों पर जोर देता है, इसलिए इस सिद्धान्त को 'ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त' (Real Theory of Interest) भी कहते हैं।

'पूंजीगत वस्तुओं में विनियोग के लिए बचतों की माँग' (Demand for saving to invest in capital goods) तथा 'बचतों की पूर्ति' (supply of savings) द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है। दूसरे शब्दों में, 'पूंजी की माँग' तथा 'पूंजी की पूर्ति' द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है; जहाँ पर माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाती है वहीं पर ब्याज की दर निश्चित हो जाती है।

पूंजी की मांग (Demand of Capital)

उत्पादक वर्ग द्वारा पूजी की मांग की जाती है। दूसरे शब्दो मे, बचतो की मांग इसलिए करते हैं जिससे वे पूजीगत वस्तुएँ खरीद सकें। पूजीगत वस्तुओं की मांग इसलिए की जाती है क्योंकि उनसे उपभोग-वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है; अर्थात् पूजी की मांग उसकी उत्पादकता के कारण को जाती है। परिवर्तनशील अनुपातो के नियम (Law of Variable Proportions, i.e., Law of Diminishing Returns) के क्रियाशील होने के कारण, किसी अन्य साधन की भाँति, पूजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) घटती जाती है यदि उसकी अधिक इकाइयो का प्रयोग किया जाता है। अन्य साधनो की तुलना मे, पूजी की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध मे एक जटिलता (complexity) होती है। एक पूजीगत वस्तु कई वर्षों तक प्रयोग मे लायी जाती है। इसलिए एक उत्पादक या साहसी को पूजीगत वस्तु को चालू रखने की लागत (maintenance cost) को निकालकर उसकी 'अनुमानित वास्तविक उत्पादकता' (expected net productivity) को ध्यान मे रखना पड़ता है।
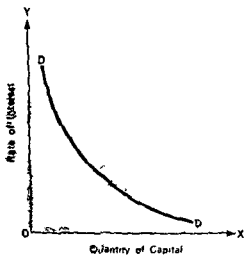
चित्र 1

पूजी की अधिक इकाइयो के प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरती जाती है। पूजीगत वस्तुओ के खरीदने के लिए उत्पादक बचतो की मांग करता है, बचतो के प्रयोग के लिए उसे कुछ न कुछ पुरस्कार अर्थात् ब्याज देनी पड़ेगी। इसलिए एक उत्पादक पूजी को उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ पर उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरकर ठीक ब्याज की दर के बराबर हो जाती है।

यदि ब्याज की दर नीची है तो पूजी की अधिक मात्रा मांगी जायेगी; इसके विपरीत ब्याज की ऊँची दर होने पर उत्पादक पूजी की कम मात्रा मांगेंगे। स्पष्ट है कि पूजी की मांग तथा ब्याज की दर में उलटा सम्बन्ध होता है, और इसलिए पूंजी की मांग-रेखा बायें से दायें को नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र 1 मे DD-रेखा बताती है।

यहाँ पर एक बात और ध्यान रखने की है। चूंकि बचतो की मांग पूजीगत वस्तुओ मे विनियोग के लिए की जाती है, इसलिए 'पूजी की मांग-रेखा' को 'विनियोजन-मांग रेखा' (Investment Demand Curve) भी कहते हैं।

पूंजी की पूर्ति (Supply of Capital)

पूंजी की पूर्ति समाज मे बचत पर निर्भर करती है अर्थात् व्यक्तियो, फर्मों तथा सरकार की बचतो पर निर्भर करती है। बचतें त्याग या प्रतीक्षा का परिणाम हैं। जब लोग अपनी वर्तमान आय मे से बचत करते हैं तो उन्हें वर्तमान उपभोग को कम करना पड़ता है और इस प्रकार वे त्याग करते हैं तथा वे भविष्य मे अपनी बचतो के आनन्द के लिए प्रतीक्षा करते हैं। परन्तु लोग वर्तमान उपभोग को अधिक पसन्द करते हैं अपेक्षाकृत भविष्य के, इसलिए, सामान्यतया, वे तब तक बचत नही करेंगे जब तक कि उन्हें 'त्याग तथा प्रतीक्षा' के लिए कुछ पुरस्कार न दिया जाय, यह पुरस्कार ही ब्याज है। अत ब्याज प्रतीक्षा के लिए दी जाती है।

सामान्यतया, यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग अधिक बचत करेंगे; इसके विपरीत यदि

ब्याजकी दर नीची है तो वे कम बचत करेंगे। दूसरे शब्दो में, ब्याज की दर तथा बचतो मे सीधा सम्बन्ध होता है, और इसलिए पूजी की पूर्ति रेखा ऊपर को चढती हुई होगी जैसा कि चित्र 2 मे SS-रेखा दिखाती है।

ध्यान रहे कि 'पूजी की पूर्ति रेखा' को 'बचत की पूर्ति रेखा' (Savings Supply Curve) भी कहते है क्योकि यह विभिन्न ब्याज की दरो पर बचत की मात्राओ को बताती है।

Rate of Interest

Quantity of Capital

चित्र 2

ब्याज निर्धारण—माँग तथा पूर्ति का बराबर होना (Determination of Interest —Equation of Demand and Supply)

ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि पूजी की माँग तथा पूजी की पूर्ति बराबर हो जाती है, जैसा कि चित्र 3 में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि ब्याज की दर PQ निर्धारित होगी।
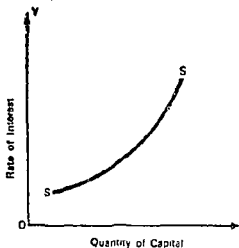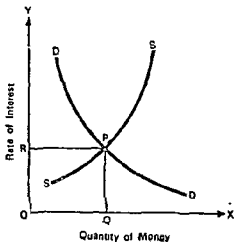
चित्र 3

सन्तुलन ब्याज की दर PQ (equilibrium rate of interest PQ) के सम्बन्ध में निम्न दो बातें ध्यान रखने की हैं :

(i) पूजी की माँग रेखा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को भी बताती है, इसलिए ब्याज PQ=पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के। अतः, ध्यान रहे कि **सन्तुलन ब्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।** यदि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता कम है ब्याज की दर से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादक पूजी की माँग कम करेंगे (अपेक्षाकृत उसकी पूर्ति के), परिणामस्वरूप ब्याज की दर गिरेगी और गिरकर ठीक पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। यदि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक है ब्याज की दर से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादक पूजी की माँग अधिक करेंगे (अपेक्षाकृत उसकी पूर्ति के), परिणामस्वरूप, ब्याज की दर बढ़ेगी और बढकर ठीक पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि सन्तुलन की स्थिति मे ब्याज की दर पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।

(ii) पूजी की माँग रेखा 'बचतो के विनियोग' को बताती है तथा पूजी की पूर्ति रेखा 'बचतो की पूर्ति' को बताती है, इसलिए सन्तुलन ब्याज की दर (PQ) पर 'बचतों का विनियोग' तथा 'बचतो की पूर्ति' दोनो बराबर होगे। **यदि किसी समय पर 'विनियोग' तथा 'बचतों' में असन्तुलन (disequilibrium) है (अर्थात् वे बराबर नहीं हैं) तो ब्याज की दर में परिवर्तन होगा तथा ब्याज दर 'विनियोग' तथा 'बचतो' में बराबरी स्थापित कर देगी।**

ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Classical Theory of Interest) इस सिद्धान्त की आलोचनाएँ निम्न हैं :

(1) **यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।** इसका अभिप्राय यह हुआ कि अर्थव्यवस्था में सभी साधनों को रोजगार प्राप्त है, और यदि किसी पूंजीगत वस्तु के उत्पादन में वृद्धि की जाती है तो उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में से कुछ साधन हटाने पड़ेंगे जिससे उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में कमी हो जायेगी, परिणामस्वरूप लोगों को वस्तुओं के उपभोग के लिए भविष्य में प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रकार लोग तभी बचत करेंगे जबकि उन्हें प्रतीक्षा के लिए कुछ पुरस्कार अर्थात् ब्याज दिया जाय।

परन्तु अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार होने की मान्यता गलत है, प्राय: कुछ साधन बेरोजगार रहते हैं। ऐसी स्थिति में पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के लिए इन बेरोजगार साधनों का प्रयोग किया जा सकता है तथा उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में से साधनों को हटाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इस प्रकार लोगों को भविष्य में उपभोग वस्तुओं के प्रयोग के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। स्पष्ट है कि ब्याज को प्रतीक्षा के लिए पुरस्कार कहना पूर्णतया सही नहीं है।

(2) पूंजी की पूर्ति में निम्न तीन बातें शामिल होनी चाहिए :

(i) वर्तमान आयों में से बचतें,

(ii) पिछली बचतें जब उनका असंग्रह किया जाय (past savings when dishoarded), तथा

(iii) **बैंक साख (Bank credit) जो कि पूंजी की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण भाग होती है।**

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त केवल प्रथम प्रकार की बचतों अर्थात् केवल वर्तमान आयों में से **ही बचतों को पूंजी की पूर्ति के अन्तर्गत रखता है जो कि उचित नहीं है,** अन्य दोनों बातों को पूंजी की पूर्ति के अन्तर्गत शामिल करना अत्यन्त आवश्यक है।

(3) **क्लासीकल अर्थशास्त्रियों ने आय के स्तर (level of income) को स्थिर मान लिया जोकि सही नहीं है;** इसका कारण यह था कि वे पूर्ण रोजगार की मान्यता लेकर चले।

यह सिद्धान्त, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए, यह बताता है कि बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है और ब्याज की दर में परिवर्तन द्वारा ही 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी (equality) स्थापित की जाती है।

परन्तु उपर्युक्त धारणा सही नहीं है। **कैंज (Keynes) के अनुसार, बचत ब्याज की दर पर नहीं बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करती है** (यदि लोगों की आय अधिक होगी तो वे अधिक बचत कर सकेंगे अन्यथा नहीं) **और आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी स्थापित की जाती है।**

(4) **यह सिद्धान्त आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा (ignore) करता है।** इस सिद्धान्त के अनुसार, ऊँची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे, परन्तु यह सदैव सही नहीं होगा। यह बात स्पष्ट हो जायगी यदि हम आय पर विनियोग के प्रभाव को ध्यान में रखें जो कि नीचे दिखाया गया है :

High Rate of Interest ⟶ Less Investment ⟶ Less Employment and Less Income ⟶ Less Savings

उपर्युक्त तर्क से यह स्पष्ट है कि ऊँची ब्याज की दर पर समाज कम बचत करता है, न कि अधिक बचत जैसा कि क्लासीकल सोचते थे।

(5) **इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर अनिर्धारणीय (indeterminate) है।** इस सिद्धान्त की यह ए[illegible]हत्वपूर्ण आलोचना है जो कि केज (Keynes) द्वारा की गयी है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर पूंजी की माँग तथा पूंजी की पूर्ति द्वारा निर्धारित

होती है। परन्तु 'पूंजी की पूर्ति' अर्थात् 'बचतों की पूर्ति' निर्धारित नहीं की जा सकती है और इसलिए ब्याज की दर भी निर्धारित नही की जा सकती है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा :

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर 'बचतों' पर निर्भर करती है; अर्थात् **ब्याज की दर को ज्ञात करने के लिए बचत की मात्रा ज्ञात होनी चाहिए।**

परन्तु बचतों को ज्ञात करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए क्योंकि ब्याज की दर, विनियोग तथा आय के स्तर को प्रभावित करके, बचतों को प्रभावित करती है। (उदाहरणार्थ, यदि ब्याज की दर कम है, तो पूंजी का अधिक विनियोग होगा, अधिक विनियोग से कुल आय बढ़ेगी और कुल आय मे वृद्धि से कुल बचत बढ़ेगी।)

अतः ब्याज की दर को ज्ञात करने के लिए हमें बचतें मालूम होनी चाहिए और बचतें मालूम करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए, स्पष्ट है कि स्थिति अनिर्धारणीय (indeterminate) हो जाती है; अर्थात् यह सिद्धान्त हमें केवल 'वृत्ताकार तर्क' (circular reasoning) में डाल देता है। नीचे एक चित्र द्वारा 'वृत्ताकार तर्क' को व्यक्त किया गया है।
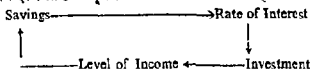
ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
(LIQUIDITY PREFERENCE THEORY OF INTEREST)

1. प्राक्कथन (Introduction)

उधारदेय कोष सिद्धान्त के अनुसार ब्याज उधारदेय कोषों की कीमत (price of loanable funds) है। परन्तु केंज के अनुसार ब्याज **'नकदी की कीमत'** (*price of cash*) है अथवा "ब्याज एक निश्चित समय के लिए **तरलता के परित्याग का पुरस्कार है"** (Interest is the *reward for parting with liquidity* for a specified period); अथवा 'ब्याज द्रव्य को **संचय न करने का पुरस्कार'** है (interest is the *reward for not hoarding money*)।

केंज के शब्दो में, "ब्याज वह कीमत है जो कि धन को नकद रूप में रखने की इच्छा तथा प्राप्य नकदी की मात्रा में बराबरी स्थापित करती है।"[1] दूसरे शब्दों में ब्याज द्रव्य की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है, इस प्रकार **ब्याज एक मौद्रिक बात** (monetary phenomenon) है।[2] अतः केंज अपने ब्याज के सिद्धान्त को 'ब्याज का मौद्रिक सिद्धान्त' (Monetary Theory of Interest) कहना पसन्द करते है, परन्तु केंज का ब्याज का सिद्धान्त 'तरलता पसन्दगी सिद्धान्त' (Liquidity Preference Theory) के नाम से विख्यात है।

केंज के अनुसार द्रव्य की माँग का अर्थ है तरलता-पसन्दगी, तरलता-पसन्दगी का अर्थ है कि व्यक्ति द्रव्य को नकद या तरल रूप मे रखने को माँगते है; तरलता-पसन्दगी के पीछे यह विचार है

---

1 "It is the 'price' which equilibriates the desire to hold wealth in the form of cash with the available quantity of cash."

2 इसके विपरीत, क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार ब्याज के निर्धारण मे द्रव्य कोई प्रत्यक्ष पार्ट अदा नही करता है; क्लासीकल सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण में माँग पक्ष पर उत्पादकता (productivity, that is, demand of capital) तथा पूर्ति पक्ष पर 'मितव्ययिता' (thrift, that is, savings or supply of capital) जैसे वास्तविक तत्त्वो पर जोर देता है। इस प्रकार क्लासीकल सिद्धान्त 'ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त' (real theory of interest) है; उधारदेय कोष सिद्धान्त मौद्रिक तथा अमौद्रिक तत्त्वों (monetary and non-monetary factors) को शामिल करता है। परन्तु केंज का सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्त्वो को ही शामिल करता है।

कि द्रव्य एक तरल-सम्पत्ति (liquid asset) है और 'मूल्य का एक स्टाक' (a 'store of value' or a 'stock of value') है। केंज ने मुख्यतया द्रव्य की माँग (अर्थात तरलता पसन्दगी) पर ध्यान केन्द्रित किया; और इस दृष्टि से उन्होंने ब्याज के एक ऐसे सिद्धान्त का निर्माण किया जो कि द्रव्य, आय व रोजगार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी स्थापित करता है। दूसरे शब्दों में, केंज का ब्याज का सिद्धान्त प्रभावपूर्ण माँग व रोजगार के सिद्धान्त का एक महत्त्वपूर्ण व समन्वित अंग (integral part) है।[3]

2. द्रव्य की माँग : तरलता पसन्दगी (Demand for Money : Liquidity Preference)

केंज के अनुसार द्रव्य की माँग का अर्थ है कि लोग द्रव्य को नकद रूप मे या तरल रूप में रखने के लिए माँगते हैं। धन (wealth) को बॉंड या सिक्युरीटीज जैसी अतरल सम्पत्ति (non-liquid assets) की तुलना मे नकद (या तरल) द्रव्य के रूप में रखने की पसन्द को केंज ने तरलता पसन्दगी कहा।[4]

एक व्यक्ति अपनी आय के सम्बन्ध मे दो मुख्य निर्णय लेता है। प्रथम, वह यह निर्णय लेता है कि अपनी आय में से कितना व्यय करे और कितना बचाये। दूसरा, निर्णय यह लेता है कि बचत को किस रूप में रखे—बचत का कितना भाग ब्याज प्राप्त करने की दृष्टि से बॉण्डो (Bonds or Securities) में लगाये या बैंको के बचत खातो (Saving Bank Accounts) मे जमा करे, तथा बचत का कितना भाग नगद या तरल रूप मे रखे, वह द्रव्य को नकद या तरल रूप मे अपने पास रख सकता है या बैंकों मे 'चालू खाते' (Current Account) में जमा कर सकता है जिसमे कि उसे कोई ब्याज नही मिलता और उसमे से वह अपने द्रव्य को जब चाहे तब निकाल सकता है।

केंज के अनुसार कुछ कारणो से (जिनका वर्णन नीचे किया गया है) लोग द्रव्य को नकद या तरल रूप मे रखना चाहते हैं। वे द्रव्य के लिए तरलता पसन्दगी का तभी परित्याग करेंगे जबकि उन्हे कुछ पुरस्कार (अर्थात् ब्याज) मिलेगा। अत. ब्याज तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार (reward for parting with liquidity) है। बैंको के लिए तरलता दृढ़ता (strength) का प्रतीक होती है, उनके पास जितना द्रव्य नकद रूप मे होगा उतनी ही उनकी स्थिति दृढ़ होगी। इसलिए बैंक भी अपनी तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार अर्थात ब्याज चाहेंगे। स्पष्ट है कि चाहे व्यक्ति हो या बैंक ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।

केंज के अनुसार, लोग द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखने की माँग निम्न उद्देश्यों (या कारणो) से करते हैं :

---

[3] Keynes mainly focuses his attention on the demand of money (i.e. liquidity preference) and from this view point he develops a theory of interest which provides crucial link between money, income and employment. In other words, Keynesian theory of interest is an integral part of his general theory of effective demand and employment.

केंज का ब्याज का सिद्धान्त 'ब्याज की दरों' तथा 'अतरल-सम्पत्तियों' जैसे बॉंड व सिक्यूरीटीज (non-liquid assets like bonds and securities) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है; ब्याज की दरो तथा बॉंडो की कीमतो मे परिवर्तनो को आशाओ (expectations) के माध्यम से यह लाभ की प्रत्याशित दरो (expected rates of profit) पर विचार करता है; केंज के अनुसार ब्याज की दर विनियोग को प्रभावित करती है और विनियोग 'आय, उत्पादन व रोजगार' को प्रभावित करता है। इस प्रकार केंज का ब्याज का सिद्धान्त प्रभावपूर्ण माग व रोजगार के सिद्धान्त का एक महत्त्वपूर्ण व समन्वित अग है; अथवा ब्याज का सिद्धान्त द्रव्य, आय व रोजगार के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी स्थापित करता है।

[4] Keynes defined liquidity preference as a preference for holding wealth in the form of cash or liquid money rather than in the form of non-liquid assets like bonds or securities.

(i) कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग (The Demand of Money for the Transactions Motive)

लोगों को आय एक निश्चित अवधि मे मिलती है परन्तु भुगतान करने की आवश्यकता निरन्तर पडती रहती है; इसलिए नकद द्रव्य (cash) की कुछ मात्रा की सदैव आवश्यकता रहती है ताकि लोग अपने लेन-देन को पूरा कर सकें।

कार्य-सम्पादन उद्देश्य को दो दृष्टियो से देखा जा सकता है—(i) उपभोक्ताओं की दृष्टि से, तब इसे 'आय-उद्देश्य' कहते हैं, तथा (ii) साहसी या व्यापारियों की दृष्टि से, तब इसे 'व्यावसायिक उद्देश्य' कहते है।

(a) **आय उद्देश्य** (The income motive)—उपभोक्ताओ को आय एक निश्चित समय (सप्ताह या महीना) मे मिलती है, परन्तु उन्हें व्यय प्रतिदिन करना होता है। अतः उपभोक्ता दिन-प्रतिदिन के कार्य-सम्पादन के लिए कुछ द्रव्य नकद रूप मे रखते हैं। कार्य सम्पादन के उद्देश्य के लिए एक उपभोक्ता द्रव्य की कितनी मात्रा नकद रूप मे रखेगा यह बात उसकी आय के आकार (size of income) तथा आय प्राप्ति की समयावधियो (time interval of income receipts) पर निर्भर करेगी। इस प्रकार उपभोक्ताओं द्वारा कार्य-सम्पादन हेतु द्रव्य को नकद रूप में रखने के उद्देश्य को 'आय-उद्देश्य' कहा जाता है।

(b) **व्यवसाय उद्देश्य** (The business motive)—साहसी या उत्पादक भी द्रव्य की कुछ मात्रा को नकद रूप मे रखते हैं ताकि वे कच्चे माल, यातायात, लागत, मजदूरियों तथा वेतनों और अन्य चालू खर्चों का भुगतान कर सकें। अत. साहसियो या उत्पादको द्वारा द्रव्य को नकद रूप में रखने के उद्देश्य को 'व्यावसायिक उद्देश्य' कहा जाता है। स्पष्ट है कि व्यावसायिक उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा, व्यापारी, उत्पादक या फर्म के 'समस्त क्रय-विक्रय' (turnover) पर निर्भर करेगी।

अतः 'आय उद्देश्य' तथा 'व्यावसायिक उद्देश्य' दोनों मिलकर 'कार्य-सम्पादन उद्देश्य' का निर्माण करते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा मुख्यतया व्यक्तियों की आयों (incomes of individuals) पर, तथा व्यवसाय के समस्त क्रय-विक्रय पर निर्भर करती है। कार्य-सम्पादन हेतु द्रव्य की नकद मात्रा सामान्यतया ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।**

(ii) सतर्कता उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग (The Demand of Money for the Precautionary Motive)

लोग संकटकालीन दिनों (rainy days) के लिए द्रव्य की कुछ मात्रा नकद रूप में रखते हैं। दूसरे शब्दो मे, बेरोजगारी, बीमारी, दुर्घटनाओ तथा अन्य आकस्मिक व अनिश्चित घटनाओं का सामना करने के लिए व्यक्ति द्रव्य की कुछ मात्रा नकद रूप में रखते हैं। इस उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा व्यक्तियों के स्वभाव तथा उनके रहने की दशाओं पर निर्भर करेगी। **परन्तु इस उद्देश्य के लिए द्रव्य की नकद मात्रा मुख्यतया व्यक्तियों के आय के स्तर पर निर्भर करती है**; सामान्यतया धनवान व्यक्ति, निर्धन व्यक्तियो की अपेक्षा, अधिक द्रव्य रख सकेंगे। **इस उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा, सामान्यतया, ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।**

कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य दोनो के लिए नकद-द्रव्य की माँग मुख्यतया आय पर निर्भर करती है, इसलिए हम इन दोनो को एक साथ ले सकते हैं। मात्रा इन दोनों उद्देश्यो के लिए द्रव्य की माँग को L_1 द्वारा बताया जाता है; आय के लिए हम Y का प्रयोग करते है, फलनान के लिए f का प्रयोग करते हैं [ध्यान रहे कि फलनान का सरल शब्दो मे अर्थ है 'निर्भर करना है' (depends on)], तो हम समस्त स्थिति को अग्र प्रकार से लिख सकते हैं :

$L_t = f(Y)$ Demand of money for transaction motive (and precautionary motive) is a function of income.

एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है। एक द्रव्य प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्था में सभी प्रकार के कार्य-सम्पादन (transactions) में द्रव्य का विनिमय (exchange of money) होता है। कार्य-सम्पादन उद्देश्य (तथा सतर्कता उद्देश्य) की सन्तुष्टि के लिए द्रव्य को नकद रूप में रखने के पीछे वास्तव में द्रव्य का 'विनिमय के माध्यम का कार्य' (medium-of-exchange function of money) होता है।[5]

(iii) 'सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग' अथवा 'द्रव्य की सम्पत्ति-माँग' ('Demand of Money for Speculative Motive' Or 'Asset Demand of Money')

सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग अत्यन्त जटिल व महत्त्वपूर्ण है। यह माँग इस बात को समझने में मदद करती है कि द्रव्य एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को एक महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित कर सकता है।

सट्टा उद्देश्य का सम्बन्ध इस बात से है कि एक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति (assets or wealth) के एक भाग को नकद द्रव्य के रूप में रखना चाहते हैं ताकि वे भविष्य में बाजार के परिवर्तनों (future market movements) का लाभ उठा सकें। कीन्ज के शब्दों में, सट्टा उद्देश्य के पीछे नकद-कोषों (money balances) को रखने का उद्देश्य "बाजार की तुलना में, इस बात की अच्छी जानकारी कि 'भविष्य में क्या होगा' के द्वारा लाभ प्राप्त करना है।"[6]

सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत लोग द्रव्य को तरल सम्पत्ति के रूप में (as a liquid asset) चाहते हैं ताकि वे आवश्यकतानुसार भविष्य में उसका प्रयोग कर सकें। लोग, सम्पत्तियों के अन्य रूपों की तुलना में, द्रव्य को सम्पत्ति के रूप में रखना अधिक पसन्द करते हैं; अर्थात लोग 'अतरल सम्पत्तियों' की तुलना में 'तरल सम्पत्ति के रूप में द्रव्य' को अधिक पसन्द करते है। स्पष्ट है कि 'सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग' को 'द्रव्य की सम्पत्ति-माँग' (*Asset Demand of Money*) भी कहा जाता है।[7]

अभी हम ऊपर देख चुके हैं कि सट्टा उद्देश्य की एक मुख्य विशेषता है कि यह द्रव्य की माँग को 'सम्पत्ति के रूप में रखने की माँग' को बताता है। इसका अभिप्राय है कि सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य के कार्य को 'मूल्य के संचय या स्टाक' (store or stock of value) के रूप में देखा जाता है न कि 'विनिमय के माध्यम' (medium of exchange) के रूप में, जैसा कि पहले दो उद्देश्यों (कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता-उद्देश्य) के सम्बन्ध में है।

सट्टा उद्देश्य के लिए लोग 'तरल द्रव्य' या 'निष्क्रिय नकद कोषों' (ideal cash balances) की माँग इसलिए करते हैं क्योंकि भविष्य के बारे में अनिश्चितता तथा डर (uncertainty and fear about future) रहता है। कीन्ज के शब्दों में, "द्रव्य को धन या सम्पत्ति के संचय के रूप में

---

[5] Money held to satisfy the transactions motive (as well as the precautionary motive) is related primarily to the medium-of-exchange function of money.

[6] The objective behind holding money-balances for speculative motive, in the words of Keynes, is "securing profit from knowing better than the market what the future will bring forth."

[7] Under speculative motive money is wanted as an asset that can be drawn upon at some future date as needed or desired. Persons hold money as an asset in preference to other forms of asset, that is, persons show a preference for 'money as a liquid asset' in comparison to 'non-liquid assets' (like bonds). Thus, the speculative demand of money is also called as 'Asset Demand of Money.'

रखने की इच्छा, हमारी गणनाओं, परम्पराओं तथा अविश्वास की मात्रा (degree) का, एक बैरोमीटर या सूचक है।"[8] लोग 'भविष्य में ब्याज दर' अथवा 'अतरल आय प्रदान करने वाली सम्पत्तियों (जैसे बौंडों) के भविष्य में मूल्यों' के सम्बन्ध में अनिश्चित होते हैं।

भविष्य में 'ब्याज-दरों' अथवा 'बौंडों की कीमतों' के सम्बन्ध में अनिश्चितता का अभिप्राय निम्न दो बातों से है :

(i) ब्याज-दरों तथा बौंड-कीमतों में कुछ सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए, आगे हम देखेंगे कि उनमें उल्टा (inverse) सम्बन्ध होता है।

(ii) प्रत्याशाओं का पार्ट (*role of expectations*) महत्वपूर्ण है, इसका अभिप्राय है कि लोगों की भविष्य की ब्याज-दरों (अथवा बौंड-कीमतों) के सम्बन्ध में 'अनुमान या प्रत्याशाएं' (expectations)। कुछ लोगों का यह अनुमान हो सकता है कि वर्तमान ब्याज की दर नीची है (और भविष्य में उसके बढ़ने की आशा है); कुछ अन्य व्यक्तियों का यह अनुमान हो सकता है कि ब्याज की वर्तमान दर ऊँची है (और भविष्य में उसके घटने की आशा है)। जब हम 'ऊँची' या 'नीची' ब्याज दर की बात करते हैं तो इसका अभिप्राय है कि कोई एक 'ब्याज की सामान्य दर' (some '*normal rate of interest*') होगी जो कि लोगों के दिमाग में अच्छी तरह से जमी होगी; 'ऊँची' या 'नीची' ब्याज-दर की बात केवल किसी 'ब्याज की सामान्य दर' के सन्दर्भ (reference) में ही की जा सकती है। 'ब्याज की सामान्य दर' के चारों तरफ लोगों के मतों या प्रत्याशाओं (opinions and expectations) में अन्तर होगा जिसके परिणामस्वरूप द्रव्य की सट्टा-मांग उत्पन्न होगी।

अब हम पहली बात, अर्थात 'ब्याज-दर तथा बौंड-कीमतों में सम्बन्ध' की विवेचना करते हैं। आगे के विवरण से यह स्पष्ट होगा कि ब्याज-दरों तथा बौंड-कीमतों में उल्टा सम्बन्ध होता है। इसका अभिप्राय है कि यदि ब्याज-दरें ऊँची हैं तो बौंड-कीमतें नीची होंगी; तथा यदि ब्याज-दरें नीची हैं तो बौंड-कीमतें ऊँची होंगी। माना कि बौंड का 'अंकित मूल्य' (*face price*) 100 रु० है और उससे 6% प्रति वर्ष की ब्याज-दर के रूप में आय प्राप्त होती है। माना कि बौंड की 'बाजार कीमत' (*market price*) बढ़कर 200 रु० हो जाती है, परन्तु इस स्थिति में भी ब्याज के रूप में आय 6 रु० ही होगी क्योंकि ब्याज 'प्रारम्भिक अंकित मूल्य' (original face price) पर ही दिया जाता है। अब बौंड की बाजार कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप 'वास्तविक ब्याज दर' (effective or real interest rate) घट कर 3% हो जायेगी।[9] स्पष्ट है कि बौंड-कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप वास्तविक ब्याज दर में कमी हो जाती है। इसके विपरीत, माना कि बौंड की बाजार कीमत घटकर 50 रु० हो जाती है, तो इस स्थिति में भी बौंड से आय 6 रु० ही प्राप्त होगी (क्योंकि ब्याज प्रारम्भिक अंकित मूल्य पर ही दिया जाता है); इसका अभिप्राय है कि बौंड की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप ब्याज की वास्तविक दर बढ़कर 12% हो जाती है[10]; इस प्रकार ब्याज दर तथा बौंड कीमत में उल्टा सम्बन्ध है। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है।

[8] To use the words of Keynes, "the desire to hold money as a store of wealth is a barometer of the degree of distrust, our calculations and conventions concerning the future."

[9] 200 रु० के बौंड पर एक व्यक्ति को 6 रु० ब्याज के मिलते हैं, तो 100 रु. पर उसे 3 रु. ब्याज के पड़ेंगे। इस प्रकार बौंड की बाजार कीमत में वृद्धि होने से ब्याज की वास्तविक दर घट जाती है। अतः बौंड कीमत तथा ब्याज-दर में उल्टा सम्बन्ध होता है।

[10] बौंड की बाजार कीमत घटकर 50 रु. हो जाती है जिस पर ब्याज रूपी आय 6 रु. मिलती है, तो 100 रु. पर उसे 12 रु. ब्याज के पड़ेंगे। इस प्रकार बौंड की बाजार कीमत में कमी होने से

(क्रमशः)

ब्याज-दरों तथा बौंड कीमतों में उल्टा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, बौंड कीमतों के परिवर्तन प्रकट होते हैं ब्याज-दरों के परिवर्तनों में।[11]

अब हम दूसरी महत्वपूर्ण बात अर्थात प्रत्याशाओं के पार्ट (role of expectations) पर विचार करते हैं; इस बात की विवेचना करते समय हमें ब्याज-दरों तथा बौंड-कीमतों के बीच उल्टे सम्बन्ध को बराबर ध्यान में रखना चाहिए। **यदि बाजार ब्याज-दर पर्याप्त ऊँची है,** तो अधिकांश व्यक्ति (भविष्य में) उसके गिरने या घटने की आशा करेंगे, और इसलिए वे बौंडो की कीमतों में वृद्धि की भी आशा करेंगे।[12] परिणामस्वरूप, लोग यह महसूस करेंगे कि वे लाभ प्राप्त कर सकते है यदि वे बौंडो को अब खरीद कर रखें तथा भविष्य में उन्हें बेचें जबकि बौंड कीमतें बढ़ जायेंगी (अथवा जबकि ब्याज दरें घट जायेंगी)। अतः वर्तमान में ब्याज दर ऊँची होने पर (अर्थात् बौंडो की कीमतें नीची होने पर) लोग 'निश्चित आय प्रदान करने वाले बौंडो' को अपने पास रखना या होल्ड (hold) करना पसन्द करेंगे अपेक्षाकृत तरल द्रव्य के। दूसरे शब्दों में, **सट्टे के लिए नकद द्रव्य की माँग कम होगी यदि ब्याज की दर ऊँची है।**

अब हम इसके विपरीत स्थिति लेते है। **यदि बाजार ब्याज दर पर्याप्त नीची है,** तो अधिकांश व्यक्ति (भविष्य में) उसके बढ़ने की आशा करेंगे; और इसलिए वे बौंडो की कीमतों में कमी की भी आशा करेंगे। परिणामस्वरूप, लोग महसूस करेंगे कि वे लाभ प्राप्त कर सकते है यदि वे नकद (या तरल) द्रव्य की अधिक मात्रा अपने पास रखें (अर्थात वर्तमान में बौंडो को प्रचलित ऊँची कीमतों पर बेचकर नकद द्रव्य को होल्ड करे या रखें), और भविष्य में बौंडो को खरीदें जबकि उनकी कीमतें गिर जायेंगी (अथवा जबकि ब्याज-दरें बढ़ जायेंगी)। अतः वर्तमान में ब्याज दर नीची होने पर (या बौंडो की कीमतें ऊँची होने पर) लोग तरल द्रव्य को अपने पास रखना या होल्ड करना अधिक पसन्द करेंगे अपेक्षाकृत निश्चित आय प्रदान करने वाले अतरल बौंडो के। दूसरे शब्दों में, **सट्टे के लिए तरल या नकद द्रव्य की माँग अधिक होगी यदि ब्याज की दर नीची है।**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग अर्थात द्रव्य की सम्पत्ति-माँग) निर्भर करती है ब्याज दर पर, अथवा यह कहिए कि सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग फक्शन (function) है ब्याज दर की। सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग तथा ब्याज दर में उल्टा सम्बन्ध होता है।

यदि सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग के लिए L_s का, ब्याज दर के लिए i का, तथा फंक्शन के लिए f का प्रयोग करें, तो हम निम्न प्रकार लिख सकते है:

$L_s = f(i)$ — Speculative demand for money is a function of interest rate.

द्रव्य की कुल माँग, कार्य सम्पादन उद्देश्य, सतर्कता उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य, इन तीनों की माँग का योग है। माना द्रव्य की कुल माँग को L द्वारा बताया जाता है। जैसा कि पहले बता चुके है कि कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य दोनो की माँग को L_t द्वारा बताया जाता है, और सट्टा उद्देश्य की माँग को L_s द्वारा बताया जाता है तो द्रव्य की कुल माँग L को निम्न प्रकार से लिख सकते है

$$L = L_t + L_s$$

ब्याज की वास्तविक दर बढ़ जाती है। अतः बौंड कीमत तथा ब्याज दर में उल्टा सम्बन्ध होता है।

[11] Interest rates and bond prices are inversely related. In other words, changes in bond prices are reflected in the changes in interest rates.

[12] ऐसा इसलिए होगा क्योंकि ब्याज दर तथा बौंड-कीमत में उल्टा सम्बन्ध होता है; यदि भविष्य में लोगों को ब्याज दर के घटने की आशा है तो उन्हें बौंड कीमतों के बढ़ने की भी आशा होगी।

हम देख चुके हैं कि L_1 निर्भर करता है आय (Y) पर अर्थात $L_1 = f(Y)$; और L_2 निर्भर करता है ब्याज दर (i) पर अर्थात $L_2 = f(i)$। इसका अभिप्राय है कि द्रव्य की कुल माँग (L), आय (Y) तथा ब्याज दर (i) दोनों पर निर्भर करती है या दोनों का फलन होती है, इस स्थिति को निम्न प्रकार से लिख सकते है—

$L = f(Y, i)$ Demand for money (or Liquidity preference) is a function of both income and interest.

अब हम LP-रेखा की शक्ल (shape) **के बारे में विवेचना करते हैं।** हम देख चुके हैं कि ब्याज की कुल माँग अर्थात L निर्भर करती है ब्याज दर (i) तथा आय (Y) पर। अत LP रेखा की शक्ल तथा स्थिति (shape and position) को *i* तथा Y निर्धारित करते है। ब्याज दर (i) तथा सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग (L_2) मे सम्बन्ध LP रेखा की शक्ल तथा ढाल को निर्धारित करता है; हम देख चुके हैं कि I तथा L_2 में उल्टा सम्बन्ध होता है इसलिए LP रेखा (**या द्रव्य की माँग रेखा) नीचे को गिरती हुई होती है। अथवा उसका ढाल ऋणात्मक** (negative) **होता है, जबकि आय का स्तर (Y) दिया हुआ मान लिया जाता है।** LP-रेखा को चित्र 4 मे दिखाया गया है; LP रेखा बिन्दु A तक नीचे को गिरती हुई है तथा उसके बाद से एक पड़ी रेखा (horizontal) हो जाती है; ऐसा क्यों होता है इसकी व्याख्या थोड़ा आगे की गयी है। नीचे को गिरती हुई LP रेखा बताती है कि ऊँची ब्याज दर पर सट्टा-उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की माँग कम होगी, तथा नीची ब्याज दर पर नकद द्रव्य की माँग अधिक होगी। परन्तु यदि ब्याज दर बहुत नीची गिर जाती है जैसाकि चित्र 4 मे r_1 (माना 2%) बताती है, तो LP–रेखा बिन्दु A के बाद से पड़ी रेखा हो जाती है; टेकनीकल भाषा मे हम कहेंगे कि बिन्दु A के बाद से LP रेखा ब्याज दर के प्रति पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic with respect to rate of interest) हो जाती है ऐसी स्थिति को केंज ने **तरलता-जाल** (*liquidity-trap*) **कहा।**
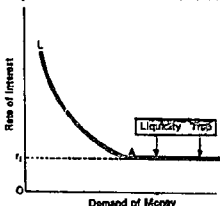
चित्र 4

तरलता-जाल की आधारभूत व्याख्या इस प्रकार है। यदि ब्याज दर बहुत नीची हो जाती है (अर्थात बौंडों की कीमतें बहुत ऊँची होती हैं) तो लोग यह सोचते हैं कि बौंडों को खरीदने (अर्थात् द्रव्य को बाजार मे उधार देने) मे बहुत अधिक पूँजीगत हानि (capital loss) होगी क्योंकि बौंडों की ऊँची कीमतें अवश्य नीचे गिरेंगी और इसलिए बहुत हानि उठानी पड़ेगी, अथवा बहुत जोखिम (risk) रहेगा। अतः बहुत नीची ब्याज दर (अर्थात बौंडों की बहुत ऊँची कीमतो) पर लोग बौंडो को बिलकुल नही खरीदेंगे अर्थात बिलकुल उधार नही देंगे; सारे द्रव्य को अपने पास तरल या नकद रूप में रखना पसन्द करेंगे; एकदम उधार बन्दी (complete credit deadlock) हो जायेगा। ब्याज की बहुत नीची दर (जैसे चित्र मे r_1) पर द्रव्य की पूर्ति को कितनी ही सीमा तक (अर्थात अनन्त सीमा या infinity तक) बढाया जाये, तो भी समस्त द्रव्य 'तरलता जाल' (liquidity-trap) में चला जायेगा या उसमें फंस जायेगा (यानी 'trap' हो जायेगा); अर्थात लोग समस्त द्रव्य को अपने पास तरल (या नकद) रूप मे रखेंगे (क्योंकि बौंडों को खरीदने अर्थात द्रव्य को उधार देने मे बहुत जोखिम होगी); द्रव्य की पूर्ति या मात्रा मे वृद्धि के कारण ब्याज दर मे जरा भी कमी नहीं होगी; ऐसी स्थिति में LP रेखा की पूंछ (tail) X-axis के प्रति समानान्तर (parallel) हो

जाती है अर्थात ब्याज के प्रति पूर्णतया लोचदार हो जाती है। तरलता-जाल का एक महत्वपूर्ण नीति-अभिप्राय (policy implication) यह है कि नीची ब्याज दर पर सरकार द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि करके ब्याज दर और अधिक नहीं गिरा सकेगी; अर्थात 'सस्ते द्रव्य की नीति' (cheep money policy) असफल रहेगी।

LP रेखा की शक्ल व ढाल की विवेचना करते समय हमने अभी तक आय (Y) के स्तर को स्थिर या दिया हुआ मान रखा था। अब **'आय के स्तर (Y) में परिवर्तन का LP-रेखा की स्थिति (position) पर प्रभाव' की विवेचना कर** हैं। माना कि अन्य बातें स्थिर रहती हैं, तथा आय में वृद्धि होती है अर्थात आय Y से बढ़कर Y_1 हो जाती है, *तो कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता* उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग में वृद्धि होगी [अर्थात कुल माँग L के L_t भाग में वृद्धि होगी], इसके परिणामस्वरूप कुल माँग में वृद्धि होगी और L(Y) रेखा दायें (right) को खिसक जायेगी और $L(Y_1)$ की स्थिति में आ जायेगी जैसा कि चित्र 5 में दिखाया गया है। अब माना कि आय में कमी होती है, अर्थात आय Y से घट कर Y_0 हो जाती है, तो द्रव्य की माँग में कमी होगी (क्योंकि कुल माँग L के L_t भाग में कमी होगी), परिणामस्वरूप LP रेखा बायें को खिसकेगी और $L(Y_0)$ की स्थिति में आ जायेगी जैसा कि चित्र 5 में दिखाया गया है। सभी LP-रेखाएँ तरलता-जाल में मिल जायेंगी।
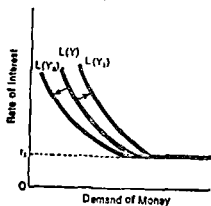
चित्र 5

अब हम LP-रेखा की शक्ल व स्थिति के सम्बन्ध में समस्त साराश (summary) इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं.

> द्रव्य की सट्टा उद्देश्य की माँग (L_s) तरलता-पसन्दगी रेखा (L) का ढाल ऋणात्मक (negative) करती है; ब्याज की किसी बहुत नीची दर पर द्रव्य की सट्टा उद्देश्य की माँग पूर्णतया लोचदार हो जाती है अर्थात् L-रेखा की पड़ी हुई पूछ (horizontal tail) 'तरलता-जाल' को बताती है। आय के स्तर में परिवर्तन कुल माँग (L) के L_t भाग में परिवर्तन करती है और इसलिए L-रेखा की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है; आय में वृद्धि के साथ L-रेखा दायें को खिसक जाती है तथा आय में कमी के साथ L-रेखा बायें को खिसक जाती है।

3 द्रव्य की पूर्ति (Supply of Money)

सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा बैंक-साख मिलकर द्रव्य की कुल पूर्ति का निर्माण करते हैं। चूंकि मौद्रिक अधिकारी (monetary authority) द्रव्य की कुल पूर्ति (जिसे प्राय. M द्वारा व्यक्त करते हैं) निर्धारित करता है, इसलिए किसी समय-विशेष में द्रव्य की कुल पूर्ति (M) लगभग स्थिर होती है। अतः द्रव्य की पूर्ति रेखा X-axis पर एक खड़ी (vertical) रेखा होगी [जैसा कि चित्र 6 में MQ रेखा है।]

4. ब्याज का निर्धारण (Determination of Interest Rate)

ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि द्रव्य की माँग (अर्थात् तरलता-पसन्दगी) तथा द्रव्य की पूर्ति बराबर हैं या सतुलन में हैं। दूसरे शब्दों में, ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ पर कि 'नकद द्रव्य की इच्छा' (desire for cash) बराबर होती है 'नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा' (actual cash) के।

चित्र 6 में $L(Y_1)$ रेखा द्रव्य की कुल माँग रेखा (या तरलता पसन्दगी रेखा) है जबकि आय स्तर (Y_1) दिया हुआ है। MQ रेखा एक समय विशेष पर द्रव्य की कुल पूर्ति या मात्रा या स्टाक को बताती है (द्रव्य की OM मात्रा मौद्रिक सत्ता द्वारा निर्धारित होती है) रेखा $L(Y_1)$ तथा रेखा MQ का कटाव-बिन्दु A 'ब्याज की संतुलन दर' (*equlibrium rate of interest*) को बताता है जिस पर द्रव की माँग तथा द्रव की पूर्ति दोनों बराबर है; ऐसी ब्याज की दर R है। दूसरे शब्दों में, बिन्दु A 'मौद्रिक संतुलन' (*monetary equilibrium*) को बताता है, अथवा यह कहिए कि 'मुद्रा-बाजार' (*money market*) संतुलन में है।[12]
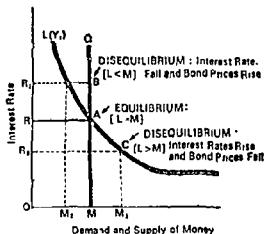
चित्र 6

ब्याज दर R_1 (या बिन्दु B) पर मुद्रा-बाजार असंतुलन (disequilibrium) में है क्योंकि द्रव्य की माँग (L) कम है द्रव्य की पूर्ति या स्टाक (M) से, अर्थात $L < M$। दूसरे शब्दों में, लोगों के पास द्रव्य की वास्तविक पूर्ति OM है जबकि वे द्रव्य की केवल OM_2 मात्रा की माँग या इच्छा (demand or *desire*) करते हैं; इसका अर्थ है कि लोगों के पास 'द्रव्य की पूर्ति' या 'नकद कोषों' (cash balances) का आधिक्य (surplus) है। परिणामस्वरूप, लोग अधिक बाँडों को खरीद कर अपने नकद-कोषों (या द्रव्य की अधिक पूर्ति) में कमी करेंगे; इसके कारण बाँडों की कीमतें बढ़ेंगी तथा ब्याज दर घटेगी, और अन्त में ब्याज दर गिरकर R हो जायेगी (अथवा बिन्दु A पर पुनः मौद्रिक संतुलन स्थापित हो जायेगा) जिस पर द्रव्य को नकद रूप में रखने की इच्छा या माँग ठीक बराबर हो जायेगी द्रव्य की दी हुई पूर्ति या स्टाक के, अर्थात $L = M$ के हो जायेगा।

ब्याज दर R_2 (या बिन्दु C) पर मुद्रा बाजार पुनः असंतुलन में है क्योंकि द्रव्य की माँग (*L*) अधिक है द्रव्य की पूर्ति (*M*) से, अर्थात $L > M$; दूसरे शब्दों में, लोग द्रव्य की OM_1 मात्रा की माँग या इच्छा करते हैं जबकि द्रव्य की वास्तविक पूर्ति या स्टाक केवल OM है। ऐसी परिस्थिति में लोग बाँडों को बेचेंगे ताकि उन्हें नकद द्रव्य मिल सके, परिणामस्वरूप बाँडों की कीमत गिरेगी और ब्याज दर बढ़ेगी; और अन्त में ब्याज दर बढ़कर R हो जायेगी जहाँ पर कि द्रव्य को नकद रूप में रखने की इच्छा ठीक बराबर हो जाती है द्रव्य की पूर्ति के; अर्थात मौद्रिक संतुलन स्थापित हो जाता है। इस प्रकार,

> ब्याज की दर संतुलन में तब होगी (या मौद्रिक संतुलन तब होगा) जबकि लोगों की द्रव्य के स्टाक को नकद रूप में रखने की 'इच्छा'[14] ठीक बराबर हो जाती है द्रव्य की वर्तमान पूर्ति या स्टाक के।

---

[13] 'मौद्रिक संतुलन' या 'मुद्रा बाजार का संतुलन' का अर्थ ऐसी स्थिति से होता है जिसमें 'द्रव्य की माँग' तथा 'द्रव्य की पूर्ति' बराबर होती हैं।

[14] द्रव्य को तरल या नकद रूप में रखने की माँग के लिए प्रायः शब्द 'इच्छा' का प्रयोग किया जाता है। शब्द 'इच्छा' का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है तथा इस पर ध्यान देना जरूरी है; यह बात (क्रमशः)

[Rate of interest is in equilibrium, or we have monetary equilibrium, only when the *desire* of the people to hold the stock of money is just equal to the stock (or supply) of money in existence]

5. **ब्याज की संतुलन दर में परिवर्तन** (Changes in the Equilibrium Rate of Interest)

अब हम ब्याज की संतुलन दर में परिवर्तनो की विवेचना करते हैं। हम दो स्थितियो को लेते हैं:

(i) द्रव्य की पूर्ति (M) मे परिवर्तन का ब्याज की संतुलन दर पर प्रभाव।

(ii) आय मे परिवर्तन (जिसका अभिप्राय है द्रव्य की कुल माँग L मे परिवर्तन) का ब्याज की सतुलन दर पर प्रभाव।

पहले हम द्रव्य की पूर्ति में परिवर्तनों को लेते हैं। माना कि आयका एक स्तर Y_1 दिया हुआ है, और इस दिये हुये आय-स्तर Y_1 पर द्रव्य की माँग को चित्र 7 मे L (Y_1) रेखा द्वारा दिखाया गया है। जब द्रव्य को दी हुई पूर्ति M_1 है तो ब्याज की सतुलन दर R_1 (या E_1M_1) है। माना द्रव्य की पूर्ति M_1 से बढ़कर M_2 हो जाती है, तो ब्याज की दर गिरकर R_2 हो जायेगी। [जब द्रव्य की माँग दी हुई है, और द्रव्य की पूर्ति बढ़ायी जाती है तो इसका अभिप्राय है जितना नकद द्रव्य लोग अपने पास होल्ड (hold) करना चाहते है उससे अधिक नकद द्रव्य की पूर्ति प्राप्य है।¹ द्रव्य पूर्ति का यह आधिक्य (surplus) बौडो को खरीदने मे लगाया जायेगा, परिणामस्वरूप बौंड कीमतें तथा ब्याज दर गिरेंगी।]
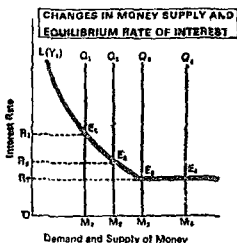
चित्र 7

जब तक द्रव्य की माँग रेखा में कोई परिवर्तन (change or shift) नही होता है, तब तक द्रव्य की पूर्ति में और अधिक वृद्धियाँ ब्याज को घटाती जायेंगी, तथा द्रव्य पूर्ति मे कमियाँ ब्याज दर को बढ़ाती जायेंगी।

द्रव्य-पूर्ति मे किसी एक निश्चित वृद्धि के परिणामस्वरूप ब्याज की दर कितनी गिरेगी, यह बात, अन्य बातों के समान रहने पर, माँग रेखा L (Y_1) की लोच पर निर्भर करेगी। यदि माँग रेखा R_1 से R_t तक के क्षेत्र (range) में अधिक लोचदार है (जैसा कि चित्र 7 में है), तो ब्याज दर मे गिरावट (decrease) कम होगी; इसके विपरीत यदि माँग रेखा कम लोचदार है तो ब्याज दर मे गिरावट अधिक होगी।

ब्याज की एक बहुत नीची दर हो सकती है (चित्र 7 में यह R_t) है जिस पर माँग रेखा

निम्न विवरण से स्पष्ट होती है:

"The rate of interest is in equilibrium when people just *desire* to hold the stock of *money in existence, no more no less. When we say that 'people are hoarding more'*, we cannot mean that people *are* (actually) holding more money, because the stock of money cannot be increased or decreased by their actions. Rather, the attempt to hold more collectively fails, and derives interest rates up." In simple terms, the *desire* to hold more money with respect to the actual given stock (or supply) of money causes an increase in interest rate, and the *desire* to hold less money with respect to the actual given sto_k of money causes a decrease in the rate of interest. Rate of interest is in equilibrium only when the desire to hold stock of money just equals the actual stock of money.

पूर्णतया लोचदार हो जाती है (अर्थात 'तरलता-जाल' की स्थिति आ जाती है)। इसका अभिप्राय है कि सभी व्यक्ति इस सम्बन्ध में एक मत है कि ब्याज-दर इतनी नीची है कि वह और अधिक नीची नहीं जायेगी (अथवा बौंड कीमतें इतनी ऊँची है कि वे और अधिक ऊँची नहीं जायेंगी)। ऐसी स्थिति में मौद्रिक सत्ता (monetary authority) द्रव्य की पूर्ति को M_3 से बढ़ाकर M_4 करके ब्याज-दर को, तरलता-जाल द्वारा निर्धारित ब्याज-दर (R_l) से, और अधिक घटाने में सफल नहीं हो सकेगी। इस ब्याज-दर (R_l) पर द्रव्य की माँग पूर्णतया लोचदार होगी, द्रव्य की पूर्ति में कोई भी वृद्धि तरलता-जाल में फँस जायेगी (अर्थात् trap कर ली जायेगी)। अतः द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि, तरलता-जाल द्वारा निर्धारित ब्याज-दर से नीचे ब्याज को गिराने में पूर्णतया असफल रहेगी।[15]

अब हम आय-स्तर में परिवर्तनों का (अर्थात् माँग रेखा या L-रेखा में परिवर्तनों का) ब्याज की संतुलन दर पर प्रभाव का अध्ययन करते हैं। चित्र 8 में द्रव्य की दी हुई पूर्ति M है; $L(Y_1)$ द्रव्य की माँग रेखा को बताती है जबकि आय का स्तर Y_1 है, ब्याज की सन्तुलन दर R_1 (या E_1 M) है। मान लिया कि आय का स्तर (अर्थात वास्तविक उत्पादन actual output) Y_1 से बढ़कर Y_2 हो जाता है। आय (अर्थात वास्तविक उत्पादन) में वृद्धि के परिणामस्वरूप लोग कार्य-सम्पादन उद्देश्य (तथा सतर्कता उद्देश्य) के लिए अधिक द्रव्य की माँग करेंगे, अर्थात द्रव्य की कुल माँग L के L_t भाग में वृद्धि होगी और इसलिए कुल माँग (L) में भी वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप $L(Y_1)$ रेखा दायें को खिसक जायेगी और $L(Y_2)$ की स्थिति में आ जायेगी। अब ब्याज की नयी सतुलन दर R_2 होगी, जो कि पहली ब्याज दर R_1 से ऊँची है।[16] आय में और अधिक वृद्धियाँ (further increases) L-रेखा को दायें को खिसकायेंगी और परिणामस्वरूप ब्याज दर में वृद्धि होती जायेगी। इसके विपरीत आय में कमी होने पर L-रेखा बायें को खिसकती जायेगी और ब्याज की दर कम होती जायेगी। स्पष्ट है कि यदि द्रव्य की पूर्ति दी हुई है, तो ब्याज की दर में तथा आय-स्तर में सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है।
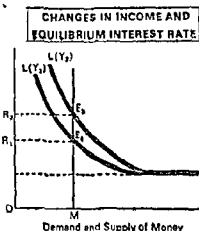
चित्र 8

[15] Thus increase in money supply (or monetary expansion) will be completely unsuccessful in reducing the interest below the rate set by the liquidity trap.

[16] यदि हम बौंड कीमतों तथा ब्याज दरों दोनों पर साथ-साथ ध्यान दें, तो आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप ब्याज की दर में वृद्धि की प्रक्रिया (process) को इस प्रकार से समझाया जा सकता है। आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप L_t के लिए द्रव्य की माग बढ़ेगी, चूंकि द्रव्य की कुल पूर्ति स्थिर या दी हुई है, इसलिए L_t के लिए द्रव्य की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए सट्टा उद्देश्य के लिए कोषों (balances for speculative motive) में से द्रव्य को कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए हस्तातरण (Transfer) करना पड़ेगा। [*The process involves transference of money from speculative to transactions balances*] इसका अभिप्राय है कि लोग बौंडो को बेचेंगे (ताकि L_t के लिए द्रव्य प्राप्त हो सके क्योंकि द्रव्य की पूर्ति स्थिर है), बौंडो के बेचने के कारण बौंड-कीमतें गिरेंगी और ब्याज दर बढ़ेगी। इस विवरण से स्पष्ट है कि आय में वृद्धि के साथ ब्याज दर बढ़ेगी। इसी प्रकार मे यह बताया जा सकता है कि आय में कमी से ब्याज दर घटेगी।

6. **तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना** (Criticism of the Liquidity Preference Theory)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं :

(1) **केन्ज का सिद्धान्त वास्तविक तत्त्वों की अपेक्षा करता है** (*it ignores the real factors*) और केवल मौद्रिक तत्त्वो पर जोर देता है; दूसरे शब्दो मे, यह सिद्धान्त 'उत्पादकता' (productivity) तथा 'किफायत' (thrift) जैसे वास्तविक तत्त्वो पर ध्यान नही देता है।

पहले हम माँग पक्ष को लेते हैं। द्रव्य की माँग केवल उसको नकद या तरल रूप मे रखने के लिए ही नहीं की जाती है बल्कि पूंजीगत वस्तुओं में विनियोग (investment in capital goods) करके अधिक उत्पादन के लिए द्रव्य की माँग की जाती है। इस प्रकार द्रव्य या पूंजी में उत्पादकता होती है। अतः द्रव्य की माँग के पीछे द्रव्य (या पूजी) की 'उत्पादकता' के वास्तविक तत्त्व को छोड़ना उचित नही है।

अब हम पूर्ति पक्ष को लेते हैं। केंज के अनुसार ब्याज तरलता से परित्याग का पुरस्कार है। परन्तु जब तक लोग बचत नही करेंगे (अर्थात् किफायत या thrift नहीं करेंगे) तब तक नकद रूप में रखने को द्रव्य प्राप्य नही हो सकेगा, और ऐसी स्थिति मे ब्याज को 'तरलता के परित्याग का पुरस्कार' बताने का प्रश्न ही नहीं उठता है। वाईनर (Viner) के शब्दों में, "बिना बचत के तरलता का परित्याग नही हो सकता" (without saving there can be no liquidity to surrender)। इस प्रकार किफायत या बचत (thrift or saving) के वास्तविक तत्त्व की उपेक्षा नही की जा सकती है।

(2) **केंज द्वारा प्रयुक्त किया गया तरलता पसन्दगी का विचार भ्रमात्मक तथा अस्पष्ट** (*confusing and vague*) है। केंज यह मान लेते हैं कि लोग अपने द्रव्य को या तो 'तरल रूप में' रखते हैं या 'अतरल बॉडो' (non-liquid bonds) में लगाते है। परन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं है; लोग ऐसी सम्पत्तियों को चाहते हैं जो कि आंशिक रूप से तरल व आंशिक रूप से अतरल हो; लोग अपने द्रव्य या फडो (funds) को अल्पकालीन ट्रेजरी बिलस (short-term treasury bills) के रूप में रख सकते हैं, वे इन पर ब्याज प्राप्त करते हैं, इस प्रकार लोगो को 'तरलता' तथा 'ब्याज' दोनों प्राप्त होते हैं। अत यह कहना उचित नही है कि ब्याज तरलता के परित्याग का पुरस्कार है'

(3) **इस सिद्धान्त का दृष्टिकोण अनावश्यक रूप से संकीर्ण है** (*the theory is unnecessarily narrow in approach*)। केंज यह मान लेते हैं। कि नकद या तरल द्रव्य के स्थान पर विकल्प (alternative) केवल बॉड या सिक्युरीटीज (bonds or securities) हैं। परन्तु व्यक्ति तथा व्यापारी अपने द्रव्य-साधनो को कई प्रकार से विनियोग कर सकते हैं, वे केवल बॉड ही नही खरीदते हैं। केंज के ब्याज सिद्धान्त की व्याख्या केवल बॉड बाजार के कार्यकरण (working) द्वारा की जाती है; परन्तु ऐसा दृष्टिकोण वास्तविक व विस्तृत (realistic and comprehensive) नही है। दूसरे शब्दो मे, उनके सिद्धान्त का दृष्टिकोण संकीर्ण है; और इसलिए कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा उनके सिद्धान्त को 'कालेज बसर सिद्धान्त' (College Bursur's Theory) कहा जाता है।

(4) **केंज के सिद्धान्त का केन्द्रीय सार (core) ब्याज दरों (या बॉड कीमतों) के सम्बन्ध में आशाओं पर आधारित है; आशाओं की अनुपस्थिति (absence) में उनका सिद्धान्त पूर्णतया समाप्त हो जाता है।** दूसरे शब्दो मे,

> "तरलता पसन्दगी रेखा—और इसलिए केंज का सम्पूर्ण सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करता है कि लोग ब्याज-दर तथा बॉड की कीमत मे परिवर्तन की आशा करते हैं। यदि लोग, वास्तव मे, ब्याज की दर में परिवर्तन की आशा नही करते हैं, तो तरलता पसन्दगी रेखा का कुछ भी नही रह जाता है। यह बात की महत्त्वपूर्ण है कि जब ब्याज दर ऊंची है तथा लोग उसमे और वृद्धि की आशा करते हैं,

तथा उसके नीचे होने पर उसमें और कमी की आशा करते हैं, तो समस्त सिद्धान्त उल्टा हो जाता है।"[17]

(5) **यह सिद्धान्त असफल हो जाता है जबकि मन्दी और तेजी की स्थितियों में इसके प्रयोग पर विचार किया जाता है** (the theory fails when its applicability is considered in the situations of depression and boom)।

यह सिद्धान्त बताता है कि यदि तरलता-पसन्दगी ऊँची है तो ब्याज दर भी ऊँची होगी। मन्दी के समय में तरलता-पसन्दगी बहुत ऊँची होती है (गिरती हुई कीमतों के कारण), परन्तु ब्याज की दर ऊँची नहीं होती है बल्कि बहुत नीची होती है; मन्दी के समय में विनियोग के अवसर लगभग बन्द हो जाते हैं (क्योंकि कीमतें बहुत नीची होती हैं) और व्यक्तियों की द्रव्य को तरल रूप में रखने की प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है। अतः यह सिद्धान्त मन्दी की स्थिति में असफल हो जाता है क्योंकि लोगों की तरलता-पसन्दगी तो बहुत ऊँची होती है जबकि ब्याज की दर बहुत नीची होती है।

पुनः, यह सिद्धान्त बताता है कि यदि तरलता पसन्दगी नीची है तो ब्याज की दर भी नीची होगी। तेजी के समय मे तरलता-पसन्दगी बहुत नीची होती है, परन्तु ब्याज की दर बहुत ऊँची होती है। इस प्रकार से यह सिद्धान्त तेजी की स्थिति में भी लागू नहीं होता है।

(6) **यह सिद्धान्त केवल अल्पकाल में ब्याज निर्धारण को बताता है** अर्थात् यह केवल 'तात्कालिक फोटोग्राफिक चित्र' (instantaneous photographic picture) प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त ब्याज निर्धारण की दीर्घकालीन शक्तियों पर प्रकाश नहीं डालता अर्थात् यह 'सिनेमा-सम्बन्धी चित्र' (cinematographic picture) को प्रस्तुत नहीं करता। पूंजी-विनियोग के लिए दीर्घकालीन ब्याज दर अधिक महत्त्वपूर्ण है अपेक्षाकृत अल्पकालीन ब्याज दर के।

(7) **तरलता-जाल (liquidity trap) के विचार का वास्तविक जगत में कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है, मुख्यतया दीर्घकालीन दृष्टि से।** अमरीका में 1930 की महान मन्दी के ठीक बाद के वर्षों में तरलता-जाल का अस्तित्व (existence) एक वास्तविकता (reality) लगती थी न कि एक सम्भावना (possibility)। [ध्यान रहे कि कींज ने अपनी पुस्तक General theory सन् 1936 में लिखी थी।] परन्तु आधुनिक युग में तरलता-जाल का विचार एक सिरे की स्थिति है; ऐसी स्थिति का वास्तविक जगत में पाया जाना बहुत ही कठिन है या असम्भव है।

वास्तव में तरलता-जाल केवल एक अल्पकालीन सैद्धान्तिक विचार है। "तरलता-जाल मुख्यतया एक अल्पकालीन, प्रावैगिक, सैद्धान्तिक विचार है जो कि (i) दीर्घकालीन स्थैतिक माडल के साथ मेल नहीं खाता, परन्तु (ii) यह विचार अल्पकालीन स्थितियों में एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा कर सकता है।"[18]

---

[17] "The liquidity preference curve—and hence the whole of Keynes' theory depends upon people expecting a change in the rate of interest and in the price of bonds. If people do not in fact expect the rate of interest to change, there is nothing left of the liquidity preference curve. As importantly, if people expect the rate of interest to rise further when it is high, and to fall when it is low, the whole theory would be reversed."

इसी बात को मजाक मे D. Robertson इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :

According to Keynes theory, as Robertson puts is, "the rate of interest is what it is because it is expected to be other than it is. But if it is not expected to be other than it is, there is nothing to tell us why it is what it is—the organ that secretes it has been amputed, but some how it still servives; a grin without a cat."

[18] "The liquidity trap is essentially a short-run, dynamic, theoretical consideration which is : (1) inconsistent with a long-run static model but (2) can perform an important role in short-run situations."

(8) यह सिद्धान्त एक पक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह ब्याज निर्धारण में केवल मांग पक्ष (अर्थात तरलता-पसन्दगी) पर ही बल देता है। दूसरे शब्दों मे,

"हिक्स ने इस सिद्धान्त की आधारभूत कमजोरी को स्पष्ट किया। उन्होंने बताया कि कैंची के दोनो फलको, अर्थात मांग व पूर्ति दोनो, के प्रयोग करने के बजाय कॅंज द्रव्य की पूर्ति को एक स्वतन्त्र चर (independent variable) मानते हैं, जो कि बाहर से निर्धारित होता है। इसका मतलब है कि पूर्ति रेखा का खींचना बेकार या अनावश्यक है। परिणामस्वरूप यह नही बताया जा सकता कि ब्याज दर कैसे निर्धारित होती है।"[19]

(9) कॅंज का सिद्धान्त अनिर्धारणीय (indeterminate) है। क्लासीकल सिद्धान्त तथा उधारदेय कोष सिद्धान्त के सम्बन्ध मे कॅंज ने यह आलोचना की कि ये सिद्धान्त अनिर्धारणीय हैं; यही आलोचना स्वय कॅंज के सिद्धान्त पर लागू होती है।

[कॅंजियन सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य की कुल पूर्ति बाहर से दी हुई होती है, अर्थात मौद्रिक सत्ता (monetary authority) द्वारा निर्धारित की जाती है, इस प्रकार ब्याज-दर का मुख्य निर्धारक (determinant) 'द्रव्य की कुल मांग' (total demand of money) है।[20] द्रव्य की कुल मांग को L द्वारा व्यक्त करते हैं और हम देख चुके हैं कि $L=L_1+L_2$। कुल मांग रेखा (या L-रेखा) आय मे वृद्धि या कमी के साथ दायें या बायें को खिसकेगी, ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कुल माग का L_1 भाग आय के स्तर पर निर्भर करता है। अत. आय के विभिन्न स्तरो के लिए मांग रेखाओ (या L-रेखाओं) की एक शृंखला (series) होगी (देखिए चित्र 8), और तब ब्याज की कोई अकेली एक सतुलन दर नही होगी, बल्कि इस प्रकार की अनेक सतुलन दरें होगी और इनमे से प्रत्येक भिन्न आय के स्तर से सम्बन्धित होगी। अब हम सारी स्थिति को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।]

ब्याज की दर को मालूम करने के लिए हमे कुल मांग रेखा (या L-रेखा) की स्थिति की जानकारी होनी चाहिए; और मांग रेखा की स्थिति को जानने के लिए आय का स्तर मालूम होना चाहिए, तथा आय के स्तर को जानने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए (क्योंकि ब्याज की दर, विनियोग के माध्यम द्वारा, आय के स्तर को प्रभावित करती है।[21]) इस प्रकार स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है। दूसरे शब्दों में—ब्याज की दर को मालूम करने के लिए हमे मांग रेखा मालूम

---

[19] "Hicks exposed the basic weakness of the theory. He stated that instead of using the two limbs of the scissors, viz, demand as opposed to supply, Keynes makes the supply of money an independent variable, externally determined. This means that the drawing of the supply curve is superfluous. Consequently, there is nothing left to indicate what determines the rate of interest."

[20] We are concerned with the total demand of money, i.e. total liquidity preference which includes both the transaction demand and the precautionary demand (L_t) and the speculative demand or asset demand (Ls) "If we separate the total demand schedule for money into its two components, we could perhaps argue that the "pure" liquidity preference schedule (the demand of money to hold as an asset) is independent of the level of income. But this does not help matters, since we cannot know, given the total money supply, how much money will be available *to hold as an asset* unless we first know the level of income and therefore how much the transaction demand for money will be."

[21] The rate of interest influences investment High rate of interest will discourage investment and hence level of income will be low; a low rate of interest will encourage investment and hence level of income will be high Thus, rate of interest, through investment, affects level of income.

होनी चाहिए, और माँग रेखा को मालूम करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए और इस प्रकार हम किसी चीज को मालूम नही कर सकते हैं। स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है; हम एक वृत्ताकार-तर्क (circular reasoning) मे फँस जाते हैं।

ब्याज का उधार-देय कोष सिद्धान्त
(THE LOANABLE FUNDS THEORY OF INTEREST)

अथवा

ब्याज का नया क्लासीकल सिद्धान्त
(NEO-CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

1. प्राक्कथन (Introduction)

ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त ने ब्याज के निर्धारण में 'बचत' (savings) तथा 'विनियोग' (investment) पर ही ध्यान दिया; अर्थात, इस सिद्धान्त ने पूर्ति पक्ष पर 'मितव्ययिता' तथा 'प्रतीक्षा' (thrift and waiting) और माँग पक्ष पर पूंजी की 'उत्पादकता' (productivity) जैसे वास्तविक तत्त्वों (real factors) पर ही ध्यान दिया; तथा मौद्रिक तत्त्वों (monetary factors) को छोड़ दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य केवल विनिमय का एक माध्यम (medium of exchange) है और इसलिए दीर्घकाल में द्रव्य की पूर्ति या माँग मे परिवर्तनों का 'वास्तविक तत्त्वों' पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा; अर्थात ब्याज निर्धारण में, दीर्घकाल मे, वास्तविक तत्त्व ही महत्त्वपूर्ण हैं, मौद्रिक या द्राव्यिक तत्त्वों की ब्याज निर्धारण मे कोई भूमिका (part) नही होती है।

परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं है। व्यावहारिक जीवन में ब्याज निर्धारण के लिए 'मौद्रिक तत्त्व' अथवा 'द्रव्य या मुद्रा' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि—(a) ब्याज द्रव्य के प्रयोग के लिए कीमत है। (b) द्रव्य की पूर्ति बचतों अर्थात ऐच्छिक बचतों (voluntary savings) के अतिरिक्त अन्य स्रोतों (sources) [जैसे, बैंक-साख (bank-credit), विसंचय (dishoarding)] के द्वारा भी होती है। (c) विनियोग के अतिरिक्त द्रव्य की माँग अन्य प्रयोगों के लिए [जैसे, उपभोक्ताओं द्वारा टिकाऊ उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए, द्रव्य को नकद रूप में रखने या संचय (hoard) करने के लिए] भी की जाती है। (d) द्रव्य की पूर्ति में परिवर्तन, कम से कम अल्पकाल में, अवश्य ही ब्याज की दर को प्रभावित करते हैं।

ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त में उपर्युक्त तत्त्वों के छोड़ देने के कारण कुछ अर्थशास्त्रियों ने एक दूसरे सिद्धान्त का निर्माण किया जो कि 'उधार-देय कोष सिद्धान्त' (Loanable Funds Theory) के नाम से विख्यात है। ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त के निर्माता गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal), बेण्ट हेनसन (Bent Hansen), बर्टिल ओहलिन (Bertil Ohlin), ऐरिक लिण्डल (Eric Lindahl) इत्यादि स्वीडेन के अर्थशास्त्री हैं। इंगलैण्ड में इस सिद्धान्त के विकास में प्रो. रोबर्टसन (Robertson) का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

उधार-देय कोष सिद्धान्त, क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, केवल 'वास्तविक तत्त्वों' या 'अमौद्रिक तत्त्वों' (non-monetary factors) को ही शामिल नही करता है, बल्कि यह मौद्रिक तत्त्वों (जैसे, बैंक-साख या बैंक-द्रव्य, संचय, इत्यादि) को भी शामिल करता है; इस दृष्टि से यह क्लासीकल सिद्धान्त के ऊपर सुधार है; इसलिए इस सिद्धान्त को नया-क्लासीकल सिद्धान्त (Neo-Classical Theory) भी कहा जाता है। उधार-देय कोष सिद्धान्त, माँग पक्ष पर 'द्रव्य के संचय' (hoarding of money) को शामिल करके वास्तव में कींज के 'तरलता-पसन्दगी' के विचार को भी शामिल कर

लेता है।[22] दूसरे शब्दों मे, इस सिद्धान्त की विशेषता है कि इसने मौद्रिक तथा अमौद्रिक तत्वो को मिलाकर ब्याज के एक उचित सिद्धान्त को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है; परन्तु इन दोनो प्रकार के तत्वो को मिलाकर, इस सिद्धान्त के निर्माता, एक समन्वित और निर्धारणीय सिद्धान्त (an integrated and determinate theory) के निर्माण मे पूर्ण रूप से सफल नही हो सके।

उधार-देय कोष सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज साख बाजार में 'उधार लिये गये कोषों' (borrowed funds) या 'द्राव्यिक ऋणों' (money loans) या 'उधार-देय कोषों'[23] (loanable funds) के प्रयोग के लिए कीमत है।[24] दूसरे शब्दो मे, ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहा पर कि उधार-देय कोषों की माँग तथा उधार-देय कोषो की पूर्ति बराबर हो या संतुलन में हो।

अब हम 'उधार-देय कोषों की माग' तथा 'उधार-देय कोषो की पूर्ति' के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

2. उधार-देय कोषों की मांग (Demand for Loanable Funds)

उधार-देय कोषों की माँग तीन स्रोतो (sources) से की जाती है—

(i) उत्पादकों, व्यापारियों तथा सरकार द्वारा विनियोग के लिए माँग अर्थात 'विनियोग-माँग' (Investment Demand); इसे I द्वारा बताया जा सकता है।

(ii) उपभोक्ताओ तथा परिवारो द्वारा माँग, इसे 'उपभोक्ता वित्त माँग' (Consumer finance demand) अथवा 'उपभोग माँग (Consumption Demand) कहा जाता है; इसको DS द्वारा बताया जाता है।

(iii) 'संचय करने के लिए माँग' (Demand for Hoarding), इसे H द्वारा बताया जा सकता है।

---

[22] अर्थशास्त्री 'ब्याज के उधार-देय कोष सिद्धान्त' के सम्बन्ध में पूर्णरूप से एकमत नही हैं, उनके दृष्टिकोण में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, 'ब्याज के उधार-देय कोष सिद्धान्त' के विभिन्न रूप (different variants) हैं। यहाँ पर इन विभिन्न रूपो मे से एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक रूप (version) दिया गया है। इस रूप के अन्तर्गत कंज के तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) के विचार को भी शामिल किया गया है।

चूंकि सिद्धान्त के इस रूप मे केंज के तरलता-पसन्दगी के विचार को भी शामिल किया गया है, इसलिए अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'उधार-देय कोष सिद्धान्त' को केंज के 'ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त' के बाद देना पसन्द करते हैं। प्राय. पुस्तको मे 'उधार-देय कोष सिद्धान्त' को पहले और केंज के 'तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त' को बाद मे देते हैं। परन्तु जब उधार-देय कोष सिद्धान्त के आधुनिक रूप में केंज के तरलता-पसन्दगी के विचार को शामिल कर लिया गया है तो उधार देय कोष सिद्धान्त को केंज के सिद्धान्त के बाद देना ही अधिक उचित समझा जाता है जैसा कि अब अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री करते हैं। अत पुस्तक में इन दोनों सिद्धान्तो के क्रम (order) के सम्बन्ध मे विद्यार्थियो को कोई भ्रम (confusion) नही होना चाहिए।

[23] 'उधार देय कोष' के लिए ओहलिन 'साख' (credit) शब्द का तथा हेबरलर (Haberler) 'विनियोजन योग्य कोष' (investible funds) शब्द का प्रयोग करते हैं। ध्यान रहे कि 'उधार देय कोष' उस सब द्रव्य को बताते हैं जिसकी साख-बाजार (credit market) में पूर्ति तथा माँग की जाती है। 'उधार देय कोष की पूर्ति' तथा 'बचत' मे अन्तर है। बचत का एक भाग संग्रहित (hoard) किया जा सकता है और इस सीमा तक साख बाजार मे 'द्रव्य कोषों' (money loans or loanable funds) की पूर्ति कम हो जायेगी; इसी प्रकार भूतकालीन बचतो (past savings) को जब असग्रह (dishoard) किया जाता है तो साख बाजार मे 'द्रव्य कोषो' (money loans) की पूर्ति बढ जाती है। स्पष्ट है कि 'उधार देय कोष' की पूर्ति तथा 'बचत' मे अन्तर है।

[24] According to Loanable Funds Theory, interest is the price paid for the use of 'borrowed funds' or 'money loans' or 'loanable funds' in the credit market.

इन तीनों स्रोतों द्वारा माँग को जोड़ देने से कुल माँग प्राप्त हो जायेगी; यदि उधार-देय कोषों की कुल माँग को D_{LF} द्वारा बताया जाये तो—

$$D_{LF} = I + DS + H$$

अब हम कुल माँग के प्रत्येक भाग की थोड़ी विस्तृत विवेचना करते हैं।

(i) विनियोग-माँग (Investment Demand) अर्थात I—उधार-देय कोषों के माँग पक्ष पर विनियोग-माँग एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। उत्पादक, व्यापारी (तथा सरकार) द्वारा उधार-देय कोषों की माँग विनियोग के लिए की जाती है। विनियोग-माँग के दो अंग हैं—(a) विशुद्ध विनियोग (net-investment) के लिए माँग; इसका अर्थ है नयी पूँजीगत वस्तुओं व यन्त्रों (new capital goods or instruments and machines) के लिए द्रव्य-ऋणों (money-loans) की माँग[25]; (b) वर्तमान पूँजी को प्रतिस्थापित करने या बनाये रखने के लिए द्रव्य-ऋणों की माँग अथवा पुनः विनियोग के लिए द्रव्य-ऋणों की माँग।[26] किसी भी वर्तमान समय में पूँजीगत वस्तुएँ या मशीनें घिसेंगी, कच्चे मालों के एकत्रित स्टाक या इन्वेन्ट्रीज (accumulated inventories of raw materials) कम हो सकती है या समाप्त हो सकती है; इन सबको प्रतिस्थापित करने (replacement) के लिए [अर्थात पुनः विनियोग (re-investment) के लिए] द्रव्य-ऋणों की माँग की जायेगी। इन दोनों प्रकार के विनियोग की माँग के लिए हम 'कुल विनियोग के लिए माँग' (gross investment demand) शब्द का प्रयोग कर सकते हैं।

पूँजीगत यन्त्र या वस्तुएँ उत्पादक होती हैं, इसलिए उनमें से प्रत्येक की सीमान्त उत्पादकता रेखा (marginal productivity curve) खींची जा सकती है। चूँकि उत्पादक या व्यापारी उधार देय कोषों को पूँजीगत वस्तुओं को खरीदने में लगाते हैं, इसलिए उधार देय कोषों की विनियोग-माँग पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है।

अन्य साधनों की तुलना में, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में एक जटिलता (complexity) होती है। एक पूँजीगत वस्तु कई वर्षों तक प्रयोग में लायी जाती है। इसलिए एक उत्पादक या साहसी पूँजीगत वस्तु की उत्पादकता में से उसको चालू रखने की लागत (maintenance and operating cost) को निकालकर 'अनुमानित वास्तविक उत्पादकता या प्रतिफल' (expected net productivity or returns) पर ध्यान केन्द्रित करता है। उत्पादक इस 'अनुमानित वास्तविक प्रतिफल' (expected net returns) को प्रतिशत के रूप में व्यक्त करता है और इसकी ब्याज की दर से तुलना करता है। स्पष्ट है कि एक उत्पादक उधार देय कोषों की उस सीमा तक माँग करेगा जहाँ पर कि पूँजीगत वस्तुओं से 'अनुमानित वास्तविक प्रतिफल' ब्याज की दर के बराबर हो जाता है।

यदि ब्याज की दर नीची है तो व्यापारी या उत्पादक पूँजीगत वस्तुओं में विनियोग के लिए उधार देय कोषों की अधिक माँग करेंगे; इसके विपरीत, ब्याज की दर ऊँची होने पर वे उधार देय कोषों की कम माँग करेंगे; दूसरे शब्दों में, विनियोग-माँग 'ब्याज के प्रति लोचदार' (interest elastic) होती है, उधार देय कोषों की विनियोग-माँग तथा ब्याज की दर में उल्टा (inverse) सम्बन्ध होता है। यदि इस सम्बन्ध को एक रेखा द्वारा दिखायें तो उधार देय कोषों की व्यवसाय के लिए माँग रेखा नीचे को गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होगा, जैसा कि चित्र 9 में रेखा-I द्वारा बताया गया है।

(ii) उपभोग-माँग अथवा उपभोक्ता वित्त-माँग (Consumption Demand or

---

[25] The demand for new capital goods or new machines is derived from "technological changes, the introduction of new consumers' products, the discovery of new natural resources, population growth, and so on."

[26] Money loans may be demanded for financing the replacement or maintenance of existing capital; in other words, money loans may be demanded for 'reinvestment.'

Consumer Finance Demand)—उपभोक्ता द्रव्य-ऋणों की माँग तब करते है जबकि वे टिकाऊ उपभोग वस्तुएं (durable consumer's goods), जैसे स्कूटर, रेडियो, फ्रिज, इत्यादि, खरीदना चाहते हैं। सामान्यतया उपभोक्ता अपनी आय में से इन टिकाऊ उपभोग वस्तुओ को नही खरीद सकते हैं, इसलिए वे द्रव्य-ऋणो (money-loans) की माँग करते है । दूसरे शब्दो मे, उपभोक्ता अपनी आय से अधिक (द्रव्य-ऋणो को उधार लेकर) व्यय करते हैं; इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता टिकाऊ उपभोग वस्तुओ को खरीदने मे 'अबचत' (dis-save) करते हैं; इस प्रकार 'उपभोग माग या उपभोक्ता वित्त माँग' अथवा 'अबचत' एक ही बात है; अतः उपभोग माँग को DS (अर्थात् Dis-saving) द्वारा बताया जाता है ।

उपभोग माँग भी 'ब्याज के प्रति लोचदार' (interest-elastic) होती है; अर्थात् नीची ब्याज दर पर उपभोक्ता द्रव्य-ऋणो या उधार-देय कोषो की अधिक माँग तथा ऊँची ब्याज दर पर कम माँग करते हैं । दूसरे शब्दो मे, 'उपभोग माँग या अबचत' तथा 'ब्याज दर' मे उल्टा सम्बन्ध होता है; अतः उपभोग माँग रेखा या अबचत रेखा नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र 9 में DS-रेखा द्वारा दिखाया गया है ।

(iii) **संग्रह या संचय (hoarding) के लिए माँग**—उधार देय कोषो की माग उन व्यक्तियो द्वारा भी की जाती है जोकि द्रव्य को नकद या तरल रूप (cash or liquid form) मे, अर्थात् 'निष्क्रिय नकद कोषो' (idle cash balances) के रूप मे रखना चाहते हैं । यहाँ पर कीज के तरलता पसन्दगी का विचार शामिल हो जाता है। सचय के लिए भी माँग 'ब्याज के प्रति लोचदार' (interest-elastic) होती है; यदि ब्याज की दर कम है तो लोग उधार देय कोषो को तरल रूप में रखने के लिए अधिक माँग करेंगे ताकि उन्हें भविष्य मे ऊँची ब्याज दर पर उठा सकें; इसके विपरीत यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग उधार देय कोषो को तरल रूप मे रखने के लिए कम माग करेंगे । स्पष्ट है कि ब्याज की दर तथा उधार देय कोषो की सचय के लिए माँग मे उल्टा सम्बन्ध है; इसलिए सचय के लिए माँग रेखा नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र 9 मे H-रेखा द्वारा दिखाया गया है ।[17]

विनियोग-माँग, उपभोग-माँग तथा सचय-माँग, इन सबको जोडकर **उधार-देय कोषो की कुल माँग** (D_{LF}) मालूम हो जाती है [अर्थात् $D_{LF} = I + DS + H$]। चूकि I, DS, तथा H प्रत्येक की माँग रेखा नीचे को गिरती हुई होती है, इसलिए उधार-देय कोषो की 'कुल माँग रेखा' भी नीचे को गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होगा, जैसा कि चित्र 9 में D_{LF} रेखा द्वारा दिखाया गया है ।

3. **उधार-देय कोषों की पूर्ति** (Supply of Loanable Funds)

उधार देय कोषो की पूर्ति चार स्रोतो से की जाती है—

(i) बचतें (Savings); इसको हम S द्वारा बता सकते हैं ।

(ii) बैंक-साख या बैंक-द्रव्य (Bank-credit or Bank-money); इसको हम M_B द्वारा बता सकते हैं।

(iii) पिछली बचतो का विसंचय (Dishoarding of past savings); इसको हम *DH* द्वारा बता सकते हैं ।

---

[17] यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि सचय को पूर्ति की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। जिस सीमा तक उधार देय कोषो की माँग सचय के लिए की जाती है उस सीमा तक उसकी पूर्ति कम हो जाती है; तथा यदि उधार देय कोषो की माँग सचय के लिए बहुत कम है तो उसकी पूर्ति अधिक होगी; या जब सचय किया हुआ द्रव्य विसचय (dishoard) कर दिया जाता है तो उधार देय कोषो की पूर्ति बढ़ जाती है । अतः 'सचय' अर्थात् 'विसचय' को पूर्ति पक्ष मे शामिल किया जाता है ।

(iv) अविनियोग (Disinvestment); इसको हम DI द्वारा बता सकते हैं ।

इन चारों स्रोतों से उधार देय कोषों की पूर्ति को जोड़ देने से 'उधार देय कोषों की कुल पूर्ति' (जिसे S_{LF} द्वारा बताया जा सकता है) प्राप्त हो जाती है; अर्थात्,

$$S_{LF} = S + M_B + DH + DI$$

अब हम 'उधार देय कोषों की कुल पूर्ति' के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवेचन करते हैं ।

(i) **बचतें (Savings) अर्थात् S** : उधार देय कोषों की पूर्ति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन 'बचतें' हैं; ये बचतें व्यक्तियों तथा व्यावसायिक फर्मों द्वारा की जाती है।

बचत के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण हैं; उधार देय कोष सिद्धान्त में इन दोनों दृष्टिकोणों में से किसी को भी अपनाया जा सकता है, दो दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं:

(1) **स्वीडिश (Swedish) अर्थशास्त्री बचतों को 'अनुमानित बचत'** (*ex-ante* savings) **या 'वास्तविक बचत'** (*ex-post* savings) **के अर्थ में लेते हैं।** 'अनुमानित बचतें' वे बचतें हैं जिनका कि व्यक्ति एक समय के शुरू में अनुमान लगाते है, ऐसा वे अपनी प्रत्याशित आय (expected income) तथा अपने प्रत्याशित व्यय (expected expenditure) को ध्यान में रखते हुए करते है । 'वास्तविक बचतें' (*ex-post* savings) वे बचते हैं जो कि वास्तव में प्राप्त हो पाती हैं, ये बचतें वास्तविक आय (actual income), कीमत-स्तर, इत्यादि पर निर्भर करती हैं । प्राय: 'वास्तविक बचतों' (*ex-post* savings) तथा 'अनुमानित बचतों' (*ex-ante* savings) में अन्तर रहता है, और ऐसा होना स्वाभाविक है ।

(2) **दूसरा दृष्टिकोण अंगरेज अर्थशास्त्री रोबर्टसन (Robertson) का है जो कि बचतों के सम्बन्ध में 'समय-विलम्ब' (time-lag) का प्रयोग करते हैं** । रोबर्टसन के अनुसार लोग अपनी वर्तमान आय में से बचत नही करते बल्कि 'इस्तेमाल-योग्य आय' (disposable income) में से बचत करते हैं; पिछले समय की आय वर्तमान मे 'इस्तेमाल-योग्य' हो जाती है (past income becomes disposable in the present), जिसमे से बचत हो पाती है, क्योंकि वर्तमान मे किये गये प्रयत्नों की आय वर्तमान में ही प्राप्त नहीं होती बल्कि कुछ समय बाद (जैसे एक-दो दिन बाद, एक हफ्ते या एक महीने बाद) प्राप्त होती हैं । इस दृष्टिकोण के अनुसार, **बचत (S) = [पिछले समय की आय (Y_{t-1}) – वर्तमान समय में उपभोग पर व्यय (C_t)]** ।[28]

उधार देय कोष सिद्धान्त में बचत के इन दोनों दृष्टिकोणों में से किसी को भी अपनाया जा सकता है । व्यक्तियों की बचत मुख्यतया आय के स्तर पर निर्भर करती है, परन्तु यहाँ पर यह मान लिया जाता है कि आय या आय का स्तर दिया हुआ है। बचत के सम्बन्ध में चाहे किसी भी दृष्टिकोण को अपनाया जावे, मुख्य बात यह है कि बचत 'ब्याज-के-प्रति-लोचदार' (interest-elastic) होती है; इसका अभिप्राय है कि यदि आय को दिया हुआ मान लिया जाये तो, ब्याज की ऊँची दर पर लोग अधिक बचत तथा नीची दर पर कम बचत करेंगे; इस प्रकार व्यक्तिगत बचतों तथा ब्याज की दर मे सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है।

व्यक्तियों की भाँति व्यावसायिक फर्में भी बचत करती हैं। अच्छे समयों में फर्मों की आय बहुत अधिक होती है जबकि वे इसमें से बहुत कम लाभांश के रूप में भुगतान करती हैं; इस प्रकार वे बचतें एकत्रित करती हैं। यदि ब्याज की दर ऊँची होगी तो फर्में अधिक बचत करेंगी ताकि उन्हें बाजार में ऊँची दर पर कम उधार लेना पड़े, ब्याज की दर नीची होने पर वे कम बचत कर सकती हैं

---

[28] C_t वर्तमान समय, माना t समय मे, उपभोग-व्यय को बताता है, जबकि $t-1$ पिछले समय को बताता है, Y आय को बताता है; पिछले समय की आय को Y_{t-1} द्वारा बताया जाता है; माना S बचत को बताता है । अत: हम लिख सकते हैं $S = Y_{t-1} - C_t$; इस प्रकार 'समय-विलम्ब' (time-lag) की बात आ जाती है ।

क्योंकि नीची ब्याज की दर पर बाजार से उधार ले सकती है। स्पष्ट है कि व्यावसायिक बचतों तथा ब्याज की दर मे सीधा सम्बन्ध है; अर्थात् व्यावसायिक बचतो की पूर्ति-रेखा ऊपर को चढती हुई होगी।

सैद्धान्तिक रूप मे ये व्यावसायिक बचतें उधार देय कोष की पूर्ति का एक भाग होती हैं। परन्तु व्यवहार मे ये बचतें स्वय फर्मों द्वारा ही विनियोग के लिए मागी जाती हैं और इसलिए ये बचतें (पूर्ति पक्ष या माँग पक्ष किसी भी ओर से) प्राय. बाजार मे प्रवेश नही करती। परन्तु व्यावसायिक फर्मों की बचतें, साख बाजार में उधार दिये जाने वाले कोषों के स्थान पर प्रयोग की जाती है और इस प्रकार ये बचतें ब्याज की दर को अवश्य प्रभावित करती हैं।

बचत तथा ब्याज की दर मे सीधा सम्बन्ध होने के कारण बचत रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र 9 मे S-रेखा बताती है।

(ii) **बैंक-साख या बैंक-द्रव्य** (Bank Credit or Bank Money) अर्थात् B_M—बैंक साख का निर्माण करके तथा उधार देकर उधार देय-कोषो की पूर्ति को बढाते हैं तथा साख का संकुचन (contraction) करके उधार देय-कोषो की पूर्ति को कम करते हैं। बैंको द्वारा दिये गये द्रव्य-ऋणों (money-loans) की पूर्ति भी एक सीमा तक ब्याज-के-प्रति-लोचदार होती है; अर्थात् ऊँची ब्याज दर पर बैंक अधिक द्रव्य उधार देंगे तथा नीची ब्याज दर पर कम द्रव्य उधार देंगे। इस प्रकार बैंक-द्रव्य तथा ब्याज की दर मे सीधा सम्बन्ध होता है; इसलिए बैंक-द्रव्य की पूर्ति रेखा ऊपर को चढती हुई होती है जैसा कि चित्र 9 मे M_B रेखा बताती है।

(iii) **पिछली बचतों का विसचय** (Dishoarding of past savings) अर्थात DH—पिछली संचय की हुई द्राव्यिक बचतो का जब व्यक्ति विसचय करते हैं तो उधार देय कोषो की पूर्ति बढ जाती है। ब्याज की दर ऊँची हो जाने पर लोग पिछली बचतो का विसचय करके उधार देय कोषो की पूर्ति मे वृद्धि कर देंगे। (ब्याज की दर नीची होने पर वे कुछ द्रव्य का संचय कर सकते हैं और इस सीमा तक उधार देय कोषो की पूर्ति मे कमी हो सकती है।) 'ब्याज दर' तथा 'विसचय' मे सीधा सम्बन्ध होने के कारण विसचय की पूर्ति रेखा ऊपर को चढती हुई होगी जैसा कि चित्र 9 मे DH–रेखा बताती है।

(iv) **अविनियोग** (Disinvestment) अर्थात् DI—सरचनात्मक परिवर्तनो (structural changes) या अधिक हानि के कारण वर्तमान मशीनो तथा यन्त्रो को घिसने दिया जाता है परन्तु घिसाई व्यय (depreciation charges) के रूप मे कोई कोष इकट्ठा नही किया जाता और इस प्रकार उन मशीनो तथा यन्त्रो का प्रतिस्थापन सम्भव नही होता, तो इसे 'अविनियोग' कहते हैं। इस प्रकार यह विनियोग का उलटा होता है।

अविनियोग के परिणामस्वरूप फर्म की उत्पादित वस्तु को बेचने से प्राप्त आगम (revenue) मे से जो भाग घिसाई कोष (depreciation fund) मे जाता (अर्थात् पुरानी तथा घिसी हुई मशीनो और यन्त्रो को नयी मशीनो और यन्त्रो से प्रतिस्थापित करने मे जाता), वह साख बाजार (credit market) मे जाता है तथा उधार देय कोषो की पूर्ति मे वृद्धि करता है। यदि ब्याज दर ऊँची है तो यह सम्भव है कि वर्तमान पूजी का कुछ भाग इस ऊँची ब्याज दर के बराबर सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue product) न दे सके। ऐसी स्थिति मे फर्म पूजी के कुछ भाग को बिना प्रतिस्थापित (replacement) किये घिस जाने देगी और इस प्रकार घिसाई कोष मे जाने वाला द्रव्य बाजार मे जायेगा तथा उधार देय कोषो की पूर्ति को बढ़ायेगा। अत: ब्याज की ऊची दर पर अविनियोग अधिक होगा तथा नीची दर पर अविनियोग कम होगा। दूसरे शब्दो मे, 'अविनियोग' तथा 'ब्याज की दर' में सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् 'अविनियोग' के परिणामस्वरूप उधार देय कोषो की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र 9 मे DI रेखा बताती है।

बचतें, बैंक साख, विसचय तथा अविनियोग—इन सब स्रोतो से उधार देय कोषो की पूर्तियो को जोड़ने से कुल पूर्ति रेखा प्राप्त हो जायेगी। चूकि विभिन्न स्रोतो (sources) से प्राप्त उधार देय

कोषों की पूर्ति तथा ब्याज की दर में सीधा सम्बन्ध होता है इसलिए उधार देय कोषों की कुल पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र 9 में S_{LF} रेखा बताती है।

4. ब्याज निर्धारण (Determination of Interest)

ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहां पर कि उधारदेय कोषों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति दोनों बराबर हो जाती है। चित्र 9 से स्पष्ट है कि D_{LF} तथा S_{LF} रेखाएं बिन्दु P पर काटती हैं; इसलिए ब्याज की दर PQ अथवा R होगी क्योंकि इस ब्याज-दर पर उधारदेय कोषों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति दोनो OQ के बराबर हैं। किसी भी अन्य ब्याज की दर पर या तो $D_{LF} > S_{LF}$ या $S_{LF} > D_{LF}$; दोनो ही स्थितियो में ब्याज की दर मे परिवर्तन होगा और अन्त में ब्याज की दर PQ या R के बराबर स्थापित हो जायेगी क्योंकि इस दर पर $D_{LF} = S_{LF}$।
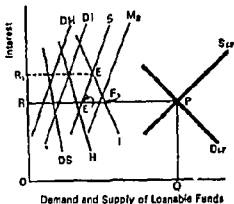
चित्र 9

ब्याज निर्धारण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें स्थिति को और अधिक स्पष्ट करती हैं :

(i) चित्र 9 की सहायता से ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त तथा उधार-देय कोष सिद्धान्त में अन्तर स्पष्ट हो जाता है। क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर बचत (अर्थात S-रेखा) तथा विनियोग (अर्थात I-रेखा) के कटाव (intersection) द्वारा निर्धारित होगी, चित्र मे ब्याज की यह दर R_1 होगी। उधार-देय कोष सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर D_{LF} तथा S_{LF} के कटाव द्वारा निर्धारित होगी और यह ब्याज की दर R होगी। क्लासीकल सिद्धान्त द्वारा निर्धारित ब्याज दर (R_1) की तुलना में उधार-देय कोष सिद्धान्त द्वारा निर्धारित ब्याज की दर (R) भिन्न होगी; चित्र मे R कम या नीची है R_1 से। उधार-देय कोष सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि द्रव्य (money) एक निष्क्रिय या तटस्थ पार्ट (a passive or neutral role) अदा नही करता, बल्कि पूर्ति पक्ष पर द्रव्य (अर्थात् M_B तथा DH) को शामिल करने के कारण उधार-देय कोष सिद्धान्त द्वारा निर्धारित ब्याज-दर R नीची हो जाती है क्लासीकल सिद्धान्त की ब्याज दर R_1 की तुलना में।

(ii) विकसेल (Wicksell) द्वारा दिये गये विचार 'ब्याज की स्वाभाविक दर' (natural rate of interest) तथा 'ब्याज की बाजार दर' (market rate of interest) में अन्तर भी चित्र 9 से स्पष्ट होता है। 'ब्याज की स्वाभाविक दर' R_1 है क्योंकि इस दर पर $S = I$ (वास्तविक शब्दों मे in real terms); जबकि 'ब्याज की बाजार दर' R है, इस दर पर $D_{LF} = S_{LF}$ (द्रव्य के शब्दों में in money terms)।

(iii) यह ध्यान देने की बात है कि संतुलन ब्याज दर R (जिस पर कि $D_{LF} = S_{LF}$) का एक स्थायी संतुलन ब्याज दर (a stable equilibrium interest rate) होना जरूरी नहीं है। चित्र मे ब्याज दर R पर विनियोग (I) = RF, तथा बचत (S) = RE, स्पष्ट है कि I अधिक है S से; I के S से अधिक होने के परिणामस्वरूप आय बढ़ेगी; आय मे वृद्धि बचत (S) मे वृद्धि होगी, इसके कारण S-रेखा दायें को खिसकेगी; परिणामस्वरूप उधार-देय कोषों की कुल पूर्ति रेखा S_{LF} भी दायें को खिसकेगी और इसलिए ब्याज की दर मे परिवर्तन होगा। इस I तथा S में असमानता या असंतुलन

(inequality or disequilibrium) होने के कारण ब्याज की दर में परिवर्तन होगा; संतुलन ब्याज दर के स्थायित्व (stability) के लिए न केवल D_{LS} और S_{LF} बराबर होनी चाहिए बल्कि I तथा S भी बराबर होने चाहिए।

(iv) **उधार-देय कोष सिद्धान्त के सार (essence) को विशुद्ध बचत (net S), विशुद्ध विनियोग (net I), विशुद्ध संचय (net H) तथा बैंक-द्रव्य (M_B) के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है।** इस सिद्धान्त मे पूर्ति तथा माँग पक्ष पर विरोधी शक्तियाँ (opposite forces) कार्य करती हैं; जैसे पूर्ति पक्ष पर बचतें (S) तथा माँग पक्ष पर अबचतें (DS); पूर्ति पक्ष पर विसचय (DH) तथा माँग पक्ष पर सचय (H); माँग पक्ष पर विनियोग (I) तथा पूर्ति पक्ष पर अविनियोग (DI)। अतः बचतें (S) − अबचतें (DS) = विशुद्ध बचतें (Net S), सचय (H) − विसचय (DH) = विशुद्ध सचय (net H), विनियोग (I) − अविनियोग (DI) = विशुद्ध विनियोग (net I)। संतुलन ब्याज दर के लिए—

उधार-देय कोषों की पूर्ति = उधार-देय कोषो की माँग

अथवा $S + M_B + DH + DI = I + DS + H$

अथवा $(S - DS) + M_B = (I - DI) + (H - DH)$

[DS को बायें तरफ और DI व DH को दायें तरफ ले जाने से]

अथवा Net Saving $+ M_B$ = Net Investment + Net Hoarding

अथवा Net $S + M_B$ = Net I + Net H

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संतुलन ब्याज की दर उस स्थान पर निर्धारित होगी जहाँ पर कि 'विशुद्ध बचत तथा बैंक-द्रव्य' बराबर होता है 'विशुद्ध विनियोग और विशुद्ध संचय' के।

5. आलोचना (Criticism)

उधार देय कोष सिद्धान्त, कई दृष्टियो से, क्लासीकल सिद्धान्त पर सुधार है। यह सिद्धान्त पूर्ति पक्ष पर केवल बचतो को ही नही बल्कि विसचय (dishoarding), बैंक साख तथा अविनियोग (disinvestment) को भी शामिल करता है। इसी प्रकार माँग पक्ष पर यह सिद्धान्त केवल व्यापारियो या उत्पादको की माँग को ही नही बल्कि उपभोक्ताओ (तथा सरकार) द्वारा माँग और द्रव्य को सचय (hoard) करने की माँग को भी शामिल करता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त, क्लासीकल सिद्धान्त की अपेक्षा, अधिक विस्तृत (comprehensive) है।

सक्षेप मे, उधार-देय कोष सिद्धान्त मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनो प्रकार के तत्त्वो को शामिल करता है जबकि क्लासीकल सिद्धान्त केवल अमौद्रिक तत्त्वों (अर्थात वास्तविक तत्त्वो) को शामिल करता है।

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **कींज के अनुयायियों (Keynesians) के अनुसार उधार-देय कोष सिद्धान्त में 'संचय के विचार' (the concept of hoarding) का प्रयोग गलत है।** "जब तक द्रव्य की मात्रा स्थिर रहती है तब तक 'संचय' को घटाया या बढ़ाया नही जा सकता। यदि यह सच है कि द्रव्य किसी न किसी के पास नकद-कोष (cash balance) के रूप मे रहेगा, तो एक दिये हुए समय के शुरू तथा अन्त में नकद-कोष की मात्रा मे अन्तर पाया जाना असम्भव है; और एक व्यक्ति के संचय करने की प्रवृत्ति दूसरे व्यक्ति के विसचय करने की प्रवृत्ति से नष्ट (offset) हो जायगी।"[29]

[29] "Hoarding simply cannot increase or decrease as long as the amount of money remains the same. If it is true that money always has to be in somebody's cash balance, then *(Contd.)*

परन्तु हाम (Halm) के अनुसार यह आलोचना उचित नहीं है। द्रव्य की प्रभावपूर्ण पूर्ति (effective supply of money) केवल द्रव्य की मात्रा पर ही नहीं बल्कि द्रव्य के परिचलन (circulation) पर भी निर्भर करती है; 'द्रव्य के परिचलन' में परिवर्तन द्रव्य की प्रभावपूर्ण पूर्ति में परिवर्तन करता है, चाहे द्रव्य की मात्रा स्थिर या समान रहे। "एक समय अवधि के शुरू मे तथा अन्त में द्रव्य की कुल मात्रा समान हो सकती है, परन्तु द्रव्य के परिचलन के वेग (velocity) में परिवर्तन हो सकता है। द्रव्य के परिचलन के वेग मे परिवर्तन आंशिक रूप से संचय तथा विसंचय के कारण उत्पन्न होता है।"[30]

(ii) यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता (unrealistic assumption) पर आधारित है; व्यावहारिक जगत मे पूर्ण रोजगार प्राय नही पाया जाता है।

(iii) यह सिद्धान्त भी, क्लासीकल सिद्धान्त की भांति, **'आय के स्तर' को स्थिर मान लेता है जो कि ठीक नहीं है।** [वास्तव मे यह मान्यता पूर्ण रोजगार की मान्यता का परिणाम है।]

यह सिद्धान्त, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए यह बताता है कि बचत, ब्याज की दर पर निर्भर करती है और ब्याज की दर मे परिवर्तनो द्वारा ही 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी (equality) स्थापित होती है।

परन्तु उपर्युक्त धारणा सही नही है। केंज (Keynes) के अनुसार, **बचत ब्याज की दर पर नहीं, बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करती है और आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा 'बचत' तथा विनियोग' में बराबरी स्थापित होती है।**

(iv) **यह सिद्धान्त भी क्लासीकल सिद्धान्त की भांति आय पर विनियोग** (investment) **के प्रभाव की उपेक्षा** (ignore) **करता है।** इस सिद्धान्त के अनुसार, ऊँची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे, परन्तु यह सदैव सही नही होगा। यह बात स्पष्ट हो जायेगी यदि हम आय पर विनियोग के प्रभाव को ध्यान मे रखें जोकि नीचे दिखाया गया है :

High Rate of Interest ——→ Less Investment ——→ Less Employment and Less Income ——→ Less Saving

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि ऊँची ब्याज की दर पर समाज कम बचत कर पाता है, न कि अधिक बचत, जैसा कि यह सिद्धान्त बताता है।

(v) **इस सिद्धान्त के अनुसार भी, क्लासीकल सिद्धान्त की भांति, ब्याज की दर अनिर्धारणीय** (indeterminate) **है।** इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर उधार देय कोषो की मांग तथा उनकी पूर्ति के अनुसार निर्धारित होती है। उधार देय कोषो की पूर्ति में बचत, बैंक-साख तथा विसंचय शामिल होते है, इसमे बचत का भाग आय के स्तर पर निर्भर करता है। अत: ब्याज की दर मालूम करने के लिए हमें बचतों को मालूम करना चाहिए, परन्तु बचतों को ज्ञात करने के लिए हमे ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए क्योंकि ब्याज की दर विनियोग तथा आय के स्तर को प्रभावित करके बचत को प्रभावित करती है।

---

it is impossible that the total amount of cash balances in the begining and at the end of the period under consideration can differ, and the tendency of one person to hoard must of necessity be offset by somebody else's dishoarding."

[30] "The total quantity of money may well be the same as in begining and at the end of the period, but the velocity of circulation of money may nevertheless have changed. And it is this change in the velocity of circulation of money which is partly caused by hoarding and dishoarding."

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ब्याज की दर ज्ञात करने के लिए हमें बचतें मालूम होनी चाहिए और बचत मालूम करने के लिए ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए, अतः स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है, अर्थात् ब्याज का निर्धारण नहीं हो सकता है। दूसरे शब्दो मे, यह सिद्धान्त हमें वृत्ताकार तर्क (circular reasoning) मे डाल देता है; यह बात निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट हो जायगी :

Savings ⟶ Rate of Interest ↓ Investment ⟶ Level of Income ⟶ ↑ Savings
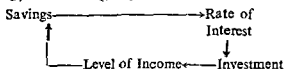
6. निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उधार-देय कोष सिद्धान्त ब्याज को निर्धारित नही कर सकता है दूसरे शब्दो मे, उधार देय कोष सिद्धान्त मौद्रिक तथा अमौद्रिक तत्त्वो को एक विस्तृत तथा उचित (comprehensive and proper) तरीके से समन्वित (integrate) नही कर सका।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों, हिक्स (Hicks), हेन्सन (Hansen) इत्यादि के अनुसार ब्याज का एक उचित निर्धारणीय सिद्धान्त (determinate theory) बनाया जा सकता है यदि केज तथा क्लासीकल सिद्धान्तो का समन्वय (synthesis) कर दिया जाय। क्लासीकल सिद्धान्त तथा केंज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त के समन्वय करने से हमे चार तत्त्व प्राप्त होते हैं—(1) विनियोग माँग रेखा (investment demand curve), (2) बचत रेखा (saving curve), (3) तरलता-पसन्दगी रेखा (liquidity preference curve), तथा (4) द्रव्य की मात्रा (quantity of money); इनके अतिरिक्त 'आय के स्तर' को और शामिल किया जाता है। अतः 'ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त' के अनुसार ब्याज उपर्युक्त चारो तत्त्वो अर्थात् विनियोग, बचत, तरलता-पसन्दगी तथा द्रव्य की मात्रा द्वारा 'आय के एक स्तर' के सदर्भ मे, निर्धारित होती है।

तरलता पसन्दगी सिद्धान्त तथा उधारदेय कोष सिद्धान्त की तुलना
(COMPARISON BETWEEN LIQUIDITY PREFERENCE THEORY AND LOANABLE FUNDS THEORY)

इस सम्बन्ध मे कि तरलता पसन्दगी सिद्धान्त तथा उधारदेय कोष सिद्धान्त मे से कौन-सा श्रेष्ठ है पर्याप्त मतभेद रहा है। हिक्स, लार्नर, और फैलनर व सोमर्स (Hicks, Lerner and Fellner and Somers) ने दोनो सिद्धान्तो मे सामजस्य स्थापित (reconcile) करने के प्रयत्न किये, परन्तु ये प्रयत्न अधिक सफल नही हो सके। दोनो सिद्धान्त अपर्याप्त तथा अनिर्धारणीय हैं।

दोनो सिद्धान्तो के सापेक्षिक गुण व दोष तथा उनमे अन्तर निम्नलिखित हैं—

(1) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि तरलता पसन्दगी सिद्धान्त **'द्रव्य स्टाकों'** (*money stocks*) तथा इन स्टाको के प्रति दृष्टिकोणो की विवेचना करता है; जबकि उधारदेय कोष सिद्धान्त **'द्रव्य प्रवाहो'** (*money flows*) के शब्दो मे व्यक्त किया जाता है।[31]

(2) उधार देय कोष सिद्धान्त वास्तविक तत्त्वो, जैसे विनियोग (अर्थात् पूजी की उत्पादकता) तथा बचत (अर्थात् किफायत) को शामिल करता है तथा साथ ही साथ मौद्रिक तत्त्वो, जैसे द्रव्य के सचय (hoarding) के लिए माँग (जो कि लगभग तरलता पसन्दगी के विचार को बताती है) तथा द्रव्य की पूर्ति, अर्थात् बैंक साख या बैंक द्रव्य, को भी शामिल करता है। इस प्रकार उधार-देय कोष सिद्धान्त वास्तविक तथा मौद्रिक दोनों प्रकार के तत्त्वों को शामिल करता है। उधार-देय कोष सिद्धान्त

---

[31] A very significant difference between the two is that liquidity preference theory deals with *money stocks* and attitudes towards these stocks, whereas the loanable funds theory is expressed in terms of *money flows*.

के अनुसार ब्याज उधार-देय कोषों की माँग तथा उनकी पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है।

तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य की माँग (अर्थात् द्रव्य को तरल रूप में रखने की माँग) तथा द्रव्य की पूर्ति (अर्थात् किसी समय विशेष पर मौद्रिक सत्ता द्वारा निर्धारित द्रव्य की पूर्ति) द्वारा ब्याज दर का निर्धारण होता है। इस प्रकार से **तरलता पसन्दगी सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्त्वों को शामिल करता है।**

परन्तु विनियोग के लिए माँग (जो कि एक वास्तविक तत्त्व है) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त में छिपा हुआ (hidden) प्रतीत होता है। विनियोग में परिवर्तन आय में परिवर्तन को उत्पन्न करते हैं और आय में परिवर्तन द्रव्य की माँग को प्रभावित करके ब्याज की दर को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार तरलता पसन्दगी सिद्धान्त मे विनियोग की माँग अप्रत्यक्ष रूप से या छिपे रूप में मौजूद हैं।

(3) **दोनों सिद्धान्तों में एक मुख्य अन्तर बचत की विवेचना (treatment of saving) के सम्बन्ध में है।** उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार बचत निर्भर करती है ब्याज दर पर, अथवा गणित की भाषा मे यह कहिए कि **'बचत फंक्शन (function) होती है ब्याज दर की'।** परन्तु तरलता पसन्दगी सिद्धान्त ऐसा नही मानता, इस सिद्धान्त के अनुसार बचत निर्भर करती है आय पर या **'बचत आय का फंक्शन' होती है।**

दोनो सिद्धान्तो मे बचत की विवेचना के सम्बन्ध मे अन्तर का **मुख्य अभिप्राय (implication)** निम्नलिखित है। तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के अनुसार बचत ब्याज का फंक्शन नहीं है; इसका अभिप्राय है कि ब्याज दर केवल यह निर्धारित करती है कि बचत के दिये हुए स्टाक या एक स्थिर मात्रा में से कितना हिस्सा बौडो (अर्थात अतरल सम्पत्ति non-liquid assets) के खरीदने में लगाया जाये और कितना हिस्सा तरल रूप में (या नकद रूप में) रखने के लिए प्रयोग किया जाये। दूसरे शब्दों में, **तरलता पसन्दगी सिद्धान्त में ब्याज दर दी हुई बचतों या स्थिर बचतों का बौंडों तथा तरल द्रव्य में वितरण निर्धारित करती है** (In the liquidity preference theory rate of interest determines the allocation of fixed saving between bonds and liquid cash)।

इसके विपरीत, **उधारदेय कोष सिद्धान्त यह मानता है कि ब्याज दर वास्तविक आय का उपभोग व बचत में वितरण निर्धारित करती है** (The loanable funds theory assumes that the interest rate determines the division or allocation of real income between consumption and saving)। इस प्रकार उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार बचतो की कोई एक दी हुई मात्रा नही होती है जिसको कि तरल द्रव्य तथा बौंडो में वितरित किया जाये, इस सिद्धान्त के अनुसार बचत की मात्रा ब्याज दर में परिवर्तन के साथ बदलती है।

(4) **तरलता पसन्दगी सिद्धान्त ब्याज दर निर्धारण का एक अल्पकालीन विश्लेषण** (short period analysis) प्रस्तुत करता है; यह सिद्धान्त एक समय विशेष पर द्रव्य की पूर्ति को स्थिर या दिया हुआ मान लेता है। अतः यह कहा जाता है कि यह सिद्धान्त **स्थैतिक** (static) है।

इसके विपरीत **उधार देय कोष सिद्धान्त ब्याज दर निर्धारण का एक दीर्घकालीन विश्लेषण** (long period analysis) प्रस्तुत करता है; यह सिद्धान्त उधार देय कोषों की पूर्ति को दिया हुआ या स्थिर नही मानता है। अतः यह कहा जाता है कि यह सिद्धान्त **प्रावैगिक** (dynamic) है।

(5) **केंज का ब्याज का सिद्धान्त 'उत्पादन, आय व रोजगार' के सामान्य सिद्धान्त का एक समन्वित अंग** (integrated part) है। केंज के सिद्धान्त मे, द्रव्य की पूर्ति (जो कि किसी समय विशेष पर देश की मौद्रिक सत्ता द्वारा निर्धारित होती है) ब्याज की दर को प्रभावित कर सकती है; ब्याज की दर विनिमय के माध्यम द्वारा, द्रव्य की कुल माँग को प्रभावित कर सकती है और इस प्रकार 'उत्पादन, आय व रोजगार' को निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में, केंजियन विश्लेषण में, 'द्रव्य व ब्याज का सिद्धान्त' 'उत्पादन, आय व रोजगार के सिद्धान्त' से पृथक नही किया जा सकता है। इस प्रकार केंज का ब्याज-सिद्धान्त रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का एक समन्वित अंग

(integrated part) है। इसके विपरीत, उधार देय कोष सिद्धान्त रोजगार के सामान्य ढाँचे (a general framework of the theory of employment) का एक अंग नहीं है।

(6) दोनों सिद्धान्त अनिर्धारणीय हैं। उधार देय कोष सिद्धान्त मौद्रिक तथा अमौद्रिक तत्त्वों को मिलाने का प्रयत्न करता है; परन्तु उचित तथा विस्तृत रूप से ऐसा करने मे यह सिद्धान्त असफल रहता है और ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता है।

ब्याज के निर्धारण में कैंज का सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्त्वों (तरलता पसन्दगी तथा द्रव्य की पूर्ति) का प्रयोग करता है। यद्यपि कैंज का सामान्य विश्लेषण बचत तथा विनियोग के विचारो को शामिल करता है परन्तु कैंज ने इनको अपने ब्याज के सिद्धान्त मे शामिल नहीं किया; उनका ब्याज का सिद्धान्त भी अनिर्धारणीय है।

हिक्स तथा हेनसन (Hicks and Hansen) ने एक निर्धारणीय ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर, आय के स्तर के साथ, चार तत्त्वों द्वारा निर्धारित होती है: (i) तरलता पसन्दगी, (ii) द्रव्य की मात्रा, (iii) बचत, तथा (iv) विनियोग। यद्यपि ये सब तत्त्व कैंज के सामान्य विश्लेषण मे पाये जाते हैं, परन्तु कैंज ब्याज के एक निर्धारणीय सिद्धान्त को प्रस्तुत करने मे असफल रहे।

ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF INTEREST)

अथवा

ब्याज का नया-कैंजियन सिद्धान्त
(NEO-KEYNESIAN THEORY OF INTEREST)

1. प्राक्कथन (Introduction)

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त, उधार देय कोष सिद्धान्त, तथा कैंज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त—ये सब सिद्धान्त अनिर्धारणीय (indeterminate) हैं, अर्थात इनकी सहायता से ब्याज-दर निर्धारित नहीं की जा सकती है। क्लासीकल सिद्धान्त ने केवल अमौद्रिक तत्त्वो (non-monetary factors) अथवा वास्तविक तत्त्वों (real factors), जैसे विनियोग (या उत्पादकता) तथा बचत (या किफायत) पर ही ध्यान दिया। उधार देय कोष सिद्धान्त ने अमौद्रिक तथा मौद्रिक दोनों प्रकार के तत्त्वों को शामिल किया; परन्तु यह सिद्धान्त इन तत्त्वो को उचित व व्यापक रूप से मिलाकर ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त बनाने मे असफल रहा। कैंज का सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्त्वों, जैसे द्रव्य की माँग (अर्थात तरलता पसन्दगी) और द्रव्य की पूर्ति या मात्रा, पर ही ध्यान देता है।

जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) ने बताया कि क्लासीकल सिद्धान्त ब्याज की दर नहीं देता बल्कि विनियोग तथा बचत मे बराबरी (equality) को बताता है; अर्थात यह 'वस्तु-बाजार मे संतुलन' (*equilibrium in the goods market*) को बताता है। कैंज का सिद्धान्त ब्याज की दर नहीं देता है बल्कि द्रव्य की माँग तथा द्रव्य की पूर्ति मे बराबरी बताता है; अर्थात यह 'द्रव्य बाजार में संतुलन' (*equilibrium in the money market*) को बताता है।

जे आर. हिक्स (तथा हेनसन) ने एक शानदार तरीके से (elegantly) क्लासीकल तथा कैंजियन सिद्धान्तो को समन्वित (synthesize) करके ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया। हिक्स ने बताया—

(i) 'ब्याज की दर' तथा 'आय का स्तर' एक दूसरे के साथ बँधे हुए हैं; अर्थात ब्याज की दर का निर्धारण, बिना साथ-साथ आय के स्तर के निर्धारण के, सम्भव नहीं है।[33]

[33] Rate of interest and level of income are tied together, that is, it is not possible to determine the rate of interest without simultaneously determining level of income.

(ii) हिक्स का सिद्धान्त या माडल अर्थव्यवस्था को दो सामान्य क्षेत्रों (two general sectors)—'वस्तु-बाजार' तथा 'द्रव्य-बाजार'—में विभाजित करता है; हिक्स ने इन दोनों बाजारों के बीच निकट का सम्बन्ध बताया है। हिक्सियन सिद्धान्त या माडल बताता है कि 'ब्याज व आय' के निर्धारण के लिए वस्तु-बाजार में संतुलन (अर्थात $I = S$)[33] स्थापित होना चाहिए और साथ ही साथ द्रव्य-बाजार में संतुलन (अर्थात $L = M$)[34] भी स्थापित होना चाहिए। अतः हिक्सियन सिद्धान्त या माडल 'कुल अर्थव्यवस्था का एक सामान्य संतुलन माडल' (a 'general equilibrium model of the aggregate economy') प्रस्तुत करता है।

अब हम संक्षेप में इस बात को बताते है किस प्रकार द्रव्य-बाजार तथा वस्तु बाजार एक दूसरे से निकट रूप में सम्बन्धित हैं; तथा 'ब्याज की दर' और 'आय का स्तर' किस प्रकार एक दूसरे से बँधे हुए है। इन बातों का विवरण नीचे दिया गया है।

हम यह मान कर चलते है कि अर्थव्यवस्था मे ब्याज की दर एक परिवर्तनशील तत्त्व (variable factor) है। हम 'वस्तु-बाजार' को लेते है। माना कि विनियोग में वृद्धि की जाती है, इसके परिणामस्वरूप आय के स्तर मे वृद्धि होगी जो कि बराबर होगी 'विनियोग में प्रारम्भिक वृद्धि × गुणक' (initial increase in investment × multiplier)। विनियोग में वृद्धि, आय में वृद्धि करके ब्याज दर मे भी वृद्धि करेगा, ब्याज दर मे वृद्धि के कारण विनियोग में कमी होगी और इसलिए आय मे वास्तविक वृद्धि उतनी नहीं होगी जितनी कि होनी चाहिए थी।

अब हम यह मानकर चलते है कि अर्थव्यवस्था में आय का स्तर एक परिवर्तनशील तत्व है। हम 'द्रव्य-बाजार' को लेते हैं। माना द्रव्य की पूर्ति मे वृद्धि की जाती है, इसके परिणामस्वरूप ब्याज की दर में कमी होगी; ब्याज की दर में कमी विनियोग को बढ़ायेगी या प्रोत्साहित (encourage) करेगी और परिणामस्वरूप आय का स्तर बढ़ेगा। आय स्तर में वृद्धि के कारण कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य (transaction motive and precautionary motive) के लिए द्रव्य की माँग बढ़ेगी। परिणामस्वरूप ब्याज की दर मे वास्तविक कमी उतनी नहीं होगी जितनी कि होनी चाहिए थी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वस्तु-बाजार तथा द्रव्य बाजार निकट रूप से सम्बन्धित हैं; तथा ब्याज दर और आय का स्तर एक दूसरे से बँधे हुए हैं।

अतः ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त ऐसा होना चाहिए जो ब्याज-दर तथा आय-स्तर दोनों को साथ-साथ निर्धारित करे; दूसरे शब्दों मे, द्रव्य-बाजार तथा वस्तु-बाजार में एक साथ संतुलन स्थापित होना चाहिए, अथवा यह कहिए कि 'सामान्य संतुलन' (general equilibrium) स्थापित होना चाहिए। प्रो. हिक्स (तथा हेनसन) ने ब्याज के एक ऐसे निर्धारणीय सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है।

'क्लासीकल सिद्धान्त या माडल' तथा 'कैंजियन माडल' को समन्वित करके प्रो. हिक्स निम्नलिखित चार तत्त्व प्राप्त करते है जो कि ब्याज-दर तथा आय-स्तर को साथ-साथ निर्धारित करते हैं—

1. विनियोग (Investment) अर्थात् उत्पादकता (Productivity); विनियोग को I द्वारा व्यक्त करते हैं।
2. बचत (saving) अर्थात् किफायत (thrift); बचत को S द्वारा व्यक्त करते हैं।
3. तरलता पसन्दगी या नकदी की इच्छा (Liquidity Preference or desire for cash); इसको L द्वारा व्यक्त करते हैं।
4. द्रव्य की पूर्ति (Money Supply) या नकदी की पूर्ति (Quantity of Cash), इसको हम M द्वारा व्यक्त करते हैं।

---

[33] I विनियोग को तथा S बचत को बताता है।

[34] L तरलता पसन्दगी को तथा M द्रव्य की पूर्ति या मात्रा को बताता है।

क्लासीकल सिद्धान्त की सहायता से हिक्स IS-रेखा (अर्थात Investment-Saving Curve) निकालते हैं; अथवा वस्तु-बाजार में संतुलन को बताते हैं। तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त की सहायता से हिक्स LM-रेखा (अर्थात् Liquidity Preference and Money Supply Curve) निकालते हैं; अथवा द्रव्य-बाजार मे सतुलन को बताते है। IS-रेखा तथा LM-रेखा के कटाव-बिन्दु पर ब्याज-दर और आय-स्तर दोनों साथ-साथ निर्धारित होते हैं; अर्थात् वस्तु-बाजार तथा द्रव्य-बाजार मे एक साथ संतुलन स्थापित होता है।

अब हम नीचे IS-रेखा तथा LM-रेखा के निकालने (derivation) की क्रिया की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते है।

2. **IS-रेखा का निकालना तथा वस्तु बाजार में संतुलन** (Derivation of IS-Curve and the Equilibrium in the Goods Market)

वस्तु बाजार का रिश्ता उन आर्थिक क्रियाओं से होता है जो कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन व प्रयोग (या उपभोग) से सम्बन्धित होती हैं। इसका अर्थ है वास्तविक उत्पादन (real output) या वास्तविक आय (real income) का उत्पन्न करना (creation) तथा वस्तुओं का उपभोग; ['उपभोग' 'बचत' का उलटा (inverse) होता है; एक दी हुई आय मे से लोग एक हिस्सा बचाते हैं और एक हिस्सा वस्तुओं के उपभोग पर व्यय करते हैं।] विनियोग 'आय-उत्पन्न' करने वाला व्यय (income-generating expenditure) है। विनियोग प्रत्यक्ष रूप से (directly) तथा 'गुणक प्रक्रिया' ('multiplier' process) द्वारा आय उत्पन्न करता है, विनियोग के एक दिये हुए स्तर के लिए आय का एक स्तर होता है जो कि प्राप्त होता है जबकि 'गुणक' कार्य (work-out) कर चुकता है; इसका अभिप्राय है कि एक प्रारम्भिक विनियोग (initial investment) आय उत्पन्न करता है जो कि प्रारम्भिक विनियोग की कुछ गुनी (some multiple) होती है। आय का स्तर निर्भर करता है 'गुणक के आकार' (size) पर तथा गुणक निर्भर करता है 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' (marginal propensity to consume) पर।[35]

वस्तु बाजार के संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि 'विनियोग' (I) बराबर होना चाहिए 'बचत' (S) के; अतः वे सब तत्त्व (factors) जो कि I तथा S को प्रभावित करते हैं वे वस्तु बाजार में संतुलन के निर्धारण को भी प्रभावित करते हैं। यहाँ पर हम यह मान लेते हैं कि विनियोग (I) निर्भर करता है ब्याज की दर (r) पर, अर्थात् यह कहिए कि I फंक्शन (function) है r का; इसे हम इस प्रकार लिखते हैं : $I = f(r)$, जबकि 'f' का मतलब है फंक्शन; (सरल शब्दों में 'फंक्शन' का अर्थ है 'निर्भर करता' है)। ब्याज की नीची दर पर अधिक विनियोग-माँग होगी तथा ऊँची ब्याज दर पर कम विनियोग-माँग होगी। यह भी मान लिया जाता है कि 'बचत' (S) निर्भर करती है आय (Y) पर; अर्थात् S फंक्शन है Y का; इसे हम इस प्रकार लिख सकते हैं : $S = f(Y)$

---

[35] माना Y = आय, △ (डेल्टा)—थोड़ा परिवर्तन, △Y = आय मे परिवर्तन, I = विनियोग, △I = विनियोग मे थोड़ा परिवर्तन; K = गुणक, तो $\Delta Y = K \Delta I$, △Y—(नं. 1) अर्थात आय मे वृद्धि (△Y), प्रारम्भिक विनियोग मे वृद्धि (△I) की कुछ गुना अर्थात् K गुना होती है।

नं. (1) से K का मूल्य इस प्रकार ज्ञात किया जाता है—$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$, इस सूत्र (formula) का विकास करके K तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (marginal propensity to consume अर्थात् m. p. c.) में निम्न सम्बन्ध प्राप्त कर लिया जाता है—$K = \frac{1}{1 - m.p.c.}$।

यदि C = उपभोग तथा △C = उपभोग में थोड़ा परिवर्तन, तो $m.p.c. = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$

अतः वस्तु-बाजार के लिए हमारे पास तीन समीकरण (equations) हैं—

$I = f(i)$ विनियोग फंक्शन है ब्याज दर का।

$S = f(Y)$ बचत फंक्शन है आय का।

$I = S$ वस्तु बाजार संतुलन में होता है जबकि विनियोग बराबर होता है बचत के।

अब IS-रेखा (अर्थात् Investment-Saving Curve) को निकालते हैं। इसको चित्र 10 द्वारा दिखाया गया है।
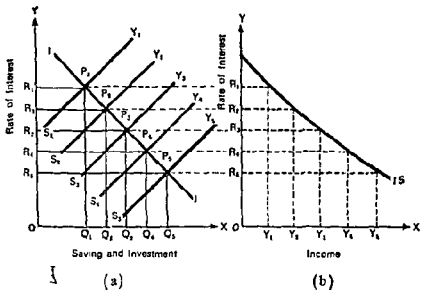
चित्र 10

बचत आय के स्तर पर निर्भर करती है, इसलिए आय के विभिन्न स्तरों पर बचत भिन्न-भिन्न होगी। माना कि Y_1, Y_2, Y_3, Y_4 तथा Y_5 आय के बढ़ते हुए विभिन्न स्तरों को बताते हैं। चित्र 10 (a) में आय के इन स्तरों से सम्बन्धित 'बचत-रेखाएँ' (saving-curves) S_1Y_1, S_2Y_2, S_3Y_3, S_4Y_4 तथा S_5Y_5 हैं। चित्र 10 (a) में रेखा II 'विनियोग रेखा' (investment curve) है। आय में वृद्धि होने से बचतें अधिक होंगी, इसलिए बचत रेखाएँ S_1Y_1, S_2Y_2, इत्यादि दायें को खिसकती जाती हैं।

चित्र 10 (a) में S_1Y_1 तथा II रेखाएँ बिन्दु P_1 पर काटती हैं और ब्याज की दर P_1Q_1 अथवा R_1 होगी; आय के स्तर Y_1 तथा ब्याज दर R_1 पर बचत (S) तथा विनियोग (I) में संतुलन स्थापित होगा; दोनों OQ_1 के बराबर हैं। इस प्रकार हमें एक बिन्दु P_1 प्राप्त हो जाता है जो आय तथा ब्याज के एक ऐसे संयोग (combination) को बताता है जिस पर कि $I = S$ है, अर्थात् जिस पर 'वस्तु बाजार' संतुलन में है। जब आय बढ़कर Y_2 हो जाती है तो ब्याज की दर R_2 (या P_2Q_2) होगी; आय के स्तर Y_2 तथा ब्याज की दर R_2 पर बचत और विनियोग में संतुलन स्थापित होगा; दोनों OQ_2 के बराबर हैं। इस प्रकार हमें एक दूसरा बिन्दु P_2 प्राप्त हो जाता है जो कि आय और ब्याज के एक ऐसे दूसरे संयोग को बताता है जिस पर $I = S$ है, अर्थात् जिस पर 'वस्तु बाजार' संतुलन में है। यदि आय का स्तर बढ़कर Y_3, Y_4 तथा Y_5 हो जाता है तो हमें अन्य बिन्दु P_3, P_4 तथा P_5 प्राप्त होते हैं जो कि आय व ब्याज के ऐसे अन्य संयोगों को बताते हैं जिन पर कि $I = S$ है, अर्थात् जिन पर 'वस्तु बाजार' संतुलन में है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आय का कोई एक अकेला स्तर नहीं होता है जिस पर

कि $I=S$ के है, बल्कि ब्याज के प्रत्येक भिन्न दर के लिए आय का एक भिन्न स्तर होता है। नीची ब्याज-दर पर वह आय स्तर ऊँचा होता है जिस पर कि $I=S$ के है।[36]

यदि विभिन्न आय के स्तरों तथा उनसे सम्बन्धित ब्याज की दरो के संयोगो, जो कि बचत व विनियोग की बराबरी को बताते हैं, को एक रेखा द्वारा दिखायें तो हमे IS-रेखा प्राप्त हो जाती है जैसा कि चित्र 10(b) में दिखाया गया है। दूसरे शब्दो मे, IS-रेखा ब्याज की दरों तथा आय के स्तरो के सम्बन्ध को बताती है और इस रेखा का प्रत्येक बिन्दु बचत व विनियोग के बराबर (या सतुलन मे) होने को बताता है। संक्षेप में, IS-रेखा को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :

IS-रेखा ब्याज दर तथा आय-स्तर के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि बचतों को विनियोग के बराबर रखते हैं।[37]

IS-रेखा का ढाल ऋणात्मक (negative) होता है, अर्थात् वह नीचे को गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र 10 (b) मे दिखाया गया है। इसका कारण है कि IS-रेखा 'ब्याज' तथा 'आय के स्तर' के बीच उलटे सम्बन्ध (inverse relation) को बताती है, अर्थात् जैसे-जैसे आय का स्तर बढता जाता है (अर्थात् Y_1, Y_2, Y_3, इत्यादि होता जाता है) वैसे ब्याज की दर घटती जाती है (अर्थात् R_1, R_2, R_3 इत्यादि होती जाती है); इस प्रकार 'आय के स्तर' और 'ब्याज की दर' में उलटा सम्बन्ध होता है, जो कि चित्र 10 के (a) तथा (b) दोनो से स्पष्ट है। दूसरे शब्दो मे, ऊँची आय के स्तरो पर अधिक बचतें होंगी (तथा पूँजी की पूर्ति अधिक होगी) और इसलिए ब्याज की दर नीची होगी। नीची आय के स्तरो पर कम बचतें होंगी (और पूजी की पूर्ति कम होगी) और ब्याज की दर ऊँची होगी। स्पष्ट है कि 'आय के स्तर' तथा 'ब्याज की दर' मे उल्टा सम्बन्ध होगा।

IS-रेखा विभिन्न आय के स्तरो पर दी हुई बचत-रेखाओ के एक परिवार (a family of given saving curves at different levels of income) तथा विनियोग-रेखा के आधार पर निकाली गयी है, अत इन रेखाओ की स्थितियों में परिवर्तन होने पर IS-रेखा की स्थिति मे भी परिवर्तन (change or shift) हो जायेगा। चित्र 11 द्वारा हम **IS-रेखा में परिवर्तनों (Shifts) की विवेचना करते हैं।** IS-रेखा मे परिवर्तन निम्न दो बातो के कारण होते हैं—
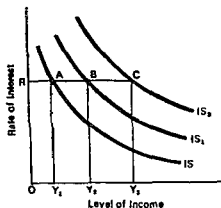
चित्र 11

(i) विनियोग - रेखा (Investment Curve) मे परिवर्तनो के कारण; [दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि IS-रेखा मे परिवर्तन निर्भर करते हैं 'पूजी की सीमान्त कुशलता' अर्थात Marginal Efficiency of Capital पर संक्षेप मे, MEC पर।][38]

(ii) बचत रेखा (Saving Curve) मे परिवर्तनो के कारण; [दूसरे शब्दो मे यह कहा जा

---

[36] We find that there is no longer a single level of income at which $I=S$, but a different level of income for each different rate of interest The lower the rate of interest the higher is the level of income at which $I=S$.

[37] The IS-curve depicts these different combinations of interest-rate and income level which keep savings equal to investment.

[38] पूजी की सीमान्त कुशलता या MEC का अर्थ है लाभ की प्रत्याशित दर (expected rate of profit); यदि साहसी यह समझते हैं कि भविष्य में लाभ की दर ऊँची होगी तो वे विनियोग के लिए पूजी की अधिक माँग करते हैं, इसके विपरीत दशा मे विनियोग की माँग कम होगी। (क्रमशः)

सकता है कि IS-रेखा में परिवर्तन निर्भर करते है 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' अर्थात् Marginal Propensity to Consume, संक्षेप में, MPC पर।][39]

माना कि कुछ कारणों (जैसे नवप्रवर्तन अर्थात् innovation, या साहसियो का भविष्य के प्रति अधिक आशावान अर्थात् optimistic होना, इत्यादि) से विनियोग में वृद्धि होती है; तो IS-रेखा दायें (right) को खिसकेगी और उसकी नयी स्थिति IS_1 हो जाती है जैसा कि चित्र 11 में दिखाया गया है। IS-रेखा के दायें की ओर खिसकने का अर्थ है कि यदि ब्याज दर समान (चित्र मे R) रहती है तो विनियोग (I) तथा बचत (S) मे बराबरी या संतुलन एक ऊँचे आय स्तर Y_2 पर सम्भव हो सकेगा (यह बात IS_1 रेखा पर बिन्दु B बताता है)।

पूर्ति-रेखा (saving curve) में परिवर्तन भी IS-रेखा में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। विनियोग-माँग (या MEC) के स्थिर रहने पर, माना कि बचतें घटती हैं, तो इसका अभिप्राय है कि लोग अपेक्षाकृत कम किफायत करते हैं (persons become less thrifty) और उपभोग पर अधिक व्यय करते है; अर्थात् उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC) में वृद्धि हो जाती है। इसके कारण IS-रेखा दायें को खिसकेगी। यदि हम IS_1 से शुरू करें तो यह रेखा और दायें (further right) को खिसककर IS_2 की स्थिति में आ जायेगी जैसा कि चित्र 11 मे दिखाया गया है। इसका अभिप्राय है कि उसी ब्याज दर R पर I तथा S में बराबरी या सतुलन एक ऊँचे आय-स्तर Y_3 पर सम्भव हो सकेगा (जैसा कि IS_2 पर बिन्दु C बताता है)।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं: यदि ब्याज की दर दी हुई है तो, (i) विनियोग-माँग (Investment demand) मे वृद्धि या MEC में वृद्धि; तथा (ii) बचत (या किफायत) में कमी अथवा उपभोग में वृद्धि—इन दोनों बातों का प्रभाव एकसमान होगा और IS-रेखा दायें को खिसकेगी। [यदि हम इनकी विपरीत दशाओं पर विचार करें तो IS-रेखा बायें (left) को खिसकेगी।][40]

3. LM-रेखा का निकालना तथा द्रव्य बाजार में संतुलन (The Derivation of LM Curve and the Equilibrium in the Money Market)

द्रव्य बाजार का रिश्ता उन आर्थिक क्रियाओं से होता है जिनका सम्बन्ध नकदी (cash) अर्थात् तरल सम्पत्ति (liquid asset) (अथवा तरलता पसन्दगी) के लिए द्रव्य की माँग, और द्रव्य की पूर्ति से होता है।[41] यदि द्रव्य की माँग को L द्वारा तथा द्रव्य की पूर्ति को M द्वारा बताया जाये तो द्रव्य बाजार मे संतुलन के लिए L = M के होना चाहिए। केंज का सिद्धान्त यह मान लेता है कि

IS-रेखा मे परिवर्तन विनियोग रेखा मे परिवर्तनों पर निर्भर करते हैं, और विनियोग मे परिवर्तन MEC पर निर्भर करते हैं; इसलिए IS-रेखा में परिवर्तन MEC पर निर्भर करेंगे।

[39] उपभोग बचत का उलटा होता है। $\frac{\text{उपभोग में वृद्धि } (\Delta C)}{\text{आय मे वृद्धि } (\Delta Y)}$, इस अनुपात को 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' या MPC कहते हैं। IS रेखा में परिवर्तन बचत-रेखा में परिवर्तनों पर निर्भर करते हैं और चूंकि उपभोग बचत का उलटा होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि IS-रेखा मे परिवर्तन MPC पर निर्भर करते हैं।

[40] Thus, we come to the following conclusion : An increase in investment demand (or an increase in MEC) and a decrease in saving or thrift (i.e. an increase in consumption function) will have the identical effect of shifting the IS-curve towards right, assuming that the rate of interest remains the same. [If we take the opposite situation then IS curve will shift towards left.]

[41] Money market refers to those economic activities which are connected with the demand for money to hold it as cash or as asset (i.e. liquidity preference) and the supply of money.

कार्य-सम्पादन उद्देश्य (transaction motive) के लिए द्रव्य की माँग [जिसके अन्तर्गत प्राय: सतर्कता उद्देश्य (precautionary motive) को भी शामिल किया जाता है] केवल आय-स्तर पर निर्भर करती है अर्थात् केवल आय-स्तर का फंक्शन होती है; यदि कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग को L_t द्वारा तथा आय-स्तर को Y द्वारा बताया जाये तो हम उपर्युक्त सम्बन्ध को इस प्रकार लिख सकते हैं . $L_t = f(Y)$ । कॅंज का सिद्धान्त यह भी मानता है कि सट्टा-उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग (जिसे L_s द्वारा बताया जा सकता है) केवल ब्याज की दर (r) पर निर्भर करती है, और द्रव्य की यह माँग (L_s) ब्याज की दर के साथ विपरीत दशा मे बदलती है, अर्थात् यदि ब्याज दर r ऊंची है तो सट्टा-माँग L_s नीची होगी और यदि r नीची है तो L_s ऊँची होगी । इस प्रकार L_s निर्भर करता है r पर, या फंक्शन है r का; इसे हम इस प्रकार लिख सकते हैं : $L_s = f(r)$ । उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'द्रव्य बाजार' (money market) के लिए निम्नलिखित तीन समीकरण प्राप्त होते हैं :

$L_t = f(Y)$ कार्य-सम्पादन उद्देश्य (जिसमे सतर्कता उद्देश्य शामिल है) के लिए द्रव्य की माँग आय का फंक्शन है।

$L_s = f(r)$ सट्टा-उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग ब्याज दर का फंक्शन है ।

$L(= L_t + L_s) = M$ द्रव्य बाजार संतुलन मे होता है जबकि द्रव्य की कुल माँग L ($= L_t + L_s$) बराबर है द्रव्य की कुल पूर्ति M के । द्रव्य की कुल पूर्ति, किसी समय विशेष पर, स्वतन्त्र रूप से (independently) देश की मौद्रिक-सत्ता (monetary authority) द्वारा निर्धारित होती है ।

अब हम कॅंजियन सिद्धान्त की सहायता से LM-रेखा (अर्थात् Liquidity Preference and Money Supply Curve) निकालते हैं । यह चित्र 12 द्वारा स्पष्ट होती है ।

(a) (b)
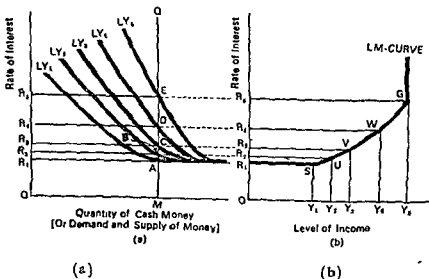
चित्र 12

चित्र 12 (a) मे तरलता पसन्दगी रेखाओ का एक परिवार (a family of liquidity preference curves) दिया हुआ है। बढ़ती हुई आय के स्तरों Y_1, Y_2, Y_3, Y_4 तथा Y_5 पर तरलता पसन्दगी रेखाएं क्रमश: (respectively) L_1Y_1, L_2Y_2, L_3Y_3, L_4Y_4.

तथा L_5Y_5 हैं। आय में वृद्धि के साथ तरलता पसन्दगी में वृद्धि होगी[42] इसलिए तरलता पसन्दगी रेखाएं दायें (right) को ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं।

माना कि द्रव्य की वास्तविक मात्रा दी हुई है; चित्र 12 (a) मे यह M (या OM) है। चित्र 12 (a) में आय के स्तर Y_1 पर ब्याज की दर R_1 (या AM) होगी और इस ब्याज दर पर 'नकद-द्रव्य की माँग अर्थात् तरलता पसन्दगी' (L) तथा नकद द्रव्य की वास्तविक मात्रा या द्रव्य की पूर्ति' (M) दोनों बराबर है (दोनों OM के बराबर है) अर्थात् L तथा M दोनों संतुलन में हैं। दूसरे शब्दों में, चित्र 12 (a) मे बिन्दु A पर 'मौद्रिक साम्य' (monetary equilibrium) होगा क्योंकि $L = M$ के है। इसी प्रकार Y_2 आय के स्तर पर ब्याज की दर R_2 होगी और इस ब्याज दर पर 'नकद द्रव्य की मांग' (L) तथा 'द्रव्य की वास्तविक मात्रा या पूर्ति' (M) दोनो बराबर (या संतुलन मे) होंगी। दूसरे शब्दो में, बिन्दु B पर मौद्रिक साम्य होगा। इसी प्रकार Y_3, Y_4 तथा Y_5 आय के स्तरो पर ब्याज की दरें क्रमशः R_3, R_4 तथा R_5 होगी और इन ब्याज की दरों पर $L = M$ के होगा।

इस प्रकार चित्र 12 (a) मौद्रिक सतुलनों की एक श्रृंखला (बिन्दु A, B, C, D तथा E पर) प्रदान करता है; प्रत्येक मौद्रिक सतुलन एक विशेष आय-स्तर तथा एक विशेष ब्याज दर से सम्बन्धित होता है।[43]

चित्र 12 के (b) भाग में LM-रेखा को दिखाया गया है जो चित्र 12 के (a) भाग से प्रत्यक्ष रूप से निकाली गयी है। चित्र के (b) भाग में आय स्तरों (Y_1, Y_2, Y_3, इत्यादि) को पड़े अक्ष (horizontal axis) पर तथा ब्याज दरो (R_1, R_2, R_3, इत्यादि) को खड़े अक्ष (vertical axis) पर दिखाया गया है। चित्र के (a) भाग की सहायता से हम बिन्दुओं की श्रृंखला (series of points) को प्लोट (plot) कर सकते है, प्रत्येक बिन्दु एक विशेष ब्याज-दर तथा आय-स्तर को बतायेगा और प्रत्येक बिन्दु पर मौद्रिक संतुलन होगा अर्थात् $L = M$ के होगा। चित्र के (b) भाग मे एक ऐसा बिन्दु S है जो कि ब्याज दर R_1 तथा आय-स्तर Y_1 से सम्बन्धित है; एक दूसरा बिन्दु U है जोकि ब्याज दर R_2 तथा आय-स्तर Y_2 से सम्बन्धित है; इस प्रकार के अन्य बिन्दु V, W तथा G हैं। यदि हम इन बिन्दुओं को मिला दें तो हमें एक रेखा प्राप्त हो जाती है जिसे LM-रेखा

---

[42] कुल माँग (L) का L_t भाग (अर्थात् कार्य सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग) आय के स्तर पर निर्भर करता है; आय में वृद्धि के साथ L_t मे वृद्धि होगी और इसलिए कुल माँग L मे भी वृद्धि होगी; अतः आय मे वृद्धि के साथ तरलता पसन्दगी रेखाए (या L-रेखाएं) दायें को ऊपर की ओर खिसकेंगी।

यदि द्रव्य की मात्रा दी हुई या स्थिर है, तो आय में वृद्धि के साथ कार्य सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य के लिए द्रव्य की बढ़ी हुई माँग (अर्थात L_t में वृद्धि) को, निष्क्रिय नकद कोषो (idle cash balances) में से द्रव्य को निकाल कर ही, पूरा किया जा सकेगा। निष्क्रिय नकद कोषों को रखने के पीछे 'तरलता' (liquidity) का विचार या दृष्टिकोण होता है और ब्याज तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार है। इसलिए 'निष्क्रिय नकद कोषों' में से अधिक तथा और अधिक द्रव्य को कार्य-सम्पादन तथा सतर्कता उद्देश्य (L_t) के लिए हस्तातरण (transfer) करने का केवल यही तरीका है कि ब्याज की दर ऊँची तथा और ऊँची की जाये। अत: जैसे-जैसे आय (Y_1 से Y_2, Y_3, Y_4, Y_5) बढ़ती जाती है, द्रव्य की L_t माँग बढ़ती है और यह तरलता पसन्दगी रेखा (अर्थात् L-रेखा) को ऊपर की ओर दायें को खिसकाती है। इस प्रकार आय मे वृद्धि के कारण ब्याज की दर में वृद्धि होगी, यदि द्रव्य की पूर्ति स्थिर है।

[43] Thus, figure 12 (a) gives a series of monetary equilibria (at points A, B, C, D and E); each monetary equilibrium is associated with a particular income level and a particular rate of interest.

कहते है, इस रेखा पर प्रत्येक बिन्दु L तथा M की बराबरी (अर्थात् उनके संतुलन) को बताता है। अतः LM-रेखा को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है :

LM-रेखा ब्याज-दरों तथा वास्तविक आय-स्तरों के उन सब संयोगों का रास्ता है जिन पर कि द्रव्य की पूर्ति (M) बराबर होती है द्रव्य की मांग (L) के।[44]

LM-रेखा का ढाल धनात्मक (positive) है अर्थात वह ऊपर को चढ़ती हुई होती है जैसा कि चित्र 12 के (b) भाग से स्पष्ट है। इसका कारण है कि LM-रेखा 'ब्याज-दर' तथा 'आय-स्तर' के बीच सीधे सम्बन्ध (direct relation) को बताती है, अर्थात जैसे आय का स्तर बढ़ता जाता है (अर्थात Y_1, Y_2, Y_3, इत्यादि होता जाता है) वैसे-वैसे ब्याज की दर भी बढ़ती जाती है (अर्थात् R_1, R_2, R_3, इत्यादि होती जाती है)।

चित्र 12 के भाग (b) मे यह ध्यान देने की बात है कि आय के बहुत नीचे स्तरों पर LM-रेखा पड़ी हुई (horizontal) हो जाती है या टेकनीकल भाषा मे, LM-रेखा 'ब्याज-दर के प्रति पूर्णतया लोचदार' (perfectly elastic with respect to the rate of interest) हो जाती है। इसके विपरीत, आय के बहुत ऊँचे स्तरो पर LM-रेखा खड़ी (vertical) हो जाती है या टेकनीकल भाषा मे, LM-रेखा 'ब्याज दर के प्रति पूर्णतया बेलोचदार' (perfectly inelastic with respect to the rate of interest) हो जाती है।

[इसका कारण क्या है ? हम जानते हैं कि LM-रेखा का निर्माण इस मान्यता पर किया गया है कि द्रव्य की पूर्ति (M) स्थिर है। इस मान्यता के आधार पर, आय के नीचे स्तरो पर कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य के लिए द्रव्य की मांग (अर्थात् L_t) भी काफी नीची होगी। इसका अर्थ है कि कुल द्रव्य-पूर्ति का एक बडा भाग 'निष्क्रिय कोषो' (idle balances) मे रखने के लिए अर्थात् तरल सम्पत्ति (liquid asset) के रूप मे रखने के लिए प्राप्य होगा। परन्तु सम्पत्ति (asset) के रूप में रखने के लिए द्रव्य की मात्रा में (अर्थात् सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की मात्रा मे) कोई भी वृद्धि ब्याज की दर को नीचे ढकेलेगी। परन्तु ब्याज की दर के नीचे गिरने की एक सीमा है और यह सीमा निर्धारित होती है 'तरलता-जाल' (liquidity trap) द्वारा। जब हम एक बार ऐसे स्तर पर पहुँच जाते हैं जहाँ पर कि 'निष्क्रिय कोषों' या 'सम्पत्ति के रूप मे' रखने के लिए द्रव्य की मात्रा मे और अधिक वृद्धि ब्याज-दरों को प्रभावित नहीं करती है, तब LM-रेखा 'ब्याज दर के प्रति पूर्णतया लोचदार' हो जाती है। दूसरे शब्दो मे, एक सीमा के बाद यदि आय में और अधिक कमी होती है (अर्थात् चित्र के भाग (b) मे Y_1 से बायें को चला जायें) और परिणामस्वरूप L_t के लिए रखे जाने वाले नकद द्रव्य की मात्रा मे कमी होती है जिसके कारण 'निष्क्रिय कोषो' के लिए द्रव्य की अधिक मात्रा प्राप्य होती है तो यह द्रव्य की अधिक मात्रा ब्याज दर को और नीचे नही गिरायेगी।]

(LM-रेखा का ऊपर का भाग खड़ा हुआ (vertical) होता है। इस बात को समझने के लिए भी 'द्रव्य की स्थिर पूर्ति' की मान्यता ध्यान मे रखनी चाहिए। यह ध्यान देने की बात है कि आय का एक अधिकतम स्तर होगा जिसको कि द्रव्य की एक स्थिर पूर्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा। दूसरे शब्दो मे, द्रव्य की स्थिर पूर्ति एक रुकावट (bottleneck) होगी जिसके कारण आय का विस्तार एक सीमा से अधिक नही हो पायेगा। आय मे वृद्धि के साथ कार्य-सम्पादन (transactions) के लिए द्रव्य की मांग (L_t) मे वृद्धि होगी। आय के एक ऊँचे स्तर का अभिप्राय है कि वस्तुओ के उत्पादन की अधिक मात्रा के लिए कार्य-सम्पादन हेतु तथा वस्तुओ के उत्पादन के एक ऊँचे स्तर को बनाये रखने के लिए अधिक द्रव्य की मात्रा की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु द्रव्य की स्थिर पूर्ति की मान्यता

[44] The LM-curve is a locus of combinations of interest rates and real income levels at which the supply of money (M) is equal to the demand of money (L).

का अभिप्राय है कि कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए द्रव्य की अधिक मात्रा को केवल 'निष्क्रिय कोषों' (idle balances) में से निकाल कर ही प्राप्त किया जा सकता है; इसका परिणाम होगा ब्याज की ऊँची दर, (क्योंकि निष्क्रिय कोषों के प्रति तरलता के त्याग के लिए ऊँची ब्याज दर देनी होगी)। इस प्रकार आय में वृद्धि के साथ ब्याज की दर ऊँची होती जायेगी; और अन्त में अर्थव्यवस्था एक ऐसे स्तर पर पहुँच जायेगी जहाँ पर आय में और अधिक वृद्धि या विस्तार असम्भव हो जायेगा क्योंकि अब समस्त द्रव्य की पूर्ति कार्य-सम्पादन कोषों (transaction balances) के लिए रख ली जायेगी; ध्यान रहे कि समय विशेष में द्रव्य की पूर्ति स्थिर है। चित्र 12 के भाग (b) में आय स्तर Y_5 अधिकतम आय मान ली गयी है जिसको द्रव्य की स्थिर मात्रा (M) बनाये रख सकती है, यहाँ पर यह मान लिया गया है कि द्रव्य के वेग (velocity) में कोई परिवर्तन नहीं होता है।]

अब हम LM-रेखा में परिवर्तनों (*Shifts in LM-Curve*) की विवेचना करते हैं। LM-रेखा, विभिन्न आय के स्तरों पर, 'दी हुई तरलता पसन्दगी रेखाओं के परिवार' तथा 'दी हुई द्रव्य की पूर्ति' के आधार पर निकाली गयी है, अत. इनमें परिवर्तन होने पर LM-रेखा की स्थिति में भी परिवर्तन हो जायेगा। दूसरे शब्दों में, LM-रेखा मे परिवर्तन निम्न दो बातों के कारण हो सकता है—(i) द्रव्य की पूर्ति मे परिवर्तन, अथवा (ii) तरलता पसन्दगी मे परिवर्तन के कारण।

माना कि तरलता पसन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं होता, परन्तु द्रव्य की मात्रा या पूर्ति में वृद्धि कर दी जाती है। इसके कारण चित्र 12 (a) में MQ रेखा दायें को खिसकेगी; परिणामस्वरूप ब्याज की दर, प्रत्येक आय स्तर के लिए, नीची होगी। यह स्थिति LM-रेखा के दायें को नीचे की ओर खिसकने द्वारा बतायी जायेगी जैसा कि चित्र 13 में दिखाया गया है; चित्र में, द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि के परिणामस्वरूप, LM रेखा दायें को नीचे की ओर खिसक कर LM_1 की स्थिति में आ जाती है। यदि द्रव्य की पूर्ति कम कर दी जाती है तो उल्टी स्थिति प्राप्त होगी। अर्थात् LM रेखा बायें को ऊपर की ओर खिसकेगी।
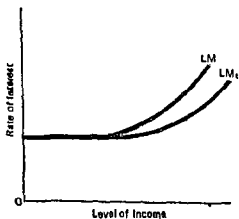
चित्र 13

अब हम यह मानते है कि द्रव्य की पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है, बल्कि 'तरलता-पसन्दगी' में कमी होती है अर्थात् द्रव्य की माँग घटती है। इसके कारण ब्याज की दर, एक आय-स्तर के सन्दर्भ मे, नीचे गिरेगी; ऐसी स्थिति LM रेखा के दायें को (नीचे की ओर) खिसकने के द्वारा बतायी जायगी; यह स्थिति भी चित्र 13 से स्पष्ट होती है जिसमें कि LM-रेखा दायें को खिसक कर LM_1 स्थिति में आ जाती है। अब माना कि तरलता-पसन्दगी बढती है (द्रव्य की पूर्ति को स्थिर मानते हुए), इसका अर्थ हुआ कि द्रव्य की माँग बढ़ती है; परिणामस्वरूप, आय के एक स्तर के सन्दर्भ मे, ब्याज की दर बढ़ेगी और ऐसी स्थिति LM-रेखा के बायें (left) को खिसकने द्वारा बतायी जायेगी।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं : द्रव्य-पूर्ति में वृद्धि LM-रेखा को दायें को खिसकायेगी, तथा तरलता-पसन्दगी मे कमी का भी LM-रेखा पर यही प्रभाव होगा। इसके विपरीत, द्रव्य की पूर्ति मे कमी LM-रेखा को बायें को खिसकायेगी, तथा तरलता-पसन्दगी में वृद्धि का भी LM-रेखा पर यही प्रभाव पड़ेगा।

4. ब्याज-दर तथा आय-स्तर का निर्धारण (Determination of Interest Rate and Income Level)

अथवा (Or)

द्रव्य बाजार तथा वस्तु बाजार का सामान्य संतुलन (General Equilibrium of Money Market and Goods Market)

IS तथा LM-रेखाओं को हम चित्र 14 में एक साथ रखते हैं; ये रेखाएँ एक दूसरे को बिन्दु P पर काटती हैं। IS-रेखा यह बताती है कि आय-स्तरों तथा ब्याज दरों के विभिन्न संयोगों (various combinations) पर I=S के है; दूसरे शब्दों में, IS रेखा वस्तु-बाजार या वस्तु-क्षेत्र (goods market or goods sector) में संतुलन को बताती है। LM-रेखा यह बताती है कि आय-स्तरों तथा ब्याज-दरों के विभिन्न संयोगों पर L=M के है; दूसरे शब्दों में, LM-रेखा द्रव्य-बाजार या मौद्रिक क्षेत्र (money-market or monetary sector) में संतुलन को बताती है।
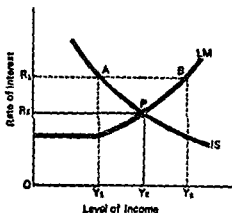
चित्र 14

IS रेखा तथा LM-रेखा का कटाव बिन्दु P ब्याज-दर तथा आय-स्तर के एक साथ निर्धारण (simultaneous determination) को बताता है; इस प्रकार संतुलन ब्याज-दर R_E तथा संतुलन आय-स्तर Y_E है। एक ही ब्याज-दर R_E तथा एक ही आय-स्तर Y_E पर हमें प्राप्त होता है विनियोग (I)=बचत (S) तथा द्रव्य की माँग या तरलता-पसन्दगी (L)=द्रव्य की पूर्ति (M); दूसरे शब्दों में, आय-स्तर (Y_E) तथा ब्याज-दर (R_E) का केवल एक ही ऐसा संयोग (combination) है जिस पर वस्तु-बाजार तथा द्रव्य-बाजार दोनों एक साथ संतुलन में हैं। इस प्रकार हमें वस्तु-बाजार तथा द्रव्य-बाजार का एक 'सामान्य सतुलन' (general equilibrium) प्राप्त हो जाता है; अथवा हम यह कह सकते हैं कि हमें 'सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का सामान्य संतुलन (general equilibrium of the whole economy) प्राप्त हो जाता है, जबकि यह मान लिया जाता है कि सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था दो क्षेत्रों—वस्तु-क्षेत्र (goods sector) तथा मौद्रिक-क्षेत्र (monetary sector)—में बाँटी (या divide की) जाती है।

IS तथा LM-रेखाओं के कटाव बिन्दु के अलावा कोई भी अन्य बिन्दु एक 'असंतुलन दशा' (disequilibrium condition) को बताती है। माना कि ब्याज-दर R_1 है; इस ब्याज-दर पर, Y_1 आय-स्तर पर, I=S के है (अर्थात् वस्तु बाजार संतुलन में है); और एक दूसरे आय-स्तर Y_2 पर, L=M के है (अर्थात् द्रव्य-बाजार संतुलन में है); दूसरे शब्दों में, चारों तत्त्व I, S, L तथा M एक ही आय-स्तर पर बराबर नहीं हैं; अथवा यह कहिए कि एक ही आय-स्तर (तथा एक ही ब्याज दर पर) वस्तु-बाजार तथा द्रव्य-बाजार सामान्य संतुलन में नहीं है। IS तथा LM-रेखाओं के केवल कटाव-बिन्दु P पर ही, एक ही ब्याज-दर (R_E) तथा एक ही आय-स्तर (Y_E) एक साथ निर्धारित होते हैं; तथा ब्याज-दर (R_E) और आय-स्तर (Y_E) के इस अकेले संयोग (this single combination) पर ही चारों तत्त्व I, S, L तथा M बराबर हैं, और अर्थ-व्यवस्था का एक सामान्य संतुलन प्राप्त होता है।

5. संतुलन ब्याज दर तथा संतुलन आय-स्तर में परिवर्तन (Changes in Equilibrium Interest Rate and Income Level)

अथवा (Or)

सामान्य संतुलन में परिवर्तन (Changes in General Equilibrium)

IS रेखा या LM-रेखा में परिवर्तन या दोनों में परिवर्तन संतुलन ब्याज-दर तथा आय-स्तर मे परिवर्तन उत्पन्न करेंगे। "यह ध्यान में रखने की बात है कि आय के संतुलन मूल्यो (equilibrium values of income) में सभी परिवर्तनों मे 'गुणक-प्रक्रिया' (multiplier process) का प्रभाव मौजूद रहता है; अर्थात्, माडल या चित्र में दिखाया गया आय का प्रत्येक संतुलन मूल्य तब प्राप्त होता है जबकि गुणक-प्रक्रिया अपना कार्य कर चुकती है।"[45]

अब हम IS-रेखा में परिवर्तन को लेते हैं, (इसके साथ यह मान लिया जाता है कि LM-रेखा में कोई परिवर्तन नहीं होता है)। IS-रेखा में परिवर्तनों की हम पहले विवेचना कर चुके हैं। माना कि विनियोग में वृद्धि (या बचत में कमी) के कारण IS_1 रेखा दायें को खिसक कर IS_2 की स्थिति में आ जाती है जैसा कि चित्र 15 में दिखाया गया है। बिन्दु A प्रारम्भिक (original) संतुलन को बताता है, अर्थात् बिन्दु A बताता है कि प्रारम्भ में संतुलन ब्याज-दर R_1 तथा संतुलन आय-स्तर Y_1 है। चूंकि IS रेखा दायें को खिसक जाती है, इसलिए नये संतुलन को बिन्दु B बताता है; इसका अर्थ है कि आय-स्तर Y_1 बढ़कर Y_2 हो जाता है तथा ब्याज-दर भी बढ़ती है और वह R_1 से बढ़कर R_2 हो जाती है।[46] इस प्रकार IS-रेखा का दायें को खिसकना आय-स्तर तथा ब्याज-दर दोनों में वृद्धि करता है।
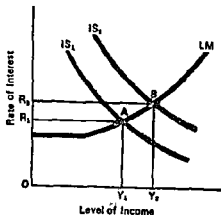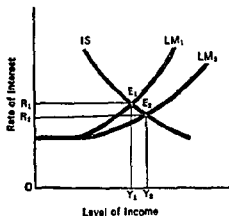
चित्र 15

Rate of Interest

IS LM₁ LM₂ E₁ E₂ R₁ R₂ O Y₁ Y₂

Level of Income

चित्र 16

अब हम LM-रेखा में परिवर्तन को लेते हैं, (तथा यह मान लेते हैं कि IS-रेखा में कोई परिवर्तन नही होता है।) LM-रेखा मे परिवर्तनों की भी हम पहले विवेचना कर चुके है। चित्र 16 मे प्रारम्भिक संतुलन को बिन्दु E_1 बताता

[45] "It should be noted carefully that all shifts in equilibrium values for income embody the multiplier process; which is to say, every equilibrium value of income shown in the model or figure is arrived at after the multiplier process has worked itself out."

[46] इसके पीछे प्रक्रिया (underlying process) इस प्रकार है। विनियोग मे वृद्धि आय मे वृद्धि करती है (जबकि गुणक-प्रक्रिया कार्य कर चुकती है); आय स्तर मे वृद्धि ब्याज-दर को बढाती है (आय में वृद्धि के साथ कार्य सम्पादन उद्देश्य के लिए द्रव्य की माँग L_1 बढ़ती है और इसलिए ब्याज-दर बढ़ती है); ब्याज में वृद्धि के कारण विनियोग तथा आय में वृद्धि पूर्ण सीमा (full extent) तक नहीं हो पाती है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि IS रेखा का दायें को खिसकना आय-स्तर तथा ब्याज-दर दोनों में वृद्धि करती है।

है जो कि LM_1 रेखा तथा IS रेखा का कटाव बिन्दु है; इसका अर्थ है कि प्रारम्भ मे संतुलन ब्याज दर R_1 तथा सतुलन आय-स्तर Y_1 है। द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि (अथवा तरलता-पसन्दगी में कमी) LM_1 रेखा को दायें को खिसकायेगी और अब उसकी नयी स्थिति LM_2 हो जाती है जैसा कि चित्र 16 मे दिखाया गया है। परिणामस्वरूप, सतुलन आय-स्तर Y_1 से बढकर Y_2 हो जाता है, परन्तु ब्याज-दर R_1 से घटकर R_2 हो जाती है।[47]

अब हम एक ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें कि IS-रेखा तथा LM-रेखा दोनों मे परिवर्तन होता है। इसको चित्र 17 द्वारा दिखाया गया है; यहाँ पर हम कई सम्भावित स्थितियों मे से केवल एक स्थिति लेते है। माना कि विनियोग मे वृद्धि होती है, इसके कारण IS_1 रेखा दायें को खिसक कर IS_2 की स्थिति मे आ जाती है। माना द्रव्य की पूर्ति मे भी वृद्धि होती है इसके कारण LM_1 रेखा दायें को खिसक कर LM_2 की स्थिति मे आ जाती है। प्रारम्भिक सतुलन को बिन्दु A बताता है अर्थात् *प्रारम्भिक सतुलन की स्थिति मे ब्याज-दर R_1 और* आय स्तर Y_1 है। IS-रेखा तथा LM-रेखा मे परिवर्तनो के कारण नये सतुलन को बिन्दु B बताता है, इसका अर्थ है कि सतुलन की नयी स्थिति मे वही ब्याज-दर R_1 रहती है, परन्तु आय-स्तर Y_1 से बढकर Y_2 हो जाता है।
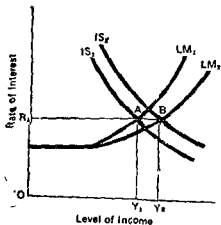
चित्र 17

[इसके पीछे प्रक्रिया (underlying process) इस प्रकार है। विनियोग-व्यय मे वृद्धि, द्रव्य-पूर्ति मे बिना किसी परिवर्तन के, आय-स्तर मे वृद्धि उत्पन्न करता है; परन्तु आय मे वृद्धि के कारण ब्याज मे वृद्धि होगी और ब्याज मे वृद्धि, आय मे वृद्धि को, कुछ ढीला या कम (dempen) करेगी। यदि द्रव्य की पूर्ति मे वृद्धि की जाती है और यह वृद्धि केवल इतनी की जाती है जितनी कि ब्याज-दर मे वृद्धि (जो कि आय मे वृद्धि के कारण होगी) को रोकने के लिए आवश्यक है, तो विनियोग में वृद्धि के परिणामस्वरूप आय मे वृद्धि या विस्तार होने का पूर्ण प्रभाव प्राप्त हो सकेगा, और ब्याज-दर में कोई परिवर्तन नही होगा। यहा पर हमने केवल एक सम्भावना की विवेचना की है, अन्य स्थितियाँ भी हो सकती है।][48]

6. निष्कर्ष (Conclusion)

स्पष्ट है कि IS तथा LM-रेखाओ का विश्लेषण ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त प्रस्तुत

[47] ब्याज-दर के घटने का कारण इस प्रकार है। हम यह मान कर चले हैं कि IS-रेखा में कोई परिवर्तन नही होता है अथवा यह कहिए कि विनियोग-माँग मे कोई परिवर्तन नही होता है। ऐसी स्थिति मे यदि द्रव्य की पूर्ति बढायी जाती है (जिसके कारण LM-रेखा दायें को खिसकती है) तो ब्याज की दर घटेगी (क्योंकि द्रव्य की पूर्ति तो बढी है जबकि विनियोग-माँग में कोई परिवर्तन अर्थात् कोई वृद्धि नही हुई है।)

[48] The underlying process is like this. A rise in investment expenditure, with no change in money supply, causes a rise in income-level, but a rise in income is dampened by a rise in interest rate resulting from the income rise. If the money supply increases by just the amount necessary to check the rise in interest rate, that would otherwise result from the rise in income, the full income-expansionary effect of the rise in investment will be realised; and there will be no change in interest rate. We have discussed here one possibility, there may be other situations or cases as well.

करता है: यह एक साथ संतुलन ब्याज-दर तथा संतुलन आय-स्तर को निर्धारित करता है। यह वस्तु-बाजार तथा द्रव्य-बाजार दोनों में एक साथ 'सामान्य संतुलन' (general equilibrium) स्थापित करता है।

मिलटन फ्रीडमेन (Milton Friedman) तथा डोन पटिनकिन (Don Patinkin) ने इस सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की है कि यह सिद्धान्त 'अधिक-सरलीकरण' (Oversimplification) करता है : यह सिद्धान्त सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को केवल दो क्षेत्रों—'वस्तु-क्षेत्र' या वास्तविक क्षेत्र (goods-sector or real sector) तथा मौद्रिक क्षेत्र (monetary sector)—में बाँटता है। इस प्रकार का विभाजन एक 'अधिक-सरलीकरण' है। यह कहा जाता है कि वस्तुओं और सेवाओं के सम्पूर्ण समन्वित ढाँचे में ब्याज-दर को एक कीमत माननी चाहिए। अतः यह सुझाव दिया गया है कि आय-स्तर तथा ब्याज-दर को, अन्य कीमतों के साथ, निर्धारित करने के लिए एक समन्वित सामान्य संतुलन रीति होनी चाहिए।[44]

क्या ब्याज की दर ऋणात्मक या शून्य हो सकती है ?
(CAN THERE BE A NEGATIVE OR ZERO RATE OF INTEREST ?)

सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ दशाओं मे ब्याज दर के ऋणात्मक (negative) या शून्य (zero) होने की सम्भावना हो सकती है, परन्तु वास्तविक जीवन मे दोनो में से कोई भी बात नही हो सकती।

सैद्धान्तिक दृष्टि से 'ब्याज की ऋणात्मक दर' केवल ऐसे समाज मे सम्भव हो सकती है जिसमें कानून तथा व्यवस्था (law and order) की अनुपस्थिति होती है। ऐसे समाज में यदि लोग बचत करते हैं तो वे उनकी रक्षा के लिए किसी शक्तिशाली व्यक्ति के पास रखेंगे, अपनी बचतों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें शक्तिशाली व्यक्ति को कुछ भुगतान देना पड़ेगा और इस भुगतान को ब्याज की ऋणात्मक दर कहा जा सकता है। परन्तु व्यवहार में ब्याज की ऋणात्मक दर नहीं होती।

सैद्धान्तिक दृष्टि से निम्न दो दशाओं मे 'शून्य ब्याज दर' होने की सम्भावना हो सकती है :

(i) जब किसी समाज की कुल आय उपभोग पर व्यय कर दी जाती है और कोई बचत तथा विनियोग नहीं होता; यह स्थिति केवल अत्यन्त प्राचीन समाज में हो सकती है, परन्तु आज के युग में इस प्रकार की पिछड़ी तथा प्राचीन अर्थ-व्यवस्था या समाज नही पायी जा सकती।

(ii) जब किसी समाज या अर्थ-व्यवस्था में पूजी की मात्रा इतनी अधिक हो कि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य हो; जब पूंजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य होगी तो ब्याज की दर भी शून्य होगी। यद्यपि उन्नतिशील अर्थव्यवस्थाओ (advanced economies) में बड़ी मात्रा में पूंजी संचय (capital accumulation) होता है, पूजी की सीमान्त उत्पादकता कम होती है। परन्तु वह शून्य नही हो सकती और इसलिए ब्याज की दर भी शून्य नही हो सकती।

प्रत्येक देश या अर्थ-व्यवस्था में कुछ प्रावैगिक तत्त्व (dynamic factors) सदैव कार्य करते रहते हैं जिनके कारण पूजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य नही हो सकती और इसलिए ब्याज की दर शून्य नही हो सकती। ये प्रावैगिक या परिवर्तनशील तत्त्व हैं—(i) जनसंख्या मे वृद्धि, (ii) युद्ध तथा भूचाल (earthquakes) जैसे प्राकृतिक प्रकोपो के कारण, इत्यादि पूंजीगत वस्तुएं नष्ट होती रहती हैं, तथा (iii) नयी खोजें व आविष्कार होते रहते हैं।

स्पष्ट है कि यद्यपि ब्याज की दर मे कमी आ सकती है परन्तु वह शून्य कभी नही हो सकती।

---

[44] It is said that interest rate should be taken as one price in the whole integrated structure of prices of goods and survices. It is suggested that a general equilibrium approach of determing income level and interest rate, along with other prices, should be developed.

स्वाभाविक ब्याज दर तथा बाजार ब्याज दर
(NATURAL RATE OF INTEREST AND MARKET RATE OF INTEREST)

1. पृष्ठभूमि (Background)

1901 में स्वीडिश अर्थशास्त्री विकसैल (Swedish Economist Wicksell) ने 'स्वाभाविक ब्याज दर' (natural rate of interest) के विचार को प्रस्तुत किया। इसको 'सामान्य' या 'वास्तविक ब्याज' ('normal' or 'real' rate of interest) भी कहते है।

प्राचीन क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर बचतों की माँग तथा बचतो की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। जहाँ बचतो की माँग तथा बचतो की पूर्ति बराबर हो जाती है अर्थात् उनमें सन्तुलन स्थापित हो जाता है, वहाँ ब्याज की दर निर्धारित हो जायेगी; इस ब्याज दर को क्लासीकल अर्थशास्त्रियो ने 'सन्तुलन बाजार दर' (equilibrium rate of interest) कहा; विकसैल ने इसके लिए 'स्वाभाविक ब्याज दर' का प्रयोग किया। क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'सन्तुलन ब्याज दर' तथा 'बाजार ब्याज दर' दोनो सदैव बराबर होगी। यदि बाजार ब्याज दर अधिक है सन्तुलन ब्याज दर से, तो बचतो की पूर्ति उनकी माँग की तुलना मे अधिक हो जायेगी, परिणामस्वरूप बाजार दर गिरेगी और गिरकर सतुलन ब्याज दर के बराबर हो जायेगी। यदि बाजार दर कम है सन्तुलन ब्याज दर से तो बचतो की पूर्ति उनकी माँग की तुलना मे कम होगी, परिणामस्वरूप बाजार ब्याज दर बढेगी और बढकर ठीक 'सन्तुलन ब्याज दर' के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार प्राचीन क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार 'बाजार ब्याज दर' सदैव 'सन्तुलन ब्याज दर' के बराबर होगी; दूसरे शब्दो मे इस सिद्धान्त के अनुसार, 'बाजार ब्याज दर' 'सन्तुलन ब्याज दर' से पृथक नही हो सकती है। इस धारणा का मुख्य कारण यह था कि क्लासीकल अर्थशास्त्री यह समझते थे कि केवल बचतें ही 'उधार देय कोषो (loanable funds) की सम्पूर्ण पूर्ति का निर्माण करती है, और 'साख' (credit) अथवा 'बैंको द्वारा निर्मित द्रव्य' ('created money' by banks) अर्थात् 'द्रव्य की पूर्ति' बाजार ब्याज दर तथा वस्तुओ की कीमतो पर कोई प्रभाव नही डालती। परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं थी जैसा कि विकसैल ने बताया, बैंको द्वारा निर्मित साख द्रव्य की पूर्ति मे वृद्धि या कमी करके बाजार ब्याज दर को प्रभावित करती है।

विकसैल ने 'स्वाभाविक' या 'सामान्य' या 'वास्तविक' (natural or normal or real) ब्याज दर तथा बाजार दर के बीच अन्तर को स्पष्ट किया और इस अन्तर को बताने में विकसैल का मुख्य ध्येय यह था कि वे 'द्रव्य की पूर्ति मे परिवर्तनो' का ब्याज दर तथा कीमतो पर प्रभाव को बताना चाहते थे। दूसरे शब्दो में, द्रव्य की पूर्ति (जिसमें बैंको द्वारा निर्मित द्रव्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है) में परिवर्तनों का प्रभाव ब्याज दर पर पडता है, यह बात विकसैल ने 'ब्याज की स्वाभाविक दर' के विचार को प्रस्तुत करके स्पष्ट की।

2. 'स्वाभाविक ब्याज दर' की परिभाषा तथा व्याख्या (Definition of the 'Natural Rate of Interest' and Its Explanation)

विकसैल ने स्वाभाविक ब्याज दर को कई प्रकार से परिभाषित किया जो कि निम्न हैं—
(i) स्वाभाविक ब्याज दर वह दर है जिस पर कि पूजी की माँग (अर्थात् बचतो की माँग) तथा बचतों की पूर्ति बराबर होती है; अथवा स्वाभाविक ब्याज दर बचतों की माँग तथा पूर्ति मे बराबरी या संतुलन स्थापित करती है। (ii) यह वह ब्याज की दर है जो कि सीमान्त उत्पादकता पूजी (marginal productivity of capital) या पूजी की प्रत्याशित प्राप्ति (expected yield of capital) के बराबर होती है। (iii) यह वह ब्याज दर है जो कि वस्तुओ के मूल्यो (अर्थात् मूल्य स्तर) के प्रति तटस्थ (neutral) होती है अर्थात् यह वस्तुओ के मूल्यो (या मूल्य-स्तर) को न घटाती है और न बढ़ाती है। (यदि ब्याज दर 'स्वाभाविक' या 'सामान्य' दर से ऊँची या नीची है तो मूल्य-स्तर को प्रभावित करेगी)। (iv) अमूर्त रूप में (abstractly), यह वह ब्याज की दर है जो कि माँग तथा पूर्ति

द्वारा स्थापित होगी जबकि द्रव्य का कोई प्रयोग नही किया जाता है और उधार लेने-देने का समस्त कार्य वास्तविक पूजीगत वस्तुओं के रूप मे किया जाता है।

विकसैल ने बताया कि **स्वाभाविक दर स्थिर या अपरिवर्तनशील नहीं होती**। वह उत्पादन की कुशलता, स्थिर (fixed) तथा तरल (liquid) पूंजी की प्राप्य मात्रा, श्रम तथा भूमि की पूर्ति पर निर्भर करती है; संक्षेप मे, वह उन हजार बातो पर निर्भर करती है जो कि एक समाज की वर्तमान आर्थिक स्थिति को निर्धारित करती है, और इनके साथ वह निरन्तर परिवर्तित अर्थात् ऊँची-नीची होती रहती है।

अब **'स्वाभाविक ब्याज दर'** तथा **'मौद्रिक ब्याज दर'** (money rate of interest) **या 'बाजार ब्याज दर' में सम्बन्ध** की विवेचना करते है। विकसैल ने बताया कि **स्वाभाविक ब्याज दर तथा बाजार दर का सदैव बराबर होना आवश्यक नहीं है**। क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार स्वाभाविक ब्याज दर (अर्थात् सतुलन ब्याज दर) तथा बाजार दर बराबर होती है, यदि इनमे कोई अन्तर है तो वह आकस्मिक (accidental or casual) है। परन्तु विकसैल के अनुसार इनमें अन्तर (divergence) आकस्मिक नही होता बल्कि बैंको की उधार देने की क्रियाओ के परिणाम-स्वरूप होता है। बैंक साख का निर्माण करके द्रव्य या उधार देय कोषो की कुल पूर्ति मे वृद्धि करते हैं और परिणामस्वरूप बाजार ब्याज दर स्वाभाविक ब्याज दर से कम हो जाती है। इसके विपरीत साख का संकुचन करके बैंक उधार देय कोषो की कुल पूर्ति मे कमी करते है और परिणामस्वरूप बाजार दर स्वाभाविक ब्याज दर से ऊँची हो जाती है।

परन्तु विकसैल ने **यह भी बताया कि यदि संतुलन स्थापित होता है तो बाजार तथा स्वाभाविक (या सामान्य) ब्याज की दरें बराबर होंगी**।[50] उन्होने इस कथन का समर्थन इस प्रकार किया। यदि किसी कारण बैंक स्वाभाविक दर से पर्याप्त नीची ब्याज दर पर ऋण (loan) उधार देते हैं तो साहसियों के लिए लाभो के अच्छे अवसर रहेंगे और विनियोग (या द्रव्य की पूर्ति) में वृद्धि होगी। इसमें सन्देह नही कि बैंको को स्वाभाविक दर मालूम नही होगी क्योंकि इसको मापने योग्य मात्रा (measurable magnitude) के रूप मे परिभाषित नही किया गया है। पूर्ण रोजगार तथा स्थिर उपभोग की मान्यताओं के आधार पर, बढा हुआ विनियोग (या द्रव्य) कीमतो में वृद्धि उसी अनुपात मे करेगा जिसमे कि द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि हुई, और बढते हुए विनियोग तथा चढ़ती हुई कीमतों का प्रगतिशील उत्थान उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि बैंको के अतिरिक्त रिजर्व समाप्त नही हो जाते तथा बाजार ब्याज दर बढ़कर सामान्य या स्वाभाविक दर के बराबर नही हो जाती,[51] यदि बैंक स्वाभाविक ब्याज दर से ऊँची दर पर द्रव्य उधार देते हैं तो ऊपर दिये गये तर्क का क्रम उलटा हो जायेगा और पुन: बाजार ब्याज दर स्वाभाविक दर के बराबर हो जायेगी।

इस प्रकार, विकसैल के अनुसार, संतुलन की स्थिति में स्वाभाविक या सामान्य दर और बाजार दर बराबर होंगी तथा असंतुलन की स्थिति में बराबर नहीं होंगी।[52]

---

[50] "Wicksell argued that the market and the normal or natural rates of interest would have to be equal for equilibrium to exist "

[51] "In support of his argument, he noted that if for any reason banks made loans at rates materially lower than the natural rate, opportunities for profits by entrepreneurs would exist and investment would increase. Bankers, of course, would not know the natural rate since it is not defined as a measurable magnitude. Assuming full employment, with consumption constant, the increased investment would produce a rise in prices proportional to the increase in money supply, and a spiral of increasing investment and rising prices would continue until the excess reserves of the banks were exhausted and the market rate of interest was raised to the level of normal or natural rate."

[52] "Thus, according to Wicksell, in equilibrium the natural or normal rate and the market rate are equal, but in disequilibrium they are unequal."

3. निष्कर्ष

विक्सैल का स्वाभाविक ब्याज का सिद्धान्त इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह ब्याज दर पर साख निर्माण के प्रभाव पर जोर देता है।[53] विक्सैल का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि ब्याज की कोई व्याख्या केवल अमौद्रिक शब्दो (non-monetary terms) मे नही की जा सकती, मौद्रिक बातें बाजार ब्याज दर पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। दूसरे शब्दो मे, अब ब्याज के सभी सिद्धान्त इस बात पर ध्यान देते हैं कि द्रव्य की पूर्ति और मांग ब्याज की दर को थोड़ा-बहुत अवश्य प्रभावित करती हैं।[54]

ब्याज का औचित्य
(JUSTIFICATION OF INTEREST)

अथवा

ब्याज क्यों दिया जाता है ?
(WHY INTEREST IS PAID ?)

1. प्राक्कथन (Introduction)

प्राचीन समय मे ब्याज को प्राय. अच्छी निगाह से नही देखा जाता था। मध्ययुगीन धर्म-शास्त्रियो (medieval theologists) ने ब्याज लेने की क्रिया को 'ब्याजखोरी' (usury) की संज्ञा देकर बुराई की। प्राचीन समय मे पूजी के लाभदायक प्रयोग के अवसर बहुत कम थे; और प्रायः ऋण धनवान व्यक्तियो द्वारा उपभोग हेतु निर्धन व्यक्तियो को दिये जाते थे। इसलिए ब्याज की बुराई की जाती थी।

मार्क्स (Marx) के अनुसार उत्पादन मे प्रयुक्त श्रम की मात्रा द्वारा मूल्य निर्धारित होता है, इसलिए समस्त मूल्य श्रमिकों को प्राप्त होना चाहिए। परन्तु पूजीवाद के अन्तर्गत उत्पादक श्रमिकों को केवल भरण-पोषण मात्र देकर समस्त आधिक्य स्वयं हड़प जाते हैं। अत· मार्क्स के अनुसार ब्याज एक 'डाका' (robbery) है और इस प्रकार मार्क्स के अनुसार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का कोई स्थान नहीं है।

परन्तु आधुनिक युग में ब्याज का भुगतान बुरा नही समझा जाता है। पूजी उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है और वह उत्पादन में सहायक है; दूसरे शब्दों मे, पूंजी में उत्पादकता है और साधन के रूप मे पूजी को उसकी उत्पादकता का पुरस्कार या कीमत मिलनी चाहिए; इसके अतिरिक्त पूजी के स्वामी के लिए ब्याज आय के समान भी है। दूसरे शब्दो मे, किसी भी अन्य उत्पत्ति के साधन की आय (earnings) की भांति ब्याज एक कीमत तथा आय का एक स्रोत (source) दोनों हैं।[55]

अत हम नीचे पहले (अ) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतन्त्र उपक्रम) के अन्तर्गत ब्याज के औचित्य का दो रूपो में—'ब्याज कीमत के रूप में' (interest as a price) तथा 'ब्याज आय के स्रोत के रूप मे' (interest as a source of income)—विवेचन करेंगे, तत्पश्चात, (ब) समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का विवेचन करेंगे।

---

53 "Wicksell's theory is important because it emphasizes the effect of credit creation upon the interest rate, thereby introducing an additional variable into the analysis."

54 "Contemporary interest theories all take account of the fact that the supply of and demand for money have something to do with the interest rate."

55 Like the earnings of any other factor of production, interest is both a price and a source of income.

2. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतन्त्र उपक्रम) के अन्तर्गत ब्याज (Interest under Capitalist Economy or Free Enterprise Economy)

(अ) ब्याज कीमत के रूप में (Interest as a Price)

कीमत के रूप में ब्याज अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यों (social functions) का सम्पादन करता है जिनके कारण ब्याज का भुगतान होता है या ब्याज को उचित बताया जाता है। मुख्य सामाजिक कार्य निम्न है :

(i) **ब्याज बचत करने के लिए आवश्यक है (Interest is necessary for savings)**—लोग बचत करने के लिए प्रोत्साहित हो इसके लिए ब्याज देना आवश्यक है। हमें समय-पसन्दगी (time preference) के लिए या तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) के त्याग के लिए ब्याज देना होगा।

परन्तु उपर्युक्त तर्क बहुत प्रभावपूर्ण नही है। इसके कारण हैं—(1) यह कहना कठिन है कि ब्याज दर निश्चित रूप से व्यक्तिगत बचतो को बहुत अधिक प्रभावित करती है या नही। (2) इसके अतिरिक्त कम्पनियों द्वारा बचत (corporate saving) की जाती है, अर्थात् संस्थाओं (institutions) द्वारा बचतें की जाती है और ये बचते व्यक्तिगत निर्णयो पर निर्भर नहीं करती। (3) अविकसित तथा विकासमान देशो मे टैक्स द्वारा प्राप्त आय मे से सरकार एक भाग बचा सकती है और इस बचत को पूजी निर्माण में लगा सकती है।

(ii) **ब्याज पूंजीगत वस्तुओं की माँग को उचित सीमाओं तक नियंत्रित करती है (Interest restraints the demand for capital goods within the limits of feasibility)**—यदि हम ब्याज दर तथा बचतों की पूर्ति के सम्बन्ध के वाद-विवाद (controversy) को छोड़ दें और यह मान लें कि किसी भी प्रकार बचतो की पूर्ति की मात्रा निर्धारित हो जाती है तो यह देखना है कि बचते क्या करती है। बचत का अर्थ है कि सब आय उपभोग वस्तुओं पर व्यय नही की जाती और बचतो (अर्थात् द्रव्य की पूर्ति) का पूजीगत वस्तुओ में विनियोग कर और अधिक उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार **बचत साधनों को स्वतंत्र (liberate) करती है**, साधन जो कि उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष बिक्री हेतु उपभोग वस्तुओ का उत्पादन करते, उनको बचत के माध्यम द्वारा पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे प्रयुक्त करना सम्भव होता है। प्रकट रूप से जो केवल द्रव्य की पूर्ति दिखायी देती है वह वास्तव में साधनो की पूर्ति है, पूजीगत वस्तुओ की पूर्ति का अंकुर है।[56]

यदि इन साधनो (अर्थात् पूजीगत वस्तुओ या बचतो) को नि शुल्क प्राप्त किया जा सकता तो इनकी माँग असीमित होती, परन्तु पूजीगत वस्तुओ की सम्भावित (potential) पूर्ति असीमित नही होती। अतः **ब्याज का मुख्य कार्य उचित सीमाओ के अन्तर्गत पूंजीगत वस्तुओं की मांग को नियंत्रित करना है।** इस नियंत्रण के अभाव में पूजीगत वस्तुओ की माँगी जाने वाली मात्रा प्राप्य साधनों से बहुत अधिक होगी और इससे अर्थ-व्यवस्था पर अत्यधिक भार पड़ेगा।[57]

(iii) **ब्याज का राशनिंग या वितरण कार्य (Rationing or allocating function of interest)**—वस्तुओ की कीमतें साधनों के वितरण या राशनिंग का कार्य करती हैं। ब्याज दर भी, उधार देय कोषो की कीमत (price of loanable funds) होने के कारण, द्रव्य-पूंजी के वितरण का कार्य करती है और इसलिए वास्तविक पूजी को विभिन्न फर्मों और विनियोग-परियोजनाओं

---

[56] "Saving *liberates resources*, which would otherwise have been producing for direct sale to consumers, and makes them available for production of capital goods. What seems to be just a supply of money is really a supply of resources, of capital goods in embryo

[57] "So one major function of interest is to restrain the demand for capital goods, within the limits of feasibility. Without this restraint, the quantity of capital goods demanded would greatly exceed the resources available and would overstrain the economy."

(investment-projects) में बाँटती है। ब्याज की दर प्राप्य उधार-देय कोषों की पूर्ति को उन विनियोग-परियोजनाओं में वितरित करती है जिनमें प्रतिफल की दर या सम्भावित लाभ (rate of return or expected profitability) इतना ऊँचा है जिसमें से प्रचलित ब्याज दर का भुगतान किया जा सके। जिन परियोजनाओं (projects) में प्रतिफल या लाभ की दर अथवा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (माना कि 10%) अधिक है ब्याज दर (माना कि 6%) से (या वह कम से कम ब्याज दर के बराबर है), उनमे पूंजी का विनियोग होगा और उन्हे कार्यान्वित किया जायेगा। इसके विपरीत जिन परियोजनाओं में पूंजी की सम्भावित सीमान्त आगम उत्पादकता ब्याज की दर से कम है उनमे पूंजी का विनियोग नही होगा और उन्हें कार्यान्वित नही किया जायेगा। **इस प्रकार ब्याज दर द्रव्य और अन्त में वास्तविक पूंजी को उन उद्योगों में वितरित करती है जिनमें कि वह सर्वाधिक उत्पादक है और इसलिए सर्वाधिक लाभदायक होती है।**[58]

परन्तु ध्यान रहे कि **ब्याज के वितरण कार्य की कुछ सीमाएँ** भी हैं अर्थात् ब्याज दर सर्वाधिक उत्पादक प्रयोगों में पूंजी के राशनिंग का काम पूर्णता के साथ नही करती है —(i) अनेक फर्में अपनी पूंजी विस्तार की आवश्यकताओं को स्वय के आन्तरिक वित्तीय साधनों द्वारा पूरा कर लेती हैं और इस प्रकार इन फर्मों में ब्याज दर द्वारा पूंजी के वितरण कार्य का प्रश्न नही उठता। (ii) बडी अल्पाधिकारी फर्में (oligopolistic firms) अपनी वस्तु की कीमतों को ऊँचा करने की अधिक अच्छी योग्यता रखती है और परिणामस्वरूप वे ब्याज-लागतों (interest costs) को उपभोक्ताओं के कधा पर डालने की अधिक अच्छी स्थिति मे होती हैं अपेक्षाकृत प्रतियोगी फर्मों के। (iii) बडी औद्योगिक फर्में केवल अपने आकार तथा आदर के कारण ही नीची ब्याज दर पर सुगमता से द्रव्य प्राप्त कर सकती हैं और छोटी फर्मों या कम विख्यात फर्मों, जिनमें प्रत्याशित (expected) लाभ की दर अपेक्षाकृत अधिक ऊँची हो सकती हैं, को अधिक ऊँची दर पर तथा कठिनाई के साथ द्रव्य प्राप्त होता है और *परिणामस्वरूप ऐसी फर्मों का जन्म या विस्तार नही हो पाता।*

(ब) ब्याज आय के रूप में (Interest as an Income)

आय के रूप मे ब्याज को उचित ठहराना आसान नहीं है। समाज मे प्रायः व्यक्तियो का एक वर्ग ऐसा होता है जो कोई उपयोगी कार्य (socially useful work) करके आय प्राप्त नही करता बल्कि ब्याज की आय खाता है। ऐसी दशा मे ब्याज को उचित ठहराना कठिन है क्योकि—(i) ब्याज खाने वाले व्यक्ति निकम्मे (idlers) हो जाते हैं और उनका रचनात्मक श्रम (creative labour) समाज को प्राप्त नही होना; तथा (ii) ब्याज की ऐसी आय असमानताओ को बढाता है।

परन्तु यहाँ पर एक बात यह ध्यान रखने की है कि पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था मे 'ब्याज को आय के रूप में' पूर्णतया समाप्त करना कठिन है क्योकि ऐसा करने से व्यक्ति बचत नही करेंगे या बहुत कम बचत करेंगे और देश में पूंजी निर्माण नहीं होगा। अतः पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था मे 'ब्याज को आय के रूप में' पूर्णतया समाप्त नही किया जा सकता; 'ब्याज से आय' को केवल नियन्त्रित (regulate) ही किया जा सकता है।

3. समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज (Interest under Socialism)

मार्क्स के अनुसार केवल श्रम ही उत्पादक होता है, उन्होंने पूंजी की उत्पादकता को मान्यता नही दी और इसलिए ब्याज के औचित्य को भी मान्यता नहीं दी। परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं है; समाजवादी देशो मे यद्यपि ब्याज शब्द का प्रयोग नही होता परन्तु ब्याज का विचार चोर दरवाजे (back-door) से प्रवेश करता है, समाजवाद मे भी अप्रत्यक्ष रूप से ब्याज विभिन्न उद्योगो मे पूंजी के राशनिंग या वितरण का कार्य करता है।

(i) समाजवादी अर्थव्यवस्था मे एक केन्द्रीय योजना बोर्ड (Central Planning Board)

---

[58] Thus, the interest rate rations or allocates money and ultimately real capital to those projects or industries in which it will be most productive and, therefore, most profitable.

होता है जो कि समस्त अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करता है। एक केन्द्रीय योजना बोर्ड के लिए प्रायः यह अत्यन्त कठिन होता है कि वह पूंजी के वितरण के सम्बन्ध में सभी निर्णय ले सके। अतः केन्द्रीय बोर्ड आर्थिक नीति की सामान्य बातों (broad matters of economic policy) पर निर्णय लेता है और सूक्ष्म निर्णय लेने के कार्य (detailed decision taking) को, जो प्रायः महत्त्वपूर्ण होता है, विकेन्द्रित (decentralize) कर देता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की भाँति, (अ) पूंजी की पूर्ति सीमित होती है जिसे सरकार विभिन्न उद्योगों में या प्रयोगों में लगाना चाहती है; तथा (ब) विभिन्न उद्योगों की उत्पादकता एक समान नहीं होती। इन दोनों कारणों के परिणामस्वरूप समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी केन्द्रीय योजना बोर्ड या विकेन्द्रित निर्णायकों के लिए कोई न कोई आदर्श (norm) या गाइड (guide) होनी चाहिए जिससे कि वे यह जान सकें कि किन प्रयोगों में पूंजी का विनियोग अधिक उत्पादक होगा और किन में कम उत्पादक। सीमित पूंजी से अधिकतम प्रतिफल प्राप्त करने की दृष्टि से विभिन्न विनियोग-परियोजनाओं (investment projects) के बीच चुनाव (screening) करने के लिए समाजवादी सरकार को गाइड के रूप में एक 'आदर्श-स्तर' (standard) निर्धारित करना पड़ता है और विकेन्द्रित-निर्णायक (decentralized decision-takers) पूंजी का विनियोग उन उद्योगों में नहीं करते जिनमें कि 'प्रतिफल की दर' (rate of return) कम हो 'निर्धारित आदर्श स्तर' (fixed standard rate) से। वास्तव में यह 'आदर्श स्तर' ही ब्याज दर है, यद्यपि समाजवादी अर्थव्यवस्था में इसे ब्याज के नाम से नहीं पुकारा जाता है। इस प्रकार समाजवाद में ब्याज दर हिसाब रखने के उद्देश्य (accounting or book-keeping purpose) के लिए आवश्यक है।[59] **स्पष्ट है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज-दर चोर दरवाजे से प्रवेश करती है और पूंजी के वितरण या राशनिंग के महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करती है। दूसरे शब्दों में, पूंजी की उत्पादकता को अप्रत्यक्ष रूप से मान्यता दी जाती है; अथवा यह कहिये कि ब्याज दर निर्धारण का एक पक्ष है 'घुमावदार' या 'पूंजीवादी' ('round-about' or 'capitalist') तरीकों की उत्पादकता।**

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज दर 'चोर-दरवाजे' से एक दूसरी प्रकार से भी प्रवेश करती है। समाजवादी सरकार देश की कुल श्रम-शक्ति (labour force) में से एक भाग 'उपभोग-वस्तुओं' के उत्पादन में तथा दूसरा भाग 'उत्पादक-वस्तुओं या पूंजीगत वस्तुओं' (producers' goods or capital goods) के उत्पादन में प्रयुक्त करती है। उत्पादक वस्तुओं की सहायता से भविष्य में उपभोग वस्तुओं का अधिक उत्पादन सम्भव होगा और भविष्य में श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा, परन्तु वर्तमान में जो श्रमिक 'उत्पादक वस्तुओं' का उत्पादन कर रहे हैं उनका भरण-पोषण (उपभोग वस्तुओं की पूर्ति द्वारा) अन्य श्रमिकों को करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोग वस्तुओं में से एक हिस्सा उत्पादक-वस्तु के उत्पादन में लगे हुए श्रमिकों को देना पड़ेगा; दूसरे शब्दों में, अन्य श्रमिकों के उपभोग वस्तुओं के हिस्सों में से एक समान प्रतिशत दर (equal percentage rate) की कटौती करनी होगी और यह कटौती (reduction) एक प्रकार से ब्याज दर की भाँति ही है। अतः **श्रमिकों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है और भविष्य में उनको अधिक आयें प्राप्त हो सकें इसके लिए उन्हें अपनी आयों में अस्थायी कटौती सहन करनी पड़ती है। यह अस्थायी कटौती और कुछ नहीं है बल्कि ब्याज है।**[60]

[59] According to *Samuelson* social engineers (i.e., economists) in Soviet Union need some form of interest rate for making efficient investment calculations; as a result, about a dozen different accounting methods are in vogue there for introducing a thinly disguised interest-rate concept into Soviet planning procedures. (But, of course, no one necessarily receives interest income from them.)

[60] "That is, labourers must wait and in order that they may enjoy greater incomes in the future, they suffer a temporary reduction of their incomes. This temporary reduction is nothing but the rate of interest."

दूसरे शब्दों में, समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज निर्धारण का दूसरा पक्ष 'उपभोग-स्थगन' ('abstinence' or 'postponing consumption for future') या 'मितव्ययता' (thrift) है; परन्तु यह उपभोग-स्थगन ऊपर से योजना समिति के दबाव द्वारा लागू (enforce) किया जाता है, व्यक्तियों की स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाता।

समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज की स्थिति के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण को प्रो. बेनहम (Benham) के शब्दों में, संक्षेप में, इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—"इस प्रकार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज की दर हिसाब लगाने के लिए प्रयुक्त की जाती है, यद्यपि किसी व्यक्ति द्वारा न ब्याज का भुगतान किया जाता है और न उसे प्राप्त किया जाता है। एक ओर ब्याज की दर उत्पादन के 'घुमावदार' या 'पूंजीवादी' तरीकों की उत्पादकता द्वारा तथा दूसरी ओर 'उपभोग-स्थगन' या 'मितव्ययता' द्वारा निर्धारित होगी। परन्तु 'उपभोग-स्थगन' या 'मितव्ययता' ऊपर से योजना समिति के दबाव द्वारा लागू किया जाता है, व्यक्तिगत बचतकर्ताओं के निर्णयो पर नही छोडा जाता। बचत तथा विनियोग एक ही बात को देखने के दो विभिन्न तरीके होंगे—अर्थात्, वर्तमान आवश्यकताओ के स्थान पर भविष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए साधनों का प्रयोग।"[61]

4. निष्कर्ष (Conclusion)

(i) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे ब्याज का 'कीमत के रूप मे' पूर्ण औचित्य है; परन्तु ब्याज को 'केवल आय के रूप मे' उचित ठहराना कठिन है।

(ii) पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनो में ब्याज दर का अस्तित्व होता है, परन्तु समाजवाद मे *ब्याज दर की उपस्थिति अप्रत्यक्ष (indirect) होती है। ब्याज की दृष्टि से पूंजीवाद तथा समाजवाद मे* **भेद ब्याज की उपस्थिति मे अन्तर के कारण नहीं होता है (क्योकि ब्याज दर तो दोनों अर्थव्यवस्थाओ में उपस्थित होती है), बल्कि दोनो में भेद इसलिए होता है कि—(अ) पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं मे व्यक्तियों का एक वर्ग ऐसा होता है जो कि अपनी निजी पूंजी (privately owned capital) की पूर्ति के बदले में ब्याज का भुगतान प्राप्त करता है जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज प्राप्त करने वाले निजी व्यक्तियों का ऐसा वर्ग उपस्थित नही होता;** (ब) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे विभिन्न परियोजनाओ (projects) का मूल्याकन बाजार कीमतो (market prices), जिनमे से ब्याज एक है, पर किया जाता है, जबकि समाजवाद में उनका मूल्याकन सरकार-निर्धारित-कीमतों (State-administered prices) जिनमें से ब्याज अर्थात् एक 'आदर्श स्तर' (standard-rate) भी एक है, पर किया जाता है।

(iii) पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों में 'ब्याज' या 'ब्याज-गणना' (interest calculation) के आधारभूत कार्य अपरिवर्तित रहते हैं और इसलिए दोनो मे ब्याज का औचित्य है। **"पूंजी प्रयोग करने वालो अर्थव्यवस्था में ब्याज-गणना एक आवश्यक पार्ट अदा करती है। हम 'पूंजीवादी अर्थव्यवस्था' के स्थान पर 'पूंजी-प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्था' का प्रयोग क्यों करते हैं? इसका कारण है कि ब्याज के कार्यात्मक औचित्य (functional justification) का सम्बन्ध इस बात से नहीं होता कि पूंजी का स्वामी कौन है, ब्याज कौन प्राप्त करता है अथवा ब्याज का भुगतान वास्तव**

---

[61] "Thus under socialism a rate of interest would be used for purposes of calculation, although nobody paid or received interest. The rate would be determined by the productivity of 'roundabout' or 'capitalistic' methods of production, on the one hand, and by abstinence or thrift on the other hand. But the abstinence or thrift would be enforced from above, by the planning committee, instead of being left to the decisions of individual savers. Saving and investment would be merely two different ways of looking at the same thing—namely, the use of resources to provide for future, instead of for current wants." —Benham, *Economics*, p 297.

में होता है या नहीं। समस्त पूंजी पर सरकार का स्वामित्व होने पर भी ब्याज समान आर्थिक कार्यों का सम्पादन करती है।"[63]

प्रश्न

1. "ब्याज शुद्ध प्रतीक्षा का पुरस्कार है। यह एक निश्चित समय में पूंजी के प्रयोग की कीमत है और इसलिए ब्याज की दर पूजी की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।" बताइए कि ब्याज की दर कैसे निर्धारित होती है।
   "Interest is the reward for pure waiting It is the price for the use of capital for a given period and as such is determined by the demand for and supply of capital." Explain how rate of interest is determined.
   [संकेत—ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या, आलोचना सहित कीजिए।]
2. ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   Examine critically the liquidity preference theory of interest
   अथवा
   इस मत की विवेचना कीजिए कि ब्याज द्रव्य की पूर्ति तथा माँग द्वारा निर्धारित होती है।
   Discuss the view that interest is determined by the supply of and demand for money.
   अथवा
   "ब्याज तरलता के परित्याग की कीमत है।" विवेचना कीजिए।
   "Interest is the price for parting with liquidity." Discuss.
   अथवा
   आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं कि ब्याज एक विशुद्ध मौद्रिक बात है?
   How far do you agree with the view that rate of interest is a purely monetary phenomenon?
   [संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर में कॅज के ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।]
3. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   Critically explain the Loanable Funds Theory of interest.
   अथवा
   ब्याज द्रव्य-कोषों की कीमत है तथा द्रव्य-कोषों की पूर्ति व माँग द्वारा निर्धारित होती है।
   "Interest is the price of money loans and is determined by the supply of and demand for money loans." Discuss.
   अथवा
   "ब्याज की दर वह कीमत है जो कि उधार देय-कोषों की माँग और पूर्ति में बराबरी (equality) स्थापित करती है।" विवेचना कीजिए।
   "The rate of interest is the price that equates the demand for and the supply of loanable funds." Discuss.
   [संकेत—इन प्रश्नों के उत्तर में उधार देय कोष सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।]

---

[63] "Interest calculations play a necessary role in a capital-using economy. Why do we say 'capital-using' rather than 'capitalistic'? Because the functional justification of interest has nothing to do with who owns the capital, who receives the interest, or even whether interest payments are made at all. Interest serves the same economic functions even if all capital is publicly owned."

4. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त, तरलता पसन्दगी सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है ?
Explain the loanable funds theory of interest. In what respects does it differ from the liquidity-preference theory ?
[संकेत—इस प्रश्न के दूसरे भाग में संक्षेप में उधार देय कोष सिद्धान्त तथा तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की तुलना करते हुए अन्तर स्पष्ट कीजिए।]
5. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
Discuss the Modern Theory of Interest.

अथवा

हिक्स का IS – LM रेखाओं का विश्लेषण किस प्रकार (i) केंज के ब्याज सिद्धान्त तथा (ii) ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त में एक समन्वय (synthesis) को बताता है ? विवेचना कीजिए।
How does Hicks' IS – LM curves analysis represent a synthesis of (i) Keynes' Theory of Interest and (ii) the Classical Theory of Interest ? Discuss.

अथवा

"संतुलन ब्याज दर पर न केवल द्रव्य की पूर्ति व माँग में, बल्कि बचतों और विनियोग में भी, बराबरी होनी चाहिए।"
चित्रों की सहायता से उस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए जो कि उपर्युक्त दोनों दशाओं को पूरा करने का प्रयत्न करता है।
"At the equilibrium rate of interest there must be equality not only between the supply and demand of money, but also between savings and investment."
Explain, with the help of diagrams, the theory which attempts to satisfy both the conditions.

अथवा

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि हिक्स का LM तथा IS – रेखाओं के शब्दों में 'सामान्य संतुलन' ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त तथा केंजियन सिद्धान्त में एक मेल है ?
Do you agree with the view that the Hicksian 'general equilibrium' in terms of LM and IS curves is a reconciliation between the Classical Theory of Interest and the Keynesion Theory ?

अथवा

"IS तथा LM रेखाओं का विश्लेषण ब्याज का एक निर्धारणीय सिद्धान्त प्रस्तुत करता है; यह एक साथ संतुलन ब्याज दर तथा संतुलन आय-स्तर को निर्धारित करता है। यह वस्तु-बाजार तथा द्रव्य-बाजार दोनों में एक साथ 'सामान्य-संतुलन' स्थापित करता है।" व्याख्या कीजिए।
"IS and LM curves analysis provides a determinate theory of interest; it determines simultaneously equilibrium rate of interest and income level. It establishes a 'general equilibrium' simultaneously in the goods-market and the money-market." Explain.

अथवा

ब्याज के किसी एक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए जिसमें ब्याज की दर निर्धारणीय हो।
Critically discuss any one theory of interest in which the rate of interest is determinate.
[संकेत—इन सब प्रश्नों के उत्तर में ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।]

6. "ब्याज के कार्यात्मक औचित्य का सम्बन्ध इस बात से नहीं होता कि पूंजी का स्वामी कौन है, ब्याज कौन प्राप्त करता है अथवा ब्याज का भुगतान वास्तव में होता है या नहीं। समस्त पूंजी पर सरकार का स्वामित्व होने पर भी ब्याज समान आर्थिक कार्यों का सम्पादन करती है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
"The functional justification of interest has nothing to do with who owns the capital, who receives the interest, or even whether interest payments are made at all. Interest serves the same economic functions even when all capital is publicly owned." Discuss.
[संकेत—ब्याज के औचित्य की पूर्ण विवेचना, विशेषतया समाजवादी अर्थव्यवस्था में, कीजिए।]
7. पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्याज के सामाजिक कार्यों की विवेचना कीजिए।
Discuss the social functions of interest under a capitalist economy.
8. समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज की स्थिति पर एक नोट लिखिए।
Write a note on the situation of interest under a socialist economy.

41

मजदूरी
(Wages)

मजदूरी का अर्थ
(MEANING OF WAGES)

श्रम (labour) के प्रयोग के लिए दी गयी कीमत (price) मजदूरी कहलाती है।[1]

उपर्युक्त परिभाषा को समझने के लिए निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए :

(अ) अर्थशास्त्र मे 'श्रम' शब्द का अर्थ शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के श्रम से लिया जाता है। अतः मजदूरी मानसिक तथा शारीरिक दोनो प्रकार के श्रम के लिए कीमत है।

(ब) अर्थशास्त्री 'श्रम' शब्द का बहुत विस्तृत अर्थ लेते हैं और मजदूरी का अर्थ निम्न वर्गों के श्रम के लिए भुगतान है :

(i) सकीर्ण अर्थ मे श्रमिक अर्थात् कारखानो तथा फैक्ट्रियो में कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के श्रमिक (blue-collar workers), क्लर्क (white-collar workers), इत्यादि।

(ii) फर्मों तथा फैक्ट्रियो के मैनेजर, उच्च अधिकारी, सरकारी अफसर इत्यादि। साधारण बोलचाल की भाषा मे इनके श्रम के पुरस्कार को वेतन कहा जाता है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से ये भी मजदूरी है और वेतन तथा मजदूरी मे कोई भी अन्तर नही किया जाता।

(iii) व्यावसायिक लोग (professional people)—वकील, अध्यापक, डाक्टर इत्यादि इनके श्रम के पुरस्कार भी मजदूरी के अन्तर्गत आते हैं।

(iv) छोटे व्यापारी (small businessmen)—बहुत छोटे खुदरा व्यापारी (very small retailers), नाई (barbers), मरम्मत करने वाले विभिन्न प्रकार के मिस्त्री, इत्यादि। ये लोग अपने व्यवसायो को चलाने में श्रम के रूप मे सेवाएं प्रदान करते हैं और इनकी सेवाओ के पुरस्कार को अर्थशास्त्री प्राय. मजदूरी के अन्तर्गत रखते हैं।

(स) बोनस, रॉयल्टी (Royalties), कमीशन (Commission), इत्यादि, इन सब को भी अर्थशास्त्री मजदूरी के अन्तर्गत मानते हैं।

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र मे 'श्रम की कीमत' अर्थात् 'मजदूरी' का अर्थ विस्तृत है।

नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी
(MONEY OR NORMAL WAGES AND REAL WAGES)

नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी का अर्थ (Meaning of Money and Real Wages)

अर्थशास्त्री नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी मे भेद करते हैं। **नकद मजदूरी वह है जो कि श्रम के लिए एक निश्चित समय (प्रति घण्टा, प्रतिदिन, प्रति हफ्ता, प्रति माह, इत्यादि) में द्रव्य के**

[1] Wages are the price paid for the use of labour.

रूप में दी जाती है। परन्तु नकद मजदूरी से किसी श्रमिक की वास्तविक स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं होता, इसके लिए असल या वास्तविक मजदूरी की जानकारी आवश्यक है।

वास्तविक मजदूरी वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को बताती है जो कि एक व्यक्ति अपनी नकद या द्राव्यिक मजदूरी से प्राप्त कर सकता है; दूसरे शब्दों में, वास्तविक मजदूरी द्राव्यिक मजदूरी की 'क्रय शक्ति' (purchasing power) होती है,[1] वास्तविक मजदूरी में नकद मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ तथा सुविधाएं भी शामिल होती हैं, जैसे व्यक्ति को नि.शुल्क डाक्टरी सहायता, सस्ता मकान, बोनस, इत्यादि।

एक व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी उसकी द्राव्यिक मजदूरी पर तथा खरीदी जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों पर निर्भर करती है। ध्यान रहे कि द्राव्यिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी आवश्यक रूप से एक दिशा में नहीं चलती। उदाहरणार्थ, यह सम्भव है कि द्राव्यिक मजदूरी बढ़े और इसके साथ-साथ वास्तविक मजदूरी घटे यदि वस्तुओं की कीमतें, द्राव्यिक मजदूरी (money wages) में वृद्धि की अपेक्षा, अधिक तेजी से बढ़ती हैं।

वास्तविक मजदूरी को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Real Wages)

एक व्यक्ति की सही आर्थिक स्थिति का ज्ञान उसकी द्राव्यिक मजदूरी से नहीं बल्कि वास्तविक मजदूरी से होता है। विभिन्न व्यवसायों में वास्तविक मजदूरी भिन्न-भिन्न होती है। वास्तविक मजदूरी निम्न तत्त्वों से प्रभावित होती हैं :

(1) **द्रव्य की क्रय शक्ति** (Purchasing power of the money)—एक व्यक्ति अपनी एक निश्चित द्राव्यिक आय से अधिक वस्तुएं और सेवाएं खरीद सकता है यदि उनकी कीमतें कम है। एक छोटे शहर में बहुत बड़े शहर (जैसे कलकत्ता, बम्बई इत्यादि) की अपेक्षा, प्रायः वस्तुए और सेवाएं सस्ती होती हैं। यदि एक छोटे शहर मे एक व्यक्ति या मजदूर को प्रति माह 200 रुपये द्राव्यिक मजदूरी मिलती है तो उसकी वास्तविक मजदूरी उतने ही रुपये पाने वाले बड़े शहर के मजदूर की अपेक्षा अधिक होगी। कारण स्पष्ट है कि छोटे शहर मे मुद्रा की क्रय शक्ति अधिक होती है अपेक्षाकृत बड़े शहर के।

(2) **अतिरिक्त आय** (Extra earnings)—किसी व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने के लिए हमें अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली आय को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरणार्थ,

(i) एक अध्यापक की वास्तविक आय उसके नकद वेतन से अधिक हो सकती है यदि वह पुस्तके तथा लेख लिखकर रॉयल्टी प्राप्त करता है।

(ii) एक फैक्ट्री में कार्य करने वाले मजदूर की वास्तविक मजदूरी नकद मजदूरी से अधिक होगी यदि उसके आश्रितों (स्त्री तथा बच्चो) को स्थान विशेष पर घरेलू नौकरों के रूप मे कार्य या अन्य प्रकार का कार्य आसानी से मिल जाता है।

(3) **अतिरिक्त सुविधाएं** (Extra facilities)—यदि किसी व्यवसाय मे एक व्यक्ति को अपनी नकद मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य सुविधाएं जैसे, नि:शुल्क डाक्टरी सहायता (free medical aid), नि शुल्क या सस्ते किराये पर मकान की सुविधा, स्कूल में बच्चों की फीस माफ की सुविधा, इत्यादि प्राप्त हैं तो उस व्यक्ति की असल मजदूरी अधिक होगी।

(4) **कार्य का स्वभाव** (Nature of employment)—(i) कुछ कार्य कठिन, अरुचिकर तथा जोखिमपूर्ण होते हैं, जैसे कोयले की खानों में मजदूरी का कार्य, रेलवे ड्राइवर का कार्य, लोहा गलाने की भट्टी के मजदूर (blast furnace worker) का कार्य, इत्यादि, इस प्रकार के कार्यों मे नकद मजदूरी ऊँची होने पर भी वास्तविक मजदूरी कम होगी। इसके विपरीत कुछ कार्य साफ, रुचिकर

---

[1] Real wages indicate the quantity of goods and services which one can obtain with his money wages, in other words, real wages are the 'purchasing power' of money wages.

तथा आदरपूर्ण होते हैं (जैसे एक अध्यापक का कार्य), इस प्रकार के कार्यों मे नकद मजदूरी की अपेक्षा वास्तविक मजदूरी अधिक होगी ।

(ii) **कार्य करने की दशाओं** जैसे कार्य करने के घण्टो, छुट्टियो इत्यादि पर भी वास्तविक मजदूरी निर्भर करती है । यदि दो व्यक्ति दो व्यवसायो मे समान नकद मजदूरी पाते हैं और प्रथम व्यवसाय मे प्रतिदिन 5 घण्टे कार्य करना पडता है तथा साल भर मे पर्याप्त छुट्टियाँ मिलती हैं, जबकि दूसरे व्यवसाय मे 8 घण्टे कार्य करना पडता है और साल भर मे कम छुट्टियाँ मिलती हैं, तो प्रथम व्यवसाय की वास्तविक मजदूरी अधिक होगी अपेक्षाकृत दूसरे के ।

(iii) वास्तविक मजदूरी **कार्य की नियमितता** (regularity of employment) या **कार्य की अवधि** (period of employment) पर भी निर्भर करती है । यदि एक व्यक्ति को साल भर में नियमित रूप से कार्य मिलता है और उसे प्रति माह 200 रुपये नकद मजदूरी मिलती है, जबकि एक दूसरे व्यक्ति को साल भर मे केवल 4 महीने कार्य मिलता है तथा उसे प्रति माह 300 रु. नकद मजदूरी मिलती है, तो दूसरे व्यक्ति की नकद मजदूरी अधिक होने पर भी उसकी वास्तविक मजदूरी कम होगी अपेक्षाकृत पहले व्यक्ति के ।

(5) **व्यावसायिक व्यय** (Trade or job expenses)—कुछ व्यवसायो मे व्यक्तियो को अपनी कार्यकुशलता का एक अच्छा स्तर बनाये रखने के लिए कुछ व्यय करने पड़ते हैं । उदाहरणार्थ, एक प्रोफेसर को अपने विषय से सम्बन्धित नवीनतम पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं इत्यादि पर पर्याप्त व्यय करना पडता है तभी वह विषय से सम्बन्धित विकास की आधुनिक प्रवृत्तियो से जानकार रह सकता है । अत: एक प्रोफेसर की वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने के लिए पुस्तकों पर व्यय को घटाना आवश्यक है ।

(6) **बिना भुगतान के अतिरिक्त कार्य** (Extra work without payment)—यदि किसी व्यक्ति को कार्य के नियमित घण्टो के अतिरिक्त और अधिक कार्य करना पडता है परन्तु उसके लिए कोई भुगतान नही मिलता, तो उस व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी कम हो जायेगी । उदाहरणार्थ, एक सरकारी दफ्तर मे कार्य करने वाले चपरासी को दफ्तर मे 8-10 घण्टे कार्य करने के अतिरिक्त 1-2 घण्टे सरकारी अफसर के घर पर भी कार्य करना पडता है जिसके लिए प्राय: उसे कोई भुगतान नही मिलता, इस प्रकार उसकी वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है ।

(7) **ट्रेनिंग का समय तथा व्यय** (Training period and expenses)—कुछ व्यवसायो मे कार्य करने के लिए लम्बे समय तक ट्रेनिंग लेनी पड़ती है और पर्याप्त धन व्यय करना पडता है, जैसे डाक्टर, इजीनियर, इत्यादि का व्यवसाय । अत: वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करते समय ट्रेनिंग की अवधि तक उसके व्यय को ध्यान मे रखना पडता है ।

(8) **भविष्य में उन्नति की आशा** (Good future prospects)—यदि किसी व्यवसाय मे व्यक्तियो के लिए भविष्य मे पद-उन्नति (promotion) के अच्छे अवसर रहते हैं, तो ऐसे व्यवसायो मे आरम्भ मे नकद मजदूरी के कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक होगी ।

मजदूरी के भुगतान की रीतियां
(METHODS OF WAGE PAYMENT)

श्रमिकों को मजदूरी कई ढग से दी जाती है । मजदूरी के भुगतान की मुख्य रीतियां दो है—(1) समयानुसार मजदूरी (Time Wages), तथा (2) कार्यानुसार मजदूरी (Piece Wages) प्रत्येक रीति का विस्तृत रूप से नीचे विवेचन किया गया है ।

समयानुसार मजदूरी (Time Wages)

जब मजदूरी कार्य करने के समय के आधार पर ही दी जाती है तो उसे 'समयानुसार मजदूरी' (time wages) कहते हैं । यह समय, सामान्यतया एक घण्टा, एक दिन, एक सप्ताह या एक महीने

होता है। इस रीति में एक समान कार्य के लिए प्रत्येक मजदूर को समान मजदूरी मिलती है चाहे कोई मजदूर अपेक्षाकृत कम कार्य करे या अधिक। इस रीति के अन्तर्गत मजदूर द्वारा किये गये कार्य का मजदूरी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता है, परन्तु मालिक (employer) चाहे तो कार्य का एक न्यूनतम मान (minimum standard) तय कर सकता है।

समयानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Time Wages)

संसार मे समयानुसार मजदूरी अधिक प्रचलित है। इसके मुख्य गुण निम्न हैं·

(1) इस रीति के अन्तर्गत **श्रमिको के रोजगार में स्थायित्व** रहता है। यदि मालिक 5-10 दिन को किसी कारणवश कार्य बन्द कर देता है तो भी श्रमिक का रोजगार बना रहता है, कार्य आरम्भ होते ही वह पुन काम पर लग जाता है और उसका रोजगार सुरक्षित रहता है। श्रमिक की बीमारी की दशा मे भी उसका रोजगार बना रहता है और प्राय. उसको मजदूरी मिलती है।

(2) इस रीति के अन्तर्गत **श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता** चूंकि मजदूरी एक निश्चित समय तक कार्य करने पर मिलती है, इसलिए मजदूर को अधिक उत्पादन करने के लिए बहुत तेजी से कार्य करने का लालच नही रहता। वह सुविधानुसार औसत दर्जे की तेजी से कार्य करता है, परिणामस्वरूप उसे अधिक आद्योगिक थकान नही होती और उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पड़ता।

(3) **जब कार्य बारीक हो, अधिक सतर्कता और व्यक्तिगत ध्यान** (more care and individual attention) **चाहता हो, या नाजुक मशीन** (delicate machine) **का प्रयोग किया जा रहा हो**, तो समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त होती है क्योकि ऐसी स्थितियो मे जल्दबाजी से कार्य बिगड जाता है।

(4) **जब किसी कार्य का प्रमापीकरण** (standardization) **नहीं होता और इसलिए उसे ठीक प्रकार से नहीं मापा जा सकता** (जैसे, डाक्टर, अध्यापक, मैनेजर, इत्यादि के कार्य) तो ऐसी दशा में समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त रहती है।

(5) समयानुसार मजदूरी के अन्तर्गत समय की कोई पाबन्दी नही होती है, इसलिए **कार्य सावधानी से किया जाता है**, कार्य करने की एक उचित गति (speed) रखी जा सकती है **जिससे मशीनों तथा औजारों की टूट-फूट कम होती है तथा माल की बर्बादी** (waste) **नहीं होती है।**

(6) यह रीति **कार्य में नियमितता तथा निश्चितता लाती है**। मालिक को बार-बार नये मजदूरो की खोज नही करनी पड़ती है, तथा मजदूर भी प्रायः अपने रोजगार के बारे मे निश्चित रहते हैं। इस प्रकार कार्य नियमितता के साथ चलता रहता है।

समयानुसार मजदूरी के दोष (Demerits of Time Wages)

समयानुसार मजदूरी के कुछ दोष भी है जो इस प्रकार हैं·

(1) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिको को **कार्य के अनुसार मजदूरी नहीं मिलती**। प्रत्येक मजदूर को निश्चित समय कार्य करने पर समान मजदूरी मिलती है चाहे वह कम काम करे या अधिक। प्राय: श्रमिक अधिक कुशलता के साथ कार्य नही करते क्योकि वे जानते हैं उन्हें एक पूर्व निश्चित मजदूरी मिलेगी। परिणामस्वरूप इस रीति के अन्तर्गत **कार्यकुशलता** (efficiency) **को प्रोत्साहन नहीं मिलता।**

(2) इस रीति के कारण प्राय· श्रमिक अपने **कर्तव्य की उपेक्षा करते है और सुस्ती से कार्य** करते हैं। श्रमिक यह जानते हैं कि एक निश्चित समय के पश्चात् उन्हें एक पूर्व निर्धारित वेतन अवश्य मिल जायेगा, परिणामस्वरूप वे आराम तथा सुस्ती से कार्य करते हैं और अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं।

कुशल श्रमिको के ऊपर इस रीति का बुरा प्रभाव पडता है। कुशल श्रमिकों को कोई द्राव्यिक प्रेरणा नही मिलती है, इसलिए वे आराम पसन्द हो जाते हैं और उनकी कार्य क्षमता मे धीरे-धीरे कमी होती जाती है।

(3) उद्योगपतियों या मालिकों को प्रायः कम काम के लिए अधिक मजदूरी या वेतन देना पड़ता है; इसका कारण स्पष्ट है कि श्रमिक प्रायः सुस्ती और आराम के साथ कार्य करते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा कम उत्पादन किया जाता है।

(4) इस रीति के अन्तर्गत मालिक को पर्याप्त मात्रा में निरीक्षण व्यय करना पड़ता है। श्रमिकों से ठीक मात्रा में काम लेने के लिए उद्योगपति को कई निरीक्षक (supervisors) रखने पड़ते हैं, इस निरीक्षण-व्यय के कारण वस्तु की उत्पादन-लागत बढ़ती है।

(5) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों तथा मालिकों में प्रायः अच्छे सम्बन्ध नहीं रहते हैं। इसका कारण है कि श्रमिक अपनी मजदूरी बढ़ाने की मांग करते रहते हैं और मालिकों की यह शिकायत बनी रहती है कि श्रमिक कम काम करते हैं। इस प्रकार आशंकाएं तथा प्रति-आशंकाएं दोनों के बीच मनमुटाव को जन्म देती हैं।

समयानुसार मजदूरी की रीति के गुण तथा दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि *इस रीति का प्रयोग निम्न स्थितियों में अधिक उपयुक्त है।*

(i) उन स्थितियों में जिनमें कि कार्य को ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता, जैसे डाक्टर, अध्यापक, मैनेजर, सुपरवाइजर, फोरमैन, स्टोर-कीपर, इत्यादि के कार्य।

(ii) उन स्थितियों में जहाँ पर कि उत्पादित वस्तु या कार्य की किस्म पर अधिक बल दिया जाता है।

(iii) उन स्थितियों में जिसमें कि उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता है क्योंकि यहाँ पर मालिक उचित नियन्त्रण रख सकता है।

(iv) उन स्थितियों में जिनमें कि नाजुक मशीनों तथा औजारों का प्रयोग किया जाता है।

(v) उन स्थितियों में जिनमें कि श्रमिक काम सीखने के रूप में (as apprentice) कार्य करते हैं।

कार्यानुसार मजदूरी (Piece Wages)

जब एक श्रमिक को मजदूरी उसके द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा उत्तमता के आधार पर दी जाती है, तो उसे 'कार्यानुसार मजदूरी' कहते हैं। इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा मजदूरी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

कार्यानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Piece Wages)

इस रीति के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं :

(1) इस रीति के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को मजदूरी उसकी योग्यता तथा कार्यक्षमता के अनुसार मिलती है। इसके निम्न अच्छे परिणाम होते हैं—(i) यह रीति श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है क्योंकि प्रत्येक श्रमिक अपने उत्पादन को बढ़ा कर अधिक से अधिक मजदूरी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। (ii) श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है। (iii) उत्पादन-व्यय कम होता है क्योंकि अधिक मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से प्रत्येक श्रमिक मन लगाकर काम करता है, कम से कम समय में अधिकतम उत्पादन करने का प्रयत्न करता है तथा मालिक को उसके कार्य-निरीक्षण के लिए सुपरवाइजर (supervisors) इत्यादि पर बहुत ही कम व्यय करना पड़ता है।

(2) यह रीति न्यायपूर्ण है क्योंकि श्रमिकों को अपने प्रयत्नों का पूरा पुरस्कार प्राप्त हो जाता है तथा मालिकों को उतनी मजदूरी देनी होती है जितना कि श्रमिक उत्पादन करते हैं।

(3) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक प्रायः यन्त्रों तथा औजारों का सावधानी से प्रयोग करते हैं क्योंकि उनके खराब हो जाने या टूटने से वे कम उत्पादन कर सकेंगे और उनकी मजदूरी कम होगी।

(4) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं, उन्हें अधिक मजदूरी प्राप्त होती

है, परिणामस्वरूप श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊंचा होता है। इसी प्रकार उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है क्योंकि उन्हें वस्तुओं की अधिक मात्रा अपेक्षाकृत कम कीमत पर प्राप्त होती है।

कार्यानुसार मजदूरी के दोष (Demerits of Piece Wages)

इस रीति के मुख्य दोष निम्नलिखित है :

(1) इस रीति के कारण वस्तुओं के गुण में गिरावट आती है क्योंकि अधिक उत्पादन (तथा अधिक मजदूरी प्राप्त करने) के लालच में प्रायः श्रमिक वस्तु के गुण की उपेक्षा करते हैं।

(2) अधिक मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से प्रायः श्रमिक अपनी शक्ति के बाहर कार्य करते हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, वे कम आयु में ही वृद्ध दिखायी देने लगते हैं तथा कुछ वर्षों में ही उनकी कार्यकुशलता कम हो जाती है।

(3) इस रीति का प्रयोग उन कार्यों के लिए उचित नहीं है जिनमें उत्पत्ति को ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता। इसी प्रकार यह रीति बारीक तथा कलात्मक कार्यों के लिए भी उपयुक्त नहीं है।

(4) इस रीति के कारण द्वेष-भावनाओं (jealousies) को प्रोत्साहन मिलता है। जो श्रमिक कम मजदूरी प्राप्त कर पाते हैं वे अधिक मजदूरी प्राप्त करने वाले कुशल श्रमिकों के प्रति जलन तथा ईर्ष्या भाव रखने लगते हैं; परिणामस्वरूप श्रमिकों के संगठन तथा सौदा करने की सामूहिक शक्ति में कमी आती है।

इतना ही नहीं, मालिक भी उन श्रमिकों के प्रति ईर्ष्या करने लगते है जो कि अधिक मजदूरी प्राप्त करते हैं और मालिक कम मजदूरी देने का प्रयत्न करने लगते हैं, इससे श्रमिकों तथा मालिकों में मन-मुटाव बढ़ता है।

(5) बीमारी, दुर्घटना इत्यादि आकस्मिक घटनाओं के दिनों में श्रमिकों को मजदूरी प्राप्त नहीं होती। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को प्रायः यह भय बना रहता है कि उनकी नौकरी किसी समय भी छूट सकती है, इस प्रकार इस रीति में रोजगार का स्थायित्व नहीं रहता है।

यह कहना कठिन है कि समयानुसार मजदूरी तथा कार्यानुसार मजदूरी में से कौनसी मजदूरी श्रेष्ठ है; दोनों के अपने गुण-दोष हैं और कोई भी रीति पूर्ण नहीं है। प्रत्येक रीति का प्रयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

मजदूरी के सिद्धान्त
(THEORIES OF WAGES)

मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती है? इस सम्बन्ध में समय-समय पर प्रचलित परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये। मजदूरी के सभी प्राचीन सिद्धान्त दोषपूर्ण हैं और वे अब मान्य नहीं हैं। नीचे हम इन विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से आधुनिक सिद्धान्त की पृष्ठभूमि की जानकारी के लिए करते है।

मजदूरी कोष सिद्धान्त
(THE WAGE FUND THEORY)

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रारम्भ में कई क्लासीकल अर्थशास्त्रियों का हाथ रहा परन्तु जे. एस. मिल (J. S. Mill) ने इस सिद्धान्त को अन्तिम (final) रूप दिया, इसलिए 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' के निर्माता मिल ही माने जाते हैं। इस सिद्धान्त की आलोचना के परिणामस्वरूप बाद में मिल ने इस सिद्धान्त को त्याग दिया।

मिल के अनुसार, श्रमिकों की मजदूरी 'जनसंख्या तथा पूंजी के अनुपात' (proportion between population and capital)* पर निर्भर करती है। जनसंख्या का अर्थ 'श्रमिकों की

* Lifted from Briggs and Jordan, *A Textbook of Economics*, p. 310.

जनसंख्या' अर्थात् 'श्रमिकों की पूर्ति' से है। देश मे उपलब्ध पूंजी का एक भाग या कोष (fund) मजदूरी के भुगतान के लिए रख दिया जाता है। यदि पूजी का यह कोष अर्थात् 'मजदूरी कोष' (wages fund) अधिक है तो श्रमिको की माँग अधिक होगी, तथा उसके कम होने पर मजदूरो की माँग कम होगी; दूसरे शब्दों मे, श्रमिको की माँग देश मे उपलब्ध पूजी अर्थात् मजदूरी-कोष पर निर्भर करती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है—(i) **मजदूरी-कोष** (wages fund) · पूंजीपति अपनी चल पूजी (circulating capital) का एक भाग मजदूरी के भुगतान के लिए अलग रख देते है जिसे 'मजदूरी कोष' कहा जाता है। इस कोष का निर्माण पिछली बचतो के आधार पर होता है तथा समय विशेष मे यह लगभग स्थिर रहता है। यह कोष मजदूरो की माँग निर्धारित करता है। यदि यह कोष अधिक है तो श्रमिको की माँग अधिक है और इस कोष के कम होने पर श्रमिको की माँग भी कम होगी। (ii) **श्रमिकों की पूर्ति** . समय विशेष में मजदूरी कोष लगभग स्थिर या निश्चित रहता है, इसलिए श्रमिको की सख्या अधिक होने पर उनकी मजदूरी की सामान्य दर (general wage rate) कम होगी तथा उनकी सख्या कम होने पर मजदूरी की दर ऊँची होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है :

$$\frac{\text{मजदूरी की सामान्य दर}}{\text{(The general wage rate)}} = \frac{\text{मजदूरी कोष (Wages fund)}}{\text{श्रमिकों की सख्या (Number of workers)}}$$

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि मजदूरी की सामान्य दर को दो प्रकार से बढाया जा सकता है—मजदूरी कोष मे वृद्धि करके या मजदूरों की सख्या में कमी करके। मजदूरी कोष पिछली बचतो द्वारा निर्मित होता है और वह समय विशेष मे स्थिर रहता है, इसलिए मजदूरी की सामान्य दर केवल मजदूरो की सख्या मे कमी होने पर ही बढ सकती है, अत मजदूरी की दर मे वृद्धि के लिए श्रमिको को अपनी जनसख्या कम करनी चाहिए। इस प्रकार मजदूरी की सामान्य दर मे वृद्धि प्राप्त करने के लिए श्रमिक सघो (Trade Unions) के प्रयत्न बेकार हैं। यदि किसी उद्योग विशेष मे श्रमिको की मजदूरी की दर मे वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है कि दूसरे उद्योगों मे मजदूरी की दर कम होगी क्योंकि मजदूरी-कोष तो सीमित या स्थिर है।

मजदूरी-कोष सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्न है :

(1) **यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि 'मजदूरी कोष' कैसे उत्पन्न होता है या कोष की मात्रा कैसे निर्धारित की जाती है।** यह तो केवल एक 'स्पष्ट तत्त्व' (self-evident fact) को बताता है कि मजदूरी कोष मे मजदूरो की सख्या का भाग देने से मजदूरी की सामान्य दर प्राप्त होती है।

(2) यह सिद्धान्त **श्रमिकों की कार्यक्षमता (efficiency) पर कोई ध्यान नहीं देता :** (i) यह आवश्यक नही है कि मजदूरी कोष एक समयावधि मे स्थिर रहे, यदि मजदूरो की कार्यक्षमता अधिक है तो वे अधिक उत्पादन करेंगे, उन्हें अधिक मजदूरी दी जायेगी तथा मजदूरी कोष अधिक होगा। (ii) श्रमिको की कार्यक्षमता मे भिन्नता होने के कारण उनकी मजदूरी मे भिन्नता होती है। 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' सभी मजदूरो को एक समान मान लेता है, उनकी कार्यक्षमता मे अन्तर पर कोई ध्यान नही देता और इस प्रकार **श्रमिको की मजदूरी में अन्तर की व्याख्या नहीं करता।**

(3) **मजदूरी की सामान्य दर पूंजी की प्राप्य कुल मात्रा पर अनिवार्य रूप से निर्भर नहीं करती** जैसा कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मान लेता है। व्यवहार मे प्राय यह देखा गया है कि नये देशो मे जिनमे कि पूजी कम होती है, मजदूरी ऊँची होती है अपेक्षाकृत पुराने देशो के जिनमे पूजी अधिक होती है।

(4) इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी में वृद्धि पूंजीपतियों के लाभ को कम कर देती है (तथा मजदूरी मे कमी लाभ को बढ़ा देती है)। वास्तव मे, बढते हुए प्रतिफल (law of increasing returns) के कारण तथा ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप श्रमिकों की उच्च कार्यक्षमता के कारण कुल उत्पादन मे इतनी वृद्धि हो सकती है कि जिससे मजदूरी तथा लाभ दोनो मे वृद्धि हो।

(5) श्रमिकों की मांग मजदूरी कोष द्वारा निर्धारित नहीं होती जैसा कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मान लेता है। श्रमिको की मांग तो श्रमिको द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग पर निर्भर करती है न कि मजदूरी कोष पर।

(6) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी बढ़ने पर लाभ कम होगा, परिणामस्वरूप पूंजी उद्योग से बाहर जाने लगेगी और श्रमिकों की मांग कम हो जायेगी। इसका कारण है कि पूजी इतनी गतिशील (mobile) नही होती जितनी कि मजदूरी कोष सिद्धान्त के निर्माता समझते थे; इसी प्रकार लाभ के थोडा कम होने से साहसी श्रमिको की मांग में एकदम कमी नही कर देते हैं।

(7) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी मे वृद्धि के परिणामस्वरूप सदैव श्रमिकों की जनसख्या मे वृद्धि होगी। ऐतिहासिक तथ्य यह बताते है कि कई देशों मे मजदूरी मे वृद्धि अर्थात् जीवन-स्तर में वृद्धि, के कारण जनसख्या मे कमी हुई, वृद्धि नही।

मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त
(THE SUBSISTENCE THEORY OF WAGES)

18वी शताब्दी मे फ्रास के फीजियोक्रेट्स सम्प्रदाय (physiocrats school) के अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। जर्मनी के अर्थशास्त्री लेसेल (Lassalle) ने इस सिद्धान्त को मान्यता दी तथा इसे 'मजदूरी का लोह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) या 'मजदूरी का ब्रेजन नियम' (Brazen Law of Wages) का नाम दिया। यह सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त पर आधारित है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की दर द्रव्य की उस मात्रा के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है जो कि श्रमिकों के जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त है। यदि किसी समय में मजदूरी जीवन निर्वाह से अधिक है, तो श्रमिको की जनसंख्या में वृद्धि होगी, श्रमिकों में रोजगार के लिए प्रतियोगिता बढेगी और मजदूरी घटकर ठीक जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जायेगी। यदि मजदूरी जीवन निर्वाह से कम है, तो बहुत से श्रमिक शादी नही कर पायेंगे, श्रमिको की जनसंख्या में कमी होगी, श्रमिको की पूर्ति, मांग की अपेक्षा, कम होने से मजदूरी बढेगी और बढकर ठीक जीवन निर्वाह के स्तर पर आ जायेगी। इस प्रकार मजदूरी की प्रवृत्ति जीवन-निर्वाह के स्तर के बराबर होने की रहती है।

मजदूरी के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त की आलोचना

सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाए निम्न हैं :

(1) जीवन-निर्वाह के स्तर को ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक श्रमिक की आवश्यकताए, परिवार के सदस्यो की सख्या, इत्यादि भिन्न-भिन्न होती हैं।

(2) यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है; यह केवल श्रमिको की पूर्ति की दशाओं की व्याख्या करता है और श्रमिको की मांग की उपेक्षा (ignore) करता है। श्रमिकों की मांग उनकी उत्पादकता के कारण होती है, इसलिए मजदूरी का सम्बन्ध उत्पादकता से होना चाहिए; परन्तु यह सिद्धान्त इस बात की उपेक्षा करता है।

(3) यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी की दर क्यों भिन्न होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार सभी श्रमिको की मजदूरी एकसमान होगी क्योंकि सभी के जीवन निर्वाह का स्तर लगभग समान होगा; परन्तु इस प्रकार की धारणा उचित नहीं है।

(4) यह सिद्धान्त न्यायसंगत तथा उचित (equitable and just) **नहीं है।** श्रमिकों को मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह के बराबर दी जाये यह बात उचित तथा न्यायसंगत नहीं है। श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए ऊँची मजदूरी आवश्यक है।

(5) यह सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण में श्रम-संघों के प्रभाव की उपेक्षा करता है।

(6) इस सिद्धान्त की **यह मान्यता गलत है कि मजदूरी जीवन निर्वाह से अधिक होने पर श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि होगी।** श्रमिकों की मजदूरी ऊँची होने से उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा और ऊँचे जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए प्राय. श्रमिक कम सन्तान चाहते हैं।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
(THE STANDARD OF LIVING THEORY OF WAGES)

यह सिद्धान्त 'जीवन-निर्वाह सिद्धान्त' का सुधरा हुआ रूप है। 19वीं शताब्दी के अन्त में 'जीवन-निर्वाह' शब्द का त्याग कर दिया गया तथा उसके स्थान पर अधिक उपयुक्त शब्द 'जीवन-स्तर' का प्रयोग किया गया।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त बताता है कि श्रमिकों की मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह योग्य ही नहीं होनी चाहिए बल्कि **मजदूरी इतनी होनी चाहिए जो श्रमिकों के उस जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए पर्याप्त हो जिसके वे आदी हो चुके हैं।** जीवन-स्तर के अन्तर्गत वे सब अनिवार्य, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएं आ जाती हैं जिनके कि श्रमिक आदी हो जाते हैं।

यदि मजदूरी जीवन-स्तर से कम है तो बहुत से श्रमिक शादी करने में असमर्थ होंगे और उनकी सख्या कम होगी, श्रमिकों की पूर्ति कम होने से उनकी मजदूरी बढ़कर ठीक जीवन-स्तर के बराबर हो जायेगी। यदि मजदूरी जीवन-स्तर से अधिक है तो श्रमिकों की पूर्ति बढ़ेगी और मजदूरी घटकर जीवन-स्तर के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की प्रवृत्ति जीवन-स्तर के बराबर होने की होती है।

मजदूरी के जीवन स्तर सिद्धान्त की आलोचना

यह सिद्धान्त भी अपूर्ण है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं ·

(1) **यह सिद्धान्त एकपक्षीय है** क्योंकि यह श्रमिकों के केवल पूर्ति पक्ष की व्याख्या करता है। मजदूरी केवल श्रमिकों के जीवन-स्तर (अर्थात् पूर्ति) द्वारा ही नहीं बल्कि उनकी उत्पादकता (अर्थात् मांग) द्वारा भी प्रभावित होती है।

(2) **यह कहना कठिन है कि मजदूरी प्रत्यक्ष रूप से जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होती है।** वास्तव में, मजदूरी जीवन-स्तर को प्रभावित करती है तथा जीवन-स्तर (श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ाकर) मजदूरी को प्रभावित करता है, दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त एक प्रकार से वृत्ताकार तर्क (circular reasoning) में फँस जाता है।

(3) यह कहना भी पूर्णतया सही नहीं है कि श्रमिक एक प्रकार के जीवन-स्तर के आदी हो जाते हैं, जीवन-स्तर एक परिवर्तनशील तत्त्व है जो समय के साथ बदलता रहता है। यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं करता कि जीवन-स्तर परिवर्तनशील है तथा उसमें वृद्धि होने से मजदूरी में वृद्धि होती है।

मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त
(THE RESIDUAL CLAIMANT THEORY OF WAGES)

अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वाकर के अनुसार श्रमिक उद्योग के अवशेष उत्पाद (residual product) का अधिकारी होता है। उद्योग के कुल उत्पादन में लगान, ब्याज तथा लाभ को निकाल देने के पश्चात् जो अवशेष बचता है वह मजदूरी

होती है। लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण कुछ निश्चित नियमों द्वारा होता है, परन्तु मजदूरी के निर्धारण का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है, कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज तथा लाभ घटा देने के बाद जो बचता है वह मजदूरी होती है। संक्षेप में,

मजदूरी = (कुल उत्पादन) − (लगान + ब्याज + लाभ)

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते है तो उनका अवशेष हिस्सा (residual share) अधिक होगा। दूसरे शब्दो मे, इस सिद्धान्त की एक मुख्य बात यह है कि यह श्रमिको की कार्यक्षमता अर्थात् उत्पादकता का सम्बन्ध मजदूरी के साथ स्थापित करता है, जबकि अन्य प्रारम्भिक सिद्धान्तो ने ऐसा नही किया। इस प्रकार यह सिद्धान्त मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार हो जाता है।

मजदूरी के अवशेष अधिकारी सिद्धान्त की आलोचना

(1) यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह केवल श्रमिकों की उत्पादकता अर्थात् उसकी माँग पर ध्यान देता है और श्रमिको की पूर्ति की उपेक्षा (ignore) करता है।

(2) यह सिद्धान्त **मजदूरी पर श्रम-संघों के प्रभाव की उपेक्षा करता है**। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी अवशेष उत्पाद (residual product) है, इसलिए श्रमिक संघ उसे प्रभावित नही कर सकते। परन्तु व्यवहार मे ऐसा नही है।

(3) जब लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त या माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त द्वारा समझाया जा सकता है तो मजदूरी के निर्धारण मे यह सिद्धान्त क्यो नहीं अपनाया जा सकता है।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF WAGES)

वितरण का एक सामान्य सिद्धान्त 'सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' है, जब इस सिद्धान्त का प्रयोग उत्पत्ति के साधन श्रम के पुरस्कार 'मजदूरी' के निर्धारण में किया जाता है तो इसे 'मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' कहते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन मे जो वृद्धि होती है उसे 'सीमान्त उत्पादकता' (marginal productivity) कहते हैं तथा पूर्ण प्रतियोगिता मे इस सीमान्त उत्पादकता के मूल्य को 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (Value of Marginal Productivity, i.e., V. M. P.) कहते हैं।[4]

[पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम उत्पादकता अर्थात् MRP तथा सीमान्त उत्पादकता का मूल्य अर्थात् VMP दोनो एक ही होते है।[5]]

श्रम की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता के कारण की जाती है, श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) कही जाती है क्योंकि इसकी माँग इसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है। अन्य सहयोगी साधनों (co-operating factors) की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब एक उद्योगपति श्रम को अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करता जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) के कारण उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। **उद्योगपति श्रम को उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ पर कि श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की उत्पादकता (अर्थात् सीमान्त उत्पादकता) का मूल्य उसके लिए दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो जाता है।**

---

[4] सीमान्त उत्पादकता (MP) के विचार तथा उसके विभिन्न अभिप्रायों—VMP, MRP इत्यादि—का विस्तृत विवरण हम पहले ही अध्याय 37 में कर चुके हैं।

[5] देखिए अध्याय 37 को।

यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक है तो उद्योगपतियो को हानि होगी और वे श्रमिको की माँग कम कर देंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उद्योगपतियो को लाभ होगा और वे श्रमिको की अधिक माँग करेंगे। अतः सन्तुलन की स्थिति में एक उद्योगपति उस बिन्दु तक श्रमिको का प्रयोग करेगा जहां पर श्रमिकों की मजदूरी ठीक उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर हो जाती है।

यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता, श्रमिको मे पूर्ण गतिशीलता, श्रम की प्रत्येक इकाई का समान होना, इत्यादि अनेक मान्यताओ पर आधारित है।

मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

(1) **यह सिद्धान्त अधूरा तथा एकपक्षीय** (Incomplete and one-sided) **है** क्योंकि यह केवल श्रमिको की माँग (अर्थात् सीमान्त उत्पादकता) की व्याख्या करता है तथा उनके पूर्ति पक्ष के बारे मे कुछ नही बताता।

(2) **श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात** (isolate) **करना अत्यन्त कठिन है।** यह अग्र विवरण से स्पष्ट होगा।

(i) किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनो के सयुक्त प्रयत्नो का परिणाम होता है; अत श्रम की सीमान्त उत्पादकता को पृथक करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु मोटे रूप मे सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis)) की सहायता से श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया ज सकता है।

(ii) कुछ अर्थशास्त्रियो (जैसे होबसन) के अनुसार साधनो के मिलने का अनुपात टेकनीकल बातो के कारण स्थिर होता है और उसे बदला नही जा सकता; इसलिए सीमान्त विश्लेषण द्वारा श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नही किया जा सकता। परन्तु सभी दशाओ मे साधनो के मिलने के अनुपात स्थिर नही होते तथा दीर्घकाल मे प्राय. अनुपातो को बदला जा सकता है।

(3) **यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है;** अतः इसे अवास्तविक तथा अव्यावहारिक कहा जा सकता है। परन्तु कई आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने अपूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक स्थिति मे इस सिद्धान्त का प्रयोग किया है। [अपूर्ण प्रतियोगिता मे श्रम की मजदूरी 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue product) के बराबर होती है, न कि 'सीमान्त उत्पादकता के मूल्य' (value of marginal product)) के बराबर।]

(4) **श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता की मान्यता गलत है;** व्यावहारिक जीवन मे श्रमिको की गतिशीलता मे विभिन्न प्रकार की रुकावटें होती हैं।

(5) सिद्धान्त की **यह मान्यता भी गलत है कि श्रमिकों की सभी इकाइयां एकरूप** (homogeneous) **होती हैं;** व्यवहार मे ऐसा नही होता।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त एक स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) रखता है जबकि वास्तविक ससार प्रावैगिक (dynamic) है। यद्यपि यह सिद्धान्त अधूरा तथा एक-पक्षीय है, परन्तु यह मजदूरी निर्धारण के महत्त्वपूर्ण तत्त्व अर्थात् श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता को प्रकाश मे लाता है।

मजदूरी का बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(THE DISCOUNTED MARGINAL PRODUCT THEORY OF WAGES)

प्रो. टाउसिग (Taussig) इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। टाउसिग के अनुसार मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कुछ कम होती है। मालिको या उद्योगपतियों द्वारा मजदूरी वस्तु के विक्रय होने से पहले अर्थात् अग्रिम रूप (advance) मे दी जाती है, अत वे अग्रिम दी हुई धन राशि पर वर्तमान ब्याज की दर से बट्टा (discount) काट लेते है। इस प्रकार मजदूरी सीमान्त उत्पादकता

के बराबर नहीं होती बल्कि उससे कुछ कम होती है क्योंकि उसमे से कुछ बट्टा काट लिया जाता है; दूसरे शब्दों में, मजदूरी 'बट्टा युक्त सीमान्त उत्पादकता' (Discounted Marginal Productivity) के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है।

मजदूरी के बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार है :

(1) उद्योगपति उत्पत्ति के अन्य साधनों को भी बिक्री से पहले उनका पुरस्कार देता है तो लगान, ब्याज इत्यादि पर बट्टा क्यों नहीं काटा जाता? केवल मजदूरी में ही बट्टा क्यों काटा जाता है?

(2) मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सभी आलोचनाएं इस सिद्धान्त पर भी लागू होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण—आधुनिक सिद्धान्त
(WAGE DETERMINATION UNDER PERFECT COMPETITION—MODERN THEORY)

मजदूरी श्रम की सेवाओं की कीमत है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूरी श्रम की मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यद्यपि मजदूरी, एक वस्तु के मूल्य की भांति, मांग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है, परन्तु फिर भी मजदूरी के अलग सिद्धान्त की आवश्यकता इसलिए है कि श्रम की कुछ विशेषताएं होती है। मजदूरी का निर्धारण मूल्य के सामान्य सिद्धान्त (general theory of value)) का ही एक विशिष्ट रूप (special case) है।

एक उद्योग मे मजदूरी उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ पर श्रमिकों की कुल मांग रेखा तथा उनकी कुल पूर्ति रेखा काटती है।

श्रमिक की मांग (Demand of Labour)

श्रमिकों की मांग किसी वस्तु के उत्पादन के लिए उत्पादकों या साहसियों द्वारा की जाती है। उत्पादक श्रम की मांग करते समय श्रम की सीमान्त उत्पादकता के द्राव्यिक मूल्य (money value of marginal productivity) पर ध्यान देते हैं। श्रम की अधिक इकाइयो का प्रयोग करने से उत्पत्ति ह्रास नियम के परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। उद्योग में प्रत्येक उत्पादक श्रमिकों को उस सीमा तक प्रयोग करेगा जहाँ पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो; उत्पादक श्रम की उत्पादकता से अधिक मजदूरी नहीं देगा। अतः श्रम की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता का द्राव्यिक मूल्य श्रम के मांग की अधिकतम सीमा है।

श्रम की मांग के सम्बन्ध मे निम्न बातें और ध्यान रखने की हैं :

(i) **श्रम की मांग व्युत्पन्न मांग** (derived demand) **होती है,** अर्थात् श्रम की मांग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग के कारण उत्पन्न [illegible] वस्तु की मांग अधिक या कम होने पर श्रमिक की मांग भी अधिक या कम होगी। इस प्रकार श्रम की मांग व्युत्पन्न मांग (derived demand) होती है जो कि उत्पादित वस्तु की मांग पर निर्भर करती है।

(ii) **श्रम की मांग अन्य सहयोगी साधनों** (cooperating factors) **की कीमतों पर भी निर्भर करती है।** यदि अन्य साधनो की कीमतें बहुत ऊंची हैं तो उनका प्रयोग कम होगा और श्रमिकों की मांग अधिक होगी।

(iii) **श्रमिकों की मांग टेकनीकल दशाओं पर भी निर्भर करती है।** किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम का किसी अन्य साधन के मिलने का अनुपात स्थिर (fixed) हो सकता है या परिवर्तनशील (variable); इसके अनुसार श्रम की मांग कम या अधिक हो सकती है।

श्रमिको की मांग तालिका या मांग रेखा मजदूरी की विभिन्न दरों पर मांगी जाने वाली श्रमिको की मात्रा को बताती है। सामान्यतया यदि मजदूरी की दर अधिक है तो श्रमिको की मांग कम होगी तथा मजदूरी कम होने पर श्रमिको की मांग अधिक होगी। दूसरे शब्दों मे, मजदूरी तथा श्रम की मांग में उलटा सम्बन्ध (inverse relation) होता है और इसलिए श्रम की मांग रेखा बायें से दायें नीचे को गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है।
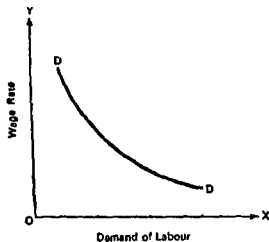
चित्र 1

श्रम की पूर्ति (Supply of Demand)

एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति का अर्थ है : (i) एक विशेष प्रकार के श्रमिको की संख्या जो कि विभिन्न मजदूरी की दरो पर अपनी सेवाओं को अर्पित (offer) करने को तत्पर हैं तथा (ii) कार्य करने के घण्टे जो कि प्रत्येक श्रमिक मजदूरी की विभिन्न दरों पर देने को तत्पर है। सामान्यतया, श्रमिको की पूर्ति तथा मजदूरी की दर मे सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है, अर्थात् ऊँची मजदूरी पर अधिक श्रमिक तथा कम मजदूरी पर कम श्रमिक कार्य करने को तत्पर होते हैं।

एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की पूर्ति की निचली सीमा (lower limit) श्रमिको के जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होती है, यदि मजदूरी उनके जीवन-स्तर की लागत से कम है तो श्रमिक कार्य करने के लिए अपनी पूर्ति नहीं करेंगे। अतः मजदूरी कम से कम श्रमिको के जीवन-स्तर के बराबर होनी चाहिए; इस प्रकार जीवन-स्तर मजदूरी की निचली सीमा निर्धारित करता है।

श्रमिकों की पूर्ति आर्थिक तथा अनार्थिक तत्त्वों (economic and non-economic factors) दोनो पर निर्भर करती है। श्रमिको की पूर्ति निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(अ) पहले हम अनार्थिक तत्त्वों को लेते हैं : (i) सुस्ती (inertia), वर्तमान रोजगार तथा वातावरण से स्नेह (attachment), सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के कारण प्रगतिशीलता, इत्यादि के कारण यह सम्भव है कि श्रमिक ऊँची मजदूरी मिलने पर भी दूसरे रोजगार मे न जायें। (ii) जनसख्या के आकार (size) तथा आयु-वितरण (age-distribution) पर भी श्रमिको की पूर्ति निर्भर करती है।

(ब) अब हम आर्थिक कारणों पर विचार करते हैं। सामान्यतया, अधिक मजदूरी मिलने पर अधिक श्रमिक अपनी सेवाऐं प्रस्तुत करने को तत्पर होगें तथा नीची मजदूरी मिलने पर श्रमिको की पूर्ति कम होगी। एक उद्योग श्रमिकों की आवश्यकतानुसार पूर्ति तब प्राप्त कर सकेगा जबकि वह श्रमिकों को ऊँची मजदूरी दे क्योंकि तभी श्रमिक दूसरे उद्योगों से इस उद्योग में हस्तांतरित (shift or transfer) हो सकेंगे; दूसरे शब्दो मे, एक उद्योग के लिए श्रमिको की पूर्ति 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' (occupational shift) पर निर्भर करती है। 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' अर्थात् एक उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति निम्न तत्त्वों पर निर्भर करती है :

(i) अन्य उद्योगों मे मजदूरी की दर; यदि अन्य उद्योगो मे उद्योग विशेष की अपेक्षा ऊँची मजदूरी है तो श्रमिक अन्य उद्योगो में जाने लगेंगे और उद्योग विशेष मे श्रमिको की पूर्ति कम होने लगेगी।

(ii) कुछ अन्य तत्त्व, जैसे श्रमिको में स्थानान्तरण के लिए सुस्ती (inertia), व्यवसाय

चित्र 2

में नौकरी की सुरक्षा (security of job), व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित आदर, बोनस तथा पेन्शन की व्यवस्था, इत्यादि तत्व भी 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' को प्रभावित करते हैं।

(स) श्रमिकों की पूर्ति को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है 'कार्य-आराम अनुपात' (work-leisure ratio)। मजदूरी में परिवर्तन दो प्रकार के प्रभावों को जन्म देता है — (i) 'प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect) : मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक कार्य करेंगे अर्थात् वे 'आराम' (leisure) के स्थान पर 'कार्य' (work) का प्रतिस्थापन करेंगे; यह 'मजदूरी में वृद्धि के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect of increase in wages) है। ध्यान रहे कि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' सदैव धनात्मक (positive) होता है अर्थात् मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक कार्य करेंगे। (ii) **'आय प्रभाव'** (income effect) : मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिकों की आय बढ़ती है, आय में वृद्धि के कारण वे अधिक आराम (more leisure) चाहते है। यह मजदूरी में वृद्धि के कारण 'आय प्रभाव' (income effect of increase in wages) हुआ। ध्यान रहे कि 'आय प्रभाव' ऋणात्मक (negative) होता है अर्थात् मजदूरी में अधिक वृद्धि आराम करने को प्रोत्साहित करती है न कि अधिक कार्य को।
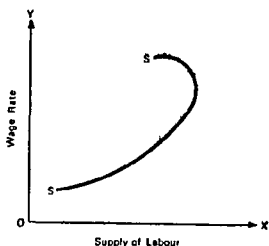
चूंकि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' धनात्मक होता है और 'आय प्रभाव' ऋणात्मक होता है इसलिए श्रम की वास्तविक पूर्ति (net supply) पर मजदूरी के परिवर्तन का सही प्रभाव जानना कठिन है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिकों की पूर्ति में वृद्धि होगी या श्रमिक अधिक घण्टे कार्य करने को तत्पर होंगे, परन्तु मजदूरी में बहुत वृद्धि हो जाने पर एक सीमा के बाद यह सम्भव है कि 'आय प्रभाव' के कारण श्रमिक कम घण्टे कार्य करें (अर्थात् उनकी पूर्ति कम हो) और अधिक आराम चाहें। ऐसी स्थिति में श्रमिकों की पूर्ति रेखा प्रारम्भ में तो चढ़ती हुई होगी परन्तु एक सीमा के बाद वह बायें को पीछे की ओर झुकती हुई (backward sloping) हो सकती है जैसा कि चित्र 2 में SS रेखा बताती है।

मजदूरी का निर्धारण (Wage Determination)

एक उद्योग के लिए मजदूरी वहाँ पर निर्धारित होगी जहाँ पर श्रमिकों की माँग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो। चित्र 3 में मजदूरी PQ या OW निर्धारित होगी क्योंकि इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति दोनों OQ के बराबर हैं। माना कि मजदूरी की दर OW नहीं है बल्कि OW_1 है, इस मजदूरी दर (wage-rate) पर श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं है। OW_1 मजदूरी की दर पर,

श्रमिकों की पूर्ति $= W_1L$

श्रमिकों की माँग $= W_1M$

श्रमिकों की अतिरिक्त पूर्ति (excess of labour) या बेरोजगारी (unemployment)

$$= W_1L - W_1M = ML$$
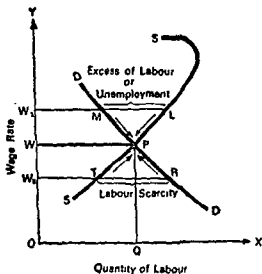
श्रमिकों की यह अतिरिक्त पूर्ति (ML) मजदूरी की दर को घटायेगी और मजदूरी घटकर P बिन्दु पर पहुँच जायेगी (जैसा कि चित्र में 'नीचे को सन्तुलन बिन्दु P की ओर जाते हुए तीरों' द्वारा दिखाया गया है) अर्थात् 'सन्तुलन मजदूरी दर' (equilibrium wage rate) PQ या WO स्थापित हो जायेगी।

चित्र 3

यदि मजदूरी की दर OW_2 है तो भी श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं है। OW_2 मजदूरी दर पर,

श्रमिकों की माँग $= W_2R$

श्रमिकों की पूर्ति $= W_2T$

श्रमिकों की अतिरिक्त माँग (excess demand) अर्थात् श्रमिकों की कमी (labour scarcity) $= TR$

चूंकि श्रमिकों की माँग अधिक है और पूर्ति कम है इसलिए श्रमिकों की कमी (TR) मजदूरी दर को बढ़ायेगी और मजदूरी बढ़कर बिन्दु P पर पहुँच जायेगी (जैसा कि चित्र में 'ऊपर को सन्तुलन बिन्दु P की ओर जाते हुए तीरों' द्वारा दिखाया गया है) अर्थात् 'सन्तुलन मजदूरी-दर' PQ (या WO) स्थापित हो जायेगी।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि मजदूरी की वह दर निर्धारित होगी जहाँ पर श्रमिकों की माँग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो जाती है।

मजदूरी की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए :

(i) मजदूरी की दर के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की यह है कि **सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।** यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक है तो उत्पादक श्रमिकों की कम माँग करेंगे तथा श्रमिक अपनी अधिक पूर्ति करने को तत्पर होंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उत्पादक श्रमिकों की अधिक माँग करेंगे जबकि श्रमिक अपनी कम पूर्ति करेंगे। इस प्रकार जब तक मजदूरी की दर सीमान्त उत्पादकता के बराबर नहीं होगी तब तक श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति में परिवर्तन होते रहेंगे और मजदूरी की कोई स्थायी सन्तुलन दर स्थापित नहीं होगी। स्पष्ट है कि 'सन्तुलन मजदूरी-दर' (equilibrium wage rate) के लिए मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होनी चाहिए।

व्यावहारिक जीवन में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम या अधिक हो सकती है परन्तु उसकी प्रवृत्ति सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है।

(ii) हमने यह मान लिया है कि सभी श्रमिक एकसमान कुशल हैं और इसलिए बाजार में मजदूरी की एक ही दर है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता, श्रमिकों की कुशलता में अन्तर होता है। ऐसी स्थिति में लगभग एक समान कुशल श्रमिकों के एक वर्ग के लिए मजदूरी की एक दर होगी। अतः कुशलता की दृष्टि से श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न मजदूरी की दरें होंगी; परन्तु मजदूरी-निर्धारण के माँग तथा पूर्ति के मूल सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं होगा। प्रत्येक मजदूरी की दर उस प्रकार के श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होगी और सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी।

एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

1. एक फर्म की दृष्टि से श्रमिकों के प्रयोग (employment) तथा मजदूरी-निर्धारण से सम्बन्धित विवेचना करने के पहले मान्यताओं को स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। हम निम्न मान्यताओं (assumptions) को लेकर चलते हैं :

(अ) श्रम-बाजार (labour-market) में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। इसके अभिप्राय (implications) हैं :

(i) उत्पादकों या फर्मों तथा श्रमिकों की बहुत अधिक संख्या होती है। फर्मों की अधिक संख्या होने के कारण प्रत्येक फर्म छोटी होती है और श्रमिकों की कुल पूर्ति का एक बहुत थोड़ा भाग प्रयुक्त करती है।

(ii) कोई एकाधिकारी तत्त्व (monopoly elements) नहीं होते। इसका अर्थ है कि फर्में या उत्पादक स्वतन्त्र रूप से (independently) कार्य करते हैं, उनमें किसी प्रकार का समझौता नहीं होता तथा उनके कोई संघ (employers' associations) नहीं होते। इसी प्रकार श्रमिकों के कोई संघ (workers' unions) नहीं होते।

(iii) विभिन्न फर्मों तथा उद्योगों के लिए श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) होती है।

(iv) सब श्रमिक एकसमान कुशल होते हैं और इसलिए मजदूरी की एक दर (a single wage rate) होती है।

(ब) श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार (commodity market) में भी पूर्ण प्रतियोगिता मान ली जाती है।

2. एक फर्म या उत्पादक के लिए मजदूरी दी हुई होती है। उद्योग में श्रमिकों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा मजदूरी निर्धारित होती है और इस मजदूरी-दर को प्रत्येक फर्म स्वीकार कर लेती है। श्रम-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है, फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा प्रत्येक फर्म श्रमिकों की कुल पूर्ति की एक बहुत थोड़ी मात्रा प्रयोग करती है और इसलिए एक फर्म मजदूरी की दर को अपनी कार्यवाहियों से प्रभावित नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में, एक फर्म के लिए
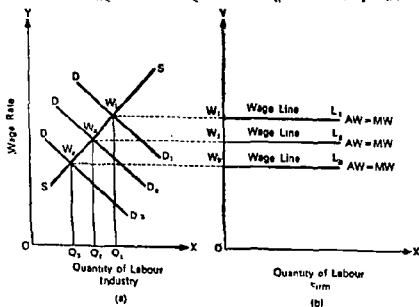
चित्र 4

'मजदूरी-रेखा' (wage-line) एक 'पड़ी हुई रेखा' (horizontal line) होती है जैसा कि चित्र 4 (b) में दिखाया गया है।

चित्र 4 (a) में, माना कि उद्योग मे श्रमिको की कुल माँग रेखा DD_1 तथा कुल पूर्ति रेखा SS है, दोनों एक दूसरे को W_1 बिन्दु पर काटती हैं। अत: उद्योग में मजदूरी की दर W_1Q_1 निर्धारित होगी; एक फर्म इस मजदूरी को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए 'मजदूरी रेखा' (wage line) W_1L_1 होगी जैसा कि चित्र 4 (b) में दिखाया गया है। यदि उद्योग मे माँग घटकर DD_2 हो जाती है तो फर्म के लिए 'मजदूरी रेखा' W_2L_2 हो जायेगी। यदि उद्योग मे माँग और घट जाती है और माँग रेखा DD_3 हो जाती है तो फर्म के लिए 'मजदूरी-रेखा' W_3L_3 हो जायेगी।

एक फर्म के लिए पड़ी हुई 'मजदूरी-रेखा' का अर्थ है कि एक दी हुई मजदूरी-दर पर फर्म जितने श्रमिक चाहे प्राप्त कर सकती है; अर्थात् एक दी हुई मजदूरी दर पर फर्म के लिए श्रमिको की पूर्ति असीमित मात्रा मे प्राप्त होती है; अत. **एक फर्म के लिए श्रमिकों की 'पूर्ति रेखा'** (या मजदूरी-रेखा) **पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) होती है।**

उपर्युक्त विवरण का एक अभिप्राय यह है कि एक फर्म को एक अतिरिक्त श्रम (an additional labour) को कार्य पर लगाने के लिए जो मजदूरी अर्थात् 'सीमान्त मजदूरी' (Marginal Wage, i.e., MW) देनी पड़ेगी वह औसत मजदूरी (Average Wage, i e., AW) के बराबर ही होगी। दूसरे शब्दो मे, **पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म के लिए** औसत मजदूरी (AW) **=सीमान्त मजदूरी** (MW)।

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म के लिए मजदूरी-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा उसे 'AW=MW' द्वारा व्यक्त करते हैं, जैसा कि चित्र 4 (b) मे दिखाया गया है।

[ध्यान रहे कि औसत मजदूरी (AW) श्रमिको को प्रयोग मे लाने के लिए फर्म की दृष्टि से औसत लागत *(Average cost of employing workers to the firm)* है तथा श्रमिको की सीमान्त मजदूरी (MW) फर्म के लिए एक अतिरिक्त श्रम को प्रयोग मे लाने के लिए सीमान्त लागत (Marginal cost of an additional worker for the firm) है।]

3. एक फर्म के लिए मजदूरी-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है अर्थात् फर्म के लिए मजदूरी-दर दी हुई होती है। **फर्म दी हुई मजदूरी-दर पर श्रमिकों की वह संख्या प्रयुक्त** (employ) **करेगी जहाँ पर कि श्रमिकों की सीमान्त** आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Product, i.e., MRP)[*] बराबर हो श्रमिकों की सीमान्त मजदूरी (Marginal Wage, i.e., MW) के। दूसरे शब्दो मे, श्रमिको के प्रयोग (employ) करने की दृष्टि से **फर्म सन्तुलन की स्थिति** मे तब होगी जबकि MRP=MW।
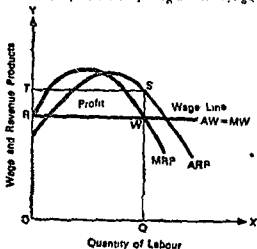
चित्र 5

यदि MRP > MW, तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त श्रम के प्रयोग करने से कुल आगम मे वृद्धि

[*] अन्य साधनो के स्थिर रखने पर, श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आगम (total revenue) मे जो वृद्धि होती है उसे श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) कहते हैं। MRP के विचार के पूर्ण विवरण के लिए अध्याय 37 को देखिए।

अधिक है उस श्रमिक की मजदूरी से। अतः फर्म को लाभ होगा और वह अतिरिक्त श्रमिकों (additional workers) को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहां पर कि MRP = MW । यदि MRP < MW, तो फर्म को श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से हानि होगी। अतः एक फर्म श्रमिकों को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहां पर कि MRP = MW; श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से यह फर्म के साम्य की दशा है।[7]

4. अल्प काल (short period) में श्रमिकों के प्रयोग की दृष्टि से एक फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ या हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। इन तीनों स्थितियों को चित्र 5, 6, 7 में दिखाया गया है।[8]

चित्र 5 में मजदूरी की दर बिन्दु 'W' पर निर्धारित होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MRP = MW के है। चूंकि ARP मजदूरी-रेखा (wage line) के ऊपर है, इसलिए फर्म को श्रमिकों के प्रयोग करने में लाभ होगा; ARP तथा AW के बीच खड़ी दूरी WS प्रति श्रमिक के प्रयोग करने से लाभ बताती है, फर्म के लिए कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए हम प्रति श्रमिक लाभ WS को प्रयुक्त किये जाने वाले श्रमिको की कुल संख्या OQ से गुणा करते हैं अर्थात् कुल लाभ आयत (rectangle) WSTR का क्षेत्रफल (area) बताता है अत :

चित्र 5 में,
मजदूरी की दर = WQ
प्रयुक्त की गयी (employed) श्रमिकों की मात्रा = OQ
फर्म को कुल लाभ = WSTR
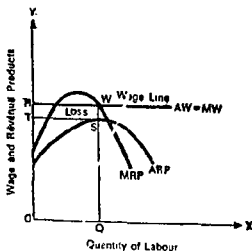
चित्र 6

[7] पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म दिये हुए मूल्य पर वस्तु का उत्पादन उस सीमा तक करती है जहां पर कि MR = MC के हो। प्रयुक्त किये जाने वाले श्रमिको की मात्रा की दृष्टि से हम MR के स्थान पर MRP तथा MC के स्थान पर MW लेते हैं। इस प्रकार दी हुई मजदूरी दर पर एक फर्म श्रमिको की वह मात्रा प्रयोग मे लाती है जहा पर कि MRP = MW के हैं।

[8] इन चित्रो को समझने के लिए दो बातों का ध्यान रखना चाहिए—(1) श्रमिको की कितनी मात्रा प्रयोग मे लायी जायेगी, इस बात को जानने के लिए हम MRP तथा MW रेखाओं पर ध्यान देते है, अर्थात् एक फर्म श्रमिको की वह मात्रा प्रयोग मे लायेगी जहाँ पर कि MRP = MW के हो। (ii) श्रमिको के प्रयोग करने की दृष्टि से फर्म के लाभ तथा हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए हम ARP (Average Revenue Productivity) अर्थात् औसत आगम उत्पादकता तथा AW (Average Wage अर्थात् औसत मजदूरी) रेखाओं पर ध्यान देते है। (ARP के विचार को पूर्णतया समझने के लिए इस पुस्तक के अध्याय 37 को देखिए।) ARP तथा AW का अन्तर लाभ तथा हानि की स्थिति को बताता है। यदि ARP > AW, तो फर्म को लाभ होगा, यदि ARP = AW, तो फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा; तथा यदि ARP < AW, तो फर्म को हानि होगी। [वस्तु के उत्पादन की दृष्टि से फर्म के लाभ-हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए हम AR तथा AC पर ध्यान देते हैं। यदि AR > AC, तो फर्म को लाभ होगा; यदि AR = AC, तो फर्म को सामान्य लाभ होगा; तथा यदि AR < AC, तो फर्म को हानि होगी। श्रमिको के प्रयोग की दृष्टि से हम AR के स्थान पर ARP तथा AC के स्थान पर AW का प्रयोग करते हैं।]

चित्र 7

चित्र 6 में,
मजदूरी की दर $=$ WQ;
प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा $=$ OQ;
फर्म को कुल हानि $=$ WSTR
चित्र 7 में,
मजदूरी की दर $=$ WQ;
प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा $=$ OQ;
फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा क्योंकि W बिन्दु पर ARP $=$ AW के है।
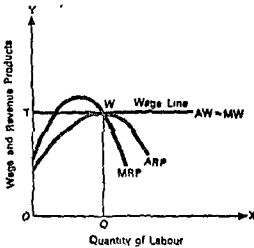
5. श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से दीर्घकाल (in the long period) में फर्म को केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होगा, उसको अतिरिक्त लाभ (excess profit) या हानि नहीं हो सकती। सामान्य लाभ प्राप्त होने का अभिप्राय है कि ARP$=$AW के।

यदि फर्म को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है अर्थात् ARP$>$AW, तो अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, इसके परिणामस्वरूप—(i) श्रमिकों की माँग बढ़ेगी और इसलिए उनकी मजदूरी (AW) बढ़ेगी, तथा (ii) वस्तु का उत्पादन बढ़ेगा, उसकी कीमत घटेगी, कीमत घटने से ARP कम होगी। इन दोनों बातों का परिणाम होगा कि ARP$=$AW के होगी और इस प्रकार फर्म को दीर्घकाल में अतिरिक्त लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। यदि फर्म को हानि प्राप्त होती है अर्थात् ARP$<$AW तो हानि प्राप्त करने वाली फर्में उद्योग को छोड़ देंगी; इसके परिणामस्वरूप—(i) श्रमिकों की माँग घटेगी और इसलिए उनकी मजदूरी (AW) घटेगी, तथा (ii) वस्तु का उत्पादन घटेगा, उसकी कीमत बढ़ेगी, कीमत बढ़ने से ARP बढ़ेगी। इन दोनों बातों का परिणाम यह होगा कि ARP$=$AW के हो जायेगी और फर्म को हानि नहीं होगी। स्पष्ट है कि श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से एक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

चित्र 8

श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा पूरी होनी चाहिए :

(i) MRP$=$MW

(ii) ARP$=$AW

चित्र 8 में बिन्दु W पर दोनों दशाएँ पूरी हो रही हैं, अतः दीर्घकाल मे मजदूरी की दर=WQ; प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ; फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण
(WAGE DETERMINATION UNDER IMPERFECT COMPETITION)

1. व्यवहार मे श्रम-बाजार (labour market) मे प्रायः पूर्ण प्रतियोगिता नही पायी जाती है। इसका अर्थ है कि व्यवहार मे श्रम-बाजार मे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले उत्पादक नही होते, उत्पादक बहुत बड़ी संख्या मे तथा छोटे (small) नही होते, कुछ उत्पादक बड़े होते हैं या एक उत्पादक बहुत बड़ा हो सकता है या कुछ बड़े उत्पादक संगठित होकर अपने संघ (associations) बना सकते हैं; इसी प्रकार से श्रमिक भी संगठित होते हैं और वे अपने संघ (unions) बना लेते हैं। श्रम बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता की कई स्थितियाँ हो सकती हैं। परन्तु सुविधा के लिए हम अपूर्ण बाजार में दो स्थितियाँ मान लेते है—(i) श्रम बाजार मे एक उत्पादक या कुछ उत्पादक बहुत प्रभावशाली होते हैं और मजदूरी दर को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित कर सकते है, या बड़े उत्पादक मिलकर संघ बना लेते है, और इस प्रकार श्रम की सेवाओ का क्रय करने की दृष्टि से वे एक बड़े उत्पादक की भाँति होते है। दूसरे शब्दो मे, अपूर्ण श्रम-बाजार मे क्रेता-एकाधिकार (monopsony) की स्थिति है। (ii) श्रम बाजार मे श्रमिक भी श्रम-संघो (labour unions) मे संगठित होते हैं और वे अपनी पूर्ति का एकाधिकारी की भाँति नियन्त्रण (monopsonistic control) करते हैं। अत. वास्तविक जगत में श्रम बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों के संघो तथा श्रमिको के संघो के बीच सौदा (bargaining) द्वारा निर्धारित होता है।

2. चूंकि श्रम बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए 'औसत मजदूरी रेखा' (average wage line, i.e., AW-line or simply 'wage line') ऊपर को चढ़ती हुई (upsloping) होती है; पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पड़ी हुई रेखा नही होती; तथा 'सीमान्त मजदूरी रेखा' (marginal wage line, i.e., MW-line) भी ऊपर को चढ़ती हुई होगी और वह 'औसत मजदूरी रेखा' (AW-line) के ऊपर होगी। अपूर्ण प्रतियोगिता मे, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, AW तथा MW बराबर नही होती। ऊपर को चढ़ती हुई MW-line का अर्थ है कि यदि उत्पादक अतिरिक्त (additional) श्रमिको को प्रयुक्त (employ) करना चाहता है तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी।

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता मे भी उत्पादक या फर्म के लिए श्रमिकों की माँग-रेखा 'सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा' (marginal revenue product curve, i.e., MRP-curve) होती है।
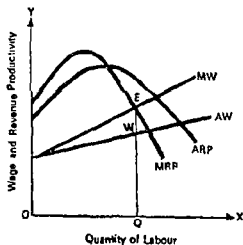
चित्र 9

3. चित्र 9 मे अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को बताया गया है। उत्पादक श्रमिकों की वह मात्रा प्रयोग करेगा जहाँ पर कि MRP=MW के है, चित्र से स्पष्ट है कि यह स्थिति E बिन्दु पर है। E से X-axis पर लम्ब (perpendicular) AW-line को W बिन्दु पर काटता है। अतः

मजदूरी की दर = WQ

श्रमिकों की प्रयुक्त (employed) मात्रा = OQ

चित्र से स्पष्ट है कि औसत मजदूरी (average wage) WQ कम है 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue productivity) EQ से। इसका अर्थ है कि श्रमिको का शोषण (exploitation) हो रहा है (ध्यान रहे कि जब AW कम होती है MRP से, तो अर्थशास्त्री इसे श्रमिकों का शोषण कहते है) चित्र से स्पष्ट है कि श्रमिको का शोषण = EQ − WQ = EW.

श्रम संघ तथा मजदूरी
(TRADE UNIONS AND WAGES)

क्या श्रम-संघ मजदूरी में वृद्धि कर सकते है ? इस सम्बन्ध मे एक विचारधारा यह है कि श्रम-संघ मजदूरी मे वृद्धि नही कर सकते। यह तर्क 'मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' पर आधारित है। यदि श्रम-संघ की कार्यवाहियो द्वारा मजदूरी में सीमान्त उत्पादकता से अधिक वृद्धि प्राप्त कर ली जाती है तो इसके दो परिणाम हो सकते हैं—(i) उत्पादको का लाभ कम हो जायेगा; या (ii) वस्तु की कीमत बढानी पड़ेगी। यदि ऊँची मजदूरी के कारण उत्पादको का लाभ कम हो जाता है तो वे वस्तु का बहुत कम उत्पादन करेंगे या उत्पादन बन्द कर देंगे, परिणामस्वरूप श्रमिकों में बेरोजगारी फैल जायेगी। यदि वस्तु की कीमत ऊँची करके ऊँची मजदूरी प्राप्त की जाती है तो वस्तु की कुल माँग मे कमी हो जायेगी, उत्पादन घटेगा और परिणामस्वरूप श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे। इस प्रकार यह कहा जाता है कि श्रम-संघ अपनी कार्यवाहियो से मजदूरी मे वृद्धि नही कर सकते।

परन्तु उपर्युक्त विचारधारा उचित नही है क्योकि मजदूरी की सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (जिस पर यह तर्क आधारित है) एकपक्षीय है, यह केवल श्रमिको की माँग पर ध्यान देता है और उनके पूर्ति-पक्ष की उपेक्षा करता है। वास्तव में, श्रम-संघ श्रमिको की माँग तथा पूर्ति दोनो को प्रभावित करके एक सीमा तक मजदूरी मे वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

श्रम-संघ निम्न परिस्थितियों में मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं :

(1) अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत श्रमिकों को अपनी सीमान्त उत्पादकता का पूरा मूल्य (full value of their marginal productivity) नही मिलता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में **श्रम संघ सीमान्त उत्पादकता के पूर्ण मूल्य के बराबर मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं।**

(2) **श्रम-संघ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि करके मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं।** श्रम-संघ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि दो प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं—(i) श्रम-संघ श्रमिकों की सामूहिक शक्ति के कारण कई दशाओ मे उत्पादकों को इस बात के लिए बाध्य कर सकते हैं कि वे श्रमिकों को कार्य करने के लिए अच्छे तथा नवीनतम यन्त्र प्रदान करे, उनको उचित मजदूरी दें तथा उनके कार्य करने की दशाओ को अच्छा करें। इन सब बातो के कारण श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि होगी और परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी मे वृद्धि होगी। (ii) श्रम-संघ कल्याणकारी कार्यों (welfare activities) मे अधिक रुचि लेकर श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि कर सकते हैं और इस प्रकार उनकी मजदूरी मे वृद्धि प्राप्त कर सकते है।

(3) **श्रम-संघ श्रमिकों के एक विशेष वर्ग के लिए मजदूरी में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं;** ऐसा वे निम्न दशाओ मे कर सकते हैं—(i) श्रमिको के विशेष वर्ग द्वारा उत्पादित वस्तु ऐसी हो जिसकी माँग बेलोचदार हो; ऐसी स्थिति मे मजदूरी मे वृद्धि के कारण वस्तु की कीमत मे वृद्धि होने से वस्तु की माँग मे कोई विशेष कमी नही होगी। (ii) श्रमिको के विशेष वर्ग की माँग बेलोचदार हो; अर्थात् उनके बिना उत्पादन कार्य सम्भव न हो और ऐसी स्थिति मे श्रम-संघ मजदूरी मे वृद्धि करा सकते हैं। (iii) दूसरी बात का अभिप्राय (implication) यह हुआ कि उत्पादक किसी दूसरे

वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी कम करेंगे। अतः एक वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी दूसरे वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी की कटौती के आधार पर प्राप्त की जा सकती है। (iv) जब विशेष प्रकार के श्रमिको की मजदूरी का बिल उत्पादक के कुल मजदूरी-बिल का एक बहुत थोड़ा भाग है तो उत्पादक को विशेष प्रकार के श्रमिकों के वर्ग को ऊँची मजदूरी देने में कोई कठिनाई नही होती।

परन्तु श्रम-संघ श्रमिकों की मजदूरी असीमित मात्रा तक नही बढा सकते। **श्रम-संघों की सौदा करने की शक्ति** (bargaining power) **या मजदूरी में वृद्धि कराने की शक्ति की सीमाएँ** (limitations) **होती हैं।** मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) **श्रम-संघ की सौदा करने की शक्ति 'श्रमिकों के प्रतिस्थापन की लोच'** (elasticity of substitution of labour) **पर निर्भर करती है।** उत्पादन तकनीक में ऐसे परिवर्तन किये जा सकते हैं जिससे कि मशीनो का प्रयोग अधिक हो और श्रमिको का प्रयोग कम; दूसरे शब्दो मे, एक सीमा तक श्रमिको को मशीनो द्वारा प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है। श्रमिकों का प्रतिस्थापन पूंजी (capital, i.e., machines, tools, etc.) द्वारा ही नही होता बल्कि 'श्रमिकों का प्रतिस्थापन श्रमिकों द्वारा' (substitution of labour by labour) भी होता है। जिस सीमा तक असंघीय श्रमिक (non-union workers), जिन्हे 'blacklegs' कहा जाता है, प्राप्त हो सकते हैं उस सीमा तक श्रम संघो का प्रभाव कम हो जाता है, उद्योगपति दूसरे क्षेत्रों से भी श्रमिको का आयात (import) कर सकते है। श्रमिको के प्रतिस्थापन की लोच जितनी अधिक होगी उतनी श्रम-संघों की सौदा करने की शक्ति कमजोर पड़ेगी और उन्हे मजदूरी मे वृद्धि कराने मे कम सफलता प्राप्त होगी।

(2) **श्रम-संघों की सौदा करने की शक्ति 'अन्य साधनों की पूर्ति की लोच'** (elasticity of supply of alternative factors) **पर निर्भर करती है।** श्रमिको को अन्य साधनों से किस सीमा तक प्रतिस्थापित किया जा सकता है यह केवल उत्पादन मे तकनीकी परिवर्तनो (technical changes in production) की सुगमता पर ही नही बल्कि इस बात पर भी निर्भर करेगा कि दूसरे साधनों की अतिरिक्त पूर्ति कितनी सुगमता से प्राप्य है। उदाहरणार्थ, यदि 'श्रमिको की बचत करने वाली मशीनो' (labour-saving machines) की पूर्ति सीमित है या अपर्याप्त है (जैसा कि boom periods में हो जाता है) तो उद्योगपतियो को श्रम-संघो के दबाव के अन्तर्गत श्रमिको को ऊँची मजदूरी देनी पड़ेगी; इसके विपरीत दशाओ मे श्रमिक-संघ मजदूरी मे वृद्धि प्राप्त करने मे असफल रहेंगे।

(3) **श्रमिकों के सौदा करने की शक्ति 'वस्तु की मांग की लोच'** (Elasticity of Demand of the Commodity) **पर भी निर्भर करती है।** यदि श्रमिको द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग अधिक लोचदार है *तो ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप वस्तु की ऊँची कीमत उपभोक्ताओं से नही ली* जा सकेगी; इसके विपरीत यदि वस्तु की मांग बेलोचदार है तो उत्पादक श्रमिको को ऊँची मजदूरी देकर उसको उपभोक्ताओ से वस्तु की ऊँची कीमत के रूप मे निकाल लेगे।

ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता
(ECONOMY OF HIGH WAGES)

प्रकट रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि 'नीची मजदूरी' (low wages) सस्ती (cheap) होती है। परन्तु यह धारणा सदैव उचित नहीं है। नीची मजदूरी के कारण श्रमिको की कार्यक्षमता (efficiency) नीची होती है, उत्पादन कम होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत ऊँची होती है। **इस प्रकार नीची मजदूरी वास्तव में ऊंची मजदूरी होती है।**

ऊँची मजदूरी के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता ऊँची रहती है, अधिक उत्पादन होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत कम पड़ती है। इस प्रकार ऊंची मजदूरी **सस्ती मजदूरी कही जाती है।**

वास्तव में, एक उत्पादक मजदूरी पर व्यय (outlay in wages) तथा उत्पत्ति (output) के सम्बन्ध पर, जिसे कि आधुनिक अर्थशास्त्री 'मजदूरी की लागत' (wage costs) कहते है, ध्यान देता है। 'ऊँची द्राव्यिक मजदूरी' (high money wages) के कारण यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं तो उत्पादक को वास्तव मे 'मजदूरी की लागत' नीची पड़ती है; इसके विपरीत यदि 'नीची द्राव्यिक मजदूरी' के कारण श्रमिक कम उत्पादन करते है तो उत्पादक को वास्तव मे 'मजदूरी की लागत' ऊँची पडती है। स्पष्ट है कि **एक उत्पादक 'नीची द्राव्यिक मजदूरी'** (low money wages) **पर नहीं बल्कि वह 'नीची मजदूरी-लागत'** (low wage-cost) **पर अपनी आँख रखता है।**

ऊँची मजदूरी प्राय 'नीची मजदूरी-लागत' को जन्म देती है, और इसलिए यह कहा जाता है कि ऊँची मजदूरी सस्ती मजदूरी होती है। यह निम्न से स्पष्ट होता है .

(i) ऊँची मजदूरी से श्रमिको का जीवन-स्तर ऊँचा रहता है, उनकी कार्यक्षमता ऊँची रहती है; उत्पादन अधिक होता है, परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम पडती है। दूसरे शब्दो में, 'नीची मजदूरी-लागत' पड़ती है।

(ii) ऊँची मजदूरी देने से उत्पादक को श्रम-बाजार से अधिक कुशल श्रमिक मिलते हैं* परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन होता है और उत्पादन की लागत कम पडती है; दूसरे शब्दो मे, 'नीची मजदूरी-लागत' पडती है।

(iii) ऊँची मजदूरी के कारण श्रमिक सन्तुष्ट रहते हैं और उत्पादक तथा श्रमिकों मे अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बने रहते हैं, श्रमिक दिल लगाकर कार्य करते है, परिणामस्वरूप उत्पादन अधिक तथा नियमित रूप से होता है।

स्पष्ट है कि ऊँची मजदूरी मितव्ययितापूर्ण (economical) होती है, अथवा ऊँची मजदूरी 'नीची मजदूरी-लागत' को जन्म देती है।

मजदूरी में अन्तर
(WAGE DIFFERENTIALS)

व्यावहारिक जीवन मे मजदूरी मे अन्तर पाया जाता है : (अ) यह अन्तर विभिन्न व्यवसायो मे कार्य करने वाले श्रमिको मे होता है; तथा (ब) एक ही व्यवसाय में कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी मे भी अन्तर पाया जाता है।

यहाँ पर हम उन कारणों का अध्ययन करते हैं जो कि मजदूरी मे अन्तरो को उत्पन्न करते हैं। मजदूरी में अन्तरो को उत्पन्न करने वाले कारणो को आधुनिक अर्थशास्त्री निम्न सामान्य वर्गों (broad categories) मे बाँटते है :

विभिन्न व्यवसाय मे मजदूरी मे अन्तर के कारण:

1. **श्रम-बाजार में 'अप्रतियोगी समूह'** (Noncompeting Groups in the Labour Market)
2. **'समकारी अन्तर'** (Equalizing Differences)

एक ही व्यवसाय में मजदूरी मे अन्तर के कारण:

3. **'असमकारी अन्तर'** (Nonequalizing Differences), इनको दो भागो मे बाँटा जाता है—(अ) **बाजार अपूर्णताएँ** (Market Imperfections) तथा (ब) **श्रम के गुणों में अन्तर** (Differences in Labour Quality)

आगे हम उपर्युक्त कारणो का विस्तृत विवरण देते है :

1. श्रम बाजार में अप्रतियोगी समूह (Noncompeting Groups in the Labour Market)

श्रमिक एकरूप नही होते, उनमे मानसिक तथा शारीरिक गुणो एवं शिक्षा तथा प्रशिक्षण

* By paying high wages it may be possible for the producer to 'cream' the labour make is i.e., to attract efficient workers.

(training) की दृष्टि से अन्तर होता है। अतः श्रमिकों को विभिन्न वर्गों या समूहो (जैसे अकुशल तथा अर्द्धकुशल श्रमिको का वर्ग, डाक्टरो का वर्ग, अध्यापको का वर्ग, इत्यादि) मे बाँटा जा सकता है। एक वर्ग या समूह के अन्दर श्रमिको में प्रतियोगिता होती है परन्तु विभिन्न वर्गों या समूहो (जैसे डाक्टर तथा अध्यापक, अकुशल तथा कुशल श्रमिको) मे आपस मे प्रतियोगिता नही होती, अत इन वर्गों या समूहो को 'अप्रतियोगी समूह' (noncompeting groups) कहते है।

उदाहरणार्थ, डाक्टरो की शिक्षा तथा प्रशिक्षण मे लम्बा समय लगता है तथा अधिक खर्चा होता है जिसे थोडे व्यक्ति ही कर सकते है, परिणामस्वरूप डाक्टरो की पूर्ति कम होगी और उनका वेतन अथवा मजदूरी अधिक होगी। इसके विपरीत, दूसरे वर्ग अकुशल श्रमिको को लीजिए; अकुशल श्रमिकों मे प्रशिक्षण लागत लगभग नही के बराबर होगी, परिणामस्वरूप उनकी पूर्ति बहुत अधिक होगी और उनकी मजदूरी बहुत कम होगी। दूसरे शब्दो में, प्रत्येक 'अप्रतियोगी समूह' मे श्रमिको की मजदूरी उनकी माँग तथा पूर्ति की दशाओ के अनुसार निर्धारित होगी और इन 'अप्रतियोगी समूहो' की मजदूरियो मे अन्तर होगा।

'अप्रतियोगी समूह के अन्दर अप्रतियोगी समूह' (noncompeting groups within noncompeting groups) भी होते हैं। उदाहरणार्थ, 'डाक्टरो के अप्रतियोगी समूह के अन्दर दिमाग के सर्जन (brain surgeons) का अप्रतियोगी समूह' होता है, दिमाग के सर्जन बहुत कम डाक्टर हो पाते है और 'इन दिमाग के सर्जनो' को समूह के अन्य डाक्टरो की तुलना मे बहुत अधिक वेतन या मजदूरी प्राप्त होता है।

परन्तु उपर्युक्त विवरण से यह अर्थ नही निकाल लेना चाहिए कि विभिन्न समूहो मे बिलकुल भी प्रतियोगिता नही होती है। उदाहरणार्थ, कडे प्रयत्नो द्वारा एक समयावधि में अकुशल श्रमिक कुशल श्रमिक हो सकते हैं और इस प्रकार 'अकुशल श्रमिको' तथा 'कुशल श्रमिकों' के अप्रतियोगी समूहों मे थोडी प्रतियोगिता हो सकती है। दूसरे शब्दो मे, "मुख्य बात यह है कि विभिन्न वर्ग एक दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं, परन्तु वे शत-प्रतिशत एक समान नही होते हैं। वे एक दूसरे के लिए पूर्ण नही बल्कि आशिक स्थानापन्न होते हैं।"[10]

अब एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि श्रमिको के विभिन्न 'अप्रतियोगी समूह' क्यों होते हैं? इसके कई कारण हो सकते हैं; जैसे—(i) व्यक्तियों या श्रमिकों के प्राकृतिक गुणो (natural endowments) मे अन्तर होता है। किसी कार्य मे दक्षता प्राप्त करने के लिए लम्बे प्रशिक्षण तथा मानसिक जागरूकता (alertness) की आवश्यकता होती है और इसके लिए सभी व्यक्तियो में योग्यता, महत्त्वाकांक्षा (ambition) तथा धैर्य (patience) नही होता। (ii) वातावरण में अन्तर होता है। सभी व्यक्तियो के लिए घर का वातावरण, अन्य व्यक्तियो से सम्बन्ध, तथा शिक्षा के अवसर समान नही होते।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है—(i) श्रमिको के 'अप्रतियोगी समूह' होते हैं और इन अप्रतियोगी समूहो की मजदूरियो मे अन्तर होते हैं; इतना ही नही बल्कि 'अप्रतियोगी समूह के अन्तर्गत अप्रतियोगी समूहो' (noncompeting groups within noncompeting groups) की मजदूरियों मे भी अन्तर होते हैं। (ii) 'अप्रतियोगी समूह' का विचार उन विभिन्न कार्यो या व्यवसायो में मजदूरी के अन्तर की व्याख्या मे सहायक है जिनके लिए योग्य श्रमिको की एक सीमित संख्या प्राप्य होती है।[11]

---

[10] "The essential point, then, is this: The different categories compete with each other; yet they are not 100 per cent identical They are *partial rather than perfect substitutes* for each other."

[11] The concept of noncompeting groups helps inexplaining wage differentials between different jobs or occupations for which limited numbers of workers are qualified.

(2) 'समकारी अन्तर' (Equalizing Differences)

यदि एक विशिष्ट 'अप्रतियोगी समूह' मे श्रमिकों का एक समूह ऐसा है जो कि समान दक्षता रखता है तथा अनेक विभिन्न कार्यों को करने की समान रूप से योग्यता रखता है तो यह आशा की जा सकती है कि इनमे से प्रत्येक कार्य के लिए उनकी मजदूरी दर एक समान होगी। परन्तु ऐसा नहीं होता।[12] यहाँ पर हमे दूसरे प्रकार के अन्तर मिलते है जिन्हे 'समकारी अन्तर' कहा जाता है।

कुछ कार्य या व्यवसाय अमौद्रिक लाभो (nonmonetary benefits) के कारण अधिक आकर्षक (attractive) होते हैं, परन्तु कुछ अन्य कार्य कम आकर्षक या कम आनन्ददायक (less pleasant) होते है क्योंकि इनमे अमौद्रिक लाभ नहीं या बहुत कम होते हैं अथवा इनमे जोखिम होती है या स्वास्थ्य पर बहुत जोर पड़ता है। कम आनन्ददायक कार्यों मे श्रमिको की आवश्यक पूर्ति तभी प्राप्त होगी जबकि उनको अमौद्रिक लाभो की क्षतिपूर्ति (compensation) के रूप मे, अन्य कार्यों या व्यवसायो की तुलना मे, अधिक मजदूरी दी जाये। मजदूरी के ऐसे अन्तरो को 'समकारी अन्तर' कहते हैं।

सक्षेप मे, **'समकारी अन्तरो' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है**—"असुखदायिता (unpleasantness) की दृष्टि से कार्यों मे अन्तर हो सकता है, अत व्यक्तियो को कम आकर्षक कार्यों में प्रलोभित करने के लिए मजदूरियों को ऊँचा उठाना होगा। इस प्रकार के मजदूरी के अन्तर जो कि कार्यों के अमौद्रिक अन्तरो की क्षतिपूर्ति का काम करते हैं 'समकारी अन्तर' कहे जाते है।"[13]

अमौद्रिक तत्व जो कि विभिन्न कार्यो या व्यवसायो मे मजदूरी में अन्तर उत्पन्न करते हैं निम्नलिखित हैं

(i) **कार्य का स्थायित्व तथा उसकी नियमितता** (Permanence and regularity of job)—जिन व्यवसायों मे श्रमिको का कार्य अस्थायी तथा अनियमित (temporary and irregular) होता है उनमे मजदूरी स्थायी तथा नियमित कार्य वाले व्यवसायो की अपेक्षा अधिक होती है। इसका कारण है कि अस्थायी कार्य वाले व्यवसाय के श्रमिक बीच-बीच मे बेरोजगार हो जाते हैं और खाली समय मे अपने भरण-पोषण का व्यय निकालने के लिए वे अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी पर कार्य करेंगे।

(ii) **व्यवसाय की जोखिम** (Risks of the occupation)—जिन व्यवसायो मे जीवन का खतरा रहता है उनमे श्रमिको को ऊँची मजदूरी दी जाती है अन्यथा ऐसे व्यवसायो मे आवश्यकतानुसार श्रमिको की पूर्ति प्राप्त नही होगी। इसी कारण खानो मे कार्य करने वाले श्रमिको, सैनिको, इत्यादि को अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी दी जाती है।

(iii) **कार्य का दायित्व एवं उसकी विश्वसनीयता** (Responsibility and reliability of the job)—कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनमे उत्तरदायित्व तथा विश्वास की आवश्यकता होती है, जैसे, बैंक के मैनेजर का कार्य, मिल के मैनेजर का कार्य, इत्यादि। ऐसे कार्यों मे व्यक्तियो को ऊँची मजदूरी दी जाती है।

(iv) **कार्य अवधि** (Working period)—जिन कार्यों मे प्रतिदिन कम घण्टे कार्य करना होता है तथा साल भर मे छुट्टियाँ भी अधिक होती हैं, उनमे श्रमिको को अपेक्षाकृत कम मजदूरी मिलती है। इसकी विपरीत दशाओं में अधिक मजदूरी मिलती है।

(v) **स्थान विशेष पर मूल्य-स्तर** (Price level at a particular place)—कुछ बड़े-

---

[12] "If a group of workers in a particular noncompeting group are equally capable of performing several different jobs one might expect that the wage rate would be identical for each of these jobs. But this is not the case."

[13] "Jobs may differ in their unpleasantness hence wages may have to be raised to coax people into the less attractive jobs. Such wage differentials that simply serve to *compensate for the non-money differences among jobs* are called 'equalizing differences'."

बड़े शहरों में वस्तुओ की कीमतें ऊँची होती हैं तथा रहन-सहन की लागत अधिक होती है। ऐसी जगहो में श्रमिको की मजदूरी ऊँची होती है।

(vi) अन्य सुविधाएँ (Other facilities)—कुछ व्यवसायों में श्रमिकों को नकद मजदूरी के अतिरिक्त कई अन्य सुविधाएँ प्राप्य होती है, जैसे बच्चो की नि.शुल्क शिक्षा, नि शुल्क डाक्टरी सहायता, सस्ते किराये पर मकान की सुविधा, इत्यादि। ऐसे व्यवसायो मे श्रमिको की मजदूरी कम होती है।

(vii) भविष्य में उन्नति की आशा (Future prospects)—जिन व्यवसायो में श्रमिकों के लिए भविष्य मे उन्नति के अच्छे अवसर होते हैं उनमें प्रारम्भ में मजदूरी कम हो सकती है।

(3) 'असमकारी अन्तर' (Nonequalizing Differences)

यदि श्रमिक एकरूप (homogeneous) हैं तो भी अमौद्रिक तत्त्वों के कारण उनकी मजदूरियों मे अन्तर होगा जिन्हें 'समकारी अन्तर' कहा जाता है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। परन्तु वास्तविक जगत में सब श्रमिक एकरूप नही होते और इसलिए उनकी मजदूरियों मे सभी अन्तरों की व्याख्या 'समकारी अन्तरों' द्वारा नही की जा सकती।

एक ही व्यवसाय या एक समान कार्मों (identical jobs) मे लगे हुए श्रमिकों की मजदूरियो में अन्तरो की व्याख्या 'असमकारी अन्तरों' द्वारा की जाती है। असमकारी अन्तरो को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—(अ) बाजार की अपूर्णताएँ, तथा (ब) श्रम के गुणों में अन्तर।

(अ) बाजार की अपूर्णताएँ (Market Imperfections)—विभिन्न प्रकार की अगतिशीलताएँ, एकाधिकारी तत्त्व तथा सरकारी हस्तक्षेप बाजार की अपूर्णताओ को जन्म देते हैं। इन विभिन्न प्रकार की अपूर्णताओं के कारण एक ही व्यवसाय या एक ही प्रकार के कार्य में लगे हुए श्रमिकों की मजदूरी में अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। बाजार अपूर्णताएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं :

(i) किसी व्यवसाय (Occupation) में सुदृढ़ श्रम संघ की उपस्थिति अथवा श्रमिकों में एकाधिकार की स्थिति, या सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के कारण मजदूरी अपेक्षाकृत ऊँची हो सकती है।

(ii) भौगोलिक अगतिशीलताएँ (Geographic immobilities)—कई दशाओ में श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी व्यवसाय में ऊँची मजदूरी होने पर भी जाना पसन्द नही करते; और इस प्रकार एक ही व्यवसाय में दो स्थानों या क्षेत्रो में मजदूरी में अन्तर बना रहता है। श्रमिकों की 'भौगोलिक अगतिशीलताओ' के कई कारण हो सकते हैं; जैसे—(अ) प्राय. श्रमिक अपने मित्रों सम्बन्धियों को छोडने के लिए, अपने बच्चों को दूसरे स्थान मे प्रवेश की कठिनाई तथा पढाने की असुविधा, तथा नये स्थान पर नये व्यक्तियो और नयी परिस्थितियो के साथ समायोजन (adjustment) की कठिनाइयाँ तथा असुविधाओ को उठाने के लिए अनिच्छुक (reluctant) होते है और परिणामस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी व्यवसाय या उसी प्रकार के कार्य मे ऊँची मजदूरी होने पर भी जाने को तत्पर नही होते। (ब) एक स्थान पर एक व्यवसाय मे कई वर्षों तक कार्य करते रहने से जो पुराने श्रमिक अधिक ज्येष्ठ (senior) हो जाते हैं तथा पेन्शन या अन्य प्रकार के लाभों के अधिकारी हो जाते हैं वे दूसरे स्थान मे उसी प्रकार के व्यवसाय में जाना पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि वहाँ पर उनकी ज्येष्ठता (seniority), अन्य लाभों के अधिकार, इत्यादि प्रभावित हो सकते हैं। इन पुराने श्रमिकों में भौगोलिक गतिशीलता बहुत कम होती है। (स) कभी-कभी दूसरे स्थानों में कार्य के अवसरों तथा मजदूरी में अन्तरो के सम्बन्ध में श्रमिक अनभिज्ञ (ignorant) हो सकते है और इसलिए उनकी भौगोलिक गतिशीलता बहुत कम हो सकती है।

(iii) कृत्रिम संस्थात्मक अगतिशीलताएँ (Artificial institutional immobilities)—कुछ संस्थाओं द्वारा श्रमिकों या व्यक्तियों की गतिशीलता पर कृत्रिम रुकावटें या बन्धन लगा दिये जाते हैं जो कि भौगोलिक अगतिशीलताओं को और बल प्रदान करते हैं। उन्नतशील देशों (advanced

countries) मे प्राय श्रम-संघ अधिक दृढ और प्रभावशाली होते हैं । एक श्रमिक को व्यवसाय विशेष मे रोजगार प्राप्त करने के लिए तत्सम्बन्धित श्रम-संघ का सदस्य बनना पडता है अर्थात् 'संघ-कार्ड' (Union Card) प्राप्त करना पडता है। ऊँची मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि मे कई श्रम-संघ अपने सदस्यो की संख्या सीमित रखना चाहते हैं। ऐसी परिस्थिति मे यदि कुछ श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर व्यवसाय विशेष मे कार्य प्राप्त करना चाहते हैं तो वहाँ का तत्सम्बन्धित श्रम-संघ उनको 'संघ-कार्ड' नही देना चाहता और इसलिए उनको रोजगार प्राप्त नही होता, परिणामस्वरूप उनकी गतिशीलता मे बाधा पडती है। अध्यापन के व्यवसाय (teaching profession) तथा अन्य व्यवसायो मे भी व्यक्तियो की पूर्ति को सीमित रखने के उद्देश्य से कृत्रिम बाधाएं (restrictions) हो सकती हैं।

(iv) सामाजिक अगतिशीलताएँ (Sociological immobilities)—प्राय: जाति, वंश (race), इत्यादि के कारण व्यवसायो मे रोजगार प्राप्त करने मे कुछ श्रमिको को कठिनाई होती है और उन्हें अन्य व्यक्तियो की तुलना मे, एक ही प्रकार के कार्य के लिए कम मजदूरी या वेतन दिया जाता है। उदाहरणार्थ, कई देशो मे नीग्रो (Negroes), यहूदी (Jews) तथा अन्य अल्पसंख्यक वर्ग (minority groups) के लोगो को एकसमान कार्य मे कम मजदूरी पर रोजगार मिल पाता है। अधिकांश देशो मे (जिनमे भारत भी एक है) विभिन्न प्रकार की सामाजिक अगतिशीलताओ को कम करने के लिए कानून बनाये गये हैं, परन्तु फिर भी व्यवहार मे ये अगतिशीलताएं बनी रहती हैं।

(ब) श्रमिकों के गुणों में अन्तर (Differences in labour quality))—बाजार की अपूर्णताओ अथवा प्रतियोगिता मे अपूर्णताओ की अनुपस्थिति होने पर भी श्रमिकों की मजदूरियो मे अन्तर होगा। इसका कारण है श्रमिको की योग्यताओ मे अन्तर होता है, परिणामस्वरूप एक ही व्यवसाय मे श्रमिको की मजदूरियो मे अन्तर रहता है।

महिला श्रमिकों की मजदूरी की दर कम क्यों होती है ?
(WHY ARE WOMEN'S WAGES LOW ?)

प्राय महिला श्रमिको को पुरुष श्रमिको की तुलना मे एक ही व्यवसाय मे कम मजदूरी मिलती है। इसके कारण निम्नलिखित हैं

(1) पुरुषो की तुलना मे महिला श्रमिको की शारीरिक शक्ति कम होती है और इसलिए कई व्यवसायो मे वे अपेक्षाकृत कम उत्पादन करती हैं और उन्हें कम मजदूरी मिलती है।

(2) महिलाएँ प्राय. विवाह होने के समय तक ही कार्य करना चाहती हैं, अत. पुरुषो की अपेक्षा कम मजदूरी पर कार्य करने को तत्पर रहती हैं।

(3) प्राय. महिलाओ की आय 'पूरक आय' (supplementary income) की भाँति होती है, वे अपने पतियो, भाइयो, इत्यादि की आय मे सहारा लगाती हैं, इसलिए कम मजदूरी पर कार्य करती हैं।

(4) महिला श्रमिको के संगठन (unions) प्राय: नही होते हैं, परिणामस्वरूप उनकी सौदा करने की शक्ति कम होती है और उन्हें कम मजदूरी मिलती है।

परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं। आज का नारा 'समान कार्य के लिए समान मजदूरी' है। अब अनेक देशो मे महिलाओ तथा पुरुषो को समान कार्य के लिए समान मजदूरी मिलती है, भारत ऐसे देशो मे से एक है।

न्यूनतम मजदूरी
(MINIMUM WAGES)

प्राक्कथन (Introduction)

पूंजीवादी देशों मे प्राय: मालिक या सेवायोजक (employers) मजदूरो का शोषण करते

है। वे मजदूरों से अधिक कार्य लेकर कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि प्रायः मजदूरों की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) कमजोर होती है। परिणामस्वरूप, मालिकों तथा श्रमिकों मे संघर्ष चलता रहता है, हड़तालें तथा ताले-बन्दियाँ (lock-outs) होती रहती हैं। ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न न होने देने तथा मजदूरों को मालिकों के शोषण से बचाने के लिए एक तरीका सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण बताया जाता है। अब लगभग सभी औद्योगिक उन्नतशील देशों मे न्यूनतम मजदूरी के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है तथा मान्यता दी जाती है।

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ (The Concept of Minimum Wages)

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ उस न्यूनतम पारितोषण (remuneration) से नहीं लिया जाता जो कि श्रमिक जीवन के केवल भरण-पोषण मात्र (bare sustenance of life) के लिए ही हो अथवा जो श्रमिको को केवल जीवित मात्र रख सके। न्यूनतम मजदूरी वह न्यूनतम पारितोषण होता है जो कि श्रमिकों को एक न्यूनतम जीवन-स्तर बनाये रखने के लिए आवश्यक हो, जो श्रमिकों को उन सामान्य आरामों (comforts) को प्रदान कर सके जिनसे उनमे अच्छी आदतो का विकास हो, आत्म-सम्मान की भावना बनी रहे तथा वे एक आदरयुक्त नागरिक की स्थिति मे रह सके।

भारत सरकार की 'उचित मजदूरी कमेटी' (Fair Wages Committee) ने न्यूनतम मजदूरी की एक अच्छी परिभाषा दी है जो कि इस प्रकार है: "न्यूनतम मजदूरी को श्रमिक जीवन के केवल भरण-पोषण मात्र की व्यवस्था ही नही बल्कि श्रमिकों की कार्यक्षमता को बनाये रखने की व्यवस्था करनी चाहिए। इस उद्देश्य से न्यूनतम मजदूरी को थोडी शिक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा अन्य सुविधाओ की भी पूर्ति करनी चाहिए।"[14]

न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में निम्न दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

(i) ध्यान रहे कि न्यूनतम मजदूरी की कोई एक दर सदैव निश्चित नहीं रहती। रहन-सहन की लागत मे परिवर्तन होने से न्यूनतम मजदूरी की दर में भी परिवर्तन किया जाता है। यदि रहन-सहन की लागत में वृद्धि (वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप) हो जाती है तो न्यूनतम मजदूरी की दर मे भी वृद्धि की जायेगी।

(ii) न्यूनतम मजदूरी किसी उद्योग विशेष या कुछ उद्योगो के लिए निर्धारित की जा सकती है; अथवा देश के सभी उद्योगों के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (national minimum wage) निर्धारित की जा सकती है। दोनो दशाओं में परिणाम भिन्न होंगे।

न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य (Object of Minimum Wages)

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (law) का उद्देश्य मजदूरी का सामान्य रूप से नियन्त्रण या निर्धारण करना नहीं होता बल्कि इसका उद्देश्य किसी भी श्रमिक को उस मजदूरी से नीचे प्रयोग में लेने से रोकना है जो कि एक न्यूनतम जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है।[15]

दूसरे शब्दो मे, न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य निम्न हैं:

(i) श्रमिकों के शोषण को रोकना तथा उन उद्योगो में मजदूरी बढवाना जिनमें ये अत्यन्त नीची है।

(ii) श्रमिको की न्यूनतम आवश्यकताओं तथा सुविधाओ (amenities) की पूर्ति करके न्यूनतम मजदूरी श्रमिकों को सन्तुष्ट रखकर उद्योग में शान्ति को प्रोत्साहित करती है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (laws) या तो उस मजदूरी दर को निश्चित रूप से बता देते हैं

---

[14] "....a minimum wage must provide not merely for the bare sustenance of life but for the preservation of the efficiency of the worker. For this purpose the minimum wage must also provide for some measure of education, medical requirements and amenities.

[15] "The purpose of a minimum wage law is not to control or determine wages in general but to prohibit the employment of anyone at a wage below an amount necessary to maintain a minimum standard of living"

जो कि न्यूनतम समझी जानी चाहिए, अथवा वे न्यूनतम मजदूरी दर का निर्धारण एक प्राबन्धिक कमीशन (administrative commission) पर छोड़ देते हैं। बाद की योजना सर्वोत्तम है क्योंकि परिवर्तनशील आर्थिक दशाएं, जैसे मूल्य-स्तर मे परिवर्तन, न्यूनतम मजदूरी दर मे बार-बार परिवर्तन करना आवश्यक कर देती हैं, यदि न्यूनतम रहन-सहन की लागतों को समाविष्ट करने के उद्देश्य की पूर्ति होनी है।[16]

न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के आर्थिक प्रभाव (Economic consequences of fixing a minimum wage)

न्यूनतम मजदूरी के दो रूप हो सकते हैं: (i) न्यूनतम मजदूरी किसी विशेष उद्योग या कुछ उद्योगों के लिए निश्चित की जा सकती है; अथवा (ii) देश के सभी उद्योगों के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (national minimum wage) निर्धारित कर दी जाती है। इन दोनों रूप, के अलग-अलग आर्थिक परिणाम होंगे। नीचे हम दोनो रूपो के आर्थिक परिणामों का अलग-अलग विस्तृत विवरण देंगे।

(I) एक विशेष उद्योग या कुछ उद्योगो में न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के प्रभाव

उद्योग विशेष या कुछ उद्योगो मे परिणाम समान होंगे चाहे न्यूनतम मजदूरी सरकार द्वारा लागू (enforce) की जाती है अथवा प्रभावपूर्ण तरीके से उसे श्रम-संघ द्वारा बनाये रखा जाता है।[17] न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के प्रभाव हो सकते हैं।

हानिकारक परिणाम या दोष (Harmful effects or demerits)—मुख्य हानिकारक परिणाम निम्न है:

(1) **बेरोजगारी** (Unemployment)—प्राय: न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कुछ ऊँची निर्धारित की जाती है। यदि न्यूनतम मजदूरी अधिक ऊँची निर्धारित की जाती है तो इस प्रकार की सम्भावना होगी कि उद्योग विशेष मे बेरोजगारी फैले। बेरोजगारी की सम्भावनाएं निम्न प्रकार से हो सकती हैं:

(i) मजदूरी ऊँची होने से लागत बढ़ेगी और वस्तु की कीमत बढ़ेगी। यदि वस्तु की माँग अधिक लोचदार (highly elastic) है तो वस्तु की माँग कम हो जायेगी और उत्पादक बढ़ी हुई लागत के बोझ को (ऊँची कीमत के रूप मे) उपभोक्ताओं पर नही डाल सकेगा। वस्तु की माँग कम होने पर उत्पादक पहले की अपेक्षा कम श्रमिकों को प्रयुक्त करेंगे, और इस प्रकार उद्योग में बेरोजगारी उत्पन्न होगी। इन बेरोजगार श्रमिको मे से कुछ या सबको पहले से भी कम मजदूरी पर शायद उन उद्योगो में रोजगार मिल जाये जिनमें न्यूनतम मजदूरी लागू नही की गयी है। बेरोजगार होने या बहुत कम मजदूरी पर अन्य उद्योगो मे काम करते दोनो ही अवस्थाओ मे श्रमिको को हानि होगी।

बेरोजगारी की स्थिति को हम सलग्न चित्र 10 द्वारा भी बता सकते है। यदि वस्तु की माँग अधिक लोचदार है तो उसको उत्पादित करने वाले श्रमिकों की माँग भी लोचदार होगी। चित्र 10 में DD रेखा श्रमिको की लोचदार माँग को बताती है। ऐसी स्थिति मे न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण अधिक बेरोजगारी को उत्पन्न करेगा। चित्र मे श्रमिको की पूर्ति रेखा SS है जो कि माँग रेखा DD को P बिन्दु पर काटती है। अत. स्पर्द्धात्मक मजदूरी (competitive wage) W_c होगी जिस पर Q_w श्रमिक रोजगार में होगे। माना कि न्यूनतम मजदूरी W_m निर्धारित कर दी जाती

---

[16] "These laws either state definitely the wage considered to be minimum, or they leave the determination of that wage to an administrative commission. The latter plan is by far the best because changing economic conditions, such as variations in the price level, make necessary to vary the wage rate frequently if the intent of the law, to just cover minimum living costs, is to be carried out."

[17] "The results are the same whether the minimum wage is enforced by the state or maintained effectively by a trade union."

चित्र 10

है तो रोजगार Q_w से घटकर Q_m हो जाता है; अर्थात् Q_mQ_w के बराबर श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं और जैसा कि चित्र से स्पष्ट है यह बेरोजगारी अधिक है।

(ii) एक सम्भावना यह है कि ऊँची मजदूरी के कारण लागत मे वृद्धि के परिणामस्वरूप सेवायोजक (employers) अधिक 'श्रम-बचत मशीनों' (labour saving machines) का प्रयोग करें। ऐसी स्थिति मे बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे।

(iii) ऊँची न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धित उद्योग या उद्योगों में लाभों को कम करेगी। कुछ कम कुशल उत्पादक हानि के कारण दिवालिये हो जायेंगे और कार्य को बन्द कर देंगे। इन उद्योगों मे नयी पूजी का विनियोग नही किया जायेगा जब तक कि इनमें उत्पादन की कमी वस्तुओं की कीमतों को इतना ऊँचा नही कर देती जिससे कि इनमे भी, अन्य उद्योगों की भांति, लाभ के अच्छे अवसर हो सकें। स्पष्ट है कि उत्पादन मे कमी के कारण इन उद्योगो मे बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे।

(2) **श्रमिकों का उद्योगों में पुर्नवितरण** (Redistribution of labour between occupations)—इस बात की सम्भावना हो सकती है कि न्यूनतम मजदूरी इतनी ऊँची हो कि वह वर्तमान उद्योग मे लगे हुए कम कुशल श्रमिकों की तुलना में अन्य उद्योगों से अधिक कुशल श्रमिकों को आकर्षित कर सके। यदि ऐसा है तो सेवायोजक वर्तमान श्रमिकों को अन्य उद्योगों के श्रमिकों से प्रतिस्थापित (replace) करेंगे और ऐसी परिस्थिति में श्रमिकों का विभिन्न व्यवसायों में केवल पुर्नवितरण ही होगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का उद्योग विशेष में सम्भावित परिणाम रोजगार को कम करना है, अर्थात् बेरोजगारी उत्पन्न करना है। परन्तु इस प्रभाव को पूर्ण रूप से प्रकट होने में कुछ समय लगेगा। स्थिर प्लांट का प्रयोग करने वाले साहसी या सेवायोजक उस प्लांट को कार्य में लेते रहेंगे और लगभग पहले के समान ही श्रमिकों को रोजगार देते रहेंगे, परन्तु अब उन्हें पहले की अपेक्षा कम लाभ या प्रतिफल (return) प्राप्त होगा। परन्तु जब प्लांट घिस जायेगा तो उसे पुनः स्थापित (replace) नही किया जायेगा अथवा उसे दूसरे रूप में स्थापित किया जायगा जिसमें कम श्रमिको का प्रयोग हो। इस प्रकार मजदूरियों में वृद्धि होने के पर्याप्त समय बाद श्रमिको का नौकरी से हटाया जाना सामान्यतया सेवायोजकों (employers) की अकुशलता या श्रम-बचत तरीको का परिणाम समझा जा सकता है तथा न्यूनतम मजदूरी का परिणाम नहीं।[11]
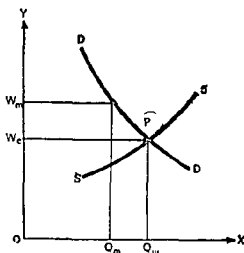
[11] "Thus the probable effect of the minimum wage will be to diminish employment in that occupation. But this effect may take some time to show itself. Entrepreneurs with fixed plant may continue to work it, employing nearly as many workers as before, although they now get a smaller return from it, but when plant wears out it may not be replaced, or may be replaced in a different from requiring less labour. Thus, dismissals taking place at a considerable interval after wages have been raised may be generally believed to be due to the inef ciency of employers or to labour-saving devices and not to the minimum wage."

लाभदायक परिणाम अथवा गुण (Beneficial effects or merits)

उपर्युक्त विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी को लागू करने से सदैव हानिकारक परिणाम ही होते हैं। यह प्रयोग निम्न प्रकार से लाभदायक भी हो सकता है :

(1) **कुछ दशाओं में बेरोजगारी उत्पन्न नहीं होगी**—(i) यदि न्यूनतम मजदूरी स्थिर तथा विशिष्ट प्लांट (fixed and specialized plant) प्रयोग करने वाले उद्योगों में लागू की जाती है तो ऐसी दशा में उत्पादन की रीतियों को आसानी तथा शीघ्रता से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। अत. ऐसे उद्योगों में मजदूरी में वृद्धि के कारण सेवा-योजक का लाभ कुछ कम हो जायगा; परन्तु श्रमिकों के रोजगार में कोई विशेष कमी नहीं होगी।[19]

दूसरे शब्दों में, यदि न्यूनतम मजदूरी लागू किये जाने वाले उद्योगों में अधिक लाभ प्राप्त हो रहे हैं तो न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देने से केवल अधिक लाभ घटकर सामान्य स्तर पर आ जायेंगे और श्रमिकों के रोजगार में घटने की सम्भावना बहुत कम होगी।

चित्र 11

(ii) यदि वस्तु की माँग अधिक बेलोचदार है तो उत्पादक ऊँची मजदूरी की लागत के बोझ को एक सीमा तक ऊँची कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं पर डाल सकेंगे। ऐसी स्थिति में उद्योग विशेष में श्रमिकों की बेरोजगारी बहुत कम होगी।

इस स्थिति को एक चित्र द्वारा भी दिखा सकते हैं। यदि वस्तु की माँग बेलोचदार है तो उसको उत्पादित करने वाले श्रमिकों की माँग भी बेलोचदार होगी। चित्र 11 में DD रेखा श्रमिकों की बेलोचदार माँग बताती है। श्रमिकों की पूर्ति रेखा SS है; दोनों P बिन्दु पर काटती हैं, अतः स्पर्द्धात्मक मजदूरी W_c होगी जिस पर Q_c श्रमिक रोजगार में होंगे। माना कि न्यूनतम मजदूरी W_m निर्धारित कर दी जाती है तो अब Q_m श्रमिक रोजगार में होंगे; दूसरे शब्दों में, Q_mQ_c के बराबर बहुत कम बेरोजगारी उत्पन्न होती है।
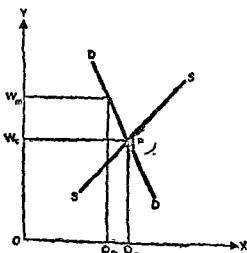
(iii) यदि मजदूरी कुल उत्पादन-लागत का बहुत थोड़ा अंश है तो सेवायोजक वस्तु की कीमत में बहुत थोड़ी ही वृद्धि करके अपनी क्षति-पूर्ति कर लेगा और श्रमिकों के रोजगार में कोई विशेष कमी नहीं होगी।

(iv) यदि न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कम है तो स्पष्ट है कि श्रमिकों की माँग बढ़ेगी और रोजगार बढ़ेगा तथा समय के साथ प्रतियोगी मजदूरी में वृद्धि की सम्भावना भी हो सकती है।

(2) **श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि**—न्यूनतम मजदूरी के कारण मजदूरी में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि हो सकती है क्योंकि अब श्रमिक अधिक पौष्टिक वस्तुओं तथा 'कार्यक्षमता के लिए आवश्यक वस्तुओं' (necessaries for efficiency) का प्रयोग कर सकेंगे

[19] "The existence of fixed and specialized plant may mean that methods of production cannot readily be changed, so that it may be possible to 'squeeze' profits for the benefit of wages without thereby causing much unemployment."

तथा कुछ तीव्र मौद्रिक चिन्ताओं से मुक्त हो सकेंगे। कार्यक्षमता में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रमिक अधिक उत्पादन कर सकेंगे और उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत गिरेगी परन्तु प्रति इकाई उत्पादन की श्रम-लागत घटेगी, परिणामस्वरूप अन्य साधनों की तुलना में श्रमिकों की मांग बढ़ेगी। परन्तु व्यवहार मे इस बात का प्रमाण कम मिलता है कि मजदूरी मे वृद्धि वास्तव मे श्रमिकों की कार्यक्षमता में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि करती है।

(3) **श्रमिकों के शोषण पर नियन्त्रण**—यदि उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में श्रमिको का शोषण हो रहा है, तो ऐसे उद्योगों मे न्यूनतम मजदूरी लागू होने से श्रमिकों का शोषण रुकेगा और श्रमिकों को लाभ होगा क्योंकि श्रमिकों की मजदूरी, बिना विशेष बेरोजगारी के बढ जायेगी।

(4) **धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को धन-हस्तांतरण का एक यन्त्र**—यदि देश में 'बेरोजगारी लाभ फण्ड' (unemployment benefit fund) की व्यवस्था है तो श्रमिकों को कोई हानि नहीं होगी। उद्योग विशेष में न्यूनतम मजदूरी लागू होने से यदि कुछ श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं तो उन्हें सरकार से उनकी पुरानी मजदूरी के बराबर 'फण्ड' में से आर्थिक सहायता प्राप्त होगी। धनी व्यक्तियों पर लगाये गये टैक्सो से प्राप्त धन मे से 'बेरोजगारी लाभ फण्ड' का निर्माण होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को धन-हस्तान्तरण के एक यन्त्र (instrument) की भांति कार्य करती है।

(II) देश के सभी उद्योगों के लिए एक 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' (National minimum wage) निर्धारण के प्रभाव

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के अधिक गहरे प्रभाव पड़ेंगे विशेषतया जबकि न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से ज्यादा ऊँची है। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के भी हानिकारक तथा अच्छे दोनो प्रकार के परिणाम होंगे। पहले हम हानिकारक परिणामो की, तत्पश्चात् अच्छे परिणामो की, विवेचना करेंगे।

हानिकारक परिणाम (Harmful effects)

मुख्य हानिकारक परिणाम निम्नलिखित हैं :

(1) **अधिक बेरोजगारी (Greater unemployment)**–(i) कोई भी श्रमिक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से कम पर कार्य नहीं कर सकता है, इसलिए श्रमिकों का पुनर्वितरण (redistribution) नहीं हो सकेगा; एक उद्योग से नौकरी से हटाये गये मजदूरों को दूसरे उद्योगों में कम मजदूरी पर रोजगार प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार ये श्रमिक स्थायी रूप से बेरोजगार हो जायेंगे जब तक कि वे अपनी कार्यकुशलता को न बढायें या जब तक कि देश में अनेक नये उद्योगों या फर्मों की स्थापना न हो।

(ii) ऊँची मजदूरी की लागत को ऊँची कीमतों के रूप मे उपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित (transfer) नहीं किया जा सकता क्योंकि ऊँची कीमतों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी दर को और ऊँचा करना पड़ेगा ताकि वास्तविक मजदूरी (real wage) पहले के समान रह सके। इस प्रकार जब ऊंची मजदूरी की लागत को उपभोक्ताओं के ऊपर नहीं डाला जा सकता तो वस्तुओं का उत्पादन कम होगा, श्रमिको की माँग कम होगी तथा जो श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे वे बेरोजगार बने रहेंगे।

(iii) ऊँची मजदूरी की लागत के कारण सेवायोजको के लाभ कम होंगे। उत्पादन की दूसरी रीतियों (जैसे श्रम-बचत मशीनों) का प्रयोग करके वे लाभो में कमी को पूरा नहीं कर पायेंगे क्योंकि सभी उद्योगों में श्रम-बचत मशीनों की अधिक माँग होगी और परिणामस्वरूप इनकी कीमतें भी बढ़ जायेंगी। लाभो मे कमी के कारण अधिकांश उद्योगों में उत्पादन कम होगा, श्रमिको की माग कम होगी और बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

(iv) लाभो मे कमी के कारण बचत कम होगी, पूंजी का संचय तथा विनियोग कम होगा, नये उद्योगो तथा उपक्रमो के स्थापित होने की सम्भावनाएं कम होगी और श्रमिको के लिए रोजगार के अवसरों में कमी होगी।

(v) बेरोजगारी के भरण-पोषण की व्यवस्था सार्वजनिक फंडों (public funds) में से करनी पड़ेगी, परिणामस्वरूप अधिक टैक्स लगाये जायेंगे, उद्योग तथा उपक्रम पर और अधिक भार पड़ेगा और उनका संकुचन होगा तथा नये उद्योगों का स्थापित होना कम होता जायेगा, अधिक बेरोजगारी फैलेगी और देश गरीबी की ओर अग्रसर होगा क्योंकि पूंजी के सचय तथा नये उपक्रमो के खुलने में कमी के कारण देश अपनी पिछली बचतो पर ही निर्भर करेगा।

(2) सेवायोजक निर्धारित न्यूनतम मजदूरी को प्रायः अधिकतम मजदूरी मानने लगते हैं अर्थात् वे कुशल श्रमिको को भी न्यूनतम मजदूरी से अधिक नही देना चाहते हैं, परिणामस्वरूप श्रमिकों की कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(3) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी को व्यवहार में लागू करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। (i) प्राय कुछ श्रमिक मालिकों से मिल जाते हैं और बेरोजगार रहने की अपेक्षा न्यूनतम मजदूरी से कम पर कार्य करने लगते हैं। (ii) एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के स्तर को निर्धारित करना भी कठिन होता है। (iii) इसके अतिरिक्त आदमियो के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा औरतो के लिए न्यूनतम मजदूरी के बीच सम्बन्ध को निर्धारित करना भी कठिन होता है। (iv) एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण मजदूरी-प्रणाली (*wage system*) को बेलोचदार तथा कठोर (inelastic and rigid) बना देता है।

लाभ अथवा गुण (Benefits or merits)

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के अच्छे परिणाम भी होते हैं। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी का समर्थन निम्न लाभो के कारण किया जाता है :

(1) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी अधिनियम श्रमिको को, जिनकी सौदा करने की शक्ति प्राय कमजोर होती है, बेईमान सेवायोजकों के शोषण से बचायेगा।

(2) यह श्रमिको को एक उचित जीवन-स्तर बनाये रखने मे सहायक होगी। यह सम्भव है कि श्रमिक बढी हुई मजदूरी से अपनी कार्यक्षमता मे वृद्धि करें, परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ेगा तथा श्रमिकों में बेरोजगारी उत्पन्न नही होगी।

(3) इसके परिणामस्वरूप निम्न स्तर के श्रमिकों की उच्च वर्ग के श्रमिको के साथ प्रतियोगिता समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार प्रतियोगिता के कारण मजदूरी मे गिरावट की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।[20]

(4) उन अकुशल उत्पादको को अपने कार्य समाप्त कर देने होंगे जो कि श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी देने की क्षमता नही रखते। दूसरे शब्दों में, उत्पादको को कुशल उत्पादन रीतियों तथा आधुनिक यन्त्रों (equipment) को अपनाना होगा ताकि वे इतनी आय प्राप्त कर सकें जिससे कि वे श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी दे सके। इस प्रकार उद्योगो की उत्पादकता बढ़ेगी और औद्योगिक प्रबन्ध का स्तर ऊँचा उठेगा।

(5) निम्न स्तरो वाले प्रतियोगी सेवायोजको की 'अपविक्रय की कार्यवाही' (underselling) से ऊँचे स्तरो वाले सेवायोजको की रक्षा हो सकेगी।[21]

निष्कर्ष—उद्योग विशेष या कुछ उद्योगो मे न्यूनतम मजदूरी तथा राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के हानिकारक तथा लाभदायक दोनों ही प्रकार के परिणाम होते है न्यूनतम मजदूरी अधिनियमो को लागू करने मे व्यावहारिक तथा प्रशासनात्मक कठिनाई उपस्थित होती है। यदि

---

[20] "The competition of the lower strata of workers with the upper grades is eliminated thus tending to prevent the depressing of wages."

[21] "Employers with high standards are protected against underselling by competitions with low standards."

मजदूरी दर न्यूनतम सम्भव स्तर (lowest minimum possible level) पर निर्धारित की जाती है तो हानिकारक प्रभाव तथा कठिनाइयां कम हो जाती है।

"समग्र रूप में, कहा जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियमों का एक महत्वपूर्ण स्थान है, यदि वे बुद्धिमानी के साथ बनाये जाते हैं और उनको लोचपूर्ण ढंग से लागू किया जाता है ताकि वे भौगोलिक अन्तरों तथा विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रख सकें; परन्तु वे नीची मजदूरियों के लिए पूर्ण उपचार (cure-all) नहीं हो सकते।"[22]

प्रश्न

1. द्राव्यिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी मे अन्तर कीजिए। वास्तविक मजदूरी में परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए आप किन-किन तत्वो को विचाराधीन रखेंगे ?
   Distinguish between nominal and real wages. What factors will you take into account in estimating changes in the real wages of a labourer ?
2. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म द्वारा मजदूरी निर्धारण की विवेचना कीजिए।
   Discuss how a firm determines wages under perfect competition.
3. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी के निर्धारण की विवेचना कीजिए।
   How are wages determined under imperfect competition ?
4. मजदूरी निर्धारण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   Critically examine the marginal productivity theory for the determination of wages.
5. 'मजदूरी श्रम की सीमान्त वास्तविक उत्पाद के बराबर होती है।' इस कथन की विवेचना कीजिए तथा बताइए कि यह कहां तक मजदूरी का एक उचित सिद्धान्त है।
   'Wages equal the marginal net product of labour.' Discuss this statement and show how far it is a correct theory of wages.

   अथवा

   "मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण की अपर्याप्त व्याख्या करता है क्योकि न तो सीमान्त भौतिक उत्पादकता (marginal physical productivity) और न सीमान्त मूल्य उत्पादकता (marginal value productivity) मजदूरी निर्धारण का आधार हो सकती है।" विवेचना कीजिए।
   "The marginal productivity theory of wages offers an unsatisfactory explanation for the determination of wages as neither marginal physical productivity nor marginal value productivity can serve as the basis for determining wages." Discuss.
6. (अ) "मजदूरी श्रम की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है।" विवेचना कीजिए।
   (ब) श्रम संघ किस प्रकार मजदूरी मे वृद्धि कराने में सहायक होते हैं ?
   (a) "Wages are determined by the marginal productivity of labour." Discuss.
   (b) In what ways trade unions can raise wages ?

---

[22] "All in all, there is a place for minimum wage laws, provided they are wisely framed and flexibly administered to allow for geographical differences and exceptional circumstances, but they cannot be regarded as a cure-all for low wages."

7. 'समय मजदूरी' तथा 'कार्य मजदूरी' के बीच अन्तर कीजिए। इनके गुणो तथा दोषो की विवेचना कीजिए।
Distinguish between time wages and piece wages. Discuss their merits and demerits.
8. स्पष्ट कीजिए कि मजदूरी मे अन्तर किस प्रकार निम्न कारणो से उत्पन्न होते हैं :
(अ) श्रम बाजार मे 'अप्रतियोगी समूह'
(ब) 'समकारी अन्तर'
(स) 'असमकारी अन्तर'
Explain how wage-differentials arise owing to the following reasons :
(a) Non-competing Groups in the Labour Market.
(b) Equalizing Differences.
(c) Non-equalizing Differences.
9. न्यूनतम मजदूरी का क्या अर्थ है ? एक उद्योग विशेष या कुछ उद्योगो मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के प्रभावो की विवेचना कीजिए।
What is meant by 'Minimum Wages' ? Discuss the consequences of fixing minimum wages in a particular industry or in some industries.
10. न्यूनतम मजदूरी को परिभाषित कीजिए। उसके उद्देश्य क्या है ? एक 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' के निर्धारण के प्रभावों की विवेचना कीजिए।
Define 'minimum wage'. What are its objectives ? Discuss the consequences of fixing a 'national minimum wage.'
11. "न्यूनतम मजदूरी नीची मजदूरियो के लिए पूर्ण-उपचार नही हो सकती।" विवेचना कीजिए।
"Minimum wage cannot be regarded as a cure-all for low wages." Discuss.
12. निम्नलिखित को समझाइए :
(अ) "एक उत्पादक 'नीची द्राव्यिक मजदूरी' पर नही बल्कि 'नीची मजदूरी लागत' पर अपनी आँख रखता है।"
(ब) 'समकारी अन्तर'।
Explain the following :
(a) "A producer keeps his eye not on 'low money wages' but on 'low wage costs "
(b) 'Equalizing Differences'.
[संकेत—प्रथम भाग के उत्तर के लिए देखिए 'ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता' नामक केन्द्रीय शीर्षक (central heading) के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री। दूसरे भाग के उत्तर के लिए देखिए 'समकारी अन्तर' (Equalizing Differences) शीर्षक के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय-सामग्री।]

42

लाभ
(Profit)

लाभ का स्वभाव तथा उसकी परिभाषा
(NATURE AND DEFINITION OF PROFIT)

राष्ट्रीय आय का वह भाग जो वितरण की प्रक्रिया (process) में साहसियों को प्राप्त होता है लाभ कहा जाता है।[1] लाभ स्वभाव में अवशेष (residual in nature) होता है अर्थात् अन्य सभी साधनों के पुरस्कार (rewards) देने के बाद साहसी (या उद्योगपति या व्यवसायी या मालिक) को जो शेष बचता है वह लाभ है।

अर्थशास्त्री लाभ को दो अर्थों मे प्रयोग करते है—(i) आर्थिक या विशुद्ध लाभ (economic or pure profit), तथा (ii) कुल लाभ (gross profit)। साधारण बोलचाल की भाषा में लाभ का अर्थ अर्थशास्त्रियों के कुल लाभ से होता है।

लाभ की परिभाषा (Definition of profit)

अर्थशास्त्र मे लाभ का अर्थ आर्थिक लाभ या विशुद्ध लाभ से होता है। लाभ साहसी के कार्यों अर्थात् जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को झेलने तथा नव-प्रवर्तन (innovations)[2] के लिए पुरस्कार है। यहाँ एक बात और ध्यान रखने की है कि लाभ प्रावैगिक परिवर्तनों (dynamic changes) के कारण उत्पन्न होता है; पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक उत्पादक को पूर्ण जानकारी होती है, कोई अनिश्चितता नही रहती, तथा दीर्घकाल में लाभ प्राप्त नही होता (केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है); अत: लाभ के लिए बाजार-ढाँचे (market structure) मे अपूर्णताओं (imperfections) का होना आवश्यक है।

अतः प्रो. हेनरी ग्रेसन (Henry Grayson) लाभ को इस प्रकार परिभाषित करते हैं :

1. नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार।
2. जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को स्वीकार करने का पुरस्कार।
3. बाजार-ढांचे में अपूर्णताओं का परिणाम।

स्पष्ट है कि कोई भी एक दशा या तीनों दशाओं का कोई भी मिश्रण आर्थिक लाभ को उत्पन्न कर सकता है।[3]

---

[1] The share of national income that goes to entrepreneurs in the process of distribution is known as profit.

[2] नव-प्रवर्तन शब्द का प्रयोग शुम्पीटर (Schumpeter) ने किया जिसका अर्थ है कि साहसी किसी 'नवीन लागत-बचत रीति' (new cost-saving method) को ज्ञात कर सकता है या किसी नवीन वस्तु (new product) का उत्पादन कर सकता है। इन सबके कारण साहसी को लाभ प्राप्त होता है।

[3] Profits may be considered :
1. A reward for making innovations.
2. A reward for accepting risks and uncertainties.
3. A result of imperfections in the market structure.

Evidently, anyone or any combination of the three conditions can give rise to economic profits.

कुल लाभ (Gross Profit)

एक उत्पादक या फर्म को कुल आगम (total revenue) मे से क्रय किये गये (purchased or hired) उत्पत्ति के साधनो (अर्थात् श्रम, पूजी, भूमि तथा प्रबन्ध) के पुरस्कारों तथा घिसाई व्यय (depreciation cost) को निकाल देने के बाद जो शेष बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। [अर्थशास्त्रियो के इस 'कुल लाभ' को साधारण बोलचाल मे 'लाभ' या 'व्यावसायिक लाभ' या 'एकाउन्टेन्ट का लाभ' (accountant's profit) भी कहते है। चूकि यह अवशिष्ट राशि (residual amount) होती है इसलिए इसे 'एकाउन्टेन्ट का अवशेष' (accountant's residual) भी कहते है।]

कुल लाभ की उपर्युक्त परिभाषा के सम्बन्ध मे 'क्रय किये गये उत्पत्ति के साधन' महत्त्व पूर्ण शब्द हैं। जब साहसी 'श्रम', 'पूजी', 'भूमि' तथा 'प्रबन्ध' के साधनो का क्रय करता है और उनके लिए स्पष्ट रूप से पुरस्कार देता है जो कि साहसी के लिए लागत है तो इनको **स्पष्ट लागतें** (explicit costs) कहते है, चूकि साहसी ये पुरस्कार (अर्थात् लागतें) साधनो के उनके साथ अनुबन्ध (contract) के अनुसार देता है इसलिए इन्हे **'अनुबन्ध सम्बन्धी लागतें** (contractual costs) भी कहा जाता है। यदि साहसी बाहर से उत्पत्ति के साधनो को नही खरीदता है बल्कि स्वय अपने साधन जैसे अपनी पूजी, अपनी भूमि, तथा देखभाल, निर्देशन और प्रबन्ध के रूप मे अपना श्रम देता है, तो वास्तव मे साहसी को बाजार दर पर अपने इन साधनों के पुरस्कार मिलने चाहिए और ये उसकी उत्पादन लागत के अग होने चाहिए, क्योकि वह साधनो को अन्य व्यवसाय मे लगाकर उनके पुरस्कार प्राप्त कर सकता था : साहसी को अपने व्यवसाय में लगाये गये अपने साधनों के लिए जो पुरस्कार मिलना चाहिए उन्हें अर्थशास्त्री' **'अस्पष्ट लागत'** (implicit costs) या **'अध्यारोपित लागतें'** (imputed costs) कहते हैं।

'स्पष्ट लागतो' तथा 'अस्पष्ट लागतो के विचारो को ध्यान मे रखने से 'कुल लाभ' तथा 'आर्थिक लाभ' के अर्थों को सुगमता से समझा जा सकता है। **कुल आगम[4] में से केवल 'स्पष्ट लागतो' को निकाल देने से जो बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। कुल आगम में से 'स्पष्ट लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' दोनों को निकाल देने से जो बचता है उसे 'आर्थिक लाभ' या 'विशुद्ध लाभ' कहते हैं। संक्षेप में,**

कुल लाभ = कुल आगम − स्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ = कुल आगम − स्पष्ट लागतें − अस्पष्ट लागतें

'कुल आगम − स्पष्ट लागतें' के स्थान पर

'कुल लाभ' लिखा जा सकता है;

इसलिए, आर्थिक लाभ = कुल लाभ − अस्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ धनात्मक (positive) भी हो सकता है तथा ऋणात्मक (negative) भी। आर्थिक लाभ धनात्मक होता है जबकि 'कुल आगम' कुल 'स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतो' से अधिक होता है, आर्थिक लाभ ऋणात्मक होता है जबकि 'कुल आगम' कुल 'स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतो' से कम होता है। लाभ ही एक ऐसा साधन-पुरस्कार (factor income) है जो ऋणात्मक हो सकता है।

कुल लाभ के अंग (Constituents of gross profit) निम्नलिखित हैं :

(1) आर्थिक लाभ (Economic profit); इसका अर्थ है—(i) नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार; नयी उत्पादन नीति, नयी वस्तु या वस्तु-विभिन्नता (product differentiation) इत्यादि

---

[4] अपनी वस्तु को बेचने से जो कुल विक्रय राशि (sale proceeds) उत्पादक को मिलती है उसे 'कुल आगम' कहते हैं।

के कारण लाभ; (ii) जोखिमों तथा अनिश्चितताओं के उठाने का पुरस्कार। (iii) साहसी के अपने उत्पत्ति के साधनो के पुरस्कार[5] अर्थात् 'अस्पष्ट लागतें'।

(2) स्पष्ट लागतें (Explicit costs) अर्थात् उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार, घिसाई व्यय, बीमा व्यय इत्यादि।

(3) 'एकाधिकारी लाभ' (Monopoly profit); जब कोई उत्पादक अपने क्षेत्र मे अकेला उत्पादक है तथा अपनी वस्तु की पूर्ति पर उसका नियन्त्रण है तो वह अतिरिक्त आय (extra income) प्राप्त करता है और यह एकाधिकारी लाभ 'कुल लाभ' का एक अंग होता है।

(4) अप्रत्याशित आय (Windfall income); युद्ध, फैशन में परिवर्तन, इत्यादि के कारण यकायक कीमतो मे वृद्धि के परिणामस्वरूप जो लाभ प्राप्त होते हैं उन्हें 'अप्रत्याशित लाभ' कहा जाता है और ये 'कुल लाभ' के अंग होते है, परन्तु 'अप्रत्याशित लाभ' अस्थायी तथा बहुत थोड़े समय के लिए होते हैं।

लाभ की प्रभेदक विशेषताएं (Distinguishing features of Profit)

लाभ अन्य साधनो की आयो से निम्न बातो मे भिन्न है:

(1) लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है जबकि मजदूरी, लगान या ब्याज कभी भी ऋणात्मक नही हो सकती। ऋणात्मक लाभ का अर्थ है हानि।

(2) लाभ मे अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक उतार-चढाव (fluctuations) होते है। तेजी या मन्दी (prosperity and depression) के समयो मे मजदूरी, लगान या ब्याज मे अपेक्षाकृत बहुत कम परिवर्तन होते हैं। वस्तुओ की कीमतो मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ मे बहुत उतार-चढ़ाव होते हैं।

(3) लाभ के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लाभ, अन्य साधनों की आयो की भांति, 'अनुबन्ध की आय' (contractual income) नही होते जो कि पहले से निर्धारित की गयी हो, लाभ एक तो 'अनिश्चित अवशिष्ट' (uncertain residual) है जो कि भूमि, श्रम तथा पूजी की अनुबन्ध सम्बन्धी आय देने के बाद बचता है।

लाभ के सिद्धान्त
(THEORIES OF PROFIT)

लाभ किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा उसका किस प्रकार निर्धारण होता है इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियो मे मतभेद है। अर्थशास्त्रियो द्वारा लाभ के अनेक सिद्धान्त दिये गये है। नीचे हम लाभ के मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं।

1. लाभ का लगान सिद्धान्त
(RENT THEORY OF PROFIT)

लाभ के लगान सिद्धान्त का पूर्ण विकास अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ **योग्यता का लगान** (rent of ability) है। योग्य साहसी कम योग्य साहसियों की तुलना मे अधिक लाभ प्राप्त करते है।

यह सिद्धान्त रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की भांति है। रिकार्डो के अनुसार भूमियां विभिन्न

[5] साहसी के अपने व्यवसाय में अपनी पूंजी पर ब्याज को अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट ब्याज' (implicit interest) या 'अध्यारोपित ब्याज' (imputed interest) कहते है। इसी प्रकार साहसी की अपनी भूमि के लगान को 'अस्पष्ट लगान' या 'अध्यारोपित लगान' कहते हैं। जब साहसी स्वयं अपने व्यवसाय की देखभाल तथा निर्देशन (management and direction) करता है तो इसे 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) कहते हैं।

श्रेणियों की होती है। समय विशेष में जोती जाने वाली भूमियों मे सबसे निम्न कोटि की भूमि (अर्थात् जिसकी उत्पादन लागत सबसे अधिक होती है) सीमान्त भूमि कही जाती है। बाजार मे मूल्य इस सीमान्त भूमि की लागत के बराबर निर्धारित होता है और इसे कोई लगान प्राप्त नही होता। श्रेष्ठ भूमियो अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' (intra-marginal lands) की लागत कम होती है और इनको सीमान्त भूमि की लागत की तुलना मे बचत या लगान प्राप्त होता है। इसी प्रकार **'लाभ के लगान सिद्धान्त' के अनुसार साहसियों की योग्यता में अन्तर होता है, श्रेष्ठ साहसियों को सीमान्त साहसी की तुलना में बचत अर्थात् लाभ प्राप्त होता है।** सीमान्त साहसी वह साहसी है जो कि अपनी वस्तु को बाजार मे बेचकर केवल अपनी लागत (इस लागत मे साहसी के अपने साधनो की लागत भी आ जाती है) को ही निकाल पाता है और उसे कोई लाभ नही मिलता। श्रेष्ठ साहसी अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त साहसी' (intra-marginal entrepreneurs) कम लागत पर वस्तु उत्पादित करते है और कीमत तथा लागत के अन्तर के कारण लाभ प्राप्त करते है। श्रेष्ठ साहसियो के लाभ की मात्रा उनकी योग्यता की मात्रा पर निर्भर करती है। **इस प्रकार लाभ लगान की भाँति, एक भेदात्मक बचत (differential surplus) है।**

चूंकि लाभ एक बचत है, इसलिए लगान की भाँति, वह मूल्य को निर्धारित नहीं करता बल्कि मूल्य द्वारा निर्धारित होता है। यदि वस्तु का मूल्य अधिक होगा तो लाभ अधिक होगा तथा मूल्य कम होने पर लाभ कम होगा।

परन्तु लाभ तथा लगान में एक मुख्य भेद भी है। लगान एक स्थायी आय है क्योकि भूमि की पूर्ति, प्रकृति के उपहार के कारण, अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो मे स्थिर होती है और लगान दीर्घकाल में भी रहता है। परन्तु साहसियो की पूर्ति दीर्घकाल मे बढायी जा सकती है। दीर्घकाल मे साहसियो की पूर्ति बढने से उत्पादन बढेगा, कीमत गिरेंगी तथा लाभ कम होगें। इस प्रकार विशुद्ध लाभ कम होते जायेंगे और शून्य हो जायेंगे। अत पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल मे साहसी केवल अपने निरीक्षण की मजदूरी (wage of supervision) तथा अपने साधनो के पुरस्कार प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता मे वे दीर्घकाल मे भी लाभ प्राप्त कर सकते है।

लाभ के लगान सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्न हैं :

(1) **यह सिद्धान्त लाभ के निर्धारण में जोखिम तथा अनिश्चितता** (risk and uncertainty) **के तत्वों की उपेक्षा करता है। लाभ योग्यता का लगान नहीं** बल्कि जोखिम तथा अनिश्चितता का प्रतिफल होता है।

वर्तमान संयुक्त पूंजी कम्पनी संगठन के अन्तर्गत लाभ के वितरण की रीति से यह स्पष्ट है कि लाभ योग्यता का लगान नहीं होता। उन अशधारियो (shareholders) को अधिक लाभ मिलेगा जिन्होने अधिक पूजी लगाकर अधिक अश (shares) खरीदे है चाहे वे अधिक योग्य हो या कम योग्य। इस प्रकार लाभ का सम्बन्ध अशधारियो व साहसियो की योग्यता से नही होता।

(2) यह सिद्धान्त **लाभ के कारण पर उचित प्रकाश नहीं डालता,** यह केवल सामान्य तथ्य को बताता है कि अधिक योग्य साहसी कम योग्य साहसियो की तुलना मे अधिक आय या लाभ प्राप्त करते है।

(3) **इस सिद्धान्त की यह धारणा उचित नहीं है कि लाभ कीमत को प्रभावित नहीं करता।** सामान्य लाभ लागत का अग होता है और कीमत को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दो मे, 'लाभ का लगान सिद्धान्त', 'सामान्य लाभ' तथा 'लाभ' मे अन्तर नही करता।

(4) **यह सिद्धान्त लगान तथा लाभ में बहुत अधिक समानता स्थापित करता है जो कि उचित नहीं है क्योंकि :**

(i) **लगान एक निश्चित तथा प्रत्याशित** (expected) **आय है जबकि लाभ एक अनिश्चित**

तथा अप्रत्याशित (unexpected) आय है। लागत के ऊपर बचत जब निश्चित तथा ज्ञात होती है तो वह लगान है, जब लागत के ऊपर बचत अनिश्चित तथा अज्ञात होती है तो वह लाभ है।

(ii) **लगान सदैव धनात्मक** (positive) **होता है, अधिक से अधिक वह शून्य** (zero) **हो** सकता है, इसके विपरीत **लाभ धनात्मक तथा ऋणात्मक** (negative) **दोनों हो सकता है।** ऋणात्मक लाभ का अर्थ है हानि।

(iii) **लाभ प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था** (dynamic economy) **में ही उत्पन्न होता है;** वह स्थिर (static) अवस्था मे नही होता क्योंकि स्थिर अर्थ-व्यवस्था में कोई अनिश्चितता नही होती। इसके विपरीत **लगान स्थिर तथा प्रावैगिक दोनों ही अर्थ-व्यवस्थाओं में पाया जाता है।**

2. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
(WAGE THEORY OF PROFITS)

टॉउसिग (Taussig) तथा डेवनपोर्ट (Devenport) इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक हैं। **इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ मजदूरी का ही एक रूप** (form) **है,** लाभ केवल संयोग (chance) के कारण नही होता। लाभ तथा निरन्तर सफलता के लिए कुछ विशेष गुणो, जैसे संगठन की कुशलता और योग्यता, जोखिमों का सामना करने की निपुणता (shrewdness), इत्यादि की आवश्यकता है; लाभ इन गुणो का पुरस्कार है अर्थात् लाभ इन गुणो की मजदूरी है।

लाभ के मजदूरी के विशिष्ट रूप होने के कारण इस प्रकार है—(i) साहसी का कार्य श्रम का ही रूप है; वह शारीरिक श्रम न होकर 'मानसिक श्रम' है तथा एक विशिष्ट प्रकार का श्रम है जिसके लिए मानसिक कुशलता तथा योग्यता के गुणों की आवश्यकता है। डाक्टर, वकील, अध्यापक इत्यादि अपने मानसिक गुणो के कारण आय प्राप्त करते हैं जिसे मजदूरी (या वेतन) कहा जाता है। साहसी की आय भी उसके मानसिक गुणो का परिणाम है और इसलिए उसकी आय अर्थात् लाभ को भी मजदूरी कहना चाहिए। (ii) प्रायः वेतन प्राप्त करने वाले मैनेजर, निरीक्षक इत्यादि स्वतन्त्र व्यवसायी या साहसी (independent businessmen or entrepreneurs) मे परिवर्तित हो जाते है तथा कभी-कभी स्वतन्त्र व्यवसायी या साहसी ऊँचे वेतन प्राप्त करने वाले मैनेजरो मे परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार इन लोगो के श्रम मे कोई अन्तर नही है, और साहसी के श्रम का पुरस्कार अर्थात् लाभ मजदूरी का ही एक रूप है।

लाभ के मजदूरी सिद्धान्त की आलोचना

यद्यपि यह सिद्धान्त लाभ के स्वभाव तथा लाभ के औचित्य (justification) पर प्रकाश डालता है परन्तु यह दोषपूर्ण है। **इस सिद्धान्त का मुख्य दोष यह है कि यह लाभ तथा मजदूरी के वास्तविक अन्तर पर ध्यान नहीं देता।**

लाभ तथा मजदूरी में निम्न मुख्य अन्तर हैं, जिनकी लाभ का मजदूरी सिद्धान्त उपेक्षा करता है :

(1) साहसी का मुख्य कार्य जोखिमो तथा अनिश्चितताओ को झेलना होता है, **जबकि मजदूरी तथा** वेतन प्राप्त करने वालो को किसी खतरे का सामना नही करना पडता, केवल साधारण खतरो (**जैसे नौकरी छूट जाने का डर**) का सामना करना पडता है। साहसी के खतरे संख्या तथा तीव्रता दोनो मे बहुत अधिक होते है।

(2) लाभ मे संयोग का तत्व (chance element) अधिक होता है जबकि मजदूरी मे वास्तविक प्रयत्नों की आय का भाग अधिक होता है।

(3) लाभ प्रायः अपूर्ण प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप बढता है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता मे मजदूरी की प्रवृत्ति कम होने की होती है और वह श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता से कम होती है।

स्पष्ट है कि लाभ तथा मजदूरी को पृथक् रखना अधिक उचित और वैज्ञानिक है।

3. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ साहसी की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity) के द्वारा निर्धारित होता है। साहसी अर्थात् साहसी की योग्यता उत्पत्ति का एक साधन है, इसलिए अन्य उत्पत्ति के साधनों की भाँति, उसकी कीमत अर्थात् लाभ उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करेगा। जिन उद्योगों मे साहसी की पूर्ति कम है और इसलिए उसकी उत्पादकता अधिक है तो वहाँ साहसी की कीमत अर्थात् लाभ अधिक होगा; जिन उद्योगो मे साहसी की पूर्ति अधिक है और इसलिए उनकी सीमान्त उत्पादकता कम है तो वहा लाभ कम होगा।

लाभ के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

(1) साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता :

(i) एक फर्म या एक उपक्रम मे एक ही साहसी हो सकता है और इसलिए साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नही किया जा सकता।

(ii) एक उद्योग मे एक अतिरिक्त साहसी के प्रयोग से उद्योग के कुल उत्पादन में वृद्धि को मालूम करके सैद्धान्तिक दृष्टि से, साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नही है क्योंकि—प्रथम, सब साहसी एक समान कुशल नही होते, तथा दूसरे, एक साहसी की वृद्धि (या कमी) से उद्योग के कुल उत्पादन मे वृद्धि (या कमी) साहसी की सीमान्त उत्पादकता का सही माप नही है। अत एक उद्योग में भी साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ठीक प्रकार से ज्ञात नही किया जा सकता।

(iii) यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ की व्याख्या भी नही कर सकता क्योंकि एकाधिकार में एक उत्पादक होता है और इसलिए उत्पादक की संख्या मे एक इकाई से वृद्धि या कमी करके सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नही किया जा सकता।

(2) यह सिद्धान्त अप्रत्याशित लाभो (windfall profits) की व्याख्या नही कर सकता क्योंकि इस प्रकार के लाभ केवल संयोग (chance) पर निर्भर करते हैं और उनका साहसी की सीमान्त उत्पादकता से कोई सम्बन्ध नही होता।

4. लाभ का समाजवादी सिद्धान्त
(THE SOCIALIST THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कार्ल मार्क्स (Karl Marx) हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी वस्तु का मूल्य उसमे लगाये गये श्रम द्वारा निर्धारित होता है। पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे श्रमिकों द्वारा कुल उत्पादन का एक बहुत थोडा भाग श्रमिको को उनके पुरस्कार के रूप मे दिया जाता है और उसका अधिकांश भाग, जिसको कार्ल मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य (surplus value) कहा, को पूजीपति लाभ के रूप मे स्वय हडप जाते हैं। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ प्राप्त होने का **मुख्य कारण श्रमिकों का शोषण है अर्थात् साहसी द्वारा श्रमिकों के पुरस्कार का अपहरण है। मार्क्स ने इसे कानूनी डाका (legalized robbery) कहा है।** मार्क्स ने लाभ को समाप्त करने का सुझाव दिया क्योंकि इसके कारण श्रमिको का शोषण होता है।

आलोचना

(1) लाभ श्रमिको के शोषण का परिणाम नही होता। लाभ साहसी की योग्यता पर निर्भर करता है, लाभ साहसी के जोखिमो तथा अनिश्चितताओ के उठाने की योग्यता का प्रतिफल है।

(2) वस्तु के मूल्य का एकमात्र कारण श्रम नही होता। उत्पत्ति के अन्य साधन (पूजी

प्रबन्ध, साहसी इत्यादि) भी वस्तु के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं। साहसी की महत्त्वपूर्ण सेवाओ की उपेक्षा करना उचित नही है। लाभ को 'कानूनी डाका' कहना सर्वथा अनुचित है।

(3) समाजवादी देश भी लाभ को पूर्णतया समाप्त नहीं कर पाये हैं। समाजवादी देशों में लाभ प्राप्त करने वाले निजी उत्पादक नही होते और इसलिए उनके द्वारा लाभ प्राप्त करने का प्रश्न नही उठता; परन्तु सरकार लाभ प्राप्त करती है।

5. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त
(DYNAMIC THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जे. बी. क्लार्क (J. B. Clark) हैं। क्लार्क के अनुसार, लाभ मूल्य तथा लागत मे अन्तर है। इस **सिद्धान्त के अनुसार लाभ परिवर्तनों का परिणाम है और वह केवल प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था** (dynamic economy) **में ही उत्पन्न होता है, स्थिर अर्थ-व्यवस्था** (static economy) **में नहीं**

क्लार्क के अनुसार, प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमे निम्न पांच प्रकार के आधारभूत परिवर्तन निरन्तर होते रहते है—(i) जनसख्या मे परिवर्तन, (ii) पूंजी की मात्रा मे परिवर्तन, (iii) उपभोक्ताओ की रुचियो, अधिमानों तथा आवश्यकताओ मे परिवर्तन, (iv) उत्पादन की रीतियों मे सुधार, तथा (v) औद्योगिक इकाइयो (industrial establishment) के रूपों मे परिवर्तन होते रहते हैं जिससे कि अकुशल उत्पादक हट जाते है और कुशल उत्पादक जीवित रहते हैं।

प्रावैगिक समाज मे ये आधारभूत परिवर्तन मूल्य तथा कीमत मे अन्तर उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार लाभ उत्पन्न हो जाता है। अतः लाभ प्रावैगिक **अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है।**

एक स्थिर अर्थव्यवस्था मे लाभ सम्भव नही होता। स्थिर अर्थव्यवस्था वह है जिसमें उपर्युक्त पाँचों प्रकार के आधारभूत परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति होती है। परिवर्तनो की पूर्ण अनुपस्थिति में आर्थिक भविष्य स्पष्टतया दिखायी देने वाला (foreseeable) होता है और आर्थिक अनिश्चितताएं नहीं होती; परिणामस्वरूप, कीमत तथा लागत मे कोई अन्तर नही रहता और इसलिए कोई लाभ नहीं होता। यदि पूर्ण प्रतियोगिता तथा स्थिर अवस्था की प्रारम्भिक अवस्था में कुछ लाभ (या नुकसान) होता भी है तो वह नयी फर्मों के प्रवेश (या बहिर्गमन) से दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है। स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी का कार्य केवल सामान्य निरीक्षण या प्रबन्ध (routine supervision or management) का ही रह जाता है। अतः स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी को केवल 'प्रबन्ध की मजदूरी' तथा अपने उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार ही प्राप्त हो पाता है, कोई लाभ नहीं।

अतः इस सिद्धान्त के अनुसार स्थिर अर्थव्यवस्था मे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता; लाभ परिवर्तनो का परिणाम है और वह केवल प्रावैगिक अर्थव्यवस्था मे ही सम्भव है।

आलोचना

(1) प्रो नाईट (Knight) के अनुसार सभी प्रकार के प्रावैगिक परिवर्तन लाभ को उत्पन्न नही करते। कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको पहले से जाना जा सकता है और उनका बीमा कराया जा सकता है, इस प्रकार ऐसे परिवर्तनो के वित्तीय परिणामों को लागत मे शामिल कर लिया जाता है। इस प्रकार के परिवर्तन लाभ को जन्म नही देते हैं। दूसरी प्रकार के परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको पहले से जाना नही जा सकता और वे अनिश्चित होते हैं तथा लाभ को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार लाभ केवल अनिश्चित प्रावैगिक परिवर्तन (uncertain dynamic changes) के परिणाम होते हैं न कि सभी प्रकार के परिवर्तनों के परिणाम।

(2) वास्तविक अर्थव्यवस्था सदैव प्रावैगिक है, लाभ प्रावैगिक परिवर्तनो के परिणाम हैं, इस कथन का अभिप्राय हुआ कि वास्तविक अर्थव्यवस्था मे लाभ पहले से ही मौजूद रहते हैं, जबकि ऐसा नही होता।

(3) यह सिद्धान्त इस बात पर भी ध्यान नही देता कि लाभ साहसी के 'जोखिम' उठाने की योग्यता का पुरस्कार है।

लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त
(INNOVATION THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक शुम्पीटर (Schumpeter) हैं। यह सिद्धान्त क्लार्क के 'लाभ के प्रावैगिक सिद्धान्त' से मिलता-जुलता है। **क्लार्क की भाँति शुम्पीटर भी प्रावैगिक या गत्यात्मक परिवर्तनों (dynamic changes) को लाभ का कारण मानते हैं। परन्तु यह क्लार्क के पाँच आधारभूत परिवर्तनों के स्थान पर लाभ की व्याख्या आविष्कारों या नव-प्रवर्तनों के शब्दों में करते हैं।**

क्लार्क के 'उत्पादन की रीतियों में सुधार के विचार' की तुलना में शुम्पीटर का 'नव-प्रवर्तन का विचार' या 'उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन का विचार' (the concept of changes in the productive process) **अधिक व्यापक है।** किसी नयी मशीन का प्रयोग, वस्तु की किस्म मे परिवर्तन, कच्चे माल के नये स्रोतो का प्रयोग, वस्तु का नये बाजार मे विक्रय, वस्तु के वितरण तथा विक्रय की नयी रीतियाँ, इत्यादि 'नव-प्रवर्तन' के विभिन्न रूप हो सकते हैं। 'उत्पादन-प्रक्रिया' में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन अर्थात् 'नव प्रवर्तन' लागत को कम करते हैं तथा कीमत और लागत मे अन्तर उत्पन्न करके लाभ उत्पन्न करते हैं।

शुम्पीटर के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तन के कारण तथा परिणाम दोनों हैं। नव-प्रवर्तन के कारण कीमत तथा लागत मे अन्तर होता है और इस प्रकार लाभ उत्पन्न होता है, परन्तु लाभ को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर ही साहसी नव-प्रवर्तन को प्रयोग में लाता है, अतः लाभ नव-प्रवर्तन को प्रभावित करता है। इस प्रकार नव-प्रवर्तन तथा लाभ एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं; अर्थात् लाभ नव-प्रवर्तन के कारण तथा परिणाम दोनों हैं।

लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा अनुकरण द्वारा लुप्त होते हैं (Profits are caused by innovation and disappear by imitation)। जब कोई साहसी किसी सफल नव-प्रवर्तन को प्रयोग मे लाता है तो उसे लाभ प्राप्त होता है। इस लाभ से आकर्षित होकर अन्य साहसी उस नव-प्रवर्तन का अनुकरण (imitation) करते हैं और धीरे-धीरे लाभ लुप्त या समाप्त हो जाते हैं क्योंकि कुछ समय बाद नव-प्रवर्तन मे कोई नवीनता नही रह जाती है। इसलिए यह कहा जाता है कि लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं और अनुकरण द्वारा लुप्त होते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध मे एक बात यह ध्यान रखने की है कि जब तक प्रतियोगी उत्पादक एक सुधरी रीति का अनुकरण तथा प्रयोग करते हैं तब तक एक कुशल साहसी किसी दूसरे नव-प्रवर्तन का प्रयोग करने मे सफल हो जाता है। **इस प्रकार गतिशील तथा प्रगतिशील (dynamic and progressive) अर्थव्यवस्था में नव-प्रवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ (innovational profits) सदैव रहते हैं क्योंकि पुराने नव-प्रवर्तकों के स्थान पर नवीन नव-प्रवर्तकों का प्रतिस्थापन होता रहता है।**

नव-प्रवर्तन के सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान रखने की है। लाभ उसको प्राप्त नही होते जो कि किसी नव-प्रवर्तन के विचार को प्रस्तुत करता है या जो उसके लिए वित्तीय सहायता देता है बल्कि लाभ उसको प्राप्त होते हैं जो कि नव-प्रवर्तन को प्रयोग करते हैं।

शुम्पीटर के अनुसार लाभ जोखिम उठाने (risk bearing) **का पुरस्कार नहीं है,** लाभ तो नव-प्रवर्तन का परिणाम है। परन्तु **यदि गहराई से देखा जाय तो नव-प्रवर्तन जोखिम उठाने का ही एक विशिष्ट रूप है।** लाभ कमाने के उद्देश्य से नव-प्रवर्तनो के प्रयोग अनिश्चितता को उसी प्रकार से उत्पन्न करते हैं जिस प्रकार कि आर्थिक वातावरण मे वे परिवर्तन अनिश्चितता उत्पन्न करते हैं जिस पर कि व्यक्तिगत उपक्रम का कोई नियन्त्रण नही होता। अतः, एक अर्थ मे, लाभो के स्रोत (source)

के रूप में, नव-प्रवर्तन जोखिम उठाने का ही एक विशिष्ट रूप है।[6]

आलोचना

इस सिद्धान्त की लगभग वे ही आलोचनाएँ की जाती हैं जो कि क्लार्क के लाभ के प्रावैगिक सिद्धान्त की। नव-प्रवर्तन सिद्धान्त की मुख्य आलोचना है कि यह लाभ निर्धारण में जोखिम तथा अनिश्चितता की उपेक्षा करता है।

लाभ का जोखिम सिद्धान्त
(THE RISK THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक होले (Hawley) हैं। इस सिद्धान्त का पूर्ण विवरण होले ने अपनी पुस्तक *Enterprise and Productive Process* (1907) में दिया है। मार्शल ने इस सिद्धान्त को अपना समर्थन प्रदान किया।

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है। आधुनिक युग में एक उत्पादक या साहसी भविष्य की माँग के आधार पर अपनी वस्तु का उत्पादन करता है। यदि माँग, लागत, कीमत इत्यादि के अनुमान ठीक निकलते हैं तो साहसी को लाभ होता है अन्यथा हानि। इस प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन मे जोखिम होती है। कोई भी साहसी उत्पादन का कार्य नही करेगा जब तक कि उसे इस जोखिम को उठाने के लिए कुछ पुरस्कार की आशा न हो। अतः जोखिम उठाना साहसी का एक विशिष्ट कार्य (special function) है और लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है।

जोखिम व्यवसायों मे साहसियो के प्रवेश में रुकावट पैदा करता है। इस प्रकार जोखिमपूर्ण व्यवसायों मे साहसियों की पूर्ति कम या सीमित रहती है और जो जोखिम उठाते हैं और जीवित रहते हैं वे साहसी अतिरिक्त लाभ अर्जित करते हैं क्योंकि साहसियों की पूर्ति सीमित रहती है।

विभिन्न उद्योगों में जोखिम की मात्रा में अन्तर होता है, इसलिए साहसियों के लाभों में भी अन्तर होता है। जिन व्यवसायों में अधिक जोखिम होती है उनमें लाभ की मात्रा अधिक होगी और जिनमें जोखिम कम होती है उनमें लाभ कम होगा। एक ही उद्योग में विभिन्न साहसी जोखिम की विभिन्न मात्रा उठाते हैं और इसलिए उनके लाभों में अन्तर होता है।

आलोचना

(1) यद्यपि लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है, परन्तु लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नही है। नव-प्रवर्तन, साहसी के प्रबन्ध की श्रेष्ठ योग्यता, एकाधिकारी स्थिति, इत्यादि भी लाभ को उत्पन्न करते हैं।

कुछ व्यक्ति मनोवैज्ञानिक कारणों (psychological factors) से अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करना चाहते हैं चाहे उन्हें कम आय प्राप्त हो, वे किसी के अधीन रहकर कार्य नहीं करना चाहते ऐसे व्यक्तियों या साहसियों के लिए जोखिम उठाने की बात द्वितीय स्थान रखती है; दूसरे शब्दों में, ऐसे व्यक्तियों के लाभ को जोखिम उठाने के शब्दों मे व्यक्त नही किया जा सकता। इस प्रकार लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नहीं है।

(2) कार्वर (Carver) के अनुसार लाभ जोखिम उठाने के कारण उत्पन्न नहीं होते बल्कि वे इसलिए उत्पन्न होते हैं क्योंकि श्रेष्ठ साहसी जोखिमों को कम कर सकते हैं। अतः विरोधाभासपूर्ण तरीकों से (paradoxically) यह कहा जा सकता है कि व्यवसायी लाभ इसलिए प्राप्त नही करते कि वे जोखिम उठाते हैं बल्कि वे लाभ इसलिए प्राप्त करते हैं कि वे कुछ जोखिम को नहीं उठाते हैं।[7]

---

[6] "Innovations purposely undertaken by entrepreneurs entail uncertainty, just as do those changes in the economic environment over which an individual enterprise has no control. In a sense, then innovation as a source of profits is merely a special case of risk-bearing."

[7] "Profits arise not because risks are borne, but because the superior entrepreneurs are able to reduce risks. Hence, paradoxically it may be said that businessmen get profit not because of the risks they bear but because of the risks they do not bear."

(3) प्रो. नाईट के अनुसार सभी प्रकार के जोखिम लाभो को उत्पन्न नही करते। कुछ जोखिमों (जैसे आग, चोरी, दुर्घटना, बाढ इत्यादि) का अनुमान लगाया जा सकता है और उनका बीमा कराके उनको दूर किया जा सकता है। इसके विपरीत, कुछ जोखिम (जैसे माँग तथा लागत की दशाओ से सम्बन्धित जोखिम) ऐसे होते हैं जिनका अनुमान नही लगाया जा सकता और इसलिए उनका बीमा नही कराया जा सकता; अर्थात् कुछ जोखिम अनिश्चित होते है। प्रो. नाईट के अनुसार, लाभ 'अनिश्चित जोखिमो' या 'अनिश्चितताओं' का पुरस्कार है।

लाभ का अनिश्चितता उठाने का सिद्धान्त
(UNCERTAINTY BEARING THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादिक प्रो. नाईट है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *Risk, Uncertainty and Profit* मे इस सिद्धान्त की पूर्ण विवेचना की है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, लाभ 'बीमा-अयोग्य जोखिमो' (non-insurable risks) अर्थात् 'अनिश्चितताओं' (uncertainties) को उठाने का पुरस्कार है तथा लाभ की मात्रा अनिश्चितता उठाने की मात्रा पर निर्भर करती है।

प्रो. नाईट 'जोखिम' तथा 'अनिश्चितता' (uncertainties) मे भेद करते हैं। सभी प्रकार के जोखिम अनिश्चितताए उत्पन्न नही करते। इस भेद को अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होने बताया कि एक व्यवसाय मे जोखिम दो प्रकार के होते हैं—(i) **बीमा योग्य जोखिम** (insurable risks), तथा (ii) **बीमा अयोग्य जोखिम** (uninsurable risks)। नीचे हम इन दोनो प्रकार के जोखिमों का विस्तृत विवरण करते हैं।

बीमा योग्य जोखिम वे जोखिम हैं जिनका अनुमान लगाया जा सकता है और जिनकी सांख्यिकी गणना की जा सकती है और इसलिए उनका बीमा किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आग, दुर्घटना, चोरी, डकैती इत्यादि ऐसे जोखिम है जिनका बीमा कराया जा सकता है। इस प्रकार के जोखिम वास्तव मे कोई अनिश्चितता उत्पन्न नही करते क्योकि साहसी इनका बीमा कराके निश्चिन्त हो जाता है। अत. 'बीमा-योग्य जोखिम' लाभ को उत्पन्न नहीं करते।

बीमा-अयोग्य जोखिम वे जोखिम हैं जिनका अनुमान नही लगाया जा सकता तथा जिनकी सांख्यिकी गणना नही की जा सकती; और इसलिए उनका बीमा नही किया जा सकता। इस प्रकार के जोखिम अनिश्चितताएं उत्पन्न करते हैं, इसलिए 'बीमा-अयोग्य जोखिमो' को 'अनिश्चितताए' भी कहा है। बीमा-अयोग्य जोखिमे निम्न प्रकार की हो सकती हैं. (i) व्यक्तियों की रुचि, फैशन इत्यादि मे परिवर्तन होने से माँग की दशाओ मे परिवर्तन हो सकता है, (ii) लागत मे बचत करने वाली किसी नयी मशीन का आविष्कार हो सकता है, तथा इसी प्रकार की अन्य टेकनीकल जोखिमे हो सकती हैं, (iii) व्यापारिक चक्र (business cycle); तेजी-मन्दी (prosperity and depression) के समयो मे लाभ-हानि की अधिक सम्भावनाए रहती हैं, (iv) सरकार की नीति मे परिवर्तन; टैक्स तथा राजकोषीय (fiscal) नीतियो मे परिवर्तन होने से लाभ-हानि की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार के बीमा-अयोग्य जोखिमे अनिश्चितताओं को जन्म देती हैं। बिना इन अनिश्चितताओ को सहन किये कोई उत्पादन कार्य प्रारम्भ नही हो सकता। अत साहसी का मुख्य कार्य अनिश्चितताओं को उठाता है, अतः 'अनिश्चितता उठाने' (uncertainty bearing) **का पुरस्कार ही लाभ है। लाभ की मात्रा अनिश्चितता की मात्रा पर निर्भर करती है।** दूसरे शब्दों मे, लाभ केवल परिवर्तन होने से ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि लाभ तब उत्पन्न होता है जबकि परिवर्तन अप्रत्याशित तथा अनिश्चित (unexpected and uncertain) हो।

आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं :

(1) **'अनिश्चितता उठाना' ही साहसी का केवल एकमात्र कार्य नहीं है;** साहसी के अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य, जैसे, कुशलतापूर्वक संयोजन (coordination) तथा संगठन का कार्य, नव-प्रवर्तन का कार्य, भी हैं। अतः **लाभ को केवल अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार मान लेना पूर्णतया सही नहीं है।**

(2) **केवल अनिश्चितता का तत्त्व ही लाभ को उत्पन्न नहीं करता।** दूसरे शब्दों में, 'अनिश्चितता उठाना' अन्य तत्त्वों में से केवल एक तत्त्व है जो कि साहसियों की पूर्ति को सीमित करके लाभ को उत्पन्न करता है। अन्य तत्त्व, जैसे अवसरों की अज्ञानता, पूंजी की कमी, इत्यादि भी लाभ को उत्पन्न करते हैं।

दूसरे शब्दों में, प्रतियोगिता की अपूर्णताएं (Imperfections of competition) भी लाभ को उत्पन्न करती हैं. केवल अनिश्चितताएं ही लाभ को जन्म नहीं देतीं; इसका एक उदाहरण एकाधिकारी लाभ है।

(3) यह सिद्धान्त 'अनिश्चितता उठाने' के तत्त्व को एक पृथक् उत्पत्ति का साधन मान लेता है जो कि उचित नहीं है, यह तो साहसी के कार्यों की केवल एक विशेषता को बताता है।

निष्कर्ष

यद्यपि नाइट के 'अनिश्चितता उठाने' के सिद्धान्त की आलोचनाएं है तथा वह पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि **यह सिद्धान्त लाभ के अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा 'अधिक पूर्ण' (more perfect) है या 'सबसे कम असन्तोषजनक' (least unsatisfactory) है।**

लाभ का औचित्य
(JUSTIFICATION OF PROFIT)

समाजवादियों तथा कुछ अन्य समाज-सुधारकों द्वारा एक लम्बे समय से लाभ को सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय (undesirable) बताया गया है। मार्क्स के अनुसार कुल उत्पादन का मूल्य श्रम का परिणाम है और इसलिए वह सब श्रमिकों को मिलना चाहिए। परन्तु पूंजीपति या उत्पादक कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग श्रमिकों को देते हैं और 'अतिरिक्त मूल्य' लाभ के रूप में स्वयं हड़प जाते हैं। अतः मार्क्स ने लाभ को 'कानूनी डाका' कहा।

यद्यपि उपर्युक्त विचार सही नहीं है और एक सिरे (extreme) के हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कुछ दशाओं में लाभ को उचित नहीं कहा जा सकता। ये दशाएं निम्नलिखित हैं—(i) जब साहसी श्रमिकों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम देकर अपने लाभ को बढ़ाता है; (ii) जब उत्पादक विभिन्न प्रकार की बेईमानी की रीतियों से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं; (iii) जब व्यवसायी स्टॉक-एक्सचेंज में अनुचित रीतियों से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं; (iv) एकाधिकारी लाभ; इत्यादि। **परन्तु ये दशाएं प्रायः लोगों के निम्न व्यावसायिक चरित्र (low business morality) के परिणाम हैं।** प्रतियोगिता को बढ़ाकर तथा लोगों के चरित्र में सुधार करके इन दोषों को दूर किया जा सकता है।

व्यक्तिगत लाभों को अनुचित ठहराने में एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही जाती है कि लाभ समाज के साधनों से प्राप्त होते हैं और इसलिए समाज अर्थात् सरकार को मिलने चाहिए, लाभ किसी भी एक वर्ग को केवल इसलिए प्राप्त नहीं होने चाहिए कि वे सम्पत्ति के स्वामी हैं।*

* It might be argued that "profit is created by the means of society's resources; none of the fruits of production thus secured should be expropriated by any one class by virtue of the historical accident of ownership."

परन्तु इस प्रकार का तर्क केवल एक सीमा तक ही उचित है। यह ध्यान रखने की बात है कि केवल सम्पत्ति का स्वामित्व ही लाभों को जन्म नहीं देता, बल्कि लाभ तो साहसी की योग्यता, जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को झेलने की योग्यता, नव-प्रवर्तन की योग्यता, कुशल संगठन की योग्यता के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार लाभ एक विशिष्ट प्रकार के श्रम का पुरस्कार है न कि सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रतिफल (return)।[9]

मेहनत द्वारा प्राप्त हुआ लाभ उचित है। एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थव्यवस्था (free enterprise economy) में **लाभ महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य करता है और इन कार्यों के कारण वह वांछनीय** (desirable) **है।**

लाभ के **सामाजिक कार्य** (social functions) निम्न हैं :

(1) **लाभ का प्रावैगिक कार्य** (dynamic function) **नव-प्रवर्तन तथा विनियोग को प्रोत्साहित करना है।** लाभ अर्थात् लाभ की आशा फर्मों को नव-प्रवर्तन के लिए प्रेरित करती है और नव-प्रवर्तन विनियोग को उत्तेजित करते हैं, परिणामस्वरूप कुल उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है। इस प्रकार लाभ नव-प्रवर्तन तथा विनियोग को उत्तेजित करके आर्थिक विकास में सहयोग देते हैं।

(2) **लाभ साधनों के वितरण** (allocation of resources) **का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।** जिन वस्तुओं की उपभोक्ता अधिक माँग करते हैं उनकी कीमतें ऊँची होंगी और ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में उत्पादकों को लाभ होगा तथा उत्पत्ति के साधनों का अधिक प्रयोग होगा। हानि वाले प्रयोगों से साधन हटकर लाभ वाले प्रयोगों में हस्तान्तरित होंगे। जिस सीमा तक अर्थव्यवस्था **स्वचालित होगी उस सीमा तक साधनों का यह हस्तान्तरण सामाजिक दृष्टि से वांछनीय होगा। दूसरे शब्दों में, लाभ का उदय होना साधनों के पुनर्वितरण के लिए संकेत** (signal) **है तथा लाभ को प्राप्त करना साहसियों के लिए साधनों के पुनर्वितरण को पूरा करने की प्रेरणा है।** लाभ 'संकेत तथा प्रेरणा यन्त्र' (signal incentive mechanism) का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, और 'संकेत तथा प्रेरणा यन्त्र' स्वयं कीमत-व्यवस्था (price system) का आधार है।"[10]

(3) **समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी लाभ** 'विनियोग, उत्पादन तथा रोजगार' को प्रोत्साहित करके महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। समाजवाद सामान्यतया लाभ को समाप्त नहीं करता, वह तो केवल निजी व्यक्तियों द्वारा लाभ के स्वामित्व को समाप्त करता है, समाजवादी रूस में सरकार कर्मचारियों के वेतनों में अन्तर रखकर तथा सफल मैनेजरों के साथ लाभ में भागीदारी (profit sharing) करके उत्पादन को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार समाजवादी देशों में लाभ का रूप बदला जा सकता है परन्तु लाभ के महत्त्वपूर्ण कार्य बने रहते हैं।

स्पष्ट है कि समाज का कोई भी रूप हो—चाहे पूंजीवाद, समाजवाद या साम्यवाद—लाभ एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करता है और इसलिए उसका औचित्य (justification) है।

'लाभ' शब्द के विभिन्न प्रयोग
(DIFFERENT USES OF THE TERM PROFIT)

लाभ अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार है। परन्तु लाभ शब्द के विभिन्न प्रयोग किये जाते हैं। लाभ के अर्थ तथा अभिप्रायों को अच्छी तरह से समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न

---

[9] To a point such arguments are valid, but remember that entrepreneurial ability, not property ownership, gives rise to economic profit. Entrepreneurial ability is not a historical accident in the se[illegible] property ownership. Rather, it is an endowed ability or skill just as the skill of a musician or artist; profit is a return to a particular type of labour—not a return to property ownership.

[10] The appearance of profit is a signal to reallocate resources and the capturing of profit is an incentive for entrepreneurs to accomplish the reallocation. Profit is an important part of the signal-incentive mechanism, itself the backbone of the price system.

प्रयोगों की उचित जानकारी हो। इसके विभिन्न प्रयोग निम्नलिखित हैं—(1) व्यावसायिक लाभ तथा आर्थिक लाभ, (2) पूंजी के फेर पर लाभ, (3) सामान्य लाभ, (4) अतिरिक्त या असामान्य लाभ, (5) एकाधिकारी लाभ, (6) आकस्मिक लाभ, (7) लाभ तथा लाभों।

अब हम ऊपर दिये गये लाभ शब्द के विभिन्न प्रयोगों का विवेचन करते हैं।

1. व्यावसायिक लाभ तथा आर्थिक लाभ
(BUSINESS PROFIT AND ECONOMIC PROFIT)

एक व्यापारी के लिए भी लाभ कुल लागत के ऊपर आधिक्य है, अर्थात् लाभ कुल आगम तथा कुल लागत में अन्तर है। परन्तु एक व्यापारी या उत्पादक या एकाउन्टेन्ट लागत में केवल 'स्पष्ट लागतों' (explicit costs) को शामिल करता है। दूसरे शब्दों में, कुल आगम में से स्पष्ट लागतों को घटा देने के बाद जो बचता है वह व्यावसायिक लाभ है; इसे अर्थशास्त्री 'कुल लाभ' (gross profit) कहते हैं। 'स्पष्ट लागतें' वे हैं जो कि एक व्यापारी या उत्पादक स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनों की सेवाओं को खरीदने में करता है, जैसे, श्रमिकों की मजदूरियां, उधार ली गयी पूंजी का ब्याज, कच्चे माल की लागत, भूमि तथा बिल्डिंगों का किराया, मशीनों (अर्थात् स्थिर पूंजी) का घिसाई व्यय, विज्ञापन पर व्यय, इत्यादि।

अर्थशास्त्री के लिए भी लाभ कुल आगम तथा कुल लागत में अन्तर है, परन्तु अर्थशास्त्री लागत का अर्थ 'अवसर लागत' से लेते हैं, अर्थात् वे लागत के अन्तर्गत 'स्पष्ट लागतों' के अतिरिक्त 'अस्पष्ट लागतें' (implicit costs) तथा 'सामान्य लाभ' (normal profit) भी शामिल करते हैं। 'अस्पष्ट लागतें' वे लागतें हैं जो कि एक साहसी या उत्पादक को अपने स्वयं के साधनों (self-owned resources)—जैसे, अपनी पूंजी, अपना श्रम, अपनी भूमि इत्यादि—के मालिक के रूप में बाजार-दर पर पुरस्कार (reward) मिलने चाहिए और ये लागत के अंग होने चाहिए। 'सामान्य लाभ' लाभ का वह निम्नतम स्तर है जो कि साहसी को उद्योग में कार्य करने तथा बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र (just sufficient) है। यदि साहसी को सामान्य लाभ नहीं मिलता तो वह उद्योग विशेष में कार्य नहीं करेगा और किसी दूसरे उद्योग में हस्तांतरित हो जायेगा; दूसरे शब्दों में, 'सामान्य लाभ' साहसी की 'हस्तान्तरण आय' या 'अवसर लागत' है और इसलिए 'सामान्य लाभ' लागत का अंग है।

व्यावसायिक लाभ = कुल आगम − स्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ = कुल आगम − (स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें + सामान्य लाभ)

2. पूंजी के फेर पर लाभ
(PROFIT ON THE TURNOVER)

एक व्यवसाय में लगायी गयी पूंजी पर वार्षिक लाभ-दर को 'प्रति वर्ष लाभ' (profit per year) कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि व्यवसाय में 20,000 रु. की कुल पूंजी लगी हुई है और साल भर में 'स्पष्ट लागतों' को काटकर, माना, 2,400 रु. का लाभ प्राप्त होता है तो, व्यवसायी की दृष्टि से, लाभ की वार्षिक दर 12% होगी।

लाभ जो कि पूंजी के प्रत्येक फेर (turnover) पर प्राप्त होता है उसे एक व्यवसायी 'पूंजी के फेर पर लाभ' (profit on turnover) कहता है। प्रायः एक व्यवसाय (विशेषतया छोटे व्यवसायों) में लगायी गयी पूंजी का साल भर में कई बार हेर-फेर होता है। उदाहरणार्थ, माना कि एक फुटकर व्यापारी (retailer) 1,000 रु. की पूंजी से कार्य करता है। वह 1,000 रु. का माल थोक बाजार में खरीदकर फुटकर बाजार में 1 महीने में बेच लेता है। इसके पश्चात वह पुनः 1,000 रु. का माल खरीदकर 1 महीने में फुटकर बाजार में बेच लेता है। इस प्रकार माना कि

यह साल भर मे 1,000 रु. की पूंजी का 12 बार फेर कर लेता है और माना कि उसे प्रत्येक फेर में लगभग 3% का लाभ होता है। पूंजी की एक निश्चित मात्रा (अर्थात् 1,000 रु.) का कई बार हेर-फेर होने पर लाभ होता है जिसे 'पूजी के फेर पर लाभ' कहा जाता है।

यद्यपि फुटकर व्यापारी की लाभ-दर नीची है, परन्तु पूंजी के कई बार फेर होने पर लाभ की वार्षिक दर ऊँची हो जाती है। 1,000 रु. के एक फेर पर 3% के हिसाब से उसे 30 रु. लाभ मिलता है, 12 फेर मे उसको कुल लाभ $30 \times 12 = 360$ रु. मिलता है। स्पष्ट है कि 1,000 रु की पूजी से वह फुटकर व्यापारी 360 रु. प्राप्त करता है, अर्थात् प्रतिवर्ष लाभ की दर $\frac{360}{1000} \times 100 = 36\%$ पडती है।

यहा पर यह ध्यान रखना चाहिए कि 'प्रति वर्ष लाभ' तथा 'पूजी के फेर पर लाभ' दोनो व्यावसायिक लाभ के ही रूप है, अत इनको ज्ञात करने मे लागत का अर्थ 'अस्पष्ट लागतो' से ही लिया जाता है।

3. सामान्य लाभ
(NORMAL PROFIT)

(i) **किसी उद्योग में साहसी के लिए 'सामान्य लाभ' लाभ का वह निम्नतम स्तर है जो कि साहसी को उद्योग में कार्य करने तथा बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र है।**[11] उपर्युक्त परिभाषा का अभिप्राय है कि जब एक उद्योग मे साहसियो अर्थात् फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है तो उद्योग मे नयी फर्मों के प्रवेश होने की कोई प्रवृत्ति नही होती है और न ही पुरानी फर्मों की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृत्ति होती है। अत **श्रीमती जोन रोबिन्सन** के अनुसार **"सामान्य लाभ, लाभ का वह स्तर है जिस पर कि व्यवसाय में नयी फर्मों के प्रवेश करने की या पुरानी फर्मों को उद्योग से निकल जाने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।**[12] सामान्य लाभ को एक और प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग 'साम्य' या 'पूर्ण साम्य' (equilibrium or full equilibrium) की दशा मे तब होता है जबकि उसके अन्तर्गत फर्मों की संख्या में कोई परिवर्तन (कमी या वृद्धि) न हो, ऐसा तब होगा जबकि फर्मों को न हानि हो और न लाभ बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा हो क्योंकि तभी न तो नयी फर्में उद्योग मे प्रवेश करेंगी और न उनमे से बाहर जायेंगी। अत **सामान्य लाभ वह लाभ है जो कि फर्मों को तब प्राप्त होता है जबकि उद्योग पूर्ण साम्य की स्थिति में हो।**[13]

(ii) एक महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखने की यह है कि **सामान्य लाभ लागत का अंग होता है अर्थात् औसत लागत मे शामिल होता है।** इसका कारण है कि भूमि, श्रम तथा पूजी की भाँति साहसी (अर्थात् साहसी की योग्यता) एक सीमित या दुर्लभ साधन (scarce resource) है और इसलिए उसकी भी एक कीमत होती है। अतः एक साहसी किसी उद्योग मे तभी कार्य करेगा जबकि (अन्य साधनो की भाति) उसको उसकी न्यूनतम कीमत अर्थात् 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' (minimum supply price) प्राप्त हो सके, यदि ऐसा नही है तो वह इस उद्योग में नही रहेगा। साहसी का यह 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' ही 'सामान्य लाभ' है, अर्थात् 'सामान्य लाभ साहसी की 'हस्तान्तरण आय'

---

11 "Normal profit, for an entrepreneur in any industry is the minimum level of profit which is just sufficient to induce him to stay in the industry."

12 "Normal profit is that level of profit at which there is no tendency for new firms to enter the trade or for old firms to disappear out of it."

—Mrs. Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*. p. 92

13 Cf "An industry is said to be in full equilibrium when there is no tendency for the number of firms to alter. The profits earned by the firms in it are then normal."

—Mrs. Joan Robinson, *op. cit.*, p. 93.

या 'अवसर लागत' है और इस प्रकार वह लागत का एक अंग है ।[14]

(iii) साहसी को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए सामान्य लाभ अनिश्चितता उठाने का एक न्यूनतम पुरस्कार (irreducible minimum reward) है । सामान्य लाभ तो साहसी को उद्योग मे बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र (just sufficient) होता है ताकि साहसी देखभाल तथा प्रबन्ध (supervision and organization) का सामान्य कार्य (routine work) करता रहे । इसलिए यह कहा जाता है कि **सामान्य लाभ मजदूरी की भाँति होता है या उसे 'प्रबन्ध की मजदूरी'** कहा जा सकता है;[15] सामान्य लाभ के रूप में साहसी स्वयं अपने आप को संगठन या प्रबन्ध की मजदूरी देता है ।

(iv) सामान्य लाभ का स्तर भिन्न-भिन्न उद्योगों के लिए भिन्न-भिन्न होता है । जिन उद्योगों मे प्रारम्भिक विनियोग (initial investment) बहुत अधिक होता है या जिन उद्योगो मे खतरा रहता है या तो उद्योग आदरणीय नही समझे जाते, ऐसे उद्योगों में सामान्य लाभ का स्तर अन्य उद्योगों की अपेक्षा ऊँचा होगा ।

4. अतिरिक्त लाभ या असामान्य लाभ
(EXCESS OR ABNORMAL OR SUPERNORMAL PROFIT)

(i) **जब एक साहसी की आय सामान्य लाभ से अधिक होती है तो उसे 'अतिरिक्त लाभ' या 'असामान्य लाभ'** (excess or supernormal profit) **कहते हैं।**

(ii) अतिरिक्त लाभ, सामान्य लाभ की भाँति, साहसी को किसी उद्योग मे कार्य करने तथा उसमें बने रहने के लिए आवश्यक नही होता। दूसरे शब्दों मे, अतिरिक्त लाभ, सामान्य लाभ की भाँति, लागत का अंग नही होता ।

(iii) जब 'विशुद्ध लाभ' (pure profit) या 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit)[16] शून्य होता है तो इसका अभिप्राय है कि साहसी को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है । दूसरे शब्दों में, 'शून्य विशुद्ध लाभ' ('zero pure profit' or simply 'zero profit') तथा 'सामान्य लाभ' (normal profit) एक ही बात है ।

(iv) सामान्य लाभ कभी ऋणात्मक नही हो सकता जबकि अतिरिक्त लाभ ऋणात्मक हो सकता है अर्थात् हानि को 'ऋणात्मक लाभ' कहा जाता है ।

5. एकाधिकारी लाभ
(MONOPOLY PROFIT)

जब लाभ एकाधिकारी स्थिति के कारण प्राप्त होते हैं तो उन्हें 'एकाधिकारी लाभ' कहा जाता है । एक वस्तु को उत्पादित करने वाली कुछ बड़ी फर्में आपस में समझौता करके नयी फर्मों के प्रवेश को रोक सकती है और एकाधिकारी स्थिति प्राप्त कर सकती हैं, पेटेन्ट, कापीराइट, कच्चे माल की अधिकाश पूर्ति पर अधिकार, इत्यादि एकाधिकार के कारण हो सकते हैं । एक एकाधिकारी नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने की योग्यता रखता है, परिणामस्वरूप वह अपने उत्पादन को संकुचित करके ऊँची कीमत रखता है और दीर्घकाल मे भी असामान्य या अतिरिक्त लाभ प्राप्त करता है । चूंकि

---

[14] Like land, labour, and capital, entrepreneur (i.e., entrepreneurial ability) is a scarce resource and therefore has a price tag on it. Hence, an entrepreneur will work in an industry only when he gets his minimum price or minimum supply price, otherwise he will not stay in this industry. In other words, this minimum supply price of an entrepreneur is the normal profit and it is a part of cost.

[15] Marshall's 'normal profits' virtually correspond to Clarkian 'wages of management'.

[16] What Marshall would call 'abnormal profits' is designated by Clark as 'pure profit'.

ये अतिरिक्त लाभ, लगान की भाँति, सीमितता के कारण प्राप्त होते हैं और दीर्घकाल में भी रहते हैं, इसलिए 'एकाधिकार लाभ' लगान के *अधिक निकट होते हैं और इन्हें 'एकाधिकारी लगान'* (Monopoly Rent) भी कहा जाता है।

अब हम **लाभ के स्रोत (source) के रूप में 'अनिश्चितता' (uncertainty) तथा 'एकाधिकार' के बीच सम्बन्ध तथा अन्तर (distinction) की विवेचना करते हैं**—(i) एक साहसी एकाधिकारी शक्ति प्राप्त करके अनिश्चितता को कम कर सकता है अथवा उसके प्रभावों को अपने स्वार्थ के लिए काम में ला सकता है। एक स्पर्द्धात्मक (competitive) फर्म बाजार की अनियमितताओं (vagaries) के प्रति अरक्षित रहती है, जबकि एक एकाधिकारी बाजार को एक सीमा तक *नियन्त्रित कर सकता है और इस प्रकार महत्त्वपूर्ण तरीके से अनिश्चितता के कुप्रभावों को समाप्त* कर सकता है या उन्हें न्यूनतम कर सकता है।[17] (ii) इसके अतिरिक्त नव-प्रवर्तन (innovation) एकाधिकार का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, नये तकनीकों के लागू करने या नयी वस्तुओं के *उत्पादन करने से उत्पन्न अल्पकालीन अनिश्चितता एकाधिकारी शक्ति को अर्जित करने की* दृष्टि से एक साहसी द्वारा उठायी जा सकती है। (iii) 'अनिश्चितता' तथा 'एकाधिकार' से उत्पन्न लाभों में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर भी है, और यह अन्तर लाभ के इन दोनों स्रोतों (sources) की सामाजिक वाछनीयता (social desirability) से सम्बन्धित है। प्रावैगिक (dynamic) तथा अनिश्चित आर्थिक वातावरण में निहित जोखिमों को उठाना तथा नव-प्रवर्तनों को ग्रहण करना सामाजिक दृष्टि से वाछनीय कार्य है। इसके विपरीत एकाधिकारी लाभों की सामाजिक वाछनीयता अत्यधिक सदेहात्मक है। एकाधिकारी लाभ, स्पर्द्धात्मक कीमतों के ऊपर, उत्पादन सकुचन (restriction) तथा साधनों के *जानबूझकर अनुचित वितरण (contrived misallocation) पर आधारित है।*[18] सक्षेप में, 'जान बूझकर उत्पन्न की गयी कमी' (contrived scarcities) के कारण 'एकाधिकारी लाभ' सामाजिक दृष्टि से अवाछनीय हैं, जबकि 'नव-प्रवर्तन के कारण एकाधिकारी लाभ' वांछनीय कहे जा सकते हैं।

6. आकस्मिक लाभ
(WINDFALL PROFITS)

1. **परिभाषा** (Definition)—आकस्मिक घटना, *अवसर या भाग्य* (accident, chance or luck) के कारण यकायक अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो जाते हैं जिन्हें **'आकस्मिक लाभ'** कहा जाता है।

आकस्मिक लाभ की एक अच्छी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—**एकाधिकार के अतिरिक्त कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो कि** *आकस्मिक (accidental) तथा अल्पकाल के लिए होती हैं* **और ये द्रव्य अर्जित करने की दृष्टि से फर्मों को अनुकूल स्थिति में रख देती हैं। ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न अतिरिक्त प्रतिफलों को 'आकस्मिक लाभ' कहा जा सकता है।"**[19]

[17] "An entrepreneur can reduce uncertainty, or at least manipulate its effect, by achieving monopoly power. The competitive firm is unalterably exposed to the vagaries of the market; the monopolist, however, can control the market to a degree and thereby offset or minimize potentially adverse effects of uncertainty."

[18] "Bearing the risks inherent in a dynamic and uncertain economic environment and the undertaking of innovations are socially desirable functions. The social desirability of monopoly profit, on the other hand, is subject to very great doubt. Monopoly profits typically are founded upon output restriction, above competitive prices, and a contrived misallocation of resources."

[19] "In addition to monopoly, there is a large family of circumstances, accidental and short lived, which place some firms in a favourable spot to make money. The extra returns resulting may be called windfall profits."

2. व्याख्या (Explanation)—उदाहरणार्थ, यकायक युद्ध छिड़ जाने से किसी वस्तु की कमी के कारण उसकी कीमत बढ़ जाती है और ऐसी स्थिति में उन व्यापारियों को, जिनके पास उस वस्तु के स्टॉक हैं, बहुत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं जिन्हें 'आकस्मिक लाभ' कहा जाता है। भाग्यवश यदि किसी व्यक्ति को एक लॉटरी (lottery) का एक लाख का प्रथम पुरस्कार मिल जाता है तो यह 'आकस्मिक लाभ' होगा।

अब हम दो और, परन्तु महत्त्वपूर्ण, उदाहरण देते हैं। माना दो फर्में A तथा B एक प्रकार की वस्तु का उत्पादन कर रही है। माना फर्म A में श्रमिकों की आकस्मिक हड़ताल हो जाती है जो कि लगभग 1 महीने चलती है। परिणामस्वरूप फर्म B को एक महीने की अल्पावधि मे 'आकस्मिक लाभ' प्राप्त होगे क्योंकि वह अब अपनी वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचकर अथवा पहले की कीमत पर ही बहुत अधिक मात्रा मे बेचकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगी। यहाँ पर आकस्मिक घटना (अर्थात् हड़ताल) एक फर्म (अर्थात् फर्म B) के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है तथा दूसरी फर्म (अर्थात् फर्म A) के लिए हानि।

दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमें भाग्य, अवसर या एक आकस्मिक घटना एक ही फर्म के लिए 'अनिश्चितता' तथा 'एकमात्र लाभकारी स्थिति' दोनों का मिश्रण (mixture) उत्पन्न कर सकती है। यकायक युद्ध छिड़ जाने के कारण किसी वस्तु विशेष की मांग बहुत बढ़ सकती है तो इस वस्तु को उत्पादित करने वाली फर्म को (वस्तु की ऊँची कीमत के परिणामस्वरूप) अत्यधिक लाभ अर्थात् 'आकस्मिक लाभ' प्राप्त होंगे। वस्तु की अधिक माग तथा ऊँची कीमत के कारण फर्म का लागत-ढाँचा (cost structure) ऊँचा हो सकता है, जिसके कारण फर्म के लिए अनिश्चितता भी उत्पन्न होगी क्योंकि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद वस्तु की मांग तथा कीमत गिर सकती है और शांतिकाल (peace time) में ऊँचे लागत-ढांचे को बनाये रखना कठिन होगा और फर्म को हानि हो सकती है। स्पष्ट है कि युद्ध की आकस्मिक घटना से एक ही फर्म के लिए 'अनुकूल स्थिति' (favoured position) तथा 'अनिश्चितता' (uncertainty) दोनों का मिश्रण उत्पन्न होता है।

3. निष्कर्ष (Conclusion)—(i) अनेक आकस्मिक घटनाओं के कारण अनिश्चितता उसी प्रकार उत्पन्न हो सकती है जिस प्रकार कि प्रावैगिक (dynamic) परिवर्तनों के कारण। कुछ दशाओं में भाग्य, अवसर या आकस्मिक घटना एक ही फर्म को 'अनिश्चितता' तथा 'एकमात्र लाभकारी स्थिति' (exclusively favourable position) का मिश्रण प्रदान करती है। कुछ अन्य दशाओं में यह कुछ फर्मों के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है और कुछ अन्य फर्मों के लिए केवल हानि। आकस्मिक लाभ का सार (essence) इस परिस्थिति में निहित है कि अनुकूल स्थिति (favoured position) नयी फर्मों के प्रवेश से तुरन्त समाप्त नहीं होती तथा आकस्मिक हानियाँ फर्मों के तात्कालिक बहिर्गमन (exit) से नहीं रुक पाती हैं। वास्तव में पूर्ति की बेलोचता (inflexibility) आकस्मिक लाभो के कारण की व्याख्या करती है।[20]

(ii) परन्तु इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रहे कि एक विस्तृत अर्थ में सीमित प्रवेश या बहिर्गमन अर्थात् पूर्ति की बेलोचताएं लाभ के उत्पन्न होने की सभी स्थितियो से सम्बन्धित होती हैं—अर्थात् अनिश्चितता की स्थितियो मे उत्पन्न लाभ का सम्बन्ध पूर्ति की बेलोचता से होता है, अनिश्चितता चाहे नव-प्रवर्तन के कारण हो या अन्य परिवर्तनो के कारण, 'अनुकूल स्थिति' की दशाओं में उत्पन्न लाभ भी पूर्ति की बेलोचता से सम्बन्ध रखता है, 'अनुकूल स्थिति' चाहे एकाधिकार के कारण हो अथवा आकस्मिक घटना के कारण।[21]

---

[20] The essence of windfall profit dwells in the circumstances that the favoured position is not removed by the instantaneous entry of new firms, and accidental losses are not arrested by the immediate exit of firms. It is the inflexibility of supply that accounts for windfall profits.

[21] But it may be kept in mind that "in a broad sense restricted entry and exit or inflexibi- *(Contd.)*

7. 'लाभ' तथा 'लाभों'
(PROFIT AND PROFITS)

कुछ अर्थशास्त्री (जैसे Ryan तथा Machlup) 'लाभ' ('profit') तथा 'लाभों' (profits) में भेद करते हैं तथा इन्हें कार्यात्मक दृष्टि से (operationally) परिभाषित करते हैं।

"लाभ से हमारा अर्थ उस विशुद्ध आगम से है जो कि एक फर्म भविष्य में एक समयावधि के अन्तर्गत प्राप्त करने की आशा करती है, लाभों से हमारा अर्थ उस विशुद्ध आगम से है जोकि एक फर्म एक निश्चित अवधि के समाप्त होने के बाद प्राप्त करने में सफल होती है।"[22]

यदि एक फर्म की उत्पादन तथा बिक्री की योजनाएं भविष्य में सही सिद्ध होती हैं तो एक निश्चित समय समाप्त होने पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, एक निश्चित अवधि में 'लाभ' तथा 'लाभों' में तुलना इस बात की माप है कि किस सीमा तक एक फर्म ने अपनी योजनाओं में गलती की है, यदि आर्थिक वातावरण समयावधि में अपेक्षाकृत स्थायी है तो हम यह आशा करेंगे कि 'लाभ' तथा 'लाभों' में अन्तर बहुत कम होगा और समाप्त हो जायेगा।[23]

सामान्य लाभ का निर्धारण
(DETERMINATION OF NORMAL PROFIT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

वास्तविक जगत गत्यात्मक (dynamic) है, उसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते है, परिणामस्वरूप अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में उसमें अनिश्चितता बनी रहती है। इस अनिश्चितता को उठाने की दृष्टि से व्यक्तियों अर्थात् साहसियों को प्रेरित (induce) करने के लिए एक न्यूनतम पुरस्कार (अर्थात् लाभ) का होना आवश्यक है। यह न्यूनतम पुरस्कार या लाभ की न्यूनतम दर 'सामान्य लाभ' कही जाती है। सामान्य लाभ शुद्ध लाभ (pure profit) का वह अंश है जिसको प्राप्त करने की साहसी आशा करते हैं। यह 'अनिश्चितता झेलने का कम न हो सकने योग्य न्यूनतम पुरस्कार' है जो कि एक समयावधि में साहसियों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए आवश्यक है।[24] यदि साहसियों को उद्योग विशेष में यह न्यूनतम पुरस्कार नहीं मिलता है तो वे इस उद्योग में काम नहीं करेंगे बल्कि दूसरे उद्योग में चले जायेंगे, दूसरे शब्दों में, सामान्य लाभ साहसी की 'हस्तान्तरण आय' या 'अवसर लागत' है। अल्पकाल में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक (surplus profit) प्राप्त हो सकता है अर्थात् लाभ में लगान का अंश हो सकता है, परन्तु दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, यह 'अतिरिक्त लाभ' या 'लगान का अंश' समाप्त हो जायेगा और केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

अन्य साधनों की कीमत की भाँति, साहसी की कीमत (अर्थात् सामान्य लाभ) साहसी की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

---

lities of supply seem to be associated with profit in all cases in which they appear—in cases of *uncertainty*, whether fostered by innovation or other changes and in cases of a *favoured position*, whether created by monopoly or accident.

22 "By *profit* we mean the net revenue that a firm expects to earn during a period of time that lies ahead, by *profits* we mean the net revenue which a firm has actually succeeded in earning during a period that has ended."

23 "A comparison between profits and profits in a particular period, then, provides a measure of the extent to which the firm erred in the estimates on which its plans were based; if the economic environment is relatively stable over time we would expect the differences between profit and profits to dwindle and disappear."

24 "Normal profit is that part of 'pure profit' which is expected by entrepreneurs. It is an irreducible minimum reward for uncertainty-bearing, which entrepreneurs will require over a period of time, to induce them to stay in a particular industry.

2. साहसी की माँग (Demand of Entrepreneurship)

माँग पक्ष पर हम सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रयोग करते है। फर्मों द्वारा साहसी की माँग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है परन्तु अन्य साधनों की तुलना में साहसी की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue product) के ज्ञात करने में एक कठिनाई है। साधन श्रम के सम्बन्ध में एक फर्म श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करके कुल आगम मे वृद्धि को मालूम करके श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता को ज्ञात कर लेती है, परन्तु एक फर्म साहसी की सीमान्त उत्पादकता इस प्रकार ज्ञात नही कर सकती क्योकि एक फर्म एक साहसी का ही प्रयोग कर सकती है, एक से अधिक का नही। परन्तु इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है यदि हम साहसी की सीमान्त उत्पादकता को एक उद्योग के सन्दर्भ मे देखे।

एक उद्योग में प्रयुक्त किये जाने वाले साहसियो की संख्या फर्मों की संख्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती है, उद्योग विशेष में जितनी फर्में होंगी उतने ही साहसी होंगे। यह मान लेना उचित (reasonable) होगा कि उद्योग में फर्मों की सख्या में वृद्धि के साथ प्रत्येकफर्म का लाभ घटेगा (क्योकि उद्योगों मे वस्तु के उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरेगी)। इसका अभिप्राय है कि साहसियों की अधिक संख्या प्रयुक्त होने से उनकी सीमान्त उत्पादकता गिरेगी, साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा (MRP-curve) बाये से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र 1 मे दिखाया गया है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (economy as a whole) के लिए भी साहसियों की मांग ज्ञात की जा सकती है; सभी उद्योगो से सम्बन्धित साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखाओं को जोड़ देने से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए साहस (entrepreneurship) की माँग ज्ञात हो जायेगी।
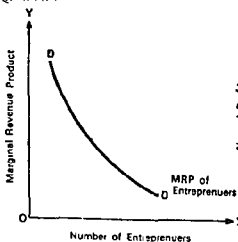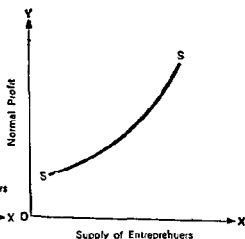
चित्र 1 चित्र 2

3. साहस की पूर्ति (Supply of Entrepreneurship)

'सामान्य लाभ' साहसी का पूर्ति मूल्य (Supply price) है, सामान्य लाभ वह न्यूनतम पूर्ति मूल्य है जो कि समाज (अर्थात् सम्पूर्ण-व्यवस्था) को अनिश्चितता झेलने की पूर्ति (supply of uncertainty-bearing) को बनाये रखने के लिए देना पडेगा।[25] यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे लाभ-

[25] "Profit exclusive of any rent element—i.e., what is termed 'normal profit'—is the supply price of entrepreneurship, the price which society must pay to maintain the supply of uncertainty-bearing."

Demand & Supply of Entreprenuers in Long Period

चित्र 3

दर ऊँची होगी तो साहसियों की पूर्ति अधिक होगी, लाभ-दर नीची होगी तो साहसियों की पूर्ति कम होगी। इस प्रकार लाभ-दर तथा साहसियो की पूर्ति मे सीधा सम्बन्ध होगा और इसलिए, सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से साहसियो की पूर्ति रेखा ऊपर की ओर चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र 2 में दिखाया गया है।

4. सामान्य लाभ निर्धारण (Determination of Normal Profit)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (economy as a whole) की दृष्टि से साहसी का मूल्य अर्थात् सामान्य लाभ *उस विन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साहसियों* की माँग रेखा तथा पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती है। चित्र 3 में DD तथा SS रेखाएं R विन्दु पर काटती है, अत सामान्य लाभ RQ (या PO) निर्धारित होगा और साहसियो की माग तथा पूर्ति दोनो OQ के बराबर होगी। सामान्य लाभ को PL रेखा द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक उद्योग इस सामान्य लाभ के स्तर को स्वीकार करेगा।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग उस सामान्य लाभ को दिया हुआ मान लेगा जोकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे साहसियो की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक उद्योग चित्र 3 की PL सामान्य लाभ रेखा को दिया हुआ मान लेगा, इसका अभिप्राय है कि एक उद्योग के लिए सामान्य लाभ रेखा (या साहसियो की पूर्ति रेखा) एक पड़ी हुई रेखा होगी और इस दिये हुए सामान्य लाभ तथा साहसियो की सीमान्त आगम उत्पादकता के अनुसार उद्योग विशेष मे साहसियो की संख्या निर्धारित होगी। चित्र 4 मे सामान्य लाभ रेखा PL तथा साहसी की MRP-रेखा एक दूसरे को T विन्दु पर काटती है, अत उद्योग विशेष मे प्रयुक्त किये जाने वाले साहसियो की सख्या OM होगी। दूसरे शब्दो मे, पूर्ण प्रतियोगिता के

Number of Entreprenuers

चित्र 4

अन्तर्गत एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि साहसी सामान्य लाभ प्राप्त करते हैं। यदि उद्योग में साहसियो की सख्या OM से कम है, माना कि OB है, तो इसका अभिप्राय है कि इस उद्योग मे साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता AB है अर्थात् उन्हें AB लाभ प्राप्त हो रहा है जो कि सामान्य लाभ से अधिक है; इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर साहसियो की सख्या बढ़ेगी (जैसा कि चित्र 4 मे B से M की ओर जाता हुआ तीर बताता है) और बढ़कर वह OM के बराबर हो जायेगी जहां पर साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा सामान्य लाभ बराबर हैं।

इसी प्रकार यदि साहसियों की संख्या OM से अधिक है, मान लो कि ON है, तो इसका अभिप्राय है कि इस उद्योग में साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) बराबर है KN के, अर्थात् उनको KN लाभ प्राप्त हो रहा है जो कि सामान्य लाभ से कम है; परिणामस्वरूप कुछ साहसी इस उद्योग को छोड़ देंगे, उनकी संख्या कम होकर (जैसा कि चित्र 4 मे N से M की ओर जाता हुआ तीर बताता है) OM के बराबर हो जायगी जहाँ पर साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा सामान्य लाभ बराबर हैं। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग साम्य की स्थिति से तभी होगा जबकि सभी साहसियो (अर्थात् फर्मों) को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।
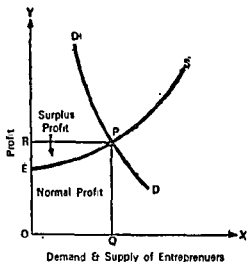
चित्र 5

अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उद्योग, अर्थात् जब उद्योग विशेष में साहसियों या फर्मों के प्रवेश के प्रति रुकावटें अथवा बाधाएं हैं तब ऐसे उद्योग के लिए साहसियों की पूर्ति रेखा (अर्थात् सामान्य लाभ रेखा) पड़ी हुई रेखा न होकर ऊपर को चढ़ती हुई रेखा होगी जैसा कि चित्र 5 में ES रेखा है।[26] चित्र 5 में साहसियों की माँग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा ES एक दूसरे को P बिन्दु पर काटती हैं, अतः प्रत्येक साहसी को PQ (या RO) के बराबर पुरस्कार या लाभ प्राप्त

---

[26] ऊपर को चढ़ती हुई साहसियों की पूर्ति रेखा ES का अभिप्राय है कि अधिक साहसियों को प्रयुक्त करने के लिए ऊँचे पुरस्कार अर्थात् ऊँचे सामान्य लाभ देने पड़ेंगे। पूर्ति रेखा ES साहसियों के 'पूर्ति मूल्यों' (अर्थात् 'सामान्य लाभ' के विभिन्न स्तरों) को बताती है जिन पर कि साहसियों की विभिन्न संख्या उद्योग विशेष में कार्य करने को तत्पर है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग यदि साहसियों की OA संख्या (चित्र 6) प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे प्रत्येक साहसी को कम से कम DA के बराबर सामान्य लाभ या पूर्ति मूल्य अवश्य देना होगा नहीं तो उद्योग को साहसियों की यह संख्या प्राप्त नहीं होगी। इस प्रकार उद्योग यदि साहसियों की OB संख्या या OC संख्या या OQ संख्या प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे क्रमशः कम से कम BK या CR या QP के बराबर पूर्ति मूल्य या सामान्य लाभ अवश्य देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, ES रेखा सामान्य लाभ के विभिन्न स्तरों को बताती है तथा साहसियो की OQ संख्या का कुल सामान्य लाभ (या 'कुल पूर्ति मूल्य' या 'कुल अवसर लागत') ES रेखा के नीचे का क्षेत्रफल OQPE के बराबर होगा।
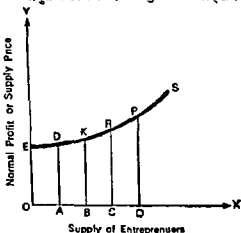
चित्र 6

होगा तथा प्रयुक्त किये जाने वाले कुल साहसियों की संख्या OQ होगी। OQ साहसियों को प्राप्त होने वाला कुल लाभ $OQ \times PQ = OQPR$ तथा कुल सामान्य लाभ $= OQPE$। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग विशेष में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ (अर्थात् एक प्रकार से लगान) प्राप्त हो रहा है, अर्थात्

अतिरिक्त लाभ (excess profit)

$$= \text{कुल लाभ} - \text{सामान्य लाभ}$$
$$= OQPR - OQPE$$
$$= EPR$$

5. **लाभ-निर्धारण के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें** (Some important points regarding profit determination)

सामान्य लाभ-निर्धारण के उपर्युक्त विवेचन के सम्बन्ध में निम्न महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :

(i) उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हम यह मान लेते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी साहसियों के लिए सामान्य लाभ का स्तर एक ही है और इस प्रकार सभी साहसी समान आय प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह मान लिया जाता है कि सभी साहसी एकरूप (homogeneous) हैं अर्थात् समान योग्यता रखते हैं। स्पष्ट है कि यह मान्यता अवास्तविक है।

अत व्यवहार में दीर्घकाल में भी कुछ साहसी ऐसे होंगे जो सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त करेंगे, इस अतिरिक्त लाभ को 'योग्यता का लगान' (rent of ability) कहा जा सकता है।

(ii) उपर्युक्त विवेचन में एक छिपी हुई मान्यता (implicit assumption) यह है कि सभी उद्योगों मे अनिश्चितता की समान मात्रा (same degree of uncertainty) मान ली जाती है। परन्तु यह मान्यता भी अवास्तविक है क्योंकि व्यवहार में कुछ उद्योगों में अनिश्चितता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है और इसलिए ऐसे उद्योगों मे सामान्य लाभ का स्तर, अन्य उद्योगों की तुलना मे, अधिक होगा। दूसरे शब्दों मे, लाभ का एक स्तर जो कि एक साहसी के लिए सामान्य है वह दूसरे के लिए सामान्य से कम तथा तीसरे के लिए सामान्य से अधिक हो सकता है।[27]

परन्तु फिर भी सामान्य लाभ का विचार लाभदायक है क्योंकि "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए सामान्य लाभ के स्तर का समायोजन (adjustment) करके हम व्यक्तिगत उद्योगों में अनिश्चितता की विभिन्न मात्राओं की जानकारी कर सकते हैं।"[28]

(iii) यदि अर्थव्यवस्था पूर्णतया स्थिर (perfectly static) है, अर्थात् जनसंख्या, व्यक्तियों की रुचियों (tastes), टेक्नोलोजी तथा आयों में कोई परिवर्तन नहीं होता तो कोई अनिश्चितता नहीं होगी और इसलिए कोई सामान्य लाभ या लाभ नहीं होंगे, साहसी का 'सामान्य लाभ' वास्तव में केवल 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) होगी।

क्या लाभ समान हो सकते हैं?
(CAN PROFITS TEND TO EQUALITY ?)

अन्य साधनों के पुरस्कारों की भाँति लाभ की एक सामान्य दर (general rate) असम्भव है:

(i) अधिक जोखिम तथा अनिश्चितता वाले उद्योगों में लाभ अधिक होगा अपेक्षाकृत कम

---

27 "A level of profit which is normal for one entrepreneur may be less than normal for another and more than normal for a third."

28 Yet the concept of normal profit is useful because "by making an adjustment to the level of normal profit for the economy as a whole, we can take account of the varying degrees of uncertainty in individual industries."

जोखिम वाले और साधारण उद्योगो में। इस प्रकार अल्पकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ की समान दर होने की कोई प्रवृत्ति नही होगी।

(ii) अल्पकाल मे एक ही उद्योग मे साहसियों की व्यावसायिक योग्यताओ के अनुसार विभिन्न फर्मों में भी लाभ की दरें भिन्न होंगी।

(iii) सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में विभिन्न उद्योगों मे लाभ की एक सामान्य दर हो सकती है। यदि ऐसा नही है और लाभ की दरों मे अन्तर है, तो साहसी (अर्थात् व्यावसायिक योग्यता) कम लाभ वाले उद्योगो से अधिक लाभ वाले उद्योगों में जायेंगे जब तक सभी उद्योगों में लाभ दर समान न हो जाये। इस प्रकार दीर्घकाल में, सैद्धान्तिक दृष्टि से, विभिन्न उद्योगों में लाभ की एक समान दर होने की प्रवृत्ति कही जा सकती है।

परन्तु दीर्घकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ के समान होने की प्रवृत्ति केवल सैद्धान्तिक तथा काल्पनिक है। वास्तविक संसार प्रावैगिक है जिसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जो विभिन्न उद्योगों तथा फर्मों मे वस्तुओं की कीमतों तथा लागतो मे अन्तर उत्पन्न करते रहते है और इस प्रकार विभिन्न उद्योगो में लाभ की दरो में भिन्नता बनी रहती है। स्पष्ट है कि वास्तविक संसार मे लाभ के समान होने की प्रवृत्ति नही हो सकती।

प्रश्न

1. सामान्य लाभ तथा अतिरिक्त लाभ मे अन्तर बताइए। क्या साहसी का पुरस्कार उत्पादन लागत में प्रवेश करता है?
   Distinguish between normal profit and surplus profit. Does the remuneration of the entrepreneur enter into the cost of production?
2. लाभ के स्वभाव और आवश्यकता की विवेचना कीजिए। क्या यह उत्पादन लागत मे प्रवेश करता है?
   Discuss the nature and necessity of profit. Does it enter into cost of production?
3. लाभ लगान की भांति होते हैं और मूल्य मे प्रवेश नही करते। क्या आप इससे सहमत हैं? कारण दीजिए।
   Profits are like rent and do not enter price. Do you agree? Give reasons.
   [संकेत—पहले 'लाभ के लगान सिद्धान्त' की आलोचना सहित व्याख्या कीजिए। तत्पश्चात् बताइए कि 'अतिरिक्त लाभ या असामान्य लाभ' लागत का अग नही होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नहीं करता, अतिरिक्त लाभ के अर्थ को बताइए। परन्तु 'सामान्य लाभ' लागत का अंग होता है और इसलिए मूल्य को प्रभावित करता है, 'सामान्य लाभ' नामक शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री दीजिए।]
4. "लाभ का आधुनिक सिद्धान्त उत्पादन प्रक्रिया मे साहसी का यह योगदान बताता है कि वह बीमा-अयोग्य जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को सहन करता है।" विवेचना कीजिए।
   "Theory of profit regards the entrepreneur's contribution to the process of production as that of bearing non-insurable risks and uncertainties." Discuss.

   अथवा

   विवेचन कीजिए कि "लाभ अनिश्चितता सहन करने के लिए भुगतान है।"
   Discuss "Profit is a payment for bearing uncertainty."

5. क्या लाभ एक अतिरेक (surplus) है अथवा किसी उत्पत्ति के साधन का पारिश्रमिक ? नाईट के लाभ-निर्धारण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।
   Is profit a surplus or a payment to a factor of production ? Discuss Knight's theory of profit.
6. लाभ क्या उत्पन्न होते हैं ? स्थिर तथा प्रावैगिक दशाओं के अन्तर्गत लाभ के विचार की विवेचना कीजिए ।
   Why do profits arise ? Discuss the concept of profits under static and dynamic conditions.
7. निम्नलिखित कथनो की विवेचना कीजिए :
   (अ) 'लाभ लगान की भाँति होते हैं ।"
   (ब) "लाभ प्रावैगिक दशा मे उपस्थित रहते हैं, परन्तु स्थिर अवस्था में लुप्त हो जाते हैं ।"
   Comment on the following statements :
   (a) "Profits are analogous to rent."
   (b) "Profits exist in the dynamic state, but disappear in the static state."
8. 'सामान्य' तथा 'निशुद्ध' लाभ मे अन्तर स्पष्ट कीजिए; और बताइए कि सामान्य लाभ कैसे निर्धारित होते हैं ।
   Distinguish between 'Normal' and 'Pure' profits and show how normal profits are determined.
9. 'समाज का काई भी रूप हो—चाहे पूंजीवाद, समाजवाद या साम्यवाद—लाभ एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कार्य करता है ।" विवेचना कीजिए ।
   "Whatever the form of society—capitalist, socialist or communist—profit performs a very essential and useful function." Discuss.

43

आय की असमानता
(*Inequality of Income*)

आय की असमानता का विचार (The Concept of the Inequality of Income)

आर्थिक असमानता (economic inequality) दो प्रकार की होती है; 'आय की असमानता' (inequality of income) तथा 'धन की असमानता' (inequality of wealth)। ये दोनो असमानताएं एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था (free enterprise economy) मे धन तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानताएं बहुत अधिक होती है जबकि व्यक्तिगत सेवाओं के बदले मे प्राप्त पुरस्कारों में असमानताएं अर्थात् आयो में असमानताएँ उतनी अधिक नही होती। परन्तु धन तथा सम्पत्ति की असमानताएं लोगों की 'आयों की असमानताओं' को बहुत बढ़ा देती हैं।

आय की असमानता समाज की दृष्टि से अच्छी नहीं होती और इसलिए लोगों की आयों में समानता लाने के लिए विभिन्न प्रकार की रीतियों को अपनाने के प्रयत्न किये जाते हैं। परन्तु आय की समानता का अर्थ यह नहीं होता कि समाज के सभी सदस्यों की 'आयों में पूर्ण समानता' (perfect equality of income) होनी चाहिए अर्थात् सब लोगों की 'आय में गणितात्मक समानता' (arithmetical equality of income) होनी चाहिए। लोगों की आयों में 'पूर्ण समानता' या 'गणितात्मक समानता' न तो सम्भव ही है और न वांछनीय ही है। समाज की दृष्टि से आयों में अधिक असमानताए हानिकारक होती हैं, परन्तु व्यक्तियों की योग्यताओं में अन्तर के कारण तथा कुशल और अधिक उत्पादन के लिए प्रेरणा (incentive) के रूप में आयों में कुछ असमानताएँ आवश्यक हैं। अत: 'आय की असमानता' का अर्थ 'पूर्ण समानता' या 'गणितात्मक समानता' से नहीं होता बल्कि 'अत्यधिक असमानताओ में कमी' से होता है।

जिस प्रकार 'मूल्य मे स्थायित्व' (stabilization of prices) का अर्थ मूल्यों के किसी एक स्थिर स्तर (fixed level) से नही बल्कि 'मूल्यों के अत्यधिक उतार-चढ़ाव (fluctuations) मे कमी' करने से होता है, उसी प्रकार 'आय की समानता' का अर्थ 'आय के एक समान स्तर' से नही बल्कि 'आय की अत्यधिक असमानताओं मे कमी' से होता है।

आय में असमानता के कारण
(CAUSES OF INCOME INEQUALITY)

विभिन्न प्रकार के तत्त्व आय की असमानताओं को जन्म देते हैं तथा उन्हें बनाये रखते हैं। वास्तव में, आय की असमानता के कारणों को निम्न तीन मोटे वर्गों में बांटा जा सकता है :

(अ) आय की असमानता को उत्पन्न करने वाले तत्त्व।

(ब) आय की असमानता को बढ़ाने वाले तत्त्व अर्थात् 'व्यक्तिगत सम्पत्ति (private property) के स्वामित्व का अधिकार'।

(स) आय की असमानताओं को स्थायी बनाने (perpetuation) में सहायक तत्त्व अर्थात् 'उत्तराधिकार (inheritance) का अधिकार'।

(अ) आय की असमानताओं को उत्पन्न करने वाले तत्त्व

(i) **जन्मजात योग्यताओं (inherent capabilities) में अन्तर**—प्रकृति ने सभी व्यक्तियों को एक समान योग्य नही बनाया है, जन्म से ही व्यक्तियों में शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अन्तर होता है। प्राय. अधिक योग्य व्यक्ति अच्छी नौकरियो तथा व्यवसायो में प्रवेश करके अधिक आय प्राप्त कर सकने में सफल होते हैं, जबकि कम योग्य व्यक्ति प्राय. कम आय प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार व्यक्तियो के जन्मजात गुणो मे अन्तर आयो में अन्तर को जन्म देते हैं।

(ii) **प्रशिक्षण, शिक्षा तथा अवसरों (opportunities) में अन्तर**—प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक तथा शारीरिक दृष्टि से एक समान होने की अवास्तविक मान्यता को मान भी लिया जाये, तब भी व्यक्तियो मे आय की असमानता रहेगी। इसका मुख्य कारण है कि सभी व्यक्तियो को शिक्षा तथा प्रशिक्षण की समान सुविधाएँ तथा अवसर प्राप्त नही होते। शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है जो कि प्रत्येक व्यक्ति व्यय नहीं कर सकता। प्रायः शिक्षित तथा प्रशिक्षित व्यक्ति अधिक आय प्राप्त करने मे सफल होते हैं। स्पष्ट है कि प्रशिक्षण, शिक्षा तथा अवसरो में अन्तर 'आय की असमानता' को जन्म देते हैं।

(iii) **बाजार-शक्ति को स्वार्थ-सिद्धि के हेतु प्रयोग करने की योग्यता (Ability to manipulate the market power)**—कुछ लोग बाजार शक्ति को अपने स्वार्थ साधन के लिए चालाकी से प्रयोग करने की योग्यता रखते हैं। कुछ संघ तथा व्यावसायिक समूह (some union and professional groups) इस प्रकार की नीति अपनाते हैं जिससे कि उनकी उत्पादक सेवाओं की पूर्ति सीमित रहे और परिणामस्वरूप वे (अन्य लोगो की अपेक्षा) अधिक आय प्राप्त कर सकें। ये वर्ग नये सदस्यों को लेने से मना कर सकते हैं, या प्रवेश की बहुत ऊँची फीस निर्धारित कर सकते हैं, प्रशिक्षण की समयावधि लम्बी कर सकते हैं, इत्यादि द्वारा बाजार-शक्ति का अपने पक्ष मे प्रयोग करके अपने सदस्यो के लिए ऊँची आय प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार से जब कोई उत्पादक या कुछ उत्पादक एकाधिकारी तत्त्व अर्जित कर लेते हैं तो वे अधिक लाभ या आय प्राप्त करते हैं।

(iv) **विपत्तियों का असमान वितरण (Unequal distribution of misfortunes)**—विभिन्न प्रकार की आर्थिक विपत्तियां, जैसे लम्बी बीमारी, दुर्घटनाएँ, परिवार के कमाने वाले व्यक्ति (bread-winner) की असामयिक मृत्यु, इत्यादि के कारण कुछ व्यक्ति गरीब रहते हैं। इन विपत्तियो का वितरण असमान रहता है इसलिए व्यक्तियों की आयों में अन्तर होता है।

(v) **केवल भाग्य या अवसर (Just luck or chance)**—जीवन मे केवल भाग्य या अवसर का तत्त्व भी आयो मे भिन्नता उत्पन्न कर देता है। किसी व्यक्ति को भाग्यवश कोयले की खानो का पता लग सकता है, गड़ा हुआ धन मिल सकता है, उसके पास स्टाक मे रखी हुई वस्तु की कीमत यकायक बहुत बढ़ सकती है। एक व्यक्ति अपने धनी मालिक की पुत्री को प्रभावित कर सकता है और उससे विवाह करके मालदार हो सकता है। व्यक्तिगत सम्पर्क या राजनीतिक प्रभाव भी कुछ व्यक्तियो की आयो मे वृद्धि करा सकते हैं।

(ब) आय की असमानता को बढ़ाने वाला तत्त्व अर्थात् 'व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार' (The right to own private property)

आय प्राप्त करने की योग्यता में अन्तर, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अवसरों में अन्तर, भाग्य, इत्यादि के कारण आय की असमानताएँ उत्पन्न होती हैं, परन्तु पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार आयो की असमानता को बढ़ाता है। लोग कई रीतियो द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करते है। प्रथम, अधिक वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्ति अपनी बचतो से सम्पत्ति खरीद सकते हैं। दूसरे, लोग भूमि, वस्तुओं तथा सिक्यूरिटीज इत्यादि में सफलतापूर्वक सट्टा करके बड़ी मात्रा में

सम्पत्ति एकत्रित कर सकते है। व्यक्तियों के पास जितनी अधिक सम्पत्ति होगी वे उतने ही मालदार होंगे। वास्तव में, आय की उच्चतम सीढ़ी पर सम्पत्ति वाले व्यक्ति ही होते हैं। सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार लोगों की आयों में अन्तर को बहुत बढ़ा देता है। समाजवादी देशों में सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार बहुत सीमित होता है इसलिए वहाँ व्यक्तियों की आयों में असमानताएं बहुत कम होती हैं।

(स) आय की असमानता को स्थायी बनाने में सहायक तत्त्व अर्थात् 'उत्तराधिकार का अधिकार' (Right to inheritance)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे उत्तराधिकार का अधिकार आय की असमानताओं को जारी (continue) रखता है। मृत्यु के बाद एक व्यक्ति का धन तथा सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिलती है, इस प्रकार से आय की असमानताएँ एक पीढ़ी (generation) से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित (transfer) होती रहती हैं। दूसरे शब्दों मे, 'उत्तराधिकार की संस्था' (Institution of Inheritance) आय की असमानताओं को स्थायी बनाने में सहायक होती है।

आय की असमानता के हानिकारक प्रभाव
(HARMFUL EFFECTS OF INEQUALITY OF INCOME)
अथवा
आय की असमानता के विपक्ष में तर्क
(ARGUMENTS AGAINST INEQUALITY OF INCOME)

आय की असमानता के विपक्ष में अनेक तर्क दिये जाते हैं। ये तर्क वास्तव में आय की असमानता के बुरे परिणामों पर आधारित हैं। आय की असमानता निम्न हानिकारक परिणामों को जन्म देती है :

(1) सामाजिक अन्याय (Social injustice)

(i) नैतिक दृष्टि से आय में अधिक असमानताएँ उचित नहीं कही जा सकतीं। आर्थिक सीढ़ी (economic ladder) के एक सिरे पर थोड़े परन्तु अत्यन्त धनवान व्यक्ति होते हैं और दूसरे सिरे पर बहुत अधिक परन्तु अत्यन्त निर्धन व्यक्ति होते हैं। निर्धन व्यक्ति तो अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति भी ठीक प्रकार से नही कर पाते हैं जबकि थोड़े से अत्यन्त धनवान व्यक्ति आराम तथा विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं; सम्पत्ति की आयों (property income) पर निर्भर करने वाले धनवान व्यक्ति तो बिना प्रयास किये ही विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार की स्थिति सामाजिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण है। इसके अतिरिक्त देश में अत्यन्त गरीबी के क्षेत्रों (pockets of extreme poverty) की उपस्थिति समाज के लिए लज्जाजनक (social disgrace) है।

(ii) जब नागरिक अदालत के समक्ष आते हैं तो आय की असमानता उनके प्रति व्यवहार (treatment) की दृष्टि से अनुचित अन्तर (unjust differences) उत्पन्न कर देती है। सिद्धान्त में तो प्रजातन्त्र (democracy) में सभी नागरिक कानून के अन्तर्गत समान होते हैं। परन्तु अच्छे वकीलों की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है, अतः व्यवहार में एक धनी व्यक्ति अच्छे वकीलों की सेवाओं को प्राप्त कर सकता है और उसके लिए अपराध से छूटने की अधिक सम्भावनाएं रहती हैं अपेक्षाकृत एक समान परिस्थितियों में निर्धन व्यक्ति के। यह आय की असमानता से उत्पन्न सामाजिक अन्याय का ही एक रूप है।

(2) असमान अवसर तथा सामाजिक स्तरीकरण (Unequal opportunities and social stratification)

आय की असमानता धनवानों तथा निर्धनों के बीच अवसर के असमान वितरण को जन्म देती

है। धनी व्यक्ति अधिक धन व्यय करके अपने बच्चो को अच्छी शिक्षा तथा प्रशिक्षण दे सकते है, परिणामस्वरूप उनके बच्चो के लिए अच्छे तथा ऊँचे वेतन वाले रोजगारो मे प्रवेश सुगम हो जाता है। इसके विपरीत निर्धन व्यक्ति अपने बच्चो के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नही कर पाते हैं और प्रायः उनके बच्चो को अच्छे रोजगार नही मिलते है, तथा इस प्रकार से निर्धनता बनी रहती है। आय की असमानता अवसरो की असमानता को जन्म देती है और अवसरो की असमानता समाज को विभिन्न स्तरो या पर्तो (levels or layers), जैसे अत्यन्त निर्धन, धनी, अत्यन्त धनी व्यक्तियों मे बाँट देती है। इस प्रकार आय की असमानता सामाजिक स्तरीकरण (social stratification) को जन्म देती है।

(3) असन्तुष्टि (Discontent)

आय की अधिक असमानताए धनी तथा निर्धनो के बीच खाई (gulf) उत्पन्न करती है, बहुसख्यक निर्धनो मे असन्तुष्टि उत्पन्न होती है। यह असन्तुष्टि आन्दोलको (agitators) के लिए बारूद (ammunition) का कार्य करती है। हड़तालो तथा सामाजिक उथल-पुथल (social disorders) का एक मुख्य कारण असन्तुष्टि है जो कि आय की असमानता के कारण उत्पन्न होती है। आय की अधिक असमानताएँ अर्थात् गरीबी साम्यवाद तथा अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलनो के लिए उर्वरा भूमि (fertile land) की भाँति कार्य करती हैं।

(4) **कल्याण या 'विशुद्ध मानसिक आय' मे कमी** (Loss in Welfare or in 'Net Psychic Income')

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के क्रियाशील होने के कारण अत्यन्त धनी व्यक्तियो को एक सीमा के बाद बढती हुई आय से घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरे शब्दो मे, अपनी आवश्यक तथा आरामदायक आवश्यकताओ की पूर्ति करने के बाद धनवान व्यक्ति अपनी-अपनी आय मे वृद्धि को 'विलासिता तथा अनावश्यक वस्तुओं' (luxuries and frivolous commodities) पर अर्थात् कम उपयोगी वस्तुओ पर व्यय करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि राष्ट्रीय आय को इस प्रकार से बाँटा जा सके कि जिससे अत्यन्त धनवान व्यक्तियो की आयों मे कमी हो तथा अत्यन्त गरीब व्यक्तियो की आयो मे वृद्धि हो तो निर्धन व्यक्तियो की सन्तुष्टि या उनके कल्याण मे वृद्धि बहुत अधिक होगी अपेक्षाकृत अत्यन्त धनी व्यक्तियो के कल्याण मे कमी के, इस प्रकार समाज मे कुल आर्थिक कल्याण' या 'कुल वास्तविक सन्तुष्टि' या 'विशुद्ध मानसिक आय' (net psychic income) बढ़ेगी। दूसरे शब्दो मे, आय का असमान वितरण 'कल्याण' अथवा 'विशुद्ध मानसिक आय' मे कमी करता है।

(5) **साधनो का अनुचित वितरण तथा सामाजिक क्षय** (Misallocation of resources and social waste)

आय की असमानता के कारण थोड़े से व्यक्तियो के पास अधिक धन होता है, इन धनी व्यक्तियो की क्रय-शक्ति (purchasing power) बहुत होती है और इनकी क्रय-शक्ति ही समाज की प्रभावोत्पादक माँग (effective demand) को निर्धारित करती है। इसका अर्थ है कि उत्पादक आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुओ का उत्पादन अधिक करेंगे क्योकि इनकी माँग अधिक होगी, जबकि कम आय वाले व्यक्तियो या निर्धन व्यक्तियो की आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन कम होगा। दूसरे शब्दो मे, उत्पत्ति के साधन अधिक आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन से हटकर कम आवश्यक, विलासिता तथा अनुपयोगी (frivolous) वस्तुओ के उत्पादन मे हस्तान्तरित हो जायेंगे। इस प्रकार आय की असमानता के कारण 'साधनो का अनुचित वितरण' होता है।

आय की असमानता के कारण साधनो का अनुचित वितरण होता है और आवश्यक तथा लाभदायक (useful) वस्तुओं के स्थान पर अनावश्यक तथा विलासिता की वस्तुओ का अधिक उत्पादन होता है, इस प्रकार सामाजिक दृष्टि से आर्थिक साधनो का क्षय या बर्बादी (waste) होती है। संक्षेप मे,

Inequality of Income ———→ Misallocation of Resources ———→ Social waste
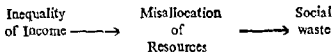
(6) उत्पादन-शक्ति में कमी (Loss in Production Power)

आयों की असमानता के कारण आर्थिक सीढ़ी (economic ladder) के दोनो सिरो पर उत्पादन शक्ति की हानि होती है। आर्थिक सीढ़ी के नीचे के सिरे पर अल्प-पोषित (undernourished), अभावपूर्ण ढंग से वस्त्र-धारित (poorly clothed) तथा खराब मकानों मे रहने वाले (improperly housed) निर्धन व्यक्तियों की उत्पादन-कुशलता बहुत कम होती है। निर्धनता के कारण बीमारी, शक्ति-ह्रास (dissipation), व्यसन (vice) तथा अपराध (crime) पनपते हैं; परिणामस्वरूप उत्पादन-शक्ति की और हानि होती है। आर्थिक सीढ़ी के ऊँचे सिरे पर अत्यन्त धनी व्यक्तियों की अतिरिक्त आय (surplus income) एक बड़ी सीमा तक निष्क्रियता (idleness), शक्ति-ह्रास (dissipation), खिन्नता (unhappiness) तथा चरित्र-हीनता (demoralization) के लिए उत्तरदायी है। धनी व्यक्तियों की सम्पत्ति उनके बच्चों को एक पीढ़ी (generation) से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती जाती है, परिणामस्वरूप उनके बच्चे प्राय: बिना कुछ किये अत्यधिक आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं जिससे उनके चरित्र तथा उत्पादन-शक्ति में गिरावट आती है।

स्पष्ट है कि आय की असमानताए आर्थिक सीढ़ी के दोनों सिरो पर उत्पादन शक्ति मे कमी करती है।

(7) बेरोजगारी तथा असुरक्षा (Unemployment and Insecurity)

आय की अधिक असमानता बेरोजगारी को जन्म देती है और परिणामस्वरूप सामान्य व्यक्तियों के लिए असुरक्षा उत्पन्न होती है। लार्ड केंज (J. M. Keynes) के अनुसार आयों में वृद्धि के साथ बचत की प्रवृत्ति विनियोग से अधिक होने की होती है, दूसरे शब्दों में, उन्नतशील तथा विकसित देशों में 'अधिक-बचत' (over-saving) तथा 'न्यून-विनियोग' (under-investment) की प्रवृत्ति होती है। आयों की असमानता इस प्रवृत्ति को बढाती है क्योंकि बचतों का अधिकांश भाग अत्यन्त धनवान् व्यक्तियों की अतिरिक्त आयों (surplus incomes) से ही प्राप्त होता है। 'अधिक-बचत' तथा 'न्यून-विनियोग' का परिणाम होगा कि लोग कम व्यय करेंगे अर्थात् प्रभावोत्पादक माँग कम होगी, वस्तुओं का उत्पादन कम होगा और बेरोजगारी होगी। प्रो. बोल्डिंग (Boulding) ने यहाँ तक कहा है कि "केवल एक धनी समाज ही समाजवादी (equalitarian) होने की क्षमता रखता है। एक धनी समाज को आवश्यक रूप से समाजवादी होना चाहिए नही तो उसकी धन-दौलत बेरोजगारी उत्पन्न करेगी।"[1]

['अधिक-बचत' तथा 'न्यून-उपभोग' (under-consumption) के लिए केंज ने एक उपाय आय की असमानताओं को कम करने का बताया; इसके परिणामस्वरूप निर्धन व्यक्तियों की आय अधिक होगी, 'अधिक-बचत' समाप्त होगी, निर्धन व्यक्ति अधिक धन व्यय करेंगे, कुल प्रभावोत्पादक माँग (effective demand) बढ़ेगी, वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा और इस प्रकार बेरोजगारी समाप्त होगी।]

(8) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण, राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताएँ (Concentration of Economic Power, Political and Social Inequality)

आय की असमानता के कारण थोड़े से व्यक्तियों के हाथों मे आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है, इसके कारण राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताए भी उत्पन्न होती हैं। प्रजातन्त्र मे धनी व्यक्ति तथा निर्धन व्यक्ति दोनों को वोट देने का समान अधिकार होता है। इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से राजनीति मे दोनों का समान प्रभाव होता है, परन्तु व्यवहार मे एक धनी व्यक्ति, अपने धन के कारण,

[1] Boulding goes so far as to say, "Only a rich society can afford to be equalitarian. A rich society must be equalitarian or it will spill its riches in unemployment."

बहुत अधिक वोटों को प्रभावित कर सकता है। इसी प्रकार समाज में धनी व्यक्तियों की अधिक प्रतिष्ठा होती है। इस प्रकार आय की असमानताएँ राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताओं को जन्म देती हैं।

आय की असमानता के पक्ष में तर्क
(ARGUMENTS FOR INCOME INEQUALITY)

आय की असमानता के कुछ सामाजिक लाभ (social advantages) भी बताये जाते हैं। प्राय: आय की असमानता के पक्ष मे निम्न तर्क दिये जाते है :

(1) उत्पादन-कुशलता के लिए प्रेरणा (Incentive to Productive Efficiency)

आय की असमानता कार्य, उत्पादन तथा नव-प्रवर्तन (innovation) के लिए प्रेरणा का कार्य करती है। अधिक आय प्राप्त करने की आशा ही व्यक्तियों को भरपूर प्रयत्न करने को प्रोत्साहित करती है। पुन: अधिक धन तथा आय प्राप्त करने की आशा ही साहसियों को बड़े जोखिम उठाने को प्रेरित (induce) करती है।

कुछ अर्थशास्त्रियो का कहना है कि मानवीय समाज इस प्रकार से सगठित किया जा सकता है कि लोग, बिना आय-उद्देश्य (income motive) के भी, अपनी पूर्ण शक्ति से उत्पादन कार्य करने को प्रेरित होगे। आदर, महत्त्वपूर्ण पद प्राप्ति, इत्यादि अन्य उद्देश्य (other motives) व्यक्तियों को पूर्ण प्रयत्न करने को प्रेरित कर सकते हैं। परन्तु इसमे सन्देह नही है कि उत्पादन-कुशलता के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति (dominant force) 'आय-उद्देश्य' ही है। साम्यवादी रूस में भी आय की असमानताओ को समाप्त नही किया गया है; रूस में उत्पादन-कुशलता को बढ़ाने के लिए एक व्यवस्थित रूप (systematic way) से व्यक्तियों को आर्थिक पुरस्कार (economic rewards) दिये जाते हैं।

(2) पूंजी निर्माण का साधन (Source of Capital Formation)

आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था को कुशलता के साथ चलाने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। लोगों की बचतों को विनियोग करके पूंजी प्राप्त होती है। धनी व्यक्ति अधिक बचत कर पाते हैं। इन बचतों का विनियोग करके पूजीगत वस्तुओं को प्राप्त किया जाता है जो कि आर्थिक विकास के लिए केन्द्र बिन्दु (core of economic development) होते हैं। निर्धन व्यक्तियों के बचाने की क्षमता शून्य या बहुत कम होती है। यदि धन का वितरण समान हो तो देश विशेष में निजी बचतें (private saving) बहुत कम होंगी और पूजी-निर्माण कम होगा। दूसरे शब्दों में, आय की असमानता पूंजी-निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। धनी व्यक्तियों की बचतों से बड़ी मात्रा में पूंजी निर्माण सम्भव होता है और पूंजी निर्माण से देश की उत्पादन कुशलता तथा लोगो के जीवन-स्तर में वृद्धि होती है। इसलिए यह कहा जाता है कि अत्यन्त धनवान व्यक्तियों की बचत निर्धन व्यक्तियों की दशा को सुधारने में एक महत्त्वपूर्ण साधन होती है।

परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का कहना है कि ऊँचे आय-वर्ग (upper income brackets) के व्यक्तियों की बचतें पूजी की पर्याप्त मात्रा के लिए आवश्यक नही है। प्रथम, विकसित अर्थव्यवस्थाओ (advanced economies) में, कैंज के अनुसार धनी व्यक्तियो की बचत 'अधिक बचत' (over-saving) तथा 'न्यून विनियोग' (under-investment) की समस्या उत्पन्न करती है। दूसरे, आधुनिक युग में 'संस्थात्मक बचत' (institutional saving) की प्रवृत्ति है। इसका अर्थ है कि विनियोग ट्रस्ट (investment trusts), बीमा कम्पनियाँ, विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएं देश में बिखरी हुई छोटी बचतों को एकत्रित करके पर्याप्त पूजी प्राप्त कर लेती हैं, और इस प्रकार धनी व्यक्तियों की बचतों का पूंजी निर्माण में बहुत विशेष योगदान नहीं रह जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि 'संस्थापक बचतों' में वह लोच (flexibility) नहीं रहती जो कि व्यक्तिगत बचतो (individual saving) के प्रयोग में रहती हैं; संस्थाएं प्राय: अनुदार (conservative) होती हैं, वे जोखिमों को

उठाने के लिए उस सीमा तक स्वतन्त्र नहीं होती जितने कि व्यक्ति होते हैं। यदि केवल 'संस्थात्मक बचतों' पर ही निर्भर किया जाय तो अधिक जोखिम वाले नये उपक्रमों (new enterprises) को प्रारम्भ करना अत्यन्त कठिन होगा।

कुछ लोगों का यह कहना है कि "आय की असमानता" तथा "पूंजी-निर्माण" में स्पष्ट रूप से सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है। उदाहरण के लिए, नार्वे (Norway) ने आय की समानता की ओर बहुत प्रगति की है, परन्तु फिर भी द्वितीय युद्ध के बाद (post-war era) में इसने पूंजी निर्माण की एक ऊँची दर प्राप्त की। इसके विपरीत अविकसित देशों में, जैसे मध्य-पूर्वीय देशों (Middle Eastern Nations) में, आय की अधिक असमानताएँ होने पर भी पूंजी निर्माण की दर बहुत कम है।

(3) कुछ अन्य तर्क (Some Other Arguments)

आय की असमानता के पक्ष में दिये जाने वाले तर्कों में से 'प्रेरणा' तथा 'पूंजी-निर्माण' के तर्क महत्त्वपूर्ण हैं। इन तर्कों के अतिरिक्त कुछ अन्य तर्क भी दिये जाते हैं :

(i) यह कहा जाता है कि अधिक ऊँची आय वाले उपभोक्ता नयी वस्तुओं (new products) के विकास में महत्त्वपूर्ण पार्ट (crucial role) अदा करते हैं। प्रारम्भ में नये उद्योगों की वस्तुओं की उत्पादन-लागत तथा कीमतें ऊंची होती हैं, धनी व्यक्ति ऊँची कीमतों पर नयी वस्तुओं को खरीद कर नये उद्योगों को सहारा देते हैं। समय पाकर इन उद्योगों की वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन होने लगता है, लागत तथा कीमत में कमी हो जाती है और सामान्य तथा निर्धन व्यक्ति भी इनका प्रयोग करने लगते हैं।

(ii) विश्वविद्यालयों, म्यूजियम, इत्यादि सामाजिक दृष्टि से लाभदायक संस्थाओं को धनी व्यक्तियों से बड़ी मात्रा में धनराशियाँ (funds) प्राप्त होती हैं। परन्तु इस तर्क का विशेष महत्त्व नहीं रह जाता यदि हम ध्यान रखें कि सरकार विभिन्न प्रकार की उपयुक्त संस्थाएं स्थापित कर सकती है। इस सम्बन्ध में प्रजातन्त्र (democracy) में विश्वास रखने वाले लोगों का यह कहना है कि सरकारी संस्थाओं में उतनी स्वतन्त्रता तथा लोच नहीं होती जितनी व्यक्तिगत संस्थाओं में होती है।

यद्यपि आय की असमानताओं के पक्ष में दिये गये उपर्युक्त तर्कों में एक सीमा तक सत्यता का अंश है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि आय की अधिक असमानताएं समाज के लिए हानिकारक होती हैं।

आयों की असमानता को कम करना (Reduction of Inequality of Incomes)

आय की असमानताओं के हानिकारक परिणामों के कारण उनको कम करने के लिए विभिन्न उपाय बताये जाते हैं। इन उपायों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(i) समाजवाद या साम्यवाद के अन्तर्गत उग्र उपाय; तथा (ii) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उदार उपाय। हम दोनों का विस्तृत विवेचन नीचे करते हैं।

समाजवाद या साम्यवाद के अन्तर्गत उग्र उपाय
(EXTREME MEASURES UNDER SOCIALISM OR COMMUNISM)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था आय की असमानताओं को बढ़ाती है, इसलिए समाजवाद या साम्यवाद में विश्वास रखने वाले व्यक्ति मार्क्स द्वारा बताये गये उग्र (extreme) उपायों का समर्थन करते हैं। इस विचारधारा के अनुसार आय की असमानताओं को उत्पन्न करने वाली तथा बढ़ाने वाली पूंजीवादी संस्थाओं, जैसे लाभ की संस्था (institution of profit), व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था (institution of private property), उत्तराधिकार की संस्था (institution of inheritance), इत्यादि को बिलकुल समाप्त कर देना चाहिए, समस्त उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होना चाहिए तथा समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना की जानी चाहिए।

पूंजीवादी वितरण व्यवस्था को समाप्त करके आय की असमानता को दूर करने की दो मुख्य रीतियाँ बतायी जाती हैं—(1) सभी व्यक्तियो के लिए समान आय; या (2) आवश्यकता के अनुसार आय ।

(1) **सभी व्यक्तियों के लिए समान आय**—इस रीति के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को समान आय प्राप्त होनी चाहिए चाहे वह किसी भी व्यवसाय मे कार्य करता हो।

परन्तु यह रीति सर्वथा अनुचित है। इसके मुख्य दोष इस प्रकार हैं—(i) यह रीति अधिक उत्पादन करने की प्रेरणा पर बुरा प्रभाव डालेगी, कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय कम होगी और इस प्रकार लोगो में वितरण के लिए आय कम हो जायेगी। (ii) सभी व्यक्तियो के लिए एक समान आय करना ठीक नही है क्योंकि कुछ कार्य ऐसे है जिनमे अधिक कुशलता तथा अधिक जिम्मेदारी की आवश्यकता होती है और ऐसे कार्यों के लिए अधिक वेतन होना चाहिए। (iii) वास्तव मे, समान आय को प्राप्त करना असम्भव है, जो असमानताएँ आज समाप्त कर दी जाती हैं वे समय पाकर पुन: उत्पन्न हो जाती हैं। आय की समानता को बनाए रखने के लिए थोडे-थोडे समय बाद आय को पुन: वितरित करना पडेगा। वास्तव मे, आय को पूर्णतया समान करना असम्भव तथा अवाछनीय है।

(2) **आवश्यकतानुसार आय**—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को आय उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलनी चाहिए। मार्क्स के अनुसार, 'प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार प्राप्त करना चाहिए तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार देना चाहिए' (From each according to his ability, to each according to his needs)। इस कथन से स्पष्ट है कि आवश्यकतानुसार वितरण का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य करके कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय मे सहयोग देगा।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह विचार बहुत अच्छा प्रतीत होता है, परन्तु व्यवहार मे इसका प्रयोग करना अत्यन्त कठिन है। इसके मुख्य दोष इस प्रकार हैं—(i) विभिन्न व्यक्तियो की आवश्यकताओ को ठीक प्रकार से ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि आवश्यकताएं व्यक्तिगत तत्त्वो (subjective factors) से भी प्रभावित होती हैं। (ii) कुशल तथा अधिक योग्य व्यक्तियो के लिए अधिकतम उत्पादन करने के लिए कोई प्रेरणा नही रह जाती क्योंकि उनको केवल अपनी सामान्य आवश्यकताओ की पूर्ति भर के लिए ही आय प्राप्त होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना आय की असमानता की समस्या का कोई बहुत सन्तोषजनक हल नही है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उदार उपाय
(MODERATE MEASURES UNDER CAPITALIST ECONOMY)

आर्थिक असमानता की समस्या को हल करने के लिए उपायो को बताते समय हमे केवल आय की असमानता के सामाजिक दोषो (social disadvantages) को ही नही बल्कि उसके सामाजिक लाभों (social advantages) को भी ध्यान मे रखना चाहिए। आय की कुछ असमानताएं (i) उत्पादन कुशलता को प्रेरित (induce) करती हैं, (ii) व्यक्तिगत बचतो और पूंजी की वृद्धि मे सहायक होती हैं, तथा (iii) अर्थव्यवस्था की लोचशीलता (flexibility) और प्रगतिशील स्वभाव (progressive character) मे योगदान देती हैं। अत: आयो की असमानताओ को पूर्णतया समाप्त कर देना समस्या का कोई सन्तोषजनक हल नही होगा। **इस प्रकार वास्तविक समस्या आयों की असमानता को पूर्णतया समाप्त करना नहीं है बल्कि उनको उस न्यूनतम स्तर तक कम करना है जो कि समाज सहन कर सकता है।**[1]

[1] Thus, the real problem is not to eradicate the inequality of incomes completely, but to reduce them to the minimum level which the society can bear.

[प्रजातन्त्रात्मक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (democratic capitalist society) के अन्तर्गत आय की असमानताओ को कम करने के किसी कार्यक्रम (programme) मे एक महत्त्वपूर्ण कठिनाई का सामना करना पडता है और वह है व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओ (personal liberties) मे कमी। एक प्रजातन्त्रात्मक समाज मे व्यक्ति कार्य तथा व्यवसाय के चुनाव में स्वतन्त्र होते हैं, परिणामस्वरूप कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियो की तुलना मे आगे निकल सकते हैं और अधिक धन प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु धन उसके स्वामी को शक्ति प्रदान करता है और जिसके पास शक्ति है वे कम या अधिक मात्रा मे दूसरों के भाग्यों (destinies) को नियन्त्रित (control) करते हैं। यह बात उन लोगो की स्वतन्त्रता को सीमित करती है जो कि नियन्त्रित होते हैं। अत यह विरोधाभास (paradox) है कि स्वतन्त्रता असमानता को उत्पन्न करती है, तथा असमानता के कारण थोड़े से व्यक्ति बहुत से व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को कम कर देते है। इस कठिनाई या दुविधा (dilemma) से बचने के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा कार्यक्रम निर्धारित किया जाय जो कि प्रत्येक को अधिकतम मात्रा मे स्वतन्त्रता की आज्ञा दे जब तक कि वह स्वतन्त्रता सामाजिक कल्याण के लिए प्रयोग की जाती है। परन्तु साथ ही कार्यक्रम ऐसा भी होना चाहिए जो कि धन के परिणामस्वरूप शक्ति में इतनी अधिक वृद्धि को सीमित करे जो कि कुछ भाग्यशाली व्यक्तियो को ऐसी स्थिति मे रख सकती है कि वे अन्य सभी को आदेश दें। शक्तिशाली व्यक्तियो की स्वतन्त्रता को दबाना चाहिए ताकि कमजोर व्यक्तियो की स्वतन्त्रता की रक्षा की जा सके।

आय की असमानता की समस्या को हल करने के लिए 'द्वि-दिशा आक्रमण' (Two-pronged attack) **की आवश्यकता है:**

(अ) अत्यधिक सम्पत्ति और आयो मे कमी करना तथा ऐसी दशाओ को उत्पन्न करना कि थोड़े से लोगों के पास अधिक सम्पत्ति एकत्रित न हो पाये; तथा

(ब) निम्नतम आयो (lowest incomes) मे वृद्धि करना।

आक्रमण की इन दोनों रीतियो का नीचे विस्तृत विवरण दिया गया है।

(अ) अत्यधिक सम्पत्ति तथा आयों में कमी करके आय की असमानता को कम करना (To reduce the inequality of incomes by levelling down excessively large wealth and incomes)

इस सम्बन्ध मे निम्न उपाय (measures) बताये जाते हैं:

(1) **अनर्जित आयों** (unearned incomes) **पर ऊँचे टैक्स** लगाकर विशाल आयों को कम किया जा सकता है। (i) भूमियों के मूल्यों मे वृद्धि होने से अनेक भूमिपति केवल भूमि पर अपने स्वामित्व के कारण ही विशाल आय प्राप्त करते है, इस प्रकार की आय या लगान को प्राप्त करने में उन्हें कोई प्रयत्न नही करने पडते। अत. इस प्रकार के **अनर्जित लगानों** (unearned rents) **पर सरकार को ऊँचे टैक्स** लगाने चाहिए। (ii) इसी प्रकार **अनर्जित व्यावसायिक लाभों** (unearned business profits) **पर भी सरकार को ऊँचे टैक्स** या अतिरिक्त लाभ टैक्स (excess profit tax) लगाने चाहिए। एकाधिकारी लाभों मे अनर्जित आय का एक बड़ा अंश होता है। अतः **सरकार को एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए** प्रभावपूर्ण उपायों को अपनाना चाहिए। (iii) **मूल्यों में स्थिरता लाने** के प्रयत्न करने चाहिए जिससे कि अत्यधिक लाभ (या हानि) न हो सके। (iv) **अनुचित सट्टे तथा मिलावट इत्यादि अनुचित रीतियों द्वारा प्राप्त अधिक लाभों पर रोक लगानी चाहिए।** इसके लिए व्यावसायिक नैतिकता (business morality) को ऊँचा उठाने के लिए शैक्षिक प्रयत्न करने चाहिए तथा सरकार कानून बनाकर भी ऐसी कार्यवाहियों पर नियंत्रण रख सकती है।

(2) **धन-सम्पत्ति के उत्तराधिकार** (inheritance) **पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण** एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इसके लिए उत्तराधिकार-कर (inheritance tax) लगाना चाहिए ताकि—(i) इस कर द्वारा किसी व्यक्ति की मृत्यु पर सम्पत्ति का एक बड़ा भाग सरकार ले सके और थोड़ा भाग

उत्तराधिकारियों को मिले; (ii) पीढ़ी दर पीढ़ी आय की असमानताओं का हस्तान्तरण न हो सके; (iii) बिना प्रयास आय प्राप्त करने वाले पराश्रयी वर्ग (parasitic class) न पनप पाये, अर्थात् उत्तराधिकारियों के चरित्रों मे गिरावट न होने पाये।

यदि उत्तराधिकारी टैक्स को असमानता को ठीक करने के प्रोग्राम के एक अग के रूप में प्रयोग किया जाता है तो **वह अधिक वर्द्धमान** (steeply progressive) **होना** चाहिए। दूसरे शब्दों में, टैक्स की दर तेजी के साथ बढ़नी चाहिए, ताकि छोटी सम्पत्तियो (estates) से अपेक्षाकृत एक थोड़ा प्रतिशत, तथा बड़ी सम्पत्तियों से एक ऊँचा प्रतिशत लिया जाय; अन्यथा बडी सम्पत्तियो को तोड़ने में इसका बहुत कम प्रभाव होगा। **टैक्स की दरें वसीयत द्वारा दी गयी सम्पत्ति की मात्रा तथा उत्तराधिकारियो के सम्बन्ध की दूरी दोनों के साथ बढ़नी चाहिए।**[3]

उत्तराधिकारी टैक्स तीन प्रकार से आय की असमानता को दूर करता है—(i) विशाल आयो मे कमी होती है; (ii) निर्धन व्यक्तियो पर टैक्स भार कम पडता है क्योकि धनी व्यक्तियो को ऊँचे टैक्स देने पड़ते हैं; तथा (iii) टैक्स द्वारा प्राप्त आय में वृद्धि को सरकार निर्धन व्यक्तियो के लिए उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय कर सकती है।

उत्तराधिकार टैक्स के विपक्ष में एक महत्त्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि यह लोगो के अधिक उत्पादन करने तथा अधिक आय प्राप्त करने की प्रेरणा को कुंठित (blunt) करता है (क्योकि अपने बच्चों के जीवन को सुखी बनाने तथा उनके लिए सम्पत्ति को उत्तराधिकार मे प्रदान करने की इच्छा तथा अधिकार ही व्यक्तियो को अधिक मेहनत और उत्पादन के लिए प्रेरित करता है)। परन्तु इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रखने की बात है कि उत्तराधिकारी टैक्स का उद्देश्य उत्तराधिकार के अधिकार को बिलकुल समाप्त करना या उसको बहुत अधिक सीमित करना नही होता, ऐसा केवल तब ही किया जायेगा जबकि किसी देश का उद्देश्य समाजवाद या साम्यवाद स्थापित करना है।

(3) **आय-कर का लगाना** अत्यन्त आवश्यक है ताकि वेतनों में अधिक अन्तर के कारण उत्पन्न आय की असमानताओं को कम किया जा सके; जबकि उत्तराधिकार कर तो विशेष रूप से सम्पत्तियो में अन्तर के कारण उत्पन्न आय की असमानताओं को कम करता है। आय-कर की दर भी वर्द्धमान (progressive) होनी चाहिए ताकि अधिक आय वाले वर्ग को अधिक टैक्स देना पड़े और कम आय वाले वर्ग को कम टैक्स, एक निश्चित सीमा तक आयो को करों से मुक्त रखना चाहिए।

परन्तु आय-कर के सम्बन्ध मे एक बात ध्यान रखने की है—"आयों पर कर लगाना आयो की असमानता के कारणो का नही बल्कि उसके लक्षणो (symptoms) का इलाज करना है। कुछ अन्य उपायों की तुलना में यह कम आधारभूत सुधार है···। हमारा प्रयत्न विशाल आयो को उत्पन्न होने से रोकने का, न कि उनको पूर्णतया नष्ट (confiscation) करने का, होना चाहिए।"[4]

(ब) निम्नतम आयों में वृद्धि करना (To reduce the inequality of incomes by levelling up the lowest incomes)

विशाल आयों में कमी करने के साथ-साथ यह अत्यन्त आवश्यक है कि निर्धन व्यक्तियो की आयो मे वृद्धि की जाय। इसके लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिए :

(1) **मजदूरी में वृद्धि** (Raising of wages)—कम आयो का एक कारण कम मजदूरियाँ हैं, अतः मजदूरियो मे वृद्धि करनी चाहिए। मजदूरी मे वृद्धि के लिए निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं—(i) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित करके सरकार मजदूरी को एक न्यूनतम सीमा से नही गिरने देती है; (ii) श्रम-संघ भी एक सीमा तक मजदूरी को बढ़वा सकते है।

---

[3] "The rates should increase both with the size of the bequest and with distance of relationship of the heirs"

[4] "The taxation of Incomes, however, is treating the symptoms of inequality, and not the causes. It is a less fundamental reform than some of the other measures.... We should endeavour to accomplish the prevention, rather than the confiscation, of large incomes."

(2) **शिक्षा तथा प्रशिक्षण का प्रभाव** (Influence of education and training)—(i) मजदूरों तथा अन्य निम्न आय वाले व्यक्तियों के बच्चों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। अधिक से अधिक बच्चे शिक्षा ग्रहण कर सकें इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क दी जाय तथा उच्च शिक्षा के लिए सरकार अधिकतम वजीफों (scholarships) की व्यवस्था करे ताकि शिक्षा के फैलाव में वित्तीय कठिनाइयाँ न रहें। सामान्य शिक्षा के साथ निम्न आय वालो के लिए टेकनीकल ट्रेनिंग की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा तथा टेकनीकल ट्रेनिंग के अधिक फैलाव (diffusion) के कारण अवसरों की असमानताओं में कमी होगी, आर्थिक सीढ़ी पर चढ़ना सुगम होगा और व्यक्तियों की आयों में वृद्धि होगी।

(3) **जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण**—निम्न आय वाले व्यक्तियों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि (विशेषतया अविकसित देशों में) होती है जिससे कि आय का स्तर निम्न बना रहता है। अतः निम्न आयों मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि निम्न आय वर्ग में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने तथा उसको एक अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए एक विस्तृत तथा प्रभावपूर्ण कार्यक्रम अपनाया जाये।

(4) **सामाजिक सुरक्षा** (Social security)—बेरोजगारी, बीमारी, बुढ़ापा, दुर्घटना, इत्यादि मुसीबतों (misfortunes) के कारण भी निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों में गरीबी बनी रहती है। अतः इनका सामना करने के लिए एक अच्छी तथा विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे निर्धन व्यक्तियों में वृद्धि होगी।

(5) **सामाजिक सुधार** (Social reforms)—मजदूरों तथा अन्य निम्न वर्ग के लोगों की आयों मे सामाजिक सुधार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि करते हैं। शहरों में गन्दी बस्तियों (slums) को समाप्त करके उनके रहने की उचित व्यवस्था करना, अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित चिकित्सा की व्यवस्था के साथ-साथ लोगों में सफाई (cleanliness) की आदतों को प्रोत्साहित करना, इत्यादि बातें मानसिक तथा शारीरिक दोनों दृष्टियों से निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों को गुणात्मक दृष्टि से ऊँचा उठायेंगी और परिणामस्वरूप उन्हें अच्छे रोजगार प्राप्त हो सकेंगे।

इस प्रकार आय की असमानता की समस्या को हल करने के लिए दो दिशाओं में आक्रमण करना होगा: (i) अधिक आयों को कम करना, तथा (ii) न्यून आयों को बढ़ाना। दूसरे शब्दों में, ऐसी दशाओं को उत्पन्न करना है कि आय की असमानता की प्रवृत्तियाँ पनप न पायें।

प्रश्न

1. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे आर्थिक असमानता के क्या कारण होते हैं? पूंजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक असमानता की समस्या को कैसे हल किया जा सकता है?
   What are the causes of economic inequality in a capitalist society? How can the problem of economic inequality be solved under capitalism?
2. धन तथा आय की असमानता के क्या हानिकारक परिणाम होते हैं? इन असमानताओं को कम करने के उपायों की विवेचना कीजिए।
   What are the harmful consequences of the inequality of wealth and income? Discuss the measures for reducing such inequalities.
3. "एक पीढ़ी में आय की असमानता केवल स्वयं में ही बुराई नहीं है बल्कि वह दूसरी पीढ़ी में भी असमानता का कारण होती है।" विवेचना कीजिए।
   "Inequality of income in one generation is not merely an evil in itself, it is also cause of inequality in the next generation." Discuss.
   [संकेत—आय की असमानता के हानिकारक परिणामों की पूर्ण व्याख्या कीजिए, अन्त में निष्कर्ष के रूप में बहुत संक्षेप में आय की असमानता को दूर करने के उपाय बताइए।]

44

खण्ड 6
कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(WELFARE ECONOMICS)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का स्वरूप
(Nature of Welfare Economics)

"Welfare economics is that part of economic theory which is concerned primarily with policy...Hence, whenever the economist advocates a policy, for example, when he favours full employment or opposes governmental interference in economic affairs, he makes a welfare proposition." —TIBOR SCITOVSKY

कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा वास्तविक अर्थशास्त्र में अन्तर
(DISTINCTION BETWEEN WELFARE ECONOMICS AND POSITIVE ECONOMICS)

1. कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ (The Concept of Welfare Economics)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र समाज के सदस्यो के, समूह के रूप मे, हित (well-being) का अध्ययन करता है; हित को मापने के लिए यह 'उपयोगिता' (utility) या 'कल्याण' (welfare) के विचार का प्रयोग करता है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतया 'सामाजिक कल्याण' से होता है, अर्थात् इसका सम्बन्ध समस्त समाज के कल्याण से होता है। 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' को 'आदर्शवाद अर्थशास्त्र' (normative economics) के नाम से भी पुकारा जाता है।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त की वह शाखा है जो कि मुख्यतया वैकल्पिक नीतियों (alternative policies) की सामाजिक वांछनीयता (social desirability) के मूल्यांकन (evaluation) से सम्बन्धित होती है। दूसरे शब्दों में, यह कुछ कसौटियों या कथनों (criteria or propositions) को प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर, सामाजिक कल्याण में सुधार या वृद्धि की दृष्टि से, वैकल्पिक नीतियों को आंका जाता है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि या नुकसान को, कुछ 'सामाजिक लक्ष्यों' (social goals) के सन्दर्भ में, आंका जाता है; ये सामाजिक लक्ष्य वे होते हैं जो कि या तो समाज द्वारा 'सामान्यतया स्वीकृत' (generally accepted) होते हैं अथवा वे होते हैं जो कि बाहर से (जैसे, सरकार या राजनीतिज्ञो द्वारा) दिये जाते हैं। विश्लेषणात्मक कल्याणवादी अर्थशास्त्र (analytical welfare economics) इन लक्ष्यो (या नैतिक-निर्णयों या आदर्शों) को दिया हुआ मान लेता है और इसके बाद कल्याणवादी कसौटियों या कथनों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर वैकल्पिक नीतियों को आंका जाता है या सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए नीति-सुझाव (policy-prescriptions) दिये जाते हैं।

यद्यपि कल्याणवादी अर्थशास्त्र स्वभाव मे आदर्शात्मक (normative) है, परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि वह अवैज्ञानिक (unscientific) है। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना होता है और इस प्रकार उसका स्वभाव आदर्शात्मक है, परन्तु लक्ष्यो (या आदर्शों या नैतिक निर्णयो) के दिये हुए होने पर, वाछनीय लक्ष्यो (desired goals) को प्राप्त करने के लिए निर्माण की जाने वाली नीतियो का अध्ययन निश्चित ही विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक है। दूसरे शब्दों में,

> "एक विशेष नीति के औचित्य (appropriateness) का एक अर्थशास्त्री मूल्यांकन नहीं कर सकता है, और न ही वैकल्पिक नीतियों के बीच चुनाव कर सकता है, जब तक कि वह उन नीतियो के सम्भावित (probable) परिणामों तथा प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों दोनो पर ध्यान नहीं देता। विश्लेषणात्मक कल्याणवादी अर्थशास्त्र का इस प्रकार के मूल्यांकनो (assessments) की अध्ययन-पद्धति (methodology) से सम्बन्ध होता है।"[1]

2. वास्तविक अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Positive Economics)

वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओ के कारण तथा परिणाम के सम्बन्ध (cause and effect relationship) का अध्ययन करता है। यह आर्थिक घटनाओ की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में कुछ नही कहता, यह कारण-परिणाम के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए आर्थिक घटनाओं की व्याख्या (explain) करता है और वे जैसी होती है उनका वैसा ही वर्णन (description) करता है; कारण-परिणाम के सम्बन्ध की व्याख्या के आधार पर आर्थिक घटनाओ की भविष्यवाणी (prediction) करता है। यदि वास्तविक कथनो के सम्बन्ध मे मतभेद उत्पन्न होते है तो उनको तथ्यों या आंकड़ों का सहारा लेकर समाप्त किया जा सकता है।

3. वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र में अन्तर तथा सम्बन्ध (Distinction and Relation between Positive and Welfare Economics)

वास्तविक अर्थशास्त्र मे सम्बन्ध तथा अन्तर निम्न बातो से स्पष्ट होता है—

(i) 'वास्तविक अर्थशास्त्र' का सम्बन्ध किसी घटना या आर्थिक प्रणाली के कार्यकरण के समझने, व्याख्या करने तथा भविष्यवाणी करने (understanding, explaining and predicting) से होता है।

'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' कुछ दिये हुए लक्ष्यो या सामाजिक आदर्शों (social norms) के सन्दर्भ में, आर्थिक नीतियो की अच्छाई या बुराई को आकता है; और यह दिये हुए तथा वांछित लक्ष्यों (desired objects) को प्राप्त करने के लिए नीति-सुझावो को बताता है।

वास्तव मे 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' तथा 'वास्तविक अर्थशास्त्र' मे निकट का सम्बन्ध है जो कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट होता है .

> "भविष्यवाणी करने की योग्यता वास्तविक अर्थशास्त्र को नीति-निर्माण का एक अत्यन्त आवश्यक साधन (या यन्त्र) बनाती है। वास्तविक अर्थशास्त्र का समस्त ढांचा वैकल्पिक नीतियो से प्राप्त होने वाले परिणामों की भविष्यवाणी करने में सहायक होता है; और कल्याणवादी अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग किसी दिये हुए विशेष उद्देश्य को अधिकतम रूप में प्राप्त करने के लिए उचित नीति को बनाने या निकालने में सहायक होता है।"[2]

---

[1] "One cannot assess the appropriateness of a particular policy, nor choose among alternative policies, unless one pays attention both to the probable consequences of those policies and the objectives that are sought *Analytical welfare economics is concerned with the methodology of such assessments.*"

[2] "The ability to predict makes positive economics an indispensable tool of policy formation. The entire body of positive economics enables us to predict the outcome resulting from

(*Contd.*)

(ii) 'वास्तविक अर्थशास्त्र' में निष्कर्ष या कथन (conclusions or propositions) मान्यताओ के एक समूह के आधार पर निकाले जाते है। 'वास्तविक कथनों' को प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक जगत मे तथ्यों (facts) की सहायता से जांचा जा सकता है। यदि कोई वास्तविक कथन वास्तविक तथ्यों से मेल खाता है, तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है, अन्यथा उसे त्याग दिया जाता है।

कल्याणवादी कथन भी, वास्तविक कथनो की भांति, मान्यताओ के एक समूह के आधार पर निकाले जाते हैं। इन मान्यताओ (या दशाओ) के आधार पर कल्याणवादी अर्थशास्त्र इस बात की जांच करता है कि सामाजिक कल्याण मे वृद्धि हुई है या नही। इन मान्यताओं के पूरा होने पर भी यदि सामाजिक कल्याण मे वृद्धि नही होती है तो इन मान्यताओ को उचित नही समझा जाता है।

अब तक के विवरण से स्पष्ट होता है कि चाहे एक 'वास्तविक कथन' हो या 'कल्याणवादी कथन', प्रत्येक की जांच वास्तविक परिणाम के आधार पर की जाती है, जबकि मान्यताओ (या दशाओ) का एक समूह (set) दिया हुआ हो। यहा तक के विवरण से ऐसा लगता है कि 'वास्तविक सिद्धान्त' (positive theory) तथा 'कल्याणवादी सिद्धान्त' (welfare theory) मे कोई अन्तर नही है।

परन्तु वास्तविक कठिनाई तब उत्पन्न होती है जबकि हम 'कल्याण कथनों' (welfare propositions) की वास्तविक जाच पर आते हैं, अर्थात् जब हम यह मालूम करने की कोशिश करते हैं कि वास्तव मे कल्याण मे वृद्धि हुई है या नही। "इसका कारण है कि बाजार कीमत या व्यक्तिगत उपभोग के किसी एक मद (item) की भांति, कल्याण एक मापनीय मात्रा नही है। यह एक दूसरी प्रकार की चिड़िया है (अर्थात् यह एक दूसरी प्रकार की बात है)। व्यवहार मे, यद्यपि सिद्धान्त मे न सही, एक कल्याण कथन की जाच करना अत्यन्त कठिन है।"[3]

असल मे 'वास्तविक अर्थशास्त्र' मे हम अपनी मान्यताओ को जितना सरल करना चाहें कर सकते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि उनकी सत्यता की जांच उस समय हो जायेगी जब हम उन मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों को वास्तविक जगत में लागू करेंगे। परन्तु कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे हम अपनी मान्यताओ को जैसा चाहें वैसा सरल नही बना सकते, क्योंकि उनके आधार पर निकाले गये निष्कर्षों को वास्तविक जगत मे तथ्यों (facts) की सहायता से नहीं जांचा जा सकता है; कल्याण निष्कर्ष मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक (psychological and ethical) होते हैं और इसलिए उनका कोई एक निश्चित मापन नही हो सकता है। अत कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे मान्यताओ का सावधानी तथा विस्तृत रूप से परीक्षण (examine) करना चाहिए। अब हम वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण अन्तर को निम्न शब्दो मे व्यक्त कर सकते हैं :

> **"वास्तविक अर्थशास्त्र में एक सिद्धान्त की जांच करने का सामान्य तरीका उसके निष्कर्षों की जांच करना है; जबकि कल्याणवादी अर्थशास्त्र में एक कल्याण कथन की जांच करने का सामान्य तरीका उसकी मान्यताओं की जांच करना है।"[4]**

कल्याण का विचार

(THE CONCEPT OF WELFARE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' का सम्बन्ध कल्याण से होता है; यह व्यक्तिगत कल्याण का अध्ययन

---

alternative policies, and the use of this in welfare economics enables us to derive the appropriate policy for maximizing the achievement of any particular objective."

[3] "For welfare is not an observable quantity like a market price or an item of personal consumption. It is a bird of another sort. It is in practice, if not in principle, exceedingly difficult to test a welfare proposition."

[4] "Whereas the normal way of testing a theory in positive economics is to test its conclusions, the normal way of testing a welfare proposition is to test its assumptions."

कर सकता है, परन्तु इसका सम्बन्ध मुख्यतया सामाजिक कल्याण से होता है; कल्याणवादी अर्थशास्त्र उस अंशदान (contribution) का अध्ययन करता है जो कि अर्थशास्त्र सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिए प्रदान कर सकता है।

परन्तु एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि 'कल्याण' का अर्थ क्या है ? इसको परिभाषित करना बहुत कठिन है; यहां पर हम अनेक विख्यात अर्थशास्त्रियों के विचारों की व्याख्या या दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि कल्याण का विचार नैतिक या व्यक्तिगत (ethical or subjective) होता है। परन्तु इस व्यक्तिगत विचार को एक वस्तुगत अर्थ (objective meaning) प्रदान करने के प्रयत्न किये गये हैं।

2. व्यक्ति का कल्याण : 'सामान्य कल्याण' तथा 'आर्थिक कल्याण' (Individual Welfare 'General Welfare' and 'Economic Welfare')

एक व्यक्ति के कल्याण का अर्थ उन उपयोगिताओं या सन्तुष्टियों (utilities or satisfactions) से है जो कि उसको वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से मिलती हैं। इस प्रकार, कल्याण एक 'व्यक्तिगत विचार' (subjective concept) है, यह मनुष्य के मस्तिष्क में रहता है; दूसरे शब्दों में, कल्याण मस्तिष्क की एक अवस्था (state) है, अथवा "कल्याण के तत्व मस्तिष्क के अनुभव की अवस्थाएं हैं" (the elements of welfare are states of consciousness)।

प्रो. पीगू ने 'सामान्य कल्याण' (general welfare) तथा 'आर्थिक कल्याण' (economic welfare) में भेद किया है। 'सामान्य कल्याण' का विचार एक बहुत विस्तृत विचार है और यह एक व्यक्ति (या समाज) के उस कल्याण को शामिल करता है जो कि आर्थिक तथा अनार्थिक सभी प्रकार की वस्तुओं से प्राप्त होता है। अतः, सामान्य कल्याण को प्रभावित करने वाले तत्वों या कारणों की खोज बहुत कठिन है या असम्भव है। इसलिए प्रो. पीगू कल्याण के विचार को 'आर्थिक कल्याण' तक ही सीमित रखना उचित समझते हैं; 'आर्थिक कल्याण' आर्थिक तत्वों पर निर्भर करता है और वह 'सामान्य कल्याण' का एक अंग होता है। प्रो. पीगू के अनुसार, 'आर्थिक कल्याण' सामान्य कल्याण का वह भाग है "जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा रूपी पैमाने से सम्बन्धित किया जा सकता है।"[5] इस प्रकार, पीगू के दृष्टिकोण से 'आर्थिक कल्याण' का अर्थ है एक व्यक्ति की वह संतुष्टि जो कि उसको आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं अर्थात् विनिमय-योग्य वस्तुओं तथा सेवाओं (exchangeable goods and services) से प्राप्त होता है। प्रो. रोबर्टसन 'economic welfare' शब्द के स्थान पर '*ecfare*' शब्द का प्रयोग करते हैं।

आर्थिक कल्याण के सम्बन्ध में पीगू के विचार की निम्न आलोचनाएं की गयीं—(i) द्रव्य कल्याण का एक अपर्याप्त या असतोषजनक तथा अपूर्ण माप है क्योंकि कीमतों में परिवर्तनों के साथ द्रव्य के मूल्य में भी परिवर्तन होता रहता है। 'Thermometer' की भांति हमारे पास कोई 'Utility-meter' नहीं होता जिससे कि उपयोगिता को मापा जा सके। (ii) ऐसी धारणा (impression) होती है कि आर्थिक कारणों या तत्वों से मस्तिष्क में प्राप्त होने वाली संतुष्टि (अर्थात् आर्थिक कल्याण) को, उस संतुष्टि से जो कि मस्तिष्क में अनार्थिक तत्वों के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है (अर्थात् अनार्थिक कल्याण) से अलग किया जा सकता है; परन्तु मस्तिष्क की एक अवस्था को दूसरी अवस्था से अलग नहीं किया जा सकता है।[6]

डाक्टर ग्राफ (Dr. Graff) इस बात से सहमत हैं कि कल्याण मस्तिष्क की एक अवस्था है,

---

5. According to Pigou, economic welfare is that part of general welfare which can "be brought directly or indirectly into relation with the measuring rod of money."

6. An impression is created that the satisfaction felt in mind as a result of economic causes or factors (i. e., economic welfare) can be separated from the satisfaction felt in mind owing to non economic factors (i e., non-economic welfare); but it is not possible to separate one state of mind from another.

परन्तु वे एक 'व्यक्ति के कल्याण' का 'व्यक्ति के चुनाव' के साथ निकट सम्बन्ध जोड़कर वस्तुगत होने के अंश (an element of objectivity) को बनाये रखने का प्रयत्न करते है। दूसरे शब्दों मे,

"एक व्यक्ति के कल्याण-नक्शे (welfare-map) को उसके अधिमान-नक्शे (preference-map) के समान समझा जाता है; अधिमान-नक्शा बताता है कि एक व्यक्ति विभिन्न स्थितियों में किस प्रकार चुनाव करेगा, यदि उसे चुनाव करने का अवसर दिया जाता है। एक व्यक्ति का कल्याण स्थिति A में अधिक है स्थिति B की तुलना में, इस कथन का अर्थ केवल यही है कि वह स्थिति A को चुनेगा अपेक्षाकृत स्थिति B के, यदि उसे चुनाव करने की आज्ञा दी जाती है।"[7]

ग्राफ इस बात से सहमत है कि एक व्यक्ति का कल्याण (अर्थात सामान्य कल्याण) आर्थिक तथा अनार्थिक दोनो प्रकार के तत्त्वो पर निर्भर करता है। परन्तु कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे केवल आर्थिक तत्त्वो पर ही विचार किया जाता है, और यह मान लिया जाता है कि अनार्थिक तत्त्व अपरिवर्तित या स्थिर रहते हैं।

3. सामाजिक कल्याण (या समूह कल्याण) (Social Welfare or Group Welfare)

प्रो पीगू के अनुसार उपयोगिता एक 'गणनावाचक विचार' (cardinal concept) है, अर्थात् उपयोगिता को परिमाणात्मक रूप से (quantitatively) जोडा जा सकता है। अत. पीगू के **अनुसार सामाजिक कल्याण समाज के सभी व्यक्तियों की 'उपयोगिताओं' या सन्तुष्टियों' या 'कल्याण' का जोड़ है।** पीगू के सामाजिक कल्याण के विचार की आलोचना की गयी है तथा उनके विचार को निम्न कठिनाइयो के कारण स्वीकार नही किया जाता है—

(i) उपयोगिता एक व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक विचार है और इसलिए उसे परिमाणात्मक रूप से जोडा नही जा सकता।

(ii) इस बात को जानने के लिए कि सामाजिक कल्याण में वृद्धि हुई है या कमी, यह जरूरी है कि उपयोगिता की 'अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएं' (interpersonal comparisons) की जाये, परन्तु अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं सम्भव नही हैं क्योंकि उपयोगिता एक व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक विचार है।

कल्याण के व्यक्तिगत (subjective) विचार को वस्तुगत (objective) अर्थ प्रदान करने की दृष्टि से ग्राफ (Graff) **'कल्याण' को 'चुनाव' के साथ सम्बन्ध** (link) करते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, एक व्यक्ति के कल्याण की भांति ही सामाजिक कल्याण को परिभाषित किया जा सकता है, अर्थात् **हम कह सकते हैं कि सामाजिक कल्याण अधिक होगा स्थिति A में अपेक्षाकृत स्थिति B के, यदि समाज द्वारा स्थिति A का चुनाव किया जाता है।**

परन्तु ग्राफ द्वारा दिये गये इस दृष्टिकोण के साथ भी कुछ **कठिनाइयां** हैं जो कि निम्नलिखित हैं।

(i) एक व्यक्ति की भांति, समाज का कोई एक 'एकीकृत मस्तिष्क' (a 'unified' or single mind) नही होता, यह नही कहा जा सकता हैं कि सामाजिक कल्याण 'सामाजिक मस्तिष्क' ('social mind') मे निवास करता है, समाज मे विभिन्न प्रकार के व्यक्ति होते हैं और इसलिए समाज के पास 'सामाजिक मस्तिष्क' नाम की कोई चीज नही होती है।

(ii) यद्यपि एक व्यक्ति के कल्याण को वस्तुगत रूप से (objectively) उस व्यक्ति के 'चुनाव'

---

[7] "A person's welfare is defined to be identical with his preference-map—which indicates how he would choose between different situations, if he were given the opportunity for choice. To say that his welfare would be higher in A than in B is thus no more than to say that he would choose A rather than B, if he were allowed to make the choice."

के साथ सबद्ध (link) किया जा सकता है, परन्तु 'सामाजिक कल्याण' को वस्तुगत रूप से 'सामाजिक चुनाव' (social choice) के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता है क्योंकि एक 'एकीकृत' या 'सर्वमान्य' सामाजिक चुनाव (an 'unified' or 'unanimous' social choice) नाम की कोई चीज नही होती है। 'सामाजिक चुनाव' व्यक्तियो के चुनावों पर निर्भर करता है, परन्तु समाज में व्यक्ति अपने चुनावों को भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं।

इस प्रकार वास्तविक कठिनाई है कि 'सामाजिक कल्याण' को कैसे ज्ञात किया जाये—(i) हम व्यक्तियों की 'उपयोगिताओं' या 'संतुष्टियों' का परिमाणात्मक जोड़ (quantitative addition) करके 'सामाजिक कल्याण' को मालूम नहीं कर सकते हैं। (ii) 'चुनावों' के शब्दों में, समस्या यह है कि सामाजिक कल्याण को मालूम करने के लिए 'व्यक्तियों के चुनावों' को कैसे जोड़ा जाये, यदि 'सामाजिक चुनाव' नाम की कोई चीज मान ली जाये।

चूँकि कल्याण का 'परिमाणात्मक मापन' नहीं किया जा सकता है इसलिए **वास्तविक समस्या यह है कि 'उपयोगिता के क्रमवाचक विचार'** (ordinal concept of utility) **के आधार पर 'सामाजिक कल्याण' का 'गुणात्मक मापन'** (qualitative measurement) **कैसे किया जाय।** डाक्टर ग्राफ ने सामाजिक कल्याण के तीन 'गुणात्मक' विचार (three 'qualitative' concepts of social welfare) दिये हैं—

(i) सामाजिक कल्याण की पैतृक धारणा (Paternalist Concept of Social Welfare)

(ii) सामाजिक कल्याण की पेरिटो की धारणा (Pareto's Concept of Social Welfare)

[सामाजिक कल्याण का एक और विचार या धारणा है जो कि 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (Compensation Principle) के नाम से विख्यात है और जिसको Hicks, Kaldor तथा Scitovosky ने बनाया है। परन्तु यह सिद्धान्त पेरिटो की धारणा का केवल एक विस्तार मात्र है।]

(iii) सामाजिक कल्याण की बर्गसन की धारणा (Bergson's Concept of Social Welfare)।

अब हम सामाजिक कल्याण की उपर्युक्त तीनों धारणाओं की अलग-अलग संक्षेप में व्याख्या करते हैं।

(i) **सामाजिक कल्याण की पैतृक धारणा** (Paternalist Concept) : इस विचार के अनुसार एक पैतृक सत्ता (Paternalist authority) या एक अधिनायक (Dictator) के सामाजिक कल्याण के सम्बन्ध में अपनी धारणा होती है जिसे वह व्यक्तियों पर थोपना या लादना चाहता है और अपनी धारणा के अनुसार सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना चाहता है। इसके अन्तर्गत कल्याण के सम्बन्ध मे व्यक्तियों के विचारों को कोई मान्यता नही दी जाती है। स्पष्ट है कि सामाजिक कल्याण की पैतृक धारणा एक लोकतांत्रिक ढांचे (democratic set-up) के लिए उपयुक्त नही है।

(ii) **पेरिटो की धारणा** (Paretian Concept) : पेरिटो की धारणा उपयोगिता के क्रमवाचक विचार (ordinal concept) पर आधारित है और इसलिए उन्होंने बताया कि अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं (interpersonal comparisons) नही की जा सकती हैं। पेरिटो के अनुसार सामाजिक कल्याण व्यक्तियों के कल्याण पर निर्भर करता है; अर्थात्, सामाजिक कल्याण 'व्यक्तियों के कल्याणों का केवल एक विविधतापूर्ण एकत्रण है' (social welfare is 'clearly no more than a heterogeneous collection of individual welfares')। पेरिटो के सामाजिक कल्याण के विचार का सारांश निम्न शब्दों में दिया जा सकता है—

"यदि कुछ व्यक्तियों की स्थिति में सुधार किया जाता है परन्तु इसके साथ-साथ किसी

भी व्यक्ति की स्थिति पहले की तुलना में खराब नहीं होती है तो समूह (अर्थात्, सामाजिक) कल्याण में वृद्धि होगी; यदि कुछ व्यक्तियों की स्थिति, पहले की तुलना में, खराब हो जाती है, तो समूह कल्याण मे कमी हो जायगी। परन्तु यदि कुछ व्यक्तियों की स्थिति में सुधार होता है और कुछ की स्थिति में गिरावट आती है, तो हम यह नहीं बता सकते कि समूह (अर्थात्, सामाजिक) कल्याण में क्या हुआ, वृद्धि या कमी।"[8]

परन्तु पेरिटो का कल्याण का विचार नैतिक निर्णय (ethical or value judgement) मे स्वतन्त्र (free) नहीं है जैसा कि पेरिटो सोचते थे, उनका विचार एक सामान्य या विस्तृत (broad) नैतिक निर्णय पर आधारित है और वह है, "यह एक अच्छी बात है यदि किसी एक व्यक्ति की स्थिति मे सुधार हो जाता है जबकि किसी भी अन्य व्यक्ति की स्थिति मे कोई गिरावट नहीं होती है।"[9]

हिक्स, कालडोर तथा साइटोवोस्की ने सामाजिक कल्याण का विचार (जो कि 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) के नाम से विख्यात है) दिया है, जो कि पेरिटो के विचार से थोड़ा भिन्न है, परन्तु उनका विचार पेरिटो की धारणा पर ही आधारित है और वह पेरिटियन कल्याण की धारणा का केवल एक विस्तार है।[10]

(iii) **बर्गसन की धारणा** (Bergson's Concept) बर्गसन, सेम्युलसन, लिटिल (Little) तथा ऐरो (Arrow) ने सामाजिक कल्याण के विचार को प्रस्तुत किया जो कि 'सामाजिक कल्याण फलन' (social welfare function) के नाम से विख्यात है। सामान्यितया आर्थिक परिवर्तन मिश्रित प्रभाव (mixed effects) उत्पन्न करते है, अर्थात् वे कुछ व्यक्तियों की स्थिति मे सुधार करते हैं तथा कुछ की स्थिति मे गिरावट लाते है। अत, इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक कल्याण मे परिवर्तनों को जानने के लिए उपयोगिता की 'अन्त वैयक्तिक तुलनाएं' (interpersonal comparisons of utility) जरूरी हैं, और अन्त वैयक्तिक तुलनाएं कुछ नैतिक निर्णयों या नैतिक मान्यताओ (value judgements or ethical assumptions) के सन्दर्भ मे ही की जा सकती हैं। इस प्रकार, इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार कल्याण-विश्लेषण (welfare analysis) मे नैतिक निर्णयो को स्पष्ट रूप से प्रवेश (explicitly introduce) करना पड़ेगा।

अर्थशास्त्रियो को नैतिक निर्णयों या नैतिक मान्यताओ को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए, और इन नैतिक मान्यताओं के आधार पर एक 'सामाजिक कल्याण फलन' की स्थापना की जाती है; और 'सामाजिक कल्याण फलन' मे समूह या समाज के व्यक्तियो के 'उपयोगिता फलनों' या 'चुनाव-सूचको' ('utility functions' or 'choice-indicators' of individuals) को शामिल किया जाता है। यदि W सामाजिक कल्याण को बताता है, तथा U_1, U_2, U_3, U_4 इत्यादि समाज मे व्यक्तियो के 'उपयोगिता फलनों' या 'चुनाव-सूचको' को बताते हैं तो सामाजिक कल्याण फलन W को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :

$$W = f\ (U_1,\ U_2,\ U_3\ U_4, \ldots\ldots)$$

ध्यान रहे कि उपयोगिता का 'क्रमवाचक विचार' लिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, **"सामाजिक कल्याण फलन का सारांश या अर्थ है नैतिक निर्णयो का एक विस्तृत समूह जिसके आधार पर यह पता लगता है कि एक व्यक्ति के कल्याण का दूसरे व्यक्ति के**

---

[8] "If some men are made better off, and none worse off, group (that is, social) welfare rises; if some are made worse off, it falls But if some are made better off and some orse off we just do not know what has happened to the welfare of the group "

[9] His concept is based on a broad ethical or value judgement that 'it is a good thing if somebody is made better off while nobody is worse off'

[10] 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' की संक्षिप्त विवेचना इसी अध्याय मे आगे दी गयी है तथा उसकी विस्तृत विवेचना अगले अध्याय मे की गयी है।

कल्याण के साथ जोड़ या योग कैसे किया जाये।"[11]

बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन एक बहुत विस्तृत तथा सामान्यीकृत (generalized) विचार है; 'कल्याण की पैतृक धारणा' तथा 'कल्याण की पेरिटियन धारणा' दोनों 'सामाजिक कल्याण फलन' की विशेष स्थितियां (special cases) कही जा सकती है।

रोबिन्स (तथा उनके अनुयायी) अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयों या नीतिशास्त्र (ethics) से बिलकुल अलग रखना चाहते थे। परन्तु बर्गसन (और उनके अनुयायियों, जैसे सेम्युलसन, लिटिल, इत्यादि) का यह स्पष्ट और निश्चित मत है कि जहां तक कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध है, बिना नैतिक निर्णयों के कल्याणवादी अर्थशास्त्र का कोई अर्थ या उद्देश्य नहीं रह जायेगा। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से शामिल (explicitly introduce) करना चाहिए। नैतिक निर्णयों को समाज (अर्थात् पार्लियामेन्ट या सरकार) द्वारा दिया जाना चाहिए; अर्थशास्त्रियों को इनको दिया हुआ मानकर आर्थिक नीतियों के कल्याण सम्बन्धी परिणामों को निकालना (deduce करना) चाहिए। इस प्रकार से अर्थशास्त्री अपने दृष्टिकोण में वस्तुगत, तटस्थ तथा वैज्ञानिक (objective, neutral and scientific) रह सकता है और साथ ही साथ नीतियों की अच्छाई या बुराई के सम्बन्ध में अपनी नैतिक रायें (moral opinions or judgements) को भी दे सकता है। अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री बर्गसन, सेम्युलसन, लिटिल तथा ऐरो के द्वारा दी गयी इस धारणा से सहमत हैं।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयों का स्थान
(THE PLACE OF VALUE JUDGEMENTS IN WELFARE ECONOMICS)

1. नैतिक निर्णय का अर्थ (Meaning of value judgements)

ऐसे नीतिशास्त्र सम्बन्धी (ethical) कथन जो कि 'प्रभावित करने, सुझाव देने तथा मनाने का कार्य करते हैं' उन्हें नैतिक निर्णय कहा जाता है।[12] उदाहरणार्थ, 'आय में असमानताओं को कम करना चाहिए', 'एक विशेष परिवर्तन आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेगा'; इत्यादि ऐसे कथन है जो नैतिक निर्णयों को बताते है। इस प्रकार,

> **"एक नैतिक निर्णय वह है जो कि विश्वासों या दृष्टिकोणों में परिवर्तन करके व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रवृत्ति रखता है।"**[13]

किसी देश या समाज में प्रायः नैतिक निर्णय देश के संविधान, नीति-सुझावों या योजनाओं में व्यक्त किये जाते है और इनके सन्दर्भ में अर्थपूर्ण (meaningful) आर्थिक नीतियों का निर्माण किया जाता है।

2. नैतिक निर्णय तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Value Judgements and Welfare Economics)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध वैकल्पिक (alternative) नीतियों की सामाजिक वांछनीयता (social desirability) का मूल्यांकन करने से होता है। यह कुछ कसौटियों या कथनों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर वैकल्पिक नीतियों को इस दृष्टि से आंका जाता है कि वे सामाजिक कल्याण में वृद्धि करेंगी या नहीं। 'कल्याण' एक 'नैतिक' शब्द (ethical term) है और इसलिए सभी

---

[11] "It (that is, the social welfare function) either summarizes or implies a detailed set of ethical judgements regarding the way in which one man's welfare is to be 'added' to another's."

[12] Ethical statements which "have the function of influencing, suggesting and persuading" are known as value judgements.

[13] Thus, "a value judgement is one which tends to influence people by altering their beliefs or attitudes."

कल्याण कथन (propositions) 'नैतिक' होते हैं और उनमे नैतिक निर्णय शामिल रहते है। अब अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि "कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र को अलग नही किया जा सकता। वे अलग नही किये जा सकते है क्योकि कल्याणवादी शब्दावली एक मूल्य-भारित शब्दावली है।"[14] कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे नैतिक निर्णयो का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए अन्यथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र का कोई महत्त्व नही रह जायेगा।

3. **क्या अर्थशास्त्रियों को स्वयं नैतिक निर्णयों को निर्धारित करना चाहिए ?** (Should economists themselves decide value judgements ?)

इस बात को मानते हुए कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयो का होना जरूरी है, एक मुख्य प्रश्न यह उठता है कि क्या अर्थशास्त्रियो को नैतिक निर्णयो को स्वय निर्धारित करना चाहिए, या नैतिक निर्णयो को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए ? अर्थशास्त्रियो मे इस सम्बन्ध मे मतभेद रहा है। अब हम नीचे दिये गये कुछ मुख्य अर्थशास्त्रियो के विचारो की व्याख्या करते हैं—(i) पीगू तथा नये क्लासीकल अर्थशास्त्री, (ii) पेरिटो, (iii) हिक्स, कालडोर तथा साइटोवोस्की; (iv) बर्गसन, सेम्युलसन, लिटिल तथा ऐरो।

नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों, अर्थात् मार्शल तथा पीगू के अनुसार उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन किया जा सकता है और इसलिए उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) है। **पीगू** ने यह मान्यता मानी कि "सभी व्यक्ति (धनी या निर्धन) संतुष्टि की समान क्षमता रखते हैं"[15] और इस मान्यता के आधार पर पीगू ने अपनी आय-वितरण की नीति का निर्माण किया। उनकी आय-वितरण की नीति बताती है कि धनी व्यक्तियो से निर्धन व्यक्तियो को द्राव्यिक आय का हस्तातरण (transfer) सामाजिक कल्याण मे वृद्धि करेगा। इसका अभिप्राय है कि उपयोगिता (या कल्याण) की अन्त वैयक्तिक तुलना करनी पडेगी। परन्तु यह अन्त वैयक्तिक तुलना इस नैतिक निर्णय या नैतिक मान्यता पर आधारित है कि 'सभी व्यक्ति संतुष्टि के लिए समान क्षमता रखते हैं'।

प्रो. रोबिन्स ने पीगू की नैतिक मान्यता की कड़ी आलोचना की और बताया कि अन्तः वैयक्तिक तुलनाए वस्तुगत तथा वैज्ञानिक ढंग (objective and scientific manner) से नही की जा सकती। स्पष्ट है कि पीगू द्वारा दी गयी कल्याणवादी अर्थशास्त्र की व्याख्या नैतिक निर्णयो से स्वतत्र (free) नही है।

प्रो. रोबिन्स की आलोचना के परिणामस्वरूप अनेक अर्थशास्त्रियो ने गणनावाचन उपयोगिता के विचार के आधार पर अन्तःवैयक्तिक तुलना को त्याग दिया, तथा उन्होने **पेरिटियन कल्याण** के विचार **को स्वीकार** किया जो कि क्रमवाचक उपयोगिता (ordinal utility) पर आधारित है। **पेरिटियन कल्याण** का विचार बहुत सीमित है क्योकि यह सामाजिक कल्याण पर मिश्रित-प्रभाव (mixed-effect) के बारे मे कुछ नही कह सकता है, अर्थात्, यदि किसी आर्थिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ व्यक्तियो की स्थिति मे सुधार होता है तथा कुछ की स्थितियो मे गिरावट आती है तो पेरिटो के विचार या कसौटी के आधार पर यह नही बताया जा सकता है कि इस प्रकार के मिश्रित-प्रभाव से सामाजिक कल्याण मे वृद्धि होगी या कमी। इसके अतिरिक्त, पेरिटो का कल्याण-विचार भी नैतिक निर्णय से पूर्णतया स्वतंत्र नही है (जैसा कि पेरिटो सोचते थे), यह इस छिपे हुए नैतिक निर्णय पर आधारित है कि 'एक व्यक्ति को सदैव सबके साथ अच्छाई करनी चाहिए' ('one should always do good to all')।

कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की (जो कि 'नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के बनाने वाले कहे जाते है) ने 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) का निर्माण किया और सोचा कि उनकी यह धारणा नैतिक निर्णयो से स्वतत्र है। वास्तव मे इन अर्थशास्त्रियो ने सामाजिक कल्याण मे परिवर्तन

---

[14] "Welfare economics and ethics cannot be separated They are inseparable because the welfare terminology is a value terminology"

[15] 'All men (whether rich or poor) have equal capacity for satisfaction'

से सम्बन्धित पेरिटियन विचार का विस्तार किया और उन परिस्थितियो का भी मूल्यांकन किया जिनमे कुछ व्यक्तियो की स्थिति मे सुधार होता है तथा कुछ की स्थिति मे गिरावट आती है। पेरिटो की भांति, इन अर्थशास्त्रियों ने भी 'उत्पादन की समस्या' (अर्थात् 'आर्थिक कुशलता' economic efficiency) को 'वितरण की समस्या' से अलग रखा। आर्थिक कुशलता की जांच यह है कि ऐसे व्यक्ति जिनको परिवर्तन से लाभ होता है वे नुकसान होने वाले व्यक्तियों की उचित ढंग से क्षतिपूर्ति (compensation) कर सकते है। इस 'जांच' (test) या 'सिद्धान्त' को 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) कहा जाता है। परन्तु 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' का विचार अपने में नैतिक निर्णय को छिपाये हुए है क्योंकि परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्ति नुकसान होने वाले व्यक्तियो की क्षतिपूर्ति करने की स्थिति मे होते है। इस प्रकार 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' या 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' नैतिक निर्णयो से स्वतंत्र नही है।

प्रो. एब्राहम बर्गसन (Abraham Bergson) प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने स्पष्ट रूप से इस बात पर जोर दिया कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे नैतिक निर्णयो की आवश्यकता है। सेम्युलसन, लिटिल तथा एरो ने भी प्रो. बर्गसन के साथ सहमति व्यक्त की। इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे स्पष्ट रूप से (explicitly) नैतिक निर्णयो या नैतिक मान्यताओ को शामिल किये बिना कोई भी अर्थपूर्ण (meaningful) 'कल्याण कथन' (welfare propositions) या 'नीति-सुझाव' (policy-recommendations) नही दिये जा सकते है। **ये नैतिक निर्णय बाहर से दिये जा सकते हैं। एक अर्थशास्त्री बाहर से दिये हुए इन नैतिक निर्णयों से सहमति रख सकता है या नहीं, परन्तु वह इन दिये हुए नैतिक निर्णयों या नैतिक मान्यताओं के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से नैतिक सुझावों के अभिप्रायो (implications) को निकाल (deduce कर) सकता है।** इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' को 'नीतिशास्त्र' से अलग नही किया जा सकता, कल्याणवादी अर्थशास्त्र एक आदर्शवादी अध्ययन (normative study) हो जाता है; परन्तु साथ ही साथ इसका अर्थ यह नही है कि वह वैज्ञानिक (scientific) नही रह जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अब हम एक मोटे (broad) निष्कर्ष पर पहुच सकते है। अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री बर्गसन, सेम्युलसन इत्यादि के विचारो से सहमत है, अर्थशास्त्रियो को नैतिक निर्णयों को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए और फिर वैकल्पिक नीतियो के अभिप्रायो का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहिए। वास्तव मे कल्याणवादी अर्थशास्त्र के लिए नैतिक निर्णय आधारभूत (basic) है क्योकि (i) 'कल्याण' एक नैतिक शब्द (ethical term) है और इस शब्द 'कल्याण' से सम्बन्धित कोई भी कथन स्वाभाविक रूप से नैतिक निर्णयो, चाहे वे छिपे हुए हो या स्पष्ट, पर ही आधारित होगा। (ii) कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नीतियो के लिए सुझावो या नुस्खो (prescriptions) के वैज्ञानिक अध्ययन से होता है। कोई भी सुझाव या नुस्खे बिना किसी सामाजिक उद्देश्य के सन्दर्भ के नही दिये जा सकते, और कोई भी सामाजिक उद्देश्य निर्धारित नही किया जा सकता जब तक कि 'स्पष्ट रूप से' या 'छिपे रूप से' (explicitly or implicitly) कुछ नैतिक निर्णयो को मानकर नही चला जाता।

प्रश्न

1. कल्याणवादी अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए तथा वास्तविक अर्थशास्त्र से उसके अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
   Define Welfare Economics and distinguish it from Positive Economics.
2. आप कल्याणवादी अर्थशास्त्र से क्या समझते हैं? कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे नैतिक निर्णयो के स्थान की विवेचना कीजिए।
   What do you understand by Welfare Economics? Discuss the place of value judgements in Welfare Economics.

कल्याणवादी अर्थशास्त्र: पुराना तथा नया
(Welfare Economics : Old and New)

संक्षिप्त ऐतिहासिक निरूपण
(A BRIEF HISTORICAL REVIEW)

आर्थिक विश्लेषण के एक पृथक शाखा (separate branch) के रूप में कल्याणवादी अर्थशास्त्र का विकास नवीन ही है, यद्यपि प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (Old classical economists) ने इसका प्रयोग वास्तविक अर्थशास्त्र (Positive Economics) के साथ मिश्रित रूप में किया था। वास्तव में, एक दृष्टि से उपयोगवादी विचारक (utilitarian thinker) बेन्थम (Benthem) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उनका प्रसिद्ध सिद्धान्त-वाक्य (dictum)—'अधिकतम संख्या को अधिकतम सुख' (The greatest happiness of the greatest number)—कल्याणवादी अर्थशास्त्र का आधार कहा जा सकता है। इसके पश्चात् अंग्रेज अर्थशास्त्री होबसन (J. H. Hobson) ने अपनी पुस्तक *Work and Wealth* (1914) में, उस समय की इंगलैण्ड की शोचनीय सामाजिक अवस्था से प्रभावित होकर, अर्थशास्त्र को सामाजिक सुधार का यन्त्र या साधन बनाने के लिए जोरदार शब्दों में समर्थन किया। लगभग इसी समय अमरीकन अर्थशास्त्री हेनरी क्ले (Henry Clay) ने अपनी पुस्तक *Economics for the General Reader* (1916) में कल्याणवादी विचारधारा का समर्थन किया।

सन् 1920 में प्रो. पीगू की विख्यात पुस्तक *Economics of Welfare* के प्रकाशन के साथ कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अध्ययन आर्थिक विश्लेषण की एक पृथक शाखा के रूप में किया जाने लगा। नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (New Classical Economists) मार्शल, पीगू, इत्यादि ने कल्याण पर मनोवैज्ञानिक शब्दों (psychological terms) में विचार किया तथा उसमें वृद्धि के लिए उपयोगिता को अधिकतम करने को बताया। इनके विरोध में प्रो. रोबिन्स (Robbins) तथा उनके अनुयायियों ने कहा कि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कल्याण से जोड़ना ठीक नहीं है और उनके अनुसार, अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक अर्थशास्त्र ही मानना चाहिए। प्रो. रोबिन्स के इस विचार का कई प्रतिष्ठित आधुनिक अर्थशास्त्रियों जैसे, हिक्स (Hicks), कालडोर (Kaldor), साइटोवोस्की (Scitovosky), लिटिल (Little) बर्गसन (Bergson), सेम्युलसन (Samuelson) इत्यादि ने विरोध किया तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र का जोरदार समर्थन करते हुए अपने विचार प्रकट किये। निस्सन्देह अब कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।

हम कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अध्ययन को निम्न चार भागों में बांटते हैं—

1. पीगू का कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Pigouvian Welfare Economics), अथवा 'पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (Old Welfare Economics)

2. पेरिटो का कल्याणवादी अर्थशास्त्र (Pareto's Welfare Economics)
3. नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र (New Welfare Economics) अथवा 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (Compensation Principle); इसके निर्माता कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की है।
4. सामाजिक कल्याण फलन (Social Welfare Function); इसके निर्माता बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि है।

अब हम इनमे से प्रत्येक का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

पीगू का कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(PIGOUVIAN WELFARE ECONOMICS)
अथवा
पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(OLD WELFARE ECONOMICS)

1. प्राक्कथन (Introduction)

विख्यात नये क्लासीकल अर्थशास्त्री पीगू (जो कि मार्शल के शिष्य थे) प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने पहली बार कल्याणवादी अर्थशास्त्र का एक व्यवस्थित (systematic) अध्ययन अपनी क्लासिक (classic) पुस्तक *Economics of Welfare* मे प्रस्तुत किया। वास्तव मे पीगू कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पिता या जन्मदाता कहे जा सकते हैं। प्रो. लिटिल (Little) के शब्दो में, "कल्याणवादी अर्थशास्त्र को प्रो. पीगू के नाम के साथ जोड़ना अधिक उचित होगा। इससे पहले 'आनन्द अर्थशास्त्र' (Happiness Economics) था और इससे भी पहले 'धन अर्थशास्त्र' (Wealth Economics) था।"[1]

पीगू द्वारा प्रतिपादित कल्याणवादी अर्थशास्त्र को **'पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र'** भी कहा जाता है। पीगू ने निम्न बातो की विवेचना की - (i) कल्याण का विचार (concept), (ii) कल्याण को अधिकतम करने की दशाएं, तथा (iii) कल्याण मे वृद्धि करने के लिए नीति-सुझाव या नीति-नुस्ख (policy prescriptions)।

इस प्रकार पीगू ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र की एक व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की।

2. कल्याण का विचार (Concept of Welfare)

एक व्यक्ति के कल्याण का अर्थ उन उपयोगिताओं तथा सतुष्टियों (utilities and satisfactions) से है जो कि उसको वस्तुओ और सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार, कल्याण एक व्यक्तिगत चीज (subjective thing) है, यह मस्तिष्क मे निवास करती है; अर्थात् यह मस्तिष्क की एक अवस्था (state) है। 'सामाजिक कल्याण' समाज के व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिताओ या सतुष्टियो का योग है।

पीगू ने 'सामान्य कल्याण' (general welfare) तथा **'आर्थिक कल्याण'** (economic welfare) में भेद किया। सामान्य कल्याण एक बहुत विस्तृत शब्द है और इसके अन्तर्गत एक व्यक्ति (या समाज) को सभी प्रकार की वस्तुओ, आर्थिक तथा अनार्थिक वस्तुओं, के प्रयोग से प्राप्त होने वाला कल्याण शामिल होता है। प्रो. पीगू कल्याण के विचार को 'आर्थिक कल्याण' तक ही सीमित रखना चाहते है जो कि केवल आर्थिक तत्वो (economic factors) पर निर्भर करता है और सामान्य कल्याण का एक हिस्सा या भाग होता है। प्रो. पीगू के अनुसार, आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा रूपी पैमाने के साथ सम्बन्धित किया जा सकता

[1] "We would prefer to say that Welfare Economics began with Pigou. Before that we had Happiness Economics and before that, Wealth Economics."

है।[2] अत. पीगू के अनुसार आर्थिक कल्याण का अर्थ उस संतुष्टि से है जो कि एक व्यक्ति आर्थिक वस्तुओं व सेवाओं अर्थात् विनिमय-योग्य (exchangeable) वस्तुओं व सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त करता है।

3. पीगूवियन या पुराने कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मान्यताएं (Assumptions of Pigouvian or Old Welfare Economics)

सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की दशाओं (propositions or conditions) की विवेचना करने से पहले यह आवश्यक है कि हम उन मान्यताओं को जान लें जिनके आधार पर कल्याणवादी दशाएं (welfare propositions) निकाली जाती हैं। मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं—

(i) **'प्रत्येक व्यक्ति अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है'** जो कि उसको आर्थिक वस्तुओं व सेवाओं पर द्राव्यिक आय को व्यय करने से प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक उपभोक्ता विवेकपूर्ण ढंग (rational way) से कार्य करता है।

(ii) एक महत्त्वपूर्ण मान्यता है **'संतुष्टि के लिए समान क्षमता'** (equal capacity for satisfaction); इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति की, चाहे वह धनी हो या निर्धन, एकसमान रुचियां (tastes) होती हैं और वस्तुओं के प्रयोग से संतुष्टि प्राप्त करने की क्षमता भी प्रत्येक के लिए समान होती है, दूसरे शब्दों में, विभिन्न व्यक्ति एक बराबर वास्तविक आय से समान सतुष्टि प्राप्त करते हैं।

(iii) **द्रव्य के सम्बन्ध में उपयोगिता ह्रास नियम लागू होता है।** इसका अर्थ है कि द्राव्यिक आय मे वृद्धि के साथ द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता घटती है, दूसरे शब्दों में, एक अतिरिक्त रुपया उस व्यक्ति को कम सतुष्टि देगा जिसके पास अधिक द्रव्य है अपेक्षाकृत उस व्यक्ति के जिसके पास कम द्रव्य है।

(iv) यह माना गया कि **उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं** (interpersonal comparisons of utility) की जा सकती हैं; और इसलिए कल्याण में वृद्धि या कमी को मालूम करना सम्भव है।

4. सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की दशाएं (Welfare conditions or propositions for social optimum)

पीगू ने 'कल्याण' के व्यक्तिगत विचार (subjective concept) को राष्ट्रीय आय (national dividend or national income) के वस्तुगत विचार (objective concept) से सम्बन्धित किया, राष्ट्रीय आय में परिवर्तन कल्याण मे परिवर्तन को बतायेंगे।

ऊपर दी गयी मान्यताओं के आधार पर सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए पीगू ने 'दो दशाएं' या 'दुहरी कसौटी' ('two conditions' or 'double criterion') प्रस्तुत कीं, जो कि निम्नलिखित है—

(1) **वास्तविक (real) राष्ट्रीय आय (अर्थात् वस्तुओं व सेवाओं के कुल उत्पादन) को अधिकतम करने से सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा, जबकि साधनों की पूर्ति दी हुई है।** वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ है सतुष्टि की अधिक मात्रा और जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक कल्याण मे वृद्धि होगी; और इसी प्रकार वास्तविक राष्ट्रीय आय मे कमी का अर्थ है सतुष्टि मे कमी और इसलिए सामाजिक कल्याण मे कमी। इस प्रकार सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए वास्तविक राष्ट्रीय आय को अधिकतम करना होगा। वास्तविक राष्ट्रीय आय को अधिकतम करने के लिए

[2] According to Pigou, economic welfare is that part of general welfare which can "be brough directly or indirectly into relation with the measuring rod of money."

साधनों का अनुकूलतम (optimum) तरीके से वितरण करना पडेगा; अर्थात् साधनों का कम उत्पादक प्रयोगों से अधिक उत्पादक प्रयोगों मे हस्तांतरण (transfer) करना पडेगा जब तक कि इस प्रकार का हस्तांतरण असम्भव न हो जाये; ऐसी स्थिति में वस्तुओ व सेवाओ का कुल उत्पादन (अर्थात् वास्तविक राष्ट्रीय आय) अधिकतम हो जायेगा और इसलिए सामाजिक कल्याण भी अधिकतम हो जायेगा।

(ii) **वास्तविक आय का धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को हस्तांतरण समाज की कुल संतुष्टि में अर्थात् कुल कल्याण में वृद्धि करेगा।** द्राव्यिक आय पर उपयोगिता ह्रास नियम के लागू होने की मान्यता के आधार पर धनी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की उपयोगिता कम होती है अपेक्षाकृत निर्धन व्यक्तियों के; तथा धनी और निर्धन सभी व्यक्तियों के लिए सतुष्टि के लिए समान क्षमता' (equal capacity for satisfaction) होती है; अत द्रव्य या वास्तविक आय का धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियो का कोई भी हस्तातरण निर्धन व्यक्तियो के कल्याण मे वृद्धि करेगा और इसलिए समाज के कल्याण मे वृद्धि होगी। इस प्रकार का हस्तातरण उस सीमा तक होना चाहिए जिस सीमा तक कि 'उत्पादक प्रयत्न, उपक्रम तथा पूजीगत यंत्रों के विकास' (productive effort, enterprise and development of capital equipments) पर कोई खराब प्रभाव नही पडता है। दूसरे शब्दो मे, पीगू के अनुसार सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए 'आय के वितरण मे समानता' (equality of distribution of income) जरूरी है।

5. पीगूवियन (या पुराने) कल्याणवादी अर्थशास्त्र की आलोचना (Criticism of the Pigouvian (or old) Welfare Economics)

प्रो. रेडोमिस्लर (Redomysler) के अनुसार, "प्रो. पीगू अपनी पुस्तक *Economics of Welfare* मे नुस्खे या नीति सुझाव नही देते, वे केवल इस बात की व्याख्या करते है कि कौनसे कारण आर्थिक कल्याण मे वृद्धि करेंगे, और अपने विवेचन को यही पर छोड देते है। यह महत्त्वपूर्ण है। चूंकि *Economics of Welfare* का सम्बन्ध कल्याण के कारणों की खोज से है, इसका अभिप्राय है कि वह एक 'वास्तविक अध्ययन' (positive study) है और 'क्या किया जाना चाहिए' का एक 'आदर्शात्मक अध्ययन' (normative study) नही है।"*

परन्तु प्रो. रेडोमिस्लर के इस दृष्टिकोण को मान्यता नही दी जाती है कि प्रो. पीगू ने अपनी पुस्तक में केवल कल्याण के कारणों की व्याख्या की है। पीगू के कल्याणवादी अर्थशास्त्र के प्रति निम्नलिखित मुख्य आलोचनाएं की जाती हैं

(i) परिमाणात्मक रूप से (quantitatively) **संतुष्टियों का योग नहीं किया जा सकता है।** इसलिए यह कहना कोई अर्थ नही रखता कि व्यक्तियो की सतुष्टियो का योग सामाजिक कल्याण है। हम यह नही कह सकते है कि व्यक्ति को वस्तुओ और सेवाओ के प्रयोग से कितनी सतुष्टि प्राप्त होती है, केवल यह कहा जा सकता है कि उसकी संतुष्टि पहले की तुलना मे कम है या अधिक, यह नही बता सकते कि कितनी कम या अधिक है। दूसरे शब्दो मे, सतुष्टि या कल्याण या उपयोगिता के लिए 'क्रमवाचक विचार' (ordinal concept) का प्रयोग किया जा सकता है, 'गणनावाचक विचार' (cardinal concept) का नही।

* "Professor Pigou in his *Economics of Welfare* does not prescribe, he examines what would increase economic welfare, and leaves it at that. This is important. As the 'Economics of Welfare' is concerned with the causes of welfare, it follows that it is a positive study, and not a normative study of what ought to be done."

(ii) पीगू ने 'व्यक्तिगत' विचार 'कल्याण' को 'वस्तुगत' विचार 'राष्ट्रीय' के साथ सम्बद्ध (link) किया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री 'कल्याण' के व्यक्तिगत विचार को 'चुनाव' (choice) के वस्तुगत विचार के साथ सम्बद्ध करना अधिक उचित मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति स्थिति A को चुनता है अपेक्षाकृत स्थिति B के, तो इसका अभिप्राय है कि वह व्यक्ति स्थिति A से अधिक सतुष्टि या उपयोगिता प्राप्त करता है अपेक्षाकृत स्थिति B के, निस्सन्देह यहा पर चुनाव का आधार 'उपयोगिता का क्रमवाचक विचार' है। आधुनिक अर्थशास्त्री इस दृष्टिकोण को मान्यता देते हैं।

(iii) **'संतुष्टि की समान क्षमता' की मान्यता उचित तथा वैज्ञानिक नहीं है;** यह केवल एक नैतिक निर्णय की मान्यता (assumption of ethical judgement) है जो कि 'उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलना' के लिए एक वास्तविक या वैज्ञानिक आधार (positive and scientific basis) प्रदान नहीं करता है।

(iv) तीसरी आलोचना के विस्तार (extension) करने से हम एक और आलोचना पर पहुच जाते हैं जो कि निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की गयी है—"कल्याणवादी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शवादी अध्ययन है, क्योंकि कोई भी परिवर्तन बिना किसी न किसी को नुकसान पहुचाये नहीं किया जा सकता, और चूंकि सतुष्टि की अन्त वैयक्तिक तुलनाए नैतिक निर्णय हैं और ऐसी तुलनाए आवश्यक हैं समाज के कल्याण के मूल्यांकन करने के लिए, इसलिए कल्याणवादी अर्थशास्त्र निश्चित रूप से नैतिक (ethical) है।" वास्तव में यह आलोचना अपना ध्यान 'नीतिशास्त्र' और 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के सम्बन्ध के समस्त प्रश्न पर केन्द्रित करती है। पीगूवियन कल्याणवादी अर्थशास्त्र इस बात पर अस्पष्ट है।*

6 **निष्कर्ष** (Conclusion)

पीगूवियन कल्याणवादी अर्थशास्त्र की उपर्युक्त आलोचनाओ के परिणामस्वरूप कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में दो विचारधाराओ (schools) का जन्म हुआ—(i) नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र (या 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त') जो कि पैरिटो के कल्याण-विचार का विस्तार मात्र है, नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र के निर्माता कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की हैं। यह विचारधारा (पैरिटो की भाति) कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र रखना चाहती है; परन्तु यह अपने इस उद्देश्य में सफल न हो सकी। (ii) दूसरी विचारधारा है 'सामाजिक कल्याण फलन' (social welfare function), इसके निर्माता बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि अर्थशास्त्री है। इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र एक 'आदर्शात्मक अध्ययन' है, कल्याणवादी अर्थशास्त्र अर्थपूर्ण (meaningful) तभी होगा जबकि कल्याण विश्लेषण में स्पष्ट रूप से नैतिक निर्णयो को शामिल किया जाता है, नैतिक निर्णयो को बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए और उसके बाद वैज्ञानिक ढग से नीतियो के कल्याण अभिप्रायो (welfare implications) को निकालना चाहिए।

पैरिटो का कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(PARETIAN WELFARE ECONOMICS)
अथवा
पैरिटो का सामाजिक अनुकूलतम
(PARETIAN SOCIAL OPTIMUM)

1. **प्राक्कथन** (Introduction)

पीगूवियन कल्याणवादी अर्थशास्त्र (या पुराना कल्याणवादी अर्थशास्त्र) दो मुख्य मान्यताओ

* "Welfare economics is inevitably a normative study, because no change could be made without harming someone, and since interpersonal comparisons of satisfaction are value *(Contd.)*

पर आधारित था—(i) उपयोगिता की गणनावाचक (cardinal) माप; तथा (ii) उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाए। इन दोनो मान्यताओ की आलोचनाए की गयी; उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक (psychological) विचार है और इसलिए उसका गणनावाचक या परिमाणात्मक माप नही हो सकता है; अन्त वैयक्तिक तुलनाए न केवल कठिन ही है बल्कि ये नैतिक निर्णयो पर आधारित होती हैं।

2. मान्यताएं (Assumptions)

एक इटेलियन अर्थशास्त्री विलफ्रेडो पेरिटो (Vilfredo Pareto) ने उपर्युक्त मान्यताओ को त्याग दिया। पेरिटो ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र का निम्नलिखित मान्यताओ के आधार पर विवेचन किया—(i) पेरिटो ने अपने विश्लेषण को उपयोगिता के क्रमवाचक (ordinal) विचार पर आधारित किया, न कि उपयोगिता के गणनावाचक विचार पर। (ii) उन्होंने कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयों से स्वतंत्र (free) करने के लिए उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाओं की सम्भावना को छोड दिया। (iii) उपयोगिता वस्तुओ और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर करती है। (iv) पेरिटो ने अपने कल्याण-विश्लेषण मे वितरण अर्थात् वितरण की समस्याओ को शामिल नही किया क्योंकि ऐसा करने से अन्त वैयक्तिक तुलनाओ और नैतिक निर्णयो की बात उत्पन्न हो जाती है, पेरिटो ने केवल उत्पादन व विनिमय की कुशलता को ही अपने कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे शामिल किया।

3. पेरिटो की 'कल्याण-कसौटियां' तथा 'सामाजिक अनुकूलतम' (Pareto's 'Welfare Criteria and 'Social Optimum')

पेरिटो ने सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने का एक वस्तुगत 'जाच-सिद्धान्त' (test) या 'कसौटी' (criterion) देने का प्रयत्न किया। उनका 'जाच-सिद्धान्त' या 'कसौटी' विभिन्न नामों से पुकारी जाती है, जैसे, 'पेरिटियन अनुकूलतम' (Paretian Optimum), अथवा 'पेरिटो का सर्वसम्मति नियम' (Pareto's Unanimity Rule), अथवा 'पेरिटो का सामाजिक अनुकूलतम' (Pareto's Social Optimum), अथवा 'पेरिटो की अनुकूलतमता' (Pareto Optimality), अथवा 'सामान्य अनुकूलतम' (General Optimum)।

कल्याण मे सुधार (या वृद्धि) को जाचने के लिए पेरिटो की कल्याण-कसौटी को नीचे दिये गये शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—

> **आर्थिक कल्याण की दृष्टि से एक परिवर्तन को वांछनीय या सुधार लाने वाला तभी कहा जा सकता है जबकि वह परिवर्तन, बिना किसी को नुकसान पहुचाये हुए, कम से कम एक व्यक्ति की स्थिति को अच्छा करता है।**[5]

कल्याण की उपर्युक्त कसौटी या दशा के आधार पर 'समाज के लिए अधिकतम कल्याण की स्थिति' अर्थात् 'सामाजिक अनुकूलतम' (Social Optimum) को निकाला (अर्थात् deduce किया) जा सकता है, और इसको निम्न शब्दो मे व्यक्त किया गया है·

> **वितरण के किसी एक रूप को दिया हुआ मानकर, एक सामाजिक अनुकूलतम वह स्थिति है जिससे हटकर उत्पादन तथा विनिमय में कोई भी पुनर्संगठन किसी एक व्यक्ति को, बिना दूसरों को हानि पहुंचाये, अच्छी स्थिति मे नहीं ला सकता है।**[6]

तटस्थता वक्र तकनीक के शब्दों में अनुकूलतम कल्याण की स्थिति वह है जहा से किसी भी

judgements, and essential to judgements about the welfare of society, welfare economics is unavoidably ethical " This criticism focuses our attention to the whole question of the relation of ethics and economics Pigouvian welfare economics is not clear on this issue.

5 A change may be considered as desirable or improvement in terms of economic welfare only if the change makes at least one person better off without harming anyone else

6 Given some form of distribution, a social optimum is that position from which no reorganization of production and exchange can make one person better off without harming others.

व्यक्ति को एक ऊंची तटस्थता वक्र रेखा पर ले जाना सम्भव नहीं है जब तक कि किसी दूसरे व्यक्ति को एक नीची तटस्थता वक्र रेखा पर न पहुंचाया जाये।

4. रेखीय प्रस्तुतीकरण (Diagramatic Representation)

यहां पर हम सेम्युलसन की 'उपयोगिता सम्भव रेखा' (Samuelson's Utility Possibility Curve) का प्रयोग करते हैं। सरलता के लिए हम यह मान लेते है कि समाज मे केवल दो व्यक्ति A तथा B हैं। चित्र 1 मे A की 'क्रमवाचक उपयोगिता' (ordinal utility) को X-axis पर तथा B की क्रमवाचक उपयोगिता को Y-axis पर दिखाया गया है। समाज में उत्पादन की एक दी हुई मात्रा के लिए LM रेखा 'उपयोगिता सम्भव रेखा' है जो कि A तथा B के उपयोगिता स्तरो के विभिन्न सयोगो को बताती है। *हम उपयोगिता सम्भव रेखा LM के नीचे एक बिन्दु P को लेते है।* पेरिटियन कसौटी (Paretian criterion) के अनुसार कोई भी परिवर्तन जो कि बिन्दु P से LM रेखा के बिन्दुओ E, G, तथा F में से किसी पर भी ले जाता है, तो ऐसा चलन (*movement*) उपयोगिता या कल्याण के शब्दो में सुधार (improvement) को बताता है, P से F तक चलन व्यक्ति A के कल्याण (या उपयोगिता) मे वृद्धि को बताता है बिना B को नुकसान पहुचाये, P से E तक चलन B के कल्याण मे वृद्धि को बताता है बिना A को नुकसान पहुचाए; और P से G तक चलन दोनो व्यक्तियो A तथा B के कल्याण मे वृद्धि को बताता है। इस प्रकार right-angle segment RPT के अन्दर कोई भी चलन पेरिटो की दृष्टि से कल्याण में सुधार बताता है। परन्तु इस भाग (segment) RPT के बाहर कोई भी चलन 'पेरिटो सुधार' (Pareto improvement) नही है। उदाहरणार्थ, P से D तक चलन व्यक्ति B की उपयोगिता या कल्याण मे वृद्धि बताता है, परन्तु व्यक्ति A के कल्याण मे कमी या हानि को बताता है; इस प्रकार के चलन का पेरिटो-कसौटी के आधार पर मूल्याकन (evaluation) नही किया जा सकता है क्योकि यह परिवर्तन B के कल्याण मे वृद्धि करता है A को नुकसान पहुचा कर।

चित्र 1

5. पेरिटियन कसौटी की आलोचना (Criticism of Paretian Criterion)

मुख्य आलोचनाए नीचे दी गयी है ·

(i) *पेरिटियन कसौटी नैतिक निर्णयो से स्वतंत्र नहीं है जैसा कि पेरिटो का दावा था।* पेरिटो ने अन्त वैयक्तिक तुलनाओ को छोड दिया और इस प्रकार उन्होंने नैतिक निर्णयो से भी छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। परन्तु पेरिटियन कसौटी भी एक विस्तृत (broad) नैतिक मान्यता पर आधारित है और वह नैतिक मान्यता है 'एक व्यक्ति को सदैव सबके लिए अच्छा करना चाहिए' (*One should always do good to all*), अथवा 'यह एक अच्छी बात है कि किसी एक व्यक्ति की स्थिति मे सुधार हो बिना किसी दूसरे को हानि पहुचाए' (It is a good thing to make anyone better off without harming anyone else)। इस प्रकार पेरिटियन कसौटी भी नैतिक निर्णयो से स्वतत्र नही है। [अब अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री (जैसे—बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि) अर्थपूर्ण (meaningful) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के लिए नैतिक निर्णयो को शामिल करना आवश्यक समझते हैं।]

(ii) पेरिटो की यह मान्यता—कि एक व्यक्ति का कल्याण दूसरे व्यक्तियों के कल्याण से स्वतंत्र (independent) होता है—उचित नहीं है। वास्तव मे कल्याण या संतुष्टि एक सापेक्षिक (relative) शब्द है; एक व्यक्ति का कल्याण इस बात से प्रभावित होता है कि उसके पडोसी की कितनी आय है तथा पडोसी के पास कितनी वस्तुएं है, व्यक्ति केवल 'धनवान' (rich) ही नही बल्कि 'अधिक धनवान' (richer) होना चाहते है।

(iii) 'पेरिटियन अनुकूलतम' (Paretian optimum) का कोई एक अकेला (unique or single) बिन्दु नहीं होता, बल्कि 'पेरिटियन अनुकूलतम' के अनेक बिन्दु हो सकते हैं और प्रत्येक बिन्दु कल्याण के एक भिन्न स्तर को बताता है। इस बात का चुनाव करना कठिन है कि कौनसा 'अनुकूलतम बिन्दु' सबसे अच्छा है, अर्थात् 'अनुकूलतम बिन्दुओं मे से अनुकूलतम' (*Optimum Optimorum*, that is, the best of the best) को मालूम करना सम्भव नही है।

(iv) पेरिटियन कसौटी प्रयोग की दृष्टि से बहुत अधिक सीमित (restricted) है; अर्थात् अनेक नीति-सुझावो का इस कसौटी के आधार पर मूल्यांकन नही किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, चित्र 1 मे ऐसे नीति परिवर्तन (policy change), जो कि बिन्दु P से D तक चलन को उत्पन्न करता है, का मूल्यांकन पेरिटो की कसौटी के आधार पर नही किया जा सकता है क्योंकि यहा पर व्यक्ति B के कल्याण मे वृद्धि होती है जबकि A के कल्याण मे हानि होती है। दूसरे शब्दो मे, यह 'अस्पष्ट स्थितियों या मिश्रित स्थितियो' (ambiguous situations or mixed situations) का अध्ययन नही कर सकता है जहा पर कि कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है और कुछ की हालत मे गिरावट, यह केवल 'स्पष्ट स्थितियो' (unambiguous situations) का ही अध्ययन कर सकता है जहां पर कि कुछ व्यक्तियों की हालत में सुधार होता है बिना किसी भी अन्य व्यक्ति की हालत मे गिरावट हुए।

पेरिटियन कसौटी के बहुत सीमित प्रयोग को हम एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण द्वारा और स्पष्ट करते है। एक एकाधिकारी स्थिति को समाप्त करना अनेक व्यक्तियों के लिए लाभदायक होगा परन्तु एकाधिकार के मालिक या मालिको के लिए हानिकर होगा; अत. एक एकाधिकार के सम्बन्ध मे नीति-कदम (policy measure) का पेरिटियन कसौटी के आधार पर मूल्यांकन नही किया जा सकता है।

नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(NEW WELFARE ECONOMICS)

अथवा

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त
(THE COMPENSATION PRINCIPLE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

पेरिटो की कल्याण कसौटी प्रयोग मे अत्यन्त सीमित है, यह केवल स्पष्ट स्थितियों (unambiguous cases) मे लागू होती है, अर्थात् ऐसी स्थितियों का मूल्यांकन करती है जिनमे कुछ व्यक्तियो की हालत में सुधार होता है बिना किसी भी अन्य व्यक्ति को हानि पहुचाये; पेरिटो की कल्याण कसौटी मिश्रित स्थितियो या अस्पष्ट स्थितियों (ambiguous cases) मे लागू नही होती, अर्थात् ऐसी स्थितियों मे लागू नही होती जिनमे कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है और कुछ की हालत मे गिरावट या हानि।

पेरिटियन कसौटी के अत्यन्त सीमित प्रयोग के कारण कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण (reconstruction) के प्रयत्न किये गये। दो विचारधाराओं (schools) का जन्म हुआ : (i) हिक्स, कालडोर तथा साइटोवोस्की ने 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) प्रस्तुत किया; इसे 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' भी कहा जाता है। (ii) बर्गसन, सेम्युलसन, इत्यादि ने 'सामाजिक कल्याण फलन' (social welfare function) प्रस्तुत किया। यहा पर हम 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' की व्याख्या करेंगे।

कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की ने पेरिटो के 'क्रमवाचक उपयोगिता के विचार' तथा 'अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओ की असम्भवता' को स्वीकार किया और तब पेरिटियन कसौटी को मिश्रित स्थितियो मे अर्थात् उन स्थितियो मे लागू करने का प्रयत्न किया जिनमे कुछ व्यक्तियो की हालत मे सुधार होता है तथा कुछ व्यक्तियो की हालत मे गिरावट। इस दृष्टि से कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की द्वारा निर्मित कल्याणवादी अर्थशास्त्र को 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' कहा जाता है। परन्तु नये कल्याणवादी अर्थशास्त्रियो ने बहुत कम नयी बात बतायी अथवा उन्होने कोई ऐसी नयी बात नही बतायी जो कि वास्तव मे नयी हो क्योंकि उन्होने पेरिटो की सामान्य सरल मान्यताओ को स्वीकार किया।

2. नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मान्यताए (Assumptions of New Welfare Economics)

मुख्य मान्यताए निम्नलिखित है—

(i) प्रत्येक व्यक्ति की सतुष्टि दूसरे व्यक्तियो की सतुष्टि से स्वतन्त्र (independent) समझी जाती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण का सर्वोत्तम निर्णायक (best judge) होता है।

(ii) प्रत्येक व्यक्ति की रुचियो (tastes) को स्थिर (constant) मान लिया जाता है।

(iii) उत्पादन तथा उपभोग मे कोई बाहरी प्रभाव (external effects) नही होते है।

(iv) यह 'उपयोगिता के क्रमवाचक विचार' तथा 'उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओ की असम्भवता' को मानता है।

(v) यद्यपि कल्याण वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा तथा वितरण के स्वभाव पर निर्भर करता है, परन्तु इन अर्थशास्त्रियो ने यह माना कि 'उत्पादन और विनिमय की समस्याओ' को 'वितरण की समस्याओ' से अलग किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, इन अर्थशास्त्रियो की कल्याण कसौटी उत्पादन की कुशलता (efficiency) की वस्तुगत (objective) बात पर आधारित है और यह सामाजिक कल्याण मे उन परिवर्तनो का अध्ययन करता है जो कि उत्पादन के स्तर मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप होते है, यह वितरण की समस्या या वितरण सम्बन्धी न्याय (distributive justice) की बात को छोड देता है।

3. हिक्स-कालडोर का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त (Hicks-Kaldor Compensation Principle)

हिक्स, कालडोर तथा साइटोवोस्की ने 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' को प्रस्तुत किया और सोचा कि उन्होने आर्थिक कुशलता के एक ऐसे जाच-सिद्धान्त (test) को खोज लिया है जिसके आधार पर नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र होकर आर्थिक नीतियो तथा नुस्खो की वाछनीयता (desirability) का एक वैज्ञानिक मूल्याकन किया जा सकता है। परन्तु उनका यह दावा सही सिद्ध नहीं हुआ जैसा कि उनके सिद्धान्त की कमियो के प्रकाश मे आने से पता लगा।

कल्याण के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की दो भागो मे विवेचना की जाती है.

(i) कालडोर-हिक्स की कसौटी (Kaldor Hicks Criterion)

(ii) साइटोवोस्की की दोहरी कसौटी (Scitovosky's Double Criterion)

पहले हम कालडोर-हिक्स की कसौटी को लेते हैं। कालडोर की कसौटी को निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—

यदि एक नीति-परिवर्तन (policy change) समाज को स्थिति A से स्थिति B में ले जाता है, तब स्थिति B उस हालत मे पसन्द की जायेगी स्थिति A की तुलना में और अर्थशास्त्री नीति के सम्बन्ध में नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र होकर सिफारिश या सुझाव दे सकेंगे, यदि लाभ-प्राप्तकर्ता (gainers) इस योग्य हैं कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओ (losers) की क्षतिपूर्ति (compensation) कर सकें और फिर भी स्थिति B में पहले से अच्छी हालत में रह सकें।[7]

दूसरे शब्दों मे, कालडोर के अनुसार एक नीति वांछनीय मान ली जायेगी, चाहे वह 'पैरिटो की अनुकूलतम स्थिति' (Pareto's optimal position) मे न ले जाये, यदि लाभ-प्राप्तकर्ता 'क्षतिपूर्ति' या 'अधिक-क्षतिपूर्ति' (over-compensation) कर सकें या 'घूस' (bribe) दे सकें हानि-प्राप्तकर्ताओ को, ताकि हानि-प्राप्तकर्ता उस नीति को स्वीकार कर लें। उदाहरणार्थ, एक नीति से यदि लाभ-प्राप्तकर्ता 300 रु के बराबर लाभ प्राप्त करने की आशा करते हैं तथा हानि-प्राप्तकर्ता 100 रु. के बराबर हानि प्राप्त करने की आशा करते है, तो 100 रु. से कुछ अधिक की 'घूस' (bribe) हानि-प्राप्तकर्ताओं की 'क्षतिपूर्ति या 'अधिक-क्षतिपूर्ति' कर सकेगी और फिर भी लाभ-प्राप्तकर्ता अच्छी स्थिति मे (better off) रह सकेंगे।

'इसके अतिरिक्त, कालडोर के अनुसार, जो नीतियां उनकी कसौटी पर सही उतरती है, वे नीतिया उत्पादन मे वृद्धि करेगी, इस प्रकार ऐसी नीतियो के उत्पादन तथा वितरण पक्षो (aspects) के बीच अन्तर किया जा सकेगा,'[8] अर्थात् उत्पादन तथा वितरण के पक्षों को अलग रखा जा सकेगा।

हिक्स ने कालडोर के दृष्टिकोण को स्वीकार किया और उसको मान्यता दी। हिक्स के शब्दो मे,

"यदि व्यक्ति A, एक परिवर्तन के परिणामस्वरूप, इतनी अच्छी स्थिति में लाया जा सकता है कि वह दूसरे व्यक्ति B के नुकसान की क्षतिपूर्ति कर सकता है और फिर भी उसके (अर्थात् A के) पास कुछ बच रहता है, तो इस प्रकार का परिवर्तन या संगठन निश्चित रूप मे एक सुधार है।"[9]

एक महत्वपूर्ण बात ध्यान मे रखने की है। एक स्थिति की दूसरी स्थिति की तुलना मे श्रेष्ठता (superiority) को जानने के लिए कालडोर-हिक्स कसौटी यह नहीं कहती कि क्षतिपूर्ति भुगतान

---

[7] If a policy change moves the society from state A to state B, then the state B would be preferred to state A and the economist can make a value-free recommendation of the policy, provided the gainers were 'able' to compensate the losers and still be better off themselves in state B

[8] "Further, according to Kaldor, policies which passed his criterion could be said to have increased production; thus a distinction was possible between the *production* and *distribution* aspects of such policies."

[9] "If A is made so much better off by the change that he could compensate B for his loss and still have something left-over, then the organization is an unequivocal improvement."

In one of his writings, Hicks gave a slightly different version of the compensation principle; this version is reverse of Kaldor's criterion, but by implications the two are more or less the same According to Kaldor, for a policy change, the losers are to be compensated by the gainers; that is, the losers had to grant permission for the change. But according to Hicks, the gainers can cause the change without the permission of the losers, so the losers try to compensate or bribe the gainers into not initiating or completing the change. If the gainers gain more than the losers lose, the losers cannot offer an adequate bribe to prevent the change For example, if the gainers are to gain Rs. 300 and the losers are to lose Rs. 100, then the losers cannot bribe the gainers and cannot prevent the change

वास्तव में दिये जाने चाहिए; यदि भुगतान वास्तव में दिये जाते है तो ऐसा करने से आय के वितरण मे परिवर्तन उत्पन्न हो जायेगा और वितरण पक्ष विश्लेषण मे प्रवेश कर जायेगा जिसके कारण नीतियों के मूल्यांकन के लिए अन्त.वैयक्तिक तुलनाए (interpersonal comparisons) करनी पड़ेगी। कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र रखने के लिए इन अर्थशास्त्रियो ने बताया कि क्षतिपूर्ति भुगतान वास्तव मे दिया जाता है या नही, यह बात एक नैतिक या राजनीतिक निर्णय (ethical or political decision) है जो कि सरकार या राजनीतिज्ञो द्वारा लिया जाना चाहिए। कालडोर-हिक्स कसौटी के अनुसार एक नीति-कदम (policy measure) वाछनीय है, इसको जानने के लिए यह पर्याप्त है कि लाभ-प्राप्तकर्ता क्षतिपूर्ति 'कर सकते' है हानि-प्राप्तकर्ताओ को; अर्थात् जोर कल्याण को 'सम्भावित वृद्धि' (*potential* increase in welfare) पर है। दूसरे शब्दो मे, लाभ-प्राप्तकर्ताओ की हानि-प्राप्तकर्ताओ को पर्याप्त मात्रा मे क्षतिपूर्ति कर सकने की सम्भावना एक नीति की 'सम्भावित श्रेष्ठता' (potential superiority) को स्थापित करती है।

4. कालडोर-हिक्स की कसौटी का रेखीय प्रस्तुतीकरण (Graphic Representation of Kaldor-Hicks Criterion)

सरलता के लिए माना कि समाज मे दो व्यक्ति A तथा B है और दो वस्तुओ X तथा Y का उत्पादन हो रहा है। चित्र 2 मे उत्पादन स्तर Q_1 के सन्दर्भ (reference) मे Q_1L 'उपयोगिता
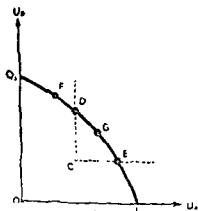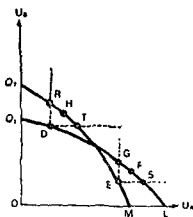
चित्र 2 चित्र 3

सम्भव रेखा' (utility possibility curve) है। चित्र 2 मे X-axis पर व्यक्ति A की 'क्रमवाचक उपयोगिता' या उपयोगिता स्तर (अर्थात् U_A) को दिखाया गया है, और Y-axis पर व्यक्ति B की 'क्रमवाचक उपयोगिता' या उपयोगिता स्तर (अर्थात् U_B) को दिखाया गया है। यह 'उपयोगिता सम्भव रेखा' A तथा B के उपयोगिता स्तरो के विभिन्न सयोगो को बताती है। चित्र 2 मे हम बिन्दु C से F के परिवर्तन पर विचार करते हैं, पेरिटो की कसौटी के आधार पर इस परिवर्तन का मूल्यांकन नही किया जा सकता है क्योकि इसके परिणामस्वरूप B को तो लाभ होता है परन्तु A को नुकसान होता है। Q_1L उपयोगिता सम्भव रेखा बिन्दु F से गुजरती है। परन्तु इसी उपयोगिता सम्भव रेखा पर बिन्दु D तथा G भी हैं जो कि बिन्दु F से धन के पुनर्वितरण द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं (which can be obtained from F by a redistribution of wealth); बिन्दु D और G बिन्दु C के ऊपर दायें को हैं अर्थात् वे segment (भाग) DE पर है। कालडोर-हिक्स कसौटी के अनुसार C से F को चलन एक सुधार है क्योंकि यहां पर बिन्दु F से धन का ऐसा पुनर्वितरण सम्भव है जिससे कि परिवर्तन के परिणामस्वरूप, किसी को भी हानि नही होती है। बिन्दु D पर, और निश्चित रूप से

बिन्दु G पर, व्यक्ति A को उसकी हानि के लिए क्षतिपूर्ति मिल जाती है।[10] अतः

कालडोर-हिक्स कसौटी के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बिन्दु C से बिन्दु F को चलन एक सुधार है, यदि (और केवल यदि) बिन्दु C नीचे है उस उपयोगिता सम्भव रेखा के जो कि बिन्दु F से गुजरती है।[11]

अब हम कालडोर-हिक्स की कसौटी की व्याख्या करने के लिए चित्र 3 पर विचार करते हैं। दिये हुए उत्पादन स्तर Q_1 से सम्बन्धित उपयोगिता सम्भावना रेखा Q_1L है; तथा उत्पादन स्तर Q_2 से सम्बन्धित उपयोगिता सम्भावना रेखा Q_2M है; और ये दोनो रेखाएं एक-दूसरे को किसी एक बिन्दु पर काटती है। माना कि हमारा शुरू का बिन्दु (starting point) D है। बिन्दु D से R, H, या T किसी को भी चलन एक 'पैरिटो सुधार' (a pareto improvement) है। परन्तु बिन्दु D से E के चलन का पैरिटियन कसौटी के आधार पर मूल्यांकन नही किया जा सकता क्योकि ऐसा चलन व्यक्ति A की हालत में सुधार तथा व्यक्ति B की हालत मे गिरावट उत्पन्न करता है। परन्तु ऐसे चलन का कालडोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता है। **कालडोर-हिक्स कसौटी के अनुसार बिन्दु D से E को चलन या परिवर्तन वांछनीय है (या कल्याण में वृद्धि करने वाला है) क्योंकि बिन्दु D उस उपयोगिता सम्भव रेखा Q_2M के नीचे है जो कि बिन्दु E से गुजरती है।** [इस निष्कर्ष को पहले हम चित्र 2 के सन्दर्भ मे निकाल चुके हैं और उसे इस पृष्ठ पर शुरू में काले टाइप मे दे चुके हैं।]

[उपर्युक्त बात को हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं। धन के पुनर्वितरण के परिणामस्वरूप, बिन्दु E से उसी उपयोगिता सम्भव रेखा Q_2M पर चलन एक बिन्दु H तक ले जा सकता है; और बिन्दु H पैरिटियन कसौटी के आधार पर, निश्चित रूप से बिन्दु D से श्रेष्ठ या अच्छा है। अतः हम कह सकते हैं कि बिन्दु E, जो कि बिन्दु H की स्थिति को उत्पन्न (generate) कर सकता है, बिन्दु D से अच्छा है।]

5. साइटोवोस्की की दोहरी कसौटी (Scitovosky's Double Criterion)

प्रो. साइटोवोस्की ने बताया कि कालडोर-हिक्स की कसौटी विपरीत स्थिति या विरोधाभास (contradiction or paradox) को जन्म देती है। साइटोवोस्की ने बताया कि कालडोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर यदि एक परिवर्तन वांछनीय है और क्षतिपूर्ति का वास्तव में भुगतान नहीं दिया जाता है, तो परिवर्तन के बाद आय का एक ऐसा पुनर्वितरण (redistribution) हो सकता है कि पुरानी स्थिति को वापस चलन, कालडोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर ही, वांछनीय हो सकता है। कालडोर-हिक्स की कसौटी मे इस विपरीत स्थिति (contradiction) को 'साइटोवोस्की का विरोधाभास' (Scitovosky's Paradox) कहा जाता है।

इस विपरीत स्थिति या विरोधाभास को चित्र 3 द्वारा समझाया जा सकता है। चित्र 3 मे बिन्दु D से E को चलन, कालडोर-हिक्स की कसौटी के अनुसार, एक सुधार है क्योंकि बिन्दु D उस उपयोगिता सम्भव रेखा Q_2M के नीचे है जो कि बिन्दु E से गुजरती है। परन्तु उसी कालडोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर बिन्दु E से D को वापस चलन भी एक सुधार है क्योंकि बिन्दु E उस उपयोगिता सम्भव रेखा Q_1L के नीचे है जो कि बिन्दु D से गुजरती है। वास्तव में यह विपरीत स्थिति या विरोधाभास इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि चित्र मे दोनो उपयोगिता सम्भव रेखाएं एक-दूसरे को काटती हैं।

---

[10] According to the Kaldor criterion the move from C to F is, in this case, an improvement because it is possible to redistribute wealth at F in such a way that nobody is harmed owing to the change. At point D. and surely at point G, individual A has been compensated for his loss

[11] On the basis of Kaldor criterion we conclude that any movement from a point C to a point F is an improvement if and only if point C is below the utility possibility curve which passes through point F.

अत. इस विरोधाभास को उत्पन्न न होने देने तथा किसी नीति की वाछनीयता (desirability) का मूल्याकन करने के लिए साइटोवोस्की ने एक कडी जाच (rigorous test) बतायी जिसके दो भाग हैं, अर्थात् साइटोवोस्की ने अपनी दोहरी कसौटी बतायी जो कि नीचे दी गयी है :

(i) कालडोर-हिक्स की कसौटी का इस बात की जाँच करने के लिए प्रयोग कीजिए कि प्रारम्भिक स्थिति से नयी स्थिति को चलन एक सुधार है या नही। [दूसरे शब्दो मे, लाभ-प्राप्तकर्ता इस योग्य (able) होने चाहिए कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओ की क्षतिपूर्ति कर सकें या हानि-प्राप्तकर्ताओ को 'घूस' दे सके ताकि वे परिवर्तन को स्वीकार कर लें।]

(ii) कालडोर-हिक्स की कसौटी को दुबारा फिर इस बात की जाच करने के लिए प्रयोग कीजिए कि नयी स्थिति से पुरानी स्थिति को वापस चलन एक सुधार है या नही। [दूसरे शब्दो मे, हानि-प्राप्तकर्ता इस योग्य नही (incapable) होने चाहिए कि वे लाभ-प्राप्तकर्ताओ को 'घूस' देकर इस बात के लिए राजी कर सकें कि लाभ-प्राप्तकर्ता प्रस्तावित (proposed) परिवर्तन को स्वीकार न करें।]

इस प्रकार से, साइटोवोस्की के अनुसार, यदि कोई परिवर्तन या चलन इस दोहरी कसौटी पर सही उतरता है, तब और केवल तब ही वह परिवर्तन या चलन एक सुधार होगा।

6. कालडोर-हिक्स-साइटोवोस्की की कल्याण कसौटी (अर्थात् क्षतिपूर्ति सिद्धान्त) की आलोचना (Criticism of Kaldor-Hicks-Scitovosky Criterion, that is, Compensation Principle)

मुख्य आलोचनाए निम्नलिखित हैं—

(i) वितरण की समस्या की उपेक्षा करते हुए, **कालडोर-हिक्स कसौटी ने वास्तव में कोई नयी कल्याण कसौटी प्रस्तुत नहीं की है बल्कि केवल 'धन में वृद्धि'** (increase in wealth) **की परिभाषा दी है।** कालडोर के निम्न शब्दो से केवल 'धन मे वृद्धि' के विचार या परिभाषा का ही आभास होता है—"जब धन का उत्पादन बढता है, तो एक ऐसा आय का वितरण मालूम किया जा सकता है जो कि कुछ व्यक्तियों की स्थिति मे सुधार करता है बिना किसी अन्य को हानि पहुंचाए।" इस प्रकार का आय वितरण केवल एक काल्पनिक (hypothetical) बात है जो कि कालडोर 'सम्भावित क्षतिपूर्ति' (potential compensation) के द्वारा प्राप्त करते हैं; दूसरे शब्दों में, कालडोर की कसौटी एक जांच-सिद्धान्त (test) नही है बल्कि यह 'क्षतिपूर्ति के शब्दों में' वास्तव मे 'आर्थिक कुशलता' (economic efficiency) की केवल एक परिभाषा है।[12]

(ii) **कालडोर-हिक्स कसौटी उत्पादन तथा वितरण को अलग करने का प्रयत्न करती है और वैकल्पिक नीतियों का मूल्यांकन केवल उत्पादन या उत्पादन-कुशलता के आधार पर करती है जो कि उचित नहीं है।** वास्तव मे यह आलोचना एक तरह से पहली आलोचना का विस्तार (extension) है। दूसरे शब्दो मे, यह कसौटी उत्पादन के स्तर में परिवर्तनो के परिणामस्वरूप कल्याण मे सम्भावित परिवर्तनों को मापती है और समाज मे किन्ही भी दो स्थितियो मे कुल उत्पादन की तुलना करती है। वास्तविक जगत में व्यक्तियो की रुचियो तथा पसन्दो मे अन्तर होता है और उनका कल्याण

---

[12] "When the production of wealth goes up, some income distribution could be found which makes some people better off and no one worse off than before." Such income distribution is simply a hypothetical one which Kaldor does through potential compensation; in other words, Kaldor's criterion is not a test but simply a definition of 'economic efficiency' in terms of compensation.

उत्पादन तथा वितरण दोनों पर निर्भर करता है। अतः

"हम यह विश्वास नहीं करते कि धन, कल्याण, कुशलता या वास्तविक सामाजिक आय में वृद्धि को एक ऐसी परिभाषा, जो कि धन के वितरण को छोड़ देती है, स्वीकार की जा सकती है।" "कुल उत्पादन का, बिना वितरण के, कोई अर्थ नही है।"[13]

(iii) **कालडोर-हिक्स कसौटी की कोई सार्वभौमिक सत्यता (universal validity) नहीं है।** कालडोर के अनुसार अर्थशास्त्रियों को अपने सुझावो को केवल उत्पादन या आर्थिक कुशलता पर ही आधारित करना चाहिए क्योंकि वे वितरण की समस्याओ के लिए दूसरो, अर्थात् राजनीतिज्ञों तथा सरकार पर निर्भर कर सकते है। परन्तु ऐसी स्थिति समाजवादी अर्थव्यवस्था मे ही सम्भव है जहा पर सभी प्रकार के आर्थिक मामलों का नियमन व नियन्त्रण सरकार द्वारा किया जाता है। परन्तु एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे, एक ओर उत्पादन या कुशलता पर और दूसरी ओर आय-वितरण पर किसी आर्थिक नीति के प्रभावो को अलग नही किया जा सकता है क्योकि ऐसी अर्थव्यवस्था मे क्षतिपूर्ति भुगतान राजनीतिक दृष्टि से सम्भव नही है। इस प्रकार कालडोर की कसौटी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के लिए लागू नहीं होती। दूसरे शब्दो मे, इस कसौटी की सार्वभौमिक सत्यता नही है।

(iv) **कालडोर-हिक्स-साइटोवोस्की की कसौटी (a) इस छिपी हुई मान्यता पर आधारित है कि सभी व्यक्तियो (धनी व निर्धन) के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होती है; तथा (b) यह कसौटी एक छिपे हुए और अमान्य नैतिक निर्णय (hidden and unacceptable value judgement) पर आधारित है।**

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के अनुसार वे परिवर्तन वांछनीय हैं जो कि लाभ-प्राप्तकर्ताओं को इस योग्य बनाते हैं कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओ की क्षतिपूर्ति कर सकें; यह बात स्वयं मे एक नैतिक निर्णय है और इसका अभिप्राय है कि इस तरह के परिवर्तन अच्छे परिवर्तन होते हैं। [दूसरे शब्दो मे, "सम्भावित द्राव्यिक क्षतिपूर्ति वाली कसौटी का प्रयोग करके ये अर्थशास्त्री छिपे रूप मे द्राव्यिक आधार पर एक अन्त-वैयक्तिक तुलना शामिल कर लेते है।"[14]]

एक परिवर्तन समाज के लिए केवल इसलिए वांछनीय है कि वह कुछ लाभ-प्राप्तकर्ताओ को इस योग्य बना देता है कि वे हानि-प्राप्तकर्ताओं की क्षतिपूर्ति कर सकें; इस बात के पीछे जो नैतिक निर्णय छिपा हुआ है वह सबको माननीय (acceptable) नही हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक परिवर्तन व्यक्ति A के लिए 300 रु. का लाभ उत्पन्न करता है और व्यक्ति B के लिए 100 रु. का नुकसान उत्पन्न करता है तो हम इस निष्कर्ष पर एकदम नही पहुंच सकते कि समाज के वास्तविक कल्याण (net welfare) मे वृद्धि हो जायेगी। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हानि-प्राप्तकर्ता तथा लाभ-प्राप्तकर्ता कौन हैं। यदि B एक निर्धन व्यक्ति है तो उसके लिए 100 रु. की हानि बहुत होगी क्योकि निर्धन व्यक्ति के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बहुत ऊंची होती है, और यदि व्यक्ति A एक धनी व्यक्ति है तो उसके लिए 300 रु. का लाभ बहुत मामूली होगा या कोई महत्त्व नही रखेगा क्योकि धनी व्यक्तियो के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बहुत कम या नीची होती है। अतः ऐसी परिस्थिति मे इस परिवर्तन को कालडोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर वांछनीय नही कहा जा सकता है।

---

[13] "We do not believe that any definition of increase of wealth, welfare, efficiency, or real social income which excludes income distribution is acceptable." Total output has no meaning without distribution.

[14] "By using a criterion involving potential money compensation, they set up a concealed interpersonal comparison on a money basis."

उपर्युक्त बात को हम दूसरे शब्दो मे इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं—**कालडोर हिक्स कसौटी की एक बड़ी कमजोरी है कि यह क्षतिपूर्ति के वास्तविक भुगतान- (actual payment) को नहीं कहता है।** ऊपर हम देख चुके है कि 'सम्भावित क्षतिपूर्ति' (potential compensation) की दशा आवश्यक रूप से सामाजिक कल्याण में वृद्धि को नहीं बताती है। यदि वास्तविक भुगतान दिये जाते हैं तो कुछ कठिनाइया उपस्थित होती है, जैसे (a) व्यवहार मे यह निश्चित करना बहुत कठिन है कि किन लोगों को हानि हुई है और उनको कितना भुगतान दिया जाये। (b) वास्तव में भुगतान देने से धन के वितरण में परिवर्तन होगा और ऐसी स्थिति में उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं करनी पड़ेंगी जिनकी यह कसौटी उपेक्षा करती है। (c) वास्तविक भुगतान मे प्रशासन सम्बन्धी अनेक कठिनाइया आ सकती है।

(v) **क्षतिपूर्ति सिद्धान्त 'बाहरी प्रभावों' (external effects) की उपेक्षा (ignore) करता है।** यह सिद्धान्त यह मान लेता है कि एक व्यक्ति का कल्याण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करता है और दूसरे व्यक्तियों की आर्थिक स्थितियो से अप्रभावित या स्वतन्त्र (independent) रहता है। परन्तु ऐसा मान लेना उचित नहीं है। एक व्यक्ति के कल्याण मे वृद्धि दूसरे व्यक्तियों के कल्याण पर बुरे (adverse) 'बाहरी प्रभाव' डाल सकता है जबकि इन व्यक्तियो की आर्थिक स्थितियों मे कोई भी परिवर्तन नही हुआ हो।

(vi) **साइटोवोस्की की दुहरी कसौटी भी पर्याप्त नहीं है।** इसका प्रयोग केवल उस दशा मे विरोधाभास (contradiction) को दूर (avoid) कर सकता है जबकि केवल दो स्थितियों के बीच तुलना की जाती है; परन्तु इसका प्रयोग नही किया जा सकता है जबकि दो से अधिक स्थितियो मे से किसी एक का मूल्यांकन व चुनाव करना पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' या 'नया कल्याणवादी अर्थशास्त्र' एक ऐसी कल्याण कसौटी नही दे सका जो कि सार्वभौमिक रूप से सत्य (universally valid) हो; तथा इसके निर्माता नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र कल्याण कसौटी (a value-free welfare criterion) देने में असफल रहे।

सामाजिक कल्याण फलन
(THE SOCIAL WELFARE FUNCTION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

'नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र' अथवा 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' के निर्माताओ (अर्थात्, कालडोर, हिक्स तथा साइटोवोस्की) ने 'सम्भावित क्षतिपूर्ति' (potential compensation) के शब्दो मे एक कल्याण कसौटी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जो कि नैतिक निर्णयो से स्वतंत्र (free) हो, परन्तु वे असफल रहे।

अत: बर्गसन, सेम्युलसन तथा अन्य अर्थशास्त्रियो द्वारा कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण (reconstruct) करने के प्रयत्न किये गये। इन अर्थशास्त्रियो द्वारा जो कल्याण कसौटी प्रस्तुत की गयी उसे 'सामाजिक कल्याण फलन' (Social Welfare Function) कहा जाता है। इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार कल्याणवादी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शात्मक अध्ययन (normative study) है और केवल कुछ नैतिक (ethical) आदर्शों या मान्यताओं के सन्दर्भ मे ही अर्थशास्त्री अर्थपूर्ण तथा वस्तुगत कल्याण कथनों या दशाओ (meaningful and objective welfare propositions) को प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरे शब्दो मे, इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार नैतिक निर्णयो को स्पष्ट रूप से (बाहर से) शामिल (introduce) कर लेना चाहिए तभी कल्याणवादी अर्थशास्त्र अर्थपूर्ण नीति-

नुस्ख (meaningful policy prescriptions) या कल्याण दशाएं (welfare propositions) प्रस्तुत कर सकता है और साथ ही साथ एक 'वैज्ञानिक आदर्शात्मक अध्ययन' (scientific normative study) बना रह सकता है।

2. मान्यताएं (Assumptions)

सामाजिक कल्याण फलन निम्न मुख्य मान्यताओं पर आधारित है :

(i) यह उपयोगिता के क्रमवाचक (ordinal) विचार को मानता है; दूसरे शब्दो में, यह 'व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करने वाले तत्त्वो के संयोगो के क्रमवाचक व्यवस्था' (Ordinal ranking of combinations of factors which affect individual welfare) पर आधारित है।

(ii) यह मान लिया जाता है कि सामाजिक कल्याण व्यक्तियो के कल्याण पर निर्भर करता है और व्यक्ति का कल्याण निर्भर करता है न केवल प्रत्येक व्यक्ति की आय और धन पर बल्कि समाज के अन्य सदस्यो में कल्याण या धन के वितरण पर भी।

(iii) यह मान लेता है कि नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से शामिल कर लेना चाहिए तथा यह उपयोगिता के अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओ की आज्ञा देता है।

(iv) यह मान लेता है कि बाहरी बचतों तथा अबचतो (external economies and diseconomies) के प्रभाव मौजूद होते हैं।

3. सामाजिक कल्याण फलन की परिभाषा तथा विशेषताएं (Definition and characteristics of the Social Welfare Function)

सामाजिक कल्याण फलन उन सब तत्वों या चरों (factors or variables) को बताता है जिन पर कि समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है।

समाज में व्यक्तियो का कल्याण निर्भर करता है समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा वस्तुओ की मात्राओ के उपभोग पर तथा प्रत्येक सदस्य द्वारा की गयी सेवाओ पर; एक व्यक्ति का कल्याण केवल स्वय के कल्याण पर ही निर्भर नही करता बल्कि उसके दृष्टि में समाज के अन्य सदस्यों मे कल्याण के वितरण पर भी निर्भर करता है। इस प्रकार से 'सामाजिक कल्याण फलन' उन सब तत्त्वो या चरो को बताता है जिन पर कि समाज के सभी व्यक्तियो का कल्याण निर्भर करता है।

यह समाज के कल्याण का एक 'क्रमवाचक सूचक' (ordinal indicator) है। यह स्पष्ट नैतिक निर्णयों के एक समूह (set) को प्रदान करता है जिसके आधार पर व्यक्तियों की उपयोगिताओं (या कल्याणों) को जोड़ा जा सकता है ताकि सामाजिक कल्याण फलन प्राप्त किया जा सके। इस तरह सामाजिक कल्याण फलन एक प्रकार का 'सामूहिक उपयोगिता फलन' (collective utility function है।) इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$W = f(U_1, U_2, U_3, \ldots\ldots U_n)$$

जबकि W सामाजिक कल्याण फलन है, $U_1, U_2, U_3 \ldots U_n$ समाज मे 1 से लेकर n व्यक्तियो के उपयोगिता-स्तरों (levels of utilities) अर्थात् 'क्रमवाचक उपयोगिताओं' (ordinal utilities) को बताते है, और f फलन (function) के लिए प्रयोग किया जाने वाला चिह्न (symbol) है।

अब हम संक्षेप मे सामाजिक कल्याण फलन को निम्न प्रकार से दो भागो में परिभाषित कर सकते हैं :

1. **"सामाजिक कल्याण फलन प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन समझा जाता है; और प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण निर्भर करता है न केवल अपने स्वयं के कल्याण पर बल्कि उसकी दृष्टि में समाज के सभी सदस्यों में कल्याण के वितरण पर भी।"**[14]

[14] "The social welfare function can be thought of as a function of each individual's welfare (Contd.

2. सामाजिक कल्याण फलन का रूप निर्भर करता है नैतिक निर्णयों पर (वितरण के सम्बन्ध में नैतिक निर्णयों को शामिल करके) जो कि सामान्यतया अर्थशास्त्र के बाहर से दिये जाते हैं और जिनके आधार पर आर्थिक नीतियों की सामाजिक वांछनीयता का मूल्यांकन किया जाता है।[16]

अथवा

"सामाजिक कल्याण फलन स्पष्ट नैतिक निर्णयों के एक समूह (set) को निर्मित करता है जिसकी सहायता से विश्लेषणकर्ता (analyst) स्थिति का मूल्यांकन करता है। वितरण के सम्बन्ध में न्याय व अच्छाई के नैतिक निर्णय स्वयं एक अर्थशास्त्री के हो सकते हैं अथवा विधान मण्डल (legislature), किसी अन्य सरकारी सत्ता या किसी भी अन्य व्यक्ति या समूह द्वारा उनका निर्धारण किया जा सकता है।"[17] सामान्यतया नैतिक निर्णयों को अर्थशास्त्र के बाहर से दिया हुआ स्वीकार कर लिया जाता है।

अब हम सामाजिक कल्याण फलन की मुख्य विशेषताओं (main characteristics) क सारांश को नीचे देते है·

(i) सामाजिक कल्याण फलन स्पष्टतया नैतिक निर्णयों को शामिल करता है और उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओं को स्वीकार करता है। यह उपयोगिता के क्रमवाचक विचार (ordinal concept of utility) का प्रयोग करता है।

सामाजिक कल्याण फलन के निर्माण के लिए अर्थशास्त्रियों द्वारा नैतिक निर्णयों के किसी भी समूह (any set of value judgements) का प्रयोग किया जा सकता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि यह नैतिक निर्णयों के एक अकेले (single), या एक अनूठे (unique) या एक विशिष्ट (a particular) समूह का प्रयोग करता है।

(ii) सामाजिक कल्याण फलन **'स्वभाव में अत्यधिक सामान्य'** (highly general in character) इस अर्थ में है कि प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण वस्तुओं व सेवाओं के केवल अपने स्वयं के उपभोग पर ही नहीं बल्कि अन्य व्यक्तियों के उपभोग पर भी निर्भर करता है, समाज के सदस्यों में आय के वितरण के सम्बन्ध में उसके अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, और यह व्यक्तियों के कल्याण के अन्य सभी सम्भव निर्धारक-तत्त्वों (determinants) को शामिल करता है।[18]

4. रेखीय प्रस्तुतीकरण (Graphical Representation)

सामाजिक कल्याण फलन को हम एक चित्र द्वारा बता सकते हैं। हम एक तटस्थता मानचित्र (indifference map) का निर्माण कर सकते हैं जो कि समाज के सदस्यों को प्राप्त होने वाली

---

which in turn depends both on his personal well-being and on his appraisal of welfare among all members of the community"

[16] The form of the social welfare function depends upon the value judgements (including judgements about distribution) generally given from outside economics on the basis of which the social desirability of economic policies are to be judged.

[17] The social welfare function formulates "a set of explicit value judgements which enable the analyst to evaluate the situation These judgements as to what constitutes justice and virtue in distribution may be those of the economist himself, or those set up by the legislature, by some other governmental authority, or by some other unspecified person or group"

[18] In the words of Bergson, the social welfare function "is understood to depend on all the variables that might be considered as affecting welfare · the amounts of each and every kind of good consumed by and service performed by each and every household, the amount of each and every kind of capital investment undertaken, and so on."

उपयोगिताओं के विभिन्न संयोगों को बताता है। (सरलता के लिए हम मान लेते है कि समाज मे दो व्यक्ति A तथा B है।) तटस्थता मानचित्र मे अनेक तटस्थता वक्र रेखाएं होती है, प्रत्येक रेखा सामाजिक कल्याण के एक स्तर को बनाती है; और इसलिए प्रत्येक तटस्थता वक्र रेखा को 'सामाजिक कल्याण रेखा' ('Social Welfare Contour' or 'Social Welfare Curve') कहा जाता है। तटस्थता मानचित्र मे वाछनीयता (desirability) के सम्बन्ध में समाज के नैतिक निर्णय शामिल होते है। इस प्रकार के तटस्थता वक्र रेखा के मानचित्र को 'सामाजिक कल्याण फलन' (Social Welfare Function) कहा जाता है, इसको चित्र 4 मे दिखाया गया है, W_1, W_2 W_3, W_4 विभिन्न तटस्थता वक्र रेखाएं अथवा सामाजिक कल्याण रेखाएं है। इस प्रकार का तटस्थता मानचित्र अर्थशास्त्रियों को इस बात के मूल्यांकन मे सहायक होता है कि कोई एक नीति-परिवर्तन (policy change) सुधार है या नही। उदाहरणार्थ, चित्र 4 मे बिन्दु R से E को चलन निश्चित रूप से कल्याण मे एक

चित्र 4

सुधार (improvement) है क्योंकि बिन्दु E एक ऊंची सामाजिक कल्याण रेखा W_2 पर है। चित्र में 'उपयोगिता सीमा-रेखा' ('Utility Frontier' or Grand Utility Frontier) GC को भी दिखाया गया है; यह उपयोगिता-संयोगों के उन स्तरो को बताती है जो कि भौतिक रूप से प्राप्त किये जा सकते है (it shows the levels of utility combinations that are physically attainable)। सामाजिक कल्याण रेखा W_1 सामाजिक उपयोगिता या सामाजिक कल्याण के एक स्तर को बताती है, इसी प्रकार W_2 रेखा सामाजिक कल्याण के एक-दूसरे स्तर को बताती है, परन्तु W_2 रेखा सामाजिक कल्याण के एक ऊचे स्तर को बताती है अपेक्षाकृत W_1 रेखा के; इसी प्रकार हम W_3, W_4 *रेखाओं की व्याख्या कर सकते हैं। अब हम 'बिन्दु E से बिन्दु S को चलन' पर* विचार करते है, यह चलन भी एक सुधार है क्योंकि बिन्दु S ऊची सामाजिक कल्याण रेखा W_3 पर है; यद्यपि बिन्दु S grand utility curve GC के नीचे है और इस दृष्टि से यह 'कम कुशल' या 'अकुशल' (less efficient or inefficient) है परन्तु ऊची रेखा W_3 पर होने के कारण बिन्दु S अधिक सामाजिक कल्याण (more social welfare content) रखता है अपेक्षाकृत बिन्दु E के जो कि नीची रेखा W_2 पर है। सामाजिक कल्याण मानचित्र (social welfare map) की सहायता से हम 'सर्वोत्तम अनुकूलतम' ('best optimum') अथवा 'सर्वोत्तम प्राप्य कल्याण-बिन्दु' (best attainable *bliss point*) प्राप्त कर सकते हैं, चित्र 4 में बिन्दु T 'कल्याण-बिन्दु' (bliss point) है, इस बिन्दु T पर सामाजिक कल्याण रेखा W_4 स्पर्श करती है grand utility curve GC को।[19]
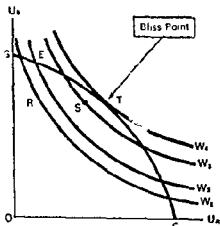
5. सामाजिक कल्याण फलन की आलोचना (Criticism of Social Welfare Function)

प्रो. बोमोल (Boumol) के शब्दो मे, *सामाजिक कल्याण फलन 'एक अत्यन्त उपयोगी सन्दर्भ* का ढाचा' (a highly useful frame of reference) प्रदान करता है; इसको एक 'महान

[19] For '*best obtainable bliss point*' we also use the name of '*constrained bliss point*', the constraints being the given technology and the fixed quantities of inputs.

सैद्धान्तिक तरीका' (a 'brilliant theoretical device') कहा गया है।

परन्तु सामाजिक कल्याण फलन के भी कुछ दोष या कमजोरियां बतायी जाती है। एक मुख्य **आलोचना यह की जाती है कि व्यवहार में एक सामाजिक कल्याण फलन को बनाना बहुत कठिन है और इसलिए इसका बहुत कम व्यावहारिक महत्त्व रह जाता है।** दूसरे शब्दों में :

> "इच्छित कल्याण निर्णयों को एकत्रित करने के लिए सामाजिक कल्याण फलन एक साजसज्जा (kit) तथा निर्देशों (instructions) के एक समूह से लैस या तैयार होकर नही आता है;"[19] अर्थात् सामाजिक कल्याण फलन का बनाना अत्यन्त कठिन है।

एक सामाजिक कल्याण फलन के बनाने की कठिनाई मुख्यतया एक लोकतांत्रिक व्यवस्था (democratic system) **में होती है।** लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति या 'सदन मे व्यक्तियों के प्रतिनिधि' वैकल्पिक नीतियों के सम्बन्ध मे अपनी पसन्दों या चुनावों को एक व्यवस्था (order) मे रखते हैं और उनकी पसन्दों या चुनावों को घटाकर 'एक अकेले सामाजिक क्रम' ('a single social ordering') में कर लिया जाता है। परन्तु प्रो. ऐरो ने (Arrow in his book *Social Choice and Individual Values*) मे बताया है कि **'लोकतांत्रिक वोटिंग व्यवस्था'** (democrating voting system) **अथवा 'बहुमत का नियम'** (majority rule) **"सभी प्राप्य विकल्पों का एक संगतपूर्ण तथा गैर-विरोधात्मक सामाजिक क्रम"** (a consistent and non-contradictory social ordering of all available alternatives) **प्रदान नहीं करता, जबकि व्यक्तियों को दो से अधिक विकल्पों के बीच से चुनाव करना होता है।** इसको निम्न उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है—

व्यक्ति A पसन्द करता है X को Y के प्रति, तथा Y को Z के प्रति, इसलिए X को Z के प्रति
व्यक्ति B पसन्द करता है Y को Z के प्रति, तथा Z को X के प्रति, इसलिए Y को X के प्रति
व्यक्ति C पसन्द करता है Z को X के प्रति, तथा X को Y के प्रति, इसलिए Z को Y के प्रति

उपर्युक्त से हमें निम्नलिखित दो परिणाम (या सामाजिक क्रम) प्राप्त होते हैं—

1. बहुमत (अर्थात् समाज) पसन्द करता है X को Y के प्रति और Y को Z के प्रति, और **इसलिए पसन्द करता है X को Z के प्रति।**
2. बहुमत (अर्थात् समाज) **Z को X के प्रति भी पसन्द करता है।**

स्पष्ट है कि 'बहुमत का नियम' (majority rule) विरोधात्मक तथा असगतपूर्ण (contradictory and inconsistent) परिणाम प्रदान करता है।

उपर्युक्त आलोचना के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुचते हैं :

प्रो. ऐरो ने इस रीति की सीमाएं बतायी हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि उन्होंने सामाजिक कल्याण फलन को बिलकुल त्याग दिया। ऐरो की कडी आलोचना इस सत्य को सामने लाती है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था सदैव सगतपूर्ण तथा गैर-विरोधात्मक परिणामो को नही देती है। अत: इस क्षेत्र में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है ताकि उन दशाओं को मालूम किया जा सके जिनके अन्तर्गत एक गैर-विरोधात्मक तथा अर्थपूर्ण सामाजिक कल्याण का निर्माण किया जा सके। निस्सन्देह अर्थशास्त्री इस दिशा मे कार्य कर रहे हैं।

---

[19] The social welfare function "does not come equipped with a kit and a set of instructions for collecting the welfare judgements which it requires." In other words, it is difficult to construct a social welfare function.

प्रश्न

1. नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र की एक आलोचनात्मक विवेचना दीजिए।
   Give a critical evaluation of New Welfare Economics.

   अथवा

   'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त अपने उद्देश्य मे असफल रहा है।' विवेचना कीजिए।
   'The compensation principle has failed in its objectives.' Discuss.
2. "सामाजिक कल्याण फलन प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन समझा जाता है; और प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण निर्भर करता है न केवल अपने स्वयं के कल्याण पर बल्कि उसकी दृष्टि में समाज के सभी सदस्यों मे कल्याण के वितरण पर भी।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   "The Social Welfare Function can be thought of as a function of each individual's welfare, which in turn depends both on his personal well-being and on his appraisal of welfare among all members of the community." Discuss critically.
3. पुराने कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र के बीच अन्तर बताइए; तथा नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र की सीमाएं बताइए।
   Distinguish between Old Welfare Economics and New Welfare Economics; and discuss the limitations of New Welfare Economics.
4. "पैरिटो की कल्याणवादी कसौटी केवल स्पष्ट स्थितियों (unambiguous cases) में ही लागू होती है।" विवेचना कीजिए।
   "Pareto's criterion of welfare applies only in unambiguous cases." Discuss.
5. पीगू के कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा पैरिटो के कल्याणवादी अर्थशास्त्र के बीच अन्तर की एक आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   Give a critical evaluation of the distinction between Pigouvian Welfare Economics and *Pareto's Welfare Economics.*

पेरिटियन कल्याण-अनुकूलतम की दशाएं

(Condition of Paretian Welfare Optimum)

1. प्राक्कथन
(INTRODUCTION)

अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री कल्याणवादी अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण की कठिनाई और जटिलता को समझते हैं तथा पेरिटो द्वारा प्रस्तुत की गयी सीमा (limit) के आगे जाने की कठिनाई को मान्यता देते हैं। अत अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियो, जैसे Hicks, Reder, Lerner, Lange, Hotelling, इत्यादि ने 'पेरिटियन कल्याण-अनुकूलतम' को प्राप्त करने के लिए दशाए (उत्पादन तथा विनिमय से सम्बन्धित) बनायी हैं, ये दशाएं सीमान्त समानताओं (marginal equalities) के शब्दों में दी गयी हैं इसलिए इनको 'पेरिटियन कल्याण की सीमान्त दशाएं' (marginal conditions of Paretian Optimum) भी कहा जाता है। इन दशाओं को 'सीमान्त स्थैतिक दशाएं' (marginal static conditions) अथवा 'प्रथम क्रम की दशाए' (first order conditions) भी कहा जाता है। पेरिटियन सामाजिक कल्याण अनुकूलतम को प्राप्त करने के लिए ये दशाए आवश्यक (necessary) हैं परन्तु पर्याप्त (sufficient) नही हैं, हिक्स ने 'द्वितीय क्रम की दशाएं' (second order conditions) प्रस्तुत की हैं जिनका पूरा होना पेरिटियन कल्याण-अनुकूलतम को प्राप्त करने के लिए जरूरी है।

2. मान्यताएं
(ASSUMPTIONS)

पेरिटियन अनुकूलतम की दशाओ को बताने से पहले यह आवश्यक है कि उन मान्यताओ को जान लिया जाये, जो कि इनके पीछे हैं। मुख्य मान्यताए निम्नलिखित हैं—

1. प्रत्येक व्यक्ति के लिए क्रमवाचक उपयोगिता फलन (ordinal utility functions) दिये हुए हैं, अर्थात् किसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यक्तियों की रुचियो तथा पसन्दों मे कोई परिवर्तन नही होता है; प्रत्येक व्यक्ति के पास प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक साधन की एक निश्चित मात्राएं होती हैं।
2. प्रत्येक उत्पादक या फर्म का 'उत्पादन फलन' (production function) दिया हुआ होता है, अर्थात् टेकनीकल ज्ञान दिया हुआ होता है और विचाराधीन समय के अन्तर्गत उसमे कोई परिवर्तन नहीं होता है।
3. प्रत्येक व्यक्ति अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है।

4. प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने तथा अपनी उत्पादन-लागत को न्यूनतम करने का प्रयत्न करती है।
5. सभी वस्तुएं विभाज्य (divisible) हैं; सब व्यक्ति प्रत्येक वस्तु की कुछ मात्रा खरीदते हैं।
6. उत्पत्ति के साधन पूर्णतया गतिशील (perfectly mobile) हैं और प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में सभी साधनों का प्रयोग किया जाता है।

3. पेरिटियन अनुकूलतम की दशाएं
(CONDITIONS OF PARETIAN OPTIMUM)

अब हम पेरिटियन अनुकूलतम की दशाओं की विवेचना करते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये सब दशाएं उत्पादन तथा विनिमय के क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। एक पेरिटियन सामाजिक अनुकूलतम निम्न शब्दों में व्यक्त किया जाता है :

> वितरण के किसी एक दिये रूप के सन्दर्भ में, एक पेरिटियन अनुकूलतम वह स्थिति है जिससे हटकर उत्पादन तथा वितरण में कोई भी पुनर्संगठन किसी भी व्यक्ति की हालत में सुधार नहीं कर सकता बिना दूसरों को हानि पहुंचाए।[1]

इस सामाजिक अनुकूलतम को प्राप्त करने के लिए 'प्रथम-क्रम की दशाएं' (first-order conditions) अथवा 'सीमान्त दशाएं' (marginal conditions) नीचे दी गयी हैं :

1. उपभोक्ताओं के क्षेत्र में वस्तुओं के अनुकूलतम वितरण (या आवंटन) की दशा (Condition of the Optimum Allocation of Commodities in the consumers' sector)

वस्तुओं के अनुकूलतम वितरण की दशा इस प्रकार है : **किन्हीं दो व्यक्तियों के लिए किन्हीं दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होनी चाहिए।**[2] यदि दो व्यक्तियों A तथा B के पास दो वस्तुएं X तथा Y हैं, तो X की Y के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) वस्तु Y की वह मात्रा है जिसको कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के लिए घटाया जाता है, ताकि संतुष्टि (या कल्याण) का स्तर पहले के समान बना रहे। दूसरे शब्दों में MRS दो वस्तुओं की सीमान्त (क्रमवाचक) उपयोगिताओं [marginal (ordinal) utilities] का अनुपात है।

यदि दो व्यक्तियों के लिए दो वस्तुओं के बीच MRS समान नहीं है, तो व्यक्तियों के बीच वस्तुओं के ऐसे विनिमय (exchange) की सम्भावना बनी रहेगी जिससे कि दोनों व्यक्तियों, या कम से कम एक व्यक्ति, की संतुष्टि या कल्याण में वृद्धि हो सकेगी बिना दूसरे को हानि पहुंचाए। इस स्थिति की चित्र 1 में Edgeworth box द्वारा व्याख्या की गयी है

दो व्यक्ति A तथा B हैं जिनके पास दो वस्तुएं X तथा Y हैं। चित्र 1 में व्यक्ति A के लिए मूल बिन्दु (origin) O_A है और उसकी तटस्थता वक्र रेखाएं I_A, II_A तथा III_A हैं; व्यक्ति B के लिए मूल बिन्दु O^B है और उसकी तटस्थता वक्र रेखाएं 1_B, 2_B तथा 3_B हैं। 'पड़ी हुई अक्षें' (horizontal axes) वस्तु X की कुल मात्रा को बताती हैं, जबकि 'खड़ी हुई अक्षें' (vertical axes) वस्तु Y की कुल मात्रा को बताती हैं।

CD रेखा 'contact curve' है जो कि तटस्थता वक्र रेखाओं के दो समूहों (two sets) के स्पर्श-बिन्दुओं (points of tangency) से गुजरती है। E, F तथा G जैसे स्पर्श-बिन्दुओं पर दो व्यक्तियों की तटस्थता वक्र रेखाओं के ढाल (slope) समान होते हैं, और इसलिए ऐसे

---

[1] Given some form of distribution, a Paretian Optimum is that position from which no reorganization of production and exchange can make any person better off without harming others.

[2] The marginal rate of substitution between any two commodities should be the same for any two individuals.

स्पर्श-बिन्दुओं पर दो वस्तुओं के बीच दोनों व्यक्तियों के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) एक समान होगी। अतः contact curve पर प्रत्येक बिन्दु वस्तुओं के अनुकूलतम वितरण की दशा (condition) को पूरा करता है और एक अनुकूलतम स्थिति को बताता है।

चित्र 1
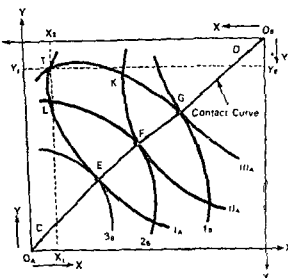
Contact curve से हटकर कोई भी बिन्दु अनुकूलतम बिन्दु नही है। उदाहरणार्थ, बिन्दु T पर दो तटस्थता रेखाओं I_A तथा I_B के ढाल बराबर नही हैं बल्कि भिन्न है, और इसलिए इस बिन्दु पर दोनों व्यक्तियों A तथा B के लिए MRS भिन्न है (समान नही)। बिन्दु T से बिन्दु G को चलन व्यक्ति A के कल्याण में वृद्धि करेगा क्योंकि अब A ऊंची तटस्थता वक्र रेखा III_A पर पहुंच जाता है, जबकि व्यक्ति B के कल्याण मे कोई हानि नही होती है क्योंकि B अपनी उसी तटस्थता वक्र रेखा 1_B पर रहता है। इसी प्रकार से बिन्दु T से बिन्दु E को चलन व्यक्ति B के कल्याण में वृद्धि कर देता है (क्योंकि B एक ऊंची तटस्थता रेखा 3_B पर पहुंच जाता है), जबकि व्यक्ति A के कल्याण में कोई कमी नही होती है (क्योंकि A अपनी उसी तटस्थता रेखा I_A पर रहता है)। बिन्दु T से बिन्दु F को चलन दोनों व्यक्तियों A तथा B के कल्याण मे वृद्धि करेगा क्योंकि अब वे दोनों ऊंची तटस्थता रे ाओं II_A तथा 2_B पर पहुंच जाते हैं। इस प्रकार से स्पष्ट है कि contact curve का प्रत्येक बिन्दु एक अनुकूलतम बिन्दु है और प्रत्येक बिन्दु पर दोनों व्यक्तियों के लिए MRS बराबर है क्योंकि तटस्थता वक्र रेखाओं के दोनों समूहों के ढाल (slopes) बराबर है।

परन्तु contact curve पर किसी भी दिशा (either direction) मे चलन दोनों व्यक्तियों की स्थिति में सुधार (अर्थात् दोनों के कल्याण मे वृद्धि) एक साथ नही कर सकता; ऐसा चलन एक व्यक्ति को लाभ पहुंचायेगा और दूसरे को हानि। परन्तु किसी भी गैर-अनुकूलतम बिन्दु (जैसे T) के सन्दर्भ में contact curve पर पेरिटियन अनुकूलतम बिन्दु होते हैं, किसी भी गैर-अनुकूलतम बिन्दु से contact curve के किसी भी अनुकूलतम बिन्दु को चलन समाज के कल्याण में वृद्धि को बताता है। परन्तु यह निर्धारित नही किया जा सकता कि contact curve पर अनुकूलतम बिन्दुओं मे से कौनसा बिन्दु 'वास्तविक अनुकूलतम बिन्दु' (real optimum point) है जो कि कल्याण की 'सर्वोत्तम स्थिति' को बताता है, अर्थात हम यह चुनाव नही कर सकते कि बिन्दु E, F या G मे से कौनसा बिन्दु सर्वोत्तम है। इस अनिर्धारणीयता (indeterminancy) को तभी दूर किया जा सकता है जबकि समाज की दृष्टि से कल्याण के वितरण की वाछनीयता (desirability) के सम्बन्ध मे कुछ नैतिक निर्णय शामिल (introduce) किये जायें और अन्त वैयक्तिक तुलनाए की जाये; परन्तु पेरिटियन कसौटी (Paretian criterion) नैतिक निर्णयों तथा अन्त.वैयक्तिक तुलनाओं की आज्ञा नही देती है।

2. साधनों के अनुकूलतम वितरण की दशा (Condition of Optimum Allocation of Factors)

विभिन्न प्रयोगों मे साधनों का वितरण 'अनुकूलतम तरीके' से होना चाहिए। साधनों के अनुकूलतम वितरण की दशा इस प्रकार से व्यक्त की जाती है—किसी एक वस्तु के उत्पादन के लिए किन्हीं

दो साधनों के बीच टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Technical Substitution, that is, RTS) **उन दो फर्मों के लिए एक समान होनी चाहिए जो उनको प्रयोग में लाती हैं।**[3]

यदि यह दशा पूरी नही होती है तो इस बात की सम्भावना रहती है कि साधनों को एक फर्म से दूसरी फर्म को हस्तांतरित करके कुल उत्पादन मे वृद्धि की जा सकेगी। इस बात का रेखागणितीय सबूत (geometrical proof) उसी प्रकार का होगा जैसा कि चित्र 1 में वस्तुओं के अनुकूलतम वितरण के सम्बन्ध मे है। एक सम-उत्पाद रेखा (Iso-product curve) का ढाल दो साधनों के बीच टेकनीकल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (RTS) को बताता है। चित्र 1 के Edgeworth box diagram मे हम यह मान लेते है कि A तथा B दो फर्म है (दो उपभोक्ता नही) जो कि दो वस्तुओं का उत्पादन कर रही है तथा तटस्थता वक्र रेखाओ को सम-उत्पाद रेखाएं मान लिया जाता है; सन्दूक (box) के पडे और खडे अक्ष (horizontal and vertical axes) दो साधनो X तथा Y की मात्राओ को दिखाते है। सम-उत्पाद रेखाओ के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाने वाली CD रेखा को 'production contact curve' कहा जाता है। किसी भी स्पर्श बिन्दु पर दो फर्मों की सम-उत्पाद रेखाओं के ढाल बराबर या समान होंगे, और इसलिए कोई भी स्पर्श बिन्दु दो साधनो के बीच एक समान RTS को बतायेगा। Production Contact Curve से हटकर कोई भी बिन्दु RTS की असमानता (inequality) को बतायेगा। इसलिए यदि फर्में Production contact curve CD के किसी भी बिन्दु पर है तो साधनो के अनुकूलतम वितरण की दशा पूरी हो जायेगी।

3. विशिष्टता क॰ अनुकूलतम मात्रा की दशा (Condition of Optimum Degree of Specializati‹n)

इस दशा का सम्बन्ध प्रत्येक फर्म द्वारा प्रत्येक वस्तु की अनुकूलतम मात्रा के निर्धारण से है। इस दशा को इन शब्दो मे व्यक्त किया जाता है—**किन्हीं दो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर** (Marginal Rate of Tranformation, that is, MRT) **किन्हीं भी उन दो फर्मों के लिए एक-समान होनी चाहिए जो कि दोनों वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।**[4]

किन्ही दो वस्तुओ के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) एक वस्तु की वह मात्रा है जिसका त्याग किया जायेगा दूसरी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए, जबकि प्रयोग किये जाने वाले साधनो को स्थिर रखा जाता है।[5] हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि 'उत्पाद रूपान्तरण रेखा' या 'उत्पादन सम्भव रेखा' (Product Transformation Curve or Production Possibility Curve) के किसी भी बिन्दु पर ढाल उस बिन्दु पर MRT को बताता है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि सामान्यतया एक 'उत्पाद रूपान्तरण रेखा' की शक्ल मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave to the origin) होती है।

यदि किन्ही दो वस्तुओ के बीच MRT उन दो फर्मों के लिए समान नही है जो कि उन वस्तुओ का उत्पादन करती हैं, तो इस बात की सम्भावना रहती है कि दोनो वस्तुओ का संयुक्त उत्पादन (joint output) बढ़ाया जा सके या किसी एक वस्तु का उत्पादन बढाया जा सके बिना किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन मे कमी किये। रेखा के शब्दों मे (in graphical terms) MRT की समानता का अर्थ है कि दोनो वस्तुओ की संयुक्त मात्रा को इस प्रकार से उत्पादित किया जाये कि दोनों फर्मों की उत्पाद-रूपान्तर रेखाओं के ढाल समान हो।

---

[3] The Marginal Rate of Technical Substitution (that is, RTS) between any two factors should be the same for any two firms using both factors to produce a particular commodity.

[4] The Marginal Rate of Transformation (MRT) between any two commodities should be the same for any two firms which produce both the commodities.

[5] In other words, this implies that MRT between two commodities is the ratio of their opportunity costs.

अब हम इस दशा को चित्रों की सहायता से स्पष्ट करते है । माना कि A तथा B दो फर्में हैं जो कि दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन करती हैं । चित्र 2 में LM रेखा फर्म A के लिए दो वस्तुओं
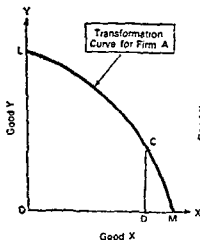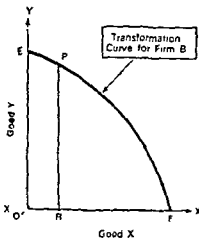
चित्र 2 चित्र 3

के बीच रूपान्तरण रेखा (transformation curve) को बताती है; तथा चित्र 3 में EF रेखा फर्म B के लिए रूपान्तरण रेखा है। प्रत्येक रूपान्तरण रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है जिसका अर्थ है कि एक वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों के लिए दूसरी वस्तु की अधिकाधिक मात्राओं (increasing amounts) का त्याग करना पड़ेगा ।

माना चित्र 2 में फर्म A वस्तु X की OD मात्रा तथा वस्तु Y की CD मात्रा का उत्पादन करती है; तथा चित्र 3 में फर्म B वस्तु X की O'R मात्रा और वस्तु Y की PR मात्रा का उत्पादन करती है । अत. दोनों फर्मों द्वारा वस्तु X की संयुक्त मात्रा का उत्पादन=OD+O'R; तथा वस्तु Y की संयुक्त मात्रा का उत्पादन=CD+PR । वस्तु X तथा Y की इन कुल मात्राओं (total amounts) को चित्र 4 में दिखाया गया है । चित्र 4 को प्राप्त करने के लिए चित्र3 को उलट कर चित्र 2 पर इस प्रकार से रखा जाता है कि बिन्दु C तथा P मिल (coincide कर) जायें, तथा अक्षों (axes) को समानान्तर रखा जाता है, फर्म A के लिए मूल बिन्दु O है तथा फर्म B के लिए मूल बिन्दु O' है । हम चित्र 4 में देख सकते हैं कि वस्तु X की कुल मात्रा=JS (अर्थात् JC+CS); तथा वस्तु Y की कुल मात्रा=DQ (अर्थात् DC+CQ) ।

चित्र 4 में रूपान्तरण रेखाएं LM तथा EF एक-दूसरे को बिन्दु C पर काटती हैं, इसलिए बिन्दु C पर उनके ढाल एक समान नहीं हैं बल्कि भिन्न हैं, और इसलिए दो वस्तुओं के बीच MRT समान नहीं होगी । दूसरे शब्दों में, पेरिटियन अर्थ में बिन्दु C एक गैर-अनुकूलतम बिन्दु (non-optimum point) है । अब हम फर्म B से सम्बन्धित अक्षों (axes) O'F तथा O'E को आगे सीधे हाथ की तरफ हटाते हैं ताकि EF एक नयी स्थिति E'F' प्राप्त कर लेती है और E'F' रेखा LM को बिन्दु T पर स्पर्श करती है । बिन्दु T पर विशिष्टता की अनुकूलतम मात्रा की दशा (condition of optimum degree of specialization) पूरी होती है क्योंकि इस बिन्दु पर दोनों रूपान्तरण रेखाओं के ढाल बराबर या समान हैं और इसलिए दोनो वस्तुओं के बीच MRT भी समान है । अब वस्तु X की कुल मात्रा=GH जो कि पहले की मात्रा JS से अधिक है; तथा अब वस्तु Y की कुल मात्रा=NK

चित्र 4

जो कि पहली मात्रा DQ से अधिक है। अतः बिन्दु T पर समाज का कल्याण बढ़ जाता है क्योंकि दोनों वस्तुओं X तथा Y की मात्राएं बढ़ जाती हैं।

परन्तु स्पर्श बिन्दु (tangency point) T कोई एक अकेला या अनूठा बिन्दु (single or unique point) नहीं है; यह उन अनेक बिन्दुओं में से एक है जिन पर रूपान्तरण रेखाएं एक-दूसरे को स्पर्श करती हैं; यह बिन्दुकीय अक्षों (dotted axes) के मूल बिन्दु (origin) O" की स्थिति पर निर्भर करेगा। मूल बिन्दु O" की सभी सम्भव स्थितियां एक वक्र-रेखा UV का निर्माण करती हैं जिसको कि 'अनुकूलतम रास्ता' (*optimum locus*) कहा जाता है (और यह Edgeworth box के contact curve की भांति होता है)। यदि मूल बिन्दु O" 'अनुकूलतम रास्ते' के किसी भी बिन्दु पर रखा जाता है तो रूपान्तर रेखा EF, LM रेखा को किसी एक बिन्दु पर स्पर्श करेगी; 'अनुकूलतम रास्ते' की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यदि मूल बिन्दु O" को UV रेखा के बिन्दु V पर रखा जाता है तो वस्तु X की कुल मात्रा में वृद्धि होगी, वस्तु Y की मात्रा मे बिना किसी कमी के। इसी प्रकार, यदि मूल बिन्दु O" को UV-रेखा के बिन्दु U पर रखा जाता है, तो वस्तु Y की कुल मात्रा मे वृद्धि होगी, वस्तु X की मात्रा मे बिना किसी कमी के। यदि मूल बिन्दु O" को U तथा V के बीच मे कहीं रख दिया जाता है तो दोनों वस्तुओं X तथा Y की मात्राओं में वृद्धि होगी। परन्तु UV-रेखा का बिन्दु U या बिन्दु V से आगे विस्तार (extension) करने से अनेक अनुकूलतम बिन्दु प्राप्त होंगे जो कि एक वस्तु की कुल मात्रा में वृद्धि करेंगे और दूसरी वस्तु की मात्रा में कमी करेंगे। अतः, जब तक बिन्दु O" 'अनुकूलतम रास्ते' के भाग (segment) UV पर रहता है, तब तक MRS के बराबर होने की पेरिटियन दशा पूरी होगी। परन्तु इस बात को निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि UV भाग पर किस बिन्दु या स्थिति को चुना जायेगा क्योंकि पेरिटियन कसौटी नैतिक निर्णयों और अन्तःवैयक्तिक तुलनाओं की आज्ञा नहीं देती है।
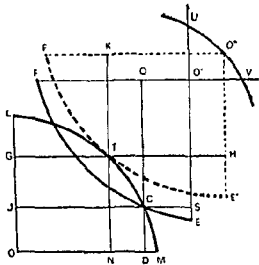
4. अनुकूलतम साधन-वस्तु के सम्बन्ध में दशा, अर्थात् साधन के अनुकूलतम प्रयोग की दशा (Condition of Optimum Factor-Product Relationship, that is, Condition of Optimum Utilization of Factor)

इस दशा को निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—**किसी साधन तथा किसी वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर उन दो फर्मों के लिए समान होनी चाहिए जो कि उस साधन का प्रयोग करती हैं तथा उस वस्तु का उत्पादन करती हैं।**[6]

इस दशा का अर्थ है कि एक विशेष वस्तु के उत्पादन के लिए एक साधन की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) दोनों फर्मों के लिए समान होनी चाहिए; यदि ऐसा नहीं है तो कम उत्पादक प्रयोग से साधन की कुछ मात्रा हटाकर और उसको अधिक उत्पादक प्रयोग मे लगाकर कुल उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।

[6] The marginal rate of transformation between any factor and any product should be the same for any two firms using the factor and the producing product.

हम इस दशा को चित्र 5 की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र मे फर्म A के लिए मूल बिन्दु O है, तथा फर्म B के लिए मूल बिन्दु O' है। फर्म A के लिए रूपान्तरण रेखा OA है, तथा फर्म B के लिए रूपान्तरण रेखा O'B है। दोनों फर्मों के लिए साधन की प्राप्य मात्रा को पड़ी अक्षो (horizontal axes) पर तथा वस्तु की मात्रा को खड़ी अक्षों (vertical axes) पर दिखाया गया है। रूपान्तरण रेखाएं कुल उत्पादकता रेखाएं (total productivity curves) हैं; इस प्रकार की रेखा का ढाल एक साधन को वस्तु में बदलने या रूपान्तरण करने की दर को मापता है। ये रेखाएं चढती हुई (rising) हैं जो कि इस बात को बताती हैं कि साधन को बढाने से वस्तु मे वृद्धि होगी। वास्तव मे फर्म B की रूपान्तरण रेखा O'B को फर्म A की रूपान्तरण रेखा OA पर रख दिया (अर्थात् superimpose कर दिया) गया है, अक्षों (axes) को समान्तर रखा जाता है। दोनों रेखाएं बिन्दु K पर काटती हैं और यह बिन्दु एक गैर-अनुकूलतम बिन्दु (non-optimal point) है क्योकि इस बिन्दु पर दोनो रेखाओं के ढाल बराबर नही हैं। दोनो फर्मो द्वारा उत्पादित वस्तु की संयुक्त मात्रा MT (अर्थात् MK + KT) है। अब हम रेखा O'B को ऊपर की ओर खिसकाते है ताकि वह नई स्थिति O''B' में आ जाये और इस नयी स्थिति मे वह रेखा OA को बिन्दु L पर स्पर्श करती है। इस बिन्दु L पर साधन के अनुकूलतम प्रयोग की दशा पूरी हो जाती है क्योकि इस बिन्दु पर दोनो रूपान्तरण रेखाओ के ढाल बराबर हैं; यह ध्यान देने की बात है कि उत्पादित वस्तु की अब संयुक्त या कुल मात्रा MT से बढ़कर RS (अर्थात् RL+LS) हो जाती है।

5. उत्पादन के अनुकूलतम नियंत्रण की दशा (Condition of Optimum Direction of Production)

इस दशा का सम्बन्ध आर्थिक कुशलता (economic efficiency) से है जिसका अर्थ है कि विभिन्न वस्तुओ का उत्पादन इस प्रकार के संयोग (combination) में किया जाये जो कि उपभोक्ताओ की पसन्दों के साथ अधिक से अधिक मेल खाये। यदि यह दशा पूरी नही होती है तो यह सम्भव है कि वस्तुओ के
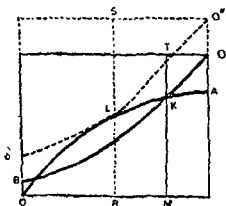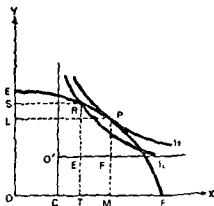
चित्र 5 चित्र 6

ऐसे संयोग को उत्पादित करके, जो कि उपभोक्ताओ की पसन्दो के साथ अधिक से अधिक मेल खाता है, उपभोक्ताओं के कल्याण मे वृद्धि की जा सकती है। उत्पादन के अनुकूलतम नियंत्रण की दशा को इन शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है—समाज के लिए **किन्हीं दो वस्तुओ के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर बराबर या समान होनी चाहिए उन्हीं दो वस्तुओ के बीच किसी एक उपभोक्ता के लिए प्रतिस्थान की सीमान्त दर के, जबकि उपभोक्ता उन दोनों वस्तुओं का प्रयोग करता है।**[7]

[7] The marginal rate of transformation between any two commodities for the community (or the society) should be the same as the marginal rate of substitution between the same two commodities for any consumer who uses them.

इस दशा को हम चित्र 6 द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र में EF रेखा, दो वस्तुओं X तथा Y के लिए, 'समाज की रूपान्तरण रेखा' (community's transformation curve) है; यह रेखा दो वस्तुओं के सभी सम्भव संयोगों को बताती है जो कि समाज में सभी उत्पादक दिये हुए साधनों की सहायता से कर सकते है। इस रेखा EF के ऊपर हम अनेक उपभोक्ताओं में से एक के तटस्थता मान-चित्र (जिसमें I_1 तथा I_2 तटस्थता रेखाएं हैं) को रखते (अर्थात् superimpose करते) हैं; उपभोक्ता के तटस्थता मानचित्र के लिए मूल बिन्दु O' है; उपभोक्ता का यह मानचित्र समाज द्वारा उत्पादित दो वस्तुओं के लिए है। चित्र में EF रेखा को उपभोक्ता की तटस्थता वक्र रेखा I_1 बिन्दु R पर काटती है। इस बिन्दु R पर समाज वस्तु X की OT मात्रा तथा वस्तु Y की RT मात्रा का उत्पादन करता है; तथा उपभोक्ता वस्तु X की O'E(या CT) मात्रा और वस्तु Y की RE मात्रा का प्रयोग करता है, अतः वह दूसरे उपभोक्ता के लिए वस्तु X की OC मात्रा तथा वस्तु Y की O'C (या ET) मात्रा छोड़ देता है। बिन्दु R पर दोनों रेखाएं स्पर्श नही करती हैं; इसलिए इस बिन्दु पर समाज की 'रूपान्तरण की सीमान्त दर' बराबर नही है दो वस्तुओं के बीच उपभोक्ता की 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के। यह बिन्दु R एक अनुकूलतम स्थिति को नही बताता है क्योंकि बिन्दु R से बिन्दु P को चलन (या परिवर्तन) द्वारा उपभोक्ता की स्थिति में सुधार करना सम्भव है बिना किसी अन्य को नुकसान पहुंचाये। बिन्दु P पर समाज की रूपान्तरण रेखा उपभोक्ता की एक ऊंची तटस्थता-वक्र रेखा I_2 को स्पर्श करती है; इसलिए इस बिन्दु P पर दोनों रेखाओं के ढाल बराबर या समान है और यहाँ पर अनुकूलतम दशा की पूर्ति हो जाती है। उपभोक्ता बिन्दु P पर अच्छी स्थिति में (better off) हो जाता है क्योंकि वह ऊंची तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर पहुँच जाता है, परन्तु ऐसा होने से समाज में किसी अन्य को कोई हानि नहीं होती है। बिन्दु P पर, समाज में, वस्तु X की OM मात्रा तथा वस्तु Y की PM मात्रा का उत्पादन होता है। उपभोक्ता के पास वस्तु X की O'F मात्रा तथा वस्तु Y की PF मात्रा रहती है जबकि वह अन्य उपभोक्ताओं के लिए वस्तु X की OC मात्रा तथा वस्तु Y की O'C मात्रा (या FM या ET मात्रा) रह जाती है और ये मात्राएं पहले के बराबर या समान ही हैं।

6. **साधन-इकाई के समय के अनुकूलतम वितरण की दशा** (Condition of Optimum Allocation of a Factor-Unit's Time)

यह दशा किसी एक साधन की एक इकाई के समय के अनुकूलतम वितरण से सम्बन्धित है; दूसरे शब्दों में, इसका सम्बन्ध 'कार्य' (work) के स्थान पर 'आराम' (leisure) के प्रतिस्थापन से है; अथवा यह कहिए कि इसका सम्बन्ध 'कार्य से प्राप्त वस्तु (या आय)' के स्थान पर 'आराम' के प्रतिस्थापन से है। इस दशा को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—**प्रत्येक साधन (अर्थात् मजदूर) के लिए आराम तथा कार्य से प्राप्त वस्तु (या आय) के बीच प्रतिस्थापन की दर वही होनी चाहिए जो कि समस्त समाज के लिए कार्य तथा सामाजिक वस्तु** (social product) **के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर होती है।** (सामाजिक वस्तु से अर्थ है 'समस्त समाज के लिए वस्तु' अर्थात् 'the product for the community as a whole')।[1]

प्रत्येक साधन (या मजदूर) के लिए कार्य से प्राप्त आय कुछ आराम के त्याग करने की लागत या कीमत है। प्रत्येक साधन के लिए तटस्थता वक्रों का एक मानचित्र (map) होता है, इसमें से प्रत्येक तटस्थता वक्र रेखा 'आराम' तथा 'कार्य से प्राप्त आय' के उन सभी सम्भव संयोगों को बताती है जिनसे

[1] The marginal rate of substitution between leisure and product (or income) received from work should be the same (for every factor) as the marginal rate of transformation between work and the social product (that is, the product for the community as a whole).

साधन या मजदूर को संतुष्टि का एकसमान स्तर प्राप्त होता है। इस प्रकार की तटस्थता वक्र रेखा का ढाल 'आराम' तथा 'कार्य से प्राप्त आय' के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को बताता है।

सारे उत्पादक मिलकर एक समाज का निर्माण करते हैं। साधन-इकाई के समय का उत्पादक कार्य मे प्रयोग (अर्थात् श्रम या labour) तथा सामाजिक वस्तु के बीच समाज के लिए एक रूपान्तरण रेखा होती है। समाज की रूपान्तरण रेखा का ढाल 'कार्य' तथा 'सामाजिक वस्तु' के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर को बताता है।[9]

समाज की रूपान्तरण रेखा तथा आराम और कार्य के लिए एक मजदूर (या साधन) की तटस्थता वक्र रेखा का स्पर्श बिन्दु अनुकूलतम की दशा की पूर्ति करता है क्योंकि इस स्पर्श बिन्दु पर 'आराम' तथा 'कार्य से आय' के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वही होगी जो कि 'समाज के लिए कार्य' तथा 'सामाजिक वस्तु' के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर है।

7. **सम्पत्तियों के अन्तःकालीन अनुकूलतम वितरण की दशा** (Conditions of Inter-temporal Optimum Allocation of Assets or Capital)

इस दशा को इन शब्दों मे व्यक्त किया जा सकता है—**किन्हीं दो समय-बिन्दुओं** (points of time) **पर भुगतान प्रदान** (promising) **करने वाली सम्पत्तियों (या पूंजी) के बीच किन्हीं दो व्यक्तियों के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होनी चाहिए।**[10]

यह दशा पूंजी या द्रव्य के उधार देने और लेने से सम्बन्धित है। माना कि एक उत्पादक द्रव्य को उधार लेता है। तब इस दशा का अभिप्राय है कि उधार देने वाले व्यक्ति के लिए ब्याज की दर उधार लेने वाले उत्पादक के लिए द्रव्य की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होनी चाहिए।

इस दशा को चित्र 7 द्वारा समझाया जा सकता है। दोनों अक्ष (axes) द्रव्य को, आय के
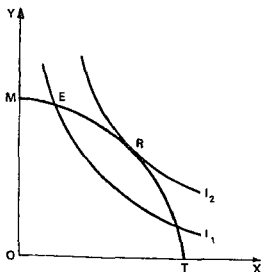
चित्र 7

रूप में, दिखाते है, परन्तु प्रत्येक अक्ष द्रव्य को अलग-अलग समय-बिन्दुओं पर बताता है; X-अक्ष

[9] In other words, the slope of the community's transformation curve indicates the marginal social productivity of workers

[10] The marginal rate of subsutution between assets (or capital or money) promising payment at any two points of time should be the same for any two individuals

द्रव्य को आय के रूप मे भविष्य के लिए दिखाता है, और Y-अक्ष द्रव्य को आय के रूप मे वर्तमान के लिए दिखाता है। एक व्यक्ति के लिए I_1 तथा I_2 दो 'समय-तटस्थता वक्र रेखाएं' (time-indifference curves) हैं जो कि वर्तमान तथा भविष्य में आय-स्तरो के संयोगो (combinations of income levels in the present and the future) को बताते है। ये रेखाए मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) है जिसका अर्थ है कि वर्तमान और भविष्य की आयो के बीच प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर होती है, अर्थात् एक व्यक्ति भविष्य मे आय को प्रयोग करने के लिए अपनी वर्तमान आय का कम और कम मात्रा मे त्याग करेगा। दूसरे व्यक्ति (अर्थात् ऋण लेने वाले व्यक्ति) के लिए MT रेखा एक 'समय-उत्पादन सम्भव रेखा' (time-production possibility curve) है। यह रेखा मूल बिन्दु O के प्रति नतोदर (concave) है, जिसका अर्थ है एक समय-अवधि मे द्रव्य (या पूंजी) की घटती हुई सीमान्त उत्पादकता होती है। चित्र मे MT रेखा तथा I_1 रेखा एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटती है; इस बिन्दु पर दोनो रेखाओ के ढाल समान नही है और यह बिन्दु एक अनुकूलतम बिन्दु नही है। MT रेखा तथा I_2 रेखाएं बिन्दु R पर स्पर्श करती हैं और इस बिन्दु पर दोनो के ढाल बराबर है और इस प्रकार इस बिन्दु पर अनुकूलतम की दशा पूरी होती है; बिन्दु R एक अनुकूलतम बिन्दु है।

उपर्युक्त सात दशाएं सामाजिक कल्याण की अनुकूलतम स्थिति को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं, परन्तु ये दशाएं पर्याप्त (sufficient) नही है। अत. प्रो. हिक्स ने 'कुल दशाएं' (*total conditions*) भी दी है; 'प्रथम क्रम की दशाओं' (first-order conditions) के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थिति को प्राप्त करने के लिए 'कुल दशाएं' (total conditions) भी पूरी हो। 'कुल दशाएं' बताती है कि "यदि कल्याण को अधिकतम करना है तो ऐसा तब होगा जब किसी ऐसी वस्तु का उत्पादन करके, जिसका उत्पादन अभी तक नही किया जा रहा था, कल्याण मे वृद्धि करना असम्भव है; अथवा ऐसे साधन का प्रयोग करके, जिसका प्रयोग अभी तक नही किया जा रहा था, कल्याण मे वृद्धि असम्भव है।"[11]

सामाजिक अनुकूलतम (social optimum) को प्राप्त करने के लिए 'प्रथम क्रम की दशाएं' तथा 'कुल दशाएं' दोनो का साथ-साथ पूरा होना जरूरी है, परन्तु इस प्रकार से प्राप्त होने वाला सामाजिक अनुकूलतम एक अकेला या अनूठा बिन्दु (a single or unique point) नही होता है। आय के विभिन्न वितरण की परिस्थितियो के सन्दर्भ मे अनेक 'पेरिटियन सामाजिक अनुकूलतम बिन्दु' मौजूद हो सकते है; परन्तु यह निर्धारित नही किया जा सकता है कि इनमे से कौनसा बिन्दु 'सर्वोत्तम' (best) है जब तक आय के वितरण के सम्बन्ध मे कुछ नैतिक निर्णयो को स्वीकार न किया जाये।

प्रश्न

1. संक्षेप मे पेरिटियन अनुकूलतम की दशाओं की व्याख्या कीजिए।
   Explain briefly the conditions of Paretian Optimum.

---

[11] 'Total conditions' state "that if welfare is to be a maximum, it must be impossible to increase welfare by producing a product not otherwise produced or by using a factor not otherwise used."

प्रकट-अधिमान सिद्धान्त का हिक्स का दृष्टिकोण

[Hicks' View of Revealed Preference Theory]

मांग सिद्धान्त के तटस्थता-वक्र विश्लेषण का हिक्स द्वारा त्याग
(HICKS' REJECTION OF INDIFFERENCE CURVE APPROACH TO DEMAND THEORY)

प्रो० सेम्युलसन (Samuelson) तथा उनके समर्थकों (जैसे Arrow, Houthakker) द्वारा प्रतिपादित 'मांग के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त' (revealed preference approach to demand) से प्रो० हिक्स बहुत अधिक प्रभावित हुये; और इसलिए हिक्स ने अपने तटस्थता-वक्र विश्लेषण को त्याग कर मांग-सिद्धान्त का संशोधन (revision) किया। इस संशोधन को उन्होंने सन् 1956 मे अपनी पुस्तक **'मांग सिद्धान्त का एक संशोधन** (*A Revision of Demand Theory*) में प्रस्तुत किया। परन्तु 'हिक्स का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त' कुछ दृष्टिकोणों से भिन्न है 'सेम्युलसन के प्रकट अधिमान सिद्धान्त' से।

हिक्स ने अपनी शुरू की पुस्तक 'मूल्य तथा पूंजी' (Value and Capital) में मांग-सिद्धान्त मे तटस्थता-वक्र रेखाओ (indifference curves) को ख्याति प्रदान की, परन्तु बाद मे अपनी दूसरी पुस्तक 'मांग सिद्धान्त का एक संशोधन' (A Revision of Demand Theory) मे इस दृष्टिकोण को त्याग दिया। निःसन्देह तटस्थता-वक्र दृष्टिकोण को त्याग देने के कुछ महत्वपूर्ण कारण होंगे; दूसरे शब्दों मे, तटस्थता-वक्र दृष्टिकोण मे कुछ बुनियादी कमजोरियाँ होंगी जिन्होंने प्रो० हिक्स को इस दृष्टिकोण को त्याग देने के लिए बाध्य किया। इस दृष्टि से तटस्थता-वक्र रेखाओं की कुछ मुख्य कमजोरियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) तटस्थता-वक्र रेखाओ की रेखागणित (geometry) केवल दो वस्तुओ की सरल स्थिति मे उपयोगी होती है; तीन वस्तुओं के सम्बन्ध मे तीन आयाम वाले कठिन चित्रों (difficult three dimensional figures) का प्रयोग करना पड़ता है। तीन वस्तुओं से अधिक होने पर रेखागणित कार्य नही करती और हमे कठिन व जटिल गणितात्मक तकनीकों (difficult and complex mathematical techniques) का प्रयोग करना पड़ता है, और प्रत्येक व्यक्ति इनका प्रयोग नही कर सकता।

(ii) तटस्थता-वक्र रेखाओं की रेखागणित-रीति निरंतरता (continuity) की मान्यता पर आधारित है। हिक्स इस बात को अनुभव करते है कि वास्तविक आर्थिक क्षेत्र मे यह मान्यता मौजूद नहीं होती, यद्यपि यह रेखागणित के क्षेत्र मे लागू होती है। वास्तविक जीवन मे पूर्ण संख्या की इकाइयाँ (integral number of units) पायी जाती हैं; वस्तुएँ अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़ों (very small fractions) में प्राप्य नही होतीं। उदाहरणार्थ, हम एक बिजली के लेम्प के एक छोटे टुकड़े (small fraction) को नहीं खरीद सकते, अथवा दुकानदार मक्खन को अत्यन्त छोटे टुकड़ों मे बेचना पसन्द नही करते। दूसरे शब्दो मे, तटस्थता वक्र की निरन्तरता (continuity) की मान्यता वास्तविक जीवन मे सही नही होती है।

(iii) हिक्स के तटस्थता वक्र विश्लेषण का 'अर्थमिति दृष्टिकोण' (*econometric approach*) नहीं है। सेम्युलसन के प्रकट अधिमान सिद्धान्त का एक बड़ा गुण है कि यह माँग-सिद्धान्त के प्रति 'अर्थमिति दृष्टिकोण' रखता है; और इस दृष्टि से सेम्युलसन का प्रकट अधिमान सिद्धान्त अधिक श्रेष्ठ है हिक्स के तटस्थता-वक्र दृष्टिकोण से। प्रो० हिक्स स्वयं इस बात को इन शब्दो मे स्वीकार करते हैं—

"नि.सन्देह अब आर्थिक अनुसंधान का अर्थमिति एक मुख्य रूप है ; एक सिद्धान्त जो कि अर्थमितिशास्त्रियों (econometrists) द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, वह श्रेष्ठ है उस सिद्धान्त की तुलना मे जिसको अर्थमितिशास्त्री प्रयोग नहीं कर सकते।"[1]

उपर्युक्त कारणो के परिणामस्वरूप माँग-सिद्धान्त के प्रति तटस्थता-वक्र दृष्टिकोण को त्याग कर प्रो० हिक्स ने प्रकट-अधिमान दृष्टिकोण को अपनाया। वास्तव मे, प्रो० हिक्स के शब्दो मे— प्रकट-अधिमान की नयी रीति स्वय अधिमान परिकल्पना के स्वभाव को स्पष्ट करने में अधिक उचित या शक्तिशाली है।[2]

परन्तु हिक्स का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त, सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त से, कुछ दृष्टियों मे भिन्न है—

> **हिक्स यह अनुभव करते है कि सेम्युलसन के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त मे अर्थमिति-सदर्भ (econometric reference) उतना नहीं है जितना कि होना चाहिए। इसलिए हिक्स, प्रो० सेम्युलसन का निश्चित रूप से अनुसरण नहीं करते (Hicks does not follow Samuelson exactly)। प्रो० हिक्स के शब्दों में, "तकनीक मे हम सेम्युलसन के बहुत निकट होंगे, परन्तु हमारी रीति-विधान (methodology), सेम्युलसन को तुलना में, अधिक स्पष्ट रूप से अर्थमितीय (econometric) होगी।"[3]**
>
> **हिक्स का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'कमजोर-क्रम' (*weak ordering*) पर आधारित है जबकि सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'मजबूत-क्रम' (*strong ordering*) पर आधारित है।[4]**

हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की मुख्य धारणाएँ

(KEY CONCLPTS IN HICKS' THEORY OF REVEALED PREFERENCE)

अब हम हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की कुछ बुनियादी धारणाओ (basic concepts) की विवेचना करेंगे। मुख्य धारणाएँ निम्नलिखित है—

1. अधिमान परिकल्पना तथा अर्थमितीय दृष्टिकोण (Preference *Hypothesis* and Econometric Approach)।
2. क्रम का तर्क . कमजोर क्रम तथा मजबूत क्रम (Logic of Order : Week Ordering and Strong Ordering)।
3. प्रत्यक्ष संगति जाँच या कसौटी (Direct Consistency Test)।

अब हम उपर्युक्त धारणाओ में से प्रत्येक की कुछ विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

---

[1] "There can be no doubt that econometrics is now a major form of economic research; a theory which can be used by econometrists is to that extent a better theory than one which cannot."

[2] The new method of revealed preference has greater effectiveness in clarifying the nature of the preference hypothesis itself.

[3] "In technique we sh[illegible] quite close to him (i. e Samuelson), but our methodology will be more explicitly econometric even than his "

[4] 'कमजोर-क्रम' (weak-ordering) तथा 'मजबूत-क्रम' के विचारो की विवेचना थोड़ा आगे की गयी है।

अधिमान परिकल्पना तथा अर्थमिति दृष्टिकोण
(PREFERENCE HYPOTHESIS AND ECONOMETRIC APPROACH)

सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त अर्थमिति से सन्दर्भ (reference) रखता है। हिक्स इस बात से बहुत प्रभावित हुये; उन्होने तटस्थता वक्र दृष्टिकोण को त्याग दिया, अपने माँग सिद्धान्त का प्रकट-अधिमान के शब्दों में पुनर्निर्माण किया, तथा अधिमान परिकल्पना (preference hypothesis) को अर्थमितीय आधार (econometric basis) प्रदान किया। परन्तु कुछ पक्षों (some aspects) में हिक्स का प्रकट अधिमान सिद्धान्त, सेम्युलसन के प्रकट अधिमान सिद्धान्त से भिन्न है।

अर्थमिति का सम्बन्ध व्यावहारिक या अनुभव-आश्रित स्थितियों (practical or empirical situations) से होता है, और इसलिए माँग का अर्थमितीय सिद्धान्त (econometric theory of demand) का सम्बन्ध भी व्यावहारिक या अनुभव-आश्रित समस्याओं से होता है। दूसरे शब्दों में,

> **माँग का अर्थमितीय सिद्धान्त वास्तविक आँकड़ों पर आधारित होता है, ये आँकड़े किसी वस्तु (*या वस्तुओं*) की मात्राओं को बताते है जो कि एक विशिष्ट समूह द्वारा किन्हीं विशिष्ट समय अवधियों में खरीदी गई हैं। माँग के अर्थमितीय सिद्धान्त का उद्देश्य इन आँकड़ों की व्याख्या (explanation) को मालूम करना है, अर्थात् एक परिकल्पना का निर्माण करना है जो कि इन वास्तविक आँकड़ों की व्याख्या कर सके।**[5]

एक उपभोक्ता का व्यावहारिक या वास्तविक व्यवहार आर्थिक तथा अनार्थिक दोनों प्रकार के तत्वों से प्रभावित होता है। अनार्थिक तत्व हैं—जनसंख्या मे परिवर्तन, जनसंख्या का आयु-वितरण, शिक्षा तथा आवास (housing) मे विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक आदतें, इत्यादि। दूसरे शब्दों में, एक उपभोक्ता **व्यवहार की अनार्थिक व्याख्याएँ अथवा 'गैर-कीमत व्याख्याएँ' होती हैं** (We have 'non-economic explanations' or *'non-price explanations' of a consumer's behaviour*)। आर्थिक तत्व हैं—वस्तुओं की वर्तमान कीमतें, उपभोक्ताओं की वर्तमान आयें। दूसरे शब्दों में, **एक उपभोक्ता के व्यवहार की आर्थिक व्याख्याएँ अथवा 'कीमत व्याख्याएँ' होती हैं** (We have 'economic explanations' or *'price-explanations' of a consumer's behaviour*)।

माँग का सिद्धान्त, जो कि अर्थमितीय दृष्टिकोण (econometric approach) पर आधारित है, उपभोक्ता के मुख्यतया 'आर्थिक व्याख्याओं' अथवा 'कीमत व्याख्याओं' पर आधारित होता है—

> **इस सन्दर्भ में, एक अर्थमितिशास्त्री का उद्देश्य यह होता है कि उसे उन प्रभावों के गणनात्मक-अनुमानों (estimates) को ज्ञात करना चाहिए जो कि वर्तमान कीमतों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। "परन्तु इस प्रकार के गणनात्मक-अनुमानों को ज्ञात करने के लिए, एक ऐसे तकनीक की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा वर्तमान-कीमत प्रभावों को अन्य प्रभावों से पृथक (separate) किया जा सके। ऐसे तकनीक को बिना किसी सिद्धान्त के प्राप्त नहीं किया जा सकता। माँग सिद्धान्त का अर्थमितीय उद्देश्य इस प्रकार के पृथक्कीकरण (separation) में सहायता प्रदान करना है।**[6]

---

[5] The econometric theory of demand considers certain factual data (especially in the form of time series), showing the amounts of some commodity (or commodities) which have been purchased by a particular group during certain specified periods of time. The object of the econometric theory of demand is to find an explanation of these statistics, that is, to build a hypothesis which will explain them.

[6] In this context the objective of the econometrists is that he should estimate the effects which are caused by changes in current prices. "But in order for him to be able to make such estimates, he needs a technique for separating the current price effects from the others. Such a technique cannot be provided without a theory. The econometric purpose of the theory of demand is to give assistance in making this separation."

उपभोक्ता पर वर्तमान कीमत प्रभावों को अन्य प्रभावों से पृथक करने के लिए सिद्धान्त की ऐसी किस्म "वह सिद्धान्त ऐसा होगा जो कि उपभोक्ता की सम्भावित प्रतिक्रियाओं (likely reactions) से सम्बन्धित उन तरीकों के बारे में कुछ बतायेगा जो कि उपभोग में परिवर्तन के कारण होते हैं, जबकि उपभोग में परिवर्तन केवल वर्तमान कीमतों व आयों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। वास्तव में यही बात, अर्थमितीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये, माँग के सिद्धान्त को बताना है।"[7]

दूसरे शब्दों में, माँग का अर्थमितीय सिद्धान्त कुछ मान्यताओं (*assumptions*) पर आधारित है। मुख्य मान्यतायें निम्नलिखित है—

(i) यह एक आदर्श उपभोक्ता (an *ideal consumer*) की मान्यता पर आधारित है। इसका अभिप्राय है कि एक उपभोक्ता केवल बाजार की कीमतों या दशाओं (market prices or conditions) से प्रभावित होता है। ऐसी मान्यता के अन्तर्गत एक उपभोक्ता के व्यवहार का अवलोकन (observation) किया जाता है।

(ii) यह इस मान्यता पर आधारित है कि एक उपभोक्ता 'पसन्दों या अधिमानों के एक क्रम' (*a scale of preferences*) के अनुसार व्यवहार करता है; हिक्स इसको 'अधिमान परिकल्पना' (*Preference hypothesis*) कहते हैं।[8]

अब हम अधिमान-परिकल्पना की कुछ विस्तार के साथ विवेचना करेंगे। अधिमान-परिकल्पना के अर्थ तथा अभिप्रायों (*Meaning and Implications of Preference Hypothesis*) को नीचे दिया गया है :

1. प्रो० हिक्स अधिमान-परिकल्पना को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं :

"एक आदर्श उपभोक्ता (जो कि बाजार की दशाओं के अतिरिक्त अन्य किसी चीज से प्रभावित नहीं होता) अपने समक्ष विभिन्न विकल्पों (different alternatives) में से उस विकल्प को चुनता है जिसको वह सबसे अधिक पसन्द करता है, अथवा जिसको वह सबसे उच्च श्रेणी (highest rank) में रखता है। बाजार दशाओं के समूह के अन्तर्गत वह एक चुनाव करता है, बाजार की दशाओं के अन्य समूहों के अन्तर्गत अन्य चुनावों को करता है; परन्तु जो चुनाव वह करता है सदैव एक ही क्रम (same ordering) को बताता है, और इसलिए चुनावों के सम्बन्ध में संगति (consistency) होनी चाहिए।"[9]

---

[7] The kind of theory which is needed for separating the current price effects on consumer from the others "is one which will tell us something about the ways in which consumers would be likely to react if variations in current prices and incomes were the only causes of changes in consumption This is precisely what the theory of demand, considered from the econometric point of view, has to do."

[8] अधिमान परिकल्पना के स्वभाव (nature) को समझने के लिए निम्नलिखित नोट ध्यान देने योग्य है :

No doubt the assumption of behaviour according to a scale of preferences' is the simplest hypothesis, not necessarily the only possible hypothesis, but, according to Hicks, it is an assumption or hypothesis which seems to be most sensible to start with. "Its status is identically the same as that of a well known class of hypotheses in natural sciences, hypotheses which cannot be tested directly, but which can be used for the arrangement of empirical data in meaningful ways, and which are accepted or rejected according to their success or failure as instruments of arrangement. There is no need to claim any more for it than this, but as a hypothesis of this sort, it seems to hold the field"

[9] "The ideal consumer (who is not affected by anything else than current market conditions) chooses that alternative, out of the various alternatives open to him, which he most prefers, or ranks most highly In one set of market conditions he makes one choice, in others, other choices; but the choice he makes always expresses the same ordering, and must therefore be consistent with one another."

2. उपर्युक्त परिकल्पना (hypothesis) एक आदर्श उपभोक्ता के सम्बन्ध में बनायी गयी है। "वास्तविक उपभोक्ता वर्तमान कीमतों (या बाजार दशाओं) के अतिरिक्त अन्य बातों से प्रभावित होंगे, और इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि उनका व्यवहार सदैव संगति की कसौटियों (tests of consistency) पर सही सिद्ध हो। परन्तु यदि (अधिमान) परिकल्पना का औचित्य है, तो एक वास्तविक उपभोक्ता के प्रकट रूप से असंगत व्यवहार (apparently inconsistent behaviour) की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकने योग्य होनी चाहिए ताकि यह पता लग सके कि किस प्रकार से वास्तविक उपभोक्ता का व्यवहार अन्तर रखता है आदर्श उपभोक्ता के व्यवहार की तुलना में; दूसरे शब्दों में, वास्तविक उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या, वर्तमान कीमतों (या आय) के अतिरिक्त, अन्य चरों (variables) में परिवर्तनों के शब्दों में की जा सकने योग्य होनी चाहिए। (अधिमान) परिकल्पना के जाँचने का केवल एक ही तरीका है कि हम यह देखें कि, वास्तविक असंगत व्यवहार की दशाओं में, इस प्रकार की व्याख्या कहाँ तक हमें संतुष्ट कर पाती है।[10]

3. यह ध्यान देने योग्य बात है कि तटस्थता-वक्र विश्लेषण भी 'अधिमानों के क्रम' (scale of preferences) पर, अथवा 'अधिमान-परिकल्पना' (preference hypothesis) पर आधारित है। परन्तु नयी रीति के अन्तर्गत, अर्थात् हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के अन्तर्गत, अधिमान-परिकल्पना का प्रयोग कुछ भिन्नता रखता है अपेक्षाकृत तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत प्रयोग के।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत अधिमानों के एक दिये हुये पैमाने को फौरन (या प्रत्यक्ष रूप से) तटस्थता वक्रों के रूप में व्यक्त किया जाता है। परन्तु रेखागणित के इस प्रत्यक्ष प्रयोग की अनेक हानियाँ या सीमायें रहती हैं।[11]

इसके विपरीत, हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के अन्तर्गत (अथवा नयी रीति के अन्तर्गत) अधिमान-परिकल्पना के प्रति अर्थमितीय दृष्टिकोण स्वयं अधिमान-परिकल्पना के स्वभाव को स्पष्ट करने में प्रभावशाली है।[12] नया या संशोधित "माँग-सिद्धान्त, जो कि अधिमान-परिकल्पना पर आधारित है, वास्तव में और कुछ नहीं है बल्कि वह क्रम-के-तार्किक सिद्धान्त (logical theory of ordering) का केवल एक आर्थिक प्रयोग है।"[13] यहाँ पर हम स्वयं तर्क-के-क्रम (logic of ordering)[14] से शुरू करते हैं; जबकि तटस्थता-वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत हम रेखागणित (geometry) के प्रयोग से शुरू करते है। प्रत्यक्ष रूप से तर्क-के-क्रम

---

[10] The above mentioned hypothesis is made about the behaviour of the 'ideal consumer'. "Actual consumers will be affected by other things than by current prices, and their behaviour need not therefore always satisfy the tests of consistency. But if the (preference) hypothesis is justified, apparently inconsistent behaviour must be capable of explanation in terms of the ways in which the actual consumer differs from an ideal consumer; that is to say, it must be applicable in terms of changes in other variables than current prices (or income). The only way of testing the hypothesis is by seeing how far such explanations do in fact satisfy us in the inconsistent cases which we find."

[11] For example: The geometrical method of indifference curves takes into account only two commodities; for three commodities, the difficult solid geometry comes into picture; for more than three commodities, the use of elaborate mathematics is needed. Further, it makes the assumption of continuity which is not true in the economic field of real life. The geometry of indifference curve analysis is empirically empty.

[12] Under the revealed preference theory of Hicks, or the new method, the econometric approach to preference hypothesis has greater effectiveness in clarifying the nature of preference hypothesis itself."

[13] "The (revised) demand theory, which is based upon preference hypothesis, turns out to be nothing but an economic application of the logical theory of ordering."

[14] तर्क-के-क्रम (*logic of ordering* or *logic of order*) की धारणा थोड़ा आगे स्पष्ट होगी।

(logic of ordering) से शुरू करने से हमे एक 'अनुभव-आश्रित दृष्टिकोण' (empirical approach) अथवा एक 'अर्थमितीय दृष्टिकोण' (econometric approach) प्राप्त होता है।[15]

क्रम का-तर्क : कमजोर क्रम तथा मजबूत क्रम
(LOGIC OF ORDER WEAK ORDERING AND STRONG ORDERING)

हिक्स के अनुसार, अधिमान-परिकल्पना पर आधारित माँग सिद्धान्त 'क्रम-के-तार्किक सिद्धान्त' (*logical theory of ordering*) अथवा 'क्रम-का-तर्क' (*logic of order*) का केवल एक आंशिक प्रयोग है। इस सन्दर्भ मे प्रो० हिक्स 'मजबूत-क्रम' (*Strong ordering*) तथा 'कमजोर क्रम' (*Weak ordering*) के बीच भेद करते है। प्रो० सेम्युलसन का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'मजबूत क्रम' पर आधारित है जबकि प्रो० हिक्स का प्रकट-अधिमान सिद्धान्त 'कमजोर-क्रम' पर आधारित है।

'क्रम-का-सिद्धान्त' आधुनिक गणित की एक शाखा है। यह संख्याओ या मदो (items) के स्थान या क्रम का अध्ययन करती है।[16] माँग-सिद्धान्त के लिए हमारा सम्बन्ध 'मजबूत-क्रम' तथा 'कमजोर-क्रम' की धारणाओ (concepts) से है, और इनका हम कुछ विस्तार के साथ विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

मजबूत-क्रम की धारण की परिभाषा को निम्न प्रकार से दिया जा सकता है—

"मदों (items) का एक समूह मजबूत-क्रम में होगा यदि वह इस प्रकार है कि क्रम मे प्रत्येक मद की अपनी एक जगह है; सैद्धान्तिक रूप से उस मद को एक संख्या प्रदान की जा सकती है, तथा प्रत्येक संख्या का एक मद होगा, और केवल एक ही मद होगा जो कि उस संख्या से सम्बन्धित होगा।[17]

कमजोर-क्रम की धारणा की परिभाषा को निम्न प्रकार से दिया जा सकता है—

"एक कमजोर क्रम के अन्तर्गत समूहों का एक विभाजन होता है, जिसमें कि समूहो का अनुक्रम (sequence) मजबूत क्रम में होता है, परन्तु समूहों के अन्तर्गत कोई क्रम नहीं होता।"[18]

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि कौन सा क्रम माँग-सिद्धान्त के लिए उचित है। परम्परागत (traditional) तटस्थता-वक्र विश्लेषण कमजोर-क्रम पर आधारित है क्योंकि एक तटस्थता-वक्र रेखा पर सभी बिन्दु एकसमान रूप से पसन्द किये जाते है। सेम्युलसन ने अपने प्रकट-अधिमान सिद्धान्त को मजबूत-क्रम पर आधारित किया है जबकि हिक्स ने अपने प्रकट-अधिमान सिद्धान्त को कमजोर-क्रम पर आधारित किया है। इस सन्दर्भ मे हम निम्न दो बातो की विवेचना प्रस्तुत करेंगे—

(i) मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम की धारणाओ (concepts) के माँग-सिद्धान्त मे प्रयोग के अभिप्राय।

(ii) हिक्स कमजोर-क्रम को क्यो पसन्द करते हैं और मजबूत क्रम का क्यों त्याग करते है जबकि सेम्युलसन ने माँग-सिद्धान्त मे मजबूत-क्रम का प्रयोग किया है।

---

[15] Here we begin from the logic of ordering itself, instead of starting from the geometrical application of it (as has been in indifference curve analysis). To begin directly from the logic of ordering provides an 'empirical approach' or an 'econometric approach'.

[16] Theory of ordering is a branch of modern mathematics. It studies the placement or ordering of numbers or items.

[17] "A set of items is *strongly ordered*, if it is such that each item has a place of its own in the order; it could, in principle, be given a number, and to each number there would be one item, and only one item, which could correspond."

[18] "A weak ordering consists of a division into groups, in which the sequence of groups is strongly ordered, but there is no ordering within the groups."

अब हम उपर्युक्त दोनो मे से पहली बात की विवेचना करते है। दूसरे शब्दो मे, हम माँग सिद्धान्त में मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम के प्रयोग की विवेचना करेंगे। इस सन्दर्भ में हम तटस्थता-वक्र विश्लेषण के पीछे एक अत्यन्त अवास्तविक मान्यता से शुरू करते है। तटस्थता-वक्र विश्लेषण मे "यह मान लिया जाता है कि एक उपभोक्ता अपने समक्ष सभी सम्भव विकल्पो (alternatives) को एक क्रम मे रखने की योग्यता रखता है, अर्थात उन सभी स्थितियो (positions) को एक क्रम मे रख सकता है जो कि उसके तटस्थता मानचित्र (map) पर विभिन्न बिन्दु बताते हैं।"[19] हिक्स इस बात को स्वीकार करते हैं कि यह मान्यता इतनी अवास्तविक है कि यह बहुत बड़ी रूकावट सिद्ध हुयी है। संशोधित माँग सिद्धान्त (revised demand theory), अर्थात प्रकट अधिमान सिद्धान्त के लिए, हिक्स यह अनुभव करते है कि हमे इस मान्यता को लेकर चलना है कि एक उपभोक्ता केवल उन विकल्पो को क्रम मे रख सकता है जिनकी वह, दी हुयी परिस्थितियो के अन्तर्गत, वास्तव म तुलना करता है। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तुओ के वैकल्पिक संयोगों की एक निश्चित संख्या या बहुत थोड़ी संख्या के सन्दर्भ मे ही 'क्रम मे रखने का कार्य' कर सकता है।[20]

अब हम माँग सिद्धान्त में मजबूत-क्रम के प्रयोग के सम्बन्ध में एक मोटी व्याख्या (broad explanation) को नीचे प्रस्तुत करते हैं—

> यदि हम यह सोचकर चलते हैं कि विकल्पों की केवल एक निश्चित या बहुत थोड़ी सख्या के सन्दर्भ में ही उपभोक्ता 'क्रम में रखने का कार्य' कर सकता है, तो यह स्पष्ट रूप से सम्भव है कि वह उन विकल्पों को एक मजबूत क्रम में रखे ताकि वह विकल्प A को पसन्द कर सके, विकल्प B के ऊपर, B को पसन्द कर सके C के ऊपर, इत्यादि। यह आवश्यक नहीं है कि कोई भी तटस्थ स्थितियाँ (indifference positions) मौजूद हो। इसके अतिरिक्त, यदि सम्पूर्ण क्रम एक मजबूत-क्रम है तो यह कहना पर्याप्त होगा कि उपभोक्ता अपने समक्ष प्राप्य स्थितियो मे से सदैव सबसे अधिक पसन्द की स्थिति को चुनेगा ; और इस प्रकार उसके चुनाव करने की क्रिया की व्याख्या हो जाती है, अर्थात् 'पसन्द करने का कार्य' सदैव 'चुनाव' की व्याख्या के लिए पर्याप्त है। दूसरे शब्दों में, 'चुनाव' पसन्द को प्रकट करता है।[21]

अब हम माँग सिद्धान्त मे कमजोर-क्रम के प्रयोग के सम्बन्ध में एक मोटी व्याख्या (broad explanation) को नीचे प्रस्तुत करते है—

> यदि एक उपभोक्ता कमजोर-क्रम को अपनाता है, तो यह सम्भव है उसकी (संयोगों की) सूची की चोटी पर दो (या अधिक) स्थितियाँ एक साथ मौजूद हों, अर्थात्, दो (या अधिक) विकल्पो के बीच तटस्थता (indifference) की स्थिति मौजूद हो। यदि उपभोक्ता एक-बराबर पसन्द वाली दो स्थितियों मे से किसी एक स्थिति को वास्तव मे चुनता है, तो उसके चुनाव की व्याख्या नहीं हो पाती है

---

[19] "This assumes that the consumer is capable of ordering all conceivable alternatives tha. might possibly be presented to him—all the positions which might be represented by points on his indifference map"

[20] For the revised demand theory Hicks feels that we have to assume that the consumer can order (only) those alternatives which he does actually have to compare in the situations under discussion. This implies that the consumer can do the act of ordering with respect to a finite or quite a small number of alternative combination of goods.

[21] If we think that the consumer can apply ordering only when confronted with finite or small number of alternatives, it is clearly possible that he may order them *strongly*, having a definite preference for A over B, B over C, and so on. It is not necessary that there should be any indifference positions Further, if the whole order is a strong one, it is sufficient to say that he always chooses the most preferred position open to him, and his choice is explained, preference is always sufficient to explain choice. In other words, choice reveals preference.

(क्योंकि चुनाव केवल एक आकस्मिक (chance) चुनाव हो सकता है)। इस प्रकार हमें कमजोर-क्रम के अन्तर्गत उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार को देखकर कोई एक निश्चित सूचना या ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जैसा कि मजबूत-क्रम के अन्तर्गत प्राप्त होता है। अतः कमजोर-क्रम के अन्तर्गत वास्तविक चुनाव एक निश्चित पसन्द को प्रकट करने मे असफल रहता है।[12]

संक्षेप मे, कमजोर-क्रम परिकल्पना (weak-ordering hypothesis) तटस्थता के सम्बन्ध (relation of indifference) को मानती है, जबकि मजबूत-क्रम परिकल्पना तटस्थता के सम्बन्ध को नहीं मानती।

मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम की धारणाओं की चित्र द्वारा व्याख्या (Diagramatic exposition of Strong-Ordering and Weak-Ordering)

माँग-सिद्धान्त मे मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम की धारणाओं को अच्छी प्रकार से समझने के लिए हम चित्रों का प्रयोग करेंगे। पहले हम मजबूत-क्रम की धारणा (concept) को लेते हैं। चित्र-1 मे X-वस्तु को X-अक्ष (X-axis) पर दिखाया गया है तथा वस्तु M [अर्थात 'सामूहिक वस्तु' (composite commodity) या द्रव्य (money)] को Y-अक्ष (Y-axis) पर दिखाया गया है। माना कि उपभोक्ता के लिए *aa* रेखा एक कीमत-आय स्थिति[13] को बताती है। उपभोक्ता त्रिकोण (triangle) *aOa* के अन्दर किसी बिन्दु या संयोग को, अथवा त्रिकोण की परिधि-रेखा (boundary-line) *aa* पर किसी बिन्दु या संयोग को, चुन सकता है। माना कि उपभोक्ता त्रिकोण *aOa* की परिधि-रेखा *aa* पर एक संयोग A को चुनता है। एक आदर्श उपभोक्ता (जो कि अधिमान-परिकल्पना के अनुसार कार्य करता है) के द्वारा इस चुनाव के कार्य की किस प्रकार से व्याख्या की जाये ? यह आगे के विवरण से स्पष्ट होगा—
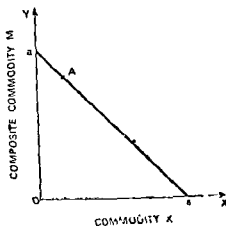
चित्र 1

[12] If a consumer adopts weak ordering, it is possible that there may be two (or more) positions which stand together at the top of his list, that is, there may be a relation of indifference between two (or more) alternatives. If the consumer actually chooses any one position out of the two equally preferred positions, then his choice remains unexplained (the choice may be a matter of chance). Thus, under weak ordering we do not get any definite piece of information from the observation of the actual behaviour of the consumer as we do get in the case of strong ordering. Hence, under weak ordering actual choice fails to reveal definite preference.

[13] कीमत-आय स्थिति (price-income situation) के अभिप्राय (implications) निम्न विवरण से अधिक स्पष्ट हो जाते हैं—

"If we measure the quantity of the two goods (X and M) along the two axes, any point on the diagram will represent a pair of quantities of the two goods. With given prices, and given income, the quantities available to the consumer are limited by a straight line such as a a (called price-income line), which is such that the slope of the line measures the ratio between the prices of the two goods, and the intercepts (Oa) on the axes measure the quantity of either good which could be acquired if none of the other good were to be purchased. The available alternatives are then represented by points within the triangle aOa, or by points on the boundary of the triangle. Any point on a a represents a situation in which the whole of income is being spent on the two goods and we are to suppose that the point actually selected (A) lies on this line."

यदि हम मजबूत-क्रम परिकल्पना को मान लें, तो A का चुनाव यह बताता है कि त्याग किये जाने वाले अन्य सभी संयोगों की तुलना में उपभोक्ता संयोग A के लिए एक निश्चित अधिमान (preference) रखता है। सेम्युलसन की भाषा में, त्याग की गयी स्थितियों की तुलना में उपभोक्ता 'संयोग A के लिए अपने अधिमान को प्रकट करता है।' इस प्रकार किन्हीं भी दो संयोगों के बीच तटस्थता (indifference) का कोई सम्बन्ध नहीं है और उपभोक्ता के व्यवहार का अवलोकन करने से हमें उसकी पसन्द (या उसके अधिमान) के सम्बन्ध में एक निश्चित सूचना प्राप्त हो जाती है।[24]

अब हम चित्र-1 की सहायता से कमजोर-क्रम परिकल्पना (weak ordering hypothesis) को समझाते है—

"यदि उपभोक्ता के पसन्दों का पैमाना कमजोर-क्रम में है तो (चित्र-1 में) किसी स्थिति A के लिए उसका 'चुनाव' यह नहीं बताता या यह 'प्रकट' (reveal) नहीं करता कि त्रिकोण के अन्दर या त्रिकोण की परिधि-रेखा (boundary) पर किसी भी त्याग की गयी स्थिति की तुलना में A को पसन्द किया जाता है। केवल यह कहा जा सकता है कि कोई भी त्याग की गयी स्थिति ऐसी नहीं है जो कि A की तुलना में पसन्द की जायेगी। यह पूर्णतया सम्भव है कि कोई एक त्याग की गयी स्थिति संयोग A के प्रति तटस्थता का सम्बन्ध रखे, तो ऐसी त्याग की गयी स्थिति की तुलना में A का चुनाव केवल एक आकस्मिक बात (chance) हो सकती है।"[25]

इस प्रकार, जैसा कि हिक्स स्वयं अनुभव करते है, 'अधिमान-परिकल्पना के कमजोर-क्रम के स्वरूप' के आधार पर वास्तविक व्यवहार के अवलोकन से हमे बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है अपेक्षाकृत 'अधिमान-परिकल्पना के मजबूत-क्रम के स्वरूप' के आधार के।

हिक्स ने कमजोर-क्रम परिकल्पना की इस सीमा (limitation) को, एक अतिरिक्त-परिकल्पना (*an additional-hypothesis*) को शामिल करके दूर करने की कोशिश की है; हम 'अतिरिक्त-परिकल्पना' तथा कमजोर-क्रम के बारे विवेचना को थोड़ा आगे प्रस्तुत करेंगे।

हिक्स द्वारा मजबूत-क्रम परिकल्पना को त्याग देने के कारण (Reasons for the rejection of strong ordering hypothesis by Hicks)

हिक्स अपनी पुस्तक 'माँग सिद्धान्त का एक संशोधन' (*A Revision of Demand Theory*) मे कमोजर क्रम को स्वीकार करते है तथा मजबूत-क्रम को त्याग देते है। हिक्स द्वारा मजबूत-क्रम परिकल्पना के त्याग देने के मुख्य कारण निम्नलिखित है—

1. मजबूत-क्रम किन्ही भी दो संयोगों के बीच तटस्थता-सम्बन्ध (relation of indifference) को बिलकुल नहीं मानता, परन्तु यह उचित नहीं है। "पुराना सिद्धान्त (अर्थात तटस्थता-वक्र सिद्धान्त) तटस्थता-सम्बन्ध की सर्वव्यापकता की बात को बहुत बढा कर कहता है, परन्तु तटस्थता-सम्बन्ध की सम्भावना को न मानना (जैसा कि मजबूत-क्रम परिकल्पना मानती है) निश्चित रूप से एक-दूसरे

---

[24] If we assume strong ordering hypothesis then the choice of A by the consumer shows that the consumer has a definite preference for A over all other available combinations which are rejected by him In Samuelson's language, he 'reveals his preference' for A over the rejected positions. Thus, there is no relation of indifference between any two combinations and we get a definite piece of information about his preference from the observation of his behaviour.

[25] "If the consumer's scale of preferences is weakly ordered, then his choice of a particular position A (in figure 1) does not show (or 'reveal') that A is preferred to any rejected position within or on the triangle; all that is shown is that there is no rejected position which is preferred to A. It is perfectly possible that some rejected position may be indifferent to A; the choice of A instead of that rejected position is then a matter of chance."

सिरे की ओर जाना होगा। यह निश्चित है कि वास्तविक उपभोक्ताओं के समक्ष कभी-कभी ऐसे विकल्प आते है जिनके प्रति वे तटस्थ होते हैं; यदि आदर्श-उपभोक्ता के बारे मे यह मान लिया जाता है कि उसके समक्ष ऐसे तटस्थ-विकल्प (indifferent alteratives) नहीं होंगे, तो वह वास्तविक उपभोक्ता की भाँति नही होगा। यदि यह पूछा जाता है कि उपभोक्ता के समक्ष ऐसे विकल्प आते हैं तो वह क्या करेगा। निश्चित रूप से इसका उत्तर होगा कि वह एक निर्णय लेगा, परन्तु वह निर्णय ऐसे आधारों पर होगा जिनको विचाराधीन नही रखा गया; उदाहरणार्थ, उसका चुनाव (या निर्णय) इस बात पर निर्भर कर सकता है कि वह पहले क्या कर रहा था। स्थैतिक सिद्धान्त (जैसा कि हम मान कर चले है) की दृष्टि से, ऐसा निर्णय एक आकस्मिक-बात (chance) हो सकती है। परन्तु, इस अर्थ मे, आकस्मिक बात एक ऐसी बात नही है जिसको छोड दिया जाये।"[26]

इस प्रकार हिक्स यह अनुभव करते हैं कि माँग सिद्धान्त को, अपने संशोधित रूप (अर्थात, प्रकट-अधिमान सिद्धान्त के रूप) मे भी, कमजोर-क्रम पर आधारित होना चाहिए—मुख्यतया इस कारण कि कमोजर-क्रम एक कम-सीमित मान्यता (less restrictive assumption) है।

2. हिक्स के अनुसार, "यदि हम अधिमान-परिकल्पना का अर्थ मजबूत-क्रम से लगायें, तो हमारे लिए यह मानना कठिन होगा कि त्रिकोण aOa के भीतर अथवा उसकी परिधि-रेखा पर सभी रेखागणितीय बिन्दु (geometrical points) प्रभावपूर्ण विकल्पों को बताते हैं, क्योंकि किन्ही भी दो संयोगो के बीच तटस्थता का कोई सम्बन्ध नही हो सकता है।"[27]

पुन, जैसा कि हिक्स बताते है, मजबूत-क्रम यह मानता है कि वस्तुएँ केवल पूर्ण इकाइयों (discrete units) मे ही प्राप्य होती है।[28] "यह बिलकुल सही है कि वास्तविक उपभोक्ताओ द्वारा खरीदी जाने वाली वास्तविक वस्तुएँ पूर्ण इकाइयों (discrete units) मे बेची जाती हैं; आप बिजली के लैम्प का एक टुकड़ा (fraction) नही खरीद सकते, तथा दुकानदार एक पौंड मक्खन के अत्यन्त छोटे हिस्से (very odd fractions) बेचने के लिए अनिच्छुक (unwilling) होते है।

---

[26] "The older theory (of indifference curves) may have exaggerated tne omni-presence of indifference; but to deny its possibility (as in the strong ordering hypothesis) is surely to run to the other extreme. It is surely the case that actual consumers do sometimes find themselves confronted with alternatives between which they are indifferent; if the ideal consumer is made incapable of being faced with such alternatives he is being made more unlike an actual consumer than he need be. If it is asked just what he will do when he is confronted with such alternatives, the answer must surely be that he will make a decision, but he will make it on grounds that have been excluded from consideration; his choice may depend, for instance, upon what he was doing *previously* From the standpoint of a *static* theory, such as ours, such decision is a matter of chance But chance, in this sense, is not a thing which ought to be excluded"

[27] According to Hicks, "If we interpret the preference hypothesis to mean strong ordering, we can hardly assume that all the geometrical points, which lie within or on the triangle aOa represent effective alternatives" because there cannot be any relation of indifference between any two combinations

[28] The assumption that the commodities are only available in discrete units implies that "the diagram is to be thought of as being drawn on square paper, and the only effective alternatives are the points at the corners of the squares The point A itself must evidently lie at a square corner"

अतः, यह स्पष्ट है कि वस्तु X, जिसको कि हम चित्र मे पड़ी-अक्ष (horizontal axis) पर दिखाते है, पूर्ण इकाइयो मे ही प्राप्य होनी चाहिए ।"[29]

परन्तु यह बात सामूहिक वस्तु M (Composite Commodity M), अर्थात द्रव्य, के सम्बन्ध मे लागू नही होती ; अर्थात सामूहिक वस्तु M को छोटे-छोटे हिस्सों मे विभाज्यनीय समझा जाना चाहिए। "व्यवहार मे, वस्तु M को हम सामान्यतया द्रव्य समझते है, जिसको कि बचा कर रखा जाता है ताकि वस्तु X के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को खरीदा जा सके। यद्यपि गणितात्मक अर्थ मे द्रव्य अत्यन्त छोटे हिस्सों मे विभाज्यनीय नही है, परन्तु द्रव्य की सबसे छोटी इकाई, अन्य वस्तुओ को इकाई की तुलना मे, इतनी छोटी होती है कि द्रव्य के अपूर्ण विभाज्यनीयता (imperfect indivisibility) की बात व्यवहार मे कोई महत्व नही रखती।"[30]

"इन कारणों के परिणामस्वरूप, यद्यपि वास्तविक वस्तु X की पूर्ण इकाइयो मे प्राप्यता की बात को एक सैद्धान्तिक सुधार कहा जा सकता है, परन्तु सामूहिक वस्तु M के सम्बन्ध मे अविभाज्यता की बात करना कोई सुधार नही है। यह अधिक उचित है कि M को अत्यन्त छोटे हिस्सो मे विभाज्यनीय समझा जाये।"[31]

उपर्युक्त विवरण के सन्दर्भ मे अब हम चित्र 2 पर विचार करते है। हिक्स के अनुसार,
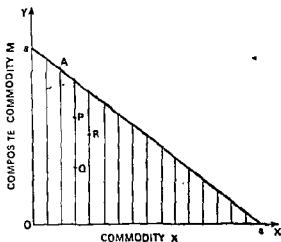
चित्र 2

[29] "It is quite true that the actual commodities purchased by actual consumers are usually sold in discrete units ; you cannot buy a fraction of an electric lamp, and shopkeepers are unwilling to sell very odd fractions of a pound of butter Thus, it is intelligible that the actual conmodity X, which we are measuring along the horizontal axis of our diagram, should only be available in an integral of units "

[30] "In practice, we should usually think of M as being money held back for the purchase of other commodities than X , though money is not finely divisible in a mathematical sense, the smallest monetary unit (farthing or cent or paisa) is so small in relation to the other units with which we are concerned that the imperfect divisibility of money is in practice a thing of no importance "

[31] For these reasons, while it is a theoretical improvement to be able to regard the actual commodity X as available in discrete units, it is no improvement at all to be obliged to impute the same indivisibility to the composite commodity M. It is much better to regard M as finely divisible "

जब एक उपभोक्ता के समक्ष वस्तु X है (जिसे X-अक्ष पर दिखाया गया है) और जो कि पूर्ण इकाइयो (discrete units) मे, प्राप्य है, तथा सामूहिक वस्तु (अर्थात द्रव्य) M है जो कि अत्यन्त छोटे हिस्सो मे विभाज्यनीय (finely divisible) है, तो एकसमान पसन्द किये जाने वाले संयोगो की सम्भावना (अर्थात कमजोर-क्रम की सम्भावना) को स्वीकार करना चाहिए तथा मजबूत-क्रम को त्याग देना चाहिए। प्रो० हिक्स के शब्दो मे ;

> यदि द्रव्य अत्यन्त छोटे भागो मे विभाज्यनीय है और वास्तविक वस्तु X पूर्ण इकाइयों मे प्राप्य है, तो "हम अधिमान-परिकल्पना के मजबूत-क्रम के स्वरूप को लेकर नही चल सकते। इसका कारण है कि प्रभावपूर्ण विकल्पों को अब चौकोर कोनो (square corners)[32] द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता, उनको चित्र मे (देखिए चित्र-2 को) समानान्तर रेखाओ या पट्टियो (parallel lines or stripes) की एक शृंखला (series) द्वारा दिखाया जायगा। इन रेखाओं में से किसी भी एक रेखा पर कोई एक बिन्दु एक प्रभावपूर्ण विकल्प (effective alternative) होगा। इस प्रकार के विकल्पो को मजबूत-क्रम में नही रखा जा सकता, जब तक कि एक सम्पूर्ण रेखा को, दूसरी अगली सम्पूर्ण रेखा की तुलना मे, पसन्द नही किया गया हो, इत्यादि। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई को सदैव पसन्द कर सकेगा, चाहे उसके लिए उपभोक्ता को कुछ भी देना पडे—यद्यपि वह M की अधिक मात्रा को, कम मात्रा की तुलना मे, पसन्द करेगा, जबकि वस्तु X की मात्रा जो कि उसके पास है अपरिवर्तित (unchanged) रहे। यह मान्यता लगभग मूर्खतापूर्ण है, और इसको छोड़ा जा सकता है। यदि, दूसरी ओर, एक ही रेखा पर दो बिन्दु P तथा Q हैं और वे इस प्रकार है कि बिन्दु P को, दूसरी रेखा पर बिन्दु R की तुलना मे, पसन्द किया जाता है, और R को Q की तुलना मे पसन्द किया जाता है, तो हम P तथा Q के बीच मे सदैव एक ऐसे बिन्दु को मालूम कर सकते हैं जो कि R के प्रति तटस्थ हो, और इस प्रकार हम मजबूत-क्रम को नही बनाये रख सकते। जैसे ही हम निरन्तरता की न्यूनतम मात्रा (smallest degree of continuity) को शामिल कर लेते है [जैसा कि 'रेखाओ-की-परिकल्पना' ('stripped' hypothesis) मे है], तो मजबूत-क्रम को त्याग देना होगा।"[33]

इस प्रकार हम देखते है कि उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप हिक्स मजबूत-क्रम परिकल्पना को त्याग देते हैं और कमजोर-क्रम परिकल्पना को स्वीकार करते है।

कमजोर-क्रम तथा 'अतिरिक्त-परिकल्पना' (Weak Ordering and '*Additional Hypothesis*')

अब हम कमजोर-क्रम की थोडी और व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उपभोक्ता के वास्तविक व्यवहार को देखकर हमे कमजोर-क्रम परिकल्पना के द्वारा बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है

---

[32] इस सन्दर्भ में पृष्ठ 846 पर फुटनोट नं० 28 को भी देखिए।

[33] If money is finely divisible and the actual commodity X is available in discrete units "we cannot maintain the strong form of the preference hypothesis For the effective alternatives are no longer represented by square corners ; they will appear on the diagram as a series of parallel lines or stripes (as shown in fig 2) Any point on one of these stripes is an effective alternative Now such alternatives as these cannot be strongly ordered, unless the *whole* of one stripe was preferred to the *whole* of the next stripe, and so on ; which means that the consumer could always prefer an additional unit of X, whatever he had to pay for it—though he would prefer a larger amount of M to a smaller, if the amount of X which he had was unchanged. This assumption is nearly non-sensical, and can be ruled out If, on the other hand, there are two points P and Q on the same stripe, which are such that P is preferred to R on another stripe, while R is preferred to Q, we could always find a point between P and Q which was indifferent to R, so that we could not maintain strong ordering. As soon as we introduce the smallest degree of continuity (such as is introduced by the 'stripped' hypothesis), strong ordering has to be given up."

अपेक्षाकृत मजबूत-क्रम परिकल्पना के द्वारा।[34] प्रो० हिक्स स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं और कमजोर-क्रम परिकल्पना को अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से वे एक 'अतिरिक्त-परिकल्पना' को शामिल करते हैं। 'अतिरिक्त-परिकल्पना' (*additional hypothesis*) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है—

> एक उपभोक्ता M की अधिक मात्रा को, कम मात्रा की तुलना में, सदैव पसन्द करेगा, यदि X की मात्रा जो कि उसे प्राप्य है अपरिवर्तित रहती है।[35]

यह जोर देने की बात है कि यदि हम मजबूत-क्रम परिकल्पना की मान्यता को लेकर चलते हैं, तो हमें इस अतिरिक्त-परिकल्पना को मानने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। परन्तु अतिरिक्त-परिकल्पना एक अत्यन्त विवेकयुक्त (reasonable) परिकल्पना है जो कि बिना विशेष ध्यान आकर्षित किये हुए प्रायः आर्थिक विश्लेषण में 'अनजाने में प्रवेश' (slip) कर जाती है। परन्तु स्थिति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इस अतिरिक्त-परिकल्पना की ओर ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है।[36]

अब हम अतिरिक्त-परिकल्पना के सहारे के साथ कमजोर-क्रम के प्रभावों की विवेचना करेंगे (We shall now examine the effects of weak ordering supported by the additional hypothesis)। इसको चित्र—3 की सहायता से समझायेंगे। माना कि उपभोक्ता त्रिकोण aOa के अन्दर तथा उसके ऊपर (अर्थात् उसकी परिधि-रेखा (यानी boundary) पर प्राप्य सभी संयोगों में से A को चुनता है। A के चुनाव के अभिप्रायों (implications) को नीचे दिया गया है—
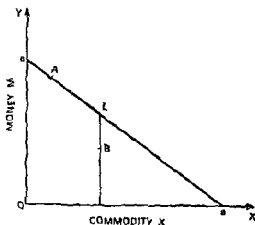
चित्र 3

1. कमजोर-क्रम के अन्तर्गत A का चुनाव, त्रिकोण के अन्दर स्थित B की तुलना में, अपने आप में यह नहीं बताता कि A को पसन्द किया जाता है B की तुलना में; केवल यह कहा जा सकता है कि B को, A की तुलना में, पसन्द नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में, या तो A को B की तुलना में पसन्द किया जाता है अथवा A तथा B तटस्थ हैं। [अगले चरण (step) में हम यह स्पष्ट करेंगे कि A तथा B तटस्थ नहीं हैं।][37]
2. अब हम अतिरिक्त-परिकल्पना की सहायता लेते हैं; इसकी सहायता से हम यह बता सकेंगे कि A तथा B के बीच तटस्थता का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। अब

---

[34] इस बात की विवेचना हम पहले कर चुके हैं।

[35] "The consumer will always *prefer* a larger amount of M to a smaller amount of M, provided that the amount of X at his disposal is unchanged."

[36] "It must be emphasised that this is an additional hypothesis, which does not need to be made if we can assume strong ordering. But it is an exceedingly reasonable hypothesis, which has frequently *slipped* into economic analysis without having any special attention drawn to it." But attention should be drawn to it for clear understanding.

[37] Under weak ordering the selection or choice of A over a position B within the triangle "does not itself tell us that A is preferred to B; all it does tell us that B is not preferred to A. That is, either A is preferred to B, or A and B are indifferent." [In the next step we shall show that A and B cannot be indifferent.]

हमे स्थिति L को लेते हैं, L मौजूद है a a रेखा तथा B से गुजरती हुयी खड़ी रेखा के कटाव (intersection) पर। अतिरिक्त-परिकल्पना के आधार पर L को पसन्द किया जाता है B की तुलना मे, क्योकि L द्रव्य की अधिक मात्रा को बताता है अपेक्षाकृत B के, जबकि दोनों स्थितियो मे X की मात्रा समान रहती। अब, "यदि A तथा B तटस्थ हैं, तो कमजोर-क्रम की संक्रमकता (transitivity) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि L को पसन्द किया जाता है A की तुलना मे। परन्तु L स्वयं एक ऐसी स्थिति है जिसको A की तुलना मे त्याग दिया गया है, यद्यपि L तटस्थ हो सकता है A के प्रति; परन्तु L को A की तुलना में पसन्द नही किया जा सकता। अतः इस विकल्प (alternative) को, कि A तथा B तटस्थ है, समाप्त कर देना चाहिए।"[38]

3. इस प्रकार कमजोर-क्रम के अन्तर्गत भी, अतिरिक्त-परिकल्पना की सहायता से, यह सिद्ध करना सम्भव है कि वास्तव मे चुनाव की गयी स्थिति (जैसे चित्र-3 मे A) त्रिकोण के अन्दर किसी भी अन्य स्थिति (जैसे चित्र-3 मे B) की तुलना मे पसन्द की जाती है।

4. परन्तु कमजोर-क्रम, अतिरिक्त-परिकल्पना का सहारा लेकर भी, यह नही बता सकता कि A पसन्द किया जाता है L की तुलना मे। दूसरे शब्दो मे, कमजोर क्रम यह नही बता सकता कि चुनी हुयी स्थिति (A) को पसन्द किया जाता है दूसरी अन्य स्थिति (L) की तुलना मे जो कि उसी रेखा a a पर मौजूद है।[39]

निष्कर्ष (Conclusion)

मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम के अर्थों तथा अभिप्रायों की विवेचना करने के बाद उन दोनों में अन्तर के सम्बन्ध मे हम निम्नलिखित मुख्य निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

1. "मजबूत-क्रम के अन्तर्गत चुनी हुयी स्थिति स्पष्ट रूप से पसन्द की जाती है त्रिकोण के अन्दर तथा उसके ऊपर अन्य सभी स्थितियो की तुलना मे; जबकि कमजोर-क्रम के अन्तर्गत चुनी हुयी स्थिति पसन्द की जाती है त्रिकोण के अन्दर सभी स्थितियो की तुलना मे, परन्तु उसी परिधि-रेखा पर अन्य स्थितियों की तुलना मे चुनी हुयी स्थिति तटस्थ हो सकती है।"[40]

2. "इन दो परिकल्पनाओं (अर्थात् मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम) के प्रभावों के बीच यह अन्तर, नि.सन्देह, बहुत मामूली अन्तर है; यह अन्तर केवल सीमा की स्थितियों (limiting cases) के एक वर्ग को प्रभावित करता है (अर्थात् उन स्थितियों को प्रभावित करता है जो कि त्रिकोण की परिधि-रेखा पर मौजूद होती है)। कमजोर-क्रम सिद्धान्त अधिक सहन-शक्ति (larger tolerance) रखता है और इसलिए यह इन सीमा की स्थितियों की कुछ अधिक अच्छी विवेचना करता है।"[41]

---

[38] *Now*, "*If A and B are indifferent, it will follow from the transitivity of weak ordering* that L is preferred to A But L is itself one of the positions which has been rejected in favour of A, though it (that is, L) may be indifferent to A, it cannot be preferred to A. *Thus, the alternative that A and B are indifferent must be ruled out.*"

[39] But weak ordering, even with the help of additional hypothesis, cannot tell that A is preferred over L, in othes words, *weak ordering cannot tell that the chosen position (A) is preferred over another position (L) which also lies on the line a a*

[40] "Under strong ordering the chosen position is shown to be preferred to all other positions *in* and *on* the triangle, while under weak ordering it is preferred to all positions *within* the triangle, but may be indifferent to other positions on the same boundary as itself."

[41] "This difference between the effects of the two hypotheses (that is, strong ordering and weak ordering) is, of course, very slight; it merely affects a class of limiting cases (that is, the positions on the boundary line of the triangle) The weak theory has a larger tolerance, and therefore it deals with these limiting cases rather better."

3. मजबूत-क्रम असतति (discontinuity) अथवा वस्तुओं की अविभाज्यता (indivisibility) को मान्यता देता है, जबकि कमजोर-क्रम यह बताता है कि सामूहिक वस्तु (composite commodity) अर्थात् द्रव्य अत्यन्त छोटे हिस्सों में विभाज्यनीय है और इस प्रकार कमजोर-क्रम निरन्तरता या विभाज्यनीयता की कुछ मात्रा (some degree of continuity and divisibility) को मान्यता देता है। हिक्स के शब्दों में, "यदि हम मजबूत-क्रम दृष्टिकोण लेते हैं तो हम असतति (discontinuity) को मानते हैं; केवल वस्तु-विशेष, जिसकी माँग का अध्ययन किया जा रहा है, के सम्बन्ध में तो असतति को माना ही जाता है बल्कि सामूहिक वस्तु, जो कि पृष्ठभूमि (background) में प्रयोग की जाती है, के सम्बन्ध में भी असतति को माना जाता है। दूसरी ओर यदि हम कमजोर-क्रम दृष्टिकोण को लेते हैं तो हम निरन्तरता (continuity) की कुछ मात्रा को मानते हैं—पृष्ठभूमिगत-वस्तु (background commodity) (अर्थात् द्रव्य) की विभाज्यनीयता स्वयं इस बात को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त है कि कमजोर-क्रम दृष्टिकोण व्यवहारिक है।"[4]

4. मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम में अन्तर कुछ मान्यताओं के आधार पर है। कमजोर-क्रम दो अतिरिक्त मान्यताओं (two additional assumptions) को मानकर चलता है—(i) अतिरिक्त-परिकल्पना (additional hypothesis), अर्थात्, एक उपभोक्ता द्रव्य की अधिक मात्रा को, कम मात्रा की तुलना में, पसन्द करता है, जबकि वास्तविक वस्तु (actual commodity) की मात्रा समान रहती है। (ii) अधिमान-क्रम संक्रमक होता है (preference order is transitive)। मजबूत-क्रम के सम्बन्ध में ये मान्यताएँ नहीं मानी जाती हैं।

प्रत्यक्ष संगति कसौटी
(DIRECT CONSISTENCY TEST)

प्राक्कथन (Introduction)

सेम्युलसन की भाँति, हिक्स भी विभिन्न परिस्थितियों में उपभोक्ता के व्यवहार के सम्बन्ध में **चुनावों की संगति** (*consistency of choices*) पर विचार करते हैं। इस सन्दर्भ में हिक्स निम्नलिखित मान्यताओं (*assumptions*) के आधार पर शुरू करते हैं—

(i) उपभोक्ता एक आदर्श-उपभोक्ता है; अर्थात् उपभोक्ता अपने व्यवहार में विवेकपूर्ण (rational) है।

(ii) दो वस्तुओं की सरल स्थिति (simple case of two commodities) को लेकर चलता है—एक वस्तु X है तथा दूसरी वस्तु M है जो कि एक 'सामूहिक वस्तु' (*composite commodity*) या 'सामान्यकृत वस्तु' (*généralised commodity*) है; इसका अभिप्राय है कि M सामूहिक रूप से अन्य सभी वस्तुओं का प्रतिनिधित्व (representation) करता है; दूसरे शब्दों में, M द्रव्य (money) को बताता है।

(iii) यह मान लिया जाता है कि वस्तु X की कीमत तथा उपभोक्ता की आय परिवर्तन होता है।

(iv) आदर्श-उपभोक्ता की 'पसन्द का पैमाना' (scale of preference) अपरिवर्तित (unchanged) रहता है।

---

[4] "If we take strong ordering approach, we are committing ourselves to discontinuity; not merely to the indivisibility of the particular commodity, demand for which is being studied, but also to the indivisibility of the composite commodity used as background. If, on the other hand, we take the weak ordering approach, we are committing ourselves to some degree of continuity—but divisibility of the background commodity (that is, money) is itself quite sufficient to ensure that the weak approach is practicable."

(v) हिक्स की प्रकट-अधिमान परिकल्पना कमजोर-क्रम पर आधारित है, जबकि सेम्युलसन की प्रकट-अधिमान परिकल्पना मजबूत-क्रम पर आधारित है।

परन्तु 'चुनाव की संगति' (consistency of choice) का विश्लेषण करते समय प्रो० हिक्स मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों पर विचार करते है।

उपर्युक्त मान्यताओ के आधार पर हिक्स एक आदर्श-उपभोक्ता के वास्तविक या अवलोकित व्यवहार (actual or recorded behaviour) की जाँच करने का प्रयत्न करते हैं; अर्थात्, वह इस बात की जाँच करने का प्रयत्न करते है कि विभिन्न स्थितियों मे आदर्श-उपभोक्ता वस्तुओं के वास्तविक चुनावों मे संगति (consistency in actual choices of commodities) दिखाता है या नहीं। इस सन्दर्भ मे हिक्स ने यह भी बताया है कि आदर्श उपभोक्ता कुछ अवसरो पर अपने वास्तविक चुनावो में असंगतपूर्ण (inconsistent) हो सकता है।

'उपभोक्ता के चुनाव' या 'उपभोक्ता के व्यवहार' के सन्दर्भ मे 'संगति या असंगति' (consistency or inconsistency) की इस प्रकार की जाँच को प्रो० हिक्स '**प्रत्यक्ष संगति जाँच या कसौटी**' (*Direct Consistency Test*) कहते हैं।

'प्रत्यक्ष संगति कसौटी' पर एक पृष्ठभूमिगत नोट (A Background Note on Direct Consistency Test)

चित्र नं० 4 मे वस्तु X को X-अक्ष पर तथा सामूहिक वस्तु M (अर्थात् द्रव्य) को Y-axis पर दिखाया गया है। माना कि, उपभोक्ता की आय तथा वस्तु X की कीमत दी हुयी है, तो उपभोक्ता के समक्ष संयोगों के सम्बन्ध मे जो वैकल्पिक चुनाव (alternative choices regarding the combinations) मौजूद है वे त्रिकोण a O a के अन्दर तथा उसके ऊपर बिन्दुओं द्वारा बताये जाते हैं। उपभोक्ता द्वारा वास्तव मे चुनाव किये गये संयोग को रेखा a a पर बिन्दु A बताता है। मजबूत-क्रम के अन्तर्गत (अर्थात् सेम्युलसन के दृष्टिकोण के अनुसार) इसका अभिप्राय है कि A को, त्रिकोण a O a के अन्दर तथा उसकी परिधि-रेखा पर सभी संयोगो की तुलना मे, पसन्द किया जाता है। परन्तु कमजोर-क्रम परिकल्पना के अन्तर्गत इसका अभिप्राय है कि A को त्रिकोण a O a के अन्तर्गत सभी स्थितियों या संयोगों की तुलना मे पसन्द किया जाता है, परन्तु उसको रेखा a a पर सभी स्थितियों या संयोगों की तुलना में या तो पसन्द किया जाता है या वह इन सब स्थितियों के प्रति तटस्थ है।
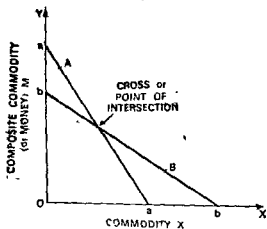
चित्र 4

अब हम बाजार की एक दूसरी स्थिति लेते हैं जिसमे कि वस्तु X की कीमत भिन्न है और उपभोक्ता की आय भिन्न हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। माना कि चित्र नं० 4 मे नयी कीमत-आय रेखा (new price-income line) को b b रेखा द्वारा दिखाया गया है। नयी स्थिति में उपभोक्ता के समक्ष प्राप्य संयोगों (combinations) को त्रिकोण b O b के अन्दर तथा उसकी परिधि-रेखा (boundary line) पर बिन्दुओं द्वारा बताया जायेगा। माना कि नयी स्थिति मे b b रेखा पर बिन्दु B उपभोक्ता द्वारा वास्तव मे चुने हुए संयोग (combination) को बताता है। मजबूत-क्रम के अन्तर्गत इसका अभिप्राय है B को, त्रिकोण b O b के अन्दर या परिधि-रेखा boundary line) पर सभी संयोगों की तुलना मे, पसन्द किया जाता है। परन्तु कमजोर-क्रम के अन्तर्गत इसका अभिप्राय है कि B को, त्रिकोण b O b के अन्दर सभी प्राप्य संयोगों की तुलना मे, पसन्द किया जाता है, तथा उसको रेखा b b पर सभी संयोगों की तुलना मे या तो पसन्द किया जाता है या वह इन सब संयोगों के प्रति तटस्थ है।

यदि उपभोक्ता दोनों स्थितियों मे 'पसन्दो के एक समान क्रम' (same scale of preferences) के अन्तर्गत, अर्थात् पसन्दों के अपरिवर्तित पैमाने (unchanged scale of preferences), के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, तो दोनों स्थितियों मे जो पसन्दें प्रकट (reveal) की जाती है वे एक-दूसरे के प्रति संगतिपूर्ण (consistent) होनी चाहिए। प्रो० हिक्स उपभोक्ताओं के चुनावों के सम्बन्ध मे संगति या असंगति (consistency or inconsistency) को मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत देखते है। प्रो० हिक्स 'संगति-कसौटी' (consistency test) को 'विभिन्न परिस्थितियों' (*various situations*) तथा 'विशेष स्थितियों के समूह' (*group of special cases*) में लागू करते है।

संगति-कसौटी : "विभिन्न परिस्थितियाँ" (Consistency Test : "Various Cases")

यह ज्ञात करने के लिए कि उपभोक्ता का व्यवहार संगतिपूर्ण है अथवा असंगतिपूर्ण, हम A तथा B दो स्थितियों का एक सरलीकृत उदाहरण (a simplified example) लेते है। इसके अतिरिक्त, A तथा B वस्तुओं के संयोगो को क्रमश: (respectively) A-स्थिति तथा B-स्थिति मे बताते है। मजबूत-क्रम के अन्तर्गत उपभोक्ता का व्यवहार असंगतिपूर्ण (inconsistent) होगा यदि वह स्थिति-A मे संयोग-A को पसन्द करता है अपेक्षाकृत संयोग-B के, परन्तु स्थिति-B मे संयोग-B को पसन्द करता है अपेक्षाकृत संयोग-A के, जबकि उसको दोनों संयोग A तथा B दोनों परिस्थितियों मे प्राप्य है। इस प्रकार मजबूत-क्रम के अन्तर्गत अन्य किसी प्रकार की असंगति पर विचार नही किया जा सकता। परन्तु कमजोर-क्रम के अन्तर्गत हमे तटस्थता की सम्भावना पर भी विचार करना होगा।[48]

प्रो० हिक्स जिन विभिन्न स्थितियों मे 'संगति-कसौटी' को लागू करते है वे नीचे दी गयी है—

1. एक स्थिति मे यह सम्भव है कि दो अवसर-रेखाओं (opportunity lines) अथवा कीमत-आय रेखाओं (price-income lines) मे से एक रेखा दूसरी रेखा के बिलकुल बाहर हो। ऐसी स्थिति को चित्र नं० 5 मे दिखाया गया है जिसमें a a कीमत-आय रेखा b b रेखा के बिलकुल बाहर मौजूद है। पहली स्थिति मे, अर्थात् A-स्थिति मे, उपभोक्ता संयोग-A को संयोग-B की तुलना मे पसन्द करता है (मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत) क्योंकि बिन्दु B त्रिकोण a O a के अन्दर है। दूसरी स्थिति में, अर्थात् B-स्थिति मे, संयोग-A प्राप्य नही है और उपभोक्ता संयोग-B को चुनता है। अत. उपभोक्ता का व्यवहार संगतिपूर्ण (consistent) है,
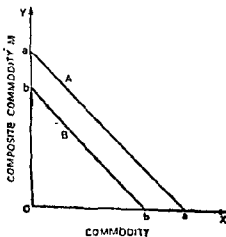
चित्र 5

[48] In order to find out whether the consumer's behaviour is consistent or inconsistent, we take a simplified example of two situations A and B. Further, A and B also indicate combinations of goods in the A-situation and in the B-situation respectively. Under strong ordering, consumer behaviour will be inconsistent if he prefers combination A to combination B in the A-situation, and whereas he prefers combination B to combination A in the B-situation, when both the combinations A and B are available to him in both the situations. Thus, under strong ordering, there is no other sort of inconsistency to be considered. But under weak ordering, we have also to consider to possibility of indifference.

यदि वह A-स्थिति मे A को चुनता है B की तुलना में, और यदि वह B-स्थिति में चुनता है संयोग B को क्योंकि दूसरी स्थिति (अर्थात् B-स्थिति) मे संयोग A प्राप्य नही है। दूसरे शब्दो मे, उपभोक्ता के व्यवहार मे कोई असंगति (inconsistency) नही है।

2. यदि एक कीमत-आय रेखा (या अवसर रेखा) दूसरी कीमत-आय रेखा के बिलकुल बाहर (outside) नही है, ये दो रेखाएँ एक-दूसरे को किसी बिन्दु पर काटेंगी जैसाकि चित्र—6 में है। चित्र मे कीमत-आय रेखाओं a a तथा b b के कटाव बिन्दु को 'क्रास' (Cross) कहा गया है। चित्र से स्पष्ट है कि रेखा a a 'क्रास' के बाँयी ओर (यानी left को) दूसरी रेखा के बाहर है और इसलिए a a रेखा ऊँची आय (higher income) को बताती है।
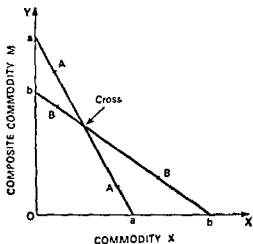
चित्र 6

जब दो कीमत-आय रेखायें (या अवसर-रेखायें) एक बिन्दु पर काटती है (जैसा कि चित्र-6 मे दिखाया गया है), तो चार मुख्य सम्भव स्थितियाँ (*four main possible cases*) हो सकती हैं जो कि नीचे दी गयी हैं; चारो स्थितियों को एक ही चित्र (अर्थात् चित्र नं० 6) मे दिखाया गया है—

(i) पहले, हम उस स्थिति को लेते है जिसमे कि दोनों चुनी हुयी स्थितियाँ A तथा B 'क्रास' के बाँयी ओर हैं (देखिए चित्र—6)। A-स्थिति में, संयोग B त्रिकोण aOa के अन्दर है। इसलिए, मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनो के अन्तर्गत, उपभोक्ता A को पसन्द करता है B की तुलना मे। B-स्थिति मे संयोग A प्राप्य नही है; इसलिए यदि उपभोक्ता B-स्थिति मे संयोग B को चुनता है तथा A-स्थिति मे संयोग A को चुनता है जिसमे A तथा B दोनो प्राप्य है तो उपभोक्ता का चुनाव संगतिपूर्ण (consistent) है।[44]

(ii) अब हम ऐसी स्थिति को लेते है जिसमे कि बिन्दु A तथा B दोनों 'क्रास' के दाँयी ओर (अर्थात् right को) है (देखिये चित्र—6)। स्थिति-B में, उपभोक्ता मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत संयोग B को चुनेगा संयोग A की तुलना मे, क्योंकि A त्रिकोण b O b के अन्दर है। A-स्थिति मे सयोग B प्राप्य नही है और उपभोक्ता A-स्थिति मे संयोग A को चुनता है। इस प्रकार, यदि उपभोक्ता B-स्थिति में संयोग B को चुनता है A की तुलना मे तथा A-स्थिति मे संयोग A को चुनता है जिस स्थिति मे B प्राप्य नही है, तो उपभोक्ता का व्यवहार संगतिपूर्ण (consistent) है।

(iii) अब हम ऐसी स्थिति लेते है जिसमे कि दोनो बिन्दु (A तथा B) क्रास के बाहर है तथा ऊपर है—बिन्दु A क्रास के बाँयी ओर है तथा बिन्दु B क्रास

---

[44] In the A-situation, combination B lies within the triangle aOa, hence the consumer prefers A over B under strong ordering as well as weak ordering. In the B-situation, combination A is not available, therefore the consumer's choice of B in the B-situation is consistent with his choice for A in the A-situation where both A and B are available.

के दाँयी ओर है (देखिए चित्र—6)। B-स्थिति में चुना हुआ संयोग A प्राप्य नहीं है तथा A-स्थिति में चुना हुआ संयोग B प्राप्य नहीं है। अतः मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत उपभोक्ता का व्यवहार असंगतिपूर्ण (inconsistent) नहीं है और एक संयोग के लिए, दूसरे संयोग की तुलना में, उपभोक्ता की पसन्द के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

(iv) हम ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें कि दोनों बिन्दु (A तथा B) क्रास के नीचे या अन्दर (inside the cross) है—बिन्दु B क्रास के बाँयी ओर है तथा बिन्दु A क्रास के दाँयी ओर है (देखिए चित्र—6)। इस स्थिति में उपभोक्ता के व्यवहार में असंगति (inconsistency) है। A-स्थिति में, मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत, उपभोक्ता संयोग A को, B की तुलना में, चुनेगा क्योंकि बिन्दु B त्रिकोण a O a के अन्दर है। परन्तु B-स्थिति में, मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत, वह संयोग B को चुनेगा संयोग A की तुलना में क्योंकि संयोग A त्रिकोण b O b के अन्दर है। इस प्रकार जब A तथा B दोनों प्राप्य है तो उपभोक्ता एक स्थिति में संयोग A को चुनता है और दूसरी स्थिति में संयोग B को चुनता है। इस प्रकार, मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत, उपभोक्ता का व्यवहार असंगतिपूर्ण (inconsistent) है।

संगति-कसौटी : "विशेष स्थितियों का समूह" (Consistency Test : "Group of Special Cases")

यहाँ पर हम पुन. यह मानकर चलते हैं कि दो कीमत-आय रेखायें एक-दूसरे को एक बिन्दु पर काटती है, इस कटाव-बिन्दु को हम 'क्रास' (Cross) कहेंगे; देखिए चित्र-7 को। यहाँ पर निम्न तीन विशेष स्थितियों (*three special cases*) की विवेचना प्रस्तुत करेंगे—

(i) एक बिन्दु क्रास पर है तथा दूसरा बिन्दु क्रास के बाहर (outside) है। चित्र—7 में, माना कि एक चुना गया संयोग या बिन्दु A क्रास पर है तथा दूसरा चुना गया बिन्दु B क्रास के बाहर है और यह बिन्दु A के दाँयी तरफ है। यहाँ पर A-स्थिति में बिन्दु B प्राप्य नहीं है। इसलिए मजबूत-क्रम के अन्तर्गत उपभोक्ता की, A-स्थिति में संयोग A के लिए पसन्द तथा B-स्थिति में संयोग B की पसन्द असंगतिपूर्ण (inconsistent) नहीं है। परन्तु B-स्थिति में A तथा B दोनों प्राप्य है, और मजबूत-क्रम के अन्तर्गत उपभोक्ता B को, A की तुलना में, पसन्द करता है; यहाँ पर उपभोक्ता के व्यवहार को असंगतिपूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि A-स्थिति में बिन्दु B प्राप्य नहीं था। परन्तु कमजोर-क्रम के अन्तर्गत, या तो B पसन्द किया जाता है A की तुलना में अथवा B तटस्थ है A के प्रति, क्योंकि दोनों बिन्दु एक ही रेखा b b पर हैं।

चित्र 7

(ii) अब हम दूसरी विशेष स्थिति को लेते हैं। एक बिन्दु क्रास पर है तथा दूसरा बिन्दु क्रास के नीचे या अन्दर (inside the cross) है। चित्र—7 में एक चुना गया बिन्दु A क्रास पर है तथा दूसरा चुना गया बिन्दु B क्रास के नीचे या अन्दर है और यह बिन्दु A के बाँयी ओर है। इस अवस्था में असंगति (inconsistency) होगी। A-स्थिति में बिन्दु B त्रिकोण a O a के अन्दर है, इसलिए मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम दोनों के अन्तर्गत बिन्दु A को पसन्द किया जाता है बिन्दु B की
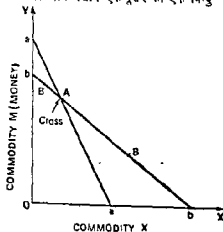
तुलना में। परन्तु B-स्थिति में, कमजोर-क्रम के अन्तर्गत, उपभोक्ता द्वारा बिन्दु B की पसन्द का अभिप्राय (implication) है कि या तो B को पसन्द किया जाता है A की तुलना में अथवा B तटस्थ है A के प्रति, क्योंकि दोनों बिन्दु एक ही रेखा b b पर हैं। परन्तु यहाँ पर उपभोक्ता का व्यवहार असंगतिपूर्ण (inconsistent) है, क्योंकि कमजोर-क्रम के अन्तर्गत भी, A-स्थिति में, उपभोक्ता निश्चित रूप से A को पसन्द करता है B की तुलना में। इस प्रकार से उपभोक्ता का व्यवहार *असंगतिपूर्ण है जबकि एक चुना गया बिन्दु A क्रास पर है तथा दूसरा चुना गया* बिन्दु B क्रास के नीचे या अन्दर (inside the cross) है।

(iii) अब हम तीसरी विशेष स्थिति लेते हैं जिसमें कि दोनों बिंदु A तथा B क्रास पर हैं; जैसा कि चित्र—8 में दिखाया गया है। यहाँ पर A-दशा तथा B-दशा दोनों में एक ही स्थिति (position) को चुना जाता है चाहे हम उसे बिन्दु A कहें या बिन्दु B कहें। इस प्रकार-यहाँ पर, एक स्थिति के लिए, दूसरी स्थिति की तुलना में, कोई पसन्द प्रकट नहीं की जाती है और इसलिए कोई असंगति नहीं हो सकती है।
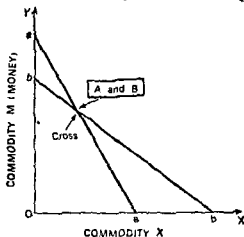
चित्र 8

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण के आधार पर दो वस्तुओं की स्थिति में हम नीचे प्रो० हिक्स के शब्दों में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं—

"इस प्रकार, प्रत्यक्ष-संगति-कसौटी बिलकुल एक ही निष्कर्ष पर पहुँचती है चाहे हम मजबूत-क्रम की मान्यता या कमजोर-क्रम की मान्यता को लेकर चलें। दोनों में से किसी भी मान्यता के आधार पर निम्न दशाओं में असंगति होगी :

(i) जब दोनों बिंदु A तथा B क्रास के अन्दर (within the cross) हैं।

(ii) जब एक बिन्दु क्रास के अन्दर है, तथा दूसरा बिन्दु क्रास पर है परन्तु और किसी स्थिति में नहीं है।"[43]

यद्यपि अधिमान परिकल्पना के दोनों दृष्टिकोण एक ही परिणाम (या निष्कर्ष) प्रस्तुत करते हैं, परन्तु यह बात जोर देने की है कि जिन तर्कों द्वारा परिणाम प्राप्त किया जाता है वे भिन्न हैं। इस प्रकार हम विश्वस्त (confident) नहीं हो सकते कि हम एक समान परिणाम ही प्राप्त करेंगे यदि हम सामान्यीकृत ... को अपनाएँ।[44]

---

[43] "Thus the direct consistency test does after all appear to come out exactly the same, whether we are assuming strong or weak ordering. On either assumption, there is inconsistency :

(i) when both points A and B lie within the cross ;

(ii) when one lies within, and the other at the cross but not otherwise."

[44] "Though the two versions of the preference hypothesis give the same result, it must nevertheless be emphasised that the arguments by which they have attained that result are different. Thus we cannot be confident that we shall continue to find the same identity when we proceed to generalise."

माँग के नियम का निकालना
(DERIVATION OF THE LAW OF DEMAND)

प्राक्कथन (Introduction)

माँग के सिद्धान्त में 'माँग के नियम' अथवा 'एक वस्तु के लिए नीचे को झुकती हुयी माँग रेखा के सिद्धान्त' का निकालना एक आधारभूत बात है।[47]

प्रो० हिक्स 'नीचे को झुकती हुयी माँग रेखा' अथवा 'माँग के नियम' को कमजोर-क्रम परिकल्पना तथा प्रत्यक्ष-संगति कसौटी (weak ordering and direct consistency test) के आधार पर निकालते है। अपने प्रकट-अधिमान परिकल्पना के अन्तर्गत, तटस्थता-वक्र तकनीक की भाँति, प्रो० हिक्स माँगी-मात्रा पर कीमत-परिवर्तन के प्रभाव को दो भागों में बाँटते हैं—'प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect) तथा 'आय-प्रभाव' (income effect)। वह प्रतिस्थापन प्रभाव को संगति-कसौटी या संगति-सिद्धान्त (*consistency test* or *consistency theory*) की सहायता से निकालते हैं ; परन्तु उनके अनुसार आय-प्रभाव अनुभवआश्रित प्रमाण (empirical evidence) पर आधारित है। इस प्रकार प्रो० हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त द्वारा माँग के नियम का निकालना आंशिक रूप से सिद्धान्त[48] (theory) पर तथा आंशिक रूप से अनुभवआश्रित प्रमाण या वास्तविक अवलोकलन पर आधारित है।[49] प्रो० हिक्स के शब्दों में,

> "संगति-सिद्धान्त आय-प्रभावों के सम्बन्ध में कोई विशेष नियम प्रस्तुत नहीं करता ; परन्तु ऐसा होता है कि आय में 'विशुद्ध' परिवर्तनों के प्रभावों के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में अनुभवआश्रित प्रमाण मिलते हैं। अनुभवआश्रित प्रमाण की यह खास विशेषता समस्त दृष्टिकोण के औचित्य (justification) को बताती है। इसका अभिप्राय है कि कड़े रूप में (strictly) माँग का नियम दोगला या मिश्रित (hybrid) है ; इसकी एक टाँग सिद्धान्त पर आधारित है, और दूसरी टाँग अवलोकन पर।"[50]

'माँग के नियम' या 'नीचे को झुकती हुयी माँग रेखा' को निकालने (यानी derive करने) के लिए प्रो० हिक्स दो वैकल्पिक रीतियों (two alternative methods) की विवेचना करते है—

(i) क्षतिपूरक परिवर्तन रीति (*Compensating Variation Method*) ; इस रीति को प्रो० हिक्स ने तटस्थता वक्र विश्लेषण मे, अपनी पुस्तक 'मूल्य तथा पूँजी' ('Value and Capital') मे प्रयोग किया था।

(ii) लागत-अन्तर रीति (*Cost-Difference Method*) ; यह रीति प्रो० सेम्युलसन की देन (contribution) है।

प्रो० हिक्स के अनुसार दोनों रीतियो के अपने गुण हैं, इसलिए दोनों रीतियों को बनाये रखने की आवश्यकता है।

---

[47] The basic proposition in the theory of demand is the derivation of the 'law of demand' or 'the principle that the demand curve for a commodity is downward sloping'

[48] दूसरे शब्दो मे, संगति-सिद्धान्त (consistency theory) द्वारा प्रतिस्थापन प्रभाव मालूम किया जाता है।

[49] आय-प्रभाव के सम्बन्ध मे किसी सिद्धान्त का सहारा नही लिया जाता, बल्कि आय-प्रभाव वास्तविक अवलोकन (actual observation) या अनुभवआश्रित प्रमाण (empirical evidence) की सहायता से मालूम किया जाता है।

[50] "The consistency theory implies no particular rules about such income effects ; but it so happens that there is a good deal of empirical evidence about the effects of 'pure' changes in income. It is this particular characteristic of the empirical evidence which is the justification of the whole approach. It follows that in strictness the law of demand is a hybrid ; it has one leg resting on theory, and one on observation."

माँग के नियम का निकालना : क्षतिपूरक परिवर्तन की रीति (Derivation of the Law of Demand : *Method of Compensating Variation*)

माँग के नियम को निकालने के लिए हम वस्तु X की कीमत मे परिवर्तन का उसकी माँग पर प्रभाव का अध्ययन करेंगे ; अर्थात हम कीमत-प्रभाव (price-effect) पर विचार करेंगे। हम जानते है कि कीमत-प्रभाव मे प्रतिस्थापन-प्रभाव (substitution-effect) तथा आय-प्रभाव (income-effect) शामिल होते हैं। प्रो० हिक्स के अनुसार आय-प्रभाव अनुभवआश्रित प्रमाण (empirical evidence) के आधार पर सिद्ध किया जाता है, संगति-सिद्धान्त (consistency theory) इस सम्बन्ध मे सहायता नही कर सकता। इस प्रकार **सगति-सिद्धान्त के आधार पर माँग के नियम को निकालने में हमारा मुख्य कार्य है प्रतिस्थापन-प्रभाव को अलग (separate) करना, क्योंकि आय प्रभाव अनुभवआश्रित प्रमाण की बात है।**

हम चित्र 9 की सहायता लेते है। सदैव की भाँति सामूहिक वस्तु M, अर्थात् द्रव्य (composite commodity M, that is Money) को Y-अक्ष पर दिखाया गया है, तथा वस्तु X को X-अक्ष या पड़े हुये अक्ष (horizontal axis) पर नापा जाता है ; X-अक्ष को चित्र म नही दिखाया गया है।[51] प्रारम्भ मे हम यह मानकर चलते है कि उपभोक्ता की आय दी हुयी है तथा वस्तु X की कीमत दी हुयी है ; तब कीमत-आय रेखा या अवसर-रेखा (price-income line or opportunity line) की शुरू की स्थिति चित्र 9 मे aa रेखा द्वारा दिखायी गयी है।

अब हम यह मानते है — (i) द्राव्यिक आय समान या स्थिर (constant) रहती है, (ii) वस्तु X की कीमत मे परिवर्तन होता है, माना कि यह घटती है। इसके परिणामस्वरूप अब उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा खरीद सकता है। अब चित्र 9 मे कीमत-आय रेखा की नयी स्थिति bb रेखा द्वारा दिखायी जाती है।

चित्र 9

[51] चित्र 9 मे X-अक्ष या पड़े हुये अक्ष को नही दिखाया गया है ; प्रो० हिक्स ने ऐसा ही किया है। माँग-सिद्धान्त मे हम इस मान्यता के आधार पर चलते हैं कि उपभोक्ता वस्तु X पर अपनी आय का एक छोटा अनुपात (a small proportion) व्यय करता है, तथा अपनी आय का एक बड़ा अनुपात (a large proportion) व्यय नही करता। इस बात को ध्यान मे रखते हुये हम प्रो० हिक्स के कथन को प्रस्तुत करते है—

"जैसा कि यह चित्र सामान्यता खीचा जाता है (अर्थात पड़े हुये अक्ष के साथ), यह बताता है कि उपभोक्ता सम्बन्धित वस्तु पर अपनी आय का एक बहुत बड़ा भाग व्यय करता है। चित्र को खींचने मे, बिना किसी असुविधा के, इस कमी को दूर किया जा सकता है, यदि हम यह मान लें कि पड़ा हुआ अक्ष एक दूरी पर हटा दिया गया है, ताकि पाठक यह कल्पना कर सके कि वह पृष्ठ के निम्नतम भाग (bottom) मे कहीं पर है। वास्तव मे, हमे चित्र के केवल ऊपरी सिरे की आवश्यकता है ; जिसको यहाँ पर बड़े पैमाने पर खीचकर दिखाया गया है।"

प्रो० हिक्स का उपर्युक्त कथन अँग्रेजी भाषा मे इस प्रकार है — "As this diagram is usually drawn (i. e with horizontal axis), it shows the consumer spending a preposterously large proportion of his income on the commodity in question. This defect can be removed, without inconvenience in drawing, if we suppose the horizontal axis to be removed to a distance, so that the reader is left to imagine it to be somewhat at the botton of the page It is in fact only the top end of the diagram which we need ; that is shown here drawn on a large scale."

खड़े अक्ष (vertical axis) पर बिन्दु a तथा b एक ही है।[52] परन्तु नयी रेखा bb पहली रेखा aa के बिलकुल बाहर होगी क्योंकि X वस्तु की कीमत घट गयी है।

अब हम यह मानते हैं कि उपभोक्ता पहली अवस्था (first situation) में a a रेखा पर A स्थिति (position) को चुनता है ; दूसरी अवस्था में वह bb रेखा पर B स्थिति को चुनता है। संगति-सिद्धान्त के आधार पर इसका अभिप्राय है कि जब तक दोनो स्थितियो में X वस्तु की कुछ मात्रा का उपभोग किया जा रहा है तो bb रेखा पर B स्थिति को पसन्द किया जायेगा a a रेखा पर A स्थिति की तुलना में, क्योंकि A त्रिकोण bOb के अन्दर है। (यह ध्यान में रखने की बात है कि चित्र मे मूल बिन्दु (origin) O को नही दिखाया गया है)। यदि bb रेखा पर बिन्दु B, बिन्दु A के बायीं ओर है तो इसका अभिप्राय है कि वस्तु X का उपभोग घटता है A स्थिति की तुलना में। यदि बिन्दु B ठीक बिन्दु A के ऊपर है तो इसका अभिप्राय है कि वस्तु X का उपभोग पहले के समान रहता है। यदि बिन्दु B, बिन्दु A के दायीं ओर है तो इसका अभिप्राय है कि वस्तु X का उपभोग बढ़ता है। दूसरे शब्दों मे, A तथा B के मध्य वस्तु X का उपभोग घट सकता है, या अपरिवर्तित (unchanged or same) रह सकता है, या बढ़ सकता है। ऐसी अवस्थाएँ (situations) पूर्णतया संगतिपूर्ण (consistent) हैं। यहाँ पर संगति-सिद्धान्त केवल यह बताता है कि यदि यह सिद्धान्त दो स्थितियो A तथा B के मध्य लागू किया जाता है, तो उपभोक्ता संगतिपूर्ण होगा यदि वह (bb रेखा पर) बिन्दु B को चुनता है (aa रेखा पर) बिन्दु A की तुलना में, चाहे bb रेखा पर B की स्थिति (position) कहीं भी हो। इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि

> **संगति-सिद्धान्त अकेले यह नहीं बता सकता है कि किसी वस्तु X का उपभोग या उसकी मांग, उसकी कीमत में कमी के साथ, घटती है, समान रहती है, अथवा बढ़ती है। परन्तु, "संगति-सिद्धान्त की सहायता से यह दिखाया जा सकता है कि यदि X की कीमत में कमी के साथ आय में एक उचित कमी होती है, तो X का उपभोग बढ़ेगा या समान रहेगा, वह घट नहीं सकता।[53]**

वस्तु X की कीमत मे कमी के साथ, उपभोक्ता की 'वास्तविक आय' (real income) अथवा क्रय-शक्ति (purchasing power) मे वृद्धि होगी; अर्थात्, साथ-साथ (simultaneously) 'आय-प्रभाव' उत्पन्न होगा। यदि X की कीमत मे कमी के साथ, उपभोक्ता की द्राव्यिक आय एक उचित मात्रा में घटा दी जाती है ताकि आय-प्रभाव को नष्ट (neutralise) किया जा सके, तो वस्तु X की माँग पर प्रभाव, केवल कीमत मे सापेक्षिक परिवर्तन (relative change in price) अथवा केवल प्रतिस्थापन-प्रभाव, के कारण होगा। इस तरीके से हमें वस्तु X की माँग पर प्रतिस्थापन प्रभाव को मालूम करना होगा।[54]

> **इस उदाहरण में, वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न आय-प्रभाव को नष्ट करने के लिए द्राव्यिक आय में कमी को 'आय में क्षतिपूरक परिवर्तन' या केवल 'क्षतिपूरक परिवर्तन' कहा जाता है।[55]**

---

[52] ऐसा इसलिए है क्योंकि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय समान रहती है।
On the vertical axis the new price-income line will originate from point a ; that is point a and b are the same because the money income of the consumer remains constant. Only the lower end of the former price-income line aa will shift towards right because now more of commodity X can be purchased with the same money income owing to a fall in the price of X.

[53] The consistency theory alone cannot tell whether the consumption (or demand) of commodity X diminishes, remains unchanged, or increases with a fall in the price of X. But, "it can be shown, from the consistency theory, that if the fall in the price of X is accompanied by an appropriate fall in income then the consumption of X must rise or remain stationary ; it cannot diminish"

[54] In this way we have to separate the 'substitution effect' on the demand of the commodity X.

[55] In this example, the reduction in money income, in order to neutralise the increase in real income (or purchasing power) owing to a fall in the price of the commodity X is called as 'compensating variation in income' or simply 'compensating variation'.

इस प्रकार, हम क्षतिपूरक-परिवर्तन तकनीक द्वारा कुल कीमत-प्रभाव (total price effect) में से प्रतिस्थापन-प्रभाव को पृथक करने का प्रयत्न करते हैं और अवशेष (remainder) आय-प्रभाव होगा। चित्र 9 में, वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उपभोक्ता का A से B तक चलन (movement) कीमत प्रभाव को बताता है जिसमें प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव शामिल होते हैं। दूसरे शब्दों में; प्रतिस्थापन प्रभाव को अलग करने के लिए, उपभोक्ता की आय को क्षतिपूरक-परिवर्तन द्वारा घटाया जाता है। इसके लिए नई कीमत-आय रेखा bb के समानान्तर (parallel) एक काल्पनिक रेखा ee खींची जाती है, वस्तु X की कीमत में कमी के कारण वास्तविक आय (या क्रय-शक्ति) में वृद्धि को नष्ट (neutralise) करने के लिए द्राव्यिक आय में b e के बराबर कमी की जायेगी। रेखा bb नई कीमत-आय रेखा को बताती है जबकि वस्तु X की कीमत में कमी हो चुकी है। चूँकि काल्पनिक कीमत-रेखा ee समानान्तर है bb के, इसलिए ee रेखा भी नई कीमत-आय स्थिति को बनायेगी अर्थात् वस्तु X की कीमत में कमी को बतायेगी। अत, b e क्षतिपूरक-परिवर्तन की मात्रा को बताता है।

माना कि ee रेखा पर उपभोक्ता α स्थिति को (जो कि A तथा B के बीच एक स्थिति है) चुनता है, और उपभोक्ता α तथा A के बीच तटस्थ है। हम संगति-सिद्धान्त की सहायता से यह सिद्ध करेंगे कि उपभोक्ता α और A के बीच तटस्थ है; और यदि ऐसा है तो उसी कीमत-आय रेखा ee पर उपभोक्ता का A से α को चलन प्रतिस्थापन-प्रभाव को बतायेगा। संगति-सिद्धान्त की सहायता से यह दिखाया जा सकता है कि प्रतिस्थापन-प्रभाव किन दिशाओं (directions) में कार्य करता है।

क्षतिपूरक-परिवर्तन के तकनीक द्वारा हम ee रेखा पर एक स्थिति α को ज्ञात कर सकते हैं जो कि A के प्रति तटस्थ है। अब हम, **संगति सिद्धान्त की सहायता से यह देखेंगे कि उपभोक्ता A तथा α के बीच किस प्रकार तटस्थ है।** दूसरे शब्दों में; चूंकि हमने यह माना है कि उपभोक्ता A तथा α के बीच तटस्थ है, ee रेखा काटेगी aa रेखा को। इसका कारण नीचे दिया गया है—

(i) यदि ee रेखा पूर्णरूप से aa रेखा के बाहर है, तो α को वास्तव में चुना जायेगा A की तुलना में, और A तथा α तटस्थ नहीं होंगे।
(ii) यदि ee रेखा पूर्णतया aa रेखा के अन्दर (inside) है, तो वास्तव में A को पसन्द किया जायेगा α की तुलना में; और इस प्रकार A तथा α तटस्थ नहीं होंगे।
(iii) यदि α तथा A तटस्थ (indifferent) हैं तो, संगति-सिद्धान्त के आधार पर, हम कह सकते हैं कि A तथा α के लिए यह असम्भव होगा कि वे दोनों क्रास (cross) के बायी ओर हों या क्रास के दायी ओर हों।
(iv) यदि दोनों बिन्दु A तथा α क्रास के अन्दर (within the cross) हैं, अथवा एक बिन्दु क्रास पर है तथा दूसरा क्रास के अन्दर, तो असंगति (inconsistency) होगी। दूसरे शब्दों में, A तथा α तटस्थ नहीं हो सकते।

इस प्रकार, **उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह** अप्रत्यक्ष रूप से (indirectly) **स्पष्ट हो जाता है कि चित्र 9 में α की स्थिति (position) इस प्रकार की है कि A तथा α तटस्थ हैं;** तथा इसके अतिरिक्त, जो विकल्प (the only alternatives) हमारे समक्ष बचते है वे नीचे दिये गये हैं—

(i) बिन्दु A तथा α दोनों क्रास के बाहर (outside the cross) हों, जैसा कि चित्र 9 में दिखाया गया है। इसका अभिप्राय है कि X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उसकी माँग में वृद्धि होगी।
(ii) बिन्दु A क्रास पर हो तथा दूसरा बिन्दु α क्रास के बाहर हो; इसका अर्थ भी यही होगा कि वस्तु X की कीमत में कमी उसकी माँग में वृद्धि करेगी।
(iii) दोनों बिन्दु A तथा α क्रास पर स्थित हों, इसका अभिप्राय है कि X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उसकी माँग अपरिवर्तित (unchanged) या स्थिर (constant) रहेगी।

उपर्युक्त इन सभी तीनों अवस्थाओं (situations) **में उपभोक्ता का व्यवहार संगतिपूर्ण** (consistent) **होगा और ये ही A तथा α के लिए केवल वे अवस्थाएँ हैं जिनमें कि A तथा α**

तटस्थ होंगे। इसके अतिरिक्त यह ध्यान में रखने की बात है कि वस्तु X की कीमत में कमी के साथ, A तथा α के बीच, या तो उसका उपभोग बढ़ेगा (जैसा कि ऊपर दिये गये विकल्प न० (i) तथा (ii) में बताया जा चुका है), अथवा उसका उपभोग स्थिर या समान रहेगा (जैसा कि ऊपर विकल्प नं० (iii) में बता चुके हैं); वस्तु X का उपभोग या उसकी माँग उपर्युक्त किसी भी स्थिति में घटेगी नहीं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर,

> हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तु X की कीमत में कमी के साथ, प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप, X का उपभोग या उसकी माँग "बढ़ने की प्रवृत्ति" रखेगी।[86]

इस प्रकार चित्र 9 में (aa रेखा पर) स्थिति A से (cc रेखा पर) स्थिति α तक उपभोक्ता का चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है और यह वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उसके उपभोग या माँग में वृद्धि को बताता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए संगति-सिद्धान्त (consistency theory) का प्रयोग किया गया है। प्रतिस्थापन-प्रभाव कीमत-प्रभाव का एक भाग है।

अब हम कीमत-प्रभाव के दूसरे भाग, अर्थात् आय-प्रभाव, को लेते हैं। चित्र 9 में, माना कि क्षतिपूरक-परिवर्तन bc के बराबर द्राव्यिक आय में कमी को उपभोक्ता को वापस कर दिया जाता है। संगति-सिद्धान्त (consistency theory), या किसी अन्य सिद्धान्त, की सहायता से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि आय में इस वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु X के उपभोग या उसकी माँग में वृद्धि होगी या कमी। हिक्स के अनुसार, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, आय-प्रभाव एक अनुभवाश्रित प्रमाण (empirical evidence) की बात है। प्रो० हिक्स के अनुसार, अनुभवाश्रित प्रमाण के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना उचित या सुरक्षित (safe) होगा कि वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप आय-प्रभाव के कारण अधिकांश स्थितियों में (केवल निम्नकोटि की वस्तु या गिफिन वस्तु के अपवाद को छोड़कर) वस्तु X माँग बढ़ेगी।[87] इस प्रकार चित्र 9 में (cc रेखा पर) बिन्दु α से (bb रेखा पर) बिन्दु B तक उपभोक्ता का चलन आय-प्रभाव को बताता है; बिन्दु B बिन्दु α के दाईं ओर है जिसका अभिप्राय है कि आय-प्रभाव के कारण वस्तु X की माँग में वृद्धि होती है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

> **यदि वस्तु X की कीमत में कमी होती है तो प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसकी माँग में वृद्धि होगी; इसको संगति-सिद्धान्त तथा क्षतिपूरक-परिवर्तन की रीति के आधार पर सिद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त, आय प्रभाव के परिणामस्वरूप भी वस्तु X की माँग में सामान्यतया (usually) वृद्धि होती है और इस बात को अनुभवाश्रित प्रमाण द्वारा समर्थन प्राप्त होता है। इस प्रकार माँग का नियम सिद्ध हो जाता है क्योंकि वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उसकी माँग में वृद्धि होती है।[88]**

---

[86] We come to the conclusion that with the fall in the price of X, the demand or consumption of X would *tend to increase*".

Prof Hicks uses the term 'tends to increase' in the sense that (as a result of substitution effect) the demand of X will either increase, or, at the most, may remain constant, if the price of X falls

[87] According to Prof Hicks, it is safe to conclude from the empirical evidence that 'income effect' of the fall in the price of a commodity X would in most cases, (except the exceptional case of inferior good or Giffen good), increase the demand of commodity X.

[88] If the price of commodity X falls, its demand increases owing to substitution effect; this has been proved on the basis of consistency theory and the method of compensating variation Further, usually the demand of a commodity X also increases owing to income effect and this is supported by empirical evidence. Hence, the law of demand is established because with the fall in the price of commodity X, its demand increases.

माँग के नियम का निकालना : लागत-अन्तर की रीति (Derivation of the Law of Demand : The Method of Cost-Difference)

प्रो० सेम्युलसन ने लागत-अन्तर की रीति को प्रतिपादित किया; प्रो० हिक्स ने भी इस रीति का प्रयोग किया क्योंकि कुछ दृष्टियों से यह क्षतिपूरक परिवर्तन रीति से श्रेष्ठ है।

चित्र 10
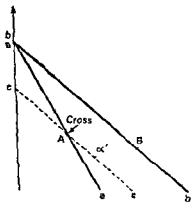
लागत-अन्तर रीति के द्वारा माँग के नियम को निकालने में हम चित्र 10 का प्रयोग करते हैं। सदैव की भाँति वस्तु X को X-अक्ष पर तथा सामूहिक वस्तु (अर्थात् द्रव्य) को Y-अक्ष पर दिखाया गया है। यदि उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की कीमत दी हुई हैं, तो aa रेखा प्रारम्भिक कीमत-आय रेखा या अवसर रेखा (initial price-income line or opportunity line) है। अब माना कि—(i) उपभोक्ता की द्राव्यिक आय स्थिर रहती है, और (ii) वस्तु X की कीमत घटती है। परिणामस्वरूप उपभोक्ता उसी द्राव्यिक-आय से वस्तु X की अधिक मात्रा खरीद सकता है तथा अब नयी कीमत-आय रेखा bb है जो कि aa रेखा के पूर्णतया बाहर होगी; खड़े अक्ष (vertical axis) पर बिन्दु a तथा b एक ही होंगे क्योंकि दोनों अवस्थाओं (situations) में द्राव्यिक आय स्थिर है।

माना कि प्रारम्भिक कीमत-आय रेखा aa पर उपभोक्ता बिन्दु A को चुनता है। वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता नयी कीमत-आय रेखा bb पर बिन्दु B को चुनता है। बिन्दु A से बिन्दु B तक चलन-कीमत प्रभाव है जिसको, लागत-अन्तर रीति द्वारा, प्रतिस्थापन-प्रभाव तथा आय-प्रभाव में तोड़ना है।

लागत-अन्तर रीति के अन्तर्गत, वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न आय प्रभाव को नष्ट (neutralise) करने के लिए उपभोक्ता की द्राव्यिक आय को उस मात्रा में घटाना होगा जिससे कि उपभोक्ता प्रारम्भिक संयोग A को खरीदने योग्य रह जाये। इसका अभिप्राय है कि उसके लिए पुरानी कीमत पर वस्तु X के प्रारम्भिक उपभोग की लागत (जो कि बिन्दु A बताता है) तथा नई कीमत पर लागत के बीच अन्तर के बराबर उपभोक्ता की आय घटानी होगी। चित्र 10 में लागत-अन्तर के बराबर द्राव्यिक आय में कमी को एक काल्पनिक (या एक बीच की) कीमत-आय रेखा ee को खींचकर मालूम किया जा सकता है, यह काल्पनिक कीमत-आय रेखा बिन्दु A से गुजरेगी तथा नई कीमत-आय रेखा bb के समानान्तर (parallel) होगी। इस प्रकार, चित्र में द्राव्यिक आय में कमी (या लागत-अन्तर) be या ae के बराबर होगी। काल्पनिक (या बीच की) रेखा ee नई घटी हुई कीमत को बतायेगी क्योंकि यह b b के समानान्तर है। रेखा ee गुजरती है बिन्दु A से, इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता घटी हुयी आय से प्रारम्भिक संयोग को खरीद सकेगा।[59]

---

[59] Under the cost-difference method in order to neutralise the 'income effect due to the fall in the price of X' the money income of the consumer is to be reduced by such an amount which will leave the consumer just able to purchase the original combination A. This implies that the income of the consumer is reduced by the difference between the cost of his original consumption of X (indicated by point A) at the old price and at the new price. In figure-10, this reduction in money income equal to cost-difference can be calculated by drawing an imaginary (or intermediate) price income line e e which will pass through the point A and will be parallel to the new price-income line b b. Thus, the reduction in income (or the cost-difference) in the figure is b e (or a e). The imaginary (or intermediate) line e e will indicate the new reduced price because it is parallel to b b. The line e e passes through A, this means that the consumer can purchase the original combination A with the reduced income.

माना कि उपभोक्ता रेखा ee पर नई बीच की स्थिति α' चुनता है। स्थिति α' का चुनाव माँग के नियम के निकालने के लिए एक आधार (basis) का कार्य करेगा। अब aa तथा ee दो कीमत-आय रेखाएँ (या अवसर रेखायें) हैं, तथा A और α' दो संयोग या बिन्दु है। इन दो बिन्दुओं में से एक बिन्दु A दो अवसर रेखाओं के 'क्रास' (cross) पर स्थित है ताकि उन सम्भव विकल्पों की सूची (list of possible alternatives) मे बहुत कमी हो जाती है जिनके प्रति संगति-सिद्धान्त (consistency theory) को लागू किया जा सकता है। बिन्दु α' बिन्दु A के बायीं ओर स्थित नही हो सकता क्योंकि इसका अभिप्राय होगा कि उपभोक्ता के व्यवहार मे असंगति (inconsistency) होगी। इस प्रकार, जैसा कि हिक्स बताते हैं, केवल नीचे दी गई सम्भावनाएँ या विकल्प (possibilities or alternatives) ही खुले हुये (open) हैं—

(i) यह कि बिन्दु α' बिन्दु A के दायीं ओर स्थित हो, इसका अभिप्राय है कि A तथा α' के बीच वस्तु X का उपभोग बढ़ेगा।

(ii) यह कि α' और A मिल जायें (यानी coincide कर जायें); इसका अभिप्राय है कि वस्तु X का उपभोग समान (same) रहेगा।

इस प्रकार A से α' तक चलन प्रतिस्थापन-प्रभाव को बताता है। संगति-सिद्धान्त पर आधारित उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि वस्तु X की कीमत मे कमी के साथ उसका उपभोग या उसकी माँग 'बढने की प्रवृत्ति दिखायेगी' (will tend to increase); वह घट नही सकती, अधिक से अधिक वह कुछ स्थितियो मे समान रह सकती है।

अब हम यह मानते हैं कि घटी हुई द्राव्यिक आय की मात्रा का उपभोक्ता को वापस कर दिया जाता है, तो उपभोक्ता α' से (bb रेखा पर स्थित) बिन्दु B पर जायेगा; यह चलन आय-प्रभाव (income-effect) को बताता है।

सामान्य अवस्थाओं (normal-situations) मे बिन्दु B बिन्दु α' के दायी ओर (right को) होगा, तथा इसका अभिप्राय है कि α' और B के बीच आय-प्रभाव के कारण वस्तु X का उपभोग या उसकी माँग बढ़ेगी। इस प्रकार,

> **कीमत-प्रभाव (A से B तक चलन) को प्रतिस्थापन-प्रभाव (A से बीच की स्थिति α' तक चलन) तथा आय-प्रभाव (α' से B तक चलन) में तोड़ दिया जाता है। अतः, वस्तु X की कीमत में कमी के साथ, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव के परिणामस्वरूप X के उपभोग या उसकी माँग में वृद्धि होती है; इस प्रकार माँग का नियम सिद्ध हो जाता है।**[10]

लागत-अन्तर रीति तथा क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति की तुलना (Comparison of the Cost-Difference Method and the Compensating-Variation Method)

वास्तव मे संगति-सिद्धान्त (consistency theory) के आधार पर लागत-अन्तर रीति के द्वारा बीच की स्थिति (intermediate position) α' का चुनाव उस तकनीक को प्रस्तुत करता है जिसकी सहायता से कीमत प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव मे विभाजित (divide) किया जाता है। क्षतिपूरक परिवर्तन की रीति के अन्तर्गत भी बीच की स्थिति (α) का चुनाव भी इसी उद्देश्य को पूरा (या serve) करता है। निःसन्देह दोनों रीतियों के अन्तर्गत दोनों बीच की स्थितियाँ (the two intermediate positions) बिलकुल एकसमान (precisely the same) नही होती, परन्तु जिन भागों मे (अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय-प्रभाव मे) वे कुल कीमत प्रभाव को बाँटती है उन भागो के एकसमान गुणा होते हैं और दोनों रीतियाँ संगति-सिद्धान्त की सहायता से माँग के नियम को निकालने का समान उद्देश्य पूरा करती हैं।

अब हम क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति तथा लागत-अन्तर रीति में भेद या अन्तर के सम्बन्ध में कुछ बातें प्रस्तुत करते है—

---

[10] Thus, the price effect (movement from A to B) is decomposed into substitution effect (movement from A to the intermediate position α') and income effect (movement from α' to B). Owing to the substitution effect and income effect the consumption or demand of X increases with the fall in its price, the law of demand is established.

(i) दोनों रीतियों में अन्तर द्राव्यिक आय की उस मात्रा से सम्बन्धित है जिसे कि घटाया या बढ़ाया जाता है ताकि प्रतिस्थापन प्रभाव को अलग किया जा सके।[61]

माना कि वस्तु X की कीमत घटती है (जैसा कि अपने विवेचन में हम अब तक करते आये हैं)। क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति के अन्तर्गत प्रतिस्थापन को अलग करने के लिए, द्राव्यिक आय को उस सीमा तक कम किया जाता है ताकि उपभोक्ता एक बीच की स्थिति (जैसे α चित्र न० 9 में) को चुन सके जो कि शुरू की स्थिति (जैसे कि A चित्र न० 9 में) के प्रति *तटस्थ (indifferent)* हो। *लागत-अन्तर* रीति के अन्तर्गत, द्राव्यिक आय को उस सीमा तक घटाया जाता है ताकि उपभोक्ता प्रारम्भिक स्थिति (जैसे A चित्र न० 10 में) को चुन सके। दूसरे शब्दों में, दोनों स्थितियों में दृष्टिकोण का यह अन्तर बीच की रेखा (intermediate line) ee की स्थिति (position) में अन्तर उत्पन्न करता है (देखिए चित्र न० 9 तथा 10 को)। क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति के अन्तर्गत बीच की रेखा ee चुने गये प्रारम्भिक बिन्दु A के नीचे से गुजरती है (देखिये चित्र न० 9) जबकि लागत-अन्तर रीति के अन्तर्गत बीच की रेखा ee चुने गये प्रारम्भिक बिन्दु A से गुजरती है (देखिए चित्र न० 10)।

(ii) इसके अतिरिक्त, प्रो० हिक्स स्वीकार करते हैं कि लागत-अन्तर रीति प्रयोग में "कुछ अधिक सुविधाजनक" ("somewhat more convenient") है तथा यह रीति क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति के ऊपर, स्पष्ट रूप से, अधिक उपयोगिता रखती है। इसका कारण है—लागत-अन्तर रीति के अन्तर्गत द्राव्यिक आय की मात्रा जो कि घटायी जाती है (या बढ़ायी जाती है) को दिये हुये आंकड़ों से आसानी से और प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात किया जा सकता है, जबकि क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति के अन्तर्गत व्यवहार में ऐसा करना कठिन है।[62] प्रो० हिक्स के शब्दों में,

"क्षतिपूरक-परिवर्तन की मात्रा को ज्ञात करना एक समस्या है...... , लागत अन्तर की मात्रा को मालूम करने में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। इसको (अर्थात् लागत-अन्तर की मात्रा को) विवेचना की जाने वाली स्थिति के आंकड़ों से फौरन ज्ञात किया जा सकता है।"[63]

यद्यपि प्रो० हिक्स लागत अन्तर रीति की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं, परन्तु वे क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति को त्याग देना पसन्द नहीं करते। वह अनुभव करते हैं कि "प्रत्येक रीति के अपने गुण हैं, इसलिए दोनों रीतियों को बनाये रखना चाहिए।"[64]

---

[61] If the price of commodity X falls, then money income will have to be reduced by a certain magnitude in order to neutralise income effect and so to separate substitution effect. If the money income is raised by the same amount, then we get the income effect. The difference between the two methods is simply based on the magnitude by which the money income is raised or reduced

[62] Further, Prof. Hicks admits that the method of cost difference is "somewhat more convenient" to use and it "has a distinct advantage" over the other method of compensating variation The reason is : the magnitude of the money income to be reduced (or raised) can easily be directly calculated from the given data (under the method of cost difference), whereas it is difficult *to do so in practice under the method of compensating variation*

[63] "While the magnitude of the compensating variation is quite a problem......, the magnitude of the cost-difference raises no problem at all. It can be read off at once from the data of the situation under discussion"

[64] Even though Prof Hicks admits the superiority of the method of cost difference, yet he does not like to discard the other method of compensating variation. He feels that "each method has its merits, so that both require to be preserved"

मांग का नियम तथा निम्नकोटि की वस्तुएं
(LAW OF DEMAND AND INFERIOR GOODS)

1. प्राक्कथन : निम्नकोटि की धारणा (Introduction : The Concept of Inferior Goods)

आय प्रभाव एक अनुभवाश्रित प्रमाण (empirical evidence) की बात है, जैसा कि प्रो० हिक्स ने बताया है। दूसरे शब्दों में, संगति-सिद्धान्त या किसी अन्य सैद्धान्तिक यन्त्र (consistency theory or any other theoretical tool) की सहायता से आय प्रभाव की दिशा (direction) को सिद्ध करना कठिन है—अर्थात् आय प्रभाव धनात्मक (positive) है या ऋणात्मक (negative)। वास्तविक जीवन में यह देखा गया है कि अधिकांश दशाओं मे (in most cases) आय में वृद्धि के साथ एक वस्तु (माना X) की मांग मे वृद्धि होती है; दूसरे शब्दों में, अधिकांश दशाओं में आय प्रभाव धनात्मक होता है। परन्तु यह सम्भव है कि कुछ वस्तुएँ ऐसी हों कि जिनकी मांग में कमी हो आय मे वृद्धि के साथ; दूसरे शब्दों, मे कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में आय-प्रभाव ऋणात्मक हो सकता है। किसी वस्तु की मांग घट सकती है आय मे वृद्धि के साथ, क्योंकि इस वस्तु को किसी अन्य श्रेष्ठ वस्तु (supreior good) से प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है।

ऐसी वस्तुएँ जिनका ऋणात्मक आय प्रभाव होता है अथवा जिनकी ऋणात्मक आय लोच (negative income elasticity) होती है उनको निम्नकोटि की वस्तुएँ (inferior goods) कहा जाता है।[65] निम्नकोटि की वस्तु की धारणा (concept) के सम्बन्ध मे उपर्युक्त बात के अतिरिक्त, हमें निम्न दो बातें और ध्यान मे रखनी चाहिए—

(i) "यह जरूरी नहीं है कि निम्नकोटि की वस्तु तथा इसके स्थान पर प्रतिस्थापित की जाने वाली श्रेष्ठ वस्तु में कोई एकसी (common) भौतिक विशेषताएँ हों।"[66]

(ii) इसके अतिरिक्त, "यह भी कोई जरूरी नही है कि वे आवश्यकताएँ जिनकी इन दोनों प्रकार की वस्तुओं से संतुष्टि की जा सकती है वे बिलकुल एकसमान (same) हों।" इस विचार को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते है। "एक ऐसी स्थिति पर विचार कीजिए जिसमें कि एक व्यक्ति अपनी आय मे थोड़ी वृद्धि से प्रेरित (induce) होकर एक कार (car) का प्रयोग करने लगे ; तब उसके लिए अपनी पहले की उपभोग की अनेक मदों पर व्यय मे किफायत करना आवश्यक हो जायेगा। आय में इस विशेष वृद्धि के लिए उपभोग के ये सब सामान्य रूप निम्नकोटि की वस्तुएँ हो जायेंगी।"[67]

2. मांग का नियम तथा निम्नकोटि की वस्तु (The Law of Demand and Inferior Good)

माना कि वस्तु X एक निम्नकोटि की वस्तु है; इसका अभिप्राय है कि वस्तु X के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक (negative) है। दूसरे शब्दो मे, वस्तु X की कीमत में कमी के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न आय प्रभाव उस वस्तु X की मांग मे कमी कर देगा।

---

[65] The commodities with negative income effect (or negative income elasticity) are called inferior goods.

[66] "It is not inevitable that the inferior good and the superior substitute which replaces it should have any physical characteristics in common "

[67] Further, "It is not even recessary that the 'wants' which are satisfied by the two goods should be in any recognizable sense the same." Let us take an example to illustrate this idea. "Consider the case in which a person is induced, by a small rise in income, to run a car ; he will then be obliged to economise on several of his previous lines of expenditure. For this particular rise in income which has taken place, all these ordinary forms of consumption will have become inferior goods."

चित्र 11

अब हम चित्र-11 की सहायता लेते हैं। सदैव की भाँति वस्तु X (जो कि यहाँ पर एक निम्नकोटि की वस्तु है) को पड़े हुये अक्ष (horizontal axis) पर दिखाया गया है तथा सामूहिक वस्तु या द्रव्य M को खड़े हुये अक्ष (vertical axis) पर दिखाया गया है। एक दी हुई द्राव्यिक आय और वस्तु की दी हुयी कीमत के साथ, कीमत-आय रेखा की प्रारम्भिक स्थिति (Original position) को aa रेखा बताती है। माना कि—(i) द्राव्यिक आय स्थिर रहती है, तथा (ii) वस्तु X की कीमत घटती है; तब कीमत-आय की नयी स्थिति को bb रेखा बताती है। अब उपभोक्ता (aa रेखा पर) बिन्दु A से नई रेखा bb पर किसी बिन्दु पर जायेगा, माना कि उपभोक्ता bb रेखा पर स्थिति C को चुनता है।

अब, वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिस्थापन प्रभाव को अलग (separate) करने केलिए हम संगति-सिद्धान्त तथा लागत-अन्तर रीति (Consistency-theory and Cost-difference Method) का प्रयोग करते हैं। इसके लिए हम एक काल्पनिक (या बीच की) रेखा ee खींचते हैं जो कि प्रारम्भिक बिन्दु A से गुजरती है और bb रेखा के समानान्तर (parallel) है। माना कि उपभोक्ता ee रेखा पर बीच की स्थिति α' को चुनता है तथा bb रेखा पर चुना गया बिन्दु C बायीं ओर है α' के। रेखा aa पर बिन्दु A से (रेखा bb पर) बिन्दु C तक चलन कीमत प्रभाव है।

हम जानते हैं कि वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव वस्तु X की माँग में वृद्धि करेगा। चित्र 11 में बिन्दु A से α' तक चलन प्रतिस्थापन प्रभाव है और यह वस्तु X की माँग को बढ़ाता है। बिन्दु α' से (bb रेखा पर) बिन्दु C तक चलन आय-प्रभाव को बताता है। चूँकि बिन्दु C बायीं ओर है α' के, तो इसका अभिप्राय है कि आय प्रभाव के कारण वस्तु X की माँग घटती है; अर्थात आय-प्रभाव ऋणात्मक (negative) है क्योंकि वस्तु X एक निम्नकोटि की वस्तु है। दूसरे शब्दों में, यहाँ पर आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव के विपरीत दिशा (opposite direction) में कार्य करता है। परन्तु यहाँ पर ऋणात्मक आय प्रभाव बहुत कम है और यह प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक नहीं है। अतः वस्तु X की कीमत में कमी का अन्तिम या वास्तविक परिणाम (net result) है कि A तथा C के बीच वस्तु X की माँग में वृद्धि। इस प्रकार, वस्तु X के निम्नकोटि के होने तथा आय प्रभाव के ऋणात्मक होने पर भी माँग का नियम लागू होता है। ऐसा इसलिए है कि अधिकांश निम्नकोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता अपनी आय का केवल एक छोटा अनुपात (a small proportion) व्यय करता है और ऋणात्मक आय प्रभाव बहुत थोड़ा होता है। अतः प्रो० हिक्स के शब्दों में,

> "यद्यपि निम्नकोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग का नियम आवश्यक रूप से लागू नहीं होता, परन्तु व्यवहार में इसके लागू होने की सम्भावना रहती है।"[88]

माँग का नियम केवल उन निम्नकोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में लागू होता है जिनके लिए ऋणात्मक आय प्रभाव बहुत बड़ा (large) होता है, और इतना बड़ा होता है कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है। अब हम ऐसी वस्तुओं की स्थिति (situation) की विवेचना करेंगे जो कि माँग के नियम के अपवाद को बताती है।

3. माँग का नियम तथा गिफिन वस्तु : माँग के नियम का एक अपवाद (The Law of Demand and Giffen Good : An Exception to the Law of Demand)

गिफिन वस्तुएँ एक विशेष प्रकार की निम्नकोटि की वस्तुएँ होती हैं जिनके लिए ऋणात्मक

---

[88] "Though the law of demand does not necessarily hold in the case of inferior goods, it is in practice likely to hold."

आय प्रभाव बहुत बड़ा होता है, इतना बड़ा होता है कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है। इस प्रकार की निम्नकोटि की वस्तुओं को गिफिन की वस्तुएँ (Giffen's goods) कहा जाता है। गिफिन वस्तु के सम्बन्ध में माँग का नियम सत्य नहीं होता; अर्थात् यहाँ पर हमें माँग के नियम का एक अपवाद प्राप्त होता है।

एक गिफिन वस्तु के लिए निम्नलिखित तीन विशेषताएँ (three characteristics) पूरी होनी चाहिए—

(i) "वस्तु एक निम्नकोटि की वस्तु होनी चाहिए, जिसकी ऋणात्मक आय लोच (या ऋणात्मक आय प्रभाव) एक पर्याप्त बड़े आकार की हो।"

(ii) "प्रतिस्थापन प्रभाव छोटा होना चाहिए।"

(iii) निम्नकोटि की वस्तु पर व्यय किये जाने वाला आय का अनुपात बड़ा होना चाहिए।"[69]

गिफिन वस्तु की स्थिति बताने के लिए हम पुनः चित्र-11 की सहायता लेते हैं। वस्तु X की कीमत में कमी के बाद, माना कि उपभोक्ता नई कीमत-आय रेखा bb पर बिन्दु B को चुनता है (बिन्दु C को नहीं)। बिन्दु B प्रारम्भिक बिन्दु A के बायीं ओर स्थित है; इसका अभिप्राय है कि वस्तु X की कीमत घटने पर उसकी माँग घटती है। इस प्रकार प्रारम्भिक बिन्दु A से बिन्दु B तक चलन कीमत-प्रभाव है। वस्तु X की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिस्थापन प्रभाव प्रारम्भिक बिन्दु A से बीच के बिन्दु (intermediate point) α' तक चलन (movement) है; और यह प्रतिस्थापन प्रभाव, A तथा α' के बीच, वस्तु X की माँग में वृद्धि करता है। बिन्दु α' से बिन्दु B तक चलन आय-प्रभाव को बताता है तथा यह आय प्रभाव α' और B के बीच वस्तु X की माँग को घटाता है। यहाँ पर ऋणात्मक आय प्रभाव इतना बड़ा है कि यह प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त करके उससे अधिक हो जाता है। अतः, वस्तु X की कीमत में कमी होने का वास्तविक परिणाम (net result) है उसकी माँग में कमी का होना। इस प्रकार माँग का नियम लागू नहीं होता और गिफिन वस्तुओं के सम्बन्ध में हमें माँग के नियम का एक अपवाद प्राप्त होता है।

4. निष्कर्ष (Conclusion)

व्यवहार में ऐसी निम्नकोटि की वस्तु का पाया जाना बहुत कठिन है जो कि गिफिन वस्तु होने के लिए तीनों विशेषताओं को पूरा करे; और इस प्रकार से माँग के नियम का ऊपर बताया गया अपवाद केवल एक सैद्धान्तिक अपवाद रह जाता है।[70] प्रो० हिक्स के शब्दों में,

"यद्यपि माँग के नियम के अपवाद सैद्धान्तिक रूप से सम्भव हैं, परन्तु व्यवहार में उनके घटित होने का अवसर न के बराबर है।"[71]

---

[69] For a Giffen good the following three characteristics should be satisfied :

(i) "The commodity must be an inferior good, with a negative income-elasticity (or negative income effect) of significant size."

(ii) "The substitution effect must be small."

(iii) "The proportion of income spent upon the inferior good must be large."

[70] Prof. Hicks also considers the total demand for a Giffen good in the whole market consisting of different persons having different income-range. To use the words of Prof. Hicks, "In a heterogeneous group, there will be some people who are doing this particular replacement i. e., the replacement of an inferior good by superior substitutes), but it is likely that there will be others who are not; a large negative income-effect is accordingly somewhat less likely in the case of a heterogeneous group than it is in the case of an individual...The law does not work any less well when it is applied to a heterogeneous group than it does when applied to a single individual; if anything, it works rather better."

[71] "Although exceptions to the law of demand are theoretically possible, the chance of their occurrence is in practice negligible."

प्रश्न

'अधिमान-परिकल्पना पर आधारित माँग सिद्धान्त क्रम-के-तार्किक-सिद्धान्त अथवा क्रम-का-तर्क का केवल एक आर्थिक प्रयोग है।'

इस कथन के सन्दर्भ में मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा माँग सिद्धान्त में इनके प्रयोग को समझाइए।

The demand theory based on preference hypothesis is simply an economic application of the logical theory of ordering or the logic of order.'

In the light of this remark distinguish between strong and weak ordering and illustrate their use in the theory of demand.

[संकेत—'क्रम-का-तर्क कमजोर-क्रम तथा मजबूत क्रम' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को देखिए।]

(i) मजबूत-क्रम तथा कमजोर-क्रम के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
(ii) हिक्स द्वारा मजबूत-क्रम परिकल्पना को त्याग देने के कारण बताइए।
(iii) 'अतिरिक्त-परिकल्पना' के सहारे के साथ कमजोर-क्रम के प्रभावों की विवेचना कीजिए।

(i) Distinguish between strong ordering and weak ordering.
(ii) Explain the reasons for the rejection of strong ordering hypothesis by Hicks.
(iii) Examine the effects of weak ordering supported by 'additional hypothesis'.

[संकेत—'क्रम-का-तर्क : कमजोर-क्रम तथा मजबूत-क्रम' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को देखिए।]

3. 'माँग का अर्थमितीय सिद्धान्त वास्तविक आँकड़ों पर आधारित होता है, ये आँकड़े किसी वस्तु (या वस्तुओं) की मात्राओं को बताते हैं जो कि एक विशिष्ट समूह द्वारा किन्हीं विशिष्ट समय अवधियों में खरीदी गयी हैं। माँग के अर्थमितीय सिद्धान्त का उद्देश्य इन आँकड़ों की व्याख्या (explanation) को मालूम करना है, अर्थात् एक परिकल्पना का निर्माण करना है जो कि इन वास्तविक आँकड़ों की व्याख्या कर सके।'

इस कथन के सन्दर्भ में अर्थमितीय दृष्टिकोण पर आधारित हिक्स के अधिमान-परिकल्पना के विचार की विवेचना कीजिए।

'The econometric theory of demand considers certain factual data showing the amounts of some commodity (or commodities) which have been purchased by a particular group during certain specified periods of time. The object of the econometric theory of demand is to find an explanation *of these statistics, that is, to build a hypothesis which will explain them.*'

In the light of this statement discuss Hicks' view of Preference Hypothesis based on econometric approach

[संकेत—'अधिमान परिकल्पना तथा अर्थमिति दृष्टिकोण' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को देखिए।]

4. 'प्रो० हिक्स ने उपभोक्ता के चुनाव तथा व्यवहार के सन्दर्भ में संगति या असंगति के लिए हमें एक जाँच या कसौटी प्रदान की है।' इस 'प्रत्यक्ष संगति कसौटी' की पूर्ण विवेचना कीजिए।

'Prof. Hicks has given us a test regarding the consistency or inconsistency in the consumer's choice and behaviour.' Discuss fully this 'Direct Consistency Test'

5. *हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की सहायता से 'क्षतिपूरक-परिवर्तन रीति' अथवा 'लागत-अन्तर रीति' के द्वारा माँग के नियम को निकालिए।*

Derive the law of demand from Hicks' theory of revealed preference by using the Compensating Variation Method or the Cost-Difference Method.

6. हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की सहायता से निम्नकोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग के नियम की विवेचना कीजिए।

Discuss the Law of Demand with reference to inferior goods with the help of Hicks' theory of revealed preference.

[संकेत—'माँग का नियम तथा निम्नकोटि की वस्तुएँ' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को देखिए।]

7. हिक्स के प्रकट-अधिमान सिद्धान्त की सहायता से निम्नलिखित की व्याख्या तथा विवेचना कीजिए—

(i) यद्यपि निम्नकोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग का नियम आवश्यक रूप से लागू नहीं होता, परन्तु व्यवहार में इसके लागू होने की सम्भावना रहती है।"

(ii) "यद्यपि माँग के नियम के अपवाद सैद्धान्तिक रूप से सम्भव हैं, परन्तु व्यवहार में उनके घटित होने का अवसर नगण्य है।"

With the help of Hicks' theory of revealed preference, explain and discuss the following—

(i) "Though the law of demand does not necessarily hold in the case of inferior goods, it is in practice likely to hold."

(ii) "Although exceptions to the law of demand are theoretically possible, the chance of their occurrence is in practice negligible."

[संकेत—'माँग का नियम तथा निम्नकोटि की वस्तुएँ' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत विषय-सामग्री को देखिए।]

अध्याय 42 की परिशिष्ट (Appendix)

लाभ का सम्भाव्य अचम्भा सिद्धान्त

(Potential Surprise Theory of Profit)

1. प्राक्कथन (Introduction)

जब से प्रो. नाईट (Prof. Knight) ने अपना लाभ-सिद्धान्त प्रस्तुत किया है तब से एक बड़ी संख्या में प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने, (पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत), अनिश्चितता (uncertainty) को लाभ का मुख्य कारण माना है। प्रो. नाईट के 'अनिश्चितता झेलने के लाभ सिद्धान्त' (Uncertainty-bearing Theory of Profit) में कुछ संशोधन (refinements) किये गये हैं; इन संशोधनों का सम्बन्ध है 'अनिश्चितता' के मुख्य विचार से तथा निर्णय-लेने या विनियोग-व्यवहार की प्रक्रिया (the process of decision-taking or investment behaviour) से जो कि अनिश्चितता की स्थिति में लिया जाता है।

"अनिश्चितता की स्थितियों में निर्णय लेने की प्रक्रिया का विश्लेषण सामान्यतया 'व्यक्तिपरक संख्यात्मक संभाविता' ('subjective numerical probability') पर आधारित होता है। एक व्यक्ति अपनी समझ में आने वाले सम्भव परिणामों के समस्त समूह को अपने दिमाग में एक क्रम में रखने के बाद उनमें से प्रत्येक परिणाम को एक उचित अनुपात या भिन्न (proper fraction) प्रदान करता है, वह इन भिन्नों को इस प्रकार चुनने की कोशिश करता है कि उनका योग इकाई (unity) के बराबर हो, प्रत्येक भिन्न उस परिणाम की संभाविता (probability) का प्रतिनिधित्व करती है जिसके सत्य होने की आशा होती है। इसके पश्चात चुनाव अधिक कठिन नहीं होता यद्यपि एक सामान्यतया स्वीकृत हल प्राप्य नहीं होता है।"[1]

परन्तु प्रो. शैकिल (Prof. Shackle) ने बताया कि अनिश्चितता की स्थिति के अन्तर्गत संभाविता माप (probability measures) निर्णय लेने वाले व्यक्ति के दिमाग की स्थिति या दशा को सही रूप में नहीं बताते—

> "व्यक्ति का दिमाग किसी कार्य (या अनेक कार्यों) के विभिन्न काल्पनिक परिणामों के होने की सम्भावनाओं को सोचता है। अनेक परिणाम सम्भव दिखायी देते हैं, परन्तु कुछ परिणाम, अन्य परिणामों की तुलना में, अधिक सम्भव दिखायी देते हैं। कठिनाई यह है कि संभावित (probability) सम्भावनाओं की मात्राओं (degree) के बीच स्पष्ट भेद नहीं कर सकती अथवा उनको ठीक प्रकार से नहीं बता सकती है।"[2]
>
> इसके अतिरिक्त, निर्णय लेने वाले के समक्ष अनेक समस्याएँ इस दृष्टि से सर्वथा भिन्न यानी अनूठी (unique) होती हैं कि इस प्रकार की समस्याएँ भूतकाल

---

1 "Attempts to analyse the process of decision-making in uncertain situations have been generally based on 'subjective numerical probability'. The individual, after listing in his mind the whole set of possible outcomes that he can conceive of, assigns to each one of them some proper fraction which are so choosen that they sum to unity, each representing the probability of the outcome in question turning out to be truth. A choice there after is not c fficul' .ough a commonly agreed solution is not available."

2 "The mind is charting the possibilities of occurence of various hypothetical outcomes of any course of action (indeed of many courses of action). Many outcomes appear possible, but some appear possible than others. The difficulty is that Probability cannot discriminate or express degrees of possibility"'"

(past) में उत्पन्न नहीं हुई; और इसलिए संभाविता का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अनिश्चितता की स्थितियों में संभाविता (probability) का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, और प्रो. शैकिल संभाविता की रीति (method or approach of probability) का त्याग कर देते हैं। इसके स्थान पर प्रो. शैकिल ने एक दूसरा विकल्प (alternative) या विचार (concept) हमारे सामने रखा है; और यह विचार या धारणा है 'सम्भाव्य अचम्भा' (*potential surprise*) की।

> सम्भाव्य अचम्भे की धारणा (concept) किसी परिकल्पना (hypothesis) के सही उतरने के बारे में एक व्यक्ति के विश्वास की मात्रा की, अप्रत्यक्ष रूप से, मापने की एक कुशल रीति को बताती है।[4]

'सम्भाव्य अचम्भे' की धारणा की विस्तृत विवेचना करने से पहले प्रो. शैकिल के अनुसार 'लाभ के स्वभाव' (nature of profit) को समझ लेना अधिक उचित होगा।

2. लाभ का स्वभाव (Nature of Profit)

प्रो. शैकिल का लाभ सिद्धान्त अनिश्चित स्थितियों में निर्णय-लेने की प्रक्रिया (process of decision-taking under uncertain conditions) का विश्लेषण करता है।

मार्शल के अर्थशास्त्र (Marshallian economics) के अन्तर्गत लाभ एक उत्पत्ति के साधन, अर्थात साहसी (entrepreneur), का पुरस्कार है। "लाभ की इस धारणा का मुख्य विश्लेषणात्मक दोष है कि यह एक ओर लाभ को प्राप्त करने की प्रत्याशा या आशापूर्ण कल्पना तथा दूसरी ओर वास्तव में लाभ के बीच अन्तर करने में असफल रहती है।"[5] (भूतकाल में) वास्तव में प्राप्त लाभ एक व्यापारी या साहसी को निर्णय लेने, [अर्थात्, अपनी पूँजी को यन्त्रों को खरीदने में विनियोग करने, एक नयी फर्म को शुरू करने, अथवा वर्तमान फर्म को आधुनिक (modernise) करने], के लिए प्रेरित (induce) नहीं करता, बल्कि बुद्धिमानी के साथ कल्पना किये गये या अन्दाज लगाये गये प्रत्याशित लाभ (expected profit) की सम्भावना एक व्यापारी या साहसी को किसी निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है।

निःसन्देह, अन्य व्यक्तियों द्वारा या स्वयं के द्वारा भूतकाल में वास्तव में प्राप्त लाभों के आधार पर भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभों की कल्पना की जा सकती है; और इस दृष्टि से ये दोनों लाभ परस्पर सम्बन्धित होते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ये दोनों एक समान हैं, वास्तव में ये भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में,

> "भूतकालीन (या प्राप्त) लाभ का पहले से ज्ञान होता है, यह एक अभिलिखित तथ्य (recorded fact) होता है; प्रत्याशित लाभ दिमाग की केवल एक उत्पत्ति (creation) होती है, वास्तव में प्रत्याशित लाभ केवल एक अन्दाज मात्र होता है, चाहे साहसी द्वारा, एक ओर भूतकालीन सफलता या असफलता का तथा दूसरी ओर वर्तमान में निर्णय लेने के क्षण पर दिखायी देने वाली परिस्थिति के बीच, कितनी ही बारीक व विस्तृत तुलनाएँ की गयी हों। इस प्रकार, एक अर्थ में लाभ इस बात का पुरस्कार है कि साहसी ने भूतकाल में क्या किया, तथा एक अर्थ में लाभ इस बात का पुरस्कार है कि साहसी भविष्य के लिए किसी निर्णय लेने को प्रेरित (induce) होता है। परन्तु शब्द लाभ के ये दोनों अर्थ अनिवार्य रूप से तथा मौलिक रूप से भिन्न होते हैं।"[6]

---

[3] Further, there are many problems before the decision-taker which are unique in the sense that they never occurred in the past, and hence, probability cannot be used.

[4] The concept of potential surprise provides an ingeneous method to measure, indirectly a person's degree of belief in a hypothesis turning out to be true.

[5] "The chief analytical defect of this conception of profit is its failure to distinguish between what is expected or hopefully imagined, and what is realised in recorded fact."

[6] "Past (or realised) profit is known, a recorded fact; expected profit is a creation of the

वास्तविक जीवन में साहसी द्वारा किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा को बाजार में पूर्ति करने के सम्बन्ध में निर्णय लेने के समय में तथा उस समय में जबकि वास्तव में उस वस्तु की मात्रा बाजार में प्राप्य होती है, इन दोनों के बीच एक समय-विलम्ब (time-lag) रहता है। इस समय-विलम्ब के अन्दर ऐसी बातें हो सकती हैं जिनके बारे में कोई भी व्यक्ति नहीं सोच सकता; उदाहरणार्थ, बाजार की दशाओं में परिवर्तन हो सकता है, रुचि व फैशन में परिवर्तन हो सकता है, इत्यादि। इस प्रकार वस्तुओं की माँग कम हो सकती है अपेक्षाकृत उस समय के जबकि उनके उत्पादन में साधनों का प्रयोग किया गया था, अथवा पहले की अपेक्षा उनकी माँग बढ़ सकती है। इस प्रकार, "यह अनिवार्य समय-विलम्ब निश्चित रूप से अनिश्चितता को उत्पन्न करती है, और यह अनिश्चितता ही लाभ की आशाओं को उत्पन्न करती है... ।"[7]

3. सम्भाव्य अचम्भा की धारणा (The Concept of Potential Surprise)

प्रो. शैकिल लाभ के सिद्धान्त में अनिश्चितता के स्थान को मान्यता देते हैं। शैकिल ने 'आशाओं के अन्तर्गत अनिश्चितता की समस्या' ('problem of uncertainty in expectations') को एक रोचक दृष्टिकोण (interesting approach) दिया है। वह अनिश्चितता को व्यक्त करने के लिए 'संभावित धारणा' (probability concept) की रीति को त्याग देते हैं; और इसके स्थान पर 'सम्भाव्य अचम्भा' (*potential surprise*) को प्रस्तुत करते हैं —अर्थात हमें कितना अचम्भा (surprise) होगा यदि जिस बात की आशा की गयी थी वह घटित हो जाती है।

प्रो. शैकिल के अनुसार 'सम्भाव्य अचम्भा' की धारणा किसी घटना के होने या एक परिकल्पना (hypothesis) के सही उतरने की 'सम्भावना की मात्रा' (degree of possibility) को माप सकती है या व्यक्त कर सकती है—

> 'सम्भावना की मात्राओं' तथा 'अचम्भे की मात्राओं' के बीच उल्टा सम्बन्ध होता है। इसका अभिप्राय है कि किसी घटना या परिकल्पना के होने की सम्भावना की जितनी कम आशा हम करते हैं उतनी ही अधिक अचम्भे की मात्रा हमारे लिए होगी यदि वह घटना या परिकल्पना सही उतरती है; दूसरी ओर किसी घटना के होने की सम्भावना की जितनी अधिक आशा हम करते हैं उतनी ही कम अचम्भे की मात्रा हमारे लिए होगी यदि वह घटना वास्तव में सही उतरती है। एक सिरे की स्थिति हो सकती है जबकि हमारे लिए सामान्य अचम्भे का शून्य मूल्य (zero value) हो या 'शून्य सम्भाव्य अचम्भा' हो, अर्थात एक व्यक्ति को बिलकुल भी अचम्भा नहीं होगा यदि एक प्रत्याशित घटना सही उतरती है क्योंकि व्यक्ति को इस घटना के घटित होने की पूर्ण सम्भावना थी। हम 'शून्य सम्भाव्य अचम्भा' को 'निचली सीमा (lower limit) मान सकते हैं। दूसरे सिरे की स्थिति है कि 'सम्भाव्य अचम्भे का अधिकतम मूल्य' (maximum value) हो, अर्थात् एक व्यक्ति को 'पूर्ण अचम्भा' हो सकता है या वह 'पूर्ण भौचक्का हो सकता है यदि एक घटना या परिकल्पना वास्तव में सही उतरती है क्योंकि उस व्यक्ति के अनुसार वह घटना पूर्णतया असम्भव थी। इस 'अधिकतम सम्भाव्य अचम्भे' (maximum potenial surprise) को हम सम्भाव्य अचम्भे की 'ऊपरी सीमा' (upper limit) कह सकते हैं। सम्भाव्य अचम्भे की इन दो, निचली व ऊपरी, सीमाओं के बीच 'सम्भाव्य अचम्भे की विभिन्न मात्राएँ' होती हैं।[8]

---

mind, in essence no more than a conjecture, however subtle and exhaustive the comparisons which the enterpriser has made between the circumstances of past success or failure and his apparent situation at the moment of deciding. Thus, profit, in some meaning of the word, may be a reward for what the enterpriser has done; and profit, in some sense of this word, ma be ‹hat induces him to take some course of action, but these two meanings of the word are essentially and radically different".

[7] "The unavoidable time-gap thus brings in an unavoidable uncertainty, and it is that uncertainty which gives room for profit expectations..."

[8] *The 'degrees of possibility' and 'degrees of surprise' are inversely related.* This implies: the

इस प्रकार 'सम्भाव्य अचम्भे की मात्राएँ' एक तरीका है किसी परिकल्पना या घटना के सही उतरने की 'सम्भावनाओं की मात्राओं' को व्यक्त करने के लिए।[9]

4. **लाभ का सम्भाव्य अचम्भा सिद्धान्त** (Potential Surprise Theory of Profit)

यह मान लिया जाता है कि एक व्यक्ति 'सम्भाव्य अचम्भा का एक पैमाना' (a 'scale of potential surprise') बना सकता है। इसका अभिप्राय है—किसी क्रिया या कार्य के विभिन्न सम्भव परिणामों में से प्रत्येक को अचम्भे की एक मात्रा (a degree of surprise) प्रदान की जा सकती है जो कि एक व्यक्ति अनुभव करेगा यदि वह परिणाम (या घटना) सही उतरती है।

अनिश्चितता की स्थिति के अन्तर्गत, एक साहसी समझदारी के साथ अन्दाज (intelligen. guess) का प्रयोग करता है, विभिन्न कार्यों की सूची (list) बनाने के सम्बन्ध में निर्णय लेता है, प्रत्येक कार्य के परिणामों (outcomes) के सम्बन्ध में परिकल्पनाओं (hypotheses) के बनाने के बारे में निर्णय लेता है। इस प्रकार की प्रत्येक परिकल्पना के दो अंग (parts) होते हैं।

(i) 'प्रत्याशित लाभ का आकार', इसे 'लाभ परिकल्पना' कहा जाता है ('the size of expected gain', it is called 'gain hypothesis'), अथवा 'प्रत्याशित हानि का आकार', इसे 'हानि परिकल्पना' कहते हैं (the 'size of expected loss,' it is called 'loss hypothesis')।

(ii) प्रत्येक परिकल्पना से सम्बन्धित 'सम्भाव्य अचम्भे की मात्रा' (the degree of potential surprise related with each hypothesis)।

किसी एक विशिष्ट परिकल्पना के आधार पर कोई साहसी एक निर्णय ले सकता है या कोई कार्य कर सकता है; इसको 'एक परिकल्पना की शक्ति' (*power of a hypothesis*) कहते हैं जो कि एक व्यक्ति को निर्णय लेने या कार्य करने को प्रेरित (stimulate) करती है। एक परिकल्पना की ऐसी शक्ति निर्भर करती है—

(i) लाभ या हानि के आकार पर अर्थात् 'लाभ-परिकल्पना' या 'हानि परिकल्पना' पर (size of gain or loss, that is, 'Gain-hypothesis' or 'Loss hypothesis')।

(ii) प्रत्येक परिकल्पना से सम्बन्धित सम्भाव्य अचम्भा। लाभ-परिकल्पना एक साहसी को कार्य करने के लिए आकर्षित कर सकती है तथा हानि-परिकल्पना उसको कार्य करने से दूर हटाती (या repel करती) है। परन्तु 'आकर्षित करने' (attract) या 'दूर हटाने' (repel) की 'एक परिकल्पना की शक्ति' केवल 'प्रत्याशित लाभ के आकार' (अर्थात लाभ-परिकल्पना) तथा 'प्रत्याशित हानि के आकार' (अर्थात हानि-परिकल्पना) पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि उनकी 'सम्भावना की मात्रा,' जो कि 'सम्भाव्य अचम्भे' के द्वारा व्यक्त की जाती है या मापी जाती है, पर भी निर्भर करती है।[10]

---

less we think about the possibility of an outcome or hypothesis, the greater will be the degree of surprise felt by us if the outcome comes true; on the other hand, the greater we regard the possibility of an outcome, the less will be the degree of surprise if the outcome comes true. On the one extreme, we have 'potential surprise' having a zero value or we have 'zero potential surprise'—that is, a person would not be surprised at all if an expected outcome comes true because he regarded it to be perfectly possible. We may consider the 'zero potential surprise' as the 'lower limit'. On the other extreme, we have 'potential surprise having a maximum value', that is, a person will be 'completely suprised' or will have 'complete dumbfounderment' if an outcome (or hypothesis) comes true because he regarded it to be completely impossible. This 'maximum potential surprise' may be called as the 'upper limit' of potential surprise. Between *these two lower* and upper *limits of potential surprise there are 'various* degrees *of* potential surprise.'

[9] Thus, the degrees of potential surprise is a device (given by Prof. Shackle) for expressing the 'degree of possibility' of a hypothesis or a given outcome of a course of action by a person.

[10] The potential surprise associate with each hypothesis; the Gain-hypothesis will attract

एक कार्य (action) से सम्बन्धित विभिन्न लाभ परिकल्पनाएँ हो सकती हैं; इन लाभ-परिकल्पनाओं में से कुछ, या कम से कम एक परिकल्पना ऐसी हो सकती है जिसका सम्भाव्य अचम्भा शून्य-मात्रा (zero degree) का हो। अन्य परिकल्पनाओं की सम्भाव्य अचम्भे की विभिन्न ऊँची मात्राएँ (different higher degrees of potential surprise) हो सकती हैं, और कुछ परिकल्पनाओं की सम्भाव्य अचम्भे की अधिकतम मात्रा (maximum degree of potential surprise) हो सकती है। इसी प्रकार की स्थितियाँ हानि-परिकल्पना के साथ भी होती है।

हम जानते हैं कि 'लाभ-परिकल्पना' एक व्यक्ति को कार्य करने के लिए आकर्षित करती है। विभिन्न लाभ-परिकल्पनाओं में से एक ऐसी परिकल्पना जो कि आकर्षित करने की अधिकतम शक्ति रखती है वह एक व्यक्ति या साहसी के ध्यान को केन्द्रित करेगी अर्थात् फोकस (*focus*) करेगी; ऐसी लाभ-परिकल्पना को 'फोकस लाभ परिकल्पना (*focus-gain hypothesis*) कहते हैं। हम जानते हैं कि हानि-परिकल्पना एक व्यक्ति या साहसी को कार्य करने से दूर हटाती (या repel करती) है। विभिन्न हानि-परिकल्पनाओं में एक परिकल्पना ऐसी होगी जो कि एक व्यक्ति या साहसी को कार्य करने से दूर हटाने की सबसे अधिक शक्ति रखती है और यह हानि-परिकल्पना भी एक व्यक्ति या साहसी के ध्यान को केन्द्रित करेगी अर्थात् फोकस (*focus*) करेगी; ऐसी हानि-परिकल्पना को एक 'फोकस-हानि परिकल्पना' (*a 'focus-loss hypothesis'*) कहा जाता है।

एक साहसी की कार्य करने से सम्बन्धित निर्णय लेने की बात निर्भर करेगी फोकस-लाभ तथा फोकस-हानि परिकल्पनाओं की सापेक्षिक शक्ति पर। फोकस-लाभ परिकल्पना कार्य करने को आकर्षित करती है जबकि फोकस-हानि परिकल्पना कार्य करने से दूर हटाती है; साहसी का निर्णय इस बात पर निर्भर करेगा कि इन दोनों में से कौन-सी परिकल्पना शक्तिशाली या बलवान है।[11]

प्रत्येक कार्य करने के लिए हमारे पास फोकस मूल्यों का एक जोड़ा (a pair of focus values) हो सकता है, अर्थात् प्रत्येक कार्य के लिए फोकस लाभ (focus-gain) तथा फोकस-हानि (focus-loss) का एक जोडा हो सकता है। एक व्यक्ति ऐसे कार्य को चुनना चाहेगा जिसकी (आकर्षित करने की) फोकस-लाभ शक्ति, उसकी (दूर हटाने की) फोकस-हानि शक्ति के सन्दर्भ में अधिक है अपेक्षाकृत फोकस-मूल्यों के अन्य जोड़ों (pairs) की तुलना में।[12]

ऊपर बताये गये फोकस-मूल्यों को शैकिल 'प्रारम्भिक' फोकस मूल्य ('primary' focus values) कहते हैं। इस कार्य को चुनने में मदद करने के लिए प्रो शैकिल ने एक रीति बतायी है--

> शैकिल 'प्रारम्भिक' फोकस मूल्यों (*'primary' focus values*) के विपरीत 'प्रमापित' फोकस मूल्यों (*'standardised' focus values*) की धारणा (concept) का प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार 'प्रारम्भिक फोकस मूल्यों' को 'प्रमापित फोकस मूल्यों' में परिवर्तित करना चाहिए। एक प्रमापित फोकस मूल्य क्या है? एक प्रारम्भिक फोकस लाभ का प्रमापित मूल्य वह मूल्य है जिसकी एक व्यक्ति को कार्य करने की ओर प्रेरित करने की एक-समान (equal power) होती है परन्तु उसका 'शून्य सम्भाव्य अचम्भा' होता है। जब प्रारम्भिक फोकस मूल्यों को प्रमापित

---

an entrepreneur into action and the Loss-hypothesis will repel him from action. But the power of a hypothesis to 'attract' or to 'repel' will depend not only on the 'size of expected gain' (i. e., Gain-hypothesis) or the 'size of expected loss' (i. e. Loss-hypothesis), but also on their 'degree of possibility' expressed or measured through 'potential surprise'.

[11] The decision of an entrepreneur to take a course of action will depend on the relative *strength of focus-gain and focus-loss hypothesis. The focus-gain* attracts towards action whereas the focus-loss detracts from action; the decision will depend on which of the two is more stronger or powerful.

[12] For each course of action we can find a pair of focus values, that is, a pair of focus-gain and focus-loss can be found for each course of action. Now a person will like to choose that course of action whose focus gain power (to attract) in relation to the power (to detract) of its focus-loss is greater than it is in the case of other pairs of focus-values.

फोकस मूल्यों में परिवर्तित किया जाता है तो (चुनने की दृष्टि से) विभिन्न फोकस मूल्यों की तुलना आसान हो जाती है। सभी प्रमापित फोकस परिकल्पनाओं का 'शून्य सम्भाव्य अचम्भा' होता है, इसका अभिप्राय है कि हमारे सामने केवल लाभ या हानि की मात्राएँ (magnitudes) रह जाती हैं जिनकी तुलना प्रत्यक्ष रूप से व आसानी से की जा सकती है।[13]

अनिश्चितता के अन्तर्गत एक व्यक्ति द्वारा निर्णय लेने के सम्बन्ध में प्रो. शैकिल एक व्यक्ति की कल्पना तथा रुचियों व अधिमानों की भूमिका (role) पर जोर देते हैं; इस प्रकार की कल्पना तथा अधिमानों (imagination and preferences) के लिए 'जुआरी का अधिमान' अर्थात् 'गैम्बलर का अधिमान' (*Gambler preference*) का शब्द प्रयोग किया जाता है। कार्य के चुनाव (choice of action) की व्याख्या करने के लिए प्रो. शैकिल 'अनिश्चितताओं की तटस्थता वक्रों' (*indifference curves of uncertainties*) की सहायता लेते हैं और इन वक्रों को वे 'गैम्बलर अधिमान वक्र-रेखाएँ' (Gambler preference curves) कहते हैं। इस प्रकार के वक्रों को चित्र-1 में दिखाया गया है।[14] एक तटस्थता वक्र रेखा पर प्रत्येक बिन्दु 'प्रमापित फोकस लाभ' (standardised focus gain) तथा 'प्रमापित फोकस हानि' (standardised focus loss) के एक संयोग को बताता है, ये प्रमापित फोकस मूल्य एक व्यक्ति के लिए कार्य करने को प्रेरित (stimulate) करने की एक समान शक्ति (equal power) रखते हैं।[15] [बिन्दु O जो कि मूल-बिन्दु यानी origin है, शून्य फोकस लाभ तथा शून्य फोकस हानि को बताता है, तथा यही स्थिति OC-रेखा के सभी बिन्दुओं पर है।][16]
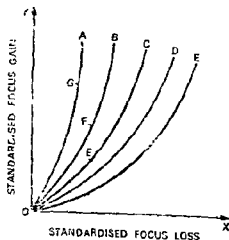
चित्र 1

इन तटस्थता वक्र रेखाओं में से किसी भी रेखा पर एक बिन्दु कार्य के एक विकल्प (a course of action) को बताता है। किन्हीं भी दो कार्यों में से उस कार्य को चुना जायेगा जिसके फोकस मूल्य (focus values) दूसरे कार्य को बताने वाली वक्र रेखा के ऊपर तथा बायीं ओर होंगे; दूसरे शब्दों में, चित्र-1 मे E तथा F द्वारा बताये गये कार्यों के विकल्पों (courses of actions) में से एक व्यक्ति F को चुनेगा। इसी प्रकार यदि कार्य के अनेक विकल्प हैं तो उस

---

[13] Prof. Shackle uses the concept of '*standardised focus values*' in contrast to '*primary* focus values'. According to him, the primary focus values should be changed into standardised focus values. What is a standardised focus value? The standardised value of a primary focus gain is that value which has equal power to stimulate a person towards action but it has zero potential surprise. When primary focus values are converted into standardised focus values, then comparing of various focus values (in order to make a choice) becomes easier. All standardised focus hypotheses have zero potential surprise, this means that we are left only with the gain or loss magnitudes which can be compared directly and easily.

[14] यह चित्र प्रो. सिहीगी की विवेचना पर आधारित है।

[15] Every point on a gambler indifference curve shows a combination of standardised focus gain and standardised focus loss which has equal power for stimulating a person or an entrepreneur into action.

[16] The point O, which is origin, indicates zero focus-gain and zero focus loss, and this is the situation at all points on the OC-curve.

विकल्प या बिन्दु को चुना जायेगा जो कि सबसे बायी तरफ की रेखा पर उच्चतम स्थान पर होगा, चित्र-1 मे एक ऐसा बिन्दु G बिन्दु है।[17]

5. सम्भाव्य अचम्भा सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Potential Surprise Theory of Profit)

सम्भाव्य अचम्भा लाभ सिद्धान्त की कई आलोचनाएँ की गयी है; मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. अनेक अर्थशास्त्री इस बात से सहमति नही रखते है कि एक 'शून्य सम्भाव्य अचम्भा' रखने वाली एक 'पूर्णतया सम्भव परिकल्पना' हो सकती है।[18]
2. यह कहा जाता है कि यह सिद्धान्त व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नही है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत अधिक मानसिक गणनाएँ (mental calculations) होती हैं जिनका व्यावहारिक जीवन मे पालन करना अत्यन्त कठिन है। विभिन्न परिकल्पनाओं (hypotheses) को या कार्य के विभिन्न विकल्पो के परिणामों को सम्भाव्य अचम्भे की मात्राएँ (degrees) प्रदान करना कठिन है, फोकस मूल्यो (अर्थात् फोकस लाभ तथा फोकस हानि) को ज्ञात करना, इनको 'प्रमापित फोकस मूल्यों' मे परिवर्तित करना, गेम्बलर अधिमान वक्रों को तैयार करना, इत्यादि बातें बहुत कठिन है। इन सबके लिए कल्पना की एक बहुत ऊँची मात्रा चाहिए जो कि सामान्यतया व्यवहार मे नही पायी जाती, और इसलिए यह कहा जाता है कि व्यावहारिक दृष्टि से इस सिद्धान्त का कोई महत्व नही रह जाता है।[19]

उपर्युक्त आलोचनाओ के होते हुए भी यह माना जाता है कि लाभ के अनिश्चितता सिद्धान्त के प्रति शैकिल का सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।[20]

प्रश्न

1. 'लाभ के सम्भाव्य अचम्भा सिद्धान्त' की एक आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   Critically discuss the 'potential surprise theory of profit.'

   अथवा

   'लाभ के अनिश्चितता सिद्धान्त के प्रति शैकिल का 'लाभ का सम्भाव्य अचम्भा सिद्धान्त' एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।' आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   'Shackle's potential surprise theory of profit is recognised as an important contribution to the uncertainty theory of profit.' Discuss critically.

---

[17] A point on any one of the curves will indicate any one course of action. Out of many courses of action that will be choosen whose focus values lie above and to the left of the curve which contains the other; than as in figure 1 out of the courses of action indicated by E and F, a person or an entrepreneur will choose F. Similarly, if there are many alternatives or courses of action, that course of action or point will be choosen which lies at the highest position on the left-most curve, in figure 1 such a point is point G.

[18] Many economists do not agree with the 'perfectly possible' hypothesis having zero potential surprise.

[19] The theory of potential surprise involves a lot of mental calculations which are very difficult to follow in practice. It is difficult to assign degree of potential surprise to various hypothesis or outcomes of different courses of action to find out focus values (i. e. focus gain and focus loss); it is difficult to convert these focus values into standardised focus values, to make gambler preference curves, etc. All these require quite a high degree of imagination which is generally not found in practice and as such it is said that the theory has little practical use.

[20] In spite of the above criticisms, it is recognised that Shackle's theory is an important contribution towards uncertainty theory of profit.

भाग 2

(VOLUME TWO)

मेक्रो अर्थशास्त्र : कुछ पक्ष

(Macro Economics : Some Aspects)

1

राष्ट्रीय आय तथा सामाजिक लेखांकन

(National Income and Social Accounting)

"National income estimates together with the subsidiary social accounts and input-output breakdowns or the flow of production have come to be used everywhere as the most important instruments for analysing the operations of the national economy and for formulating both short and long-range fiscal and economic policies and programs."—PAUL STUDENSKI

राष्ट्रीय आय का विचार कोई नया विचार नहीं है। इस सम्बन्ध में सबसे पहला कार्य एडम स्मिथ की पुस्तक *Wealth of Nations* है। परन्तु उस समय यह विचार अस्पष्ट था तथा इसको ठीक प्रकार परिभाषित नहीं किया गया था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इस प्रकार के उचित तथा वैज्ञानिक विवेचन के प्रयत्न किये गये है। अर्थशास्त्र की अधिकांश समस्याओं के लिए राष्ट्रीय आय के विचार का समझना तथा उसको प्रभावित करने वाले तत्त्वों की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय आय का अर्थ
(MEANING OF NATIONAL INCOME)

'राष्ट्रीय आय' के अर्थ के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। 'राष्ट्रीय आय' के अर्थ को बताने के लिए प्रायः मार्शल, पीगू तथा फिशर की परिभाषाओं की विवेचना की जाती है। इन तीनों परिभाषाओं की विवेचना करने से पहले आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार राष्ट्रीय आय के अर्थ को समझ लेना अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अब 'राष्ट्रीय आय' शब्द का प्रयोग आधुनिक दृष्टिकोण से ही किया जाता है।

आधुनिक दृष्टिकोण

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार राष्ट्रीय आय के अर्थ को समझने के लिए दो विचारों (concepts) को समझ लेना आवश्यक है: ''कुल राष्ट्रीय उत्पादन' (Gross National Product, i.e., GNP) तथा 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (Net National Product, i.e. NNP)।

किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल द्राव्यिक मूल्य (बाजार कीमतों पर) को 'कुल राष्ट्रीय उत्पादन' (GNP) कहते हैं।[1]

[1] Gross National Product (i.e., GNP) is the total money value (at market prices) of all final goods and services produced in a country in one year.

[ध्यान रहे कि कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में अप्रत्यक्ष कर (indirect taxes) भी शामिल होंगे; दूसरे शब्दों मे, GNP में अप्रत्यक्ष कर भी शामिल रहते हैं।]

उत्पादन प्रक्रिया में देश के पूँजीगत यन्त्र (capital equipments) धीरे-धीरे घिसते रहते हैं तथा कुछ मशीनें और यन्त्र अप्रचलित (obsolete) हो जाती हैं। इसलिए 'कुल राष्ट्रीय उत्पादन' (GNP) का कुछ भाग घिसे तथा अप्रचलित यन्त्रों को प्रतिस्थापित (replace) करने में लग जाता है। 'कुल राष्ट्रीय आय' मे से घिसाई व्यय (depreciation charges)[2] को निकाल देने से 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (Net National Product, i e ,NNP) प्राप्त होती है। संक्षेप मे,

NNP = GNP − Depreciation Charges

'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (NNP) को ढीले रूप में या विस्तृत रूप में ही 'राष्ट्रीय आय' कहा जा सकता है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री 'राष्ट्रीय आय' को संकुचित अर्थ में परिभाषित करना अधिक पसन्द करते हैं। 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन' (NNP) में से अप्रत्यक्ष करों[3] को निकाल देने पर जो बचता है उसे, संकुचित अर्थ में, 'राष्ट्रीय आय' कहा जाता है।[4]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्री 'राष्ट्रीय आय' को विस्तृत तथा संकुचित दो अर्थों मे परिभाषित करते है। संक्षेप मे,

National Income (in the broader sense)
= GNP — Depreciation Charges
= NNP

National Income (in the narrow sense)
= GNP — Depreciation Charges — Indirect Taxes
= NNP — Indirect Taxes

राष्ट्रीय आय की कुछ प्रारम्भिक परिभाषाएँ

अब हम मार्शल, पीगू तथा फिशर की परिभाषाओं की विवेचना करेंगे।

मार्शल की परिभाषा—राष्ट्रीय लाभांश या राष्ट्रीय आय को मार्शल ने इस प्रकार परिभाषित किया है : "किसी देश का श्रम व पूँजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं तथा सभी प्रकार की सेवाओं का एक निश्चित विशुद्ध योग (certain net aggregate) उत्पन्न करते हैं। "यह किसी देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय या आगम है, या राष्ट्रीय लाभांश है।"[5]

मार्शल के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए—(i) राष्ट्रीय आय की गणना प्राय: वार्षिक आधार पर की जाती है। (ii) कुल उत्पत्ति मे से मशीनों की टूट-फूट तथा घिसाई का व्यय निकाल देना चाहिए। (iii) विदेशी विनियोगों से प्राप्त विशुद्ध आय इसमे जोड़ देनी चाहिए। (iv) व्यक्तियों की वे सेवाएँ जो कि परिवार के सदस्यों तथा मित्रों

---

[2] 'घिसाई व्यय' को आधुनिक अर्थशास्त्री 'पूँजी-उपभोग भत्ता' (capital consumption allowance) भी कहते हैं।

[3] ध्यान रहे कि 'प्रत्यक्ष कर' (direct taxes) शामिल रहते हैं, केवल 'अप्रत्यक्ष कर' ही निकाले जाते हैं।

[4] "In the narrow sense, national income is simply NNP with all indirect taxes taken out." This view is taken by the U. S. Department of Commerce and many American economists.

[5] "The labour and capital of the country, acting on its natural resources, produce annually a certain net aggregate of commodities, material and immaterial, including services of all kinds...This is the true net annual income, or revenue, of the country ; or, the national dividend." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 434.

को बिना मूल्य प्रदान की जाती हैं और अपनी निजी सम्पत्ति से या सार्वजनिक सम्पत्ति से प्राप्त लाभ इत्यादि को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं करना चाहिए।[6]

मार्शल की परिभाषा की आलोचना—सैद्धान्तिक दृष्टि से मार्शल की परिभाषा सन्तोषजनक प्रतीत होती है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इनमें निम्न कठिनाइयां प्रतीत होती हैं : (i) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल उत्पादन की सांख्यिकी माप (statistical measure) अत्यन्त कठिन है। इस कठिनाई को एक बहुत बड़ी सीमा तक सभी वस्तुओं और सेवाओं के द्राव्यिक मूल्यों (money values) को ज्ञात करके तथा उनका योग करके दूर किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करने में भी त्रुटियां रह जाती हैं। (ii) इसके अतिरिक्त ऐसी वस्तुएं जिनका विनिमय बाजार में नहीं होता उनका द्राव्यिक मूल्य ज्ञात नही किया जा सकता; अतः राष्ट्रीय आय की सही गणना नहीं की जा सकती। (iii) दोहरी गणना (double counting) की सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ, कृषि उत्पादन में गन्ने के मूल्य को शामिल किया जा सकता है तथा औद्योगिक उत्पादन में चीनी व गुड़ के उत्पादन के मूल्य को शामिल किया जा सकता है।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी मार्शल की परिभाषा सरल तथा विस्तृत है।

पीगू (Pigou) की परिभाषा—पीगू के अनुसार, "राष्ट्रीय लाभांश समाज की वस्तुगत आय (objective income) का, जिसमें निस्सन्देह विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल होती है, वह भाग है जो कि द्रव्य में मापा जा सकता है।"[7]

परिभाषा से स्पष्ट है कि पीगू ने इस बात पर जोर दिया है कि राष्ट्रीय आय में केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाता है जिनके बदले में द्रव्य चुकाया जाता है अर्थात् जिनको द्रव्य में मापा जा सकता है।

पीगू की परिभाषा की आलोचना—(i) यह परिभाषा मुख्यतया विकसित देशों के लिए ही उपयुक्त है, अविकसित देशों के लिए नहीं। अविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं के अनेक क्षेत्रों में वस्तु-विनिमय (barter-system) रहता है। इस प्रकार बहुत-सी वस्तुओं तथा सेवाओं की गणना द्रव्य के माध्यम से न होने के कारण राष्ट्रीय लाभांश में कमी हो जाती है। (ii) पीगू की परिभाषा के अनुसार लाभांश में केवल उन वस्तुओं तथा सेवाओं को ही शामिल किया जाता है जिनका द्रव्य द्वारा विनिमय किया जाता है। परन्तु इसमें कई कठिनाइयां उपस्थित होती हैं; जैसे—(अ) एक सेविका की सेवाएं राष्ट्रीय लाभांश मे शामिल की जायेंगी क्योंकि उसकी सेवा के बदले में द्रव्य दिया जाता है, परन्तु यदि मालिक अपनी सेविका से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय मे शामिल नही की जायेंगी। (ब) यदि एक कृषक अपनी उपज को मण्डी में नही बेचता बल्कि स्वयं उपभोग करता है तो ऐसी दशा में उसकी उपज राष्ट्रीय आय में शामिल नहो की जायेगी। इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयां राष्ट्रीय आय की गणना में उपस्थित होती हैं।

फिशर (Fisher) की परिभाषा—प्रो. फिशर की परिभाषा मार्शल तथा पीगू की परिभाषाओं से भिन्न है। प्रो. फिशर की राष्ट्रीय आय की परिभाषा 'उपभोग' पर आधारित है जबकि मार्शल तथा पीगू की परिभाषाएं 'उत्पादन' पर आधारित हैं। फिशर के अनुसार, "राष्ट्रीय लाभांश या आय में

---

[6] "The limiting word 'net' is needed to provide for the using up of raw and half-finished commodities, and for the wearing out and depreciation of plant which is involved in production; all such wastes must of course be deducted from the gross produce before the true or net income can be found. And net income due on account of foreign investments must be added in." And further, "the benefit which a person derives from using his own personal goods or public property (such as toll free bridges) are not reckoned as parts of the national dividend, (but are left to be accounted for separately)."
—*Ibid.*, p. 4·1

[7] "The National Dividend is that part of the objective income of the community, inc[illegible], of course, income derived from abroad, which can be measured in money."

केवल अन्तिम उपभोक्ता द्वारा प्राप्त की जाने वाली सेवाओ को, चाहे उनकी प्राप्ति भौतिक वातावरण से हो या मानवीय वातावरण से, शामिल किया जाता है। इस प्रकार एक पियानो या ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है वह इस वर्ष की आय का भाग नही है, बल्कि वह पूजी मे वृद्धि मात्र है। केवल वे ही सेवाएं, जो कि इन वस्तुओं के प्रयोग से मुझे मिलेगी, आय के अन्तर्गत जायेंगी।"[8]

फिशर की परिभाषा की आलोचना—फिशर की परिभाषा की मुख्य कठिनाइयां इस प्रकार हैं: (i) इस परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना मार्शल की परिभाषा से भी अधिक कठिन है। एक देश मे व्यक्तियो द्वारा विभिन्न वस्तुओं और सेवाओ का कुल उपभोग ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उपभोग का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत होता है। उदाहरणार्थ, एक उत्पादक द्वारा उत्पादित रेडियो हजारो व्यक्तियो द्वारा प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, वस्तुओं तथा सेवाओ के कुल उत्पादन को ज्ञात करना सरल है अपेक्षाकृत हजारो तथा लाखो की सख्या मे बिखरे हुए व्यक्तियो के कुल उपभोग को। (ii) टिकाऊ उपभोग वस्तुओ के जीवन का उचित अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय का सही माप भी कठिन होगा (उदाहरणार्थ, एक स्कूटर के जीवन-काल का सही अनुमान लगाना कठिन है; माना कि उसका जीवनकाल 10 साल है और उसकी कीमत 5,000 रु. है तो केवल मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि स्कूटर से 1 वर्ष मे 500 रु. के बराबर सेवा प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त टिकाऊ वस्तुओ के स्वामित्व का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण होते रहने के कारण उनके जीवन का अनुमान लगाना और भी कठिन हो जाता है।)

तीनो परिभाषाओ में से कौनसी परिभाषा श्रेष्ठ कही जा सकती है ? इसको बताना कठिन है क्योंकि कोई भी परिभाषा पूर्ण नही है, प्रत्येक के अपने गुण तथा दोष हैं। वास्तव मे, इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करेगा कि राष्ट्रीय आय का प्रयोग किस उद्देश्य के लिए किया जायेगा। यदि हमारा उद्देश्य समाज के लिए विभिन्न वर्गों के बीच आर्थिक कल्याण या जीवन-स्तर की तुलना करना है तो फिशर की परिभाषा अधिक उपयुक्त होगी क्योंकि फिशर की परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय आय में उन्ही वस्तुओ तथा सेवाओ का प्रयोग किया जाता है जो कि किसी वर्ष विशेष मे उस देश के लोग उप-भोग करते हैं। यदि हमारा उद्देश्य आर्थिक कल्याण को प्रभावित करने वाले कारणों का अध्ययन करना है तो मार्शल तथा पीगू की परिभाषाएं अधिक उपयुक्त होगी क्योकि दीर्घकाल मे आर्थिक कल्याण में वृद्धि का मुख्य कारण होगा पूजीगत तथा अन्य वस्तुओ और सेवाओं के उत्पादन मे अधिक वृद्धि का होना। मार्शल तथा पीगू की परिभाषा के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि मार्शल की परिभाषा अधिक विस्तृत है तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से अधिक उचित है; जबकि पीगू की परिभाषा व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उचित है क्योंकि इस परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय आय का मापना अधिक सरल है।

राष्ट्रीय आय को मापने की रीतियां
(METHODS OF MEASURING THE NATIONAL INCOME)

कुजनेट्स (Kuznets) के अनुसार, राष्ट्रीय आय को मापने की निम्न तीन रीतिया हैं: (1) वस्तु-सेवा रीति (Commodity Service Method), (2) आय-प्राप्त रीति (Income-Received Method), तथा (3) उपभोग-बचत रीति (Consumption Saving Method)।

(1) वस्तु-सेवा रीति (Commodity Service Method)

इस रीति के अन्तर्गत एक वर्ष मे सभी वस्तुओं तथा सेवाओ का शुद्ध मूल्य (net value) ज्ञात किया जाता है और उनका योग करके राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है। प्रो. शूप (Shoup) के

[8] "The national dividend or income consists solely of services as received by ultimate consumers, whether from their material or from their human environment. Thus, a piano or an overcoat made for me this year is not a part of this year's income, but an addition to capital Only the services rendered to me during this year by these things are income."

शब्दों में, इस योग को 'अन्तिम उत्पादन योग' (final products total) भी कहा जाता है।

चूंकि इस रीति मे कुल उत्पादन का शुद्ध मूल्य ज्ञात किया जाता है इसलिए इसको 'कुल उत्पाद रीति' (total product method) भी कहते है। दूसरे शब्दो मे, इसमे एक वर्ष मे 'वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह' का योग किया जाता है, इसलिए इस रीति को 'वस्तुओं और सेवाओ के प्रवाह की रीति' (flow of goods and services method) या केवल 'वस्तु-प्रवाह रीति' (goods flow method) भी कहा जाता है। इस रीति को 'उत्पादन-गणना रीति' (census of production method) भी कहते हैं।

इस रीति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना के लिए देश मे सभी प्रकार की उत्पत्ति तथा व्यापार से सम्बन्धित आकड़ों की सहायता ली जाती है।

इस रीति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करने मे निम्न बातो को ध्यान में रखा जाता है— (i) कुल उत्पादन के मूल्य में से घिसाई लागत को निकाल दिया जाता है। (ii) दुहरी गणना न होने पाये इसलिए केवल अन्तिम वस्तुओ तथा सेवाओ (final goods and services) का ही मूल्य ज्ञात किया जाता है। (iii) विदेशी लेनदेन का समायोजन (adjustment) कर लिया जाता है। (दूसरे शब्दों मे, यदि देश के कुल निर्यात का मूल्य कुल आयात के मूल्य से अधिक है तो दोनों का अन्तर जुड़ जायेगा, इसके विपरीत दशा मे घट जायेगा।)

प्रो. शूप (Shoup) के अनुसार इस रीति का मुख्य दोष दोहराव (duplication) तथा कुछ मदो के छूट जाने (omission) के प्रति सुरक्षा की कठिनाई है।

(2) आय-प्राप्त रीति (Income Received Method)

इस रीति के अन्तर्गत एक वर्ष मे व्यक्तियो तथा व्यावसायिक उपक्रमों (enterprises) द्वारा प्राप्त विशुद्ध आयो को ज्ञात किया जाता है और उनका योग करके राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है। दूसरे शब्दो मे, देश के सभी व्यक्तियो द्वारा प्राप्त मजदूरी, वेतन, लाभ, ब्याज, लगान इत्यादि का योग करके राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है। प्रो. शूप इस योग को 'साधन-भुगतान योग' (factor payments total) कहते हैं।

चूंकि इसमे सभी साधनों के भुगतानों को जोड़ा जाता है, इसलिए इस रीति को 'भुगतान प्राप्त रीति' (payments received method) भी कहते हैं। दूसरे शब्दो मे, इसमे एक वर्ष मे साधनों के 'आयों के प्रवाह' (flow of earnings) का प्रयोग किया जाता है, इसलिए इस रीति को 'आय प्रवाह रीति' (earnings flow method) भी कहा जाता है। इस रीति को 'आय-सगणना रीति' (census of income method) के नाम से भी पुकारते हैं।

उच्च आय प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की आय के आकड़े तो आय-कर विभाग से प्राप्त कर लिये जाते हैं। शेष व्यक्तियो की आयों के आकड़ो को जनसंख्या रिपोर्टों (census reports) तथा अन्य विशिष्ट प्रकार की रिपोर्टों और अन्य स्रोतो से प्राप्त किया जाता है।

इस रीति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करने मे निम्न बातो को ध्यान मे रखा जाता है— (i) ऐसे भुगतानो को आय में शामिल नही किया जाता जिनसे किसी प्रकार का उत्पादन नही होता। दूसरे शब्दो मे, 'हस्तान्तरण भुगतानो' (transfer payments) [जैसे, वृद्धावस्था की पेन्शन, निर्धनो को राहत-भुगतान (relief payments) इत्यादि] को सम्मिलित नही किया जाता है। (ii) जिन वस्तुओं तथा सेवाओ के लिए कोई द्राव्यिक भुगतान नही किया जाता (जैसे घर की स्त्री की सेवाएं) उन्हे आय मे शामिल नही करना चाहिए। (iii) उत्पादक के स्वयं के साधनो के पुरस्कारो को (बाजार कीमत पर) राष्ट्रीय आय मे शामिल करना चाहिए यदि वे किसी वस्तु की उत्पादन-लागत के अंग हैं। (iv) व्यवसायो के लाभ का वह भाग जो कि रिजर्व फण्ड में डाल दिया जाता है और लाभांश रूप मे वितरित नही किया जाता अर्थात् 'अवितरित लाभ' (undistributed profit) को राष्ट्रीय आय में शामिल करना चाहिए।

इस रीति में दोहराव की सम्भावना बहुत कम होती है। परन्तु इस रीति का मुख्य दोष यह है कि सभी व्यक्तियों की आयों की सही गणना नही हो पाती।

(3) उपभोग बचत रीति (Consumption-Saving Method)

अपनी आयो का एक भाग लोग व्यय करते हैं तथा शेष बचत के रूप में रखते हैं। अतः किसी देश के समस्त व्यक्तियों का कुल व्यय तथा उनकी कुल बचतें दोनो मिलकर देश की कुल आय के बराबर होगें। इसी तथ्य पर यह रीति आधारित है।

अतः इस रीति के अन्तर्गत एक वर्ष में कुल उपभोग-व्यय तथा कुल बचतों को ज्ञात किया जाता है और उनका योग करके राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है।

कुल बचत कुल विनियोग के बराबर होती है, इसलिए इस रीति को 'उपभोग-विनियोग रीति' (Consumption-Investment Method) भी कहते हैं। चूंकि इस रीति के अन्तर्गत लोगों के व्ययों की गणना की जाती है, इसलिए इसको 'व्यय गणना रीति' (census of expenditure method) या केवल 'व्यय-रीति' (expenditure method) भी कहते हैं।

इस रीति की मुख्य कठिनाई यह है कि न केवल अविकसित देशों बल्कि विकसित देशों में भी उपभोक्ताओ के व्ययो तथा बचतो के विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त नही हैं और इस प्रकार इस रीति का व्यावहारिक महत्व बहुत कम हो जाता है।

निष्कर्ष—व्यवहार में 'उपभोग-बचत रीति' का प्रयोग नही हो पाता है क्योंकि उपभोग-व्ययों और बचतों के आंकड़े प्राप्त नहो होते हैं। अन्य दोनों रीतियों का राष्ट्रीय आय गणना मे प्रयोग किया जाता है क्योंकि इनके लिए आकड़े सभी देशों में सुगमता से प्राप्य रहते हैं।

राष्ट्रीय आय विश्लेषण की कठिनाइयां तथा सीमाएं
(DIFFICULTIES AND LIMITATIONS OF NATIONAL INCOME ANALYSIS)

एक देश की अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का बहुत महत्व होता है। परन्तु राष्ट्रीय आय को निकालने में कई कठिनाइयां होती हैं। मुख्य कठिनाइयां तथा सीमाए निम्न-लिखित हैं :

(1) राष्ट्रीय आय की गणना द्रव्य में की जाती है। परन्तु बहुत-सी वस्तुएं या सेवाएं ऐसी हैं जिनको द्रव्य में व्यक्त नहीं किया जाता है, जैसे गृहस्वामिनी की सेवाएं, अपनी उत्पादित वस्तुओं का स्वयं उपभोग, इत्यादि। दूसरे शब्दों मे, बहुत-सी ऐसी सेवाएं होती है जो कि प्रेम, दया तथा कर्तव्य की भावना से बिना द्रव्य लिये की जाती हैं। कठिनाई यह है कि ऐसी सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाय या नहीं; यदि शामिल नहीं करते हैं तो राष्ट्रीय आय कम आयेगी और यदि शामिल करते हैं तो इनका सही द्राव्यिक मूल्य ज्ञात करना कठिन होता है।

(2) इसी प्रकार राष्ट्रीय आय की गणना मे कुछ विशिष्ट समस्याए उत्पन्न हो सकती हैं। यह बात पीगू के प्रसिद्ध उदाहरण से स्पष्ट होती है। एक सेविका (maid servant) की सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है; यदि मालिक अपनी सेविका से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाओं के बदले में कोई द्रव्य नहीं मिलेगा और इसलिए वे राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं की जायेंगी।

(3) दोहरी गणना की सम्भावना बनी रहती है।

(4) विभिन्न वर्षों की राष्ट्रीय आय की तुलना करने के लिए मूल्य स्तर मे परिवर्तनो का समायोजन करना पड़ता है; इसके लिए मूल्य निर्देशांकों (Price Index Numbers) का प्रयोग करना पड़ेगा, परन्तु मूल्य निर्देशांक प्रायः पूर्णतया सही नहीं होते।

(5) राष्ट्रीय आ[illegible] गणना के लिए एक अर्थव्यवस्था मे प्राय. पूर्ण और विश्वसनीय आकड़े प्राप्त नहीं होते, ऐसी स्थिति अविकसित देशों में विशेषतया पायी जाती है।

(6) अविकसित देशों मे राष्ट्रीय आय की उचित व सही गणना नही हो पाती है। इसका

एक मुख्य कारण है कि इन देशों की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग अमुद्रीकृत (non-monetised) होता है अर्थात् बहुत-सी वस्तुओं तथा सेवाओं का लेनदेन द्रव्य के माध्यम से नहीं होता। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय की सही गणना नही हो पाती है।

(7) सरकार के व्यय तथा करों के कारण भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई होती है क्योंकि विभिन्न देशों मे इनके सम्बन्ध में एक समान नीति नही पायी जाती है। इसी प्रकार विभिन्न आर्थिक प्रणाली वाले देशों की राष्ट्रीय आय की तुलना पूर्णतया सही नही होती है जब तक कि विभिन्नताओं को ध्यान में न रखा जाय।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाय।

राष्ट्रीय आय का महत्त्व तथा प्रयोग
(SIGNIFICANCE AND USES OF NATIONAL INCOME)

राष्ट्रीय आय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियों को बताती है और इस प्रकार यह एक देश की 'आर्थिक नाड़ी' (economic pulse) की गति की जानकारी कराती है। राष्ट्रीय आय को 'सामाजिक लेखा' (social accounts) कहा जाता है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति का आंकड़ों के रूप में लेखा रखती है। राष्ट्रीय आय का महत्त्व इसके निम्न प्रयोगों से स्पष्ट होता है :

(1) राष्ट्रीय आय एक देश की आर्थिक प्रगति का माप है। (i) एक देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि सामान्यतया इस बात की सूचक है कि वह प्रगति के पथ पर है तथा उसके साधनों का उचित प्रयोग हो रहा है। (ii) राष्ट्रीय आय के आंकड़े देश की अर्थव्यवस्था के ढांचे (structure) अर्थात् उसके विभिन्न अंगों की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। यदि देश विशेष की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान बहुत अधिक तथा औद्योगिक क्षेत्र का बहुत कम है तो स्पष्ट है कि देश पिछड़ा हुआ है। (iii) राष्ट्रीय आय के आंकड़ों से देश की आर्थिक विकास की प्रवृत्तियों का अनुमान लगता है तथा आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का उचित ज्ञान होता है।

(2) राष्ट्रीय आय के आंकड़े देश की सरकार की उचित आर्थिक नीति के निर्माण में सहायक होते हैं; इन आंकड़ों के आधार पर ही सरकार अपनी कर तथा प्रशुल्क नीति, मौद्रिक नीति तथा विकास की योजनाओं को निर्धारित करती है।

(3) विभिन्न देशों की आर्थिक उन्नति की तुलना उनकी राष्ट्रीय आयो के आधार पर ही की जाती है।

(4) राष्ट्रीय आय के आकड़ों की सहायता से व्यावसायिक गतिविधि (business activity) की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों का अनुमान लगाने के सफल प्रयत्न किये जाते हैं।

संक्षेप में, 'राष्ट्रीय आय लेखांकन' (national income accounting) समाज के आर्थिक स्वास्थ्य पर नियन्त्रण रखने में तथा उस स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए समझदारी के साथ नीतियों के निर्माण में सहायता करता है।*

राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण
(NATIONAL INCOME AND ECONOMIC WELFARE)

आर्थिक कल्याण का अर्थ

'कल्याण' शब्द एक बहुत विस्तृत अर्थ रखता है। प्रो. पीगू कल्याण को दो रूप में प्रयुक्त करते

* In short, national income accounting helps us to keep a tab on the economic health of a society and to fabricate intelligently policies for improving that health.

हैं। कुल कल्याण (Total Welfare) तथा आर्थिक कल्याण (Economic Welfare)। कुल कल्याण बहुत विस्तृत है और इसके अन्तर्गत नैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी प्रकार के कल्याण शामिल किये जाते हैं; दूसरे शब्दों मे, उपलब्ध या विद्यमान साधनो से मिलने वाली सभी प्रकार की सन्तुष्टियां (satisfactions) तथा असन्तुष्टिया (dissatisfactions) कुल कल्याण के अन्तर्गत आती हैं। पीगू ने आर्थिक कल्याण का सकुचित परन्तु निश्चित अर्थ देने का प्रयत्न किया है। पीगू के अनुसार, **आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से द्रव्य के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है।**[10]

पीगू यह अनुभव करते हैं कि कल्याण को दो भागो—आर्थिक कल्याण तथा अनार्थिक कल्याण—में बाटना कठिन है क्योंकि इन दोनों को एक-दूसरे से पृथक करना आसान नहीं है। 'अनार्थिक कल्याण' पर आर्थिक कारणो का निम्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है .

(क) आय को प्राप्त (earn) करने का ढंग—उदाहरणार्थ, कार्य करने की खराब दशाएँ, लम्बे घण्टो तक कार्य करना, इत्यादि अनार्थिक कल्याण को कम करेंगी।

(ख) आय को व्यय करने का ढंग—लगभग बराबर सन्तुष्टि देने वाले उपभोग के विभिन्न कार्यों मे से कुछ 'खराब प्रभाव' (debasing influence) तथा कुछ अच्छा प्रभाव (elevating influence) उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरी ओर इसी प्रकार, आर्थिक कल्याण पर किसी भी आर्थिक कारण के परिणामस्वरूप होने वाला प्रभाव अनार्थिक दशाओ की उपस्थिति के कारण बदल सकता है।

इस प्रकार आर्थिक तथा अनार्थिक कल्याण एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन दोनों कल्याण की पारस्परिक निर्भरता के सम्बन्ध मे पीगू का कहना है कि यद्यपि हम आर्थिक तथा अनार्थिक कल्याण के बीच कोई निश्चित रेखा नही खीच सकते, परन्तु फिर भी मुद्रारूपी मापदण्ड द्वारा दोनों के बीच मोटा अन्तर किया जा सकता है।

क्या आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का 'बैरोमीटर' है? (Is Economic Welfare a 'Barometer' of Total Welfare?)

आर्थिक कल्याण, कुल कल्याण का एक भाग है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यदि आर्थिक कल्याण मे परिवर्तन होते हैं अर्थात् आर्थिक कल्याण मे वृद्धि या कमी होती है, तो कुल कल्याण मे भी उसी प्रकार के परिवर्तन होंगे अर्थात् कुल कल्याण मे भी वृद्धि या कमी होगी। अतः प्रकट रूप से (apparently) यह कहा जा सकता है कि आर्थिक कल्याण, कुल कल्याण का सूचक (index) है। परन्तु यह कथन सदैव ठीक नही कहा जा सकता। यह तभी सही होगा जबकि निम्न दो मान्यताए पूरी हो:

(1) यदि यह मान लिया जाय कि आर्थिक कल्याण को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारण अनार्थिक कल्याण को बिलकुल प्रभावित नही करते हैं।

परन्तु यह मान्यता ठीक नही है क्योंकि हम देख चुके हैं कि आर्थिक कारण अनार्थिक कल्याण को दो प्रकार से प्रभावित करते है—आय को प्राप्त करने के ढग द्वारा तथा आय को व्यय करने के ढंग द्वारा।

(2) यदि आर्थिक कारण अनार्थिक कल्याण को प्रभावित करते हैं, तो यह मान लिया जाय कि जिस दिशा मे आर्थिक कल्याण मे परिवर्तन होगा (अर्थात् आर्थिक कल्याण मे वृद्धि या कमी होती है) उसी दिशा मे अनार्थिक कल्याण मे परिवर्तन होंगे।

परन्तु यह बात भी ठीक नही है, क्योंकि व्यवहार मे ऐसा नही होता। जैसा कि पीगू बताते हैं यह कोई निश्चित नही है कि जिस दिशा मे आर्थिक कल्याण मे परिवर्तन हो, उसी दिशा में अनार्थिक

[10] "Hence, the range of our enquiry becomes restricted to that part of social welfare that can be brought directly or indirectly into relationship with the measuring rod of money. This part of welfare may be called economic welfare."

कल्याण में भी परिवर्तन हो। यह सम्भव है कि (क) एक आर्थिक कारण आर्थिक कल्याण में तो वृद्धि करे, परन्तु अनार्थिक कल्याण में कमी करे; या (ख) एक आर्थिक कारण के प्रभावस्वरूप आर्थिक कल्याण में तो कमी हो किन्तु अनार्थिक कल्याण में वृद्धि हो जाये; या, (ग) आर्थिक कल्याण पर अच्छा प्रभाव अनार्थिक कल्याण पर बुरे प्रभाव से नष्ट हो सकता है। यदि ऐसा हुआ तो कुल कल्याण मे कोई परिवर्तन नहीं होगा।

अतः उपर्युक्त विवरण के आधार पर, पीगू के शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि 'आर्थिक कल्याण, कुल कल्याण के बैरोमीटर या सूचक की भांति कार्य नहीं करेगा।'[11] यदि आर्थिक कल्याण कुल कल्याण के सूचक का कार्य नही कर सकता है, तो फिर पीगू के अनुसार, यह बात हमारे मतलब के लिए महत्वपूर्ण नही रहती है। पीगू का कथन है कि "हम जो जानना चाहते हैं वह यह नहीं है कि कल्याण कितना अधिक है या रहा है, बल्कि यह जानना चाहते हैं कि उन कारणों के प्रचलन द्वारा, जिन्हें सक्रिय या प्रचलित करना राजनीतिज्ञों व अन्य व्यक्तियों की शक्ति के भीतर है, कल्याण की मात्रा का अध्ययन किस प्रकार से प्रभावित होगा।"[12] चूंकि यह बात मालूम की जा सकती है, इसलिए आर्थिक कल्याण का अध्ययन महत्वपूर्ण है, भले ही यह कुल कल्याण का एक बुरा या अपूर्ण सूचक (bad index) हो।

राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध

राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण दोनों मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। राष्ट्रीय आय मे होने वाले परिवर्तनों का आर्थिक कल्याण पर प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय आय के परिमाण मे परिवर्तन तथा उसके वितरण में परिवर्तन, दोनों आर्थिक कल्याण को प्रभावित करते है। अतः राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण के सम्बन्ध का निम्न दो शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है :

(क) राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिवर्तन तथा आर्थिक कल्याण

सामान्यतया 'राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिवर्तनों' तथा 'आर्थिक कल्याण' में सीधा सम्बन्ध होता है; अर्थात राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है तथा राष्ट्रीय आय मे कमी होने से आर्थिक कल्याण मे कमी होती है। राष्ट्रीय आय का परिमाण कई बातो पर निर्भर करता है, जैसे कुशल उत्पादन रीतियों का प्रयोग, देश के साधनों का अच्छा शोषण, बैंकिंग तथा बीमा की अच्छी सुविधाएं, यातायात व संवादवाहन के साधनो का अच्छा विकास, इत्यादि। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से लोग अधिक उपभोग वस्तुओ का प्रयोग कर सकेंगे, अपनी अधिक आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकेंगे और उनके आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होगी। राष्ट्रीय आय मे कमी होने से लोग उपभोग-वस्तुओं का कम प्रयोग कर सकेंगे और परिणामस्वरूप उनके आर्थिक कल्याण मे कमी होगी।

राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, परन्तु यह सदैव सही नहीं है। इसके कुछ अपवाद (exceptions) होते हैं। इसके सही होने के लिए कुछ दशाओ का पूरा होना आवश्यक है। इन दशाओं का हम नीचे विवेचन करते हैं :

(1) राष्ट्रीय आय की मात्रा में परिवर्तन के परिणामस्वरूप निर्धनों को प्राप्त होने वाली आय में कोई कमी नहीं होनी चाहिए। यदि राष्ट्रीय लाभांश या आय मे वृद्धि इस प्रकार से हो कि देश के निर्धनो की आय घट जाय जबकि धनी व्यक्तियो की आय बढ़ जाय तो राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से देश के कुल आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नही होगी क्योंकि धनी व्यक्तियो की आय मे वृद्धि के

---

[11] "All this means that economic welfare will not serve for a barometer or index of total welfare." —Pigou, *Economics of Welfare*, p. 12.

[12] "But that, for our purpose, is of no importance. What we wish to learn is, not how large welfare is, or has been, but how its magnitude would be affected by the introduction of causes which it is in the power of statesmen or private persons to call into being." —*Ibid.*, p. 12.

परिणामस्वरूप प्राप्त लाभ कम होगा, अपेक्षाकृत उस हानि के जो कि निर्धनों की आय में कमी होने से होगी।

(2) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप लोगों की रुचियों (tastes) में उचित तथा अच्छे परिवर्तनों से आर्थिक कल्याण बढ़ेगा अन्यथा घटेगा।** राष्ट्रीय आय में वृद्धि के कारण लोग अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग कर सकेंगे और परिणामस्वरूप उनकी रुचियों में परिवर्तन होगा। यदि रुचि-परिवर्तन अच्छाई की ओर होता है तो आर्थिक कल्याण बढ़ेगा; उदाहरणार्थ, पुस्तकालयों के खुलने से लोगों मे पढ़ने की रुचि बढेगी, बचत-खातो में वृद्धि होने से लोगों में मितव्ययता (thrift) की आदत बढ़ेगी; इन दशाओ मे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। यदि रुचि परिवर्तन बुराई की ओर है तो आर्थिक कल्याण में कमी होगी; उदाहरणार्थ, यदि लोग अपनी बढ़ी हुई आय को शराब पीने, जुआ खेलने, इत्यादि में व्यय करते हैं तो आर्थिक कल्याण घटेगा।

इसी प्रकार यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के परिणामस्वरूप उपयोगी वस्तुओ में वृद्धि होती है तो आर्थिक कल्याण बढ़ेगा अन्यथा घटेगा।

(3) **यदि बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय से मिलने वाला सन्तोष अधिक है उसके उत्पादन में त्याग तथा असन्तोष से, तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी।** यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि नई उत्पादन रीतियों के प्रयोग, प्रशासन-व्यवस्था में सुधार, इत्यादि के कारण हुई है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि कार्य के घंटों को बढ़ाकर, अस्वस्थ वातावरण में कार्य करने से, तथा स्त्रियों और बच्चो को कार्य पर लगाकर की गयी है तो आर्थिक कल्याण में कमी होगी क्योंकि ऐसी परिस्थितियों मे बढ़े हुए राष्ट्रीय लाभांश से मिलने वाली संतुष्टि कम होगी अपेक्षाकृत उसके उत्पादन करने में कष्ट तथा त्याग की तुलना में।

(4) यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ देश की **जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि** होती है तो प्रति व्यक्ति आय में कमी होगी और इसलिए राष्ट्रीय आय में **वृद्धि होने पर भी** आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नहीं होगी।

(ख) राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन तथा आर्थिक कल्याण

राष्ट्रीय लाभांश की मात्रा में परिवर्तन ही नहीं बल्कि उसके वितरण में परिवर्तन भी आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है। राष्ट्रीय आय के वितरण का अर्थ है एक वर्ग के व्यक्तियो से दूसरे वर्ग के व्यक्तियों को आय का हस्तान्तरण; इस प्रकार का वितरण या हस्तान्तरण धनी वर्ग के पक्ष में या निर्धन वर्ग के पक्ष में हो सकता है। यदि राष्ट्रीय आय का वितरण निर्धन वर्ग के पक्ष में होता है तो इसका अर्थ है कि धनी व्यक्तियों की आय मे कमी की जायेगी और निर्धन व्यक्तियो की आय में वृद्धि होगी तथा निर्धनों की स्थिति पहले से अच्छी हो जायेगी। यदि राष्ट्रीय आय का वितरण धनवानों के पक्ष में होता है तो इसका अर्थ है कि निर्धनों की आय में कमी होगी और धनी व्यक्तियों की आय में वृद्धि; परिणामस्वरूप धनी व्यक्ति और अधिक धनी हो जायेंगे तथा निर्धनो की स्थिति पहले से और अधिक खराब हो जायेगी। यहा पर यह मानकर चलते हैं कि राष्ट्रीय आय की मात्रा मे कोई परिवर्तन नहीं होता।

इस बात का अध्ययन करने से पहले कि किस प्रकार से निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का वितरण आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है, यह जान लेना ठीक होगा कि ऐसा वितरण किन रीतियों द्वारा होता है। निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का परिवर्तन—(i) प्रत्यक्ष रीति (direct method) से, तथा (ii) अप्रत्यक्ष रीति (indirect method) से किया जा सकता है। प्रत्यक्ष रीति के अन्तर्गत धनिकों से निर्धनों के पक्ष मे 'क्रय-शक्ति' (purchasing power) का हस्तान्तरण किया जाता है। अप्रत्यक्ष रीति के अन्तर्गत निर्धनो के पक्ष मे राष्ट्रीय आय का वितरण कई विधियों से किया जा सकता है—(i) उत्पादन प्रणाली में इस प्रकार के परिवर्तन किये जायें कि धनी व्यक्तियो के प्रयोग की वस्तुएं

महंगी पड़ें तथा निर्धन व्यक्तियों के प्रयोग की वस्तुएं सस्ती पड़ें। (ii) राशनिंग व्यवस्था द्वारा धनी व्यक्तियों को उन वस्तुओं के उपभोग से हटाया जा सकता है जो कि निर्धनों के लिए आवश्यक तथा महत्व-पूर्ण है। (iii) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रीति प्रशुल्क नीति (fiscal policy) है; धनी व्यक्तियों पर अधिक टैक्स लगाकर निर्धन व्यक्तियों को शिक्षा, सामाजिक सेवाओं, इत्यादि के रूप में लाभ प्रदान किये जा सकते है।

अब हम इस बात की विवेचना करते है कि किस प्रकार निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का परिवर्तन आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि **निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का हस्तान्तरण आर्थिक कल्याण में वृद्धि करता है; तथा उनके विपक्ष में परिवर्तन आर्थिक कल्याण में कमी करता है।** इसकी पुष्टि निम्न तर्कों द्वारा की जाती है :

(i) आर्थिक कल्याण वस्तुओ तथा सेवाओं के उपभोग की मात्रा पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक कल्याण कुल आय पर नही बल्कि कुल आय के उस भाग पर निर्भर करता है जो कि एक व्यक्ति उपभोग पर व्यय करता है। यह स्पष्ट है कि निर्धनों की अपेक्षा धनी व्यक्ति अपनी आय का बहुत कम अनुपात उपभोग की वस्तुओ पर व्यय करते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक आय होने के कारण धनी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता कम होती है। इन दोनों बातों को ध्यान में रखने पर यह कहना उचित है कि धनी व्यक्तियो की आय के कुछ भाग को निर्धन व्यक्तियों के पक्ष में हस्तान्तरित करने से कुल आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होगी क्योंकि ऐसा करने से धनी व्यक्तियों की कम महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओ के स्थान पर निर्धन व्यक्तियो की अधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओ की सन्तुष्टि सम्भव हो सकेगी।

(ii) पीगू के अनुसार धनी व्यक्तियो की सन्तुष्टि (अर्थात् कल्याण) का एक बड़ा भाग निरपेक्ष आय (absolute income) से न होकर सापेक्षिक आय (relative income) से प्राप्त होता है। (उदाहरणार्थ, एक धनी व्यक्ति बहुत दुखी होगा और उसका आर्थिक कल्याण कम होगा यदि उसके पास केवल एक कार है जबकि उसके अन्य सभी पड़ोसी धनी व्यक्तियो के पास दो कारें हैं।) अतः सभी धनी व्यक्तियो की आयों मे समान रूप से कमी कर देने पर उनके आर्थिक कल्याण मे कोई विशेष कमी नही होगी। इस प्रकार धनी व्यक्तियो की आय मे से एक भाग को निर्धनो के पक्ष मे हस्तान्तरित कर देने से निर्धनों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि अधिक होगी अपेक्षा धनवानो के आर्थिक कल्याण में कमी के।

परन्तु कुछ लोगों के अनुसार **निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का वितरण आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं करता।** इसके लिए निम्न तर्क दिया जाता है : धनी व्यक्तियों के स्वभाव मे अन्तर होता है तथा प्रारम्भ से ही उनके पालन-पोषण में भी अन्तर रहता है और वे एक निश्चित आय से निर्धनों की अपेक्षा अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं। इसके विपरीत, **निर्धनों की आय में वृद्धि होने पर वे उसे कुव्यसनों पर व्यय करते हैं,** जैसे शराब पीने, जुआ खेलने, इत्यादि में, और इस प्रकार आर्थिक कल्याण मे वृद्धि के स्थान पर कमी होती है। परन्तु यह तर्क पूर्णतया सही नही है क्योंकि कुछ समय पाकर निर्धन व्यक्तियो के स्वभाव तथा रुचियो मे परिवर्तन हो जाता है और वे बढी हुई आय के साथ समायोजन कर लेते हैं अर्थात् उसका सदुपयोग करने लगते हैं।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है : **राष्ट्रीय आय की मात्रा में परिवर्तन की अनुपस्थिति में, सामान्यतया यह कहना उचित है कि धनी व्यक्तियों की आय के कुछ भाग को निर्धनों के पक्ष में हस्तान्तरित करने से कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी।**

सामाजिक लेखांकन अथवा राष्ट्रीय आय लेखांकन
(SOCIAL ACCOUNTING OR NATIONAL INCOME ACCOUNTING)

1 प्राक्कथन (Introduction)

एक देश के आर्थिक स्वास्थ्य की स्थिति की जानकारी के लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़ों की

जानकारी आवश्यक है। परन्तु केवल राष्ट्रीय आय की गणना कर लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह भी जरूरी है कि विभिन्न आर्थिक इकाइयों के आंकड़ों को किस प्रकार से संगठित और प्रस्तुत किया जाय ताकि उनके पारस्परिक सम्बन्धों को समझा जा सके तथा आर्थिक विश्लेषण की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के आर्थिक लेखांकन (economic accounting) को **'राष्ट्रीय आय लेखांकन'** कहा जाता है।

राष्ट्रीय आय को मापने के प्रयत्न कई शताब्दी पुराने है, परन्तु 'राष्ट्रीय आय लेखांकन' का विकास आधुनिक है। 1930 की महान मन्दी (great depression), 1936 मे केंज (Keynes) की पुस्तक 'रोजगार, ब्याज तथा द्रव्य का सामान्य सिद्धान्त' (*The General Theory of Employment, Interest and Money*) के प्रकाशन, तथा द्वितीय विश्वयुद्ध ने मिलकर 'राष्ट्रीय आय लेखांकन' के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस विषय के आधुनिक विकास के सम्बन्ध में W. Leontief, Simon Kuznets, Morris Copeland तथा Richard Stone के नाम उल्लेखनीय हैं। 'संयुक्त राष्ट्र संघ' (United Nations) के सांख्यिकी विभाग (Statistical Division) ने इस सम्बन्ध में अपने सदस्य राष्ट्रों को सहायता देकर 'राष्ट्रीय आय लेखाकन' के विकास को तीव्र गति प्रदान की है।

> **'राष्ट्रीय आय लेखांकन' को अब एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विवरण तथा विश्लेषण के लिए केन्द्रीय ढांचा समझा जाने लगा है।**[13]

2. 'सामाजिक लेखांकन' या 'राष्ट्रीय आय लेखांकन' का अर्थ (Meaning of 'Social Accounting' or 'National Income Accounting')

'राष्ट्रीय आय लेखांकन' का आधार राष्ट्रीय आय है। 'राष्ट्रीय आय लेखांकन' को 'सामाजिक लेखाकन' (Social Accounting) अथवा 'आर्थिक लेखाकन' (Economic Accounting) के नाम से भी पुकारा जाता है; कभी-कभी इसे 'राजनीतिक गणित' (Political Arithmetic) भी कहा जाता है।

जिस प्रकार से एक फर्म अपनी व्यावसायिक स्थिति (अर्थात् प्रगति या अवनति की स्थिति) की जानकारी के लिए लेखा (accounts) रखती है, उसी प्रकार से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थिति की जानकारी के लिए 'सामाजिक लेखों' (social accounts) को बनाया जाता है, ऐसा करने मे व्यवसाय के 'दोहरी खतान पद्धति' (double-entry system) के सिद्धान्त का ही प्रयोग किया जाता है। एक समाज या अर्थव्यवस्था की सब आर्थिक इकाइयों का धन तथा आय का योग समस्त समाज के कुल धन तथा कुल आय का निर्माण करता है। व्यक्तिगत समूहों के लेखों के योगीकरण की प्रक्रिया द्वारा 'सामाजिक लेखों' को प्राप्त किया जाता है।[14]

ऐडी तथा पीकोक (Edey and Peacock) के शब्दों मे 'सामाजिक लेखांकन' अथवा 'राष्ट्रीय आय लेखांकन' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :

> **"सामाजिक लेखांकन मानव तथा मानवीय संस्थाओं की क्रियाओं के सांख्यिकीय वर्गीकरण (statistical classification) से इस प्रकार सम्बन्धित है कि वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने में सहायक होता है। परन्तु 'सामाजिक लेखांकन' के अन्तर्गत अध्ययन का क्षेत्र आर्थिक क्रिया के केवल सांख्यिकीय वर्गीकरण को ही शामिल नहीं करता, बल्कि अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के विश्लेषण के लिए इस**

---

[13] National Income Accounting is now considered as the central framework for describing and analysing a national economy.

[14] "The total wealth and the total income of a community consist of the sum of the wealth and of the income of all the economic units in the community. The process of adding up individual sets of accounts gives a set of *social accounts*."

प्रकार एकत्रित जानकारी के प्रयोग को भी शामिल करता है।"[15]

उपर्युक्त परिभाषा को हम अपने सरल शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते है—सामाजिक लेखांकन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (जैसे—उत्पादन, उपभोग तथा विनियोग) से सम्बन्धित आंकड़ों का विवरण (description) ही नहीं देता बल्कि उनके पारस्परिक सम्बन्धों को बताते हुए विश्लेषण के लिए एक ढांचा (framework for analysis) भी प्रदान करता है।

'सामाजिक लेखांकन' के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

(i) यद्यपि 'सामाजिक लेखांकन' व्यावसायिक लेखों (business records) को तथा दोहरी खतान पद्धति (double entry system) के सिद्धान्त को लेकर चलता है, परन्तु सामाजिक लेखांकन के अन्तर्गत वे समस्याएं होती है जिनका व्यावसायिक लेखाकारो (business accountants) के लिए कोई महत्त्व नही होता।[16] दूसरे शब्दों मे, सामाजिक लेखांकन समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यकरण तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (sectors) के पारस्परिक सम्बन्धो पर आंख रखता है।

(ii) सामाजिक लेखांकन सांख्यिकीय जानकारी का केवल एकत्रीकरण तथा प्रकाशन ही नही करता बल्कि इससे आगे जाता है। इसका उद्देश्य आंकड़ो (data) को इस रूप मे प्रस्तुत करना होता है कि कथनों की संरचना (structure) से विभिन्न मदों के पारस्परिक सम्बन्धो को सुगमता से देखा जा सके।[17]

(iii) ऊपर दी गयी दूसरी बात को हम कुछ भिन्न रूप मे इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं: आर्थिक लेखांकन (अर्थात् सामाजिक लेखाकन) तथा आकड़े (statistics) दो सम्बन्धित वस्तुएं हैं और फिर भी उनमें अन्तर है। आंकड़े तथ्यों या अनुमानो के केवल एकत्रीकरण (collection) मात्र हैं, जैसे कीमत सूचनांक तथा जनसख्या का विकास, टनों मे गेहूँ का उत्पादन, जो कि अपने आप में उपयोगी है परन्तु वे अन्य सांख्यिकीय एकत्रीकरणो (statistical collections) में व्यक्त मूल्यों पर अनोखे रूप से (uniquely) निर्भर नही करते। इसके विपरीत, एक लेखांकन कथन (accounting statement, i.e., social accounting) सांख्यिकीय श्रेणियों (statistical series) का एक सम्बन्धित समूहीकरण है, उनमें से प्रत्येक श्रेणी अन्य सभी श्रेणियो से एक अनोखे सम्बन्ध में बंधी होती है। जिस प्रकार एक बीजगणितीय समीकरण (algebraic equation) मे एक चर (variable) मे परिवर्तन किसी दूसरे चर में परिवर्तन की आवश्यकता को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार लेखांकन कथन के एक मद के मूल्य में परिवर्तन दूसरे में परिवर्तन की आवश्यकता को उत्पन्न करता है क्योंकि लेखांकन कथन समीकरण होते हैं।[18]

---

[15] "Social accounting is concerned with the statistical classification of the activities of human beings and human institutions in ways which help us to understand the operation of the economy as a whole. The field of studies summed up by the words 'social accounting' embraces, however, not only the *classification* of economic activity, but also the *application* of the information thus assembled to the investigation of the operation of the economic system."

[16] Though social accountants start with the same set of records and the same principle of double entry as business accountants, yet the social accounting involves problems which do not concern business accountants.

[17] "Social accounting transcends the mere compilation and publication of statistical information. Its purpose is to present data in such a form that interrelationships among items are most easily discerned from the structure of statements."

[18] "Economic accounting and statistics are two related, but different, things. Statistics are a collection of facts or estimates, such as price indices and population growth, or the number of tons of wheat grown, which are useful in themselves but which do not depend uniquely on the values expressed in other statistical collections. *An accounting*

(iv) सामाजिक लेखांकन को बनाने की कई रीतियां हैं। अमेरिका में सामाजिक लेखांकन की तीन रीतियां (methods) या तीन दिशाएं (directions) हैं : (1) साईमन कुजनेट्स (Simon Kuznets) की रीति—इस रीति का विवेचन कुजनेट्स ने अपनी पुस्तक *National Income and Its Composition* (two volumes) में किया है; (2) लिओन्टीफ (Wassily Leontief) की इनपुट-आउटपुट प्रणाली (Input-Output system); (3) मोरिस कोपलैण्ड (Morris Copeland) का 'द्रव्य प्रवाहों' का अध्ययन (Study of 'Money Flows')।

सामाजिक लेखांकन के अंग
(COMPONENTS OF SOCIAL ACCOUNTING)

देश के आर्थिक स्वास्थ्य (economic health) को जानने के लिए सामाजिक लेखांकन के विचार या अंग (Social Accounting Concepts or Components) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। सामाजिक लेखाकन के पाच अंग या विचार हैं : (1) कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product or GNP) (2) विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product or NNP) (3) राष्ट्रीय आय (National Income or NI) (4) वैयक्तिक आय (Personal Income or PI) तथा (5) व्यय-योग्य वैयक्तिक आय (Disposable Personal Income or DPI)। अब हम इनमे से प्रत्येक की विस्तृत विवेचना करेंगे।

1. कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product or GNP)

कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) सामाजिक लेखांकन का एक आधारभूत विचार (basic concept) है। यह राष्ट्रीय उत्पादन का एक अत्यन्त विस्तृत (comprehensive) माप है।

परिभाषा—इसको हम निम्नलिखित शब्दों मे परिभाषित कर सकते हैं :

कुल राष्ट्रीय उत्पाद किसी देश में एक वर्ष में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं का (बाजार कीमत पर) द्राव्यिक मूल्य है।

[Gross National Product is the total money value (at market prices) of all final goods and services produced annually in the nation.]

GNP की विशेषताएं (Characteristics) : उपर्युक्त परिभाषा मे कई महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, जैसे, 'कुल' (gross), 'राष्ट्रीय' (national), 'द्राव्यिक मूल्य' (money value), 'अन्तिम (final) तथा 'एक वर्ष मे' (annually); ये शब्द इस विचार की मुख्य विशेषताओं को बताते हैं। अतः GNP के विचार को अच्छी तरह से समझने के लिए उसकी निम्न विशेषताओं को ध्यान में रखना जरूरी है :

(i) 'कुल राष्ट्रीय उत्पाद' (GNP) में 'कुल' (gross) शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि GNP की गणना करते समय उसमे से 'मूल्य-ह्रास व्यय' (Depreciation charges) अथवा 'पूंजी-उपभोग भत्ता' (Capital consumption allowance) को घटाया नही जाता है।[19] [यदि 'राष्ट्रीय उत्पाद' में से मूल्य ह्रास व्यय घटा दिया

---

statement, on the other hand, is an integrated grouping of statistical series, each of which is bound to all the others in a unique relationship. Just as a change in one variable in an algebraic equation requires a change in some other variable so also a change in the value of one item in an accounting statement requires a change in another, for accounting statements are equations."

[19] वस्तुओं का उत्पादन करने मे मशीनो व यन्त्रो का कुछ न कुछ मूल्य ह्रास (depreciation) होता रहता है अर्थात् कुछ 'पूंजीगत यन्त्रों का उपभोग' (consumption of capital equipment) हो जाता है और नयी मशीनो व यन्त्रो को प्रतिस्थापित (replace) करना पड़ता है। दूसरे शब्दो मे, 'मूल्यह्रास व्यय' (Depreciation Charges) अथवा 'पूंजी-उपभोग भत्ता' (Capital Consumption Allowance) के परिणामस्वरूप देश की उत्पादन-क्षमता मे कमी होती है।

जाये तो हमें 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद' (Net National Product) प्राप्त हो जाती है।

(ii) इसको 'राष्ट्रीय' (national) कहा जाता है क्योंकि इसका सम्बन्ध एक राष्ट्र के समस्त निवासियों की उत्पादन-क्रियाओं से होता है; इसमें उन सम्पत्ति-साधनों (property resources), जिनके स्वामी राष्ट्र के निवासी होते हैं, के द्वारा वर्तमान उत्पादन में योगदान (contribution) भी शामिल होता है।

(iii) यह एक 'द्राव्यिक माप' (monetary measure) है। एक अर्थव्यवस्था विभिन्न प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करती है; वस्तुओं व सेवाओं के इस 'विविधापूर्ण एकत्रण' (heterogeneous collection) को जोड़ा नहीं जा सकता है। अतः हम वर्तमान कीमत पर प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक सेवा का बाजार मूल्य मालूम करते हैं और इन सबको जोड़कर समाज में कुल उत्पादन का कुल द्राव्यिक मूल्य ज्ञात कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक सेवा या वस्तु की उत्पादित मात्रा को उसकी कीमत से गुणा किया जाता है अर्थात 'वस्तु (या सेवा) की मात्रा × कीमत' (quantity × price) को मालूम किया जाता है और फिर इन सबको जोड़कर GNP मालूम कर ली जाती है।

(iv) विभिन्न वर्षों के उत्पादनों (output) के द्राव्यिक मूल्यों की तुलना सही रूप से तभी की जा सकती है जबकि मुद्रास्फीति या मुद्रा विस्फीति (inflation or deflation) के कारण द्रव्य के मूल्य में परिवर्तन न हो। दूसरे शब्दों में, मुद्रास्फीति या मुद्रा-विस्फीति GNP की सही गणना में कठिनाई पैदा कर देती है क्योंकि GNP एक 'price × quantity' अंक है। इसका अर्थ है कि या तो कुल भौतिक उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन या कीमत-स्तर में परिवर्तन GNP के आकार में परिवर्तन कर देगा। परन्तु उत्पादित वस्तुओं की मात्रा तथा उनका वितरण उपभोक्ता या परिवारों के जीवन स्तर को प्रभावित करता है, न कि उनकी कीमतें। अतः समस्या यह है कि 'price × quantity' के अंक (figure) को इस प्रकार से समायोजित किया जाये ताकि यह भौतिक उत्पादन (physical output) में परिवर्तनों को बताए, न कि कीमतों में परिवर्तनों को। इस समस्या को हल करने के लिए ऊंची कीमतों पर GNP को नीचा (deflate) तथा नीची कीमतों पर ऊंचा (inflate) कर दिया जाता है। इस प्रकार के समायोजन विभिन्न वर्षों के लिए GNP के एक ऐसे चित्र को उपस्थित करते हैं जिसमें कीमतों व द्रव्य का मूल्य स्थिर रहा हो।

(v) GNP केवल 'अन्तिम (final) वस्तुओं व सेवाओं' के द्राव्यिक मूल्यों को शामिल करता है और 'मध्यवर्ती (intermediate) वस्तुओं' के लेनदेन की उपेक्षा (ignore) करता है।

'अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं' का अर्थ ऐसी वस्तुओं और सेवाओं से होता है जिनको केवल 'अन्तिम प्रयोग' (final use) के लिए खरीदा जाता है, ऐसी वस्तुओं को पुनः बिक्री (resale) या अन्य प्रकार की वस्तुओं के निर्माण के लिए नहीं खरीदा जाता है। 'मध्यवर्ती वस्तुएं' वे वस्तुएं और सेवाएं हैं जिनको और अधिक निर्माण (further manufacturing or processing) के लिए या पुन बिक्री के लिए खरीदा जाता है।

अन्तिम वस्तुओं के मूल्य में सभी मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य शामिल हो जाता है।[20] मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्यों को जोड लेने से 'दोहरी गणना' (double

---

[20] कोट एक अन्तिम वस्तु है तथा कपड़ा एक मध्यवर्ती वस्तु है जिसके द्वारा कोट का निर्माण हुआ है, अतः मध्यवर्ती वस्तु कपड़े का मूल्य अन्तिम वस्तु कोट के मूल्य में शामिल हो जाता है; दोनों वस्तुओं के मूल्यों को अलग-अलग जोड़ने में double counting हो जायेगी।

counting) हो जायेगी और GNP का मूल्य बढ़ा हुआ (exaggerated) दिखायी देगा। स्पष्ट है कि 'दोहरी गणना' से बचने के लिए GNP में केवल अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों को ही शामिल किया जाता है।

(vi) यह केवल वर्तमान वर्ष (current year) के उत्पादन को ही शामिल करता है। इस कथन के निम्न अभिप्राय (implications)) हैं—(क) GNP एक प्रवाह (flow) है; यह समय की प्रति इकाई में उत्पादन की मात्रा है; परम्परा (convention) के अनुसार GNP को हम वार्षिक प्रवाहों (annual flows) के शब्दों में मापते हैं।[31] (ख) यदि वर्तमान वर्ष का कुछ उत्पादन बिना बिके रह जाता है, तो उसे वर्तमान वर्ष में स्टाक (current year's inventory or stock) में शामिल करके GNP में उसकी गणना की जाती है। (ग) इसके अन्तर्गत पुरानी वस्तुओं की बिक्री (second hand sales) को शामिल नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ, पिछले वर्षों में उत्पादित वस्तुओं की वर्तमान वर्ष में बिक्री को GNP में शामिल नहीं किया जायेगा, क्योंकि ऐसी बिक्री वर्तमान वर्ष के उत्पादन को नहीं बताती है। इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति वर्तमान वर्ष में उत्पादित एक नई कार को खरीदता है और एक महीने बाद किसी दूसरे को बेच देता है, तो इस प्रकार की बिक्री भी GNP में शामिल नहीं की जायेगी क्योंकि जब नयी कार खरीदी गयी थी तभी उसको GNP में शामिल कर लिया गया था, परन्तु उसी कार को, जो एक महीने में पुरानी (second hand) हो जाती है, दुबारा बेचने से कोई नया उत्पादन नहीं होता है और इस प्रकार की पुरानी वस्तुओं की पुन: बिक्री (second hand resales) को GNP में शामिल करने से दुबारा गणना (double counting) हो जायेगी और GNP का अंक अनावश्यक रूप से बढ़ (exaggerate हो) जायेगा। (घ) विशुद्ध मौद्रिक लेनदेन (purely financial transactions) भी GNP में शामिल नहीं किये जाते हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप में वर्तमान उत्पादन को नहीं बताते हैं। उदाहरणार्थ, मुसीबतों (जैसे—बाढ़, अकाल, इत्यादि) के समय में सरकार द्वारा सहायता के लिए दिये गये भुगतान (relief payments), इस प्रकार के भुगतान किसी भी प्रकार के वर्तमान उत्पादन के बदले में नहीं दिये जाते हैं।

GNP के मापने की रीतियां (Methods of Measuring GNP) : किसी वस्तु के खरीदने में जो व्यय किया जाता है वह उस व्यक्ति द्वारा आय के रूप में प्राप्त किया जाता है जिसने कि उस वस्तु के उत्पादन में सहयोग दिया है। दूसरे शब्दों में, 'कुल राष्ट्रीय उत्पादन' (GNP) के खरीदने में जो कुल व्यय किया जाता है वह 'कुल राष्ट्रीय आय' (Gross National Income, or GNI) के बराबर होगा जो कि विभिन्न साधनों को मजदूरी, लाभ, लगान तथा ब्याज के रूप में मिलती है। अत: GNP को नापने की दो रीतियां है—(क) **व्यय रीति** (Expenditure Method) : कभी-कभी इसको 'उत्पाद-रीति' (Output Method) भी कहा जाता है। (ख) **आय-रीति** (Income Method) : कभी-कभी इसको 'वितरण या आवंटन रीति' (Allocation Method) भी कहा जाता है।

(क) **व्यय-रीति** (Expenditure Method) : इस रीति के अन्तर्गत हम अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं पर खर्च किये गये सभी प्रकार के व्ययों को जोड़ते हैं। 'कुल व्यय' अग्रलिखित चार प्रकार के व्ययों का योग होता है

---

[31] "GNP is a flow; it is an amount of production per unit of time. By convention, we measure GNP in terms of annual flows."

(i) **वैयक्तिक उपभोग व्यय** (Personal Consumption Expenditure): इसके अन्तर्गत प्राय: तीन प्रकार के व्यय शामिल किये जाते हैं—(क) टिकाऊ वस्तुओं (durable goods), जैसे, स्कूटर, कार, रेफ्रीजरेटर, रेडियो, इत्यादि पर व्यय; (ख) अ-टिकाऊ वस्तुओं (non-durable goods), जैसे, दूध, रोटी, मक्खन, सिगरेट, पहनने के कपड़े, मंजन (tooth-pastes), इत्यादि पर व्यय; (ग) सेवाओं पर व्यय, जैसे, अध्यापक, वकील, डाक्टर इत्यादि व्यक्तियों द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं पर व्यय, तथा कुछ ऐसी सेवाओं पर व्यय जो सरकार द्वारा प्रदान की जाती हैं, जैसे, डाक-सेवा (postal service), पानी की पूर्ति की सेवा (water supplies), इत्यादि पर व्यय ।

(ii) **कुल निजी स्वदेशीय व्यय या विनियोग** (Gross Private Domestic Expenditure or Investment) : इसके अन्तर्गत देश (अर्थात् स्वदेश) में व्यापारिक फर्मों द्वारा सभी प्रकार के विनियोग व्यय (investment expenditure) शामिल किये जाते हैं। विनियोग का अर्थ यहाँ पर 'वास्तविक विनियोग' (real investment) से है, अर्थात् फर्मों द्वारा नई पूंजीगत वस्तुओं (new capital goods) की खरीद से है। इस प्रकार के खर्चों के लिए 'कुल' (gross) शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इनमें 'मूल्यह्रास भत्ता' (depreciation allowances) को शामिल किया जाता है, उनको घटाया नहीं जाता है; [यदि इनको घटा दिया जाता है, तो हमें 'विशुद्ध निजी स्वदेशीय विनियोग' (Net Private Domestic Investment) प्राप्त हो जाता है।]

कुल निजी स्वदेशीय विनियोग व्यय में निम्न तीन बातें शामिल होती हैं—(क) फर्मों द्वारा 'स्थिर विनियोग' (fixed investment) पर व्यय, जैसे मशीन व यंत्रों, कार-खानों की बिल्डिंगों तथा दफ्तरों, इत्यादि पर व्यय। (ख) सभी निवास निर्माण (all residential constructions), इस प्रकार के व्यय विनियोग-व्यय समझे जाते हैं (न कि उपभोग-व्यय) क्योंकि फैक्ट्रियों की भांति मकान आय प्राप्त करने वाली सम्पत्तियां (income-earning assets) हैं; जो मकान किराये पर उठाये जाते हैं वे आय प्राप्त करने वाली सम्पत्तियां हैं और इस प्रकार विनियोग-वस्तुएं हैं; जो मकान स्वामियों द्वारा निवास के लिए प्रयोग किये जाते हैं वे भी विनियोग-वस्तुएं हैं क्योंकि उनको किराये पर उठाकर आय प्राप्त की जा सकती है (यद्यपि मकान का स्वामी कुछ दशाओं में ऐसा नहीं करता है)। (ग) 'स्टाक या इनवेन्टरी परिवर्तन' अथवा 'इनवेन्टरी विनियोग' (inventory changes or inventory investment) : इनवेन्टरी परिवर्तन ऋणात्मक (negative) हो सकते हैं या धनात्मक (positive)। यदि इनवेन्टरी परिवर्तन ऋणात्मक हैं, तो इसका अभिप्राय है कि अन्तिम उपभोक्ताओं को बिक्री अधिक है वर्तमान उत्पादन से और इसलिए इनवेन्टरियों में कमी होती है; दूसरे शब्दों में, कुछ माल वर्तमान उत्पादन में से नहीं बल्कि पुराने स्टाकों में से बेचा जा रहा है। इसलिए GNP की गणना करते समय 'कुल अन्तिम बिक्री के मूल्य' (value of total final sales) में से 'इनवेन्टरियों में कमी के मूल्य' (value of the decrease in inventories) को घटा देना चाहिए। यदि इनवेन्टरी में परिवर्तन धनात्मक है तो इसका अर्थ है कि वर्तमान उत्पादन में से कुछ माल नहीं बिक पा रहा है और वह इनवेन्टरी में जा रहा है अर्थात इनवेन्टरी में वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थिति में GNP की गणना करते समय 'कुल अन्तिम बिक्री के मूल्य' में 'इनवेन्टरी में वृद्धि के मूल्य' को जोड़ देना चाहिए। अत, GNP की गणना के लिए, इनवेन्टरियों का

स्तर नहीं, बल्कि इनवेन्टरियों में परिवर्तन उपयुक्त या महत्त्वपूर्ण होता है। ('It is the *change* in inventories which is relevant to the calculation of GNP, not the level of inventories.')

(iii) सरकार द्वारा वस्तुओं व सेवाओं पर खरीद का व्यय (Government Expenditure on the Purchase of Goods and Services) : यहां पर 'सरकार' शब्द के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, तथा स्थानीय सरकारें, तीनों प्रकार की सरकारों को शामिल किया जाता है। सरकार द्वारा वस्तुओ व सेवाओ पर व्यय के अन्तर्गत निम्न तीन बातो को ध्यान मे रखना चाहिए—(क) सरकार निजी फर्मों (private firms) से सीधे कुछ वस्तुए खरीदती है, जैसे टाइपराइटर, फर्नीचर, दफ्तरो की बिल्डिगें, ट्रक तथा कारे इत्यादि। (ख) कुछ प्रकार की सरकारी सेवाओ (governmental services) पर व्यय, जैसे पुलिस तथा देश की प्रतिरक्षा (defence) पर व्यय, शिक्षा, सडक-पुल निर्माण, इत्यादि पर व्यय। (ग) 'हस्तातरण भुगतानों' (transfer payments), के रूप मे सरकार द्वारा किये गये व्यय (जैसे relief payments, pensions इत्यादि पर व्यय) GNP की गणना मे शामिल नही किये जाते हैं। ऐसे भुगतानो या खर्चों के बदले मे किसी प्रकार का प्रत्यक्ष उत्पादन नही होता है।

(iv) विशुद्ध विदेशीय विनियोग (Net Foreign Investment) : इसके दो भाग होते हैं—(क) वस्तुओ तथा सेवाओ के निर्यातो का उनके आयातो के ऊपर आधिक्य (excess of exports over imports); यदि यह आधिक्य धनात्मक है तो इसे GNP की गणना मे जोड़ दिया जाता है; तथा ऋणात्मक होने पर उसमे से घटा दिया जाता है। वास्तव मे इस प्रकार का 'धनात्मक आधिक्य' वर्तमान वर्ष मे एक देश का अन्य देशो मे एक प्रकार से विनियोग की भांति है जो कि उस देश का अन्य देशों में वस्तुओं व सेवाओ के खरीदने की योग्यता या दावे (claims of foreign goods and services) को बताता है। (ख) 'एक देश के लोगों की विदेशो में आयो' का 'विदेशियो की इस देश मे आयो' के ऊपर आधिक्य (excess of earnings of persons of a country over the earnings of foreigners in this country), धनात्मक होने से इस आधिक्य को GNP मे जोड दिया जायेगा; ऋणात्मक होने से उसमे से घटा दिया जायेगा।

स्पष्ट है कि GNP व्ययो का एक संयुक्त योग (composite of expenditures) है। GNP एक देश की पूर्ण उत्पादक शक्तियो का, अल्पकाल मे, एक उपयोगी माप है, विशेषतया युद्ध के समय मे।[22]

(ख) आय-रीति (Income Method) : 'कुल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) पर कुल व्यय' 'कुल राष्ट्रीय आय' (Gross National Income, that is, GNI) हो जाती है जो कि उत्पादन में सहयोग देने वाले साधनों को प्राप्त होती है; अर्थात इस GNI के अन्तर्गत निम्नलिखित मद शामिल होते हैं—(i) मजदूरी और वेतन (ii) लगान (iii) ब्याज तथा (iv) लाभ। इस प्रकार से GNP का दूसरा रूप GNI में दिखायी देता है। (Thus, GNP has counterpart in GNI)। परन्तु स्थिति कुछ जटिल हो जाती है दो गैर-आय मदों (two non-income charges) के परिणामस्वरूप; ये दो गैर-आय मदें हैं—(i) पूजी-उपभोग भत्ता या मूल्यह्रास (Capital Consumption Allowance or Depreciation Allowance) तथा (ii) अप्रत्यक्ष कर (indirect taxes); ये दो मदे उत्पत्ति के

[22] "The GNP is a useful measure of the country's full productive powers when our interest centres on a short period, as when we want to know the total productive capacity of the system in time of war."

साधनों को आय के रूप में प्राप्त नहीं होती। अतः GNP तभी बराबर होगी GNI के जबकि GNI में निम्नलिखित मदें शामिल होती हैं—

1. मजदूरी तथा वेतन (Wages and Salaries)
2. लगान (Rents)
3. ब्याज (Interests)
4. लाभ (Profits)
5. पूजी उपभोग भत्ता (Capital Consumption Allowance)
6. अप्रत्यक्ष कर (Indirect Taxes)

अब इनमें से प्रत्येक की हम थोड़ी विवेचना देते हैं।

1. वेतन तथा मजदूरियों को 'कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति' (compensation for employees) भी कहा जाता है। 'मजदूरियों तथा वेतनों' का विस्तृत अर्थ लिया जाता है और इनमें निम्न मदें (items) शामिल होती हैं—(क) मजदूरियां तथा वेतन (ख) कमीशन (commissions), बोनस, इत्यादि (ग) मालिकों द्वारा दिये गये सामाजिक सुरक्षा के अंशदान (social security contributions of employers)। वास्तव में (ख) तथा (ग) के अन्तर्गत अंशदान या मद 'मजदूरियों व वेतनों' के पूरक (supplements) होते हैं तथा "एक व्यापारी के लिए ये अंशदान श्रम को प्राप्त करने की लागत होते हैं और इसलिए एक मालिक के द्वारा दिये गये कुल मजदूरी भुगतान के ये एक अंग होते हैं।"[23]
2. लगान के अन्तर्गत वे आयें आती हैं जिनको कि सम्पत्ति साधनों (property resources) की पूर्ति करने वाले व्यक्ति प्राप्त करते हैं।
3. ब्याज के अन्तर्गत वे आयें आती हैं जो निजी व्यापारियों से 'द्रव्य-पूंजी (money capital) की पूर्ति करने वालों' को प्राप्त होती हैं।[24]
4. लाभों को दो भागों में बांटा जाता है—(क) एकाकी मालिकों (sole proprietorships,), साझीदारों, तथा सहकारी समितियों के लाभ; (ख) कोरपोरेशनों (corporations) को प्राप्त होने वाले लाभ जिन्हें 'कोरपोरेट लाभ' (corporate profits) कहा जाता है। इस लाभ को तीन हिस्सों में बांटा जाता है—प्रथम, इन लाभों का एक भाग सरकार को 'कोरपोरेट आय करों' के रूप में जाता है; दूसरे एक भाग अंश-मालिकों (shareholders) को लाभ या 'डिवीडेंड' (dividend) के रूप में जाता है; तथा तीसरे, शेष 'अवितरित कोरपोरेट लाभ' (undistributed corporate profits) के रूप में रह जाता है।
5. 'पूंजी-उपभोग भत्ता' या मूल्यह्रास'—जब पूंजीगत ओजारो व मशीनों का प्रयोग किया जाता है तो प्रतिवर्ष उनमें कुछ न कुछ ह्रास (depreciation) हो जाता है। अतः प्रत्येक फर्म पूंजीगत मशीनों के सम्पूर्ण जीवन को ध्यान में रखते हुए प्रति वर्ष के ह्रास का द्राव्यिक माप ज्ञात कर लेती है और इस द्रव्य को 'मूल्यह्रास फंड' (Depreciation Fund) में प्रत्येक वर्ष जमा करती है और इसे साधनों की पूर्ति करने वालों में आय के रूप में वितरित नहीं किया जाता है।

---

[23] These contributions, as a matter of fact, are supplements to wages and salaries, and to "a businessman these contributions are cost of obtaining labour and therefore are a component of his total wage payments."

[24] For certain reasons, in some countries like the U.S.A., interest payments made by government and consumers are excluded from interest income.

6. अप्रत्यक्ष कर—सरकार वस्तु-कर (excise taxes), बिक्री-कर, इत्यादि कुछ अप्रत्यक्ष कर लगाती है। व्यापारिक फर्में इनको उत्पादन की लागत का एक अंग मानती हैं और इसलिए इन करो को वस्तुओ की कीमतो मे शामिल कर लेती हैं। वास्तव में "सरकार को जाने वाला अप्रत्यक्ष करो का यह प्रवाह (flow) एक अर्जित आय (earned income) नही होती है, क्योकि इन करो की आय के बदले में सरकार प्रत्यक्ष रूप से किसी वस्तु का उत्पादन नहीं करती है।"[25] इस प्रकार अप्रत्यक्ष करो की धनराशि उत्पत्ति के साधनो को प्राप्त होने वाली आयो की एक अंग नही होती है।

अब हम सारी स्थिति का साराश नीचे दी गयी सारणी मे दे सकते है :

सारणी (Table) 1

कुल व्यय रीति (Total Expenditure Method)		कुल आय रीति (Total Income Method)
1. वैयक्तिक उपभोग व्यय (Personal Consumption Expenditure)		1 मजदूरी तथा वेतन (Wages and Salaries)
+		+
2. कुल निजी स्वदेशीय व्यय या विनियोग (Gross Private Domestic Expenditure or Investment)		2. लगान (Rents)
+	= GNP = GNI =	+
3. सरकार द्वारा वस्तुओं व सेवाओ पर खरीद का व्यय (Government Expenditure on the purchase of goods and services)		3. ब्याज (Interests) + 4. लाभ (Profits) + 5. पूंजी उपभोग भत्ता (Capital Consumption Allowance)
+		+
4. विशुद्ध विदेशी विनियोग (Net Foreign Investment)		6. अप्रत्यक्ष कर (Indirect Taxes)

2. विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product, that is, NNP)

प्रत्येक वर्ष देश की पूजी के एक भाग का मूल्यह्रास (depreciation) हो जाता है या एक भाग घिसाव या टूट-फूट अथवा अप्रचलन (obsolescence) के कारण खो दिया जाता है या समाप्त हो जाता है। अत GNP का कुछ हिस्सा प्रति वर्ष मूल्यह्रास द्वारा खोयी हुई पूजी के प्रतिस्थापन (replacement) के लिए प्रयोग मे लाया जाना जरूरी है ताकि देश की उत्पादन-क्षमता को बनाये रखा जा सके।

यदि हम 'कुल राष्ट्रीय उत्पाद' (Gross National Product) में से मूल्यह्रास घटा दें तो हमें समस्त अर्थव्यवस्था के प्रयोग के लिए 'विशुद्ध उत्पाद' (net product) प्राप्त हो जायेगा; इस माप (measure) को 'विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद' (Net National Product, that is, NNP) कहा

[25] "This flow of indirect business taxes to government is not earned income, because government contributes nothing directly to the production of the goods in return for these tax receipts."

जाता है। इस प्रकार मूल्यह्रास के लिए समायोजित GNP ही NNP है। (GNP adjusted for depreciation is NNP)।
संक्षेप में NNP को इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

NNP = GNP − Depreciation

सारणी नं. 1 में NNP को प्राप्त करने के लिए 'कुल व्यय रीति' की तरफ मद नं. 2 'कुल निजी स्वदेशीय व्यय या विनियोग' के स्थान पर 'विशुद्ध निजी स्वदेशीय विनियोग' (net private domestic investment) लिखा जाता है; तथा 'कुल आय रीति की तरफ मद नं. 5 'पूंजी उपभोग भत्ता' अर्थात मूल्यह्रास को निकाल दिया जाता है।

NNP वह विशुद्ध उत्पादन है जिसका मूल्यांकन बाजार कीमत पर किया जाता है, इसलिए NNP को कभी-कभी 'बाजार कीमतों पर राष्ट्रीय आय' (National Income at Market Prices) भी कहा जाता है।

वार्षिक मूल्यह्रास की सही गणना करना बहुत कठिन है और चूंकि विभिन्न फर्में मूल्यह्रास की गणना करने के भिन्न-भिन्न तरीके प्रयोग करती हैं, इसलिए, GNP की तुलना में, NNP कम निश्चित या सही (less accurate) होता है।

परन्तु इस कठिनाई के होने पर भी NNP एक बहुत महत्वपूर्ण विचार है—(क) किसी एक वर्ष के लिए NNP वस्तुओं व सेवाओं के उस प्रवाह (flow) को बताती है जिसका उपभोग, बिना अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को हानि पहुंचाए, किया जा सकता है। (ख) दीर्घकालीन समयों के लिए उत्पादन के वर्द्धन (growth) को मापने के लिए अथवा विभिन्न देशों के उत्पादन की तुलना करने के लिए NNP एक अधिक उचित विचार है अपेक्षाकृत GNP के।

3. राष्ट्रीय आय (National Income, that is, NI)

कुछ दशाओं में हम वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा (output) को उत्पादित करने वाले साधनों (भूमि, श्रम और साहस) की अर्जित आयों (earned incomes) में दिलचस्पी रखते हैं। NNP में अप्रत्यक्ष कर शामिल रहते हैं और इन अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त धनराशि वर्तमान उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से कोई योगदान (contribution) नहीं देती हैं।[26] दूसरे शब्दों में, अप्रत्यक्ष करों की राशि साधनों को आय के रूप में नहीं दी जाती है। अतः अर्थव्यवस्था में मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ के रूप में समस्त साधनों की कुल आयों को मालूम करने के लिए NNP में से अप्रत्यक्ष करों को घटा दिया जाता है; इस प्रकार से जो माप (measure) प्राप्त होता है उसे 'राष्ट्रीय आय' (National Income, i.e., N.I.) कहते हैं, या कभी-कभी इसे 'साधन लागत पर राष्ट्रीय आय' (National Income at Factor Cost) भी कहते हैं।[27]

NNP से NI को निकालने में व्यवहार में सामान्यतया अप्रत्यक्ष करों को NNP में से घटा दिया जाता है;[28] संक्षेप में,

NI = NNP − Indirect Taxes

---

[26] We should remember that government does not contribute directly to production in return for the indirect tax revenues which it receives; government is not considered to be a factor of production.

[27] "National Income, since it excludes indirect business taxes, measures net output and income valued at the costs of production, where profits are considered a cost of production."

[28] परन्तु कुछ अर्थशास्त्री NI को प्राप्त करने के लिए, अप्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त NNP में 'सरकारी अनुदानों' (government subsidies) का भी समायोजन (adjustment) करना अधिक पसन्द करते हैं। 'अनुदान दिये गये उद्योग' (subsidized industry) की वस्तु की बाजार कीमत में सरकार द्वारा प्रदत्त (given) अनुदान शामिल नहीं होता। सरकार एक फर्म को

राष्ट्रीय आय (NI) का विचार महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह राष्ट्रीय उत्पादन में से साधनों के हिस्सो पर प्रकाश डालता है।

4. वैयक्तिक आय (Personal Income)

वैयक्तिक आय वह आय है जो कि व्यक्तियो या परिवारो को एक वर्ष मे वास्तव मे प्राप्त होती है। वैयक्तिक आय को राष्ट्रीय आय (NI) से निकाला जाता है।

राष्ट्रीय आय (NI) साधनो या व्यक्तियो या परिवारो की आयो का माप है, परन्तु वह उनकी वास्तविक द्राव्यिक आयो (actual money incomes) को नही बताता है। इसके कारण हैं—

(i) अर्जित (earned) आय का कुछ भाग साधनो, व्यक्तियो या परिवारो को द्राव्यिक आय के रूप मे वास्तव मे प्राप्त नही होता है। इस प्रकार के मद (items) है—सामाजिक सुरक्षा अशदान (social security contributions) जो कि श्रमिक अपनी मजदूरियो मे से देते है और उस सीमा तक उनकी वास्तविक द्राव्यिक आय कम हो जाती है; कोरपोरेट आय-कर (corporate income tax) जो कि कोरपोरेशन अपने लाभो में से देते है; अवितरित कोरपोरेट लाभ (undistributed corporate profits) जो कि अश-मालिको (share holders) को नही बाटे जाते है। अत: व्यक्तियो या परिवारो की वास्तविक आयो को मालूम करते समय उपर्युक्त मदो को NI मे से घटा देना चाहिए।

(ii) कुछ व्यक्तियो या परिवारो को ऐसी द्राव्यिक आयें (money incomes) मिलती हैं जो कि वे बिना अपने साधनो या अपनी सेवाओ की पूर्ति किये हुए प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के मद हैं—सहायता भुगतान (relief payments), बेरोजगारी की क्षतिपूर्ति (unemployment compensation), वृद्धावस्था की पेन्शन, इत्यादि। इन भुगतानो को सामूहिक रूप मे 'हस्तातरण भुगतान' (transfer payments) कहते है। अत: व्यक्तियो की वास्तविक आयो को ज्ञात करते समय इन मदो को जोड दिया जाता है। अब वैयक्तिक आय (PI) को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं—

PI = NI – (Social security contributions + Corporate income taxes + undistributed corporate profits) + (Transfer payments like relief payments, unemployment compensation, old age pensions, etc.)

5. व्यय-योग्य आय (Disposable Income, that is, DI)

परिवारो या व्यक्तियो को प्राप्त होने वाली समस्त वास्तविक आय या 'वैयक्तिक आय' (PI) क्रय शक्ति (purchasing power) नही है, अर्थात समस्त वैयक्तिक आय व्यय-योग्य (disposable) नही है; उसमे से कुछ हिस्सा व्यक्तियो को टैक्सो (जैसे आय-कर, मोटर-गाडी टैक्स, इत्यादि) के रूप मे

अनुदान के रूप मे जो देती है उसे फर्मे (कीमत मे शामिल करके) उपभोक्ताओं से वसूल नही करती हैं। परन्तु एक फर्म प्रयोग मे लाये जाने वाले साधनो को उस अनुदान का भुगतान कर देती है। NNP मे अनुदान को शामिल नही किया जाता है क्योंकि यह बाजार मूल्य का एक अंग नही होता है, परन्तु अनुदान राष्ट्रीय आय का एक अग होता है। इसलिए, NI को प्राप्त करने के लिए, (NNP मे से अप्रत्यक्ष करो के घटाने के साथ-साथ), अनुदान को NNP मे जोड दिया जाता है। सक्षेप मे NI = NNP – Indirect Taxes + Government Subsidy.

"The market value of the product of a subsidized industry does not incorporate the subsidy; what the government gives to the firm, the firm does not have to obtain it from the consumer. But the subsidy is paid out by the firm to the factors which it employs. The subsidy is not included in the NNP because it is not a component of the market price; but the subsidy is a component of the national income. The subsidy is therefore added to the NNP (along with the subtraction of indirect taxes from NNP) to get NI."

देना पड़ता है। अपनी 'वैयक्तिक आय' (PI) में से इन टैक्सों को देने के बाद जो परिवारों के पास बच रहता है वह 'व्यय-योग्य आय' (DI) है। अतः

DI = PI − Personal Direct Taxes

स्पष्ट है कि DI केवल 'टैक्स-के-बाद वैयक्तिक आय' (after-tax personal income) है जिसके एक बड़े भाग को वैयक्तिक उपभोग पर व्यय करने के लिए तथा कुछ भाग बचाने (या न व्यय करने के लिए) एक व्यक्ति स्वतन्त्र होता है। अतः DI को हम दूसरे प्रकार से भी व्यक्त कर सकते है जिसे नीचे दिया गया है :

DI = वैयक्तिक उपभोग (Personal Consumption) + वैयक्तिक बचत (Personal Saving)

वास्तव मे PI तथा DI के बीच अन्तर वैयक्तिक करो के द्राव्यिक भार (money burden of individual taxes) को बताता है, और इस प्रकार DI का विचार उपयोगी है।

वास्तव में सामाजिक लेखाकन के पाचो भाग एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण (performance) की विस्तृत जानकारी प्रदान करते है।

सामाजिक लेखांकन का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF SOCIAL ACCOUNTING)

राष्ट्रीय आय लेखाकन एक देश की अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति को बताता है तथा देश के आर्थिक स्वास्थ्य को सुधारने या अधिक अच्छा करने के लिए विश्लेषण का एक ढाचा प्रदान करता है।[29] इस कथन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय लेखाकन या सामाजिक लेखाकन के महत्त्व को दो वर्गों मे बाटा जा सकता है—(क) आर्थिक क्रियाओ का अभिसूचक (index); तथा (ख) आर्थिक नीति और नियोजन का यन्त्र (instrument)।

(क) आर्थिक क्रियाओं का अभिसूचक (An Index of Economic Activities)

(i) सामाजिक लेखाकन किसी समय विशेष पर अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के स्तर को मापता है तथा उस उत्पादन स्तर के कारणो पर प्रकाश डालता है।

(ii) विभिन्न समयावधियो के बीच सामाजिक लेखाकन की तुलना करके अर्थव्यवस्था की गति के दीर्घकालीन पथ (long-term course) को ज्ञात किया जा सकता है; अर्थव्यवस्था की प्रगति या अवनति सामाजिक लेखो (social accounts) मे दिखायी देती है।

संक्षेप मे, सामाजिक लेखाकन एक अर्थव्यवस्था मे मुख्य परिवर्तनो का एक विस्तृत साराश प्रदान करता है। यह बताता है कि अर्थव्यवस्था में कहा सन्तुलन है या कहा सन्तुलन की कमी है; तथा किसी भी मुख्य या बड़े असन्तुलन के कारणो को स्पष्ट या प्रमाणित करता है।[30]

(ख) आर्थिक नीति व नियोजन का यन्त्र (Instrument of Economic Policy and Planning)

भूतकाल का एक विवेकपूर्ण तथा समन्वित चित्र भविष्य मे उचित व सही निर्णयो के लिए अत्यन्त सहायक होता है। सामाजिक लेखे (social accounts) इस बात पर प्रकाश डालते है कि क्या हो चुका है तथा क्या हो रहा है, और इस प्रकार वे भविष्य मे उचित आर्थिक नीति तथा नियोजन के महत्त्वपूर्ण यन्त्र का कार्य करते है। यहा तक कि सरकार का बजट, जो कि सरकारी नीति का केन्द्र-विन्दु (pivot) समझा जाता है, वह भी अब उन्नत देशो मे सामाजिक लेखांकन के साथ समायोजित (fit) किया जाता है।

---

[29] National Income Accounting mirrors the current state of the economy of a nation and provides a framework of analysis to better its economic health.

[30] Social Accounting provides a comprehensive summary of the main changes in progress in the economy. It indicates where there is balance or lack of balance and provides evidence as to the sources of any major disequilibrium.

"सामाजिक लेखांकन या राष्ट्रीय आय लेखांकन राष्ट्र की आर्थिक नाड़ी पर ध्यान रखता है तथा देश के आर्थिक स्वास्थ्य को अच्छा करने की दृष्टि से विवेकपूर्ण आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता करता है।"[31]

प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय किसे कहते हैं ? इस सन्दर्भ में मार्शल, पीगू तथा फिशर के विचारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   What is national income ? In this connection discuss critically the views of Marshall, Pigou and Fisher.
2. राष्ट्रीय आय को परिभाषित कीजिए। इसको मापने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?
   Define National Income What difficulties are faced while measuring it ?
3. राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए। क्या यह कहना सही है कि "कुल राष्ट्रीय लाभांश (aggregate national dividend) के आकार में वृद्धि आर्थिक कल्याण में वृद्धि करती है ?"
   Explain the relation between National Income and economic welfare. Is it correct to say that "increase in the size of the aggregate National Dividend ...*must involve increase in economic welfare ?* (*—Pigou*)
   (Jodhpur. M.A., 1966)
4. "कोई भी कारण जो वास्तविक आय में निर्धनों के निरपेक्ष हिस्से (absolute share) में वृद्धि करता है, सामान्यतया आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि करता है, यदि उस कारण के परिणामस्वरूप किसी भी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय लाभांश के आकार में कमी न हो।" (—पीगू)। इस कथन की पूर्ण विवेचना कीजिए।
   "Any cause which increases the absolute share of real income in the hands of the poor, provided that it does not lead to contraction in the size of the national dividend from any point of view, will, in general, increase the economic welfare." (--Pigou) Discuss fully this statement.
   (Agra, M.A., 1964)
5. राष्ट्रीय आय का आकार तथा वितरण का ढंग किस प्रकार आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है ?
   Discuss how the changes in the size and pattern of distribution of National Income affect Economic Welfare. (Agra, M.A., 1969)
6. आर्थिक कल्याण के विचार की व्याख्या कीजिए। यह किस प्रकार से राष्ट्रीय आय के (क) आकार तथा (ख) वितरण से प्रभावित होता है ?
   Explain the concept of Economic Welfare. How is it affected by (a) size and (b) distribution of National Income ? (Raj, M.Com., 1968)
7. आप राष्ट्रीय आय लेखाकन से क्या समझते हैं ? उसके विभिन्न अंगों की व्याख्या कीजिए।
   What do you understand by 'national income accounting' ? Explain its various components.

---

[31] Social Accounting or National Income Accounting keeps a finger on the pulse of the nation and helps in fabricating national economic policies for the betterment of its economic health.

8. 'सामाजिक लेखांकन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित आंकड़ों का विवरण ही नही देता बल्कि उनके पारस्परिक सम्बन्धों को बताते हुए विश्लेषण के लिए एक ढांचा प्रदान करता है।' इस कथन के सन्दर्भ में सामाजिक लेखांकन के अर्थ और उसके महत्त्व की विवेचना कीजिए।
   'Social accounting not only describes the figures of the various sectors of the entire economy but also indicates their mutual relationship and provides a framework for analysis.' In the context of this remark discuss the meaning and significance of Social Accounting.
9. राष्ट्रीय आय लेखांकन पर एक अच्छा नोट लिखिए।
   Write a lucid note on 'national income accounting'.

2

कुल मांग, कुल पूर्ति तथा अर्थव्यवस्था का साम्य

(*Aggregate Demand, Aggregate Supply and Equilibrium of the Economy*)

1. प्राक्कथन (Introduction)

एक अर्थव्यवस्था उस बिन्दु पर साम्य की दशा मे होगी जहा पर 'कुल पूर्ति फक्शन' (Aggregate supply function, अर्थात् ASF) तथा 'कुल मांग फक्शन' (Aggregate Demand Function, अर्थात् ADF) बराबर होते हैं। दूसरे शब्दों मे, कुल पूर्ति (Aggregate Supply या AS) तथा कुल माग (Aggregate Demand या AD) एक अर्थव्यवस्था मे उत्पादन, आय तथा रोजगार के स्तर को निर्धारित करते हैं। AD तथा AS के कटाव-बिन्दु (point of intersection) पर अर्थव्यवस्था साम्य मे होगी तथा यह कटाव-बिन्दु अर्थव्यवस्था मे उत्पादन, आय तथा रोजगार के स्तर को निर्धारित करेगा।

अब हम 'कुल पूर्ति' तथा 'कुल मांग' के विचारो की एक विस्तृत विवेचना करते हैं।

2. कुल पूर्ति फंक्शन (Aggregate Supply Function or ASF)

कुल पूर्ति रेखा या कुल पूर्ति फंक्शन (ASF) को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं:

कुल पूर्ति फंक्शन (ASF) एक तालिका है जो कि एक ओर रोजगार के स्तरों (और इसलिए उत्पादन की मात्राओं अर्थात् outputs जो कि उन रोजगार के स्तरों से सम्बन्धित हैं) तथा दूसरी ओर प्रत्याशित न्यूनतम बिक्री राशियो (expected minimum sale proceeds) के बीच सीधे सम्बन्ध को बताता है।[1]

सीधे सम्बन्ध का अर्थ है कि जितनी अधिक विक्रय-राशिया (sale proceeds) होगी उतना ही अधिक रोजगार (तथा उत्पादन) होगा।

यदि एक निश्चित मात्रा (output) की न्यूनतम बिक्री-राशि कम से कम उस मात्रा की (जो कि रोजगार के एक स्तर से सम्बन्धित है) कुल उत्पादन-लागत को पूरा (cover) कर सकती है, तब ही अर्थव्यवस्था मे साहसियो के लिए रोजगार के एक निश्चित स्तर को प्रदान (provide) करना सम्भव होगा। दूसरे शब्दो मे, 'उत्पादन की कुल लागत' और कुछ नही है बल्कि 'न्यूनतम बिक्री राशि' ही है।[2] इसको 'कुल पूर्ति मूल्य' (Aggregate Supply Price) भी कहा जाता है। दूसरे

---

[1] Aggregate Supply Function (ASF) is a schedule which shows a direct relationship between the levels of employment (and, hence, outputs relating to those levels of employment) on the one side and the expected minimum sale proceeds on the other hand.

[2] The 'minimum sale proceeds' or the 'total cost of production' of a certain level of output is nothing but the sum of income payments made to the factors of production. That is, the 'minimum sale proceeds' or 'total cost of production' should cover total wages + total rents + total interests + total profits.

शब्दों में, 'कुल पूर्ति मूल्य' वह न्यूनतम बिक्री-राशि है जो कि रोजगार के एक निश्चित स्तर (और उत्पादन की मात्रा) को बनाये रखने (अर्थात् induce करने) के लिए केवल पर्याप्त मात्र है। अतः

"कुल पूर्ति फंक्शन (या तालिका) ऐसे बिन्दुओं की एक शृंखला (series) है जिसमें से प्रत्येक बिन्दु रोजगार की विभिन्न मात्राओं से सम्बन्धित उत्पादन के 'कुल पूर्ति मूल्य' को बताता है।"[3]

जितनी अधिक 'कुल बिक्री राशि' होगी उतना ही अधिक रोजगार (उत्पादन व राष्ट्रीय आय) होगा। परन्तु एक दूसरी दृष्टि से देखा जाये तो 'कुल विक्रय राशि', जो कि समाज में सब साहसी (या फर्में) मिलकर प्राप्त करते है, वास्तव मे समाज द्वारा कुल व्यय (total spending or expenditure) को बताती है अर्थात् समाज की कुल मांग को बताती है। दूसरे शब्दो मे,

कुल पूर्ति फंक्शन (या तालिका) बताता है कि कुल मांग के विभिन्न स्तरों के उत्तर में कितनी मात्रा का उत्पादन (या कितनी मात्रा की पूर्ति) की जायेगी।[4]

माना कि एक अर्थव्यवस्था 20 लाख व्यक्तियों को रोजगार मे लेती है और ये व्यक्ति 50 लाख रुपये के मूल्य के बराबर उत्पादन (अर्थात् 'स्थिर कीमतो पर वास्तविक राष्ट्रीय आय' अथवा 'real national income at constant prices') प्रदान करते है। इसका अर्थ यह हुआ कि साहसी या सेवायोजक (entrepreneurs or employers) कम से कम वही 50 लाख रु. बिक्री-राशि से प्राप्त करने की आशा करेंगे, क्योंकि तब ही वे उस उत्पादन व रोजगार के स्तर को बनाये रख सकेंगे। दूसरे शब्दो मे, यदि कुल व्यय (या कुल विक्रय-राशि) 50 लाख रु है, तो 50 लाख रु. के मूल्य के बराबर ही उत्पादन किया जायेगा। इसी प्रकार यदि 'कुल व्यय' या 'कुल विक्रय-राशि' की आशा 80 लाख रु. की है तो उत्पादन भी 80 लाख रु. के मूल्य के बराबर ही किया जायेगा। अतः,

"कुल पूर्ति फंक्शन (ASF) उत्पादन के उन विभिन्न स्तरों को बताता है जो कि उत्पादक इस आशा में पूर्ति करने को तत्पर रहते हैं कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर के लिए उसकी बिक्री से आय (अर्थात् विक्रय-राशि) बराबर या समान (identical) होगी उस उत्पादन की मात्रा (या स्तर) के मूल्य या लागत के, जबकि कीमतें स्थिर रहती हैं।"[5]

यदि हम कुल विक्रय-राशि (अर्थात् कुल व्यय) को Y-axis पर दिखाएं और कुल उत्पादन (अर्थात् कुल आय व रोजगार) को X-axis पर दिखाए (जैसा कि चित्र 1 मे दिखाया गया है), तो स्पष्ट है कि 45° रेखा कुल पूर्ति फंक्शन या कुल पूर्ति रेखा को बतायेगी। दूसरे शब्दो मे,

'कुल पूर्ति रेखा' 45°-रेखा होगी; और इस रेखा का प्रत्येक बिन्दु दोनों अक्षों (axes) से बराबर दूरी पर होगा जिसका अभिप्राय है कि इस रेखा पर प्रत्येक बिन्दु यह बतायेगा कि सब उत्पादकों को (सामूहिक रूप से) विक्रय-राशि की वह मात्रा मिलेगी जो उत्पादन-मात्रा (output) के मूल्य (या लागत) के बराबर होगी।[6]

---

[3] "The aggregate supply function (or schedule) consists of a series of points each one of which represents 'aggregate supply price' for the output associated with different amounts of employment."

[4] Aggregate supply function (or schedule) shows how much will be produced (or supplied) in response to different levels of aggregate demand.

[5] Aggregate Supply Function (ASF) indicates the various levels of output which the producers are willing to offer in the expectation that for each level of output they will get an amount of income from its sale (that is, sale-proceeds) which is the same or identical as the value (or cost) of that level of output (at constant prices).

[6] Aggregate supply curve is represented by 45°-line; each point on this line will be equidistant from both the axes which implies that each point on the line will indicate that the producers in aggregate will get an amount from sale-proceeds equal (or identical) to the value (or cost) of the output.

चित्र 1

आधुनिक आय - रोजगार सिद्धान्त (modern income-employment theory) में 'कुल पूर्ति फंक्शन' (Aggregate Supply Function) को प्राय: 45°-रेखा द्वारा बताया जाता है। इस सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है—"45°-कुल पूर्ति फंक्शन का अभिप्राय है कि, रोजगार-स्तर की दृष्टि से, सारा विश्लेषण वास्तविक शब्दों में अर्थात् स्थिर कीमतो के शब्दों मे किया जाता है। आधुनिक रोजगार का सिद्धान्त यह बताता है कि रोजगार में परिवर्तन की आशा तब की जाती है जबकि मुख्यतया उत्पादन मे परिवर्तन होता है; उत्पादन के द्राव्यिक मूल्य में परिवर्तन होने से यह आवश्यक नहीं है कि रोजगार में भी परिवर्तन हो।"[7]
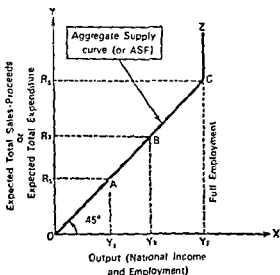
चित्र 1 में 45°-रेखा OCZ कुल पूर्ति रेखा है जिसका प्रत्येक बिन्दु X-axis तथा Y-axis दोनो से बराबर दूरी पर है। चित्र मे बिन्दु A बताता है कि प्रत्याशित (expected) कुल विक्रय-राशि (या कुल-व्यय) OR_1=कुल राष्ट्रीय आय (व उत्पादन) OY_1 के; दूसरे शब्दो मे, साहसी आय-उत्पादन के स्तर OY_1 को तब ही प्रदान करने को तत्पर होंगे जबकि वे उसके बराबर ही विक्रय-राशि OR_1 प्राप्त करने की आशा करेंगे। '45°-कुल पूर्ति रेखा' का प्रत्येक अन्य बिन्दु (जैसे B या C) इसी प्रकार की स्थिति को बतायेगा।

> एक चढ़ती हुई कुल पूर्ति रेखा बताती है कि कुल विक्रय-राशि (या कुल व्यय) में वृद्धि के साथ उत्पादन, आय तथा रोजगार की अधिक मात्रा प्रदान की जायेगी।[8]

माना कि चित्र 1 मे Y_F उस उत्पादन व आय के स्तर को बताता है जो कि पूर्ण रोजगार के स्तर *या पूर्ण-क्षमता स्तर (full-employment level, or full-capacity level)* से सम्बन्धित है। **पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित उत्पादन व आय के इस स्तर Y_F पर कुल पूर्ति रेखा खड़ी (vertical) रेखा हो जाती है** (अर्थात्, कुल व्यय मे परिवर्तन के प्रति पूर्णतया बेलोचदार—'perfectly inelastic to the changes in total expenditure'—हो जाती है), जैसा कि चित्र मे कुल पूर्ति रेखा का CZ हिस्सा बताता है। दूसरे शब्दो में,

> इसका अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था एक बार जब पूर्ण रोजगार (अर्थात् पूर्ण-क्षमता उत्पादन) के स्तर पर पहुंच जाती है तो अल्पकाल में, कुल व्यय में परिवर्तन होने

[7] "The 45°-aggregate supply schedule (or function) forces us to formulate the entire analysis in real, i.e., constant price, terms, which is the most meaningful procedure from the standpoint of the employment level. Modern employment theory maintains that employment can be expected to change primarily when there is a change in output, not necessarily when there is a change in the monetary value of that output."

[8] A rising aggregate supply curve shows that with the increase in the amount of expected total sale proceeds (or total expenditure) a greater amount of output, income and employment will be forthcoming.

पर भी, उत्पादन में और अधिक वृद्धि सम्भव नहीं होगी; यदि कुल व्यय 'पूर्ण रोजगार के उत्पादन-स्तर' (चित्र 1 में Y_F) से अधिक हो जाता है, तो वास्तविक उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी, केवल कीमतों में वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।[9]

[हमें 45°-रेखा के बारे में एक बात और ध्यान रखनी चाहिए। हम देख चुके हैं कि 45°-रेखा 'कुल पूर्ति रेखा' को बताती है; परन्तु मैक्रो अर्थशास्त्र में 45°-रेखा का एक दूसरा कार्य भी है; यह मैक्रो-विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण साधन (tool) भी है। इस दृष्टि से 45°-रेखा को 'सन्दर्भ-रेखा' (reference line or guide-line) भी कहते हैं क्योंकि मैक्रो-आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण में यह रेखा सहायक (या guide) के रूप में भी कार्य करती है। इस रेखा को 'आय-व्यय रेखा' (Income-Expenditure Line) भी कहा जाता है क्योंकि इस रेखा पर प्रत्येक बिन्दु 'कुल व्यय' तथा 'कुल आय' की बराबरी को बताता है।]

3. कुल मांग फंक्शन (Aggregate Demand Function or ADF)

कुल मांग फंक्शन (ADF) समस्त अर्थव्यवस्था के लिए 'वास्तविक आय (व उत्पादन)' तथा 'प्रत्याशित (expected) व्यय' के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। दूसरे शब्दों में,

कुल मांग फंक्शन (या तालिका) कुल व्यय की मात्रा को बताती है जिसकी सब व्यय-करने वाली इकाइयों[10] के द्वारा, उत्पादन व राष्ट्रीय आय के विभिन्न स्तरों पर, व्यय करने की आशा की जाती है।[11]

'कुल मांग रेखा' या 'कुल मांग फंक्शन' (ADF) को चित्र 2 में ऊपर को चढ़ती हुई DD रेखा द्वारा दिखाया गया है। यह रेखा बताती है कि कुल आय में वृद्धि के साथ प्रत्याशित कुल व्यय ('expected' or 'intended' or *ex-ante* total expenditure) बढ़ता है; और ऐसा होना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

'कुल मांग रेखा' के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं—

(i) कुल मांग रेखा बताती है कि कुल आय में वृद्धि के साथ कुल व्यय बढ़ता है, परन्तु यह महत्त्वपूर्ण व
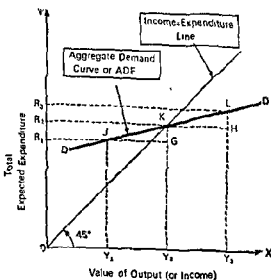
चित्र 2

[9] This implies that once the economy has reached full-employment (or full-capacity production) no further increases in the output are possible in the short-run inspite of an increase in total expenditure; that is, if the total expenditure increases beyond the full-employment output level, then there will be no increase in real output and there will be only an increase in prices leading to inflation.

[10] अर्थव्यवस्था में व्यय करने वाली महत्त्वपूर्ण इकाइयां हैं—व्यक्ति या परिवार, वैयक्तिक व्यापारी व उत्पादक, सरकार, विदेशी लोग जो कि देश विशेष की वस्तुओं पर व्यय करते हैं।

[11] Aggregate demand function (or schedule) shows the amount of total expenditure which all the spending units are expected to spend at various levels of output and national income.

ध्यान में रखने की बात है कि आय की तुलना में व्यय धीमी गति से बढ़ता है (expenditure increases less rapidly than income) क्योंकि आय में वृद्धि के साथ बचत (savings) में भी वृद्धि होती है।

चित्र 2 में, माना कि शुरू में आय Y_1 है तो व्यय R_1 है। आय Y_1 से बढ़कर Y_2 हो जाती है और परिणामस्वरूप व्यय भी बढ़ता है, वह R_1 से बढ़कर R_2 हो जाता है, परन्तु व्यय में वृद्धि KG (या R_1R_2) कम है आय में वृद्धि JG (या Y_1Y_2) की तुलना में। इसी प्रकार बढ़ी हुई आय Y_3 पर व्यय में वृद्धि LH कम है आय में वृद्धि KH (या Y_2Y_3) की तुलना में।

(ii) कुल माग रेखा केवल 'प्रत्याशित व्यय' (expected or intended or *ex-ante* expenditure) को बताती है और इसलिए यह एक 'प्रत्याशित बात' (*ex-ante* phenomenon) है, यह किसी 'सांख्यिक माग' (statistical demand) के एक विशेष स्तर को नहीं बताती है, यह तो केवल किसी समय विशेष पर व्ययकर्ताओं के इरादों (spenders' intentions) को बताती है। इस प्रकार से इसका 'निर्माण केवल काल्पनिक' (hypothetical construction) है।

(iii) "कुल माग फलन (या तालिका) का विचार इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह इस बात को स्पष्ट करता है कि जो व्यक्ति व्यय करने का निर्णय लेते हैं वे आवश्यक रूप से वे ही व्यक्ति या उन्हीं व्यक्तियों के समूह नहीं होते जो कि उत्पादन व रोजगार के लिए निर्णय करते हैं।"[12]

4. आय व रोजगार का संतुलन स्तर (The Equilibrium Level of Income and Employment)

कुल माग व कुल पूर्ति रेखाएं आय व रोजगार के स्तर को निर्धारित करती हैं। "कुल मांग फंक्शन तथा कुल पूर्ति फंक्शन के कटाव-बिन्दु के द्वारा रोजगार की मात्रा निर्धारित होती है।"[13] यह बात रोजगार के कीजियन सिद्धान्त के अन्तःकरण (core of the Keynesian theory of employment) को बताती है।

चित्र 3 में 'कुल पूर्ति फंक्शन' को 45°-रेखा OCZ बताती है तथा कुल माग फंक्शन को AD रेखा बताती है। दोनों रेखाएं बिन्दु E पर काटती हैं और यह बिन्दु अर्थव्यवस्था के सन्तुलन की स्थिति को बताता है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में OY_2 के बराबर आय व रोजगार का स्तर निर्धारित होगा, अथवा यह कहिए कि Y_2 (या OY_2) 'आय व रोजगार के सतुलन स्तर' को बताता है।

यह स्तर OY_2 ही आय व रोजगार के सतुलन स्तर को क्यों बताता है? इस बात को समझने के लिए हम इस स्तर के अलावा अर्थव्यवस्था में आय व रोजगार के किसी अन्य स्तर को लेकर चलते हैं। माना कि Y_2 आय व रोजगार का वास्तविक (actual) सतुलन नहीं है, और हम यह मान लेते हैं कि Y_1 आय के वास्तविक सतुलन को बताता है। इसका अभिप्राय है कि सामूहिक रूप में सब साहसी उत्पादन व आय के Y_1 स्तर को उत्पादित करने के लिए इस आशा में निर्णय लेते हैं कि विक्रय-राशि Y_1H उत्पादन-लागत को पूरा (या cover) कर सकेगी। परन्तु Y_1 'उत्पादन-आय का सतुलन स्तर' नहीं है क्योंकि इस स्तर पर कुल माग रेखा AD ऊपर है कुल पूर्ति रेखा (अर्थात्

[12] "The notion of aggregate demand schedule is important because it underscores the fact that those who make the decisions to spend are not necessarily the same individuals or groups who make the decisions for production and employment."

[13] "The volume of employment is given by the point of intersection between the aggregate demand function and the aggregate supply function."

45°-रेखा) के। इसका अर्थ है कि Y_1 आय के स्तर पर अर्थव्यवस्था में कुल व्यय GY_1 है जो कि उत्पादन या आय के स्तर HY_1 (या OY_1) से अधिक है। संक्षेप में उत्पादित मात्रा (output) की कुल मांग अधिक है उसकी कुल पूर्ति से। यह स्थिति एक 'अस्थायी स्थिति' (unstable situation) या 'असंतुलन' (disequilibrium) की स्थिति होगी जो अधिक समय तक नहीं रह पायेगी।

चित्र 3

कुल मांग का कुल पूर्ति के ऊपर आधिक्य (excess), जो कि चित्र 3 में दूरी GH बताती है, अर्थव्यवस्था को उत्पादन, आय व रोजगार के ऊंचे स्तर की ओर ढकेलेगा। अर्थव्यवस्था में मांग के इस आधिक्य की किस प्रकार से संतुष्टि की जायेगी? ध्यान रहे कि हमारा विश्लेषण 'वास्तविक शब्दों' (real terms) में है, अर्थात् हमने यह मान लिया है कि कुल मांग में आधिक्य होने के परिणामस्वरूप कीमतों के सामान्य स्तर में कोई वृद्धि नहीं होगी; ऐसी मान्यता के अन्तर्गत, मांग के आधिक्य की पूर्ति वस्तुओं के वर्तमान स्टाकों या इनवेन्ट्रीज (existing stocks or inventories) में से बेचकर ही पूरी की जा सकेगी। दूसरे शब्दों में, दूरी GH वर्तमान समय में कुल पूर्ति के ऊपर कुल मांग के आधिक्य को ही नहीं बताती बल्कि उस सीमा या मात्रा को भी बताती है जिस सीमा तक वर्तमान स्टाकों तथा इनवेन्ट्रीज में से वस्तुओं की मात्रा निकाल कर 'मांग के आधिक्य' की पूर्ति की जाये। सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से यह दूरी GH स्टाकों में बिना-इरादे या अनियोजित अविनियोग' (unintended or unplanned disinvestment in stocks) को भी बताती है। "इस प्रकार का अविनियोग इसलिए 'बिना-इरादे का' (unintended) होता है क्योंकि वर्तमान आय-काल में यह 'उत्पादन-योजनाओं' का 'व्यय करने की योजनाओं' के साथ मेल (coincide) न हो सकने की असफलता (failure) का परिणाम है।"[14]
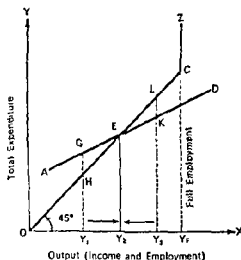
व्यावसायिक फर्मों की दृष्टि से ऐसी स्थिति का अभिप्राय है कि उनकी विक्रियां (sales) अधिक हैं अपेक्षाकृत उनके वर्तमान उत्पादन के; और यह स्वाभाविक है कि वर्तमान मांग को भविष्य की मांग का सूचक (indicator) मानते हुए अगले आय-समय के लिए व्यावसायिक फर्में अपनी उत्पादन-योजनाओं में उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सशोधन करेंगी।[15] इसका परिणाम यह होगा कि अर्थ-व्यवस्था में कुल उत्पादन व रोजगार में वृद्धि होगी और यह वृद्धि तब तक होती जायेगी जब तक कि कुल मांग तथा कुल पूर्ति बराबर न हो जाये; चित्र 3 में ऐसी स्थिति बिन्दु E बताता है जहां पर कुल मांग रेखा AD तथा कुल पूर्ति रेखा OZ एक-दूसरे को काटती है, इस कटाव-बिन्दु E पर कुल मांग = कुल पूर्ति के।

अब हम यह मानकर चलते हैं कि वर्तमान समय (current period) में उत्पादन व आय का स्तर OY_3 (या Y_3L) है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन व आय (अर्थात् OY_3 या Y_3L) की

---

14 "Such disinvestment is unintended because it results solely from the failure of production or output plans to coincide with spending plans in the current income period."

15 Business firms will revise their production plans upwards for the next income period taking the present demand as an indicator of demand for future.

पूर्ति अधिक है उस उत्पादन की मांग (अर्थात् Y_3K) से। दूसरे शब्दों मे, उत्पादन की मांग के ऊपर उत्पादन की पूर्ति के आधिक्य (excess of supply) को दूरी LK बताती है; अथवा यह कहिए कि LK मांग मे कमी (deficiency in demand) को बताती है; स्पष्ट है कि यहा पर 'असंतुलन' (disequilibrium) की स्थिति मौजूद है। 'माग मे कमी' (अथवा 'पूर्ति में आधिक्य') के परिणामस्वरूप 'स्टाकों या इनवेन्ट्रीज मे बिना इरादे के या अनियोजित विनियोग' (unintended or unplanned investment in stocks or inventories) होता है।

व्यावसायिक फर्मों की दृष्टि से ऐसे 'असंतुलन' की स्थिति खराब है क्योंकि उनकी बिक्रियां (अथवा उनकी वस्तुओ की माग) कम है उनकी वस्तुओ के उत्पादन या पूर्ति की तुलना मे; और ऐसी स्थिति मे फर्मो को नुकसान होता है। अतः भविष्य के लिए उत्पादन को घटाने की दृष्टि से फर्में अपनी उत्पादन-योजनाओं मे संशोधन (revision) करेंगी। इसका परिणाम यह होगा कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय व रोजगार के स्तर गिरेंगे; इस प्रकार की गिरावट या कमी तब तक होती रहेगी जब तक *कि उत्पादन की कुल पूर्ति बराबर न हो जाये कुल मांग के। ऐसी स्थिति चित्र 3 मे बिन्दु E बताता है* क्योंकि इस विन्दु पर 'कुल पूर्ति रेखा' तथा 'कुल मांग रेखा' एक दूसरे को काटती हैं; इस कटाव-विन्दु E पर कुल पूर्ति = कुल मांग के।

उपर्युक्त विवरण से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं या निम्न बातें स्पष्ट होती हैं—

(i) उत्पादन, आय व रोजगार के **निर्धारक-तत्त्व** (determinants) **हैं: 'कुल मांग फंक्शन'** तथा 'कुल पूर्ति फंक्शन'। इनके कटाव का बिन्दु उत्पादन, आय व रोजगार के संतुलन स्तर को निर्धारित करता है; दूसरे शब्दो मे, एक अर्थव्यवस्था उस बिन्दु पर साम्य की दशा में होगी जहां पर कि कुल मांग रेखा तथा कुल पूर्ति रेखा एक-दूसरे को काटती हैं।

(ii) उपर्युक्त विश्लेषण उस '**समायोजन की मुख्य बातों**' (essentials of the process of adjustment) को बताता है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था 'उत्पादन, आय व रोजगार संतुलन' की स्थिति मे पहुचती है।

(iii) यह विश्लेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि कुल मांग तथा कुल पूर्ति के 'प्रत्याशित मूल्यों' (expected or *ex-ante* values) तथा 'वास्तविक मूल्यों' (actual or *ex-post* values) मे अन्तर होता है तो 'असतुलन' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। (चित्र 3 मे हम देख चुके हैं कि जब उत्पादन का स्तर Y_1 है तो 'प्रत्याशित माग' HY_1 है जिसके कारण साहसी उत्पादन व आय के स्तर Y_1 को उत्पादित करते हैं; परन्तु 'वास्तविक माग' Y_1G है। स्पष्ट है कि इन 'प्रत्याशित तथा वास्तविक मूल्यो मे अन्तर' के कारण भविष्य मे उत्पादन, आय व रोजगार में परिवर्तन होता है, यहा पर वे बढ़ते हैं। इसी प्रकार से उत्पादन स्तर Y_3 पर भी 'प्रत्याशित तथा वास्तविक मूल्यों मे अन्तर' है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन, आय व रोजगार में परिवर्तन होता है, यहाँ पर वे कम होते हैं अर्थात् घटते हैं।) दूसरे शब्दों मे, आय-रोजगार का आधुनिक सिद्धान्त सही रूप से हमे समस्या के अन्त करण (heart) मे ले जाता है—**उत्पादन तथा व्यय करने के निर्णय व्यक्तियों के भिन्न समूहों द्वारा लिये जाते हैं, और इसलिए प्रत्याशित व वास्तविक मूल्यों में सर्वव मेल खाने की बात का विश्वास करने का कोई कारण नहीं रहता है।**[16]

(iv) एक और महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है—**कुल मांग रेखा तथा कुल पूर्ति रेखा के कटाव-बिन्दु द्वारा निर्धारित 'उत्पादन, आय व रोजगार का संतुलन स्तर' आवश्यक रूप से**

---

[16] Production and spending decisions are made by different persons or groups, and, hence, there is no reason to believe that expected (or *ex-ante*) and actual (or *ex-post*) values should always coincide.

या स्वतः ही (automatically) पूर्ण-रोजगार का स्तर नहीं होता है।[17] प्रायः अर्थव्यवस्था 'पूर्ण रोजगार के स्तर से कम उत्पादन' पर संतुलन की स्थिति प्राप्त कर लेती है (जैसा कि चित्र 3 में बिन्दु E कुल पूर्ति रेखा के खड़े हिस्से CZ से पहले है; 45°-पूर्ति रेखा का खड़ा हिस्सा CZ अर्थव्यवस्था में 'पूर्ण-रोजगार की स्थिति' अथवा 'पूर्ण-क्षमता उत्पादन' (full capacity production) को बताता है; Y_F पूर्ण-रोजगार से सम्बन्धित उत्पादन है। पूर्ण-रोजगार स्तर की स्थिति एक सामान्य स्थिति (normal state) नहीं होती है, क्योंकि उत्पादन तथा व्यय के निर्णय व्यक्तियों के भिन्न समूहों द्वारा लिये जाते हैं। यदि किसी समय कुल मांग रेखा तथा कुल पूर्ति रेखा के कटाव बिन्दु पर अर्थव्यवस्था पूर्ण-रोजगार के संतुलन स्तर पर पायी जाती है तो यह केवल एक संयोग (chance) की बात है, एक सामान्य (normal or usual) बात नहीं।

प्रश्न

1. कुल मांग फंक्शन तथा कुल पूर्ति फंक्शन के विचारों को समझाइए; तथा इनके कटाव-बिन्दु द्वारा निर्धारित अर्थव्यवस्था के संतुलन के अभिप्रायों की विवेचना कीजिए।
   Explain the concepts of Aggregate Demand Function and Aggregate Supply Function; and discuss the implications of the equilibrium of the economy brought about by the point of their intersection.

[17] "The equilibrium level of income and employment brought about by the interaction of aggregate demand and aggregate supply will not necessarily or automatically be one of *full employment*."

3

रोजगार का केंजियन सिद्धान्त
(Keynesian Theory of Employment)

> Like Adam Smith's ***Wealth of Nations*** in the 18th century and Karl Marx's ***Capital*** in the 19th century, Keynes' General Theory has been the centre of controversy among both professional and non-professional writers. Smith's book is a ringing challenge to mercantilism. Marx's book is a searching criticism of capitalism, and Keynes' book is a repudiation of the foundations of *laissez faire*" —D. DILLARD

रोजगार का केंजियन सिद्धान्त—एक समन्वित चित्र
(KEYNESIAN THEORY OF EMPLOYMENT—AN INTEGRATED VIEW)

1. प्राक्कथन (Introduction) : रोजगार का सिद्धान्त उन तत्वों का विश्लेषण करता है जो कि एक अर्थव्यवस्था मे कुल रोजगार (और इसलिए कुल उत्पादन व कुल आय) को निर्धारित (determine) करते हैं। केंज[1] द्वारा दिया गया रोजगार का सिद्धान्त भी रोजगार के निर्धारक तत्वों का विश्लेषण प्रदान करता है।

केंजियन विश्लेषण एक अल्पकालीन विश्लेषण (short-period analysis) है। रोजगार के केंजियन सिद्धान्त का केन्द्रीय सार (*central essence*) इस प्रकार है :

"अल्पकाल में 'कुल मांग' आय व रोजगार के स्तर की महत्त्वपूर्ण निर्धारक होती है, जबकि (अल्पकाल में) उत्पादन-क्षमता सापेक्षिक रूप से स्थिर मान ली जाती है।"[2]

2. रोजगार का तार्किक प्रारम्भिक बिन्दु प्रभावपूर्ण मांग का सिद्धान्त है (The logical starting point of employment is the principle of effective demand) : कुल मांग रेखा तथा कुल पूर्ति रेखा का कटाव-बिन्दु (point of intersection) 'प्रभावपूर्ण मांग' को बताता है। दूसरे शब्दों मे, एक अर्थव्यवस्था (या देश) मे रोजगार का स्तर, कुल माग तथा कुल पूर्ति की दशाओं पर निर्भर करता है। चूंकि विश्लेषण अल्पकालीन है और अर्थव्यवस्था मे उत्पादन-क्षमता को स्थिर मान लिया जाता है, इसलिए रोजगार के निर्धारण मे केंज ने 'कुल मांग' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। [अब हम कुल पूर्ति रेखा तथा कुल मांग रेखा की सक्षेप में व्याख्या करते हैं।]

केंज के अनुसार, कुल पूर्ति रेखा एक ओर रोजगार के स्तरो (और इसलिए उत्पादन की मात्राओं जो कि उन रोजगार के स्तरो से सम्बन्धित हैं) तथा दूसरी ओर प्रत्याशित न्यूनतम बिक्री राशियो (expected minimum sale proceeds) के बीच सीधे सम्बन्ध (direct relation) को बताती है

---

[1] केंज (Keynes) ने रोजगार के सिद्धान्त को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *The General Theory of Employment, Interest and Money* मे (जो कि 1936 मे प्रकाशित हुई) प्रस्तुत किया है। उनकी इस पुस्तक को सक्षेप मे *General Theory* कह दिया जाता है।

[2] "Aggregate demand is the crucial determinant of the level of income and employment during short period when productive capacity is assumed to be relatively fixed."

> आधुनिक अर्थशास्त्री कुल पूर्ति रेखा[3] को कुछ भिन्न प्रकार से परिभाषित करते है :
> कुल पूर्ति रेखा उत्पादन (और इसलिए कुल आय व रोजगार) के उन विभिन्न स्तरों को बताती है जो कि उत्पादक इस आशा में पूर्ति करने को तत्पर रहते हैं कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर के लिए उसकी बिक्री से आय (अर्थात् विक्रय-राशि) बराबर या समान (identical) होगी उस उत्पादन की मात्रा (या स्तर) के मूल्य या लागत के, (जबकि कीमतें स्थिर रहती है) ।[4]

यदि हम कुल व्यय (अर्थात् कुल विक्रय-राशि) को Y-axis पर दिखाए और कुल उत्पादन (अर्थात् कुल आय व रोजगार) को X-axis पर दिखाए (जैसा कि चित्र 1 मे दिखाया गया है), तो स्पष्ट है कि 45°-रेखा **कुल पूर्ति रेखा को बतायेगी** । आधुनिक आय-रोजगार सिद्धान्त (modern income-employment theory) में 'कुल पूर्ति रेखा' को प्राय 45°-रेखा द्वारा बताया जाता है ।

एक चढती हुई '45°-कुल पूर्ति रेखा' बताती है कि कुल व्यय (या कुल विक्रय-राशि) में वृद्धि के साथ उत्पादन, आय तथा रोजगार की अधिक मात्रा प्रदान की जायेगी ।

माना कि चित्र 1 मे Y_F उस उत्पादन व आय के स्तर को बताता है जो कि पूर्ण-रोजगार के स्तर या पूर्ण-क्षमता स्तर (full employment level or full capacity level) से सम्बन्धित है। पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित उत्पादन व आय के इस स्तर Y_F पर 'कुल पूर्ति रेखा' खड़ी (vertical) रेखा हो जाती है जैसा कि चित्र 1 मे '45°-कुल पूर्ति रेखा' का CZ हिस्सा बताता है। दूसरे शब्दों में,

> इसका अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था एक बार जब पूर्ण रोजगार (अर्थात् पूर्ण-क्षमता उत्पादन) के स्तर पर पहुंच जाती है तो अल्पकाल में, कुल व्यय में परिवर्तन होने पर भी, उत्पादन में और अधिक वृद्धि सम्भव नही होगी; यदि कुल व्यय 'पूर्ण रोजगार के उत्पादन-स्तर' (चित्र 1 मे Y_F) से अधिक हो जाता है, तो वास्तविक उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी, केवल कीमतों मे वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी ।[5]

अब हम **कुल मांग रेखा** पर विचार करते हैं। कुल मांग रेखा समस्त अर्थव्यवस्था के लिए 'वास्तविक आय (व उत्पादन)' तथा 'प्रत्याशित (expected) व्यय' के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है ।[6] दूसरे शब्दो में,

> कुल मांग रेखा कुल व्यय की मात्रा को बताती है जिसको सब व्यय करने वाली इकाइयों के द्वारा, उत्पादन व राष्ट्रीय आय के विभिन्न स्तरों पर, व्यय करने की आशा की जाती है ।[7]

कुल मांग रेखा को चित्र 1 में ऊपर को चढ़ती हुई रेखा AD द्वारा दिखाया गया है। यह रेखा

---

[3] कुल पूर्ति रेखा के विचार को अच्छी प्रकार से समझने के लिए इसके विस्तृत विवरण को पिछले अध्याय मे पढिये ।

[4] Aggregate supply curve indicates the various levels of output (and, hence, income and employment) which the producers are willing to offer in the expectation that for each level of output they will get an amount of income from its sale (that is, sale-proceeds) which is the same or identical as the value of that level of output (at constant prices).

[5] This implies that once the economy has reached full-employment (or full-capacity production) no further increases in the output are possible in the short-run inspite of an increase in total expenditure; that is, if the total expenditure increases beyond the full-employment output level, then there will be no increase in real output and there will be only increase in prices leading to inflation

[6] कुल मांग रेखा के विस्तृत विवरण के लिए पिछले अध्याय को देखिए ।

[7] Aggregate demand curve shows the amount of total expenditure which all the spending units are expected to spend at various levels of output and national income.

बताती है कि कुल आय में वृद्धि के साथ 'प्रत्याशित कुल व्यय' ('expected' or 'intended' or '*ex-ante*' total expenditure) बढ़ता है; और ऐसा होना स्वाभाविक प्रतीत होता है।
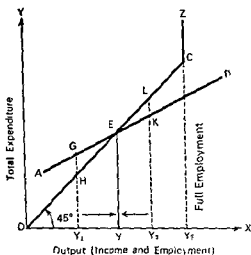
चित्र 1

चित्र 1 में, कुल मांग रेखा AD तथा कुल पूर्ति रेखा OCZ के कटाव-बिन्दु E द्वारा उत्पादन, आय व रोजगार की मात्रा निर्धारित होती है। यह बात रोजगार के केंजियन सिद्धान्त के अन्तःकरण (core) को बताती है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में OY (या Y) के बराबर उत्पादन, आय व रोजगार का स्तर निर्धारित होगा।

उत्पादन का स्तर Y (या OY) 'संतुलन स्तर' (equilibrium level) को बताता है। यदि अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्तर Y_1 है तो इस स्तर पर 'मांग का आधिक्य GH' (excess of demand GH) अर्थव्यवस्था को ऊंचे उत्पादन स्तर Y की ओर ढकेलेगा। यदि अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्तर Y_2 है तो इस स्तर पर 'पूर्ति का आधिक्य LK या मांग की कमी LK' (excess of supply LK or deficiency of demand LK) अर्थव्यवस्था को नीचे उत्पादन स्तर Y की ओर ढकेलेगी। अतः अर्थव्यवस्था में उत्पादन (आय व रोजगार) का संतुलन स्तर Y बताता है जो कि कुल मांग रेखा तथा कुल पूर्ति रेखा के कटाव-बिन्दु E से सम्बन्धित है।

यहां पर एक महत्त्वपूर्ण बात यह ध्यान रखने की है कि उत्पादन (तथा आय) का संतुलन स्तर Y आवश्यक रूप से पूर्ण रोजगार का स्तर नहीं होता (जैसा कि classical अर्थशास्त्री सोचते थे); प्रायः अर्थव्यवस्था 'पूर्ण-रोजगार के स्तर से कम उत्पादन' पर संतुलन की स्थिति प्राप्त कर लेती है जैसा कि चित्र 1 से स्पष्ट है (चित्र 1 में 'पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित उत्पादन स्तर' Y_F है)।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **अल्पकाल में एक अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय व रोजगार का आकार (size) 'प्रभावपूर्ण मांग' या 'कुल मांग' पर निर्भर करता है।**

'प्रभावपूर्ण मांग' या 'कुल मांग' निर्भर करती है कुल व्यय (total expenditure) **पर** जो कि एक अर्थव्यवस्था व्यय करने को तैयार रहती है।

3 पिछले चरण (step) में हम देख चुके हैं कि एक अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय व रोजगार निर्भर करता है कुल मांग पर। **कुल मांग निर्भर करती है कुल व्यय पर; तथा कुल व्यय निर्भर करता है 'कुल उपभोग व्यय'** (total consumption expenditure) **तथा 'कुल विनियोग व्यय'** (total investment expenditure) पर। दूसरे शब्दों में, 'कुल व्यय' के दो मुख्य अंग हैं—कुल उपभोग व्यय तथा कुल विनियोग व्यय।

'कुल उपभोग व्यय' वह है जो कि सम्पूर्ण समाज विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय करता है। 'कुल विनियोग व्यय' वह है जो कि समाज में सब साहसी या फर्में सामूहिक रूप से विनियोग वस्तुओं (investment goods) पर, अर्थात् नई पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण (construction of new capital goods), जैसे मशीनों, नई बिल्डिंगों, नई फैक्ट्रियों, इत्यादि पर व्यय करती हैं।

4. एक समाज (या अर्थव्यवस्था) में 'कुल व्यय' (total expenditure) **बराबर होना चाहिए 'कुल आय'** (total income) **के।** माना, Y = कुल आय (total income), I = कुल विनियोग (total investment), C = कुल उपभोग (total consumption) तथा S = कुल बचत (total saving)।

अब हम निम्न समीकरण (equation or identity) प्राप्त करते है :

Total Income = Total Expenditure

or $Y = C + I$

or $Y - C = I$

or $S = I$

केंजियन प्रणाली का यह आधारभूत सूत्र है। (This is the fundamental formula of the Keynesian system)

[savings (या बचत) की परिभाषा है 'उपभोग के ऊपर आधिक्य' (excess over consumption), अर्थात्, बचत = आय — उपभोग या $S = Y - C$]

5. पिछले चरणो (steps) मे हम देख चुके है कि 'कुल मांग' अर्थात् 'कुल व्यय' उत्पादन, आय व रोजगार को निर्धारित करता है, कुल व्यय का अर्थ है 'कुल उपभोग व्यय' तथा 'कुल विनियोग व्यय'। अतः, **'कुल उपभोग व्यय' तथा 'कुल विनियोग व्यय' उत्पादन आय, व रोजगार को निर्धारित करते हैं। दूसरे शब्दो मे, रोजगार को निर्धारित करने वाले तत्त्व (factors) वे तत्त्व होंगे जो कि 'कुल उपभोग व्यय' तथा 'कुल विनियोग व्यय' को निर्धारित करते हैं।**

अतः अब हम 'कुल मांग' अर्थात् 'कुल व्यय' के इन दोनो भागो (अर्थात्, उपभोग व्यय तथा विनियोग व्यय) का कुछ विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करते है।

6. **उपभोग व्यय (Consumption Expenditure)** : उपभोग व्यय अनेक तत्त्वों पर निर्भर करता है; जैसे—व्यक्तियो की रुचिया तथा आदतें (tastes and habits), उनकी भविष्य के सम्बन्ध मे आशाएं (their future expectations), इत्यादि, परन्तु **सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व जो कुल उपभोग व्यय को निर्धारित करता है वह है समाज में व्यक्तियों की कुल आय।**

इस प्रकार 'कुल आय' तथा 'कुल उपभोग व्यय' मे एक निश्चित सम्बन्ध (a definite functional relationship) होता है जिसे केज ने **'उपभोग फंक्शन'** (*Consumption function*) कहा; **यह बताता है कि जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग में भी वृद्धि होती है परन्तु सामान्यतया उपभोग में वृद्धि कम होती है अपेक्षाकृत आय में वृद्धि के।**

एक दी हुई आय मे से जो भाग या अनुपात (proportion) उपभोग किया जाता है, उसे केज ने **'उपभोग की प्रवृत्ति'** (*propensity to consume*) कहा; और दी हुई आय मे से जो भाग या अनुपात बचाया जाता है उसे **'बचत की प्रवृत्ति'** (*propensity to save*) कहा। केज ने 'उपभोग की प्रवृत्ति' के विचार को निम्न प्रकार से और स्पष्ट (further refine) किया :

उपभोग की औसत प्रवृत्ति (Average Propensity to Consume, that is, APC) = कुल उपभोग व्यय (Total Consumption Expenditure) / कुल आय (Total Income)

$$= \frac{C}{Y}$$

उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume, i.e., MPC) = कुल उपभोग व्यय मे वृद्धि (Increase in Total Consumption Expenditu.e) / कुल आय मे वृद्धि (Increase in Total Income)

$$= \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

चित्र 2

हम चित्र 2 में 'कुल आय' तथा 'कुल उपभोग' में सम्बन्ध को (अर्थात् 'उपभोग की प्रवृत्ति' को) रेखा CC द्वारा दिखा सकते है। CC रेखा ऊपर को चढ़ती हुई है तथा X-axis के साथ 45° से कम का कोण (angle) बनायेगी क्योकि आय मे वृद्धि के साथ उपभोग मे वृद्धि, आय मे वृद्धि की तुलना मे, कम होती है। चित्र 2 मे बिन्दु E पर कुल आय OY_2 तथा कुल उपभोग व्यय EY_2 बराबर होते हैं अर्थात् break-even होते है, इसलिए बिन्दु E को 'break-even point' भी कहा जाता है। यदि आय Y_2 से बढ़कर Y_3 हो जाती है तो उपभोग व्यय भी EY_2 से बढ़कर HY_3 हो जाता है, परन्तु उपभोग में वृद्धि ΔC (अर्थात् HT) कम है आय मे वृद्धि ΔY (अर्थात Y_2Y_3 या ET) की तुलना मे, क्योंकि इस बढ़ी हुई आय मे से एक भाग बचा (या save कर) लिया जाता है। चित्र मे BH इस बचत को बताती है। बिन्दु E के बायें ओर 'अबचत' (dis-saving) होगी, उदाहरणार्थ, बिन्दु A पर कुल आय Y_1(या GY_1) है और कुल उपभोग व्यय AY_1 है जो कि कुल आय से अधिक है और AG के बराबर 'अबचत' होती है अर्थात् लोग अपने उपभोग व्यय को पूरा करने के लिए पिछली बचतो (past accumulated savings) को व्यय करते हैं और इस अर्थ मे 'अबचत' होती है।

ध्यान रहे कि एक देश या अर्थव्यवस्था मे अल्पकाल में लोगों की 'उपभोग की आदतें' लगभग स्थायी या स्थिर (stable) रहती हैं; अर्थात् वे शीघ्रता से बदलती नही हैं क्योकि वे उस देश की संस्कृति, परम्पराओ और राष्ट्रीय इतिहास (culture, customs and national history) मे जमी रहती हैं।

7. विनियोग व्यय (Investment Expenditure) : विनियोग का अर्थ है नई पूंजीगत सम्पत्तियो का निर्माण (creation of new capital assets) जैसे, नई फैक्ट्रियो की बिल्डिंगो का निर्माण, मशीनों तथा यन्त्रों का निर्माण, इत्यादि। कींज के अनुसार, **विनियोग निर्भर करता है (i) पूंजी की सीमान्त कुशलता** (marginal efficiency of capital, that is, MEC) **पर, तथा (ii) ब्याज की दर** (rate of interest) **पर।**

'पूजी की सीमान्त कुशलता' (MEC) का अर्थ है नई पूंजीगत सम्पत्तियो पर लाभ की प्रत्याशित दर (expected rate of profit from the new capital assets)। यदि लाभ की प्रत्याशित दर ऊंची है तो साहसी अधिक विनियोग करेंगे।

साहसी अपने विनियोग के एक भाग की पूर्ति सामान्यतया दूसरो से द्रव्य उधार लेकर करते हैं और जिस पर वे ब्याज देते हैं, और इसलिए ब्याज लागत का एक अग होता है जिसे साहसी लाभ की गणना करते समय ध्यान मे रखता है। एक नीची ब्याज की दर का अभिप्राय है अधिक लाभ की सम्भावना, और इसलिए नीची ब्याज की दर अधिक विनियोग को प्रोत्साहित (encourage) करेगी। इसके विपरीत ऊंची ब्याज की दर विनियोग को निरुत्साहित (discourage) करेगी। ध्यान रहे कि कींज के अनुसार, ब्याज की दर 'तरलता पसन्दगी' (liquidity preference) पर निर्भर करती है; और तरलता पसन्दगी निर्भर करती है (i) कार्य-सम्पादन उद्देश्य (transaction motive) (ii) दूर-

दशिता या सतर्कता उद्देश्य (precautionary motive) तथा (iii) सट्टा उद्देश्य (speculative motive) पर।

ब्याज की दर तथा तरलता पसन्दगी में सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् यदि तरलता पसन्दगी ऊंची है तो ब्याज की दर ऊंची होगी और यदि तरलता पसन्दगी नीची है तो ब्याज की दर नीची होगी। यद्यपि तरलता पसन्दगी ब्याज की दर को प्रभावित करती है, परन्तु वह स्वयं भी ब्याज की दर से प्रभावित होती है, अर्थात् ब्याज की दर ऊंची होने पर तरलता पसन्दगी नीची होगी और ब्याज की दर नीची होने पर तरलता पसन्दगी ऊंची होगी। इस प्रकार तरलता पसन्दगी तथा ब्याज की दर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

8. **कीज अपने रोजगार के सिद्धान्त में 'गुणक के सिद्धान्त' को एक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं।**[8] यदि 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' (marginal propensity to consume) दी हुई है, तो 'गुणक' (multiplier) विनियोग तथा कुल आय में एक निश्चित सम्बन्ध (a precise relationship) स्थापित करता है।

'विनियोग गुणक' (investment multiplier) का विचार बताता है कि जब विनियोग किसी एक निश्चित मात्रा से बढ़ाया जाता है तो अर्थव्यवस्था में कुल आय सामान्यतया (generally) बढ़ती है, परन्तु वह केवल प्रारम्भिक (original) विनियोग की मात्रा के बराबर ही नहीं बढ़ती बल्कि उस मात्रा के कुछ गुना (some multiple) से बढ़ती है।[9]

माना ΔI 'विनियोग मे वृद्धि', तथा ΔY 'कुल आय मे वृद्धि' को बताता है,[10] और K बताता है गुणक (multiplier) को, तो हम निम्नलिखित सम्बन्ध प्राप्त करते है—

$$\Delta Y = K\Delta I$$

$$\text{or } K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

[हम जानते हैं कि
$Y = C + I$
or $\Delta Y = \Delta C + \Delta I$
or $\Delta Y - \Delta C = \Delta I$]

$$= \frac{\Delta Y}{\Delta Y - \Delta C}$$

[अंश तथा हर (numerator and denominator दोनों को ΔY से भाग दिया (अर्थात् divide किया) जाता है।]

$$= \frac{1}{1 - \frac{\Delta C}{\Delta Y}}$$

[हम जानते हैं कि
$\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ = marginal propensity to consume]

$$= \frac{1}{1 - \text{marginal propensity to consume}}$$

$$= \frac{1}{\text{marginal propensity to save}}$$

इस प्रकार हम 'विनियोग गुणक' को निकालते हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' (marginal propensity to consume) जितनी अधिक होगी उतना ही गुणक का अंक या मूल्य (figure or value) अधिक होगा, अर्थात् उतना ही गुणक का प्रभाव अधिक होगा; इसका अभिप्राय है कि विनियोग में थोड़ी वृद्धि कुल आय व रोजगार में कहीं अधिक वृद्धि करेगी।

[उदाहरणार्थ, यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति बहुत ऊंची है, माना कि $\frac{9}{10}$ है (अर्थात् लोग

[8] Keynes considers the 'Theory of Multiplier' as an integral part of his 'Theory of Employment.'

[9] The concept of 'investment multiplier' says that when investment increases by a certain amount, the total income in the economy generally increases not by the same amount but by some multiple of that amount.

[10] 'थोड़ी वृद्धि' के लिए चिह्न Δ (delta, डेल्टा) का प्रयोग किया जाता है।

10 रु. की आय में से 9 रु. उपभोग पर व्यय कर देते हैं), तो गुणक $K = \frac{1}{1-\frac{9}{10}} = \frac{1}{\frac{1}{10}} = 10$; इसका अभिप्राय है कि विनियोग में प्रारम्भिक वृद्धि की तुलना में कुल आय में 10 गुनी वृद्धि होगी। दूसरी ओर, यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति बहुत नीची है, माना कि वह शून्य (zero) है, तो $K = \frac{1}{1-0} = 1$; इसका अभिप्राय है कि आय में ठीक उतनी ही वृद्धि होगी जितनी कि विनियोग मे प्रारम्भिक वृद्धि की गयी है, दूसरे शब्दों में, समाज मे विनियोग 'आय व रोजगार' में कोई अतिरिक्त वृद्धि नही करेगा।]

9. रेखीय प्रस्तुतीकरण (Graphic Representation), अब तक दिये गये सम्पूर्ण विश्लेषण को हम चित्र 3 मे दिखाते हैं। चित्र मे CC रेखा उपभोग फंक्शन रेखा (consumption function line) है जो कि 45°-रेखा को बिन्दु L पर काटती है, इस बिन्दु पर उपभोग-व्यय तथा आय दोनों बराबर या break-even होते है, इसलिए बिन्दु L को 'break-even point' कहा जाता है।

'कुल माग रेखा' अर्थात् 'कुल व्यय रेखा' को 'C+I रेखा' द्वारा दिखाया गया है [यह रेखा उपभोग व्यय (C) तथा विनियोग व्यय (I) को बताती है]। यह रेखा '45°-कुल पूर्ति रेखा' को बिन्दु E_1 पर काटती है। अत बिन्दु E_1 अर्थव्यवस्था के सतुलन का बिन्दु है और यह अर्थव्यवस्था में आय (व उत्पादन तथा रोजगार) के स्तर को निर्धारित करता है, अर्थात् Y_1 आय (व उत्पादन) के सतुलन स्तर को बताता है। केज ने इस बात को बताया कि एक अर्थव्यवस्था 'पूर्ण रोजगार से कम स्तर' पर सतुलन की दशा में हो सकती है। यद्यपि बिन्दु E_1 स्थायी सतुलन (stable equilibrium) का बिन्दु है परन्तु यह अर्थव्यवस्था के पूर्ण रोजगार से कम स्तर पर सतुलन' (equilibrium of the economy at less than full-employment level) को बताता है, और इसलिए कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री इस बिन्दु को 'भ्रमात्मक या गलत सन्तुलन' (*false equilibrium*) का बिन्दु कहते हैं।
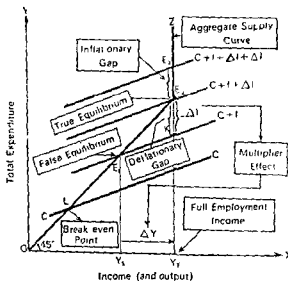
चित्र 3

अर्थव्यवस्था 'पूर्ण रोजगार की आय के स्तर Y_F' (full employment equilibrium level Y_F) पर पहुच सकती है, यदि 'कुल व्यय' को बढाने के प्रयत्न किये जायें। चित्र से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था मे बेरोजगारी मौजूद है, बेरोजगारी की सीमा राष्ट्रीय आय की मात्रा Y_1Y_F बताती है। इस 'बेरोजगारी अन्तर' (unemployment gap) के मौजूद होने का कारण है E_2K के बराबर 'माग की कमी' अथवा 'कुल व्यय मे कमी' ('deficiency of demand' or 'deficiency of total expenditure' to the extent of E_2K)। 'माग मे कमी E_2K' को, जिसको पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने के लिए दूर करना जरूरी है, 'अवस्फीति अन्तर' (*deflationary gap*) कहा जाता है। इस 'अवस्फीति अन्तर' को कुल व्यय मे वृद्धि करके दूर किया जा सकता है; और कुल व्यय को, या तो उपभोग व्यय मे वृद्धि या विनियोग व्यय मे वृद्धि, अथवा दोनों में वृद्धि करके, बढ़ाया जा सकता है। माना, विनियोग व्यय

में वृद्धि ΔI के बराबर (माना सरकार द्वारा) की जाती है, और $C+I+\Delta I$ अब 'नई कुल व्यय रेखा' (new total expenditure line) हो जाती है जो कि 45°-कुल पूर्ति रेखा को बिन्दु E_2 पर काटती है; बिन्दु E_2 'पूर्ण रोजगार के स्तर पर अर्थव्यवस्था के संतुलन' को बताता है। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था के 'पूर्ण रोजगार के संतुलन बिन्दु E_2' को 'उचित या सही संतुलन' (*true equilibrium*) का बिन्दु कहते है, और इस प्रकार वे 'भ्रमात्मक या गलत संतुलन बिन्दु E_1' (false equilibrium point E_1) से इसके अन्तर को स्पष्ट करते हैं, 'गलत संतुलन' पूर्ण रोजगार से कम स्तर पर अर्थव्यवस्था के संतुलन को बताता है।

चित्र से स्पष्ट है कि विनियोग मे प्रारम्भिक वृद्धि ΔI (अर्थात् KE_2) आय मे अधिक वृद्धि ΔY (अर्थात् Y_1Y_F) को उत्पन्न करता है, इसका कारण है 'गुणक प्रभाव' (multiplier effect)।

यदि बिन्दु E_2 के बाद कुल व्यय मे और अधिक वृद्धि होती है, माना कि विनियोग व्यय को $\Delta I'$ से बढा दिया जाता, तो अब नई कुल व्यय रेखा $C+I+\Delta I+\Delta I'$ हो जाती है जो कि 45°-कुल पूर्ति रेखा को बिन्दु E_3 पर काटती है। कुल पूर्ति रेखा बिन्दु E_2 के बाद से खडी (vertical) रेखा हो जाती है क्योंकि अल्पकाल मे अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता स्थिर रहती है और इसलिए, कुल व्यय मे वृद्धि होने पर भी, वास्तविक उत्पादन व आय को Y_F से अधिक नहीं बढाया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति के अन्तर्गत कुल व्यय मे वृद्धि केवल 'कीमतो की स्फीति वृद्धि' (inflationary rise in prices) को उत्पन्न करेगी। खडी दूरी E_2E_3 को 'स्फीति-अन्तर' (*Inflationary gap*) कहा जाता है।

अत 'अवस्फीति अन्तर' तथा 'स्फीति अन्तर' मुग्य दुष्ट है जो कि पूर्ण रोजगार के स्तर की प्राप्ति के खिलाफ कार्य करते है। इनको नष्ट करना होगा या हटाना होगा यदि अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के स्तर पर बनाये रखना है। इनको हटाने या नष्ट करने के कार्य मे सरकार का पार्ट महत्त्वपूर्ण है।[11]

10. सारांश (Summary) - हम समस्त स्थिति को सक्षेप मे व्यक्त करते है—

1. अल्पकाल मे आय व रोजगार निर्भर करता है 'प्रभावपूर्ण माग' या 'कुल माग' पर।
2. 'कुल माग' निर्भर करती है 'कुल व्यय' पर; कुल व्यय के अग है—(i) उपभोग व्यय (C) तथा (ii) विनियोग व्यय (I)।
3. उपभोग व्यय निर्भर करता है, मुख्यतया, 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' (MPC) पर।
4. विनियोग व्यय निर्भर करता है (i) 'पूजी की सीमान्त कुशलता' (MEC) पर तथा (ii) ब्याज की दर पर, ब्याज की दर मुख्यतया निर्भर करती है तरलता पसन्दगी पर। 'गुणक' (multiplier) के कार्यकरण के परिणामस्वरूप विनियोग मे वृद्धि आय व रोजगार मे कही अधिक वृद्धि करती है। गुणक (K), 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' $\left(\text{अर्थात्}\ \frac{\Delta C}{\Delta Y}\right)$ की सहायता से निकाला (या derive किया) जाता है, अर्थात् $K=\dfrac{1}{1-\dfrac{\Delta C}{\Delta Y}}$
5. अत. राष्ट्रीय आय व रोजगार के निर्धारक तत्त्व (determinants) है :
   (a) उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (marginal propensity to consume)
   (b) लोगो की तरलता पसन्दगी (liquidity preference) अर्थात् ब्याज की दर।
   (c) पूजी की सीमान्त कुशलता (marginal efficiency of capital)।

[11] Thus, '*deflationary gap*' and '*inflationary gap*' are *the main villains which work against* full employment level, these are to be removed or got out of way if the economy is to be maintained at full employment level. In this context the role of the government is significant.

6. अल्पकाल में 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' तथा 'तरलता पसन्दगी' लगभग स्थिर (quite stable) रहते हैं; इसलिए अल्पकाल में, आय व रोजगार को निर्धारित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व (most important factor) है 'पूंजी की सीमान्त कुशलता'।
7. 'स्फीति अन्तर' (inflationary gap) तथा 'अवस्फीति अन्तर' (deflationary gap) को दूर करने तथा पूर्ण रोजगार के स्तर को बनाये रखने में सरकार की भूमिका (role) को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

रोजगार के सिद्धान्त का सारांश नीचे दिये गये चार्ट (जो कि Prof. Dillard पर आधारित है) द्वारा भी दिया जा सकता है[12] :
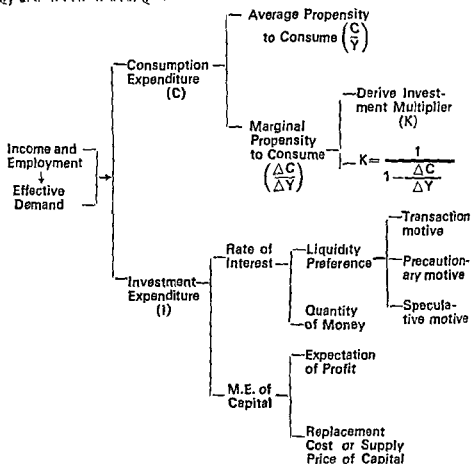
कींज के रोजगार सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(CRITICAL EVALUATION OF KEYNESIAN THEORY OF EMPLOYMENT)

निस्सन्देह कींज ने एक व्यवस्थित तथा समन्वित (systematic and integrated) रोजगार का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। कींज की मुख्य देन (contributions) इस प्रकार हैं—(i) कींज के सिद्धान्त का मुख्य केन्द्र-बिन्दु (focus) मेक्रो अर्थशास्त्र है न कि माइक्रो अर्थशास्त्र। (ii) कींज का

[12] विद्यार्थियों के लिए नोट : वास्तव में इस चार्ट की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है क्योंकि चरण (step) 10 के अन्तर्गत सारांश के 7 points पर्याप्त हैं जो कि सारी स्थिति को अच्छी प्रकार बता देते हैं।

सिद्धान्त एक अल्पकालीन सिद्धान्त है और इसलिए यह कुल मांग तथा उसके अंग (अर्थात् उपभोग व्यय तथा विनियोग व्यय) पर जोर देता है। (iii) इस सिद्धान्त ने 'पूर्ण रोजगार से कम स्तर पर संतुलन' (less than full employment equilibrium or underemployment equilibrium) की सम्भावना को स्पष्ट रूप से बताया। (iv) इसने मौद्रिक तथा वास्तविक अर्थशास्त्र को एक नये तरीके से समन्वित करने का प्रयत्न किया (it attempted to unify monetary and real economics in a novel way)। (v) इस सिद्धान्त ने इस बात को स्पष्ट किया कि 'बाजार-यंत्र के स्वतः कार्यकरण' (automatic working of market mechanism) से पूर्ण रोजगार की स्थिति का प्राप्त होना आवश्यक नही है, बल्कि सरकारी हस्तक्षेप (intervention) पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने व बनाये रखने के लिए आवश्यक है।

परन्तु केंज के सिद्धान्त की कई कमियां भी है। मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं—

(1) केंज का रोजगार का सिद्धान्त एक 'सामान्य सिद्धान्त' (general theory) **नहीं है** क्योंकि यह सब जगह व सब परिस्थितियों मे लागू नही होता है; यह मुख्यतया औद्योगिक दृष्टि से उन्नतिशील देशों, जैसे इंगलैण्ड, अमेरिका, इत्यादि देशों मे लागू होता है; यह अल्पविकसित देशों तथा समाजवादी देशों के लिए उपयुक्त नहीं है। परन्तु यह सिद्धान्त विश्लेषण के यंत्र (analytical tools) अवश्य प्रदान करता है।

(2) यह **कुछ अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।** (i) यह पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। (ii) **यह 'बन्द अर्थव्यवस्था'** (closed economy) **की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है;** अर्थात् रोजगार के सिद्धान्त को बनाते समय केंज ने व्यापार-सतुलन (balance of trade) पर उचित ध्यान नही दिया। आधुनिक अर्थव्यवस्थाएं **'खुली** अर्थव्यवस्थाएं' (open economies) है; और एक देश का विपरीत या अनुकूल व्यापार-संतुलन (adverse or favourable balance of trade) रोजगार की स्थिति को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करता है।

(3) केंज का सिद्धान्त **बेरोजगारी की समस्या का एक पूर्ण और व्यापक हल** (comprehensive solution) प्रस्तुत नही करता है। (i) प्रो. स्वीज़ी (Sweezy) के अनुसार केंज का सिद्धान्त **तकनीकी तथा घर्षणात्मक बेरोजगारी** (technological and frictional unemployment) पर उचित ध्यान देने में असफल रहा, केंज ने मुख्यतया 'चक्रीय बेरोजगारी' (cyclical unemployment) पर ही ध्यान दिया। (ii) क्लाइन (Klein) के अनुसार केंज का सिद्धान्त 'न्यायपूर्ण रोजगार' (fair employment) पर ध्यान नहीं देता। "रोजगार के एक सिद्धान्त को यह बताना चाहिए कि न्यायपूर्ण रोजगार तथा पूर्ण रोजगार दोनो कैसे प्राप्त किये जायें।"[13] 'न्यायपूर्ण रोजगार' से अर्थ है अल्पसंख्यक समूहों (minority groups) के लिए रोजगार की उचित या न्यायपूर्ण व्यवस्था।

["यह सच है कि पूर्ण रोजगार 'न्यायपूर्ण रोजगार' को भी प्रदान करता है, परन्तु अर्थ-व्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के साथ अल्पसख्यक समूहों की आर्थिक स्थिति को उन्नत करने के लिए हम अपने प्रयत्न ढीले नही कर सकते है। ... जिस प्रकार से बेरोजगारी का अस्तित्व (existence) अर्थव्यवस्था में एक तरह से बीमारी को जन्म देता है और जिसके परिणामस्वरूप शोषण सकट उत्पन्न होता है, उसी प्रकार से 'अन्यायपूर्ण रोजगार' (unfair employment) का अस्तित्व उतनी ही गम्भीर बीमारी को जन्म देता है।"[14]]

---

[13] "A complete economic theory must tell us how to get both fair and full employment."

[14] "It is true that fuller employment makes for fairer employment, but we cannot relax our efforts to advance the economic position of minority groups with the achievement of a full employment economy . Just as the existence of unemployment causes disease in our economic system, preparing the way for disaster, so does the existence of unfair employment create an equally serious disease."

(4) **केंज ने साधनों के वितरण की समस्या की विवेचना नहीं की,** क्योंकि उस समय कुछ अधिक आवश्यक समस्याएं हाथ मे थी।[15] परन्तु एक बार जब पूर्ण रोजगार प्राप्त हो जाता है तो साधनों के वितरण की समस्या महत्त्वपूर्ण हो जाती है। "उत्पादक साधनों को विभिन्न उद्योगों व व्यवसायों में इस प्रकार से वितरित करना चाहिए कि हम पूर्ण रोजगार के उत्पादन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त कर सकें जितना कि, हमारे कार्य व आराम के स्वीकृत ढाचे के अन्तर्गत, भौतिक रूप से सम्भव है।"[16]

(5) कुछ आलोचकों, जैसे प्रो. हेजलिट (Hazlitt) के अनुसार **यह कहना कठिन है कि 'प्रभावपूर्ण मांग' तथा रोजगार की मात्रा में सीधा सम्बन्ध होता है।** वास्तव में द्रव्य की पूर्ति, कीमतो तथा मजदूरियो (money supply, prices, wage rates) मे लचीलापन (flexibility) तथा उनमें पारस्परिक सम्बन्ध भी रोजगार की मात्रा को प्रभावित करता है।

(6) **केंज ने अपने सिद्धान्त में त्वरक (accelerator) को कोई स्थान नहीं दिया,** उन्होंने केवल 'गुणक-प्रभाव' (multiplier effect) पर ही विचार किया, वास्तव मे 'त्वरक-सिद्धान्त' (acceleration principle) को छोडा नही जा सकता है। गुणक बताता है 'विनियोग के प्रभाव को उपभोग पर' (और इसलिए आय व रोजगार पर), जबकि त्वरक बताता है 'उपभोग मे परिवर्तनों का विनियोग पर प्रभाव'।

(7) **एक महत्त्वपूर्ण आलोचना 'उपभोग की प्रवृत्ति'** (propensity to consume) **के सम्बन्ध में है,** केंज इसको 'आधारभूत मनोवैज्ञानिक नियम' (fundamental psychological law) कहते हैं जो कि उपभोग और आय के बीच सम्बन्ध को बताता है। **यह नियम या केंज का 'उपभोग की प्रवृत्ति' का विचार एक बहुत अपूर्ण अनुभव सिद्धसामान्यी करण** (*a very rough empirical generalization*) है। केंज के उपरान्त के विचार (post-Keynesian views), जो कि नीचे दिये गये है, केंज के 'उपभोग की प्रवृत्ति' के विचार की कमियों को प्रकाश मे लाते है—

(i) पीगू के अनुसार, केंज ने इस बात मे गलती की कि उन्होंने उपभोग को मुख्यतया आय पर निर्भर किया (अर्थात् उपभोग को मुख्यतया आय का फक्शन बताया) और उन्होंने उपभोक्ता के धन के स्टाक (stock of wealth) के उपभोग पर प्रभाव की उपेक्षा (ignore) की।[17]

पीगू ने बताया कि एक दी हुई आय के सन्दर्भ (reference) मे भी उपभोग मे वृद्धि हो सकती है जबकि कीमते गिर रही हों। धन एक 'स्टाक-विचार' (stock-concept) है, जबकि आय एक 'प्रवाह-विचार' (flow-concept) है। माना कि द्रव्य का स्टाक स्थिर है परन्तु अर्थव्यवस्था मे द्राव्यिक मजदूरिया व कीमते गिर रही है। इसका अभिप्राय है कि द्रव्य-धन के स्टाक का वास्तविक मूल्य (real value) बढ रहा है। अत, पीगू ने बताया कि अधिक वास्तविक धन (more real wealth) होने के परिणामस्वरूप लोग, अपनी दी हुई आय मे से, उपभोग मे वृद्धि करेंगे।

(ii) एक दूसरा सुधार तथा दृष्टिकोण **प्रो. ड्यूसेनबरी (Prof. Duesenberry)** ने प्रस्तुत किया है। (क) "प्रो. ड्यूसेनबरी ने बताया कि वस्तुओ को खरीदने की एक

---

15 *The problem of resource allocation was not treated by Keynes* because there were more urgent matters at hand

16 "The productive factors must be distributed among industries and occupations in such a way that we get a value of full employment output as is physically possible within our accepted pattern of work and leisure."

17 Keynes did a mistake in making consumption mainly a function of income and in ignoring the effect of a consumer's stock of wealth on his consumption.

व्यक्ति की इच्छा, अन्य व्यक्तियों की खरीदों (purchases) से, निश्चित रूप से प्रभावित होगी। इसका परिणाम होगा कि उपभोग, जो कि आय का एक प्रतिशत (या अनुपात) है, एक व्यक्ति के आय के निरपेक्ष स्तर (a person's absolute level of income) पर ही निर्भर नहीं करेगा, बल्कि उस व्यक्ति का उपभोग इस बात पर भी निर्भर करेगा कि समूचे आय-वितरण में उसकी 'सापेक्षिक' स्थिति (*relative* position) क्या है।"[18] (ख) ड्यूसेनबरी ने यह भी बताया कि एक समय में उपभोग का स्तर निश्चित रूप से इस बात से प्रभावित होगा कि पिछले समय में वह उपभोक्ता आय का एक ऊंचा स्तर प्राप्त कर चुका है—अर्थात उपभोक्ता अपनी आय में कमी होने पर अपने उपभोग में कमी करने के समायोजन (adjustment) में कठिनाई या रुकावट महसूस करेगा।[19]

(iii) शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो. मिलटन फ्रीडमेन (Prof. Milton Friedman, of the University of Chicago) ने 'उपभोग फलन' का एक और सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जो कि 'स्थायी आय सिद्धान्त' (permanent income thesis) के नाम से विख्यात है। प्रो. फ्रीडमेन एक उपभोक्ता की आय को 'स्थायी आय अंश' (permanent income element) तथा 'परिवर्ती या अस्थायी आय अंश' (transitory income element) में विभाजित करते हैं और यह बताते हैं कि, उपभोग मुख्यतया 'स्थायी आय' का एक फलन है, अर्थात् उपभोग मुख्य रूप से 'स्थायी आय' पर निर्भर करता है।[20]

(8) कींज के सिद्धान्त में केवल संशोधन (refinements) करने की आवश्यकता ही नहीं बल्कि उसके आधार को विस्तृत करने की भी आवश्यकता है। कींज के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी आर्थिक विकास (economic growth) के क्षेत्र से सम्बन्धित है, अर्थात् कींज का सिद्धान्त एक अल्पकालीन सिद्धान्त है और इसलिए कींज ने अल्पकालीन नीतियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने दीर्घकालीन आर्थिक विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया।[21]

एक ऐसा रोजगार का सिद्धान्त जो कि अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन विकास को शामिल नहीं

---

[18] "Duesenberry argued that a consumer's desire to purchase goods would be positively affected by the purchases of other consumers, with the result that consumption, as a percentage of income, might depend not on a person's absolute level of income but on his *relative* position in the over-all income distribution."

[19] "Duesenberry also suggested that consumption levels in one period might be positively affected by a previously achieved higher level of income—that is, that consumers would be resistant to downward adjustments in consumption when income was falling."

[20] Friedman divides a consumer's income into a 'permanent income' element and a 'transitory income' element and suggests that consumption is mainly a function of 'permanent income', that is, consumption primarily depends on 'permanent income'.

[21] 'कींजियन अर्थशास्त्र' का जन्म 'महान मन्दी' (Great Depression of 1930) में हुआ; महान मन्दी एक अल्पकालीन बात थी, उस समय महान मन्दी की समस्याओं पर ध्यान देना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था; इन समस्याओं का तात्कालिक व अल्पकालीन विश्लेषण बहुत जरूरी था। उस समय कींज दीर्घकालीन विश्लेषण के सुख (luxury) को नहीं अपना सकते थे; यह बात उनके इस वाक्य से स्पष्ट होती है : "दीर्घकाल में हम सबकी मृत्यु हो जायेगी।"
At that time Keynes could not afford the luxury of long term analysis; this is reflected in his remark: "in the long run we are all dead."
स्पष्ट है कि कींज का सिद्धान्त परिस्थितियों के वश एक अल्पकालीन सिद्धान्त बना, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कींज के सिद्धान्त ने दीर्घकालीन आर्थिक विकास की महत्त्वपूर्ण बात की उपेक्षा की।

करता वह एक अत्यन्त अपर्याप्त सिद्धान्त (an extremely inadequate theory) है और ऐसा सिद्धान्त उपयोगी (useful) सिद्धान्त नहीं होगा। अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जैसे, हेरोड, डोमर तथा अन्य (Harrod, Domar and others) ने दीर्घकालीन प्रावैगिक शब्दों में (in long-run dynamic terms) अर्थात दीर्घकालीन आर्थिक विकास के शब्दों में रोजगार के सिद्धान्त को पुनर्निर्मित (recast) किया है। हेरोड ने इस स्पष्ट बात को बताया कि कींज का विनियोग सम्बन्धी विवेचन एकपक्षीय है (Keynes' treatment of investment is onesided)। विनियोग के दो पक्ष होते हैं—(i) वह 'आय उत्पन्न करने वाला' (income-creating) होता है अर्थात् वह वस्तुओं की माग को उत्पन्न करता है (और इसलिए रोजगार को उत्पन्न करता है) तथा (ii) विनियोग 'उत्पादन-क्षमता को उत्पन्न करने वाला' (capacity-creating) भी होता है; अर्थात् 'विनियोग, अर्थव्यवस्था मे, पूजीगत वस्तुओं के स्टाक मे वृद्धि' को बताता है और इसलिए दीर्घकालीन उत्पादन-क्षमता को बताता है।[22] केंज ने विनियोग के दूसरे पक्ष की उपेक्षा की। हेरोड तथा डोमर ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि "क्या होगा यदि समय-अवधि मे पूंजी के स्टाक, जनसख्या तथा टेक्नोलोजी सभी मे विकास (expansion) होता है", अर्थात् आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने दीर्घकालीन आर्थिक विकास की बात को शामिल करके केंज के सिद्धान्त की एक सबसे बड़ी कमजोरी को दूर करने का प्रयत्न किया।

हम निम्न निष्कर्ष पर पहुचते हैं :

> **"दीर्घकाल में आय-रोजगार समस्या अधिक जटिल होती है। दीर्घकाल में उत्पादन-क्षमता में परिवर्तनों की सम्भावना रहती है। अतः आय व रोजगार के निर्धारण के एक दीर्घकालीन सिद्धान्त को दो बातों की व्याख्या करनी चाहिए : पहले तो, दीर्घ-काल या समय-अवधि में अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता में परिवर्तनों की व्याख्या करनी चाहिए; दूसरे, यह समझाना चाहिए कि समय-अवधि (या दीर्घकाल) में कुल मांग किस प्रकार से उत्पादन-क्षमता के साथ समायोजन करती है। केंज के उपरान्त विकास सिद्धान्त (या रोजगार सिद्धान्त) का यही सार (essence) है।"[23]**

प्रश्न

1. केंज के रोजगार सिद्धान्त की विवेचना कीजिये।
   Discuss Keynesian theory of employment.

   or

   "रोजगार का तार्किक प्रारम्भिक बिन्दु प्रभावपूर्ण मांग का सिद्धान्त है।" विवेचना कीजिये।
   "The logical starting point of employment is the principle of effective demand." Discuss.
2. रोजगार के केजियन सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये और उनके सिद्धान्त मे गुणक के योगदान को स्पष्ट रूप से बताइये।
   Critically discuss the Keynesian theory of employment bringing out clearly the part which the multiplier plays in it. (Lucknow)

---

[22] Investment is 'capacity-creating' as well, that is, "investment represents an addition to the stock of capital goods of the economy and hence, to long-run productive capacity."

[23] "In the long run the income-employment problem is more complex. Over the long-run productive capacity is subject to change Thus, a long-run theory of income and employment determination must explain, first, changes in economy's productive capacity over time, and second, how aggregate demand adjusts over time to such changes This is the essence of post-Keynesian growth theory (or employment theory)."

or

"रोजगार के कॅजियन सिद्वान्त मे गुणक एक महत्त्वपूर्ण अग है।" इस कथन के सन्दर्भ में कॅज के रोजगार सिद्वान्त की पूर्ण विवेचना कीजिये ।

"The multiplier is an integral part of Keynesian theory of employment." Discuss fully the Keynesian theory of employment in the light of above remark.

3. रोजगार के केंजियन सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये तथा संक्षेप में उनके सिद्धान्त मे उन मुख्य परिवर्तनों को बताइये जो कि केंज-उपरांत समय (post-Keynesian period) मे किये गये है ।

Critically examine the Keynesian theory of employment and briefly indicate the main changes which have been made in this theory in the post-Keynesian period. (Agra)

[संकेत—प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर के लिए 'केंज के रोजगार सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन' नामक केन्द्रीय शीर्षक के अन्तर्गत, अन्त में, आलोचना नं. 6, नं. 7 तथा 8 को पढ़िये ।]

4

चक्रीय आर्थिक उच्चावचन
अथवा
व्यापार-चक्र

(Cyclical Economic Fluctuations or Business Cycles)

1. प्राक्कथन
(INTRODUCTION)

व्यापार-चक्र पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की एक विशेषता है। एक व्यापार-चक्र बहुत जटिल समस्या है और इसकी व्याख्या के लिए अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा चुके हैं।

एक व्यापार-चक्र कुल आर्थिक क्रिया में बारी-बारी से विस्तार (या समृद्धि) तथा संकुचन (या मन्दी) को बताता है।[1] कुल आर्थिक क्रिया को विभिन्न सूचकों (indicators), जैसे, उत्पादन, आय, रोजगार, तथा कीमत-स्तर, के द्वारा व्यक्त किया जाता है। ये सूचक कुछ नियमित (*somewhat* regular) रूप से चढ़ते व गिरते है, और इसलिए यह कहा जाता है कि कुल आर्थिक क्रिया भी कुछ नियमित रूप से चढ़ती व गिरती है। जब इन सूचकों को एक ग्राफ (graph) पर दिखाया जाता है तो एक लहर (wave) की तरह का चित्र प्राप्त होता है। एक चढ़ाव व उतार को मिलाकर एक व्यापार-चक्र कहा जाता है।

अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'व्यापार-चक्र' (business cycle) शब्द के स्थान पर 'चक्रीय आर्थिक उच्चावचन' (*cyclical economic fluctuations*) शब्द को अधिक उचित समझते हैं। इसका कारण निम्न विवरण से स्पष्ट होता है। कुल आर्थिक क्रिया में चढ़ाव-उतार या उच्चावचन बार-बार (*recurrent*) होते हैं अर्थात् उनमे पुनरावृत्ति का स्वरूप (repetitive pattern) होता है। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि वे समय-अवधि तथा फैलाव (time-period and amplitude) की दृष्टि से एक समान हों या नियमित (regular or periodic) हों, एक व्यापार-चक्र का दुहराव या उसकी पुनरावृत्ति 5 साल बाद हो सकती है या 8 साल बाद, एक चक्र में मन्दी का फैलाव छोटा हो सकता है और दूसरे चक्र में लम्बा हो सकता है, अथवा एक चक्र में पुनरुत्थान या समृद्धि (revival or prosperity) का समय या फैलाव अधिक बड़ा हो सकता है जबकि दूसरे चक्र में छोटा हो सकता है, अर्थात व्यापारिक चक्रों के फैलाव (amplitude) सदैव एक समान या नियमित नहीं होते। अतः व्यापारिक चक्र समय-अवधि तथा फैलाव (time-period and amplitude) की दृष्टि से एक

[1] A business cycle refers to alternating periods of expansion (or prosperity) and contraction (or depression) in aggregate economic activity.

समान नहीं होते अथवा यह कहिए कि वे 'नियमित' (periodic) नहीं होते, जबकि 'व्यापार-चक्र' का शब्द इस प्रकार की नियमितता का आभास (impression) देता है। संक्षेप में, यह कहा जाता है कि 'व्यापार-चक्र बार-बार होते हैं परन्तु नियमित नहीं होते हैं' (*business cycles are recurrent but not periodic*)। इसलिए प्राय आधुनिक अर्थशास्त्री 'व्यापार-चक्र' (business cycles) के स्थान पर 'चक्रीय आर्थिक उच्चावचन' (cyclical economic fluctuations) शब्द को अधिक अच्छा समझते हैं।

2. 'व्यापार-चक्र' या 'चक्रीय उच्चावचनों' की परिभाषा (DEFINITION OF 'BUSINESS CYCLES' OR 'CYCLICAL ECONOMIC FLUCTUATIONS')

व्यापार-चक्र की अनेक परिभाषाए दी गयी है जिनमे एक बहुत अच्छी तथा सामान्यतया स्वीकृत (generally accepted) परिभाषा मिचेल तथा बर्न्स (W. C. Mitchell and A. F. Burns) द्वारा दी गयी है जो कि निम्नलिखित है—

"व्यापार-चक्र उन देशों की कुल आर्थिक क्रिया मे एक प्रकार का उच्चावचन (fluctuation) है जो कि अपने कार्य को मुख्यतया व्यापारिक उपक्रमो (business enterprises) में संगठित करते हैं: एक चक्र (cycle) शामिल करता है विस्तारों (expansions) को जो कि अनेक आर्थिक क्रियाओं में लगभग एक साथ या एक समय में होते हैं, और इसी प्रकार इसके बाद उत्पन्न होते हैं सामान्य व्यापारिक सुस्ती या मन्दी (recessions), संकुचन (contractions), और पुनरुत्थान (revivals) जो कि अगले चक्र की विस्तार अवस्था (expansion phase) में मिल जाते हैं; परिवर्तनों का यह क्रम बार-बार (recurrent) होता है परन्तु 'एक बहुत निश्चित नियमितता के साथ' (periodic) नहीं होता; ...।"[2]

उपर्युक्त परिभाषा से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है—

(1) ***चक्रीय उच्चावचन या व्यापार-चक्र उन देशों की विशेषता है जिनमें कि निजी उपक्रम*** (private enterprise) **प्रधान या महत्वपूर्ण होता है।** ["केवल अधिक विशिष्टीकरण, विस्तृत बाजारों तथा व्यापारिक उपक्रम के विकास के साथ ही व्यापार-चक्र की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से पहचानने में आती हैं।"[3]]

(2) **व्यापार-चक्र कुल आर्थिक क्रिया में चढ़ाव-उतार या उच्चावचनों को बताते हैं; इनका** सम्बन्ध अर्थव्यवस्था के किसी एक व्यक्तिगत भाग (some individual part of the economy) मे उच्चावचनों से नहीं होता। यह ध्यान मे रखने की बात है कि चक्रीय उच्चावचन अर्थव्यवस्था के लगभग प्रत्येक भाग, जैसे व्यवसाय, उद्योग तथा वित्त, में व्यापक रूप (pervasive manner) से और लगभग एक साथ फैल जाते हैं, विभिन्न भागों या विभिन्न उद्योगों मे इनके प्रभावों की तीव्रता मे अन्तर हो सकता है।[4]

---

[2] "Business cycles are a type of fluctuation found in the aggregate economic activity of nations that organize their work mainly in business enterprises: a cycle consists of expansions occurring at about the same time in many economic activities, followed by similarly general recessions, contractions, and revivals which merge into the expansion phase of the next cycle; this sequence of changes is recurrent but not periodic..."

[3] "Only with increased specialization, wider markets, the growth of the business enterprise, ...do business cycles take on recognizable characteristics."

[4] It is significant to note that cyclical fluctuations penetrate and spread in a pervasive manner more or less at the same time in nearly every segment of the economy, including commerce, industry and finance, the intensity or severity of the impact may be different in the various segments of the economy or various industries.

(3) यह परिभाषा इस बात पर जोर देती है कि व्यापार-चक्र 'बार-बार' होते हैं परन्तु एक अत्यन्त निश्चित नियमितता के साथ नहीं होते (*business cycles "are recurrent but not periodic"*)। वास्तव में 'व्यापार-चक्र' का शब्द 'एक निश्चित नियमितता या लय' (rhythm) को बताता है। एक चक्र (cycle) 'बार-बार होने वाला' (recurrent) होता है, इस शब्द का अर्थ है कि एक चक्र में विकास को एक पुनरावृत्ति का स्वरूप (a repetitive pattern of development) होता है अर्थात् विस्तार, सुस्ती (recession), सकुचन, तथा पुनरुत्थान, और फिर नये सिरे से विस्तार; इस प्रकार की पुनरावृत्ति का क्रम रहता है। एक व्यापार-चक्र न तो समय अवधि (time period) की दृष्टि से और न ही 'फैलाव या चौड़ाई' (amplitude) की दृष्टि से एक रूप या एक समान (uniform) होते हैं। इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता है कि वे (अर्थात् व्यापार-चक्र) सदैव एक ही रूप मे और एक ही चौडाई या फैलाव (same form and amplitude) मे घटित होते है।[5]

3. व्यापार-चक्र के प्रकार
(TYPES OF BUSINESS CYCLES)

कुछ व्यापार-चक्र छोटे होते हैं और कुछ लम्बे या दीर्घ (long) होते हैं। सामान्यतया व्यापार-चक्रो का निम्न प्रकार से वर्गीकरण (classification) किया जाता है—

1. 'प्रमुख चक्र' (या जगलर चक्र) (Major cycles or Juglar cycles)

प्रमुख चक्र वे होते हैं जो कि व्यापारिक कार्य मे विस्तृत उच्चावचनो (wide fluctuations) को बताते हैं। इनकी एक विशेषता है गहरी या बडी मन्दी (serious depressions) अथवा गहरी सुस्ती (serious recessions)। "प्रमुख चक्र व्यापारिक कार्य की क्रमिक बड़ी अधोगतियो (major downturns) अथवा बड़ी सुस्तियो (major recessions) के बीच अन्तर या दूरी को बताता है।" एक बडी अधोगति किसे कहेंगे यह बात हमारे मूल्यांकन या निर्णय (judgement) पर निर्भर करेगी।[6] प्रमुख चक्रों की समय अवधि (duration) लगभग 10 साल की (या 8 साल से 12 साल तक की) होती है।

इनकी खोज फ्रास के 19वी शताब्दी के एक अर्थशास्त्री क्लीमेंट जगलर (Clement Juglar) ने की थी, इसलिए जगलर के आदर मे इन बडे चक्रो को 'जगलर चक्र' (Juglar Cycles) के नाम से भी पुकारा जाता है।

2. लघु या छोटे चक्र (अथवा किचिन चक्र) (Minor cycles or Kitchin cycles)

लघु चक्र वे हैं जो कि व्यापारिक क्रिया मे हल्के उच्चावचनो (mild fluctuations) को बताते हैं; इन चक्रो की तीव्रता हल्की होती है। इनकी विशेषता है एक 'छोटी सुस्ती' (minor recession) या एक 'छोटी अधोगति' (minor downturn)। प्रमुख चक्रो की तुलना मे लघु चक्र अपेक्षाकृत छोटे होते हैं परन्तु सख्या मे अधिक होते हैं। लघु चक्रो की समय अवधि (duration) $3\frac{1}{3}$ साल या 40 महीने (अथवा 3 साल से लेकर 4 साल तक) होती है।

---

[5] "The term 'business cycle' implies a certain rhythm of business activity. To describe the cycle as recurrent me ns that it possesses a repetitive pattern of development—a patterh of expansion, recession, contraction, and revival followed by renewed expansion The cycle, however, is uniform either in time periods nor in amplitude ... there is no evidence that they recur again and again in the same form and amplitude "

[6] "Major cycles constitute the intervals between successive major dow turns of business activity or between major recessions." Wl at is a major downturn would necessarily b a matter of judgement.

एक अंग्रेज अर्थशास्त्री जोसेफ किचिन (Joseph Kitchin) ने प्रमुख तथा लघु चक्रों के भेद को बताया, इसलिए किचिन के आदर मे लघु-चक्रों को 'किचिन चक्र' भी कहा जाता है।

किचिन ने बताया कि प्रमुख चक्र लघु चक्रों के केवल योग (aggregate) हैं, सामान्यतया 2 लघु-चक्र (या कभी-कभी 3 लघु-चक्र) मिलकर एक प्रमुख चक्र का निर्माण करते हैं।

इन दोनों में से प्रमुख चक्र अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, और अधिकांश सिद्धान्त, जिनका प्रतिपादन किया गया है, प्रमुख चक्रो की व्याख्या से सम्बन्धित है।

वास्तव में लघु तथा प्रमुख चक्र उस विस्तृत वर्ग के व्यापारिक चक्रों के उप-विभाग हैं जो कि व्यापारिक क्रियाओ के उन चक्रीय उच्चावचनों को शामिल करते हैं जिसकी समय-अवधि 1 साल से लेकर 10 या 12 साल तक की होती है।[7]

दीर्घ लहरें अथवा कोण्ड्रातीफ चक्र (Long Waves or Kondratieff Cycles)

ये चक्र व्यापारिक क्रिया में लम्बे उच्चावचनो (*long-range fluctuations*) को बताते हैं और इनकी समय अवधि 50 से 60 साल तक की होती है। एक 'दीर्घ लहर' में अनेक लघु चक्र (और प्रमुख चक्र) भी शामिल हो सकते हैं।

रूस के अर्थशास्त्री एन. डी. कोण्ड्रातीफ (Russian economist N. D. Kondratieff) के आदर में 'दीर्घ-लहरों' को 'कोण्ड्रातीफ चक्र' भी कहा जाता है।

उपर्युक्त तीन प्रमुख प्रकार के व्यापारिक चक्रो के अतिरिक्त व्यापारिक चक्रों की कुछ अन्य किस्में भी हैं। एक और किस्म है 'बिल्डिंग निर्माण चक्र' (*building cycles*)। निर्माण-कार्य चक्र बिल्डिगो के निर्माण में उच्चावचनो को बताते है। इनका सम्बन्ध सड़क तथा पुल इत्यादि के निर्माण कार्यों से नही होता; ये केवल बिल्डिगों के निर्माण कार्य के सम्बन्ध में ही उच्चावचनों को बताते हैं। बिल्डिग चक्रों की समय अवधि 15 से 20 साल तक की होती है।

4. व्यापार-चक्र की अवस्थाएं
(PHASES OF A BUSINESS CYCLE)

एक व्यापार-चक्र की चार अवस्थाए होती है—(1) मन्दी या संकुचन (Depression or Contraction) (2) पुनरुत्थान (Recovery or Revival) (3) समृद्धि तथा तेजी अथवा विस्तार (Prosperity and Boom or Expansion) तथा (4) प्रतिसार या सुस्ती (Recession)।

इन चारो अवस्थाओ को चित्र 1 मे दिखाया गया है। अब हम प्रत्येक अवस्था की विस्तृत विवेचना करेंगे।

1. मन्दी (Depression)

मन्दी वह समय अवधि है जिसमे कि कुल आर्थिक क्रिया निम्नतर (lowest) स्तर पर आ जाती है। इस अवस्था की मुख्य विशेषताएं अग्रलिखित है:
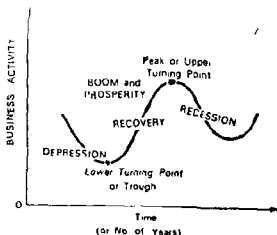
चित्र 1

[7] As a matter of fact major and minor cycles may be called as subdivisions of business cycles which themselves cover cyclical fluctuations of business activity in periods varying from one to ten or twelve years.

1. उत्पादन का बहुत नीचा स्तर होता है, रोजगार का स्तर बहुत नीचा होता है (अर्थात् व्यापक बेरोजगारी होती है), और परिणामस्वरूप आय का स्तर बहुत नीचा होता।
2. नीची आय का अर्थ है नीची माग, नीची माग कीमतों को नीचे गिरायेगी। कच्चे माल तथा कृषि-वस्तुओ की कीमतें, निर्मित वस्तुओ की तुलना मे, अधिक नीची होती हैं; परिणामस्वरूप सापेक्षिक कीमत ढाचे का बिगाड़ (distortion of relative price structure) हो जाता है।
3. लागतें भी नीची होती हैं क्योंकि मनुष्य-शक्ति तथा अन्य साधन बड़ी मात्रा में अप्रयुक्त unemployed) रहते हैं; परन्तु लागतें 'sticky' होती हैं अर्थात् लागतों में गिरावट, कीमतों की तुलना मे, कम होती है।
4. लाभ बहुत नीचे होते हैं क्योंकि कीमतें अधिक नीची होती हैं, तथा बिक्री (अर्थात् फर्मों की वस्तुओ की माग) बहुत कम होती है; अनेक फर्मों को भारी हानि उठानी पड़ती है।
5. स्टाक या इनवेंन्ट्रीज (stocks or inventories) बहुत नीचे स्तर पर आ जाती हैं क्योंकि, माग की कमी के कारण, व्यापारी इनवेंन्ट्रीज मे से वस्तुओ को निकाल कर बेचते हैं, वे निर्माताओ को वस्तुओ के और उत्पादन के लिए नये आर्डर नही देते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादक या निर्माता अपने उत्पादन मे और कमी करते हैं।
6. व्यापारिक फर्मों को उधार लेने की बहुत कम आवश्यकता होती है क्योंकि उत्पादन बहुत नीचे स्तर पर होता है। बैंको के पास पर्याप्त द्रव्य-सचय (reserves) होते हैं परन्तु वे एक अच्छे स्तर पर उधार देने को अनिच्छुक (reluctant) रहते हैं; व्यवसाय के लिए उधार-कोषों (loans) की मात्रा बहुत नीचे गिर जाती है। ब्याज की दर बहुत नीची हो जाती है क्योंकि बैंको के पास बहुत अधिक द्रव्य-संचय होता है और उधार की मांग कम होती है।
7. घिसी तथा भुगती हुई (worn-out) मशीनो तथा यन्त्रों को प्रतिस्थापित (replace) करने की प्रवृत्ति या कोशिश बहुत कम होती है क्योंकि उत्पादन का स्तर बहुत नीचा होता है। परिणामस्वरूप पूजीगत वस्तुओ (capital goods) की माग बहुत गिर जाती है और इसलिए पूजीगत वस्तुओ का उत्पादन बहुत कम हो जाता है और निर्माण-क्रियाएं लगभग बन्द-सी हो जाती हैं। (इन सब बातों के कारण रोजगार व आय का स्तर और गिर जाता है।)
8. एक निराशावादी दृष्टिकोण (pessimistic outlook) फैल जाता है क्योंकि उत्पादन, रोजगार, आय, कीमतें व लाभ बहुत नीचे होते हैं। निराशावादी दृष्टिकोण का अर्थ-व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त सब तत्त्व इकट्ठे होकर एक-दूसरे को अधिक शक्तिशाली (reinforce) करते हैं; इस प्रकार मन्दी एक 'सचयी प्रक्रिया' (cumulative process) हो जाती है।

2. पुनरुत्थान (Recovery or Revival)

पुनरुत्थान तब होता है जबकि व्यापारिक क्रिया का उठना शुरू हो जाता है। जब कोई चीज पुनरुत्थान को उत्पन्न कर देती है तो यह कहा जाता है कि 'नीचे का मोड बिन्दु' (lower turning point या trough) आ चुका है। पुनरुत्थान की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. पुनरुत्थान को 'शुरू करने वाले तत्त्व' ('initiating factors' or 'starters') एक य. ---, अधिक हो सकते है। (i) एक 'शुरू करने वाला तत्त्व' लागत-कीमत का अनुकूल सम्बन्ध (favourable cost-price relationship) हो सकता है। यह सम्भव है कि कीमतें अपने निम्नतम (lowest) पर पहुच चुकी हो और उनका बढ़ना

शुरू हो सकता है। सामान्यतया कीमतें, लागतों की तुलना में, अधिक तेजी से बढ़ती है; इस प्रकार से कीमत और लागत में अन्तर अर्थात् लाभ अधिक हो सकता है; और लाभ विनियोगों व उत्पादन को प्रोत्साहित कर सकते हैं। (ii) मन्दी के कुछ समय तक रहने के पश्चात् इनवेन्ट्रीज या स्टाक लगभग समाप्त या बहुत कम हो जाते हैं, उनकी पूर्ति (replacement) करनी पड़ सकती है; ऐसी स्थिति में विक्रेता अपनी वर्तमान बिक्री की पूर्ति करने के लिए उत्पादकों या निर्माताओं को आर्डर दे सकते हैं। इस प्रकार उत्पादन व माग में धीरे-धीरे वृद्धि शुरू हो सकती है, घिसी हुई मशीनों का प्रतिस्थापन किया जा सकता है और इस प्रकार पूजीगत वस्तुओं तथा नई मशीनों की मांग में वृद्धि की शुरूआत हो सकती है। (iii) नीची ब्याज की दर व्यापारियों को उधार लेने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है और उत्पादन में वृद्धि के लिए सहायक हो सकती है। (iv) निराशावादी दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सकता है और लोग यह सोच सकते हैं कि मन्दी सदैव या अधिक समय तक नहीं रहेगी और स्थिति में सुधार होगा; भविष्य में सुधार की आशा में व्यावसायिक फर्में विनियोग करने का निर्णय ले सकती हैं। ऐसा कार्य अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान में सहायक हो सकता है। उपर्युक्त बातों में से कोई भी एक बात पुनरुत्थान की प्रक्रिया को शुरू कर सकती है।

2. पुनरुत्थान का कोई भी कारण हो, परन्तु जो शक्ति हमें मन्दी में से बाहर निकालती है वह है 'उत्पादन में वृद्धि'। यदि उत्पादन बढ़ता है तो यह स्वाभाविक है कि रोजगार व आय में भी वृद्धि होगी।
3. आय में वृद्धि के साथ लोगों की माग में वृद्धि होगी।
4. जब मांग में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है तो कीमतों का बढ़ना शुरू हो जाता है।
5. पुनरुत्थान के प्रारम्भिक भाग में लागतें अपेक्षाकृत नीची रहती हैं क्योंकि अधिक मात्रा में प्राप्य अप्रयुक्त (unutilized or idle) साधनों व मनुष्य-शक्ति के लिए प्रतियोगिता कम होगी।
6. लाभों में वृद्धि होगी क्योंकि कीमतों व लागतों में अन्तर बढ़ेगा और बिक्री में वृद्धि होगी।
7. बढ़े हुए लाभ विनियोग को प्रोत्साहित करेंगे।
8. विनियोग में वृद्धि के कारण बैंकों से ऋणों (loans) की माग बढ़ेगी और बैंकों के पास द्रव्य-संचय का आधिक्य (excess of reserves) घटेगा। परिणामस्वरूप ब्याज दर में धीरे-धीरे वृद्धि होगी, अर्थात् पुनरुत्थान के प्रारम्भिक भाग में ब्याज दर 'sticky' होती है।
9. विनियोग में वृद्धि के कारण उत्पादन में वृद्धि होगी और परिणामस्वरूप अप्रयुक्त उत्पादन-क्षमता (unutilized capacity) में कमी होगी।
10. अधिक इनवेन्ट्रीज या स्टाक रखे जायेंगे क्योंकि भविष्य में अधिक बिक्री की आशा होगी।
11. सामान्य दृष्टिकोण (general outlook) अधिक अनुकूल हो जायेगा; 'निराशा' के स्थान पर 'आशा' का संचार होगा। आशावादी दृष्टिकोण (optimistic outlook) के कारण व्यापारी मशीनों, यन्त्रों, बिल्डिंगों, इत्यादि में अधिक विनियोग करेंगे, परिणामस्वरूप उत्पादन, रोजगार, आय में वृद्धि होगी। उपभोक्ता भी अधिक व्यय करके माग में वृद्धि करेंगे।

उपर्युक्त सभी तत्त्व मिलकर या संचयी रूप में (cumulatively) कार्य करते हैं और पुनरुत्थान अच्छी प्रकार से रास्ता पकड़ लेता है।

3. समृद्धि तथा तेजी (Prosperity and Boom)

समृद्धि की अवस्था तब होती है जबकि आर्थिक क्रिया का चारों तरफ एक बहुत ऊंचा स्तर होता है। इस अवस्था की मुख्य विशेषताएं अग्रलिखित हैं :

1. जब पुनरुत्थान को उत्पन्न करने वाली शक्तियां पर्याप्त जोर या बल पकड़ लेती हैं, तो हम समृद्धि की अवस्था में पहुंच जाते हैं। समृद्धि की अवस्था मे उत्पादन, रोजगार व आय के स्तर बहुत ऊंचे होते हैं, और ऊंची आय का अर्थ है ऊंची मांग; मांग मे वृद्धि के साथ कीमतों में वृद्धि होती है।
2. कीमतें, लागत की तुलना मे, अधिक तेजी से बढ़ती हैं क्योंकि (i) मजदूरियां कीमतो से पीछे रह जाती हैं (wages lag behind prices); (ii) ब्याज की दरें कीमतों से पीछे रह जाती हैं, तथा (iii) ऊपर की लागतें (overhead costs) सापेक्षिक रूप से लगभग स्थिर रहती हैं।
3. लाभ बढ़ते हैं क्योंकि कीमतो व लागतो के बीच अन्तर काफी बढ जाते हैं।
4. विनियोग बढ़ते हैं, नई फैक्टरियो तथा बिल्डिंगों का निर्माण होता है।
5. इनवेन्ट्रियों (inventories) का विस्तार होता है क्योंकि भविष्य में कीमतो मे और अधिक वृद्धि की आशा रहती है।
6. उत्पादन का स्तर ऊंचा और बढता हुआ रहता है, परिणामस्वरूप आय का स्तर भी ऊचा और बढ़ता हुआ रहता है।
7. उपभोक्ताओं द्वारा व्यय ऊंचा और बढता हुआ रहता है।
8. बैंक साख का विस्तार बना रहता है।
9. आशावादिता (optimism) ऊंची और चढती हुई रहती है जिसके परिणामस्वरूप विनियोग, उत्पादन, रोजगार व आय मे और वृद्धि होती है।

समृद्धि की अवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति तक ही नही पहुंचाती बल्कि वह समृद्धि की 'चोटी' ('peak' of prosperity) पर ले जाती है जिसे प्रायः 'तेजी' (boom) कहा जाता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति में पहुंचने के बाद, व्यय (अर्थात् माग) मे अधिक वृद्धि केवल कीमतों की स्फीति वृद्धि (inflationary rise in prices) को जन्म देगी क्योंकि उत्पादन को और अधिक बढाना सम्भव नहीं होगा। कीमतों में स्फीति वृद्धि के परिणाम होंगे—

1. व्यापारियों मे 'अत्यधिक आशावादिता' (over-optimism) हो जाती है; वे विभिन्न उद्योगो मे और अधिक विनियोग करते है।
2. इसके कारण उत्पादन के साधनो, जो कि पहले से ही पूर्ण रोजगार मे है, की माग पर अधिक दबाव (pressure) पड जाता है, इसलिए उनकी कीमतें और अधिक बढ जाती हैं; 'पूर्ण से अधिक रोजगार' (over-full employment) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें नौकरियो या रोजगार अवसरो (jobs) की सख्या प्राप्य श्रमिको की सख्या से भी अधिक हो जाती है।
3. लाभ बहुत अधिक ऊचे हो जाते हैं, व्यापारी अपने पूंजीगत विनियोगों (capital investments) को जारी रखते हैं, कीमतें अत्यधिक ऊंची (sky-high) हो जाती हैं। [सरपट स्फीति (runaway inflation) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।]
4. अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे 'कमिया व कठिनाइया' (bottlenecks) उत्पन्न हो जाती है—श्रमिको (मुख्यतया कुशल श्रमिको) की कमी, मुख्य कच्चे मालों की कमी, बैंक साख व पूजी की कमी के कारण ब्याज की अत्यधिक ऊची दर, अत्यधिक ऊंची कीमतो के प्रति उपभोक्ताओ का विरोध (resistance), इत्यादि 'कमिया व कठिनाइया' उत्पन्न हो जाती हैं।
5. विभिन्न प्रकार की 'कमिया व कठिनाइया' (bottlenecks) लागत-ढाचे को अत्यधिक ऊंचा कर देती हैं और परिणामस्वरूप लाभ की सीमाएं (margins of profit) बहुत नीची हो जाती हैं। व्यापारी और अधिक (further) विनियोग को बन्द कर देते

हैं; वे सावधान या अत्यधिक सावधान (over-cautious) हो जाते हैं। 'तेजी' (boom) फटने (explosion) की स्थिति में पहुंच जाती है और अधोगति या सुस्ती (downswing) की ओर रास्ता स्थापित हो जाता है।

4. सुस्ती या अधोगति (Recession or Downswing)

'सुस्ती' की स्थिति तब उत्पन्न होती है जबकि आर्थिक क्रिया के स्तर में पर्याप्त गिरावट (noticeable drop or fall) आ जाती है। सुस्ती की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं--

1. समृद्धि की चोटी (या 'तेजी') की स्थिति में 'कमियां व कठिनाइयां' उत्पन्न हो जाती हैं; लागत-ढांचा बिगड़ (या distort हो) जाता है तथा बहुत ऊंचा हो जाता है; ऊंची कीमतों के प्रति उपभोक्ताओं में विरोध (resistance) उत्पन्न हो जाता है; तथा उपभोक्ताओं की मांग गिरने लगती है। 'सुस्ती' की ओर जाने का रास्ता बन जाता है। वह बिन्दु जिस पर कि 'तेजी' (boom) 'सुस्ती' (recession) में परिवर्तित होती है, उसे 'ऊपर का मोड़ बिन्दु' (upper turning point) कहते हैं।
2. लागतें, कीमतों की तुलना में, अधिक तेजी से बढ़ती हैं (costs rise faster than prices) क्योंकि—(i) तेजी के समय में श्रमिकों व कच्चे माल की मांग में बहुत वृद्धि हो जाने से उनकी कमी हो जाती है और परिणामस्वरूप उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं। 'कमियों' (shortages) के परिणामस्वरूप कम कुशल श्रमिकों तथा कम कुशल मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन-कुशलता (productive efficiency) गिर जाती है और लागतें अधिक बढ़ जाती हैं। (ii) तेजी के समय में उधार के लिए बढ़ी हुई मांग के कारण ब्याज की दर बहुत ऊंची हो जाती है जो कि उत्पादकों की लागतों को बढ़ाती है। (iii) पूर्ण-क्षमता उत्पादन (full capacity production) की स्थिति में पहुंचने के बाद 'ऊपर की लागतें' (overhead costs) बढ़ जाती हैं। (iv) तेजी के समय में बाजार की बहुत बढ़ी हुई मांग की पूर्ति करने की जल्दी में व्यापारिक खर्चों की उचित जांच (scrutiny) नहीं की जाती है और विभिन्न प्रकार की बर्बादियां या अपव्यय (wastages) उत्पन्न हो जाते हैं। (v) ऊंची लागत को ऊंची कीमत के रूप में उपभोक्ताओं को हस्तांतरित (transfer) करना बहुत कठिन हो जाता है।
3. लाभ गिरने लगते हैं क्योंकि लागतें ऊंची हो जाती हैं कीमतों की तुलना में; अनेक व्यापारियों को भारी नुकसान होने लगते हैं; कुछ फर्म फेल या बन्द होने लगती हैं और इस प्रकार की असफलताएं (failures) अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालती हैं और कभी-कभी लोगों में 'डर' (alarm or panic) पैदा कर देती हैं।
4. विनियोग गिरते हैं क्योंकि लाभ गिरते हैं और हानियां होती हैं। बिल्डिंगों, फैक्टरियों, मशीनों व यन्त्रों पर विनियोग बहुत कम कर दिया जाता है, कुछ दशाओं में बन्द कर दिया जाता है।
5. व्यावसायिक फर्मों द्वारा विनियोग-व्यय में कमी के कारण रोजगार के अवसरों में कमी हो जाती है; अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी फैल जाती है; लोगों की आयों में बहुत कमी हो जाती है, परिणामस्वरूप मांग में बहुत कमी हो जाती है।
6. मांग में कमी वस्तुओं की कीमतों में गिरावट ला देती है। थोक-विक्रेता (wholesalers) अपने स्टाकों या इनवेन्ट्रियों में कमी करने लगते हैं, बाजार में वस्तुओं की पूर्ति अपनी इनवेन्ट्रियों में से करते हैं और उत्पादकों को नये आर्डर नहीं देते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और उसमें कमी के कारण रोजगार व आय में और कमी होगी।
7. फर्में घिसी व भुगती हुई मशीनों व पूंजीगत वस्तुओं को प्रतिस्थापित (replace) नहीं

करेगी; उत्पादन में कटौती की जायेगी; तथा अप्रयुक्त क्षमता (idle capacity) उत्पन्न हो जायेगी।

8. द्रव्य व साख बाजार में प्रतिकूल (unfavourable) दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं। तेज़ी के समय में बैंकों के द्रव्य-संचय (reserves) बहुत नीचे स्तर पर गिर जाते हैं, बैंकों के लिए ऋणों (loans) का देना कठिन होने लगता है, ब्याज की दरें काफी ऊंची हो जाती हैं, फर्मों को उधार लेने में बहुत कठिनाइयां आने लगती हैं, तथा उत्पादन में और कमी होने लगती है; परिणामस्वरूप उत्पादन, रोजगार व आय में बहुत कमी हो जाती है।

9. आयों में कमी के कारण उपभोक्ता भी अपने व्यय में बहुत कटौती कर देते हैं और टिकाऊ उपभोग वस्तुओं (durable consumer goods) की खरीद को आगे के लिए स्थगित (postpone) कर देते हैं।

10. 'सुस्ती' सचयी (cumulative) हो जाती है, दूसरे शब्दों में, उत्पादन, रोजगार, आय, लाभों, कीमतों तथा माग में कमी 'सचयी' हो जाती है।[a]

11. तीव्रता (severity) के अनुसार, सुस्ती का निम्न में से कोई भी एक रूप (form) हो सकता है—'हल्की सुस्ती' (*mild* recession), **'संकटकाल'** (*crisis*) तथा **आतंककाल** (*panic*)। जब सचयी अधोगति प्रक्रिया (cumulative downward process) धीमी होती है और कोई विस्तृत अव्यवस्थाएं तथा व्यावसायिक असफलताएं (widespread disturbances and business failures) नहीं होती है, तो 'सुस्ती' के ऐसे रूप को 'हल्की सुस्ती' (mild recession) कहते हैं। जब सुस्ती बहुत बलवान व तीव्र (strong and severe) होती है और बहुत अधिक व्यावसायिक असफलताएं होती हैं, तो सुस्ती के ऐसे रूप को 'सकटकाल' (crisis) कहते हैं। कभी-कभी 'समृद्धि' से 'सकटकाल' में परिवर्तन एकदम यकायक हो सकता है (sometimes the change from 'prosperity' to 'crisis' may be quite sudden or abrupt)। एक या एक से अधिक बहुत बड़ी फर्में यकायक फेल हो सकती हैं; इसके परिणामस्वरूप जनता में डर या आतंक (alarm or panic) फैल जाता है; बैंकों पर रुपया निकालने का एकदम बहुत अधिक दबाव (run) हो जाता है; अच्छी व ठोस फर्मों को भी उधार देने से इनकार कर दिया जाता है, शेयर-बाजार में कीमतें एकदम निम्नतम (lowest) स्तर पर आ जाती हैं, वस्तुओं के बाजार, घबराहट की बिक्री (distress sales) के कारण, एकदम हिल जाते हैं, तथा कुल आर्थिक क्रिया (total economic activity) में एकदम सकुचन (contraction) हो जाता है। इस प्रकार जब 'समृद्धि' से 'सकटकाल' में एकदम व यकायक परिवर्तन होता है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था तथा व्यापार में बहुत अधिक अव्यवस्था या खलबली तथा डर व आतंक उत्पन्न हो जाता है, तो सुस्ती के ऐसे रूप को 'आतंककाल' कहा जाता है। (When the change from 'prosperity' to 'crisis' is sudden and abrupt causing great disturbance and alarm in the business and the economy, such a form of recession is called a 'panic')

12. सामान्य दृष्टिकोण (outlook) निराशावादी (pessimistic) हो जाता है तथा

---

[a] गुणक-प्रभाव उल्टी दिशा में कार्य करने लगता है तथा त्वरक (accelerator) लगभग शून्य हो जाता है।

"The reduction in investment and consumer spending will be accompanied by a reverse multiplier effect and the accelerator may approach zero."

व्यापारियों व उपभोक्ताओं पर बुरे मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ते हैं। 'मुस्ती अन्त में 'मन्दी' की अवस्था मे प्रवेश कर जाती है, (जहां से कि हमने शुरू किया था), और इस प्रकार एक चक्र (cycle) पूरा हो जाता है।

5. व्यापार-चक्र के सिद्धान्त
(THEORIES OF TRADE CYCLES)

व्यापार-चक्र बहुत जटिल होते है। इनके कारणो की व्याख्या के सम्बन्ध मे अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है। व्यापार-चक्र सिद्धान्तो को दो मोटे वर्गों (broad categories) में बाटा जा सकता है—(i) बहिर्जनित सिद्धान्त (Exogeneous theories), जैसे, सूर्य-चिह्न सिद्धान्त (sunspot theory); इन सिद्धान्तो के अनुसार व्यापार-चक्र के कारण अर्थव्यवस्था के बाहर (external or exogeneous) होते है, अर्थव्यवस्था के अन्दर नही। (ii) अंतर्जनित सिद्धान्त (Endogencous theories), जैसे, मौद्रिक सिद्धान्त, ये सिद्धान्त बताते है कि व्यापार-चक्र के कारण अर्थव्यवस्था के अन्दर (internal or endogencous) होते है।

व्यापार-चक्र के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है—

1. जलवायु सिद्धान्त या सूर्य-चिह्न सिद्धान्त (Climatic or Meteorological Theories or Sunspot theory)
2. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological theories)
3. अल्प-उपभोग सिद्धान्त या अति-बचत सिद्धान्त (Under-consumption or over-saving theory)
4. विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त : हाट्रे का सिद्धान्त (Purely Monetary theories: Hawtrey's theory)
5. अति-विनियोग सिद्धान्त : हायक का सिद्धान्त (Over-investment theories: Hayek's theory)
6. नवप्रवर्तन सिद्धान्त : शुम्पीटर का सिद्धान्त (Innovation Theory: Schumpeter's theory)
7. केंज का सिद्धान्त (Keynes' theory)
8. हिक्स का सिद्धान्त (*Hicks' theory*)

अब हम उपर्युक्त सिद्धान्तो मे से प्रत्येक की अलग-अलग विवेचना करते है।

जलवायु सिद्धान्त या सूर्य-चिह्न सिद्धान्त
(CLIMATIC THEORY OR SUNSPOT THEORY)

1. प्राक्कथन (Introduction)

यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र का सबसे पुराना सिद्धान्त है जो कि आधुनिक समय में लगभग बेकार हो गया है। इसका अध्ययन प्राय साहित्यिक (academic) दृष्टि से ही उपयोगी है। कुछ प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने सामान्य व्यापार क्रिया मे परिवर्तनो को कृषि क्रिया से सम्बन्धित किया। इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार व्यापार-चक्रो का मुख्य कारण था कृषि मे चक्रीय (cyclical) परिवर्तन।

2. सिद्धान्त (The Theory)

सन् 1875 मे अंग्रेज अर्थशास्त्री स्टेनली जेवन्स (W. Stanley Jevons) तथा उनके पुत्र एच. एस जेवन्स (H. S. Jevons) ने अपने विख्यात 'सूर्य-चिह्न सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यापार-चक्र का कारण है सूर्य के चेहरे पर धब्बो का होना; ये धब्बे तीव्रता (intensity) मे चक्रीय ढग से (10-11 साल के चक्र मे) परिवर्तित होते रहते हैं। इन धब्बों में

परिवर्तन (अर्थात् इनके बड़े या छोटे) होने से जलवायु में परिवर्तन होता है जिससे कृषि उत्पादन में परिवर्तन होता है, और कृषि में परिवर्तन के कारण सामान्य व्यापार क्रिया में परिवर्तन होता है। जब सूर्य के धब्बे बड़े हो जाते है तो सूर्य से कम गर्मी (heat) प्राप्त होती है, परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन कम होता है, कृषि में कार्य करने वाले लोगो की आय और क्रय-शक्ति गिर जाती है; कृषि मे मन्दी आ जाती है तथा कृषि पर आधारित उद्योगों मे मन्दी का प्रभाव हो जाता है; इस प्रकार समस्त अर्थव्यवस्था में मन्दी फैल जाती है। कुछ वर्षों बाद जब सूर्य के चिह्न या धब्बे छोटे हो जाते हैं तो सूर्य से अधिक गर्मी प्राप्त होती है, कृषि उत्पादन बढ़ता है, सामान्य व्यापारिक क्रिया भी बढ़ती है, और समृद्धि (prosperity) की स्थिति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार मन्दी और समृद्धि का चक्र चलता रहता है।

सन् 1914 में अमेरिकन अर्थशास्त्री एच. एल. मूर (H. L. Moore) ने heavenly bodies तथा व्यापार-चक्र में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। मूर के अनुसार शुक्र ग्रह (Planet Venus) के चलन वर्षा को प्रभावित करते है (उन्होने वर्षा मे एक 8-वर्षीय चक्रीय परिवर्तन बताया), इसके परिणामस्वरूप कृषि-उत्पादन में चक्रीय परिवर्तन होते हैं जो कि सामान्य व्यापार क्रिया मे चक्रीय परिवर्तनो को उत्पन्न करते है।

सन् 1930 मे वी. पी. टिमोशेंको (V. P. Timoshenko) ने अपनी पुस्तक *Role of Agricultural Fluctuations in Business Cycles* प्रकाशित की, जिसमें उन्होने कृषि उत्पादन मे परिवर्तन तथा व्यापार-चक्र मे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु उन्होंने कृषि उत्पादन मे परिवर्तन होने के कारणो पर उचित प्रकाश नही डाला।

3. मूल्यांकन (Evaluation)

इसमें सन्देह नही है कि कृषि उत्पादन क्रियाओ तथा व्यापारिक क्रियाओ मे कुछ सम्बन्ध होता है, परन्तु आधुनिक युग में जलवायु सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता है :

(i) उन्नतिशील औद्योगिक देशो मे कृषि-क्षेत्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का एक बहुत छोटा भाग होता है। ऐसी स्थिति में कृषि उत्पादन मे परिवर्तनो को व्यापार-चक्रों का कारण मान लेना उचित नही है।

(ii) औद्योगिक देशो मे, आज के युग मे, कृषि के क्षेत्र में अधिक स्थायित्व (stability) पायी जाती है; इसका कारण है सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के कृषि-कार्यक्रम (या प्रोग्राम) लागू किये जाते है, जैसे उत्पादन-नियंत्रण, कृषि वस्तुओ के स्टाक के प्रोग्राम, कृषि कीमतो मे अधिक परिवर्तनो को रोकने के प्रोग्राम (जैसे, price support schemes), इत्यादि। आधुनिक युग मे, चूंकि कृषि मे, प्राचीन समय की तुलना मे, अधिक स्थायित्व है, इसलिए अर्थव्यवस्था पर कृषि का चक्रीय प्रभाव बहुत कम रह जाता है।

(iii) कृषि-उत्पादन मे परिवर्तन का कारण केवल जलवायु या मौसम (weather) ही नही होता; अच्छी खाद, उन्नत बीज, गहरी खेती के नये तरीके, नई व उन्नत मशीनों व यन्त्रो का प्रयोग, इत्यादि भी कृषि-उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग मे यह सिद्धान्त बहुत ही अपर्याप्त और लगभग बेकार है।

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
(PSYCHOLOGICAL THEORIES)

1. प्राक्कथन (Introduction)

पीगू ने अपनी पुस्तक *Industrial Fluctuations* (1927) मे व्यापार-चक्र का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया; पीगू के सिद्धान्त को ही मुख्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यापार-चक्र मनोवैज्ञानिक कारणो के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

व्यापार चक्रों के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त 'वास्तविक कारणों' (real causes) तथा मनोवैज्ञानिक कारणों' (psychological causes) के बीच अन्तर पर आधारित है। "एक 'वास्तविक कारण' वास्तविक आर्थिक दशाओं में परिवर्तन को बताता है। एक 'मनोवैज्ञानिक कारण' वास्तविक आर्थिक दशाओं के प्रति मनुष्यों के दिमाग के दृष्टिकोण में परिवर्तन को बताता है। परन्तु सामान्यतया दोनों प्रकार के कारण आपस में निकट रूप से सम्बन्धित होते हैं।"[9]

["जब एक वास्तविक कारण उत्पन्न होता है तो यह आर्थिक दशाओं में वास्तविक परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है; उदाहरणार्थ, अनुकूल मौसम के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि। एक मनोवैज्ञानिक कारण उस समय भी मौजूद हो सकता है जबकि वास्तविक दशाओं में कोई परिवर्तन ही न हुआ हो; जैसे एक तेजी के समय (boom) में, प्रत्येक व्यापारी, अन्य व्यापारियों की तुलना में, अपने लाभ की आशाओं को बहुत अधिक बढ़े हुए रूप में देखने की प्रवृत्ति रखता है। परन्तु सामान्यतया दोनों प्रकार के कारण निकट रूप से एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।"[10]]

2. सिद्धान्त (The Theory)

मुख्य तत्त्व (basic factors). व्यापार-चक्र मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न होते हैं; मनोवैज्ञानिक कारण उत्पन्न होते हैं, 'निर्णय की त्रुटियों' (*errors of judgement*) से; दूसरे शब्दों में, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त 'गलती या त्रुटि के कार्यकरण' (working of error) पर आधारित होते हैं; इसलिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को कभी-कभी **'त्रुटि के सिद्धान्त'** (*error theories*) भी कहा जाता है। व्यापारिक फर्में भविष्य की मांग का अन्दाज लगाने (anticipations) या उसकी भविष्यवाणी करने (forecasting) के सम्बन्ध में 'निर्णय की त्रुटियां' करती हैं। दूसरे शब्दों में, 'व्यापारिक विश्वास' या 'व्यापारिक अन्दाज' में परिवर्तनों; अथवा 'निर्णय या भविष्यवाणी की त्रुटियों' अथवा 'आशावादिता व निराशावादिता की तरंगों या लहरों' अथवा 'आशावादिता व निराशावादिता की मनोवैज्ञानिक त्रुटियों' (changes in 'business confidence' or 'business anticipations'; or 'errors of judgement or forecasting' or 'waves of optimism and pessimism' or 'psychological errors of optimism and pessimism') के कारण व्यापार-चक्र उत्पन्न होते हैं।

पीगू के अनुसार व्यापारिक-मनोविज्ञान में एक चक्रीय स्वरूप होता है और केवल यह स्वरूप ही सामान्य आर्थिक चक्र को उत्पन्न करने की क्षमता रखता है।[11]

समृद्धि तथा तेजी (Prosperity and Boom): कुछ समयों में व्यापारी आशावान (optimist) हो जाते हैं; अर्थात् प्रमुख व्यापारी (business leaders) कुछ वस्तुओं की भविष्य की माग में वृद्धि के सम्बन्ध में आशावान हो जाते हैं। व्यापारियों में सम्पर्क रहने के कारण 'आशावादिता की तरंग या लहर' समस्त अर्थव्यवस्था में फैल जाती है; वर्तमान तथा नई फर्में अपने उत्पादन को बढ़ाने लगती हैं। यहां तक कि 'आशावादिता की लहर' से बैंक भी प्रभावित होते हैं, वे फर्मों को उधार देने में उदार (liberal) हो जाते हैं, परिणामस्वरूप उत्पादन तथा व्यापारिक क्रिया में और अधिक वृद्धि

[9] "A *real cause* is a change in actual economic conditions. A *psychological cause* is a change in men's attitude of mind toward actual economic conditions." But in general they are closely connected to each other.

[10] "When a real cause emerges, it can be only because economic conditions have actually changed, as, for example, an increase in the output of agriculture because of favourable weather. A psychological cause can exist even though no change in actual conditions has occurred, as when, in a boom, each businessman is prone to exaggerate the expectations of profit likely to be obtained by himself as compared with others. Ordinarily, the two causes re closely related and interconnected."

[11] "Pigou would hold that there is a cyclical pattern in business psychology and that thi, pattern alone is capable of producin; the general economic cycle."

होती है। इस प्रकार अन्त में समृद्धि व तेजी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

संकुचन तथा मन्दी (Contraction and Depression) परन्तु समृद्धि तथा तेजी की स्थिति के पीछे भविष्य के अन्दाजो के सम्बन्ध मे 'निर्णय की त्रुटि' हो सकती है। इसके कारण है—(i) उत्पादन का लम्बा या घुमावदार तरीका (roundabout method of production); इस तरीके के अन्तर्गत एक जटिल श्रम-विभाजन होता है, उत्पादन मे कई चरण (stages) रहते हैं; कमी (shortages) के समयो मे उत्पादक वस्तुओ के उत्पादन का आज निर्णय ले सकते है, परन्तु बाजार मे वास्तव मे वस्तुओं का प्रवाह (flow of commodities) कुछ समय के बाद ही हो सकेगा, इस प्रकार से उत्पादन के निर्णय तथा वस्तुओ के बाजार मे आने के बीच एक 'समय-अन्तर' (time-lag) रहता है। इस समय-अन्तर के कारण वस्तुओं का उत्पादन, वास्तविक मांग की तुलना मे, बहुत अधिक (या excess मे) हो सकता है। (ii) स्पर्धात्मिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे, अनगिनत तथा स्वतत्र उत्पादको की उत्पादन-योजनाओ मे किसी प्रकार का कोई समन्वय (coordination) नही होता है। यदि माग बढती है तो प्रत्येक उत्पादक अपनी उत्पादन-मात्रा मे वृद्धि करता है; परिणामस्वरूप कुल उत्पादन, कुल माग की तुलना मे, बहुत अधिक हो जाता है; ऐसा होने का कारण है कि प्रत्येक उत्पादक कुल माग मे अपने 'सम्भावित हिस्से' (expected share) के सम्बन्ध मे 'निर्णय की त्रुटि' कर सकता है।

एक लम्बे समय के बाद 'निर्णय की त्रुटि' (यहा पर 'आशावादिता की त्रुटि') को महसूस किया जाता है अथवा उसकी जानकारी होती है; जैसे ही इस त्रुटि की जानकारी होती है, तो 'ऊपर का मोड बिन्दु' (upper turning point) पहुच जाता है। आशावादिता निराशावादिता को जन्म देती है। व्यापारी भविष्य की मांग के सम्बन्ध मे निराशावादी हो जाते है; प्रमुख व्यापारियो के इस निराशावादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप समस्त अर्थव्यवस्था मे 'निराशावादिता की लहर' फैल जाती है, वर्तमान उत्पादन मे सकुचन शुरू हो जाता है; नया विनियोग बन्द कर दिया जाता है। अन्त मे अर्थव्यवस्था अपने आपको 'सकुचन तथा मन्दी' की अवस्था मे पाती है।

उत्थान (Recovery) कुछ समय बाद इस बात की जानकारी होती है कि कुल उत्पादन, कुल माग की तुलना मे, कम है, इस प्रकार पुन एक 'निर्णय की त्रुटि' हो जाती है, यहां पर निर्णय की त्रुटि से अर्थ है कि 'आवश्यकता से अधिक निराशावादिता की त्रुटि' (error of undue pessimism) को पहचाना (dectect) या जाना जाता है, इस जानकारी के साथ 'नीचे का मोड़ बिन्दु' (lower turning point) आ जाता है, तथा उत्थान की प्रकिया शुरू हो जाती है, जो कि अर्थव्यवस्था को अन्त मे समृद्धि की स्थिति मे पहुचा देती है।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार 'आशावादिता की लहर' या 'आशावादिता की त्रुटि' समृद्धि को उत्पन्न करती है; और 'निराशावादिता की लहर' या 'निराशावादिता की त्रुटि' सकुचन या मन्दी को उत्पन्न करती है।

3. मूल्यांकन (Evaluation)

इसमे सन्देह नही है कि यह सिद्धान्त व्यापारिक चक्रो मे मनोवैज्ञानिक तत्वो के महत्त्व पर हमारा ध्यान केन्द्रित करता है, परन्तु इस सिद्धान्त की **मुख्य कमजोरियां** निम्नलिखित है—

(i) केवल आशावादिता तथा निराशावादिता की लहरे ही व्यापार चक्र के अन्तर्गत विस्तार व सकुचन के लिए उत्तरदायी (responsible) नही है, ये तो, अनेक कारणो मे से, केवल एक कारण को बताती है। इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त एक-पक्षीय तथा अपूर्ण (one-sided and incomplete) है।

(ii) इस सिद्धान्त के अनुसार मनोवैज्ञानिक तत्त्व व्यापार-चक्रो को उत्पन्न करते हैं; परन्तु यह धारणा गलत है; इस सिद्धान्त की यह सबसे बडी कमजोरी है। वास्तव मे मनोवैज्ञानिक तत्त्व 'मोड़ बिन्दुओ' (turning points) के बाद कार्य करते हैं; अर्थात् ये तत्त्व तब

कार्य करते है जबकि अर्थव्यवस्था ऊपर की ओर जा रही होती है या नीचे की ओर जा रही होती है, ये तत्व उच्चावचनों (fluctuations) की तीव्रता को केवल बढ़ा देते है या उनको कम कर देते है।[11]

(iii) आशावादिता तथा निराशावादिता के पीछे कौनसे तत्त्व है, इस बात पर यह सिद्धान्त उचित प्रकाश नही डालता है। केंज के अनुसार उत्पादकों का भविष्य के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पजी की सीमान्त कुशलता (marginal efficiency of capital) पर निर्भर करता है।

अल्प-उपभोग सिद्धान्त
(UNDER-CONSUMPTION THEORIES)

अथवा

अति-बचत सिद्धान्त
(OVER-SAVING THEORIES)

1. प्राक्कथन (Introduction)

वास्तव में अल्प-उपभोग सिद्धान्त केवल एक नही है, इस प्रकार के अनेक सिद्धान्त दिये गये हैं; परन्तु ये सिद्धान्त मुख्यतया 'उपभोग की अपर्याप्तता' (insufficiency of consumption) के विचार पर आधारित है। अल्प-उपभोग का अभिप्राय है अधिक बचत, इसलिए इन सिद्धान्तों को कभी-कभी 'अतिबचत सिद्धान्त' भी कहा जाता है। अल्प-उपभोग सिद्धान्तो के समूह मे कुछ सिद्धान्त (जैसे, Douglous तथा कुछ अन्य लोगो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त) इतने सरल (simple) है कि इनको 'अत्यन्त सरल सिद्धान्त' (*naive* theories) कहा जाता है, इन 'अत्यन्त सरल' सिद्धान्तो की निम्नकोटि की निर्माण-कुशलता (inferior workmanship) है और ये सिद्धान्त विश्लेषण को पर्याप्त गहराई तक नही ले जा सकते है। इसके विपरीत कुछ सिद्धान्त अधिक वैज्ञानिक तथा विचारयुक्त (scientific and thoughtful) है, जैसे, दो अमेरिकन अर्थशास्त्रियो Foster and Catchings द्वारा दिया गया सिद्धान्त, और इगलैण्ड के अर्थशास्त्री Hobson द्वारा बनाया गया सिद्धान्त।

यहा पर हम Hobson के सिद्धान्त की विवेचना करते है, इस सिद्धान्त को अधिक मान्यता दी जाती है और यह सिद्धान्त ही विख्यात है।

2. होबसन का सिद्धान्त (Hobson's Theory)

मुख्य तत्त्व (Basic Factors) इस सिद्धान्त के अनुसार **व्यापार-चक्रो के उत्पन्न होने का कारण है 'अल्प-उपभोग' या अति-बचत।** 'उपभोग की अपर्याप्तता' (insufficiency of consumption) का अर्थ है कि अर्थ व्यवस्था में कुल क्रय-शक्ति, बाजार से वस्तुओ की कुल पूर्ति को उठाने का खरीदने की दृष्टि से, कम है, इसके कारण मन्दी उत्पन्न हो जाती है। **अर्थव्यवस्था में 'उपभोग की अपर्याप्तता' होने का कारण है 'आयो की असमानता'** (inequality of incomes) **का होना,** जो कि पूजीवादी अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

होबसन इस बात को स्वीकार करते थे कि 'उपभोग न करने' का अर्थ है 'बचत'; और वे इस बात को भी मानते थे कि यदि बचतो को फौरन विनियोग-वस्तुओ पर व्यय कर दिया जाता है तो, अर्थव्यवस्था मे बचत अपने आपमे आवश्यक रूप से अव्यवस्था या संकुचन (disturbance or contraction) का कारण नही होगी। इसका अभिप्राय है कि होबसन इस मत के थे कि अर्थव्यवस्था के लिए बचतों को

---

[11] The greatest single weakness of this theory is that the psychological factors are not the initiating cause of business cycles they operate only after the turning point when the economy is on the way up or down, they simply exaggerate or modify the intensity of the fluctuation.

एक अनुकूलतम मात्रा (optimum amount) उपयोगी होती है, और बचत की ऐसी मात्रा कोई अव्यवस्था उत्पन्न नही करती है; केवल 'अधिक बचतें' (undue or excessive savings) ही अव्यवस्था तथा मन्दी को उत्पन्न करती है। दूसरे शब्दो मे,

> "उनके सिद्धान्त की जड़ या मुख्य बात यह नही है कि वह बचतो के प्रति विरोध या ऐतराज (objection) रखता है, बल्कि इसका एतराज 'अधिक बचतो' के प्रति है; अधिक बचतो का अभिप्राय है, उत्पत्ति के साधनो मे (बचतो का) ऐसा विनियोग जिससे कि उपभोग वस्तुओ की पूर्ति इतनी अधिक हो जाये जिनको कि उचित (या लाभदायक) कीमतो पर खरीदा न जा सके।"[11]

होबसन का विश्वास था कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओ में 'अधिक बचतो' का होना एक सामान्य बात (normal feature) है; ऐसी अर्थव्यवस्थाओ के अन्तर्गत बचते न केवल अधिक ही होती है, बल्कि वे अधिक होने से छुटकारा नही पा सकती हैं; ऐसी अर्थव्यवस्थाओ मे अधिक बचते बहुत स्वाभाविक तथा स्थायी (natural and chronic) होती हैं, और 'अधिक बचतें' ही मन्दी के बार-बार होने का मुख्य कारण है।

परन्तु पूजीवादी **अर्थव्यवस्थाओ मे अधिक बचतें** क्यो एक सामान्य या स्वाभाविक बात होती है? इसका कारण 'आयो के असमान वितरण' मे पाया जाता है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे, एक ओर तो थोड़े से धनवान व्यक्तियो के हाथो मे धन का केन्द्रीयकरण (concentration) रहता है; और दूसरी ओर बहुत बडी सख्या मे निर्धन व्यक्ति होते हैं जिनकी बहुत कम आय होती है। निर्धन व्यक्ति अपनी अधिकांश आय को व्यय करते है; जबकि धनी व्यक्ति अपनी आयो का एक बड़ा भाग बचाते है, उनकी आयो मे वृद्धि होने से वे और अधिक बचाते है। अतः एक विरोधात्मक (paradoxical) स्थिति रहती है—जिसमे, एक ओर तो, निर्धन व्यक्ति खरीदने व उपभोग करने के लिए बहुत इच्छुक रहते हैं, परन्तु ऐसा करने के लिए उनके पास पर्याप्त आय नही होती है, दूसरी ओर, धनवान व्यक्ति होते है जिनके पास खरीदने व व्यय करने के लिए पर्याप्त आय होती है, परन्तु वे खरीदने के इच्छुक नही होते।

विस्तार तथा समृद्धि (Expansion and Prosperity) : ऊची आय के वर्गो के लोगो की स्थिति बचत तथा विनियोग को सम्भव करती है, इसके कारण उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि होती है तथा उत्पादन और बढता है। पूजीगत वस्तुओ मे विनियोग व्यापारिक क्रियाओ को प्रोत्साहित करता है; और बैंक-साख मे वृद्धि होती है। कीमते बढती है, लाभ बढते हैं; बढे हुए लाभो तथा आयों मे से और अधिक बचत व विनियोग होते है। अन्त मे अर्थव्यवस्था समृद्धि की स्थिति मे पहुंच जाती है।

सुस्ती तथा मन्दी (Recession and Depression) : समृद्धि के समय मे कीमतें बढती हैं, परन्तु मजदूरियों की प्रवृत्ति कीमतो से पीछे (या कम) रहने की होती है, इसलिए समृद्धि काल में बढी हुई आय का अधिकाश हिस्सा विनियोगकर्ताओ तथा ऊची आय के वर्गों को प्राप्त होता है। ये धनी लोग बढी हुई आयो मे से और अधिक बचत व विनियोग करते हैं; परिणामस्वरूप उत्पादन-क्षमता मे और अधिक वृद्धि होती है। मजदूरी-प्राप्तकर्ता श्रमिको के पास पर्याप्त आय नही होती है जिससे कि वे अतिरिक्त उत्पादन को खरीद सकें, इसका कारण है कि मजदूरियों की प्रवृत्ति कीमतो से पीछे (या कम) रहने की होती है। समृद्धि के परिणामस्वरूप आय मे वृद्धि का कुछ हिस्सा नीची आय के वर्गों तथा मजदूरी-प्राप्तकर्ताओ को भी अवश्य प्राप्त होता है; परन्तु ये व्यक्ति अपनी उपभोग की आदतों मे अनुदार (conservative) होते हैं। अत ये व्यक्ति उपभोग मे तुरन्त वृद्धि करने के स्थान पर बचत करते हैं तथा बचतो के कुल प्रवाह (flow) मे वृद्धि करते हैं। परिणामस्वरूप

---

[11] "The root of his theory is not an objection to savings as such, but to undue saving—that is to say, such an investment in the means of production as to make for a supply of consumption goods greater than can be purchased at profitable prices."

अधिक विनियोग होता है; तथा बाजार में उपभोग वस्तुओं का प्रवाह (flow) अधिक तीव्र गति से आने लगता है; अर्थव्यवस्था मे ऐसी स्थिति आ जाती है जहां कि, अधिक बचतों के परिणाम-स्वरूप, बाजार में उपभोग वस्तुओ के प्रवाह को, उन कीमतो पर जो कि विनियोगकर्ताओं के लिए लाभदायक हो, खरीदने के लिए व्यय अपर्याप्त या कम रहता है। अन्त में अधिक उत्पादन (over-production) के कारण कीमतें बहुत गिर जाती हैं, लाभ कम हो जाते हैं, उत्पादन में कटौती की जाती है, रोजगार कम हो जाता है; और अर्थव्यवस्था सुस्ती तथा मन्दी की स्थिति में आ जाती है।

उत्थान (Recovery) : मन्दी के समय मे ऊंची आय वाले वर्ग अपनी बचतो को अपने पास बेकार (idle) रखते हैं और उनका विनियोग नहीं करते, क्योंकि विनियोग करना लाभदायक नहीं रह जाता है। मन्दी काल में उत्पादन तथा आय इतनी नीची गिर जाती है कि 'अधिक बचतें' समाप्त हो जाती है और उपभोग का एक उचित अनुपात स्थापित या प्राप्त हो जाता है, तब अर्थ-व्यवस्था का उत्थान शुरू हो जाता है।

अब हम इस सिद्वात के अनुसार व्यापार-चक्रों को दूर करने के उपाय पर विचार करते हैं। इस सिद्धात के अनुसार व्यापार-चक्र का मुख्य कारण है अल्प-उपभोग या अति-बचत, और अति-बचत का कारण है 'आय की असमानताओं' का होना। अतः व्यापार-चक्र को दूर करने का उपाय है धन या आय की असमानताओ को दूर करना।

3. **मूल्यांकन** (Evaluation)

इन सिद्धातो की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं :

(i) ये सिद्धांत पूरे चक्र की एक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत नहीं करते हैं। ये सिद्धान्त 'ऊपर के मोड़ बिन्दु' (अर्थात् विस्तार से संकुचन में परिवर्तन) की मुख्य रूप से व्याख्या करते हैं; ये सिद्धात (अल्प-उपभोग के शब्दों में) 'नीचे के मोड़ बिन्दु' (अर्थात् मन्दी से समृद्धि मे परिवर्तन) की एक पर्याप्त व्याख्या प्रदान नहीं करते है।

(ii) ये सिद्धांत यह मान लेते है कि धनी वर्ग के लोगो की बचतें स्वतः ही (automatically) पूंजीगत वस्तुओ के विनियोग में परिवर्तित हो जाती है, जबकि ऐसा होना जरूरी नहीं है। बचतें विनियोग में तब परिवर्तित होती हैं जबकि लाभ की अच्छी आशाएं प्रतीत होती हैं।

विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त
(PURE MONETARY THEORIES)

1. **प्राक्कथन** (Introduction)

व्यापार-चक्रों के विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त के मुख्य निर्माता इंगलैण्ड के अर्थशास्त्री आर. जी. हाट्रे (R. G. Hawtrey) है। हाट्रे के अनुसार व्यापार-चक्र एक विशुद्ध मौद्रिक बात है। व्यापार-चक्रों का मुख्य तथा पर्याप्त कारण 'द्रव्य की पूर्ति' या 'द्रव्य की पूर्ति मे परिवर्तन' है। वास्तव मे हाट्रे के अनुसार व्यापार-चक्र और कुछ नहीं हैं बल्कि 'प्रभावपूर्ण मांग' या 'सामान्य मांग' (effective demand or general demand) मे परिवर्तन हैं; परन्तु प्रभावपूर्ण मांग मे परिवर्तनों का कारण है द्रव्य की पूर्ति मे परिवर्तन, दूसरे शब्दों मे, प्रभावपूर्ण मांग एक मौद्रिक बात है, और इसलिए व्यापार-चक्र भी एक मौद्रिक बात है।

2. **हाट्रे का सिद्धान्त** (Hawtrey's Theory)

मुख्य बातें (Basic Factors). द्रव्य की पूर्ति लोचदार (elastic) होती है, अर्थात् उसका विस्तार या संकुचन किया जा सकता है। द्रव्य की पूर्ति मे विस्तार (अर्थात् द्रव्य-स्फीति, money inflation) अन्त मे समृद्धि को उत्पन्न करता है तथा द्रव्य मे संकुचन (अर्थात् मुद्रा-विस्फीति, money

deflation) अन्त में मन्दी को उत्पन्न करता है। आधुनिक काल में द्रव्य की पूर्ति का मुख्य स्रोत (source) बैंक है, अत. व्यापार-चक्रो की जड मे बैंक-साख रहती है, बैंक द्वारा साख प्रदान करने की शर्तों मे परिवर्तन प्रभावपूर्ण द्रव्य की पूर्ति मे उच्चावचनो (fluctuations) को उत्पन्न करते है और ये उच्चावचन व्यापार-चक्रो को उत्पन्न करते हैं।

विस्तार तथा समृद्धि (Expansion and Prosperity) विस्तार की अवस्था तब उत्पन्न होती है जबकि बैंकिंग व्यवस्था ब्याज की दर मे कमी करके द्रव्य की पूर्ति को बढाती है या और अधिक द्रव्य का निर्माण करती है; द्रव्य के संचालन-वेग (velocity of circulation of money) में भी वृद्धि होती है। बैंको के पास बडी मात्रा मे नगद-द्रव्य कोष (cash reserves) हो सकते हैं जिसके कारण वे ब्याज की दर को नीचा कर सकते है ताकि व्यापारियों को उधार लेने मे प्रोत्साहन मिले। थोक-विक्रेता (wholesalers) या व्यवसायी (traders) ब्याज की दर मे थोडे से परिवर्तन के प्रति भी बहुत अधिक चेतनाशील (sensitive) होते है क्योंकि वे मुख्यतया उधार लिये गये द्रव्य की सहायता से ही बडी मात्रा मे वस्तुओ के स्टाक रख पाते है। ब्याज की दर मे कमी थोक-विक्रेताओ को और अधिक द्रव्य लेने को प्रोत्साहित करती है और वे अपने स्टाको या इनवेन्ट्रियो (inventories) मे वृद्धि करते हैं। अत उत्पादक या निर्माणकर्ता (manufacturers) अधिक उत्पादन के साधनों को रोजगार देकर अपने उत्पादन को बढाते है, इस प्रकार रोजगार तथा द्राव्यिक आयों मे वृद्धि होती है। बढी हुई आयो मे से अधिकाश भाग थोक-विक्रेताओ तथा व्यवसायियो से वस्तुओ के खरीदने मे व्यय किया जाता है। थोक विक्रेताओ के पास स्टाको मे कमी होती है, इसलिए वे उत्पादको या निर्माणकर्ताओ को वस्तुओ के लिए और आर्डर देते है, परिणामस्वरूप उत्पादन और बढता है, रोजगार मे वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप साधनो या उपभोक्ताओ की आयो मे और अधिक वृद्धि होती है। आय तथा मांग मे वृद्धि के कारण वस्तुओ की कीमतें बढती है, लाभ बढते हैं, तथा उत्पादक अपने उत्पादन मे और अधिक वृद्धि करते हैं, रोजगार तथा आयो मे और वृद्धि होती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था समृद्धि तथा तेजी की स्थिति मे पहुच जाती है (इसकी जड मे बैंक-साख मे विस्तार है जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है)।

संकुचन तथा मन्दी (Contraction and Depression) समृद्धि तथा तेजीकाल मे बढी हुई व्यापारिक क्रियाओ के कारण बैंको के पास नगद-द्रव्य कोष (cash reserves) बहुत नीचे स्तर पर आ जाते है, परिणामस्वरूप बैंक और अधिक ऋण देने के लिए इनकार कर देती है अथवा ऋण देने मे बहुत कमी कर देती है, तथा बैंक अल्पकालीन या याचना-ऋणो (short-term and call-loans) को वापस लेना शुरू कर देती है, बैंक ब्याज की दर को बढा देती है ताकि नये ऋणो की मांग कम हो जाये। थोक-विक्रेता तथा व्यवसायी ब्याज की दर मे परिवर्तन के प्रति बहुत चेतनाशील (sensitive) होते है। ब्याज की बढी हुई दर के कारण वे अपने स्टाको को रखने मे या रोकने मे बहुत कठिनाई महसूस करने लगते है, वे घबडाहट (nervousness) मे, जो भी कीमतें प्राप्त हो सकती है उन पर अपनी वस्तुओ को बेचना शुरू कर देते है; उनकी इनवेन्ट्रिया या स्टाक घटने लगते है, वे उत्पादकों को नये आर्डर देना बन्द कर देते है, परिणामस्वरूप उत्पादक अपने उत्पादन मे कमी करते है, रोजगार घटता है, उत्पत्ति के साधनो तथा उपभोक्ताओ की आयो मे कमी होती है। परिणामस्वरूप उपभोक्ताओ की माग मे बहुत गिरावट आ जाती है, इससे वस्तुओ की कीमतो मे कमी होती है, उत्पादको के लाभ घटते है, कुछ फर्में फेल (fail) हो जाती हैं, चारो तरफ घबडाहट फैल जाती है, उत्पादन व रोजगार मे और कमी हो जाती है तथा माग और अधिक घट जाती है। अर्थव्यवस्था के नीचे की ओर जाने की प्रवृत्ति सचयी (cumulative) हो जाती है तथा अर्थव्यवस्था अन्त मे अपने को मन्दी की स्थिति मे पाती है। इस प्रकार बैंक साख मे संकुचन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था मे संकुचन तथा मन्दी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

उत्थान (Recovery) : अर्थव्यवस्था मे कुछ समय तक मन्दी की स्थिति रहने के बाद, उत्थान

की दशाएं उत्पन्न हो जाती है। मन्दी के काल मे बैंकों के पास नगद-द्रव्य कोष बहुत इकट्ठे हो जाते हैं; व्याज की दर नीची हो जाती है, नीची व्याज दर के कारण थोक-विक्रेताओ, व्यवसायियो तथा उत्पादकों को उधार लेने मे प्रोत्साहन मिलता है, उत्पादन, रोजगार तथा आय में वृद्धि होनी शुरू हो जाती है, और अर्थव्यवस्था उत्थान की स्थिति मे आ जाती है। इस प्रकार व्याज की दर मे कमी उत्थान के शुरू करने का कारण हो जाती है।

3. मूल्यांकन (Evaluation)

सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं -

(i) यह सिद्धान्त मौद्रिक तत्त्वो पर अत्यधिक जोर देता है, परन्तु अमौद्रिक तत्त्व (non-monetary factors) भी महत्त्वपूर्ण होते है जिनकी यह सिद्धान्त उपेक्षा (ignore) करता है; इस प्रकार यह सिद्धान्त एकपक्षीय तथा अपूर्ण है।

(ii) हाट्रे थोक-विक्रेताओ (या व्यवसायियो) की भूमिका (part or role) पर आवश्यकता से अधिक जोर (over-emphasis) देते हैं। उन्होने व्याज-दर में परिवर्तनों के प्रति थोक-विक्रेताओ की चेतनाशीलता की मात्रा (degree of sensitivity) को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया। यह सम्भव है कि वे उधार ली गयी पूजी की अपेक्षा, अपनी पूजी की सहायता से भी अपने पास वस्तुओ के स्टाक का एक बड़ा हिस्सा रख सकते हैं। ऐसी स्थितियो मे व्याज की दर मे परिवर्तन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया (response) जल्दी नही होगी। पुन, स्टाको के निर्णयो के सम्बन्ध मे अमौद्रिक तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण होते हैं, उनकी उपेक्षा करना सम्भव नही है। यह सन्देहात्मक है कि केवल नीची ब्याज की दर उत्थान की संचयी प्रक्रिया (cumulative process of recovery) को उत्पन्न करने का कारण होगी, जैसा कि हाट्रे सोचते थे।

(iii) केवल बैंक-साख को ही व्यापार-चक्रो का कारण नही माना जा सकता है—(क) यह कहना बहुत कठिन है कि केवल बैंक-साख मे विस्तार (और इसलिए ब्याज की दर मे कमी) मन्दी को दूर करने का उपाय है; 1930 की महान मन्दी में द्रव्य की पूर्ति मे वृद्धि उत्थान को उत्पन्न करने मे असफल रही है। (ख) इसी प्रकार यह कहना बहुत कठिन है कि केवल बैंक-साख मे सकुचन (और इसलिए ब्याज की दर में वृद्धि) संकुचन तथा मन्दी को उत्पन्न करेगी। व्यापारी ऊची ब्याज की दर पर भी द्रव्य उधार ले सकते हैं, यदि वे पूजी पर प्रत्याशित लाभ की दर (अर्थात् पूजी की सीमान्त कुशलता या marginal efficiency of capital) को ऊंचा समझते है। (ग) वास्तव मे बैंक-साख व्यापार-चक्रो को शुरू करने का कारण (initiating cause) नही है; यह तो केवल विस्तार या सकुचन की सचयी प्रक्रिया को बढा देती है।

उपर्युक्त आलोचनाओ तथा कमजोरियो के होते पर भी, हाट्रे की यह देन है कि उन्होने विस्तार व संकुचन की सचयी-प्रक्रिया मे बैंक-साख के महत्त्व पर हमारा ध्यान केन्द्रित किया।

मौद्रिक अति-विनियोग सिद्धान्त
(MONETARY OVER-INVESTMENT THEORIES)

1. प्राक्कथन (Introduction)

अनेक अर्थशास्त्रियो ने 'मौद्रिक अति-विनियोग सिद्धान्त' को (जिसे कभी-कभी 'पूजी की कमी सिद्धान्त' या 'Shortage of Capital Theory' भी कहा जाता है) प्रतिपादित किया है। परन्तु मौद्रिक अति-विनियोग विचारधारा (school) के सबसे विख्यात समर्थक व प्रतिपादक प्रो एफ. ए. हायेक (F. A. Hayek) हैं। (प्रो हायेक आस्ट्रिया के अर्थशास्त्री थे जो कि बाद मे इंगलैण्ड आकर रहने लग गये थे।) यहा पर हम प्रो हायेक के सिद्धान्त की विवेचना करेंगे।

प्रो. हायेक का सिद्धांत एक मौद्रिक सिद्धांत है क्योंकि यह बैंक-साख की लोच को शामिल करता है, अर्थात् इस बात पर ध्यान देता है कि बैंको द्वारा द्रव्य का विस्तार या संकुचन किया जाता है; परन्तु यह सिद्धांत इस बात से कुछ आगे जाता है और यह इस दृष्टि से मौद्रिक सिद्धान्त से अधिक (more than a monetary theory) है कि **यह द्रव्य की पूर्ति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'उत्पादन के ढांचे में परिवर्तन'** (change in the structure of production) **पर भी ध्यान** देता है।

'उत्पादन का ढांचा' उत्पादन के दो सामान्य क्षेत्रो (two general sectors) को शामिल करता है: (i) पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन (capital goods production)[14] तथा (ii) उपभोग वस्तुओं का उत्पादन। अब यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि व्यापार-चक्र के कार्यकाल में पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों में अधिक उच्चावचन (fluctuations) होते है अपेक्षाकृत उपभोग वस्तुओ के उद्योगों के। **इन दो प्रकार के उद्योगों के विस्तार व संकुचन की सापेक्षिक दरों में अन्तर व्यापार-चक्र को उत्पन्न करते हैं, परन्तु इन अन्तरों या असमानताओं** (differences or disparities) **को बैंकिंग व्यवस्था उत्पन्न करती है; अर्थात् उत्पादन के ढांचे में ये बिगाड़** (distortions) **बैंक-साख की लोचपूर्ण पूर्ति** *(elastic supply of bank-credit)* **द्वारा उत्पन्न होते हैं।**

अति-विनियोग (over-investment) **का अर्थ** है कि पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों में विनियोग अधिक है प्राप्य बचतो की तुलना में; तथा **कम-विनियोग** (under-investment) **का अर्थ** है कि प्राप्य बचतों की तुलना में विनियोग कम है। विस्तार या समृद्धि (expansion or prosperity) **का समय अति-विनियोग का समय होता है; इसी प्रकार संकुचन या मन्दी** (contraction or depression) **का समय कम-विनियोग का समय होता है।**

2. हायेक का सिद्धान्त (Hayek's Theory)

मुख्य तत्त्व तथा विचार (Basic Factors and Concepts): दो मुख्य तत्त्व हैं जो कि मिल कर व्यापार-चक्रो के 'मौद्रिक अति-विनियोग व्याख्या' की आधारभूत दशाओं (basic conditions for the monetary over-investment explanation) को प्रदान करते हैं; और वे तत्त्व हैं—(i) बैंक साख की लोच तथा ब्याज की दर पर उसका प्रभाव; और (ii) 'अनैच्छिक बचतों' या 'जबर्दस्ती बचतों' (involuntary savings or forced savings) का विचार।

विश्लेषण तथा विवेचन को आगे बढ़ाने से पहले हमे 'ब्याज की स्वाभाविक दर' (natural rate of interest), 'बाजार की ब्याज दर' (market rate of interest), तथा 'जबर्दस्ती बचतों' के विचारों के अर्थों को समझ लेना चाहिए।

ब्याज की स्वाभाविक दर वह है जिस पर कि 'ऐच्छिक बचतो की पूर्ति' बराबर है 'विनियोग के लिए उनकी माग' के।[15] ब्याज की स्वाभाविक दर को 'ब्याज की सतुलन दर' (equilibrium rate of interest) भी कहा जाता है। **ब्याज की बाजार दर** निर्धारित होती है विनियोग के लिए द्रव्य-कोषो (money loans) की माग तथा बाजार मे द्रव्य-कोषो की प्राप्य पूर्ति द्वारा।[16] **ब्याज की बाजार दर कम हो सकती है ब्याज की स्वाभाविक दर से;** इसका अर्थ है कि बाजार में यदि विनियोग के लिए द्रव्य-कोषो (money-loans) की माग दी हुई है, तो द्रव्य-कोषो की पूर्ति (जो कि 'ऐच्छिक बचतो + बैंक द्वारा निर्मित द्रव्य' को शामिल करती है) अधिक है उनकी माग की तुलना में। **ब्याज की बाजार दर अधिक हो सकती है ब्याज की स्वाभाविक दर से;** इसका अभिप्राय है कि विनियोग के

---

[14] Capital goods mean buildings, machinery and other instruments of production.

[15] Natural rate of interest is that rate at which the supply of voluntary savings equals the demand of this fund of savings for investment.

[16] Market rate of interest is determined by the demand of money loans for investment and the supply of money loans available in the market.

लिए मांग अधिक है वास्तविक (actual) बचतो से। जब 'ब्याज की बाजार दर' तथा 'ब्याज की स्वाभाविक दर' बराबर होती हैं तो अर्थव्यवस्था संतुलन की स्थिति में होती है और कोई कठिनाई या अव्यवस्था (trouble) नहीं होती है। दोनों ब्याज की दरो में अन्तर का होना व्यापार-चक्रो को उत्पन्न करने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

जबर्दस्ती बचतें तथा उत्पादन ढांचे में बिगाड़ (*Forced savings* and the distortion of production structure): ऐच्छिक बचतो का अर्थ द्रव्य की उस मात्रा से है जो कि उपभोक्ता अपनी आय में से अपनी इच्छा से उपभोग पर व्यय नही करते है। द्रव्य की स्थिर पूर्ति वाली अर्थव्यवस्था मे पूंजीगत वस्तुओं मे विनियोग के लिए जो फण्ड प्राप्य हो सकेंगे वे केवल वास्तविक ऐच्छिक बचतो के बराबर ही होंगे; दूसरे शब्दो मे, ऐसी अर्थव्यवस्था मे पूंजीगत वस्तुओ मे विनियोग की मात्रा वास्तविक ऐच्छिक बचतों की पूर्ति द्वारा सीमित होगी; अथवा यह कहिए कि जितनी ऐच्छिक बचतों की पूर्ति प्राप्य है उससे अधिक पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन संभव न हो सकेगा और न किया जायेगा।

ऐसी अर्थव्यवस्था में जिसमें कि बैंक-साख के माध्यम से द्रव्य की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है, उसमें 'ऐच्छिक बचत' तथा 'विनियोग' मे ऊपर बताया गया सम्बन्ध गड़बड़ (disturb) हो जायेगा। "साख के निर्माण द्वारा तथा ब्याज की दर मे कमी करने से व्यापारी उधार लेने तथा पूंजीगत वस्तुओं में विनियोग करने के लिए प्रोत्साहित होंगे और वे समाज मे बचतो की वास्तविक मात्रा से अधिक सीमा तक पूंजीगत वस्तुओं मे विनियोग कर सकेंगे। संक्षेप मे, बैंक-साख के विस्तार के जरिये जो अधिक द्रव्य की पूर्ति प्राप्य होती है उसको, उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे लगे हुए साधनो को (ऊंची कीमत देकर) हटाकर, पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे लगाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।" इस प्रकार पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन (अर्थात् विनियोग) अधिक होगा उस उत्पादन से जो कि केवल वास्तविक बचतों द्वारा संभव था। इस प्रकार उत्पादन के ढांचे में बिगाड़ (distortion) होता है।[17] पूर्ण रोजगार वाली अर्थव्यवस्था मे पूंजीगत वस्तुओं का अधिक उत्पादन केवल उपभोग-वस्तुओं के उत्पादन मे कमी करके ही प्राप्त किया जा सकता है; ऐसी स्थिति में उपभोक्ता को अपने उपभोग को कम करने पर जबर्दस्ती मजबूर (forced) होना पड़ेगा; अर्थात् 'जबर्दस्ती बचतें (forced savings) करनी पड़ेगी।[18]

उपर्युक्त समस्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि उपभोग वस्तुओं के उत्पादन से पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन मे परिवर्तन (shift) के लिए, अति-विनियोग का सिद्धांत ब्याज के दर के महत्त्व (role) पर जोर देता है; अर्थात् 'जबर्दस्ती बचत' के निर्माण में ब्याज की दर को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।[19]

---

17 "Through the creation of credit and the rate of interest, businessmen will be encouraged to borrow and invest in capital goods production to an extent greater than the actual amount of savings in the community. In short, the excessive money supply caused by the expansion of credit will be used to bid resources away from consumption goods production." Thus, the production of capital goods (that is, investment) will be greater than what was possible by the actual voluntary savings of the community. Thus, a distortion in the structure of production arises.

18 दूसरे शब्दों में, उपभोग में जबर्दस्ती कमी करने के परिणामस्वरूप पूंजीगत वस्तुओ का जो अतिरिक्त उत्पादन किया जाता है, उसे हायेक ने 'जबर्दस्ती बचतें' कहा।
"According to the over-investment theory, forced savings is actually not an amount of money.. forced savings is in the form of capital goods Since capital goods, buildings, machinery and equipment are not immediately consumed, they are considered as a form of savings. Thus, the increased production of capital goods brought about by the rise of credit and made possible by the forced reduction of consumption is labled as forced savings."

19 "The over-investment theory stresses the role of interest rates in bringing about the shift from consumer goods to capital goods production," that is, in bringing about forced savings.

विस्तार तथा समृद्धि (Expansion and Prosperity): एक अर्थव्यवस्था सतुलन मे होगी जबकि ब्याज की बाजार दर तथा ब्याज की स्वाभाविक दर बराबर है या संतुलन मे है; इन ब्याज की दरो मे असतुलन (disequilibrium) व्यापार-चक्र का कारण है। हायेक के सिद्धान्त के अनुसार अब हम 'विस्तार व समृद्धि' की अवस्था का विवेचन करते है।

यदि ब्याज की बाजार दर कम है ब्याज की स्वाभाविक दर से, तो व्यापारियो के लिए यह लाभदायक होगा कि वे बैंक से द्रव्य उधार ले और उसे पूजीगत वस्तुओ (जैसे, मशीन, यन्त्र, बिल्डिग तथा टिकाऊ उपभोग वस्तुओ) मे विनियोग करें। विनियोग मे यह वृद्धि उत्कर्ष (upswing) की शुरू की अवस्था को उत्पन्न करती है। जब व्यक्ति अपनी इच्छा से (voluntarily) बचत करते हैं तो वे अपने उपभोग मे कमी या उसमे सकुचन करते है, जब ऐच्छिक बचतो का विनियोग किया जाता है तो कोई कठिनाई या अव्यवस्था (trouble) उत्पन्न नही होती है। परन्तु जब बैंक, साख (credit) का विस्तार करके, विनियोग के लिए द्रव्य की पूर्ति प्रदान करती है, तो परिणाम भिन्न होते है। "विनियोग मे विस्तार होगा बिना उपभोग मे सकुचन या कमी के; और टिकाऊ वस्तुओ के उद्योगो का विकास होगा बिना उपभोग वस्तुओ के उद्योगो मे सकुचन हुए। ये दोनों बातें मिलकर—अर्थात् विनियोग मे वृद्धि तथा उपभोग का लगातार स्तर (sustained level of consumption) मिलकर—संपूर्ण अर्थव्यवस्था मे विस्तार कर देती है। अर्थव्यवस्था की यह उत्सर्ग अवस्था (upswing phase) है जिसमे रोजगार मे वृद्धि होती है मालो (materials) तथा सभी साधनो के लिए प्रतियोगिता बढती है, और कीमतो व लागतो की सामान्य प्रवृत्ति बढने की होती है। इस उत्सर्ग अवस्था मे उत्पादन का ढाचा अधिक घुमावदार (roundabout) हो जाता है—अर्थात् अधिक पूजी का प्रयोग होने लगता है।"[20]

पूर्ण रोजगार की स्थिति के बाद 'उत्पादन ढाचे मे बिगाड़ की और अधिक मात्रा' (a higher degree of distortion in the production structure) उत्पन्न हो जाती है। बैंक द्रव्य की पूर्ति को बैंक-साख द्वारा बढाना जारी रखते हैं, पूजीगत वस्तुओ तथा टिकाऊ-उपभोग वस्तुओं मे और अधिक विनियोग किये जाते है; बैंक-साख मे विस्तार के परिणामस्वरूप अति-विनियोग (over-investment) हो जाता है, अर्थात् वास्तविक बचतो से अधिक विनियोग हो जाता है। पूजीगत वस्तुओ की कीमतें ऊची हो जाती है; और इसलिए पूजीगत वस्तुओ के उद्योग उत्पत्ति के साधनो को ऊची कीमतें देने की स्थिति मे हो जाते हैं; चूकि पूर्ण रोजगार की स्थिति पहले ही पहुंच चुकी है इसलिए पूजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे साधनो को ऊची कीमतो के मिलने के कारण उपभोग वस्तुओ के उद्योगो से पूजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे उत्पत्ति के साधनो का हस्तातरण या प्रवाह (transference or flow) शुरू हो जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि उपभोग वस्तुओ का उत्पादन कम होगा और उनकी कमी के परिणामस्वरूप उनकी कीमतें बढ़ जायेंगी; इसका अर्थ है कि उपभोक्ताओं को अपने उपभोग को जबर्दस्ती कम करना पडेगा, अर्थात् 'जबर्दस्ती बचतें' होगी और उत्पादन का ढाचा बहुत बिगड जायेगा।

परन्तु उपभोग मे कमी की स्थिति बहुत समय तक नही रह पायेगी क्योकि उपभोक्ता अपनी इच्छा से उपभोग मे कमी नही करना चाहते हैं, उनको तो उपर्युक्त परिस्थितियो के कारण ही

---

[20] "There will be an expansion of investment without a contraction of consumption; and there will be an expansion of durable goods industries without a contraction of the consumer goods industries These two together—the increase in investment and the sustained level of consumption—add up to a total expansion for the economy. This is the upswing phase of the economy with increasing employment, increasing competition for materials and all the factors of production, and a general tendency for prices and costs to bid up. During this upswing phase, the structure of production becomes more roundabout—more capital using."

अपने उपभोग में जबर्दस्ती कमी करनी पड़ती है। यदि उनके आय के स्तर आज्ञा देते है तो वे निश्चित रूप से अपने उपभोग के पुराने स्तर पर वापस आ जायेंगे। कुछ समय बाद उत्पत्ति के साधनों की आय निश्चित रूप से बढ़ेगी क्योंकि उनको बढ़ते हुए पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगों मे रोजगार मिल जाता है। इसके परिणामस्वरूप साधनो या उपभोक्ताओ को जो अतिरिक्त आय प्राप्त होती है उसको वे उपभोग वस्तुओ पर व्यय करते हैं तथा अपने उपभोग के पुराने या पहले स्तर पर आने का प्रयत्न करते हैं; इसके कारण उपभोग वस्तुओं की कीमतो मे एक तेज वृद्धि (sharp rise) आ जायेगी। अर्थव्यवस्था तेजी (boom) की स्थिति मे पहुच जायेगी तथा वह अपने आपको 'स्फीति के प्रगतिशील उत्थान' (spiral of inflation) में पायेगी।

संकुचन तथा मन्दी (Contraction and Depression): समृद्धि काल के अतिम चरण मे उपभोग वस्तुओ की कीमतें ऊची हो जाती हैं तथा उपभोग वस्तुओ के उद्योगो में अधिक लाभ प्राप्त होने लगते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादक पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे कमी करने लगते हैं और उनके स्थान पर उपभोग वस्तुओ का उत्पादन बढ़ाने लगते है। परन्तु बैंको के पास द्रव्य की कमी हो जाती है, ब्याज की दरें ऊंची हो जाती हैं, और विनियोग निरुत्साहित (discourage) होता है। इस प्रकार से पूजीगत वस्तुओं के उद्योगो के लिए 'पूंजी की कमी' हो जाती है; इसलिए इस सिद्धान्त को कभी-कभी 'पूजी की कमी का सिद्धान्त' (*shortage of capital theory*) भी कहा जाता है।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, समृद्धि काल के अन्तिम चरण में उपभोग वस्तुओं की कीमतें ऊंची होती हैं व उपभोग वस्तुओ के उद्योगो को अधिक लाभ प्राप्त होता है; परिणामस्वरूप उत्पादक उपभोग वस्तुओ के उत्पादन को बढ़ाते हैं। दूसरे शब्दो में, उत्पत्ति के साधन पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगो को छोड़कर उपभोग वस्तुओ के उद्योगो में जाने लगते हैं क्योंकि ये उद्योग उत्पत्ति के साधनो को ऊंची कीमत दे सकते हैं। बढ़ती हुई लागतो तथा ब्याज की ऊंची दरों के परिणामस्वरूप पूंजीगत वस्तुओं के कुछ उत्पादको को नुकसान होता है और वे उत्पादन बन्द कर देते हैं। परिणामस्वरूप पूजीगत वस्तुओं के उद्योगो से उपभोग वस्तुओ के उद्योगो की ओर उत्पत्ति के साधनों के जाने का प्रवाह (flow) और अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार उत्पादन का ढांचा पलटने (या reverse होने) लगता है, अर्थात् उत्पादन का ढाचा अपनी पुरानी या शुरू की स्थिति की ओर वापस जाने लगता है (जो कि बैंक-साख के विस्तार तथा जबर्दस्ती बचतों के कारण बिगड़ गया था)।

पूजीगत वस्तुओ के उद्योगो से हटे हुए उत्पत्ति के साधनो को उपभोग वस्तुओ के उद्योग अपने में खपत (absorb) करने मे कुछ समय लेते हैं, समायोजन की कुछ कठिनाइयां होती हैं और खपत की प्रक्रिया (process) धीमी होती है। दूसरे शब्दो में, उत्पत्ति के साधन जिस तेज दर से पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगो से हटते (या release होते) है उस दर से उपभोग वस्तुओ के उद्योग उनको अपने में खपा (या absorb कर) नही पाते है, परिणामस्वरूप बेरोजगारी की मात्रा बढ़ जाती है। बैंक साख में कमी और परिणामस्वरूप विनियोग में कमी [तथा व्यापारियो व उपभोक्ताओ दोनों वर्गों के द्वारा द्रव्य को सचय (hoard) करने की प्रवृत्ति के कारण द्रव्य की संचालन दर (velocity of circulation of money) में कमी] के कारण मूल्य-स्तर में गिरावट आ जाती है; पूजीगत वस्तुओं की कीमतो में, उपभोग वस्तुओं की कीमतों की तुलना मे, अधिक गिरावट आ जाती है। बेरोजगारी, बैंक-साख मे कमी, तथा गिरती हुई कीमतें अन्त मे अर्थव्यवस्था को मन्दी की अवस्था में पहुंचा देती है।

उत्थान (Recovery): कुछ समय तक जब मन्दी बनी रहती है, तो बैंको के पास नकद-द्रव्य-कोषों का सचय (accumulation of cash-reserves) होने लगता है; परन्तु उधार लेने वाले ब्याज की वर्तमान दरों पर उधार लेने को अनिच्छुक (unwilling) रहते हैं। अन्त में बैंकों को ब्याज की

दर को कम करना पड़ता है; ब्याज की बाजार दर ब्याज की स्वाभाविक दर से कम हो जाती है; ऐसी स्थिति मे उत्पादकों को उधार लेना तथा विनियोग करना लाभदायक हो जाता है। इस प्रकार उत्थान तथा विस्तार की प्रक्रिया शुरु हो जाती है।

3. मूल्यांकन (Evaluation)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित है·

(i) यह सिद्धान्त व्यापार-चक्रो की एक पूर्ण व्याख्या (explanation) प्रदान नहीं करता है क्योंकि यह सिद्धान्त केवल कुछ पक्षो पर ही जोर देता है, जैसे, लोचपूर्ण बैंक-साख तथा जबर्दस्ती बचते, तथा उत्पादन ढाचे मे विगाड़।

(ii) इस सिद्धान्त का विश्लेषण पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है, जबकि इस प्रकार की मान्यता वास्तविक नही है। यह अधिक वास्तविक बात होगी यदि 'पूर्ण रोजगार से कम' की स्थिति को मानकर चला जाये। ऐसी दशा मे बैंक-साख के विस्तार के प्रभाव भिन्न होंगे अपेक्षाकृत उन प्रभावो के जो कि सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता के आधार को मानकर प्रस्तुत करता है। पूर्ण रोजगार की मान्यता के कारण इस सिद्धान्त की व्यावहारिक उपयोगिता बहुत सीमित हो जाती है।

उपर्युक्त आलोचना के अभिप्राय इस प्रकार हैं यह आवश्यक नहीं है कि बैंकों द्वारा साख निर्माण सदैव कीमतो मे स्फीति-वृद्धि (inflationary rise) को उत्पन्न करे। कुछ दशाओं मे बैंक-साख मे वृद्धि अर्थव्यवस्था के वास्तविक विकास के लिए आवश्यक हो सकती है। "विकासशील अर्थव्यवस्था मे, विकास के वास्तविक तत्व—जनसख्या मे वृद्धि, तकनीकी प्रगति, पूजी-सचय, इत्यादि—उत्पादन के स्तर मे लगातार वृद्धि कर सकते है। ऐसी परिस्थितियो मे, साख मे विस्तार आवश्यक रूप से कीमतो मे वृद्धि नही करेगा।"[21]

(iii) यदि पूर्ण रोजगार की मान्यता को स्वीकार कर लिया जाये, तो भी यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से उचित (logically sound) *नही बताया जाता है। कुछ आलोचको द्वारा बताया गया* है कि व्यापार-चक्रो को उत्पन्न करने मे 'जबर्दस्ती बचतो' का स्थान महत्त्वपूर्ण नही है, वास्तव मे 'जबर्दस्ती बचतो की असमान दर' (*uneven* rate of forced savings) व्यापार-चक्रों को उत्पन्न करने में अधिक महत्वपूर्ण है। "जबर्दस्ती बचतें महत्त्वपूर्ण नही होती बल्कि जबर्दस्ती बचतों मे अनियमितता, जो कि बैंक-साख मे उच्चावचनो से उत्पन्न होती है, मुख्य या बुनियादी तत्त्व है जो कि व्यावसायिक क्रिया मे उतार-चढाव लाती है।"[22]

शुम्पीटर का नवप्रवर्तन का सिद्धान्त
(INNOVATION THEORY OF SCHUMPETER)

1. प्राक्कथन (Introduction)

विख्यात अमरीकी अर्थशास्त्री शुम्पीटर ने व्यापार-चक्रो की व्याख्या के लिए एक सिद्धान्त का निर्माण किया जो कि *'व्यापार-चक्र का नवप्रवर्तन सिद्धान्त' (Innovation Theory of* Business Cycles) के नाम से जाना जाता है।

शुम्पीटर के अनुसार व्यापार-चक्र पूजीवादी अर्थव्यव था का एक मुख्य अंग है; व्यापार-चक्र

---

[21] "In a progressive economy, the dynamic factors of growth—population increase, technological progress, capital accumulation, etc —lead to a continuing rise in the level of output Under these circumstances, an expansion of credit will not necessarily result in price rise"

[22] "It is not forced savings as such, but its irregularity derived from fluctuations in the volume of banking credit, which is a basic factor in the ups and downs of business activity."

ऐसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की प्रक्रिया (process) का अन्तःकरण (heart) है। उनके सिद्धान्त के अनुसार व्यापार-चक्र एक साधन है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था एक स्थैतिक साम्य की स्थिति से दूसरी साम्य की स्थिति मे पहुचती है, जबकि दूसरी स्थिति मे प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा जीवन स्तर ऊंचे हो जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे प्रगति, चक्रीय चलन के बार-बार होने वाले समृद्धि कालो का रूप धारण करती है।[23]

2. शुम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धान्त (Schumpeter's Innovation Theory)

मुख्य तत्त्व (Basic Factors). शुम्पीटर के अनुसार व्यापार-चक्रो को शुरू करने के कारण 'नवप्रवर्तन' हैं, साहसी नवप्रवर्तनो को प्रस्तुत (introduce) करता है; शुम्पीटर साहसियो को नवप्रवर्तनकर्ता (innovators) कहते हैं। अत शुम्पीटर के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त मे मुख्य तत्त्व हैं—(i) साहसी तथा (ii) नवप्रवर्तन। नीचे नवप्रवर्तन के विचार की विस्तृत विवेचना करते हैं।

शुम्पीटर ने नवप्रवर्तन को एक विस्तृत अर्थ प्रदान किया। उनके अनुसार नवप्रवर्तन के अन्तर्गत निम्नलिखित मे से कोई भी एक या एक से अधिक बात शामिल हो सकती हैं—(i) उत्पादन तथा यातायात के तरीको मे परिवर्तन, (ii) औद्योगिक सगठन तथा प्रबध के तरीकों मे परिवर्तन; (औद्योगिक संगठन मे परिवर्तन के अन्तर्गत फर्मों के आपस मे मिल जाने अर्थात् merger की बात भी आ सकती है); (iii) किसी नई वस्तु का उत्पादन; (iv) नये बाजारो की प्राप्यता या उनकी खोज (opening); (v) कच्चे माल के नये स्रोतो (sources of raw materials) की खोज।

परन्तु 'नवप्रवर्तन' तथा 'आविष्कार' (inventions) मे अन्तर है। "नवप्रवर्तन आविष्कार नही होते हैं; नवप्रवर्तन का यह अर्थ नही है कि आविष्कार एक चक्रीय तरीके से होते हैं। शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन नई तकनीको, नये कच्चे मालो या व्यापार करने के बुनियादी नये तरीकों का केवल व्यावसायिक या वाणिज्य प्रयोग है।"[24]

नवप्रवर्तन के अन्तर्गत जो परिवर्तन आते हैं वे इस दृष्टि से बड़े आकार के होते हैं कि वे अर्थ-व्यवस्था को एक महत्त्वपूर्ण तरीके से अव्यवस्थित (disturb) करते हैं जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था को स्पष्ट रूप से समायोजन की एक प्रक्रिया (process of adjustment) के लिए बाध्य होना पड़ता है।[25]

नवप्रवर्तन के सम्बन्ध मे एक और महत्वपूर्ण बात है: नवप्रवर्तन के उत्पन्न होने में 'असतति या अलगाव की विशेषता' ('*characteristic of discontinuity*' in the appearance of innovations)। "असतति (discontinuity) का अर्थ है कि नवप्रवर्तन झुण्डों मे आने की प्रवृत्ति रखते हैं, वे बड़े समूहो (large clusters) मे आते हैं, वे समय अवधि में एकसमान रूप से वितरित नही होते हैं। यदि नवप्रवर्तन समय अवधि मे एकसमान रूप से वितरित होते तो, शुम्पीटर के अनुसार, बार-बार होने वाली तेजी और मन्दी उत्पन्न नही होती।"[26]

---

[23] According to Schumpeter, business cycle is an indispensable part of the capitalist system; it lies at the very heart of the process of economic development. According to his theory, "the business cycle is the means by which the economy moves from one position of static equilibrium to a second in which per capita output and living standards are higher." In other words, "the progress in a capitalist society takes the form of the recurring periods of prosperity of the cyclical movement"

[24] "But the innovations are not inventions—there is no implication that inventions are made in cyclical fashion. His innovations are simply the commercial application of new techniques, new materials or perhaps basic new methods of doing business."

[25] The changes included under the term 'innovation' are of large magnitude in the sense that they will disrupt the existing system and enforce a distinct process of adaptation or adjustment in the economy.

[26] "By discontinuity is meant the tendency of innovations to assume 'swarm-like' proportions, to appear in large clusters, instead of being evenly distributed through time....if

नवप्रवर्तन झुण्डों या समूहों में आते हैं तथा वे प्रकट होने मे धीमे (slow in forthcoming) होते हैं; ऐसा कुछ कठिनाइयो के कारण होता है; ये कठिनाइया निम्नलिखित हैं—(i) सामान्यतया समाज में कोई भी चीज जो नई दिखायी देती है उसके प्रति वह विरोध की प्रवृत्ति दिखाता है। (ii) किसी पूर्णतया नई वस्तु के विकास के लिए पर्याप्त धन या वित्त को प्राप्त करने की कठिनाई होती है; श्रमिकों को प्रशिक्षित (train) करने की समस्या; नये कच्चे मालों के स्रोतों को प्राप्त करने की समस्या; इत्यादि; (iii) एक पूर्णतया नई वस्तु को खरीदने के लिए क्रेताओं (buyers) को राजी करने की समस्या; (iv) ऐसे व्यापारी या साहसी बहुत कम होते हैं जिनमे यह गुण होता है कि वे परम्परागत वस्तुओ (traditional things) से बिलकुल नाता तोडकर कोई पूर्णतया नई चीज प्रस्तुत कर सकें।

इन सब कठिनाइयो के परिणामस्वरूप नवप्रवर्तन प्रकट होने या आने में धीमे होते हैं तथा वे झुण्डों व समूहों में आते हैं। परन्तु एक बार जब शुरू की कठिनाई समाप्त हो जाती है, तो नवप्रवर्तन समस्त अर्थव्यवस्था मे फल जाने की प्रवृत्ति रखते हैं; उसी उद्योग में या उसी प्रकार के उद्योगो में व्यापारी उस नवप्रवर्तन की नकल करने का प्रयत्न करते हैं ताकि प्रतियोगिता के सामने वे जीवित रह सके।

शुम्पीटर के अनुसार सभी नवप्रवर्तन एकसमान आकार के नही होते हैं। शुम्पीटर 'बड़ी लहरो' (long waves) को बडे (major) नवप्रवर्तनो के साथ जोड़ते हैं; तथा छोटे (minor) नवप्रवर्तनो को 'छोटी लहरो' या 'जगलर चक्रो' ('short waves' or Jugler's cycles) के साथ संबधित करते हैं।

विस्तार तथा समृद्धि (Expansion and Prosperity) : विश्लेषण के लिए शुम्पीटर अर्थव्यवस्था को संतुलन की स्थिति मे मानकर चलते हैं; अर्थव्यवस्था के संतुलन का अर्थ है कि बचते तथा विनियोग बराबर हैं और सभी साधन पूर्ण रोजगार में हैं। उनके सन्तुलन के विचार का अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था में कही भी परिवर्तन के लिए कोई प्रेरणा (incentive) नही है। संतुलन की स्थिति एक सन्दर्भ बिन्दु (a point of reference) की तरह कार्य करती है जिसके सन्दर्भ में हम चक्रीय उच्चावचनो (cyclical fluctuations) को माप सकते हैं।

अब इस सन्तुलन की अवस्था मे एक नवप्रवर्तन फेंक दिया जाता है; दूसरे शब्दों में, एक या एक से अधिक साहसी किसी एक विशेष नवप्रवर्तन को लागू करते है जिसके लाभदायक सिद्ध होने के सम्बन्ध में वे विश्वास रखते हैं। नवप्रवर्तन का प्रभाव होगा सतुलन को गड़बड़ (disturb) करना। साहसियो या नवप्रवर्तनकर्ताओ (innovators) का यह छोटा-सा समूह अपनी वित्तीय (financial) आवश्यकताओ का एक बड़ा भाग बैंको से प्राप्त करते है, वे नये उपक्रमो (new enterprises)[27] को स्थापित करते हैं, वर्तमान फर्मों को नये प्लांटों तथा यंत्रो के लिए आर्डर देते हैं तथा उन्हें खरीदते हैं। "इन साहसियो द्वारा नवप्रवर्तन से संबधित कठिनाइयो पर सफलता पा लेने तथा इस प्रकार से जो अनुभव इकट्ठा हो जाता है, इन बातों के परिणामस्वरूप अन्य व्यापारी भी उसी नवप्रवर्तन या उसी प्रकार के नवप्रवर्तनों को उसी उपक्रम के क्षेत्र या उससे संबंधित क्षेत्रो में अधिकाधिक संख्या में लागू करने लगते हैं।[28] इस प्रकार से विस्तार होने लगता है या 'विस्तार

innovations were evenly distributed through time, there would be no such thing as recurring booms and busts, according to Schumpeter."

[27] "Schumpeter firmly believed that the bulk of innovation is carried out by new firms. While this was undoubtedly true of the 19th and early 20th centuries, it would appear that in recent years it is the large corporations who, for the most part, are responsible for innovations. . . .This point, however, is not fundamental to Schumpeter's thesis."

[28] "On the heels of their (i.e., small group of entreprenuers) apparent success in overcoming the various problems associated with innovations, together with the experience that is thus

की एक लहर' (a wave of expansion) फैल जाती है। विनियोग के लिए द्रव्य की मांग बहुत अधिक होती है जिसे वर्तमान बचतों से पूरा नही किया जा सकता है। अतः विनियोग के लिए द्रव्य की बहुत बढ़ी हुई माग को बैंक, साख का निर्माण (credit-creation) करके, पूर्ति करते हैं।

चूंकि हम पूर्ण रोजगार की स्थिति को आधार मानकर चले थे, इसलिए नये प्लांट व यन्त्रो (या पूजीगत वस्तुओ) के निर्माण के लिए उत्पत्ति के साधनों को वर्तमान उद्योगो से, विशेषतया उपभोग वस्तुओ के उद्योगो से, हटाकर पूजीगत वस्तुओं के उद्योगों मे लगाना पड़ेगा। परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनों की कीमतों मे वृद्धि होगी। इस कारण न केवल पूजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे बल्कि उपभोग वस्तुओ के उद्योगो मे भी उत्पादन-लागत मे वृद्धि हो जायेगी। उपभोग वस्तुओं के उद्योगों से पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे साधनो के हस्तातरण (transference) के कारण अस्थायी रूप से (temporarily) उपभोग वस्तुओं का उत्पादन घट जायेगा। परन्तु पूजीगत वस्तुओ के उद्योगों मे साहसियों द्वारा अतिरिक्त व्यय करने के परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनो की (श्रमिकों को शामिल करते हुए) आयो मे वृद्धि होगी, श्रमिको की बढ़ती हुई मजदूरिया उपभोग वस्तुओं की माग मे वृद्धि कर देंगी; इसके कारण उपभोग वस्तुओ की कीमतें भी बढ जायेंगी क्योकि थोड़े समय के लिए उनकी पूर्ति मे कमी रहेगी जबकि उनकी माग ऊची है। वस्तुओं की कीमतो मे वृद्धि अधिक तेज होगी अपेक्षाकृत उत्पादन-लागत मे वृद्धि के, और इसलिए लाभ की मात्रा बढ जायेगी। अत समस्त अर्थव्यवस्था मे लाभ उत्पन्न हो जायेंगे; ये लाभ न केवल नई फर्मों को ही प्राप्त होंगे (जिन्होंने नवप्रवर्तन को शुरू मे लागू किया था) बल्कि सभी पुरानी फर्मों को भी प्राप्त होंगे। इस प्रकार से अर्थव्यवस्था विस्तार तथा समृद्धि की अवस्था मे पहुच जाती है।

संकुचन तथा मन्दी (Contraction and Depression) : नवप्रवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न विस्तार व समृद्धि की स्थिति बहुत समय तक नही रह पायेगी। समृद्धि द्वारा उत्पन्न की गयी शक्तियां अपने अन्दर विनाश के बीज (seeds of destruction) रखती हैं। कुछ समय के बाद नवप्रवर्तन के प्रभाव पूर्ण रूप से बाजार मे दिखायी देने लगते हैं अर्थात् बाजार मे उपभोग वस्तुओं की बाढ (flood) सी आ जाती है, नई वस्तुए पुरानी फर्मों की वस्तुओ के साथ प्रतियोगिता करेंगी। इस बीच मे नई फर्में (या नवप्रवर्तनकर्ता) अधिक जोखिम के कारण अपनी व्यापारिक क्रियाओं में कमी करते है; वे अपने लाभो मे से बैंको को ऋण वापस करने लगते हैं; इसके परिणाम-स्वरूप बैंको द्वारा द्रव्य की पूर्ति मे कमी होगी, परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में विस्फीति प्रभाव (deflationary effect) होगा, शुम्पीटर इसको 'स्वत-विस्फीति' (*auto-deflation*) कहते है। चूंकि बाजार मे उपभोग वस्तुओ की पूर्ति बहुत अधिक है इसलिए उनकी कीमतें गिरेंगी; अनेक पुरानी फर्मों को नुकसान होगा, यहा तक कि कुछ फर्में बन्द भी हो जायेंगी। श्रमिकों की एक बड़ी सख्या बेरोजगार हो जायेगी, श्रमिको की आय बहुत कम हो जायेगी; परिणामस्वरूप उपभोग वस्तुओ की मांग और घट जायेगी। अन्त मे अर्थव्यवस्था सकुचन तथा मन्दी की अवस्था में पहुच जाती है।

शुम्पीटर के सिद्धान्त की सारी स्थिति को सक्षेप मे निम्न शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है:

> "नवप्रवर्तन का प्रयोग अर्थव्यवस्था मे विस्तार व समृद्धि की स्थिति उत्पन्न करता है, तथा नवप्रवर्तन के परिणाम विस्तार की स्थिति को रोकते या निरुत्साहित (dampen) करते है और अर्थव्यवस्था को विपरीत दिशा मे सकुचन तथा मन्दी की ओर ले जाते हैं।"[39]

accumulated, other businessmen follow in increasing numbers to introduce the same or similar innovations in the same or related fields of enterprise."

[39] "It is the introduction of innovations which causes the expansion and prosperity, and the results of the innovation which dampen the upward surge and cause its reversal leading to contraction and depression."

3. मूल्यांकन (Evaluation)

"शुम्पीटर कभी तो अल्प-उपभोग सिद्धान्त के तर्क का प्रयोग करते हैं; कभी उनकी प्रतिक्रियाएं अति-विनियोग विचारधारा से मिलती हुई दिखायी पड़ती हैं; और वे मनोवैज्ञानिक तत्वों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तथा द्रव्य-प्रणाली की महत्त्वपूर्ण भूमिका (crucial role) पर बहुत विश्वास करते है। उनका अन्य सिद्धांतों से अन्तर इस बात मे है कि वे नवप्रवर्तनकर्ता (या साहसी) को व्यापार-चक्रों के शुरु या उत्पन्न करने का मूल कारण मानते हैं। नवप्रवर्तन एक 'शुरुआत का कारण' अर्थात् एक 'ट्रिगर' (a *trigger*) है और समाज में शेष सब, नवप्रवर्तन के 'ट्रिगर-प्रभावों' (trigger effects) के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं (varied responses) हैं।[30]

नवप्रवर्तन सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(i) यह कहा जाता है कि शुम्पीटर ने नवप्रवर्तनकर्ता (innovator) के रूप मे साहसी की महत्त्वपूर्ण भूमिका (key role) पर बहुत अधिक जोर दिया है। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि केवल साहसी ही नवप्रवर्तन को उत्पन्न करने वाला (creator) होता है। "घटनाओं की एक लम्बी श्रृंखला (series)—वैज्ञानिक, टेकनोलोजीकल, आर्थिक तथा समाजशास्त्रीय (sociological) बातें या घटनाएं—नवप्रवर्तन प्रक्रिया से पहले घटित होती है। इस दृष्टि से या इस अर्थ में, नवप्रवर्तन इन विभिन्न प्रकार की शक्तियों व घटनाओ के पूरे होने का परिणाम है।"[31]

(ii) यह सिद्धान्त कुछ अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है—(क) यह अर्थव्यवस्था मे पूर्ण-रोजगार-सतुलन की स्थिति को लेकर चलता है, ऐसी स्थिति वास्तविक नही होती है; सामान्यतया अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार से कम स्तर पर रहती है। (ख) यह मान्यता भी—कि एक नवप्रवर्तन को लागू करने के लिए द्रव्य या वित्त की पूर्ति बैंक-साख द्वारा की जाती है और इसलिए स्फीति शक्तियां (inflationary forces) उत्पन्न हो जाती हैं—पूर्णतया उचित नहीं है। आधुनिक समय मे बड़े व्यावसायिक कोरपोरेशन विकास के लिए सुरक्षित फंड (reserve of development funds) रखते हैं जिसमे से नवप्रवर्तन की वित्तीय (financial) आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

नवप्रवर्तन सिद्धान्त की कुछ कमजोरियां होने पर भी हमे प्रो. शुम्पीटर की आधारभूत या मुख्य देन को नहीं भूल जाना चाहिए। "यह देन है कि उन्होने आर्थिक विकास व प्रगति तथा आर्थिक उच्चावचनों के बीच निकट सम्बन्ध पर बहुत जोर दिया है। आधुनिक पूंजीवाद का इतिहास निःसन्देह बताता है कि भूतकाल मे व्यापार-चक्रों के पीछे नवप्रवर्तन बडी प्रेरक शक्तियां रही है।"[32]

कंज का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त
(KEYNES' THEORY OF BUSINESS CYCLE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

कंज की पुस्तक *The General Theory of Employment, Interest and Money*

---

[30] "Schumpeter makes use, at times, of the under-consumption thesis; elsewhere, his responses bear the earmarks of the over-investment school, and he concedes the importance of psychological factors and relies heavily upon the critical role of the money system. Where he differs from others is in his insistence upon the key role of the innovator as the originating causal force. Innovation is the trigger, and all else is simply the varied response of the society to the triggering effects of the innovation."

[31] "A long series of events—scientific, technological, economic and sociological—invariably precede the actual innovating process The innovation might be said to represent, in some sense, the culmination of these different categories of forces and events."

[32] "This contribution consists in the great emphasis placed on the close connection between economic growth and progress and economic fluctuations. Innovations in the history of modern capitalism have undoubtedly been one of the great driving forces behind the major business cycles of the past."

स्पष्ट रूप से व्यापार-चक्रों के विश्लेषण की दृष्टि से नही लिखी गयी थी; इस पुस्तक में कॅंज ने अपने सिद्धान्त मे रोजगार (आय व उत्पादन) के निर्धारक तत्त्वों (determinants) की विवेचना की है—परन्तु इसमे अल्पकालीन उच्चावचनों (short-run fluctuations) का भी विश्लेषण है; इसलिए कॅंज यह महसूस करते हैं कि उनका सिद्धान्त व्यापार-चक्रों की व्याख्या करने में समर्थ (capable) है।

केंज के अनुसार व्यापार-चक्र रोजगार, आय व उत्पादन में आवर्ती (periodic) परिवर्तन या कुछ नियमित रूप से बार-बार (recurrent) होने वाले परिवर्तन है; आय तथा उत्पादन निर्भर करते हैं रोजगार पर। कॅंज इस बात (proposition) से शुरू करते हैं कि—कुल आय (Y) = कुल उपभोग (C) + कुल विनियोग (I); इसके बाद वे बताते हैं कि कुल आय में उच्चावचनों के कारण हैं उपभोग तथा विनियोग मे परिवर्तन। उपभोग मुख्यतया निर्भर करता है उपभोग की प्रवृत्ति (propensity to consume) पर; तथा विनियोग निर्भर करता है (i) ब्याज की दर पर तथा (ii) पूंजी की सीमान्त कुशलता (marginal efficiency of capital) पर। इस प्रकार से रोजगार, आय व उत्पादन निर्भर करते हैं—

(i) उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति पर : उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति एक दी हुई आय तथा उस आय में से उपभोग-व्यय के बीच एक फंक्शनल सम्बन्ध (functional relation) को बताता है।

(ii) ब्याज की दर : ब्याज की दर निर्भर करती है (a) तरलता पसन्दगी (liquidity preference) तथा (b) द्रव्य की मात्रा पर।

(iii) पूजी की सीमान्त कुशलता यह निर्भर करती है (a) लाभ की प्रत्याशित दर (expected rate of profit) पर, तथा (b) पूजीगत सम्पत्ति के पूर्ति मूल्य (supply price of capital assets) पर। सक्षेप मे, पूजी की सीमान्त कुशलता नई पूजीगत सम्पत्ति पर लाभ की प्रत्याशित दर है।

अल्पकाल में, ब्याज की दर तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति लगभग स्थायी या स्थिर (stable) रहते हैं; इसलिए रोजगार, आय व उत्पादन को प्रभावित करने वाला मुख्य तत्त्व है 'पूंजी की सीमान्त कुशलता'।

> पूजी की सीमान्त कुशलता (marginal efficiency of capital) विनियोग में परिवर्तनो को उत्पन्न करती है, तथा विनियोग में परिवर्तन व्यापार-चक्रों को उत्पन्न करते हैं; दूसरे शब्दों मे, व्यापार-चक्रों की जड़ में पूंजी की सीमान्त कुशलता होती है।

2. केंज के व्यापार-चक्र का सिद्धान्त (The Theory)

कॅंज के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त की मुख्य बात (*basic factor*) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

> **व्यापार-चक्र मुख्य रूप से, ब्याज की वर्तमान दरों की तुलना में, पूंजी की सीमान्त कुशलता में उच्चावचन है।** (The business cycle is essentially a fluctuation in the marginal efficiency of capital, relative to the current rates of interest.)

जब पूंजी की सीमान्त कुशलता (अर्थात् लाभ की प्रत्याशित दर) अधिक होती है ब्याज की दर से, तो साहसी या उत्पादक अपनी विनियोग क्रियाओ (investment activities) को बढ़ाते है जो कि अन्त मे समृद्धि व तेजी की दशाओ को उत्पन्न कर देती है। जब पूजी की सीमान्त कुशलता कम होती है ब्याज की दर से, तो साहसी अपनी विनियोग क्रियाओं को कम कर देते हैं और यह प्रक्रिया (process), कुछ समय बाद, संकुचन तथा मन्दी की स्थिति को उत्पन्न कर देती है।

विस्तार तथा समृद्धि (Expansion and Prosperity) : जब पूंजी की सीमान्त कुशलता ऊंची होती है ब्याज की दर से, तो विनियोग की आकर्षकता (attractiveness) बढ जाती है और साहसी अधिक विनियोग करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप रोजगार व आय मे विस्तार होता है। अतिरिक्त विनियोगो की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए बैंक-व्यवस्था द्रव्य की पूर्ति करती है; ब्याज की दर लगभग स्थिर (sticky) रहती है और इसलिए विनियोग अधिक लाभदायक रहते हैं। विस्तार के समय मे पूंजी की सीमान्त कुशलता ऊची रहती है और साहसी या व्यापारी लाभ की भविष्य मे दर के प्रति बहुत आशावान (optimistic) रहते है, तथा 'आशावादी अनुमानो की लहर' (wave of optimistic expectations) विस्तार की प्रक्रिया मे और अधिक सहयोग देती है; विनियोग बढ़ता जाता है; रोजगार व आयो मे और अधिक वृद्धि होती हैं; कीमतें व लाभ बढते हैं; विनियोग में प्रत्येक वृद्धि आय मे कुछ गुनी (some multiple) वृद्धि करती है अर्थात् 'गुणाक' (multiplier) विस्तार व समृद्धि को एक सचयी प्रक्रिया (cumulative process) प्रदान करता है; और अन्त मे अर्थव्यवस्था समृद्धि की चोटी (peak) पर, या तेजी (boom) की स्थिति मे, पहुंच जाती है।

संकुचन तथा मन्दी (Contraction and Depression) : समृद्धि तथा तेजी के काल में कई निरुत्साहित करने वाले तत्त्व (discouraging factors) उत्पन्न हो जाते हैं जो कि पूंजी की सीमान्त कुशलता मे कमी करते है, और परिणामस्वरूप सारी प्रक्रिया उल्टी (reverse) हो जाती है तथा अर्थव्यवस्था सुस्ती व मन्दी (recession and depression) की ओर जाने लगती है। पूजी की ऊची सीमान्त कुशलता मे गिरावट निम्न कारणो से होती है—(i) उपभोग की आदतें परम्परागत (conventional or traditional) होती हैं, उनमे अधिक परिवर्तन नही होता। अत. समृद्धि के काल मे लोग बढ़ती हुई आयो मे से घटते हुए अनुपात मे उपभोग पर व्यय करते है (during prosperity persons will spend on consumption a diminishing proportion of the increasing incomes)। दूसरे शब्दों मे, समृद्धि काल मे 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' घट जाती है जो कि साहसियो की आशाओ मे (अर्थात् पूजी की सीमान्त कुशलता मे) गिरावट या कमी लाती है, परिणामस्वरूप विनियोग में कमी होने लगती है। (ii) समृद्धि व तेजी के कुछ समय तक रहने के बाद उत्पत्ति के साधनो (जैसे, कच्चा माल, श्रम, नये उत्पत्ति के साधनो, संपत्ति, इत्यादि) की पूर्ति मे कमी (short in supply) हो जाती है, उनकी कीमतें बहुत ऊची हो जाती हैं, और इसलिए उत्पादन की लागत बहुत ऊची हो जाती है। (iii) समृद्धि काल मे वस्तुओ की बहुत अधिक मात्रा बाजार में आ जाती है, बहुत स्टाक एकत्र हो जाते है, परिणामस्वरूप वस्तुओं की कीमतो मे पर्याप्त कमी हो जाती है, लाभ घट जाते हैं, अधिक-आशावादिता (over-optimism) अधिक-निराशावादिता (over-pessimism) को उत्पन्न कर देती है।

उपर्युक्त तत्त्व पूजी की सीमान्त कुशलता मे 'एकदम या यकायक कमी' (sudden collapse) ला देते हैं। रोजगार मे सकुचन या कमी होती है, आयें और गिरती हैं, विनियोग मे और कमी की जाती है; गुणक (multiplier) उल्टी दिशा मे कार्य करना शुरू कर देता है, अर्थात् विनियोग मे प्रत्येक कमी आय मे कुछ गुनी (some multiple) कमी उत्पन्न करती है। अन्त मे अर्थव्यवस्था अपने को मन्दी की दशा मे पाती है।

उत्थान (Recovery) : जब मन्दी कुछ समय तक रह लेती है तो कुछ तत्त्व विश्वास को पुनः उत्पन्न करने (revival of confidence) मे सहायक होते हैं, ये तत्त्व हैं—(i) कुछ पूजीगत वस्तुएं घिस जाती है तथा कुछ अप्रचलन मे आ जाती हैं (अर्थात् obsolete हो जाती हैं), और उनके प्रतिस्थापन (replacement) की जरूरत होती है; इसका अर्थ है कि पूजीगत वस्तुओं या विनियोग वस्तुओ (investment goods) की माग उत्पन्न हो जाती है। (ii) उपभोग वस्तुओ के स्टॉक बहुत ही कम हो जाते हैं; इसका अभिप्राय है कि इन वस्तुओ के उत्पादन को बढ़ाने की

आवश्यकता होती है। (iii) उत्पादन की लागत बहुत नीचे स्तर पर आ जाती है। (iv) आय में कमी के अनुपात के अनुसार उपभोग व्यय के अनुपात मे कमी नही हो सकती है। दूसरे शब्दों में, उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (marginal propensity to consume) उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में नीचे की ओर गिरावट या संकुचन की सीमा को निर्धारित कर देती है (the m.p.c. sets a limit to the downward contraction of the production of consumer goods)।

उपर्युक्त तत्वो के कारण लाभ की आशाओ मे वृद्धि होने लगती है अर्थात् पूंजी की सीमान्त कुशलता बढने लगती है, तथा अर्थव्यवस्था का उत्थान होने लगता है जो कि अन्त में अर्थव्यवस्था को समृद्धि की स्थिति मे पहुंचा देता है।

3. मूल्यांकन (Evaluation)

कॅज के सिद्धात के प्रति निम्नलिखित आलोचनाएं की जाती हैं :

(i) कॅज व्यापार-चक्रो को उत्पन्न करने मे पूंजी की सीमान्त कुशलता को एक महत्वपूर्ण स्थान (key role) प्रदान करते है; परन्तु पूंजी की सीमान्त कुशलता को एक अस्पष्ट शब्द (vague term) बताया जाता है; यह भविष्य मे अनुमानो या आशाओ पर निर्भर करता है, अर्थात् यह साहसियो की मनोवृत्ति (psychology) पर निर्भर करता है; इस दृष्टि से यह सिद्धान्त पीगू के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (psychological theory) के बहुत निकट आ जाता है।

(ii) कॅज ने मन्दी को रोकने तथा उत्थान को शुरू करने के लिए ब्याज-दर में कमी करने का सुझाव दिया, अर्थात् उन्होने 'सस्ते द्रव्य की नीति' (cheap-money policy) का सुझाव दिया; तथा मन्दी को दूर करने के लिए उन्होने सरकारी हस्तक्षेप (intervention) को भी बताया, अर्थात् सरकार द्वारा व्यय मे वृद्धि का सुझाव दिया। परन्तु यह कहा जाता है कि मन्दी को दूर करने के लिए 'सस्ते द्रव्य की नीति' अधिक प्रभावशाली (effective) नहीं है।

(iii) यह कहा जाता है कि कॅज का सिद्धान्त मुख्यतया एक मन्दी का सिद्धान्त (primaril a theory of depression) है; यह 'समृद्धि व तेजी' के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान में कोई वृद्धि नही करता। परन्तु यह मन्दी की प्रक्रिया पर अवश्य एक अच्छा प्रकाश (searching light डालता है।

हिक्स का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त
(HICKS' THEORY OF BUSINESS CYCLE)

1. प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक अर्थशास्त्री जैसे Harrod, Samuelson, Hicks, Hansen, इत्यादि इस मत के कि व्यापार-चक्र 'गुणक तथा त्वरक की आपसी प्रतिक्रिया' (multiplier-accelerator inte action) के कारण होते हैं। ये अर्थशास्त्री इस बात से भी सहमत हैं कि आर्थिक उच्चावचनों (व्यापार-चक्रों) तथा आर्थिक विकास मे पारस्परिक सम्बन्ध होता है; दोनो एक दूसरे से घनिष्ठ। से बंधे होते हैं।

यहां पर हम प्रो. हिक्स के सिद्धान्त की विवेचना करते हैं जो, कुछ कमियों व कमजोरि के होने पर भी, एक श्रेष्ठ सिद्धान्त समझा जाता है तथा उनका सिद्धान्त विश्लेपण का एक ब समन्वित व प्रतिभाशाली अंश (a very coherent and brilliant piece of analysis) म जाता है।

हिक्स के सिद्धान्त के तीन सैद्धांतिक स्रोत (theoretical sources) हैं—(i) जे. एम. का गुणक विश्लेषण (J. M. Keynes' multiplier analysis); (ii) जे. एम. क्लार्क का त्व विश्लेषण (J. M. Clark's acceleration analysis); तथा (iii) हेरोड का विकास विश्ले (Roy Harrod's growth analysis)। हिक्स 'ऊपर की सीमा' अर्थात् 'सीलिंग' (ceilir

तथा 'नीचे की सीमा' अर्थात् 'फ्लोर' (floor) के विचारो को शामिल करके प्रो. सेम्युलसन के व्यापार-चक्र के माडल या सिद्धान्त मे सुधार करते है; तथा हिक्स व्यापार-चक्र को आर्थिक विकास से संबधित करते हुए एक बढती हुई विकास प्रवृत्ति अर्थात् एक चढते हुए ट्रेड (a rising trend) के सन्दर्भ मे देखते हैं।

2. हिक्स के सिद्धान्त में मुख्य तत्त्व (Basic Factors in Hicks' Theory)

हिक्स के अनुसार व्यापार-चक्र गुणक तथा त्वरक के सयुक्त कार्यकरण के परिणाम होते हैं, और हिक्स इसका विश्लेषण दीर्घकालीन आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि (background) के सन्दर्भ मे करते हैं। दूसरे शब्दों मे, हिक्स का सिद्धान्त निम्न तीन मुख्य तत्त्वो पर आधारित है :

(i) गुणक (the multiplier)

(ii) त्वरक (the accelerator)

(iii) एक निश्चित या आवश्यक विकास दर जिसके चारो तरफ गुणक तथा त्वरक कार्य करते हुए आर्थिक उच्चावचनो को उत्पन्न करते हैं (a warranted rate of growth around which the multiplier and accelerator operate and cause economic cyclical fluctuations)।

गुणक तथा त्वरक के विचारो के बीच भेद को समझने के लिए **'स्वतंत्र या आत्मशासित विनियोग'** (*autonomous investment*) तथा **'प्रेरित विनियोग'** (*induced investment*) के बीच अन्तर किया जाता है।

- **'स्वतंत्र या आत्मशासित विनियोग'** उत्पादन व आयो मे परिवर्तनो या उपभोग मांग मे परिवर्तनों से स्वतत्र (independent) होता है। यह टेक्नोलोजीकल परिवर्तनो, जनसख्या मे वृद्धि, सार्वजनिक या सरकारी विनियोग के कारण होता है और इस प्रकार से 'आत्मशासित विनियोग' (autonomous investment) एक 'बाहरी तत्त्व' (exogeneous factor) है जो कि 'अर्थव्यवस्था के अन्दर' (endogeneous to the system) नही होता है। 'आत्मशासित विनियोग' शुरू करने का कारण (initiating cause) समझा जाता है जो कि उत्पादन, रोजगार तथा आय मे विस्तार को शुरू या प्रारंभ करता है। **गुणक का सम्बन्ध आत्मशासित विनियोग से होता है** (*multiplier is related to autonomous investment*); दूसरे शब्दो मे, आत्मशासित विनियोग की ताकत व शक्ति गुणक के रूप मे व्यक्त होती है (in other words, the strength and force of autonomous investment is expressed in the multiplier)।

प्रेरित विनियोग (induced investment) आय के स्तर या उपभोग मे परिवर्तनो के कारण होता है, अर्थात् प्रेरित विनियोग पिछले समय के उपभोग की तुलना मे वर्तमान समय के उपभोग मे वृद्धि पर निर्भर करता है; और इस प्रकार यह एक 'विलम्बित सम्बन्ध' (lagged relation) है।[33] यदि उपभोग पहले की तुलना मे अधिक है, तो नई पूजीगत वस्तुओ (new capital goods) की माग की जायेगी (अर्थात् प्रेरित विनियोग किया जायेगा) ताकि मागी जाने वाली अतिरिक्त उपभोग वस्तुओ की माग को पूरा करने के लिए, उपभोग वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। प्रेरित-विनियोग 'उपभोग वस्तुओ की कुल माग मे परिवर्तन' (वृद्धि या कमी), या 'कुल उपभोग-व्यय मे परिवर्तन' के प्रति प्रतिक्रिया (reaction) है। **यह ध्यान मे रखने की बात है कि प्रेरित विनियोग उपभोग या आय (या उत्पादन) के स्तर में 'परिवर्तन की दर' पर निर्भर करता है,** न कि उपभोग (या आय) के निरपेक्ष स्तर (absolute level) पर।[34] 'त्वरक सिद्धान्त' या

---

[33] Induced investment depends upon the increase in consumption of the present period over that of the preceding period, *and thus, it is a lagged relation.*

[34] We should remember that induced investment depends on *'the rate of change'* in the level of consumption or income (or output), and not on the absolute level of consumption or income.

'त्वरक' प्रेरित विनियोग से सम्बन्धित होता है; दूसरे शब्दों में, प्रेरित विनियोग की ताकत व शक्ति त्वरक के रूप में व्यक्त होती है।[35]

इन दो प्रकार के विनियोग (अर्थात् 'आत्मशासित विनियोग' व 'प्रेरित विनियोग') में मुख्य अन्तर यह है कि प्रेरित विनियोग पुरानी जानी हुई वस्तुओं की उत्पादन-क्षमता के विस्तार के उद्देश्य से किया जाता है, जबकि आत्मशासित विनियोग का सम्बन्ध नई वस्तुओं, नये बाजारों तथा लागत में कमी से होता है।[36]

अब हम गुणक तथा त्वरक के बारे में थोड़ी और विवेचना करते हैं। पहले हम गुणक प्रभाव (multiplier effect) को लेते हैं। **गुणक या विनियोग गुणक** (investment multiplier) **'उपभोग व आय पर प्रभाव' को बताता है जो कि विनियोग में परिवर्तन के कारण होता है।**[37] दूसरे शब्दों में,

गुणक बताता है कि विनियोग में एक शुरू की वृद्धि (प्रेरित उपभोग के माध्यम द्वारा) आय में वृद्धि करेगी जो कि विनियोग की शुरू की वृद्धि की कुछ गुना होगी।[38]

गुणक उल्टी दिशा (reverse direction) **में भी कार्य करता है;** अर्थात् विनियोग में एक शुरू की कमी आय में कमी करेगी जो कि विनियोग में शुरू की कमी की कुछ गुना (some multiple) होगी।

गुणक 'उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति' (marginal propensity to consume, अर्थात् m.p.c.) पर निर्भर करता है, गुणक (जिसको चिह्न K द्वारा बताते हैं) निम्न सूत्र (formula) द्वारा बताया जाता है :

$$K = \frac{1}{1 - m.p.c.}$$

अब हम त्वरक (*accelerator*) के विचार की थोड़ी और विवेचना करते हैं। **त्वरक 'विनियोग पर प्रभावों' को बताता है** जो कि **उपभोग** व्यय **में परिवर्तन के परिणामस्वरूप** (या उपभोग वस्तुओं की उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के परिणामस्वरूप) होते हैं। त्वरक **बताता है कि यदि उपभोग व्यय में** (अर्थात् उपभोग वस्तुओं की माग में) वृद्धि **होती है तो इसके कारण**

---

[35] The 'acceleration principle' or 'the accelerator' is related to induced investment; in other words, the strength and force of induced investment is expressed in accelerator.

[36] "The prime difference between the two types of investment is that induced investment is undertaken with the intent of expanding capacity for the output of *old* known goods, whereas the autonomous investment relates to new goods, new markets, and cost reduction."

[37] विनियोग में एक शुरू की वृद्धि कुछ व्यक्तियों के लिए आय होगी, ये व्यक्ति अपनी बढ़ी हुई आय का एक हिस्सा उपभोग पर व्यय करेंगे और एक हिस्सा बचायेंगे। व्यक्तियों के पहले समूह का उपभोग पर व्यय व्यक्तियों के दूसरे समूह के लिए आय होगी; इस आय में से दूसरा समूह एक हिस्सा उपभोग पर व्यय करेगा और एक हिस्सा बचायेगा; और इस प्रकार का क्रम एक सीमा तक चलता रहेगा। इस प्रकार से विनियोग में एक शुरू की वृद्धि उपभोग व्यय की प्रत्येक अवस्था या दौर (round) पर आय में वृद्धि को उत्पन्न करेगी। विनियोग में शुरू की एक वृद्धि आय पर (प्रेरित उपभोग व्यय के माध्यम द्वारा अर्थात् through induced consumption) एक बढ़ा हुआ प्रभाव (a magnified effect) डालती है। इस प्रकार से विनियोग में शुरू की एक वृद्धि आय में (प्रेरित उपभोग द्वारा) वृद्धि करती है जो कि विनियोग में शुरू की वृद्धि की कुछ गुनी होती है।

[38] The multiplier says that an increase in investment will cause an increase in income (via induced consumption) by some multiple of the initial increase in investment.

विनियोग (अर्थात् मशीनों, यंत्रों, इत्यादि पूजीगत वस्तुओ पर विनियोग व्यय) में एक बढ़े हुए रूप (magnified form) में वृद्धि होगी।[39]

त्वरक सिद्धान्त के पीछे मुख्य बात इस प्रकार है :

"पूंजीगत व्यय (अर्थात् विनियोग) इसलिए किये जाते हैं ताकि प्लांट व मशीनें उपभोग वस्तुओं की अधिक मात्रा प्रदान कर सकें। इस प्रकार विनियोग की मांग उत्पन्न होती है (अर्थात् derive की जाती है) उपभोग की मांग से, और उपभोग में वृद्धियां विनियोग में वृद्धियों को प्रेरित करने की प्रवृत्ति रखती है।[40]

इसी प्रकार से उपभोग मे कमी 'विनियोग की उत्पन्न की गयी माग' (derived demand for investment) मे कमी करेगी; अर्थात् त्वरक उल्टी दिशा (reverse direction) में भी कार्य कर सकता है।[41]

यह ध्यान देने की बात है कि त्वरक का सिद्धान्त बताता है कि विनियोग का स्तर उपभोग के स्तर पर निर्भर नहीं करता बल्कि वह 'उपभोग में परिवर्तन की दर' पर निर्भर करता है।[42]

गुणक तथा त्वरक की पारस्परिक प्रतिक्रिया को 'लीवरेज' (leverage) भी कहा जाता है, जो कि व्यापार-चक्रो का मुख्य कारण है।[43] नीचे हम सरल शब्दो मे 'लीवरेज' (अर्थात् गुणक तथा त्वरक की पारस्परिक प्रतिक्रिया) के कार्यकरण का संक्षेप मे विवरण देते हैं।

हम देख चुके हैं कि गुणक 'उपभोग व आय पर विनियोग के प्रभाव' की व्याख्या करता है, तथा त्वरक 'विनियोग पर उपभोग के प्रभाव' की व्याख्या करता है। गुणक के कारण विनियोग मे एक वृद्धि उपभोग व आय मे कई गुनी वृद्धि करती है, त्वरक के परिणामस्वरूप उपभोग मे एक वृद्धि विनियोग मे कई गुनी वृद्धि को प्रेरित (induce) करती है; इसी प्रकार से गुणक तथा त्वरक उल्टी दिशा मे भी कार्य करते हैं। इसका अभिप्राय है कि गुणक तथा त्वरक मिलकर एक दूसरे को शक्ति प्रदान (reinforce) करते हैं और वे मिलकर अर्थव्यवस्था को बहुत ऊंचे स्तर पर ले जाते हैं, तथा जब वे उल्टी दिशा मे कार्य करते है तो वे मिलकर अर्थव्यवस्था को बहुत नीचे स्तर पर ले जाते हैं।

3. हिक्स के सिद्धान्त के मुख्य तत्त्वो का रेखीय प्रस्तुतीकरण (Graphic presentation of the basic factors in the Hicksian Theory)

'विस्तार व समृद्धि' और 'सकुचन व मदी' तथा 'उत्थान' की अवस्थाओ की विवेचना व व्याख्या करने से पहले, यह अधिक अच्छा होगा कि हम एक चित्र की सहायता लें, और चित्र 2 में दिखायी गयी मुख्य रेखाओ को समझ लें।

1. - रेखा AA (चित्र 2 मे) 'आत्मशासित विनियोग' को बताती है और यह मान लिया

[39] Accelerator shows the 'effects on investment' because of changes in consumption expenditure (or because of changes in output of consumer goods). The accelerator says that if the consumption expenditure (that is, demand for consumption goods) increases, this will cause a magnified increase in investment (that is, investment expenditure on machines and tools).

[40] The basic fact underlying the principle of accelerator is like this: "Capital expenditures (i.e., investment) are made so that plants and machinery may provide greater quantities of consumer goods. The demand for investment is accordingly derived from the demand for consumption, and increases in consumption will tend to induce increases in investment."

[41] Similarly, a decrease in consumption will cause a decrease in the derived demand for investment; that is, the accelerator can work in the reverse direction also

[42] It is to be remembered that accelerator "makes the level of investment a function not of the level of consumption, but of the rate of change of consumption."

[43] The interaction of multiplier and accelerator is also called as 'leverage', which is the basic cause of business cycles.

जाता है कि आत्मशासित विनियोग एक स्थिर या समान प्रतिशत दर से बढ़ता है।[44]

2. रेखा EE अर्थव्यवस्था में आय के दीर्घकालीन संतुलन विकास के रास्ते को बताती है। रेखा E E निर्भर करती है रेखा AA पर।[45]

रेखा EE आधारित होती है आत्मशासित विनियोग AA पर; और चूंकि रेखा AA चढ़ती हुई (rising) है, इसलिए रेखा EE भी चढ़ती हुई है। चढ़ती हुई EE रेखा का अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था एक गतिशील या विकासशील संतुलन (moving or growing equilibrium) की अवस्था मे होती है न कि एक स्थिर (stationary) संतुलन की अवस्था मे।[46]
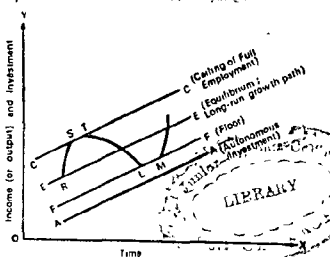
चित्र 2

[दूसरे शब्दो मे, हिक्स के सिद्धान्त के अनुसार, गुणक व त्वरक की आपसी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप जो व्यापार-चक्र उत्पन्न होते हैं वे एक चढ़ती हुई विकास की दर अर्थात् एक चढ़ते हुए ट्रैंड (a rising trend) के चारो तरफ उच्चावचन (fluctuations) होते हैं; यह सिद्धान्त व्यापार-चक्रों को विकास की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में देखता है; व्यापार-चक्र एक गतिशील या विकासशील सन्तुलन के चारो तरफ घटित होते हैं न कि एक स्थिर संतुलन के चारों तरफ।[47]]

3. रेखा CC 'उत्पादन की ऊपर की सीमा' है अर्थात् यह 'सीलिंग उत्पादन' (ceiling output) के विकास के रास्ते को बताती है; 'सीलिंग उत्पादन' उत्पादन की उस मात्रा को बताता है जो कि अर्थव्यवस्था में समस्त साधनो के पूर्ण रोजगार की स्थिति में होने पर उत्पादित किया जा सकेगा।[48]

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की सीलिंग एक विस्तारशील सीलिंग (an expanding ceiling) होती है; दूसरे शब्दों में, पूर्ण रोजगार की सीलिंग समय के साथ बढ़ती है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि तथा चढ़ता हुआ आत्मशासित विनियोग अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता में विस्तार करते है।[49]

---

[44] The line AA shows autonomous investment which is assumed to be rising at a constan percentage rate.

[45] Line EE is the long-run equilibrium growth path for income in the economy. The line EE is based on line AA

[46] The line EE is rising (on the basis of rising autonomous investment); this means that the economy is in a moving equilibrium and not in a stationary equilibrium.

[47] In other words, according to Hicksian theory, business cycles caused by the interaction of the multiplier and accelerator are fluctuations around a rising trend; the theory considers the business cycles against the background of growth; cycles occur about a moving rather than a stationary equilibrium.

[48] The CC line shows the upper boundary or ceiling of output; that is, it shows the path of growth of ceiling output that can be produced when all the resources of the economy are fully employed.

[49] In a growing economy, the full employment ceiling is an expanding ceiling; CC increases through time, because population growth and rising autonomous investment expand the productive capacity of the economy.

यद्यपि सीलिंग रेखा CC एक चढती हुई रेखा है, परन्तु यह है तो सीलिंग ही; इसलिए जल्दी या देर से, उत्पादन का विस्तार सीलिंग से टकरायेगा या उसको हिट (hit) करेगा और जैसे ही यह (अर्थात् उत्पादन) सीलिंग के निकट आता है वैसे ही उसके विस्तार की शक्ति मे अवश्य ही रोक लग जायेगी।[50]

इस प्रकार CC-रेखा व्यापार-चक्र की ऊपरी सीमा है।

4. रेखा FF व्यापार-चक्र की 'नीचे की सीमा' अर्थात् 'फ्लोर' (floor) है, जहा तक कि संकुचन व मन्दी की अवस्था में, वास्तविक आय (real income) गिर सकती है।

फ्लोर FF तथा सीलिंग CC नीचे और ऊपर की सीमाओ (limits) को बताती हैं जिनके अन्दर चक्रीय उच्चावचन (cyclical fluctuations) होते हैं।

4. उत्कर्ष या विस्तार की अवस्था : बिन्दु R से बिन्दु S तक चलन (Upswing or Expansion Phase : Movement from point R to point S)

आत्मशासित विनियोग मे बढती हुई प्रवृत्ति, अर्थव्यवस्था को 'दीर्घकालीन गतिशील संतुलन रास्ते' (long-run moving equilibrium path) पर, अर्थात् (चित्र 2 में) रेखा EE पर बनाये रखती है; ऐसी स्थिति मे उत्पादन व आय एक बढती हुई प्रवृत्ति (a rising trend) को बताते हैं। माना कि उत्पादन व आय का स्तर बिन्दु R पर है।

अब इस स्थिति मे एक विघ्न (disturbance) उत्पन्न करने वाला तत्त्व छोड़ दिया जाता है; अर्थात् हम यह मान लेते हैं कि सरकारी विनियोग (public investment), या नवप्रवर्तन (innovation) या कोई और बाहरी तत्त्व, आत्मशासित विनियोग में अस्थायी रूप से कुछ वृद्धि कर देता है। आत्मशासित विनियोग मे यह अस्थायी (temporary) वृद्धि उपभोग व आय मे वृद्धि करेगी; ऐसा गुणक प्रभाव (multiplier) के कारण होगा। आय व उपभोग मे यह वृद्धि 'प्रेरित विनियोग' (induced investment) मे वृद्धि उत्पन्न करेगी, ऐसा त्वरक प्रभाव (accelerator) के कारण होगा; विनियोग में यह वृद्धि आय (व उपभोग) मे और अधिक वृद्धि करेगी; और इस प्रकार की प्रक्रिया चलती रहेगी; अर्थात् 'गुणक तथा त्वरक की आपसी प्रतिक्रिया' या 'लीवरेज' विस्तार की एक संचयी प्रक्रिया (cumulative process of expansion) को उत्पन्न कर देती है; परिणामस्वरूप आय व उत्पादन, दीर्घकालीन विकास की सतुलन दर (जो कि रेखा EE बताती है) की तुलना में, अधिक तेजी से बढते हैं। ऐसी स्थिति मे अर्थव्यवस्था के उत्पादन व आय के वास्तविक चलन (actual movement) के रास्ते को बिन्दु R से बिन्दु S तक की रेखा बताती है।

परन्तु विस्तार व तेजी (expansion and boom) की सचयी प्रक्रिया सदैव जारी नही रहेगी। 'गुणक तथा त्वरक की आपसी प्रतिक्रिया' या 'लीवरेज' के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई विस्तार की संचयी प्रक्रिया मे रोक लग जाती है जबकि वह पूर्ण रोजगार की सीलिंग रेखा CC से, बिन्दु S पर, टकराती है। 'पूर्ण रोजगार सीलिंग' पर सभी साधन पूर्ण रोजगार मे होते हैं और परिणामस्वरूप साधनो की कमी (shortage) के कारण विस्तार व तेजी की स्थिति को बनाये रखना कठिन हो जाता है; अनेक उद्योगो मे कठिनाइया या रुकावटे उत्पन्न हो जाती हैं; उत्पादन के विकास मे कमी हो जाती है और इस प्रकार की उत्तरोत्तर कमी (successive retardation) इकट्ठी होकर ऐसी शक्ति बन जाती है जो कि अन्त मे विस्तार को रोक देती है।[51]

पूर्ण रोजगार की सीलिंग द्वारा 'उत्पादन के विकास मे की गयी कमी' अन्त मे उत्पादन की

[50] Though ceiling line CC is rising, yet it is a ceiling; and sooner or later the expansion of output will strike against or hit the ceiling, and as the output approaches the ceiling, the force of the expansion of the output is bound to be checked

[51] Bottlenecks develop in several industries which put a check on boom; the growth in out-put is retarded; and successive retardations gather sufficient force or pressure which ultimately arrest the expansion.

अधोगति (downturn in output) के लिए पर्याप्त होती है। कुछ समय के लिए अर्थव्यवस्था CC रेखा पर ही चल सकती है जैसा कि बिन्दु S से T तक चलन बताता है; परन्तु अन्त में उत्पादन व आय नीचे को अवश्य जाने लगते हैं। प्रो. हिक्स के शब्दों में, "जब विकास का रास्ता सीलिंग से टकराता है, तो (कुछ समय बाद) यह टकराकर पीछे की ओर उछलकर वापस (bounce off) होता है; और आय व उत्पादन नीचे की ओर जाने लगते हैं। नीचे की ओर यह चलन रुक नही सकता अर्थात् आवश्यक हो जाता है।"[2]

हिक्स इस बात को मानते हैं कि व्यापार-चक्र की 'विस्तार की अवस्था' सीलिंग से टकरा भी सकती है या नही भी टकरा सकती है (the expansion phase may or may not hit the ceiling)। इस सन्दर्भ मे हिक्स 'स्वतन्त्र चक्र' (*free cycles*) तथा 'सीमित चक्र' (*constrained cycles*) के बीच भेद करते है। एक स्वतंत्र चक्र मे 'उत्कर्ष या विस्तार' पूर्ण रोजगार की सीलिंग को स्पर्श (contact) करने में असफल रहता है। स्वतंत्र चक्र मे 'कमजोर तेजी' (weak boom) होती है जो कि सीलिंग तक पहुँचने से पहले ही समाप्त हो जाती है; तथा 'कमजोर तेजी' का कारण है 'कमजोर त्वरक' (weak accelerator)। एक 'सीमित चक्र' मे 'पूर्ण पैमाने पर तेजी' (a full scale boom) सीलिंग को हिट (hit) करती है और उसके बाद वह तेजी समाप्त हो जाती है क्योंकि साधनों की कमी (जो कि सभी साधनो के पूर्ण रोजगार मे होने के परिणामस्वरूप रहती है) उस तेजी को बनाये नहीं रख सकती है।

5. संकुचन तथा मन्दी की अवस्था . बिन्दु T से बिन्दु L तक चलन (Contraction and Depression Phase : Movement from point T to point L)

'लीवरेज' के कार्यकरण के परिणामस्वरूप आय व उत्पादन मे जो संचयी विस्तार (cumulative expansion) होता है वह रुक जाता है जबकि वह सीलिंग से टकराता है, और अधोगति (downswing) शुरू हो जाती है।

परन्तु सीलिंग के हिट होने तथा अधोगति के शुरू होने के बीच एक समय-विलम्ब (time lag) रहता है; चित्र 2 में इस समय-विलम्ब को बिन्दु S से बिन्दु T तक चलन द्वारा दिखाया गया है; परन्तु जल्दी या देर से उत्पादन मे अधोगति जरूर शुरू होगी।[3]

परन्तु एक बार जब अधोगति शुरू हो जाती है तो 'गुणक तथा त्वरक मिलकर' उल्टी दिशा में कार्य करने लगते हैं; इसके परिणाम इस प्रकार होते हैं—विनियोग में कमी होती है जो कि उपभोग व आय मे कमी करती है, उपभोग व आय मे कमी 'प्रेरित विनियोग' मे और अधिक कमी करती है; और इस प्रकार का क्रम चलता रहता है; तथा उत्पादन (या आय) सतुलन स्तर (जो कि रेखा EE बताती है) से बहुत नीचे गिर जाता है।

यहाँ पर एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है कि अधोगति की अवस्था (downswing phase) में त्वरक अपनी शक्ति के साथ (forcefully) कार्य नहीं करता जितना कि वह उत्कर्ष या विस्तार (upswing or expansion) की अवस्था मे करता है। अधोगति की अवस्था मे त्वरक अप्रभावपूर्ण व अकार्यशील (ineffective or inoperative) हो जाता है। इसका कारण इस प्रकार है : इसमें सन्देह नहीं है कि कुल आय व उपभोग में कमी 'प्रेरित विनियोग में कमी' (decrease in induced

---

[2] The retardation in the growth of output caused by the ceiling is sufficient for the downturn in output. For some time the economy may limp along the line CC from point S to T, but ultimately output (and income) must have a downturn. In the words of Hicks, "when the path has encountered the ceiling, it must (after a time) bounce off from it, and begin to move in a downward direction. This downward movement is inevitable."

[3] But there is a time-lag between the hitting of the ceiling and the begining of the downswing ; in the figure the time-lag is equal to the time interval involved in moving from point S to point T, but sooner or later the downswing in output (and income) must start.

investment) उत्पन्न करेगी, अर्थात् 'अविनियोग' (disinvestment) को उत्पन्न करेगी; परन्तु 'अविनियोग' की एक सीमा होगी जिससे नीचे वह नही जायेगा (अर्थात्, एक सीमा से नीचे 'विनियोग में कमी' नहीं होगी), और वह सीमा है पूँजीगत स्टॉक (capital stocks), जैसे मशीन, यन्त्र, इत्यादि, की घिसाई की मात्रा (the amount of depreciation)। [उदाहरणार्थ, त्वरक के उल्टी दिशा में कार्य करने के परिणामस्वरूप, मन्दी के एक समय में, 300 लाख (अर्थात् 30 million) रुपये के बराबर 'विनियोग मे कमी' या 'अविनियोग' होना चाहिए था, परन्तु मन्दी के उस समय में पूँजीगत स्टॉक (अर्थात् मशीन, यन्त्र, इत्यादि) की घिसाई की मात्रा 100 लाख (या 10 million) रुपये है, तो इस मन्दी-समय के लिए अधिकतम अविनियोग की मात्रा 100 लाख रु० होगी (न कि 300 लाख रु० जो त्वरक के पूर्णरूप से कार्य करने का परिणाम होती)। इस प्रकार 'अधोगति की अवस्था' में गुणक का प्रभाव रहता है, और त्वरक का प्रभाव बहुत ही कम होता है या वह कार्य करना बन्द कर देता है।] इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में उत्पादन (या आय) 'एक नीचे की सीमा' अर्थात् 'फ्लोर' (floor), जो कि रेखा FF बताती है, से नीचे नही गिरेगा।[54] अर्थव्यवस्था केवल एक तरह की 'मन्दी के संतुलन' (slump equilibrium) में आ जाती है, अर्थात् अर्थव्यवस्था फ्लोर रेखा FF पर टकरा खाती रहती है (अर्थात bump करती रहती है) तथा उसकी प्रवृत्ति इस फ्लोर रेखा FF से नीचे जाने की नही रहती है।[55]

6. उत्थान अवस्था : बिन्दु M से ऊपर की ओर चलन (Recovery Phase : the upward movement from point M)

संकुचन या मन्दी के समय मे अर्थव्यवस्था में उत्पादन (या आय) फ्लोर रेखा FF से नीचे नही गिरता है। अर्थव्यवस्था कुछ समय के लिए FF रेखा पर चल सकती है, अर्थात बिन्दु L से बिन्दु M तक चल सकती है; परन्तु अन्त में 'उत्थान' होगा। संकुचन या मन्दी की अवस्था में यद्यपि 'प्रेरित विनियोग त्वरक के माध्यम से' (induced investment via accelerator) कार्य नहीं करता है, परन्तु 'आत्मशासित विनियोग' लगभग एक स्थिर दर से बढना जारी रखता है, यह उत्थान में सहायक होता है; कुल विनियोग धनात्मक (positive) हो जाते हैं; आय व उत्पादन धीरे-धीरे बढने लगते हैं और अर्थव्यवस्था 'उत्थान की अवस्था' मे आ जाती है।[56]

परन्तु जैसे जैसे आय व उपभोग मे वृद्धि होती है; त्वरक अधिक क्रियाशील (more active) हो जाता है; गुणक तथा त्वरक की आपसी प्रक्रिया अर्थात् 'लीवरेज' विस्तार की संचयी प्रक्रिया (cumulative process of expansion) को उत्पन्न कर देता है; आय या उत्पादन में वृद्धि संतुलन रेखा EE को पार करके आगे चली जाती है; और आय या उत्पादन पुनः सीलिंग को हिट करता है; जहाँ वह टकराकर और उछलकर फिर वापस आ जाता है, तथा दूसरे चक्र के 'नीचे के चलन' को फिर शुरू कर देता है।[57]

---

[54] फ्लोर रेखा FF 'आत्मशासित विनियोग' × 'गुणक' द्वारा निर्धारित होती है। (The floor line FF is set by autonomous investment × the multiplier.)

[55] The economy simply gets into a short of 'slump or depression equilibrium'; the economy simply bumps along the floor line FF with no tendency to continue on its downward path, it does not go below the line FF.

[56] Though induced investment (via-accelerator) does not work during the contraction or depression phase, but the autonomous investment continues increasing at a more or less constant rate, this ... recovery, total investment becomes positive; income and output rise slowly, the economy gets on the path of recovery.

[57] From the ceiling, as before, it (that is, output or income) bounces off and initiates the downward movement of another cycle.

व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने के उपाय
(REMEDIES FOR THE CONTROL OF BUSINESS CYCLES)

व्यापार-चक्र समाज के आर्थिक जीवन के लिए हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। तेजियाँ (booms) व्यापारियों तथा उत्पादकों के लिए ऊँचे लाभ प्रदान कर सकती हैं, परन्तु वे समाज के निर्धन तथा मध्यम वर्गों के लिए बहुत अधिक कठिनाइयाँ या कष्ट उत्पन्न करती हैं। मन्दियाँ तथा संकट (depressions and crises) समाज की समस्त व्यापारिक क्रिया पर अत्यधिक बुरे प्रभाव डालते हैं। व्यापार-चक्र उत्पादन, रोजगार और आय में अधिक उच्चावचन (fluctuations) उत्पन्न करके न केवल श्रमिकों के लिए ही बल्कि समस्त समाज के लिए कठिनाइयाँ व कष्ट उत्पन्न करते हैं।

अतः व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। इनको नियंत्रित करने के लिए तीन मुख्य उपाय बताये जाते हैं :

1. मौद्रिक नीति (Monetary Policy)
2. राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)
3. स्वचालित स्थायीकारक (Automatic stabilizers)

अब हम इनमें से प्रत्येक की थोड़ी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

1. मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

मौद्रिक तत्त्व व्यापार-चक्रों को उत्पन्न करने के कारक (cause) हों या न हों, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे चक्रीय उच्चावचनों (cyclical fluctuations) को बढ़ा देते हैं। 'विस्तार की अवस्था' में द्रव्य की पूर्ति और बैंक-साख में वृद्धि स्फीति शक्तियों (inflationary forces) को बढ़ा देती है, जिसके परिणामस्वरूप कीमतें, लागत-ढाँचा तथा लाभ ऊँचे हो जाते हैं। 'संकुचन या मन्दी की अवस्था' में द्रव्य-पूर्ति तथा बैंक-साख का संकुचन विस्फीति दशाओं (deflationary conditions) को बढ़ा देता है, जिसके परिणामस्वरूप कीमतें बहुत नीची हो जाती हैं, हानियाँ होती हैं और एक निराशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है।

अतः चक्रीय उच्चावचनों को बढ़ने या उत्तेजित (aggravate) होने से रोकने के लिए एक उचित मौद्रिक नीति की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में एक देश का केन्द्रीय बैंक एक महत्त्वपूर्ण भूमिका (crucial role) अदा करता है। केन्द्रीय बैंक की अपनी शस्त्रशाला (armoury) में, मौद्रिक तथा बैंकिंग व्यवस्था पर नियंत्रण करने के लिए, अनेक शस्त्र (weapons) होते हैं, और ये शस्त्र है—खुले बाजार की क्रियाएँ (open market operations), बैंक-दर में परिवर्तन (manipulation of bank rate), नैतिक प्रभाव (moral suasion), कोष-अनुपात (reserve ratio) में परिवर्तन, प्रत्यक्ष नियंत्रण (direct control), इत्यादि। भूतकाल (past) में व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने के लिए इंगलैण्ड तथा अमेरिका में इन शस्त्रों या तरीकों का प्रयोग किया जा चुका है। विस्तार की अवस्था में केन्द्रीय बैंक इन शस्त्रों की सहायता से द्रव्य तथा बैंक-साख के विस्तार पर रोक लगाता है और इस प्रकार तेजी की दशाओं को रोकता है। दूसरी ओर, संकुचन व मन्दी के समय में केन्द्रीय बैंक बैंक-दर को नीचा करके, सस्ती द्रव्य नीति (cheap money policy) का प्रयोग तथा अन्य तरीकों द्वारा द्रव्य की पूर्ति व बैंक साख को बढ़ाता है, तथा इस प्रकार से मन्दी की दशाओं को रोककर 'उत्थान' में सहायता करता है।

पुराने समयों में (in former times) चक्रीय उच्चावचनों को नियंत्रित करने के लिए मौद्रिक नीति एक महत्त्वपूर्ण शस्त्र (या उपाय) समझा जाता था। परन्तु अब इसका प्रयोग सीमित (limited) है। कैंज के अनुसार व्यापारियों के कार्य 'पूँजी की सीमान्त कुशलता' (marginal efficiency of capital) अर्थात् लाभ की प्रत्याशित दर (expected rate of profit) से निर्देशित (guide) होते हैं। ब्याज की ऊँची दरें विनियोग को निरुत्साहित (discourage) नहीं करेंगी यदि

लाभ की आशाएँ ऊँची हैं; इसी प्रकार ब्याज की नीची दरें विनियोग को प्रोत्साहित (encourage) नहीं करेंगी यदि लाभ की आशाएँ बहुत नीची हैं।

मौद्रिक नीति की कुछ कठिनाइयों व कमजोरियों के होने पर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि चक्रीय उच्चावचनों की तीव्रता (intensity or violence) को कम करने में मौद्रिक नीति का एक स्थान (role) है। कींज भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि ब्याज की नीची दर विनियोग को प्रोत्साहित करने और इसलिए रोजगार को बढ़ाने में सहायक होती है।

परन्तु मौद्रिक नीति अकेले पर्याप्त नहीं होती है। अब यह स्वीकार किया जाता है कि इसको राजकोषीय नीति के साथ में प्रयोग करना अधिक प्रभावकारी होता है।

2. राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

'राजकोषीय नीति' का रिश्ता उन नीतियों से होता है जो कि सरकार की आयों तथा व्ययों से सम्बन्धित होती हैं; दूसरे शब्दों में, एक राजकोषीय नीति में निम्न बातें शामिल होती हैं—सरकार द्वारा (i) करारोपण (taxation), (ii) व्यय (expenditure), तथा (iii) उधार लेना (borrowing)।

राजकोषीय नीति का उद्देश्य या उसकी भूमिका (role) 'निजी व्यय में कमी' की क्षतिपूर्ति करने या 'प्रभावपूर्ण माँग' में उच्चावचनों को कम करके, व्यापारिक क्रिया में स्थायित्व प्रदान करना होता है।[58] अतः इस दृष्टि से या इस सन्दर्भ में राजकोषीय नीति को 'क्षतिपूर्ति राजकोषीय नीति' (compensating fiscal policy) या 'चक्रीय-विरोध राजकोषीय नीति' (contra-cyclical fiscal policy) भी कहा जाता है।

मन्दी-काल में आय बहुत नीची होती है, निजी व्यय तथा प्रभावपूर्ण माँग (private spending and effective demand) बहुत नीचे स्तर पर होते हैं, इसलिए सरकार सार्वजनिक व्यय (public expenditure) को बढ़ाने का प्रयत्न करती है ताकि आय व माँग को बढ़ाया या उत्तेजित (boost up) किया जा सके। इस सन्दर्भ में सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम (public works programme) का शुरू करना महत्त्वपूर्ण है। इस कार्यक्रम का अर्थ है कि सरकार सड़कों, नहरों, पुलों, स्कूलों, अस्पतालों, तथा इसी प्रकार के कुछ अन्य सार्वजनिक कार्यों पर द्रव्य व्यय करती है; इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था में क्रय-शक्ति (purchasing power) को 'पम्प' (pump) कर दिया जाता है; परिणामस्वरूप आय व माँग में वृद्धि होती है तथा 'उत्थान' (recovery) शुरू होने में सहायता मिलती है।

परन्तु, 'सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम' के सम्बन्ध में कुछ बातें ध्यान में रखने की हैं—(i) इन कार्यक्रमों के लिए धन या वित्त की व्यवस्था, केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर अथवा और अधिक नोट छापकर करनी चाहिए; दूसरे शब्दों में, सरकार को 'हीनार्थ बजट' (*deficit budgeting or deficit financing*) का सहारा लेना चाहिए। (ii) इन कार्यक्रमों के लिए समय का चुनाव (timing) महत्त्वपूर्ण है, सरकार के पास कार्यक्रम या योजना तैयार रहनी चाहिए; मन्दी के प्रथम चिह्न (first signs) दिखायी देते ही इन कार्यक्रमों को लागू कर देना चाहिए। (iii) जब 'उत्थान' अपने पूरे जोर में आ जाता है तथा अर्थव्यवस्था 'विस्तार' की ओर जाने लगती है, सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को धीरे-धीरे (gradually) बन्द करना चाहिए; तथा सरकार को 'अतिरेक बजट' (*surplus budgeting*) की नीति को अपनाना चाहिए।

3. स्वचालित स्थायीकारक (Automatic Stabilizers)

ऐसे 'राजकोषीय शस्त्रें' (fiscal tools) जिनका प्रयोग सरकार के 'निर्णय' या उसके 'विवेक' (discretion) [illegible] निर्भर करता है, तथा ऐसे 'राजकोषीय शस्त्रों' जो कि कार्यकरण में

[58] The object or role of the fiscal policy is to stabilize business activity by compensating the private spending or fluctuations in effective demand.

स्वचालित होते हैं, के बीच भेद किया जाता है।[9] जिन मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों (या शस्त्रों) का ऊपर विवेचन कर चुके हैं वे ऐसी नीतियाँ है जिनमे सरकारी अफसरों को इस बात का चुनाव या निर्णय करना पड़ता है कि कौनसी नीति का प्रयोग किया जाये और किस समय किया जाये। इसके विपरीत 'स्वचालित स्थायीकारक' मे इस प्रकार के चुनाव या निर्णय की आवश्यकता नही पड़ती, वे स्वयं अपने आप कार्य करते हैं अर्थात् स्वचालित होते हैं। "वे (अर्थात् 'स्वचालित स्थायीकारक') एक ओर तो व्यक्तियों व कोरपोरेशनों तथा दूसरी ओर सरकार के बीच आय या द्रव्य के प्रवाह (flow) मे स्वतः परिवर्तन करते हैं; और ऐसा परिवर्तन अपने आप उचित रूप मे चक्रीय-विरोधी (counter-cyclical) होता है।" इस अर्थ मे 'स्वचालित-स्थायीकारक' अपने आप 'संकट को सोखने वाले' (automatic shock-absorbers) की भाँति कार्य करते है तथा चक्रीय उच्चावचनों मे कमी करते है।[10]

मुख्य स्वचालित स्थायीकारक निम्नलिखित है :

(i) बेरोजगारी क्षतिपूर्ति कार्यक्रम या बेरोजगारी बीमा (unemployment compensation programme or unemployment insurance)

(ii) व्यक्तियो तथा कोरपोरेशनो के लिए 'वर्द्धमान या आरोही आय-कर' (progressive income-taxes relating to persons and corporations)।

पहले 'बेरोजगारी क्षतिपूर्ति कार्यक्रम' को लेते है। विस्तार या समृद्धि काल मे बेरोजगारी की बीमा-किस्तों के भुगतान के कारण बेरोजगारी कोष (unemployment funds) बड़ी मात्रा में इकट्ठे हो जाते है, क्योकि समृद्धि काल मे 'बेरोजगारी को सहायता के लिए भुगतान' (unemployment relief payments) बहुत कम या न के बराबर होते है; निजी व्यक्तियो से सरकार को इन कोषो का प्रवाह (flow) स्वचालित होता है, जिसमे कोई निर्णय (सरकार द्वारा) लेने की आवश्यकता नही होती है। निजी व्यक्तियो से सरकार को बेरोजगारी बीमा-किस्तो के रूप मे द्रव्य का प्रवाह, समृद्धिकाल मे, व्यय को घटाता है। दूसरी ओर, मन्दीकाल मे सरकार स्वतः एकत्रित कोषो या फण्डो में से बेरोजगारी सहायता के लिए द्रव्य देती है, और इस प्रकार से उपभोग व्यय को अधिक नीचे नही गिरने दिया जाता है।

यह ध्यान देने की बात है कि समृद्धिकाल मे व्यक्तियो से सरकार को कोषो या फण्डो का हस्तांतरण (transference); तथा मन्दी काल मे सरकार से व्यक्तियों को कोषो का हस्तांतरण स्वचालित होता है, जिसमे कोई निर्णय की जरूरत नही होती है।

अब हम 'वर्द्धमान करारोपण' (progressive taxation) के स्वचालित स्थायीकारक को लेते हैं। समृद्धिकाल मे कोरपोरेशनो के लाभ (corporate profits) ऊँचे होते है, कर की वर्द्धमान दरों (progressive rates) के कारण सरकार को कोरपोरेशनो के बढ़ते हुए लाभो मे से बढ़ती हुई कर-राशि प्राप्त हो जाती है; इस सीमा तक द्रव्य का संचलन' (circulation of money) कम हो जाता है, दूसरी ओर, मन्दीकाल मे कोरपोरेशनो के लाभ नीचे होते हैं और कर की वर्द्धमान दरों के कारण सरकार को अपने आप कर-राशि की कम मात्रा मिलती है, तथा इस प्रकार द्रव्य

---

[9] A distinction is made between fiscal tools which require judgment and discretion on the part of the government in their use and those fiscal tools which are automatic in their operation.

[10] "They (i. e., automatic stabilizers) automatically change the flow of income or money between individuals and corporations on the one hand and the government on the other. And the change is such as to be appropriately counter-cyclical in its direction." In this sense automatic stabilizers serve as automatic shock-absorbers and reduce cyclical fluctuations.

का संचालन बहुत कम नहीं हो पाता है। इसी प्रकार की स्थिति व्यक्तियों की आयों के सम्बन्ध में होती है। समस्त प्रक्रिया स्वचालित होती है।

यह बताया जाता है कि स्वचालित स्थायीकारकों का प्रभाव संकुचन काल में अधिक होता है अपेक्षाकृत विस्तार काल के।

व्यापार-चक्रों के नियंत्रण के सम्बन्ध में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—व्यापार-चक्र एक जटिल समस्या (complex phenomenon) है; कोई भी एक नीति अकेले उन पर प्रभावपूर्ण रोक या नियंत्रण नहीं लगा सकती है; वास्तव में मौद्रिक नीति; राजकोषीय नीति तथा स्वचालित स्थायीकारकों के उचित व विवेकपूर्ण मिश्रण (judicious mix) की आवश्यकता है।

प्रश्न

1. व्यापार-चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   Discuss critically the monetary theory of business cycles.
2. निम्न में से व्यापार-चक्र के किसी भी एक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए—
   (i) हायेक का अतिविनियोग सिद्धान्त,
   (ii) शुम्पीटर का नवप्रवर्तक सिद्धान्त,
   (iii) कैंज का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त।
   Explain critically any one of the following theories of business cycles :
   (i) Hayek's Theory of Over-investment,
   (ii) Schumpeter's Innovation Theory,
   (iii) Keynes' Theory of Business Cycles.
3. अपनी पसन्द के किसी एक व्यापारिक चक्र सिद्धान्त की विवेचना कीजिए और बताइए कि आपने इस सिद्धान्त को क्यों चुना ?
   Critically discuss any one business cycle theory of your choice and give reasons for your selecting this particular theory for discussion
   [संकेत—हिक्स के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।]
4. "यदि गुणक तथा त्वरक एक-दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करते हैं, तो अर्थव्यवस्था में एक चक्रीय प्रवृत्ति रहती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
   "If the multiplier and accelerator interact, there is an inherent cyclical tendency in the economy" Comment on this statement
   अथवा
   हिक्स के व्यापार-चक्र सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
   Discuss Hicksian theory of Business Cycles.
   अथवा
   व्यापार-चक्र के सबसे अधिक संतोषजनक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
   Discuss the most satisfactory theory of Business Cycle.
   [संकेत—इन सभी प्रश्नों के उत्तर में हिक्स के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।]
5. व्यापार-चक्रों से आप क्या समझते हैं ? इनको हटाने के लिए सरकार क्या उपाय करती है ?
   What are business cycles ? What measures does a Government take to remove them ?

वितरण का समष्टि-आर्थिक सिद्धान्त

(Macroeconomic Theory of Distribution)

आय का व्यक्तिगत तथा कार्यात्मक वितरण

(PERSONAL AND FUNCTIONAL DISTRIBUTION OF INCOME)

आय वितरण के दो प्रकार (kinds) होते हैं—'आय का व्यक्तिगत वितरण' (personal distribution of income) तथा 'आय का कार्यात्मक (या साधन सम्बन्धी) वितरण' [functional (or factoral) distribution of income]। वितरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत हमारा सम्बन्ध 'कार्यात्मक वितरण, से होता है चाहे हम व्यष्टि-स्तर (micro-level) अथवा समष्टि-स्तर (macro-level) पर विवेचना करें।[1]

कार्यात्मक वितरण का अर्थ (The Concept of Functional Distribution of Income)

कार्यात्मक वितरण के अन्तर्गत हम इस बात का अध्ययन करते है कि उत्पादन-प्रक्रिया (production process) में अपने कार्यों या अपनी सेवाओं की देन (contribution) के लिए विभिन्न उत्पत्ति के साधनो को किस प्रकार पुरस्कार (rewards) दिये जाते है। दूसरे शब्दों मे,

> "उत्पादक प्रक्रिया में आर्थिक साधनों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है, तथा साधनों की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए साधनों के स्वामियों को भुगतान दिया जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन में हिस्से के लिए स्वामियो का अधिकार (claim) उत्पन्न होता है।" अतः कार्यात्मक वितरण का अर्थ "राष्ट्रीय उत्पादन (या राष्ट्रीय आय) में हिस्से के प्रति अधिकारो से है जो कि आर्थिक साधनों के स्वामित्व के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।[2]

परम्परागत रूप से (traditionally), उत्पादन के साधन चार वर्गों (classes) मे बाँटे जाते हैं—भूमि, श्रम, पूंजी और साहस; तथा इनके पुरस्कारो या कीमतों को क्रमशः (respectively) लगान, मजदूरी, ब्याज और लाभ कहा जाता है। इस प्रकार, कार्यात्मक वितरण का सिद्धान्त इस बात का अध्ययन करता है कि उत्पत्ति के साधनों की 'सापेक्षिक (relative) कीमतों' या उनके 'सापेक्षिक हिस्सों' का किस प्रकार निर्धारण होता है। दूसरे शब्दों मे, कार्यात्मक वितरण राष्ट्रीय आय के उत्पत्ति के साधनों में बंटन (allocation) का अध्ययन करता है।[3]

---

[1] In the theory of distribution we are concerned with the functional distribution whether we deal at the micro-level or macro-level.

[2] "The productive process requires the services of economic resources, and payment must be made to the owners of the resources in order to secure their services. This gives rise to a claim by resource owners to a share of national output." Hence, functional distribution means "the claims on the national output (or national income) that arise out of the ownership of economic resources."

[3] In other words, the functional distribution studies the allocation of national income to the factors of production.

कभी आधुनिक अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय के दो मोटे वर्गों (two broad categories) में बंटन की बात करते हैं—(i) श्रम-आय (*labour income*) अर्थात् मजदूरी तथा वेतन आय, तथा (ii) गैर-श्रम आय (*non-labour income*), अर्थात् सम्पत्ति-आय (*property income*)। "सम्पत्ति आय में वह आय शामिल होती है जो कि पूंजीगत यन्त्र अथवा प्राकृतिक साधनों के रूप में आर्थिक साधनों के स्वामित्व से प्राप्त होती है। राष्ट्रीय आय लेखांकन (national income accounting) *के अन्तर्गत सम्पत्ति आय को लगानों, ब्याज, तथा लाभों के रूप में दिखाया जाता है।*[4] इस प्रकार,

> **कार्यात्मक-वितरण आय के उस सामान्य आधारभूत विभाजन की विवेचना करता है जो कि श्रम तथा गैर-श्रम-आय में विभाजित की जाती है; तथा यह कुल आय में से विभिन्न प्रकार के गैर-मानवीय आर्थिक साधनों को प्राप्त होने वाले सापेक्षिक हिस्सों, अर्थात कुल आय में से विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति के सापेक्षिक हिस्सों, की भी विवेचना करता है।**[5]

संक्षेप में, प्रो० बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, आय का कार्यात्मक वितरण वह वितरण है जो कि सम्पत्ति, या उत्पत्ति के साधन, के प्रकार के अनुसार उनके स्वामियों में बँटता है।[6]

आय के व्यक्तिगत वितरण की धारणा (The Concept of Personal Distribution of Income)

व्यक्तिगत आय (personal income) का अर्थ है विभिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों में आय का वितरण। एक व्यक्ति की आय के अन्तर्गत विभिन्न स्रोतों (different sources) से अर्जित की हुई सब आय शामिल होती है।

व्यक्तिगत आय आंशिक रूप से (partly) आय के कार्यात्मक वितरण पर निर्भर करती है इसका अभिप्राय है कि एक व्यक्ति की आय निर्भर करती है—(a) आर्थिक साधनों (अर्थात, भूमि, श्रम तथा पूंजी) की मात्रा जिस पर कि व्यक्ति विशेष का स्वामित्व है; (b) साधनों की सेवाओं के प्रयोग करने की सीमा; तथा (c) उत्पादक प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले साधन की प्रत्येक इकाई की कीमत। नि सन्देह, आधुनिक समाज में आय का कार्यात्मक वितरण आय के व्यक्तिगत वितरण का एक महत्वपूर्ण निर्धारक-तत्व है, परन्तु एक व्यक्ति की आय के अन्य स्रोत (other sources) भी होते हैं; और सभी स्रोतों से प्राप्त आय व्यक्तिगत आय को निर्मित (constitute) करती है।[7]

---

[4] Sometime modern economists talk about the allocation of national income into two broad categories (i) *labour income*, that is, wages and salary income, and (ii) *non labour income*, that is, *property income*. "Property income consists of income derived from ownership of economic resources in the form of either capital equipment or natural resources. In national income accounting property income takes the form of rents, interest and profits"

[5] Functional distribution discusses the broad fundamental division of income into labour and non-labour income, and it also discusses "the relative share of the income-total that accrues to the different types of non human economic resources, that is, the relative share in the income total of different types of property"

[6] In short, to use the words of Prof Boulding, functional distribution of income is "distribution according to the kind of asset or 'factor of production' owned."

[7] Examples of various sources of income of an individual are given below A person may own a land (from which he will get some rent), he may have a fixed deposit in a bank (from which he may get some interest) may be employed as a clerk in a firm (from which he will get salary or wages), he may get some transfer payments (say, in the form of relief payments or other type of economic help from government). Income from all these sources will constitute income of a person. If he pays a certain amount of money in the form of tax to the government, his income will be reduced.

उदाहरणार्थ, हस्तांतरण भुगतान, जैसे, राहत-भुगतान, बेरोजगारी क्षतिपूरक भुगतान, इत्यादि एक व्यक्ति की आय मे वृद्धि करेंगे; जबकि कर (taxes) व्यक्तिगत आय मे कमी करेंगे।[8]

व्यक्तिगत आय वितरण का सिद्धान्त (theory of personal income distribution) विभिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों मे राष्ट्रीय आय के वितरण के स्वरूप (pattern) का अध्ययन करता है ; यह व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों के बीच आय की असमानताओं के कारणों का अध्ययन करेगा।

वितरण के व्यष्टि सिद्धान्त तथा समष्टि सिद्धान्त के विचार
(CONCEPTS OF MICRO ECONOMIC THEORY AND MACRO ECONOMIC THEORY OF DISTRIBUTION)

आय के कार्यात्मक वितरण के अध्ययन के सम्बन्ध मे हमारा दृष्टिकोण व्यष्टि या समष्टि (micro or macro approach) हो सकता है।

> **वितरण का व्यष्टि सिद्धान्त (*Microeconomic Theory of Distribution*) इस बात की व्याख्या करता है कि उत्पत्ति के साधनों की कीमतें अथवा उनके पुरस्कार कैसे निर्धारित होते हैं। दूसरे शब्दों में, यह इस बात का अध्ययन करता है कि ब्याज की दर, श्रम की मजदूरी-दर, भूमि की लगान-दर तथा साहसी का लाभ कैसे निर्धारित होता है।[9]**

वास्तव में, आय के वितरण का व्यष्टि सिद्धान्त सही अर्थों में राष्ट्रीय आय के वितरण का सिद्धान्त नहीं है, बल्कि यह केवल एक ऐसा सिद्धान्त है जो इस बात की व्याख्या करता है कि उत्पत्ति के साधनों की 'सापेक्षिक कीमतें' (*relative prices*) कैसे निर्धारित होती हैं। "यह सिद्धान्त हमें इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर नहीं देता कि श्रम-आय (अर्थात् मजदूरियों व वेतनों) तथा गैर-श्रम-आय या सम्पत्ति-आय (अर्थात्, लगान, ब्याज तथा लाभ) मे राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार निर्धारित होता है।" यह कार्य वितरण के समष्टि सिद्धान्त का है।[10]

आय के वितरण का समष्टि आर्थिक सिद्धान्त (*Macroeconomic Theory of Distribution of Income*) **उत्पत्ति के साधनों की कुल कीमतों' (*aggrgeate prices*) अथवा कुल पुरस्कारों (*aggregate rewards*) के निर्धारण की व्याख्या प्रस्तुत करता है; अर्थात् यह सिद्धान्त राष्ट्रीय आय मे विभिन्न उत्पत्ति के साधनो के कुल हिस्सों (aggregate shares) का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों मे,**

---

[8] Personal distribution of income partly depends on functional distribution of income, this means that the income of a person depends on (a) the quantity of economic resources (that is, land, labour and capital) owned by him (b) the extent to which the services of the resources are being utilized, and (c) the price that is paid for each unit of the economic resource used in the productive process. No doubt the functional distribution of income is a major determinent of personal distribution of income in modern society, but there are other sources of income of a person, and the income (or earnings) from all the sources constitute personal income. For example, transfer payments (like relief payments, unemployment compensation) will increase the income of a person; while the taxes will decrease personal income.

[9] Microeconomic theory of distribution explains how the prices (or rewards) of the factors of production are determined. In other words, it studies how the rate of interest, wage rate of labour, rate of rent of land, profit of entrepreneur are determined.

[10] As a matter of fact Microeconomic Theory of Distribution of Income is not a theory of distribution of national income in the real sense but it is simply a theory that explains how the *relative prices* of resources or factors of production are determined. "It does not provide us with an answer to the vital question of how the distribution of national income into labour income (that is, wages and salaries) and non-labour or property income (that is, rent, interest and profit) is determined." This is the task of macroeconomic theory of distribution.

वितरण का समष्टि आर्थिक सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि राष्ट्रीय आय में मजदूरियों का कुल हिस्सा, लगान का कुल हिस्सा, ब्याज का कुल हिस्सा तथा लाभ का कुल हिस्सा कैसे निर्धारित होता है। अथवा, यह सिद्धान्त कुल आय या राष्ट्रीय आय के श्रम-आय तथा सम्पत्ति-आय में वितरण का अध्ययन करता है।[11]

इस प्रकार,

वितरण के व्यष्टि-आर्थिक सिद्धान्त का सम्बन्ध उत्पत्ति के साधनों की सापेक्षिक कीमतों (relative prices) के निर्धारण से होता है; जबकि वितरण का समष्टि आर्थिक सिद्धान्त कुल आय या राष्ट्रीय आय में उत्पत्ति के साधनों के सापेक्षिक हिस्सों (relative shares) का अध्ययन करता है।[12]

उन्नीसवीं शताब्दी में तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्थशास्त्रियों ने मुख्यतया वितरण के व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त से सम्बन्ध रक्खा; अर्थात् उन्होंने साधनों की सापेक्षिक कीमतों या साधनों के बंटन (allocation) के निर्धारण का तथा राष्ट्रीय आय (या राष्ट्रीय उत्पादन) की संरचना (composition) का अध्ययन किया। उन्होंने कुल राष्ट्रीय आय में से उत्पत्ति के साधनों के 'कुल हिस्सों' (total shares) के वितरण पर उचित ध्यान नहीं दिया।

सन् 1936 में कैंज (Keynes) की पुस्तक 'General Theory of Employment, Interest and Money' के प्रकाशन के बाद से, अर्थशास्त्रियों की रुचि (interest) अर्थव्यवस्था में अल्पकाल में कुल आय व रोजगार के स्तर के निर्धारण की समस्या की ओर हस्तांतरित (shift) हुई। "द्वितीय विश्वयुद्ध से आर्थिक विकास की समस्या तथा राष्ट्रीय आय के वितरण से सम्बन्धित प्रश्नों पर एक नई और गहरी रुचि शुरू हुयी। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्रियों ने वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त पर ध्यान देना शुरू किया।"[13]

प्रारम्भिक समयों (earlier times) में, रिकार्डो तथा कार्ल मार्क्स ने उत्पत्ति के साधनों में राष्ट्रीय आय के वितरण का विश्लेषण किया था, परन्तु इस सम्बन्ध में उनके द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त अपर्याप्त (inadequate) थे। "प्रावैगिक दृष्टिकोण से आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए न तो रिकार्डो ने और न मार्क्स ने ही आय के वितरण का एक सन्तोषजनक सिद्धान्त प्रस्तुत किया।"[14]

आय वितरण के नये समष्टि आर्थिक सिद्धान्त मुख्यतया आय व रोजगार के आधुनिक सिद्धान्त के ढाँचों पर आधारित है। हमारे समक्ष आय वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोई भी एक सर्व-स्वीकृत और पूर्ण सिद्धान्त नहीं है।[15]

हम नीचे दिये गये दो मुख्य समष्टि सिद्धान्तों (macro theories) की विवेचना प्रस्तुत करेंगे—

---

[11] Macro economic theory of distribution explains how in the national income the total share of wages, total share of rent, total share of interest, and total share of profit is determined Or, the macro theory of distribution studies the distribution of total income (or national income) into labour income and property income

[12] Micro economic theory of distribution is concerned with the determination of 'relative prices' of factors of production, whereas macro economic theory of distribution studies the determination of 'relative shares' of the factors in the total income or national income.

[13] "Since World War II there has been a renewed and intensive interest in the phenomenon of economic growth and with questions having to do with the distribution of the national income. In other words, economists started paying their attention on the macro-economic theory of distribution "

[14] "Neither Ricardo nor Marx provides the modern economy with a satisfactory theory of income distribution in a dynamic setting."

[15] Recent theories of macro economic distribution of income are based primarily on the framework of modern income and employment theory We do not have any one fully acceptable and complete macroeconomic theory of income distribution.

1. कालडोर का आय वितरण का समिष्ट-आर्थिक सिद्धान्त (*Kaldor's Macroeconomic Theory of Distribution*)
2. वीनट्रौब का आय वितरण का समिष्ट आर्थिक सिद्धान्त (*Weintraub's Macroeconomic Theory of Income Distribution*)

कालडोर का आय वितरण का समिष्ट-आर्थिक सिद्धान्त
(KALDOR'S MACROECONOMIC THEORY OF DISTRIBUTION)

1. प्राक्कथन (Introduction)

कालडोर ने आय के वितरण के एक समिष्ट आर्थिक सिद्धान्त को प्रतिपादित (propound) किया है। उन्होंने कींज (Keynes) के सैद्धान्तिक आर्थिक ढाँचे का प्रयोग किया है। आय वितरण के समिष्ट आर्थिक सिद्धान्तों में कालडोर का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त इनका सिद्धान्त आर्थिक विकास के सिद्धान्तों (theories of economic growth) में भी एक स्थान रखता है; इनके सिद्धान्त मे विकास निर्भर करता है राष्ट्रीय आय के लाभो तथा मजदूरियों मे वितरण पर।

> "कालडोर आय के कार्यात्मक वितरण को ऐसे चरों (जैसे कुल बचत तथा कुल निवेश) के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित करने का प्रयत्न करते हैं जो कि आय और रोजगार के निर्धारण में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, उनके विश्लेषण को आय वितरण का योगिक (aggregate) या समिष्ट आर्थिक सिद्धान्त कहना उचित है।"[16]

2. मान्यताएं (Assumptions)

कालडोर अपने सिद्धान्त या मॉडल को निम्नलिखित मुख्य मान्यताओं के आधार पर बनाते है—

1. कालडोर राष्ट्रीय उत्पादन या राष्ट्रीय आय (Y) को मजदूरियों (W) तथा लाभों (P) मे विभाजित करते हैं। मजदूरियों अर्थात W के अन्तर्गत शारीरिक श्रम तथा वेतन दोनों शामिल होते हैं, जबकि लाभ अर्थात P सम्पत्ति-स्वामियों तथा साहसियों दोनों की आय को बताता है। दूसरे शब्दों मे, इसका अर्थ है कि समाज की आय को दो साधनों—श्रमिक तथा पूंजीपतियों—मे बाँटा जाता है। इस प्रकार कालडोर इस मान्यता से शुरू करते हैं कि
$$Y = W + P$$
2. वह मान लेते है कि समाज मे पूर्ण रोजगार की स्थिति है; इसका अभिप्राय है कि 'कुल आय' (या कुल उत्पादन) दी हुयी है।
3. 'मजदूरी-समूह' (या श्रमिकों) तथा 'गैर-मजदूरी समूह' (अथवा सम्पत्ति स्वामियों या पूंजीपतियो) दोनों समूह के लिए 'बचत करने की प्रवृत्तियाँ' स्थिर हैं।[17]
4. पूंजीपतियों की 'बचत करने की प्रवृत्ति' (propensity to save) अधिक होती है श्रमिकों की 'बचत करने की प्रवृत्ति' से; अर्थात 'लाभ-आय' मे से बचत करने की प्रवृत्ति अधिक होती है अपेक्षाकृत 'मजदूरी-आय' मे से बचत करने की तुलना में।[18] कालडोर के अनुसार समस्त अर्थव्यवस्था मे स्थायित्व (stability) के लिए यह

---

16 "Kaldor seeks to relate the functional distribution of income directly to variables (such as total savings and total investment) that are of crucial importance, in the determination of income and employment, his analysis is appropriately described as an aggregate or macroeconomic theory of income distribution."

17 Propensities to save are constant for both the 'wage-group' (or labourers) and 'non-wage group' (or property-owners or capitalists).

18 दूसरे शब्दों में, इसका अभिप्राय है कि पूंजीपतियों की 'उपभोग-प्रवृत्ति' (propensity to consume) कम होती है श्रमिकों की उपभोग-प्रवृत्ति की तुलना में।

एक आवश्यक दशा (necessary condition) है। [यह बात आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।]

3. कालडोर के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ (Essential Features of Kaldor's Theory)

कालडोर यह बताने का प्रयत्न करते है कि निवेश (I) और आय (Y) के अनुपात (ratio of Investment I to income Y) मे परिवर्तन राष्ट्रीय आय में लाभो तथा मजदूरियो के सापेक्षिक हिस्सो (relative shares) मे किस प्रकार परिवर्तन उत्पन्न करता है।

कालडोर के सिद्धान्त या मॉडल की विशेषताओ के सारांश को समीकरणों की श्रृङ्खलाओं (a series of equations) के रूप मे बताया जा सकता है—

$$Y = W + P \quad (1)$$

जबकि, Y = राष्ट्रीय आय या उत्पादन [National Income or Output]

W = मजदूरी (कुल) [Wages (total)]

P = लाभ (कुल) [Profit (total)]

उपर्युक्त समीकरण केवल एक समता (identity) है जो कि बताती है कि कुल आय (Y) निर्मित (constitute) होती है मजदूरियो (W) तथा लाभों (P) से।

कालडोर के अनुसार अर्थव्यवस्था के (पूर्ण रोजगार के स्तर पर) सन्तुलन के लिए अनुमानित निवेश I (intended or *ex-ente* investment, I) बराबर होना चाहिए अनुमानित बचत S (intended or *ex-ente* savings S) के। इस प्रकार संतुलन की आधारभूत दशा (basic condition for equilibrium) को इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$I = S \quad (2)$$

माना कि अर्थव्यवस्था के लिए कुल बचत (अनुमानित अर्थात् *ex-ente*) को S द्वारा बताया जाता है, मजदूरी-आय (wage-income) मे से बचत को S_w द्वारा तथा लाभ-आय (profit-income) मे से बचत को S_p द्वारा बताया जाता है; तो कुल बचत (S) बराबर होगी S_w तथा S_p के योग (sum) के। इस प्रकार—

$$S = S_w + S_p \quad (3)$$

वास्तव मे सन्तुलन की अवस्था मे बचत दो आय-वर्गों (अर्थात्, मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं तथा लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं) की 'बचत करने की औसत प्रवृत्ति' (average propensity to save) पर निर्भर करती है। माना कि मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओ (wage-earners) की 'बचत करने की औसत प्रवृत्ति को' s_w तथा लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं (profit recipients) की बचत करने की औसत प्रवृत्ति को s_p के द्वारा व्यक्त किया जाता है; तो

मजदूरी-आय मे से कुल बचत की मात्रा (S_w) को निम्न समीकरण (equation) द्वारा बताया जाता है—

$$S_w = s_w \times W \quad (4)$$

तथा लाभ-आय मे बचत की कुल मात्रा (S_p) को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है—

$$S_p = s_p \times P \quad (5)$$

अब हम अर्थव्यवस्था मे कुल बचत को निम्न प्रकार से व्यक्त करते है—

$S = S_w + S_p$

or $S = s_w \times W + s_p \times P$ [From equation nos. (4) and (5)]

or $S = s_w (Y - P) + s_p \times P$ [From equation no. 1 we have $W = Y - P$; and here for W we have put $Y - P$]

$$\text{or } S = s_w Y - s_w P + s_p \times P$$
$$\text{or } S = P\,(s_p - s_w) + s_w\,Y \qquad (6)$$

अब हम सन्तुलन की आधारभूत दशा (basic condition of equilibrium), जो कि समीकरण नं० 2 द्वारा दी जा चुकी है, को इस प्रकार लिखते हैं—

$$I = S$$
$$\text{or } I = P(s_p - s_w) + s_w Y$$ [By putting the value of S from equation no. 6]

उपर्युक्त समीकरण के दोनों पक्षों (sides) को Y से भाग देने से हमें निवेश (I) तथा आय (Y) का अनुपात (अर्थात्, $\frac{I}{Y}$) प्राप्त हो जाता है जो कि नीचे दिया गया है—

$$\frac{I}{Y} = (s_p - s_w)\,\frac{P}{Y} + s_w \qquad (7)$$

समीकरण नं० 7 के दोनों पक्षों (sides) को $(s_p - s_w)$ से भाग देने तथा पुनर्व्यवस्थित (rearrange) करने पर हमे राष्ट्रीय आय (Y) में लाभ (P) का अनुपात प्राप्त हो जाता है अर्थात् $\frac{P}{Y}$ प्राप्त हो जाता है जैसा कि नीचे दिखाया गया है—

$$\frac{P}{Y} = \frac{1}{(s_p - s_w)} \times \frac{I}{Y} - \frac{s_w}{(s_p - s_w)} \qquad (8)$$

उपर्युक्त समीकरण नं० 8 राष्ट्रीय आय (Y) में लाभ (P) के हिस्से या अनुपात (share or ratio of profit) को बताती है, अर्थात् $\frac{P}{Y}$ को बताती है। इस सम्बन्ध में कालडोर के कथन या थीसिस (proposition or thesis) को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

कुल राष्ट्रीय आय में लाभ का हिस्सा (अर्थात् $\frac{P}{Y}$) एक फंक्शन है निवेश तथा आय के अनुपात (अर्थात् $\frac{I}{Y}$) का। दूसरे शब्दों में, निवेश-आय अनुपात (अर्थात् $\frac{I}{Y}$) में वृद्धि आय में लाभ के हिस्से (अर्थात् $\frac{P}{Y}$) में वृद्धि करेगा, जबकि यह मान लिया जाता है कि s_p तथा s_w दोनों दिये हुये (या स्थिर) हैं, तथा यह भी मान लिया जाता है कि s_p अधिक है s_w से।[19]

[19] The share of profit in the total national income $\left(\frac{P}{Y}\right)$ is a function of the ratio of investment to income $\left(\frac{I}{Y}\right)$. In other words, an increase in the investment income ratio $\left(\frac{I}{Y}\right)$ will cause an increase in the share of profit in income $\left(\frac{P}{Y}\right)$, when it is assumed that both s_p and s_w are given or constant, and also that $s_p > s_w$.

यह ध्यान देने की बात है कि कालडोर अपने सिद्धान्त या मॉडल में (केंज की भांति) निवेश (investment) को एक स्वतन्त्र-चर (independent variable) मानते हैं ; अर्थात निवेश बचत-प्रवृत्तियों (s_p तथा s_w) से अप्रभावित रहता है अथवा यह कहिए कि निवेश बचत-प्रवृत्तियों (saving propensities) के प्रति अप्रक्रियात्मक (unresponsive) होता है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि राष्ट्रीय आय में लाभ का हिस्सा 'निर्भर करता है' निवेश-आय अनुपात (investment-income ratio) पर, अर्थात वह फंक्शन (function) होता है निवेश-आय अनुपात का। अब हम इस कथन या थीसिस (proposition or thesis) के पीछे आर्थिक कारण या तर्क (economic reasoning) को देखेंगे। पूर्ण रोजगार की मान्यता के अन्तर्गत, निवेश-व्यय (investment expenditure) में वृद्धि, वास्तविक शब्दों में, निवेश-उत्पादन (या आय) अनुपात, अर्थात् $\frac{I}{Y}$ तथा बचत-उत्पादन (या आय) अनुपात, अर्थात $\frac{S}{Y}$, दोनों में वृद्धि उत्पन्न करेगा। यह आवश्यक है कि यदि वास्तविक निवेश के एक उच्च स्तर पर संतुलन को प्राप्त करना है। यदि बचत-उत्पादन अनुपात (saving-output ratio) में वृद्धि नहीं होती है, तो इसका परिणाम यह होगा कि कीमतों के सामान्य स्तर में निरंतर ऊपर को वृद्धि होगी।-[20] अतः

> "कालडोर के सिद्धान्त का हृदय या केन्द्रीय भाग इस बात में मौजूद है कि यह सिद्धान्त बताता है कि (पूंजीपति वर्ग के पक्ष में) आय के वितरण का परिवर्तन (shift) ऊँचे बचत-उत्पादन अनुपात (higher saving-output ratio) को उत्पन्न करने के लिए जरूरी है। और यह बात (अर्थात् ऊँचा बचत-उत्पादन अनुपात) निरंतर पूर्ण रोजगार संतुलन को, वास्तविक शब्दों में, निवेश के एक ऊँचे निरपेक्ष (absolute) स्तर के साथ, बनाये रखने के लिए आवश्यक-दशा (necessary condition) है।" [21]

उपर्युक्त बिन्दु (point) या बात को थोड़ा और समझाते हैं। कालडोर का सिद्धान्त या मॉडल तभी कार्य करेगा जबकि लाभ-प्राप्त-कर्त्ताओं (या पूँजीपतियों) की बचत-प्रवृत्ति (propensity to save), s_p तथा मजदूरी प्राप्तकर्त्ताओं की बचत-प्रवृत्ति, s_w भिन्न हों, अर्थात् बराबर न हों, सांकेतिक रूप में (symbolically), $s_p \neq s_w$; तथा इसके अतिरिक्त पूंजीपतियों की बचत-प्रवृत्ति अधिक होनी चाहिए मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं की बचत-प्रवृत्ति से। सांकेतिक रूप में (symbolically), $s_p > s_w$। हम इन मान्यताओं को प्रारम्भ में बना चुके हैं। यहाँ पर हम इनके महत्व (significance) को समझ सकते हैं। इस प्रकार इन दोनों मान्यताओं या दशाओं (these two assumptions or conditions) को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$s_p \neq s_w$

तथा $s_p > s_w$ [यह अर्थव्यवस्था के लिए स्थायित्व की दशा है। This is stability condition for the economy].

---

[20] We have seen above that the share of profit in the national income depends on, (or is a function of), investment-income ratio. *Let us see the underlying economic reasoning behind this.* Under the assumption of full employment, an increase in investment expenditure must, in real terms, cause an increase in both the ratio of investment to output (or income), $\frac{I}{Y}$, and also an increase in the saving-output ratio, $\frac{S}{Y}$. This is essential if equilibrium at a higher level of real investment is to be achieved. If the saving-output ratio did not rise, the result would be a continuous upward movement of the general level of prices.

[21] "*The heart of Kaldor's theory lies in his demonstration that a shift in the distribution of income (in favour of the capitalist class) is essential to bring about the higher saving-output ratio which is the necessary condition for a continued full employment equilibrium with a higher absolute level of investment in real terms.*"

कालडोर के अनुसार,

> दूसरी दशा (अर्थात् $s_p > s_w$) अर्थव्यवस्था के स्थायित्व के लिए, तथा आय में लाभ के हिस्से में वृद्धि के लिए भी, एक आवश्यक-दशा (necessary condition) है, जबकि निवेश-आय अनुपात ($\frac{I}{Y}$) में वृद्धि होती है। पूर्ण रोजगार की मान्यता के परिणामस्वरूप वास्तविक आय (या उत्पादन) का स्तर स्थिर (fixed) रहता है, और इसलिए, ऐसी स्थिति के अन्तर्गत, समस्त अर्थव्यवस्था के लिए बचत-उत्पादन अनुपात (या बचत-आय अनुपात $\frac{S}{Y}$)[22] में वृद्धि करने के लिए एक रास्ता है कि, या तो स्वयं बचत करने की प्रवृत्ति (propensity to save) में परिवर्तन किया जावे, परन्तु इस रास्ते को, कालडोर अपनी मान्यता कि s_p और s_w स्थिर हैं के कारण, छोड़ देते हैं; अथवा दूसरा रास्ता है कि वास्तविक आय को नीची बचत-प्रवृत्ति वाले मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं से ऊँची बचत-प्रवृत्ति वाले पूँजीपति वर्ग को हस्तांतरित (shift) किया जाये।[23]

अर्थव्यवस्था की 'स्थायित्व की मात्रा' (*degree of stability* of the economy) निर्भर करती है 'बचत करने की सीमान्त प्रवृत्तियों' (marginal propensities to save) पर, अर्थात् $\frac{1}{s_p - s_w}$ पर, इसको कालडोर 'आय वितरण के चेतना का अंक' (*Coefficient of sensitivity of income distribution*) कहते है; यह राष्ट्रीय आय मे लाभ के हिस्से में परिवर्तन को बताता है जो कि राष्ट्रीय आय मे निवेश के अनुपात या हिस्से मे परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है। यदि दोनों 'बचत करने की प्रवृत्तियों' मे अन्तर थोडा है, तो $\frac{1}{s_p - s_w}$ का अंक (coefficient) बड़ा होगा तथा निवेश-उत्पादन (या आय) अनुपात ($\frac{I}{Y}$) मे थोड़े परिवर्तन लाभ-आय अनुपात ($\frac{P}{Y}$) मे बड़े परिवर्तन उत्पन्न करेंगे और इसलिए आय वितरण मे बड़े परिवर्तन उत्पन्न करेंगे।

---

22 The increase in saving-income ratio is necessary (as we have already discussed) to become equal to the higher investment-income ratio so that new equilibrium is achieved and continued full employment situation is maintained

23 The second condition (*i. e.*, $s_p > s_w$) is a necessary condition for stability in the economy and also for an increase in the share of profit in income when the investment-income ratio ($\frac{I}{Y}$) increases. Because of full-employment assumption the level of real' income (or output) is fixed, and, hence, under such a situation, one way in which an increase in saving-output ratio or saving-income ratio ($\frac{S}{Y}$) for the entire economy can be caused is either through a change in the propensity to save itself, which Kaldor rules out by his assumption that both s_w and s_p are constant. Or, the other way is to cause a shift in the distribution of real income from the wage-earners with the lower propensity to save to capitalist class with the higher propensity to save.

मजदूरी-आय मे से बचत करने की सीमान्त प्रवृत्ति (s_w) के शून्य होने की विशिष्ट स्थिति (special case) में, लाभ की मात्रा को निम्नलिखित सम्बन्ध द्वारा दिया जायेगा ।[24]

$P = \frac{1}{s_p} . I$ [इसको समीकरण नं० 8 में s =0 के मूल्य को रखकर निकाला जाता है। This is derived from equation no. 8 by putting the valve of s =0]

हम देख चुके हैं कि लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं या पूँजीपति वर्ग के पक्ष में आय का पुर्नवितरण जरूरी है ताकि ऊँचे बचत-आय अनुपात (higher saving-income ratio) को प्राप्त किया जा सके तथा अर्थव्यवस्था मे वास्तविक निवेश (real investment) के एक ऊँचे स्तर के साथ निरंतर पूर्ण रोजगार संतुलन को प्राप्त किया जा सके। आय का ऐसा पुर्नवितरण कैसे किया जाये ? (How such redistribution of income is caused ?)

जब भी निवेश-आय अनुपात (investment-income ratio) में वृद्धि होती है तो कीमत-स्तर वह यन्त्र (mechanism) है जिसके द्वारा पूंजीपति वर्ग के पक्ष में आय का पुर्नवितरण होता है। पूर्ण रोजगार की दशा की मान्यता के अन्तर्गत निवेश-व्यय (investment expenditure) मे वृद्धि प्रारम्भ मे कीमतों के सामान्य स्तर मे वृद्धि उत्पन्न करती है। कालडोर के अनुसार, मजदूरियाँ कीमतो से पीछे रहती हैं अथवा मजदूरियाँ कीमत स्तर मे वृद्धि के साथ कदम मिला कर चलने मे असफल रहती हैं[25] ; इसके दो परिणाम होते हैं—(i) पूँजीपति के लिए लाभ-मात्राएँ (profit margins) बढती हैं अर्थात् पूँजीपति वर्ग की आय बढ़ती है, तथा (ii) मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओ की वास्तविक आय (real income) घटती है। चूँकि पूँजीपति वर्ग की 'बचत करने की प्रवृत्ति' (अर्थात् s_p) अधिक होती है मजदूरी प्राप्तकर्त्ताओ की बचत करने की प्रवृत्ति (अर्थात् s_w) से, इसलिए पूँजीपतियों के पक्ष मे 'वास्तविक आय के वितरण में स्फीति प्रेरित परिवर्तन' (*'inflation-induced shift in the distribution of real income'* in favour of the capitalist) अर्थव्यवस्था मे वास्तविक बचत (real saving) के स्तर में सामान्य वृद्धि उत्पन्न करेगा। यह प्रक्रिया (process) तब तक जारी रहेगी जब तक कि बचत-आय अनुपात (saving-income ratio) बढकर ऊँचे निवेश-आय अनुपात (higher investment-income ratio) के साथ पुनः संतुलन मे न हो जाये। अब हम कालडोर की इस मान्यता कि $s_p > s_w$ के महत्व (significance) को अच्छी प्रकार से समझते हैं। इस मान्यता की अनुपस्थिति (absence) में आय के पुर्नवितरण (redistribution) होने पर भी बचत-आय अनुपात (saving-income

---

[24] 'The *'degree of stability'* of the economy depends on the difference of marginal propensities to save, that is, on $\frac{1}{s_p - s_w}$, which Kaldor calls as the *'coefficient of sensitivity of income distribution'*, it indicates the change in the share of profit in income caused by a change in the ratio or share of investment in national income. If the difference between the two marginal propensities is small, the coefficient $\frac{1}{s_p - s_w}$ will be large and small changes in investment-output (or income) ratio ($\frac{I}{Y}$) will cause large changes in profit-income ratio ($\frac{P}{Y}$) and hence large changes in income distribution In the special case of marginal propensity to save out of wage income (sw) is zero, the amount of profits will be given by the following relation :

$P = \frac{1}{s_p} \ I$ (This is derived from equation no. 8 by putting the value of $s_w = 0$)

[25] Wages lag behind prices or the wages fail to keep pace with the rise in price level.

ratio) मे वृद्धि नही होगी और इसलिए अर्थव्यवस्था अस्थायित्व (unstability) की स्थिति मे होगी।

4. सारांश (Summing up)

अब हम कालडोर के आय वितरण के समिष्ट आर्थिक सिद्धान्त की आधारभूत विशेषताओं (fundamental features) का साराश नीचे प्रस्तुत करते हैं—

1. राष्ट्रीय आय मे लाभ का हिस्सा अर्थात् $\frac{P}{Y}$ निवेश-आय अनुपात (investment-income ratio) अर्थात् $\frac{I}{Y}$ का फंक्शन (function) होता है,[26] जबकि यह मान लिया जाता है कि s_p, तथा s_w दोनों दिये हुये या स्थिर (constant) हैं, तथा यह भी मान लिया जाता है कि $s_p > s_w$।

जब राष्ट्रीय आय मे लाभ का हिस्सा निर्धारित हो जाता है तो राष्ट्रीय आय मे से शेष हिस्सा मजदूरियों (wages) का होता है।

2. यद्यपि राष्ट्रीय आय मे लाभ का हिस्सा $\left(\frac{P}{Y}\right)$ तथा वास्तविक मजदूरी दर निवेश-आय अनुपात $\left(\frac{I}{Y}\right)$ के फंक्शन होते है, परन्तु यह कुछ सीमाओं (*limitations*) के अन्तर्गत सही होता है—

(a) वास्तविक मजदूरी दर एक न्यूनतम जीवन-निर्वाह दर से नीची नही हो सकती।

(b) लाभ का हिस्सा एक न्यूनतम लाभ दर से नीचे नही गिर सकता, यह न्यूनतम लाभ दर ऐसी है जो कि पूंजीपतियों को निवेश को प्रेरित (induce) करने के लिए आवश्यक है। लाभ की ऐसी न्यूनतम दर को 'जोखिम प्रीमियम दर' (*risk premium rate*) कहा गया है।

अथवा (Or)

(c) लाभ का हिस्सा 'एकाधिकारी दर की मात्रा' (*degree of monopoly rate*) से नीचे नही गिर सकता; ऐसी लाभ दर का अर्थ है अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण विक्रय राशि (turnover) पर लाभ की न्यूनतम दर।

दशाएं (b) तथा (c) वैकल्पिक (alternative) हैं, इन दोनों में से जो भी ऊँची होगी वह लागू होगी।[27]

---

[26] साधारण भाषा मे 'फंक्शन' (function) का अर्थ है 'निर्भर करता है' (depends on)। अत: उपर्युक्त वाक्य को इस प्रकार भी लिख सकते है—राष्ट्रीय आय मे लाभ का हिस्सा $\left(\frac{P}{Y}\right)$ 'निर्भर करता है' निवेश-आय अनुपात $\left(\frac{I}{Y}\right)$ पर ; ......।

[27] Though the share of profit in national income $\left(\frac{P}{Y}\right)$ (and real wage rate) are functions of investment-income ratio $\left(\frac{I}{Y}\right)$, but this is true under some limitations—(a) the

3. पूँजीपति वर्ग के पक्ष मे आय का वितरण जरूरी है ताकि ऊँचे बचत-आय अनुपात (higher saving-income ratio) को प्राप्त किया जा सके जो कि आवश्यक है वास्तविक शब्दो मे, निवेश की एक ऊँची दर के साथ निरंतर पूर्ण रोजगार संतुलन को बनाये रखने के लिए।[28]

4 कीमत-स्तर वह साधन या यन्त्र (mechanism) है जो कि लाभ प्राप्तकर्त्ताओ या पूँजीपतियो के पक्ष मे आय के पुनर्वितरण को उत्पन्न करता है, यदि निवेश या निवेश-आय अनुपात (investment-income ratio) मे वृद्धि होती है।[29]

5. कालडोर के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Kaldor's Theory)

सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाऐं उसकी मान्यताओ के सम्बन्ध मे हैं :

1. यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता के कारण अत्यन्त सीमित (restricted) हो जाता है। 'पूर्ण रोजगार से कम' (less than full employment) की स्थिति मे सिद्धान्त यह नही बताता कि वास्तविक निवेश मे परिवर्तनो, और इसलिए वास्तविक आय (या उत्पादन) मे परिवर्तनो, के कारण (लाभो तथा मजदूरियों मे) आय का वितरण किस प्रकार प्रभावित होता है। यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर है तो यह सिद्धान्त केवल यह बताता है कि निवेश मे वृद्धि (और इसलिए उत्पादन-क्षमता व आय मे वृद्धि) राष्ट्रीय आय मे गैर-मजदूरी हिस्से (अर्थात लाभ के हिस्से) मे सापेक्षिक वृद्धि (relative increase) करेगा। इस अर्थ मे, कालडोर के सिद्धान्त मे क्लासीकल दृष्टिकोण झलकता है जबकि उनके सिद्धान्त का ढाँचा (structure) कैंज या आधुनिक रोजगार सिद्धान्त का ढाँचा है।[30]

2 कालडोर के अनुसार, यदि निवेश मे वृद्धि की जाती है तो अर्थव्यवस्था को निरंतर पूर्ण रोजगार के स्तर पर तब ही बनाये रखा जा सकता है जबकि, स्फीतिक कीमत-यन्त्र (inflationary price mechanism) द्वारा, आय वितरण लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं या गैर-मजदूरी वर्ग के पक्ष में किया जाता है। इसका अभिप्राय है कि श्रमिकों या मजदूरी-प्राप्त कर्त्ताओं की वास्तविक आय घटती है और उनकी आर्थिक दशा खराब होती है। परन्तु आर्थिक और नैतिक दोनों दृष्टियों से ऐसी स्थिति का औचित्य (justification) नहीं है क्योंकि यह सिद्धान्त मानवीय पूंजी (human capital) के महत्व की उपेक्षा (ignore) करता है। 'मानवीय पूंजी' तथा 'मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं' के अन्तर्गत हम केवल साधारण श्रमिकों को ही नही बल्कि कुशल श्रमिको, वैज्ञानिको,

---

real wage rate cannot be below certain minimum subsistence rate, (b) the share of profit cannot decline below a minimum profit rate necessary for inducing capitalists to invest, this minimum rate of profit has been called '*risk premium rate*,' or, (c) the share of profit cannot fall below the '*degree of monopoly rate*', which means a minimum rate of profit on turnover because of imperfect competition The conditions (b) and (c) are alternative, the higher of the two will apply.

[28] The distribution of income in favour of the capitalist class is essential to bring about the higher saving income ratio which is the necessary condition for a continued full-employment equilibrium with a higher level of investment in real terms.

[29] The price level is the mechanism which brings about the redistribution of income in favour of the profit-receivers or the capitalist class, if there is a rise in investment or investment-income ratio

[30] The theory becomes greatly restricted by its assumption of full employment. Under the situation of 'less than full employment', the theory does not indicate how the distribution of income (in profit and wages) will be affected by changes in real investment and, hence, by changes in real income (or output). It only tells us that increase in investment (and thus an increase in capacity and income), if the economy is at full employment level, will cause a relative increase in the non-wage share (i e, profit share) in the national income. In this sense, Kaldor's theory bears a classical flavour, though his structure is that of Keynes or modern employment theory

मैनेजरों, इंजीनीयरों, इत्यादि को भी शामिल करते हैं। मानवीय-पूँजी की उपेक्षा (neglect) उत्पादन तथा वास्तविक आय में कमी कर सकता है। अतः मानवीय पूँजी की उपेक्षा करने से यह सिद्धान्त एक अत्यन्त सरल सिद्धान्त हो जाता है और यह वास्तविक जगत की स्थिति की व्याख्या करने के योग्य नहीं रह जाता है।[31]

आय वितरण का वीनथ्रोब का समष्टि आर्थिक सिद्धान्त

(Weintraub's Macroeconomic Theory of Income Distribution)

1. प्राक्कथन (Introduction)

आधुनिक वर्षों में प्रो० सिडनी वीनथ्रोब (Sidney Weintraub) ने अपनी पुस्तक 'आय वितरण के सिद्धान्त के प्रति एक दृष्टिकोण' (An approach to the Theory of Income Distribution) में आय के एक समष्टि आर्थिक सिद्धान्त को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो कि बहुत विस्तृत तथा महत्वाकांक्षी (comprehensive and ambitious) है। वह 'कुल पूर्ति फंक्शन' (Aggregate Supply Function या ASF) के विचार का प्रयोग करते हैं और इस विचार को वह वर्तमान कीमतों (current prices), न कि स्थिर कीमतों (constant prices), के शब्दों (terms) में बनाते या निर्माण (construct) करते हैं। उनका विश्वास है कि ASF का वर्तमान कीमतों के शब्दों में (in terms of current prices) निर्माण (construction) एक ओर आय व रोजगार सिद्धान्त तथा दूसरी ओर आय वितरण के समष्टि-आर्थिक सिद्धान्त के बीच एक कड़ी (link) प्रदान करता है।

वीनथ्रोब (Weintraub) का वितरण का समष्टि-आर्थिक सिद्धान्त पर्याप्त रूप से विस्तृत है जो कि इस सिद्धान्त के निम्नलिखित दो उद्देश्यों (*two objectives*) से स्पष्ट होता है—

(i) वह ASF को इस बात को बताने के लिए प्रयोग करते हैं कि रोजगार व उत्पादन में परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय का कार्यात्मक वितरण (functional distribution of income) किस प्रकार परिवर्तित (change) होगा।

(ii) वह कुल माँग फंक्शन (aggregate demand function) को आय के कार्यात्मक वितरण के साथ सम्बन्धित करने का प्रयत्न करते हैं। [इस प्रकार वह अपने सिद्धान्त को पूर्ण और विस्तृत (complete and comprehensive) बनाने का प्रयत्न करते हैं।]

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर हम दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि वीनथ्रोब के सिद्धान्त के दो पक्ष (*two aspects*) हैं—

(i) **कुल पूर्ति फंक्शन तथा सापेक्षिक हिस्सों का सिद्धान्त** (*The Aggregate Supply Function and the Theory of Relative Shares*).

(ii) **आय वितरण तथा कुल माँग फंक्शन** (*Income Distribution and Aggregate Demand Function*).

अब हम उपर्युक्त दोनों पक्षों की अलग-अलग विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

2. कुल पूर्ति फंक्शन तथा सापेक्षिक हिस्सों का सिद्धान्त (The Aggregate Supply Function and the Theory of Relative Shares)

---

[31] *According to Kaldor, if investment is increased, then the economy can be maintained at continued full employment level only when the income is distributed, by inflationary price mechanism, in favour of profit-receivers or non-wage class. This implies that the real income of workers or wage-earners declines and, hence, their economic condition becomes bad. But both economically and ethically this situation is not justified because the theory neglects the importance of human capital.* Under 'human capital' and wage-earners' we include not only ordinary workers but also skilled workers, scientists, managers, engineers, etc. The neglect of human factor may cause a reduction in output and real income. Hence, by neglecting the human capital the theory becomes very simple and is unable to explain the real world situation.

वीनट्रोब कॅंज के कुल पूर्ति फंक्शन (ASF) को लेते हैं और उसमें थोड़ा संशोधन करते हैं। दोनों में अन्तर इस प्रकार है—वीनट्रोब 'विक्रय राशि' (sale proceeds) या 'द्रव्य राशि' (money proceeds) को वर्तमान कीमतों मे मापते है, तथा स्थिर कीमतो मे नही, जैसा कि कॅंज ने किया था।[32] वीनट्रोब कुल पूर्ति फंक्शन (ASF) को बताने के लिए अंग्रेजी के बड़े अक्षर (capital letter) Z का प्रयोग करते हैं और उनकी ASF की परिभाषा को इस प्रकार दिया जा सकता है—

> *कुल पूर्ति फंक्शन (ASF) एक तालिका (schedule) है जिसका सम्बन्ध (वर्तमान कीमतों में व्यक्त की जाने वाली) विक्रय राशियों या द्रव्य राशियों को न्यूनतम स्तरों से होता है जो कि उत्पादकों द्वारा रोजगार के विभिन्न स्तरों को प्रदान करने के लिये आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक द्रव्य-राशि से सम्बन्धित रोजगार का एक विशिष्ट स्तर होगा तथा (विश्लेषण के स्थैतिक स्वभाव के कारण) रोजगार का प्रत्येक स्तर सम्बन्धित होगा, उत्पादन (या वास्तविक आय) के एक विशिष्ट स्तर के साथ।*[33]

चित्र 1

ऐसी एक पूर्ति तालिका (aggregate supply schedule) को चित्र नं० 1 में दिखाया गया है। वीनट्रोब के अनुसार कुल पूर्ति फंक्शन (aggregate supply function) एक सीधी रेखा नही होती अर्थात् वह अरेखीय (non-linear) होती है। कुल पूर्ति रेखा की शक्ल (shape) की विवेचना करते समय वह 'कुल पूर्ति की लोच' (elasticity of aggregate supply) के विचार का प्रयोग करते हैं तथा इस लोच के लिए E_z चिन्ह (symbol) का प्रयोग करते हैं। E_z 'द्रव्य राशि मे परिवर्तन' या 'change in money proceeds' (इसको $\triangle Z$) कहेंगे) तथा 'रोजगार मे परिवर्तन' या 'change in employment' (इसको $\triangle N$ कहेंगे) के बीच सम्बन्ध को बताता है। दूसरे शब्दों मे,

$$E_z = \frac{\text{रोजगार मे आनुपातिक परिवर्तन (Proportional change in employment)}}{\text{द्रव्य राशि मे आनुपातिक परिवर्तन (Proportional change in money)}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{रोजगार मे परिवर्तन (change in employment)}}{\text{रोजगार (Employment)}}}{\dfrac{\text{द्रव्य राशि मे परिवर्तन (Change in money proceeds)}}{\text{द्रव्य राशि (Money proceeds)}}}$$

---

[32] Weintraub takes the Keynesian Aggregate Supply Function (ASF) and modifies it slightly The difference is : Weintraub measures 'sale proceeds' or 'money proceeds' in current prices and not in constant prices as Keynes did

[33] Aggregate Supply Function is a schedule relating to different levels of minimum sale proceeds or money proceeds (expressed in current prices) which are necessary for the producers to provide different levels of employment. In other words, there will be a particular level of employment related with each level of money proceeds and (because of static nature of analysis) each level of employment will be related with a particular level of output (or real income)

$$= \frac{\frac{\Delta N}{N}}{\frac{\Delta Z}{Z}}$$

$$= \frac{\Delta N}{N} \cdot \frac{Z}{\Delta Z}$$

$$= \frac{\Delta N}{\Delta Z} \cdot \frac{Z}{N}$$

जबकि,
N = रोजगार (employment)
△N = रोजगार में परिवर्तन (change in employment)
Z = द्रव्य राशि (money proceeds)
△Z = द्रव्य राशि में परिवर्तन (change in money proceeds)

इस प्रकार,

$$E_z = \frac{\Delta N}{\Delta Z} \cdot \frac{Z}{N}$$

यदि 'लोच का अंक' (elasticity coefficient) इकाई से कम है (अर्थात $E_z < 1$), तो इसका अर्थ है कि द्रव्य राशि (money proceeds) में 1 प्रतिशत वृद्धि रोजगार (और उत्पादन) में 1 प्रतिशत से कम वृद्धि उत्पन्न करेगी। यह घटते हुये उत्पादन (diminising returns) की दशा में सही होगा।[34] वीनग्रोब का विश्लेषण स्वभाव में स्थैतिक (static) है, तथा अल्पकाल (short-run) में, 'अतिरिक्त श्रम के लिए घटते हुये उत्पादन' की स्थिति एक सामान्य स्थिति (normal situation) होगी ; लोच का अंक (E_z) इकाई से कम होगा। माना कि $E_z < 1$ तथा माना कि द्राव्यिक मजदूरी दर (money wage rate) स्थिर (constant or fixed) है, तो कुल पूर्ति रेखा OZ ऊपर को चढ़ती हुयी, और बाँयी तरफ जाती हुयी, होगी जैसा कि चित्र न० 1 में दिखाया गया है। इसका कारण इस प्रकार है—श्रम को घटते हुये उत्पादन तथा स्थिर द्राव्यिक मजदूरी दर के मिश्रण (combination) का अभिप्राय है कि रोजगार में वृद्धि के साथ प्रति इकाई उत्पादन की श्रम-लागतें बढ़ेंगी ; इसलिए OZ रेखा ऊपर को चढ़ती हुयी और बाँयी तरफ जाती हुयी होगी। रोजगार में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रम-लागतों में वृद्धि सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि उत्पन्न करेगी।[35]

अब तक हमने वीनग्रोब के कुल पूर्ति रेखा (अर्थात, Z-रेखा) के विचार तथा उसकी शक्ल की विवेचना की है। हमने देखा कि Z-रेखा (वर्तमान कीमतों के शब्दों में) द्रव्य राशियों money proceeds) तथा रोजगार के स्तर (employment level) के बीच सम्बन्ध को बताती है।

---

[34] यदि E_z इकाई से अधिक है (अर्थात $E_z > 1$), तो इसका अभिप्राय है कि द्रव्य राशि में 1 प्रतिशत की वृद्धि रोजगार में 1 प्रतिशत से अधिक वृद्धि उत्पन्न करेगी। ऐसी स्थिति 'श्रम के लिए बढ़ते हुये उत्पादन' के अन्तर्गत होगी।

(If $E_z > 1$, this means that a 1 per cent increase in money proceeds will cause a more than 1 per cent increase in employment. This would be the situation under the condition of increasing returns to labour).

[35] Weintraub's analysis is static in nature, and in the short run, the normal situation is one of diminishing returns to additional labour, the elasticity coefficient Ez will be less than unity. Assuming that $E_z < 1$ and, further assuming that money wage rate is fixed or constant, then the aggregate supply curve OZ will slope upwards and to the left as shown in figure 1. The reason is that the combination of diminishing returns to labour and constant money wage rate imply that labour costs per unit of output will rise with the increase in employment, hence, the OZ curve rises upwards and to the left. The increase in labour costs, resulting from an increase in employment, will cause a rise in general price level.

रोजगार (या उत्पादन) के प्रत्येक सम्भव स्तर से सम्बन्धित कुल विक्रय-राशि या कुल द्रव्य राशि का वितरण या बंटन (distribution or allocation) विभिन्न उत्पत्ति के साधनों में होना चाहिए ; कुल द्रव्य राशि (total money proceeds) का बंटन निम्न समीकरण (equation) द्वारा दिखाया गया है—

$$Z = wN + F + R \tag{9}$$

जबकि,

Z = कुल द्रव्य राशि अथवा द्रव्य राशि के शब्दों में नापी गयी कुल पूर्ति (Money proceeds or Aggregate supply measured in terms of money proceeds)

w = द्राव्यिक मजदूरी दर (जो कि स्थिर मान ली जाती है) [The money wage rate (which is assumed to be constant)]

N = रोजगार का स्तर (the employment level)

wN = W = कुल मजदूरी बिल (Total wage bill)

F = स्थिर (या इकरारी) आयें या भुगतान, जैसे—लगान, ब्याज तथा इकरारी वेतन [Fixed (or contractual) incomes or payments, such as rents, interest and contractual salaries]

R = अविशेष अथवा लाभ (the residual or profit)

इस प्रकार द्रव्य राशि के शब्दों में नापी गयी कुल पूर्ति (Z) के तीन भाग हैं—wN या W, F, तथा R ; ये तीन भाग और कुछ नहीं है बल्कि राष्ट्रीय आय में क्रमशः मजदूरियों, लगानों या स्थिर आयों, तथा लाभों के कुल हिस्से (total shares) हैं।

कुल पूर्ति फंक्शन (Aggregate Supply Function) का निर्माण करने वाली तीन प्रकार की आयों (अर्थात्, W या wN, F तथा R) के बीच सम्बन्ध को चित्र नं० 2 में दिखाया गया है। रेखा OZ कुल पूर्ति फंक्शन को बताती है। OW रेखा 'कुल मजदूरी बिल' को बताती है। जबकि यह मान लिया जाता है कि द्राव्यिक मजदूरी दर (w) स्थिर रहती है; रोजगार में वृद्धि के साथ कुल मजदूरी बिल बढ़ता है और इसलिए OW रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होती है। बिन्दुकीय रेखा (dotted line) FF' बताती है कुल स्थिर या इकरारी आयों (या भुगतानों) को, और यह रेखा इस प्रकार खींची जाती है कि यह स्थिर (या इकरारी) भुगतानों की कुल मात्रा के बराबर W से अधिक होती है।[36] अविशेष (residual) या लाभ (R) रेखा OZ तथा रेखा FF' में अन्तर के बराबर होता है, अर्थात्, $R = OZ - FF'$।
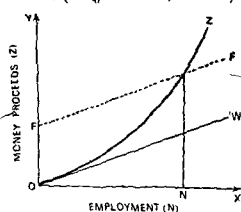
चित्र 2

यह ध्यान देने की बात है कि रोजगार-स्तर ON तक साधनों के भुगतान, या उनकी लागत की तुलना में विक्रय राशि या द्रव्य राशि कम है ; इसका अभिप्राय है कि रोजगार के स्तर N तक लाभ ऋणात्मक (negative) हैं। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था ON से नीचे रोजगार के स्तर पर एक लम्बे समय तक नहीं रह सकती, क्योंकि ऐसी स्थिति में, औसत रूप में, फर्मों को नुकसान होगा।[37]

---

[36] The dotted line FF' indicates total fixed (or contractual) payments and it is drawn in such a way that exceeds W by the total amount of fixed (or contractual) payments

[37] It should be noted that the sale proceeds or money proceeds are less than the payments to, or cost of, the factors upto the employment level ON, this means that profits are negative upto the level of employment N In other words, the economy cannot remain for a long time at an employment level below ON, because under such a situation, the firms, on the average, will suffer losses

अब हम वीनट्रोब के सापेक्षिक हिस्सों के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं *(main features of Weintraub's theory of relative shares)* की विवेचना करेंगे। हम यह मान लेते हैं कि अर्थव्यवस्था मे रोजगार (और उत्पादन) मे विस्तार होता है। कुल आय (या कुल उत्पादन) मे परिवर्तन तीन प्रकार की आयो के सापेक्षिक हिस्सो को प्रभावित करेगा। सापेक्षिक हिस्सों की स्थिति OZ, OW, तथा FF' रेखाओ की शक्ल (shape) से सम्बन्धित मान्यताओ पर निर्भर करेगी।

पहले हम लगान-प्राप्तकर्त्ताओं या स्थिर आय समूह *(rentier or fixed income group)* **को लेते हैं।** यदि OZ रेखा की शक्ल ऐसी है जैसी कि चित्र 2 मे दिखायी गयी है ,तब, कुल आय (या कुल रोजगार या कुल उत्पादन) मे वृद्धि के साथ, लगान-आय प्राप्तकर्त्ताओं के समूह की सापेक्षिक स्थिति (relative position) खराब होगी, क्योंकि समूह की निरपेक्ष द्राव्यिक आय (absolute money income) मे परिवर्तन नही होता है। कुल आय मे वृद्धि के साथ, कीमतो के स्थिर रहने पर भी इस समूह की सापेक्षिक स्थिति खराब होगी; परन्तु कीमतें स्थिर नही रहती क्योकि कुल पूर्ति रेखा OZ ऊपर को चढती हुई है। लगान-प्राप्तकर्त्ताओं के समूह के सापेक्षिक हिस्से मे सुधार (improvement) हो सकता है, यदि आय या उत्पादन और रोजगार मे वृद्धि के साथ सामान्य कीमत स्तर कम होता है, परन्तु स्थिर द्राव्यिक मजदूरी दर और घटते हुये उत्पादन (constant money wage rate and diminishing returns) की हमारी मान्यताओ के कारण ऐसा सम्भव नहीं है।

अब हम चित्र 2 की सहायता से **कुल आय (या कुल उत्पादन) मे मजदूरियों के सापेक्षिक हिस्से की स्थिति** *(position of relative share of wages in total income or output)* **की विवेचना** प्रस्तुत करते है। उत्पादन (तथा रोजगार) के स्तर मे वृद्धि के साथ कुल आय या उत्पादन मे मजदूरी का हिस्सा (अर्थात् $\frac{wN}{Z}$) घटेगा। वास्तव मे, कुल उत्पादन (या कुल आय) मे मजदूरी का हिस्सा कुल पूर्ति की लोच (elasticity of aggregate supply) अर्थात E_z पर निर्भर करेगा। हम यह मान चुके है कि $E_z < 1$, इसका अभिप्राय है घटता हुआ उत्पादन अर्थात् श्रम के लिए घटता हुआ सीमान्त उत्पादन (diminishing returns, that is, diminishing marginal product for labour)। ऐसी स्थिति मे, उत्पादन और रोजगार स्तर मे वृद्धि के साथ OW-रेखा तथा OZ रेखा के बीच अन्तर (gap) बढ़ता जाता है, यह स्थिति चित्र 2 मे दिखायी गई है। इस प्रकार, अल्पकाल मे, श्रम के लिए घटते हुये उत्पादन (diminishing returns to labour) की मान्यता के अन्तर्गत, रोजगार और उत्पादन मे वृद्धि के साथ कुल आय मे मजदूरी का सापेक्षिक हिस्सा घटेगा।

अन्त मे, **हम कुल आय मे लाभ के सापेक्षिक हिस्से** *(relative share of profit in the total income)* **की विवेचना प्रस्तुत करते है।** लाभ एक अवशेष (residual) है, इसलिए लाभ का सापेक्षिक हिस्सा अन्य दो आय-हिस्सों की स्थिति (position) पर निर्भर करेगा। हम देख चुके है कि उत्पादन (और रोजगार) मे विस्तार के साथ लगान-प्राप्तकर्ताओ के समूह (rentier group) का सापेक्षिक हिस्सा घटता है ; लगान-प्राप्तकर्त्ताओ के वर्ग (rentier class) के सापेक्षिक हिस्से मे कमी के परिणामस्वरूप लाभ-प्राप्तकर्त्ताओ या साहसियो के समूह को फायदा (benefit) होता है। हम यह भी देख चुके है कि उत्पादन (और रोजगार) मे वृद्धि के साथ मजदूरी हिस्सा भी घटता है (घटते हुये उत्पादन, या diminishing returns, की मान्यता के परिणामस्वरूप), तो लाभ-हिस्से या अविशेष-हिस्से (residual share) मे वृद्धि और भी अधिक हो जायगी। इस प्रकार सामान्य निष्कर्ष (general conclusion) यह है कि उत्पादन और रोजगार मे वृद्धि या विस्तार (expansion) के साथ कुल आय मे, अविशेष-हिस्सा या लाभ-हिस्सा बढ़ेगा।

वीनट्रोब (Weintraub) के आय वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त का सार *(essence)* **अथवा केन्द्रीय थीसिस** *(central thesis)* **अथवा आधारभूत ढांचे** *(basic framework)* को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

"अल्पकाल में तथा स्थैतिक विश्लेषण की सामान्य दशाओं के अन्तर्गत आय और रोजगार स्तर में वृद्धि आय में ऐसे पुनर्वितरण को उत्पन्न करेगी जो कि, द्राव्यिक

> शब्दों में (in money terms) स्थिर आय वाले व्यक्तियों या समूहों की लागत पर, लाभों के रूप में आय-प्राप्तकर्त्ताओं के पक्ष में होने की प्रवृत्ति रखेगा ; तथा मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं की सम्भाव्य लागत पर भी लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं के पक्ष में आय वितरण होगा—जब तक कि घटते हुये उत्पादन के सिद्धान्त की मान्यता लागू रहती है तथा द्राव्यिक मजदूरी स्थिर रहती है।[38]

प्रो. वीनथ्रोब कुछ अन्य तत्वों की भी विवेचना करते हैं जो कि अर्थव्यवस्था के उत्पादन (या आय) के सापेक्षिक आय-हिस्सो (relative income shares) मे विभाजन के उपर्युक्त आधारभूत ढाँचे (basic framework) को संशोधित (modify) या प्रभावित करते है। वह एकाधिकार का प्रभाव, द्राव्यिक मजदूरियो (money wages) मे वृद्धि, पूँजी के भौतिक स्टॉक (physical stock) मे परिवर्तन, तथा टेक्नोलोजीकल सुधारो की विवेचना करते है। वीनथ्रोब के अनुसार एकाधिकारी स्थिति कुल आय या राष्ट्रीय आय मे मजदूरियो के सापेक्षिक हिस्से को घटायेगी। द्राव्यिक मजदूरियो मे वृद्धि मजदूरियों के सापेक्षिक हिस्से मे वृद्धि कर सकती है या नही भी कर सकती है। कुछ दशाओ मे यह सम्भव है कि पूँजी के भौतिक स्टॉक मे परिवर्तन कुल आय में मजदूरी-हिस्से मे वृद्धि कर सकते है यदि पूँजी स्टॉक मे इस प्रकार के परिवर्तन श्रम की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि करते है। इस प्रकार का परिणाम सम्भव (possible) है परन्तु सदैव निश्चित (certain) नही होता। वीनथ्रोब के अनुसार, इसका कारण यह है कि श्रम का सापेक्षिक हिस्सा न केवल सीमान्त उत्पादकता मे परिवर्तनो पर निर्भर करता है बल्कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता और औसत उत्पादकता के अनुपात (ratio of marginal product to the average product) पर भी निर्भर करता है। अतः "श्रम की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि मजदूरियो के सापेक्षिक हिस्से मे वृद्धि नही करेगी यदि श्रम की औसत उत्पादकता मे उसी अनुपात मे वृद्धि होती है।" पूँजी के स्टॉक मे परिवर्तन तथा टेक्नोलोजी मे सुधार इस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।[39]

3. आय वितरण तथा कुल मांग फंक्शन (Income Distribution and the Aggregate Demand Function)।

अब हम वीनथ्रोब के सिद्धान्त के दूसरे भाग (second part of Weintraub's Theory) की विवेचना प्रस्तुत करते है। उनके सिद्धान्त का पहला भाग कुल पूर्ति फंक्शन तथा उसके अंगो (components), जो कि कुल आय मे उत्पत्ति के साधनो के सापेक्षिक हिस्सो को बताते है, की विवेचना करता है। अपने सिद्धान्त को पूरा करने के लिए वीनथ्रोब वर्तमान कीमतो के शब्दो मे (न कि स्थिर कीमतो के शब्दो मे) कुल मांग फंक्शन (D) का निर्माण करते है।[40] कुल मांग फंक्शन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—

> कुल मांग फंक्शन अर्थव्यवस्था के कुल व्यय तथा कुल आय के वितरण के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। यदि हम इस सम्बन्ध को उल्टी तरफ से देखें तो इसका

---

[38] "In the short run and under the usual conditions of static analysis, a rise in the income and employment level will bring about a redistribution of income which tends to favour the recepients of income in the form of profits at the definite expense of persons or groups whose incomes are fixed in money terms, and at the probable expense of wage earners - as long as the principle of diminishing returns is assumed operative and money wage rates remain constant."

[39] Hence, "an increase in the marginal product of labour will not cause an increase in the relative share of wages if the average product of labour rises in the same proportional." Changes in capital stock and improvements in technology may produce such effect.

[40] To complete his theory, Weintraub constructs an aggregate demand function (D) in terms of current prices

हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी कुल पूर्ति रेखा को भी वर्तमान कीमतों के शब्दो मे निर्माण करते है। (We should remember that he constructed his aggregate supply curve also in terms of current prices).

अभिप्राय है कि कुल आय का वितरण कुल व्यय (या कुल माँग) को प्रभावित करता है।[41]

वीनग्रोब कुल माँग फक्शन का प्रयोग करके अपने सिद्धान्त को पूर्ण व समन्वित (complete and integrated) बनाते है जो कि निम्नलिखित से स्पष्ट है—

> कुल व्यय (अर्थात्, कुल माँग) उत्पादन व आय के स्तर को प्रभावित करता है, तथा उत्पादन व आय का स्तर आय के वितरण को प्रभावित करता है (अर्थात्, आय में उत्पत्ति के साधनों के सापेक्षिक हिस्सों को प्रभावित करता है); तथा आय का वितरण, कुल माँग (या कुल व्यय) के माध्यम से, उत्पादन व आय के स्तर को प्रभावित करता है।[42]

वीनग्रोब के माँग फंक्शन मे मुख्यतया दो प्रकार के व्यय शामिल होते है—(i) उपभोग-व्यय (consumption expenditure) तथा (ii) विनियोग या निवेश व्यय (investment expenditure)। यह मान लिया जाता है कि आय स्तर के प्रति निवेश स्वतंत्र (autonomous) होता है, अर्थात् आय मे परिवर्तन के साथ निवेश मे कोई परिवर्तन नही होता। चूँकि वीनग्रोब का विश्लेषण वर्तमान कीमतो के शब्दो मे है, इसलिए निवेश-व्यय का वर्तमान द्रव्य मूल्य (current money value) कीमत-स्तर मे वृद्धि के साथ बढ़ेगा।

चूँकि निवेश व्यय (investment expenditure) स्वतंत्र (independent or autonomous) मान लिया जाता है, इसलिए वीनग्रोब की कुल माग की धारणा (concept) मे उपभोग-व्यय (consumption expenditure) महत्वपूर्ण है। वीनग्रोब कैंजियन उपभोग फंक्शन (Keynesian consumption function) को मान कर चलते है, परन्तु एक थोड़ा संशोधन (a slight modification) कर देते है। वीनग्रोब अपने विश्लेषण मे केवल वर्तमान व्यय-योग्य आय (current disposable income) को ही शामिल नही करते बल्कि सम्पत्ति-स्टॉक (asset holding) को भी शामिल करते है, ये दो मुख्य तत्व (two main factors) है जो कि उपभोग व्यय को निर्धारित (determine) करते है।[43] उपभोग व्यय (C) को समीकरण के रूप (equation form) मे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$C = cY_d + \lambda A \tag{10}$$

जबकि,

Y_d = वर्तमान व्यय-योग्य आय (current disposable income)

c = उपभोग की औसत प्रवृत्ति (average propensity to consume)

A = सम्पत्ति स्टॉक (Asset holdings)

λ = सम्पत्ति स्टॉक (A) मे से सम्भव अबचतें [possible dissavings out of asset holdings (A)]

उपर्युक्त समीकरण मे सबसे महत्वपूर्ण चर (variable) वर्तमान व्यय-योग्य आय (current disposable income) Y_d है क्योकि यह उपभोग-व्यय तथा आय के वितरण में एक कड़ी (link)

---

[41] The aggregate demand function connects the total expenditure of the economic system to the distribution of total income If we look at this in the reverse way, this means that the distribution of total income affects the total expenditure (or total demand).

[42] The total spending (i e total demand) affects the level of output and income, and the level of output and income affects the distribution of income (i e. the relative shares of factors in income), and the distribution of income, via total demand (or total spending), affects the level of output and income

[43] कैंज के अनुसार केवल एक ही मुख्य तत्व है, अर्थात्, वर्तमान (व्यय-योग्य) आय है, जो कि उपभोग व्यय को निर्धारित करती है। [According to Keynes there is only one main factor, i.e., current (disposable) income, which determines consumption expenditure.]

का कार्य करता है। समीकरण (equation) के रूप मे Y_d को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$Y_d = wN + F + kR \quad (11)$$

उपर्युक्त समीकरण मे, केवल एक नये चर (variable) k को छोड़कर, अन्य सभी चरों का वही अर्थ है जो कि समीकरण नं० 9 (पृष्ठ 104) के अन्तर्गत है। वीनश्रौब के अनुसार k लाभों (R) के उस अंश (fraction) को बताता है जो कि व्यक्तियों मे वास्तव मे वितरित किया जाता है।[44]

यह स्पष्ट है कि समस्त अर्थव्यवस्था के लिए कुल उपभोग फंक्शन मे आय-प्राप्तकर्त्ताओ के तीन मुख्य वर्ग (three main classes of income recepients), अर्थात् लगान-प्राप्तकर्त्ता, मजदूरी-प्राप्तकर्त्ता, तथा लाभ-प्राप्तकर्त्ता (rentiers, wage-earners, and profit-earners) शामिल होते हैं। अतः कुल उपभोग फंक्शन को समझने के लिए, आय व रोजगार के स्तर मे वृद्धि के साथ, हमे उपर्युक्त तीनो वर्गों मे से प्रत्येक वर्ग के उपभोग व्यय का विश्लेषण करना होगा।

पहले हम **लगान-प्राप्तकर्त्ताओं के वर्ग** (*rentier class*) **के उपभोग व्यय या उपभोग फंक्शन की जांच या व्याख्या** (examine) **करते हैं।** कुल पूर्ति फंक्शन (aggregate supply function) की विवेचना करते समय हम पहले देख चुके हैं कि आय-स्तर मे वृद्धि के साथ लगान प्राप्तकर्त्ताओं के वर्ग का सापेक्षिक आय हिस्सा (relative income share) घटता है या खराब (worsen) होता है। इसके अतिरिक्त हम पहले यह मान चुके हैं कि रोजगार, उत्पादन और आय मे वृद्धि के साथ सामान्य कीमत-स्तर मे वृद्धि होगी। अतः ऐसी परिस्थितियो मे, लगान-प्राप्तकर्त्ताओं के वर्ग का उपभोग व्यय बढ़ेगा यदि यह वर्ग अपने वास्तविक उपभोग (real consumption) के पहले के स्तर (original level) को बनाये रखना चाहता है। दूसरे शब्दो मे, इस वर्ग के लिए उपभोग-व्यय रेखा (consumption expenditure curve) ऊपर को चढ़ती हुयी होगी और यह एक निरपेक्ष अधिकतम की स्थिति (position of absolute maximum) मे पहुँच सकती है जोकि इस वर्ग की कुल स्थिर द्राव्यिक आय द्वारा निर्धारित होती है। इसका अभिप्राय है कि इस वर्ग की उपभोग की औसत प्रवृत्ति (average propensity to consume) का बढ़ना जारी रहेगा और अन्त मे यह बढ़कर उस बिन्दु पर 100 प्रतिशत हो जायेगी जहाँ पर कि सामान्य मूल्य स्तर इतना ऊँचा हो गया हो जो कि, वास्तविक उपभोग के प्रारम्भिक स्तर (original level of real consumption) को बनाये रखने के लिए, इस वर्ग को अपनी सम्पूर्ण वर्तमान आय को व्यय कर देने के लिए बाध्य कर दे।

अब हम मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओ के उपभोग व्यय या उपभोग फंक्शन की विवेचना करेंगे। (Now we examine the consumption expenditure or consumption function of wage earners)। मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं की कुल द्राव्यिक आय (या कुल मजदूरी बिल) को चित्र 2 मे OW रेखा द्वारा दिखाया गया है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि द्राव्यिक मजदूरी दर स्थिर (constant) है। रोजगार और आय मे वृद्धि के साथ मजदूरी-प्राप्तकर्त्ता उपभोग पर अधिक व्यय करेंगे; और इसलिए मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं के उपभोग-व्यय को चित्र 3 मे ऊपर को चढ़ती हुयी रेखा OW' द्वारा दिखाया गया है।
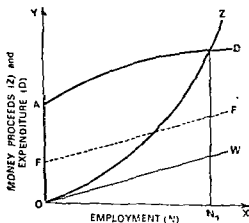
चित्र 3

चित्र-3 मे मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं की उपभोग-व्यय रेखा OW' चित्र 2 मे कुल मजदूरी बिल रेखा OW के समान (similar)

[44] In the above equation all the variables have the same meaning as in equation no. 9 on page 104, except a new variable k According to Weintraub k indicates the fraction of profits (R) which is actually distributed to persons

दिखायी देती है। परन्तु मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं की उपभोग-व्यय रेखा OW' का ढाल (slope) कुछ कम हो सकता है चित्र 2 मे कुल मजदूरी बिल की रेखा OW के ढाल (slope) की तुलना मे ; यह इस मान्यता पर आधारित है कि मजदूरी-प्राप्तकर्ता अपनी द्राविक आय में वृद्धि के साथ अधिक निरपेक्ष मात्राओं (greater absolute amounts) में बचत करते हैं। कीमत-स्तर मे वृद्धि, आय-स्तर मे वृद्धि होने पर भी, मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं की बचत करने की औसत प्रवृत्ति (अर्थात् बचत की जाने वाली वास्तविक आय के अनुपात) को बढने से रोक सकती है, परन्तु अपने वास्तविक उपभोग के स्तर को बनाये रखने के लिए, आय मे वृद्धि के साथ, मजदूरी-प्राप्तकर्ता अपने द्राविक व्यय को निश्चित रूप से बढायेंगे। कुल मिलाकर यह सम्भावना है कि (चित्र 3 मे) मजदूरी-प्राप्तकर्त्ताओं के वर्ग के उपभोग-व्यय को दिखाने वाली रेखा OW' ऊपर को चढ़ती हुयी होगी, परन्तु इसके ऊपर को चढने की दर कुछ कम होगी (चित्र 2 मे) कुल मजदूरी बिल की रेखा OW की तुलना मे।[45]

अब हम लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं या साहसियों के वर्ग के उपभोग-व्यय या उपभोग फंक्शन की विवेचना करते हैं। (Now we examine the consumption expenditure or consumption function of profit reccpients or entreprenuerial class)। साहसियों के वर्ग का उपभोग-व्यय दो बातों पर निर्भर करता है—(i) यह कुल लाभ के उस अनुपात पर निर्भर करता है जो हिस्सेदारो मे लाभांश (dividend) के रूप मे बाँटा जाता है ; तथा (ii) यदि यह अनुपात स्थिर मान लिया जाता है, जबकि अर्थव्यवस्था रोजगार (और उत्पादन) के उस स्तर पर पहुँच जाती है जहाँ पर कि लाभ धनात्मक (positive) होते है (चित्र 2 मे ऐसे रोजगार का स्तर ON है), तो लाभ-प्राप्तकर्त्ताओं (या साहसियो के वर्ग) का उपभोग-व्यय इस बात पर निर्भर करेगा कि आय स्तर मे और अधिक वृद्धि के साथ लाभों (profits) की स्थिति क्या होती है।[46] पहले हम यह मान चुके है कि द्राविक मजदूरी दर तथा लगान-प्राप्तकर्त्ताओं के वर्ग की द्राविक आय स्थिर रहती है, इसलिए कीमत-स्तर मे वृद्धि की तुलना मे लाभ-आय अधिक तेजी से बढेगी। वीनरोब के अनुसार, ऐसी स्थिति के अन्तर्गत वितरित किये गये लाभों मे से उपभोग-व्यय में उसी दर से वृद्धि करके जिस दर से कि सामान्य कीमत स्तर मे वृद्धि हो रही है, साहसी-वर्ग अपने वास्तविक उपभोग स्तर को बनाये रख सकता है। अतः वीनरोब के अनुसार साहसी-वर्ग की उपभोग-व्यय रेखा उस रास्ते पर ऊपर को चढ़ती हुयी होगी जो कि (चित्र 2) में OZ रेखा के लगभग समानान्तर (parallel) होगा।[47]

यदि हम आय-प्राप्तकर्त्ताओं के तीन मुख्य वर्गों (अर्थात् मजदूरी-प्राप्तकर्ता, लगान-प्राप्तकर्त्ता तथा लाभ-प्राप्तकर्त्ता) के उपभोग-व्यय (या उपभोग-व्यवहार) को मिला दें, तो हमें समस्त अर्थ-व्यवस्था के लिए 'कुल उपभोग फंक्शन' (total consumption function) प्राप्त हो जायेगा,

---

[45] Wage earners consumption expenditure curve OW' (in figure 3) appears similar to the total wage-bill curve OW (in figure 2). But the slope of OW' (i. e. wage earners' consumption expenditure curve) may be somewhat less than that of OW curve (in figure 2 showing total wage bill), this is based on the assumption that wage earners save greater absolute amounts as their money income grows. The rise in price level may check wage earners from increasing the average propensity to save (i. e., from increasing the proportion of real income saved) as the income level rises, but the wage earners will certainly increase their money expenditure (with the increase in income) in order to maintain the level of (real) consumption On the whole the possibility is that the curve OW' (in figure 3) showing the consumption expenditure of the wage-earners group will slope upwards at a rate which is slightly less than that of the total wage bill curve OW (in figure 2).

[46] Consumption expenditure of entreprenuerial class depends upon two things—(i) it depends on the proportion of total profit which is distributed to shareholders as dividend ; (ii) if this proportion is assumed to be constant after the economy has reached that level of employment (and output) at which profits are positive (such employment level is ON in figure 2), the consumption expenditure of profit recepients (or entreprenuerial class) will depend on what happens to profits with further increases in income level.

और ऐसा कुल उपभोग फंक्शन ऊपर को सीधी तरफ (right को) चढ़ता हुआ होगा, परन्तु इसके चढ़ने की दर 'कुल पूर्ति फंक्शन' की तुलना मे कम होगी।

इस प्रकार हम कुल उपभोग फंक्शन (total consumption curve) को निकालते (या derive करते) है। हमे 'कुल माँग फंक्शन' (total demand function) प्राप्त हो सकता है, यदि 'कुल उपभोग फंक्शन' मे स्वतंत्र निवेश-व्यय (autonomous investment expenditure) के बराबर द्रव्य-मात्रा (amount) जोड दिया जाये। एक ऐसी कुल माँग रेखा (aggregate demand curve) को चित्र-3 मे AD रेखा द्वारा दिखाया गया है। यदि वास्तविक निवेश (real investment) को स्थिर मान लिया जाये, तो आय और सामान्य कीमत स्तर मे वृद्धि के साथ निवेश के लिए वर्तमान द्राव्यिक व्यय (current money expenditure for investment) मे वृद्धि होगी।

चित्र 3 मे, AD-रेखा तथा OZ-रेखा बिन्दु E पर काटते है और यह कटाव-बिन्दु E रोजगार और आय के संतुलन स्तर को प्रदान करता है जो कि N_1 बताता है। आय के इस संतुलन स्तर N_1 पर 'प्रत्याशित कुल विक्रय राशि' (expected total sale proceeds) ठीक बराबर होगी उपभोक्ताओ और निवेशकर्त्ताओ के वर्गों द्वारा किये गये कुल व्यय (total expenditure of the consuming and investing groups) के।

निष्कर्ष (Conclusion)

यद्यपि वीनथ्रोब का सिद्धान्त अधिक विस्तृत और समन्वित (comprehensive and integrated) है, परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री एक पूर्णतया स्वीकृत (wholly accepted) आय-वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त का विकास या निर्माण करने में सफल नही हो पाये हैं। परन्तु आय वितरण के आधुनिक समष्टि आर्थिक सिद्धान्त मे उभयनिष्ट तत्व (common element) यह है कि वे आधुनिक आय व रोजगार विश्लेषण के सैद्धान्तिक ढाँचे (theoretical framework of modern income and employment analysis) पर आधारित है; इस ढाँचे (framework) के अन्तर्गत आय वितरण के एक पर्याप्त (adequate) समष्टि सिद्धान्त का विकास या निर्माण करने के प्रयत्न किये जा रहे है।

प्रश्न

1. आय वितरण के व्यष्टि तथा समष्टि आर्थिक सिद्धान्त के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए। कालडोर के आय वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
   Distinguish between micro and macro theory of income distribution. Discuss Kaldor's macroeconomic theory of income distribution.
2. आप आय वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त से क्या समझते हैं ? वीनथ्रोब के आय वितरण के समष्टि आर्थिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
   What do you understand by Macroeconomic Theory of Income Distribution ? Discuss Weintraub's Macroeconomic Theory of Income Distribution.

---

[47] Earlier we have assumed constant money wage rate and fixed money incomes for the rentier class, therefore profit income will increase at a greater rate than the rise in price level. Under such a situation, according to Weintraub, the entrepreneurial class can maintain its real consumption expenditure out of the distributed profits at about the same rate at which the general price level is increasing. Hence, according to Weintraub, the consumption expenditure curve of the entrepreneurial class will likely rise upward along a path which is approximately parallel to OZ in figure 2.

परिशिष्ट (Appendix) 2

निवेश : धारणा तथा शब्दावली

[Investment : Concept and Terminology]

निवेश (या विनियोग) का महत्त्व
(SIGNIFICANCE OF INVESTMENT)

निवेश आर्थिक क्रिया (economic activity) के निर्धारण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका (crucial role) अदा करता है। दूसरे शब्दों मे, आय व रोजगार सिद्धान्त में निवेश व्यय (investment expenditure) एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका के तीन बुनियादी (basic) कारण हैं—

(i) **निवेश-व्यय माँग के एक स्रोत (source of demand) का कार्य करता है।** एक अर्थव्यवस्था मे कुल माँग (या कुल व्यय) के अन्तर्गत कुल उपभोग व्यय तथा कुल निवेश व्यय शामिल होते है। सामान्यतया निवेश व्यय अर्थात् पूँजीगत वस्तुओं (capital goods) की माँग बहुत अधिक (quite large) होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में निवेश-माँग कुल माँग का एक महत्त्वपूर्ण अंग (component) होती है।

निवेश माँग में उतार-चढ़ाव (fluctuations) अर्थात् निवेश व्यय मे उतार-चढ़ाव सामान्यतया आय और रोजगार दोनो मे परिवर्तन (changes) उत्पन्न करते हैं तथा इस प्रकार अर्थव्यवस्था मे निवेश एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दूसरी ओर, उपभोग व्यय मे उतार-चढाव (अर्थात् उपभोग वस्तुओं पर व्यय मे उतार-चढ़ाव) आय व रोजगार में उतार-चढावों को उत्पन्न करने की कम सम्भावना रखते हैं। वास्तव मे, उपभोग व्यय में परिवर्तन सामान्यतया आय-स्तर में परिवर्तनों के परिणाम होते हैं, न कि वे आय-स्तर में परिवर्तनों के कारण होते हैं।[1]

(ii) **निवेश व्यय आय व रोजगार के स्तरों में न केवल परिवर्तन उत्पन्न या शुरू करते हैं बल्कि वे प्रभावों में वृद्धि करने का कार्य भी करते है।[2]**

निवेश व्यय अत्यधिक अस्थिर या परिवर्तनशील (highly volatile or variable) होते हैं। दूसरे शब्दों में, पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन में उतार-चढाव अधिक तीव्र (more violent) होते हैं, अपेक्षाकृत उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में उतार-चढाव के।

"अपनी अल्पकालीन परिवर्तनशीलता के कारण, निवेश कुल माँग मे अव्यवस्थाओं या हलचलों के अध्ययन का एक केन्द्रीय भाग होता है—तथा यह नीति-उपायों का भी केन्द्रीय भाग है जो कि इन हलचलों को समाप्त करने या कम करने की दृष्टि से लिए जा सकते हैं।"[3]

---

[1] On the other hand, the fluctuations in consumption expenditure (that is, fluctuations in expenditure on consumer goods) are less likely to cause fluctuations in income and employment. As a matter of fact, changes in consumption expenditure are generally the result of changes in the income level, rather than the other way round.

[2] Investment expenditures not only cause or initiate change in the levels of income and employment, but also work to exaggerate the effects.

[3] "Because of its short-run variability, investment forms a central part of the study of the disturbances in aggregate demand—and of the policy measures which may be taken to smooth out these disturbances."

(iii) निवेश व्यय इसलिए भी महत्वपूर्ण होते हैं कि वे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता (productive capacity) में वृद्धि या विस्तार करते हैं और इस प्रकार वे विकास प्रक्रिया (growth process) में एक केन्द्रीय स्थान (key place) रखते हैं।

निवेश व्यय का अर्थ है पूंजीगत वस्तुओं (capital goods) को प्राप्त करना या खरीदना, और ये पूंजीगत वस्तुएँ और अधिक अन्य वस्तुओ का उत्पादन करती हैं; इस प्रकार अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता मे विस्तार होता है। इसका अर्थ है कि

यद्यपि निवेश-व्यय आय व रोजगार के वर्तमान स्तरों के निर्धारण में एक मुख्य भूमिका अदा करते हैं, परन्तु उत्पादन क्षमता पर आघात (impact) के माध्यम से उसका प्रभाव वर्तमान से आगे जाता है। इस प्रकार निवेश व्यय आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण तत्व होता है, और आर्थिक विकास निर्भर करता है कि कितनी तेजी के साथ उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।" दूसरे शब्दों में, आर्थिक विकास की गति और उसका स्वभाव निवेश की दर के साथ निकट रूप से सम्बन्धित होता है।[4]

निवेश (या विनियोग) की धारणा
(THE CONCEPT OF INVESTMENT)

निवेश नई पूंजीगत वस्तुओं या पूंजीगत सम्पत्तियों को खरीदने के लिए एक समय अवधि के अन्तर्गत व्यय का एक प्रवाह (flow) होता है। पूंजीगत वस्तुओं या पूंजीगत सम्पत्तियों के अन्तर्गत मशीन तथा यन्त्र, निर्माण (जैसे मकान, फैक्ट्रियाँ, इत्यादि) तथा स्टॉक या इन्वेन्ट्री शामिल होते हैं। ये पूंजीगत वस्तुएँ[5] उत्पादन प्रक्रिया मे और अधिक वस्तुओं के उत्पादन मे प्रयोग की जाती है।[6]

निवेश की उपर्युक्त परिभाषा के सम्बन्ध मे हमे निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए—

(1) कड़े रूप मे (strictly speaking), उपर्युक्त परिभाषा 'कुल निवेश' (Gross investment) को बताती है। किसी समय विशेष पर एक देश के पास पूंजीगत वस्तुओं का एक स्टॉक होता है। ये पूंजीगत वस्तुएँ व्यक्तियों, व्यवसायिक फर्मों तथा सरकारो द्वारा शुरू मे या पहले किये गये निवेश (earlier investment) का परिणाम होती हैं। किसी एक समय अवधि के अन्तर्गत घिसायी (depreciation) या पूंजी-उपभोग (capital consumption) द्वारा वर्तमान पूंजी स्टॉक का एक भाग समाप्त हो जाता है, अर्थात् वर्तमान पूंजी स्टॉक का एक भाग सामान्य टूट-फूट, अप्रचलन (obsolescence) तथा आकस्मिक विनाश (accidental destruction) के कारण समाप्त हो जाता है। अतः नई पूंजीगत वस्तुओं का एक भाग उन पूंजीगत वस्तुओं को प्रतिस्थापित (replace) करने के लिए आवश्यक होगा जो कि घिस चुकी है या उपभोग द्वारा भुगत चुकी हैं और इस प्रकार नई पूंजीगत वस्तुओ का एक भाग वर्तमान पूंजी स्टॉक को समूचा

---

4 "This means that even though investment expenditures play a key role in determining current levels of income and employment, their influences reaches beyond the present by means of their impact upon productive capacity. Investment expenditures, thus, are vital factors in economic growth, which depends to a great extent upon how rapidly productive capacity is being enlarged" In other words, the speed and character of economic growth is closely related to the rate of investment.

5 As a matter of fact capital goods are simply that factor of production which is produced by the factors of prduction—land, labour and capital

6 *Investment is a flow of expenditure over a given period of time for the purchase of 'new' capital goods or capital assets* Capital assets or capital goods include machinery and equipment, construction (e g, houses, factories, etc), and inventory. These capital goods are used in the production process to produce more goods.

(intact) बनाए रखने के लिए आवश्यक होगा ; इसको 'प्रतिस्थापन निवेश' (replacement investment) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त नयी पूंजीगत वस्तुओं का एक भाग 'पूंजीगत वस्तुओं में शुद्ध या वास्तविक वृद्धि' (net addition to capital goods) को बतायेगा। दूसरे शब्दों में, कुल निवेश (gross investment) = शुद्ध या वास्तविक निवेश (net investment) + प्रतिस्थापन निवेश (replacement investment)।[7] इस प्रकार,

"निवेश का सार (essence) है कि यह या तो घिसी हुयी पूंजी को प्रतिस्थापित करता है (अर्थात्, प्रतिस्थापन निवेश) या पूंजी के स्टॉक में वृद्धि करता है (अर्थात्, शुद्ध या वास्तविक निवेश)। 'शुद्ध या वास्तविक निवेश' शब्द को तथा 'पूंजी-निर्माण' शब्द को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।"[8]

(ii) अर्थशास्त्र में, निवेश केवल नयी पूंजीगत वस्तुओं को खरीदने से सम्बन्ध रखता है; इसका सम्बन्ध वर्तमान प्रतिभूतियों (securities), बॉण्डों व शेयरों, मौजूदा पूंजी या भूमि के खरीदने से नहीं होता है।[9]

वर्तमान प्रतिभूतियों, बॉण्डों व शेयरों, मौजूदा पूंजी या भूमि को खरीदना निवेश नहीं होता क्योंकि यह कार्य अर्थव्यवस्था के पूंजी-स्टॉक में कोई वृद्धि नहीं करता ; अर्थशास्त्र की दृष्टि से ऐसी खरीदें केवल 'अधिकारों के हस्तांतरण या धन के हस्तांतरण' (*transfer of claims or transfer of wealth*) को बताती है। साधारण भाषा में ऐसी खरीदों को एक व्यक्ति निवेश मानता है क्योंकि ये खरीदें उसकी पूंजी में वृद्धि करती हैं ; परन्तु अर्थशास्त्र के अन्तर्गत इसे 'निवेश' या 'वास्तविक निवेश' (real investment) नहीं कहा जायेगा ; अर्थशास्त्र में, इसे केवल 'व्यक्तिगत वित्तीय निवेश' (*personal financial investment*) अथवा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को 'धन का हस्तातरण' (transfer of wealth) कहा जायेगा। अतः आर्थिक दृष्टि से 'निवेश' या 'वास्तविक निवेश' 'तथा व्यक्तिगत वित्तीय निवेश' एक ही बात नहीं है।[10]

एक स्थिति में, व्यक्तिगत वित्तीय निवेश, आर्थिक दृष्टि से, निवेश या वास्तविक निवेश हो जाता है। "ऐसी स्थिति तब होती है जबकि हम नये निर्गमित (newly issued) शेयरों या बॉण्डों को खरीदते है, और केवल जबकि उनकी धनराशि को प्रत्यक्ष रूप से नये यन्त्र या प्लांट को खरीदने में लगाया जाता है तब ही हमारा 'व्यक्तिगत वित्तीय निवेश' का कार्य समाज के धन में वृद्धि करता है; और इस प्रकार, आर्थिक दृष्टि से, यह निवेश हो जाता है।"[11]

---

[7] During any period of time, part of the existing capital stock vanishes through *depreciation* (or capital consumption), that is, through ordinary wear and tear, obsolescence and accidental destruction. Hence, a part of the new capital *goods will* be required to replace those that are depreciated or consumed, and thus, to maintain *existing capital* stock intact, this is called **'replacement investment'** Whereas a part of the new capital goods will represent a *net addition* to capital goods ; this is called **net investment.** In other words, gross investment = net investment + replacement investment.

[8] "The essence of investment is that it either replaces the worn-out capital (replacement investment) or increases the stock of capital (net investment) *Net investment* may be used interchangeably with the term capital-formation "

[9] In economics, investment refers only to the purchase of new capital goods ; it does not refer to the purchase of existing securities, bonds and shares, existing capital or land.

[10] Thus, from economic viewpoint 'real investment' or 'investment' is not the same thing as 'personal financial investment'.

[11] In one situation 'personal financial investment' becomes *'real investment'* or 'investment' in the economic sense — "Only when we buy *newly issued shares or bonds*, and then only when their proceeds are directly allocated to new equipment or plant does our act of personal financial investment is the addition to wealth to the community (and it becomes investment in the economic sense)."

निवेश की किस्में या उसका वर्गीकरण

(KINDS OR CLASSIFICATION OF INVESTMENT)

निवेश की विभिन्न किस्मो या वर्गो (kinds or categories) को जानना महत्त्वपूर्ण है क्योकि निवेश की किस्म के अनुसार ही निवेश-निर्णय (investment-decisions) विभिन्न तत्त्वो (different factors) द्वारा निर्धारित (determine) किये जायेंगे। निवेश की मुख्य किस्मे नीचे दी गयी हैं—

1. कुल तथा शुद्ध निवेश (Gross and Net Investment)
2. इनवेन्ट्री या स्टॉक (Inventories or Stocks)
3. मशीनरी तथा यन्त्र (Machinery and Equipment)
4. *निर्माण (Construction)*
5. सार्वजनिक निवेश (Public Investment)
6. स्वतंत्र तथा प्रेरित निवेश (Autonomous and Induced Investment)

अब हम निवेश के प्रत्येक वर्गीकरण (classification) की कुछ विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

कुल तथा शुद्ध निवेश

(GROSS AND NET INVESTMENT)

1 **प्राक्कथन** (Introduction)

कुल निवेश तथा शुद्ध निवेश मे अन्तर विश्लेषणात्मक दृष्टि (analytical point of view) से अत्यन्त उपयोगी है।

2 **कुल निवेश का अर्थ** (The Concept of Gross Investment)

कुल निवेश को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं—

"कुल निवेश का अर्थ नयी उत्पादित पूंजीगत वस्तुओ से होता है जो कि एक समय अवधि (जैसे, एक वर्ष मे) प्राप्त की जाती है।"[12]

3. **शुद्ध निवेश का अर्थ** (The Concept of Net Investment)

शुद्ध निवेश को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—

सामान्यतया, शुद्ध निवेश एक समय अवधि के अन्तर्गत पूंजीगत वस्तुओं में शुद्ध या वास्तविक वृद्धि (net addition) है। दूसरे शब्दों मे, जबकि एक वर्ष के प्रारम्भ की तुलना मे उस वर्ष के अन्त मे पूंजीगत वस्तुओं की अधिक मात्रा मौजूद होती है, तो शुद्ध निवेश उपस्थित होगा। 'शुद्ध निवेश' शब्द तथा 'पूंजी-निर्माण' शब्द एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग किये जा सकते हैं।

दूसरे शब्दो मे, कुल निवेश मे से 'घिसायी' (depreciation) या 'प्रतिस्थापन-निवेश' (replacement investment) को घटा देने से 'शुद्ध निवेश' प्राप्त होता है। घिसाई (depreciation) अथवा पूंजी-उपभोग (capital consumption) के अन्तर्गत सामान्य टूट-फूट (normal wear and tear), अप्रचलन (obsolescence), तथा आकस्मिक विनाश (accidental destruction) शामिल होता है, क्योकि ये तीनो अंग (elements) पूंजी के मूल्य को घटाते हैं। इस प्रकार, एक समय अवधि के अन्तर्गत 'नई उत्पादित पूंजीगत वस्तुओं' (newly produced capital goods) मे से, अर्थात् 'कुल निवेश' (gross investment) मे से, एक भाग घिसी हुयी पूंजीगत वस्तुओं को प्रतिस्थापित (replace) करने के लिए आवश्यक होगा। इसका अभिप्राय (meaning) है—

कुल निवेश का एक भाग प्रतिस्थापन-निवेश के लिए चला जायेगा। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापन निवेश आकार, गुण, तथा मूल्य की दृष्टि से पूंजीगत वस्तुओं या

[12] "Gross investment is the quantity of newly produced capital goods acquired during a period of time (say, a year)."

पूंजीगत सम्पत्तियों के एक दिये हुये स्टॉक को ज्यों का त्यों (intact) बनाये रखने के लिए जरूरी होगा। ऐसे प्रतिस्थापन-निवेश के लिए धन या पूंजी का प्रबन्ध (finance) सामान्यतया फर्म द्वारा निर्मित घिसाई कोषों में से किया जाता है।[13]

समस्त स्थिति को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

कुल निवेश = शुद्ध निवेश + घिसाई (या प्रतिस्थापन निवेश)

[Gross Investment = Net Investment + Depreciation (or Replacement Investment)]

अथवा (Or)

शुद्ध निवेश = कुल निवेश — घिसाई (अथवा प्रतिस्थापन निवेश)

[Net Investment = Gross Investment — Depreciation (or Replacement Investment)]

इस प्रकार, सामान्य शब्दों में, शुद्ध निवेश एक समय अवधि में पूंजी-स्टॉक में 'परिवर्तन' (*'change'* in capital stock) के बराबर होता है। 'परिवर्तन' का अर्थ पूंजी स्टॉक में 'वृद्धि' (increase) से हो सकता है अथवा पूंजी स्टॉक में 'शून्य' (zero) परिवर्तन से हो सकता है अथवा पूंजी स्टॉक में 'कमी' (decrease) से हो सकता है। दूसरे शब्दों में, शुद्ध निवेश 'धनात्मक' (positive), 'शून्य' (zero), अथवा 'ऋणात्मक' (negative) हो सकता है—

(a) यदि कुल निवेश केवल 'घिसाई' के लिए ठीक पूरा पड़ता है और इस प्रकार पूंजी स्टॉक को केवल ज्यों का त्यों (intact) बनाये रखता है तो 'शुद्ध निवेश' शून्य होगा।[14]

(b) यदि कुल निवेश 'घिसाई' को पूरा करने के लिए भी पर्याप्त नहीं है, तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक होगा; इसका अभिप्राय है कि पूंजी का वास्तविक स्टॉक घट जायेगा। ऐसी स्थिति को 'अविनियोग' या 'अनिवेश' (disinvestment) कहते हैं क्योंकि वर्तमान पूंजी घिस जाती है और उसका प्रतिस्थापन नहीं होता।[15]

(c) यदि कुल निवेश 'घिसाई' को पूरा करने के लिए प्रतिस्थापन निवेश से अधिक है, तो 'शुद्ध निवेश' पूंजी स्टॉक में 'शुद्ध या वास्तविक वृद्धि' को बतायेगा। यह सामान्य स्थिति होती है जिसको प्राप्त करना अर्थव्यवस्था का उद्देश्य होता है। दूसरे शब्दों में, धनात्मक शुद्ध निवेश वास्तविक पूंजी सम्पत्तियों के स्टॉक में वृद्धि करके अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता को बढ़ायेगा।[16]

---

[13] A part of the gross investment will go for replacement investment. In other words, replacement investment will maintain intact a given stock of capital goods or capital assets with respect to size, quality and value. Such replacement investment is generally financed from depreciation funds maintained by the firm.

[14] If gross investment is just sufficient to cover only depreciation and thus to maintain capital stock intact, net investment will be zero.

[15] If gross investment is not even sufficient to cover depreciation, net investment will be negative; this implies that the actual stock of capital will decline. Such a situation is called 'disinvestment', because the existing capital wears out and is not replaced.

[Such a situation sometimes arises in war-time when the economy works to produce the maximum output of consumer goods and various types of goods for fighting, and the capital goods like houses, factories are allowed to depreciate.]

[16] If gross investment is greater than the replacement investment required to cover depreciation, net investment will be positive, and thus there will be a 'net addition' to the capital stock. This is the normal situation for which the economy aims at. In other words positive net investment will add to productive capacity of the economy by enlarging the economy's stock of real capital assets.

4. **'शुद्ध (या नया) निवेश' तथा 'प्रतिस्थापन निवेश' में अन्तर** [Distinction between 'Net (or New) Investment', and 'Replacement Investment]

'शुद्ध (या नये) निवेश' तथा 'प्रतिस्थापन निवेश' के बीच अन्तर (distinction) के सम्बन्ध मे निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए—

(i) वास्तविक जीवन स्थिति मे 'घिसाई' (depreciation) को सही रूप मे (precisely) मापना बहुत कठिन है। इसका कारण है—"फर्में जिस दर से अपने पूँजी यन्त्र को बट्टे खाते डालती है वह दर विवेक, भविष्य मे विक्रय की आशाएँ, टैक्स रियायतो, इत्यादि द्वारा निर्देशित होती है। अतः निवेश को प्रायः 'कुल' वार्षिक प्रवाह (*gross* annual flow) के रूप मे बताया जाता है।"[17]

(ii) वास्तव मे 'नये (या शुद्ध) निवेश' [New (or Net) Investment] तथा प्रतिस्थापन निवेश मे अन्तर बहुत स्पष्ट नहीं होता। "निरन्तर परिवर्तनशील तत्वो, जैसे—टैक्नोलोजी, कीमतो, तथा लागतों के परिणामस्वरूप, घिसाई कोषों मे से प्राप्त धन द्वारा निवेश-व्यय उन पूँजीगत सम्पत्तियों का सही रूप मे एक सरल प्रतिस्थापन नही बताता जो कि घिस गयी हैं या अप्रचलित हो गयी है। अधिकाश स्थितियो मे प्रतिस्थापित की जाने वाली मशीन या ढाँचा पहली मशीन या ढाँचे की तुलना मे श्रेष्ठ होगा, तथा, परिणामस्वरूप, प्रतिस्थापन-निवेश मे प्राय उत्पादन-क्षमता का विस्तार छिपा हुआ होता है।"[18]

"यद्यपि वास्तविक जगत मे प्रतिस्थापन निवेश तथा नये या शुद्ध निवेश मे अन्तर अस्पष्ट होता है, परन्तु फिर भी इनके बीच एक सैद्धान्तिक अन्तर करना उपयोगी है।[19]

इनवेन्ट्री या स्टॉक
(INVENTORIES OR STOCKS)

एक समय अवधि में स्टॉकों या इन्वेन्ट्रियों में वास्तविक वृद्धि को 'शुद्ध निवेश' (अथवा कुल निवेश का एक अंग) माना जाता है। इनको पूँजीगत वस्तुएँ समझा (या treat किया) जाता है, परन्तु यह आवश्यक नही है कि वे पूँजीगत वस्तुओ मे वृद्धियाँ (additions to capital goods) ही हों, तथा इनके अन्तर्गत उपभोग-वस्तुओ (consumer goods), खाद्यान्न के स्टॉक (food stocks), और विभिन्न प्रकार की अन्य मदें (items) भी शामिल हो सकती हैं। नि.सन्देह, **ये वस्तुएँ निवेश तभी समझी जायेंगी जबकि ये व्यापारियों के पास स्टॉक में होती हैं न कि उपभोक्ताओं के पास** तथा इस बात या बिन्दु (point) को ध्यान में रखना चाहिए।

हम इन्वेन्ट्रियों में वास्तविक वृद्धियों को 'शुद्ध निवेश' मानते हैं क्योंकि ये वर्तमान उत्पादन के उस भाग को बताती हैं जिसका उपभोग नहीं किया गया है।[20]

"दूसरे वर्ष मे, यदि ये वस्तुएँ व्यापारियो के हाथो से उपभोक्ताओं के हाथो मे पहुँच जाती हैं तथा इन्वेन्ट्रियाँ घटती हैं, तो हमारे पास 'शुद्ध या वास्तविक इन्वेन्ट्री निवेश' (net inventory investment) का ऋणात्मक अंक (negative figure) होगा। इसका अभिप्राय होगा कि हम

[17] "The rate at which firms write off their capital equipment is guided by the considerations of prudence, future sales prospects, tax concessions, etc. Hence, investment is often quoted as a *gross* annual flow"

[18] "Because of constantly shifting factors such as technology, prices, and costs investment expenditure financed from depreciation reserves rarely represents a simple replacement of capital assets that have become wornout or obsolete. In most instances a new machine or structure will likely be a better machine or structure than the one it replaces, and, as a consequence, an element of expansion of productive capacity is often concealed in what purports to be merely replacement investment."

[19] "Although the real-world distinction between replacement and new (or net) investment is a blurred one, it is useful to make this a theoretical distinction."

[20] We treat net additions to inventories as net investment because they are part of current output which is not consumed.

वस्तुओं का अधिक तेजी के साथ उपभोग कर रहे हैं अपेक्षाकृत उनके उत्पादन करने की तुलना मे अर्थात् हम अविनियोग या अनिवेश (disinvestment) कर रहे है।"[21]

'इन्वेन्ट्रियों मे निवेश' के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात नोट करने की यह है कि इन्वेन्ट्रियो में तेजी के साथ (*rapidly*) वृद्धि या कमी की जा सकती है। इसका अभिप्राय है—

> कुल निवेश में इन्वेन्ट्रियों के लिए व्यय सामान्यतया अत्यधिक परिवर्तनशील (volatile) अंग होते हैं। दूसरे शब्दों में, इन्वेन्ट्रियों में वृद्धि या कमी होना एक शक्तिशाली लीवर होता है जिसके कारण सामान्य आर्थिक वृद्धि या कमी होती है।"[22]

मशीनरी तथा यन्त्र
(MACHINERY AND EQUIPMENT)

इस प्रकार का निवेश सुपरिचित (familiar) है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकारों की मशीनों, लेथो (lathes), कम्प्युटरो, ऑफिस टाइपराइटरों, ट्रकों, इत्यादि पर व्यय शामिल होता है। इस प्रकार के निवेश के अन्तर्गत पूंजीगत वस्तुओं में नयी वृद्धियाँ (new additions) [अर्थात् 'शुद्ध निवेश' (net investment)] तथा प्रतिस्थापन यन्त्र (replacement equipment) [अर्थात् 'घिसाई' (depreciation)] दोनों शामिल होते हैं।

मशीनरी तथा यन्त्र पर व्यय के सम्बन्ध मे हमे कुछ सावधानी (some caution) की आवश्यकता है—

(i) "मशीनो को प्रायः अधिक उन्नतशील तथा दक्ष मॉडलो द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। यदि इस प्रकार की प्रतिस्थापन-मशीनो की खरीद पूर्व कीमतों पर होती है, तो अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता मे कुछ 'शुद्ध या वास्तविक' वृद्धि हो जाती है, यद्यपि पूंजी स्टॉक मे प्रत्यक्ष रूप से कोई वृद्धि नहीं होती है।"[23]

(ii) यदि स्फीतिक दशाएँ (inflationary conditions) मौजूद हैं, तो एक प्रतिस्थापन-मशीन की लागत पहले की तुलना मे अधिक होगी यद्यपि दोनों मशीनें बिलकुल एक समान हैं। ऐसी स्थिति मे, पूंजी स्टॉक मे कोई शुद्ध या वास्तविक वृद्धि नहीं होगी, यद्यपि व्यय के आँकड़े इस प्रकार की वृद्धि को बतायेंगे।[24]

इस प्रकार, उपर्युक्त स्थितियाँ प्रतिस्थापन-निवेश (replacement investment) की गणना (calculation) मे जटिलताएँ (complexities) उत्पन्न कर देती है। अतः यह कहा जाता है कि इस प्रकार की स्थितियों के कारण "प्रतिस्थापन-निवेश की परिभाषा एकाउन्टेन्टो के लिए सिर-दर्द तथा अर्थशास्त्रियों के लिए एक कठिन या परेशानी की स्थिति होती है।"[25]

---

[21] "In another year if these goods pass from the hands of business into consumers' hands, and inventories decline, we will have a negative figure for net inventory investment. This will mean that we are consuming goods faster than we are producing them, that is, we are disinvesting."

[22] Expenditures for inventories are generally the most volatile element in gross (or total) investment. In other words, "in the accumulation or decumulation of inventory lies a powerful lever for general economic acceleration and deceleration."

[23] "Machines are often replaced with more advanced and efficient models. If such replacement machines are purchased for the same prices as the originals, there has been some net addition to the productive capacity of the economy although there has been no apparent addition to capital stock."

[24] If inflationary conditions exist then a replacement machine will cost higher than the original, even though they are exactly the same. In this situation there will be no net addition to capital stock although expenditure statistics will indicate such an addition.

[25] Hence, it is said that such situations "make the definition of 'replacement' an accountant's headache and an economist's nightmare."

निर्माण
(CONSTRUCTION)

निर्माण के अन्तर्गत व्यय के अधिकांश भाग में निवास-मकानों (residential houses) पर व्यय को शामिल किया जाता है। जब भी प्रत्यक्ष रूप से परिवारों या ठेकेदारों या व्यापारियों द्वारा नये मकान बनाये जाते हैं तो पूँजीगत सम्पत्तियों या स्टॉकों में 'शुद्ध या वास्तविक वृद्धि' (net addition to capital assets or stock) होता है। कुछ विशेष तत्व, जैसे जनसंख्या में परिवर्तन, व्यक्तिगत (personal) आय में परिवर्तन, इत्यादि मकानों की माँग को प्रभावित करते हैं।

निर्माण (construction) के अन्तर्गत कुछ अन्य क्रियाएँ भी शामिल होती हैं, जैसे फैक्ट्रियो, स्टोरो, दुकानो, निजी (private) ऑफिस बिल्डिंगो और निजी गोदामों (private warehouses), इत्यादि।[26]

सार्वजनिक निवेश
(PUBLIC INVESTMENT)

सार्वजनिक निवेश के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय या राज्य सरकारो (state governments), स्थानीय सत्ताओं (local authorities) तथा सरकारी कारपोरेशनो (government corporations) द्वारा निवेश-व्यय शामिल होता है। अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक निवेश कुल निवेश का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। सरकार नई फैक्ट्रियो, सड़कों, बाँधो (dams), पुलों, बन्दरगाहो, बिल्डिंगो, इत्यादि का निर्माण कर सकती है।

सार्वजनिक निवेश के सन्दर्भ मे हमे निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए—

(i) यदि हम निजी 'निर्माण' (private construction) को सार्वजनिक निवेश व्यय मे जोड दें, तो दोनो का योग एक बहुत बड़ी संख्या होगी। निर्माण व्यय मे परिवर्तनो का उतार-चढाव आर्थिक परिवर्तन के लिए एक महत्वपूर्ण शक्ति या लीवर (lever) हो सकते है।[27]

(ii) सार्वजनिक निवेश के महत्वपूर्ण नीति-अभिप्राय (important policy implications) हो सकते है। इसका अर्थ है कि सरकारी नीति दृढ और प्रत्यक्ष रूप से (strongly and directly) निवेश माँग (investment demand) को प्रभावित कर सकती है।

(iii) सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रो मे निवेश के लिए प्रेरणा या उद्देश्य (motivation) के सम्बन्ध मे भेद (distinction) को ध्यान रखना महत्वपूर्ण है। एक निजी फर्म (private firm) के निवेश निर्णयो को मुख्यतया लाभ की आशाएँ (profit expectations) निर्धारित करती हैं। यद्यपि सार्वजनिक निवेश के अन्तर्गत लाभ-उद्देश्य (profit-motive) को छोडा नही जाता, परन्तु यह (अर्थात् लाभ-उद्देश्य) सार्वजनिक निवेश का निर्धारक तत्व (determining factor) नही होता। सार्वजनिक निवेश की मात्रा का निर्धारण करने मे राजनैतिक तथा सामाजिक तत्व महत्वपूर्ण पार्ट अदा करते हैं।

उपर्युक्त भेद के होते हुये भी, वास्तव मे, 'लागत-उपयोगिता विश्लेषण' (cost-benefit analysis) जैसे तकनीक (techniques) सार्वजनिक तथा निजी निवेश के सम्बन्ध में एक-समान सिद्धान्तो को प्रयोग करने के लिए हमें सहायता प्रदान करते हैं।[28]

[26] Generally, various types of construction made by government are not included under this head. They are included under the separate head of 'Public Construction' or 'Public Investment', for example, such government constructions are construction of roads, bridges, etc.

[27] If we add private 'construction' to public investment expenditure, then the total will swell up to a very high figure. And, thus, "swings in construction expenditure can be major lever for economic change."

[28] As a matter of fact techniques such as cost-benefit analysis enable us to apply similar principles to the analysis of public and private investment.

स्वतन्त्र तथा प्रेरित निवेश
(AUTONOMOUS AND INDUCED INVESTMENT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

निवेश के सिद्धान्त (theory of investment) के लिए 'स्वतन्त्र निवेश' (autonomous investment) तथा 'प्रेरित निवेश' (induced investment) मे अन्तर करना अत्यन्त उपयोगी है। यह अन्तर (distinction) इस बात पर आधारित है कि निवेश की क्रिया आय के प्रति स्वतंत्र (independent of income) है अथवा आय पर निर्भर करती है।

2. स्वतंत्र निवेश : अर्थ, अभिप्राय तथा निर्धारक तत्व (Autonomous Investment : Concept, Implications and Determining Factors)

स्वतंत्र निवेश कुल निवेश का वह भाग है जो कि वर्तमान आर्थिक दशाओं या आर्थिक तत्वों (जैसे, ब्याज की दर, निवेश की लाभदायकता, माँग, बिक्री, उत्पादन, आय, इत्यादि) द्वारा निर्धारित नही होता। परन्तु यह उन तत्वों द्वारा निर्धारित होता है जो कि आर्थिक प्रणाली के बाहर या बहिर्जात (exogeneous)[29] होते हैं।[30] संक्षेप मे, हम स्वतन्त्र निवेश को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते है :

> आर्थिक विश्लेषण में उस निवेश व्यय को जो कि आय के प्रति स्वतन्त्र होता है 'स्वतन्त्र निवेश' कहा जाता है। दूसरे शब्दों मे, आय में वृद्धि या कमी के साथ इस निवेश में वृद्धि या कमी नहीं होती, और इस प्रकार यह आय-बेलोच (income-inelastic) होता है। दूसरी ओर, स्वतन्त्र निवेश आय (तथा उपभोग या माँग) को प्रभावित करता है ; उदाहरणार्थ, स्वतन्त्र निवेश में वृद्धि आय (तथा उत्पादन) के स्तर को ऊँचा उठायेगी।[31]

महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ या तत्त्व जो कि स्वतन्त्र निवेश को उत्पन्न करते हैं (Forces or factors which cause autonomous investment) नीचे दिये गये है—

(i) नवप्रवर्तन तथा टेक्नोलोजी (Innovation and Technology) · नई वस्तुओं का पेश होना (introduction of new products), उत्पादन के नये तकनीको का प्रयोग, नये साधनो (new resources) का विकास, इत्यादि। इन तत्वों के कारण फर्मों द्वारा निवेश करने की क्रिया राष्ट्रीय आय के स्तर से स्वतन्त्र (independent) होगी।

(ii) अपने प्रतियोगियों के प्रति अपने को सुरक्षित रखने के लिए फर्मों द्वारा दीर्घकालीन नियोजन (long range planning by firms in order to keep up with their competitors); विकासशील बाजार मे एक फर्म कम से कम अपने वर्तमान हिस्से को बनाये रखना चाहेगी। ऐसी स्थिति मे एक फर्म की नीति (जिसमे निवेश-

---

[29] "Exogeneous factor or exogeneous variable, although playing an important part in a model (or theory), is determined by forces outside the model, and is unexplained by it. For example, in a model of the market for wheat, weather, conditions may play an important part in determining the supply and hence the price of wheat But the model itself does not try to explain what determines weather conditions."

[30] *Autonomous investment is that part of total investment which is not determined by existing economic conditions or economic factors* such as rate of interest, profitability of investment, demand, sales, output, income, etc. But, rather, *it is determined by factors which can be considered exogeneous to the economic system.*

[31] In economic analysis the investment expenditure which is independent of income is regarded as autonomous investment. In other words, it does not increase or decrease with the increase or decrease in income; and thus, it is income-inelastic. On the other hand, autonomous investment affects income (and consumption or demand); *e. g.*, the rise in autonomous investment will raise the level of income (and output)

सम्बन्धी नीति शामिल है) इस बात पर निर्भर करेगी कि अन्य फर्में क्या कर रही हैं न कि राष्ट्रीय आय के स्तर पर निर्भर करेगी।

(iii) निर्यात-बाजारों के लिए उत्पादन करने वाली फर्में विदेशों मे ऊँची मांग को पूरा करने के लिए निवेश कर सकती हैं ; ऐसा अन्य देशों की आय में वृद्धि के कारण हो सकता है न कि देश-विदेश की आय के स्तर मे परिवर्तन के कारण।"[32]

(iv) इस दृष्टिकोण कि 'कुशलता के लिए' कुछ विकास आवश्यक है—के कारण फर्में निवेश कर सकती है बिना आय को ध्यान में रखे हुये।[33]

(v) जनसंख्या के विकास[34] तथा श्रम शक्ति, युद्ध, मौसम मे परिवर्तनों, इत्यादि के कारण किये गये निवेश को 'स्वतन्त्र निवेश' कहा जाता है।

(vi) सार्वजनिक निवेश के कुछ रूपों (some forms of public investment) को स्वतन्त्र निवेश माना जाता है, जैसे—अस्पतालों, सडकों, बांधों (dams), बिल्डिंगों, इत्यादि पर सरकारी व्यय।

इस प्रकार, संक्षेप मे, टेक्नोलोजीकल तत्व, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक तत्त्व, वे शक्तियाँ हैं जो कि स्वतन्त्र निवेश के पीछे होती हैं।
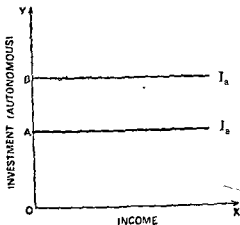
चित्र 1

हम स्वतन्त्र निवेश को एक चित्र की सहायता से बता सकते है। चित्र-1 मे आय को पड़े अक्ष (horizontal axis) पर तथा स्वतन्त्र निवेश को खड़े अक्ष (vertical axis) पर दिखाया गया है। चूंकि स्वतन्त्र निवेश आय के स्तर से अप्रभावित (unaffected) रहता है, इसलिए स्वतन्त्र निवेश रेखा एक पड़ी रेखा AI_a होगी जैसा कि चित्र-1 मे दिखाया गया है। यह रेखा बताती है कि आय के सभी स्तरों पर निवेश की मात्रा एकसमान अर्थात् OA के बराबर रहती है। स्वतन्त्र-निवेश को प्रभावित करने वाले तत्वों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप स्वतंत्र-निवेश OA से बढ़कर OB हो सकता है और इसलिए स्वतन्त्र-निवेश की रेखा ऊपर को खिसक जायेगी और उसकी नयी स्थिति BI_a होगी।

3. प्रेरित निवेश अर्थ, अभिप्राय तथा निर्धारक तत्व (Induced Investment. Meaning, Implications, and Determining Factors)

प्रेरित निवेश वर्तमान तथा प्रत्याशित आर्थिक दशाओं (*existing and anticipated economic conditions*) पर निर्भर करता है। यदि आर्थिक क्रिया (economic activity) मे

[32] "Firms producing for export markets may invest so as to meet higher demand overseas, this may be due to other countries' income growing, but not to changes in the level of income at home."

[33] Firms may invest to grow without regard to income because of the 'philosophy that some growth is necessary to maintain efficiency.'

[34] Though 'population growth' is one of the factors causing autonomous investment, yet 'population growth' is also a cause for induced investment because population growth results in a greater demand for goods and services and, therefore, induces investment. Hence, we shall see the factor of population growth appearing as one of the causes for induced investment as well. As a matter of fact in some cases it becomes very difficult to draw a clear and sharp line of distinction between autonomous investment and induced investment.

वृद्धि होती है, अर्थात्, माँग, उपभोग, बिक्री, उत्पादन, आय तथा लाभ बढ़ते है तो इन तत्वों द्वारा निवेश 'प्रेरित' (induce) होगा, और इसलिए प्रेरित-निवेश भी बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में, प्रेरित निवेश उन तत्वों द्वारा निर्धारित होता है जोकि आर्थिक प्रणाली के अन्दर होते हैं या आर्थिक प्रणाली के प्रति 'अन्तर्जात' (*endogeneous*)[35] होते हैं।[36] अब,हम प्रेरित निवेश को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते है—

> प्रेरित निवेश कुल व्यय का वह भाग है जो कि वर्तमान माँग या उत्पादन या आय से सम्बन्धित होता है। दूसरे शब्दों मे, 'प्रेरित-निवेश' निवेश तथा आय के स्तर के बीच एक प्रत्यक्ष फलनक सम्बन्ध (functional relationship) को बताता है ; आय के स्तर मे वृद्धि या कमी के साथ निवेश में वृद्धि या कमी होती है। अत., प्रेरित निवेश आय-लोच (income-elastic) होता है। सामान्य रूप में, प्रेरित निवेश अतिरिक्त यन्त्र (additional equipment) के लिए व्यय है ताकि एक दी हुयी वस्तु या सेवा की अधिक मात्राओं का उत्पादन किया जा सके। दूसरे शब्दों में, प्रेरित निवेश का उद्देश्य है पुरानी परिचित वस्तुओं के उत्पादन के लिए क्षमता (capacity) का विस्तार करना।[37]

प्रेरित निवेश के मुख्य कारण या निर्धारक तत्व (*The main causes or determinants of induced investment*) नीचे दिये गये है—

(i) आय मे वृद्धियाँ तथा जनसंख्या मे वृद्धि (income gains and population growth) ; इनके परिणामस्वरूप वस्तुओ और सेवाओ की माँग मे अधिक वृद्धि होती है ; और माँग मे यह अधिक वृद्धि निवेश को 'प्रेरित' (*induce*) करती है।

(ii) वस्तुओ और सेवाओ की माँग मे वृद्धि के सम्बन्ध मे आशावादिता (optimism) तथा भविष्य की आशाएँ भी निवेश को प्रेरित करेंगी। ऊँचे उत्पादन तथा अधिक लाभो की स्थिति समृद्धि के दृष्टिकोण को फैलाती है जिसके परिणामस्वरूप फर्में भविष्य के प्रतिफलो का अधिक आशावादिता के साथ मूल्यांकन करती हैं और भविष्य मे यह आशापूर्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रेरित निवेश मे वृद्धि करेगा।[38]

(iii) "जब (वस्तुओ की) माँग इतनी ऊँची होती है कि श्रमिकों की कमी हो जाती है तो फर्में, अतिरिक्त श्रमिको को प्राप्त न कर सकने के कारण, श्रम-बचत प्रक्रियाओं का प्रयोग करके अपने उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं, और सामान्यतया

---

[35] *Endogeneous factor or endogeneous variable* is "a variable whose value is to be determined by forces operating within the model (or theory) under consideration. For example, in a model of the *Market* for wheat, the price of wheat is an endogeneous variable because it is determined by the forces of *Supply* and *Demand* which are incorporated in the model."

[36] In other words, *induced investment is determined by factors which can be considered 'endogeneous' to the system.*

[37] Induced investment is that part of total expenditure which is linked with current demand or output or income In other words, induced investment indicates a direct functional relationship between investment and the level of income ; investment increases or decreases with the increase or decrease in the level of income Hence, induced investment is income elastic In general, induced investment is an expenditure for additional equipment in order to produce larger quantities of a given good or service. In other words, the object of induced investment is to expand capacity for the output of *old* known goods.

[38] Optimism and future expectations of the increase in demand of goods and services will also induce investment A situation of high output and large profits diffuse a sense of prosperity causing firms to assess future returns more optimistically ; and this future hopeful psychology will increase induced investment.

इसका अर्थ होता है अधिक मन्त्री का आदेश या आर्डर देना।" इस प्रकार से अधिक प्रेरित निवेश किया जायेगा।[39]

(iv) कोई भी अतिरिक्त आर्थिक क्रिया अर्थव्यवस्था में प्रेरित निवेश को उत्पन्न (generate) करेगी। वास्तव में स्वतन्त्र निवेश, जो कि नई वस्तुओं और नई प्रक्रियाओं के समावेश (introduction) के कारण होता है, अतिरिक्त आर्थिक क्रिया को जन्म देगा। इस प्रकार, एक उद्योग में स्वतन्त्र-निवेश सामान्यतया अर्थव्यवस्था में प्रेरित-निवेश को उत्पन्न करेगा।[40]

एक चित्र द्वारा प्रेरित निवेश की धारणा (concept) को स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र–2 में प्रेरित निवेश को एक ऊपर को चढ़ती हुयी रेखा OI, द्वारा दिखाया गया है जो कि बताती है कि आय के स्तर में वृद्धि के साथ प्रेरित निवेश में वृद्धि होती है।
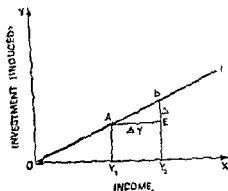
चित्र 2

प्रेरित निवेश को (i) निवेश की औसत प्रवृत्ति (Average Propensity to Invest or API) तथा (ii) निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Invest or MPI) में विभाजित किया जा सकता है।

माना कि Y = आय (Income), I_i = प्रेरित निवेश (Induced investment), तथा ΔI_i = प्रेरित निवेश में परिवर्तन (change in induced investment)।

निवेश की औसत प्रवृत्ति (API)

$$= \frac{\text{निवेश (प्रेरित) [Investment (induced)]}}{\text{आय (Income)}}$$

$$= \frac{I_i}{Y} \quad \left[\text{चित्र 2 में } Y_1 \text{ आय के स्तर पर } API = \frac{AY_1}{OY_1}\right]$$

निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति (MPI)

$$= \frac{\text{निवेश (प्रेरित) में परिवर्तन [Change in Investment (Induced)]}}{\text{आय में परिवर्तन (Change in Income)}}$$

$$= \frac{\Delta I_i}{\Delta Y} \quad \left[\text{चित्र 2 में } Y_2 \text{ आय के स्तर पर } MPI = \frac{BE}{AE \text{ (or } Y_1Y_2)}\right]$$

---

39 "When demand (of goods) is so high that a shortage of labour exists, firms in despair of obtaining additional workers may attempt to expand output by installing labour-saving processes, and this usually means ordering more equipment." Thus, more induced investment will occur.

40 Any additional economic activity will generate induced investment in the economy. As a matter of fact autonomous investment, which takes place because of the introduction of new products and processes, will create additional economic activity. And thus, autonomous investment in a given industry may generate induced investment in the economy generally.

चित्र 2 मे सीधी रेखा के रूप मे निवेश वक्र OI_i बताता है कि आय मे कोई एक परिवर्तन निवेश में आनुपातिक परिवर्तन को उत्पन्न करेगा।[11] रेखा OI_i का स्थिर ढाल निवेश की एक स्थिर सीमान्त प्रवृत्ति को बताता है।[12]

हम चित्र 1 मे स्वतन्त्र निवेश रेखा AI_a को तथा चित्र 2 मे प्रेरित निवेश रेखा OI_i को देख चुके हैं। आय के किसी एक दिये स्तर पर कुल निवेश माँग (total investment demand) को स्वतन्त्र निवेश (I_a) तथा प्रेरित निवेश (I_i) के योग (sum) के रूप मे बताया जा सकता है। इस प्रकार,

$$I = I_a + I_i$$

चित्र 3 मे AI रेखा कुल निवेश माँग (total investment demand) को बताती है। उदाहरणार्थ, किसी एक आय के स्तर Y_1 पर, स्वतन्त्र निवेश OA (या FY_1) है तथा प्रेरित निवेश EF है। यदि आय का स्तर बढ कर Y_2 हो जाता है तो प्रेरित निवेश बढकर GH हो जाता है, जबकि स्वतन्त्र निवेश समान रहता है अर्थात OA (या Y_2H) के बराबर रहता है।[13]

चित्र 3

उपर्युक्त विश्लेषण यह मान कर चलता है कि प्रेरित निवेश I_i वर्तमान आय पर निर्भर करता है; अर्थात I_i एक फलन या फंक्शन (function) है वर्तमान आय का। सांकेतिक रूप मे (in symbols) हम इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$(I_i)_t = f(Y_t)$$

जबकि,

Y_t = वर्तमान समय t मे आय

$(I_i)_t$ = उसी समय t मे प्रेरित निवेश

f चिह्न (symbol) है फंक्शन के लिए।

"परन्तु धारणों (impressions) को बनाने और सूचना एकत्रित करने मे फर्मों मे समय लग सकता है, तथा उनको निवेश के सम्बन्ध मे निर्णयों को लेने मे कम या अधिक लम्बी नियोजन

---

[11] The straight line investment curve OI_i (in figure 2) indicates that any change in income would 'induce' a proportionate change in investment.

[12] The constant slope of the line OI_i indicates a constant marginal propensity to invest.

[This analysis is quite simple and static in nature But it is not necessary that marginal propensity to invest is constant; there are the possibilities of 'diminishing' or 'increasing' marginal propensity to invest. "The reason is that any change in consumption (or income) is likely to produce a disproportionate change in the level of investment It is not very realistic to assume a static position for the investment curve as consumption (or income) changes. As a matter of fact the situation is not static but dynamic because much investment spending is related to the *rate of consumption (or income) changes* rather than the *absolute level of consumption (or income)*." This will become more clear in the discussion of acceleration principle]

[13] We know that induced investment (I_i) is a function of income (Y). Hence, we can write as follows

$$I_i = f(Y)$$

or $I_i = eY$, where e = marginal propensity to invest.

And, now total investment (I) can be expressed as—

$$I = I_a + I_i$$

or $I = I_a + eY$

प्रक्रिया का सहारा लेना पड़ सकता है ; दोनों में से किसी भी अवस्था में विलम्ब (lag) [अथवा समय-विलम्ब (time-lag)] का प्रभाव यह होगा कि निवेश को पिछली समय अवधि की आय पर निर्भर करना होगा।"[44] यदि t वर्तमान समय को बताता है, तो t—1 पिछली समय अवधि (previous period) को बतायेगा। अब हम स्थिति को सांकेतिक रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$(I_i)_t = f\ (Y_{t-1})$$

एक और अन्य सम्भावना हो सकती है कि प्रेरित निवेश वर्तमान या पिछली आय के निरपेक्ष स्तर (absolute level) पर निर्भर न करे, बल्कि 'आय में परिवर्तनों' (या उपभोग व माँग में परिवर्तनों) पर निर्भर करे। सांकेतिक रूप में (in symbols) इस स्थिति को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$(I_i)_t = f\ (Y_t - Y_{t-1})$$

अत प्रेरित निवेश के सम्बन्ध में उपर्युक्त तीनों स्थितियों को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार से व्यक्त (sum up) किया जा सकता है—

"कोई स्पष्ट कारण नहीं है कि इस सन्दर्भ में (अर्थात प्रेरित निवेश के सन्दर्भ में) सभी फर्मों का व्यवहार बिलकुल एक तरीके का हो। इसलिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में ऊपर बताये गये सभी तरीकों द्वारा प्रेरित निवेश निर्धारित हो सकता है, प्रेरित निवेश का एक हिस्सा वर्तमान आय पर, एक दूसरा हिस्सा पिछली आय पर, एक अन्य हिस्सा आय में परिवर्तनों पर निर्भर कर सकता है।"[45]

4. स्वतन्त्र निवेश तथा प्रेरित निवेश में भेद के सम्बन्ध में मूल सार (The essence of the distinction between autonomous investment and induced investment)

इस सम्बन्ध में मुख्य बातें निम्नलिखित है—

(i) "इन दो प्रकार के निवेश में मुख्य अन्तर यह है कि प्रेरित निवेश पुरानी परिचित वस्तुओं के उत्पादन के लिए क्षमता (capacity) के विस्तार के उद्देश्य से किया जाता है, जबकि स्वतन्त्र निवेश का सम्बन्ध नई वस्तुओं (उत्पादन की नई तकनीकों), नये बाजारों, तथा लागत में कमी से होता है।"[46]

(ii) वास्तव में, स्वतन्त्र निवेश को प्रेरित निवेश से भेदित (distinguish) करना आसान नहीं होता है। समस्त निवेश व्यय मुख्यतया लाभ-उद्देश्य के लिए किया जाता है—चाहे लाभदायकता की आशा (expectation of profitability) के कारण हो या वास्तविक लाभदायकता (actual profitability) के कारण हो।'

"समय अवधियों की किन्हीं भी श्रृंखलाओं (series) के लिए, अर्थव्यवस्था में प्राप्य वास्तविक आँकड़े हमें यह बताने की आज्ञा नहीं देते कि प्रत्येक समय के निवेश में कौन-सा भाग उस समय की आय द्वारा प्रेरित होता है और कौन-सा हिस्सा स्वतन्त्र था।"[47]

---

[44] "But firms may take time to form impressions and collect information, and their decisions to investment may involve more or less lengthy planning process; in either case the lag (or time-lag) will have the effect of making investment depend on the income of a previous period."

[45] "There is no obvious reason why all firms should behave in precisely the same fashion in this respect, so that the induced investment in the economy as a whole may very well be determined in all of the ways just mentioned, with one part depending on current income, another on past income, and yet another on changes in income."

[46] "The prime difference between the two types of investment is that the 'induced investment is undertaken with the intent of expanding capacity for the output of *old* known goods, whereas 'autonomous investment relates to new goods, (new techniques of production), new markets, and cost reduction."

[47] "For any series of time periods, the actual data for the economy do not permit us to say what part of each period's investment was induced by that period's income and what part was autonomous."

"किसी आर्थिक प्रेरणा, जैसे—नये क्षेत्र का प्राप्य होना, या जनसंख्या का हस्तांतरण, या जनसंख्या का विकास—के परिणामस्वरूप स्वतन्त्र तथा प्रेरित दोनों प्रकार के निवेश के लिए कारण या प्रेरणाएँ (motivations) निसन्देह मौजूद होती है।"[48]

5. निष्कर्ष (Conclusion)

यद्यपि स्वतन्त्र निवेश तथा प्रेरित निवेश के बीच एक बहुत स्पष्ट व सुनिश्चित रेखा खीचना कठिन है और इसलिए व्यवहार मे हम साख्यिकीय रूप से (statistically) स्वतन्त्र निवेश को प्रेरित निवेश से पृथक नही कर सकते है, परन्तु फिर भी सैद्धान्तिक विश्लेषण (theoretical analysis) के लिए दोनों मे अन्तर अत्यन्त उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त, "इन दोनो मे इस दृष्टि से एक अर्थपूर्ण अन्तर है कि प्रेरित निवेश उपभोग (या आय) के प्रति चेतनशील तथा प्रत्युत्तरदायी (sensitive and responsive) होता है, जबकि स्वतन्त्र निवेश के सम्बन्ध मे ऐसा नही होता। इसका अभिप्राय है कि प्रेरित निवेश का, स्वभावतया, अधिक अच्छा अन्दाज लगाया जा सकता है, अपेक्षाकृत स्वतन्त्र निवेश के।"[49]

प्रश्न

1. निवेश को परिभाषित कीजिए। कुल तथा शुद्ध निवेश के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
   Define investment. Explain clearly the distinction between total and net investment.
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (i) कुल तथा शुद्ध निवेश
   (ii) इनवेन्ट्री
   Write short notes on the following—
   (i) Gross and Net Investment
   (ii) Inventories.
3. 'यद्यपि स्वतन्त्र निवेश तथा प्रेरित निवेश के बीच एक बहुत स्पष्ट व सुनिश्चित रेखा खीचना कठिन है और इसलिए व्यवहार मे हम साख्यिकीय रूप से स्वतन्त्र निवेश को प्रेरित निवेश से पृथक नही कर सकते है, परन्तु फिर भी सैद्धान्तिक विश्लेषण के लिए दोनों मे अन्तर अत्यन्त उपयोगी है।'
   इस कथन के सन्दर्भ मे स्वतन्त्र निवेश तथा प्रेरित निवेश के बीच अन्तर को विस्तार के साथ स्पष्ट कीजिए।
   'Though it is difficult to draw a sharp line of distinction between the two, and therefore, in practice, we cannot statistically separate autonomous from induced investment, yet the distinction is quite useful for theoretical analysis.'
   In the light of this statement explain clearly and thoroughly the distinction between autonomous investment and induced investment

---

[48] As a result of "some economic stimuli, such as the opening of a new territory or shifts in population or population growth, the motivations of both autonomous and induced investment are undoubtedly present"

[49] Further, "there is a meaningful distinction between the two, in so far as induced investment is sensitive and responsive to consumption (or income), whereas autonomous investment is not. This means that induced investment, by its nature, is more forseeable than autonomous investment."

निवेश का सिद्धान्त—1
[Theory of Investment—1]

निवेश के प्रति 'पूँजी की सीमान्त कुशलता' का दृष्टिकोण

['Marginal Efficiency of Capital' Approach to Investment]

निवेश का सिद्धान्त—एक सामान्य नोट
(THEORY OF INVESTMENT A GENERAL NOTE)

एक निवेश का सिद्धान्त उन उद्देश्यो तथा तत्वो (motives and factors) पर प्रकाश डालता है जो कि निवेश को निर्धारित करते है। दूसरे शब्दो मे,

> **निवेश का सिद्धान्त निवेश के निर्धारक तत्वों या चरों (variables) का तथा इन चरों के आपसी सम्बन्धो का विवेचन करता है।[1]**

वास्तव मे निवेश के सिद्धान्त की वर्तमान स्थिति अनिश्चित (unsettled) है। अर्थशास्त्री सामान्यतया इस बात से सहमति रखते है कि इच्छित (या desired) निवेश का स्तर केवल एक तत्व द्वारा नही बल्कि अनेक मिश्रित तत्वो (a complex of factors) द्वारा निर्धारित होता है। परन्तु निवेश को प्रभावित करने वाले वैकल्पिक तत्वो (alternative factors) के सापेक्षिक महत्व (relative importance) के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्री असहमति (disagreement) रखते हैं। इसका अभिप्राय है कि हमे निवेश का कोई एक अकेला सिद्धान्त प्राप्य नही है।

यहाँ पर हम अपनी विवेचना को निवेश के निम्न दो मुख्य सिद्धान्तो तक सीमित (confine) रखेंगे—

(i) केंज का पूँजी की सीमान्त कुशलता का दृष्टिकोण (Keynesian Marginal Efficiency of Capital Approach)।

(ii) निवेश का त्वरक सिद्धान्त (The Accelerator Theory of Investment) अथवा त्वरण सिद्धान्त (The Acceleration Principle)।

[इस अध्याय मे हम निवेश के प्रति 'पूँजी की सीमान्त कुशलता दृष्टिकोण' ('marginal efficiency of capital approach' to investment) की विवेचना प्रस्तुत करेंगे तथा अगले अध्याय मे हम त्वरक सिद्धान्त (Acceleration Principle) को लेंगे।]

---

[1] 'The Theory of Investment discusses the determinants or variables of investment and the relationships among these variables.

चाहे कोई भी दृष्टिकोण (approach) हो, निवेश निम्नलिखित मुख्य तत्वों द्वारा निर्धारित होता है—

- (i) एक विशिष्ट पूंजीगत वस्तु के प्रयोग से प्रतिफल की प्रत्याशित दर ; टेक्नीकल भाषा मे इसको पूंजी की सीमान्त कुशलता कहते है ।[2]
- (ii) पूंजीगत वस्तु की लागत (cost) अथवा पूंजीगत वस्तु का पूर्ति मूल्य (supply price) ।
- (iii) ब्याज की दर ।

वास्तव मे, निवेश को निर्धारित करने वाले अनेक तत्व होते हैं, परन्तु सभी तत्व ऊपर बताये गये तत्वों के माध्यम से कार्य करते हैं । इसलिए हम अपने ध्यान को मुख्यतया निवेश के उपर्युक्त निर्धारक तत्वों पर ही केन्द्रित करेंगे ।

निवेश के किसी भी सिद्धान्त का प्रारम्भिक बिन्दु होगा कि पहले यह स्थापित किया जाये कि निवेश की क्रिया के लिए आधारभूत प्रेरणा या उद्देश्य (fundamental motive) क्या होता है ।[3] सामान्यतया यह अनुभव किया जाता है कि लाभ-उद्देश्य (*profit motive*) आधारभूत उद्देश्य होता है जो कि निजी फर्मों (private firms) द्वारा, और इसलिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे निजी क्षेत्र (private sector) द्वारा, 'पूंजीगत वस्तुओं पर व्ययों' (अर्थात निवेश) के पीछे मौजूद रहता है । इस प्रकार,

> "व्यापारी पूंजीगत वस्तुओं को इसलिए खरीदते हैं क्योंकि वे उनको लाभदायक समझते हैं । यह सही है चाहे पूंजीगत वस्तुएं नई हो या पुरानी, अथवा चाहे वे घिसी हुयी पूंजीगत सम्पत्तियों का प्रतिस्थापित करने के लिए प्रयोग की जायें या फर्म के कुल पूंजी स्टॉक में वृद्धि (अर्थात् शुद्ध निवेश) के लिए प्रयोग की जायें ।"[4]

कुछ अर्थशास्त्री निवेश के लिए, कुछ अन्य उद्देश्यों (जैसे, एक फर्म द्वारा बिक्री को अधिकतम करना) को भी बताते है, परन्तु सामान्यतया अनुभव किया जाता है कि निवेश के लिए आधारभूत उद्देश्य (basic motive) लाभ-उद्देश्य है, तथा अन्य उद्देश्य केवल गौण उद्देश्य (secondary motives) है । सामान्यतया फर्में इस प्रकार से कार्य करती है कि पूंजीगत वस्तुओं से लाभ या प्रत्याशित लाभ (expected profit) को अधिकतम किया जा सके। इस बात को मानते हुये, फर्म या व्यापारी 'पूंजीगत वस्तु की लागत (cost of the capital good) तथा उसके द्वारा उत्पन्न 'आयों या आगमों या प्रतिफलों' (incomes or revenues or returns) दोनो को ध्यान में रखेगा ।

निवेश की एक इकाई (या एक पूंजीगत वस्तु) की प्रत्याशित लाभदायकता को कैसे निर्धारित किया जाये ? दूसरे शब्दो मे, एक फर्म इस बात को निर्धारित करने के लिए कि निवेश किया जाये या न किया जाये कौन-सा दृष्टिकोण या तरीका (approach) अपनायेगी ।[5] पूंजीगत वस्तु की प्रत्याशित लाभदायकता (expected profitability) को ज्ञात करने के लिए अर्थात् निवेश-निर्णय (investment-decision) लेने के लिए अग्रलिखित दो मुख्य तरीके या दृष्टिकोण (two main approaches) हैं—

[2] Expected rate of return from the use of a particular capital good, in technical language it is called as 'marginal efficiency of capital'.

[3] The starting point of any investment theory will be first to establish the fundamental motive for investment

[4] "Businessmen buy capital goods because they expect them to be profitable. This is true whether the capital goods are new or old, or whether they are to be used to replace worn-out assets or to increase the total capital stock of the firm (net-investment.)"

[5] How can the expected profitability of a unit of an investment (or a capital good) be determined ? In other words, what approach a firm will adopt in deciding whether to invest or not. With respect to the computing of the profitability of investment projects, and hence the taking of investment decision, there the following two main approaches.

1. पूंजीगत सम्पत्ति के वर्तमान मूल्य को ज्ञात करना तथा इस *'वर्तमान मूल्य'* की पूंजीगत सम्पत्ति के लिए दी जाने वाली लागत (या कीमत या पूर्ति कीमत) के साथ तुलना करना ।[6]
2. पूंजीगत सम्पत्ति के प्रयोग से प्राप्त होने वाले 'प्रतिफल की प्रत्याशित दर' (ब्याज की लागत पर बिना विचार किये हुये) को ज्ञात करके, अर्थात 'पूंजी की सीमान्त कुशलता' को ज्ञात करके उसकी तुलना ब्याज की दर से करना ; (पूंजीगत वस्तु के खरीदने के लिए उधार लिए गये द्रव्य पर ब्याज की दर देनी होगी ।)[7]

वास्तव मे, दोनो दृष्टिकोण एक समान परिणाम देते है तथा वे एक-दूसरे के पूरक हैं। (Either approach gives the same answer, and one complements the other) ।

इस अध्याय मे हम केवल दूसरे दृष्टिकोण, अर्थात 'पूंजी की सीमान्त कुशलता दृष्टिकोण' (*marginal efficiency of capital approach*) की ही विवेचना प्रस्तुत करेंगे ।

निवेश के प्रति पूंजी की सीमान्त कुशलता का दृष्टिकोण
(MARGINAL EFFICIENCY OF CAPITAL APPROACH TO INVESTMENT)

1. प्राक्कथन (Introduction)

व्यापारी नई पूंजीगत वस्तुओं के खरीदने मे अथवा निवेश या विनियोग करने मे क्यों दिलचस्पी रखते है ? (Why businessmen are interested in investing or in purchasing new capital goods ?) निःसन्देह मुख्य कारण या उद्देश्य लाभ-उद्देश्य (profit motive) होता है । वे पूंजीगत वस्तुओं को निम्न तीन कारणो मे से किसी भी एक कारण के परिणामस्वरूप खरीद सकते है---

(i) घिसी हुयी (worn-out or depreciated) पूंजीगत वस्तुओ को प्रतिस्थापित (replace) करने के लिए ।
(ii) उत्पादन-क्षमता (productive capacity) मे वृद्धि करने के लिए ।
(iii) *उत्पादन-लागतो मे कमी करने के लिए ; [उदाहरणार्थ, श्रम के स्थान पर मशीनरी* (machinery) का प्रतिस्थापन करना, अथवा कम उत्पादक मशीनो के स्थान पर अधिक उत्पादक मशीनो का प्रतिस्थापन (substitution) करना ।]

उपर्युक्त उद्देश्य एकदम बिलकुल भिन्न (different) या पृथक (separate) नहीं हैं, परन्तु वे एक ही चीज, अर्थात् लाभ-उद्देश्य के विभिन्न पहलू (different aspects) हैं। उदाहरणार्थ, एक नई पूंजीगत वस्तु, जैसे, एक नया यन्त्र (equipment) या एक नई मशीन केवल एक घिसी हुयी मशीन को ही प्रतिस्थापित नही करेगी बल्कि उत्पादन-लागत में भी कमी कर सकती है तथा उत्पादन क्षमता (productive capacity) मे भी वृद्धि कर सकती है ।

संक्षेप मे, मुख्य उद्देश्य या तत्व (main motive or factor) जो कि एक समय विशेष पर निवेश को निर्धारित करता है वह है **'पूंजीगत वस्तु की प्रत्याशित लाभदायकता'** (expected profitability of the capital good) ।[8] दूसरे शब्दों मे, एक व्यापारी इसलिये निवेश की क्रिया करता है या पूंजीगत वस्तु को खरीदता है क्योंकि वह पूंजीगत वस्तु के प्रयोग

---

[6] Computing the present value of the capital asset's 'present value' and comparing it with the cost (or the price or the supply-price) of the capital asset which must be paid to obtain it

[7] Computing the expected rate of return from the use of the capital asset (excluding the interest cost), that is, computing the 'marginal efficiency of capital', and then comparing it with the rate of interest (that must be paid to finance the purchase)

[8] As a matter of fact the 'expected profitability' or 'a stream of future net income' from a capital good over its entire life is nothing but the 'value of marginal product of capital' (or marginal revenue product).

से, उसके जीवन काल में, 'भविष्य मे शुद्ध आय के एक प्रवाह' (a stream of future 'net' income)[9] की आशा करता है।

• निवेश-निर्णय (*investment decision*) को लेने के सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण (*approach*) स्वर्गीय प्रो० कॅज (Late Prof. J. M. Keynes) ने अपनी पुस्तक 'सामान्य सिद्धान्त' (General Theory) में प्रस्तुत किया है जिसको 'निवेश के प्रति पूंजी की सीमान्त कुशलता का दृष्टिकोण (*marginal efficiency of capital approach to investment*) कहा जाता है।

वास्तव मे, कॅज ने पूंजी की दो मुख्य विशेषताओं—अर्थात, पूंजीगत वस्तु के प्रयोग से 'आय का भविष्य मे प्रवाह' (future stream of income) तथा पूंजीगत वस्तु की लागत या उसका पूर्ति-मूल्य (cost or supply price) पर विचार किया। पूंजी की (इन) विशेषताओं की सहायता से कॅज ने एक तरीके का प्रयोग किया जिसके द्वारा प्रत्याशित (या भाविष्य मे) प्रतिफलों की शृंखला को पूंजीगत वस्तु की लागत (या पूर्ति कीमत) पर प्रतिफल की एक अकेली प्रतिशत दर के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। कॅज ने इस 'प्रतिशत दर' को, जो कि निवेश (या पूंजीगत वस्तु) की प्रत्याशित लाभदायकता को व्यक्त करती है, पूंजी की सीमान्त कुशलता' या MEC) कहा।[10]

> पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) की ब्याज की दर के साथ तुलना की जाती है। यदि MEC अधिक है ब्याज की बाजार दर से तो व्यापारी पूंजीगत वस्तुओं में निवेश करना पसन्द करेंगे। यदि MEC कम है ब्याज की दर से, तो व्यापारी निश्चित रूप से निवेश नहीं करेंगे। इस प्रकार, पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) को निवेश के स्तर के निर्धारण की व्याख्या करने में प्रयोग किया जाता है।[11]

विवेचना को आगे बढ़ाने से पहले यह आवश्यक होगा कि पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) की धारणा (concept) को स्पष्टतया और विस्तृत रूप से समझ लिया जाये।

2. पूंजी की सीमान्त कुशलता की धारणा (The Concept of Marginal Efficiency of Capital)।

पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) पूंजीगत वस्तु या पूंजीगत सम्पत्ति की प्रत्याशित

---

9 We should keep in mind the word 'net' in the phrase 'a stream of future 'net' income'. When a capital good (e g, a machine) is purchased and used, then additional costs are also incurred along with the use of capital good Such additional (or extra) costs are the costs of extra or additional labour, materials, power, and other costs. A businessman will deduct all these extra or additional costs from the value of the product obtained by the use of capital good in order to get the 'net product' or 'net income' from the capital good Thus, a capital good yields a stream of future 'net' income or return to the businessman

As a matter of fact the stream of 'net' income over the entire life of the capital good is the value of marginal (net) product of capital.

10 As a matter of fact Keynes considered the two main characteristics of the capital good (that is, the 'future stream of income' and the 'cost' or 'supply price' of the capital good) *With the help of* (these) *characteristics of the capital good, Keynes used a device to reduce the series of expected (or future) returns to a 'single percentage rate' of return on the cost (or supply price) of the capital good Keynes called this 'percentage rate', which expresses the expected profitability of the investment (or the capital good), as the marginal efficiency of capital (or MEC).*

11 The marginal efficiency of capital (or MEC) is compared with the market rate of interest. If MEC is greater than the market rate of interest, a businessman will like to invest in the capital good. If the MEC is less than the rate of interest, the businessman will certainly not investment Thus, MEC is used in explaining how the level of investment is determined.

लाभदायकता को व्यक्त करने के लिए एक शब्द या तरीका है।[12] 'कुछ अर्थशास्त्री पूंजी की सीमान्त कुशलता को 'पूंजीगत सम्पत्ति पर प्रतिफल की आन्तरिक दर' ('internal rate of return on a capital asset') के नाम से भी पुकारते है। प्रो० डिलार्ड (Prof. Dillard) ने 'विशिष्ट पूंजीगत सम्पत्ति' के लिए तथा 'सामान्य रूप में' पूंजी की सीमान्त कुशलता (*MEC for perticular capital asset and in general*) को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है—

> "एक विशिष्ट पूंजीगत सम्पत्ति की सीमान्त कुशलता लागत के ऊपर प्रतिफल की उच्चतम दर है जिसकी आशा की जाती है, उसी प्रकार की सम्पत्ति की एक अतिरिक्त या सीमान्त इकाई के प्रयोग से।"
>
> सामान्य रूप में पूंजी की सीमान्त कुशलता लागत के ऊपर प्रतिफल की उच्चतम दर है जिसकी आशा की जाती है सभी प्रकार की पूंजीगत सम्पत्तियों में से सबसे अधिक लाभदायक पूंजीगत सम्पत्ति की एक अतिरिक्त या सीमान्त इकाई के उत्पादन से।"[13]

इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से सामान्य रूप मे पूंजी की सीमान्त कुशलता अर्थव्यवस्था मे उत्पादित की जाने वाली विभिन्न प्रकार की पूंजीगत सम्पत्तियों की सीमान्त कुशलताओ मे से सबसे ऊँची सीमान्त कुशलता होती है।[14]

पूंजी की सीमान्त कुशलता की धारणा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम 'एक विशिष्ट प्रकार की पूंजीगत सम्पत्ति या पूंजीगत वस्तु की सीमान्त कुशलता' (*marginal efficiency of a particular type of capital asset or capital good*) पर पुनः विचार करते हैं।

पूंजी की सीमान्त कुशलता पूंजीगत वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई से प्रत्याशित 'शुद्ध' आय (expected net income from the additional unit of the capital good) तथा उस अतिरिक्त इकाई की लागत (या, इसके पूर्ति मूल्य) के बीच अनुपात को बताती है। संक्षेप में,

$$\text{MEC} = \frac{\text{प्रत्याशित आय (या प्रतिफल) [Expected income (or return)]}}{\text{लागत (या पूर्ति मूल्य) [Cost (or Supply Price)]}}$$

प्रतिशत दर (percentage rate) के रूप मे व्यक्त करने के लिए इसको 100 से गुणा कर दिया जाता है। अत

$$\text{MEC} = \frac{\text{प्रत्याशित आय [Expected income]}}{\text{लागत (या पूर्ति मूल्य) [Cost (or Supply Price)]}} \times 100$$

---

[12] Marginal efficiency of capital (or MEC) is an expression for the expected profitability of a capital good or a capital asset

[13] "The marginal efficiency of a particular type of capital asset is the highest rate of return over cost expected from an additional, or marginal, unit of that type of asset

"The marginal efficiency of capital *in general* is the highest rate of return over cost expected from producing an additional, or marginal, unit of the most profitable of *all* types of capital assets"

[14] दूसरे शब्दो में, "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए पूंजी की सीमान्त कुशलता के सम्बन्ध मे हमारी दिलचस्पी सबसे अधिक उपयोगी या लाभदायक पूंजीगत सम्पत्तियों, जिनका उत्पादन अभी तक नही हुआ है, की सीमान्त कुशलता मे होती है।

[Thus, from the viewpoint of the economy as a whole the M. E. C. in general is the highest out of all the marginal efficiencies of the different types of capital assets to be produced in the economy In other words, "For the MEC of the economy as a whole, what we are really interested is the marginal efficiency of the *most worth-while* capital assets not yet produced "]

इस प्रकार से एक विशिष्ट प्रकार की पूँजीगत वस्तु की सीमान्त कुशलता (m. e. c. of a particular type of capital good) दो बातों पर निर्भर करती है—(i) पूँजीगत वस्तु से प्रत्याशित आय, तथा (ii) उस पूँजीगत वस्तु की लागत।

हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'लागत के ऊपर प्रत्याशित आय या प्रतिफल की दर' अथवा 'पूँजी की सीमान्त कुशलता' न केवल क्रियात्मक लागतों (operational costs) (जैसे, अतिरिक्त श्रम की लागत, वस्तुएँ या सामग्री, बिजली-शक्ति इत्यादि) से ही स्वतंत्र नहीं होती बल्कि वह घिसाई लागत या प्रतिस्थापन-लागत से भी स्वतन्त्र होती है।[15]

उदाहरण के लिए, माना कि एक व्यापारी के लिए एक पूँजीगत वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई (जैसे, मशीन की एक अतिरिक्त इकाई) की लागत (या उसका पूर्ति मूल्य) 1000 रु० है और प्रत्येक वर्ष यह व्यापारी या फर्म को 50 रु० के बराबर अतिरिक्त आय प्रदान करती है,[16] तो

$$MEC = \frac{\text{प्रत्याशित आय (Expected income)}}{\text{लागत (या पूर्ति मूल्य) [Cost or (Supply Price)]}} \times 100$$

$$= \frac{50}{1000} \times 100$$

$$= 5\%$$

वास्तव में, पूँजी की सीमान्त कुशलता किसी विशिष्ट पूँजीगत वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली प्रत्याशित आय तथा इस अतिरिक्त इकाई की लागत (या उसके पूर्ति मूल्य) के बीच सम्बन्ध को बताती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, हम पूँजी की सीमान्त कुशलता (MEC)[17] की कैंज (J. M. Keynes) द्वारा दी गई परिभाषा को समझ सकते हैं। कैंज के शब्दों में,

> "अधिक सही रूप में, मैं पूंजी की सीमान्त कुशलता को बट्टे (discount) की उस दर के बराबर परिभाषित करता हूँ जो कि अपने जीवन-काल में पूंजीगत सम्पत्ति से प्रत्याशित प्रतिफलों द्वारा दी गई वार्षिकियों की शृंखलाओं (series of annuities) के वर्तमान मूल्य को उस पूंजीगत सम्पत्ति के पूर्ति मूल्य के बराबर करती है।"[18]

उपर्युक्त परिभाषा और अधिक स्पष्ट हो जायेगी यदि हम इसको एक समीकरण (equation) के रूप में प्रस्तुत करें। माना C = पूँजीगत सम्पत्ति का पूर्ति मूल्य या उसकी लागत

---

[15] We should remember that the 'expected rate of return over cost' or 'marginal efficiency of capital' is not only net of operational cost (such as, the cost of additional labour, materials, power, etc. but also net of depreciation cost or replacement cost

[16] The additional income of Rs. 50 also excludes the depreciation cost or replacement cost. We can put the situation like this. Suppose the additional machine annually gives the expected income to the businessman equal to Rs 150 and the annual replacement cost of the machine is Rs. 100, then the net income = Rs (150 − 100) = Rs 50

[17] Some modern economists like to use the word *Marginal Efficiency of Investment (MEI)* in place of the term '*Marginal Efficiency of Capital (MEC)* which was used by Keynes There appears to be no settled terminology. As a matter of fact a main distinction between the MEC and the MEI is one of the concept of '*stock*' and the concept of '*flow*'. A capital good indicates a 'stock' of capital at a particular time, whereas 'investment' is a 'flow of investment expenditure during a period of time or per unit of time'. As a matter of fact 'investment' is nothing but a 'net addition of capital goods' during a period of time. Thus, *loosely* the MEC and the MEI are interchangeably used.

[18] "More precisely I define the marginal efficiency of capital as being equal to that rate of discount which would make the present value of the series of annuities given by the returns expected from the capital asset during its life just equal to its supply price."

Supply Price or Cost of the Capital Asset), $R_1, R_2, R_3 \ldots \ldots$ = पूँजीगत सम्पत्ति से प्राप्त होने वाले प्रतिफलों की श्रृंखला (the series of expected returns of the capital asset)। अब, हम अधिक सरल तरीके से कह सकते हैं कि पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) बट्टे की वह दर है जो कि निम्नलिखित समीकरण की संतुष्टि करती है (Now, we can say more mechanically that the marginal efficiency of capital (or MEC) is that rate of discount which satisfies the following equation)—

$$C = \frac{R_1}{(1+MEC)} + \frac{R_2}{(1+MEC)^2} + \frac{R_3}{(1+MEC)^3} + \cdots \frac{R_n}{(1+MEC)^n}$$

यदि हम MEC के लिए चिन्ह (symbol) 'r' का प्रयोग करें तो

$$C = \frac{R_1}{(1+r)} + \frac{R_2}{(1+r)^2} + \frac{R_3}{(1+r)^3} + \cdots \frac{R_n}{(1+r)^n} \quad (1)$$

इस समीकरण (1) मे समस्या है 'पूँजी की सीमान्त कुशलता' अर्थात् 'बट्टे की दर' (r) को ज्ञात करने की[19] जबकि पूर्ति मूल्य या लागत (C) तथा 'प्रतिफलों की ज्ञात श्रृंखलाएँ' ($R_1, R_2, R_3 \ldots R_n$) दी हुयी हैं।[20]

उपर्युक्त विवेचन के बाद अब हम पूँजी की सीमान्त कुशलता से सम्बन्धित मुख्य बिन्दुओं (main points) को एक जगह प्रस्तुत कर सकते है। ये बिन्दु नीचे दिये गये है—

1. यह अर्थात् (MEC) एक अनुपात (a ratio) अथवा एक दर (a rate) है, अर्थात् यह 'एक प्रतिशत दर' (*a percentage rate*) है। (यह रुपयों मे, या डालरो मे, अथवा द्रव्य की किसी भी इकाई मे व्यक्त नहीं की जानी है।)
2. यह एक 'प्रत्याशित दर' (an *expected rate*) है जो कि भविष्य की सभी अनिश्चितताओ के अधीन होती है।[21]
3. यह 'क्रियात्मक लागतों' से स्वतन्त्र होने के अतिरिक्त घिसायी लागत या प्रतिस्थापन लागत से भी स्वतन्त्र होती है। यदि प्रत्याशित प्रतिफलों की श्रृंखला (अर्थात् R's) पूंजीगत वस्तु की प्रतिस्थापन लागत से अधिक नहीं होती है तो लागत के ऊपर प्रतिफल की कोई दर नहीं होगी।[22]
4. यह एक '**सीमान्त दर**' (*a marginal rate*) होती है। शब्द 'सीमान्त' का अर्थ है कि प्रतिफल की दर का प्रयोग पूँजीगत वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई (जैसे, एक अतिरिक्त मशीन) के लिए लागू होता है, और यह पूँजीगत वस्तु की कुल इकाइयों के लिए लागू नहीं होता।[23]

---

[19] 'The mechanical problem of finding *r* is not too difficult. Once an investor will have the series $R_1, R_2, R_3 \ldots \ldots R_n$ fixed in his mind, and since he will also have a good idea of the supply price from the price quoted to him by the asset manufacturer (and from estimates of its acquisition cost), he need only experiment with different values of *r* in the equation Once he had found an *r* which brings the right hand side into equality with the left hand side, he will have found the marginal efficiency of that particular asset."

[20] The problem in equation (1) is to determine the 'marginal efficiency of capital', that is, 'the rate of discount' (r) from a known supply price or cost (C) and a 'known series of returns' ($R_1, R_2, R_3 \ldots \ldots R_n$)

[21] It is an '*expected rate*' which is subject to all the uncertainties of future.

[22] Besides being net of operational costs, it is also 'net of depreciation cost'. If the series of expected returns (R's) do not exceed the cost of replacing the capital good, there will be no rate of return of over cost

[23] It is a '*marginal*' rate The word 'marginal' means that the expected rate of return is applied to '*an additional unit* of capital good' (*e g*, an additional machine), and not to the total number of units of the capital good.

5. यह 'बट्टे की एक दर' (*a rate of discount*) है;[24] विशेषतया बट्टे की वह दर है जो कि पूँजीगत वस्तु से 'आय के प्रत्याशित प्रवाह' के वर्तमान मूल्य को उस पूँजीगत वस्तु के वर्तमान पूर्ति मूल्य (या उसकी लागत) के ठीक बराबर करती है।[25]

दूसरे शब्दों मे, एक पूँजीगत वस्तु की लाभदायकता को बट्टे की दर के रूप मे व्यक्त किया जाता है, जिसे पूँजी की सीमान्त कुशलता (MEC) कहते है।[26]

6. 'पूंजी की सीमान्त कुशलता' तथा 'ब्याज की दर' के बीच अन्तर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। एक व्यक्तिगत व्यापारी के लिए ब्याज की दर रुपया उधार लेने की लागत है अथवा द्रव्य उधार देने के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली आय है। जबकि पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) एक नयी भौतिक पूंजीगत वस्तु को खरीदने से प्राप्त होने वाली आय या प्रतिफल है।[27]

इस अन्तर के परिणामस्वरूप केंज ने निवेश-निर्णय को MEC तथा ब्याज की दर की तुलना के शब्दो मे व्यक्त किया। दूसरे शब्दों मे, यदि MEC अधिक है ब्याज की दर से, तो एक व्यापारी पूंजीगत वस्तु मे निवेश करना पसन्द करेगा, यदि MEC कम है ब्याज की दर से तो वह निवेश नही करेगा।[28]

3. MEC-तालिका तथा रेखा (MEC-Schedule and Curve)

हम देख चुके है कि MEC एक पूँजीगत वस्तु की लागत के ऊपर 'प्रत्याशित शुद्ध प्रतिफल की दर' (expected rate of net return) है। जब एक MEC-तालिका को ग्राफ पर दिखाया जाता है तो हमे MEC-रेखा प्राप्त हो जाती है। MEC-तालिका (MEC-schedule) को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं—

> **एक फर्म के लिए MEC-तालिका 'निवेश-व्यय की मात्राओं' तथा लागत के ऊपर 'प्रत्याशित शुद्ध प्रतिफलों' के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। यह बताती है कि बढ़ते हुए निवेश व्यय MEC में कमी उत्पन्न करते हैं। दूसरे शब्दों में, निवेश व्यय तथा MEC के बीच उल्टा सम्बन्ध होता है।[29]**

---

[24] It is a rate of discount because the 'present value' of either a specific amount of income or *a stream of expected income in the future must be less than its absolute amount. A* rupee (or a dollar) expected in the future is worth less than a rupee (or a dollar) held in the present.

"This is so because of the phenomenon of interest Money now available can earn for its owner an income in the form of interest This is not possible for money that represents only potential ownership because it is due at some future date. A rupee or dollar held today is worth more than a rupee or a doller due."

[25] It is a '*rate of discount*', specially, that rate of discount which will make the present value of the expected stream of income of the capital good just equal to its present supply price or cost

[26] In other words, the profitability of a capital good is expressed in terms of a discount rate, which is called as MEC

[27] *It is important to keep in mind the distinction, between the 'marginal efficiency of capital' and the rate of interest'.* The rate of interest for an individual businessman is the cost of borrowing money or the income from lending money Whereas, the MEC is the income (or return) from purchasing a new physical capital good

[28] It is this distinction which led Keynes to put the investment decision in terms of a comparison between MEC and the interest rate. In other words, if MEC is greater than the interest rate the businessman will like to invest in the capital good, if the MEC is less than the interest rate he will not invest

[29] The MEC Schedule for a firm relates the '*quantities of investment*' to their *expected net returns over cost*' It tells us that increasing investment expenditure causes a decline in the MEC In other words, there is an inverse relationship between the investment expenditure and the MEC.

ऐसा एक फर्म के सम्बन्ध मे होता है। यदि हम अर्थव्यवस्था मे सभी फर्मों के लिए ऐसा व्यवहार मान ले, अर्थात् हम योग (aggregate) कर लें, तो हमे सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए एक MEC-तालिका प्राप्त हो जायेगी।

चित्र 1

MEC-तालिका का एक काल्पनिक उदाहरण (hypothetical example) नीचे दिया गया है—

निवेश (Investment) [In Crores of Rs.]	MEC (Percentage Rate)
10	20
20	15
30	10
40	5
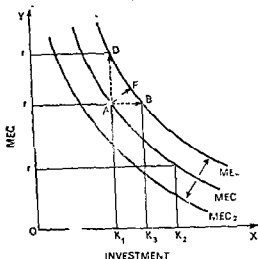
उपर्युक्त MEC-तालिका बताती है कि निवेश की मात्रा मे वृद्धि के साथ MEC घटती है। इस विचार को चित्र 1 में एक नीचे को गिरती हुयी रेखा द्वारा दिखाया गया है और इस रेखा को MEC-रेखा कहा जाता है। चित्र से स्पष्ट है कि जब निवेश K_1 से बढकर K_2 हो जाता है, तो MEC घटती है और वह r_1 से घटकर r_2 हो जाती है।

इस प्रकार MEC 'निर्भर करती है' निवेश की मात्रा पर। गणित के शब्दो में, MEC फंक्शन (या फलन) होती है निवेश का [MEC is a function of investment)। यदि I निवेश को बताता है, r को MEC के लिए प्रयोग किया जाता है, तथा फंक्शन का चिन्ह (symbol) है 'f' तो हम इस बात को इस प्रकार व्यक्त कर सकते है—

$$r = f\ (I)$$

हम चित्र 1 मे MEC रेखा की शक्ल को देख चुके हैं। अब हम इस बात को समझेंगे कि MEC-रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुयी क्यों होती है। दूसरे शब्दों मे, निवेश की मात्रा मे वृद्धि के साथ MEC के घटने के क्या कारण है?

इसके कारणों को बताने से पहले हमे यह ध्यान मे रखना चाहिए कि पूंजी से प्रतिफल (returns) और इसलिए पूंजी की सीमान्त कुशलता पूंजीगत वस्तु की केवल भौतिक विशेषताओ द्वारा ही निर्धारित नही होती। पूंजीगत वस्तु से प्रतिफल (returns) या आय के प्रवाह (stream of incomes) पूंजी की उत्पादकता पर भी निर्भर करते है जबकि पूंजी अन्य साधनों (जैसे, श्रम, इत्यादि) के साथ प्रयोग की जाती है, तथा ये प्रतिफल और इसलिए पूंजी की सीमान्त कुशलता, विक्रय तथा अन्तिम-वस्तुओं (final goods) की कीमतो से सम्बन्धित बाजार की दशाओं और अन्य उत्पत्ति के साधनो की कीमतों पर भी निर्भर करती है।[30]

अब हम नीचे उन कारणों को बताते हैं जो कि इस बात की व्याख्या करते हैं कि निवेश की मात्रा मे वृद्धि के साथ MEC क्यो घटती है, अर्थात् MEC रेखा नीचे को गिरती हुयी क्यों होती है—

---

[30] Before explaining the reasons for this, we should keep in mind that the returns from capital, and hence, capital's marginal efficiency are not determined only by the physical characteristics of the capital good. The returns or stream of incomes from the capital good also depend on the productivity of capital when used in combination with the other factors of production (like labour, etc) and on the market conditions regarding the sale and price of the final goods and the prices of other factors of production.

(i) यदि अन्य उत्पत्ति के साधनों (जैसे, श्रम) की स्थिर मात्रा के साथ पूँजीगत वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो पूँजीगत वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई, पिछली इकाई की तुलना में, उत्पादन में कम वृद्धि करेगी ; अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम[31] कार्यशील होगा।[32]

माना कि दूसरे साधन श्रम की मात्रा पूर्णतया स्थिर नहीं है। ऐसी स्थिति में जहाँ कि पूँजीगत वस्तु की बढ़ती हुयी मात्रा के साथ श्रम की कुछ अतिरिक्त मात्रा का प्रयोग किया जा सकता है तो यह सम्भव होगा कि अतिरिक्त श्रम को केवल ऊँची मजदूरियों की प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही प्राप्त किया जा सकेगा। यदि ऐसा है तो पूँजीगत वस्तु से प्राप्त होने वाले विशुद्ध प्रतिफल (net returns to the capital good) घट जायेंगे ऊँची श्रम-लागत के परिणामस्वरूप जो कि पूँजी और श्रम दोनों की अधिक मात्रा के प्रयोग से सम्बन्धित होगी।[33]

(ii) अर्थव्यवस्था में निवेश की बढ़ती हुयी मात्रा का अर्थ होगा पूँजीगत वस्तुओं (जैसे, मशीनों, यन्त्रों, इत्यादि) की बढ़ी हुयी माँग ; यह बढ़ी हुई माँग पूँजीगत वस्तु की कीमत या पूर्ति-कीमत में वृद्धि करेगी। ऊँची पूर्ति-कीमत के परिणामस्वरूप पूँजीगत वस्तु से 'पूर्ति कीमत के ऊपर विशुद्ध प्रतिफल' (net returns of the capital good over its supply price), अर्थात् पूँजी की सीमान्त कुशलता, घटेगी।

(iii) निवेश की बढ़ती हुयी मात्रा के साथ, अर्थात् पूँजीगत वस्तु के बढ़ते हुये प्रयोग (expanded use of capital good) के साथ, अन्तिम वस्तुओं (final goods) की पूर्ति में वृद्धि होगी और पूर्ति में यह वृद्धि इन अन्तिम वस्तुओं की कीमत में कमी कर देगी। इसके परिणामस्वरूप MEC में घटने की प्रवृत्ति होगी।

हम चित्र 1 में MEC-रेखा की शक्ल देख चुके हैं जो कि नीचे को गिरती हुयी रेखा होती है। उसी चित्र 1 में हम MEC-रेखा में परिवर्तनों (*shifts in the MEC-curve*) को भी दिखाते हैं—

MEC-रेखा आगे को या पीछे को खिसक सकती है। MEC-रेखा के खिसकने में (या परिवर्तन में) आशाएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।[34]

समृद्धि और तेजी के समय में (during the period of prosperity and boom), भविष्य में लाभदायकता के सम्बन्ध में आशाएँ ऊँची होती है और व्यापारी ऊँचे प्रत्याशित

---

[31] The operation of the law of diminishing returns is a short period phenomenon because other factors (like labour, etc) are taken as constant and the capital good is the variable factor. Even *in the long period,* the m. e. c. will decline with increasing amount of investment. The reason is given as follows. 'Increasing investment means that a larger proportion of a firm's assets are dependent on estimated future yields. The risk is therefore greater if things should go wrong, and so a larger allowance must be paid for risk as investment increases. This will reduce expected future yields for such additional units as investment increases.'

[32] If, with the fixed amount of other factors of production (say, labour), more units of the capital good are used, then each additional unit of the capital good would give a smaller increase in output than the last unit, that is, the law of diminishing returns would operate. This will cause m. e. c. to decrease with increasing amount of the capital good

[33] Suppose the quantity of the other factor labour is not totally fixed. In the case where some additional labour could be used alongwith the increasing amount of the capital good, then it is possible that the additional labour could be obtained only through the incentive of higher wages. If so, the 'net returns' to the capital good would be reduced by the higher labour-cost associated with the increased use of both capital and labour.

[34] The MEC Curve may shift forward or backward. Expectations play an important role in causing a shift in the MEC curve.

प्रतिफलों की गणना (estimate) करते है तथा इसके परिणामस्वरूप MEC-रेखा सीधी तरफ ऊपर को खिसक जाती है। मन्दी के समय में (during the period of recession and depression), भविष्य मे लाभदायकता के सम्बन्ध मे आशाएँ नीची हो जाती है और व्यापारी नीचे प्रत्याशित प्रतिफलों की गणना करने लगते है, तथा इसके परिणामस्वरूप MEC-रेखा बांयी तरफ नीचे को खिसक जाती है।

माना कि चित्र 1 मे MEC-रेखा ऊपर को खिसककर MEC_1 की स्थिति मे आ जाती है। ऊँची MEC_1 रेखा पर बिन्दु D बताता है कि पूँजीगत वस्तु की समान मात्रा यानी समान निवेश OK_1 से एक ऊँचा प्रत्याशित प्रतिफल r_3 के बराबर प्राप्त होगा अपेक्षाकृत शुरू की प्रतिफल की दर r_1 के 1 MEC_1 रेखा पर बिन्दु B यह बताता है कि निवेश की अधिक मात्रा OK_2 (शुरू की मात्रा OK_1 की तुलना मे) से प्रतिफल की प्रत्याशित दर r_1 शुरू के या पहले के समान है। MEC_1—रेखा पर बिन्दु F निवेश की अधिक मात्रा तथा प्रतिफल की ऊँची दर दोनों को बताता है। MEC रेखा के नीचे की ओर खिसकने से उपर्युक्त परिणाम उल्टे हो जायेंगे।[35]

हमने ऊपर MEC तालिका तथा MEC रेखा के सम्बन्ध मे तथा MEC रेखा के परिवर्तनों (shifts) के सम्बन्ध मे विवेचना प्रस्तुत की है।

> **यद्यपि MEC रेखा निवेश की विभिन्न मात्राओं से प्रतिफलों की प्रत्याशित दर को बताती है, परन्तु यह इस बात को नहीं बताती कि एक समय विशेष पर निवेश की कौन-सी मात्रा लाभदायक होगी; अथवा यह इस बात को नहीं बताती कि अधिकतम लाभ या प्रतिफल को प्राप्त करने के लिए व्यापारी निवेश की कितनी मात्रा लगायेंगे। इस मतलब या उद्देश्य के लिए एक-दूसरे चर या तत्व की आवश्यकता होगी, और यह दूसरा तत्व है बाजार की ब्याज-दर; और लाभदायकता की दृष्टि से निवेश-निर्णय को लेने के लिए व्यापारी MEC की तुलना बाजार ब्याज दर (i) के साथ करेंगे।**[36]

इस बात की विवेचना हम अगले चरण (step) मे विस्तृत रूप से करेंगे।

4. निवेश-निर्णय नियम तथा निवेश माँग रेखा (Investment-Decision Rule and Investment Demand Curve)

केंजियन दृष्टिकोण (Keynesian approach) के अनुसार पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) की तुलना बाजार ब्याज दर[37] से की जायेगी और यह तुलना पूँजीगत वस्तुओं को खरीदने के सम्बन्ध मे फर्मों के लिए **'निवेश-निर्णय नियम'** (*Investment-Decision Rule*) प्रदान करेगी। निवेश-निर्णय नियम को आगे दिया गया है—

---

[35] In figure 1, suppose MEC shifts upwards to the position of MEC_1. Point D on the higher MEC_1 curve indicates that the same amount of capital good or the same investment OK_1 now means a higher expected return (or a higher MEC) equal to r_3 in comparison to the original rate of return r_1. Point B on the MEC_1 curve indicates that the larger amount of investment OK_2 (in comparison to the former amount OK_1) has the same original expected rate of return r_1. Point F on the MEC_1 curve indicates both a greater amount of investment and a greater rate of return In the case of a downward shift in the MEC curve, the above results will be reversed.

[36] Though the MEC curve shows the expected rate of returns from different amounts of investment, but *it does not tell us what amount of investment would be profitable at a particular time.* Or, what amount of investment will be made by a businessman to get maximum profit or return? For this purpose another variable or factor is required, and this another factor is the market rate of interest, and to take an investment decision for profitability, the businessman will compare MEC with the market rate of interest (i).

[37] In reality, a single rate of interest does not prevail in the market, but we find several interest rates in the market For economic analysis we assume that a single rate of interest is faced by each firm in the economy. We can think of 'a single interest rate' as an average of all interest rates.

यदि पूंजी की सीमान्त कुशलता (r) अधिक है बाजार ब्याज-दर (i) से, तो फर्म के लिए पूंजीगत वस्तु मे निवेश करना लाभदायक होगा। यदि पूंजी की सीमान्त कुशलता (r) कम है ब्याज की दर (i) से, तो फर्म पूंजीगत वस्तु को नहीं खरीदेगी क्योंकि ऐसी स्थिति लाभदायक नहीं होगी। जब पूंजी की सीमान्त कुशलता (r) ठीक बराबर हो जाती है ब्याज की दर (i) के, तो निवेश का संतुलन स्तर प्राप्त हो जायेगा और फर्म इस बिन्दु के बाद निवेश में वृद्धि नहीं करेगी।[38]

इसके अतिरिक्त, जब एक फर्म अनेक विभिन्न प्रकार की पूंजीगत वस्तुओं का प्रयोग करती है तो वह एक दिये हुये निवेश के लिए अपने लाभ को तब अधिकतम कर पायेगी जबकि वह प्रत्येक प्रकार की पूंजीगत वस्तु पर प्रतिफल (return) की दर (या सीमान्त कुशलता) को बराबर करती है। यदि वह एक पूंजीगत वस्तु पर, दूसरी पूंजीगत वस्तु की तुलना मे, प्रतिफल की ऊंची दर को प्राप्त करती है, तो वह प्रतिफल की ऊंची दर वाली पूंजीगत वस्तु की अधिक इकाइयों को खरीद कर अपने लाभ को बढ़ायेगी। जब वह अपनी पूंजी के पुनर्वितरण द्वारा अपने लाभ को नहीं बढ़ा पाती है, तब वह एक दिये हुये निवेश के लिए अपने लाभ को अधिकतम कर लेगी।" परन्तु इसके साथ-साथ फर्म, निसन्देह, प्रत्येक प्रकार की पूंजी की सीमान्त कुशलता (r) की तुलना बाजार की ब्याज दर (i) के साथ करेगी।[39]

संक्षेप में, 'निवेश-निर्णय नियम' को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

यदि $r > i$,	फर्म निवेश करना पसन्द करेगी (the firm will like to make investment).
यदि $r < i$,	फर्म निवेश नही करेगी (the firm will not make investment.)
यदि $r = i$,	निवेश का सन्तुलन स्तर प्राप्त हो जायेगा, तथा फर्म और आगे निवेश नही करेगी (the equilibrium level of investment will be achieved, and the firm will not make any further investment)

अब तक हमने एक फर्म के लिए निवेश-निर्णय नियम देखा, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए भी यही निवेश-निर्णय नियम लागू होगा—

यदि हम अर्थव्यवस्था मे सभी फर्मों का उपर्युक्त व्यवहार मान लें तथा यह भी मान लें कि ब्याज की एक अकेली दर है, तो हम सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए फर्म वाले समान निवेश-निर्णय नियम की तथा समान सन्तुलन दशा ($r = i$) की कल्पना कर सकते हैं। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए निवेश निर्णय को उस बिन्दु तक बढ़ाया जायेगा जहाँ पर कि पूंजीगत सम्पत्ति का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं रह

---

[38] If the marginal efficiency of capital (r) is greater than the market rate of interest (i) it will be profitable for the firm to invest in the capital good. If the marginal efficiency of capital (r) is less than the rate of interest (i), the firm will not purchase the capital good because such a situation will not be profitable. When the marginal efficiency of capital (r) becomes just equal to the rate of interest (i), the 'equilibrium level of investment' will be attained and the firm will not increase the investment beyond this point

[39] Further, "when a firm uses several different types of capital goods, it maximises its profit for a given investment by equating the rate of return (or marginal efficiency) on each type of capital good. If it could earn a higher rate of return on one type of capital good than another, it would increase its profit by acquiring more units of that capital good with the higher rate of return When it can no longer increase its profits by reallocating its capital, it has maximised its profit for a given amount of investment." But, along with this, the firm will no doubt, compare the marginal efficiency of each type of capital good (r) with the market rate of interest (i).

जाता जिसकी सीमान्त कुशलता ब्याज की दर से अधिक हो। जब एक बार सन्तुलन की दशा (r = i) पहुँच जाती है तो और अधिक निवेश करना बन्द कर दिया जायेगा। दी हुई दशाओं के अन्तर्गत और अधिक निवेश केवल तब किया जायेगा जबकि ब्याज की दर घट जाती है। यदि ब्याज की दर घटती है तो अब पूंजी की नीची कुशलता वाली योजनाएँ लाभदायक हो जायेंगी, तथा निवेश मे वृद्धि होगी। इस प्रकार, पूंजी की एक नीची सीमान्त कुशलता की दर (r) तथा ब्याज की एक नीची दर (i) पर निवेश का एक नया संतुलन स्तर (r = i) प्राप्त हो जायेगा।[40]

अतः, ब्याज की विभिन्न दरों की कल्पना करके हम एक 'निवेश मांग रेखा' (*Investment Demand Curve*) को निकाल सकते हैं, और यह निवेश मांग रेखा निवेश-मांग तथा ब्याज की दर के बीच उल्टे सम्बन्ध (inverse relation) को बतायेगी; अर्थात् नीची ब्याज दर पर अधिक निवेश किया जायेगा तथा ऊँची ब्याज दर पर कम निवेश किया जायेगा।

अब हम निवेश मांग रेखा के सम्बन्ध मे सारी स्थिति को चित्र 2 द्वारा समझा सकते है।

चित्र 2
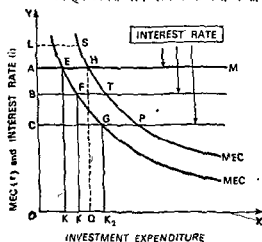
निवेश का संतुलन उस बिन्दु द्वारा बताया जाता है जहाँ पर r = i के है। चित्र 2 मे, जब बाजार ब्याज-दर की रेखा AM है (अर्थात् ब्याज दर OA) है), तो OK के बराबर निवेश-व्यय किया जायेगा क्योंकि निवेश के इस स्तर पर r = i के है जैसा कि बिन्दु E बताता है। बिन्दु A (अथवा बिन्दु E) के नीचे कोई निवेश नही किया जायेगा जब तक कि ब्याज की दर नही घटती है। यदि ब्याज की दर घटकर OB हो जाती है, तो संतुलन-निवेश (equilibrium investment) बढ़कर OK_1 हो जायेगा, क्योंकि निवेश के इस स्तर पर r पुनः बराबर हो जायेगा i के। यदि ब्याज की दर और नीचे गिर कर OC के बराबर हो जाती है तो अब पूंजी की और अधिक नीची सीमान्त कुशलता वाली योजनाएँ लाभदायक हो जायेंगी और निवेश का संतुलन-स्तर बढ़कर OK_2 हो जायेगा जैसा कि MEC-रेखा पर बिन्दु G बताता है; यह बिन्दु G ब्याज-दर रेखा तथा MEC रेखा का कटाव बिन्दु है। अतः

> **यदि पूंजी की सीमान्त कुशलता MEC दी हुई है, तो ब्याज की दर में कमी के साथ निवेश मांग में वृद्धि होगी। इस प्रकार, निवेश मांग रेखा एक नीचे को**

---

[40] If we assume such behaviour for all firms in the economy and also assume that a single rate of interest prevails, we can imagine the same investment decision rule and the same equilibrium condition (r = i) for the economy as a whole. For the economy as a whole, investment expenditure will also be increased or pushed upto the point at which "there is no longer any class of capital asset of which the marginal *efficiency exceeds* the rate of interest. Once the equilibrium condition (r = i) is reached, further investment will stop. Under given conditions, further investment will be undertaken only when the rate of interest falls If the rate of interest (i) declines, then new projects with lower m. e. c. will become profitable and the investment will increase. Thus, a 'new' equilibrium level of investment (r = i) will be attained at a lower rate of marginal efficiency of capital (r) and a lower rate of interest (i)."

> गिरती हुई रेखा (जैसा कि चित्र 2 में MEC रेखा है) होगी जो कि निवेश की मात्राओं तथा ब्याज दरों मे उल्टा सम्बन्ध बतायेगी।[41]

माना कि भविष्य मे व्यापारिक क्रिया के सम्बन्ध मे आशावादिता (optimism) तथा ऊँची आशाओं के कारण MEC रेखा ऊपर को खिसक कर MEC_1 की स्थिति में आ जाती है (देखिए चित्र-2)। ऊँची रेखा MEC_1 यह बताती है कि प्रत्येक ब्याज दर पर निवेश की मात्रा (पहले की तुलना मे) अधिक है। चित्र मे अब OA ब्याज की दर पर निवेश की मात्रा OQ होगी (जैसा कि ऊँची रेखा MEC_1 पर बिन्दु H बताता है) जो कि अधिक है इसी ब्याज दर पर पहले की निवेश-मात्रा OK की तुलना मे। केवल इतना ही नहीं, यदि पहले की ब्याज दर OA से ब्याज दर थोड़ी ऊँची है, माना कि थोड़ी ऊँची ब्याज दर OL है, तो भी ऊँची रेखा MEC_1 पर निवेश की मात्रा (LS) अधिक होगी नीची ब्याज दर OA पर पहली निवेश-मात्रा (AE) की तुलना मे।

हम देख चुके है कि ब्याज दर मे परिवर्तनों के परिणामस्वरूप निवेश मे परिवर्तन होता है; अर्थात्, **निवेश ब्याज-के-प्रति-लोचदार होता है** (*investment is interest-elastic*)। **परन्तु निवेश की ब्याज-लचक** (*interest-elasticity*) **निर्भर करती है MEC-रेखा की शक्ल पर—**

> **सामान्यतया हम कह सकते है कि MEC-रेखा जितनी अधिक समतल (flat) होगी उतनी ही निवेश की ब्याज-लचक अधिक होगी; तथा MEC-रेखा जितनी अधिक ढालू (steep) होगी उतनी ही निवेश की ब्याज लचक कम होगी।**[42]

उपर्युक्त सामान्य कथन चित्र 3 से स्पष्ट होता है। चित्र 3 मे MEC_1 रेखा अधिक समतल (flatter) है; ब्याज दर मे OA से OB तक की कमी निवेश मे अधिक वृद्धि (OK से OK_2) उत्पन्न करती है (अर्थात निवेश मे वृद्धि होती है KK_2 के बराबर), तथा इस प्रकार निवेश की ब्याज-लचक (interest elasticity of investment) ऊँची है। इसी चित्र मे MEC_2 एक ढालू रेखा (steep curve) है, तथा इस स्थिति मे, ब्याज की दर मे OA से OB तक की वही कमी निवेश मे बहुत थोड़ी वृद्धि (OK से OK_1) करती है, अर्थात निवेश मे वृद्धि KK_1 के बराबर होती है; इस स्थिति मे ब्याज-लचक नीची (low) है।
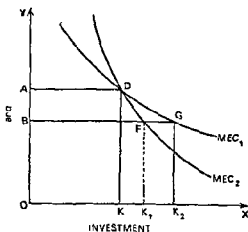
चित्र 3

अब हम MEC-दृष्टिकोण (*MEC-Approach*) के आधार पर निवेश माँग रेखा के सम्बन्ध में समस्त स्थिति का सारांश (summing up) निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते है—

> **विभिन्न ब्याज-दरों को मानकर चलने से, हम एक निवेश माँग रेखा निकाल सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि हम विभिन्न ब्याज-दरों को जानते हैं तो हम MEC-रेखा से निवेश की विभिन्न मात्राओं को ज्ञात कर सकते हैं। ऊँची ब्याज**

---

[41] Given the MEC, the investment demand increases with the decrease in the interest rate. Thus, investment-demand curve will be a downward sloping curve (as MEC—curve in figure 2) indicating an inverse relation between the quantities of investment and interest rates

[42] Broadly, we can say that the flatter the MEC curve, the greater will be the interest-elasticity of investment, and the steeper the MEC curve, the lower will be the interest-elasticity of investment

दरों पर निवेश की मात्रा कम होगी तथा नीची ब्याज दरों पर निवेश की मात्रा अधिक होगी। इस प्रकार निवेश माँग रेखा ब्याज दर तथा निवेश की मात्रा के बीच उल्टे सम्बन्ध को बताती है। साधारण माँग रेखा की भाँति, निवेश-माँग रेखा नीचे को दाँयीं ओर गिरती हुयी होती है और ऐसी रेखा बताती है कि कीमत (अर्थात् ब्याज दर) में कमी के साथ मात्राओं (अर्थात् निवेश की मात्राओं) में वृद्धि होती है।

यहाँ पर यह बात ध्यान देने की है निवेश-माँग रेखा को निकालने की रीति के कारण, निवेश-माँग रेखा को सामान्यतया पूंजी की सीमान्त कुशलता रेखा (या MEC-रेखा) कहा जाता है। वास्तव में, निवेश-माँग रेखा पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) तथा बाजार की ब्याज दर के बीच सम्बन्ध पर निर्भर करती है।[43] यदि MEC-तालिका या MEC-रेखा दी हुई है, तो निवेश-माँग की मात्रा ब्याज दर पर (उल्टे रूप में) निर्भर करेगी।[44]

5. MEC-सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the MEC Theory)

इस कैंजियन दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित मुख्य आलोचनाएँ की जाती है—

(i) निवेश तथा ब्याज दर के बीच उल्टे सम्बन्ध (inverse relationship) की मान्यता अधिकांश स्थितियों में सही नहीं होती। दूसरे शब्दो मे, यह मान्यता कि MEC-रेखा 'ब्याज के प्रति लोचदार' (interest-elastic) होती है, वास्तविक (realistic) नही है। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित है—

(i) बडी फर्मों द्वारा निवेश निर्णय सामान्यतया दीर्घकालीन नियोजन (long-term planning) के परिणाम होते है; दूसरे शब्दो मे, निवेश व्यय दीघकलीन योजना (long-term planning) की केवल विभिन्न कड़ियाँ (various links) होती है। फर्मे केवल ब्याज दर मे परिवर्तनों के ही जाने के कारण अपने निवेश निर्णयो मे परिवर्तन नही करेगी।

(ii) निवेश की क्रिया के सम्बन्ध मे निर्णय लेने तथा उसके पूरा करने के बीच एक समय-अवधि (time-interval) रहती है। अत: निवेश व्यय को शुरू कर देने के बाद एक व्यापारी के लिए यह बहुत कठिन होगा कि वह इस समय-अवधि मे केवल ब्याज की दर मे परिवर्तन हो जाने के कारण अपने निवेश-व्यय मे परिवर्तन कर दे।

(iii) बड़ी फर्मों या निर्माणकर्ताओ (manufacturers) के स्टॉको या इनवेन्ट्रियो मे निवेश सामान्यतया ब्याज-दर मे परिवर्तनो से अप्रभावित रहते है।

---

[43] We can say that investment is a function of marginal efficiency of capital (r) and interest rate (i) That is,

$$I = f(r, i)$$

[44] By postulating various interest rates, we can derive an investment demand curve. In other words, if we know the various rates of interest, we can read off the various amounts of investment from the MEC-curve. Investment will be less at higher rates of interest and it will be greater at lower rates of interest. Thus, the investment demand curve shows the inverse relationship between the rate of interest and the quantity of investment Like the typical demand curve, investment demand curve slopes downward to the right to show that quantity (i. e, quantity of investment) increases as the price (i. e, interest rate) decreases.

We should note here that, because of the method of derivation described here, the investment demand curve is generally called as the Marginal Efficiency of Capital Curve. As a matter of fact the investment demand depends upon the relationship between the MEC and the market rate of interest. If the MEC schedule or the MEC-curve is given or known, then the volume of investment demand will depend (inversely) on the interest rate.

स्टॉकों मे निवेश अन्य बातों से प्रभावित होते है, जैसे कि उत्पादन का स्तर, बिक्री (sales) तथा मांग, इत्यादि।

(2) दीर्घकालीन ब्याज की दर, मुख्यतया संस्थागत कारणों के परिणामस्वरूप, सदैव निवेश की वास्तविक लागत को नहीं बताती। उदाहरणार्थ बड़ी कम्पनियाँ या निगम (corporations) ब्याज खर्चों को सामान्यतया करारोपण के उद्देश्यों से लागतों के अन्तर्गत दिखाते हैं, और इस प्रकार ब्याज-भुगतानों का बोझ कुछ सीमा तक कर-भुगतानो मे कमी के परिणामस्वरूप घट जाता है।[45]

(3) निस्सन्देह, MEC में परिवर्तन निवेश निर्णयों को प्रभावित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है अपेक्षाकृत ब्याज की दर में परिवर्तनों के। परन्तु पूंजी की सीमान्त कुशलता या MEC प्रतिफल की 'प्रत्याशित' दर ('expected' rate of return) के कारण अनिश्चित (uncertain) होती है; और इसलिए यह भविष्य में बिक्री की आशाओं ('expectations' of future sales) पर आधारित होती है। अनिश्चितता की मात्रा (degree of uncertainty) MEC की एक सही गणना (estimate) करने के कार्य को असम्भव बनाती है और इस प्रकार MEC की तुलना ब्याज-दर से करना कठिन होता है। अनेक तत्व आशाओं (expectations) को, और इसलिए MEC को, प्रभावित करते है, जैसे वस्तु की वर्तमान मांग, आय का स्तर, तकनीकी विकास, इत्यादि। इस प्रकार, निवेश के अनेक निर्धारक तत्व होते है और निस्सन्देह वे MEC के माध्यम से कार्य करते है।

अब हम समस्त स्थिति का इस प्रकार से सारांश (summing up) प्रस्तुत कर सकते है—

वास्तव में, निवेश-निर्णय ब्याज में परिवर्तनों के प्रति उतने बेतनशील नहीं होते जितने कि MEC का सिद्धान्त मानता हुआ प्रतीत होता है। ऐसा सिद्धान्त जोकि निवेश को केवल ब्याज दर से सम्बन्धित करता है वह निवेश की एक अपर्याप्त व्याख्या प्रस्तुत करता है। व्यवहार मे अनेक तत्व निवेश को निर्धारित करते हैं तथा वे आशाओ के माध्यम से, और इसलिए MEC में परिवर्तनों के माध्यम से, कार्य करते है। परन्तु MEC बहुत अनिश्चित और परिवर्तनशील (volatile) होती है।[46]

पूंजी की सीमान्त कुशलता को प्रभावित करने वाले तत्व

(FACTORS AFFECTING MARGINAL EFFICIENCY OF CAPITAL)

निवेश मांग (investment demand) के दो मुख्य निर्धारक है (i) ब्याज की दर, तथा (ii) पूंजी की सीमान्त कुशलता। अन्य सभी तत्व जो निवेश को प्रभावित करते है वे इन दो मुख्य तत्वों के माध्यम से कार्य करते है।[47]

पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) एक अत्यन्त ऊँचा-नीचा होने वाला तथा परिवर्तनशील तत्व है क्योंकि यह अनुमानो व आशाओ पर आधारित होता है। अनेक प्रकार के तत्व,

---

[45] The long-term rate of interest does not always indicate the 'real cost of investment' mainly because of institutional reasons For example, large companies or corporations generally claim interest charges as costs for purposes of taxation and, thus, the burden of interest payments becomes less to some extent by reductions in tax payments.

[46] As a matter of fact, investment decisions are not so sensitive to interest charges as the theory of MEC seems to imply A theory which relates investment mainly to the rate of interest seems to be an inadequate explanation of investment. In practice many factors determine investment and they operate through expectations and therefore through the changes in MEC. And the MEC is very uncertain and volatile

[47] निवेश तथा ब्याज दर मे उल्टा सम्बन्ध (inverse relation) बताया जाता है। परन्तु यह सम्बन्ध सदैव सही नही होता, अथवा यह एक मजबूत सम्बन्ध (strong relationship) नही बताता। पूंजी की सीमान्त कुशलता एक अन्य तत्व है जो कि निवेश के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा करता है।

अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों प्रकार के तत्व, आशाओं (expectations) को प्रभावित करते है और इसलिए MEC को प्रभावित करते है।[48] MEC को प्रभावित करने वाले तत्व नीचे दिये गये है—

1. वस्तुओं की वर्तमान तथा प्रत्याशित मांग (Current and Expected Demand for Goods)

एक व्यापारी द्वारा उत्पादित उपभोक्ता-वस्तुओ की प्रत्याशित माँग (expected demand) उसके बिलकुल हाल के अनुभव (most recent experience) से सामान्यतया प्रभावित होती है। यदि उसकी वस्तुओ की वर्तमान मांग ऊँची है, तथा ऐसा कुछ समय तक रहा है, तो वह भविष्य की मांग के सम्बन्ध में भी आशावादी (Optimistic) होगा, और इसलिए वह निवेश की मात्रा बढ़ना पसन्द करेगा। दूसरी ओर यदि वर्तमान मांग गिर रही है या नीची है तो वह भविष्य की मांग के सम्बन्ध मे कुछ निराशावादी (pessimistic) होगा, और इसलिए वह निवेश मे वृद्धि (या उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि) करने को अनिच्छुक (unwilling) होगा। इस प्रकार, वस्तुओ की वर्तमान तथा प्रत्याशित मांग (present and expected demand) निवेश के स्तर को प्रभावित करेगी।

2. पूंजीगत वस्तुओं तथा यन्त्रों का वर्तमान स्टॉक (The existing stock of capital goods and equipments)

यदि पूंजीगत वस्तुओ का वर्तमान स्टॉक अधिक है, अर्थात एक उद्योग मे प्लाट, यन्त्र तथा इनवेन्ट्रियों की वर्तमान मात्रा अधिक है तो, अन्य बातो के समान रहने पर, MEC बहुत नीची होगी। ऐसी स्थिति निवेश-कर्त्ताओं (investors) को उद्योग में प्रवेश करने के प्रति हतोत्साहित (discourage) करेगी तथा सम्भवतया और अधिक निवेश नही किया जायेगा शायद 'अतिरिक्त क्षमता के डर' (fear of excess capacity) के कारण जो कि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग मे कमी के परिणामस्वरूप कभी-कभी उत्पन्न (emerge) हो सकती है।

यदि एक उद्योग मे 'अतिरिक्त-क्षमता वास्तव मे मौजूद है (*if the excess-capacity actually exists* in an industry) तथा वर्तमान पूंजीगत स्टॉक का एक हिस्सा अप्रयुक्त (idle) पड़ा हुआ है, तो कोई अतिरिक्त निवेश नही किया जायेगा क्योंकि वस्तु की मांग में वृद्धि को अप्रयुक्त या अतिरिक्त क्षमता (unused or excess capacity) का प्रयोग करके पूरा किया जा सकेगा। जब वर्तमान क्षमता (present capacity) का पूरी प्रकार से प्रयोग कर लिया जाता है, केवल तब ही वस्तु की ऊँची मांग के उत्पन्न (generate) होने की आशा मे कुछ नया निवेश किया जायेगा।

3. आय का स्तर और उसमें परिवर्तन तथा आर्थिक क्रिया, एवं व्यावसायिक विश्वास (Level and change of income and economic activity, and business confidence)

(i) आर्थिक क्रिया तथा आय का एक ऊँचा स्तर, अर्थात उत्पादन तथा बिक्री का एक ऊँचा स्तर, सामान्यतया MEC मे वृद्धि करेगा और इसलिए निवेश मे वृद्धि करेगा। *दूसरी ओर, यदि आर्थिक क्रिया तथा आय का स्तर नीचा है, तो निवेश भी नीचा* (low) होगा।

(ii) आर्थिक क्रिया तथा आय मे 'परिवर्तन की दर तथा दिशा' आशाओ को बनाने मे एक शक्तिशाली ताकत होती है, और इसलिए MEC को प्रभावित करने मे शक्तिशाली ताकत होती है। दूसरे शब्दो मे, आशावादिता तथा निराशावादिता को बदलती हुयी लहरें MEC रेखा की स्थिति को बदल देती हैं।[49]

---

[48] MEC is a widely fluctuating and shifting phenomenon because it is based on hunches and expectations. A wide variety of factors, both short-run and long-run, affect expectations and therefore they affect MEC.

[49] '*Rate and direction of change*' in economic activity and income is a powerful force in moulding expectations and, hence, in affecting the MEC In other words, alternating waves of optimism and pessimism change the position of MEC curve.

(a) एक 'तेजी से बढती हुई अर्थव्यवस्था' व्यवसायिक नाड़ी को तेज करती है, MEC को बढाती है, तथा अधिक निवेश को प्रोत्साहित करती है। समृद्धि तथा स्फीति का समय (*period of prosperity and inflation*) आकस्मिक लाभो (windfall profits)[80] की सम्भावना के कारण निवेश को प्रेरित (stimulate) करता है। केवल यह ही नहीं, स्फीति तथा समृद्धि का समय व्यावसायिक विश्वास, आशावादिता (optimism) तथा चढती हुयी आशाओं (rising hopes) का समय होता है, तथा व्यापारी लोग निवेश पर भविष्य के प्रतिफलो का सामान्तया अत्यधिक मूल्यांकन (over estimation) करते है। ये सब बातें MEC-में वृद्धि करती हैं और सम्पूर्ण MEC-रेखा को ऊपर की सीधी तरफ खिसका (या shift कर) देती हैं; इसका परिणाम होता है निवेश मे बहुत अधिक वृद्धि।

(b) दूसरी ओर, विस्फीति तथा मन्दी का समय (*period of deflation and depression*) नीची व्यावसायिक क्रिया, नीचा व्यावसायिक विश्वास, निराशावादिता (pessimism), तथा गिरती हुई आशाओ का समय होता है। इस समय मे व्यापारी सामान्यतया नुकसान उठाने है तथा निवेश पर भविष्य के प्रतिफल (return) के सम्बन्ध मे अत्यधिक नीचा अनुमान (under-estimation) लगाते है। यह सब MEC को घटाता है तथा सम्पूर्ण MEC रेखा को नीचे को बायी तरफ खिसकाता (या shift करता) है; इसका परिणाम होता है निवेश मे बहुत अधिक कमी।

4. श्रम बाजार की दशाएँ (Labour Market Conditions)

मजदूरियों मे तीव्र वृद्धि (मुख्यतया उन्नतशील देशो मे) MEC मे कमी उत्पन्न कर सकती है; परन्तु ऐसा अनेक दशाओ (conditions) पर निर्भर करेगा, व्याख्या की दृष्टि से इनमे से कुछ दशाएँ नीचे दी गयी है—

(i) माना कि श्रम पर्याप्त ऊँची मजदूरियां चाहता है जबकि ऐसी स्थिति है कि श्रम लागतें कुल लागत का एक बड़ा हिस्सा होती है।

(ii) श्रम को आसानी से मशीनों तथा यन्त्रो द्वारा प्रतिस्थापित (substitute) नही किया जा सकता है।

(iii) श्रमिको की शक्तिशाली व्यावसायिक संघें (strong trade unions) होती है जो कि ऊँची मजदूरियो (high wage hike) के लिए कड़े दबाव डाल सकती हैं।

(iv) यह मान लिया जाये कि फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग-लोच बहुत लोचदार है।

यदि दशाओं का यह समूह (set of these conditions) दिया हुआ है, तो मजदूरियों में तीव्र वृद्धि MEC को घटायेगी और निवेश में कमी उत्पन्न करेगी।

अल्पकाल मे सीमितता या कमी (shortage) के कारण उत्पत्ति के साधनों से-सम्बन्धित रुकावटें (input bottlenecks) पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) मे कमी उत्पन्न कर सकती है।

---

[80] During the period of inflation returns on investment are likely to increase as the price of the final product rises, though this may partly be offset by the higher costs of inputs, specially labour costs But in advanced economies, "since the labour costs rise more rapidly than the cost of other inputs, investment projects which result in more capital-intensive production methods reduce the effects of inflation on the cost of production and make investment more attractive "

बार-बार श्रम हड़तालें, श्रम संघों के दबाव तथा समस्याएँ भी, अल्पकाल मे, MEC पर बुरा या विपरीत प्रभाव (adverse effect) डाल सकती हैं। परन्तु दीर्घकाल मे, श्रम-अशांति (labour unrest) तथा श्रम संघों की समस्याएँ व्यापारियों को नई व उन्नत (improved) प्रकार की श्रम-बचत मशीनों और स्वायत्त-प्रक्रियाओं (automatic processes) मे बहुत अधिक निवेश करने को बाध्य कर सकती है ताकि श्रम और संघ समस्याओं को न्यूनतम किया जा सके।

5. तकनीकी विकास (Technological Developments)

विकास तत्वों (growth factors) मे से तकनीक[51] (technology) एक महत्वपूर्ण तत्व है और यह विभिन्न रूपों मे निवेश को प्रोत्साहित (encourage) करती है—

(i) तकनीकी प्रगति (technological progress) के परिणामस्वरूप, लागत-घटाने वाली मशीनें तथा उत्पादन के अधिक कुशल तरीके (techniques) नई पूँजीगत सम्पत्तियों की सीमान्त कुशलता को बढाते है और यह नई उन्नत (improved) पूँजीगत सम्पत्तियों मे निवेश की बड़ी मात्राओं को प्रोत्साहित करेगा।

(ii) हम जानते हैं कि भूतकाल मे मुख्य आविष्कारों, जैसे—रेलगाड़ियों, विद्युतीकरण, मोटर-गाड़ियों (automobiles), विमानों इत्यादि ने निवेश की बहुत अधिक मात्राओं को प्रोत्साहित किया।

(iii) जब नये क्षेत्र (new areas) खुल जाते है तो विभिन्न रूपों (different fields) मे और अधिक निवेश प्रोत्साहित होते है, उदाहरणार्थ, सड़कों तथा रेलों, विद्युतीकरण, मकानों, नई फैक्ट्रियों, इत्यादि मे और अधिक निवेश किये जाते है।

(iv) हाल के वर्षों मे (in recent years) नये आविष्कारों, जैसे इलेक्ट्रोनिक्स (electronics), प्लास्टिक (plastics), अणु-शक्ति (atomic energy), तथा अन्य स्पेस-युग के विकासों (other space-age developments) ने बड़ी मात्रा मे नये निवेश प्रेरित (stimulate) किये हैं।

(v) जब टेक्नोलोजीकल परिवर्तन के परिणामस्वरूप नई वस्तुओं का उत्पादन होता है या पुरानी वस्तुओं मे सुधार व परिवर्तन होता है तो सामान्यतया पूंजी की सीमान्त कुशलता बढ जाती है तथा और अधिक निवेश प्रोत्साहित होते है।

6. जनसंख्या विकास (Population Growth)

जनसंख्या मे वृद्धि का अर्थ है कि विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के लिए विस्तृत माँग और बाजार का प्राप्य होना, तथा इसके कारण विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए पूँजीगत सम्पत्तियों मे और अधिक निवेश प्रोत्साहित होते हैं। दूसरी ओर, जनसंख्या मे कमी उपभोक्ता वस्तुओं की माँग मे कमी उत्पन्न कर सकती है, और इसके परिणामस्वरूप पूँजीगत वस्तुओं मे निवेश घट सकता है। परन्तु उन्नतशील देशों मे ऐसा होना आवश्यक नहीं है जहाँ पर कि आय का एक ऊँचा स्तर तथा प्रभावी माँग (effective demand) का एक ऊँचा स्तर जनसंख्या मे कमी के परिणामस्वरूप निवेश मे होने वाली कमी को नष्ट (offset) कर सकते है।

7 सरकारी नीति (Government Policy)

सरकारी नीतियों का निजी (private) फर्मों के निवेश निर्णयों पर अनुकूल (favourable) प्रभाव या प्रतिकूल (adverse) प्रभाव पड़ सकता है। प्रत्यक्ष कर की ऊँची दरें (उदाहरणार्थ,

51 मोटे रूप मे (broadly) तकनीकी प्रगति (technological progress) का अभिप्राय या अर्थ है—(a) अधिक कुशल मशीनों व यन्त्रों का निर्माण (creation), उत्पादन की उन्नत प्रक्रियाएँ या तकनीकें (better processes or techniques); (b) नवप्रवर्तन तथा आविष्कार (innovations and inventions); नई वस्तुओं अथवा पुरानी वस्तुओं मे परिवर्तनों (new products or variations on old products); (c) नये क्षेत्रों का प्राप्य होना या खुलना (opening of new areas), एक देश मे तकनीकी प्रगति के कारण नये क्षेत्र प्राप्य (accessable) हो जाते है।

आय-कर) तथा निजी व्यापार पर कड़ा व जटिल नियंत्रण (rigid and complicated regulations on private business), राष्ट्रीयकरण का डर, इत्यादि पूंजी की सीमान्त कुशलता को घटायेंगे और इसलिए निजी निवेश को हतोत्साहित (discourage) करेंगे। दूसरी ओर, साख और शक्ति सुविधाओं (credit and power facilities), लाइसेन्स देने तथा नियन्त्रण करने की कम जटिल रीतियों (less cumbersome procedures for regulation and licensing), इत्यादि द्वारा सरकार निजी व्यापारियों को प्रोत्साहित करती है तो पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) में वृद्धि होगी और नये निवेश प्रोत्साहित होंगे।

8. सामान्य राजनैतिक दशाएं (General Political Conditions)

देश में अस्थायी राजनैतिक दशाएं निवेश को हतोत्साहित (discourage) करेंगी। इसके विपरीत, स्थायी राजनैतिक दशाएं तथा शांतिपूर्ण वातावरण निवेश को प्रोत्साहित कर सकते हैं। निजी व्यापारियों की आवश्यकताओं के प्रति असहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण (unsympathetic attitude) रखने वाली राजनैतिक पार्टी का चुनाव (election) पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) को घटा सकता है और नये निवेश को हतोत्साहित कर सकता है।

9. विभिन्न प्रकार के तत्व (Miscellaneous Factors)

अन्य देशों से युद्ध, देश में क्रान्ति इत्यादि निवेश करने की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव (adverse effect) डालते हैं।

अनुकूल अथवा प्रतिकूल बाहरी राजनैतिक बातें (favourable or unfavourable external political developments) एक देश के अन्दर निवेश निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं।

मौसम की दशाएं तथा प्राकृतिक संकट भी फसलों और सामान्य आर्थिक क्रिया को प्रभावित करके, अल्पकाल में, निवेश निर्णयों पर प्रभाव डाल सकते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार पूंजी की सीमान्त कुशलता अनेक तत्वों से प्रभावित होती है। ब्याज की दर के अतिरिक्त पूंजी की सीमान्त कुशलता (MEC) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जो कि निवेश को प्रभावित करता है। परन्तु अनेक तत्व (numerous factors) आशाओं तथा पूंजी की सीमान्त कुशलता (expectations and MEC) को प्रभावित करते हैं, और इसलिए अर्थव्यवस्था में निवेश को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में, निवेश के अनेक तत्व (numerous determinants) पूंजी की सीमान्त कुशलता के माध्यम से कार्य करते हैं।

प्रश्न

1 पूंजी की सीमान्त कुशलता की धारणा की व्याख्या कीजिए। उन तत्वों की विवेचना कीजिए जो इसको प्रभावित करते हैं।

Explain the concept of Marginal Efficiency of Capital. Discuss the factors which affect it.

2. पूंजी की सीमान्त कुशलता की व्याख्या कीजिए। इस सन्दर्भ में निवेश-निर्णय नियम तथा निवेश मांग रेखा की विवेचना कीजिए।

Explain Marginal Efficiency of Capital. In this context discuss investment Decision Rule and Investment Demand Curve.

परिशिष्ट (Appendix) 4

निवेश का सिद्धान्त—2
(Theory of Investment—2)

त्वरण सिद्धान्त*

(The Acceleration Principle)

अथवा

निवेश का त्वरक सिद्धान्त

(The Accelerator Theory of Investment)

अथवा

प्रेरित निवेश का सिद्धान्त

(The Theory of Induced Investment)

प्राक्कथन (Introduction)

निवेश का कींजियन सिद्धान्त निवेश-निर्णयों (investment decisions) को पूँजी की सीमान्त कुशलता (marginal efficiency of capital) तथा ब्याज की दर के शब्दों में व्याख्या करता है। कींज का निवेश का सिद्धान्त निवेश के कुल स्तर (total level of investment) की एक बहुत संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता क्योंकि यह ब्याज की दर की भूमिका (role) पर बहुत अधिक जोर देता है, जबकि MEC दी हुयी हो। वास्तव में, निवेश और ब्याज की दर में प्रत्यक्ष सम्बन्ध की शक्ति (strength of direct relation) काफी कमजोर होती है, विशेषतया जबकि ब्याज की दर में परिवर्तन थोड़े (moderate) होते हैं या वे बहुत ऊँचे नहीं होते हैं। निस्सन्देह, ब्याज की दर के अतिरिक्त, कींज ने निवेश को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों (विशेषतया आशाओं के पार्ट) की उपेक्षा (ignore) नहीं की, परन्तु ये अन्य तत्व MEC के माध्यम से कार्य करते हैं।

अर्थव्यवस्था में निवेश निर्णय को प्रभावित करने वाला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व 'उपभोग वस्तुओं की कुल माँग' (aggregate demand of consumer goods) अथवा 'कुल उपभोग' (aggregate consumption) अथवा 'कुल उत्पादन' (aggregate output) अथवा 'कुल आय' (aggregate income) है। त्वरण सिद्धान्त हमारा ध्यान 'कुल निवेश' तथा 'कुल आय या राष्ट्रीय आय' के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पर केन्द्रित करता है।[1]

---

* The Acceleration Principle is also known by some other names, such as, 'The Principle of the Magnification of Derived Demand of Investment', 'The Simple Capital Stock Adjustment Model', 'The Accelerator'.

[1] *The Acceleration Principle focuses our attention on the direct relationship between 'total investment' and 'total income or national income'.*

त्वरण सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें 'प्रेरित निवेश' (*induced investment*) तथा 'स्वतन्त्र निवेश'[2] (*autonomous investment*) के बीच अन्तर को ध्यान मे रखना होगा।

> त्वरण सिद्धान्त केवल प्रेरित निवेश के सम्बन्ध में लागू होता है। चूंकि त्वरण सिद्धान्त केवल प्रेरित निवेश के सम्बन्ध में लागू होता है, इसलिए त्वरण सिद्धान्त को 'प्रेरित निवेश का सिद्धान्त' भी कहा जाता है।[3]

माँग अथवा उपभोग अथवा आय के स्तर मे वृद्धि पूँजीगत सम्पत्तियों (जैसे, मशीनें, औजार इत्यादि) मे निवेश को 'प्रेरित' (*induce*) करती है ताकि बढी हुई माँग को पूरा किया जा सके। अतः ऐसे निवेश को 'प्रेरित निवेश' (induced investment) कहा जाता है। संक्षेप मे, 'प्रेरित निवेश' (induced investment) तथा 'स्वतन्त्र निवेश' (autonomous investment) के बीच मुख्य अन्तर नीचे दिया गया है—

> प्रेरित निवेश उपभोग या आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा निर्धारित होता है। इसके विपरीत, स्वतन्त्र निवेश उपभोग या आय के स्तर में परिवर्तनों के प्रति स्वतन्त्र (independent) होता है। स्वतन्त्र निवेश मुख्यतया टेक्नोलोजीकल परिवर्तनों से सम्बन्धित होता है। "इन दो प्रकार के निवेश में मुख्य अन्तर यह है कि प्रेरित निवेश पुरानी परिचित वस्तुओं के उत्पादन के लिए क्षमता (capacity) के विस्तार के उद्देश्य से किया जाता है, जबकि स्वतन्त्र निवेश का सम्बन्ध नई वस्तुओं (उत्पादन की नई तकनीकों), नये बाजारों, तथा लागत में कमी से होता है।[4]"

धारणा, आधार तथा त्वरण सिद्धान्त का कथन (The Concept, Basis, and the Statement of the Acceleration Principle)

त्वरण सिद्धान्त कुल माँग (या कुल उपभोग) अथवा कुल उत्पादन या कुल आय[5] का 'अर्थव्यवस्था मे कुल निवेश' पर प्रभाव या भूमिका (role) पर हमारा ध्यान केन्द्रित करता है।

त्वरण सिद्धान्त के पीछे यह आशय या विचार (idea) है कि उत्पादन (output) की एक निश्चित मात्रा को उत्पादित करने के लिए एक आवश्यक पूँजी का स्टॉक (a desired capital stock) होता है। यदि अर्थव्यवस्था मे वर्तमान उत्पादन-क्षमता (capacity) का पूरी प्रकार से प्रयोग हो रहा है और यदि माँग मे वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन बढता है तो आवश्यक (desired) पूँजी-स्टॉक (जो कि बढे हुए उत्पादन के लिए जरूरी है) भी बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में, उत्पादन की अधिक मात्रा के लिए **पूँजी-स्टॉक समायोजन** किया जायेगा (*capital-stock-adjustment* will be made for the larger amount of output)।

---

[2] प्रेरित निवेश तथा स्वतन्त्र निवेश के सम्बन्ध मे एक विस्तृत विवेचना हम पहले ही परिशिष्ट नं० 2 मे प्रस्तुत कर चुके हैं। यहाँ पर हम दोनों प्रकार के निवेश के बीच अन्तर की केवल मुख्य बात को संक्षेप मे प्रस्तुत कर रहे हैं।

[3] The Acceleration Principle applies only to induced investment. As it applies only to induced investment, therefore the Acceleration Principle is also known as the "*Theory of Induced Investment*"

[4] Induced investment is determined by the changes in the level of consumption or income In contrast, autonomous investment is independent of changes in the level of consumption or income Autonomous investment is related mainly to technological changes. "The prime difference between the two types of investment is that induced investment is undertaken with the intent of expanding capacity for the output of *old* known goods, whereas autonomous investment relates to new goods, new markets and cost reduction"

[5] उत्पादित किये जाने वाले उत्पादन का स्तर प्रत्याशित (expected) बिक्री या माँग या उपभोग पर निर्भर करेगा; जबकि स्वयं माँग या उपभोग राष्ट्रीय आय के स्तर पर निर्भर करेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द 'उत्पादन' (output), 'माँग (demand) या बिक्री' (sales), 'उपभोग' (consumption) तथा 'आय' (income) बहुत निकट रूप से सम्बन्धित होते हैं। यह ध्यान मे रखना जरूरी है क्योंकि हम इन शब्दों को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग करेंगे।

त्वरण सिद्धान्त यह बताता है कि निवेश उपभोग या आय मे परिवर्तन के प्रति प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित होता है (investment varies directly with the change in consumption or income); *अर्थात् आय बढ़ती है तो निवेश भी बढ़ेगा, आय घटती है तो निवेश भी घटेगा।*

सामान्य रूप में (broadly), त्वरण सिद्धान्त के विचार तथा आधार (*idea and basis of the Acceleration Principle*) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

> पूंजीगत स्टॉक (जैसे मशीनों, औजारों, इत्यादि) में निवेश उपभोग-वस्तुओं की माँग द्वारा 'प्रेरित' (induce) होता है। पूंजीगत सम्पत्तियों या पूंजीगत स्टॉकों के लिए माँग (अर्थात् निवेश-माँग) एक 'उत्पन्न माँग' (derived demand) या 'प्रेरित माँग' (induced demand) होती है क्योंकि यह पूंजीगत सम्पत्तियों द्वारा उत्पादित उपभोग वस्तुओं की माँग से उत्पन्न (derive) होती है। इस प्रकार उपभोग (या आय या उत्पादन) में वृद्धियाँ पूंजीगत स्टॉकों में वृद्धियों को प्रेरित करने की प्रवृत्ति रक्खेंगी। इसी प्रकार उपभोग (या आय) में कमी पूंजीगत स्टॉकों में व्ययों में कमी उत्पन्न करेगी।
>
> दूसरे शब्दों में, टेक्नोलोजीकल दशाएं तथा पूंजी व श्रम की सापेक्षिक कीमतें दी गई हैं, तो उत्पादन (output) की एक विशेष मात्रा को उत्पादित करने के लिए पूंजीगत स्टॉक की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होगी। यदि उत्पादन की मात्रा परिवर्तित होती है तो, अन्य बातों के समान रहने पर, पूंजीगत स्टॉक की आवश्यक (desired) मात्रा में भी परिवर्तन होगा, अर्थात् पूंजी-समायोजन किया जायेगा। परिभाषा के अनुसार, (विशुद्ध) निवेश वह मात्रा है जिसके बराबर पूंजीगत स्टॉक में परिवर्तन होता है; अतः इसका अभिप्राय यह है कि निवेश की मात्रा उत्पादन (या आय) में परिवर्तन की मात्रा पर निर्भर करती है।
>
> अपने सरलतम रूप में त्वरण सिद्धान्त यह बताता है कि निवेश उत्पादन या आय में परिवर्तनों के प्रति प्रत्यक्ष रूप से (directly) परिवर्तित होता है; *निवेश में 'आनुपातिक परिवर्तन से अधिक परिवर्तन' अथवा 'एक विशालित परिवर्तन'* (a magnified change) अथवा एक 'द्रुत या त्वरित परिवर्तन' (an 'accelerated change') उत्पन्न या 'प्रेरित' (induce) होता है।[6] अतः इस सिद्धान्त को 'त्वरण सिद्धान्त' (acceleration principle) कहा जाता है। कभी-कभी इसे 'निवेश की उत्पन्न माँग का विशालीकरण सिद्धान्त (the Principle of the Magnification of the Derived Demand of Investment) भी कहा जाता है।[7]

---

[6] *For example*, a 5% change (say, increase) in demand or consumption o. ..e final product, may lead to a magnified change (i. e. increase) of 50% in the investment demand.

[7] Investment in capital stock (like machines, tools, etc.) is 'induced' by the demand for consumer goods. The demand for capital assets or capital stocks (that is, investment demand) is derived demand' (or 'induced demand') because it is derived from (or induced by) the demand of consumer goods which are produced by the capital assets. Thus, increases in consumption (or output or income) will tend to induce increases in the capital stocks. Similarly, a decline in consumption (or income) may cause a reduction *in expenditure on capital stocks.*

In other words, given technological conditions and the relative prices of capital and labour, a certain size of capital-stock will be required to produce a particular amount of output. If the amount of output changes, then, other things remaining the same, the desired size of capital stock will also change, that is, 'capital-stock-adjustment' will be made. By definition, (net) investment is the amount by which capital stock changes, therefore, it implies that the amount of investment depends on the size of the change in output (or income). (*Contd.*)

'त्वरण सिद्धान्त' पूंजी-उत्पादन अनुपात' (capital-output ratio) की टेक्नीकल धारणा पर आधारित है जो कि स्थिर (constant) मान ली जाती है, अथवा यह 'त्वरक' (accelerator) की धारणा पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, 'त्वरक या त्वरक अंग (accelerator or accelerator coefficient) त्वरण सिद्धान्त में एक मुख्य अंग होता है। इसलिए त्वरण सिद्धान्त को 'निवेश का त्वरक सिद्धान्त' (the Accelerator Theory of Investment) भी कहा जाता है।

अब हमारे लिए 'त्वरक की धारणा या विचार' (*concept of accelerator*) को समझना आवश्यक है। त्वरक अथवा त्वरक अंक (Accelerator or Accelerator Coefficient) उत्पादन (या आय) के एक दिये हुये स्तर तथा इस उत्पादन (output) को उत्पादित करने के लिए आवश्यक पूंजी की मात्रा के बीच एक निश्चित टेक्नीकल सम्बन्ध (a precise technical relationship) को बताता है; यह मान लिया जाता है कि यह टेक्नीकल सम्बन्ध स्थिर (constant) होता है। इस टेक्नीकल सम्बन्ध को 'पूंजी-उत्पादन-अनुपात' (*Capital-Output Ratio*) भी कहते है अथवा अधिक सही रूप मे, इसको 'वर्द्धमान पूंजी-उत्पादन अनुपात' (*Incremental Capital-Output Ratio* या संक्षेप में, I. C. O. R.) कहते है। दूसरे शब्दों में,

> त्वरक वह अनुपात है जो कि निवेश के स्तर को उत्पादन या आय में परिवर्तन के साथ एक निश्चित (precise) रूप से सम्बन्धित करता है।[8]

त्वरक को अच्छी प्रकार से समझने के लिए हम पुन: 'पूंजी-उत्पादन अनुपात' (*Capital Output Ratio*) को लेते हैं। उत्पादन (या आय) के एक दिये हुये स्तर तथा उस उत्पादन (output) को उत्पादित करने के लिए आवश्यक पूंजी के बीच टेक्नीकल सम्बन्ध को 'पूंजी-उत्पादन अनुपात' (Capital-Output Ratio) अथवा औसत पूंजी-उत्पादन अनुपात (average capital output ratio) कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हम यह मान ले कि, औसत रूप में, उत्पादन (या आय) की एक मात्रा, जिसका मूल्य 1 रु० है, को उत्पादित करने के लिए पूंजीगत-स्टॉक की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होगी जिसका मूल्य 3 रु० है। तब पूंजी-उत्पादन-अनुपात (अथवा

औसत पूंजी-उत्पादन-अनुपात) $= \dfrac{\text{पूंजी (Capital)}}{\text{उत्पादन (Output)}} = \dfrac{3}{1} = 3$; इसका अर्थ है कि 1 रु० के

बराबर उत्पादन की मात्रा को उत्पादित करने के लिए 3 रु० के बराबर पूंजी की आवश्यकता होगी। माना कि हम 'पूंजी-उत्पादन-अनुपात अथवा 'त्वरक' (Accelerator) के लिए चिन्ह (symbol) 'A' का प्रयोग करते है,[9] पूंजी या पूंजीगत-स्टॉक के लिए चिन्ह K का, तथा उत्पादन (या आय) के लिए चिन्ह Y का प्रयोग करते हैं, तो हम इस सम्बन्ध को निम्न प्रकार से लिख सकते है—

$$A = \frac{K}{Y}$$

यदि हम यह मान लें कि एक दिये हुए उत्पादन को प्राप्त करने के लिए टेक्नीकल दशा (technical conditions), जिसके अन्तर्गत उत्पत्ति के साधन मिलाये जाते हैं, में कोई परिवर्तन नही होता है, तो पूर्ण उत्पादन-क्षमता (full capacity) के प्राप्य हो जाने के बाद हम यह कह सकते हैं कि उत्पादन (या आय) में एक वृद्धि के लिए अतिरिक्त पूंजी-स्टॉक की आवश्यकता उसी

In its 'simplest form' the acceleration principle states that investment varies directly with changes in output or income. But the change in income (or consumption) causes or 'induces' a 'more than proportional change' or a 'magnified change' or an 'accelerated charge' in investment. Hence, the theory is called as the Acceleration Principle. Sometimes it is also called as the 'Principle of the Magnification of the Derived Demand of Investmemnt.'

[8] The Accelerator is the ratio which relates the level of investment in a precise manner to the change in output or income.

[9] Various symbols are used by the economists for the Accelerator, such as, r, α, or V besides 'A'. There is no standard practice, we can use any one of there symbols

अनुपात में होगी जो कि पूंजी-उत्पादन अनुपात (capital output ratio) बताता है। दूसरे शब्दों में, ऊपर दिये गये हमारे उदाहरण में उत्पादन (या आय) में प्रत्येक वृद्धि के लिए जिसका मूल्य 1 रु० है तो उस बढ़े हुये उत्पादन को उत्पादित करने के लिए जितने पूंजीगत स्टॉक की आवश्यकता होगी उसका मूल्य 3 रु० के बराबर होगा। यहाँ पर 'उत्पादन में वृद्धि' (increase in output) 1 रु० के बराबर है तथा पूंजीगत स्टॉक में वृद्धि 3 रु० के बराबर है, इसलिए 'वर्द्धमान पूंजी-उत्पादन अनुपात' (Incremental Capital-Output Ratio or I. C. O. R) बराबर होगा 3/1 अथवा 3 के। अत, यदि उत्पादन और पूंजी के बीच टेक्नीकल सम्बन्ध को स्थिर (constant) मान लिया जाता है तो 'औसत पूंजी-उत्पादन अनुपात' (Average Capital-Output Ratio) अर्थात $\frac{K}{Y}$ = वर्द्धमान पूंजी-उत्पादन अनुपात (Incremental Capital-Output Ratio) अर्थात $\frac{\Delta K}{\Delta Y}$; जबकि ΔK बताता है पूंजीगत-स्टॉक में परिवर्तन को (यहाँ पर वृद्धि को), तथा ΔY बताता है उत्पादन (या आय) में परिवर्तन को (यहाँ पर वृद्धि को)। अतः त्वरक 'A' को सांकेतिक रूप में (symbolically) इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$A=\frac{K}{Y}=\frac{\Delta K}{\Delta Y} \tag{1}$$

हम जानते हैं कि, परिभाषा के अनुसार, 'शुद्ध निवेश' या 'निवेश' (Net Investment or Investment) और कुछ नहीं है बल्कि 'पूंजीगत स्टॉक में परिवर्तन' (*Change in capital stock*) है; समीकरण (equation) नं० 1 में पूंजीगत स्टॉक में परिवर्तन को ΔK द्वारा बताया गया है; अतः ΔK के स्थान पर हम निवेश (investment) लिख सकते हैं और निवेश के लिए चिन्ह 'I' का प्रयोग कर सकते हैं। अतः, समीकरण नं० 1 को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है—

$$A=\frac{I}{\Delta Y} \tag{2}$$

इस प्रकार समीकरण नं० 1 अथवा नं० 2 'त्वरक' या 'त्वरक अंक' (Accelerator or Accelerator Coefficient) को बताती है; और यह (अर्थात्, त्वरक) 'पूंजीगत स्टॉक में परिवर्तन अर्थात् निवेश' तथा 'उत्पादन (या आय) में परिवर्तन' के बीच अनुपात को बताता है।

समीकरण नं० 2 के दोनों पक्षों को ΔY द्वारा गुणा करने पर हम समीकरण नं० 2 को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं—

$$A\times\Delta Y=I$$

or

$$I=A\times\Delta Y \tag{3}$$

समीकरण नं० 3 त्वरक सिद्धान्त का बीजगणितीय कथन है (*Equation no. 3 is the algebraic expression of the Acceleration Principle*)। अब हम त्वरण सिद्धान्त को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं—

> **त्वरण सिद्धान्त (जैसा कि समीकरण नं० 3 में व्यक्त किया गया है) बताता है कि कोई एक अंक या अनुपात होता है जिसको उत्पादन या आय में परिवर्तन से गुणा करने पर निवेश की मात्रा प्राप्त हो जाती है।** [10]
>
> अथवा
>
> **त्वरण सिद्धान्त बताता है कि यदि उत्पादन या आय में परिवर्तन होता है, तो निवेश में जो परिवर्तन होगा वह उत्पादन या आय में परिवर्तन का कुछ गुणज**

[10] The Acceleration Principle (expressed by equation no 3) tells us that there exists some coefficient or ratio (A) which when multiplied by the change in output or income will give the amount of investment.

> (some multiple) होगा ; यह गुणज (multiple) त्वरक है (अर्थात्, समीकरण नं० 3 मे यह 'A' है) ।[11]
>
> अथवा
>
> यदि त्वरक (accelerator) दिया हुआ है, अर्थात् पूंजी और उत्पादन (या आय) मे स्थिर टेक्नीकल-सम्बन्ध दिया हुआ है, तो त्वरण सिद्धान्त (जैसा कि समीकरण नं० 3 मे व्यक्त किया गया है) बताता है कि निवेश की मात्रा आय में निरपेक्ष (absolute) परिवर्तन के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित होगी ।[12]

परन्तु आय में निरपेक्ष परिवर्तन पिछले समय की आय के सन्दर्भ मे 'आय मे परिवर्तन की दर' (*rate of change in income*) को प्रभावित करेगा[13] अतः यह अधिक महत्वपूर्ण तथा सही है कि त्वरण सिद्धान्त को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाये—

> यदि त्वरक दिया हुआ है अर्थात् यदि पूंजी और उत्पादन (या आय) में एक टेक्नीकल सम्बन्ध दिया हुआ है, तो त्वरण सिद्धान्त यह बताता है कि निवेश की मात्रा 'आय में परिवर्तन की दर' के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित होती है। दूसरे शब्दों मे, त्वरण सिद्धान्त का अभिप्राय है कि निवेश 'उत्पादन या आय मे परिवर्तन की दर' का एक फलन (या फक्शन) होता है ।[14]

---

[11] The Acceleration Principle indicates that if output or income changes, then the investment will change by some multiple of the change in output or income and this multiple is the Accelerator (i e 'A' in equation no 3).

[12] Given the Accelerator, that is given a fixed technical relationship between capital and output (or income), the Acceleration Principle (expressed in equation no 3) indicates that the amount of investment will vary directly with the size of the 'absolute change in income'

[13] An example will illustrate the idea. Suppose the income in the current period 't' (that is, Y_t) is Rs 495, and the income in the previous period t—1 (that is, Y_{t-1}) was Rs 450, then the increase (or change) in income $Y_t - Y_{t-1}$ = Rs. 495 — Rs 450 = Rs 45 Rs 45 (or $Y_t - Y_{t-1}$) is the 'absolute change in income'. Now the 'rate of change in income with reference to the previous period will be

$$\frac{\text{Change in income}}{\text{Previous income}} = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_{t-1}} = \frac{\Delta Y_t}{Y_{t-1}} = \frac{45}{450} = \frac{1}{10}$$

, in order to find the percentage change we multiply $\frac{1}{10}$ by 100. i e $\frac{1}{10} \times 100 = 10$ *Thus, the percentage 'rate of change in income' with reference to the income of the previous period is* **10**, *when the absolute change in income is Rs 45* Now, suppose the absolute change of income is not Rs. 45 but it is a higher figure of Rs 90, while the previous year income is Rs. 450 Now, the percentage change in the rate of income $= \frac{\Delta Y_t}{Y_{t-1}} \times 100 = \frac{90}{450} \times 100 = 20$ *Thus, the 'rate of change in income' has increased from* **10** *to* **20** *(with reference to the previous period) because the 'absolute change in income' has increased from Rs 45 to Rs. 90*

[14] But the absolute change in income affects the 'rate of change in income' with reference to the income of the previous period Hence, it is more significant and correct to state the Acceleration Principle as follows :—

> Given the accelerator, that is, a fixed technical relationship between capital and output (or income), the Acceleration Principle indicates that the amount of investment varies directly with the 'rate of change in income.' In other words, the Acceleration Principle implies that investment is a function of the 'rate of change of output or income.'

उपर्युक्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि 'त्वरक' या 'त्वरक अंक' त्वरण सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अंग होता है (*the Accelerator or the Accelerator Coefficient is an important element of the Acceleration Principle*)। दूसरे शब्दो में,

> त्वरक का मूल्य त्वरण सिद्धान्त या त्वरण प्रभाव की शक्ति को बताता है; अर्थात, यह उत्पादन (या बिक्री या आय) में एक दिये हुये परिवर्तन का निवेश की मात्रा पर प्रभाव की शक्ति को बताता है। त्वरक का मूल्य जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक निवेश का स्तर होगा [15]; जबकि उत्पादन या आय में परिवर्तन दिया हुआ है।[16]

वास्तव में, त्वरण सिद्धान्त 'समय' को शामिल करता है (As a matter of fact, *the Acceleration Principle involves time*); त्वरण समीकरण (acceleration equation) नं० 3, अर्थात $I = A \times \triangle Y$, मे समय का तत्व (element of time) छिपा हुआ है, स्पष्ट नही है। समय-तत्व को स्पष्ट करने के लिए हम त्वरण समीकरण नं० 3 (अर्थात, $I = A \times \triangle Y$) को एक दूसरी प्रकार से लिख सकते हैं। यह बात आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।

हम निम्न चिन्हों (symbols) का प्रयोग करेंगे—

t	वर्तमान समय-अवधि (current time period) को बताता है।
$t-1$	पिछले समय (previous period) को बताता है।
I अथवा I_t	वर्तमान समय t मे निवेश के स्तर को बताता है।
K_t	वर्तमान समय t में पूँजीगत स्टॉक को बताता है।
K_{t-1}	पिछले समय (previous period) $t-1$ मे पूँजीगत स्टॉक को बताता है।
Y_t	वर्तमान समय t मे उत्पादन या आय के स्तर को बताता है।
Y_{t-1}	पिछले समय (pervious period) $t-1$ मे उत्पादन या आय के स्तर को बताता है।
$\triangle Y$	उत्पादन या आय मे परिवर्तन को बताता है।

इसके अतिरिक्त हमे यह ध्यान मे रखना चाहिए कि, परिभाषा के अनुसार, 'शुद्ध निवेश' (net investment) अथवा निवेश (investment) और कुछ नही है बल्कि पूँजीगत स्टॉक मे वृद्धि (addition in the capital stock) है।

उपर्युक्त चिन्हो को तथा निवेश की परिभाषा को ध्यान में रखते हुये हम निम्न प्रकार से विवरण को प्रस्तुत करते हैं—

---

15 माना कि त्वरक का मूल्य अथवा त्वरक अंक (accelerator coefficient) 3 है तथा उत्पादन (या आय) मे परिवर्तन 50 रु० है, तब, निवेश (Investment) $= A \times$ आय में परिवर्तन (change in income) $= 3 \times 50$ रु० $= 150$ रु०। अब माना कि त्वरक का मूल्य 5 रु० है तथा उत्पादन (या आय) में पहले के समान ही परिवर्तन रहता है अर्थात् 50 रु० है, तब, निवेश की मात्रा $= A \times$ आय मे परिवर्तन $= 5 \times 50$ रु० $=$ 250 रु०। स्पष्ट है कि दूसरी स्थिति में निवेश की मात्रा (अर्थात 250 रु०) अधिक है पहली स्थिति में निवेश की मात्रा (अर्थात् 150 रु०) की तुलना में; इसका कारण है कि दूसरी स्थिति मे त्वरक का मूल्य (अर्थात् 5) अधिक है पहली स्थिति में त्वरक के मूल्य (अर्थात 3) की तुलना में। अतः त्वरक का मूल्य जितना अधिक होगा, उतनी ही अधिक निवेश की मात्रा होगी। दूसरे शब्दों में, 'त्वरक' या 'त्वरक अंक' त्वरण सिद्धान्त या त्वरण प्रभाव की शक्ति को बताता है।

16 The 'Value of the Accelerator' tells us the strength of the Acceleration Principle or the Acceleration Effect; that is, it tells us the strength of the effect that a given change in output (or sales or income) will have on the level of investment. The greater the value of the Accelerator, the greater will be the level of investment, given the change in output or income.

वर्तमान समय t मे निवेश (Investment in the current period t) = पूंजीगत स्टॉक में शुद्ध वृद्धि (Net addition in the capital stock)

अथवा (or) वर्तमान समय t मे निवेश = वर्तमान समय t में पूंजीगत स्टॉक—पिछले समय t—1 में पूंजीगत स्टॉक

अथवा (or) I or I_t $= K_t - K_{t-1}$ (4)

उत्पादन या आय में परिवर्तन (Change in output or income) = वर्तमान समय t मे उत्पादन या आय—पिछले समय t—1 मे उत्पादन (या आय)

अथवा (or) $\triangle Y$ $= Y_t - Y_{t-1}$ (5)

समीकरण नं० (4) तथा (5) को ध्यान में रखते हुये हम निम्नलिखित त्वरण समीकरण (acceleration equation) को दूसरे प्रकार से लिख सकते हैं—

$I \text{ (or } I_t) = A \times \triangle Y$ [We have already given this form of Acceleration equation under equation no. 3]

or $K_t - K_{t-1} = A(Y_t - Y_{t-1})$ (6)

[We get this form by substituting the values from equations (4) and (5)]

इस प्रकार, समीकरण नं० 6 समय-तत्व को स्पष्ट करते हुये त्वरण सिद्धान्त को बताती है। (*Thus, equation no. 6 represents the Acceleration Principle making the time-element explicit.*)

पहले (previously) हम 'त्वरक' (Accelerator) को निम्न प्रकार से व्यक्त कर चुके है—

$$A = \frac{I}{\triangle Y}$$

अब हम समीकरण नं० 6 की सहायता से 'त्वरक' (Accelerator) को दूसरी तरह (alternatively), निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं—

$$A = \frac{K_t - K_{t-1}}{Y_t - Y_{t-1}} \quad (7)$$

अब हम त्वरण सिद्धान्त का सारांश (summing up) निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते है—

1. त्वरण सिद्धान्त के दो पक्ष (*two aspects* of Acceleration Principle) होते हैं—

   (i) निवेश [अथवा प्रेरित निवेश (induced investment)] का स्तर उपभोग या आय मे परिवर्तन के साथ प्रत्यक्ष रूप से (directly) परिवर्तित होता है। अधिक महत्वपूर्ण और सही रूप में, निवेश 'उपभोग या आय मे परिवर्तन की दर' (rate of change in consumption or income) पर निर्भर करता है।

   अधिक विस्तृत रूप मे (more broadly) निवेश या प्रेरित निवेश न केवल उपभोग वस्तुओं की मांग मे वृद्धि के परिणामस्वरूप किया जाता है बल्कि वह पूंजीगत वस्तुओं की मांग में वृद्धि के परिणामस्वरूप भी किया जाता है क्योंकि मशीनों (अर्थात पूंजीगत वस्तुओं) की आवश्यकता होती है नई मशीनों

(अर्थात् नई पूँजीगत वस्तुओ) के निर्माण के लिए । इस प्रकार त्वरण सिद्धान्त 'आय मे परिवर्तन की दर' (अर्थात उपभोग वस्तुओ व पूँजीगत वस्तुओ दोनों के 'उत्पादन मे परिवर्तन की दर') पर निर्भर करता है, न कि केवल 'उपभोग मे परिवर्तन' की दर पर ।[17]

(ii) निवेश की मात्रा 'आय मे परिवर्तन' की कुछ गुणज (some multiple) होगी, और इस 'गुणज' को 'त्वरक' या 'त्वरक अंक' द्वारा बताया जाता है । दूसरे शब्दों मे, त्वरक का मूल्य त्वरण सिद्धान्त की शक्ति को बताता है । इस प्रकार त्वरण सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण पक्ष या एक मुख्य अंग 'त्वरक' होता है ।[18]

2. त्वरण सिद्धान्त अथवा निवेश का त्वरक सिद्धान्त दो **आधारभूत मान्यताओं** (*two fundamental assumptions*) पर आधारित है [जो कि सिद्धान्त के उपर्युक्त विवेचन मे छिपी (implicit) है] । ये मुख्य मान्यताएँ है—

   (i) यह मान लिया जाता है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे उद्योगो द्वारा **'पूर्ण उत्पादन-क्षमता का प्रयोग'** (*full capacity utilisation*) किया जा रहा है । दूसरे शब्दो मे, फर्मों तथा उद्योगो मे कोई अतिरिक्त-उत्पादन-क्षमता (excess capacity) नही है, वे केवल अपने पास उतना ही पूँजी का स्टॉक रखती हैं जितना कि माँग के वर्तमान स्तर को पूरा करने के लिए ठीक आवश्यक है ।

   (ii) त्वरण सिद्धान्त **'एक स्थिर पूंजी-उत्पादन-अनुपात'** (*a fixed capital-output ratio*) को मान लेता है, अर्थात एक 'स्थिर त्वरक-अंग' (*a fixed Accelerator Coefficient*) को मान लेता है ।

3 त्वरक सिद्धान्त केवल स्थिर पूँजीगत सम्पत्तियो (fixed capital assets) [जैसे, मशीन, यन्त्र, औजार, इत्यादि] के सन्दर्भ मे ही नही लागू होता है बल्कि **यह स्टॉकों या इनवेन्ट्रियों** (stocks or inventories) **के सम्बन्ध मे भी लागू होता है** । दूसरे शब्दों मे, उपभोग या माँग मे परिवर्तन स्टॉको या इनवेन्ट्रियो मे विशालित परिवर्तन (magnified change) उत्पन्न कर सकते हैं ।

4. वास्तव मे, 'आय (या उपभोग)' तथा 'निवेश' त्वरण-प्रभाव द्वारा ही नही बल्कि गुणक-प्रभाव द्वारा भी सम्बन्धित होते हैं । गुणक-प्रभाव के अनुसार 'आय का स्तर' निर्भर करता है 'निवेश मे परिवर्तनों' पर या 'निवेश के स्तर' पर, जबकि त्वरण-प्रभाव के अनुसार 'निवेश का स्तर' निर्भर करता है 'आय मे परिवर्तनो' पर ।[19]

त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण : एक उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण (Working of the Acceleration Principle · Illustration by an Example)

त्वरण सिद्धान्त के कार्यकरण को एक उदाहरण द्वारा समझाने के लिए हमे कुछ मान्यताओ को लेकर चलना होगा—

---

[17] More broadly, induced investment may result not only from an increase in the demand of consumption goods but also from an increase of demand of capital goods because machines (i e capital goods) are needed to make new machines (i. e. new capital goods). Thus, the acceleration principle depends upon the 'rate of change of income' (that is, rate of change of output consisting of both consumer goods and capital goods) rather than simply on the rate of change of consumption.

[18] The amount of investment will be some 'multiple' of the change in income, and the multiple is represented by the 'Accelerator' or the 'Accelerator Coefficient' That is, the value of the Accelerator tells us the strength of the Acceleration Principle. Thus, the Accelerator is an important aspect of, or a key element in, the Acceleration Principle.

[19] As a matter of fact, 'income (or consumption)' and 'investment' are related not only through the Acceleration effect but also through the Multiplier effect According to the multiplier-effect, the level of income depends on the changes in investment or the level of investment, whereas, according to the Acceleration-effect the level of investment depends on the changes in income.

(a) एक मशीन, जिसकी लागत 3,000 रु० है, 1,000 रु० के मूल्य का उत्पादन (या आय) उत्पादित करती है। इसलिए पूँजी-उत्पादन-अनुपात (capital-output ratio) $= \frac{3,000}{1,000} = 3$; यह स्थिर (fixed) है। दूसरे शब्दों में, त्वरक या त्वरक अंक (Accelerator or Accelerator Coefficient) $= 3$ है।

(b) पहली समय-अवधि या साल में (in the first period or year) वस्तु का उत्पादन (या उसकी बिक्री) 10,000 रु० के बराबर है। इसका अभिप्राय है कि 10 मशीनों का प्रयोग किया जा रहा है (चूँकि 1 साल मे 1 मशीन 1,000 रु० के मूल्य के बराबर उत्पादन को उत्पादित करती है)।

(c) प्रत्येक मशीन का जीवन-काल 10 वर्ष है।

(d) प्रयोग मे 10 मशीनो मे से 1 मशीन प्रत्येक वर्ष घिस जाती (या wear out) हो जाती है ; अर्थात् प्रत्येक वर्ष 1 मशीन को प्रतिस्थापित (replace) किया जायेगा। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक वर्ष प्रतिस्थापन-निवेश (replacement investment) का मूल्य 3,000 रु० के बराबर होगा (क्योकि एक मशीन की लागत 3,000 रु० है)।

[दूसरे शब्दो मे, घिसाई की दर (the rate of depreciation) वर्तमान पूँजीगत स्टॉक की 10% है, अर्थात, प्रयोग मे 10 मशीनों का 10% है, तथा इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक वर्ष 1 मशीन घिस जाती है जिसको प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए, अत, प्रतिस्थापन-निवेश $= 3,000$ रु०।]

(e) मशीनें पूर्ण क्षमता (full capacity) पर कार्य (operate) कर रही हैं; अर्थात् कोई अतिरिक्त-क्षमता (excess capacity) नही है।

(f) बिक्री या मांग और इसलिए उत्पादन अनियमित रूप से व्यवहार करता है (sales or demand, and, hence, output behaves irregularly); उत्पादन पहले स्थिर (constant) रहता है, फिर कुछ वर्षों के लिए बढता है, तथा फिर घटता है।

त्वरक सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के लिए तालिका
(Table for the Illustration of the Acceleration Principle)

[हजार-रुपयो मे अंक]
(Figures in Thousands of Rupees)

Period or Year	Level of Sales or Output or Income (Y)	Changes in Sales or Output or Income (ΔY)	Desired Stock of Capital (K) or K=A×Y (A=3)	Induced Investment or Additional Investment (I) or [I= A×ΔY][28]	Replacement Investment	Total Investment [Column 5 + Column 6]
1	2	3	4	5	6	7
1	10	Zero	30	Zero	3	3
2	10	Zero	30	Zero	3	3
3	14	4	42	12	3	15
4	20	6	60	18	3	21
5	24	4	72	12	3	15
6	28	4	84	12	3	15
7	28	Zero	84	Zero	3	3
8	27	−1	81	−3	3	Zero
9	27	Zero	81	Zero	3	3

[28] Please See Footnote on Page (156).

अब हम उपर्युक्त तालिका की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं; व्याख्या के सन्दर्भ में विभिन्न चरण (steps) नीचे दिये गये हैं—

1. समय अवधि 1 तथा 2 के अन्तर्गत, बिक्री या उत्पादन या आय मे कोई परिवर्तन नही है (स्तम्भ अथवा Column नं० 3), इसलिए कोई प्रेरित निवेश या अतिरिक्त निवेश (induced investment or additional investment) नही किया जाता है (स्तम्भ नं० 5); केवल 3 हजार के बराबर प्रतिस्थापन-निवेश (replacement investment) किया जाता है (स्तम्भ नं० 6) । कुल निवेश (total investment) प्रतिस्थापन-निवेश के बराबर है (स्तम्भ नं० 7) ।
2. उत्पादन या आय मे 4 हजार की वृद्धि (स्तम्भ नं० 3) प्रेरित निवेश मे कही अधिक वृद्धि, 12 हजार के बराबर वृद्धि, उत्पन्न करती है (स्तम्भ नं० 5); अर्थात कुल निवेश 3 हजार रु० से बढकर 15 हजार रु० हो जाता है (स्तम्भ नं०7) । दूसरे शब्दो मे,

   उत्पादन या आय में 40% की वृद्धि (अर्थात्, 10 हजार से 14 हजार की वृद्धि) निवेश मे 400% की वृद्धि उत्पन्न करती है (अर्थात्, 3 हजार से 15 हजार की वृद्धि, स्तम्भ नं० 7) ।[21]
3. समय अवधि 4 मे उत्पादन 6 हजार से बढ़ता है ; अर्थात्, पिछले समय के उत्पादन 14 हजार से बढकर 20 हजार हो जाता है और इस प्रकार उत्पादन मे लगभग 30% की वृद्धि होती है । प्रेरित निवेश बढकर 18 हजार हो जाता है, तथा कुल निवेश 15 हजार से बढकर 21 हजार हो जाता है और इस प्रकार निवेश मे 40% के बराबर वृद्धि होती है । अत. समय अवधि 4 मे, पिछली समय अवधि की तुलना मे, निवेश मे वृद्धि (growth) धीमी (slow down) हो जाती है ।
4. समय अवधि 5 की एक महत्वपूर्ण बात (*an interesting feature*) है—**यद्यपि बिक्री या उत्पादन (या आय) में वृद्धि होती है, परन्तु फिर भी प्रेरित निवेश (और इसलिए कुल निवेश) वास्तव में घटता है** ।[22] तालिका से स्पष्ट है कि इस समय अवधि 5 मे उत्पादन या आय मे वृद्धि होती है और वह पिछले समय की 20 हजार की आय से बढकर 24 हजार हो जाती है अर्थात् आय 20% से बढती है, परन्तु प्रेरित निवेश घट जाता है (18 हजार से घटकर 12 हजार हो जाता है, देखिए स्तम्भ नं० 5 को) और इसलिए कुल निवेश भी घट जाता है (21 हजार से घटकर 15 हजार हो जाता है) ।

   यह ध्यान देने की बात है कि उपभोग-माँग या उत्पादन में केवल एक सरल या निरपेक्ष वृद्धि पहले के समान निवेश के स्तर को बनाये रखने के लिए पर्याप्त नहीं है ।[23]

[20] The induced investment or additional investment (I) in any year or period shown in column 5 of the table can also be calculated by subracting from the capital stock of the current year the capital stock of the previous year by referring to column 4 of the table. [We know that $I=K_t-K_{t-1}$] For example, the capital stock in period 4 (K_4) $=60$, and the capital stock in the previous period 3 (K_3)$=42$. Hence, induced investment or additional investment in period 4 or $I_4=K_4-K_3=60-42=18$ This figure of 18 is present in column no. 5 in front of period 4 in the table

[21] *A 40% increase in output or income* (that is, from 10 thousand to 14 thousand) *causes a 400% increase in investment* (that is, from 3 thousand to 15 thousand in column 7).

[22] Induced investment (and, hence, total investment) actually decreases, even though sales or output (or income) increases.

[23] Note that a simple (or absolute) increase in consumer demand or output is not sufficient to maintain the same level of investment.

[In order to hold the level of investment to the amount achieved in period 4, the consumer demand or output would have to increase by the same amount as in the previous period no. 4, that is, it should have increased by 6 thousand not by 4 thousand. We shall see this situation in period no. 6.]

यह याद रखने की बात है कि, त्वरण सिद्धान्त के अनुसार, निवेश (या प्रेरित निवेश) *'उत्पादन या आय में परिवर्तन की दर' पर निर्भर करता है न कि* केवल उत्पादन या आय में निरपेक्ष (absolute) परिवर्तन पर।[24] तालिका मे समय अवधि 5 मे 'उत्पादन मे वृद्धि की दर' (अर्थात्, 20%) कम है पिछली समय अवधि 4 में 'उत्पादन मे वृद्धि की दर' (अर्थात्, 30%) की तुलना मे। इस प्रकार, समय अवधि 5 में उत्पादन (या आय) में वृद्धि की दर घटने लगती है, और इसलिए प्रेरित निवेश (तथा कुल निवेश) घटने लगता है।[25]

5. समय-अवधि 6 मे समय-अवधि 5 के समान 4 हजार में मूल्य के बराबर उत्पादन में वृद्धि होती है। इसलिए समय अवधि 6 मे कुल निवेश की मात्रा 15 हजार है जो कि समय अवधि 5 के समान है। अतः समय-अवधि 6 में निवेश का समान स्तर बनाये रखा जाता है (क्योंकि माँग या उत्पादन मे वृद्धि पहले के समान 4 हजार के बराबर होती है)।[26]
6. समय-अवधि 7 में उत्पादन (या आय) का स्तर समान रहता है जितना कि समय-अवधि 6 मे है। दूसरे शब्दो मे, समय-अवधि 7 में माँग या उत्पादन (या आय) मे वृद्धि शून्य (Zero) है, और इसलिए प्रेरित निवेश भी शून्य है, तथा कुल निवेश केवल प्रतिस्थापन-निवेश (replacement investment) के बराबर (अर्थात्, 3 हजार के बराबर) है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि समय अवधि 7 मे उत्पादन (या आय) सबसे अधिक है, परन्तु अतिरिक्त निवेश या प्रेरित निवेश शून्य है; इसका कारण यह है कि पिछली समय-अवधि के उत्पादन-स्तर की तुलना मे उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुयी है। कुल निवेश मे बहुत गिरावट है अर्थात् वह 15 हजार से घटकर 3 हजार हो जाता है।
7. समय-अवधि 8 मे बिक्री या उत्पादन मे कमी 1 हजार रु० के बराबर होती है, और इसलिए प्रेरित-निवेश ऋणात्मक (negative) हो जाता है और इसमे 3 हजार के बराबर कमी होती है (देखिए स्तम्भ नं० 5)। कोई प्रतिस्थापन-निवेश (replacement investment) नही किया जाता है; पूंजीगत स्टॉक को (3 हजार की सीमा तक) घिसने दिया जाता है [अर्थात्, 3 हजार के बराबर अ-निवेश (disinvestment) होता है] और कुल निवेश शून्य हो जाता है।
8. समय-अवधि 9 मे क्या होता है जबकि बिक्री या उत्पादन मे गिरावट रुक जाती है ? चूँकि समय-अवधि 8 मे अतिरिक्त या अनावश्यक (excess or redundant) पूँजी स्टाक समाप्त कर दिया गया था, अतः निवेश बढ़कर शुरू के (समय-अवधि 1 के) 3 हजार रु० के बराबर आ जाता है, निवेश की यह मात्रा प्रतिस्थापन निवेश के बराबर है।

इस प्रकार, उपर्युक्त काल्पनिक उदाहरण द्वारा त्वरण-सिद्धान्त के कार्यकरण की व्याख्या निम्नलिखित निचोड़ को बताती है—

(i) निवेश या प्रेरित निवेश 'बिक्री या उत्पादन या आय मे परिवर्तन की दर' के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित होती है।[27]

---

[24] We should remember that, according to the Acceleration Principle, investment (or induced investment) depends on the 'rate of change in ou put or income', not simply on the 'absolute change in output or income'

[25] Thus, in period 5, the rate of increase in output begins to fall, and therefore, the amount of induced investment (and, hence, total investment) declines.

[26] [In period 6 the rate of increase in output comes to 16·6 percent or about 17%; whereas the rate of increase in output in period 5 is 20%. Thus, the rate of increase in output in period 6 is only slightly less than the rate of increase in output in period 5; or we can say that they are approximately the same.]

[27] Investment (or induced investment or additional investment) varies directly with the 'rate of change in sales or output or income.'

(ii) निवेश-स्वभाव से 'अत्यधिक-परिवर्तनशील' (volatile) होता है; बिक्री या उत्पादन या आय में थोड़े चढ़ाव-उतार निवेश में कहीं अधिक विस्तृत चढ़ाव-उतार उत्पन्न कर देते हैं।[28]

त्वरण सिद्धान्त की सीमाएँ अथवा आलोचनाएँ (Limitations or Criticism of the Acceleration Principle)

यद्यपि त्वरक सिद्धान्त आय के चक्रीय चलन (cyclical movement) तथा निवेश में विस्तृत उतार-चढ़ावों की व्याख्या करने में उपयोगी है, परन्तु इस सिद्धान्त की कुछ सीमाएँ हैं। एक आधुनिक अर्थव्यवस्था में निवेश प्रक्रिया जैसी जटिल बात की व्याख्या करने के सम्बन्ध में त्वरक सिद्धान्त अत्यधिक यान्त्रिक (too mechanical) माना जाता है।[29] मुख्य आलोचनाएँ या सीमाएँ नीचे दी गई हैं—

1. स्थिर पूँजी-उत्पादन-अनुपात की मान्यता वास्तविक नहीं है (The assumption of fixed capital output ratio is not realistic)।

दूसरे शब्दों में, यह मान लिया जाता है कि उत्पादन (output) की एक निश्चित मात्रा को उत्पादित करने के लिए पूँजी की एक स्थिर मात्रा की आवश्यकता होती है, अर्थात् 'त्वरक' (accelerator) को स्थिर (fixed or constant) मान लिया जाता है। परन्तु वास्तविक गत्यात्मक जगत (real dynamic world) में त्वरक (A) को स्थिर नहीं माना जा सकता है; इसके अनेक कारण हैं, जैसे—

(i) अल्पकाल में बिना मशीनरी तथा पूँजीगत स्टॉक की मात्रा वृद्धि किये हुए केवल 'अतिरिक्त समय' (overtime) काम करके तथा अतिरिक्त शिफ्टों (additional shifts) के द्वारा उत्पादन में वृद्धि करना सम्भव है। अतः, ऐसी स्थिति में स्थिर 'पूँजी-उत्पादन-अनुपात' अथवा स्थिर 'त्वरक' की धारणा (concept) को लागू नहीं किया जा सकता है।

(ii) कुछ उद्योग, जो कि थोड़ी पूँजीगत वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, अधिक श्रम (न कि अधिक पूँजी) का प्रयोग करके उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं। इस प्रकार, स्थिर पूँजी-उत्पादन-अनुपात का विचार लागू नहीं होता है।

(iii) 'त्वरक' या 'स्थिर पूँजी-उत्पादन-अनुपात' (fixed capital-output ratio) स्थिर न रह कर, एक समय-अवधि (over time) में टेक्नोलोजीकल (technological) परिवर्तन के कारण, परिवर्तित हो सकता है। यदि एक नवप्रवर्तन (innovation) या टेक्नोलोजीकल परिवर्तन 'पूँजी-बचत वाला' (capital-saving) है ताकि 1 रु० के मूल्य के बराबर उत्पादन को कम पूँजी द्वारा उत्पादित किया जा सकता है, तब त्वरक (A) घटेगा। दूसरी ओर, यदि टेक्नोलोजीकल परिवर्तन 'पूँजी-गहन' (capital-intensive) है तो 1 रु० के मूल्य के उत्पादन के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी, और तब त्वरक (A) बढ़ेगा। इस प्रकार नवप्रवर्तन तथा टेक्नोलोजीकल परिवर्तन (innovations and technological changes) के साथ त्वरक परिवर्तित (change) हो सकता है।

(iv) बिक्री या माँग में वृद्धि के उत्तर में अल्पकाल में यह सम्भव है कि अल्पाधिकार (oligopolies) तथा एकाधिकारी प्रतियोगी फर्में (monopolistically competi-

[28] Investment is volatile in nature, small fluctuations in sales or output or income cause much wider fluctuations in investment.

[29] Inspite of the usefulness of the Acceleration Principle in explaining the cyclical movement of income and wide fluctuations in investment, there are some limitations inherent in the principle. The Acceleration Principle is supposed to be too mechanical to provide an adequate explanation of such a complex phenomenon as the investment process in a modern economy.

tive firms) अपने उत्पादन को न बढ़ाये और इसलिए पूंजीगत स्टॉक को न बढ़ाये, (बल्कि अधिक लाभ को प्राप्त करने के लिए केवल अपनी वस्तुओं की कीमतों को बढ़ा दें)। अतः इस प्रकार की स्थिति में स्थिर त्वरक (accelerator) का विचार लागू नहीं होगा।

2. **त्वरण सिद्धान्त में कोई स्पष्ट 'प्रेरणात्मक विषय' नहीं है** (The Acceleration Principle has *no 'motivational content'*)

साहसी को एक थर्मोस्टेट (thermostat)[30] की भाँति कार्य करने वाला मान लिया जाता है; अर्थात् यह मान लिया जाता है कि माँग में वृद्धि के उत्तर में जैसे ही उत्पादन-क्षमता (capacity) का पूर्ण प्रयोग हो जाता है वैसे ही अधिक उत्पादन (more output) को उत्पादित करने के लिए साहसी यान्त्रिक रूप से (mechanically) पूँजी-स्टॉक का समायोजन (adjustment) करने लगता है। निजी-उपक्रम-अर्थव्यवस्था (private enterprise economy) में मुख्य प्रेरणा' ('main *motive*') 'प्रत्याशित लाभदायकता' (*expected profitability*) होती है। साहसी तभी निवेश करेगा या पूँजीगत स्टॉक में वृद्धि करेगा जबकि वह निवेश की मात्रा पर पर्याप्त लाभ की आशा करता है।

वास्तव में, उत्पादन तथा पूँजी में भौतिक सम्बन्ध (physical relation) तभी महत्वपूर्ण होता है जबकि साहसी निवेश पर पर्याप्त या उचित (reasonable) लाभ की आशा करता है; अर्थात् लाभ ही निवेश के लिए मुख्य 'प्रेरणात्मक विषय' (main '*motivational content*') प्रदान करता है।

इस प्रकार त्वरण सिद्धान्त अत्यधिक यान्त्रिक (too mechanical) है और इसमें कोई 'प्रेरणात्मक विषय' नहीं (little or no motivational content) होता है।

3. **त्वरण सिद्धान्त यह मानता है कि अर्थव्यवस्था में प्रत्येक उद्योग पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रहा है, परन्तु यह सर्वव सही नहीं होता** (The Acceleration Principle assumes that each industry in the economy is working at full capacity,[31] but this is not always true.)

   (i) मन्दी (depression) के समय अथवा मन्दी से उत्थान (recovery) की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अनेक बेकार तथा अप्रयुक्त (idle and unutilised) मशीनें रहती हैं तथा अनेक बेकार कारखाने अप्रयुक्त (many idle factories being unused) रहते हैं, दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में पर्याप्त 'अतिरिक्त क्षमता' (excess capacity) अथवा 'अप्रयुक्त क्षमता' (unused capacity) रहती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में ऐसे समयों में जिसमें कि अतिरिक्त क्षमता रहती है त्वरण सिद्धान्त टूट जाता है क्योंकि अतिरिक्त उत्पादन की पूर्ति, अप्रयुक्त क्षमता का प्रयोग करके, की जा सकती है तथा किसी अतिरिक्त (additional) निवेश की आवश्यकता नहीं होगी।[32]

   (ii) शब्द 'क्षमता' (capacity) अथवा 'अतिरिक्त क्षमता' (excess capacity) को सही

---

[30] थर्मोस्टेट (thermostat) का हिन्दी रूपान्तरण 'तापस्थाप' या 'तापस्थापक' किया जाता है; थर्मोस्टेट तापमान (temperature) को नियन्त्रित करने वाला एक स्वयंचालित उपकरण (an *automatic* equipment) होता है।

[31] In other words, the Acceleration Principle assumes that the economy is operating at a level of full utilisation of existing capacity.

[32] Thus, as far as business cycle analysis is concerned, it is said that the principle may apply during the upswing (when rising demand presses hard against the existing capacity), but not in the downswing or depression phase (when excess and idle capacity exists in the economy). In other words, the working of the Acceleration Principle is asymmetrical as between the upswing and downswing

रूप में परिभाषित करने की कठिनाई है। वास्तव में, 'क्षमता' अथवा 'अतिरिक्त क्षमता' एक भ्रान्तिजनक विचार है। सामान्यतया, क्षमता को 'न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन स्तर' के शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है।[33]

वास्तव में, "यह अधिक अच्छा होगा कि क्षमता के विचार को कुछ स्वतंत्र रूप में लिया जाये तथा यह बताया जाये कि किसी एक बिन्दु पर साहसी इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि यदि वह बिना विस्तार किये हुये, प्रत्याशित माँग की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है तो उसकी वर्तमान सुविधाओं पर आवश्यकता से अधिक जोर पड़ेगा। निःसन्देह; यह बात त्वरण सिद्धान्त के विचार को नष्ट नहीं करती, परन्तु यह समस्त विषय को कहीं अधिक व्यक्तिपरक (subjective) बनाती है—और इसलिए कम निश्चित बनाती है—अपेक्षाकृत सिद्धान्त के यान्त्रिक माडलों (mechanical models) के, जो कि पूँजी और उत्पादन के बीच एक स्थिर टेक्नीकल सम्बन्ध पर आधारित होते हैं।"[34]

4. **सरल त्वरण सिद्धान्त किसी दिये हुये समय के अन्तर्गत निवेश अथवा अनिवेश पर भौतिक सीमाओं की उपेक्षा करता है। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त निवेश की 'ऊपरी सीमा' अथवा सीलिंग (ceiling) तथा अनिवेश की 'निचली सीमा' अथवा 'फ्लोर' (*floor*) की उपेक्षा करता है** [*The Simple Acceleration Principle ignores the physical* limitations on the amount of investment or disinvestment in any given period. In other words, the Principle ignores the 'upper limit' or the *ceiling* of investment and the 'lower limit' or the ('*floor*') of disinvestment.]

त्वरण सिद्धान्त साधनों को पर्याप्त लोचपूर्ण (quite elastic supply of resources) मान लेता है। दूसरे शब्दों में "सिद्धान्त यह मान लेता है कि उपभोग वस्तुओं का उद्योग पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग से सदैव पूँजीगत वस्तुएँ प्राप्त कर सकता है जब भी उसे अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।"[35] परन्तु ऐसी मान्यता सही नहीं है। उपभोग वस्तुओं के उद्योग की आवश्यकता के लिए पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन की एक 'ऊपरी सीमा' (upper limit) होती है। जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर के निकट अथवा समृद्धि की चोटी पर (at the peak of prosperity) पर कार्य कर रही होती है, तो पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों के विस्तार के लिए पर्याप्त साधन (sufficient factors or resources) प्राप्त नहीं हो पाते हैं। दूसरे शब्दों में, निवेश वस्तुओं अथवा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को उस सीमा से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता जिसकी कि पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग की क्षमता (capacity) आज्ञा देगी।

---

[33] There is the difficulty of defining precisely the term 'capacity' or 'excess capacity'. At best, 'capacity' or 'excess capacity' is an elusive concept. Generally, capacity may be defined as the minimum average cost output level

[34] As a matter of fact, it would be better "to interpret the notion of capacity somewhat freely and suggest that at some point the entrepreneur will reach the conclusion that his existing facilities will be over-taxed if he attempts to provide for an expected demand without expansion This, of course, does not destroy the notion of the Acceleration Principle, but it does make the whole matter much more subjective—and hence less precise—than do mechanical models of the Principle based upon a constant technical relationship between capital and output."

[35] In other words, the principle "assumes that the consumer goods industry can always secure capital goods from the capital goods industry when it wants additional capital." [This implies : "if the consumer goods industry is to maintain its desired capital-output ratio, the capital goods industry must *not* maintain its desired capital-output ratio. The latter should always have excess capacity to meet new demands on time" But this cannot be so The capital goods industry cannot have excess capacity at full employment level or during the period of prosperity when all the resources in the economy are fully employed. The production of consumer goods will be limited or restricted by the productive capacity of the capital goods industry].

इस प्रकार, निवेश को उतना नहीं बढ़ाया जा सकता जितना कि त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण बतायेगा, क्योंकि एक 'ऊपरी सीमा' अथवा 'सीलिंग' होती है जो कि पूंजीगत वस्तुओं के उद्योग की क्षमता (capacity) द्वारा निर्धारित होती है।[36]

दूसरी ओर, त्वरण सिद्धान्त के कार्यकरण के अनुसार, मन्दीकाल (depression) मे गिरती हुई माँग बहुत अधिक अनिवेश (much disinvestment) की क्रिया को उत्पन्न करेगी। "परन्तु समस्त अर्थव्यवस्था केवल उस सीमा तक अनिवेश (disinvestment) कर सकती है (अथवा पूँजी स्टॉक को घटा सकती है) जिस सीमा तक कि एक साल मे पूँजी घिसती है।"[37] दूसरे शब्दों में, "अर्थव्यवस्था में पूँजी केवल उतनी तेजी से घटाई जा सकती है जितनी तेजी से वह घिसती है या अप्रचलित (obsolete) होती है:"[38]

इस प्रकार, मन्दी के निम्नतम बिन्दु पर पूँजीगत स्टॉक के घटने की (अथवा अनिवेश की) एक 'निचली सीमा' या 'फ्लोर' होती है जो कि घिसायी की मात्रा द्वारा निर्धारित होती है।[39]

अब हम समस्त स्थिति का सारांश (summing up) निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं—

एक ओर तो त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण सीमित होता है 'ऊपरी-सीमा' या 'सीलिंग' द्वारा जो कि पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों की क्षमता द्वारा निर्धारित होती है; तथा, दूसरी ओर, इस सिद्धान्त का कार्यकरण सीमित होता है 'निचली-सीमा' या 'फ्लोर' द्वारा जो कि घिसायी की मात्रा द्वारा निर्धारित होती है।[40]

5. **त्वरण सिद्धान्त निवेश-निर्णयों के सम्बन्ध में आशाओं की भूमिका को एक उचित स्थान प्रदान नहीं करता** (The Acceleration Principle does not give a due place to the role of expectations regarding investment decisions)

सिद्धान्त यह मान लेता है कि बिक्री या माँग मे वर्तमान वृद्धि लगभग स्थायी (permanent) है और यह भविष्य में भी बनी रहेगी। परन्तु माँग में वर्तमान वृद्धि भविष्य के लिए सदैव सही मार्गदर्शक (true guide) नहीं होती। भविष्य मे, माँग के सम्बन्ध मे व्यापारियों की 'आशाएँ' (expectations) प्रेरित निवेश के स्तर को प्रभावित करेंगी।

(i) यदि एक व्यापारी या एक फर्म बिक्री या माँग में वर्तमान वृद्धि के अस्थायी (temporary) होने की आशा करता है, तो कोई भी अतिरिक्त (additional)

---

[36] Thus, investment cannot be increased as much as the working of the Acceleration Principle would suggest because there is an '*upper limit*', or '*ceiling*' given by the capacity of capital goods industry.

[37] "But the whole economy can only disinvest (or reduce its capital stock) in one year to the extent of depreciation of capital in that year."
["The Accelerator has a limit in the downswing, namely, that *gross* investment can never be less than zero. Net investment can become negative whenever depreciation is greater than the value of new capital goods. But for *gross* investment to be expressed negatively necessitates the absurdity of a minus production of plant, equipment and inventories. If replacement investment is reduced, it can only be reduced to zero. Any further need to reduce investment will take the form of not using some existing plant and equipment, in other words, will lead to an used capacity."]

[38] In other words, "capital can be reduced in the economy only as fast as it wears out or becomes obsolete.

[39] Thus, during the bottom, of depression there is a 'lower-limit' or the 'floor' for the reduction of capital stock (that is, for disinvestment) given by the amount of depreciation.

[40] On the one hand, the working of the Acceleration Principle is limited by the 'upper limit' or the 'ceiling' given by the capacity of the capital goods industries; and, on the other hand, the working is limited by the 'lower limit' or the 'floor' given by the amount of depreciation.

निवेश नही किया जायेगा। ऐसी स्थिति मे बढ़ी हुयी माँग को, स्टॉकों या अतिरिक्त क्षमता (stock or excess capacity) के द्वारा, अथवा वर्तमान यन्त्र को अधिक गहराई के साथ (more intensively) प्रयोग करके, पूरा किया जायेगा।

(ii) यदि एक व्यापारी या फर्म बिक्री या माँग में वर्तमान वृद्धि की स्थायी (permanent) होने की आशा करता है, तो अतिरिक्त (additional) निवेश किया जायेगा। फर्म या व्यापारी 'भविष्य' की बिक्री की दृष्टि से प्रायः निवेश करती है।

"जैसे ही हम अपने विश्लेषण मे आशाओं को लाते है, वैसे ही हमे मानना होगा कि प्रेरित निवेश 'स्वतन्त्र निवेश' की भाँति, अनेक तत्वों द्वारा प्रभावित होता है जिनको कि 'आर्थिक जलवायु' ('economic climate') के अन्तर्गत रखा जा सकता है, जैसे—विश्वास, राजनैतिक स्थिति, अन्तर्राष्ट्रीय विकास, स्टॉक बाजार मे परिवर्तन, तथा इसी प्रकार के अन्य तत्व।"[41]

6. **सरल त्वरण सिद्धान्त समय-विलम्ब की उपेक्षा करता है** (The Simple Acceleration Principle ignores the time-lag)

दूसरे शब्दों मे, यह मान लिया जाता है कि माँग की परिवर्तित दशाओं के अनुसार, एक फर्म या व्यापारी द्वारा, एकदम या फौरन पूंजीगत स्टॉक मे समायोजन किया जाता है। परन्तु यह सही या व्यावहारिक नहीं है।[42]

अतिरिक्त पूंजीगत यन्त्र के उत्पादन तथा उसके पूर्ण स्थापना (complete installation) मे पर्याप्त समय लगता है जिसे 'जेसटेशन समय' (gestation period) कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे, सामान्यतया वह समय जब पूंजीगत यन्त्र की पहली बार आवश्यकता महसूस की जाती है तथा वह समय जब पूंजीगत यन्त्र वास्तव मे उत्पादन शुरू करता है—इन दोनों के बीच पर्याप्त या लम्बा समय-विलम्ब (time lag) रहता है। उदाहरणार्थ, यदि एक पूंजीगत यन्त्र के लिए 'जेसटेशन समय' 3 साल है तो अतिरिक्त निवेश (या प्रेरित निवेश) का पूर्ण प्रभाव एक साल के अन्दर अनुभव नहीं किया जा सकेगा बल्कि वह तीन वर्षों मे फैल जायेगा।[43]

एक व्यापारी या एक फर्म निवेश की योजनाओं को बनाने और उनको स्वीकार करने मे समय लेती है। वर्तमान प्रबन्ध (existing management) प्लांट तथा पूंजी-यन्त्र में केवल कुछ सीमित वृद्धियों (only some limited additions) के सम्बन्ध मे ही कुशलता के साथ (efficiently) कार्यवाही कर सकता है। इन सब बातों के कारण पूंजीगत स्टॉक का धीमा या धीरे-धीरे समायोजन (slow and gradual adjustment) हो पाता है।

पूंजीगत स्टॉक का कोई फौरन या एकदम समायोजन सम्भव नही होता; इच्छित स्तर (desired level) तक पूंजीगत स्टॉक के समायोजन में एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया (long and complicated process) होती है।

7. **त्वरण सिद्धान्त कीमतों तथा लागतों के सापेक्षिक स्तरों में परिवर्तनों के प्रभावों की उपेक्षा करता है** (The Acceleration Principle ignores the effects of changes in the relative levels of prices and costs)

---

41 "As soon as we bring in expectations, we have to recognise that induced investment, like autonomous investment, is subject to a variety of factors which we can sum up as the 'economic climate'—confidence, the political scene, international developments, stock market changes, and so on."

42 In other words, it assumes that, according to the changed conditions of demand, immediate or instantaneous adjustment of capital stock is made by a businessman or a firm, but this is not true or practicable.

43 In other words, generally, capital equipment involves considerable or long time-lag between the time when the need for such investment is first realised and the time when the capital equipment actually starts producing goods. For example, if in the case of a capital equipment, the gestation period is 3 years, the full impact of additional investment or (induced investment) will not be felt in one year but will be spread over three years.

(i) समृद्धि (prosperity) के समय मे, और विशेषतया समृद्धि की चोटी पर (at the peak of prosperity), पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगों पर अत्यधिक दबाव पूँजीगत वस्तुओ की लागत को बढ़ा सकता है, तथा इस प्रकार निवेश के लिए प्रेरणा बहुत कमजोर हो सकती है।

(ii) यह सम्भव है कि पूँजीगत वस्तुओ की लागत की तुलना मे श्रम की लागत मे कमी हो जाये ; ऐसी स्थिति व्यापारियों को बाध्य कर सकती है कि वे नई निवेश योजनाओं (new investment projects) मे पूंजी के स्थान पर श्रम का प्रतिस्थापन (substitution) करें। [परन्तु उन्नतशील देशो (advanced countries) मे, इस प्रकार की सम्भावना, व्यवहार मे, अत्यन्त सीमित रहती है।]

(iii) समृद्धि की समय-अवधि मे अथवा व्यापारिक क्रिया की चोटी पर (at the peak of business activity), पूँजीगत वस्तुओं को खरीदने के लिए द्रव्य व साख की बहुत अधिक माँग ब्याज-दर [अर्थात, उधार की लागत (cost of borrowing)] को बहुत ऊँचा कर सकती है और यह बात निवेश की क्रिया को बहुत सीमित कर सकती है। परन्तु अनुभव आश्रित अध्ययन (empirical studies) यह बताते है कि ब्याज-लागतें वास्तव मे निवेश-निर्णयों को बहुत महत्वपूर्ण तरीके से (very significantly) प्रभावित नही करती।

निष्कर्ष (Conclusion)

त्वरण सिद्धान्त के विचार, कार्यकरण तथा सीमाओं की विवेचना करने के बाद हम निम्नलिखित बातें (observations) प्रस्तुत करते हैं—

1. त्वरण सिद्धान्त[45] की आलोचनाएँ या सीमाएँ यह बताती है कि सिद्धान्त 'यान्त्रिक निश्चितता' के साथ कार्य नही कर सकता। निवेश मे उतार-चढ़ाव उतने तीव्र नही होंगे जितना कि सरल त्वरण सिद्धान्त बतायेगा। परन्तु इसमें कोई सन्देह नही है कि निवेश में उतार-चढ़ाव कही अधिक होंगे, उपभोग या आय में उतार-चढ़ावों की तुलना में। दूसरे शब्दों में, निवेश, कुल माँग के अंगों मे से एक सबसे कम अस्थायी अंग होता है।

2. यह सिद्धान्त वास्तविकता का एक मोटा चित्रण प्रस्तुत करता है न कि उसका एक निश्चित लेखा। यदि त्वरण सिद्धान्त को केवल अकेले ही लिया जाये तो वह निवेश के सिद्धान्त के रूप में एक आंशिक या अपर्याप्त सिद्धान्त होगा।[46]

   परन्तु सिद्धान्त मे एक पर्याप्त मात्रा तक सत्यता है और यह इस बुनियादी तत्व पर जोर देता है कि वस्तुओं की नई या अतिरिक्त माँगों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होगी।[47]

---

[1] Keynes did not introduce the Accelerator into his *General Theory* but probably he had some idea about it. He emphasised the role of expectations which modify the mechanical operation of the Accelerator.

[1] The criticisms or limitations indicate that the Acceleration Principle cannot work with mechanical precision. The fluctuations (*i. e.* the rise and fall) in investment expenditure will not be so wide or violent as the simple acceleration principle would suggest. But there is no doubt that the fluctuations in investment will be greater than those in consumption or income. In other words, investment is one of the least stable components of the aggregate demand.

[1] The Principle is an approximation of reality rather than a precise account. The Acceleration Principle, taken alone, is partial or inadequate as a theory of investment.

[47] But the Principle does contain a large grain of truth and does emphasise the basic fact that additional capital goods are needed to meet new or additional demands.

3. सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करने में सहायता करता है कि निवेश में चक्रीय उतार-चढ़ाव (cyclical fluctuations) क्यों अधिक होते हैं अपेक्षाकृत उपभोग में उतार-चढ़ाव के। व्यापारिक चक्रों को समझने के लिए त्वरण सिद्धान्त का समझना आधारभूत और महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, व्यावसायिक चक्रों के विश्लेषण के लिए अर्थशास्त्रियों के टूल-बॉक्स (tool box) में उपयोगी धारणाओं में से त्वरण सिद्धान्त एक अत्यन्त महत्वपूर्ण धारणा है। ए. एफ. बर्नस् (A. F. Burns) के अनुसार, "व्यावसायिक चक्र की कोई भी व्याख्या जो कि इस सिद्धान्त की उपेक्षा करती है उसके पूर्ण होने की सम्भावना नहीं हो सकती।"[18]

प्रश्न

1. त्वरण सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? त्वरण सिद्धान्त के कार्यकरण को एक उदाहरण द्वारा समझाइए।
   What do you understand by the Acceleration Principle? Explain its working with the help of an example.

2. निवेश के त्वरण सिद्धान्त को समझाइए। इस सिद्धान्त की सीमाओं की विवेचना कीजिए।
   Explain the Accelerator Theory of Investment. Discuss its limitation.

---

[18] The Principle helps to explain why the cyclical fluctuations of investment are larger than those of consumption. An understanding of the Acceleration Principle is basic and important for understanding business cycles. In other words, the Acceleration Principle is one of the most valuable concepts in the tool-box of the economists for analysing business cycles. According to F. A. Burns, "no explanation of the cycle which ignored it could possible be complete."